एकतान गति होती है परन्तु यदि इस के मूल संस्कृत ग्रन्थ की गम्भीरता और इस में वर्णित शास्त्रीय विषयों की ओर ध्यान दियाजाय तो बड़े बड़े पण्डितों को भी विचार में मग्न होना पड़ताहै इस कारण ही यह कहावत प्रसिद्ध है कि "विद्यावतां भागवते परीक्षा" अर्थात् जो अपने को विद्यावान् कहते हों उन की भागवत में परीक्षा होसक्ती है; हमने काशी में भी बड़े २ पण्डितों के मुख से ऐसा निरभिमान और श्रीमद्भागवत के गौरव को प्रकट करनेवाला वाक्य सुना है कि " श्रीमद्भागवत वास्तव में सकल निगमागमों के सार का भण्डार है, जितना अधिक इसका विचार कियाजाय उतना ही अधिक २ गम्भीर प्रतीत होता है " यही कारण है कि-बड़े २ पण्डितों ने इसके ऊपर अपूर्व चमत्कार दर्शानेवाले तोषणी चक्रवर्ती आदि संस्कृत टीके रचे परन्तु पूर्ण पण्डितों की उन से भी तृप्ति नहीं होती वह और भी जो श्रीमद्भागवत का प्राचीन संस्कृतभाष्य पाते हैं उस के निमित्त पिपासु की समान दौड़ते हैं; सुना है कि-श्रीवृन्दावन में रङ्गाचारीजीके पुस्तकालयमें कोई श्रीमद्भागवत का ऐसा संस्कृत टीका है कि-बड़े २ दश पन्द्रह वसनों में लिपटा रक्खा रहता है वास्तव में वह धन्य और अहोभाग्य हैं जिन का समय श्रीमद्भागवत के विचार में व्यतीत होता है यद्यपि सदा संस्कृत टीकाओं के आधार से संस्कृत विद्वानों को श्रीमद्भागवत से बहुत कुछ आनन्द प्राप्त हुआ और प्राप्त होता है परन्तु अब पूर्व का सा समय नहीं है;अब भारत में राजा भोज के समय की समान तो क्या, उससे शतांश भी संस्कृत का प्रचार नहीं है, यदि कोई भारत का भूषण संस्कृत का उत्तम विद्वान् अपने कर्त्तव्य का पालन करके परमधाम को पधार जाता है तो आगे को वैसा संस्कृतज्ञ प्रायः मिलना कठिन होजाता है, अपने नित्य कर्म और भक्ष्याभक्ष्य के विचार से हीन होने के कारण द्विजमात्र के चित्त की नवीन प्रकार की सृष्टि होगई है, द्विजों के ऊपर संस्कृत का पढ़ना पढ़ाना, ऋषियों का ऋण है वह द्विज आज प्रायः अपने पूर्वजों की मर्यादा को छोड़ ऋण चुकाने की ओर कुछ ध्यान न देकर अपने को नरक का पथिक बना रहे हैं, क्या ऐसे संस्कृत विद्या के विपरीत समय में देशभाषा के द्वारा पुरातन संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद न होने से सर्वसाधारण का, अपने अमूल्यरत्नरूप संस्कृत ग्रन्थों का तात्पर्य न जानने के कारण विदेशी और विधर्मियों के जाल में फँसना और परमसुख से विमुख हो संसार के क्षणिक सुख में आयु को खोदेना सम्भव है, इसकारण ही संस्कृत विद्या और भारतवर्ष के हितैषी पुरुषों ने, संस्कृत विद्या के प्रचार की चेष्टा के साथ २ देशभाषा में संस्कृत

ग्रन्थों के अनुवाद की रीति का भी प्रचार करा है, ऐसी दशा में श्रीमद्भागवत के भाषानुवाद की भी आवश्यकता देख अनेकों महाशयों ने इस मार्ग में पग बढ़ाया, और बहुत सी भागवत की भाषाटीका छपकर बिकीं तथा बिक रही हैं, परन्तु यदि विचार की दृष्टि से देखाजाय तो श्रीमद्भागत की ऐसी भाषाटीका कोई नहीं छपी जो स्वच्छ हिन्दी भाषा में और सर्वथा मूल के अनुकूल हो, क्योंकि-पहिले तो लखनऊ में एक पुस्तक "सुखसागर" नाम से श्रीमद्भागवत का आशय लेकर लिखागया, उस में बहुत सी बातें श्रीमद्भागवत से न्यूनाधिक हैं, जिन के कारण उस को श्रीमद्भागवत का अनुवाद नहीं कहाजासक्ता, उस के अनन्तर बम्बई में श्रीमद्भागवत की मूल के साथ कई एक भाषाटीका छपीं, परन्तु वह भी सर्वथा मूलानुकूल नहीं कहलासक्तीं, क्योंकि-उन में से कोई तो कई २ वार शुद्ध होकर छपनेपर भी अभीतक अनेकों स्थलोंपर मूल के अनुकूल नहीं हैं और कोई २ ऐसी हैं कि-आडम्बर के विज्ञापनों से लुभियाकर यदि उन को मंगाकर देखाजाय तो उन में इधर उधर की वा मनगढ़त दोहा चौपाई और अनपढ़ों का चित्त रञ्जन करने वालीं कहानियों की भरमार के सिवाय अर्थ मूल से प्रायः प्रतिकूल ही मिलता है, जिस के कारण विधर्मी और नवीन सम्प्रदायवालों के अनेकों आक्षेप सुनने पड़ते हैं, हां एक श्रीमद्भागवत की भाषाटीका बम्बई में प्रायः सावधानी के साथ बनवाकर छापीगई है परन्तु उस में उर्दू का ऐसा समावेश है कि-उस से स्वच्छ हिन्दी के प्रेमियों का चित्त प्रसन्न नहीं होसक्ता और न उसकी सहायता से साधारण संस्कृत पढा पुरुष मूल को ही समझसक्ता है इस के सिवाय मूल और भाषाटीका सहित बम्बई की छपी कोई भी श्रीमद्भागवतकी पुस्तक दश बारह रुपये से कम को नहीं मिलसक्ती, जो कि-थोड़ी आय वाले के लिये सर्वथा प्राप्त होना कठिन है तथापि उन पुस्तकों के छपवानेवाले धन्यवाद के पात्र हैं कि-उन्होंने इस मार्ग में प्रथम पग बढ़ाया। ऐसी कई टीका बम्बई में छपनेपर भी उन से चित्त को पूर्ण सन्तोष न होने के कारण विक्रम सम्वत् १९५१ में मुंबई की थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रसिद्ध और संस्कृत तथा अंग्रेजी विद्वान् रा०रा० तुकाराम तात्या ने मुझे श्रीमद्भागवत का भाषा टीका रचने के लिये प्रेरणा करी और मैंने भी श्रीमद्भागवत के विचार का अवसर प्राप्त होने से परम आनन्द के साथ उक्त महाशय के कथन को स्वीकार कर श्रीमद्भागवत की भाषाटीका लिखनेका प्रारम्भकिया और यथावकाश तीन वर्ष के भीतर दशमस्कन्धके सिवाय शेष सकल स्कन्धोंका भाषाटीका रचकर बम्बई भेजदिया, परंतु

दशमस्कन्ध पूर्ण नहीं लिखने पाया कि–इतने ही में उक्त महाशय का परलोक-वास होगया इसकारण उनका उत्साह भी उन्हीं के साथ लीन होगया और बहुत कुछ उद्योग करने पर भी वह पुस्तक नहीं छपा और न मुझे वापिस ही मिला; तब मैं इसके छपने में सर्वथा निराश हो बैठा। परन्तु परमेश्वर की महिमा अचिन्त्य है, वह कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हैं, उन ही अनाथनाथ श्रीहरि की प्रेरणासे भगवद्भक्त वैश्यकुलभूषण अग्रवालवंशावतंस श्रीयुत सेठ शिवलाल जीके सुपुत्र लाला गणेशीलालजीने, सर्वसाधारणके हितार्थ श्रीमद्भागवतका एक उत्तम भाषाटीका अपने यन्त्रालय में छपाने के निमित्त मुझे रचने की प्रेरणा करी, जिसको मैंने ऐसा अवसर प्राप्त होने से अपना अहोभाग्य मान आनन्दके साथ स्वीकार कर तोषणी, श्रीधरी, चक्रवर्त्ती और बालप्रबोधिनी आदि संस्कृत टीकाओंके अनुसार बहुत सावधानी के साथ यथाशक्ति भाषा टीका लिखने का प्रारम्भ करदिया, परन्तु लाला गणेशीलालजी के चित्त को इससे पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि–वह प्रायः श्रीमद्भागवत का विचार करने के कारण श्रीमद्भागवतके गौरवको भलीप्रकार जानते हैं अतः उन्होंने कहा कि–श्रीमद्भागवत पर यदि अन्वय के अङ्क लगादिये जायँ तो साधारण संस्कृत पढ़े पुरुषों को भाषाटीका और अन्वय दोनों की सहायतासे मूल के संस्कृत श्लोकों को समझने में सुगमता होगी और पण्डितों में भी अन्वय के साथ ही पढ़ाने की रीति है अतः उनको भी ऐसा होने से बहुत सुभीता होजायगा मैंने उक्त लालासाहब की इस प्रेरणा को भी सहर्ष स्वीकार करा और यथाशक्ति परिश्रमकर अन्वयके अङ्क भी इस पुस्तक में सम्मिलित करे। इस अन्वयके अङ्क लगानें में वा ऐसा मूलके अनुकूल भाषाटीका लिखने में जितना परिश्रम कियागया है उसको संस्कृतज्ञ श्रीमद्भागवत के प्रेमी ही समझसक्ते हैं: क्योंकि–"विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्" अर्थात्–पण्डित के परिश्रम को पण्डित ही जानताहै, क्योंकि सन्तान उत्पन्न होने के समय की पीड़ाको वन्ध्या क्या जानेगी ? अर्थात् कदापि नहीं जानसक्ती।

अब हम भूमिका से सम्बन्ध रखनेवाली दो चार बातें और लिखकर भूमिका को समाप्त करेंगे।

श्रीमद्भागवत पर कलियुगी आक्षेप.

कलियुग भी बड़ा प्रतापी है, यह कलियुग का ही प्रताप है कि–आज अनेकों

आर्यावर्त्तनिवासी अपने पूर्वजों के गौरव से अनभिज्ञ होकर उनके प्रकट करेहुए रत्नों में कांच का भ्रम मानरहे हैं, जिस श्रीमद्भागवत के प्रभाव से, परीक्षित्, गोकर्ण और शौनकादि ऋषियों की मुक्तिहुई, जिसके प्रभाव से इस दारुणसमयमें कोटिशः भक्त नर-नारी निज मनोरथोंको प्राप्त होते हैं, आजकल उस ही अमूल्यरत्नकी अनेकों महाशय निन्दा करके पापके भागी बनते हैं; यद्यपि आक्षेप करनेवाले अनेकों पुरुष उचित उत्तर पाकर अधोमुख होचुके हैं तथापि अनेकों नवीनमतावलम्बी पक्षपाती पुरुष, श्रीमद्भागवत के प्रधान प्रतिपाद्य आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र के पवित्र चरित्रों के रहस्यको न जान, गोपीप्रेम, चीरहरण आदि गूढ़ रहस्यों का उपहासकर पाप के भागी बनते हैं, यद्यपि उनके इस वर्त्तावसे भगवान् के सच्चे भक्तों के चित्त कदापि चलायमान नहीं होसक्ते तथापि जिनको कभी साधुसमागम का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है, जो संस्कृत और भगवच्चरित्रों के रहस्यसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं ऐसे ग्रामीण और सरलप्रकृति के पुरुषों के ऊपर उनके घटाटोपमय निःसार कथनका प्रभाव पड़कर बड़ा अनर्थ होता है इसकारण हम स्थालीपुलाक न्याय से गोपीप्रेम का कुछ रहस्य लिखते हैं—" श्रीकृष्णभगवान् की अनन्यभक्ति करनेवालीं गोपियें उनको 'कान्त' कहना चाहती थीं, वह भ्राता, पुत्र वा भगवद्भाव से श्रीकृष्ण की आराधना नहीं करती थीं, शास्त्र में स्त्रियों का सर्वस्व पति ही लिखाहै, इसकारण वह जगन्नाथ श्रीकृष्ण को 'प्राणनाथ' कहकर ही अतल सुखसागर में निमग्न होती थीं, श्रीकृष्ण से छुपाहुआ उनका कुछ नहीं था, क्योंकि-भगवत्प्रेम की उमङ्ग में लौकिक दिखावट का परदा दूर होनेपर जिस विश्वमय निर्मलप्रेम का उदय होता है उसमें भगवान् से लज्जा भय करने का अवकाश नहीं रहता है, गोपियों को ज्ञान होगया था कि-हमारे प्राणेश्वर व्रजेश्वर श्रीहरि इस विश्व ब्रह्माण्ड के सकल स्थानों में विद्यमान हैं; वह प्रेम में मग्न होकर जिधर को दृष्टि उठाती थीं उधर ही भक्तगति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का दर्शन पाती थीं, फिर लज्जा करके कहाँ छुपतीं ? नौ प्रकारकी भक्तिमें से अन्तिम 'आत्मनिवेदन' रूप भक्ति का लक्षण उनके हृदय में प्रकट हुआ था, उन्हों ने सम्पत्, विपत्, सुख, दुःख, प्राण, मन, कुल, मान सबही कृष्णभगवान् को समर्पण करदिया था, उन का संसार प्राणप्रिय कृष्णमय होगया था, इस तन्मयभाव में शत्रुता, मित्रता, स्नेह आदि सब की समाप्ति है; अहो ! इस भक्ति के स्वर्गीयआनन्द को प्राप्त होना दो चार जन्म के पुण्यों से नहीं बनसक्ता, इस के तत्त्व को भगवद्भक्तिशून्य संसाराशक्त पामर

पुरुष नहीं जानसक्ते, अतएव वह अपनी अनभिज्ञता के कारण चाहें जो कुछ प्रलापने लगते हैं हम को निश्चय है कि-श्रीमद्भागवत और कृष्णभगवान् के पवित्र चरित्रों के विरोधी भी यदि आग्रह को छोड़ श्रद्धा के साथ इस पुस्तक को सुनें तो संसारसागर के पार होने का उपाय पाजाँय, परन्तु ऐसा होने में पुण्य-बल की आवश्यकता है। नहीं तो 'शङ्काभिः सर्वमाक्रान्तम्' संसार के सब पदार्थों में शङ्का होसक्ती है, परन्तु 'संशयात्मा विनश्यति' जो पुरुष अपने सर्वशास्त्र पारङ्गत पूर्व पुरुषों के निश्चित विषय में संशय करता है वह सन्मार्ग से भ्रष्ट होकर नष्ट होजाता है।

श्रीमद्भागवत के ऊपर शङ्का होने के कारण.

विना कारण के कोई कार्य नहीं होता, जब तक यह कारण बना रहेगा कि-सनातनधर्मावलम्बी, विनाविचारे चाहें जिस के अस्तव्यस्त अनुवाद करे ग्रन्थों को कम कीमत के लोभ से खरीदने को उद्यत होंगे, अवश्यही शङ्का होगी, जिस श्रीमद्भागवत का तात्पर्य कहने में अच्छे २ पण्डितों को कुछ देर विचार करना पड़ता है, हा! आज उस को संस्कृत के अनभिज्ञ अन्य भाषाओं की सहायता से अस्तव्यस्त अनुवाद के साथ छपवाकर भागवत के भक्तों के चित्तों को शङ्कित कर रहे हैं, हमने अभी थोड़ा समय हुआ श्रीमद्भागवत भाषा टीका की एक पुस्तक को मंगाकर देखा तो उस में पहिले ही श्लोक में अर्थ का अनर्थ पाया 'जन्माद्यस्य यतः' का अर्थ है कि-'जिस परमेश्वर से इस जगत् का जन्म, पालन और प्रलय होता है। परन्तु वहां लिखा था कि 'जिस से इस संसार का जन्म और स्थिती नष्ट होती है' अब इस से ही, पाठक समझलेंगे कि-यह अर्थ है या अनर्थ। यदि ऐसी पुस्तकों की पूर्ण समालोचना की जाय तो ग्रन्थ बनजाय; अस्तु परन्तु खेद इस बात का है कि-बड़े २ यन्त्रालयाधीश और प्रसिद्ध पत्रों के सम्पादक भी ऐसी पुस्तकों के छापने में और ऐसे अनुवादकों की यत्परोनास्ति प्रशंसा करने में नहीं हिचकते हैं, क्या ऐसे लोगों को देश का, संस्कृत विद्या का वा हिन्दीभाषा का हितैषी कहाजासक्ता है?।

इस टीका की सङ्केतावली.

हमने इस टीके में जो सङ्केत लिखे हैं उनको इसप्रकार समझिये-श्लोकों के ऊपर जो महीन अङ्क लगेहुए हैं वह अन्वय के हैं जिस२ पद के ऊपर एक दो आदि अङ्क बने हैं उनमें से पहिले एक के अङ्कवाला पद, फिर दो के अङ्क-वाला फिर तीन के अङ्कवाला इसप्रकार सङ्ख्या के क्रम से सब पदों को अलग

लिखने से वा उच्चारण करने से हरएक श्लोक का अलग२ अन्वय होजायगा, इस पुस्तक के भाषाटीका में जहाँ (   ) ऐसे चिह्न के भीतर कुछ वाक्य लिखा है वह-चिह्नसे पहिले वाक्य को स्पष्ट करनेवाला है; जहाँ "   " ऐसे चिन्ह के भीतर कुछ लिखा है वह और ग्रन्थ का प्रमाण वा दूसरे का वाक्य है। जहाँ * ‡ § ¶ + × इत्यादि चिह्न हैं वह टिप्पणी के सूचक हैं अर्थात् ऐसे चिह्नयुक्त पदों के विषय में नीचे आड़ी रेखा खैंचकर उस ही चिन्ह के साथ विस्तार के साथ विवरण लिखा है। यह ध्यान रखना चाहिये कि-मूल में अन्वय के अङ्कों में एक से प्रारम्भ करके क्रम से चाहें कई श्लोकों के ऊपर अङ्क लिखे हों उन सब का इकट्ठा अन्वय होगा, जब फिर आगे के श्लोक में एक का अङ्क आवेगा तब उस श्लोक का अन्वय अलग होगा।

श्रीमद्भागवत की श्लोकसंख्या.

अनेकों स्थानपर लिखा है और प्रसिद्धभी है कि-श्रीमद्भागवत में १८००० सहस्र श्लोक हैं परन्तु साधारणरीति से गणना करीजाय तो ठीक हिसाब नहीं बैठता; इसकारण हमने श्रीमद्भागवत के आदि श्लोककी श्रीधरी टीका की, श्रीकाशिनाथ उपाध्याय रचित सुबोधिनी टीका से लेकर १८००० सहस्र की गणना की रीति नीचे लिखी है।

इस बड़े२ छन्द, अनुष्टुप् और गद्यों के समूहरूप श्रीमद्भागवतमें बत्तीस२ अक्षरका एक२ अनुष्टुप् छन्दके प्रमाणसे गणनामें १६१९५ श्लोक होतेहैं और १२७० उवाचरूप श्लोकहैं तथा २०० आधे श्लोक हैं तथा ३३५ अध्यायोंकी समाप्ति में ३३५ इतिश्री इत्यादि हैं इसप्रकार यह सब मिलकर १८००० सहस्र सङ्ख्या होती है।	१६१९५ १२७० २०० ३३५ ——— १८०००

धन्यवाद.

मैं इस पुस्तक के प्रकाशक वैश्यकुलभूषण अग्रवालवंशावतंस सेठ शिवलालजीके पुत्र श्रीयुत लाला गणेशीलालजी को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ, कि-जिन्हों ने इस ग्रन्थ को उत्तमता से छपाने में मुक्तहस्त होकर धन के व्यय करनेका भार उठाया यद्यपि यह महाशय १५।१६ वर्ष से व्यवहार के झगड़े को त्यागकर केवल भारत भागवतादि संस्कृतग्रन्थों के विचार और भगवद्भजनमें ही तत्पर रहते हैं तथापि इन्हों ने मेरे बहुत आग्रह करने से लोकोपकारी ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ चारवर्ष हुए जब यह "लक्ष्मीनारायण-नामक" छापाखाना

खोला था, जिस का एक फल यह श्रीमद्भागवत का सान्वय भाषाटीका आपके सन्मुख उपस्थित है, ईश्वरसे प्रार्थना है कि–ऐसे पुरुषों पर सदा करुणावृष्टि बनाये रक्खें जिस से ऐसे २ उपकारी ग्रंथों का प्रचार होकर देशका उपकार हो ।

सहायकों को धन्यवाद.

इस पुस्तक के छपवाने में निम्न लिखित महाशयों ने हस्तलिखित पुरातन पुस्तकें आदि देकर सहायता करी है अतः मैं धन्यवाद देता हूँ ।

चक्रवर्ती टीका पुरातन हस्त लिखित	स्वर्गवासी श्रीमान् पण्डित सत्यनारायणजी कवीश्वर धर्माधिकारी रियासतरामपुर के पुत्र प० प्रतापनारायणजी शर्मा नियमनारायणजी शर्मा ।
तोषणी पुरातन हस्त लिखित टीका	व्याकर्णाचार्य पण्डित मुकुन्द झा शास्त्री जी प्रथमाध्यापक जवाहरसंस्कृत पाठशाला मुरादाबाद ।
कार्याधिकता के समय माहात्म्यपर अन्वयाङ्क लगाने की सहायता	लाला मन्नूलालजी अग्रवाल मुरादाबाद ।
प्रेस में इकवारा प्रूफ देखने की सहायता	ला० श्यामलालजी अग्रवाल मैनेजर, प० शीतलप्रसादजी वाजपेयी फोरमैन लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद ।

क्षमाप्रार्थना.

प्रिय विज्ञ पाठकगण ! यद्यपि मैंने इस भाषाटीका को लिखते समय अपनी शक्ति अनुसार बहुत सावधानी की है, तथापि मनुष्य धर्मानुसार जहां कहीं दृष्टिदोष वा मुद्रणकार्य के दोष से अशुद्धि रही हो उस को आप शुद्ध करलें, और मुझे सूचना दें जिस से अग्रिम आवृत्ति में उस दोष को दूर करने का यत्न कियाजाय क्योंकि–

" दोषदुष्टमिदमित्यवज्ञया हातुमिच्छत न जातु साधवः ।
शैवलं किल विहाय केवलं निर्मलं किमु न पीयते पयः ॥"

अनुवादक–

ज्यो० कु० प० रामस्वरूप शर्म्मा गौड़

सम्पादक सनातनधर्म पताका;

मुरादाबाद. N. W. P.

शुक
गोकर्ण
निगम
कल्पतरु
नारद
ज्ञान

द्वितीय स्कंधः

वराह
गरुड
दत्तात्रेय
सनत्कुमार
नर
नारायण
ध्रुव
पृथु
ऋषभदेव
हयग्रीव
मत्स्यावतार
शुक
परीक्षित
नृसिंह
गजेंद्र
बली
वामन
नारद
हंसावतार
लक्ष्मण
राम
कृष्ण
कंस
बौद्ध

परीक्षित
शुक
विदुर
मैत्रेय
शेष
सनत्कुमार
ब्रह्मा
लक्ष्मी
कश्यप
दिति
जयविजय
विष्णु
सनत्कुमार
वराह
हिरण्याक्ष
कपिल

अत्रिऋषि
पृथुराज
पृथ्वी
विदुर
मैत्रेय
आकूती
ऋषि
रुद्र
ऋषि
दक्षादिऋषि
यज्ञ
प्राचीनबर्हि
नारद
ध्रुव

शुक
परीक्षित
प्रियव्रत
राजा
विष्णु
नाभि
जंबुद्वीप
मेरु
रहूगणराजा
जडभरत
भरत
भरत
हरिण

षष्ठ स्कंधः

परीक्षित
शुक
यमदूत
विष्णुदूत
अजा
मील
विष्णुदूत
विश्वरूप
देव
वृत्रासुर
इंद्र
स्त्रिया
अंगिरा
नारद
चित्रकेतुराजा
चित्रकेतु
विमानांत
शंकर
इंद्र
दितिः

सप्तम स्कंधः

नारद
धर्म
दैत्य
हिरण्यकशिपु
ब्रह्मा
हिरण्यकशिपु
नारद
हिरण्यकशिपु
गुरु
प्रह्लाद
हिरण्यकशिपु
प्रह्लाद
नृसिंह
प्रह्लाद

अथ

श्रीमद्भागवतकी विषयसूची

अथ प्रथमस्कन्धः ।

॥ इति प्रथमस्कन्धः ॥

अथ द्वितीयस्कन्धः ।

॥ इति द्वितीयस्कन्धः ॥

अथ तृतीयस्कंधः ।

॥ इति तृतीयस्कन्धः ॥

अथ चतुर्थस्कन्धः ।

॥ इति चतुर्थस्कन्धः ॥

अथ पंचमस्कन्धः ।

अध्याय	विषय	पृष्ठाङ्क
६	ऋषभदेवजी के देहत्याग का वर्णन.	५९५
७	भरत का राज्य करके हरिक्षेत्र में जा भगवान् का भजन करना.	५९९
८	हरिण की प्रीति करने से भरत का हरिण का जन्म होना.	६०२
९	भरतजी को भद्रकाली का पशु बनाना.	६०८
१०	जड़भरत को रहूगण के तिरस्कारयुक्त वचन तथा उनके उत्तर.	६१३
११	रहूगण और जड़भरत का संवाद.	६१९
१२	रहूगण के संदेहयुक्त प्रश्नों का भरतजी का उत्तर देना.	६२२
१३	संसाराटवी का वर्णन.	६२५
१४	संसार अटवी में सियार आदिकों का वर्णन.	६३०
१५	भरतवंशी राजाओं का वर्णन.	६३९
१६	जम्बूद्वीप के नौ खंड और मेरु पर्वत की स्थिति का वर्णन.	६४१
१७	इलावृतखंड में महादेव जी कृत सङ्कर्षण भगवान् का सेवन.	६४६
१८	पूर्वदिशा में इष्टदेव तथा उन के दासों का वर्णन.	६५१
१९	किंपुरुष और भरतखण्ड में स्वामिसेवक का निरूपण.	६५९
२०	प्लक्ष आदि छः द्वीपों का तथा सात समुद्र आदि भूगोल का वर्णन.	६६६
२१	कालचक्र से सूर्य्यनारायणकी गति का निरूपण.	६७४
२२	चन्द्रमा; शुक्र आदि की गति का निरूपण.	६७७
२३	जोतिपश्चक्र और शिशुमारचक्र के रूपसे भगवान् की स्थिति.	६८१
२४	राहु आदि की स्थिति, सातपातालों की मर्यादाओं का वर्णन.	६८३
२५	सातवें पातालके नीचे शेषजी की स्थिति का वर्णन.	६९०
२६	सकल नरकों का वर्णन.	६९४

इति पञ्चमस्कन्धः ॥

अथ षष्ठस्कन्धः।

अध्याय	विषय	पृष्ठाङ्क
१	अजामिलके छुड़ाने में यमदूत और विष्णुदूतों का सम्वाद....	७०४
२	विष्णुदूतों का यतदूतों को भगवान् का माहात्म सुनाकर पापीको लेजाना.	७१२
३	यमराजका दूतों से वैष्णवधर्म कहना.	७१८
४	दक्षका हंसगुह्यनाम स्तोत्र से भगवान्का आराधन करना.	७२४
५	दक्षका नारदजी को शाप देना.	७३२
६	दक्षकन्याओं के वंश तथा दिति विश्वरूप की उत्पत्ति का वर्णन.	७३८

इति षष्ठस्कन्धः ।

अथसप्तमस्कन्धः ।

॥ इति सप्तमस्कन्धः ॥

श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

पश्चिमोत्तरदेशीय-रामपुरराज्यनिवासि--मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र-गौड़-
वंश्य--श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधानविद्यालये
प्रधानाध्यापक--सर्वतन्त्रस्वतन्त्र--महामहोपाध्याय--सत्सम्प्रदाया-
चार्य--पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योऽधिगतविद्येन,
ऋषिकुमारोपनामक-पण्डितरामस्वरूपशर्मणा

विरचितेन अन्वयेन

भाषाटीकया च संहितम्.

तेनैव संशोधितञ्च

तदेतत्

शिवलालगणेशीलाल-

इत्येताभ्यां-

मुरादाबादनगरे

स्वकीये "लक्ष्मीनारायण-यन्त्रालये"

मुद्रयित्वाप्रकाशितम्.

संवत् १९५८

ॐ

नमोभगवतेवासुदेवाय

लोकानुद्धरयन् श्रुतीर्मुखरयन् क्षोणीरुहान् हर्षयन, शैलान् विद्रवयन्मृगान्
विवशयन् गोवृन्दमानन्दयन् ॥ गोपान् सम्भ्रमयन् मुनीन् मुकुलयन्
सप्तस्वरान् जृम्भयन्नोङ्कारार्थमुदीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः ॥ १ ॥

पुस्तकमिलने का पता

शिवलाल गणेशीलाल

"लक्ष्मीनारायण" छापाखाना

मुरादाबाद.

॥ हरिः ॐ ॥

श्रीवृन्दावनविहारिणे नम ।

॥ श्रीमद्भागवतमाहात्म्यप्रारम्भः ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ॥ तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥ १ ॥ यं प्रव्रजंतमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥ नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ॥ कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥ शौनक उवाच ॥ अज्ञानध्वांतविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ॥ सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥ ४ ॥ भक्तिज्ञानविरागाप्तविवेको वर्द्धते कथम् ॥ मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ जो जगत् की उत्पत्ति, पालन और प्रलय के हेतु हैं, जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों तापों का नाश करते हैं ऐसे सत्रूप, चित्रूप और आनन्दरूप भगवान् श्रीकृष्णजी को हम नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी, जन्मते ही सकल सङ्गों को त्याग संन्यास लेकर आश्रम में से इकले ही जानेलगे तब पुत्र के विरह से व्याकुल होतेहुए पिता व्यासजी ने 'हे पुत्र ! हे पुत्र ! २ इस प्रकार ' बड़े ऊँचे स्वर से पुकारकर बुलाया, उस समय उन्होंने (शुकदेवजीने) सर्वमय होने के कारण वृक्षों के द्वारा ही ' हां ' ऐसा उत्तर दिया अर्थात् मेरे पिता मोहजाल में न फँसें इस कारण शुकदेवजी ने ही वृक्षरूप से उत्तर दिया उन, सकल प्राणियोंके हृदय में योग शक्ति से प्रवेश करनेवाले शुकदेवजी को नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ एक समय नैमिषारण्य में कथारूप अमृत का स्वाद लेने में अतिचतुर शौनक ऋषि ने, आसनपर बैठेहुए परमबुद्धिमान् सूतजी को नमस्कार करके यह कहा ॥ ३ ॥ शौनक बोले कि—हे अज्ञानरूप अन्धकार का नाश करने को करोड़ों सूर्यों की समान कान्ति धारण करनेवाले सूतजी ! मेरे कानों को अमृतरस की समान मधुर लगनेवाला जो अनेकों कथाओं का सारभूत हो सो कहो ॥ ४ ॥ हे सूतजी ! विष्णुभगवान् के भक्तों को भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से प्राप्त हुआ विवेक कैसे बढ़ता है ? और विष्णुभक्त माया से

कथम् ॥ ५ ॥ इह घोरे कलौ प्रायो जीवश्चासुरतां गतः ॥ क्लेशाक्रांतस्य तस्यैव
शोधने किं परायणम् ॥ ६ ॥ श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ॥
कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाऽधुना ॥ ७ ॥ चिंतामणिर्लोकसुखं सुरेंद्रः
स्वर्गसंपदम् ॥ प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥
प्रीतिः शौनक चित्ते ते यतो वच्मि विचार्य च ॥ सर्वसिद्धांतनिष्पन्नं संसा-
रभयनाशनं ॥ ९ ॥ भक्त्योघवर्द्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम् ॥ तदहं तेऽभि
धास्यामि सावधानतया शृणु ॥ १० ॥ कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्नाशहेतवे ॥
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ११ ॥ एतस्मादपरं किंचि-
न्मनःशुद्ध्यै न विद्यते ॥ जन्मांतरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ १२ ॥
परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ॥ सुधाकुंभं गृहीत्वैव देवास्तत्र

उत्पन्न होनेवाले मोह को किस प्रकार दूर करते हैं ? ॥ ५ ॥ इस महाभयङ्कर कलियुग में प्रायः सब ही प्राणी, दैत्यों की समान होकर उन के से ही आचरण करने लगे हैं, सो ऐसे क्लेश भोगतेहुए उन जीवों के पवित्र होने का मुख्य साधन कौनसा है वह मुझ से कहो ॥ ६ ॥ तथा कल्याणकारी साधनों में परमकल्याण करनेवाला और पवित्र करने वालों में भी परमपवित्र करनेवाला जो निरन्तर श्रीकृष्ण भगवान की प्राप्ति करानेवाला साधन हो वह अब कहिये ॥ ७ ॥ यदि कहो कि–निरन्तर श्रीकृष्ण की प्राप्ति कराने वाला साधन मैं कैसे कहूँ ? सो हे सूतजी ! चिन्तामणि प्रसन्न (प्राप्त) होनेपर इच्छा कराहुआ सांसारिक फल देगा, इन्द्र प्रसन्नहोंगे तो स्वर्ग में की सम्पदा देंगे और यदि गुरु प्रसन्नहुए तो वहयोगियोंकोभी जिसका मिलनाकठिनहै ऐसा वैकुण्ठपद(मोक्ष)को भी प्राप्तकरा देंगे फिर सांसारिक सुख और स्वर्ग की सम्पदाओं का तो कहना ही क्या ? अर्थात् तुमही हमारे गुरु हो, सो तुम प्रसन्न होओगे तो हमें भगवान् के चरित्र सुनाकर वैकुण्ठपद की प्राप्ति करादोगे ॥ ८ ॥ ऐसा शौनक जी का कथन सुनकर सूतजीने कहाकि–हेशौनक ! तुम्हारे अन्तःकरण में जो सुननेकी प्रीति उत्पन्नहुई है इसकारण उस को विचार करके मैं तुमसे कहताहूँ सुनो-सकलसिद्धान्तोंमें से चुनकर निकालाहुआ, संसारके भयका नाश करने वाला और भक्ति के प्रवाहको बढ़ानेवाला होने के कारण जो श्रीकृष्णभगवान् को सन्तुष्ट करनेका साधनहै वह मैं तुमसे कहताहूँ, सो तुम उसको चित्तकी सावधानी के साथ सुनो९ ॥१०॥ हेशौनक ! कलियुगमें कालरूप सर्प के डसने से होनेवाले दुःखका नाशहो,(मृत्यु से भय न हो) इस निमित्त श्रीशुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत नामक शास्त्र कहा है ॥ ११ ॥ अन्तःकरण की शुद्धि होने का इस श्रीमद्भागवत को छोड़कर दूसरा कोई साधन नहीं है परन्तु जन्मजन्मांतर का पुण्य होनेपर ही मनुष्य श्रीमद्भागवत को पासक्ता है ॥ १२ ॥ हेशौनक ! जिससमय शुकदेवजी, राजा परीक्षित् को भागवत की कथा सुनाने के निमित्त

समागमन् ॥ १३ ॥ शुकं नत्वाऽवदन्सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ॥ कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥ १४ ॥ एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ॥ प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १५ ॥ क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ॥ ब्रह्मरातो विचार्येति तदा देवाञ्जहास ह ॥ १६ ॥ अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ॥ श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥ १७ ॥ राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाताऽपि विस्मितः ॥ सत्यलोके तुलां बद्ध्वाऽतोलयत्साधनान्यजः ॥ १८ ॥ लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ॥ तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १९ ॥ मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं क्षितौ ॥ पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुण्ठफलदायकम् ॥ २० ॥ सप्ताहश्रवणेनैव सर्व-

---

सभा में आकर बैठे उसहीसमय सब देवता हाथमें अमृतकाकलश लेकर तहाँ आये १३॥ और अपना कार्य साधने में चतुर उन देवताओं ने श्रीशुकदेवजी को नमस्कार करके ऐसा कहा कि–हेशुकदेवजी ! यह (हमारा लायाहुआ) अमृत लेकर इस के परिवर्त्तन (बदले) में हमें कथारूप अमृत दो ॥ १४ ॥ ऐसा विनिमय (एक वस्तु दूसरे को प्राप्त होनारूप लौटबदल) होनेपर 'तक्षक से मरण होने के वृतान्त से भयभीत हुआ राजा परीक्षित निःसन्देह अमृत पिये और हम सब श्रीमद्भागवतरूप अमृत का पान करेंगे ॥ १५ ॥ ऐसे देवताओं के कहने को सुनकर–कहाँ तो एक साधारण काच का नगीना ! और कहाँ अमूल्य बड़ाभारी रत्न ! तथा कहाँ तो स्वर्गलोक का अमरपना देनेवाला अमृत ! और कहाँ इस लोक में मोक्षपर्यन्त देनेवाला कथारूप अमृत ! ऐसा विचारकर श्रीशुकदेवजी, देवताओं की बातपर बहुत हँसे ॥ १६ ॥ और यह देवता भगवान् के भक्त नहीं हैं ऐसा जानकर उन को शुकदेवजी ने वह कथारूप अमृत नहीं दिया, इसकारण मैं ऐसा कहता हूँ कि–वह श्रीमद्भागवत की कथा देवताओं को भी दुर्लभ है, फिर औरों को दुर्लभ है इस का तो कहना ही क्या ? ॥ ॥ १७ ॥ हे शौनक ! पहिले ब्रह्माजी, 'उस भागवत की कथारूप अमृत के प्रभाव से' राजा परीक्षित् को मोक्ष प्राप्तहुआ ऐसा देखकर आश्चर्य से चकित हुए और उन्होंने अपने सत्यलोक में तुला (तराजू) बांधकर उस के एक पलड़े में यज्ञ, याग, जप, तप, पुराण, इतिहास आदि साधन और दूसरे पलड़े में यह श्रीमद्भागवत रखकर तोला ॥ १८ ॥ उससमय वह सब साधन 'प्रभाव में न्यूनता होने के कारण' हलके होकर पलड़े में ऊपर को उठगए और यह श्रीमद्भागवत अधिक प्रभाववाला होने के कारण भारी होकर नीचे ही रहगया तब तहाँ बैठेहुए ऋषियों ने बड़ा आश्चर्य माना ॥ १९ ॥ और उन्होंने इस पृथ्वीपर श्रीमद्भागवत को भगवान् का स्वरूप और सुनने तथा पढ़ने से तत्काल वैकुण्ठ

थौ मुक्तिदायकम् ॥ सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २१ ॥ यद्यपि
ब्रह्मसम्बन्धाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा ॥ सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥
॥ २२ ॥ शौनक उवाच ॥ लोकविग्रहयुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ॥ विधि-
श्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ अत्र ते
कीर्तयिष्यामि भक्तिपुष्टं कथानकं ॥ शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च
॥ २४ ॥ एकदा तु विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः ॥ सत्संगार्थं समाया-
ता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ २५ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चि-
तापरो भवान् ॥ त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥ २६ ॥ इदानीं शू-
न्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ॥ तवेदं मुक्तसंगस्य नोचितं वद का-
रणम् ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामि-

---

(मोक्ष) रूप फल का देनेवाला माना ॥ २० ॥ पूर्वकाल में परमदयालु सनकादि ऋषियों ने, सप्ताह के सुनने से ही सबप्रकार मुक्ति देनेवाला श्रीमद्भागवत नारदजी से कहा ॥ ॥ २० ॥ यदि कहो कि नारदजी से तो ब्रह्माजी ने ही यह श्रीमद्भागवत कहा था फिर वही सनकादि ऋषियों ने कहा इस का क्या कारण है ? सो हे शौनकजी ! यद्यपि नारदजी ने ब्रह्माजी से यह श्रीमद्भागवत सुनी थी तथापि उन्होंने सप्ताह और श्रवण करने की विधि नहीं समझी थी सो सनत्कुमारोंने उन से कही ॥ २२ ॥ शौनकजी ने कहा कि–हे सूतजी ! नारदजी तो निरन्तर एक स्थानपर स्थित न रहकर लोकों में परस्पर कलह कराने मे तत्पर रहते थे ऐसे नारदजी की ' भागवत का सप्ताह सुनने की' विधि सुनने में कैसे प्रीतिहुई ? और सनत्कुमारों के साथ नारदजी का समागम कहां हुआ था सो मुझ से कहो ॥ २३ ॥ सूतजी ने कहा कि–हे शौनक ! श्रीशुकदेवजीने, यह अपना शिष्य है ऐसा विचारकर मुझ से जो कुछ गुप्त रखने योग्य विषय कहा, वही भक्तिरस को बढानेवाली कथा इस तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में मैं तुम से कहता हूँ ॥ २४ ॥ एक समय बदरिकाश्रम में निर्मल अन्तःकरण वाले सनकादि चारोंमुनि, साधु समागम के निमित्त आये थे सो तहां उन्होंने नारदजी को देखा ॥ २५ ॥ सनत्कुमार ऋषियों ने कहा कि–हे नारदजी ! तुम ऐसे चिन्ता से आतुर कैसे होरहे हो ? और उदासमुख कैसे दीखरहे हो ? तुम कहां से आये हो ? और ऐसी शीघ्रता से किस के पास जारहे हो ? ॥ २६ ॥ किसी का द्रव्य जातारहे वह पुरुष जैसे भ्रम में पड़ाहुआ होता है तैसे ही इस समय तुम भ्रम में पड़े हुए से होरहे हो, यह तुम्हें योग्य नहीं है क्योंकि–तुमने सकल संगों का त्याग करादिया है, तिसपर भी ऐसी दशा होने का क्या कारण है सो हम से कहो ॥ २७ ॥ नारदजी ने कहा कि–यह पृथ्वी सर्वोत्तम है ऐसा जानकर मैं यहां

ति ॥ पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २८ ॥ हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंगं सेतुबन्धनम् ॥ एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ २९ ॥ नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनःसंतोषकारकम् ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताऽधुना ॥ ३० ॥ सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ॥ उदरंभरिणो जीवाः वराकाः कूटभाषिणः ॥ ३१ ॥ मंदाः सुमंदमतयो मंदभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ पाखंडनिरताः संतो विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥ ३२ ॥ तरुणीप्रभुता गेहे शालको बुद्धिदायकः ॥ कन्याया विक्रयो लोभाद्दंपतीनां च कल्कनं ॥ ३३ ॥ आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ॥ देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥ ३४ ॥ न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ॥ कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३५ ॥ अट्टशूला × जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ॥ कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवंति कलाविह ॥ ३६ ॥ एवं पश्यन्क-

---

आया और पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, हरद्वार, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्गपट्टन, सेतुबन्ध, रामेश्वर आदि मुख्य मुख्य तीर्थों में जहां तहां (चारों दिशाओं में) फिरा ॥२८॥२९॥ परन्तु कहींभी कोई मनको सन्तोष देनेवाला सुखका साधन नहीं देखा; अहो ! जहांजहां मैं फिरा तहांतहां इससमय यह पृथ्वी, अधर्म ही जिस का मित्र है ऐसे कलियुग से पीड़ित होरही है ॥ ३० ॥ उस कलियुग के प्रभाव से कहीं भी सत्य नहीं है, तप नहीं है, शुचिपना नहीं है, प्राणियों के ऊपर दया का वर्त्ताव नहीं है और दान तो सर्वथा है ही नहीं तहाँ सब लोग केवल अपना २ पेट भरने में ही तत्पर तथा तुच्छ और कपट से भाषण करनेवाले होगये हैं ॥ ३१ ॥ तथा आलसी, परममूर्ख, मन्दभाग, नास्तिक और रोग आदि से पीड़ित होरहे हैं, सन्त और विरक्तजन, पुत्र, मित्र, स्त्री आदिकोंसे युक्त (कुटुम्ब में आसक्त) होगये हैं ॥ ३२ ॥ प्रत्येक घर में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की प्रभुता अधिक बढ़गई है, किसी कार्य में सम्मति लेनी होती है तो साले से लीजाती है, माता पिता आदि बड़ों से कोईनहीं बूझता है; पिता धन के लोभ से कन्या को बेचता है, स्त्री-पुरुषों में परस्पर कलह रहता है ॥ ३३ ॥ तैसे ही तहाँ साधुओं के आश्रम, तीर्थ, नदी और देवमन्दिर सब ही प्रायः दुष्ट यवनों ने भ्रष्ट करके नष्ट करडाले हैं ॥ ३४ ॥ हेऋषियों ! मैं बहुत फिरा परन्तु कहीं भी कोई योगी नहीं देखा, सिद्ध नहीं देखा, ज्ञानी नहीं देखा तथा सत्कर्म करनेवाला पुरुष भी कोई देखने में नहीं आया, आजकल कलियुग रूप दावानल से (पुण्यों के) सब ही साधन जलकर भस्म होगये हैं ॥ ३५ ॥ इस कलियुगमें पृथ्वीपर देशवासी लोग अन्न बेचकर (अर्थात् भर्ती भरकर,) ब्राह्मण वेदबेचकर (अर्थात् शूद्रको भी धन के लोभ से वेद पढ़ाकर) और स्त्रियें वेश्याओंका कार्य (पेशा) स्वीकार करके अपना अपना निर्वाह करती हैं अर्थात् सबही विपरीत होगया है ॥ ३६ ॥

× अट्टमन्नं शिवो वेदः शूलो विक्रय उच्यते । केशो भगमिति प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥

लेर्दोषान्पर्यटन्नवनीमहं ॥ यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ ३७ ॥ तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ ३८ ॥ द्वौ वृद्धौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसंतावचेतनौ ॥ शुश्रूषंती प्रबोधंती रुदन्ती च तयोः पुरः ॥ ३९ ॥ दशदिक्षु निरीक्षंती रक्षितारं निजं वपुः ॥ वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥ दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदंतिकम् ॥ मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥ ४१ ॥ बालोवाच ॥ भो भो साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिंतामपि नाशय ॥ दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाघहरं परम् ॥ ४२ ॥ बहुधा तव वाक्येन दुःखशांतिर्भविष्यति ॥ यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥ ४३ ॥ नारद उवाच ॥ कासि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ॥ वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणं ॥ ४४ ॥ बालोवाच ॥ अहं भ-

हे सनत्कुमारो ! इसप्रकार मैं पृथ्वीपर फिरते फिरते और कलियुग के सकल दोष देखते देखते, जहाँ श्रीकृष्णजी ने अनेकों क्रीड़ा करी थीं उस यमुना के तीरपर पहुँचा ॥ ३७ ॥ तब तहाँ मैंने एक आश्चर्य देखा सो कहता हूँ सुनो-हे मुनियों में श्रेष्ठ सनत्कुमारो ! उस यमुना नदी के तटपर अन्तःकरण में खिन्नहुई एक स्त्री बैठी थी ॥ ३८ ॥ और उस के पास में केवल श्वासलेतेहुए (अचेत) दो वृद्धपुरुष किसीप्रकारकी चेष्टा न करतेहुए पड़े थे; वह स्त्री उन की सेवा करके उन को उठातीहुई और उन को सचेत करने का उपाय न सूझने के कारण उन के आगे विलाप कररही थी ॥ ३९ ॥ तथा वह अपने शरीर की रक्षा करनेवाले पुरुष को दशों दिशाओं में देखरही थी और उस के चारों ओर सैकड़ों स्त्रियें (दासी) वीजना डुलातीहुई 'यह तेरे वृद्धहुए पुरुष नीरोग और तरुण होजायँगे, भय मत करे, इसप्रकार वारंवार उस को समझारही थीं ॥ ४० ॥ ऐसा दूरसे ही देखकर वह (कलियुगके दोष देखता देखता आनेवाला) मैं बड़े आश्चर्य में होकर उस के समीपगया; तब वह स्त्री भी मुझे देखकर तत्काल उठी और व्याकुल होती हुई कहनेलगी ॥ ४१ ॥ स्त्री ने कहा कि-हे साधो ! तुम्हारा दर्शन, लोकों के सकल पापों को दूर करनेवाला और सबप्रकार से उत्तम (कल्याणकारी) है, इसकारण हे साधो ! क्षणभर खड़ेरहो और मेरी चिन्ताको दूरकरो ॥ ४२ ॥ हे साधो जब किसीका परम भाग्योदय होता है तब ही उस को तुम्हारा दर्शन होता है अर्थात् मेरा भी भाग्य उदय होने से आज मुझे तुम्हारा दर्शन हुआ है इसकारण मेरा ऐसा निश्चयहुआ है कि-प्रायः तुम्हारे वाक्य (उपदेश) से मेरे दुःख की शान्ति होजायगी ॥ ४३ ॥ नारदजी ने (मैंने) कहा कि-हे देवि ! तू कौन है ? यह दोनों (अचेत पडेहुए) तेरे कौन हैं ? और कमलसमान नेत्रोंवाली यह और स्त्रियें कौन हैं ? यह सब और तुझे दुःख होने का जो कारण हो वह मुझ से विस्तार के साथ कथनकर ॥ ४४ ॥ उस स्त्री ने

त्किरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ॥ ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन ज-
र्जरौ ॥ ४५ ॥ गंगाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः ॥ तथापि न च
मे श्रेयः सेवितायाः सुरैरपि ॥ ४६ ॥ इदानीं शृणु मद्वार्तां सचित्तस्त्वं तपोध-
न ॥ वार्ता मे वितताप्यस्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥४७॥ उत्पन्ना द्रविडे साऽहं
वृद्धिं कर्णाटके गता ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥४८॥ तत्र घो-
रकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डितांगका ॥ दुर्बलाहं चिरं जाता पुत्राभ्यां सह म-
न्दताम् ॥ ४९ ॥ वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ॥ जाताहं युवती
सम्यक् प्रेष्ठरूपा तु सांप्रतम् ॥ ५० ॥ इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः
श्रमात् ॥ इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥ ५१ ॥ जरठत्वं स-
मायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ॥ साहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ
कुतः ॥ ५२ ॥ त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ॥ घटते जरठा
माता तरुणौ तनयाविति ॥ ५३ ॥ अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमा-

---

कहा कि—हे साधो ! मैं भक्ति नाम से प्रसिद्ध हूँ और कलिकाल के कारण वृद्धहुए ज्ञान और वैराग्य नामवाले मेरे यह दोनों प्रिय पुत्र हैं ॥४५॥ और यह जो स्त्रियें हैं सो गङ्गा आदि नदियें हैं, यह केवल मेरी सेवा करने के निमित्त ही यहां आई हैं; हे साधो ! यद्यपि देवताभी मेरी सेवा करते हैं तथापि उन से मुझे कुछ भी सुख नहीं होता है ॥४६ ॥ अब मैं अपना वृत्तान्त कहती हूँ तुम ध्यान देकर सुनो; हेतपोधन ! मेरा वृत्तान्त बड़ा लम्बा चौड़ा है उस को सुनकर तुम मुझे सुख प्राप्त होने का उपाय करो ॥ ४७ ॥ मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न होकर कर्णाटक देश में बढ़ी और महाराष्ट्र देश में कहीं कहीं थी परन्तु गुजरात देश में जाते ही बूढ़ी होगई ॥ ४८ ॥ उस गुजरात में महाभयङ्कर कलियुग के प्रभाव से पाखण्डी पुरुषों ने मेरे अङ्ग छिन्न भिन्न करडाले इस कारण मैं दुबली होकर बहुत दिनों पर्यन्त इन पुत्रों सहित अत्यन्त क्षीणता को प्राप्त हुई ॥ ४९ ॥ सो मैं उसी दशा में धीरे धीरे चलकर वृन्दावन में आते ही इस समय फिरसुन्दर रूपवती,लोगों को प्रियरूप प्रतीत होनेवाली, नवीन हुई सी तरुण स्त्री बनगई ॥५०॥ परन्तु श्रम के कारण शयन करते हुए मेरे पुत्र अभी वैसाही क्लेश भोगरहे हैं, इसकारण इसस्थान को छोड़कर मैं देशान्तर में (कहीं और) जाने की इच्छा कररहीहूँ ॥ ५१ ॥ यह मेरे पुत्र बूढ़े होगये इस दुःख से मैं अत्यन्त दुःखित होरही हूँ, अब मैं तुम से यह बूझती हूँ कि—हेसाधो!हम तीनों ही एकस्थानपर निवास करते हैं फिर मैं इन की माता तरुण कैसे होगई ? और यह मेरे पुत्र होकर वृद्ध कैसे हुए, क्योंकि, माता यदि वृद्ध हो और पुत्र तरुण हों तब ही ठीक होता है परन्तु ऐसा न होकर 'माता तरुणी और पुत्र वृद्ध यह' विपरीतभाव कैसे हुआ ? ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसकारण हेयोगनिधे!

नसा ॥ वद योगनिधे धीमन्कारणं चात्र किं भवेत् ॥ ५४ ॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ॥ न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥ ५५ ॥ सूत उवाच ॥ क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥ नारद उवाच ॥ शृणुष्वावहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ॥ ॥ ५६ ॥ तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ जना अघासुरायन्ते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ॥ ५७ ॥ इह सन्तो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः ॥ धत्ते धैर्यं तु यो धीमान्स धीरः पण्डितोऽथवा ॥ ५८ ॥ अस्पृश्याऽनवलोक्येयं शेषभारकरी धरा ॥ वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मङ्गलं नापि दृश्यते ॥ ॥ ५९ ॥ न त्वामपि सुतैः साकं कोपि पश्यति साम्प्रतम् ॥ उपेक्षितोऽनुरागान्धैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥ ६० ॥ वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ॥

मैं अपने विषय में अति आश्चर्य से चकित होकर बैठीहुई शोक कररही हूँ, सोहे बुद्धिमन् ! इसका जो कारण हो वह मुझसे कहिये ॥ ५४ ॥ नारदजी ने (मैंने) कहाकि–हेनिष्पाप वाले ! मैं ज्ञानदृष्टि से तेरा यह सब (दुःख का कारण) अपने मन में विचार करके देखता हूँ, तू कुछ खेद न कर, क्योंकि–सकल दुःखों के हरनेवाले भगवान् (श्रीहरि) तेरा कल्याण करेंगे ॥ ५५ ॥ सूतजी कहते हैं कि–हेशौनक ! तदनन्तर नारद जी ने क्षणमात्र में (ध्यान करके) उस के दुःख का कारण जानकर इसप्रकार कहा; नारदजी ने कहा कि–हेबाले मैं इसका कारण कहता हूँ तू चित्त को सावधान करके सुन आजकल यह परम भयङ्कर कलियुग का समय वर्त्तरहा है ॥ ५६ ॥ उस से सदाचार, योगमार्ग और तप का लोप होगया है और सकल लोक शठता और दुष्कर्म करने वाले होकर पापात्मा दैत्यों की समान आचरण करने लगे हैं ॥ ५७ ॥ इस कलियुग में सज्जन दुःखित रहते हैं और पाखण्डी दुष्ट पुरुष आनन्द पाते हैं; जो धीरज धरता है वही लोक में कुशल, धैर्यवान् वा पण्डित बनता है ॥ ५८ ॥ पृथ्वीपर पुण्यकर्म तो कहीं दीखता ही नहीं इसकारण यह पृथ्वी प्रतिवर्ष भगवान् शेषजी को अधिकही अधिक भार वाली होतीचली जारही है इसकारण यह स्पर्श करने के योग्य तो है ही नहीं परन्तु देखने के योग्य भी नहीं है ॥ ५९ ॥ इससमय तेरे पुत्रों को तो क्या परन्तु तुझे भी कोई नेत्र उघाड़कर नहीं देखता है अर्थात् ज्ञानी वैराग्यवान् तो कोई है ही नहीं परन्तु केवल भक्ति करनेवाला भी कोई नहीं मिलता इसकारण और विषयों में अन्धेहुए पुरुषों ने तेरा सर्वथा ही त्याग करदिया है इस से तू ऐसी दुर्दशा को प्राप्त होरही है ॥ ६० ॥ यदि कहेकि तो फिर मुझे कैसे तरुणाई प्राप्तहुई सो–'अन्यस्थान में वृद्धावस्था को प्राप्तहुई तू यहाँ आते ही इस वृन्दावन के प्रभाव से (वृन्दावन के पुरुष भक्तिमान् हैं इसकारण) तरुणी

धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ ६१ ॥ अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुञ्चतः ॥ किंचिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥ ६२ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ॥ प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६३ ॥ करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ॥ इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ॥६४॥ नारद उवाच ॥ यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु ॥ सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥६५॥ यदा मुकुन्दो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ॥ तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥६६॥ दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ॥ न मया मारणीयोऽयं सारंग इव सारभुक् ॥ ६७ ॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन

होगई है, इसकारण जहाँ 'साक्षात् मूर्तिमती, भक्ति ही नृत्य कररही है ऐसा यह वृन्दावन धन्य है॥६१॥यदि कहेकि तो फिर यहाँ मेरेपुत्र तरुण क्यों नहीं हुए? सो—हेभक्ति ! इस वृन्दावनमें इनका एक भी ग्राहक (ज्ञान वैराग्य को धारण करने की इच्छा भी करनेवाला) नहीं है इसकारण यह अपने वृद्धपनेको नहीं छोड़ते हैं,परन्तु और स्थानकी अपेक्षा यहाँ इनके जीवको कुछ सुख होताहै अतःइनको कुछएक निद्रा आगई है ऐसा मुझेप्रतीत होता है॥६२॥ भक्तिने कहा कि—हेसाधो!कलियुगके आतेही सकल पदार्थों का मुख्य सार कहां गया ? राजा परीक्षित् कलियुग का शासन करने में प्रवृत्त हुए तव फिर उन्हों ने इस अपवित्र कलियुग को कैसे रहने दिया ? इस को निर्बीज क्यों नहीं करदिया ? और परम कृपालु श्रीहरि भी न जाने इस अधर्म को कैसे देखते हैं ? इस मेरे बड़ेभारी सन्देह को आप दूर करिये; क्योंकि—आपकी वाणी से मैं बडे सुख को प्राप्त हुई हूँ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ नारदजी ने कहा कि—हे बाले ! हे कल्याणि ! तू नें जो मुझ से प्रश्न करा है सो सव, मैं कहता हूँ परन्तु उस को प्रेम के साथ सुन तव उस से तेरा सकल सङ्कट दूरहोगा ॥६५॥ जिस समय श्रीकृष्णजी पृथ्वी को त्यागकर निजधाम को चले गये उस दिन से ही सव साधनोंका (पुण्यमार्गों का) नाश करनेवाला कलियुग प्रवृत्त हुआ ॥ ६६ ॥ तदनन्तर राजा परीक्षित् ने दिग्विजय के समय उस कलियुग को ' गोरूपधारिणी पृथ्वी और वृषभरूप धारी धर्म को मारते हुए ' देखा, पर वह कलियुग, ' यह धार्मिक राजा अव मेरा वध करेगा, इस भय से दीन की समान उन की शरण में गया तव राजा परीक्षित् ने उस कलि को, रहने के निमित्त स्थान नियमित (मुकर्रर) करके छोड़ दिया, क्योंकि—राजा ने मन में विचार करा कि-जो फल, तप से, योग से वा समाधि से भी प्राप्त नहीं होता है वह फल इस कलियुग में भगवत्कीर्त्तन से उत्तम प्रकार प्राप्त होसक्ता है इस कारण ' जैसे—भ्रमर केवल पुष्प में के सार-(मद) को ग्रहण करके नीरस पुष्प को छोड

समाधिना ॥ तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥६८॥ एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ॥ विष्णुरातःस्थापितवान्कलिजानां सुखाय च ॥६९॥ कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ॥ पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥७०॥ विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ॥ कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥ ७१ ॥ अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ॥ तेपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ ७२ ॥ कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ॥ तेऽपि तिष्ठन्ति तपसि तपःसारस्ततो गतः ७३। मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्पाखण्डसंश्रयात् ॥ शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥ ७४ ॥ पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ॥ पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥ ७५ ॥ न हि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदायपुरः-

देता है तैसे ही मैं भी. इस कलियुग में भगवान् के कीर्त्तन से मोक्ष की प्राप्ति होती है इस सार (गुण) को ग्रहण करके इस का वध न करूँ यही योग्य है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ हे भक्ति ! इस कलियुग में दान, व्रत, जप, तप इत्यादिकों में से भी सारभूत ज्ञान वैराग्य आदि साधन निःसार होकर एक भक्ति वा हरिकीर्त्तन ही मोक्ष की प्राप्ति का कारण रहा है, ऐसा विचारकर राजा परीक्षित् ने कलियुग में उत्पन्न होनेवाले 'आलसी, अतिमूर्ख, भाग्यहीन, दुराचारी आदि' प्राणियों के सुख के निमित्त (अनायास में भक्तिपूर्वक हरिकीर्त्तन करके मोक्ष सुख पाने के निमित्त) इस कलिकी रक्षा करी ॥ ६९ ॥ कुकर्म के आचरण से इस समय सब पदार्थों में का सार निकलगया, इसकारण पृथ्वीपर के सब पदार्थ भूसी की समान निर्बीज होगये हैं ॥७०॥ ब्राह्मणों ने भगवान् की कथा अन्न के वा धन के लोभ से घरघर प्रत्येक मनुष्य के सामने 'वर्ण और जाति का कुछ ध्यान न देकर' वर्णन करी इस कारण कथा में का सार निकलगया ॥ ७१ ॥ अनेकों अतिक्रूर कर्म करनेवाले, नास्तिक और नरक के अधिकारी पुरुष भी तीर्थों में रहनेलगे इस से तीर्थों का सार (माहात्म्य) जातारहा ॥ ७२ ॥ काम, क्रोध, अतिलोभ और तृष्णा के कारण चित्त में व्याकुल हुए पुरुष भी तप करने को बैठनेलगे तिस से तप का सार (सामर्थ्य) नष्ट होगया ॥७३॥ मनको न जीतना, लोभकरना, ढोंगरचना, नास्तिकमतमें घुसना और वेदआदिको न पढ़ना इनकारणोंसे ध्यानयोगकाफल(स्वरूपसाक्षात्कार)नष्टहोगया ७४ हे भक्ति ! पण्डितों की तो ऐसी दशा होगई है कि-वह पुत्र उत्पन्न करने में ही निपुण होकर 'जैसे भैंसे भैंसों के साथ निर्भय होकर विषयभोग करते हैं तैसे' स्त्रियों के साथ रमण करते हैं परन्तु मोक्ष के साधन में किसी की भी प्रीति नहीं है ॥ ७५ ॥ तैसे ही सम्प्रदाय के (गुरुपरम्परा से प्राप्तहुए श्रेष्ठ उपदेश के) अनुसार वैष्णवपना कहीं भी नहीं है,

सरा ॥ एवं मलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ॥ ७६ ॥ अयं तु युगधर्मो हि वर्त्तते कस्य दूषणम् ॥ अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ॥ ७७ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥ भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥७८॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ सुरर्षे त्वं च धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ॥ साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७९॥ जयति जयति माया यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ॥ ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥ ८० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ नारद उवाच ॥ वृथा खेदयसे बाले अहो चिंतातुरा कथं ॥ श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥ द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ॥ पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो

केवल मुद्रा धारण करके ही हम वैष्णव हैं ऐसा माननेलगेत हैं इसप्रकार जहाँ तहाँ सकल पदार्थों का सार (तत्त्वभाग) नष्ट होगया है ॥ ७६ ॥ हे भक्ति ! यह तो युग का धर्म है, इस में किस का दोष है ? अर्थात् किसी का अपराध नहीं है इसकारण श्रीकृष्णजी समीप में रहतेहुए भी (सब देखतेहुए भी) सहते हैं (अथवा-इसप्रकार का युग का धर्म ही होने के कारण वैसा ही प्राणी वर्त्ताव करते हैं उस में अपराध किस का है ? अर्थात् किसी का अपराध नहीं है ऐसा विचारकर वह कमलनयन भगवान् तेरी रक्षा करने के निमित्त लक्ष्मीसहित तेरे समीप ही रहते हैं इसकारण उस कलियुग का भय करने का कोई कारण नहीं है) ॥ ७७ ॥ सूतजी कहते हैं कि-हे शौनक ! इसप्रकार नारदजी के कहने को सुनकर वह भक्ति बड़े विस्मय को प्राप्तहुई और फिर कहनेलगी सो सुनो ॥७८॥ श्रीभक्ति ने कहा कि-हे देवर्षे ! तुम बड़े धन्य हो और मेरे भाग्यसे ही यहाँ आये हो, क्योंकि-इसलोक में साधुओं का दर्शन,सर्वोत्तम सिद्धि करनेवाला है ॥७९॥ हे नारदजी ! तुम्हारी जय जयकार हो, जिन तुम्हारी अनूपम और माताके पेट में सुनीहुई केवल (मोक्ष देनेवाली) वाक्यरचना का विचार करके कयाधु के पुत्र प्रल्हादजीने माया को जीता तथा जिन तुम्हारी कृपा होने से यह (नक्षत्ररूप से प्रत्यक्ष दीखनेवाले) ध्रुव भी, अटलपद को प्राप्तहुए ऐसे तुम ब्रह्मपुत्र नारदजी को नमस्कार हो ॥ ८० ॥ इति भागवत माहात्म्य में प्रथम अध्याय समाप्त ॥ श्रीनारदजीने कहा कि-हे बाले ! तू विना कारण ही खेद कररही है, तू चिन्तासे ऐसी व्याकुल क्यों होती है ? अरी ! श्रीकृष्णभगवान् के चरणकमल का स्मरण कर तो उस से तेरा दुःख दूर होगा ॥ १ ॥ देख-जिन्हों ने कौरवों के सङ्कट से द्रौपदी की रक्षा करी और जिन्हों ने शंखचूड़ आदि दैत्यों के दुःख

गतः ॥ २ ॥ त्वं तु भक्ते प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ॥ त्वयाहूतस्तु भगवान्याति नीचगृहेष्वपि ॥ ३ ॥ सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ। कलौ तु केवलं भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥ इति निश्चित्य चिद्रूपः सद्रूपां त्वां ससर्ज ह ॥ परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥५॥ बद्ध्वाञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ॥ त्वां तदाज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान्पोषयेति च ॥६॥ अङ्गीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ॥ मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७ ॥ पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च ॥ भूमौ भक्तिविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥ मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ॥ कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ॥ ९ ॥ कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्डामयपीडिता ॥ त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनरेव सा ॥ १० ॥ स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ॥ पुत्री-

से गोपियों की रक्षा करी वह श्रीकृष्ण कहीं भी नहीं गये हैं, यहां ही हैं ॥ २ ॥ और तू तो उन श्रीकृष्णजी को प्राणों से प्रिय है, इसकारण तेरे (भक्तिके) बुलानेपर वह भगवान् नीच के घर भी चलेजाते हैं ॥ ३ ॥ उन भगवान् ने विचार करा कि—सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इनतीनो ही युगों में ज्ञान और वैराग्य मुक्ति के साधन थे परन्तु वह साधन इस कलियुग में नहीं हैं अब तो केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्य की प्राप्ति करानेवाली है ॥ ४ ॥ ऐसा निश्चय करके उन ज्ञानरूप भगवान् ने, अपने आप सच्चिदानन्द मूर्त्ति होनेके कारण तुझेभी अपनी समान चिद्रूप, सुन्दर और श्रीकृष्णको (अपने को) प्रियरचाहै॥५॥तदनन्तर एकसमय तूने हाथजोडकर 'मुझे क्या आज्ञाहै? मैं कौनसाकार्यकरूँ ऐसा ' बूझातब श्रीकृष्णजी ने, तू मेरे भक्तों का पोषणकर ऐसी तुझे आज्ञाकरी ॥६॥ और तूने भी, वह (श्रीकृष्णजी के भक्तों का पोषण करना) स्वीकार करा तब उन श्री हरि ने प्रसन्न होकर तुझे यह ज्ञान वैराग्य नामक दो दास और मुक्ति नामक दासी दी ॥ ७ ॥ हे भक्ति ! तेरे रहने का मुख्य स्थान वैकुण्ठ है तहाँ तू अपने साक्षात् स्वरूप से अर्थात् भक्ति के अभिमानिनी देवता रूप से (भक्तों का) पोषण करती है और इस पृथ्वीपर प्रेमलक्षणरूप भक्ति की वृद्धि होने के निमित्त छायारूप धारण करा है ॥ ८ ॥ तदनन्तर मुक्ति (दासी), ज्ञान और वैराग्य (दास) के साथ तू इस पृथ्वीपर आकर सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीनों ही युगों में परम आनन्द से रही ॥ ९ ॥ फिर कलियुग का प्रारम्भ होते ही वह तेरी दासी मुक्ति, पाखण्डरूप रोग से पीड़ित होने के कारण क्षीणता को प्राप्तहुई इसकारण तेरी आज्ञा से फिर शीघ्र ही वैकुण्ठलोक को चलीगई ॥ १० ॥ हे भक्ति! यद्यपि मुक्ति वैकुण्ठको चलीगईहै तथापि जब तू उस का स्मरण करे तबही फिर इस

कृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ॥ ११ ॥ उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ॥ तथापि चिन्तां मुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ॥ १२ ॥ कलिना सदृशः कोपि युगो नास्ति वरानने ॥ तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥१३॥ अन्यधर्मान् तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान्॥ तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्त्तये ॥ १४ ॥ तदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ॥ पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयाः कृष्णमन्दिरम् ॥ १५ ॥ येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ॥ न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेप्यमल-मूर्त्तयः ॥ १६ ॥ न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वा सुरोपि वा ॥ भक्तियु-क्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ १७ ॥ न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञाने-नापि कर्मणा॥ हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥ नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते॥ कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः

लोक में को लौट आती है,ज्ञान और वैराग्य इन दोनों को अपना पुत्र मानकर तू ने अपने समीप रक्खा है॥ ११॥ यद्यपि कलियुग में मनुष्यों ने इन की उपेक्षा करी इस कारण यह तेरे पुत्र आलसी और वृद्ध होगये हैं तथापि तू चिन्ता न कर, क्योंकि--मैंने इस विषयमें विचारकर के उपाय सोचलिया है ॥ १२ ॥ हे सुमुखि ! इस कलियुग की समान दूसरा कोई युग दुष्ट नहीं है तथापि इस कलियुग में ही घर २ और प्रत्येक मनुष्य के समीप तेरी स्थापना करूँगा ॥ १३ ॥ इस विषय में शपथ पूर्वक वचन देता हूँ कि--अन्य (पाखण्डी) धर्मों का तिरस्कार करके और बड़े २ उत्सवों का प्रचार करता हुआ मैं लोक में यदि तेरा प्रचार नहीं करूँ तो भगवान् का दास ही नहीं। १४॥ इस कलियुग में जो पुरुष, तुझ से युक्त होंगे वह यदि परमपापी होंगे तो भी निर्भय होकर वैकुण्ठ लोक को जायँगे, फिर पुण्यात्माजन भक्ति करके वैकुण्ठ लोक को जायँगे इसका तो कहनाही क्या॥ १५॥ जिनके हृदयमें सदासर्वकाल प्रेमरूपभक्ति निवासकरतीहै वहपुरुप,पवित्र होनेके कारण स्वप्न में भी यमराज को नहीं देखते हैं॥ १६॥ हेभक्ति ! भूत हो, पिशाच हो, राक्षस हो वा दैत्य हो इन में से कोई भी, भक्तिमान् अन्तःकरणवाले पुरुषों को स्मरण करने को भी समर्थ नहीं होगा ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीहरि, भक्ति से जैसे वश में होते हैं, तैसे--तपस्या, चारोंवेद, ज्ञान वा सत्कर्मों से भी वश में नहीं होते हैं, इस विषय में गोपियें ही प्रमाण है (देखो--उन्हों ने कृष्णकी प्राप्ति के लिये क्या कोई सत्कर्म करे थे अर्थात् कोई सत्कर्म नहीं करे थे तबभी गोपियों ने केवल प्रेमरूप भक्ति करके ही श्रीकृष्णजी को वशमें करलिया था)॥ १८॥ मनुष्यों के सहस्रों जन्म होकर उन में सत्कर्म बनें तो उन के द्वारा श्री-कृष्णकी भक्ति करनेके विषयमें उन की प्रीति उत्पन्नहोतीहै और उस भक्तिसेही श्रीकृष्णजी

पुरः स्थितः ॥ १९ ॥ भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये ॥ दुर्वासा दुः-
खमापन्नः पुरा भक्तविनिन्दकः॥२०॥अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ॥ अलं
ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ इति नारदनिर्णी-
तं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ॥ सर्वांगपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत्॥२२॥
श्रीभक्तिरुवाच ॥ अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ॥ न कदा-
चिद्विमुंचामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥ २३ ॥ कृपालुना त्वया साधो मद्बा-
धा ध्वंसिता क्षणात् ॥ पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥ २४ ॥
सूत उवाच ॥ तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः ॥ तयोर्बोधनमारेभे
कराग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥ मुखं संयोज्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ॥ ज्ञा-

अपने सामने आकर स्थित होते हैं इसकारण मैं बारम्बार कहता हूँ कि—कलियुग में भगवान् की प्राप्ति होने के विषय में भक्ति ही मुख्य है, दूसरा साधन नहीं है ॥१९॥ जो पुरुष भक्ति से (वा भक्तों से) द्रोह करते हैं वह यदि त्रिलोकी में कहीं भी जायँ तो उन को परम दुःख प्राप्त होता है, देखो—पहिले भगवद्भक्त का (राजा अम्बरीष का) द्वेष करनेवाले दुर्वासा ऋषि को दुःख प्राप्त हुआ × ॥ २० ॥ हे भक्ति ! मुक्ति के निमित्त व्रत करने की आवश्यकता नहीं है,तीर्थों की आवश्यकता नहीं है,योग साधन की आवश्यकता नहीं है यज्ञों के करने की आवश्यकता नहीं है तथा ज्ञान के विषय में वादविवाद करने की भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि—एक भक्ति करने से ही मुक्ति मिलती है तो व्रतादि का क्या प्रयोजन है ? ॥ २१ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे शौनक ! इसप्रकार निर्णय करके नारदजी के कहेहुए अपने (भक्ति के) माहात्म्य को सुनकर सकल अंगों करके पुष्टहुई वह भक्ति नारदजी से कहनेलगी ॥ २२ ॥ भक्ति ने कहा कि—हे नारद ! तुम परमधन्य हो, क्यों कि—तुम्हारी मेरे ऊपर अखण्ड प्रीति है, इस कारण तुम्हारे हृदय में मैं निरन्तर बास करूँगी, तुम्हें कभी भी नहीं छोडूँगी ॥ २३ ॥ हे साधो नारदजी ! तुमने कृपा करके मेरा दुःख तो एकक्षण में ही खोदिया, अब मेरे पुत्र अचेतहुए पडे हैं इस कारण तुम इन को जागृत करके चेतन करो ॥ २४ ॥ सूतजी ने कहा कि—हेशौनक ! ऐसा उस भक्ति का कथन सुनकर नारदजी को दया आई और वह ज्ञान तथा वैराग्य को हाथके पोरुओं से स्पर्श करके (दबाकर) सावधान करने का उद्योग करने लगे ॥ २५ ॥ नारदजी ने

× यद्यपि दुर्वासा ऋषि ने भक्ति का प्रत्यक्ष द्रोह नहीं करा था तथापि भक्ति करनेवाले अम्बरीष राजा से द्रोह कराया, इसकारण वह ऋषि, राजा की रक्षाके निमित्त भगवान् के नियत करेहुए सुदर्शनचक्र से पीडित होकर, अपनी रक्षा के निमित्त दशोंदिशाओं में फिरे परन्तु अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं पाया तब राजा अम्बरीष की शरण में जाकर ही दुःख से छूटे ।

नं प्रबुद्ध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुद्ध्यतां ॥ २६ ॥ वेदवेदांतघोषैश्च गीतापाठै-र्मुहुर्मुहुः ॥ बोध्यमानौ तदा तेन कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ॥ २७ ॥ नेत्रैरन-वलोकंतौ जृंभंतौ सालसावुभौ ॥ बकवत्पतितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमांगकौ ॥ ॥ २८ ॥ क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैवं पुनः स्वापपरायणौ ॥ ऋषिश्चिंतापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥२९॥ अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरं ॥ चिंतयन्निति गोविंदं स्मारयामास भार्गव ॥ ३० ॥ व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ॥ उद्यमः सफलस्ते तु भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥ एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ॥ तत्ते कर्माभिधास्यन्ति साधवः साधु-भूषणाः ॥ ३२ ॥ सत्कर्मणि कृते तस्मिन् सनिद्रा वृद्धताऽनयोः ॥ गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥ इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ॥ नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ अनयाऽकाशवाण्याऽपि गोप्यत्वेन निरूपितम् ॥ किं वा तत्साधनं

पहिले अपना मुख उन के कान के समीप लेजाकर, हेज्ञानरूप पुरुष ! शीघ्र जाग; अरे वैराग्यरूप पुरुष शीघ्रजाग इसप्रकार जोर जोर से पुकारा ॥२६॥ और वह नारदजी, वेद घोष, वेदान्तघोष और गीता का पाठ आदि करके उन ज्ञान वैराग्यों को वारंवार जगाने लगे तब वह किसी प्रकार परमकष्ट से उठे ॥ २७ ॥ परन्तु परमसूखे हुए काठ की समान शरीरवाले वह ज्ञान और वैराग्य दोनों, नेत्र उघाड़कर देखते ही आलस्य युक्त होकर जंभाई लेनेलगे और बगले की समान (निस्तेज तथा कृश) गिरपड़े ॥ २८ ॥ और भूँख से अत्यन्त दुर्बल हुए वह ज्ञान और वैराग्य फिर सोरहे; ऐसा देखकर वह नारदजी, अब मैं इन के निमित्त कौनसा उपाय करूँ ऐसा मन में विचारते हुए बड़ी चिन्ता में पडे ॥२९॥ और अहो ! इनकी निद्रा कैसे जायगी? और इनको प्राप्त हुआ परम बूढ़ापन कैसे दूर होगा? ऐसी चिन्ता करतेहुए उन नारदजीने गोविन्द भगवान्‌का स्मरण करा ॥३०॥ भगवान् का स्मरण करते ही आकाशवाणी हुई कि—हेनारद! तू ऐसा खेद न कर, क्योंकि तू 'ज्ञान वैराग्य को सचेत करने के निमित्त' करेगा तो तेरा उद्योग सफल होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥३१॥ हेनारद ! इसके निमित्त तू सत्कर्म कर तिस सत्कर्म को साधुओं के भूषणरूप जो साधुपुरुष (विष्णुभक्त) वह कहेंगे ॥ ३२ ॥ उस (साधुओं के कहेहुए) सत्कर्म को तुम करोगे तो इन ज्ञान और वैराग्य दोनों की निद्रा तथा बूढ़ापन दूर होजायँ गे और एकक्षण में ही सर्वत्र भक्ति फैलजायगी ॥ ३३ ॥ ऐसी आकाशवाणी एक नारदजी ने ही नहीं सुनी किन्तु सबों ने स्पष्टरूप से सुनी, उससमय वह नारदजी, 'मैं इस को समझा नहीं' ऐसा कहतेहुए परम विस्मय को प्राप्तहुए ॥ ३४ ॥ तब उस सकल मण्डली से नारदजी ने कहा—इस आकाशवाणी ने जो कुछ गुप्तरीति से कहा है न जाने

कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ॥ ३५ ॥ क्व भविष्यन्ति संतस्ते कथं दास्यन्ति साधनम् ॥ मयात्र किं प्रकर्त्तव्यं यदुक्तं व्योमभाषया ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ तत्र तावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ॥ तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृ-च्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७ ॥ वृत्तांतः श्रूयते सर्वैः किंचि-न्निश्चित्य नोच्यते ॥ असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ॥ ३८ ॥ मूकीभूतास्तथाऽन्ये तु कियन्तस्तु पलायिताः ॥ हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः ॥ ३९ ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ४० ॥ उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपन् जनाः योगिना ना-रदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ॥ ४१ ॥ तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥ एवं ऋषिगणैः पृष्टं नि-र्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥ ततश्चिन्तातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ॥ तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥

वह कौनसा साधन है ? कि–जिस से इन ज्ञान वैराग्यों का कार्य सहज में ही होजायगा ॥ ३५ ॥ न जाने वह साधु कहाँ होंगे ? और आकाशवाणी का कहाहुआ साधन वह कैसे देंगे ? और अब इस विषय में मैं कौनसा उपाय करूँ ॥ ३६ ॥ सूतजी ने कहाकि हेशौनक ! तदनन्तर वह नारद मुनि, उन दोनों को तहाँ ही छोड़कर चलदिये और प्र-त्येक तीर्थपर जाकर मार्ग में मिलेहुए ऋषियों से उस साधन का प्रश्न करा ॥३७॥ वह वृत्तान्त सबने सुना परन्तु उसके विषयका किसी ने थोड़ा सा भी निश्चय करके नहीं कहा उन में से कितनो ही ने कहा--यह बात तो सर्वथा असाध्य है, कितनो ही ने कहा--इस का समझना भी परम कठिन है ॥ ३८ ॥ कितने ही सुनकर चुप ही बैठेरहे कुछ भी नही बोले और कितने ही–'यहाँ रहकर कुछ उत्तर न बनने के कारण अपमान कराने की अपेक्षा अन्यत्र चलाजाना अच्छा है ऐसा विचार कर' पलायमान होगये. हेशौनक ! इसप्रकार त्रिलोकी में जहाँ तहाँ आश्चर्य कारी बड़ाभारी हाहाकार मचगया ॥ ३९ ॥ उस समय सब पुरुष, एक दूसरे के कान में कहनेलगे कि--अहो, नारदजी ने वेदघोष, वेदान्तघोष, गीतापाठ आदि करके भक्ति ज्ञान और वैराग्य को जगाया परन्तु उस से भी जब वह नहीं उठे तो--इस से दूसरा उपाय रहा ही नहीं. और भी यह कि -आकाशवा-णी ने जो कहा उस को यदि योगी होकर स्वयं नारदजी ने ही नहीं समझा तो फिर इस भूलोक में और मनुष्य कैसे बतासकेगा ? इस प्रकार नारदजी के प्रश्न करेहुए उन ऋषि यों ने निर्णय करके कहाकि–इस को समझना परम कठिन है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तदनन्तर वह नारदजी (मैं), चिन्ता से अति आतुर होकर बदरिकाश्रममें आये, और आते ही मुझे अब 'जबतक वह साधुपुरुष तथा वह साधन नहीं प्राप्त होगा तबतक, यहाँ बैठाहुआ तपस्या करूँ, ऐसा मन में विचारकर' उसीप्रकार तप करने का निश्चय करके बैठगये ॥ ४३ ॥

तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ॥ कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥ नारद उवाच ॥ इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमः स्थितः ॥ कुमारा वदतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ४५ ॥ भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ॥ पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ ४६ ॥ सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ॥ लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥ ४७ ॥ हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ॥ अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ॥ ४८ ॥ येषां भ्रूभंगमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ॥ भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः परं गतौ ॥ ४९ ॥ अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ॥ अनुग्रहस्तु कर्त्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥ ५० ॥ अशरीरगिरोक्तं यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ॥ अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥ ५१ ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ॥ स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः

इतने ही में उन नारदजी (मैं) ने अपने सामने करोड़ों सूर्यों की समान कान्तिवाले, मुनियों में श्रेष्ठ सनकादि ऋषियों को देखा और उसीसमय वह मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी कहनेलगे ॥ ४४ ॥ नारदजी ने कहाकि–हेसनत्कुमार ऋषियो ! इससमय मेरे बड़ेभाग्य हैं जो आपसे भेंटहुई, सो मेरेऊपर कृपाकरके जो मैं बूझता हूँ उसका उत्तर शीघ्रही कहिये ४५ तुम सब यद्यपि ' बालक की समान छोटे ' पांच वर्ष की अवस्था वाले दीखतेहो तथापि पूर्वजों के भी (मरीचि आदि ऋषियों के भी) पूर्वज (प्रथम उत्पन्न हुए) होकर महायोगी, परमबुद्धिमान् और बहुतश्रुत हो ॥ ४६ ॥ विष्णुभगवान् ही तुम्हरा आश्रय हैं इस कारण तुम निरन्तर हरिकीर्त्तन में तत्पर, भगवान् की लीलारूप अमृतरस का पान करके मत्तहुए और केवल भगवान् की कथा से ही अपना जीवन सार्थक करनेवाले हो ॥ ४७ ॥ जिन के मुख में नित्य ' एक श्रीहरि ही हमारे शरण (रक्षा करनेवाले वा आश्रय) हैं' ऐसा वचन रहता है इस कारण तुम्हें कालकी प्रेरणा करीहुई जरा (वृद्धावस्था) भी बाधा नहीं करसक्ती है ॥ ४८ ॥ अहो, जिन के भौं टेढ़ी करनेमात्र से पहिले जय और विजय नामक श्रीहरि के दो द्वारपाल पृथ्वीपर (दैत्ययोनि में) पहुँचे और फिर जिन की कृपा होते ही तत्काल वह वैकुण्ठ को गये, यह कितना आश्चर्य है ! ॥४९॥ अहो ! दैवयोग से ही यहां मुझे तुम्हारा दर्शन हुआ है, अतः अब मुझ दीनके ऊपर दयालु होकर तुम अनुग्रह करो ॥ ५० ॥ और पहिले, आकाशवाणी ने जो मुझ से गुप्त साधन कहा है वह बताओ और उस को कैसे करूँ सो भी विस्तारके साथ कहो ॥ ५१ ॥ तथा भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को सुख कैसे प्राप्त होगा ? और ब्राह्मण आदि सकल वर्णों में बड़ाभारी उद्योग करनेपर भी प्रेमपूर्वक इन की स्थापना कैसे होगी ? ॥ ५२ ॥ सन-

॥ ५२ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ मा चिंतां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ॥ उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्त्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥ अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ॥ सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४ ॥ त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्त्तिनि ॥ घटते कृष्णदासस्य भक्तेः संस्थापनता सदा॥५५॥ऋषिभिर्बहवो लोके पंथानः प्रकटीकृताः॥श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः॥ ५६ ॥ वैकुण्ठसाधकः पंथाः स तु गोप्यो हि वर्त्तते ॥ तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥ सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा ॥ तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथा परे ॥ स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः॥५९॥ सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ॥ श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः

सनत्कुमारों ने कहा कि—हे नारद ! तुम कुछ भी चिन्ता न करो, मन में हर्ष मानो, क्योंकि आकाशवाणी ने गुप्त रीति से जो उपाय कहा वह तो पूर्व से ही है और सुख से होसक्ता है ॥ ५३ ॥ हे नारद ! तुम विरक्तों के शिरोमणि और सब प्रकार से श्रीकृष्णजी के दासों में श्रेष्ठ और योग के प्रकाशक होने के कारण परम धन्य हो ॥ ५४ ॥ भक्ति के निमित्त उद्योग करनेवाले तुम्हारे विषय में कोई बात आश्चर्य माननेकी नहींहै, क्योंकि सदा (सब स्थान में) भक्ति की स्थापना करना श्रीकृष्णजी के दासों का मुख्यकर्त्तव्य कार्य हैं ॥ ५५ ॥ इस लोक में अनेकों ऋषियों ने, अनेकों प्रकार के पुण्य के मार्ग प्रकट करे हैं परन्तु वह सब परिश्रम करने से ठीक होकर प्रायः स्वर्ग फल की प्राप्ति कराने वाले हैं (यहां ' प्रायः ' शब्द से स्वर्गफलकी प्राप्ति भी होती है और नहीं भी होती है ऐसा सूचित करा) ॥ ५६ ॥ परन्तु भगवान् की प्राप्ति करानेवाला जो मार्ग है वह तो गुप्त ही है और उस का उपदेश करनेवाला पुरुष भी कभी भाग्य से ही मिलताहै ॥५७॥ हे नारद ! कुछ दिन पहिले आकाशवाणी ने जो 'सत्कर्म' ऐसा तुम से कहा था वह आज हम तुम से कहते हैं सो तुम चित्त को एकाग्र करके आनन्दयुक्त होतेहुए सुनो ॥५८॥ हे नारद ! जिसे द्रव्य आदि से करते हैं वह द्रव्ययज्ञ होता है,यम नियम आदि के द्वारा करते हैं वह तपोयज्ञ होता है, ध्यान आदि के द्वारा करते हैं वह योगयज्ञ होता है तैसे ही और भी जो वेदाध्ययन आदि के द्वारा करते हैं वह स्वाध्याययज्ञ तथा अग्नि होम की विधि से करते हैं वह ज्ञानयज्ञ होता है, यह सब ही यज्ञ, कर्म के अनुसार (जैसा२यज्ञहो उस२के अनुसार) स्वर्गआदिफल देनेवालेहैं (और मोक्षदायक नहीं हैं) ५९ यदि कहो कि—तो वह सत्कर्म कौनसा है ? सो सुनो—मोक्षप्राप्ति की बुद्धि होकर उस के द्वारा जो परमेश्वर का यजन कियाजाता है उस को ही विद्वान् पुरुष, भक्तिरूप सत्कर्म

शुकादिभिः ॥ ६० ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ॥ व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥ ६१ ॥ प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ॥ कलेर्दोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव ॥ ६२ ॥ ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ॥ प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ६४ ॥ श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ॥ तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥ ६५ ॥ छिंदन्तु संशयं ह्येनं भवन्तो मोघदर्शनाः ॥ विलम्बो नात्र कर्त्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥ ६६ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ॥ अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलोन्नतिः ॥ ६७ ॥ आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वाद्यते

का सूचक (मोक्ष देनेवाला) ज्ञानयज्ञ कहते हैं. वह ज्ञानयज्ञ श्रीमद्भागवत की कथा रूप है अर्थात् श्रीमद्भागवत का पारायण करने से ज्ञानयज्ञ होता है; ऐसा श्रीशुकदेव जी आदि ऋषियों ने वर्णन करा है ॥ ६० ॥ उस श्रीमद्भागवत के पारायण से भक्ति, ज्ञान और वैराग्य में बड़ाभारी बल आकर ज्ञान और वैराग्य दोनों के क्लेश नष्ट होंगे और उस से भक्ति को भी सुख होगा ॥ ६१ ॥ हे नारद ! जैसे सिंह की दहाड़ सुनते ही भेड़िये भागजाते हैं तैसे ही श्रीमद्भागवत की ध्वनि होते ही (आजकल के समय में होने वाले) कलियुग के दोष नष्ट होजायँगे तब भक्ति पुष्टि पावेगी ॥ ६२ ॥ तदनन्तर वह भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से युक्त होने के कारण प्रेम रस से परिपूर्ण होकर घर घर और प्रत्येक पुरुष के पास क्रीड़ा करती रहेगी (घर २ सब मनुष्य भक्तिमान् होंगे) ॥ ६३ ॥ नारद जी ने कहा कि—हे ऋषियों ! मैंने वेदघोष, वेदान्तघोष और गीतापाठ आदि करके भक्ति,ज्ञान और वैराग्य को जगाया परन्तु उनसे वह उठे नहीं ॥ ६४ ॥ फिर भला श्रीमद्भागवत का पारायण करने से कैसे सचेत होंगे ? क्योंकि—उस श्रीमद्भागवत की कथा में तो प्रत्येक पद में वेद का अर्थ भराहुआ है (इसकारण वह उसको कैसे समझेंगे ? और कैसे सचेत होंगे ?) ॥ ६५ ॥ हे शरणागत वत्सल ऋषियों ! तुम्हारा दर्शन कभी भी निष्फल नहीं होता हैं,कुछ तो फल प्राप्त होता ही है, इस से तुम विलम्ब न करके इस मेरे संशय को दूर करो ॥ ६६ ॥ सनत्कुमारों ने कहा कि-हे नारद ! यह श्रीमद्भागवत की कथा वेद और उपनिषदों का सार (तात्पर्य) लेकर रची गई है और उनसे निराली तथा फलरूपसे उन्नतिको प्राप्त है अर्थात् जैसे वृक्षका सारभूत फल उस वृक्ष से निराला और मधुर होता है तैसाही होने के कारण अति उत्तम है ॥ ६७ ॥ जैसे फल में का रस वृक्ष में जड़ से लेकर फुलङ्गी पर्यन्त एकसमान भरा-

यथा ॥ संभूय से पृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ॥ ६८ ॥ यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ॥ पृथग्भूतं हि तद्दिव्यं देवानां रसवर्द्धनम् ॥ ६९ ॥ इक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ॥ पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७० ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥ ७१ ॥ वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ॥ परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२ ॥ तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितं ॥ तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ॥ ७३ ॥ तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् ॥ श्रीमद्भागवतश्रावे शोकदुःखविनाशनम् ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ यद्दर्शनं च विनिहंत्यशुभानि सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ॥ निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानः प्रेमप्रका-

---

हुआ होता है परन्तु वह स्वाद लेने के योग्य नहीं होता है और वही रस जब वृक्ष से अलग होकर फल में आता है तब सब प्राणियों के मन को हरता है ॥ ६८ ॥ जैसे दूध में पहिले से व्याप्त होकर रहनेवाला घृत, घृतरूप से स्वाद लेने के योग्य नहीं होता है परन्तु दूध का दही मठा आदि बनाकर जब दूध में से घी अलग होता है तबही वह देवताओं को भी आनन्दकारक होता है (तबही उस का स्वाद जानाजाता है) ॥ ६९ ॥ और जैसे शर्करा (खांड), इक्षु (गन्ने) में रसरूप से व्याप्त होती है तथापि रस आदि निकाल कर अपने स्वरूप में आनेपर ही अर्थात् अलग होनेपर ही विशेष मिष्ट (मीठी) होती है तैसे ही वेद और उपनिषदों की सारभूत फलरूप हुई श्रीमद्भागवत की कथा मधुर है ॥ ७० ॥ यह सकल वेदों की समान भागवत नामक पुराण, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को स्थापन करने के निमित्त श्रीवेदव्यासजी ने प्रकट करा है ॥ ७१ ॥ वह व्यास मुनि, वेदान्तशास्त्र और वेद के पारगामी और साक्षात् श्रीमद्भगवद्गीता के कर्त्ता होकर भी जब पहिले अज्ञानरूप सागर में मोहित होकर दुःखित होनेलगे तब हे नारद ! तुम ने उन से केवल चारही श्लोकोंमें (चतुःश्लोकी) भागवत कही थी उस के सुनने से वह वेदव्यास जी तत्काल दुःख रहित हुए थे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ऐसा होनेपर भी जो तुमने सन्देह में होकर प्रश्न करा सो उस श्रीमद्भागवत के विषय में तुम्हें किसकारण से आश्चर्य हुआ है ? श्रीमद्भागवत को सुनने पर दुःख और शोक का नाश होता है (यह तुम्हें ज्ञात ही है इसकारण शोक करने का कोई कारण नहीं दीखता) ॥ ७४ ॥ नारदजी ने कहाकि—हेशेषरूप भगवान् के सकल (सहस्र) मुखों से वर्णन करीहुई केवल श्रीमद्भागवत की कथा का ही पान करनेवाले ऋषियो ! तुम्हारा दर्शन करके संसार के दुःखरूप दावानल से पीड़ितहुए प्राणियों के पाप तत्काल नष्ट होते हैं और

शंकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥ भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै ॥ अज्ञानहेतुकृतमोहमदांधकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ ७६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसम्वादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥ यत्र कार्यो मया यज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ॥ महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २ ॥ कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ को विधिस्तत्र कर्त्तव्यो ममेदं वदतामितः ॥ ३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ॥ गङ्गाद्वारसमीपे तु तटमानन्दनामकम् ॥ ४ ॥ नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितं ॥ नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ॥ ५ ॥ रम्यमेकांतदेशस्थं हैमपद्मसुशोभितं ॥ यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितं ॥ ६ ॥ ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्त्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ॥ अपूर्वा रसरूपा च कथा तत्र भवि-

---

तुम्हारेदर्शन हीसे उनका कल्याण होता है ऐसे तुम्हारी, प्रेमरूप भक्ति के प्रकट होने के निमित्त मैं शरण आया हूँ ॥ ७५ ॥ हे ऋषियों! अनेकों जन्मों मे इकट्ठे करेहुए पहिले पुण्यकर्मों का उदय होने से जब मनुष्यको सत्संग मिलता है तब निःसन्देह उस सत्सङ्गसे, अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले मोहसे उत्पन्न हुए मदरूप अन्धकार का नाश होकर विवेक उत्पन्न होता है ॥ ७६ ॥ इति श्रीमद्भागवतमाहात्म्य में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥ नारदजी ने कहाकि-हेसनत्कुमारों! भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की स्थापना करने के निमित्त मैं बड़े प्रयत्न से शुकशास्त्र (श्रीमद्भागवत) की कथा के द्वारा प्रकाशितहुए ज्ञानयज्ञ को करूँगा ॥ १ ॥ परन्तु पहिले, यहाँ उस ज्ञानयज्ञ को किस स्थानपर करूँ वह स्थान बताइये और शुकशास्त्र की महिमा कैसी है सो भी कहिये क्योंकि--तुम वेद के पारङ्गत हो इसकारण ऐसा कोई विषय नहीं है जिसे तुम जानते न होओ ॥ २ ॥ श्रीमद्भागवत की कथा को कितने दिनों में श्रवण करे और उस में विधि विधान किस प्रकार करे, यह भी मुझ से कहिये ॥ ३ ॥ सनत्कुमारों ने कहा कि-हे नारद! तुम अतिनम्र और ज्ञानी हो, इस कारण तुम से कहते हैं सुनो--गङ्गाद्वार के समीप में आनन्द नामक एक तीर है ॥ ४ ॥ उस गङ्गाके आनन्द नामक तट को अनेकों ऋषिगणों ने सेवन करा है और नानाप्रकारके वृक्ष तथा लताओं से घिरा हुआ है तहां नवीन कोमल बालुका फैलीहुई है और जहां तहां सुवर्ण कमलों की उत्तम शोभा है, और जहां पास २ रहनेवाले सिंह, हाथी, व्याघ्र, गौ, सर्प, न्यौले आदि प्राणी परस्पर के मन में के वैरभाव को त्यागकर विचरते हैं, वह ऐसा एकान्त स्थान (निर्विघ्न) होने के कारण अतिमनोहर है ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस से हे नारद! उस आनन्दवन में तुम

ष्यति ॥ ७ ॥ पुरस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णकलेवरं ॥ तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्र गमिष्यति ॥ ८ ॥ यत्र भागवती वार्त्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ॥ कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ॥ गंगातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥ १० ॥ यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ॥ भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥ ११ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलंपटाः ॥ धावन्तोऽप्याययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥ भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ॥ रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकण्डपुत्रोऽत्रिजपिप्पलादाः ॥ १३ ॥ योगेश्वरा व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलिजन्हुमुख्याः ॥ सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥ वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्त्तयः ॥ दश सप्त पुराणानि षट् शास्त्राणि तथाऽऽययुः १५ गंगाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ॥ क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादिव-

यज्ञ करो, क्योंकि–तहाँ कहीहुई कथा अपूर्व और रस से भरीहुई होगी ॥ ७ ॥ और भक्ति भी, अपने आगे स्थित ज्ञान और वैराग्य दोनों को आगे करके तहाँ जायगी ॥८॥ क्योंकि–जहाँ श्रीमद्भागवत की कथा होती है तहाँ भक्ति, ज्ञान और वैराग्य यह सब जायँगे सो तहाँ जाते ही भगवत्कथा का शब्द उन के कानों में पड़ते ही वह तीनों ही तरुण होजायँगे ॥ ९ ॥ सूतजी शौनक से कहते हैं कि–हे शौनक ! ऐसा कहकर वह सनत्कुमार ऋषि, नारदजी को अपने साथलेकर कथारूप अमृतका पान करने के निमित्त बदरिकाश्रम से चलकर शीघ्रही गंगाजी के तटपर आये ॥ १० ॥ जब वह गंगातटपर आये उससमय भूलोक में, स्वर्ग में और सत्यलोक में भी जिधर तिधर बडा कोलाहल (कलकलाहट) होगया ॥ ११ ॥ और जो कथारूप अमृतरस के लोभी थे वह सब भी श्रीमद्भागवतरूप अमृत का पान करने के निमित्त दौड़ते हुए बड़ी शीघ्रता के साथ आनेलगे, उनमें, जो विष्णु के भक्त थे वह सब से पहिले आये ॥ १२ ॥ हे शौनक ! तहां भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद ॥ १३ ॥ योगीश्वर (याग्यवल्क्य और जैगीषव्य), व्यास, पराशर और छायाशुक यह सब तथा और भी जो जाजलि, जन्हु आदि मुख्य २ थे वह सब ही ऋषि, अपनी २ स्त्रियों को, पुत्रों को और शिष्यों को साथ लेकर बड़े प्रेम से आये ॥ १४ ॥ तथा उपनिषद् वेदान्त, ऋग्वेद आदि वेद, शास्त्रों में कहे हुए महामन्त्र और पञ्चरात्र आदि तन्त्र यह सब मूर्त्तिमान् अपने २ अधिष्ठात्री देवताओं के साथ आये थे तथा सत्रह पुराण और छः शास्त्र भी आये ॥ १५ ॥ हे शौनक ! तैसे ही तहां गङ्गा आदि नदियें, पुष्कर आदि सरोवर, सब नक्षत्र, सब दिशा, दण्डकारण्य आदि सबवन, देवता, गन्धर्व,

नानि च ॥१६॥ नगादयो ययुस्तत्र देवगंधर्वकिन्नराः ॥ गुरुत्वात्तत्र नायातां-
न्भृगुः संबोध्य चानयत् ॥ १७ ॥ दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् ॥
कुमारा वन्दिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः॥१८॥वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो
ब्रह्मचारिणः ॥ मुख्यभागे स्थितास्तत्र तदग्रे नारदः स्थितः ॥१९॥ एकभागे
ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः॥ वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ॥
॥२०॥ जयशब्दो नमःशब्दः शङ्खशब्दस्तथैव च ॥ चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः
सुमहानभूत् ॥ २१ ॥ विमानानि समारुह्य कियन्तो देवनायकाः ॥ कल्पवृक्ष-
प्रसूनानि सर्वास्तत्र समाकिरन् ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं तेष्वेकचित्तेषु
श्रीमद्भागवतस्य च ॥ माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥
कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामो महिमा शुकशास्त्रजः ॥ यस्य श्रवणमा-
त्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ ॥ सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती
कथा ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५ ॥ ग्रन्थोऽष्टादश-

वन, पर्वत और वृक्ष आदि तहाँ आये थे और बड़े२मोटे शरीर वाले दिग्गज आदि तथा
बडे २ मानी दुर्वासा आदि जो नहीं आये थे उन को भृगुऋषि ने अपने शिष्य आदि
को भेजकर बुलवालिया ॥१६॥१७॥ तदनन्तर नारदजीने,–'भक्तिमान् पुरुष यथोचित
आसनपर बैठकर इस भागवत संहिता को सुनें वा कहें, ऐसा शास्त्र (शाण्डिल्यऋषि का
वचन) है'इसकारण सनत्कुमारों को बैठनेके लिये उत्तमआसन दिया तब ज्ञानयज्ञकी दीक्षा
धारण करने वाले और तहां आये हुए सब पुरुषों करके वन्दना करेहुए वह भगवद्भक्त
सनत्कुमार उस आसनपर बैठे ॥ १८ ॥ तदनन्तर वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी,
अपनी योग्यता के अनुसार मुख्य२स्थलपर सबके आगे (सनत्कुमारों के सन्मुख) बैठे और
उन के भी आगे नारदजी बैठे॥१९॥और उन के एक ओर सकल ऋषि और दूसरी ओर
सब देवता बैठे तथा एक ओर वेद और उपनिषद्,एक ओर तीर्थ और एक ओर स्त्रियें इस
प्रकार सब बैठे ॥ २० ॥ तदनन्तर तहाँ जय शब्द, नमः शब्द तथा शङ्खों के शब्द
होनेलगे और अबीर गुलाल आदि चूर्ण, खीलें और फूलों की बड़ी वर्षा होनेलगी॥२१॥
कितने ही बड़े२ देवता विमानों में बैठकर, पारिजात आदि कल्पवृक्ष के फूलों की तहाँ सबों
के ऊपर वर्षा करनेलगे ॥ २२ ॥ सूतजी ने कहा कि–हे शौनक ! इसप्रकार वह सब
श्रोता एकाग्रचित्तहुए तब सनत्कुमार मुनियों ने नारदजी के अर्थ स्पष्टरूप से श्रीम-
द्भागवत का माहात्म्य कहनेका प्रारम्भ करा॥२३॥सनत्कुमारोंने कहा कि–हेनारद! अब
तुम से,वह शुकशास्त्र का (श्रीमद्भागवत का)माहात्म्य कहता हूँ ॥२४॥हेनारद! जिस को
सुननेपर साक्षात् भगवान् श्रीहरि हृदयमें निवास करतेहैं उस श्रीमद्भागवतकी कथाको सब
सबकालमें(गुरुशुक्रास्त आदि इक्कीस महादोष होनेपर)भी सेवनकरे(बाँचे)और सुने॥२५॥

साहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः ॥ परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ॥
॥ २६ ॥ तावत्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् ॥ यावत्कर्णगता नास्ति
शुकशास्त्रकथा क्षणम् ॥ २७ ॥ किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ॥
एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥ २८ ॥ कथा भागवतस्यापि नित्यं
भवति यद्गृहे ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥ २९ ॥ अश्वमेधस-
हस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
॥ ३० ॥ तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः ॥ यावन्न श्रूयते सम्यक्
श्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१ ॥ न गङ्गा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ॥
शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥ श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा
नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥
वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च ॥ त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव

हे नारदजी ! जिस में राजापरीक्षित् और शुकदेवजी का सम्वाद है और जिस में बारह स्कन्ध (भाग) हैं उस अठारह सहस्र श्लोक युक्त ग्रन्थ को ही श्रीमद्भागवत कहते हैं उस को तुम सुनो ॥ २६ ॥ जब तक श्रीमद्भागवत की कथा क्षणभर को भी कान में नहीं पड़ती है तब तक ही मनुष्य, अज्ञानके कारण इस संसार चक्रमें घूमता रहताहै।२७। भ्रम उत्पन्न करनेवाले अनेकों शास्त्र और अनेकों पुराण हैं परन्तु उन के सुनने से क्या होता है ? केवल यह एक भागवत शास्त्रही मुक्ति दान करके गरजता है, इसकारण इस को सुने ॥ २८ ॥ जिन के घरों में प्रतिदिन भागवत की कथा होती है उन का घर तीर्थ रूप है, क्योंकि–उस के सुनने से उन घरों में रहने वाले पुरुषों के पातकों का नाश होता है ॥ २९ ॥ सहस्रों अश्वमेधयज्ञ, और सैकड़ों वाजपेययज्ञ, श्रीमद्भागवत की सोल-हवीं कला की समानता भी नहीं पावेंगें, अर्थात् सहस्रों अश्वमेध और सैकडों वाजपेय यज्ञ करने का फल, श्रीमद्भागवत की कथा के सुनने से प्राप्तहुए फल के सोलहवें भाग की समान भी नहीं है ॥ ३० ॥ हे तपोधनों ! जबतक मनुष्य, श्रीमद्भागवत को उत्तम प्रकार से नहीं सुनें तबतक ही इस देह में पातक रहते हैं अर्थात् एकबार उस को सुनते ही सकल पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ३१ ॥ श्रीमद्भागवत की कथा के फल की समानता गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर और प्रयाग भी नहीं पासक्ता ॥ ३२ ॥ हे नारद ! यदि तुम्हें उत्तम गति (मोक्ष) की इच्छा हो तो प्रति दिन श्रीमद्भागवत के अध्याय के एक श्लोक का वा आधे श्लोक का, वा चौथाई श्लोक का अपने मुख से पाठ करो ।३३। ॐकार, गायत्री, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः इत्यादि सोलह ऋचाओं का' पुरुषसूक्त, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद यह तीनों वेद, श्रीमद्भागवत, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह

च ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ॥ ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा ॥ ३५ ॥ तुलसी च वसंतश्च पुरुषोत्तम एव च ॥ एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्नपृथग्भाव इष्यते ॥३६॥ यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशं ॥ जन्मकोटिकृतं पापं नश्येत नात्र संशयः ॥ ३७ ॥ श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ॥ नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३८ ॥ उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिंतनम् ॥ तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥३९॥ अन्तकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ॥ प्रीत्या तस्यैव वैकुण्ठं गोविंदोऽपि प्रयच्छति ॥ ४० ॥ हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ॥ कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवं ॥ ४१ ॥ आजन्ममात्रमपि येन शठेन किञ्चिच्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ॥ चांडालवच्च खरवद्धत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननीजनिदुःखभाजा ॥ ४२ ॥ जीवंच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित् ॥ धि -

---

द्वादशाक्षरी मन्त्र, द्वादशमूर्त्ति सूर्य, सम्वत्सररूपकाल, प्रयाग, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, कामधेनु, द्वादशी तिथि (एकादशी), तुलसी, वसन्तुऋतु और पुरुषोत्तम विष्णुभगवान् वा पुरुषोत्तममास (अधिकमास) इन में वास्तविक दृष्टि से देखाजाय तो विद्वान् पुरुष कुछ भेदभाव नहीं मानते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो पुरुष निरन्तर श्रीमद्भागवत को अर्थ सहित वांचे उस के करोड़ों जन्मों में करे हुए पाप नष्ट होते हैं इस में सन्देह नहीं है ॥३७॥ तथा जो पुरुष, नित्य नियम से श्रीमद्भागवत के एक श्लोक का आधे वा चौथाई भाग का पाठ करे उस को राजसूययज्ञ और अश्वमेधयज्ञ करने का पुण्य प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ नित्य भागवत का पाठ करना, हरिकीर्त्तन करना, तुलसी को लगाकर और जल आदि देकर सेवा करके पोषण करना और गौ की सेवा करना यह चारों एकसमान हैं ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य अपने अन्तकाल में इस श्रीमद्भागवत के वाक्य को प्रेम पूर्वक सुनता है उस को ही विष्णुभगवान् अपना वैकुण्ठ पद देते हैं ॥ ४० ॥ जो पुरुष, इस श्रीमद्भागवत का, सुवर्ण के सिंहासनपर रखकर उस के सहित विष्णुभक्त को दान देगा उस को, निरन्तर श्रीकृष्णभगवान् में सायुज्यतारूप मुक्ति प्राप्त होगी ४१ हेनारदजी ! जिस शठ (देवताओं की पूजा आदि न करके,ऋषियों का तर्पण आदि न कर के और पितरों का श्राद्ध आदि न करके ठगई करनेवाले)-पुरुष ने, जन्म से लेकर अन्त पर्यन्त ध्यान देकर थोडीसी भी श्रीमद्भागवत की कथा नहीं सुनी, जन्म से ही माता को दुःख देनेवाले उस पुरुष ने वास्तव में,अपना जन्म चाण्डाल,की समान और गर्दभ की समान निरर्थक ही खोया ॥ ४२ ॥ जिस ने श्रीमद्भागवतकी कथा में का थोड़ा सा भाग

सं नरं पशुसमं भुविभाररूपमेवं वदन्ति दिवि देवसरोजमुख्याः ॥४३॥ दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा॥कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥ ४४ ॥ तेन योगनिधे धीमन् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः ॥ दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम्॥४५॥सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतं ॥ अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोत्र शुकाज्ञया॥४६॥मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा॥ दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतं ॥ ४७ ॥ श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलं ॥ तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥ मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥ कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ॥ ४९ ॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणे लभेत् ॥ ५० ॥ यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ॥

भी नहीं सुना वह पापाचरण करनेवाला पुरुष,जीता हुआ ही मरेकी समान है ऐसा कहते हैं,क्योंकि–स्वर्ग में ब्रह्माजी आदि मुख्य देवता भागवत की कथा न सुनने के कारण,पृथ्वी के भाररूप उस पशुसमान मनुष्य को, धिक्कार है ऐसे तिरस्कार के वचन कहते हैं' ॥ ४३ ॥ इस भूलोक में श्रीमद्भागवत से प्रकटहुई कथा परमदुर्लभ है, हाँ--करोड़ो जन्मों में पुण्यप्राप्ति करने पर तो मिलजाती है ॥ ४४ ॥ इस से हेबुद्धिमान् योगेश्वर नारदजी ! उस भागवत की कथा को यदि बड़ाभारी परिश्रम करना पड़े तब भी सुने श्रवण करने में 'अमुक ही दिन अमुक ही समय में सुने' ऐसा दिनका नियम नहीं कहा है इसकारण उस को निरन्तर सुने, यही बुद्धिमान् लोगों ने माना है ॥ ४५ ॥ वार्त्तालाप में सत्यभाव और ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके सुने, यद्यपि ऐसा कहा है तथापि कलियुग में ऐसा नियम बनना कठिन होनेके कारण इस विषय में श्रीशुकदेवजी ने कुछ विशेष आज्ञा करी है, उस को ध्यान में रक्खे ॥ ४६ ॥ कि–कलियुग में मन की वृत्तियों को जीतना, विशेष नियमों का आचरण करना और दीक्षा धारण करना आदि अशक्य होने के कारण सातदिन में (भागवत का सप्ताह) सुने ऐसा कहा है ॥ ४७ ॥ हेनारद ! माघ के महीने में श्रीमद्भागवत को नित्य श्रद्धा के साथ सुनने पर जो फल प्राप्त होता है वह फल, सप्ताह सुनने पर प्राप्त होगा ऐसा शुकदेवजी ने नियम करदिया है ॥ ४८ ॥ और मनुष्यों से मन को नहीं जीताजाता है, रोग उत्पन्न होते हैं इस से आगे को आयु क्षीण होती चली जाती है, ऐसे कलियुग के अनेकों दोष होने के कारण 'बहुत समय पर्यन्त भागवत का सुनना बनेगा नहीं' इसकारण सप्ताह की रीति से थोड़े दिनों में सुन लेय, यही उचित है ॥४९॥ जो फल तप करने से, योगाभ्यास करने से और समाधि लगाने से भी नहीं प्राप्त होता है वह सब भागवत का सप्ताह सुनने से अनायास में ही प्राप्त होजाता है ॥५०॥ वह

तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ॥ ५१ ॥ योगाद्गर्जति स-
प्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ॥ किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति ग-
र्जति ॥ ५२ ॥ शौनक उवाच ॥ साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं ज्ञानादिध-
र्मान् विगणय्य सांप्रतम् ॥ निःश्रेयसं भागवतं पुराणं जातं कुतो योगविदादि-
सूचकम् ॥ ५३ ॥ सूत उवाच ॥ यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ॥
एकादशं परिश्रुत्याप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वं तु
यास्यसि गोविंद भक्तकार्यं विधाय च ॥ मच्चित्ते महती चिंता तां श्रुत्वा सुख-
मावह ॥ ५५ ॥ ॥ आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यन्ति पुनः खलाः ॥ तत्सं-
गेनैव सन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा ॥ ५६ ॥ तदा भारवती भूमिर्गोरू-

---

सप्ताह यज्ञसे अधिक गर्जता है, सप्ताह व्रत से अधिक गर्जता है, तप से भी अत्यन्त अधिक गर्जता है और नित्य ही तीर्थ से भी अधिक गर्जता है ॥५१॥ सप्ताह योग से अधिक गर्जता है, ध्यान से अधिक गर्जता है और ज्ञान से भी अधिक गर्जता है, हे नारद! सप्ताह के गर्जने के विषय में अधिक क्या कहें यह तो सब से ही अधिक गर्जता है! गर्जता है ॥ ५२ ॥ सनत्कुमारों करके नारद जी के अर्थ कहेहुए श्रीमद्भागवत के अद्भुत माहात्म्य को सुनकर उस में इतनी श्रेष्ठता आने का कारण जानने की इच्छा करनेवाले शौनक जी ने कहा कि–हे सूत जी! यह तो तुमने बड़े आश्चर्य में डालनेवाली कथा कही यह श्रीमद्भागवत पुराण, ज्ञान और विज्ञान आदि धर्मों का तिरस्कार करके, योग (चित्तकी वृत्तियों के निरोध) को जाननेवाले ब्रह्मा जी के आदि कारण (परब्रह्म) का ज्ञान करानेवाला और मोक्ष का कारण कब से हुआ? अर्थात् पहिले से ही इसका ऐसा प्रभाव है वा पीछे से हुआ है? और यदि पीछे से हुआ तो कैसे हुआ सो हमसे कहिये ॥ ५३ ॥ सूत जी ने कहा कि–हे शौनक! जिस समय श्रीकृष्ण परमात्मा इस पृथ्वी का त्याग करके निज धाम के जाने को उद्यत हुए तब उन्हों ने 'ज्ञान होन के निमित्त' एकादश (ग्यारहवां) स्कन्ध कहा, उसको सुनकर उद्धव जी ने बूझा ॥ ५४ ॥ उद्धव जी ने कहा कि–हे गोविन्द श्रीकृष्ण जी! तुम तो भक्तों का कार्य करके वैकुण्ठको जाने को उद्यत हुए, परन्तु मेरे अन्तःकरण में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई है, उसको सुन कर जैसे मुझे वा लोकों को सुख होय सो करिये ॥५५॥ हे भगवन्! वह चिन्ता यह है कि–अब बड़ा भयङ्कर कलियुग आगया है इस में पहिले सब लोग महादुष्ट (नीचकर्म करनेवाले) होंगे, और तदनन्तर साधुपुरुष भी जब उनकी संगति से दुष्टपना करने लगेंगे ॥ ५६ ॥ तब यह पृथ्वी गौ का रूप धारण करके ' दुष्टों के पापकर्म करने से'

पेयं कमाश्रयेत् ॥ अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥५७॥ अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ॥ भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ॥ ५८ ॥ त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले ॥ निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय ॥ ५९ ॥ इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः ॥ भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च ॥ ६० ॥ स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ॥ तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ॥ ॥ ६१ तेनेयं वाङ्मयी मूर्त्तिः प्रत्यक्षा वर्त्तते हरेः ॥ सेवनाच्छ्रवणात् पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥ ६२ ॥ सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ॥ साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६३ ॥ दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ॥ कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोयमीरितः ॥ ६४ ॥ अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ॥ कथं त्याज्या भवेत्पुंभिः सुखो-

भारयुक्त होकर भला किसकी शरण जायगी ? हे कमलनेत्र ! हे श्रीकृष्ण ! मुझे तो तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई उसकी रक्षा करनेवाला नहीं दीखता ॥५७॥ इसकारण हे भक्तवत्सल ! तुम साधुपुरुषों के ऊपर दया करके, यहां ही रहो, जाओ नहीं; क्योंकि—तुम पहिले निराकार और चैतन्यस्वरूप होकर भी अब अपने भक्तों के निमित्त सगुण (साकार) हुए हो ॥५८। वह तुम्हारे भक्त, तुम्हारा वियोग होने पर कैसे रहेंगे ? क्योंकि तुम्हारी सगुण मूर्त्ति का अन्तर्धान होने पर उनको निराकार मूर्त्ति की (ब्रह्म की) उपासना करने में बड़ी ही कठिनता पडेगी; इसकारण आप के चलेजानेपर आप के भक्तों की क्या दशा होगी और वह सङ्कट के समय किसकी शरण जायँगे? इसका भी तो थोडा सा विचार करो ॥ ५९ ॥ हे शौनक ! इसप्रकार प्रभासक्षेत्र में उद्धवजी के कथन को सुनकर श्रीकृष्ण मन में विचार करनेलगे कि—अब मैं भक्तों के आश्रय (कल्याण) के निमित्त कौनसा उपाय करूँ ? ॥ ६० ॥ कुछदेर ऐसा विचार करके और उपाय सोचकर उन श्रीकृष्णजी ने अपने तेज (प्रभाव) को श्रीमद्भागवत में रक्खा और अन्तर्धानहोकर इस श्रीमद्भागवतरूप समुद्रमें प्रविष्टहुए।६१।हेशौनक!इसकारणही भागवत की वाणी साक्षात् श्रीकृष्णजीकी मूर्त्तिहीहै, इसका सेवन करनेपर, श्रवण करनेपर पाठकरनेपर अथवा दर्शन करनेपर, सेवन आदि करनेवाले पुरुषके पापोंका नाश करती है ॥६२॥ इस कारण सकल साधनों की अपेक्षा यह सप्ताह का श्रवण करना बड़ाभारी साधन रचा है और कलियुग में तो सकल साधनों का तिरस्कार करके सप्ताह का सुनना ही एक धर्म कहा है ॥ ६३ ॥ तथा कलियुग में दुःख, दारिद्र्य, दुर्भाग्य और पापों का नाश करने के निमित्त तथा काम क्रोध आदि को जीतने के निमित्त यह (सप्ताह का सुनना) धर्म कहा है ॥ ६४ ॥ यदि यह साधन नहीं कहा होता तो जिस का जीतना देवताओं को

होते : प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायां ॥ आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥ ६६ ॥ भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाविरासीत् । श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥ ६७ ॥ तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ॥ कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्यं मुनीनामिति तर्कयन्तः ॥ ६८ ॥ ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथार्थतो निष्पतिताधुनेयं एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥ ६९ ॥ भक्तिरुवाच ॥ भवद्भिरद्यैव कृतास्मि पुष्टा कलिप्रनष्टाऽपि कथारसेन ॥ क्वाहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवन्तु ब्राह्मी इदं तां गिरमूचिरे ते ॥ ७० ॥ भक्तेषु गोविंदसुरूपकर्त्री प्रेमैककर्त्री भवरोगहन्त्री ॥ सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरन्तरं वैष्णवमानसानि ॥ ७१ ॥ ततोऽपि दोषाः क-

भी कठिन है उस विष्णुभगवान् की माया का मनुष्य कैसे त्याग करते ? इसकारण सप्ताह को सुनने से ही उस माया का त्याग होसकेगा, ऐसा विचारकर यह सप्ताहरूप साधन श्रीशुकदेवजी ने कहा है ॥ ६५ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे शौनक ! उस सभा में जब सनत्कुमारों ने सप्ताह सुननारूप बड़ेभारी धर्म को प्रकट करा तब उस समय तहां एक आश्चर्य हुआ उस को कहताहूं सुनो ॥ ६६ ॥ हे शौनक ! प्रेम लक्षणरूप भक्ति, 'श्रीमद्भागवत की सप्ताह सुनने से' तरुणहुए अपने उन दोनों पुत्रोंको लेकर हे श्रीकृष्ण ! हे गोविन्द्र ! हे हरे ! हे मुरारे ! हे नाथ ! इत्यादि भगवान् के अनेकों नामों का वारंवार उच्चारण करती हुई एकाएकी तहां प्रकट हुई ॥ ६७ ॥ तब भागवत के अर्थ से अलङ्कृत हुई और अति सुन्दर वेषधारण करके प्राप्त हुई वह भक्ति, सकल सभासदों के नेत्र गोचर होते ही वह सब, " अहो ! बड़े २ मुनियों के मध्य में इस ने कैसे प्रवेश किया ? यह भला यहां काहे को आई है, ' ऐसी तर्कना करने लगे ॥ ६८ ॥ उस समय सनत्कुमारों ने कहा कि—यह जो भक्ति इस समय यहां आई है सो केवल कथा के निमित्त ही है, इसप्रकार के भाषण को, पुत्रों सहित उस भक्ति ने सुनकर नम्रता के साथ सनत्कुमारों से कहा ॥ ६९ ॥ भक्ति ने कहा कि—हे ऋषियों मैं पहिले कलियुग के प्रभाव से नष्ट सी होगयी थी तथापि आज तुम ने, कथारस पिलाकर मुझे पुष्ट करा है सो अब यह कहो कि—मैं कहाँ रहूँ, इसप्रकार भक्ति के कहते ही वह ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार कहने लगे ॥ ७० ॥ हेभक्ति ! तू गोविन्द भगवान् की समानरूप धारण करके भगवान् के भक्तों में केवल प्रेमको उत्पन्न करनेवाली और उन के संसाररूप रोग का नाश करनेवाली है, सो तू धीरज धर विष्णुभगवान् के भक्तों के अन्तःकरणों में निरन्तर निवास कर ॥ ७१ ॥ तू विष्णुभक्तों के अन्तःकरणोंमें रहेगी

लिजो इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ॥ एवं तदाज्ञावसरेऽपि भक्तिस्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ॥ ७२ ॥ सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ॥ हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥ ७३ ॥ ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ॥ यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥७४॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्येभक्तिकष्टनिवर्त्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥छ॥ सूत उवाच ॥ अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ॥ निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तवत्सलः ॥१॥ वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ॥ कांचीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुण्डलः ॥ २ ॥ त्रिभङ्गललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः ॥ कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥ ३ ॥ परमानन्दचिन्मूर्त्तिर्मधुरो मुरलीधरः ॥ आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥ ४ ॥ वैकु-

तो इस कलियुग के काम क्रोध आदि दोष, अन्यलोकोंमें अपना प्रभाव दिखाने को समर्थ होकर भी वह तुझे देखने को समर्थ नहीं होंगे,इस प्रकार सनत्कुमारोंने आज्ञाकारी तब वह भक्ति, विष्णुभक्तों के अन्तःकरणों में जाकररही ॥७२॥ हे शौनक ! जिनके हृदयों में केवल श्री हरिकी भक्ति वास करती है वह यदि निर्धनहों तो भी सकल त्रिलोकीमें धन्यहैं, क्योंकि–उन के हृदयोंमें भक्ति के रहनेके कारण, उस भक्तिरूप डोरी से बँधेहुए श्रीहरि, अपने वैकुण्ठको सबप्रकार से त्याग कर उन अपने भक्तोंके हृदयोंमें प्रवेश करतेहैं ॥७३॥ हे शौनक ! जिस का आश्रय (श्रवण वा पठन) करके कथन करनेपर वक्ता और श्रोता दोनों ही श्रीकृष्णजी की समता (सायुज्यमुक्ति) को प्राप्त होते हैं, और धर्मों की आवश्यकता नहीं उस पृथ्वीपर विद्यमान ब्रह्ममूर्त्ति श्रीमद्भागवत का माहात्म्य आज तुम से और अधिक क्या कहूँ ॥७ ४ ॥ इति श्रीमद्भागवत माहात्म्य में तृतीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी ने कहा कि–हे शौनक ! तदनन्तर अपने भक्तों के अन्तःकरणों में अलौकिक भक्ति उत्पन्न हुई देखकर भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णजी अपने वैकुण्ठ लोक को त्याग कर तहां आये ॥ १ ॥ वह वनमाला धारण करेहुए थे, मेघ की समान श्यामवर्ण और पीताम्बर पहिनेहुए होनेके कारण मनोहर प्रतीत होते थे,वह कमरमें तागड़ी और शिरपर मोरपंख लगानेके कारण विशेष शोभायमान थे,तथा दमकतेहुए मुकुट और कुण्डलोंको धारणकरेहुएथे ।२। और पेटपरकी त्रिवलीसे शोभायमान,करोड़ों कामदेव की समान सुन्दर, देदीप्यमान कौस्तुभमणि से शोभित और शरीरपर चन्दन का लेप करेहुए थे ॥ ३ ॥ उन मुरलीधर सुन्दर परमानन्दरूप चैतन्यमूर्त्ति भगवान् ने, अपने, भक्तों के निर्मल हृदय में प्रवेश किया ॥ ४ ॥ तब वैकुण्ठलोक में रहनेवाले उद्धव आदि विष्णुभक्त भी, उन

ण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः ॥ तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ॥ ५ ॥ तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी ॥ चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शङ्खरवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥ तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः ॥ दृष्ट्वा च तन्मयीवस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ॥ मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेपि निष्पापतमा भवन्ति ॥ ८ ॥ अतो नृलोके ननु नास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ॥ अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥ ९ ॥ के के विशुद्ध्यन्ति वदन्तु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ॥ कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोपि नवीनमार्गः ॥ १० ॥ कुमारा ऊचुः ॥ ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ॥ क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ ११ ॥ सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ॥ ये दांभिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १२ ॥ पंचोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः

भगवान् की कथा सुनने के निमित्त तहाँ गुप्तरूप से आनेलगे ॥ ५ ॥ उससमय अलौकिक भक्तिरस बढ़ाहुआ होनेके कारण गुलाल अवीर आदि के चूर्ण की और पुष्पों की वर्षा होने लगी, जहाँ तहाँ जयजयकार शब्द होनेलगे और वारंवार शंखों की ध्वनि होनेलगीं ॥६ ॥ उस सभा में जो जो बैठेथे उन को अपने शरीर की घन दारा की और अपने आत्मा की भी सुध न रही, उससमय उन की ऐसी दशा देखकर नारदजी ने कहा ॥७ ॥ कि–हे मुनीश्वरो ! आज मैंने सप्ताह का अलौकिक प्रभाव देखा कि–जिस से इस सभा में मूर्ख,शठ,पशुपक्षी आदि सब ही अत्यन्त निष्पाप होगए हैं यह कैसा आश्चर्य है ?॥८॥ इसकारण कलियुग में इस मनुष्यलोक के विषैं चित्त की शुद्धि होने का 'कथा की समान' पवित्र तथा इस पृथ्वीपर अनेकों पापों का नाश करनेवाला इस कथा की समान दूसरा साधन नहीं है ॥ ९ ॥ हे सनत्कुमारो ! तुम दयावानों ने, लोक का कल्याण करने का विचार करके यह एक नवीन ही मार्ग प्रकाशित करा है, सो इस सप्ताहरूप यज्ञ से कौन २ से पुरुष पवित्र होते हैं सो मुझ से कहिये ॥ १० ॥ सनत्कुमारों ने कहा कि–हे नारदजी ! जो मनुष्य सब काल में पाप करनेवाले, सदा दुराचार में तत्पर रहनेवाले, खोटे मार्ग का वर्त्ताव करनेवाले, क्रोध रूप अग्नि के द्वारा भस्महुए होकर भी कुटिलता करनेवाले और कामी हैं वह कलियुग में सप्ताहरूप यज्ञ से पवित्र होते हैं ॥ ११ ॥ जो सत्यभाव से हीन हैं, जो अपने माता पिता की निन्दा करते हैं, जो लोभ से व्याकुल होते हैं, जिन्होंने अपने २ आश्रम के धर्म छोड़दिये हैं और जो पाखण्डी तथा डाह करनेवाले हैं एवं हिंसा करनेवाले हैं वह कलियुग में सप्ताहरूप यज्ञ से पवित्र होते हैं ॥ १२ ॥ जो

क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ॥ ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १३ ॥ कायेन वाचा मनसाऽपि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये ॥ परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १४ ॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥ तुङ्गभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् ॥ यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६ ॥ आत्मदेवः पुरे तस्मिन्सर्ववेदविशारदः ॥ श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥ १७ ॥ भिक्षुको वित्तवान्लोके तत्प्रिया धुंधुली स्मृता ॥ स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुंदरी सुकुलोद्भवा ॥ १८ ॥ लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका ॥ शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥ १९ ॥ एवं निवसतोः प्रेम्णा दंपत्यो रममाणयोः ॥ अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम् ॥ २० ॥ पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां सं-

पञ्चमहापाप करनेवाले, लोकों से छल-कपट करनेवाले, अति क्रूर, पिशाचों की समान निर्दयी, ब्राह्मणों का धन हरकर धनवान् बनेहुए और व्यभिचार कर्म करनेवाले हैं वह कलियुग में सप्ताहरूप यज्ञ से पवित्र होते हैं ॥ १३ ॥ पराये धन से पुष्टहुए, मलिन, दुष्टचित्त और शठ पुरुष, और जो निरन्तर अपने शरीर, वाणी और मन से हठ के साथ पातक करते हैं? वह भी कलियुग में सप्ताहयज्ञ से पवित्र होजाते हैं, फिर औरों का तो कहना ही क्या ? ॥ १४ ॥ इस विषय में, जिस के केवल सुननेमात्र से ही पापों का नाश होता है ऐसा एक अति पुरातन इतिहास है वह तुम से कहता हूँ ॥ १५ ॥ हे नारद! पहिले तुङ्गभद्रा नामक नदी के तटपर एक उत्तम नगर था कि-जिस में ब्राह्मण आदि सकल वर्ण, सत्य और सत्कर्मों में तत्पर होकर अपने अपने धर्म के अनुसार वर्त्ताव करतेथे ॥ १६ ॥ उस नगर में कोई एक आत्मदेव नामवाला ब्राह्मण, चारोंवेदों में निपुण होकर श्रौतस्मार्त्त कर्मों में भी पारङ्गत था इस कारण, मानो यह दूसरा एक और सूर्य है ऐसा प्रतीत होता था ॥ १७ ॥ वह ब्राह्मण भिक्षुक होकरभी सब लोगों की अपेक्षा बड़ा धनवान् था; उस की धुन्धली नामवाली स्त्री, उत्तम कुल में उत्पन्नहुई, सुन्दर और अपने ही वचन की पुष्टि करनेवाली थी ॥ १८ ॥ और वह लोकों की वार्त्ता करने में तत्पर, क्रूर, प्रायः बरबर करती रहनेवाली, घर के उद्योग में बडीशूर, क्रूर और कृपण तथा सदा कलह करती रहनेवाली थी ॥ १९ ॥ इस प्रकार के वह दोनों स्त्री पुरुष बडे प्रेम से रहकर आनन्द पाते थे, उन को सम्पदा, नानाप्रकार के विषयभोग और घर आदि किसी वस्तु की कमी नहीं थी, परन्तु उनसे उन को, 'सन्तान न होने के कारण' सुख नहीं प्राप्त होता था ॥ २० ॥ तदनन्तर उन स्त्री पुरुषों ने अपने को सन्तान की

तानहेतवे ॥ गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥ २१ ॥ धनार्द्धं धर्ममार्गेण ताभ्यां नीतं तथाऽपि च ॥ न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिंतातुरो भृशम् ॥ २२ ॥ एकदा स द्विजो दुःखाद्गृहं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ मध्याह्ने तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥ २३ ॥ पीत्वा जलं विषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः ॥ मुहूर्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदन्तिकम् ॥ नत्वा च पदयोस्तस्य निःश्वसन्संस्थितः पुरः ॥२५॥ यतिरुवाच ॥ कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिंता बलीयसी ॥ वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन सञ्चितं ॥ मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुंजते ॥ २७ ॥ मद्दत्तं नैव गृह्णंति प्रीत्या देवा द्विजातयः ॥ प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणां-

प्राप्ति होने के निमित्त अनेकों धर्म करने का प्रारम्भ करा; उन्हों ने प्रतिदिन दरिद्र पुरुषों को गौ, भूमि, सुवर्ण और वस्त्रों के दानदिये ॥ २१ ॥ इस प्रकार धर्म करते करते उन्हों ने अपने द्रव्य में से आधा धन धर्ममार्ग में उठा दिया तथापि उन के पुत्र नहीं हुआ और न कन्या ही हुई इस कारण वह आत्मदेव ब्राह्मण बड़ी चिन्ता में पड़ा ॥ २२ ॥ एक समय वह ब्राह्मण, सन्तान न होने के कारण, दुःख मान घर को त्यागकर वन में गया और तहां दुपहर के समय पिलास लगनेपर वह एक तालाव पर गया ॥ २३ ॥ और सन्तान के दुःख से अत्यन्त दुर्बल हुआ वह आत्मदेव,उस तालाव में का जल पीकर तहां ही वैठगया तदनन्तर दो घड़ी वीतनेपर तहां कोई एक संन्यासी आया ॥ २४ ॥ उस संन्यासी ने जल पिया, ऐसा देखकर वह ब्राह्मण, उस के समीप गया, और चरणों में गिरकर लम्बी २ श्वासें लेता हुआ (रोता हुआ) उन के आगे ही खड़ा होगया ॥ २५ ॥ तव संन्यासी ने कहा—हे ब्राह्मण ! तू किस कारण से रुदन कर रहाहै ? तुझे ऐसी बड़ीभारी कौनसी चिन्ता लगी हुई है ? वह अपने दुःख का कारण तू मुझ से शीघ्र ही कथन कर ॥ २६ ॥ ब्राह्मण ने कहा—हे ऋषे ! पहिले पापों से सञ्चित हुआ अपना दुःख मैं तुमसे क्या कहूँ ? देखो मेरे पूर्वज (पितर) मेरे दियेहुए जल को गरम करके पीते हैं अर्थात् मेरे पितर मेरे दिये हुए जल को पीते समय ' इस समय यह हमें जल देरहा है परन्तु इस के पीछे कोई भी हमें तिलाञ्जलि देनेवाला नहींहै,ऐसा मनमें विचारकर' शोकग्रस्त होतेहैं उससमय उनकी गरमश्वासों से वह जलगरम होजाता है और उसको वह पीतेहैं तो फिर-देवता, अतिथि आदि तेरे दियेहुए को स्वीकार करके तृप्त होते हैं या नहीं ? यदि ऐसा कहो तो हेऋषे ! देवता और ब्राह्मण भी मेरेदियेहुए जल आदि को स्वीकार नहीं करते हैं इसकारण सन्तानहीन मैं सन्तान के दुःख से प्राणों का त्याग करने के

स्त्यक्तुमिहागतः ॥ २८ ॥ धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ॥ धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं संततिं विना ॥ २९ ॥ पाल्यते या मया धेनुः सा वंध्या सर्वथा भवेत् ॥ यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वंध्यत्वमाश्रयेत् ॥ ३० ॥ यत्फलं मद्गृहायातं शीघ्रं तच्च विशुष्यति ॥ निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वे दुःखपीडितः ॥ तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाऽभूद्गरीयसी ॥ ३२ ॥ तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ॥ सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥ यतिरुवाच ॥ मुंचाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ॥ विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनां ॥ ३४ ॥ शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ॥ सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥ संततेः सगरो दुःखमवापांगः पुरा तथा ॥ रे मुंचाद्य कुटुंबाशां संन्यासे सर्व-

---

निमित्त यहाँ आया हूँ ॥ २८ ॥ अहो ! सन्तानहीन जीवन को धिकार है, सन्तान के न होनेपर घर को भी धिक्कार है, जिस पुरुष के सन्तान नहीं उस के धन को भी धिक्कार है और तथा जिस कुल में सन्तान नहीं उसकुल को भी धिकार है ॥ २९ ॥ भला स्त्री बाँझ है सो तो रहो, परन्तु मैं ने जो एक गौ पाली है वह भी तो काकवन्ध्या (एकवार व्याहीहुई) वा मृत वन्ध्या (जिस के सन्तति होकर मरण को प्राप्त होजाय ऐसी) न होकर सर्वथा ही वन्ध्या है, इस के सिवाय मैंने जो एक वृक्ष लगाया है वह भी बाँझ ही है अर्थात् उस में फल फूल आदि कुछभी नहीं आता है ॥ ३० ॥ दूसरे-यह कि-मेरे घर में जो २ फल आता है वह शीघ्र ही सूखजाता है अहो ! पुत्रहीन होने के कारण मुझ भाग्यहीन के जीवित रहने से ही कौनलाभ है ? ॥ ३१ ॥ हेनारदजी ! ऐसा कहकर वह ब्राह्मण, दुःख से पीड़ित होताहुआ उस संन्यासी के समीप एक ओर को बैठकर रोनेलगा तब उस संन्यासी के चित्त में बड़ी दया आई ॥ ३२ ॥ उस योगी ने, उस के मस्तकपर की अक्षरमाला बाँचकर देखी और सब जानकर तदनन्तर विस्तार के साथ उस ब्राह्मण से कहनेलगा ॥ ३३ ॥ संन्यासी ने कहाकि ! हेब्राह्मण ! देखो कर्म की गति बड़ी बलवान् है, इस से सन्तानरूप अज्ञान को त्याग दे और सब मिथ्या है, ऐसा विचारकर इस संसार की वासनाओं का त्याग कर ॥ ३४ ॥ हेब्राह्मण ! कहता हूँ सुन, आज मैंने तेरी प्रारब्ध में क्या है सो देखा, निःसन्देह तेरे प्रारब्ध में सात जन्म पर्यन्त सन्तान नहीं है ॥ ३५ ॥ सन्तान से किसी को भी सुख नहीं होता है देखो-राजा सगर के साठ सहस्र पुत्र थे, वह इन्द्र के चुरायेहुए अश्वमेध के श्यामकर्ण घोड़े को खोजतेहुए कपिलमुनि के नेत्रों में से निकलीहुई अग्नि करके भस्म होगये इस से वह राजा सगर दुःखित

थां सुखम् ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ॥ नोचेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छितः ॥ ३७ ॥ पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ॥ गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ॥ ३८ ॥ इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ॥ चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखाविमार्जनात् ॥ ३९ ॥ न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ॥ अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ॥ ४० ॥ तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ॥ इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥ ४१ ॥ सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम् ॥ वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ॥ पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥ ४३ ॥ तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे

हुआ, तथा पिहिले अङ्ग राजा भी अपने वेन नामक पुत्र के दुष्टपने से दुःख को प्राप्त हो घर दारा को छोड़कर वन में चलागया इसकारण अरे ! तू अब इस कुटुम्बकी आशा को छोड़ संन्यास में ही सर्वथा सुख है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि–हेयते ! विवेक से मेरा क्या होगा ? 'मेरेप्रारब्ध में पुत्र न हो तथापि' तुम मुझे बलात्कार से पुत्र दो, यदि तुम पुत्र नहीं दोगे तो मैं, तुम्हारे सामने ही शोक से मूर्छित होकर प्राण त्यागदूँगा॥३७॥ मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि–पुत्र आदिकों के सुख से रहित संन्यासरूप आश्रम सूखा ही है और अन्य पुरुषोंका पुत्र पौत्र आदिकों से युक्त गृहस्थाश्रम ही संन्यासकी अपेक्षा सुखदायक है ॥ ३८ ॥ उस ब्राह्मण का पुत्र की प्राप्ति के विषय में ऐसा आग्रह देखकर उन तपस्वीने कहा–हेआत्मदेव ! ब्रह्माजी के लेख को मेटने के कारण राजा चित्रकेतु, 'भाग्य में न होनेपर भी अङ्गिरा ऋषि से बलात्कार करके पुत्र पाकर, केवल कष्ट को ही प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मण ! तेरेयदि पुत्र हुआ तो 'जैसे दैव से हतोद्यम हुआ पुरुष सुख नहीं पाता है तैसे, उस पुत्र से तू भी सुख नहीं पावेगा और तू तो ऐसी हठ कररहा है सो याचना करनेवाले तुझ से मैं अधिक क्या कहूँ ! ॥ ४० ॥ हे नारदजी ! उस ब्राह्मण का अत्यन्त आग्रह देखकर संन्यासी ने उस को एक फल दिया और कहा कि–हे ब्राह्मण ! यह फल अपनी स्त्री के साथ तू भक्षणकर तब उस से पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ परन्तु तेरी स्त्री सत्य बोले, पवित्र होकर रहे, प्राणियों के ऊपर दया करके दान देय और केवल एकसमय भात खाकर रहे; एक वर्षपर्यंत यह नियम पालन करनेपर अतिनिर्मल (उत्तम) पुत्र होगा ॥ ४२ ॥ ऐसा कहकर वह योगी संन्यासी चलागया और आत्मदेव ब्राह्मण अपने घर को लौट आया, घर आनेपर वह अपनी स्त्री के हाथ में वह फल देकर 'और संन्यासी का कथन उस से कहकर' अपने आप कहीं कार्य के निमित्त चलागया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर वह उस की दुष्टा तरुणी स्त्री अपनी सखी

चै रुरोद ह ॥ अहो चिंता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ॥ ४४ ॥ फल-
भक्ष्येण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ॥ स्वल्पभक्ष्यं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं
भवेत् ॥ ४५ ॥ दैवाद्धाटी व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ॥ शुकवन्निवसेद्गर्भ-
स्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ॥ ४६ ॥ तिर्यक् चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं
भवेत् ॥ प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥ ४७ ॥ मंदायां मयि सर्वस्वं
ननांदा संहरेत्तदा ॥ सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥ ला-
लने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्त्तते ॥ वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति
मे मतिः ॥ ४९ ॥ एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ॥ पत्या पृष्टं फलं
भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥५०॥ एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहं स्वेच्छयाऽऽ
गता ॥ तदग्रे कथितं सर्वं चिंतेयं महती हि मे ॥ ५१ ॥ दुर्बला तेन

के समीप आकर रुदन करती २ कहनेलगी कि–अरी ! मुझे तो बड़ी चिन्ता होरही है, मैं इस फल को नहीं खाऊँगी ॥ ४४ ॥ क्योंकि–यह फल भक्षण करने से पेट में गर्भ रहेगा, उस गर्भ से पेट बढ़जायगा, तदनन्तर उस के कारण भोजन थोड़ा होसकेगा, भोजनपान कम होनेपर शक्ति नहीं रहेगी, फिर घर का कामधन्धा कैसे होयगा? ॥ ४५ ॥ यदि कहीं वाटिकामें (फुलवाड़ी आदिमें) जानाहुआ तो फिर लौटकर ग्राममें कैसे आसकूँगी और गर्भवती से दौड़ाभी कैसे जायगा, तथा कहीं शुककी समान (बारहवर्ष) पेटमें गर्भ रहगया तो फिर कोख में से कैसे निकलेगा ? ॥ ४६ ॥ इस को भी रहने दे, परन्तु वह गर्भ यदि तिरछा होगया तो मेरा मरणही होजायगा, बालकके उत्पन्न होने में तो बड़ा कठिन दुःख होता है उसको मैं सुकुमार स्त्री भला कैसे सहसकूँगी ? ॥४७॥ उसको भी किसी प्रकार सहलियाजाय परन्तु मैं इसप्रकार मन्द (निर्बल) होगई तो मेरी ननँद घरमेंका सकल द्रव्य लूटकर लेजायगी और ऐसी दशा होने पर सत्य, पवित्रता और नियमों का पालन भी कठिन दीखे है ॥ ४८ ॥ यदि कहे कि–ऐसा होने के अनन्तर सुख होगा, सो भी नहीं क्योंकि–देख–सन्तान उत्पन्न होने पर स्त्री को उस पुत्र का लालन और पालन करने में बड़ा दुःख होता है इसकारण मुझे तो ऐसा प्रतीत होय है कि–बाँझ रहनेवाली वा विधवा स्त्री सुखी होती है ॥ ४९ ॥ हे नारद ! इसप्रकार उस ब्राह्मण की स्त्री ने कुतर्क निकालकर वह (पति का दियाहुआ) फल भक्षण नहीं करा और तदनन्तर जब उस के पति ने, अरी ! "फल भक्षण कर लिया क्या ? " ऐसा बूझा तो उसने कहदिया कि–"हां फल भक्षण करलिया" ॥ ५० ॥ तदनन्तर एक समय उसकी छोटी बहिन उसके घर अपने आप आयी तब उसने अपनी बहिन को वह सब वृत्तान्त सुनाया और कहने लगी यह मुझे बड़ी चिन्ता होरही है ॥ ५१ ॥ हे बहिन ! उस दुःख से मैं बड़ी दुबली

दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् ॥ साऽब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥ ५२ ॥ तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् ॥ वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३ ॥ षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ॥ तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥ फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु सांप्रतम् ॥ तत्तदा चरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥ ५५ ॥ अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ॥ आनीय जनको बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ ॥ ५६ ॥ तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ॥ लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥ ५७ ॥ ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ॥ गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्द्वारे मंगलं बहु ॥ ५८ ॥ भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ॥ अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९ ॥ मत्स्वसायाः प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्त्तते ॥ तामाकार्य

होगयी हूँ, अब मैं क्या करूं? उससमय उस छोटी बहिन ने कहा कि—मुझे अभी गर्भ रहा है सो मैं बालक होतेही तुझे देदूँगी ॥ ५२ ॥ तू केवल इतना ही कर कि—जबतक मैं बालक लाकर दूँ तबतक गर्भिणी की समान (गर्भ है ऐसा सब को दिखाती हुई) सुख से घर में ही छुपी रह, किसी को भी समझने मतदेय, और यह भी सन्देह मत करे कि—मेरा पति तुझे अपना पुत्र कैसे देदेयगा, क्योंकि-मेरे पति को द्रव्य दे तो वह तुझे अपना बालक ला देयगा ॥ ५३ ॥ और मैं ऐसी युक्ति करूँगी कि-मेरा बालक (गर्भ) छः मास में ही मरण को प्राप्त होगया, ऐसा सब लोग कहनेलगेंगे, यदि कहे कि—तो उसे दूध आदि कौन पिलावेगा सो-मैं ही तेरे घर आकर प्रतिदिन दूध आदि देकर उस बालक का पोषण करूँगी ॥ ५४ ॥ अब वह संन्यासी का दिया हुआ फल, परीक्षा करने के निमित्त अपनी गौ को खाने को दे, ऐसा कहनेपर हे नारद ! तदनन्तर उस धुन्धुली ने, स्त्री स्वभाव (मूर्खपना) होने के कारण बहिन के कहने के अनुसार सकल कार्य करा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर कुछ समय में उस धुन्धुली की छोटी बहिन के बालक उत्पन्न हुआ तब उस के पिताने वह बालक लाकर जिसप्रकार किसी को विदित न हो तैसे धुन्धुली को देदिया ॥ ५६ ॥ पुत्र लाकर देते ही धुन्धुली ने, मेरे सुख से पुत्र उत्पन्न हुआ है, ऐसा अपने पति से कहलभेजा, तब आत्मदेव ब्राह्मण के पुत्र उत्पन्न होने के कारण सब लोगों को बड़ाभारी आनन्द हुआ ॥५७॥ तदनन्तर उन आत्मदेव ने पुत्र के जातकर्म आदि करके ब्राह्मणों को दान दिये,उस के घर गाने बजानेका एकसमान (लगातार)शब्द होनेलगा और बहुतसे माङ्गलिक कार्य होनेलगे ॥५८॥ तदनन्तर वह धुन्धुली अपने पति से बोली कि—हेस्वामिन्! मेरे स्तनोंमें दूध नहीं उतरताहै सो दूध से रहितहुई मैं औरों(गौआदि) के दूधसे इस बालकका पोषण कैसे करूँगी ?॥५९॥अभी मेरीछोटी बहिनके सन्तान होकर

गृहे रक्षं सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ॥ ६० ॥ पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे ॥ पुत्रस्य धुन्धुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥ ६१ ॥ त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम्॥सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभं॥६२॥दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान् स्वयमादधे ॥ मत्वाश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः॥६३॥ भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ॥ धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकं ॥ ६४ ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ॥ गोकर्णं च सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥६५॥ कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ॥ गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धुकारी महाखलः ॥ ६६ ॥ स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधसंयुतः ॥ दुष्परिग्रहकर्त्ता च शवहस्तेन भोजनः ॥ ६७ ॥ चोरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ॥ लालनायार्भकान्धृत्वा सद्यः कूपे निपातयेत् ॥ ६८ ॥ हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानां प्रपीडकः ॥ चाण्डालाभिरतो नित्यं पाशहस्तश्वसंगतः ॥६९॥ तेन वेश्याकुसङ्गेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितं ॥

मरणको प्राप्त होगई है सो मैं उसे बुलाकर घर रक्खूँगी तब तुम्हारा बालक पलसकेगा६०॥ उसके पतिने (आत्मदेव ने) अपने पुत्रकी रक्षा करने के निमित्त, स्त्रीके कथनानुसार कार्य करा,तदनन्तर उसपुत्रकी माता ने(धुन्धुलीने) अपने पुत्रका धुन्धुकारी नाम रक्खा॥६१॥ फिर तीन मास बीतने पर उस गौ ने 'फल भक्षण करने के कारण , पुत्र उत्पन्न करा, वह सब अङ्गों में सुन्दर और सुवर्ण की समान कान्तिमान्, निर्मल और दिव्य रूपथा ॥ ६२ ॥ उस पुत्रको देखकर आत्मदेव ब्राह्मण ने, सन्तुष्ट होकर आपही उसके जातकर्म आदि संस्कार करे,तदनन्तर सबलोग आश्चर्य मानते हुए उसको देखने के निमित्त आनेलगे ॥६३॥ और कहने लगे कि अहो! अबतो आत्मदेव का बड़ा भाग्य उदय हुआ है, देखो-इस गौ के भी देवरूप बालक उत्पन्न हुआ, यह आश्चर्य नहीं तो क्याहै?॥६४ ॥ परन्तु हे नारद! उसमें भाग्यवश गुप्तभेद क्याहै सो किसीने नहींजाना;तदनन्तर उस बालक के गौकी समान कान हैं, ऐसा देखकर उसका नाम 'गोकर्ण' रक्खा॥ ६५ ॥ कुछ काल के अनन्तर वह धुन्धुकारी और गोकर्ण दोनोही पुत्र तरुण हुए,उनमें से गोकर्ण बड़ाज्ञानी और पण्डित हुआ तथा धुन्धुकारी महादुष्ट हुआ ॥ ६६ ॥ वह धुन्धुकारी स्नान, शौच और क्रियाओं से रहित, अभक्ष्य पदार्थभक्षणकरनेवाला,क्रोधी,दुष्ट कुदानलेनेवाला, मुरदेके हाथसेभीभोजनकरनेवाला, चोर, सब पुरुषों से द्वेष करनेवाला, औरों के घरों में अग्नि लगादेनेवाला, हिंसा करनेवाला, शस्त्र धारण करनेवाला, दीन और अन्धों को पीड़ा देनेवाला तथा निरन्तर चाण्डालों के साथ प्रीति करनेवाला होने के कारण हाथ में फाँसलिये कुत्तों को पालता था और वह दूसरों के बालकों को खिलाने के निमित्त लिवाजाकर अँधियारे कुओं में डालदेता था ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ फिर उस धुन्धुकारी ने, वेश्याओं की कुसङ्गति में लगकर

एकदा पितरौ ताड्यं पात्राणि स्वयमाहरत् ॥ ७० ॥ तत्पिता कृपणः प्रोच्चै
र्धनहीनो रुरोद ह ॥ वंध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥ ७१ ॥ क्व
तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ॥ प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा
कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२ ॥ तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ॥ बो-
धयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥ असारः खलु संसारो दुःखरूपी
विमोहकः ॥ सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवान् ज्वलतेऽनिशम् ॥ ७४ ॥ न चे-
न्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ॥ सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकांतजी-
विनः ॥ ७५ ॥ मुंचाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ॥ निपतिष्यति दे-
होऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥ तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः
पिताऽब्रवीत् ॥ किं कर्त्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ७७ ॥ अ-
न्धकूपे स्नेहपाशैर्बद्धः पंगुरहं शठः ॥ कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे

अपने पिता के धन का नाश करदिया, एकदिन वह अपने माता पिता को पीटकर घर में जो कुछ वर्तन भाँड़े थे सो सव लेगया ॥ ७० ॥ इसप्रकार धनहीन होने के कारण अतिदीन हुए उस के पिता आत्मदेव, बड़े ऊँचे स्वर से रुदन करतेहुए कहनेलगे कि–बाँझपना रहना अच्छा परन्तु दुःख देनेवाला कुपुत्र अच्छा नहीं ॥ ७१ ॥ अरे ! अब मैं कहाँ रहूँ ? और कहाँ जाऊँ, भला मेरे दुःख को कौन दूर करेगा ? मेरे ऊपर यह बड़ा-भारी दुःख आकर पड़ा है ! हाय २ !! अब मैं इस दुःख से प्राणों को त्यागे देता हूँ ७२ हेराजन् ! उससमय वह ज्ञानवान् गोकर्ण उन के समीप आकर वैराग्य दिखाताहुआ पिता को समझानेलगा॥७३॥अहो यह संसार सवप्रकार ही असार है, वास्तव में दुःखरूप और मोहकारक है, इसमें पुत्र किसका,और धन किसका, जैसे स्नेहवाला(तेलसे भीजाहुआ वत्ती आदि) पदार्थ जलता है तैसे ही स्नेहवान् प्राणी, रात्रि दिन त्रास पाताहै॥७४॥देखो–इन्द्र को स्वर्ग से थोड़ासाभी सुख नहीं होता है तैसे ही सार्वभौम राज्य से राजा को भी सुख नहीं होता है फिर औरों को कहाँ से होगा ? हाँ एकान्त वास करनेवाले एक विरक्त मुनि को ही सुख होता है ॥ ७५ ॥ इसकारण मोहसे नरक गति होती है इस से इस प्रजारूप अज्ञान को त्यागकर दो और इस शरीर का कभी न कभी तो नाश होता ही है इसकारण सकल सङ्गों को त्यागकर वन में चलेजाओ ॥७६॥ इसप्रकार उस गोकर्ण के वचन को सुनकर वन में जाने की इच्छा करनेवाले उस के पिता आत्मदेव कहने लगे–वेटा गोकर्ण वन को चलेआओ, ऐसा तू कहता है परन्तु मैं तहाँ जाकर क्या करूँ ? सो मुझ से विस्तार के साथ कथन कर ॥ ७७ ॥ हेदयानिधे ! गोकर्ण ! मैं शठ होताहुआ, स्नेहरूप फाँसों से बँधकर लूल की समान कर्म के द्वारा निःसन्देह अन्धकूप में पड़ाहुआ हूँ सो तू

॥ ७८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ॥ पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥ ७९ ॥ धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषान् जहि कामतृष्णां ॥ अन्यस्य दोषगुणचिंतनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥ ८० ॥ एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ॥ युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययासौ श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥ इतिश्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ॥ क्व वित्तं तिष्ठते ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥ इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः ॥ कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥ गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसं-

मेरा उद्धार कर ॥ ७८ ॥ गोकर्ण ने कहाकि–हेपितः ! तुम, अस्थि, मांस और रुधिर के द्वारा बनेहुए इसदेहमेंके 'यह मेराहै वा यह देहही मैं हूँ ,इसप्रकारके अभिमानको त्यागो, स्त्रीपुत्र आदिकों में निरन्तर रहनेवाली यह मेरे हैं,ऐसी,ममताको त्यागो;इसजगत् की स्थिति क्षणभंगुर है ऐसा निरन्तर देखो और वैराग्य में प्रीति करके भक्ति युक्त होवो ॥ ७९ ॥ तुम लौकिक (काम्य) धर्मों का त्याग करके निरन्तर भागवत धर्म को स्वीकार करो, विषयलालसा को त्यागकर साधुपुरुषों की सेवा करो और शीघ्र ही दूसरों के गुण दोषों के विचार करने को त्यागकर निरन्तर भगवान् की सेवा और भगवान् की कथा के रस का पूर्णरूप से सेवन करो तब दुःख से छूटोगे ॥ ८० ॥ हे नारदजी ! इस प्रकार अपने पुत्र के करे हुए उपदेश से घर को त्यागकर, जिस की अवस्था साठ वर्ष की बीतगई है ऐसा वह आत्मदेव ब्राह्मण, बुद्धि को स्थिर करके वन में चलागया और तहां श्रीहरि की सेवा करने में लगकर नियम से प्रतिदिन दशमस्कन्ध का पाठ करके श्रीकृष्णकी सन्निधि को प्राप्त हुआ ॥ ८१ ॥ इति श्रीमद्भागवत माहात्म्य में चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी ने कहा कि–हे शौनक ! पिता का मरण होनेपर धुन्धकारी ने अपनी माता को बहुत मारपीटकर कहा कि–बता धन कहां है ? नहीं तो अभी लात मारूँगा ॥ १ ॥ इस प्रकार उस धुन्धकारी के कहने से अतिभय को प्राप्त होने के कारण और अपना पुत्र होकर उस ने ऐसा दुःख दिया इस कारण उस की माता धुंधुली· रात्रि होनेपर कुए में गिरपड़ी और उस से मरण को प्राप्त होगयी ॥ २ ॥ माता पिता की ऐसी दशा होनेपर यह गोकर्ण, योग धारण करके तीर्थयात्रा करने के निमित्त चलागया; उस को माता पिता

स्थितः ॥ न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बांधवः ॥ ३ ॥ धुन्धुकारी गृहेऽतिष्ठत्पञ्चपण्यवधूवृतः ॥ अत्युग्रकर्मकर्त्ता च तत्पोषणविमूढधीः ॥ ४ ॥ एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ॥ तदर्थं निर्गतो गेहात्कामांधो मृत्युमस्मरन् ॥ ५ ॥ यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ॥ ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च ॥ ६ ॥ बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो विचारयन् ॥ चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥ वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ॥ अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥ ८ ॥ निहत्यैनं गृहीत्वाऽर्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ॥ इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं संबद्ध्य रश्मिभिः ॥९॥ पाशं कण्ठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः । त्वरितं न ममारासौ चिंतायुक्तास्तदाऽभवन् ॥१०॥ तप्तांगारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ॥ अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः॥ ११ ॥

का मरण होने से वा सकल धन का नाश होने से कुछभी दुःख नहीं हुआ, क्योंकि—वह न किसी को शत्रु मानताथा और न किसी को बन्धु मानताथा ॥ ३ ॥ इधर धुन्धकारी पांच वेश्याओं को लेकर घर में ही रहनेलगा और उन का पोषण करने के निमित्त मूर्ख बुद्धि होकर (अज्ञान से) बड़े २ भयङ्कर कार्य करताथा ॥ ४ ॥ एक समय वह दुष्ट वेश्याएँ उस से गहने मांगने लगीं, तब वह काम से अन्धा हुआ धुन्धुकारी 'ऐसा खोटा कर्म करने से मेरा मरण होजायगा, यह मन में न विचार कर' उन के निमित्त गहने लाने को घर से चला ॥ ५ ॥ और धन, वस्त्र तथा गहने आदि जो कुछ जहां मिला तहां से ही चुराकर फिर घर को लौट आया और वह सब उन वेश्याओं को दिया ॥ ६ ॥ वह धुन्धुकारी बहुत से द्रव्य का समूह लायाहै, यह देखकर रात्रि होते ही उन वेश्यास्त्रियों ने विचार करा कि—यह (धुन्धुकारी) प्रतिदिन चोरी करता है, इस से राजा इस को पकड़वाकर मँगवालेगा ॥७॥ और इस के पास जो धन होगा उस को छीनकर वह राजा फिर इस को निःसन्देह मरवाडालेगा,सो जब राजा ही इस को मारेगा तो उस धन की रक्षा करने के निमित्त हमही इस को गुप्तरूप से क्यों न मारडालें ? ॥ ८ ॥ सो इस धुन्धुकारी को मारकर और इस का जो कुछ धन है उस को लेकर कहीं (जहां का पता न लगे ऐसे स्थानपर) ले जायँ तो कार्यठीकहोजायगा, उन वेश्याओं ने ऐसा निश्चय करके जब वह रात्रि में सोया तो उस को डोरियों से दृढ़तापूर्वक बांधकर और गले में फांसी बांधकर ऐसा उपाय करने का प्रारम्भ किया कि—जिस से उसका मरण होजाय, परन्तु वह शीघ्रतासे मरण को प्राप्त नहीं हुआ तब वह बड़ी चिन्ता में पड़ीं ॥ ९॥१०॥ तदनन्तर उन्हों ने लाल २ हुए बहुतसे अंगारे लाकर उसके मुख में डाले, तब वह धुन्धुकारी अग्नि की ज्वाला के अति दुःख से व्याकुल हो मरण को प्राप्त हुआ ॥ ११॥

तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केना-
पीदं तथैव च ॥ १२ ॥ लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियो हि
नः ॥ आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन् वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३ ॥ स्त्रीणां
नैव तु विश्वासो दुष्टानां कारयेद्बुधः ॥ विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः
परिभूयते ॥ १४ ॥ सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ॥ हृदयं क्षुरधा-
राभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ १५ ॥ संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभ-
र्तृकाः ॥ धुन्धुकारी बभूवाथ महान्प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६ ॥ वात्यारूपधरो
नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ॥ शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥१७॥
न लेभे शरणं कुत्र हा दैवेति मुहुर्वदन् ॥ कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लो-
कादबुध्यत ॥ १८ अनाथं तं विदित्वैवं गयाश्राद्धमचीकरत् ॥ यस्मिंस्तीर्थे

तदनन्तर उन वेश्याओं ने, वह उसका शरीर खाड़ी में डालदिया. हे नारद जी ! बहुधा स्त्रियें बड़े २ साहस करलेती हैं; देखो धुन्धुकारी का प्राणान्त करा परन्तु इस का गुप्त भेद किसी को भी विदित नहीं हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर जबलोगों ने, धुन्धुकारी कहां है ? ऐसा बूझा तब उन्हों ने कहदिया कि वह हमारा प्रिय धुन्धुकारी धन के लोभ से कहीं दूरदेश में चला गया है, इस वर्ष में शीघ्र ही आजायगा ॥ १३ ॥ सनत्कुमारों ने कहा कि हे नारद ! विचारवान् पुरुष, स्त्रियों का विश्वास न करे, उन में जो दुष्ट (उन वेश्याओं समान) होयँ उनका तो सर्वथा ही नहीं करे, जो मूर्ख उन के बिश्वास में रहता है वह दुःखों से तिरस्कार पाता है ॥ १४ ॥ अहो ! जिन स्त्रियों का भाषण, अमृत की समान मधुर होने के कारण कामी पुरुषों के रस को बढ़ाने वाला होता है,उनका हृदय छुरी की धार की समान तीखा (कठोर) होता है ऐसी उन स्त्रियों का कौन प्रिय है ? ॥ १५ ॥ तदनन्तर बहुत से पतियों वाली उन कुलटा स्त्रियों ने उस का सकल धन लूट लिया, इधर धुन्धुकारी मरण को प्राप्त होने पर कुकर्मों के कारण बड़ा भारी प्रेत हुआ ॥ १६ ॥ वायु का रूप धारण करने वाला वह प्रेतरूप धुन्धुकारी, कभी शीत कभी गरमी से अति क्लेश पाकर भक्षण करने को कुछ न मिलने के कारण और विलास लगने के कारण 'हाय प्रारब्ध अब क्या करूं !' ऐसा वारंवार विलाप करता हुआ निरन्तर दशों दिशाओं में को दौड़ने लगा परन्तु उस को कहीं भी आश्रय नहीं मिला; तदनन्तर कितने ही दिनों के अनन्तर गोकर्ण ने लोगों से सुना कि धुन्धुकारी मरण को प्राप्त होगया ॥१७॥१८॥ तब गोकर्ण ने, उसको अनाथ जानकर गया में उस की मुक्ति होने के निमित्त गया-

तु संयाति तत्र श्राद्धं प्रवर्त्तयन् ॥ १९ ॥ एवं भ्रमन्स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ॥ रात्रौ गृहांगणे स्वप्तुमागतो लक्षितः परैः ॥ २० ॥ तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबांधवम् ॥ निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥२१॥ सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ॥ सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥ वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ॥ अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥ २३ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमां ॥ किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः॥ अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकारह ॥ २५ ॥ ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदीरयन् ॥ तत्सेकाद्धतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २६ ॥ प्रेत उवाच ॥ अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः ॥ स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७ ॥ कर्मणो नास्ति संख्या मे महाज्ञाने विवर्त्तिनः ॥ लो-

श्राद्ध करा, तदनन्तर वह गोकर्ण जिस २ तीर्थ में जाता था तहां २ श्राद्ध करता था ॥ १९ ॥ इसप्रकार फिरते २ वह गोकर्ण अपने नगर में आकर, अपने घर के आंगन में सोने को आया; उस समय रात्रि होने के कारण, गोकर्ण के आने का वृत्तान्त दूसरे किसी ने भी नहीं जाना ॥ २० ॥ यह मेरा भ्राता गोकर्ण यहां सो रहा है,ऐसा जानकर वह प्रेतरूप धुन्धुकारी आधी रात्रिके समय उसको अपना महाभयङ्कर रूप दिखाने लगा ॥२१॥ वह किसी समय बकरा हो जाता था, किसी समय भैंसा होजाता था, कभी इन्द्र बन जाता था, कभी अग्नि होकर चमकता था और किसी समय पुरुष भी होजाता था ॥ २२ ॥ यह विपरीतभाव देखकर उस गोकर्ण ने, धीरज के साथ, यह कोई दुर्गति को प्राप्त हुआ है ऐसा निश्चय करके, उस से बूझा ॥ २३ ॥ गोकर्ण ने कहा कि अरे ! रात्रि के समय अति भयानक रूप धारण करनेवाला तू कौन है ? तेरी यह दशा कैसे हुई है ? क्या तू प्रेत है ? पिशाच है ? वा राक्षस है यह हम से कथन कर ॥ २४ ॥ सूत जी ने कहा कि–हे शौनक ! इसप्रकार गोकर्ण ने प्रश्न करा तब वह प्रेतरूप धुन्धुकारी ऊँचे स्वरसे वारम्वार रुदन करने लगा, और बोलने में असमर्थ हुए उसने, केवल सैन चलाकर ही दिखाया ॥ २५ ॥ तब गोकर्ण ने, अपनी अंजुलि में जल लेकर और कोई मन्त्र पढ़कर उसके ऊपर छिड़का, उससे उसका सकल पाप दूर होकर प्रेतरूप धुन्धुकारी बोलने लगा ॥ २६ ॥ प्रेतरूप धुन्धुकारी ने कहा–हे गोकर्ण ! मैं धुन्धुकारी नामवाला तेरा भ्राता हूँ, मैंने अपने ही दोषसे अपना ब्राह्मणपना नष्ट करालिया है ॥२७॥ मैं बडे अज्ञान से वर्त्ताव करता था, इसकारण मेरे

कानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥ अतः प्रेतत्वमाप- न्नो दुर्दशां च वहाम्यहं ॥ वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥२९॥ अहो बन्धो कृपासिंधो भ्रातर्मामाशु मोचय ॥ गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वा- क्यमथाब्रवीत् ॥ ३० ॥ गोकर्ण उवाच ॥ त्वदर्थं तु गयापिंडो मया दत्तो वि- धानतः ॥ तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१ ॥ गयाश्राद्धा- न्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ॥ किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरं ॥ ३२ ॥ प्रेत उवाच ॥ गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ॥ उपायम- परं किंचित्तद्विचारय सांप्रतम् ॥ ३३ ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो वि- स्मयं गतः ॥ शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥ ३४ ॥ इदानीं तु निजं स्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ॥ त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५ ॥ धुन्धुकारी निजं स्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ॥ गोकर्णश्चिन्तयामा- स तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥ ३६ ॥ प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या स-

---

खोटे कर्मों की गिनती नहीं होसक्ती, फिर लोकों की हिंसा करनेवाले मुझे, स्त्रियों ने (वे- श्याओं ने) परम दुःख देकर मारडाला ॥ २८ ॥ तिससे मैं पिशाचपने को पहुँचकर दुर्दशा भोगरहा हूँ, फलका मिलना दैव के आधीन होने के कारण मैं वायु का भक्षण कर के रहताहूँ ॥२९॥ हे दयासागर ! हे भैय्या गोकर्ण ! अब मुझे इसदुःखसे छुटा, ऐसा उसका कथन सुनकर गोकर्ण उसके साथ वार्त्तालापकरनेलगा ३० गोकर्णने कहा-अरे! मैंनेतेरे निमित्त (तेरी मुक्ति होने के निमित्त) श्राद्धआदि करके गया में विष्णुपदपर, पिण्ड दिया है, फिर भी तू अवतक मुक्त क्यों नहींहुआ? मुझे यह वडा आश्चर्य है! ॥ ३१ ॥ जब गयाश्राद्धसे भी तेरीमुक्ति नहीं हुई तो इस से दूसरा इस विषय में उपाय ही नहीं रहा; अरे! पिशाच ! अब मैं क्या करूँ ! सो तू विस्तारसे कथनकर ॥ ३२ ॥ प्रेतने कहाकि--हेगोकर्ण ! यदि तू ऐसे सैंकडों गयाश्राद्ध करे तब भी मेरी मुक्ति नहीं होसक्ती, इस से अब कोई दूसरा उपाय होयतो उसका विचार कर देख ॥ ३३ ॥ ऐसा उसका कथन सुनकर गोकर्ण ने वडा आश्चर्य माना और कह ने लगा कि--अरे ! ऐसे सैंकडों श्राद्धों से भी जवतेरी मुक्ति नहीं होगी तब तो इससे तेरा छू- टना मुझे वडाही कठिन प्रतीत होता है ॥ ३४ ॥ हेप्रेत ! अब तू अपने स्थानपर नि- र्भय होकर स्वस्थ रह, मैं विचार करके तेरी मुक्ति होनेका कोई उपाय करता हूँ, तू भय न कर ॥ ३५ ॥ ऐसा कहते ही गोकर्ण की आज्ञा से वह प्रेतरूपी धुन्धुकारी तहाँ से अपने स्थान को चलागया, तदनन्तर गोकर्ण भी उस रात्रि में विचार करनेलगा परन्तु उस विषय में उस को कोई उपाय सूझा नहीं ॥ ३६ ॥ दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही गोकर्ण आया है, यह समाचार जानकर सब लोग उस से मिलने के निमित्त, वडी प्रीति से

मागताः ॥ तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ॥ ३७ ॥ विद्वांसो
योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ॥ तन्मुक्तिं नैव पश्यन्ति पश्यन्तः शास्त्रसंचयान्
॥३८॥ ततः सर्वैः सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परं ॥ गोकर्णः स्तंभनं चक्रे सूर्यवेगस्य
वै तदा ॥३९॥ तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकं ॥४०॥ तच्छ्रुत्वा दूरतः
सूर्यः स्फुटमित्यभ्यभाषत ॥ श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु ॥ ४१ ॥
इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतं ॥ सर्वेऽब्रुवन्प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् ४२
गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥ तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना
ययुः ॥ ४३ ॥ पंग्वन्धवृद्धमन्दाश्च तेपि पापक्षयाय वै ॥ समाजस्तु महान्
जातो देवविस्मयकारकः ॥ ४४ ॥ यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथां
स प्रेतोऽपि तदायातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ॥४५॥ सप्तग्रन्थियुतं तत्राप-
श्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ ॥ ४६ ॥

आये तब गोकर्ण ने रात्रि में जो दशा हुई थी वह उनसब लोगों से कही ॥३७॥ उन आये
हुए लोगों में, सकल शास्त्रों को देखनेवाले भी कितने ही विद्वान्, योगी, ब्रह्मके विषय में वाद
विवाद करनेवाले और ज्ञानी आदि पुरुष भी थे परन्तु उन्होंने भी, उस की मुक्ति कैसे होगी
सो नहीं जाना॥३८॥तदनन्तर सर्वोंने मिलकर उस प्रेत की मुक्ति के विषय में 'सूर्य कहैं
वही साधन उत्तमहै;ऐसा निश्चय करा' तब वह गोकर्ण उसी समय सूर्य की गतिके वेग
को रोककर कहनेलगा कि—हेजगत् के साक्षीरूप सूर्य ! तुम्हें नमस्कार है, तुम 'मेरे भ्राताके
निमित्त' जो मुक्ति का हेतु हो ऐसा साधन बताओ ॥ ३९॥४० ॥ यह सुनकर सूर्य
दूर सेही स्पष्टरूप से (सुनने में आवे इस प्रकार) कहनेलगे कि—हे गोकर्ण ! श्रीमद्भा-
गवत से मुक्ति होती है, इस कारण तू श्रीमद्भागवत का सातदिन में पाठ (सप्ताह) कर
॥४१॥ इसप्रकार सूर्य का धर्मरूप वचन सर्वों ने सुना और वह सब कहनेलगे कि—अहो !
सूर्य का कहाहुआ साधन यत्न के साथ करना चाहिये; क्योंकि—यह करना बड़ा सुलभ
है ॥ ४२ ॥ तदनन्तर वह गोकर्ण निश्चय करके श्रीमद्भागवत के बांचने में प्रवृत्त
हुआ, उस समय वह सुनने के निमित्त उस देश के हरएक गांव में से बहुत से पुरुष
तहां आये ॥ ४३ ॥ और लँगडे, अँधे, बूढे तथा मूढ आदि भी अपने २ पाप का
नाश होने के निमित्त तहां आये, हे नारदजी ! तहाँ जो बड़ाभारी समाज जमा था
वह देवताओं को भी आश्चर्य में डालनेवाला था ॥ ४४ ॥ फिर जिस समय वह
गोकर्ण आसनपर बैठकर श्रीमद्भागवत की कथा कहनेलगा, उस समय वह प्रेतरूप
धुन्धुकारी, भी तहां आकर बैठने के निमित्त जिधर तिधर स्थान देखने लगा ॥४५॥ इतने
ही में तहां उसने, सात गांठोंवाला एक ऊँचा सा बांस देखा तब वह वायुरूप धुन्धुकारी,
उस बांस की जड में एक छिद्रथा उसमें घुसकर सुनने के निमित्त बैठा ॥४६॥ तहां

वातरूपी स्थितिं कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ॥ वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं प-
रिकल्प्य सः ॥ ४७ ॥ प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥ दिनान्ते
रक्षितां गाथा तदा चित्रं बभूवह॥४८॥वंशैकग्रन्थिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सतां॥
द्वितीयेह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् ॥ ४९ ॥ तृतीयेह्नि तथा सायं तृ-
तीयग्रन्थिभेदनम् ॥ एवं सप्तदिनैर्वंशसप्तग्रन्थिविभेदनम् ॥ ५० ॥ कृत्वापि
द्वादशस्कन्धश्रवणात्प्रेततां जहौ ॥ दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः॥५१॥
पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥ ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्ण-
मिति चाब्रवीत् ॥ ५२ ॥ त्वयाहं मोचितो बन्धो कृपया प्रेतकश्मलात् ॥
धन्या भागवती वार्त्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ॥ ५३ ॥ सप्ताहोऽपि तथा धन्यः
कृष्णलोकफलप्रदः ॥ कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ॥ ५४ ॥ अ-
स्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ॥ आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनः-

---

जाकर बैठने का कारण यह था कि—वह वायुरूप होने के कारण एक स्थानपर नहीं बैठ सक्ताथा इस कारण बांस में घुसकर बैठा, तदनन्तर गोकर्ण ने विष्णुभक्त ब्राह्मण को मुख्य श्रोता बनाकर श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध से व्याख्यान करने का प्रारम्भ किया,हेनारद ! सन्ध्या का समय होते ही जब कथा बन्द हुई तो वहां एक बड़े आश्चर्य की घटना हुई ॥४७॥४८॥सब लोगों के देखतेहुए उस बांसकी सात गांठों में से एक गांठ बड़ा कड़कड़ाहट का शब्द होकर टूटी तथा दूसरे दिन संध्याकालके समय दूसरी गांठ टूटी ॥ ४९ ॥ तैसे ही तीसरे दिन सन्ध्या के समय तीसरी गांठ टूटी इस प्रकार सात दिन में उस बांस की सातों गांठे टूटगईं ॥ ५० ॥ हे नारदजी ! श्रीमद्भागवत के बारहों स्कन्ध सुनने से वह प्रेतरूप धुन्धुकारी, प्रेतयोनि को त्यागकर सुन्दररूप धारण करनेवाला और गले में डालीहुई तुलसी की मालाओं से शोभायमान हुआ ।५१। उस ने उस समय पीताम्बर पहिनकर मुकुट धारण करा, वह मेघ की समान श्यामवर्ण और कुण्डल पहिनेहुए था, ऐसा वह धुन्धुकारी अपने गोकर्ण भ्राता को नमस्कार करके कहने लगा—॥ ५२ ॥ हे भैय्या गोकर्ण ! तुम ने बड़ी कृपा करके इस प्रेतयोनिरूप दुःख से मुझे छुटाया है, अरे ! धन्य है वह भागवत की कथा, कि—जिसको सुननेपर प्रेतरूप दुःख का नाश होता है ॥ ५३ ॥ तथा इस श्रीमद्भागवत का सप्ताह भी, श्रीकृष्णलोक में का (वैकुण्ठलोक में का) फल (मोक्ष) देनेवाला होने के कारण धन्य है; क्योंकि—उस सप्ताह को सुननेपर सकल पाप थर थर कांपने लगते हैं ॥ ५४ ॥ यह (श्रीमद्भागवत की) कथा और इस कथा का सुनना भी जैसे अग्नि—गीला, सूखा, छोटा और बड़ा कैसा ही होय वह काष्ठ आदि को जलाकर भस्म करदेता है तैसे ही, हमारे वाणी, मन और

कर्मभिः कृतं ॥ श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥५५॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि ॥ अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥५६॥ किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥ अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥५७॥ अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ॥ चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥५८॥ जराशोकविपाकार्त्तं रोगमन्दिरमातुरम् ॥ ५९ ॥ दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभंगुरम् ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञांतं शरीरमिति वर्णितम् ॥ ६० ॥ अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥ यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ॥ ६१ ॥ तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ॥ ६२ ॥ अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥ बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु ॥

कर्म के द्वारा करेहुए गीले, सूखे, छोटे, बडे सकल पापों का तत्काल नाश करते हैं।५५। हे गोकर्ण ! नारद आदि तत्त्वज्ञानी ऋषियों ने देवताओं की सभा में ऐसा कहा है कि– जिन्हों ने भरतखण्ड में मनुष्य जन्म पाकर कथा नहीं सुनी उन का जन्म निष्फल है ॥ ५६ ॥ इस से ममता के साथ रक्षा करने के कारण पुष्ट और बलवान् हुए इस नाशवान् शरीर से शुकशास्त्ररूप श्रीमद्भागवत की कथा के सिवाय दूसरा कौन कार्य करना है ? ॥ ५७ ॥ अब इस शरीर के विषय में विचार करनेपर यह कैसा है, देखो–इस शरीर में अस्थियों का खम्भ है, वह भीतरे से नाड़ियों करके बँधा हुआ है,इसके ऊपर मांस और रुधिर का लेप करके बाहर चमड़े से लपेट दिया है, यह दुर्गन्ध से भरा हुआ और मूत्र विष्ठा का पात्र है ॥ ५८ ॥ तैसे ही यह जरा, शोक और उन के फलों से युक्त, रोगों का घर दुःखरूप, अन्न आदि से पूर्ण (तृप्त) करने को कठिन, दुःख से भी जिस का धारण करना कठिन है ऐसा, दुष्ट, दोषयुक्त और क्षणभर में नष्ट होनेवाला है तथा अन्त में प्राणहीन होनेपर कीड़े, काक कूकरों के भक्षण करलेनेपर विष्ठा वा जला देनेपर भस्म इन दशाओं को प्राप्त होता है, ऐसा वर्णन करा है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ऐसे इस सदा न रहनेवाले शरीर के द्वारा यदि अटल फल प्राप्त होता है तो उस के विषय में यह प्राणी, स्थिर कर्मों का साधन क्यों नहीं करलेता है ? देखो–जो अन्न प्रातःकाल के समय पकाया जाता है वह सायङ्काल को विगड जाता है ॥ ६१ ॥ फिर उस ही अन्न के रस से पुष्ट हुए शरीर में नित्यता कहां से आवेगी ?. ऐसे शरीर के द्वारा सप्ताह सुनने से ही इस लोक में श्रीहरि अपने सन्मुख आकर प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ इस कारण दोषों को दूर करने के निमित्त यही एक साधन है दूसरा साधन नहीं है; हे गोकर्ण ! जो पुरुष, कथा नहीं सुनते हैं वह ' जैसे पानी में बबूले उत्पन्न होकर तत्काल ही नष्ट होजाते हैं वा जैसे प्रा-

जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥ ६३ ॥ जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र ग्र-
न्थिविभेदनम् ॥ चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६४ ॥ भि-
द्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे
कृते ॥ ६५ ॥ संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि ॥ कथातीर्थे स्थिते चित्ते मु-
क्तिरेव बुधैः स्मृता ॥ ६६ ॥ एवं ब्रुवति वै तस्मिन् विमानमगमत्तदा ॥ वै-
कुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ॥ ६७ ॥ सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं
धुन्धुलीसुतः ॥ विमाने वैष्णवान्वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६८ ॥ गो-
कर्ण उवाच ॥ अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः ॥ आनीतानि वि-
मानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ६९ ॥ श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ॥
फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ॥ ७० ॥ हरिदासा ऊचुः ॥ श्रवणस्य
विभेदेन फलभेदोपि संस्थितः ॥ श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ॥

णियों में मच्छर आदि अथवा घावपर के कीड़े आदि प्राणी उत्पन्न होकर नष्ट होजाते हैं तैसे ही केवल मरण पाने के निमित्त ही, जन्म लेते हैं इस में कोई सन्देह नहीं है ॥६३॥ जब कथा के सुन ने से सूखेहुए जड़ बाँस की गाँठें फटगईं तो उस कथा के सुनने से आर्द्रहुए' चित्तकी गाँठ दूर होगी इस में कौन आश्चर्य है ? ॥ ६४ ॥ हेगोकर्ण ! सप्ताह को सुननेपर मनुष्य के हृदय की गाँठ खुलजाती है और उस के सकल शुभ अशुभ कर्म भी नष्ट होजाते हैं ॥ ६५ ॥ और कथारूप तीर्थ के चित्त में स्थित होनेपर वही, संसार रूप कीच के लेपको धोडालने में चतुर मुक्ति होती है ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं ६६ हेनारदजी ! इसप्रकार उस प्रेतयोनि से (मुक्तहुए) धुन्धुकारीके कहनेपर, तहाँ जिस के साथ में वैकुण्ठवासी जन हैं ऐसा एक देदीप्यमान तेजःपुञ्जरूप विमान आया ॥ ६७ ॥ तब सकल लोगों के देखतेहुए वह धुन्धुली का पुत्र धुन्धुकारी उस विमान में जाकर बैठगया, तदनन्तर विमान में के विष्णुभक्तों को देखकर गोकर्ण ने कहा ॥ ६८ ॥ गोकर्ण बोला कि–अहो ! यहाँ निर्मल अन्तःकरणवाले बहुत से मेरे श्रोता हैं, उन के निमित्त तुम एकसाथ उतने ही विमान क्यों नहीं लाये ? ॥ ६९ ॥ हेश्रीहरि के प्यारे वैष्णवों ! यहाँ विद्यमान सबों का 'श्रीमद्भागवत के सप्ताह का' सुनना एक समान ही प्रतीत होता है फिर 'उन को उस श्रवण का' फल भिन्न कैसे हुआ ? अर्थात् धुन्धुकारी के निमित्त ही विमान क्यों लाये और शेष श्रोताओं के निमित्त क्यों नहीं लाये सो हम से कहो॥७०॥ इसप्रकार गोकर्ण के कथन को सुनकर हरिदास कहनेलगेकि–हेगोकर्ण ! यह ठीक है कि सब ने सुना है परन्तु 'धुन्धुकारी ने जैसा उसका मनन करा वैसा और सबोंने नहीं करा,

॥ ७१ ॥ फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥ सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् ॥ ७२ ॥ मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥ ७३ ॥ संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥ अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ॥ ७४ ॥ हतमश्रोत्रिये दानमनाचारं हतं कुलम् ॥ विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्वभावना ॥ ७५ ॥ मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ॥ ७६ ॥ पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ गोकर्ण तव गोविन्दो गोलोकं दास्यति स्वयम् ॥ ७७ ॥ एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्त्तनाः ॥ श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः ॥ ७८ ॥ सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥ कथासमाप्तौ यज्जातं

ऐसा श्रवण में भेद पड़ने के कारण फलमें भी भेदहुआहै ॥ ७१ ॥ हेमान देनेवाले गोकर्ण ! देखो प्रेतरूप धुन्धुकारी ने, सात रात्रि पर्यन्त उपोषण (निराहारव्रत) करके श्रवण करा और उस ने अत्यन्त एकाग्रहुए मन में सुनेहुए का मननभी करा तथा इन्हों ने भजन करनेपरभी सुनेहुए का मनन आदि कुछ नहीं करा इसकारण इनको फल मिलने में में भेदहुआ,और ऐसाभी है कि–ज्ञान प्राप्त होकर यदि दृढ़ न होजाय तो नष्ट होजाता है तैसे ही जो कुछ सुना हो वह सब प्रमाद से (मनन) न करने से नष्ट होजाता है ॥७२॥ ॥ ७३ ॥ जिस के विषय में सन्देह हो वह मन्त्र नष्ट होता है अर्थात् उस का फल प्राप्त नहीं होता है, चित्त को स्वस्थ न करके जप किया जाय तो वह व्यर्थ होता है, जहाँ विष्णु भक्त नहीं वह देश नाश को प्राप्त होता है, अपात्रक (जिस में योग्य ब्राह्मण नहीं वह) श्राद्ध करना भी व्यर्थ होता है ॥७४॥ तैसेही वेद न पढ़ेहुए ब्राह्मण को दिया हुआ दान, करके न कराहुआसा होजाता है और जिस में दुराचार हो वह कुल नष्ट होजाता है,इससे मनुष्य ऐसा करेकि–अपने गुरु जो कुछ कहें उसके ऊपर विश्वास रखना,अपनेआप'मैंदीनहूँ ऐसी भावना करना अर्थात् नम्रता रखना॥७५॥मनमें काम क्रोध आदि दोष होंतो उन को जीतना और भगवान् की कथा में निश्चलबुद्धि (एकाग्रमन) रखना इत्यादि नियम होंतो उस श्रवण का फल प्राप्त होताहै॥७६॥इससे फिर इस रीतिसे श्रीमद्भागवत को सुने पर इन सबों का निःसन्देह वैकुण्ठलोकमें वासहोगा,हेगोकर्ण!तुझेतो गोविन्द भगवान् स्वयं गोलोक देंगे७७ हे नारद जी! इसप्रकार कहकर हरिकीर्त्तन करने वाले वह सब विष्णु भगवान् के दास वैकुण्ठलोक को चले गये, तदनन्तर उस गोकर्ण ने, श्रावण के महीने में फिर पहिले की समान सात रात्रि वाली कथा (सप्ताह) कही; और उन सबों ने फिर उसको सुना तथा मनन भी करा तब कथा की समाप्ति होने के समय जो वृत्तान्त हुआ

श्रूयतां तच्च नारद ॥७९॥ विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ॥ जयशब्दा नमःशब्दास्तत्रासन्बहवस्तदा ॥ ८० ॥ पांचजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ॥ गोकर्णं तु समालिंग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ ८१ ॥ श्रोतॄनन्यान् घन-श्यामान् पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥ तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचांडालजातयः ॥ विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥ ८३ ॥ प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति यो-गिनः॥ गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम्॥ कथाश्रवणतःप्रीतोनिर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ ८४ ॥ अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ॥ तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥८५॥ यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धा-नां न गतिः कदा ॥ तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥८६॥ ब्रू-मोऽद्य ते किं फलवृंदमुज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु सञ्चितम्॥ कर्णेन गोकर्णकथा-

उसको कहता हूँ हे नारद ! सुनो ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ कथा समाप्त होते ही भगवान् श्री हरि अपने भक्तों के साथ बहुत से विमानोंको साथ लेकर प्रकट हुए उस समय तहां अनेकों जयजयकार शब्द और नमोनमः शब्द होने लगे ॥ ८० ॥ तदनन्तर श्रीहरि ने अपने आप बड़े आनन्द से तहां अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया और गोकर्ण को हृदय से लगाकर अपनी समान (शङ्ख चक्रादि को धारण करने वाला) बनाया ॥ ८१ ॥ तथा श्री हरि ने और श्रोताओं को भी, घनश्याम पीताम्बर पहिने, मुकुट धारण करे और कानों में कुण्डल धारे हुए ऐसे रूप वाले एक क्षण में बना दिया ॥ ८२ ॥ और उस गांव में जो २ चाण्डाल से लेकर सकल जातियों के पुरुष रहते थे उन सबों को भी गोकर्ण की कृपा होने के कारण विमान में बै-ठाया ॥ ८३ ॥ और उन सबोंको जहां योगीजन जाते हैं उस श्री हरि के लोक में (वैकुण्ठलोकमें) पठादिया और कथा सुनकर सन्तुष्ट हुए वह भक्तवत्सल भगवान् गोपाल उस गोकर्ण को अपने साथ लेकर गोपों के प्रिय ऐसे अपने गोलोक को चले गये, हे नारदजी ! जैसे पहिले श्री रामचन्द्र जी सकल अयोध्यावासियों को अपने लोक में ले गये थे तैसे ही श्रीकृष्ण जी भी उस गांव में के सकल लोगों को, जो योगियों को भी दुर्लभ है ऐसे गोलोक को लेगये ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ अरे ! जहां सूर्य की चन्द्रमा की वा सिद्धों की भी पहुँच नहीं है उस गोलोक को वह (गाँव के रहने वाले सब) लोग, श्रीमद्भागवत को सुनकर गये, इस में कौन आश्चर्य है !! ॥८६॥ हे नारद ! कथाओं में इकट्ठा करा हुआ और सप्ताहरूप यज्ञ से प्रकाशित हुआ 'श्री मद्भागवत के सप्ताह के' फलों का समूह आज तुम से और क्या कहूँ ? देखो जिन्हों

क्षरं यैः पीतं च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७ ॥ वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ॥ योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति याम् ॥ ८८ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं शांडिल्योऽपि मुनीश्वरः ॥ पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥ ८९ ॥ आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ॥ श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥ ९० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये गोकर्णवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ७ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते सम्प्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिं ॥ सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥ १ ॥ दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः ॥ विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ॥ एते मासाः कथारम्भे श्रोतॄणां मोक्षसूचकाः ॥ ३ ॥ मासानां विग्रहे यानि तानि त्या-

---

ने गोकर्ण की कही हुई कथा में का एक अक्षर अपने कानों से सुना था वह फिर माता के गर्भ में नहीं गए ॥ ८७ ॥ और जो वायु, जल तथा पत्ते खाकर, देह सूख जाने के कारण चिरकाल तक घोर तप करने से अथवा योगसाधन करने से भी जिस गति को नहीं पाते हैं वह सप्ताह की कथा सुनने से उस गति को (मोक्ष को) प्राप्त हो जाते हैं ॥ ८८ ॥ हे नारद ! मुनियों में श्रेष्ठ शाण्डिल्य ऋषि भी चित्रकूट पर्वत के ऊपर बैठकर ब्रह्मानन्द में निमग्न होते हुए इस (गोकर्ण के) पुण्यकारी इतिहास को पढ़ते थे, फिर इस के पढ़ने के विषय में औरों का तो कहना ही क्या ? ॥ ८९ ॥ हे नारद जी ! इस परम पवित्र आख्यान का एकबार भी श्रवण करने पर वह सकल पापों का नाश करता हैं, श्राद्ध के समय पढ़ने पर पितरों की तृप्ति करता है और प्रतिदिन नियम के साथ पढ़ने से फिर जन्म नहीं होता है ॥ ९० ॥ इति श्रीमद्भागवत माहात्म्य में पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ सनत्कुमारों ने कहा कि—हे नारदजी ! अब तुम से सप्ताह के सुनने की विधि कहता हूँ, यह 'सप्ताह की' विधि, प्रायः लोकों की सहायता और धन से सिद्ध होती है, ऐसा कहा है ॥ १ ॥ इसकारण ज्योतिषी को बुलवाकर और उस से मुहूर्त बूझकर जैसे विवाह में धन लगाकर उत्सव करते हैं तैसे ही इस सप्ताह में भी धन लगाकर उत्सव करे ॥ २ ॥ सप्ताह की कथा का प्रारम्भ करने में आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक और मार्गशीर्ष (अगहन) यह छः महीने सुननेवाले पुरुषों को मोक्ष के सूचक हैं ॥ ३ ॥ इन महीनों में भी सप्ताह का प्रारम्भ करने के दिन, त्यागनेयोग्य भद्रा, दग्ध, व्यतीपात, वैधृति और गण्डान्त आदि काल के दोषों को त्यागदेय तथा और जो उद्योगी पुरुष हों

ईयानि सर्वथा ॥ सहायाश्चेतरे चात्र कर्त्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ ४ ॥
देशे देशे तथा सेयं वार्त्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ॥ भविष्यति कथा चात्र आ-
गंतव्यं कुटुंबिभिः ॥ ५ ॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्त्तनाः ॥ स्त्रि-
यः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥ ६ ॥ देशे देशे विरक्ता ये
वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ॥ तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥ ७ ॥
सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ॥ अपूर्वरसरूपैव कथा चात्र भवि-
ष्यति ॥ ८ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलंपटाः ॥ भवंतश्च तथा शीघ्रमाया-
त प्रेमतत्पराः ॥ ९ ॥ नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथापि तु ॥ सर्वथा-
गमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥ १० ॥ एवमाकारणं तेषां कर्त्तव्यं विनयेन
च ॥ आगंतुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥ तीर्थे वापि वने
वापि गृहे वा श्रवणं मतम् ॥ विशाला वसुधा यत्र कर्त्तव्यं तत्कथास्थलं ॥१२॥
शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनं ॥ गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ॥
॥ १३ ॥ अर्वाक् पंचाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् ॥ कर्त्तव्यो मंडपः प्रोच्चैः

उन को इस सप्ताह के विषय में सहायक बनालेय ॥ ४ ॥ तथा यह सप्ताह का समाचार
देश में जहाँ तहाँ पत्र वा दूत आदि भेजकर कहलाभेजे कि—हे पुरुषों ! यहाँ श्रीमद्भागवत
के सप्ताह की कथा होगी सो आप को कुटुम्बियों के साथ आना चाहियें ॥ ५ ॥ वह बु-
लावा ऐसा भेजे कि जिन से श्रीहरि की कथा दूर है अर्थात् सुनने को नहीं मिलती है
और जिन से श्रीहरि का कीर्त्तन भी दूर है ऐसे स्त्री और शूद्र भी जिस को समझसकें
॥ ६ ॥ तथा देश २ में जो भगवान् का कीर्त्तिन करने में उत्सुक और वैराग्यवान् विष्णु
भक्त हों उन को भी पत्र भेजे, उस में ऐसा वृत्तान्त लिखे कि—॥ ७ ॥ हे भक्तजनों !
यहां सात रात्रि (दिन) पर्यन्त अति दुर्लभ सन्तजनों का बडा भारी समाज इकट्ठा
होगा और कहीं भी कभी नहीं हुई ऐसी रसभरी श्रीमद्भागवत की कथा होगी ॥ ८ ॥
तथा हे प्रेमी रसिकजनों ! तुम श्रीमद्भागवत रूप अमृत का पान करने के निमित्त शीघ्र
ही चले आओ ॥ ९ ॥ और यदि कदाचित् तुम्हें सातदिन रहने का अवकाश न हो,
तथापि यहां अति दुर्लभ उत्सव है इस कारण एक दिन को तो अवश्य ही पधारो ॥१०॥
इसप्रकार अति नम्रता के साथ उन को बुलावा भेजे और जो जो आनेवाले हों उन के
निमित्त स्थान ठीक कर रक्खे ॥ ११ ॥ तीर्थपर, तीर्थ समीप न होय तो वन में, वा
घरमें ही श्रवण करे ऐसा कहाहै, यद्यपि ऐसाहै तथापि जहां विस्तारके साथ स्थान हो तहां
उस कथा का स्थान नियत करे ॥ १२ ॥ घर में कथा करानी हो तो घर में जो सामग्री
हो वह सब उठाकर घर में एक ओर को रखदेय और तहां झाड़कर निर्मल करे, बुहर-
वावे, लिपवावे और उस भूमि को रङ्ग आदि से शोभायमान करे ॥ १३ ॥ घर के बाहर

कदलीखण्डमंडितः ॥ १४ ॥ फलपुष्पदलैर्विष्वक् वितानेन विराजितः ॥ चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसंपद्विराजितः ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरं ॥ तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च॥१६॥ पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम्॥वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् १७॥ उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा प्राङ्मुखश्चे-द्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥ अथवा पूर्वदिक् ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः ॥ श्रोतॄणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ॥ १९ । विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् ॥ दृष्टांतकुशलो धीरो वक्ता कार्योतिनिस्पृहः ॥ २० ॥ अनेकधर्मविभ्रांताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः ॥ शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पंडिताः ॥ २१ ॥ वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ॥ पंडितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ २२ ॥ वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनाद‍र्वाग् व्रता-

---

करानी हो तो सप्ताह का प्रारम्भ करनेसे पांच दिन पहिले से बड़े यत्न के साथ विछौने इकट्ठे करके केले के खम्भों से शोभायमान और ऊँचा मण्डप बनावे ॥१४॥ और उस मण्डप को छत और फूलों की झालर आदि लगाकर शोभित करे, फिर उस के चारों ओर के द्वारों पर बहुतसी सम्पत्ति से विराजित ध्वजा बांधे ॥ १५ ॥ उस मण्डप में ऊपर के भाग (वेदी) में विस्तार के साथ सात लोक (स्थान) कल्पना करके उन के ऊपर सात विरक्त ब्राह्मणों को बुलाकर बैठाले ॥ १६ ॥ परन्तु पहिले उन के यथायोग्य क्रम से आसन विछावे, और उस समय कथा कहनेवाले को भी एक सुन्दर आसन विछादेय ॥ १७ ॥ यदि कथा कहनेवाला उत्तर को मुख करके बैठे तो श्रोता पूर्व को मुख करके बैठे और वक्ता यदि पूर्व की ओर को मुख करे बैठा होय तो श्रोता उत्तर की ओर को मुख करके बैठे ॥ १८ ॥ अथवा पूज्य और पूजक के मध्य में पूर्व दिशा आनी चाहिये ऐसा जानकर जिस प्रकार वह मध्य में आवे तैसे बैठे, क्योंकि- देश, काल आदि के जाननेवाले महात्माओं ने,श्रवण करनेवाले पुरुषों के नियम में ऐसा ही कहा है ॥ १९ ॥ कथा का कहनेवाला विरक्त, विष्णुभक्त, वेद शास्त्रों का शोधन करनेवाला, दृष्टान्त देने में चतुर, धैर्यवान् तथा अति निस्पृह होय ॥२०॥ परन्तु जो पुरुष, अनेकों प्रकार के धर्मों में मोहित हों, स्त्री लम्पटहों वा नास्तिक मत के हों, वह बडे भारी पण्डित हों तब भी उन को शुकशास्त्र की (श्रीमद्भागवत की) कथा कहने में त्याग देय अर्थात् उन से श्रीमद्भागवत की कथा नहीं सुने ॥ २१ ॥ इतना होनेपर वक्ता के एक ओर को समीप में ही उस की सहायता के निमित्त वैसाही दूसरा एक और पण्डित बैठावे, वह स्वयं पण्डित संशयों को दूर करनेवाला तथा श्रोता-जन न समझें उस को समझाने में तत्परहो ॥ २२ ॥ कथा कहनेवाला व्रत धारण

क्षये ॥ अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥ २३ ॥ नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं संप्रयत्नतः ॥ कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ ॥ २४ ॥ पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ मण्डलं च प्रकर्त्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ २५ ॥ कृष्णमुद्दिश्य मंत्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् । प्रदक्षिणानमस्कारान्पूजांते स्तुतिमाचरेत् ॥ २६ ॥ संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ॥ कर्ममोहगृहीतांगं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ २७ ॥ श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ॥ कर्त्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ॥ ॥ २८ ॥ ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥ स्तुतिःप्रसन्नचित्तेन कर्त्तव्या केवलं तदा ॥ २९ ॥ श्रीमद्भागवताख्योयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ॥ स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥ ३० ॥ मनोरथो मदीयोयं सफलः सर्वथा त्वया ॥ निर्विघ्नेनैव कर्त्तव्यो दासोहं तव केशव ॥ ३१ ॥ एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् ॥ संभूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते

करने के निमित्त एक दिन पहिले क्षौर करावे और दूसरे दिन अरुणोदय के समय शौच से निवटकर स्नान करे ॥ २३ ॥ और सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ आदि नित्य कर्म संक्षेप से ही करे, तदनन्तर कथा में होनेवाले विघ्नों की शान्ति के निमित्त गणपति का पूजन करे ॥ २४ ॥ तदनन्तर पितरों का तर्पण करके अपनी शरीर शुद्धि आदि करने के निमित्त प्रायश्चित्त करे, तथा मण्डल रचकर उस के ऊपर श्रीहरि की मूर्ति की स्थापना करे ॥२५॥ और मन में श्रीकृष्ण जी का ध्यान धरकर क्रम २ से मन्त्र पढ़ताहुआ (षोड्स उपचारसे) पूजा करके प्रदक्षिणा और नमस्कार करने के अनन्तर पूजा के अन्त में भगवान् की स्तुति करे ॥ २६ ॥ इसप्रकार कि—हेकरुणासागर भगवन् ! इस जन्म मरणरूप संसार में डूबने के कारण दीनहुए और कर्मरूप नक्र ने जिस के अङ्गों को पकड़लिया है ऐसे मेरा इस संसार सागर से उद्धारकरो ॥२७॥ तदनन्तर श्रीमद्भागवतकी भी धूप दीप आदि सामग्रियों से प्रयत्नके साथ बड़ी प्रीतिसे विधिपूर्वक पूजा करे ॥ २८ ॥ और श्रीमद्भागवत के आगे श्रीफल (नारियल) रख कर नमस्कार करके उसी समय प्रसन्न अन्तःकरण से स्तुति करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार कि यह श्रीमद्भागवत नामक साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं, इससे हे श्रीकृष्ण ! इस संसार रूप समुद्र में ही मुक्ति पाने के निमित्त मैंने तुम्हारा आश्रय लिया है ॥ ३० ॥ इस कारण इसमेरे मनोरथको सब प्रकार से निर्विघ्नता के साथ सफल करो क्योंकि हे ...प ! मैं तुम्हारा दास हूँ ॥ ३१ ॥ हे नारद ! इसप्रकार दीनवचनों से स्तुति करके ...नन्तर वक्ता का भी पूजन करे और उस को वस्त्र, गहने आदि से भूषित करके पूजन

तं च संस्तवेत् ॥ ३२ ॥ शुकरूपप्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥ तदग्रे नियमः पश्चात्कर्त्तव्यः श्रेयसे मुदा ॥ सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ ३४ ॥ वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये ॥ कर्त्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ॥ नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥ ३६ ॥ लोकवित्तधनागारपुत्रचिंतां व्युदस्य च ॥ कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ आसूर्योदयमारभ्य सार्द्धत्रिप्रहरांतिकम् ॥ वाचनीया कथा सम्यक् धीरकण्ठं सुधीमता ॥ ३८ ॥ कथाविरामः कर्त्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ॥ तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥ ३९ ॥ मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥ हविष्यान्नेन कर्त्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥ ४० ॥ उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ॥ घृतपानं पयः पानं कृत्वा वै शृणुयात्सुखम् ॥ ४१ ॥ फलाहारेण वा श्राव्यमेकभक्तेन वा पुनः ॥ सुख

के अनन्तर उस की स्तुति करे ॥ ३२ ॥ हे सकल शास्त्रों में चतुर, ज्ञानी, शुकदेवजी की समान ब्राह्मण ! तुम ही श्रीमद्भागवत की कथा को प्रकाशित करके मेरा अज्ञान दूर करो ॥ ३३ ॥ तदनन्तर मुक्तिहोने के निमित्त बड़े आनन्द के साथ वक्ता के समीप में नियम करे और उसी नियम को शक्ति के अनुसार सात दिन रात्रि पर्यन्त पालन करे ॥ ३४ ॥ कथा में विघ्न न हो, इस निमित्त और भी पांच ब्राह्मणों को वरण देय, तथा उन ब्राह्मणों से 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षरी मन्त्र से श्रीहरि का जप करवावे ॥ ३५ ॥ तथा कीर्त्तन करनेवाले और जो विष्णुभक्त ब्राह्मण हों उनका भी पूजन और नमस्कार करके, उनकी आज्ञा से आप भी आसन पर बैठे ॥ ३६ ॥ जो पुरुष अपने कुटुम्बी आदि पुरुष,वित्त (धान्य रत्न आदि), धन, घर और पुत्र आदि की चिंता को त्यागकर और शुद्धमति होकर कथा की ओर ध्यान लगाता है उसको ही उत्तम प्रकार का फल मिलता है औरों को नहीं ॥ ३७ ॥ हे नारद ! उत्तम बुद्धिमान् पुरुष, सूर्य का उदय होने के समय से कथा का प्रारम्भ करके मध्यम स्वर से साढ़े तीन पहर पर्यन्त उत्तम प्रकार से कथा बाँचे ॥ ३८ ॥ परन्तु मध्यान्ह के समय केवल दो घड़ी को कथा बन्द रक्खे, कथा बन्द होने पर उस समय विष्णुभक्त कीर्त्तन करें ॥ ३९ ॥ कथा सुनने की इच्छा करनेवाला मनुष्य,मलमूत्र का जय होने के निमित्त थोड़ा भोजन करे और वह भी हविष्यान्न (खीर) करके एक समय ही करे तो सुखदायक होता है ॥ ४० ॥ यदि शक्ति होयतो सात दिन रात्रि निराहार व्रत करके श्रवण करे अथवा ऐसा करने की सामर्थ्य नहीं होयतो घृत वा दूध पीकर सुख के साथ सुने ॥ ४१ ॥ ऐसा भी करने की

साध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥ भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ॥ नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ॥ ४३ ॥ सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमान् शृणु नारद ॥ विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४५ ॥ द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ॥ भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥ कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ॥ ४७ ॥ वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निंदां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥ ४८ ॥ रजस्वलां त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च नवदेद्यः कथाव्रती ॥ ४९ ॥ सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ॥ उदारमानसं तद्वदेवं कुर्यात्कथाव्रती ॥ ५० ॥ दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ॥ अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमां ॥ ५१ ॥ अपुष्पा

शक्ति नहीं होयतो फलाहार करके अथवा एक समय भोजन करके श्रवण करे, सारांश यह है कि—जो नियम सुख से निभजाय उसी को कथा सुनने के निमित्त धारण करे ॥ ४२ ॥ यदि उपवास करना कथा में विघ्नकारी हो तो उसको श्रेष्ठ नहीं कहा है, कथा के सुनने में सुभीता रखनेवाला भोजन भी विघ्नकारी उपवास से अच्छा है ॥ ४३ ॥ हे नारद ! अब, सप्ताह को सुनने का व्रत धारण करनेवाले पुरुषों के नियम कहता हूँ, सुनो—जो पुरुष, विष्णुदीक्षा से रहित हैं उन को कथा सुनने में अधिकार नहीं है ॥४४॥ कथाके व्रतको धारण करनेवाला पुरुष ब्रह्मचर्यसे रहे,खट्वा आदिके ऊपर शयन न करके भूमिपर ही शयनकरे,नित्य पत्तल पर भोजन करे और वह भी कथा समाप्त होनेपरकरै॥४५॥ वहकथा का व्रतधारण करनेवाला पुरुष,प्रतिदिन उड़द अरहर आदि दो दल होनेवाले धान्य, मधु,तेल,सिरसा आदि भारी अन्न,स्वभावसे ही खोटा अन्न और बासी अन्नका त्याग करै ४६। काम, क्रोध, मद, मान, डाह, लोभ, दम्भ, मोह और द्वेष को भी दूर से ही त्याग देय ॥ ४७ ॥ तथा कथा का व्रती, वेद, विष्णुभक्त, ब्राह्मण, अपने गुरु और गौ की सेवा करनेवालों की तथा स्त्री, राजा और महात्माओं की निन्दा न करे ॥ ४८ ॥ रजस्वला, चण्डाल, म्लेच्छ, पतित (अपने धर्म से भ्रष्ट हुआ), संस्कार हीन, ब्रह्मद्वेषी और जिन को वेद का अधिकार नहीं है ऐसे पुरुषों के साथ सम्भाषण न करे ॥ ४९ ॥ तथा सत्यभाषण, पवित्रता, प्राणियों के ऊपर दया, मौन रहना, सरलस्वभाव, नम्रता और मनकी उदारता इन नियमों का पालन करके कथा सुननेवाला ऐसाही वर्त्ताव करे ॥ ५० ॥ दरिद्री, क्षयरोगी, रोगी, भाग्यहीन, पापकर्म करनेवाला, पुत्रहीन और मोक्ष की इच्छा करनेवाला कथा को सुने ॥ ५१ ॥ जो स्त्री, रजस्वला नहीं होती हो, जो काकवन्ध्या

काकवंध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ॥ स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ एतेषु विधिना श्रावे तदक्षय्यतरं भवेत् ॥ अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ॥ ५३ ॥ एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ॥ जन्माष्टमीव्रतमिव कर्त्तव्यं फलकांक्षिभिः ॥ ५४ ॥ अकिंचनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ॥ श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥ ५५ ॥ एवं नगाहयज्ञेस्मिन्समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः ॥ ५६ ॥ प्रसादतुलसीमालाः श्रोतृभ्यश्चाथ दीयतां ॥ मृदङ्गतालललितं कर्त्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ५७ ॥ जयशब्दं नमःशब्दं शङ्खशब्दं च कारयेत् ॥ विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयतां ॥ ५८ ॥ विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ॥ गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशान्तये ॥ ॥ ५९ ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ॥ पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ ६० ॥ अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ॥ तन्म-

(जिस के एकवार सन्तान होकर फिर न हुई) हो, जो वन्ध्या हो, जिस की सन्तान उत्पन्न हो होकर मरण को प्राप्त होजाती हो अथवा जिस का गर्भपात होजाता हो वह स्त्री प्रयत्न करके इस सप्ताह को सुने ॥ ५२ ॥ इसप्रकार इन सातदिन पर्यन्त विधिपूर्वक श्रीमद्भागवत की कथा सुननेपर परम अक्षयफल प्राप्त होता है; इस कारण यह कथा अतिउत्तम और मनोहर तथा करोड़ों यज्ञ करने का फल देनेवाली है ॥ ५३ ॥ हे नारद ! इस प्रकार व्रत की विधि करके फिर उद्यापन करे, जो फल की इच्छा करने वाले हों वह जैसे जन्माष्टमी का उद्यापन करते हैं तैसे करें ॥ ५४ ॥ परन्तु जो प्रायः निष्किञ्चन भक्त हैं वह निष्काम होकर विष्णुभगवान् की भक्ति करते हैं इस कारण उन को तो उद्यापन करने का आग्रह नहीं होना है ॥ ५५ ॥ इस प्रकार यह सप्ताह रूप यज्ञ समाप्त होय तब श्रवण करनेवाले, पुस्तक की और कथा कहनेवाले की परम भक्ति के साथ पूजा करें ॥ ५६ ॥ हे नारद ! तदनन्तर कथा कहनेवाला, जितने श्रोता हों उन को प्रसाद और तुलसी की माला देय, तदनन्तर मृदङ्ग की तालसे ललित कीर्त्तन करवावे ॥ ५७ ॥ मुख से जय जयकार शब्द और नमोनमः शब्द कहवावे, शंखों की ध्वनि करवावे, फिर ब्राह्मणों को तथा याचकों को यथेष्ट द्रव्य तथा अन्न देय ॥ ५८ ॥ यदि श्रोता विरक्त होय तो वह (सप्ताह की समाप्ति के) दूसरे दिन, श्रीमद्भगवद्गीता बांचै और यदि श्रोता गृहस्थ होय तो वह कर्म साङ्गोपाङ्ग पूर्ण होने के निमित्त दूसरे दिन हवन करे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार कि-दशमस्कन्ध का एक २ श्लोक कहकर खीर, मधु (शहद), घृत, तिल और चरु आदि सामग्रियों से अग्नि में विधिपूर्वक हवन करे ॥ ६० ॥ अथवा एकाग्रचित्त होकर गायत्री मन्त्र से भी हवन करे; क्योंकि-वह श्रीम-

यत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥ होमाशक्तौ बुधो होम्यं दद्या-
त्तत्फलसिद्धये ॥ नानाछिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः ॥ ६२ ॥ दोषयोः
प्रशमार्थं च पठेन्नाम सहस्रकम् ॥ तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं
यतः ॥ ६३ ॥ द्वादश ब्राह्मणान्पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः ॥ दद्यात्सुवर्णधेनुं च
व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥ ६४ ॥ शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ॥ तत्रास्य
पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ६५ ॥ संपूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारैः
सदक्षिणम् ॥ वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने ॥ ६६ ॥ आचार्याय सुधी-
र्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ॥ एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ६७ ॥
फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं स्यान्न
संशयः ॥ ६८ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमि-
च्छसि ॥ श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥ ६९ ॥ सूत उवाच ॥
इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथां ॥ सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्ति-

---

द्भागवत पुराण गायत्रीमय और परमतत्त्वरूप है ॥ ६१ ॥ यदि श्रोता को हवन करने की शक्ति न होय तो वह विचारवान् पुरुष, उस (होम) के फलकी सिद्धि होने के निमित्त और अनेकों प्रकार के विघ्नों के दूर करने के निमित्त, वह हवनकी सामग्री ब्राह्मणों को दान करके देदेय और न्यूनता अधिकता रूप दोषों के दूर करने के निमित्त विष्णुसहस्रनाम का पाठ करे, ऐसा करने से करे हुए सब कार्य सफल होते हैं; क्योंकि इस विष्णुसहस्रनाम के पाठकी अपेक्षा दूसरा कोई भी प्रभाव में अधिक नहीं है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इतना करने के अनन्तर मधु और खीर से बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे और उन को व्रत के साङ्गपूर्ण होने के निमित्त सुवर्ण की गौ दान देय ॥ ६४ ॥ और धन उठाने की शक्ति होय तौ बारह तोले सुवर्ण का सिंहासन बनवाकर उसके ऊपर सुन्दर अक्षरों से लिखा हुआ यह श्रीमद्भागवत का पुस्तक स्थापन करे ॥ ६५ ॥ और आवाहन आदि उपचारों से पूजन करके वह दक्षिणा सहित पुस्तक, वस्त्र, आभूषण, गन्ध आदि सामग्रियों से पूजन करे हुए, जितेन्द्रिय आचार्य (कथा कहने वाले) को देय तब वह बुद्धिमान् पुरुष संसार बन्धन से मुक्त होता है, हे नारद ! इसप्रकार सकल पापों के दूर करने वाले विधान को करने पर, वह कल्याणकारी श्रीमद्भागवत पुराण फलदायक होता है और वही निःसन्देह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चार प्रकार के पुरुषार्थ का साधन होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ सनत्कुमारों ने कहा कि हे नारद ! इसप्रकार यह सब तुम से कहा और क्या सुनने की इच्छा है सो कहो ? इस श्री मद्भागवत से भक्ति और मुक्ति हाथ में स्थित हो जाती हैं ॥ ६९ ॥ सूत जी कहते हैं कि हे शौनक ! इसप्रकार नारद जी से कहकर उन

प्रदायिनीम् ॥ ७० ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनां ॥ यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१ ॥ तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता परा ॥ तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम् ॥ ७२ ॥ नारदश्च कृतार्थोऽभूत् सिद्धे स्वीये मनोरथे ॥ पुलकीकृतसर्वांगः परमानन्दसंभृतः ॥ ७३ ॥ एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ॥ अद्य मे भगवान् लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥ ७५ ॥ श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ॥ वैकुंठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ॥ परिभ्रमन् समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ॥ ७७ ॥ तत्रायया षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ॥ कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥ ७८ ॥ दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय

महात्मा सनत्कुमार ऋषियों ने, सकल पापों को दूर करने वाली और इस लोक में यथेच्छ भोग तथा परलोक में मुक्ति देने वाली भागवत की पुण्यकारिणी कथा कही ॥७०॥ तब सबों ने एकाग्रचित्त से विधिपूर्वक सप्ताह को सुनने के अनन्तर पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति करी ॥ ७१ ॥ स्तुति करने के अन्त में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को परम पुष्टता प्राप्त हुई और उनको, सकल लोकों को मनोहर दीखने वाली पूरी तरुणाई भी प्राप्त हुई ॥ ७२ ॥ और जिन के सब अङ्गों पर रोमाञ्च खड़े होगये हैं तथा जो परम आनन्द में निमग्न हुए हैं ऐसे नारदजी भी अपना मनोरथ सिद्ध होने पर कृतार्थ हुए ॥ ७३ ॥ इसप्रकार वह भगवत्प्रिय नारदजी,उस कथा को सुनने पर हाथ जोड़ कर गद्गद वाणीमें उन सनत्कुमार ऋषियों से कहने लगे ॥ ७४ ॥ नारदजी ने कहा हे ऋषियों ! मैं धन्य हूँ, तुमने दयालु होकर मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह करा, आज मैंने सकल पापों को हरने वाले भगवान् श्री हरि को पाया ॥७५॥ हे तपोधनों ! वैकुण्ठ में रहने वाले श्री हरि इस श्रीमद्भागवतको सुननेसे प्राप्त होतेहैं इसकारण मैं सकल धर्मों की अपेक्षा(सप्ताह के)श्रवण को ही श्रेष्ठ मानता हूँ ॥७६॥ सूतजी ने कहा हे शौनक ! इसप्रकार विष्णु भक्तों में श्रेष्ठ नारद जी के कहने पर उससमय,योगेश्वर श्री शुकदेवजी विचरते२ तहां आपहुँचे॥७७॥ सोलह वर्ष की अवस्थावाले, ज्ञानरूप महासमुद्र को बढ़ाने के निमित्त चन्द्रमारूप तथा निज लाभ से (आत्मस्वरूप की प्राप्ति होने के कारण) पूर्ण (निरपेक्ष) वह व्यास पुत्र शुकदेवजी बड़े प्रेम के साथ धीरेधीरे श्रीमद्भागवत का पाठ करतेहुए, कथा समाप्त हुई उसी समय तहां आपहुँचे ॥ ७८ ॥ तब उन परम तेजस्वी शुकदेवजी को देखते

दद्रुर्महासनम् ॥ प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं स्थितोऽवदत्संशृणुतामलां गिरम् ॥ ७९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ८० ॥ धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ ८१ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं यस्मिन्पारमहंस्यमेवममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन् प्रपठन्विचारणपरो भक्त्या

ही सभा में विराजमान पुरुषों ने, तत्काल उठकर उन को श्रेष्ठ आसन दिया और नारद जी ने प्रीति के साथ उन की पूजा करी तदनन्तर सुख से आसनपर बैठेहुए उन शुकदेवजी ने " अहो ! मैं निर्मल वचन कहता हूँ सुनो " ऐसा कहा ॥ ७९ ॥ और वह शुकदेवजी कहनेलगे कि-हे भक्तिमान् रसिकजनो ! शुक के (मेरे) मुख से ' शिष्य प्रशिष्यरूप पल्लवों की परम्परा के द्वारा धीरे २ अखण्डितरूप से ' नीचे आये हुए और ' ऊँचे स्थानपर से गिरनेपर भी न फूटने के कारण ' परमानन्दरूप रस से भरे हुए , चारप्रकार के पुरुषार्थों के साधन वेदरूप कल्पवृक्ष के रसमय (छिल्का गुठली आदि त्यागने योग्य भाग से रहित) भागवत नामक फल को तुम, मोक्ष होने पर्यन्त वा मोक्ष होनेपर भी वारम्वार सेवन करो ॥८०॥ क्योंकि-श्रीनारायण ने पहिले संक्षेप से कही और फिर व्यासजी ने विस्तार के साथ कही इस सुन्दर भागवत में दूसरों की उन्नति को न सहनारूप मत्सरता से रहित, प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले साधुओं का, मोक्ष की प्राप्ति पर्यन्त सकल प्रकार के फलों की कामना से रहित, केवल ईश्वर का आराधनरूप उत्तम धर्म कहा है, और इस में ही परमसुख देनेवाला,आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों तापों का नाश करनेवाला परमार्थ वस्तु (ब्रह्म) जाना जाता, है अहो ! और शास्त्रों से वा और शास्त्रों में कहे हुए साधनों से क्या परमेश्वर शीघ्र हृदय में स्थित होते हैं ? किन्तु नहीं होतेहैं, कदाचित् बडे परिश्रमों से और बहुत काल में स्थित होते हैं और यहां तो-इस भागवत शास्त्र को सुनने की इच्छा करनेवाले पुरुष भी, ईश्वर को तत्काल हृदय में स्थित करलेते हैं;परन्तु पुण्य के विना सुनने की इच्छा नहीं होती है इस कारण वह सकल पुरुष पुण्यवान् होने चाहियें ॥ ८१ ॥ अहो ! जो वैष्णवों का धनरूप है, जिसमें परमहंसों को प्राप्त होने वाला और निर्मल परमज्ञान कहा है और जिस में ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति सहित ब्रह्म का विचार करने से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान प्रकट करा है ऐसे सकल पुराणों में तिलक (श्रेष्ठ) श्रीम-

विमुच्येन्नरः ॥ ८२ ॥ स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुंठे नास्त्ययं रसः ॥ अतः पिबंतु सद्भाग्या मा मा मुंचत कर्हिचित् ॥८३॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ॥ प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभिर्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥८४॥ दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्त्तनमग्रतस्तदा ॥ भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमत्कीर्त्तनदर्शनाय ॥८५॥ प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्त्ताऽर्जुनोऽ-भूत् ॥ इन्द्रोऽवादीन्मृदंगं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा यत्राग्रे भाववक्ता रसविरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥ ॥ ८६ ॥ ननर्त्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ॥ अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ॥८७॥ मत्तो वरं भागवता वृणुध्वं प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि साम्प्रतम् ॥ श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥ ८८ ॥ नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरे-

---

द्भागवत को भक्ति से सुननेवाला, पढ़नेवाला और सुने पढ़ेहुए का विचार करने मे तत्पर रहनेवाला पुरुष, मुक्त होता है ॥ ८२ ॥ अहो ! स्वर्गलोक में, सत्यलोकमें, वैकुण्ठ में वा कैलास पर्वत पर यह इस प्रकार का रस नहीं है, इस कारण हे महाभागपुरुषो ! तुम इस श्रीमद्भागवत के अमृतरसका, पानकरो;पान करे विना कभी न छोड़ो, कभी न छोड़ो॥ ८३ ॥ सूतजी कहते हैं कि–हे शौनक ! इसप्रकार श्रीशुकदेवजी के कहनेपर उस सभा में प्रह्लादजी, बलि, उद्धव, अर्जुन आदि पार्षदों सहित श्रीहरि प्रकटहुए, तब नारदजी ने उन श्रीहरि की तथा पार्षदों की स्तुति करी ॥ ८४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नहुए श्रीहरि श्रेष्ठ आसन पर बैठे हैं ऐसा देखकर उन सबों ने उन के आगे कीर्त्तन करा, उस के देखने को पार्वती सहित श्रीमहादेवजी, ब्रह्माजी तथा और भी देवता तहां आये ॥ ८५ ॥ उस कीर्त्तन में प्रह्लादजी ताल बजानेवाले थे, उद्धवजी हाथ चलाने में चञ्चल होने के कारण झाँझ बजानेवाले, नारद वीणा बजानेवाले और स्वर में चतुर होने के कारण अर्जुन नानाप्रकार के रागोंको अलापने वाले हुए,इन्द्रने मृदङ्ग बजाया,सनत्कुमार ऋषियों ने उस कीर्त्तनमें जय जयकार शब्द करा और तहाँ व्यासपुत्र शुकदेवजी ने रसों की रचना करके आगे आगे भाव दिखाया ॥ ८६ ॥ तब उस सभा में उत्तम तेज से युक्त हुई भक्ति, ज्ञान और वैराग्य यह तीनों नाचने लगे, हे शौनक ! इस प्रकार के उस अलौकिक कीर्त्तन को देखकर श्री हरि प्रसन्न होकर कहने लगे कि–॥ ८७ ॥ अब मैं तुम्हारे कीर्त्तन से तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूँ सो तुम मुझ से वर माँगलो, ऐसे भगवान् के वाक्य को सुनकर प्रेम से आर्द्रचित्त हुए वह सब सभासद् अति आनन्दित होकर उन श्री हरि से कहने लगे कि–॥ ८८ । हे भगवन् ! अब आगे को जिस २ समय और जहां २

भिस्त्वया भाव्यमतिप्रयत्नात् ॥ मनोरथोयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वांत-
र्धीयताच्युतः ॥ ८९ ॥ ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ॥
अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥ ९० ॥ भक्तिः सु-
ताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन ॥ अतो हरिर्भागव-
तस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानां ॥ ९१ ॥ दारिद्र्यदुःखज्वरदा-
हितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानां ॥ संसारसिंधौ परिपातितानां क्षेमाय वै
भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥ शौनक उवाच ॥ शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन
कदा पुनः ॥ सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिंधि मे संशयं त्विमम् ॥ ९३ ॥
सूत उवाच ॥ आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ॥ नवमीतो नभस्ये च
कथारंभं शुकोऽकरोत् ॥ ९४ ॥ परीक्षिच्छ्रवणांते च कलौ वर्षशतद्वये ॥ शुद्धे

यह सप्ताह की कथा होय तहां आप इन सकल भक्तों के साथ अति प्रयत्न करके अ-
वश्य जायँ इतने ही हमारे मनोरथ को आप पूर्ण करें,ऐसा उनके कहते ही तथास्तु(व-
हुत अच्छा) ऐसा कहकर वह भगवान् श्री हरि अन्तर्धान हो गये ॥ ८९ ॥
हे शौनक ! भगवान् के अन्तर्धान होने पर पाहिले नारदजीने, चरणों में मस्तक नवाकर
श्रीशुकदेवजी आदि तपस्वियों का नमस्कार करा और तदन्तर कथारूप अमृत पीने के
कारण जिन को मोह दूर होगया है ऐसे वह सब तहां से चले गये ॥ ९२ ॥ उस समय
श्रीशुकदेवजी ने, उस भक्ति को, उस के ज्ञान वैराग्य पुत्रों सहित, अपने श्रीमद्भागवत
नामक शास्त्र में स्थापन करा, इस कारण भागवत का सेवन (श्रवण) करनेपर श्रीहरि
विष्णुभक्तों के हृदय में आ विराजते हैं ॥ ९१ ॥ हे शौनक ! जो पुरुष, दरिद्रता,
दुःख और ज्वर से पीड़ित होते हैं, जो मायारूप पिशाची से कुचले जाते हैं और
जो संसाररूप समुद्र में पड़ते हैं, उन के कल्याण के निमित्त यह श्रीमद्भागवत परम
गर्जना करती है ॥ ९२ ॥ शौनक ने कहा कि—हे सूतजी ! शुकदेवजी ने वह
श्रीमद्भागवत राजा परीक्षित् को किस समय सुनायी थी ? फिर. गोकर्ण ने, धुन्धुकारी
की मुक्ति के निमित्त कब्र बांची थी और ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारों ने, नारदजी से किस
समय कही थी ? यह सब कहकर मेरे सन्देह को दूर करिये ? ॥ ९३ ॥
सूतजी ने कहा कि--हेशौनक ! भगवान् श्रीकृष्ण के निजधाम को पधारनेपर, कलियुग
तीस वर्ष से कुछ अधिक बीतगया, तब भाद्रपद मास में (शुक्लपक्ष की नवमी) श्रीशुकदेव
जी ने, राजा परीक्षित् को श्रीमद्भागवत कथा सुनाने का प्रारम्भ करा ॥ ९४ ॥ राजा
परीक्षित् के श्रवण करने के अनन्तर कलियुग के दोसौ वर्ष बीतजानेपर आपाढ़मास में

शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम् ॥ ९५ ॥ तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंश-
द्वर्षगते सति ॥ ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥ इत्येतत्ते
समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥ कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥
॥ ९७ ॥ कृष्णप्रियं सकलकल्मषनाशनं च मुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलासकारि ॥
संतः कथानकमिदं पिबतादरेण लोके हितार्थपरिशीलनसेवया किं ॥ ९८ ॥
स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥ परिहर भगव-
त्कथासु मत्तान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥ असारे संसारे वि-
षयविषसंगाकुलधियः क्षणार्द्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ॥ किमर्थं
व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥
॥ १०० ॥ रहः प्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ॥ कण्ठे सम्बद्ध्यते येन स

शुक्लपक्ष की नवमी के दिन प्रारम्भ करके गोकर्ण ने धुन्धुकारी की मुक्ति के निमित्त वह कथा कही ॥ ९५ ॥ गोकर्ण के कहने के समय से कलियुग के तीस वर्ष बीतजाने पर ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारों ने, कार्त्तिक मास में शुक्लपक्ष की नवमी के दिन 'सप्ताह का प्रारम्भ करके नारदजी से वह कथा कही ॥ ९६ ॥ हे निष्पाप ! शौनक ! तुमने जो कुछ मुझ से बूझा था, उस विषय में इस कलियुग में श्रीमद्भागवत की कथा ही संसार रोग का नाश करनेवाली है ऐसा मैंने तुम से कहा ॥ ९७ ॥ हे सज्जनों ! जो सकल पापों को सङ्कटों को दूर करनेवाले और भक्ति को वढ़ानेवाले तथा यहां (इस संसार में) ही मुक्ति के कारण हैं उन श्रीकृष्णजी की प्रियकथाका तुम आदर के साथ पान करो, क्योंकि—इस लोक में अन्य हितकारी वस्तुओं का विचार करने से वा प्रयाग आदि तीर्थों की यात्रा और दान आदि करने से क्या होना है ? इसकारण इस श्रीमद्भागवत का सेवन करो ॥ ९८ ॥ हे शौनक ! हाथ में फाँसी धारण करनेवाले अपने दूत को देखकर यमराज, उसके कानों के समीप जा धीरे से कहते हैं कि—अरे ! जो भगवान् की कथा में मग्न हैं उनको छोड़, अर्थात् उनको न बाँध, क्योंकि—मैं अन्य (पापी) पुरुषों का प्रभु (दण्ड देनेवाला) हूँ विष्णुभक्तों का नहींहूँ ॥ ९९ ॥ हेविषयरूप विषके सङ्ग से व्याकुलचित्त हुए पुरुषों ! तुम इस असार संसार में रहकर मोक्षकी प्राप्ति होने के निमित्त कभी कभी आधे क्षण तो शुकगाथा (श्रीमद्भागवत) रूप अनूपम अमृत का पान करो, उसके सुनने से मुक्ति हुई ऐसा कहने में राजा परीक्षित् साक्षी हैं; अहो ! ऐसा होते हुए भी तुम, जिस में खोटी ही खोटी वार्त्ता हैं ऐसे कुमार्ग में व्यर्थ क्यों जाते हो ? ॥ १०० ॥ जो पुरुष भागवत की कथारूपरस के प्रवाह में रहनेवाले शुकमुनि की कहीहुई कथा को अपने कण्ठ में धारण करता है अर्थात् निरन्तर पढ़ता है वह वैकुण्ठका प्रभु होता है अर्थात् उसको सरूपता

वैकुंठप्रभुर्भवेत् ॥ १०१ ॥ इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धांतसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुंजं विलोक्य ॥ जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किंचित् पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ॥ १०२ ॥ एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ॥ तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥ १०३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥

मुक्ति मिलती है ॥ १०१ ॥ इसप्रकार अनेकों शास्त्रों को देखकर सकल सिद्धान्तों से सिद्ध हुआ यह परमरहस्य तुम से कहा, हे शौनक ! इस जगत् में श्रीमद्भागवत की कथा की अपेक्षा दूसरा कोई भी निर्मल साधन नहीं है, इस से तुम परमसुख की प्राप्ति के निमित्त बारहस्कन्धरूप श्रीमद्भागवत की कथा रूपरस को पियो ॥ १०२ ॥ हे शौनक ! जो पुरुष, भक्ति के साथ निश्चलता से इस कथा को सुनताहै अथवा जो पुरुष, इस कथा को निर्मल विष्णुभक्त से कहता है, वह दोनों उत्तम विधान करने के कारण यथार्थ फल पाते हैं और उनको त्रिलोकी में कुछ भी असाध्य नहीं होता है ॥ १०३ ॥ इति श्रीभागवतमाहात्म्य में षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इतिश्रीमद्भागवतमहापुराणस्य, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि-मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र-गौड़वंश्य-श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान-विद्यालये प्रधानाध्यापक-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोप-नामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषानुवादेन च सहितं माहात्म्यं समाप्तम् ॥

पुस्तक मिलने का ठिकाना-

शिवलाल गणेशीलाल

मालिक, "लक्ष्मीनारायण" छापाखाना

मुरादाबाद.

-॥ श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ॥-

श्रीमद्भागवत

अन्वय और भाषाटीका सहित

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीवासुदेवाय नमः ॥ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चा-

ॐ नमो गणेशाय । ॐ नमो वासुदेवाय । ॐ नमो वाग्देवतायै । पूर्व में श्रीवेदव्यास जी ने बहुतसे पुराण और शास्त्र रचे, परन्तु उनका मन सन्तुष्ट नहीं हुआ; इस कारण नारद ऋषिके उपदेश से, जिसमें मुख्यरूपसे वारम्वार श्रीभगवान् के गुणोंका वर्णन है ऐसे भागवत×शास्त्रकी रचनाका प्रारम्भ करते हुए, श्रीवेदव्यासमुनि विघ्ननिवारण आदिके निमित्त, इस ग्रन्थ में जिनका वर्णन होगा ऐसे परमात्मदेव का 'जन्माद्यस्येत्यादि' श्लोक से

× यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते । अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् । इति मात्स्ये ॥ पुराणान्तरे च-ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः । हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा । गायत्र्या च समारंभस्तद्वै भागवतं विदुः ॥ पद्मपुराणे=अम्बरीष ! शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु पठत्वं स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ॥ अर्थात्-जिस में गायत्री के आशय को लेकर विस्तारके साथ धर्म का वर्णन हो, वृत्रासुर के वधकी गाथा हो तथा अठारह सहस्र १८००० श्लोक हों वह श्रीमद्भागवत पुराण है, ऐसा मत्स्यपुराण में लिखा है। अन्य पुराण में भी लिखा है, कि-जिस में १८००० सहस्र श्लोक बारह स्कन्ध, हयग्रीव भगवान् की ब्रह्मविद्या, वृत्रासुर के वध की कथा हो और गायत्री के अभिप्राय को लेकर जिस का प्रारम्भ हो उसको ज्ञानी महात्मा श्रीमद्भागवत जानते हैं । पद्मपुराण में गौतम

मङ्गलाचरण करते हैं कि–जो स्वरूप और तटस्थलक्षणों करकै जानेजाते हैं; स्वरूप लक्षण इस प्रकार है कि–परमेश्वर का स्वरूप, भूत (वीताहुआ) भविष्यत् (होनहार) और वर्त्तमान इन तीनों काल में सत्य (जन्म मरणादि विकारों से रहित केवल ब्रह्मरूप) है; क्योंकि–उन परमेश्वर के विषैं तम, रज और सत्व यह तीनों मायाके गुण एवं इन से क्रम करकै उत्पन्न हुए आकाश आदि पञ्च महाभूत,कर्ण आदि इन्द्रियें तथा उनके देवता आदि की सृष्टि, वास्तव में मिथ्या होकर भी उनकी सत्यता से सत्यसी भासतीहै; इसमें यह दृष्टान्त है, कि–तेज, जल और मृत्तिका इनकी परस्पर एककी दूसरे में होने वाली प्रतीति मिथ्या होने परभी जैसे आश्रयभूत पदार्थ की सत्यता से सत्य सी प्रतीत होती है अर्थात् तेजके विषैं मृगतृष्णाके जलका प्रतीत होना मृगतृष्णामें प्रसिद्धहै,क्योंकि उसमें भले प्रकार दृष्टि करने से तो तेज (सूर्यकी किरणें) ही सत्य है, जलका प्रतीत होना सत्य नहीं है तथापि उसमें 'यहजलही है' ऐसा भान होता है, इस प्रतीति का कारण वह तेज (सूर्यकी किरणें) की सत्यता ही है तिसीप्रकार जल में काँचका भान होता है तथा काँचके टुकड़े में जल तथा तेज (अग्नि) का भान होता है, यह सब प्रतीत होने वाले पदार्थ सत्य न होने परभी अपने आश्रयभूत पदार्थ (सूर्यकी किरणें जल और काँच) की सत्यता से सत्यसे प्रतीत होते हैं। इसही प्रकार आकाश आदि पञ्च महाभूत, श्रोत्र आदि इन्द्रियें और इन्द्रियों के देवताओं की सृष्टि वास्तव में सत्य नहीं है, अहन्ता–ममतारूप संसारकल्पित और असत्य है तौ भी परमेश्वर की सत्यता से सांसारिक पुरुषोंको सत्यसी प्रतीत होती है, अथवा ' यत्र त्रिसर्गो मृषा ' इस वाक्यमें ब्रह्म वस्तुकी वास्तविक सत्यता कहने के निमित्त उससे भिन्न पदार्थों का मिथ्यापन कहा है, जैसे कि–जिस ब्रह्म वस्तुके विषैं यह त्रिगुणमयी सृष्टि मिथ्याही है, सत्य किञ्चिन्मात्रभी नहीं है; इससे यह सिद्धहुआ कि–परमात्मा सत्य हैं, उनके विषैं माया आदि उपाधियें होती हुईभी नहीं हैं, क्योंकि जो परमात्मा अपने तेजसे निरन्तर माया रूप कपटका अपने विषैं (तथा सच्चे भक्तोंके हृदयमें) तिरस्कार करते रहते हैं (अर्थात् दूर करते रहते हैं)। तटस्थलक्षण इस प्रकार है कि–इस जगत् की उत्पत्ति पालन और प्रलय जिन परमेश्वर से होते हैं, तिन कारणरूप परमेश्वर का, कार्यरूप आकाश

ऋषि का वचन ऐसा लिखा है, कि–हे अम्बरीप ! राजन् ! यदि तुम संसाररूप अन्धकार का नाश चाहते हो तो नित्य शुकदेवजी का कहा हुआ श्रीद्भागवत पुराण सुनो और तुम अपने मुखसे भी पढो। यह सब लिखने का अभिप्राय यह है कि यह कहेहुए सकल लक्षण इसही पुराण में हैं, अतः यहही श्रीमद्भागवत पुराण है, यदि कोई दूसरे पुराण को श्रीमद्भागवत समझे तो वह ठीक नहीं है ॥

र्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने[१४] ब्रह्म[१३] हृदा[१२] य[८] आदिकवये[११] मुह्यन्ति[१७] यत्[१५] सूरयः[१६] ॥ तेजोवा-

आदिके विषैं अन्वय (सतरूप से स्थिति) होनेके कारण वह, 'हैं' ऐसे प्रतीत होते हैं; और असम्भव (कदापि न होनेवाले) आकाशपुष्प आदि के विषैं तिन परमेश्वर का व्यतिरेक (सत् रूपसे न होना) होने से उन के विषैं यह जगत् सत्य नहीं है कल्पित है ऐसा सिद्ध होता है । अथवा अन्वय शब्द से अनुवृत्ति (सर्वत्र व्याप्ति होना) और इतर शब्द से व्यावृत्ति (सर्वत्र व्याप्ति न होना) अर्थ लेना; अन्वय कहिये सर्वत्र व्याप्ति होने से ब्रह्म जगत् का कारण है और व्यावृत्ति कहिये व्याप्ति का अभाव होने से यह जगत् ब्रह्म का कार्य होनेपर भी ब्रह्मके विषैं कल्पित है; इस में यह दृष्टान्त है कि-जिस प्रकार सुवर्ण कारण और कुण्डल उसका कार्य है,सुवर्णका कुण्डलमें अन्वय कहिये सर्वत्र व्याप्ति है अर्थात् सुवर्ण से कुण्डल हुआ है इसकारण कुण्डल को यदि सुवर्ण कहै तो बनसक्ता है परन्तु कुण्डल का सुवर्ण में व्यतिरेक है अर्थात् यदि कुण्डल को गलाकर पिण्डाकार करलिया जाय तो कुण्डल का अभाव होजाता है। तथापि सुवर्णका अभाव नहीं होता इसकारण कुण्डल सुवर्ण में कल्पितहै यह सिद्ध होताहै अथवा यह जगत् सावयवहै इसकारण अन्वय + व्यतिरेक इसकी उत्पत्ति स्थिति ÷ और प्रलय जिन व्यापक परमेश्वर से होते हैं उनका हम शिष्यों सहित ध्यान करते हैं यहां शङ्का होती है कि-इस प्रकार (अन्वयव्यतिरेक से) तो जगत् का कारण माया होना चाहियें क्योंकि-जबतक माया रहती है तबतक ही जगत् रहता है और माया के दूर होते ही जगत् कुछनहीं रहता है; इसकारण क्या माया का ही ध्यान करना चाहिये ? तहां कहते हैं कि--ऐसा नहीं; किन्तु जो जानता * (ज्ञानी) है. माया की समान जड़ नहीं है इसपर भी शङ्का होती है

+ कारणसत्वे कार्यसत्वमन्वयः, कारणाभावे कार्याभावो व्यतिरेकः, यथा मृत्सत्त्वे घटसत्त्वमन्वयो मृदभावे घटाभावो व्यतिरेकः । अर्थात् कारण के होने पर कार्य का होना अन्वय और कारण के न होनेपर कार्य का न होना व्यतिरेक कहाता है; जैसे-मृत्तिका के होने पर घट का होना अन्वय और मृत्तिका के न होनेपर घटका न होना व्यतिरेक है ।

÷ इस विषय में " यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशंति-इत्यादि" अर्थात्-"जिस परमात्मा से यह चर अचर जीव उत्पन्न होते हैं जिस से, उत्पन्न होकर जीवित होते हैं और प्रलयकाल में जिस में प्रवेश करते हैं" इत्यादि श्रुति तथा "यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे । यस्मिंश्च प्रलयं यान्तिपुनरेव युगक्षये" अर्थात् प्रथम युग के आनेपर जिस परमात्मा से सकल प्राणी होते हैं और युगों के अन्त में जिस परमात्मा के विषैं प्रलय को प्राप्त होते हैं । यह स्मृति प्रमाण है ॥

* इस विषय में "सईक्षत लोकान्नु सृजाइति, सइमाँल्लोकानसृजतेति" अर्थात्-'उस ने

रिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं

कि–ऐसा तो जीव है उसका ही ध्यान करना चाहिये ? तहां कहतेहैं कि–ऐसा भी नहीं किन्तु हम जिस का ध्यान करते हैं वह स्वराट् कहिये स्वतःसिद्धज्ञानस्वरूप है और जीव तो माया से आच्छादित (अपने स्वरूप को भूला हुआ) है.इस पर शङ्का होती है कि–ऐसे तो ब्रह्माजी + भी हैं उनकाही ध्यान करना चाहिये ? तहां कहतेहैं कि–ऐसाभी नहीं किंतु जिन्होंने ब्रह्मा जी को भी हृदय से ही वेद प्रकाशित × करा है यदि कहोकि शयन करके प्रातःकाल को जगे हुए पुरुष को जिस प्रकार पूर्वदिन में पढेहुए पाठका स्वयंही ज्ञान होता है तिसी प्रकार ब्रह्माजी को भी प्रलयके अनन्तर पूर्वसृष्टि के वेदका ज्ञान होजाता होगा ? तहां कहते हैं कि–ऐसा नहीं है, क्योंकि वेद के प्रकाश करने के विषयमें तो ब्रह्मा और इन्द्रादिक भी मोह पातेहैं अर्थात् किङ्कर्त्तव्यविमूढ होजाते हैं; तिससे ब्रह्माजी का ज्ञान भी पराधीन ही है. अतः स्वतः सिद्धज्ञानवान् परमेश्वर ही जगत् का कारण है; इस कारण जो ईश्वर सत्यस्वरूप होकर मिथ्यारूप जगत् को सत्ता देने वाले, परमार्थ सत्य और सर्वज्ञ होनके कारण मायाकपट रहित हैं (और यथार्थ भक्तों के हृदय के माया कपट को भी दूर करते हैं) तिन ईश्वर का हम ध्यान करते हैं (इस

लोकोंको रचा और देखा' यह तथा 'उसने इन लोकोंको रचा , यह श्रुति । तथा "ईक्षतेर्नाशब्दम्" (इतिव्याससूत्रं तदर्थस्तु ईक्षतेरीक्षणकर्तृत्वश्रवणात्सर्वज्ञं ब्रह्म जगत्कारणं प्रधानस्य जडत्वेनेक्षितृत्वायोगात्, अशब्दं शब्देन जगत्कारणत्वेनाप्रतिपादितं प्रधानं जगत्कारणं न भवति) अर्थात्–वेदमें कहाहै कि–उस परमात्माने जगत्को देखा, इसकारण सर्वज्ञ ब्रह्मही जगत् का कारण है, और प्रधान कहिये प्रकृति अर्थात् माया जड होने के कारण देख नहीं सक्ती और शब्द कहिये वेदमें भी इसको जगत् का कारण नहीं कहाहै इस कारण माया जगत्का कारण नहींहै। यह व्यासकृत वेदांत सूत्रकाप्रमाण है ॥

+ इस विषय में 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् , अर्थात् हिरण्यगर्भ (ब्रह्माजी) सकल चर अचर प्राणियोंके अद्वितीय पति सबसे आगे प्रकट हुए। यह श्रुति प्रमाण है ॥

×–इस विषयमें 'योब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये, अर्थात् जिन्होंने प्रथम ब्रह्माजी को रचा और उन ब्रह्माजी को जिन्होंने वेद प्रकाशित किये, तिन अनुभवगम्य देव की मैं मोक्षकी इच्छा करनेवाला शरणमें प्राप्त होता हूँ। यह श्रुति प्रमाण है ॥

परं[२१] धीमहि ॥ १ ॥ धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवा

प्रकार गायत्री * के अर्थके द्वारा आरम्भ कराहुआ यह पुराण ब्रह्मविद्यारूप है) ॥१॥ इस प्रकार मङ्गलाचरण करके इस श्रीमद्भागवत के विषैं श्रोताओं की प्रवृत्ति होने के निमित्त कर्मकांड (यज्ञादिक कर्मों का प्रतिपादन करनेवाले अनुष्ठानों की रीति) उपासना-कांड ज्ञानकाण्ड (अध्यात्म शास्त्र) इन तीनों का प्रतिपादन करनेवाले सकल शास्त्रों से इस श्रीमद्भागवत की श्रेष्ठता दिखाते हैं–श्रीनारायण करके प्रथम संक्षेप से कहेहुए और फिर व्यासजी के द्वारा विस्तार से रचेहुए इस सुन्दर श्रीमद्भागवत के विषैं, दूसरों की उन्नति को न सहनारूप मत्सरता से रहित और प्राणियों पर दया करने वाले साधु पुरुषों का, मोक्ष की प्राप्ति पर्यन्त, किसी भी प्रकार के फल की कामना से रहित, केवल ईश्वर का आराधन रूप उत्तम धर्म कहा है. इस से कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रों से भागवत की श्रेष्ठता कही. अब ज्ञान का वर्णन करने वाले शास्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठता कहते हैं–इस में परम सुख देनेवाला और आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों तापों का नाश करनेवाला परमार्थ वस्तु सहज में समझाजाता है. अथवा वस्तु शब्द से वस्तु (ब्रह्म) का अंश जीव,

*–इस 'जन्माद्यस्येत्यादि' भागवत के प्रथम श्लोक के पदों का गायत्री के सकल पदों के साथ जिस प्रकार मिलान है सो दिखाते हैं "तादित्यस्य प्रतिपदं सत्यमिति, 'तत्सत्यमित्याचक्षत इति श्रुतेः' सवितृपदस्य देवस्येति पदस्य च जन्माद्यस्ययतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्विति। वरेण्यमित्यस्य परमित्यभिज्ञ इति च। भर्ग इत्यस्य स्वराडिति धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकमिति च। धीमहीत्यस्य धीमहीत्येव। धिय इत्यस्य विभक्तिव्यत्ययेन हृदा इति। य इत्यस्य य इत्येव। न इत्यस्यादिकवय इति। प्रचोदयादित्यस्य तेने इति। अर्थात् गायत्री के तत् पद का अर्थ इस श्लोक के सत्य पद के अर्थ से, सवितुर्देवस्य का अर्थ जन्माद्यस्य यतोन्वयादितरतश्चार्थेषु के अर्थ से, वरेण्यं का अर्थ परं और अभिज्ञः के अर्थ के साथ, भर्गः का अर्थ स्वराट् और धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं के अर्थ के साथ धीमहि का अर्थ धीमहि के अर्थ के साथ, धियः का अर्थ विभक्ति के परिवर्त्तन करके हृदा के अर्थ के साथ, यः का अर्थ यः के अर्थ के साथ, नः का अर्थ आदिकवये के अर्थ के साथ, और प्रचोदयात् का अर्थ तेने के अर्थ के साथ प्रायः मिलताहुआ है; तथा जो पद गायत्री के पदों के मिलान से इस श्लोक में शेष रहगए वह इन उक्त पदों के विशेषण हैं अतः वह भी इस मिलान के अन्तर्गत ही हैं ॥

परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २ ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ३ ॥ नैमिशेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥

वस्तु की शक्ति माया और वस्तु का कार्य जगत्, यह सब जानने, क्योंकि-यह वस्तु से पृथक् नहीं हैं, सो सहज में ही जानने में आजाता है. अब उपासना का वर्णन करनेवाले शास्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठता कहते हैं-अन्य शास्त्रों से अथवा अन्य शास्त्रों में कहेहुए साधनों से क्या परमेश्वर तत्काल हृदय में स्थिर होसक्ते हैं ? नहीं; किन्तु अधिक परिश्रम और अधिक समय में होते हैं और इस में श्रवण करने की इच्छा करनेवाले पुरुषों के हृदय में तो ईश्वर तत्काल ही स्थिर होते हैं. तहाँ कहते हैं कि-तौ सर्व पुरुष इस को क्यों नहीं श्रवण करते ? सो ऐसा होना कठिन है, क्योंकि-पुण्यों के विना इस के श्रवण में इच्छा होती ही नहीं है. इसप्रकार श्रीमद्भागवत सब शास्त्रों से श्रेष्ठ है अतः इस का नित्य श्रवण करना चाहिये ॥ २ ॥ अब, श्रीमद्भागवत सब शास्त्रों से श्रेष्ठ है इसकारण इस का केवल श्रवण ही करना चाहिये ऐसा नहीं किन्तु यह सकल शास्त्रों का फलरूप है इसकारण इस का परम आदर के साथ सेवन करे, ऐसा कहते हैं-हे रस का पूर्ण स्वाद जाननेवाले भगवद्भक्तों ! यह श्रीमद्भागवत, धर्म अर्थ काम मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों का साधन जो वेदरूप कल्पवृक्ष तिस का फल है. यह प्रथम वैकुण्ठ लोक में था, सो नारदजी ने तहाँ से लाकर मुझ को दिया, तिस को मैंने शुक मुनि के मुख में स्थापन करा. वह तिन शुकमुनि के मुख से शिष्य प्रशिष्य (शिष्य, शिष्य का शिष्य इत्यादि) रूप पल्लवों की परम्परा से धीरे २ अखण्ड (साबुत) ही पृथ्वी पर आया. अर्थात् ऊँचे स्थान से नीचे गिरकर भी खण्ड २ (टुकड़े २) नहीं हुआ सो यह परमानन्द रूप रस से युक्त है. संसार में शुक (तोता) पक्षी के मुख से स्पर्श कराहुआ फल अमृत की समान मिष्ट (मीठा) होता है, ऐसा प्रसिद्ध है, इसकारण इस भागवत नामक फल को तुम वारम्वार जीवन्मुक्ति होनेपर भी पियो. यहाँ ऐसी शङ्का होती है कि फल का छिलका गुठली आदि दूर करके फल में का रस पियाजाता है. फल को पिये ऐसा किसप्रकार कहा ? तहां कहते हैं कि-यह केवल रसरूप है, छिलका गुठली आदि का भाग इस में न होने के कारण सकल फल को पिये ऐसा कहा और जीवन्मुक्त अवस्था में भी स्वर्गादि सुख की समान इस की उपेक्षा नहीं करीजाती है किन्तु इस का सेवन ही कियाजाता है ॥ ३ ॥ इसप्रकार तीन श्लोकों में मङ्गलाचरण, ग्रन्थ रचने का प्रयोजन, ग्रन्थों का विषय और भागवत के श्रवणका पुरुषों को उपदेश, इन विषयों

सत्रं स्वर्गायलोकाय सहस्रसममासत ॥ ४ ॥ त एकदा तु मुनयःप्रातर्हुतहुताग्नयः॥
सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वया खलु
पुराणानि सेतिहासानि चानघ ॥ आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि
यान्युत ॥ ६ ॥ यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः ॥ अन्ये च मुनयः
सूत परावरविदो विदुः ॥ ७ ॥ वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ॥
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८ ॥ तत्र तत्राञ्जसायुष्मन्भवता
यद्विनिश्चितम् ॥ पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ९ ॥ प्रायेणाल्पा-
युषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः॥मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः॥१०
भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ॥ अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य-
मनीषया ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनात्मा संप्रसीदति ॥ ११ ॥ सूत जानासि
भद्रं ते भगवान्सात्वतां पतिः॥ देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया॥१२॥
तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् ॥ यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय

का वर्णन करके अब ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हैं—विष्णु भगवान् के नैमिषक्षेत्र में शौनका-
दि ऋषि विष्णुलोक की प्राप्ति के लिये हजार वर्ष में पूरा होनेवाले यज्ञका अनुष्ठान करके
बैठे ॥ ४ ॥ वह मुनि एकदिन प्रातःकाल के समय घृत आदि से हवन करके
सत्कार कर बैठाले हुए सूतजी से आदर के साथ यह प्रश्न करते हुए ॥ ५ ॥ ऋषि बोले
हे निष्पाप सुखदायक सूतजी ! तुम्हारी बड़ी आयु होय, जिन इतिहास सहित पुराण
और धर्मशास्त्रों को वेद जानने वालों में श्रेष्ठ व्यासजी तथा और भूत (बीती) भविष्यत्
(होनहार) को जानने वाले मुनि जानते हैं, उन सबको तुमने पढ़ा और व्याख्या करीहै,
तुम उनसबको उनकी कृपासे उत्तमरूप से जानतेहो, क्योंकि—स्नेही शिष्य से गुरु गुप्त
वार्त्ता भी कहदेते हैं । उन २ ग्रन्थों में तुमने जो मनुष्यों का परम कल्याणकारी दृढ़
निश्चय करा है सो हमसे कहो ॥ ६ । ७ । ८ । ९ ॥ हे सभ्यसूतजी ! इस क-
लियुग में प्राणी प्रायः थोडी आयुवाले, आलसी, मन्दमति, मन्दभाग्य और नाना प्रकार
के रोग आदि उपद्रवों से व्याकुल होंगे ॥ १० ॥ हे परोपकार करने वाले सूतजी !
जिन में बड़े २ कर्मजाल भरे हैं ऐसे सुनने योग्य जुदे २ शास्त्र बहुत से हैं. इन में जो
सारहो उसको अपनी बुद्धिसे निकाल कर हम श्रद्धावानों से कहिये, जिससे कि हमारा
अन्तःकरण भली प्रकार प्रसन्न होय ॥ ११ ॥ हे सूतजी ! तुम्हारा कल्याण होय, भक्त
पति भगवान् जिस कार्य को करनेकी इच्छा से वसुदेवजीकी स्त्री देवकी के विषैं उत्पन्नहुए
सो तुम जानते हो ॥ १२ ॥ हे सुखदायक सूतजी ! तिस को सुनने की इच्छा करनेवाले

च ॥ १३ ॥ आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ॥ ततः सद्यो विमु-
च्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥ १४ ॥ यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ॥
सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥ १५ ॥ को वा भगवतस्तस्य पुण्य
श्लोकेड्यकर्मणः ॥ शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥ तस्य
कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः
कलाः ॥ १७ ॥ अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ॥ लीला विदधतः
स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥ १८ ॥ वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ॥
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥ १९ ॥ कृतवान्किल वीर्याणि सह
रामेण केशवः ॥ अतिमर्त्यानि भगवान्गूढः कपटमानुषः ॥२०॥ कलिमागतमा-
ज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयम् ॥ आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः॥२१॥
त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ॥ कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार

हमारे अर्थ क्रमसे वर्णन करिये, जिन भगवान् का अवतार जगत् के कल्याण और सुखके निमित्त होताहै ॥ १३ ॥ जो पुरुष घोर जगत् में पड़ाहुआ व्याकुल होकरभी विवश भगवान् का नाम उच्चारण करताहै वह तत्काल उस आपत्ति से छूटजाता है, क्योंकि भगवान् के नाम से स्वयं भयभी डर मानता है ॥ १४ ॥ हे सूतजी ! गङ्गाजल बहुत दिन सेवन करने से पवित्र करता है परन्तु परमेश्वरके चरणोंका आश्रय करनेवाले शान्ति के स्थान मुनिजन सेवा करनेवाले को शीघ्रही पवित्र करदेते हैं॥ १५ ॥ पवित्र चरित्रवाले नारदादि जिनका गान करते हैं ऐसे कर्म करनेवाले तिन भगवान् के, कलिमल (संसार के दुःखों)का नाशकरनेवाले यश को, हृदय की शुद्धि चाहनेवाला कौनसा मनुष्य न सुनेगा ? ॥ १६ ॥ लीला से रामकृ-ष्णादि अवतार धारण करनेवाले तिन भगवान् के नारदादि के गान करेहुए बड़े २ चरित्र हम श्रद्धावानों को सुनाइये ॥ १७ ॥ और हे बुद्धिमान् ! अपनी मायासे इच्छानुसार लीला करनेवाले ईश्वर हरिके अवतारों की शुभ कथा कहो ॥ १८ ॥ उत्तम कीर्त्ति भगवान् के चरित्रों से हमारी तो तृप्ति नहीं होती है, क्योंकि भगवान् के चरित्र सुनने वाले रसिक भक्तों को पद २ में अत्यन्त ही स्वाद लगते हैं ॥ १९ ॥ जिन्हों ने माया से नरस्वरूप धरके अपना वास्तविक (असल) रूप छिपाया, ऐसे श्री कृष्ण ने बलदेवजी के साथ, मनुष्यों के हाथों से न होसकैं ऐसे जो गोवर्धन धारण आदि चरित्र करे (वहहमसे कहो) ॥ २० ॥ हम कलियुग को आया जानकर इस विष्णु भगवान् के नैमिसारण्य क्षेत्र में सहस्र वर्ष में पूरा होनेवाले यज्ञ को करने की इच्छा से आबैठे हैं, इस से हरिकथा सुनने का हम को अवसर है ॥ २१ ॥ जैसे समुद्रको तरने की इच्छा करने वालों को कर्णधार मिलजाता है, तैसेही पुरुषों के धीरज को हरने वाले दुस्तर कलि

इवार्णवम् ॥ २२ ॥ ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ॥ स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषेयोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ७ ॥ ७ ॥ ७ ॥

व्यास उवाच ॥ इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ॥ प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१॥ सूत उवाच ॥ यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥ यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ॥ संसारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ॥ यत्कृतः कृ-

---

(संसार) को तरनेकी इच्छा करनेवाले हमको ब्रह्माजीने तुम दिखादियेहो ॥ २२ ॥ धर्म की कवच (बख्तर) समान रक्षा करनेवाले, ब्राह्मणों के हितकारी योगेश्वर श्रीकृष्ण के अपने धाम को पधारने पर धर्म किसकी शरणमें गया ? (सो कहो) ॥ २३ ॥ प्रथम स्कन्धमें १ अध्याय समाप्त ॥

श्रीव्यासजी बोले कि—शौनक आदि ब्राह्मणों के ऐसे प्रश्नोंसे भलीप्रकार हृदय में प्रसन्न हुए रोमहर्षण के पुत्र (सूतजी) ने उन के कथनकी प्रशंसा करके उत्तर कहनेका प्रारम्भ किया ॥१॥ सूतजी बोले कि-जिन शुकदेवजी को कोईभी कर्म करनेको शेष (बाकी) नहीं था, इस से सब त्यागकर विना यज्ञोपवीत हुए ही वह आश्रममें से निकलकर एकाकी वन को जानेलगे तब पुत्रवियोग से व्याकुलहुए व्यासजी ने अहोपुत्र ! अहोपुत्र ! इस प्रकार ऊँचे स्वरसे पुकारा, तब उन के सर्वात्मरूप होजानेके कारण वृक्षोंनेही 'हाँ' ऐसा उत्तर दिया अर्थात् व्यासजी मोहमें न पड़ें इस हेतु से शुकदेवजीने ही अपनी सर्वात्मता दिखाने के निमित्त वृक्षों से उत्तर दिलाया ऐसे सकल प्राणियों के हृदयों में योगशक्तिसे प्रवेश करनेवाले मुनि (शुकदेव) को मैं प्रणाम करताहूँ ॥ २ ॥ संसाररूप अन्धकार को तरने की इच्छा करनेवाले संसारी पुरुषोंपर कृपा करके; जिस में आत्मा के स्वरूपकी महिमाका अद्भुत वर्णन है ऐसा सब श्रुतियोंका सार, जिसकी तुल्यता करनेवाला दूसरा कोई पुराण नहींहै, आत्मस्वरूपको प्रत्यक्ष दिखानेवाला और सब पुराणोंमें से गुप्त करके रखने योग्य यह भागवत पुराण जिन्होंने कहा तिन सब मुनियों के गुरु व्यासपुत्र (शुकदेव) की मैं शरण जाता हूँ ॥ ३ ॥ नारायण, नर पुरुषोंमें श्रेष्ठनर, सरस्वती देवी और व्यासजी को नमस्कार करके जयकीर्तन (ग्रन्थका प्रारम्भ) करे ॥४॥ हे ऋषियो ! तुमने मुझसे लोकोंका कल्याण करनेवाला अति उत्तम प्रश्नकरा, क्योंकि—यह कृष्ण भगवान् के विषयका है, जिसके सुनने से अन्तःकरण प्रसन्न होता है

ण्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ॥ ५ ॥ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधो-
क्षजे ॥ अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति ॥ ६ ॥ वासुदेवे भगवति भक्ति-
योगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ॥ ७ ॥ धर्मः स्वनु-
ष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ॥ नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्
॥ ८ ॥ धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ॥ नार्थस्य धर्मैकान्तस्य
कामो लाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥ कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ॥
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १० ॥ वदन्ति तत्तत्त्वविद-
स्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ॥ ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ११ ॥
तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ॥ पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुत
गृहीतया ॥ १२ ॥ अतः पुंभिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ॥ स्वनुष्ठितस्य ध-
र्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥ १३ ॥ तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतां पतिः ॥
श्रोतव्यःकीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥ १४ ॥ यदनुध्यासिना युक्ताः

॥ ५ ॥ वहही पुरुषोंका परमधर्म है कि जिससे विष्णु भगवान् में विना किसी प्रयोजनके
ऐसी दृढ भक्ति होय, कि जिससे अन्तःकरण प्रसन्न होताहै। ६ ।विष्णु भगवान् के विषैं समर्पण
कराहुआ भक्तियोग अर्थात् भगवान् में लगीहुई भक्ति, तत्काल वैराग्य और कामना रहित
ज्ञानको उत्पन्न करती है ॥७॥ उत्तम प्रकारसे कियाहुआ भी धर्म यदि भगवान्की कथाओं में
प्रीति उत्पन्न न करे तो वह केवल निष्फल परिश्रमही है॥८॥ क्योंकि-मोक्षके निमित्त किये
हुए धर्मका फल धन नहीं होसकता, तैसेही धर्मही जिसका मुख्य फल है ऐसे धनका फल
काम (विषयभोग) होय तो उसको मुनियों ने लाभकारी नहीं कहा है (किन्तु अनर्थ
का मूल वताया है) ॥ ९ ॥ काम (विषयभोग) का फल इन्द्रियों को प्रसन्न रखना
नहीं है, किन्तु जितने से शरीर बनारहे उतनाही है और शरीर बनेरहने का फल अनेकों
आशाओं से वहुत से उपायों के द्वारा धन इकट्ठा करना नहीं है, किन्तु तत्वजानने की
इच्छा करना ही फलहै ॥१०॥ जो अद्वयज्ञान है अर्थात् एक परमात्मा सत्य है, शेष
सब अनित्य है इस प्रकारका ज्ञानहै तिसको तत्त्वजाननेवाले ब्रह्म, हिरण्यगर्भ की उपासना
करनेवाले परमात्मा और भक्ति करनेवाले पुरुष भगवान् कहते हैं ॥ ११ ॥ तिस आत्म
रुप तत्त्वको ज्ञान वैराग्ययुक्त श्रद्धावान् मुनिजन, वेदान्त के सुनने से प्राप्तकरीहुई भक्ति के
ः। अपने हृदयमेंही देखतेहैं ॥१२॥ इसकारण हे शौनकादि श्रेष्ठ ब्राह्मणों! ब्राह्मण आदि
और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों को जैसी भिन्न२प्रकारकी आज्ञाहै उस के अनुसार उत्त
ः कियेहुए धर्मका प्रधानफल श्रीहरिको प्रसन्न करना है ॥१३॥ तिस कारण नित्य,
त्त से भक्तपालक भगवान्का श्रवण कीर्तन ध्यान और पूजन करे ॥ १४ ॥

कर्मग्रन्थिनिबन्धनम् ॥ छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥१५॥ शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ॥ स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥ १६ ॥ शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥ १७ ॥ नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी १८ तदा रजस्तमोभावाःकामलोभादयश्च ये चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥१९॥ एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ॥ भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥ २० ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥ २१ ॥ अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ॥ वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादिनीम् ॥२२॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य

जिनके ध्यानरूप खड्ग से युक्त विवेकीपुरुष, अहङ्काररूप गाँठको उत्पन्न करदेनेवाले कर्मको छिन्न२ (टुकड़े२) करडालतेहैं, उनकी कथामें कौन पुरुष प्रेम नहीं करेगा? ॥१५॥ हे विप्रो ! पवित्र करनेवाले तीर्थोंके सेवन से पापरहितहुए पुरुषको महात्माओंकी सेवा करनेका अवसर मिलताहै तव उसकी धर्मविषयमें श्रद्धा होतीहै, इसके अनन्तर सुननेकी इच्छा होती है, तव उस पुरुषकी वासुदेव भगवान्‌की कथामें रुचि होतीहै ॥ १६॥ जिन का श्रवण और कीर्त्तन पुण्यरूप है वह सत्पुरुषों के हितकारी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी कथा श्रवण करनेवाले पुरुष के हृदय में स्थित होकर उसकी कामादि वासनाओं का नाश करते हैं ॥ १७ ॥ निरन्तर भगवद्भक्तों के अथवा भगवान् का जिनमें वर्णन हो ऐसे शास्त्रों के सेवन से अन्तःकरणके वासनारूप सकल पापों के नष्ट होजानेपर, उत्तम है कीर्त्ति जिनकी ऐसे भगवान् के विषें, अटलभक्ति उत्पन्न होती है ॥१८॥ तव रजोगुण और तमोगुण तथा इनसे उत्पन्न होनेवाले काम लोभ आदि विकारों से चलायमान न होनेवाला चित्त सत्वगुणमें स्थिर होकर शांति को प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ इस प्रकार भगवान्‌की भक्तिं से प्रसन्नचित्त होजाने के कारण सव पदार्थों में ममतारहितहुए पुरुष को भगवान्‌के तत्त्व (स्वरूप) का अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान होजाताहै ॥ २० ॥ आत्मस्वरूप ईश्वरका दर्शन होतेही, इस भक्त पुरुषकी अहङ्काररूप हृदयकी ग्रन्थि (गांठ) नष्ट होजाती है, सव संशय दूर होजाते हैं और सञ्चित आदि कर्म क्षयको प्राप्त होजातेहैं ॥ २१ इस कारण बुद्धिमान् पुरुष नित्य निश्चयपूर्वक बड़े प्रेम के साथ वासुदेव भगवान्‌के विषैं मन को प्रसन्न करनेवाली भक्ति करतेहैं ॥ २२ ॥ सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण यह तीनों प्रकृति (माया) के गुण हैं, इनसे युक्त होकर एक परम पुरुष भगवान् यहां इस जगत्‌का पालन उत्पत्ति और संहार (प्रलय) करनेकी इच्छा

धत्ते ॥ स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेतिसंज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥ २३ ॥ पार्थिवादारुणोधूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ॥ तमसस्तु रजस्तस्मा-त्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २४ ॥ भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ॥ २५ ॥ मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भू-तपतीनथ ॥ नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥ २६ ॥ रजस्तमः-प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै ॥ पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ २७ ॥ वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ॥ वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८ ॥ वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ॥ वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥ २९ ॥ स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ॥ सदसद्रूपया चासौ

से विष्णु ब्रह्मा और शिव नामको धारण करते हैं, परन्तु तिनमें सत्वगुणात्मक विष्णु भगवान्से पुरुषों को शुभफल मिलते हैं ॥ २३ ॥ जैसे प्रकाशरहित काष्ठकी अपेक्षा उस से उत्पन्नहुआ धूम (धुआँ) कुछएक प्रकाशयुक्त होनेके कारण श्रेष्ठहै और उस धूमसे उत्पन्नहुआ तीनवेदरूपी अग्नि वेदमें कहेहुए कर्मोंका साक्षात् साधन होने के कारण तिस धूमसे जिसप्रकार श्रेष्ठ है तिसीप्रकार अज्ञानरूपी तमोगुणकी अपेक्षा कुछ एक ज्ञानरूप रजोगुण श्रेष्ठहै, और उस से भी साक्षात् ब्रह्मज्ञानका देनेवाला सत्वगुण श्रेष्ठहै. अर्थात् शिव तमोगुणप्रधान, ब्रह्मा रजोगुणप्रधान और विष्णु सत्वगुणप्रधान होनेके कारण उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ २४ ॥ पूर्व समयमें ऋषियों ने परम शुद्ध सत्वगुण-मूर्ति विष्णुभगवान्की सेवा करी थी, इस कारण इस समयभी उन ऋषियोंकी समान जो पुरुष परमेश्वर की सेवा करेंगे उनका कल्याण होगा ॥ २५ ॥ मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुष किसीकी भी निन्दा न करतेहुए, भूतपति पितर पिशाच आदि को त्यागकर शान्तरूप नारायण के कलाअवतारों की आराधना करते हैं ॥ २६ ॥ तथापि जिनका स्वभाव भूत पिशाचादिकी समान तमोगुणी रजोगुणी है ऐसे कितनेही पुरुष धन ऐश्वर्य और सन्तान आदिकी इच्छा करके पितर भूत और प्रजापति आदिकी आ-राधना करतेहैं ॥ २७ ॥ वेद मुख्यरूप से वासुदेवका वर्णन करते हैं इसकारण वासुदेव भगवान्की प्राप्ति के निमित्तहीहैं, सकल योगादिशास्त्र वासुदेवभगवान्के विषैही पर्यवसान (समाप्ति) पातेहैं. स्नान सन्ध्यादि सकल क्रियाएं वासुदेवभगवान् की प्रीति के अर्थ हैं, वेदान्तादि ज्ञानशास्त्र वासुदेव भगवान्का वर्णन करते हैं, अपरोक्ष ज्ञानके शास्त्रादि वासुदेव भगवान्का अनुभव करानेवाले हैं, दान व्रत आदि जिन में लिखेहैं ऐसे धर्मशास्त्र भी वासुदेवभगवान्मेंही उत्पन्नहुए हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ क्योंकि उनही छःप्रकार के ऐ-श्वर्योंसे युक्त भगवान् ने स्वयं निर्गुण और व्यापक होकरभी सत्वरजस्तमोगुणरूप तथा

गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥ ३० ॥ तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ॥ अन्तः प्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥ ३१ ॥ यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु ॥ नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥ ३२ ॥ असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः॥ स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान्।३३। भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः ॥ लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

सूत उवाच—जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ॥ संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥ यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ॥ नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥२॥ यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लो-

---

कार्य—कारणरूप अपनी माया करके प्रथम इसजगत्को उत्पन्न किया ॥ ३० ॥ और तिस मायासे उत्पन्नहुए आकाश आदि पदार्थों में प्रविष्ट होकर वह भगवान्, स्वयं असङ्ग तथा स्वप्रकाश चैतन्यस्वरूप होकरभी, यह सब पदार्थ मेरे अधीन हैं ऐसे अभिमान से युक्त से दीखते हैं ॥३१॥ जिस प्रकार अग्नि, वास्तव में सर्वत्र एकरूपही होकर, अपने को प्रकट करनेवाले काष्ठ आदि में,प्रवेश करतेही तिस काष्ठ आदिकी तुल्य लम्बा गोल आदि नानाप्रकारका प्रतीत होनेलगता है, तिसीप्रकार जगत्के आधार परमेश्वर प्राणियोंके विषैं प्रवेश करतेही नाना प्रकार के प्रतीत होने लगते हैं ॥ ३२ ॥ यह भगवान्, भूतसूक्ष्म (शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह पाँच विषय) इन्द्रियें और मन इनतीन के द्वारा स्वयं उत्पन्न करेहुए जरायुज आदि चार प्रकार के शरीरों में प्रवेश करके, तिन २ इन्द्रियों से नानाप्रकार के विषयों को भोगते हैं॥३३॥और लोकों को उत्पन्न करनेवाले यहही भगवान् देवताओं में ब्रह्मा इन्द्र आदि, तिर्यक् योनियों में मत्स्य कच्छप आदि, और मनुष्यों में रामकृष्ण आदि अवतार धारण करके सत्वगुण के द्वारा लोकों की रक्षा करते हैं ॥ ३४ ॥ प्रथम स्कन्ध में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

सूतजी कहनेलगे कि—हे ऋषियो ! भगवान् ने सृष्टिके प्रारम्भ में सकल चर अचर विश्वको रचनेकी इच्छा से पुरुष अवतार धारण करा, वह स्वरूप महत्तत्त्व, अहङ्कार और पाँचभूतसूक्ष्म (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध) इन से उत्पन्न हुआ और पाँच ज्ञानेन्द्रियें पाँच कर्मेन्द्रियें और पाँच महाभूत इन सोलह अंशों से युक्त है ॥ १ ॥ प्रलय समुद्रमें विश्राम (आराम) पाकर समाधिरूप निद्रा को स्वीकार करनेवाले जिन पुरुष अवतार नारायणके नाभिरूप सरोवर में उत्पन्नहुए कमलमें से,विश्वस्रष्टाओं (मरीचि आदि ऋषियों) के अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ जिनभगवान् के अवयव (अङ्ग) रूप उत्तम आधारों (रचने की सामग्रियों) से जगत्की रचना का विस्तार (फैलाव) हुआ

कविस्तरः ॥ तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥ पश्यन्त्यदो रूपमद-भ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ॥ सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौ-ल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥ ४ ॥ एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ॥ य-स्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ।५। स एव प्रथमो देवः कौमारं सर्गमास्थितः ॥ चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥ द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ॥ उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥७॥ तृतीयमृषिसर्गं वै देवर्षित्वमु-पेत्य सः ॥ तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥ ८ ॥ तुर्ये धर्मकलासर्गे नर-नारायणावृषी ॥ भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥ पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ॥ प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १० ॥ षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ॥ आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्यः ऊ-

है, तिन भगवान् का स्वरूप विशुद्ध सत्वगुणरूप और परमश्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ इस रूप को योगीपुरुष अपने विशाल ज्ञाननेत्रों से देखते हैं, यहरूप असंख्यात (अनगिनत) चरण, जाँघ, भुजा, मुख, मस्तक, कान, नेत्र, नासिका, मुकुट, वस्त्र और कुण्डलों करके शोभायमान है ॥ ४ ॥ जिन श्रीनारायण से उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए मरीचि आदि ऋषियों ने देवता, पशु, पक्षी, और मनुष्यादि को उत्पन्न करा है, तिन नारायण का यह अविनाशी पुरुषावतार मत्स्यादि अनेकों अवतारों की उत्पत्ति और प्रलय होने का स्थान है ॥ ५ ॥ तिनही नारायण ने प्रथम ब्राह्मणरूपी सनत्कुमार अवतार धारण करके और अन्यसे न होसके ऐसा अखण्डित दृढ़ ब्रह्मचर्य व्रतधारण किया ॥ ६ ॥ तिनही यज्ञपति नारायणदेवने इस जगत्की उत्पत्ति के निमित्त हिरण्याक्ष जिसको पाताल में लेगया था ऐसी पृथ्वी का उद्धार करने को दूसरा वराहरूप धारण करा ॥७॥ तदनन्तर उनही देवने ऋषिवंश में देवर्षि (नारद) नामक तीसरा अवतार लेकर भक्तिशास्त्र का वर्णन करा, जिस शास्त्रके अनुसार किये हुए कर्म,मोक्ष की इच्छा करनेवाले पुरुषों को मुक्ति देते हैं ॥८॥ चौथे अवतार में उन्होंने धर्मनामक ऋषिकी स्त्री के विषैं होनेवाली सन्तानों में नर और नारायण इन दो ऋषियों का रूप धारकर दूसरों से न होसके ऐसी चित्तको शान्त करनेवाली तपस्या करने का मार्ग दिखाया९॥ उनही देवने पाँचवाँ कपिल नामक अवतार लेकर, तिस सिद्धों के ईश्वर कपिलरूपसे आसुरि नामक ब्राह्मणके अर्थ कालवश अस्तव्यस्त हुए, जिसमें कि तत्त्वोंके समूह का निर्णय किया है ऐसा सांख्य शास्त्र कहा ॥ १० ॥ अत्रि ऋषि के, श्रीनारायण से 'तुम्हारी समान मेरे पुत्र हो' ऐसी वर मांगनेपर, उनके ऊपर, 'यह मुझको अपना पुत्ररूप होने की इच्छा करते हैं' ऐसी दोषदृष्टि न करके भगवान्ने छठे अवतार में 'उनका पुत्र

चिवान् ॥ ११ ॥ ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ॥ स यामाद्यैःसुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरम् ।१२। अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ॥ दुग्धेमामौषधीर्विमास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४ ॥ रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसंप्लवे ॥ नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ १५ ॥ सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ॥ दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥ १६ धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ॥ अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्यामोहयन्स्त्रिया ॥ १७ ॥ चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ॥ ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा १८ पञ्चदशं वामनकं कृत्वाऽगादध्वरं बलेः ॥ पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्ट-

होना स्वीकार किया और राजा अलर्क प्रह्लाद आदिके अर्थ आत्मविद्या कही ॥११॥ तदनन्तर रुचिनामक प्रजापति की आकूति नामक स्त्री के गर्भ से यज्ञ नामक सातवाँ अवतार धारण कर तिन भगवान् ने याम आदि-देवगणों सहित स्वायम्भुव मन्वन्तरकी रक्षा करी ॥ १२ ॥ उन्होंने आठवें अवतार में राजा नाभि की मरुदेवी स्त्री के विषैं ऋषभ नामक अवतार लेकर गृहस्थ आदि सकल आश्रमों करके वन्दनीय और सकल धैर्यवान् पुरुषों के सेवन करने योग्य परमहंस योगियों का मार्ग अपने आप वर्त्ताव करकै दिखाया ॥ १३ ॥ ऋषियों के प्रार्थना करने पर नारायण ने पृथु नामक नवां अवतार धारण करा और गोरूपा पृथ्वी को दुहकर दुग्धरूपसे सकल ओषधियों को उत्पन्नकरा इस कारण हे ब्राह्मणों ! यह अवतार परम सुन्दर [श्रेष्ठ] है ॥ १४ ॥ तिसी प्रकार चाक्षुष नामक मन्वन्तर में सकल समुद्रों के, प्रलयकाल की समान एकाकार होजाने पर, भगवान् ने मत्स्य अवतार धारण करा और पृथ्वीरूप नौका में सत्यव्रत राजा को बैठाल कर उसकी रक्षा करी, वहही राजा वैवस्वत नामक मनु हुआ ॥ १५ ॥ सर्वव्यापी श्रीनारायण ने ग्यारहवें अवतार में देवता और दैत्यों के समुद्र को मथने पर, कच्छपरूप धारण करके मन्दराचल को पीठ पर धारण करा ॥ १६ ॥ तिन भगवान् ने बारहवाँ धन्वन्तरि अवतार धारण करके देव दैत्यों को अमृतका कलश लाकर दिया और तेरहवें मोहिनी नामक स्त्री रूप अवतार से दैत्योंको मोहित करके देवताओं को अमृत पिलाया ॥ १७ ॥ फिर नारायणने चौदहवाँ नरसिंह नामक अवतार धारकर ब्रह्माजी के वरदान के कारण जिसको जीतना कठिन था ऐसे हिरण्यकशिपु नामक दैत्य के वक्षःस्थलको, जैसे चटाईका बनानेवाला पटेरको चीर डालता है तिसी प्रकार चीर डाला ॥ १८ ॥ वह परमात्मा पन्द्रहवाँ वामन अवतार धारकर राजा बलिके यज्ञमें गये और उन्होंने बलिका सर्वस्व हरलेनेकी इच्छा से तीन चरण भूमि

पम् ॥ १९ ॥ अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ॥ त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥ ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ॥ चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥ नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ॥ समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ २२ ॥ एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ॥ रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥२३॥ ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् ॥ बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥ अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ॥ जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥ अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ॥ यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥ ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ॥ कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥२७॥ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ॥ इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति

माँगी और उस तीन चरणमेंही बलिका सर्वस्व हरकर स्वर्गका राज्य इन्द्रको दिया ॥१९॥ श्रीनारायणने सोलहवें परशुराम अवतारमें, दुष्ट राजे ब्राह्मणोंसे द्रोह करनेवाले होगये हैं, ऐसा देखकर, इक्कीसवार पृथ्वीको क्षत्रियहीन करा ॥ २० ॥ सत्तरहवें अवतारमें पराशर ऋषिसे सत्यवती के विषैं व्यासरूप धारणकर उत्पन्न हुए तिन श्रीनारायणने, पुरुषोंको थोड़ी बुद्धिवाले देखकर, उनको ज्ञान प्राप्त होने के निमित्त वेदरूप वृक्षकी अनेकों शाखाकरीं ॥ २१ ॥ अठारहवें अवतार में श्रीनारायणने राजाधिराज श्रीरामचन्द्र रूप धारणकर देवताओंका कार्य करनेकी इच्छासे समुद्रको दण्ड देना आदि अनेकों पराक्रम करे ॥ २२ ॥ फिर उन्नीसवाँ और बीसवाँ इन दो अवतारों में भगवान्ने बलदेव और कृष्णरूपसे यादवों के कुलमें जन्म लेकर भूमिका भार हरा ॥ २३ ॥ तदनन्तर कलियुग के आनेपर देवताओं से द्वेष करनेवाले असुरोंको मोहित करने के निमित्त वह भगवान्, जिन के पुत्र बुद्ध नामसे गयाके समीपके देशोंमें उत्पन्न होंगे॥२४॥ तदनन्तर कलियुगके अन्त में सब राजाओं के प्रजाओंका धन हरने के लिये चोरोंकी समान होजानेपर सकल जगत्के पालक वह आदि नारायण कल्कि नामसे विष्णुयश नामक ब्राह्मणके यहां उत्पन्न होंगे ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणों ! जैसे अक्षय (तलीतोड़) महासरोवरसे सहस्रों छोटीं नदियें निकलती हैं, तिसी प्रकार सत्वगुणके समुद्र श्रीहरिसे असंख्य (अनगिनत) अवतार प्रकट होते हैं ॥ २६ ॥ नारद आदि ऋषि स्वायम्भुव आदि मनु, ब्रह्मादि देवता, मनुके महा तेजस्वी पुत्र और कश्यप आदि प्रजापति, यह सब श्रीहरिकीही कला (अवतार विशेष) हैं ॥ २७ ॥ यह सब नारायणके अंशरूप हैं और श्रीकृष्णजी तौ साक्षात् भगवान्ही हैं, यह सबही अवतार प्रत्येक युगमें, इन्द्रके शत्रु दैत्यों

युगे युगे ॥ २८ ॥ जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ॥ सायं प्रातर्गृणन्भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥ एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः। मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥ ३० ॥ यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ॥ एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥ ३१ ॥ अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ॥ अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥ ३२ ॥ यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ॥ अविद्ययात्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥ यद्येषोपरता देवी माया-वैशारदी मतिः ॥ संपन्न एवेति

से, पीडितहुए लोकों को सुखी करते हैं ॥ २८ ॥ यह श्री नारायणका अतिरहस्य अवतारोंका चरित्र, जो मनुष्य पवित्र हो कर सायङ्काल और प्रातःकाल को भक्ति से पढ़ताहै वह संसार से मुक्त होता है॥२९॥ यहां शङ्का होती है कि-सूक्ष्म और स्थूल शरीरका सम्बन्ध रहते जीवकी मुक्ति कैसे होसक्ती है, तहां कहते हैं कि-यह देहसम्बन्ध अज्ञान से प्राप्तहुआ है अतःश्रीनारायण के श्रवण मनन आदि साधनों से उत्पन्नहुए ज्ञान करके वह दूर होजाताहै; इसही अभिप्राय से कहते हैं कि-वास्तवमें निराकार और केवल शुद्ध ज्ञानस्वरूप जीवका, यह स्थूल शरीर, भगवान्की मायासे उत्पन्नहुए महत्तत्त्व आदि साधनोंके द्वारा परमात्मस्वरूप के विषैं कल्पित है ॥ ३० ॥ जिसप्रकार अज्ञानी पुरुष, वायु के आश्रय से रहनेवाले मेघोंका आकाशके विषैं आरोप करते हैं अर्थात् जिसरंग के मेघ होतेहैं उसी रंगका आकाश को कहने लगते हैं; तथा पृथ्वीकी धूलिका वायुके विषैं आरोप करते हैं अर्थात् धूलिरूप पवन चलरही है ऐसा कहते हैं; तिसी प्रकार अज्ञानी पुरुषोंने सर्वसाक्षी द्रष्टा आत्माके विषैं इस दृश्यमान स्थूल शरीरका आरोप मानरक्खाहै ॥ ३१ ॥ और इस स्थूल शरीरसे भिन्न, हस्तचरण आदि अवयवरूपसे परिणाम को न प्राप्त होनेवाला सत्त्व आदि गुणों से रचाहुआ, आकाररहित, अतिसूक्ष्म तथा दीखनेवाले पदार्थोंकी समान एवं सुनने में आनेवाले इन्द्रादि देवताओं की समान न होकर भी वारंवार जन्म लेताहै, इसकारण जिस को जीव कहते हैं, तिस लिङ्गशरीररूपी सूक्ष्मशरीर का भी आत्मा के विषैं आरोप कराहुआ है ॥ ३२ ॥ इस कारण जब जीव को, अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होकर तिस ज्ञानके द्वारा, यह दृश्य (दीखने योग्य) अदृश्य (न दीखने योग्य) स्थूल और सूक्ष्म, शरीर, अविद्या करके आत्मस्वरूप के विषैं कल्पित हैं, वास्तवमें यथार्थ नहीं हैं, इस प्रकार इनका निश्चयरूपसे निषेध होताहै, तब यह जीव ब्रह्मस्वरूपमें एकताको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ संसाररूपसे क्रीड़ा करनेवाली यह परमेश्वरकी माया, जब ईश्वरकी कृपा से अपनी आवरण विक्षेप शक्तियों को त्यागकर विद्या (ज्ञान) रूपसे परिणामको

विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥ एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ॥ वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥ स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ॥ भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥३६॥ न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातुरवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः ॥ नामानि रूपाणि मनोवचोभिः सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥३७॥ स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ॥ योऽमायया संततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥ ३८ ॥ अथेह धन्या भगवन्त इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ॥ कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त-

प्राप्त होती है अर्थात् स्थूल सूक्ष्मशरीररूप दोनों उपाधियों को त्यागकर काष्ठरहित अग्निकी समान शान्त होती है, तब यह जीव ब्रह्मस्वरूप को पाकर परमानन्दस्वरूप में शोभा पाता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार माया के सम्बन्ध करके जैसे जीवको जन्मादि प्राप्त होते हैं तैसेही जन्मरहित, अकर्ता, एवं सर्वान्तर्यामी जो परमेश्वर तिसके भी गुप्त रीति से वेदों में वर्णन करेहुए जन्म और कर्म ब्रह्मादि सकल कवियोंने वर्णन करेहैं ॥३५॥ जिनकी लीलाएँ निष्प्रयोजन नहीं हैं, वहही ईश्वर इस चराचर जगत्को उत्पन्न करते हैं, पालन करते हैं, संहार करते हैं और वहही षड्गुणैश्वर्यवान् परमात्मा, त्वचा, नेत्र, कर्ण, जिह्वा, नासिका तथा मन इन छः इन्द्रियोंके नियन्ता तथा स्वतन्त्र हो सृष्टिकाल में सकल प्राणियों के अन्तर्यामी होकर क्रमसे छहों इन्द्रियों के स्पर्श, रूप, शब्द, रस, गन्ध, और चिन्तन इन छः विषयों को दूरसे, गन्धको सूँघने की समान स्वीकार करते हैं, परन्तु उन विषयों में आसक्त नहीं होते और जीव आसक्त होता है, इतनाही जीव और ईश्वरमें पराधीन और स्वाधीन होना रूप भेद है ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार अज्ञानी पुरुष बहुरूपिये के वा जादूगर के कर्त्तवों को नहीं जानता है, तिसीप्रकार परमेश्वरकी भक्ति न करनेवाला दुष्टबुद्धि कोई भी प्राणी, अपनी इच्छा से तथा वेद के वचनों से नामरूपों को प्रसिद्ध करनेवाले ईश्वर की सृष्टि आदि लीलाओं को तर्क आदि चतुराई से नहीं जानसक्ता है ॥ ३७ ॥ परन्तु जो भक्त निष्कपटभाव से और निरन्तर अनुकूल वर्त्ताव करके तिन परमेश्वर के चरणकमलों के गन्धका सेवन करता है, वहही तिन अनन्तपराक्रमी चक्रपाणि परमेश्वरकी लीलाओं के मार्गको जानता है ॥ ३८ ॥ अब सूतजी भक्तमार्गमें प्रवृत्तहुए शौनकादि ऋषियोंका सन्मान करते हैं कि-हे ऋषियो ! इस नैमिषारण्य के विषैं तुम धन्यहो, क्योंकि इन उत्तम प्रश्नों के द्वारा तुमने अपने चित्तकी वृत्ति अनन्यभाव से, सकल लोकों के अधिपति जो वासुदेवभगवान् तिनके विषैं लगाई है, ऐसी भावना करनेपर पुरुष, फिर महाभयङ्कर जन्ममरणरूप चक्रमें नहीं

उग्रः ॥ ३९ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥ उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥ ४० ॥ निःश्रेयसार्थं लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥ ४१ ॥ सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ॥ स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥ ४२ ॥ प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः ॥ कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥४३॥ कलौ नष्टदृशामेषे पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥ तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः ॥ अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ॥ सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाऽधीतं यथामति ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

व्यास उवाच—इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥ वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग

पड़ता है ॥ ३९ ॥ यह श्रीमद्भागवत नामक पुराण वेदकी समानहै, इसमें पवित्र कीर्ति विष्णुभगवान् का चरित्रहै; इसको साक्षात् वेदव्यासजीने रचाहै, यह धन देनेवाला, कल्याणकारी तथा परमपूजनीय है ॥ ४० ॥ सकल वेद और भारतादि इतिहासोंका सार२ निकालाहुआ है, यह श्रीमद्भागवत व्यासजी ने लोकों के कल्याण के निमित्त, आत्मज्ञानी योगियों में श्रेष्ठ अपने शुकदेव नामक पुत्रको दियाथा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर तिन शुकदेवजी ने यह, अति वैराग्य से मरणकालपर्यंत निराहार व्रत का सङ्कल्प करके नारदादि ऋषियों सहित भागीरथी के तटपर स्थित महाराज परीक्षित को सुनाया ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मणो ! तिस गङ्गातटपर महातेजस्वी महर्षि शुकदेवजी राजा परीक्षित को यह श्रीमद्भागवत सुनारहेथे, उस समय, मैं तहां गया और उन के अनुग्रह से (श्रवण करने को) बैठा ॥ ४३ ॥ तहाँ श्री शुकदेवजी करके संक्षेप से कहाहुआ भागवत मैंने जिस प्रकार पढ़ा है, सो अपनी बुद्धिके अनुसार तुम से विस्तारपूर्वक कहता हूँ ॥ श्रीकृष्णभगवान् के, धर्मज्ञान आदि सहित निजधामको पधारनेपर, कलियुगमें ज्ञानदृष्टिरहित हुए पुरुषोंका उद्धार करने के निमित्त इस समय यह श्रीमद्भागवत पुराण रूप सूर्य उदितहुआ है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवत के भाषाटीकामें तृतीय अध्याय समाप्त ॥*॥ अब इस चतुर्थ अध्यायमें भागवतके प्रारम्भ करनेका हेतुरूप, तप स्वाध्याय आदि कर्मों से व्यासजी के अन्तःकरण को सन्तोष न होनेका वर्णन है ॥ व्यासजी बोले कि—मैं तुमको भागवत सुनाता हूँ, ऐसा कहनेवाले सूतजीकी प्रशंसा करके सहस्र वर्ष में पूर्ण होनेवाले सत्रनामक यज्ञको करनेवाले ऋषियों में वृद्ध कुलपति ऋग्वेदी शौनक ऋषि कहनेलगे ॥ १ ॥ शौनक बोले कि—हे वक्ताओं में श्रेष्ठ महाभाग सूतजी !

यदि नो वदतां वर ॥ कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः ॥ २ ॥ कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ॥ कुतः संचोदितः कृष्णः कृतवान्संहितां मुनिः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः ॥ एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥ ४ ॥ दृष्ट्वाऽनुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ॥ तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुम्भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥ ५ ॥ कथमालक्षितः पौरैः सम्प्राप्तः कुरुजाङ्गलान् ॥ उन्मत्तमूकजडवद्विचरन् गजसाह्वये ॥ ६ ॥ कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ॥ सम्वादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥ ७ ॥ स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥ ८ ॥ अ-

भगवान् शुकदेवजीने, जो पवित्रकारिणी भागवतकी कथा परीक्षित से कही थी, वह हमको सुनाओ ? ॥ २ ॥ यह कथा कौनसे युग में, कौनसे स्थानपर और किस कारण से उत्पन्नहुई ? और किस के प्रेरणा करने से मुनि कृष्णद्वैपायन व्यासजीने यह भागवत संहिता रची ? ॥ ३ ॥ तिन व्यास जी के पुत्र श्रीशुकदेव जी, महायोगी, ब्रह्मज्ञानी, भेदभावरहित, एकान्त में चित्त लगानेवाले, और मायामय संसार से जागृत होकर गुप्तरीति से संसार में विचरनेवाले होने के कारण संसारी पुरुषों को मूढ़ से प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥ एक समय सकल सङ्ग को त्याग नग्न होकर जानेवाले शुकदेव जी के पीछे उनको बुलाने के निमित्त वस्त्र धारण करेहुए व्यास जी गये, मार्ग में एक सरोवर के विषैं अप्सरा नग्न होकर स्नान कररही थीं, उन्हो ने व्यासजी को देखते ही लज्जा से अपने वस्त्र धारण करलिये, परन्तु आगे ही आगे नग्नरूप गयेहुए शुकदेव जी को देखकर वस्त्र धारण नहीं करे थे, यह आश्चर्य देखकर व्यास जी ने तिन अप्सराओं से कारण बूझा; तब उन्हों ने उत्तर दिया कि—तुम्हारी "यह स्त्री है और यह पुरुष है" इस प्रकार की भेददृष्टि है, इसकारण हमने वस्त्र धारण करे. और पवित्र दृष्टि तुम्हारे पुत्र के विषै यह भेददृष्टि नहीं है अतः हमनें उनको देखकर वस्त्र धारण नहीं करे ॥ ५ ॥ ऐसे उन्मत्त गूंगे और जड़पुरुष की समान प्रथम कुरु एवं जाङ्गल नामक देशों में जाकर तदनन्तर हस्तिनापुर के विषैं विचरतेहुए तिन शुकदेव जी को वहाँ के निवासियों ने कैसे पहिचाना ? ॥ ६ ॥ और हे तात सूत जी ! तिन पाण्डववंशी राजर्षि परीक्षित का श्रीशुकदेव जी के साथ संवाद किसप्रकार हुआ ? कि—जिसके विषैं यह भागवतसंहिता प्रकट हुई ॥ ७ ॥ वह महाभाग शुकदेव जी गृहस्थी पुरुषों के गृहों के विषैं, अधिक से अधिक, जितना समय गौ के दुहने में लगता है, उतने ही समय पर्यन्त ठहरते हैं. सो भी भिक्षा के निमित्त नहीं किन्तु उनके स्थान को पवित्र करने के नि-

भिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ॥ तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥ ९ ॥ स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः ॥ प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥ १० ॥ नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हानीय धनानि शत्रवः ॥ कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥ ११ ॥ शिवाय लोकस्य भवाय भूतये ये उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ॥ जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् १२॥ तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किंचन ॥ मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ॥ जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥ १४ ॥ स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि ॥ विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ॥ १५ ॥ परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ॥ युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे

मित्त ॥ ८ ॥ हे सूतजी ! अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित को भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ कहतेहैं, उनका परम आश्चर्यकारी जन्म और कर्म हमारे अर्थ वर्णन करो ? ॥ ९ ॥ पाण्डवोंकी कीर्त्ति को बढानेवाले वह चक्रवर्त्ती राजा परीक्षित अपनी राज्य सम्पदाओं को त्यागकर भागीरथी के तटपर किस कारण मरणपर्यंत निराहार व्रतका सङ्कल्प करके बैठे थे ? ॥ १० ॥ हे सूतजी ! शत्रु अपने कल्याणके निमित्त भेट समर्पण करके जिन राजा परीक्षित के चरण रखने के आसनपर नमस्कार करते हैं, तिन वीरने तरुण होकर, जिसको त्यागना कठिन है ऐसी राज्यलक्ष्मी को अपने प्राणों सहित त्यागनेकी इच्छा क्योंकर करी ? ॥ ११ ॥ जो पुरुष, भगवान्के विषैं लवलीन होते हैं वह, प्राणियों के कल्याण, समृद्धि और ऐश्वर्य हो इस हेतुही जीवन धारण करते हैं, अपने स्वार्थ के निमित्त नहीं, ऐसा होनेपर भी इन राजा परीक्षित ने विरक्त होकर अनेकों पुरुषों के आश्रयरूप अपने शरीरको त्यागनेका सङ्कल्प किस कारण करा ? ॥ १२ ॥ हे सूतजी ! इस समय आपसे हमने जो कुछ प्रश्न करे तिन सबका उत्तर हमारे अर्थ कहो; क्योंकि तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों से पृथक् होनेके कारण वेदके सिवाय सकल वाणियोंके पारङ्गत हो, ऐसा हम जानते हैं ॥ १३ ॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगोंके वर्त्तते २ जब तीसरी वार द्वापर आया तब श्रीनारायण के अंश करके पराशर ऋषि से वासवी कहिये वसुराजा से उत्पन्नहुई सत्यवती के विषैं योगी (ज्ञानी) व्यासजी प्रकटहुए ॥ १४ ॥ वह एकदिन सरस्वती नदीके पवित्र जल में स्नान सन्ध्यादि नित्यकर्म करके सूर्योदयके समय एकान्त स्थान (वदरिकाश्रम) के विषैं बैठे थे ॥ १५ ॥ भूत भविष्यत् को जाननेवाले, अमोघदृष्टि तिन ऋषि व्यासजी,

॥ १६ भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ॥ अश्रद्दधानान्निः-
सत्त्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ॥ १७ ॥ दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ॥
सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥ १८ ॥ चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां
वीक्ष्य वैदिकम् ॥ व्यदधाद्यज्ञसंतत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥ १९ ॥ ऋग्यजुः-
सामाऽथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ॥ इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते
॥ २० ॥ तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ॥ वैशम्पायन एवैको नि-
ष्णातो यजुषामुत ॥ २१ ॥ अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ॥ इति-
हासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२ ॥ त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्य-
स्यन्ननेकधा ॥ शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥ २३ ॥ त एव वेदा
दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा ॥ एवं चकार भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥ २४ ॥ स्त्रीशूद्र
द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ॥ कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥ इति

जिसका वेग देखने में नहीं आसक्ता ऐसे कालके प्रभाव से, प्रत्येक युग में भिन्न२प्रकार से रहनेवाले धर्मका परस्पर सङ्कर (गोलमाल) होगया है ऐसा देखकर ॥१६॥ और तिस काल का कराहुआ, पञ्चमहाभूतरूप शरीरों की शक्ति का ह्रास (न्यूनता) देखकर, तथा आस्तिकता की बुद्धि से रहित, धैर्यहीन, अल्पायु और दुर्भाग्य प्राणियों को ज्ञानदृष्टि से देखकर, "सकल वर्ण और आश्रमों का हित किसप्रकार होगा" इस विषय की चिन्ता करने लगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर, चार ऋत्विक् जिस में हवन करें ऐसे, वेद में कहेहुए कर्म को लोकों को पवित्र करनेवाला देखकर, यज्ञमार्ग निरन्तर चलता रहे, इस प्रयोजन से उन्होंने एक वेदके चार विभाग हुए ॥ १९ ॥ वह ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार शाखाओं के भेद से भिन्न२ करे; एवं इतिहास और पुराण पाँचवाँ वेद कहाताहैं ॥२०॥ तिन में ऋग्वेद को पैल ऋषिने पढ़ा, जैमिनि कविने सामवेदका गान करा, और एकही वैशम्पायन ऋषि यजुर्वेद में पारङ्गत हुए ॥ २१ ॥ सुमन्तु नामक क्रूर स्वभाववाले ऋषि अथर्ववेद के आचार्यहुए, और इतिहास तथा पुराणों में मेरे पिता रोमहर्षण पारङ्गत हुए ॥ २२ ॥ इन सब ऋषियोंने भी अपने २ वेद अनेकों प्रकारसे विभक्त करे, और उनकी भी शिष्यपरम्परा से वह वेद शाखाओं वाले हुए ॥ २३ ॥ जिन वेदों को पूर्व में परमबुद्धिमान् ही धारण करसक्ते थे, उनको मन्दबुद्धि पुरुष जैसे भी ग्रहण करसकें, तिसप्रकार दीनवत्सल व्यासजी ने विभाग करदिया ॥ २४ ॥ तैसेही स्त्री, शूद्र, पतित ब्राह्मण, पतित क्षत्रिय और पतित वैश्य इन को वेद सुनने का अधिकार नहीं है, अतः कर्म करके कल्याण प्राप्त करने में मूढ़ तिन स्त्रीशूद्रादिको मङ्गल प्राप्तहो, इस प्रकारकी कृपा करके तिन व्यासजी ने भारतरूप इ-

भारतंभारतार्थानं कृपया मुनिना कृतम् २५ एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः। सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ॥ २६ ॥ नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ॥ वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित्॥२७॥धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः ॥ मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम्॥२८॥भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ॥ दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥२९॥ अथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ॥ असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥ ३० ॥ किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ॥ प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥ ३१ ॥ तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ॥ कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥ ३२ ॥ तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ॥ पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भा० प्रथ० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ॥ देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥१॥

तिहास रचा ॥२५॥ हे शौनकादि ऋषियो! इस प्रकार निरन्तर सकल प्राणियों के कल्याण के निमित्त अनेकों उपायों में सदा तत्पर व्यासजी का हृदय जब सन्तुष्ट न हुआ ॥ २६ ॥ तब हृदयकी सन्तुष्टता रहित धर्मवेत्ता वह व्यासजी "ऐसा होनेका कारण क्या है ?" इसके विषयमें, सरस्वती नदी के पवित्र तटपर एकान्त बदरिकाश्रम में बैठकर तर्कना करतेहुए अपनेसे ही इस प्रकार कहनेलगे ॥ २७ ॥ कि—मैंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आदि व्रत धारण करके वेद, गुरु, और अग्निका निष्कपटभावसे आदर करा, और उनकी आज्ञा मानी ॥ २८ ॥ तैसेही महाभारतके मिष से वेदों का अर्थ भी दिखाया, कि-जिसमें शूद्रादि पर्यन्त अपने अपने धर्म आदि देखसक्ते हैं ॥ २९ ॥ ऐसा होनेपरभी मेरा यह देहमें स्थित आत्मा वास्तव में परिपूर्ण और ब्रह्मतेजस्वी ऋषियों में अतिश्रेष्ठ होकर भी अपने वास्तविक स्वरूपको न प्राप्त हुआसा प्रतीत होता है ॥ ३० ॥ अथवा क्या मैंने विस्तारके साथ भागवतधर्मका वर्णन नहीं करा ? क्योंकि वह भागवतधर्म परमहंसों (सत् असत् का ज्ञानवालों) को प्रिय और श्री नारायण को भी प्रिय प्रतीत होते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार अपने आत्मा को असन्तुष्ट मानकर तिन व्यासजी के खिन्न होने पर पूर्व में कहेहुए व्यासजी के आश्रम में नारद ऋषि आकर प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ श्रीव्यासजीने नारद मुनि को आया देखकर अभ्युत्थानदिया, और देवताओं से भी पूजित तिन नारदजी का विधिपूर्वक पूजन करा ॥ ३३ ॥ श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी वोले कि—तदनन्तर हाथ में वीणा लेकर सुखसे बैठे हुए महायशस्वी नारदजी समीप में विराजमान विप्रश्रेष्ठ व्यासजी से कुछ मुसकुराकर प्रसन्नमुख से कहनेलगे ॥१॥

नारद उवाच ॥ पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ॥ परितुष्यति शारीर
आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥ जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्भुतम् ॥ कृतं-
वान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥ ३ ॥ जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म स-
नातनम् ॥ अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥
अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे ॥ तन्मूलमव्यक्त-
मगाधबोधं पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥ ५ ॥ स वै भवान्वेद समस्तगुह्य-
मुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ॥ परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणै-
रसङ्गः ॥ ६ ॥ त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ॥ परावरे
ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥
भवताऽनुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ॥ येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं
खिलम् ॥ ८ ॥ यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ॥ न तथा वासुदेवस्य

नारदजी बोले कि—हे महाभाग्यशालिन् पराशरनन्दन व्यासजी ! तुम्हारा शरीराभिमानी आत्मा शरीर से और मन का अभिमानी आत्मा मन से सन्तोष पाता है या नहीं ?॥ ॥ २ ॥ तुमको जो धर्मादि जानने योग्य थे वह तुमने उत्तम प्रकार से जानलिये हैं, और उनका अनुष्ठान भी करा है, क्योंकि—धर्मादि सकल पुरुषार्थों से पूर्ण अति अद्भुत महाभारत तुमने रचाहै ॥ ३ ॥ और सनातन ब्रह्मका विचार करके उसको तुमने प्राप्त भी करा है, ऐसा होने परभी हे प्रभो ! तुम अपने को कृतार्थ न हुआसा मानतेहो इस का क्या कारण है ? ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले कि—हे नारदऋषे ! तुमने जो कुछ कहा, सब यद्यपि मेरे में है तथापि मेरा बाह्य तथा अन्तरात्मा सन्तुष्ट नहीं होता है, इसकारण बुद्धि में न आनेवाला तिस असन्तोष का मूलकारण, ब्रह्माजी के पुत्र अगाधज्ञानवान् तुम से, मैं पूछता हूं ॥ ५ ॥ तुम सकल गुप्त ज्ञान जानते हो, क्योंकि—जो असङ्ग होकर कार्य कारणात्मक सृष्टि के नियन्ता पुराण पुरुष, अपने सङ्कल्पमात्र से, सत्व, रज और तम इन गुणों के द्वारा जगत्की उत्पत्ति स्थिति और संहार करते हैं, तिन अनादि नारायणकी तुमने उपासना करी है ॥ ६ ॥ तुम सूर्यकी समान त्रिलोकी में विचरनेवाले और अपनी योगशक्ति से वायुकी समान सकल प्राणियों के अन्तर्यामीरूपसे विचारतेहुए तिनकी बुद्धियोंकी वृत्तियों को जानतेहो, इसकारण सगुण निर्गुणब्रह्मके विषैं तप योग आदि साधनोंकरके पारङ्गत तुम, मेरेमें जो न्यूनताहै तिसको कहो ७ श्रीनारदजी बोले, कि—हे व्यासजी ! तुमने श्रीभगवान् का पवित्र यश पूर्णरीति से वर्णन नहीं करा, क्योंकि—अन्तर्यामी भगवान् जिस ज्ञान से प्रसन्न न हों मैं उस ज्ञान में न्यूनता मानता हूं ॥ ८ ॥ हे मुनिवर ! तुमने धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह चारों

महिमा ह्यनुवर्णितः ॥ ९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः १० तद्वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ११ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥ १२ ॥ अथो महाभाग भवानमोघदृक्शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ॥ उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपना-

---

पुरुषार्थ और इन के साधनों का जैसा वर्णन करा वैसा वासुदेव भगवान् की महिमा का वर्णन नहीं करा ॥ ९ ॥ मनोहर पदरचना से युक्त भी वाक्यों में यदि जगत्को पवित्र करनेवाले हरि का यश किसी समय भी वर्णन नहीं करा तो वह वाक्य, काकों की समान जो विषयी पुरुष तिनके क्रीड़ा करने का स्थान है, ऐसा सत्पुरुषों ने माना है, ब्रह्मके विषैं रमण करनेवाले शुद्धसत्वगुणी परमहंस उनमें रमण नहीं करते हैं अर्थात् जिस प्रकार मानसरोवर में वास करनेवाले हंस, काकों के क्रीडा स्थान उच्छिष्ट आदि के विषैं नहीं प्रवृत्तहोते हैं, तैसेही भगवद्भक्त हरिवर्णन से हीन वाक्यों में चित्त नहीं लगाते हैं ॥ १० ॥ व्याकरणादि के अनुसार अशुद्ध होने परभी जिस वाणी के प्रयोग रूप प्रत्येक श्लोक में, सत्पुरुषों करके, अन्य वक्ता से सुने हुए, किसी श्रोता के सम्मुख, वर्णनकरे हुए और किसी के न मिलनेपर स्वयं एकान्त में गान करे हुए, अनन्त भगवान् के यशसे चिन्हित नाम होते हैं, वहही वाणीका प्रयोग लोकों के पापोंका नाश करता है ॥ ११ ॥ मायाकी करीहुई उपाधिका नाश करनेवाला कर्मनिवृत्ति पर जो ज्ञान है, वहभी श्रीनारायणकी भक्तिसे रहित होय तो शोभाको नहीं प्राप्त होता है, अर्थात् तिस ज्ञानसे ब्रह्मज्ञान नहीं होता है । फिर साधनके समय अथवा फल प्राप्त होनेके समय निरन्तर दुःखरूप सकाम वा निष्काम कर्म, ईश्वर के समर्पण नहीं किये तो कैसे शोभा पावेंगे ? क्योंकि–बहिर्मुख वृत्तिसे करेहुए कर्मोंके द्वारा चित्त शुद्धिही नहीं होतीहै॥१२॥ इसकारण हे महाभाग व्यासजी ! तुम यथार्थ ज्ञानवान् शुद्ध यशवाले, सत्य में तत्पर और व्रत धारण करने वाले हो, अतः सकल प्राणियों के संसारबन्धन से मुक्त होने के निमित्त उरुक्रम भगवान् की लीलाओं का समाधि के द्वारा चिन्तवन करो और फिर उन लीलाओं को वर्णन करो ॥ १३ ॥ तिन भगवान् की लीलाओं को त्यागकर अन्य वार्ताओं में ही दृष्टि रखनेवाले तथा अन्य प्रकारकेही नामरूपादि का वर्णन करनेकी इच्छा करनेवाले तुम्हारी बुद्धि, तिस वर्णन करनेकी इच्छा से मन में

मभिः ॥ न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥ ॥ १४ ॥ जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यतिक्रमः ॥ यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥ १५ ॥ विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ॥ प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभोः ॥१६॥ त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ॥ यत्र क्व वा भद्रमभूदमुष्य किं को वाऽर्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥१७॥ तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ॥ तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र

आयेहुए सौंदर्य आदि रूपोंकरके तथा स्वर्गादि नामों से चञ्चलहोकर, वायुके वेगसे इधर उधर को डगमगाने वाली नौका की समान किसी समय किसी विषय में भी विश्रामस्थान नहीं पावेगी ॥ १४ ॥ इसकारण निन्दित काम्य कर्म आदि के विषैं स्वभावसेही तत्पर पुरुष को धर्म के निमित्त तिसही सकामकर्मरूप निन्दित धर्म का वर्णन करनेवाले तुम्हारा यह बड़ा अन्याय है; क्योंकि–तुम्हारे वाक्य से 'यहहीधर्महै' ऐसा निश्चय करनेवाले मूढ़पुरुष, अन्य तत्वज्ञानी पुरुष के करेहुए अथवा तुम्हारे ही करेहुए तिस काम्यकर्मादि के निषेधको ठीक नहीं मानेंगे ॥ १५ ॥ कोईप्रवीण पुरुष ही सकल कर्मोंकी निवृत्ति से अन्त और पार रहित व्यापक परमात्मा के सुखस्वरूप के जानने को समर्थ होता है, परन्तु ऐसा सकल पुरुष नहीं जानसक्ते, इसकारण हे समर्थ व्यासजी ! सत्वादि गुणों के द्वारा प्रवृत्तिमार्ग में आसक्त हुए तथा शरीर,स्त्री इत्यादि के विषैं, मैं मेरा ऐसा अभिमान करनेवाले अज्ञानी पुरुषों के निमित्त तुम श्रीनारायण की लीला आदि वर्णन करो॥१६॥ अपने वर्ण तथा आश्रमको कहेहुए निजधर्म को त्यागकर श्रीहरिके चरण कमलोंकी भक्ति करनेवाला पुरुष, पूर्ण (परिपक्व) अवस्थाको प्राप्त होनेसे पूर्वही यदि किसी कारणवश मरणको प्राप्त होजाय अथवा भ्रष्ट होकर किसी नीच योनि में उत्पन्न होजाय तो क्या किसी भक्ति रसिकका, भक्ति वासना होनेके कारण अमङ्गल होगा ? किन्तु कदापि नहीं; और जो हरिभक्ति नहीं करते हैं उनका क्या केवल स्वधर्म पालनसे कोई प्रयोजन सिद्ध होसक्ता है ? किन्तु कोई नहीं; ॥ १७ ॥ स्वधर्माचरण आदि के द्वारा पितृलोक आदिकी प्राप्ति होजायगी परन्तु जो सख ब्रह्माजी पर्यन्त उत्तम योनियों में और वृक्ष पाषाण पर्यंत नीच योनियों में भ्रमने वाले जीवोंको नहीं प्राप्त होता है, तिसकीही प्राप्तिके निमित्त चतुर पुरुष को यत्न करना चाहियें, विषयसुखके निमित्त यत्न नहीं करना चाहिये. क्योंकि वह विषयसुख, महावेगवान् कालके प्रभाव से जैसे संसारमें सर्वत्र विना यत्नही-पूर्व कर्मानुसार दुःख प्राप्त होताहै, तैसेही विनायत्नही सर्वत्र अपने आप आकर प्राप्त होजायगा

गभीररंहसा ॥ १८ ॥ न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग सं-
सृतिम् ॥ स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥ १९ ॥
इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसंभवाः ॥ तद्धि स्वयं
वेद भवांस्तथाऽपि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥२०॥ त्वमात्मनात्मानम-
वेह्यमोघदृक्परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ॥ अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानु-
भावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥२१॥ इदं हि पुंसः तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सू-
क्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ॥ अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणा-
नुवर्णनम् ॥२२॥ अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ॥
निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥ २३ ॥ ते म-
य्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ॥ चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्य
दर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥ २४ ॥ उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः
सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः ॥ एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः

॥ १८ ॥ हे व्यासजी ! भगवान्की सेवा करनेवाला यदि किसी नीचयोनि में पहुँचजाय तबभी कर्मासक्त पुरुषकी समान संसारचक्र में नहीं भ्रमेगा; क्योंकि- वह तिस योनिमेंभी भक्तिसुधारस के वशमें हुआ, भगवान्के चरणोंके आलिङ्गनको मनमें धारकर फिर त्यागना नहीं चाहताहै ॥ १९ ॥ जिनसे जगत्की स्थिति प्रलय और जन्म होते हैं, सकल विश्व तिनकाही स्वरूप है, और वह इस जगत्से पृथक् हैं; सो सब तुम स्वयं जानतेहीहो तथापि तुम्हें एकदेशमात्र (इशारा) दिखादियाहै ॥ २० ॥ हे सर्वज्ञव्यासजी ! तुम अपनेको, जन्म मरणरहित, जगत्के कल्याण के निमित्त परमपुरुष परमात्माका अंशावतार प्रकट हुआ स्वयंही जानो, और परमप्रतापी हरिके चरित्रोंको अधिकता से वर्णनकरो॥२१॥ ब्रह्मादि कवियों ने पुरुष के तप, पाण्डित्य; उत्तम यज्ञ, वेदपाठ, उत्तम बुद्धि और दान धर्मका यहही अखण्डित फल कहा कि-जो नित्य श्रीहरिके चरित्रोंका वर्णन करनाहै॥२२॥ हे मुने ! मैं पूर्वकल्प में होनेवाले जन्म में वेदवक्ता ऋषियोंकी किसी दासीका पुत्रथा; मुझ बालककोही मेरी माताने वर्षाकाल में एकत्र निवास करनेकी इच्छावाले योगियोंकी सेवा में नियुक्त करादिया॥२३॥यद्यपि वह मुनि समदृष्टि थे;तथापि बालक होकरभी सर्वथा चपलता रहित, इन्द्रियजित, किसी प्रकार के खेलमें चित्त न देने वाले सेवा में तत्पर, अनुकूल वर्त्ताव करनेवाले और थोड़ा भाषण करनेवाले मेरे ऊपर उन्होने कृपा करी ॥ २४ ॥ और मैं उन की आज्ञा से, पात्रोंमें लगीहुई उनकी जूठनको एकवार भोजन करताथा. तिस से मेरे सब पाप नष्ट होगए; इसप्रकार सेवामें तत्पर होनेसे निर्मलचित्त होकर मेरी रुचि उन के धर्म

प्रजायते ॥ २५ ॥ तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ॥
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः ॥ २६ ॥ तस्मि-
स्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ॥ ययाहमेतत्सदसत्स्वमा-
यया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे" ॥ २७ ॥ इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू ह-
रेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ॥ संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः
प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा ॥ २८ ॥ तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः॥
श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च॥ ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतो-
दितम् ॥ अन्ववोचन्गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥ २९ ॥ ३० ॥ येनै-
वाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः ॥ मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम्
॥ ३१ ॥ एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ॥ यदीश्वरे भगवति कर्म-
ब्रह्मणि भावितम् ॥ ३२ ॥ आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ॥ तदेव

(भगवद्भजन) में होगई ॥ २५ ॥ हे मुने ! तहाँ प्रतिदिन कृष्णगुणगान करनेवाले तिन के अनुग्रहसे मैं मनोहर कथाओं को सुनताथा. इसप्रकार प्रतिक्षण श्रद्धासे तिन कथाओं को श्रवण करनेपर प्रिय है यश जिनका तिन भगवान्‌के विषैं मेरी रुचिहुई ॥२६॥ हे महामुने ! तिन प्रिययश भगवान्‌के विषैं रुचि होजानेसे मेरी बुद्धिभी भगवत्स्वरूप में स्थिर होगई.जिसके प्रभाव से मैंने, "प्रपञ्चसे पर ब्रह्मस्वरूप मेरेमें,यह स्थूल और सूक्ष्म शरीर मेरेही अज्ञान करके कल्पितहै" ऐसादेखा ॥२७॥ इसप्रकार वर्षा और शरद् इन दो ऋतुओंमें (चारमास पर्यन्त) तिन महात्मा ऋषियों के कीर्त्तन करेहुए श्रीहरिके निर्मल यशको त्रिकाल सुननेवाले मेरे अन्तःकरणमें रजोगुणी और तमोगुणी कुत्सित वृत्तियोंका नाश करनेवाली भक्ति उत्पन्न हुई ॥२८॥ इसप्रकार कथा सुनकर दृढ़ भक्तिमान्, त्वं पदार्थके ज्ञानयुक्त, निष्पाप, नम्र, भगवद्भजनमें तत्पर, इन्द्रियोंको वशमें करके तिन ऋषियोंकी सेवा करनेवाले श्रद्धावान् मुझ बालकको ॥ २९ ॥ तिन दीनवत्सल मुनियों ने, चार मासके अनन्तर तहाँ से चलते समय कृपा करके साक्षात् भगवान् का कहाहुआ अति गुप्त ज्ञानका उपदेशकरा ॥ ३० ॥ तिससेही मैंने जगत्कर्त्ता वासुदेव भगवान् की मायाके प्रभावको जाना; जिसके जानने से प्राणी भगवत्स्वरूपको पाते हैं ॥३१॥ हे ब्रह्मन्! सबके नियन्ता अखण्ड ब्रह्मस्वरूप भगवान् को समर्पण कराहुआ,जो कर्म,आध्यात्मिक आदि तीनों तापों का नाशकारक होताहै; सो यह सकल कर्मोंका रहस्य मैंने तुम्हारे अर्थ उत्तम प्रकार से वर्णन करा॥३२॥ हे उत्तमव्रतधारिन्! जिन पदार्थोंसे प्राणीमात्रके रोग उत्पन्न होते हैं, वहही पदार्थ रोगको दूर नहीं करते हैं, यह ठीक है,परन्तु अन्य पदार्थोंमें मिलकर वहही रोगका नाश करदेते

ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥ ३३ ॥ एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ॥ त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥ ३४ ॥ यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ॥ ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् । ॥ ३५ ॥ कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् ॥ गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ॥३६॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्ना-यानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥३७॥ इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् ॥ यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ॥ ३८ ॥ इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् ॥ अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः ॥ ३९ ॥ त्वमप्यद-भ्रश्रुत विश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ॥ आख्याहि दुःखैर्मुहुर-र्दितात्मनां संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते प्रथ० व्यासनारदसम्वादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ७ ॥ ७ ॥ ७ ॥

सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ॥ भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्म-

---

हैं ॥३३॥ इसीप्रकार जो मनुष्यों के सकल कर्म संसारबन्धन के कारणहैं, वहही परमेश्वर को समर्पण करनेपर अपना (कर्मोंका) नाश करने को समर्थ होते हैं ॥३४॥ इस भरतखण्ड में जो कर्म भगवान् को प्रसन्न करने के निमित्त कियाजाताहै, भक्तियोग सहित ज्ञान उस के आधीनहीहै ॥ ३५ ॥ "यत्करोषीत्यादि" गीतामें कहीहुई, इस भगवान्की शिक्षासे जब पुरुष वारंवार ईश्वरार्पण करनेकी भावनासहित कर्म करतेहैं, तब श्रीकृष्ण भगवान्के गुण और नामोंका कीर्त्तन तथा स्मरण करतेहैं ॥ ३६ ॥ हे भगवन् तुमको नमस्कारहै, वासुदेव को मैं मन से नमस्कार करता हूँ, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं सङ्कर्षण को नमस्कार है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार मूर्त्तियों के नाम लेकर, मंत्रोंमें कहीहैं सच्चिदानन्द आदि मूर्त्तियें जिनकी ऐसे, कर्माधीन प्राकृतमूर्त्ति रहित यज्ञ पुरुषका जो पूजन करताहै वह लीलाविग्रह भगवान् का दर्शन पाताहै ॥३८॥ हे ब्रह्मन् ! नारायण के स्वयं उपदेश करने के अनुसार मेरे करे अनु-ष्ठान को जानकर, केशवभगवान्ने मुझे, ज्ञान ऐश्वर्य और अपनेस्वरूपमें प्रेम दिया ॥३९॥ हे अनेकों शास्त्रों के ज्ञाता व्यासजी ! तुमभी परमेश्वरके प्रसिद्ध यशको प्रधानरूपसे वर्णन करो, जिससे विद्वानोंकी भी जाननेकी इच्छा पूर्ण होती है, सत्पुरुषोंका कथन है कि आ-ध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के दुःखों से वारंवार पीड़ितहै अन्तःकरण जिनका तिन प्रा-णियों के क्लेशकी निवृत्ति भगवान्के यश के श्रवण कीर्त्तनादि के विना नहीं होतीहै ॥४०॥ पञ्चम अध्याय समाप्त ५ ॥ * ॥ सूतजी बोले, कि हे शौनक ! इस प्रकार देवर्षि ना-रदके पूर्वजन्म और कर्मको सुनकर तिन सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यासजीने फिर नारदजी

न्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृ-
भिस्तव ॥ वर्तमानो वयस्याऽऽद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥ २ ॥ स्वायंभुव कया
वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः ॥ कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥ ३ ॥
प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम ॥ न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनि-
राकृतिः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ॥ वर्त-
मानो वयस्याऽऽद्येतत एतदकारषम् ॥ ५ ॥ एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किङ्क-
री ॥ मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ॥ ६ ॥ साऽस्वतन्त्रा न कल्पाऽऽसी-
द्योगक्षेमं ममेच्छती ॥ ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥ ७ ॥ अहं च तद्ब्र-
ह्मकुल ऊषिवांस्तदवेक्षया ॥ दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥ ८ ॥
एकदा निर्गतां गेहाद्दुहन्तीं निशि गां पथि ॥ सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां काल-
चोदितः ॥ ९ ॥ तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ॥ अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं

से प्रश्न करा ॥ १ ॥ व्यासजी बोले, कि-हे नारदजी ! तुमको उत्तम ज्ञानोपदेश देनेवाले तिन योगियोंके तहाँसे चलेजानेपर बालक अवस्था में ही वर्त्तमान तुमने फिर क्या किया ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्माजीकेपुत्र ! तुमने अपनी आगेकी आयु किस वर्त्तावसे बितायी. और मरण समय आनेपर तिस अपने शरीरको किसप्रकार त्यागा ॥ ३ ॥ हेदेवताओंमें श्रेष्ठ ! पूर्वकल्प की तुम्हारी स्मृतिको एककल्पपर्यंत वीतेहुए कालने कैसे नष्ट नहीं करा ? क्योंकि यह कालतो सबका नाशकरदेता है ॥ ४ ॥ नारदबोले, कि मुझेज्ञानका उपदेश करनेवाले योगियों के चलेजानेपर बालक अवस्थामें वर्तमान मैंने, आगेका समय इस प्रकार विताया कि ॥ ५ ॥ मेरीमाता, स्त्री, ज्ञानहीन, औरदासीथी, तिसकामैं एकहीपुत्रथा; मेराभी कोईदूसरा आश्रयनहींथा. इसकारण वह मेरे ऊपर बड़ा प्रेम करतीथी ॥ ६ ॥ वहमेरे योग क्षेम*की इच्छा करतीथी, तथापि पराधीन होनेके कारण कुछ करने को समर्थ नहीं होतीथी. क्योंकि काठ की पुतली की समान यहजगत् परमेश्वर के वशमें है ॥ ७ ॥ मैंभी पाँचवर्ष का बालक था, मुझको दिशा, देश एवं कालका कुछ ज्ञाननहींथा; तथापि माताका प्रेमबन्धन कबटूटै और कब माताका देहान्तहोय, इसकीबाट देखता हुआ तिस ब्राह्मणकुलमें निवासकरताथा ॥ ८ ॥ एकसमय रात्रिमें गौ दुहनेके निमित्त मेरीमाता घरसे बाहर (गोशाला में को) जाती थी, मार्ग में चरणसे दबेहुए और मृत्यु के प्रेरणा करेहुए एक सर्प ने उसको डसलिया ॥ ९ ॥ तब भक्तोंके कल्याण कीइच्छा करनेवाले परमेश्वर का यह अनुग्रहही हुआ, ऐसा

---

* जो वस्तु अपने पास न हो उसकी प्राप्तिका नाम योग और जो वस्तु अपने पासहो उसकी रक्षा करनेका नाम क्षेम है ॥

दिशमुत्तराम् ॥१०॥ स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥ ११ ॥ चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ॥ जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥ चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ॥ नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम्॥ एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् ॥ घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाऽजिरम् ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ परिश्रान्तेन्द्रियात्माऽहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ॥ स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥ १५ ॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आस्थितः ॥ आत्मनात्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम् ॥ १६ ॥ ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ॥ औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥ १७ ॥ प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ॥ आनन्दसंप्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥ ॥ १८ ॥ रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचाऽपहम् ॥ अपश्यन्सहसोत्तस्थे वै-

---

मानकर मैं तहाँ से उत्तर दिशाकी ओरको चलदिया ॥ १० ॥ तिस दिशा में, ऐश्वर्यादि एवं धान्यादि से शोभित अनेकों देश, राजधानियें, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों से वसे हुए ग्राम गौओं के व्रज, रत्नादि की खानियें, किसानों के के ग्राम, नदी पर्वतों के समीपके छोटे २ ग्राम, पुष्पवाटिकाएँ, वन, उपवन ॥ ११ ॥ धातुओंसे चित्र विचित्र पर्वत,हाथियों करकै शाखा तोड़ेहुए वृक्ष,पवित्र जलोंके सरोवर; और देवताओं से सेवित, कमलों से सुन्दर एवं विचित्र शब्द करनेवाले पक्षियोंकी कुहकों से, उड़तेहुए भ्रमरोंकी झङ्कारोंसे रमणीय अनेकों कमलाकर सरोवरोंको देखता देखता मैं इकलाही तिन देशोंको लाँघकर आगे गया. तहाँ एक महाभयङ्कर दुःसह वन मेरे देखनेमें आया, उस वनमें, नल वेणु,शरोंके झुण्ड, कुशा और वायुके लगने से स्वयं गुञ्जारनेवाले वेणुओं (बाँसों) के कारण प्रवेश करना कठिन था. और केवल अजगर, उलूक, और गीदड़ियोंका ही क्रीड़ा स्थान होरहा था ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस समय मेरी इन्द्रियें और देहने वड़ा श्रममाना, क्षुधा और तृषासे मैं बड़ा व्याकुल होगया, अतःतहाँएक नदीके कुण्डेमें मैंने स्नान करके आचमन कर जल पिया; तिससे मेराश्रम दूरहुआ ॥ १५ ॥ तदनन्तर मैं तिस निर्जन वनमें एक पीपलके वृक्षके नीचे वैठकर पूर्वमें जैसा सुनाथा उसके अनुसार अपने हृदय में परमात्मस्वरूपका मनसे ध्यान करनेलगा ॥ १६ ॥ भक्तिपूर्वक स्वाधीन चित्तसे चरण कमलोंका ध्यान करनेवाले और उत्सुकतासे जिसके नेत्रों में आनन्द के अश्रु भरआये हैं ऐसे मेरे हृदय में श्रीहरि धीरे२प्रकट होनेलगे ॥१७॥ हेमुने ! तव अतिप्रेमसे मेरे सकल अङ्गों में रोमाञ्च खड़े होगए तव अति सन्तुष्ट तथा आनन्दसागर में मग्नहुए मैंने अपने शरीर और अन्य पदार्थों को नहीं देखा ॥१८॥ तदनन्तर सकलशोकोंका नाश करनेवाला

क्लव्याहुर्मना इव ॥ १९ ॥ दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ॥ वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥ २० ॥ एवं यतन्तं विजने मामाहाऽगोचरो गिराम् ॥ गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥२१॥ हन्ताऽस्मिञ्जन्मनि भवान्न मां द्रष्टुमिहार्हति ॥ अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥२२॥ सकृद्यद्दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ॥ मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ॥२३॥ यत्सेवयाऽदीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः॥ हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ॥ २४ ॥ मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ॥ प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥२५॥ एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ॥ अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णाऽवनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥ २६ ॥ नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्गुह्यानि

और मन को अतिप्रिय प्रतीत होनेवाला भगवानका स्वरूप अकस्मात् मनसे अन्तर्धानसा होगया; तब मैं व्याकुलतासे खिन्नसा होकर एकायकी शरीरकी स्थितिपर ध्यान देनेलगा १९ और फिर तिस भगवत्स्वरूपको देखनेकी इच्छासे मैं अपना मन हृदय में स्थिर करके ध्यान करनेलगा, तो भी वह हरिकारूप दृष्टि न पड़ा, तब तृप्त न होने के कारण तिसरूपको दर्शन करने के विषयमें मैं आतुरसा होगया ॥ २० ॥ इस प्रकार तिस एकान्त वनमें भगवत्स्वरूप के दर्शनके निमित्त मेरे यत्न करनेपर, वेदवाणी से भी जिनको जानना कठिनहै ऐसे ईश्वर गम्भीर और मधुर आकाशवाणी के द्वारा, मेरे शोकका नाश करतेहुए मानो, मुझसे कहने लगे, कि ॥ २१ ॥ हेतातनारद ! तू इस दासीपुत्ररूप जन्ममें मेरा दर्शन करने के योग्य नहीं है, क्योंकि जिनकी कामादि वासना दग्ध नहीं हुईहैं, तिन कुयोगी पुरुषोंको मेरा दर्शन होना दुर्लभहै ॥ २२ ॥ हे निष्पाप नारद ! मेरे स्वरूपमें स्थिर प्रीति रहने के निमित्त, मैंने यह स्वरूप तुझे एकवार दिखायाहै, क्योंकि मेरे स्वरूपमें प्रीति करनेवाला साधु पुरुष अपने अन्तःकरणकी सकल वासनाओं को धीरे २ त्यागदेता है ॥ २३ ॥ पहिले वालक अवस्था में थोड़े समयभी करीहुई साधु सेवासे तेरी मेरेमें दृढ़ मतिहुई; इसके प्रभावसे तू अपने इस अमङ्गल शरीरको त्यागकर अगले जन्ममें मेरा पार्षद होगा ॥ २४ ॥ मेरे स्वरूपमें बँधीहुई यह तेरी बुद्धि कदापि नष्ट नहीं होगी; एवं सकल लोकोंकी सृष्टि और प्रलय होजानेपर भी मेरे अनुग्रह से तुझ को पूर्वजन्म आदि का स्मरण रहेगा ॥ २५ ॥ ऐसा कहकर, आकाशादि सब स्थलोंमें व्यापक, दृष्टिगोचर न होनेवाला, सबका नियन्ता, सत्तारूप वह ब्रह्मस्वरूप विरामको प्राप्तहुआ, इसप्रकार तिन परमेश्वर के मुझको अपनी दयाका पात्र करनेपर, ब्रह्मादि से भी महान् तिन ईश्वरको मैंने मस्तकसे प्रणाम किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर गर्व और स्पर्धारहित, सर्वत्र निस्पृह और सन्तुष्ट चित्त मैं मरणकालका मार्ग देखताहुआ, तिन अनन्त

भद्राणि कृतानि च स्मरन् ॥ गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥ २७ ॥ एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ॥ कालः प्रादुरभूत्काले विधुत्सौदामिनी यथा ॥ २८ ॥ प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ॥ आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पाञ्चभौतिकः ॥ २९ ॥ कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः ॥ शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ॥३०॥ सहस्रयुगपर्यन्त उत्थायेदं सिसृक्षतः ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥ अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कन्दितव्रतः ॥ अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥ ३२ ॥ देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ॥ मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥३३॥ प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ॥ आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥३४॥ एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ॥ भवसिंधुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्ण-

परमात्मा के करेहुए मङ्गलकारी गुप्त चरित्रोंका स्मरण करके, उन के नामोंको निर्लज्जता से पढ़ताहुआ कितनेही दिनों पर्यंत पृथ्वीपर विचरतारहा ॥२७॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार सकल विषयों में आसक्त न हो शुद्ध भावसे श्रीकृष्णके चरणोंमें बुद्धिलगाकर मेरे वर्त्ताव करते हुए, ईश्वरके नियमित करेहुए समयपर सुदाम नामक पर्वतपर बिजली के चमकने के अनुसार अकस्मात्. मृत्युकाल आकर प्राप्त होगया ॥ २८ ॥ तब पहिले आकाशवाणी के कहने के अनुसार भगवान् के, मुझको अपने शुद्धस्वरूप पार्षदरूपमें पहुँचानेपर, जिसके प्रारब्ध कर्मोंकी समाप्ति होगई है ऐसे मेरे पाञ्चभौतिक शरीरका पात होगया ॥२९॥ उस कल्पकी समाप्ति के समय इस त्रिलोकी को अपनेमें लेकर प्रलयसमुद्रके जलमें श्रीनारायण के योग निद्राको धारण करते हुए ब्रह्माजीकेभी शयन करनेकी इच्छा करनेपर उनके श्वासों के साथ मैंभी उनके उदर (पेट) में चलागया ॥ ३० ॥ फिर एक सहस्र युग वीतनेपर उठकर ब्रह्माजीके इस जगत् को उत्पन्न करतेहुए, उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषि और मैं, उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ मैं महाविष्णुके अनुग्रह से अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके त्रिलोकीके भीतर और बाहर कहींभी जानेमें न रुकताहुआ विचरता रहता हूँ ॥ ३२ ॥ स्वयंसिद्ध सप्तस्वरों से युक्त, नादब्रह्म से शोभायमान, ईश्वरकी दीहुई इस वीणाको, प्रत्येक रागकी इकीस मूर्छनाओंसे युक्तकरके हरिकथाओं को गाताहुआ विचरता हूँ ॥३३॥ गङ्गादि सकलतीर्थ जिनके चरणोंमें हैं, जिनकी कीर्ति भक्तों को प्रियहै, वह भगवान्, प्रेमपूर्वक भगवद्गुणगान् करनेवाले मुझको सत्कारपूर्वक बुलाएहुएसे शीघ्र आकर दर्शनदेते हैं॥३४॥ वारंवार विषयभोग की इच्छा करके जिनके चित्त आतुर होरहेहैं तिन प्राणियों को, यह भगवान्के चरित्रोंका प्रतिक्षण कीर्तनही भवसागरके पारलगानेवाली नौकाहै, इसको ज्ञानि-

नम् ॥ ३५ ॥ यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ॥ मुकुन्दसेवया यद्वत्त-
थात्माऽद्धा न शाम्यति ॥ ३६ ॥ सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ।
जन्म कर्म रहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संभाष्य
भगवान्नारदो वासवीसुतम् ॥ आमन्त्र्य वीणां रणयन्ययौ याहच्छिको मुनिः
॥ ३८ ॥ अहो देवर्षिर्धन्योयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ॥ गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या
रमयत्यातुरं जगत् ॥३९॥ इति श्रीभा० प्र० व्यासनारदसम्वादे षष्ठोऽध्यायः६
शौनक उवाच ॥ निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः ॥ श्रुतवांस्तदभिमेत-
मितः किमकरोद्विभुः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः प-
श्चिमे तटे ॥ शम्यामास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्द्धनः ॥ २ ॥ तस्मिन्स्व
आश्रमे व्यासो बदरीखंडमंडिते ॥ आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनःस्वयं ३
भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले ॥ अपश्यत् पुरुषं पूर्वं मायां च त-
दपाश्रयां ॥ ४ ॥ यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकं ॥ परोऽपि

यों ने भलेप्रकार विचार देखा है ॥ ३५ ॥ कामलोभरूप शत्रुओं से वारंवार व्याकुल हुआ चित्त, जैसा मुकुन्द भगवान् की सेवासे शीघ्रशान्त होता है, वैसा यमनियमादियोग की रीतियों से नहीं ॥ ३६ ॥ हेनिष्पाप व्यासजी ! तुमने मुझसे जो प्रश्नकराथा, सो मैंने अपना रहस्यभूत जन्म और कर्म तथा तुम्हारा मन शान्त होनेकी युक्ति तुमको सुनादी ३७ सूतजीबोले, हे शौनक ! भगवान् नारद मुनि, सत्यवती नन्दन व्यासजीसे इसप्रकार सम्भा पण करके उनसे आज्ञाले, किसी प्रकारका चित्त में सङ्कल्प न कर वीणी को बजातेहुए चलेगये ॥ ३८ ॥ हे ऋषियों ! यह देवर्षि नारदजी धन्य हैं, जो ब्रह्मवीणाके स्वरपर शा र्ङ्गधनुषधारी भगवान् की कीर्तिका गानकर स्वयं मगनहोतेहुए सर्वत्र विचरकर सांसारिक दुःखोंसे पीडित जगतको आनन्द देतेहैं ॥३९॥ प्रथमस्कन्धमें छठाअध्याय समाप्त६॥*॥ शौनक ऋषिबोलेकि–हेसूतजी ! नारदऋषि के चलेजानेपर बदरिकाश्रममें बसनेवाले भग- वान् व्यासजीने, तिननारदजीकी सम्मति को सुननेके अनन्तर क्या किया ? ॥१॥ सूतजी बोले,कि–ब्रह्माजीहैं देवता जिसके ऐसी सरस्वती नदीके पश्चिम तटपर ऋषियोंके यज्ञ कर्म की वृद्धिकरनेवाला एक शम्याप्रास नामक आश्रम है ॥ २ ॥ जहाँ बदरी (बेर) के वृक्ष छायेहुएहैं ऐसे तिस अपने आश्रम में बैठेहुए व्यासजी जलका आचमन करके नारदजीके उपदेशके अनुसार एकाग्रचित्तसे ध्यान करनेलगे ॥ ३ ॥ तब भक्ति योगसे एकाग्रहुए पवित्र मनमें, व्यासजीने प्रथमतो ईश्वर और उनके अधीन रहनेवाली मायाको देखा ।४। जिसमायासे मोहित हुआजीव, वास्तवमें सत्वादि तीनोंगुणोंसे पर होकर भी अपनेस्वरूप को भूलकर 'मैं त्रिगुणरचित देहरूप हूँ' ऐसामानने लगताहै और तिसदेहके अभिमानसेकरे-

मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥ ५ ॥ अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे॥ लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहितां ॥ ६ ॥ यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ॥ भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहजरापहा ॥ ७ ॥ स संहितां भागवतीं कृत्वाऽनुक्रम्य चात्मजं॥ शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥८॥ शौनक उवाच ॥ सवै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः ॥ कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रंथा अप्युरुक्रमे ॥ कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥ १० ॥ हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः ॥ अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ११॥ परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्म कर्म विलापनं ॥ संस्थां च पांडुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयं ॥ १२ ॥ यदा मृधे कौरवसृंजयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ॥ वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥ १३ ॥ भर्त्तुः प्रियं द्रौणि-

---

हुए कर्मऔर उसके फलभोगको आत्माका मानता है, यह बड़ा अनर्थ करता है॥ ५ ॥ तिन शरीराभिमानजनित अनर्थोंका, अधोक्षभगवान्‌की मुख्य (पूर्ण) भक्तिही नाश करतीहै; इस तत्त्व को न जाननेवाले सकलजनोंके उद्धार के निमित्त व्यासजी ने यह भागवत संहिता रची है ॥ ६ ॥ जिस श्रीमद्भागवत को सुनतेही, पुरुषकी, परमपुरुष श्रीकृष्णभगवान् के विषैं, शोक मोह और जरा आदि के दुःखों को दूरकरनेवाली दृढ़भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥ व्यासजीने भागवतसंहिता रचकर शुद्धकरी और फिर मोक्षसाधन में तत्पर अपने पुत्र शुकदेवजी को पढ़ाई ॥ ८ ॥ शौनक बोले, कि-हेसूतजी ! शुकदेवजी तो मोक्षसाधनमें तत्पर, सकल पदार्थों में उदासीन और आत्मा में रमण करते थे, फिर उन्होंने किसकारण इस महती भागवत संहिताका अभ्यास करा ? ॥ ९ ॥ सूतजी बोले; ग्रन्थों का अभ्यास करना छोड़नेवाले अथवा अन्तःकरणकी अहन्ता ममतारूप ग्रन्थिसे रहित और आत्मस्वरूपमें रमण करनेवाले कितनेही ऋषि उरुक्रम भगवान् के विषैं निष्काम भक्ति करते हैं, क्योंकि-श्रीहरि ऐसे ही अद्भुत अनन्त गुणों से युक्तहैं ॥ १० ॥ अतःश्रीहरिके गुणों ने जिनकी बुद्धिको अपनी ओरको खैंचलियाथा ऐसे भगवद्भक्तों को प्रिय जाननेवाले वह भगवान् शुकदेवजी इस श्रीमद्भागवत महापुराणको नित्य पढते थे ॥ ११ ॥ अब राजर्षि परीक्षित के जन्म कर्म और परलोकप्राप्ति तथा पाण्डवों के महाप्रस्थानके वृत्तान्त का इसप्रकार वर्णन करूँगा, जिससे श्रीकृष्णभगवान्‌की कथाका प्रसङ्ग आवेगा ॥१२॥ जब कौरव और पाण्डवोंके संग्राममें, बहुत से वीर मरण पाकर स्वर्ग को चलेगए और भीमसेनकी छोड़ीहुई गदाके प्रहारसे दुर्योधनकी जंघाएँ टूटकर वहभी रणभूमिपर गिरपड़ा ॥१३॥ तब अश्वत्थामा ने, 'यह कार्य करने से' दुर्योधनको प्रिय मालूम होगा, ऐसा मनमें

रिति स्म पश्यन्कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ॥ उपाहरद्विप्रियमेव तस्य तज्जुगुप्सितं कर्म विगर्हयंति ॥ १४ ॥ माता शिशूनां निधनं सुतानां निश- म्य घोरं परितप्यमाना ॥ तदाऽरुदद्बाष्पकलाकुलाक्षी तां सांत्वयन्नाह किरी- टमाली ॥१५॥ तदा शुचं स्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ॥ गांडीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥ १६ ॥ इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सांत्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः ॥ अन्वाद्रवद्दंशित उ- ग्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥ १७ ॥ तमापतंतं स विलक्ष्य दूरात्कुमार- होद्विग्नमना रथेन ॥ पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां यावद्गमं रुद्रभयाद्यथा कः ॥१८॥ यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनं ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्वि-

विचारकर सोतेहुए द्रौपदीके पुत्रोंके शिरकाट दुर्योधन को लाकर दिये; परन्तु यह कार्य दुर्योधनको भी दुःखदायकही हुआ, क्योंकि सकलपुरुषही तिस दुष्कर्मकी अवभी निन्दा करते हैं ॥ १४ ॥ तव माता द्रौपदी अपने पुत्रोंका मरण सुनकर असह्य परम शोक से महादुःखी होतीहुई, दुःखाश्रुओं से नेत्रों को भरकर रुदन करनेलगी, तव अर्जुन उसको शान्त करते (समझाते) हुए कहने लगे ॥ १५ ॥ हे भद्रे ! जिस समय तेरे पुत्रोंको मारनेवाले आततायी * अश्वत्थामाका शिर, मैं अपने गाण्डीव धनुषसे छूटेहुए वाणोंसे काटूंगा और तू उसके ऊपर वैठकर पुत्र शोकसे दग्धहुई स्नान करेगी, तवही मैं तेरे दुःखके अश्रुओंको पोछूँगा॥१६॥इसप्रकार मनोहर विचित्र आलापोंसे प्रिया द्रौपदी को शान्तकरके,जिसका गाण्डीव धनुष भयङ्कर है,जिसकी ध्वजापर पवनकुमारका चिन्हहै ऐसा वह कवचधारी अर्जुन,मित्र श्रीकृष्ण भगवान् हैं सारथी जिसके ऐसे रथपै वैठकर गुरु पुत्रका वध करनेको शीघ्रता से चला ॥ १७ ॥ उससमय, दूरसेही अर्जुनको अपने ऊपर आताहुआ देखकर, वालहत्या करनेवाला अश्वत्थामा उद्विग्नचित्त हो, प्राणोंको वचानेकी इच्छासे रथपर चढ़कर इसप्रकार अपनी शक्तिके अनुसार पृथ्वीपर भागनेलगा, जैसे रुद्र भगवान् के भयसे ब्रह्माजी भागे थे ॥ १८ ॥ परन्तु फिर जब तिस अश्वत्थामा ने, रथके घोड़े थकजानेके कारण, दूसरे किसीको अर्जुनसे रक्षा करनेवाला न देखा, तव प्राण सङ्कट के समय ब्रह्मशिर नामक अस्त्र (ब्रह्मास्त्र) ही; मेरी रक्षा करनेवाला है; ऐसा निश्चयकरा

*—"अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ॥ अर्थात् धर्मशास्त्रमें लिखाहै कि- अग्निदेनेवाला, विषदेनेवाला, मारण के लिये हाथमें शस्त्र लिये आताहुआ, धनहरनेवाला, और खेत तथा स्त्री को हरनेवाला यह छः आततायी कहाते हैं । तथा "आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्" अर्थात् आततायी को आता हुआ देखकर विना विचारेही मारडाले ।

जात्मजः ॥ १९ ॥ अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः ॥ अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥२०॥ ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशं ॥ प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाचह ॥ २१ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयङ्कर ॥ त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥२२॥ त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ॥ मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥२३॥ स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ॥ विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणं ॥२४॥ यथाऽयं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ॥ स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृतम् ॥२५॥ किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ॥ सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणं ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितं ॥ नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ॥२७॥ न ह्यस्यान्यतमं किंचिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनं ॥ जह्यस्त्रतेज

॥ १९ ॥ तदनन्तर जलका आचमन करके एकाग्र चित्तहो, तिस अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रको, उपसंहार (लौटाना) न जानते हुए भी, प्राणनाशक विपत्ति आई देखकर अर्जुनके ऊपर छोड़ा ॥ २० ॥ उससमय तिस अस्त्र से निकलाहुआ अतितीक्ष्ण तेज, दशों दिशाओं में फैलगया, तब तो तिसप्राणनाशक विपत्तिको प्राप्तहुई देखकर अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् से कहने लगे ॥ २१ ॥ अर्जुन बोले—हे महाभाग ! भक्तोंको अभय देनेवाले श्रीकृष्ण !! संसार रूप अग्निसे भस्म होनेवाले प्राणियोंकी एक आपही रक्षा करनेवाले हो ॥ २२ ॥ क्योंकि—तुम प्रकृति से परपुरुष, सबके मूल कारण और साक्षात् ईश्वर हो; अपनी पूर्ण ज्ञानशक्ति से मायाका तिरस्कार करके अपने नित्यमुक्तस्वरूप के विषैं स्थितहो, ॥ २३ ॥ वहही तुम अपने पराक्रमसे, माया करके मोहित है चित्त जिनका ऐसे जीवोंको, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष यह चारों पुरुषार्थ देकर उनका कल्याण करते हो ॥ २४ ॥ तुम्हारा यह श्रीकृष्णरूप अवतार पृथ्वीका भार हरने के निमित्त और अनन्यभक्ति करनेवाले परमभक्तोंको तथा अपने ज्ञाति के यादवों को वारंवार, आपके स्वरूपका ध्यान करना बनपड़े, इस निमित्त हुआ है ॥ २५ ॥ हेदेवदेव ! यह अतिभयदायक तेज दशों दिशाओं को चलाआरहा है, यह क्या है ? और कहाँसे उत्पन्नहुआ है ? यह मैं नहीं जानता ॥ २६ ॥ श्रीभगवान् बोले, कि हे अर्जुन ! यह द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका ब्रह्मास्त्र है, ऐसा जानो, वह इसका विधिपूर्वक छोड़ना तथा लौटाना नहीं जानता है, तथापि प्राण सङ्कट प्राप्त होने से छोड़दियाहै ॥ २७ ॥ इस अस्त्रका निवारण करनेवाला कोई भी दूसरा अस्त्र नहीं है, अतःउपसंहार (लौटाना) सहित अस्त्रप्रयोग को (अस्त्र छोड़ना) जाननेवाला तू. ब्रह्मास्त्र को छोड़कर, उस के तेजसे, सर्वत्र फैलेहुए इस अस्त्र के तेजको

उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥२८॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः पर-
वीरहा॥ स्पृष्ट्वापस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥२९॥ संहत्यान्योऽन्यमु-
भयोस्तेजसी शरसंवृते ॥ आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥३०॥ दृष्ट्वा
स्त्रतेजस्तु तयोस्त्रींल्लोकान्प्रदहन्महत् ॥ दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत
॥३१॥ प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तं ॥ मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनो
द्वयं ॥३२॥ तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतं ॥ बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं
रशनया यथा ॥ ३३ ॥ शिबिराय निनीषन्तं दाम्ना बद्ध्वा रिपुं बलात् ॥
प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥ ३४ ॥ मैनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धु-
मिमं जहि ॥ योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥ ३५ ॥ मत्तं प्र-
मत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडं ॥ प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्म-
वित् ॥ ३६ ॥ स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ॥ तद्वधस्तस्य हि

दूरकर ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषियो ! भगवान्‌के कथनको सुनकर शत्रुरूप वीरों
को यमद्वारको पहुँचानेवाले तिस अर्जुनने जलका आचमन करके और श्रीकृष्णभगवान्
की तीनवार प्रदक्षिणा करके तिस ब्रह्मास्त्र का निवारण करने को ब्रह्मास्त्रही छोड़ा ॥२९॥
उस समय दोनों ब्रह्मास्त्रों के अनेकों बाणों से घिरेहुए तेज परस्पर इकट्ठे होकर स्वर्ग,
पृथ्वी और आकाशमें व्याप्तहो, प्रलयकाल के सूर्य अग्निकी समान बढ़नेलगे ॥ ३० ॥
तब अश्वत्थामा और अर्जुन दोनों के ब्रह्मास्त्रों का तेज महाभयङ्कर त्रिलोकी को भस्म
करेदेताहै, ऐसा देखकर तिस तेज से भस्म होतीहुई सकल प्रजाओं ने, क्या प्रलयकालकी
अग्नि है ! ऐसा माना ॥ ३१ ॥ उस समय सकल प्रजा और पृथिव्यादि लोकों का
नाश होजायगा; ऐसा जानकर और श्रीकृष्णकी भी सम्मति जानकर अर्जुनने दोनों ब्रह्मा-
स्त्रोंका उपसंहार किया (लौटाया) ॥ ३२ ॥ तदनन्तर क्रोधसे लाल२ होरहेहैं नेत्र
जिसके ऐसे अर्जुनने, कृपीनामक गौतम की कन्या के पुत्र क्रूर अश्वत्थामाको शीघ्रता से
पकड़कर जिस प्रकार यज्ञ करनेवाला पुरुष, स्वधर्म समझकर रज्जु से यज्ञपशुको बाँधता
है, तैसेही उस को बाँधलिया ॥ ३३ ॥ शत्रु अश्वत्थामा को बलात्कार करके रज्जु से
बाँधकर अपने शिबिर (सेनाके पड़ाव) में को लेजाते समय, कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण
अत्यन्त क्रुद्ध होकर अर्जुनसे कहनेलगे कि ॥३४॥ हेकुन्ती पुत्र ! इस अश्वत्थामाकी रक्षा
करना तुझे योग्य नहीं है, तू इस अधम ब्राह्मणका प्राणान्त कर, क्योंकि इसने रात्रि के
समय सोतेहुए निरपराध बालकोंका बिना कारण शिर काटा है ॥ ३५ ॥ मद्यादि पीकर
मत्तहुआ, असावधान, ग्रहबाधा से उन्मत्त, सोताहुआ, बालक, स्त्री, उद्योग न करने
वाला, शरण आयाहुआ, रथसे रहितहुआ, और भयभीत, इतने प्रकार के शत्रुओंको भी
धार्मिक पुरुष नहीं मारते हैं ॥ ३६ ॥ तिसीप्रकार जो निर्दयी दुष्ट पुरुष, दूसरों के प्राण

श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥ ३७ ॥ प्रतिश्रुतं च भवता पांचाल्यै शृण्वतो मम। आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥ ३८ ॥ तदसौ वध्यतां पाप आततायात्मबन्धुहा ॥ भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान्कुलपांसनः ॥ ३९ ॥ एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ॥ "नैच्छद्धंतु" गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥ ४० ॥ अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविंदप्रियसारथिः ॥ न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचंत्या आत्मजान् हतान् ॥ ४१ ॥ तथाहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखंकर्मजुगुप्सितेन ॥ निरीक्ष्यकृष्णाऽपकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपयाननामच ॥४२॥ उवाच चासहंत्यस्य बन्धनानयनं सती ॥ मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणोनितरां गुरुः ॥ ४३ ॥ सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ॥ अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥ स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्त्तते ॥ तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥ ४५ ॥ तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलं

लेकर अपने प्राणोंका पालन करताहै ऐसे का वध करना उसकाही कल्याण करता है, क्योंकि-ऐसे दुष्ट पुरुष को दण्ड नहीं मिलेगा तो,वह तिस दोषसे अधोगति को प्राप्त होगा ॥ ३७ ॥ और तू ने द्रौपदी का शोक दूर करने के निमित्त, मेरे सुनतेहुए, उस से ऐसा कहाथा कि हे मानिनि ! तेरे पुत्रोंके मारनेवाले अश्वत्थामाका मस्तक मैं तेरे समीप लाऊँगा ॥ ३८ ॥ इस कारण अपने पुत्रोंके नाशक पापी आततायी इस अश्वत्थामाको तू मार कर गिरादे, हे वीर ! इस कुलाङ्गार ने जो बालहत्यारूप दुष्कर्म करा वह दुर्योधनको भी अतिदुःखदायक हुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार अर्जुनकी धर्मनिष्ठाकी परीक्षा करनेवाले श्रीकृष्णने अश्वत्थामा का वध करनेके निमित्त प्रेरणा करी, तब भी तिस महात्मा अर्जुन ने अपने पुत्रोंके प्राण लेनेवालेभी, तिस अश्वत्थामाको, यह ब्राह्मण और गुरुपुत्रहै, ऐसा जानकर मारनेकी इच्छा नहींकरी ॥४०॥ तदनन्तर गोविन्द जिसके प्रिय सारथी हैं ऐसे तिस अर्जुनने अपने शिबिर (डेरे) में जाकर, मृतपुत्रोंका शोक करनेवाली द्रौपदीको लायाहुआ अश्वत्थामा समर्पणकरा ॥ ४१ ॥ पशुकी समान रज्जुसे बांधकर लाये हुए, बालहत्यारूप दुष्कर्म करने से अधोमुख हुए महारथी तिस गुरुपुत्र को देखकर, सुशीला द्रौपदी को दया आगई और तत्काल उसको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ तथा तिसके बँधकर आनेको न सहनेवाली पतिव्रता द्रौपदी शीघ्रता से कहनेलगी कि—इसको अभी शीघ्रतासे छोड़ो छोड़ो, यह ब्राह्मण तुम्हारा साक्षात् गुरु है ॥ ४३ ॥ क्योंकि—गुप्त मन्त्रों सहित धनुर्वेद और छोड़ना तथा लौटाना इनरीतियों सहित सकल अस्त्र तुमने जिनकी कृपा से सीखे ॥ ४४ ॥ वहही यह भगवान् द्रोणाचार्य पुत्ररूप से विद्यमान हैं और तिन द्रोणाचार्य के शरीर का आधाभागरूप कृपीनामा उनकी स्त्रीभी अभीजीवितहै, वह वीरमाता होनेके कारण पतिके साथ परलोकको नहीं गई ॥ ४५ ॥ तिससे हे महाभाग ! धर्मज्ञ

वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥ मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ॥ यथाऽहं मृतवत्सार्त्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥ ४७ ॥ यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः । तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितं ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ॥ राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनंदद्वचो द्विजाः ॥ ४९ ॥ नकुलः सहदेवश्च युयुधानो धनंजयः ॥ भगवान्देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥ ५० ॥ तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः ॥ न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून्वृथा ॥ ५१ ॥ निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ॥ आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥ ५२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ॥ मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनं ॥ ५३ ॥ कुरु प-

---

अर्जुन ! तुम्हारे वारम्वार पूजने और वन्दना करने योग्य जो गुरुकुल, वह तुमसे दुःख पाने के योग्य नहीं है ॥ ४६ ॥ हाय ! जैसे मैं अपने मृत बालकों के दुःखसे दुःखित होकर वारंवार मुखपर अश्रुधारा वहातीहुई रुदन करती हूँ, तैसे अश्वत्थामाकी माता गौतमकी पुत्री पतिव्रता कृपी रुदन न करे ॥ ४७ ॥ इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाले जिन क्षत्रियों ने ब्राह्मण कुलको कुपित किया, तो शोकसे दुःख पानेवाला वह ब्राह्मणकुल, तिन राजाओं के कुलको परिवार सहित समूल भस्म करदेता है ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषियों ! इसप्रकार धर्मयुक्त नीति के अनुकूल, करुणाभरे, कपटरहित, समान और अति श्रेष्ठ द्रौपदी के वचनकी धर्मराज युधिष्ठिरने सराहना करी ॥ ४९ ॥ और नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, देवकीसुत भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य उपस्थित पुरुष एवं स्त्रियोंने भी द्रौपदीके कथनकी सराहना करी ॥ ५० ॥ परन्तु तहाँ भीमसेन क्रुद्ध होकर कहनेलगे कि जिस अश्वत्थामाने अपने निमित्त नहीं, राजाके निमित्त नहीं, किन्तु वृथाही सोतेहुए बालकों के प्राणलिये तिसका वध करनाही उसका मङ्गलकारी है; नहीं तो यह इस पापसे नरक में पड़ेगा ॥ ५१ ॥ इस प्रकार भीमसेनका भाषण तथा द्रौपदी का कथन सुनकर (भीमसेन के उस को मारने के निमित्त प्रवृत्त होनेपर और द्रौपदीके अकस्मात् उसको बचाने में तत्पर होनेपर तिन दोनों को समझाने के निमित्त) चतुर्भुज हुए, श्रीकृष्णने, कुछ एक हास्यसा प्रकट करके अपने मित्र अर्जुनकी ओर को देख इस प्रकार कहा ॥ ५२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–हे अर्जुन ! जो जातिका ब्राह्मण है, वह वध करने के योग्य अपराध करे तो भी उसके प्राण न लेय; और हाथमें शस्त्र लेकर प्राण लेनेको उद्युक्तहुआ कोई भी हो तो उस आततायी का वध करे, यह दोनों ही आज्ञा मेरी हैं, अतः इन दोनों आज्ञाओं में जैसे बाधा न पड़े तैसा कार्य करो ॥ ५३ ॥ और अपनी प्रिया द्रौपदी को

तिश्रुतं सत्यं यत्तत्सांत्वयता प्रियां ॥ प्रियं च भीमसेनस्य पांचाल्या मह्यमेव
च ॥ ५४ ॥ सूत उवाच ॥ अर्जुनः सहसाज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना ॥ मणिं ज-
हार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजं ॥ ५५ ॥ विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभं ।
तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥ ५६ ॥ वपनं द्रविणादानं स्थाना-
न्निर्यापणं तथा ॥ एष हि ब्रह्मबंधूनां वधो नान्यो ऽस्ति दैहिकः ॥ ५७ ॥
पुत्रशोकातुराः सर्वे पांडवाः सह कृष्णया ॥ स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्ह-
रणादिकं ॥ ५८ ॥ इति श्रीभा० प्रथ० द्रौणिनिग्रहो० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
सूत उवाच ॥ अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छतां ॥ दातुं सकृष्णा गंगायां
पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १ ॥ ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः ॥
आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥ २ ॥ तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं स-
हानुजं ॥ गांधारीं पुत्रशोकार्त्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥ ३ ॥ सांत्वयामास

शान्त करते समय तूने इस अश्वत्थामा का वध करने की प्रतिज्ञा करी थी उस को सत्य
कर, तथा भीमसेन, द्रौपदी और मुझ को भी जो प्रियहो सो कर ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले
कि—हे ऋषियो ! उस समय अर्जुनने तत्काल श्रीकृष्णके मनका भाव जानकर खड्ग से
तिस ब्राह्मण के मस्तकपर का मणि, केशों सहित उखाड़लिया ॥ ५५ ॥ और रज्जु से
बँधेहुए, बालहत्या के कारण कान्तिहीन और तेज तथा मणि से रहित अश्वत्थामाको ब-
न्धन से खोलकर शिबिरसे निकालदिया ॥ ५६ ॥ केशमुंडन करादेना, धन छीनलेना
और निजस्थान से निकालदेना इतनाही, अधम भी ब्राह्मणका वधहै. इससे अन्य देहका
वध ब्राह्मणके निमित्त नहीं कहाहै ॥ ५७ ॥ तदनन्तर पुत्रोंके शोक से दुःखितहुई द्रौपदी
सहित सब पाण्डवोंने मरण को प्राप्तहुए बान्धवों के 'स्मशान में लेजाना, चितामें अग्निसे
भस्म करना इत्यादि' कर्म करे ॥ ५८ ॥ इति प्रथमस्कन्धमें सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ * ॥
सूतजी बोले, हे ऋषियो ! तदनन्तर मरणको प्राप्तहो जलकी इच्छा करनेवाले स्वजनों को
जलाञ्जलि देनेके निमित्त वह पाण्डव, शास्त्रके नियमानुसार स्त्रियों को आगे करके, श्री
कृष्णजी सहित भागीरथी के तटपर गये ॥ १ ॥ तिन सबने, श्रीकृष्ण के चरणकमलोंके
रजसे पवित्रहुई गङ्गा के जलमें स्नान करके मरणको प्राप्तहुए स्वजनों को जलाञ्जलि देने
के अनन्तर तहाँ कुछ कालतक उन के मरणके कारण महान् विलाप करके फिर गङ्गाजल
में स्नान किया ॥ २ ॥ तदनन्तर तिस गङ्गातटपर बैठेहुए भीमसेन आदि बान्धवों स-
हित धर्मराज, धृतराष्ट्र और पुत्रशोक से व्याकुलहुई गान्धारी, कुन्ती तथा द्रौपदी तथा
बन्धुओं के वियोग से शोकाकुल सकल बान्धवों को ॥ ३ ॥ व्यास धौम्यादि ऋषियों स-
हित श्रीकृष्ण ने, प्राणीमात्रमें मरणकालकी गति, किसी भी उपाय से नहीं दूर होसक्ती,

मुनिभिर्हतबन्धून् शुचोऽर्पितान् ॥ भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियां ॥४॥ साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वंराज्यं कितवैर्हृतं ॥ घातयित्वाऽसतो राज्ञः कचस्पर्श-क्षतायुषः ॥ ५ ॥ याजयित्वाऽश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ॥ तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥ ६ ॥ आमन्त्र्य पांडुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः ॥ द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥७॥ गंतुं कृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकां र-थमास्थितः ॥ उपलेभेऽभिधावंतीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥ पाहि पाहि म-हायोगिन् देवदेव जगत्पते ॥ नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥९॥ अभिद्रवतिमामीश शरस्तप्तायसो विभो ॥ कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ उपधार्य वचस्तस्या भगवान् भक्तवत्स-लः ॥ अपांडवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुद्ध्यत ॥ ११ ॥ तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ पांडवाः पंच सायकान् ॥ आत्मनोभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥ १२ ॥ व्यसनं

अतः जो जिस समय होनेवाला है वह टल नहीं सक्ता, ऐसा समझाकर शान्त किया ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णने द्रौपदीके केशों के स्पर्श से क्षीणायुहुए दुष्ट राजाओंका संहार करके दुर्योधनादि कुटिलों करके कपटके द्यूत आदि के द्वारा छीनाहुआ राज्य धर्मराजको फिर दिलवाकर ॥ ५ ॥ तथा उत्तम सामग्रियोंके द्वारा धर्मराज से तीन अश्वमेध यज्ञ करवा-कर उनका इन्द्रकी समान पवित्र यश दशों दिशाओं में फैलाया ॥ ६ ॥ तदनन्तर सात्यकि और उद्धवजी सहित श्रीकृष्णने, पाण्डवों से आज्ञा ली, और वेदव्यास आदि ऋषियोंकी पूजाकर तथा उन से स्वयं पूजित होकर ॥ ७ ॥ हे शौनक ! द्वारिकाको जाने की इच्छा करके रथपर बैठे, इतनेहीमें, परीक्षितकी माता उत्तराको, भयसे व्याकुल हो-कर अपनी ओर को दौड़तीहुई आती देखा ॥ ८ ॥ वह आकर कहनेलगी कि-हे महा-योगिन् ! हे जगत्पालक ! हे देवदेव ! मेरी रक्षाकरो, रक्षाकरो मेरे भयको दूर करनेवाला तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि-संसारमें सकलही प्राणी परस्पर मृत्यु से ग्रसेहुए हैं, फिर दूसरेकी क्या रक्षा करेंगे ॥ ९ ॥ हे व्यापक प्रभो ! तपेहुए लोहे के अ-ग्रभागवाला एकवाण मेरे सन्मुख आरहाहै; यह मुझको भलेही भस्म करदेय, परन्तु हे नाथ ! ऐसी कृपा करिये कि-यह मेरे गर्भका नाश न करे ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि हे ऋषियों ! इस प्रकार उत्तराका वचन सुनकर भक्तोंपर कृपा करनेवाले श्रीकृष्णने मन में विचारा कि अश्वत्थामा ने इस भूमण्डलको पाण्डवों के वंशसे हीन करने के निमित्त यह ब्रह्मास्त्र छोड़ाहै ॥ ११ ॥ हे मुनिवर शौनक ! उसी समय पाण्डवों ने पाँचवाण अपने सम्मुख आतेहुए देखकर उन को दूर करने के लिये अपने अस्त्र उठाये ॥ १२ ॥ परन्तु और अस्त्रोंसे ब्रह्मास्त्र का दूर होना असम्भवथा, अतः अपने में दृढभक्ति करनेवाले तिन

वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनां ॥ सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥ १३ ॥ अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः ॥ स्वमाययावृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतंतवे ॥ १४ ॥ यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियं ॥ वैष्णवं तेजं आसाद्य समशाम्यद्भृगूद्वह ॥ १५ ॥ मा मंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ॥ य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ १६ ॥ ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ॥ प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥१७॥ कुन्त्युवाच ॥ नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परं ॥ अलक्ष्यं सर्वभूतानामंतर्बहिरवस्थितं ॥ १८ ॥ मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् ॥ न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥ १९ ॥ तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनां । भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः ॥२०॥ कृष्णाय वासुदेवाय देवकी-

पाण्डवोंके परम सङ्कटको देखकर सर्वव्यापक श्रीकृष्णजीने अपने सुदर्शन चक्रसे अपने पाण्डवोंकी रक्षा करी ॥ १३ ॥ सकल प्राणियों के अन्तर्यामी आत्मस्वरूप योगेश्वर श्रीकृष्णने पाण्डवोंकी सन्तति रहने के निमित्त अपनी माया करके उत्तराके उदर में प्रवेश कर उस के गर्भको ढकलिया ॥ १४ ॥ हे भृगुकुल में श्रेष्ठ शौनक! वह ब्रह्मशिर नामक अस्त्र (ब्रह्मास्त्र) यद्यपि व्यर्थ नहीं होसक्ताथा और न किसी दूसरे अस्त्रसे हटनेवाला था; तो भी वह भगवान्के सुदर्शन अस्त्रका स्पर्श होतेही एकसाथ शान्त होगया ॥ १५ ॥ हे ऋषियो! तुम आश्चर्यकारक अनन्तशक्तियों के भण्डार श्रीकृष्णके विषयमें यह आश्चर्य न मानना; क्योंकि–वो स्वयं जन्मरहित होकर, सब कुछ करसकनेवाली अपनी माया करके, इस विश्व की उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय करते हैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर ब्रह्मास्त्र के तेजसे छूटेहुए पुत्र और द्रौपदी सहित, भगवान्की भक्त कुन्ती, जब श्रीकृष्ण द्वारिकाको चलनेलगे तब कहनेलगी ॥ १७ ॥ कुन्ती बोली, हे कृष्ण! यद्यपि तुम मुझसे अवस्थामें छोटेहो तबभी मैं तुमको नमस्कार करती हूँ; क्योंकि–तुम मायासे परे और मायाके नियन्ता आदि पुरुषहो, तथा सकल प्राणियों के भीतर बाहर व्याप्तहो, और तुम्हें कोई देख नहीं सक्ताहै ॥ १८ ॥ तुम मायारूप परदेसे ढकेहुए हो, इन्द्रियों से नहीं जाने जातेहो, अविनाशीहो; जैसे अनेकों रूप भरनेवाले बहुरूपिये के स्वरूपको साधारण बुद्धिके पुरुष नही जानसक्ते,तैसेही देहाभिमानी पुरुष तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानसक्ते; और मैं तुम्हारी भक्तिकी विधि न जाननेवाली अज्ञ हूँ, अतः केवल तुम्हें नमस्कारही करती हूँ ॥ १९ ॥ हे कृष्ण! आत्मानात्मका विचार और मनन करनेवाले विषयवासनाओं से रहित ऋषिभी तुमको पूर्णरूपसे नहीं जानसक्ते; फिर हम स्त्रियें, तुम्हारी भक्तिकरनेके निमित्त तुम्हें कैसे जानसक्ती हैं ॥ २० ॥ अतः कृष्ण, वसुदेवकुमार, देवकीनन्दन, नन्द गोपके पुत्र और

नंदनाय च ॥ नंदगोपकुमाराय गोविंदाय नमोनमः ॥२१॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥ २२ ॥ यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचार्पिता ॥ विमोचिताऽहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ २३ ॥ विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ॥ मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥ २४ ॥ विपदः संतु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ॥ भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनं ॥ २५ ॥ जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ॥ नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरं ॥ २६ ॥ नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ आत्मारामाय शांताय कैवल्यपतये नमः ॥ २७ ॥ मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुं ॥ समं चरंतं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ।

गोविन्द नामसे प्रसिद्ध तुमको मैं केवल नमस्कार करती हूँ ॥ २१ ॥ हे देव ! चौदहभुवन रूपी कमल तुम्हारी नाभिसे उत्पन्न होकर तिस नाभिकेही आधारसे रहता है कमलोंकी माला तुम्हारे कण्ठको शोभा देती है, तुम्हारे नेत्र और चरण कमलकी समान कोमल और सुन्दर हैं, ऐसे तुमको मैं वारम्वार नमस्कार करती हूँ ॥ २२ ॥ मेरेमें तुम्हारी देवकी माता सेभी अधिक प्रीति है, क्योंकि—हे हृषीकेश ! दुष्ट कंस करके वन्दी घर में रक्खी हुई अतःअति शोकाकुल जो देवकी तिसको आपने एकहीवार विपत्तिसे छुडाया और उसके पुत्रोंकीभी रक्षा नहींकरी; और हे नाथ ! मुझे तो पुत्रों सहित तुमने वारम्वार विपत्ति से उवारा है ॥ २३ ॥ हे श्रीहरे ! दुर्योधनके दियेहुए विषसे, लाखा घरके दाहसे, हिडिम्ब आदि राक्षसोंके दर्शनसे, दुर्योधनादि दुष्टोंकी द्यूतसभासे, वनवासके समय और अनेकों सङ्कटोंसे, प्रत्येक युद्धमें भीष्म आदि महारथियोंके अस्त्रोंसे और अश्वत्थामाके इस ब्रह्मास्त्र से भी इसप्रकार सदाही तुमने हमारी रक्षाकरी है ॥ २४ ॥ हे जगत्के गुरु ! हमको निरन्तर सब स्थलों में विपत्तियें ही प्राप्तहों, क्योंकि—विपत्तियों के समय, तुम्हारा दर्शन होता है जिससे प्राणियों को फिर संसारका दर्शन नहीं होता ॥ २५ ॥ सम्पत्ति तो कल्याणकी प्राप्ति में विघ्न करनेवाली है क्योंकि—उत्तमकुलमें जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्र पढ़ना और सम्पत्ति इन से जिस को गर्व बढ़गया है ऐसा पुरुष, धन आदि में आसक्त न होनेवाले पुरुषों को प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले, तुम्हारे, श्रीकृष्ण ! गोविन्द । इस प्रकारके नामतक उच्चारण नहीं करता है ॥ २६ ॥ इस कारण भक्तही जिसका द्रव्यहै, जिसके विषैं रज तम आदि गुणों का वर्त्ताव नहीं है, ऐसे अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले, शान्त और भक्तों को मोक्ष देनेवाले तुम को मैं वारंवार नमस्कार करती हूँ ॥ २७ ॥ हेकृष्ण ! तुम सबके नियन्ता, उत्पत्ति नाश से रहित और सबके विषैं समभाव रखनेवाले कालरू-

॥ २८ ॥ न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडंबनं ॥ न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मतिर्नृणां ॥२९॥ जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ॥ तिर्यङ्नृषिषु यादस्सु तदत्यंतविडंबनं ३०॥ गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्या ते दशाऽश्रुकलिलांजनसंभ्रमाक्षं ॥ वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥ ॥ ३१ ॥ केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्त्तये ॥ यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चंदनं ॥ ३२ ॥ अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ॥ अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥ भारावतरणायान्ये भु-

---

षी प्रभुहो, ऐसा मैं मानती हूँ; प्राणियों में जो कलह होताहै वह उन की परस्परकी विपरीत बुद्धि से होताहै, उसका तुम से कोई सम्बन्ध नहींहै ॥२८॥ हे भगवन्! मनुष्योंमें अवतार लेकर उन मनुष्यों की समान सकलकर्म करनेवाले भी, तुम्हारे मनमें क्या करने की इच्छाहै, सो कोई नहीं जानसक्ताहै, अतः, तुम साधुओं के ऊपर अनुग्रह और दुष्टोंपर दण्ड करतेहो, ऐसी प्राणियोंकी विषमबुद्धि तुम्हारे विषय में होतीं है, परन्तु वास्तव में तुम्हारा न कोई प्रिय है न कोई शत्रु है ॥ २९ ॥ हे विश्वजीवनकृष्ण! सब के आत्मा और जन्म कर्मों से रहित जो तुम तिन तुम्हारा, पशुआदि के विषैं वराह आदि, मनुष्यों में रामादि, ऋषियों में वामनादि और जलचरों में मत्स्यादिरूप जो जन्महै वह तथा उस के अनुसार नाना प्रकार के कर्म हैं वह अत्यन्त विडम्बन (प्राणियों का वास्तविकरूपको न जानकर दृश्यमान आकारपरही दृष्टिदेनारूप भ्रान्ति अथवा तिस२स्थितिका अनुकरण) है ॥ ३० ॥ तुम अवतार धारकर लोकरीति के अनुसार जो वर्त्ताव करके दिखाते हो वह भी बड़ाही आश्चर्य होताहै—देखो, तुमने गोकुल में दधि के भाँडे फोड़कर यशोदाका अपराध किया, और यशोदाने तुमको बाँधनेके निमित्त हाथमें रज्जु(डोरी)ली, उस समय तुम ने जो अपनी दशा उस को दिखाई वह मेरे अन्तःकरणको बड़ेही मोहमें डालती है, क्योंकि संसाररूप भय भी जिससे भयमाने ऐसे तुम उस समय माताकी ताड़ना का भय मानकर नीचे को मुख करेहुए खड़ेरहे और अश्रु आजाने से तुम्हारे नेत्र, कज्जलसहित जल से भरकर भय से कातर भी होगये थे ॥ ३१ ॥ कोई कहते हैं कि-तुम ने अजन्मा होकर भी प्यारे धर्मराजकी कीर्त्तिके निमित्त यदुके वंशमें 'जैसे मलयागिरिका यश फैलाने को चन्दन उत्पन्न होताहै तैसे,जन्मधाराहै॥३२॥कोइ कहतेहैं कि तुम अजन्माहोकरभी, पूर्वजन्मके पृश्निसुतपा नामकस्त्री पुरुषोंने अपना पुत्रहोनेकी तुमसे प्रार्थनाकरीथी,तिसको पूर्णकरनेको,तथा जगत् का कल्याण और दैत्योंका नाश करनेको, इस जन्ममें वसुदेव रूप सुतपाकी देवकी रूप पृश्निके गर्भसे उत्पन्नहुए हो ॥ ३३ ॥ कोई कहते हैं कि—समुद्रमें अतिभारसे डूबतीहुई

वो नावं इवोदधौ ॥ सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवाऽर्थितः ॥ ३४ ॥ भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ॥ श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्य- न्निति केचन ॥ ३५ ॥ शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ॥ ते एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजं ॥३६॥ अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहासिस स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ॥ येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्परायणं राजसु योजितांहसां ॥ ३७ ॥ के वयं ना मरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः ॥ भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥३८॥ नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ॥ त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षण- विलक्षितैः ॥ ३९ ॥ इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः ॥ वनाद्रिनद्युदन्व- न्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥ अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्व-

---

नौकाकी समान, दुष्ट राजाओंके अतिभारसे पीड़ितहुई भूमिका भार दूर करने के निमित्त ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे अवतार धारा है ॥ ३४ ॥ कोई कहते हैं कि—इस जगत्में, परमानंद स्वरूपको न जान देहाभिमानसे करेहुए कर्म्मों करके गर्भवास आदि अनेकों क्लेशपानेवाले दीनजनोंका दुःख दूर करनेको, उनके श्रवण और स्मरण करनेके योग्य चरित्र करने के निमित्त तुमने अवतार धारा है ॥ ३५ ॥ हे श्रीकृष्ण ! जो पुरुष, तुम्हारे चरित्रोंका निरंतर श्रवण, गान, कथन, स्मरण और आदर करते हैं, वहही वारम्वार जन्म मरणकी शृंखलाका नाश करनेवाले, तुम्हारे चरणकमलोंको शीघ्र देखतेहैं ॥ ३६ ॥ हे निजभक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले प्रभो ! जिनको तुम्हारे चरणकमलोंसे दूसरा आश्रय हैही नहीं और तिसपर भी अनेकों राजोंके दुःखदेनेसे अपराधी होरहे हैं, ऐसे हम अनुजीवी सुहृदोंको आज तुम क्यों त्यागे जातेहो?॥३७॥सब इन्द्रियोंके स्वामी जीवके देहमेंसे निकलजानेपर जिसप्रकार नेत्र आदि सब इन्द्रियें निरर्थक (वेकार) होजातीहैं,तैसेही तुम्हारे दर्शनके विना,केवल नामरूपों से प्रसिद्ध हम और यादव क्या हैं ? अर्थात् कुछभी पराक्रम नहीं करसक्ते ॥ ३८ ॥ हे गदाधर ! कहीं दूसरे स्थानपर न होनेवाले वज्र अंकुश आदि चिन्होंसे शोभायमान तुम्हारे चरणों करके अङ्कित यह यहांकी भूमि जैसी अब शोभित होरही है तैसी, तुम्हारे द्वारिका को चलेजानेपर शोभा नहीं पावेगी।३९। और हे कृष्ण ! उत्तमरूपसे पकीहुई औषधि एवं लताओंसे शोभायमान और सकल सम्पत्तियोंसे अतिबढ़ेहुए यह हमारे देश और इनदेशों में के वन, पर्वत, नदी तथा समुद्र तुम्हारी कृपादृष्टिसेही सर्वोत्तम बनरहे हैं ॥ ४० ॥ हे विश्व के नाथ ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वमूर्त्ति कृष्ण ! अब यही प्रार्थना है कि—तुम द्वारिका को चलेगये तो पाण्डवों को तुम्हारे वियोग से दुःख होगा और न जावोगे तो यादवों को दुःख होगा, अतः पाण्डव और यादव इन दोनों स्वजनो में जो मेरा दृढ़ स्नेह पाश

केषु मे ॥ स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पांडुषु वृष्णिषु ॥ ४१ ॥ त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ॥ रतिमुद्वहतादद्धा गंगेवौघमुदन्वति ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविन्द गोद्विजसुरार्त्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ॥ मंदं जहास वैकुंठो मोहयन्निव मायया ॥४४॥ तां बाढमित्युपामंत्र्य प्रविश्य गजसाह्वयं ॥ स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन्प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥ ४५ ॥ व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुद्ध्यत शुचाऽर्पितः ॥४६॥ आह राजा धर्मसुतश्चिंतयन्सुहृदां वधम् ॥ प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ॥४७॥ अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ॥ पारक्यस्यैव देहस्य बह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्ह-

है उसको तुम काट दो ॥ ४१ ॥ और हे मधुवन के पालक ! जिसप्रकार गङ्गा, मार्ग में कोई भी रोकने वाला पदार्थ आजाय उसको हटाती हुई अपने प्रवाह को समुद्र में मिला-देती है तिसीप्रकार मेरी बुद्धि किसीभी विघ्न को कुछ न गिनकर आपके विषैं अनन्यभाव से अखण्ड प्रीति करे ॥ ४२ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे यादवों में श्रेष्ठ ! हे अर्जुन के मित्र ! हे पृथ्वी के भारभूत दुष्ट राजों के वंश को अग्नि की समान भस्म करनेवाले ! हे अक्षीण-प्रभाव ! हे गोविन्द ! हे गोब्राह्मण और देवताओं की पीड़ा को दूर करने के निमित्त अ-वतार धारने वाले ! हे योगेश्वर ! हे ब्रह्मादि सकल जगत् के गुरु ! हे भगवन् ! तुमको नम-स्कार है ॥ ४३ ॥ सूत जी बोले कि हे ऋषियों ! इसप्रकार मधुर पदोंवाले वाक्यों से कुन्ती ने जिनके सकल गुणों की स्तुति करी है ऐसे वह श्रीकृष्ण सब को माया से मोहित करते हुए से मंद मंद हँसे ॥ ४४ ॥ और तिसकी प्रार्थना को अङ्गीकार कर रथ से उ-तर कर हस्तिनापुर में प्रवेश किया और कुछ दिनों रहकर फिर कुन्ती सुभद्रा आदि स्त्रियों से आज्ञा ले अपनी पुरी द्वारिका को जानेलगे, तब राजा युधिष्ठिर ने प्रेमपूर्वक प्रार्थना करके रोक लिया ॥ ४५ ॥ फिर अपने भक्त भीष्मजी के प्राणत्याग का उत्सव देखने के निमित्त धर्मराज को लेकर कुरुक्षेत्र में जायँ और तहाँ भीष्म जी के ही मुखसे धर्मराजको समझावें, इन दोनों कार्यों को करने की श्रीकृष्ण जी की इच्छा थी, इसको न जानतेहुए व्यासजी ने तथा अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण जी ने अनेकों इतिहास आदि सुनाकर समझाया, तो भी मरण को प्राप्तहुए कुटुम्बियों के शोक से व्याकुल धर्मराज का चित्त शान्त न हुआ ॥ ४६ ॥ तब हे ऋषियों ! वह धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिर अपने कुटुम्बियों के मरण का स्मरण करके अज्ञान भरे चित्त से स्नेह और मोहके वशीभूत होकर कहने लगे कि ॥४७॥ अहो ! मुझ दुष्टचित्त के अन्तःकरण में कैसा अज्ञान छायाहुआ है, देखो काक

तौः ॥४८॥ बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ॥ न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥ ४९ ॥ नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ॥ इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥५०॥ स्त्रीणां मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥५१॥ यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् ॥ भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥५२॥ इतिश्री भागवते० प्रथ० कुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ॥ ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥ १ ॥ तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ॥ अन्वगच्छन् रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥ २ ॥ भगवानपि विप्रर्षे रथेन सध-

श्वानों के भोजनरूप शरीर को राज्यादि सुख प्राप्त होने के निमित्त मैंने, अनेकों अक्षौहिणी+ मारीं॥४८॥बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र, भीष्मादि पितर, कर्णादि बन्धु, और द्रोणाचार्य आदि गुरु, इनसे द्रोह करनेवाले मेरा दशकरोड़ वर्षोंमेंभी नरकसे छुटकारा नहीं होगा॥४९॥प्रजा पालन करनेवाला राजा धर्मयुद्धमें शत्रुओं का वधकरे तौभी उसको पाप नहीं लगता है, ऐसे जो शिक्षारूप शास्त्रके वचन हैं वह मेरे चित्तको सन्तोष नहीं देसक्ते (क्योंकि-मैंने तो यह दुष्कर्म राज्यके लोभसे किया है)॥ ५० ॥ मैंने जिन स्त्रियोंके पतियोंका वधकरा, उनको जो दुःख प्राप्तहुआ, उसको तो मैं गृहस्थाश्रममें करेहुए कर्मोंके द्वारा दूर करनेको समर्थ हूँही नहीं ॥ ५१ ॥ यदि कहो कि-अश्वमेध यज्ञ करने से सब पाप दूर होजायँगे, सोभी ठीक नहीं है, क्योंकि-जैसे वस्त्रादिमें लगाहुआ कीचका जल, गादी कीचसे धोनेपर नहीं धुलता है और जैसे लेशमात्र मदिराके पीनेका पातक, जानकर अधिक मदिरा पीनेसे दूर नहीं होता है; तैसेही अविचारसे हुई जीवहत्याका पाप, जानकर करेहुए हिंसायुक्त यज्ञोंसे दूर नहीं होता है ॥ ५२ ॥ प्रथमस्कन्धमें अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

सूतजी बोले कि-हे ऋषियों ! इसप्रकार प्रजाके द्रोह (विनाशजनित पाप) से भयभीत हुए राजा युधिष्ठिर, सकल धर्मोंको जाननेकी इच्छासे जहाँ भीष्मजी शरशय्या पर पड़ेहुए थे, तिस कुरुक्षेत्रमें हस्तिनापुरसे चलेगये ॥ १ ॥ तब तो भीमसेन आदि सब भ्राता, उत्तम घोड़ोंसे जुतेहुए सुवर्णजटित रथोंपर बैठकर, और व्यास धौम्य आदि ब्राह्मणभी राजा युधिष्ठिरके पीछे २ गये ॥२॥ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ शौनक ! उससमय भगवान् श्रीकृष्णभी अर्जुनके साथ रथमें बैठकर चलदिये. तब तो वह धर्मराज, तिन श्रीकृष्ण आदि

+ २१८७० रथ, २१८७० हस्ती, ६५६१० घुड़सवार, १०९३५० प्यादे, इतनी सेना का नाम अक्षौहिणी है !

नञ्जयः ॥ स तैर्व्यरोचत नृपः कुवेर इव गुह्यकैः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ॥ प्रणेमुः पांडवा भीष्मं सानुगाः सह चाक्रिणा ॥ ४ ॥ तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ॥ राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं भरतपुंगवम् ॥ ५ ॥ पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः ॥ बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ॥ ६ ॥ वसिष्ठ इंद्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः ॥ कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥ ७ ॥ अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोऽमलाः ॥ शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपांगिरसादयः ॥ ८ ॥ तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ॥ पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥ ९ ॥ कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ॥ हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहं ॥ १० ॥ पांडुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसंगतान् ॥ अभ्याचष्टानुरागास्रैरंधीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥ अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनंदनाः ॥ जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥ १२ ॥ संस्थितेऽतिरथे पांडौ पृथा बालप्रजा वधूः ।

से युक्त होनेके कारण, चारोंओर यक्षोंसे वेष्टित कुवेरकीसमान शोभाको प्राप्तहुए॥३॥ तदनन्तर तिस कुरुक्षेत्र में मानो स्वर्ग से कोई साक्षात् देवता ही गिरपड़ा है ऐसे तिन तेज के पुञ्ज भीष्मजी को देखकर श्रीकृष्ण तथा परिवार सहित पाण्डवों ने प्रणाम किया ॥ ४ ॥ हे मुनियों में श्रेष्ठ शौनक ! तहाँ सकल ब्रह्मर्षि, देवर्षि, और राजर्षि, भरतकुल में श्रेष्ठ जो भीष्मजी तिनका दर्शन करने को आये ॥ ५ ॥ पर्वत, नारद, धौम्य, भगवान् व्यास, बृहदश्वा, भरद्वाज, अनेकों शिष्यों सहित रेणुकानन्दन परशुराम ॥ ६ ॥ वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, कौशिक और सुदर्शन ॥७॥ हे शौनक ! और भी श्रीशुक आदि विमल मुनि, तथा कश्यप एवं बृहस्पति आदि ऋषि, अपने शिष्यों को साथ में लिये हुए तहां आये ॥ ८ ॥ अपने समीप, इकट्ठे होकर आये हुए तिन महाभाग ऋषियों को देखकर, अष्ट वसुओं में श्रेष्ठ देशकाल का विभाग जाननेवाले और धर्मज्ञ तिन भीष्मजी ने उन ऋषियों का योग्यतानुसार सन्मान करा ॥ ९ ॥ और श्रीकृष्ण के प्रभाव को जाननेवाले, तिन भीष्म जीने सबके हृदयों में वास करनेवाले परमेश्वर, अपनी माया से शरीर धारण करनेवाले तथा अपने सम्मुख आसनपर विराजमान तिन श्रीकृष्ण जी का भी पूजन करा ॥ १० ॥ तदनन्तर युधिष्ठिर भीम आदि पाण्डव, नम्रता एवं प्रेमभाव युक्त होकर मेरे समीप आकर बैठे हैं, ऐसा जानकर, प्रेमाश्रु भरआनेसे अन्धसे होरहे हैं नेत्र जिनके ऐसे वह भीष्मजी तिन पाण्डवों से कहने लगे ॥ ११ ॥ हे धर्मारूढ़ पाण्डवों ! हाय ! तुम ब्राह्मण, धर्म और श्रीकृष्णका आश्रय पाकर भी क्लेश के साथ जीवन धारण करो यह उचित नहीं है किन्तु दुःखके साथ शोचनीय और अन्यायकी बात है ॥ १२ ॥ पूर्व में अतिरथी राजा पाण्डु का

युष्मत्कृते बहून् क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥ १३ ॥ सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियं ॥ सपालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥१४॥ यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ॥ कृष्णोऽस्त्री गांडिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥ ॥ १५ ॥ न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्पुमान्वेद विधित्सितं ॥ यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यंति कवयोऽपि हि ॥ १६ ॥ तस्मादिदं दैवतंत्रं व्यवस्य भरतर्षभ ॥ तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥ १७ ॥ एष वै भगवान्साक्षादाद्यो-नारायणः पुमान् ॥ मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥ १८ ॥ अस्यानुभावं भगवान्वेद गुह्यतमं शिवः ॥ देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान् कपिलो नृप ॥ १९ । यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमं ॥ अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिं ॥ २० ॥ सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहंकृतेः ॥ तत्कृतं मति-

मरण होनेपर, बालक पुत्रोंवाली तुम्हारी माता, बहू कुन्ती ने, तुम्हारे निमित्त तुम बालकों सहित वारम्वार अनेकों क्लेश पाये ॥ १३ ॥ मेरी बुद्धिसे तो आज पर्यन्त तुमको जो विपत्तियें झेलनी पड़ीं वह सब समयका प्रभाव था. क्योंकि—जिसप्रकार मेघकी पंक्तियें वायुके अधीन होती हैं, तैसेही लोकपालों सहित यह सब लोक कालके वशमें हैं ॥ १४ ॥ जहाँ धर्मपुत्र राजा, गदाधारी भीमसेन, अस्त्रों के जानने में प्रवीण अर्जुन, अलौकिक गाण्डीव धनुष और भगवान् श्रीकृष्ण से मित्र, यह सकल साधन होने पर भी विपत्ति हो, (तहाँ समय की प्रतिकूलता के सिवाय और क्या कहाजासक्ता है ;) ॥१५॥ हे धर्मराज युधिष्ठिर ! इन श्रीकृष्ण को क्या करना है ? यह जानने को कोई भी पुरुष कदापि समर्थ नहीं होसक्ता; क्योंकि ब्रह्मादि तत्वज्ञानी भी जिन श्रीकृष्ण की लीलाओं को जानने में प्रवृत्त होनेपर मोहित होते ही हैं ॥१६॥ तिससे हे भरतकुलदीपक ! समर्थ ! धर्मराज ! इन सकल सुख आदिको ईश्वराधीनही जानकर निरन्तर तिन परमेश्वर में चित्त लगातेहुए अनाथ प्रजाओं की रक्षाकरो ॥ १७ ॥ यह श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण आदि पुरुष भगवान् हैं, यह अपनी मायासे जगत् को मोहितकरके गुप्त रूपसे यादवों में निवास करते हैं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इन श्रीकृष्णजी के अतिगुप्त प्रभाव को भगवान् महादेवजी, देवर्षि नारद और साक्षात् भगवान् कपिल मुनिही जानते हैं ॥१९॥ तुम अज्ञानसे इन श्रीकृष्णजीको, यह मेरी देवकी नामक मामी के पुत्र और मेरे उपकारों की अपेक्षा न करके प्रीति करनेवाले प्रिय मित्र हैं, ऐसा मानतेहो और हे धर्मराज ! विश्वास के साथ तुमने इन जगदीश्वरको अपना मन्त्री, दूत और सारथी बनाया था ॥ २० ॥ परन्तु यह श्रीकृष्ण, सब के आत्मा, समदृष्टि, सुख दुःख और मान अपमान आदि द्वन्द्वों से रहित, निरभिमान और रागद्वेषादि से रहित हैं इस कारण इनको उत्तम वा नीचक-

वैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥ २१ ॥ तथाप्येकांतभक्तेषु पश्य भूपानुकंपितं ॥ यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥ २२ ॥ भक्त्यावेश्य मनो यस्मिन्वाचा यन्नाम कीर्त्तयन् ॥ त्यजन्कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः॥२३॥ स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहं ॥ प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखांबुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपंजरे ॥ अपृच्छद्विविधान् धर्मानृषीणां चानुशृण्वतां ॥ २५ ॥ पुरुषस्वभावविहितान्यथावर्णं यथाश्रमं ॥ वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥ २६ ॥ दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान्विभागशः ॥ स्त्रीधर्मान् भगवद्धर्मान् समासव्यासयोगतः ॥ २७ ॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथा मुने ॥ नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ २८ ॥ धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ॥ यो योगिनश्छंदमृत्योर्वांछितस्तूत्तरायणः ॥ २९ ॥

मोंका दोष नहीं लगसक्ता ॥ २१ ॥ तथापि हे राजन् ! इन श्रीकृष्णजीकी अनन्यभक्तों के ऊपर कितनी दयालुताहै देखो, इस समय प्राणोंको त्यागतेहुए मेरे अन्तकालमें अपना दर्शन देने के निमित्त यह श्रीकृष्ण परमात्मा आपही यहां आये हैं ॥ २२ ॥ अपने देहको त्यागने के समय, अपने मन को जिन श्रीकृष्ण के विषैं लगानेवाला और वाणीसे जिनके नामों को उच्चारण करनेवाला योगी, विषयवासना और कर्मों से छूटजाताहै ॥२३॥ वह देवाधिदेव, प्रसन्नहास्य और आरक्त नेत्रों के कटाक्षों से जिनका मुख शोभायमान है, अन्ययोगी अपने हृदय में जिनका चिन्तवनमात्रही करसक्ते हैं ऐसे चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्ण, आज मेरे सम्मुख स्थितहैं, सो अब मैं जितने समय में इच्छानुसार अपने शरीर का त्याग करूँ तबतक वह भगवान् कृपादृष्टि से मेरी ओर देखतेरहें ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि हे ऋषियो ! भीष्मजी के तिस वचनको सुनकर राजा युधिष्ठिर ने सकल ऋषियों के सुनतेहुए शरशय्यापर शयन करनेवाले तिन भीष्मजी से अनेकों प्रकार के धर्मविषयक प्रश्न करे ॥ २५ ॥ हे महामुने शौनक ! तब मनुष्यमात्र के साधारण धर्म, ब्राह्मणादि वर्णों के धर्म, ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमोंके धर्म, वैराग्य तथा विषयवासना इन दो उपाधियों के द्वारा क्रम से निवृत्ति और प्रवृत्ति लक्षण धर्म॥ २६ ॥दानधर्म, राजधर्म, मोक्ष धर्म, स्त्रीधर्म और भागवतधर्म यह सब तिन भीष्मजी ने संक्षेप और विस्तारसे धर्मराजके अर्थ वर्णन करे ॥ २७ ॥ तैसेही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार पुरुषार्थ तथा इन के उपाय, जिस अधिकारी के लिये जैसे अनेकों आख्यान और इतिहासों में वर्णन करेहैं तिसही प्रकार तिन तत्त्ववेत्ता भीष्मजीने वर्णन करे ॥ २८ ॥ इस प्रकार धर्म को वर्णन करते२, अपनी इच्छा से प्राणोंका त्याग करनेवाले योगियों का प्रिय, उत्तरायणका समय भीष्मजी को प्राप्तहुआ ॥ २९ ॥ तब, युद्ध में समीप के सहस्रों रथियोंकी रक्षा क-

तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसंगं मन आदिपूरुषे ॥ कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥३०॥ विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाशुगतायुधश्रमः ॥ निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजन् जनार्दनं ॥ ३१ ॥ भीष्म उवाच ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुंगवे विभूम्नि ॥ स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥ ३२ ॥ त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ॥ वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥ युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ॥ मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥ ३४ ॥ सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं

रनेवाले भीष्मजीने अपनी सकल वाणियों को रोककर, अहन्ताममतादि रहित अपना मन, सम्मुख विराजमान, प्रकाशवान् पीताम्बरधारी, चतुर्भुज, आदिपुरुष श्रीकृष्णजी के विषैं लगाया, और अपने नेत्रभी अनिमिषभावसे (पलक न लगाकर) श्रीकृष्णजीकी मूर्त्तिपर लगाये ॥ ३० ॥ तब अतिपवित्र धारणा से निष्पापहुए तथा श्रीकृष्णजी के कृपाकटाक्ष से उस समयही जिनके शरीर से शस्त्रों के प्रहारोंकी पीड़ा दूरहुई है ऐसे और जिनकी सकल इन्द्रियोंकी अनेकों प्रकारकी वृत्तियोंका विषयों में गमन रुकगयाहै ऐसे वह भीष्मजी अपने शरीर को त्यागते समय,भक्तोंका उद्धार करनेवाले श्रीकृष्णजीकी स्तुति करनेलगे ॥ ३१ ॥ भीष्मजी बोले कि—अनेकों साधनोंसे एकाग्र करीहुई मैने अपनी निष्काम बुद्धि यादवों में श्रेष्ठ, सर्वव्यापक श्रीकृष्ण भगवान् के विषैं समर्पण करी है; क्योंकि यह श्रीकृष्ण अपने परमानन्द में निमग्न रहते हैं और किसीसमय क्रीड़ा करने के निमित्त, जिससे सृष्टिका प्रवाह उत्पन्न होताहै तिस मायाको स्वीकार करते हैं तथापि मायासे जिनके स्वरूपकी महिमा आच्छादित नहीं होती हैं ॥ ३२ ॥ त्रिलोकी में अनुपम सुन्दरतायुक्त, तमाल के वृक्षकी समान श्यामवर्ण तथा सूर्यकी किरणों की समान तेजःपुञ्ज (चमक) वाले जरीके पीताम्बरको धारनेवाला और घुँघराली अलकावलीसे शोभित मुखकमलवाला जिनका विग्रह (स्वरूप) है ऐसे अर्जुन के सारथी श्रीकृष्णके विषैं मेरी निष्काम प्रीतिहो ३३ युद्धमें उड़ीहुई घोड़ोंके चरणोंकी रजसे कुछ एक धूसरवर्ण (अटेहुए) और इधर उधर को बिखरेहुए केशोंसे व्याप्त और घोड़ोंके चलनेके श्रमसे उत्पन्न हुए भक्तवत्सलताको प्रकाशित करनेवाले पसीनेके बिन्दुओंसे जिनका मुख शोभायमान है और मेरे तीखे बाणों से जिनके शरीरके वस्त्र फटकर त्वचा पर्यन्त विधगई है ऐसे श्रीकृष्णजीके विषैं मेरा मन सर्वदा रमणकरे ॥३४॥ और, हे अच्युत ! मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्यमें स्थापनकरो, ऐसा अपने मित्र अर्जुनका कथन सुनकर तत्काल पाण्डव और कौरवोंकी सेनाओंके मध्य

निवेश्य ॥ स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥३५॥ व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ॥ कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥ स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ॥ धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥ ३७ ॥ शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥ ॥ ३८ ॥ विजयरथकुटुंब आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ॥ भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोर्यमिह निरीक्ष्य हता गताः स्वरूपं ॥ ३९ ॥ ललितगतिवि-

में अर्जुन के रथको खड़ाकरके उसके ऊपर बैठे यह द्रोणाचार्य हैं, यह कर्ण है इत्यादि योधाओं को, अर्जुनको दिखाने के मिषसे कालदृष्टि के द्वारा तिन सकल वीरोंकी आयु को हरकर अर्जुनकी जय करनेवाले, अर्जुनके मित्र श्रीकृष्णजीके विषैं मेरी प्रीतिहो ॥३५॥ युद्धके समय दूर खड़ीहुई कौरवोंकी सेनाके आगे स्थित भीष्म आदिको देखकर दोषजान स्वजनों के वधसे विमुख होनेवाले अर्जुनकी 'मैं कर्त्ता हूँ' इत्यादि अज्ञानग्रस्त बुद्धिको, जिन्होंने आत्मविद्याका उपदेश देकर दूरकिया; तिन परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्णके चरणों में मेरी परमप्रीति होय ॥ ३६ ॥ 'मैं हाथमें शस्त्र धारण विना करेही अर्जुनकी सहायता करूँगा' इस अपनी प्रतिज्ञाको त्यागकर; 'मैं श्रीकृष्णको शस्त्र धारण कराऊँगा' ऐसी मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करने के निमित्त, तिस अर्जुनके रथपर बैठेहुए जो भगवान्, अकस्मात् रथ से नीचे उतर हाथमें रथका चक्र (पहिया) लेकर, हस्तीको मारनेको दौड़नेवाले सिंहकी समान, मेरे ऊपरको आये, उस समय क्रोधके आवेश में अपने मनुष्य नाट्यपर ध्यान न देकर चलनेपर जिनके उदरमें स्थित सकल ब्रह्माण्डों के भारसे पग२ परपृथ्वी डगमगाने लगी और शरीरपर धारण करेहुए वस्त्रभी अलग२ गिरपडे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब यह भगवान् मेरे ऊपरको आये तब,मैंने आततायी धर्मसे उन के ऊपर तीखे बाणोंके प्रहार करे, तिनसे इनका कवच कटकर शरीर रुधिरसे व्याप्त होगया, तब हठके साथ अर्जुनके रोकनेपर उसका कुछ ध्यान न करके मेरा वध करनेको सम्मुख आये; उस समय लोकदृष्टि से यह अर्जुनके पक्षपाती प्रतीत होतेथे,परन्तु वास्तवमें देखाजायतो अनुग्रह पूर्वक मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करने के निमित्तही रथकापहिया लेकर दौड़ेथे, ऐसे भक्तवत्सल मुक्तिदाता भगवान् मेरीगति (रक्षक) हों ॥३८॥ इन श्रीकृष्ण ने युद्धके समय, अर्जुन के रथकी, अकार्य करके भी,अपनेकुटुम्बकी समान रक्षाकरी और हाथमें चाबुकतथा घोड़ों की वागडोर धारणकरनेकी शोभासे अतिरमणीय प्रतीत होतेथे, तिनप्रभुको देखकर महाभारत के युद्धमें शरीर त्यागनेवाले वीर, भगवत्सारूप्य मुक्ति को प्राप्तहुए इसकारण मुझ प्राणोंको त्यागतेहुएकीभी श्रीकृष्ण परमात्माके विषैं सप्रेम भक्ति होय ॥३९॥ सुन्दर

लासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ॥ कृतमनुकृतवत्य उन्मदांधाः प्र-
कृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥ ४० ॥ मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽतःसदसि युधि-
ष्ठिरराजसूय एषां ॥ अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशि गोचर एष आविरात्मा
॥४१॥ तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानां प्रतिदृशमिव
नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥ ४२ ॥ सूत उवाच ॥ कृष्ण
एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपा-
रमत् ॥ ४३ ॥ संपद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ॥ सर्वे बभूवुस्ते तू-
ष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥ ४४ ॥ तत्र दुंदुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ॥
शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्हरणादीनि संपरे-
तस्य भार्गव ॥ युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥ ४६ ॥ तुष्टुवुर्मु-
नयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ॥ ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान्प्रययुः पुनः

गमन, विलास, रमणीय मन्दहास्य और प्रेमसहित कृपाकटाक्षों से श्रीकृष्णजी ने जिनका अतिसम्मान किया, वहगोपियें, मदान्ध होकर गोवर्धनधारण आदि कृष्णलीलाओंका अनुकरण (नकल) करतीहुई जिन प्रभुके स्वरूपको प्राप्तहुईतिन श्रीकृष्ण परमात्मा के विषैं मेरी परम प्रीतिहोय ॥ ४० ॥ धर्मराजयुधिष्ठिर के राजसूय यज्ञमें प्रसिद्ध २ ऋषि और बड़े२राजे आयेथे उनकी सभामें, अहो! कैसा सुन्दर इनका स्वरूपहै, कैसी अद्भुत इनकी महिमाहै, ऐसे आदरके साथ दर्शनकरने योग्य जो भगवान् सबसे प्रथम पूजेगये, वहही सकल जगत् के आत्मा मेरेसम्मुख प्रत्यक्ष विराजमान हैं, यह मेरा कैसा अहोभाग्य है ४१ इसकारण, सकल भेदभाव और मोहरहित मैं, अपने रचेहुए प्रत्येक प्राणीके हृदय में वसनेवाले और सूर्यकी समान एकही होकर अनेकरूप प्रतीत होनेवाले इन जन्मरहित श्रीकृष्णजीके विषैं मैं लीन होता हूँ ॥४२॥ सूतजी बोले कि–इसप्रकार वह भीष्मजी के परमात्मा श्रीकृष्ण भगवान् के स्वरूपमें, मन, वाणी और दृष्टिकी वृत्तियों सहित बुद्धिको स्थापनकरके लीन होनेपर, उनके प्राण बाहर न निकलकर भीतरही अन्तर्धान होगए ॥ ४३ ॥ तिन भीष्मजीको मायाकी उपाधिसे रहित परब्रह्म स्वरूपमें मिलाहुआ जानकर वह सकल व्यास आदि ऋषि, जिसप्रकार पक्षी सायङ्कालके समय मौनहोजाते हैं तैसेही मौन होगये ॥४४॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजीके समीपमें भीष्मजी निर्याण (प्राणान्त) होनेपर देवता और मनुष्योंकी बजाईहुई दुन्दुभियें बजनेलगीं राजाओं में सज्जन थे वह भीष्मजीकी प्रशंसा करनेलगे, और आकाशसे पुष्पोंकी, वर्षा होनेलगी ॥४५॥ हे शौनक! मुक्ति प्राप्त हुए तिन भीष्मजी के शरीरके दाह संस्कार आदि कर्म करके राजा युधिष्ठिर दो घड़ी पर्यन्त उन के वियोगसे दुःखितरहे ॥४६॥ तदनन्तर प्रसन्न मन नारदादि मुनि, श्री

॥ ४७ ॥ ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयं ॥ पितरं सांत्वयामास गांधारीं च तपस्विनीं ॥ ४८ ॥ पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ॥ चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥४९॥ इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे युधिष्ठिरराज्यमलंभोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ शौनक उवाच ॥ हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः ॥ कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ॥ निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतिमना बभूवह ॥ २ ॥ निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ॥ शशास गामिंद्र इवाजिताश्रयः परिध्युपांतामनुजानुवर्तितः ॥ ३ ॥ कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ॥ सिषिचुः स्म व्रजान्गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥४॥ नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ॥ फलंत्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ॥५॥ नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभू-

कृष्ण भगवान्की उन के गुप्त नामों के द्वारा स्तुति करके उन भगवान्के विषैंही चित्त को लगातेहुए फ़िर अपने२ आश्रमों को चलेगये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण सहित धर्मराजने हस्तिनापुर में जाकर धृतराष्ट्र और दुःखसे सन्ताप पातीहुई गान्धारी को समझाकर शान्त किया ॥ ४८ ॥ तदनन्तर धृतराष्ट्रकी आज्ञा और श्रीकृष्ण की सम्मति से समर्थ धर्मराज युधिष्ठिर अपने पिता पितामहादि के राज्यको पालन करनेलगे ॥ ४९ ॥ प्रथमस्कन्ध में नवम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ शौनक बोले कि–हे सूतजी ! अपने राज्य धन आदि के विषयमें डाह करनेवाले शस्त्रधारी आततायी दुर्योधनादिका वध करके, धर्मात्माओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिरने राज्य के विषय भोग होनेपर अपने भ्राताओं सहित राज्य किस प्रकार किया और उन्होंने आगेको क्या किया ? ॥ १ ॥ सूतजी बोले, कि–हे शौनक ! विश्वपालक और भक्तों के सङ्कट दूरकरनेवाले जगदीश्वर श्रीकृष्ण, कुरुवंश रूप वन से उत्पन्न हुए दावानल से भस्म हुए तिस कुरुवंश को, ब्रह्मास्त्र से परीक्षित की रक्षा करने से अंकुरित करके और धर्मराज को उनके राज्यपर स्थापन करके सन्तुष्टचित्त हुए ॥ २ ॥ सकल जगत् ईश्वर के ही अधीन है स्वाधीन नहीं है; इस प्रकार भीष्म और श्रीकृष्णजीसे सुने तत्त्वज्ञानके अनुभवसे जिनका मोह दूरहोगया है ऐसे वह राजा युधिष्ठिर, अनुकूल भीमादि भ्राताओं सहित, श्रीकृष्णके आश्रय से, जैसे स्वर्गकी रक्षा इन्द्रदेव करते हैं तैसेही समुद्रतट पर्यन्त पृथ्वीकी रक्षा करनेलगे ॥ ३ ॥ उससमय मेघ यथेष्ट वर्षाकरते थे, पृथ्वी प्रजाको सकल इच्छितपदार्थ देती थी, तथा बड़े२ दूध (ऐन) वाली गौएँ आनंद पूर्वक अपने दूधसे गोठको सींचती थीं ॥ ४ ॥ नदी, समुद्र, पर्वत, लता और सकल अन्न प्रत्येक ऋतुमें धर्मराजकी इच्छानुसार फलती थीं ॥ ५ ॥ इसप्रकार जिनका कोई शत्रु

तात्महेतवः ॥ अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥६॥ उषित्वा हास्तिन-
पुरे मासान्कतिपयान्हरिः ॥ सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥७॥
आमंत्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तं ॥ आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्व-
क्तोऽभिवादितः ॥८॥ सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा ॥ गान्धारी धृत-
राष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥९॥ वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ॥
न सेहिरे विमुह्यंतो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥ सत्सङ्गान्मुक्तदुःसंगो हातुं
नोत्सहते बुधः ॥ कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनं ॥ ११ ॥ तस्मि-
न्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम् ॥ दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः॥१२॥
सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः ॥ वीक्षन्तः स्नेहसम्बद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह
॥१३॥ न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते ॥ निर्यात्यगारान्नोऽभद्र मि-

---

उत्पन्नही नहींहुआ ऐसे तिन धर्मराजके पृथ्वीका राज्यकरते समय, किसीभी प्राणीको, आधि (मन का दुःख) व्याधि (शरीरके रोग) क्लेश (शीत उष्ण आदि) और आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक तापभी कभी नहीं हुए॥६॥तदनन्तर श्रीकृष्ण,पाण्डवोंका शोक दूर करनेको और अपनी सुभद्रा बहिनका प्रियकरने के निमित्त कई मास पर्यंत हस्तिनापुर में रहे ॥७॥ वह श्रीकृष्णभगवान् धर्मराजको नमस्कार पूर्वक आलिङ्गन करके तथा उनसे आज्ञालेकर चलते समय,भीम अर्जुन आलिङ्गन पूर्वक मिले,नकुल सहदेव ने नमस्कार किया तब श्रीकृष्णजी रथपर चढ़े ॥ ८ ॥ उससमय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती तथा उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव ॥९॥ भीमसेन, धौम्य ऋषि और सत्यवती आदि स्त्रियें, यह सबही श्रीकृष्णकी महिमासे मोहित होनेके कारण तिन श्री कृष्णके वियोगके दुःखको सहने को समर्थ न हुए ॥ १० ॥ क्योंकि साधुओंके वर्णन करेहुए श्रीकृष्ण के स्वादिष्ट यश को, एकवारभी सुनकर जिनकी संसार में की दुष्टा आसक्ति छूटगई है वह विवेकी पुरुष, तिन भगवान्के यश को वर्णन करनेवाले साधुओं के सङ्ग को छोड़ने की इच्छा नहीं करताहै ॥ ११ ॥ फिर वह साधु जिनके यशका वर्णन मात्र करते हैं तिन श्रीकृष्णमें, दर्शन, स्पर्श, प्रेमपूर्वक परस्पर भाषण, शयन, आसन भोजन आदि व्यवहार के द्वारा जिनकी बुद्धि लगरही है वह पाण्डव उन के विरहको कैसे सहसक्ते हैं ? ॥ १२ ॥ सो श्रीकृष्ण के साथही जिनके चित्त जारहे हैं ऐसे वह पाण्डव अपने निमेष (पलक लगाना) रहित नेत्रों से श्रीकृष्णकी ओर देखतेहुए जहाँ तहाँ उन की पूजा की सामग्री आदि लाने के निमित्तही इधर उधर जानेलगे ॥ १३ ॥ तब तिन देवकीनन्दनके स्थानमें से बाहर को निकलते समय, परमप्रेम के कारण उत्कण्ठा से द्रौपदी आदि बान्धवोंकी स्त्रियों के नेत्रों में से दुःख के अश्रु बाहरको आनेलगे परन्तु उन्होंने, या-

ति स्याद्धान्यवेक्षियः ॥ १४ ॥ मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥ धुन्धुर्या-नकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥१५॥ प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ॥ ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ १६ ॥ सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ॥ रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥ उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ॥ विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥१८॥ अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ॥ नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१९॥ अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ॥ कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥ २० ॥ स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ॥ अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥२१॥ स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ॥ अनामरूपा-

त्राकाल में अमङ्गल न हो इस कारण अपने नेत्रोंही में रोकलिये ॥ १४ ॥ श्री कृष्णजीके द्वारकाको जाते समय मृदङ्ग, शंख, भेरी (नौबत), पणव (नफीरी), गोमुख (धौंसे), धुन्धुरी (खञ्जरी), आनक (तासे) घण्टे और दुन्दुभि (नगाड़े) आदि अनेकों बाजे बजने लगे ॥१५॥ उस समय कौरवों की स्त्रियें श्रीकृष्णके दर्शनोंकी इच्छा से देवमन्दिर और राजमहलों के शिखरों पर बैठकर, प्रेम और मर्यादाके साथ हँसतीहुई श्रीकृष्णजी की ओरको देखकर उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करनेलगीं ॥ १६ ॥ तब गुडाकेश (निद्राको जीतनेवाले) प्रिय अर्जुन ने प्रियतम श्रीकृष्णजीका, मोतियों की झालरों से भूषित तथा रत्नजटित दण्डे से शोभित छत्र हाथ में लिया ॥ १७ ॥ उद्धव और सात्यकि इन दोनों ने अतिसुन्दर चँवरोंकी जोड़ी ली, उससमय स्त्रियोंकी करी हुई पुष्पोंकी वर्षा से श्रीकृष्णजी तिस राजधानी के मार्ग में परमशोभाको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ उससमय अनेकों स्थानों पर, निर्गुण और सगुणश्रीकृष्ण परमात्मा के योग्य और अयोग्य ब्राह्मणों की दीहुई सत्य आशिषें सुनने में आईं ॥ १९ ॥ तब पुण्यकीर्त्ति श्रीकृष्णमें ही जिनका चित्त पड़ा है ऐसी हस्तिनापुरकी स्त्रियों में जो परस्पर वार्त्ता प्रारम्भ हुई वह सब के ही कर्णों और मन को प्रिय लगतीथी ॥ २० ॥ उनमें से कोई स्त्री दूसरी स्त्रियों से कहने लगी कि अरी सहेलियों ! सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के उत्पन्न होने से प्रथम जो एक निरुपाधि परमात्मा थे और प्रलयकालमें जीवदशा की कारणरूप सत्वादि गुणोंकी शक्तियों का ईश्वर के स्वरूपमें लय होजाने के कारण जीव के तिस ईश्वरस्वरूपके विषैं लीन होजानेपर जगत्के व्यापार रहित निजानन्दस्वरूप में जो एकही शेष रहताहै वह ही यह साक्षात् पुराणपुरुष श्रीकृष्ण हैं, सो इन की किसी भी ऐश्वर्यादि महिमा के विषय में आश्चर्य नहीं है ॥ २१ ॥ वहही शास्त्रकर्त्ता परमेश्वर नामरूप रहित जीवा-

त्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥ २२ ॥ स वा अयं यत्प-
दमत्र सूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ॥ पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना
नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥ २३ ॥ स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु
गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ॥ य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न
तत्र सज्जते ॥ २४ ॥ यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवन्ति तत्रैष हि स-
त्त्वतः किल ॥ धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे२५॥
अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलमहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ॥ यदेष पुंसामृ-
षभः श्रियः प्रियः स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥ २६ ॥ अहो बत स्वर्यश-
सस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ॥ पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं स्मि

त्मा के विषैं नामरूप उत्पन्न करने की इच्छा से, अपनी कालशक्ति से प्रेरणा करीहुई और अपने अंशरूप जीवको मोहित करके शरीरके द्वारा नामरूप को उत्पन्न करनेवाली मायाको अङ्गीकार करेहुए हैं ॥ २२ ॥ अहोभाग्य हैं, जो हम को इन जगदीश्वर के दर्शनहुए, क्योंकि अपने मन आदि सकल इन्द्रियें और प्राणवायु को वशमें करनेवाले योगी, भक्ति से उत्कण्ठितहुई बुद्धिके द्वारा इसलोक में जिनके स्वरूपका दर्शन करते हैं वहही यह पूर्ण ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णहैं, और हे सखि! सबकी बुद्धियों को उत्तम प्रकार से जैसी यह निर्मल करसक्ते हैं, तैसी बुद्धिकी निर्मलता योगसाधनों से भी नहीं होसक्ती ॥ २३ ॥ हे सखि! वेद और शास्त्रोंमें के गुप्तचरित्रों का वर्णन करनेवाले, कवियों ने जिनकी उत्तम कथाका वारंवार गान कराहै, वह ही यह श्रीकृष्णभगवान्हैं, जो एकही ईश्वर, अपनी लीलासे इस चराचर विश्व को उत्पन्न करके पालन और फिर संहार करते हैं परन्तु उन में से किसीभी कार्य में आसक्त नहीं होते हैं ॥ २४ ॥ अरी सखियों! जिस समय सब राजे तामसी बुद्धिवाले होकर अधर्म से केवल अपने ही प्राणोंका पालन करनेलगते हैं, उस समय यह श्रीकृष्णभगवान्, केवल लोकरक्षाके निमित्त, तिस२ उचित समय में, शुद्ध सत्वगुण के द्वारा मत्स्य आदि अनेकों अवतार धारण करके अपने ऐश्वर्य, सत्य, प्रतिज्ञा, यथार्थ उपदेश, भक्तोंपर दया और अद्भुतलीला प्रकट करते हैं ॥२५॥यह पुरुषोत्तम लक्ष्मीपति, अपने जन्मसे यादववंश का सत्कार कररहे हैं;इस कारण यादववंश परम प्रशंसाके योग्यहै,इन्होंने विचरकर मथुरापुरीका सन्मान कराहै इसकारण वह सब पुरियों में अतिपवित्र है, ऐसे श्रीकृष्णजीका माहात्म्य आश्चर्यकारी है॥२६॥अरी सखियों! यह दूसरा और भी आश्चर्य है कि—इस समय द्वारका नगरी स्वर्ग के भी यश को तुच्छ करके भूमिके यशको वढारहीहै, क्योंकि-द्वारिकावासी सबप्रजा,भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त मन्दहास्य के साथ देखनेवाले अपने स्वामी श्रीकृष्णजी का निरन्तर दर्शन

तांवलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥ २७ ॥ नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ॥ पिबंति याः सख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियः संमुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८ ॥ या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ॥ प्रद्युम्नसांबांबसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥ २९ ॥ एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ॥ यासां गृहात्पुष्करलोचनः पंतिर्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥ ३० ॥ एवंविधा गदंतीनां स गिरः पुरयोषितां ॥ निरीक्षणेनाभिनंदन् सस्मितेन ययौ हरिः ॥ ३१ ॥ अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ॥ परेभ्यः शंकितः स्नेहात्प्रायुंक्त चतुरंगिणीम् ॥ ॥ ३२ ॥ अथ दूरागतान् शौरिः कौरवान् विरहातुरान् ॥ सन्निवर्त्य दृढं स्निग्धान् प्रायात् स्वनगरीं प्रियैः ॥ ३३ ॥ कुरुजांगळपांचाळान् शूरसेनान्सयामुनान् ॥ ब्रह्मावर्त्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥ मरुधन्वमतिक्रम्य

करती हैं, यह सुख स्वर्ग में नहीं है अरी सखि ! अवश्यही इन श्रीकृष्णकी रुक्मिणी सत्यभामादि स्त्रियों ने, पूर्वजन्ममें व्रत, तीर्थ स्नान और हवनआदि करके इन श्रीकृष्णका उत्तम प्रकारसे पूजनकराहोगा ! क्योंकि यह श्रीकृष्णजीके अधरामृतका वारंवार पानकरतीहैं; जिस अधरामृतकी इच्छासे पहिले गोपियें अतिमोहितहुईथीं, तिससे श्रीकृष्णकी सुन्दरता अनुपमहै ॥२८॥ इन भक्तवत्सल प्रभुकी, पहिले स्वयम्वरमें बलीशिशुपालादि राजाओं का तिरस्कार करके पराक्रमरूप मूल्यसे लाईहुई, प्रद्युम्न, साम्ब, अम्ब आदि जिनके पुत्रहैं ऐसी रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती आदि आठ पटरानियें और भौमासुरके वधके समय लाईहुई सहस्रों और स्त्रियेंभी ॥२९॥ स्वतन्त्रता रहित और अपवित्र अपने स्त्रीपनेको शोभादेरहीहैं, क्योंकि पारिजात (कल्पवृक्ष) आदि प्रियवस्तु लाकेदेकर तथा अनेको प्रियभाषण करके मनमें आनन्दमानने वाले कमलनयन पति श्रीकृष्णजी, जिनके घरोंमेंसे कभी वाहरनहीं जातेहैं ३० इसप्रकार तिन नगरकी स्त्रियोंके नानाप्रकारके भाषणकरते समय वह श्रीहरि अपने मन्दहास्य सहित कृपाकटाक्षोंसे उनका सन्मान करतेहुए नगरके वाहर पहुँचगये ॥ ३१ ॥ उस समय धर्मराजने, कहीं श्रीकृष्णको शत्रु न आघेरें, ऐसा मनमें संशय मानकर प्रेमवश तिनमधुसूदन की रक्षाके निमित्त चतुरङ्गिणी सेनाभेजी ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अपनेसे अतिस्नेह करनेवाले, विरहसे दुःखित हुए और अपने साथ वहुतदूरतक आएहुए पाण्डवोंको पीछेको लौटाकर, श्रीकृष्णजी उद्धवादि प्रिय यादवों सहित अपनी द्वारका नगरीकी ओर को चलदिये ॥ ३३ ॥ और, कुरु जाङ्गल, पाञ्चाल, शूरसेन, यमुनाके तटके देश, ब्रह्मावर्त्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य और सरस्वतीनदीके तटके देश ॥३४॥ निर्जल मरुदेश (मारवाड़) और थोड़ेजलवाले धन्वनामक देशों को लांघकर, सौवीर आभीर इनदेशोंके आगे आनर्त्त देश (द्वा-

सौवीराभीरयोः परान् ॥ आनर्तान्भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ॥ ३५ ॥ तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ॥ सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥३६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥ सूत उवाच ॥ आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धान् जनपदान्स्वकान् ॥ दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥ १ ॥ स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधर-शोणशोणिमा ॥ दाध्मायमानः करकञ्जसम्पुटे यथाऽब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥ २ ॥ तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ॥ प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्श-नलालसाः ॥ ३ ॥ तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः ॥ आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाःप्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ॥ पितरंसर्वसुहृ-दमवितारमिवार्भकाः ॥ ४ ॥ ५ ॥ नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं विरिञ्चवै-रिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ॥ परायणं क्षेममिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परः

एकादेश) में वह श्रीकृष्ण आपहुँचे. हे शौनक ! उस समय उनके रथके घोड़े कुछएक थकगयेथे ॥३५॥ हस्तिना पुरसे चलकर मार्गके प्रत्येक देशों में रहनेवाले पुरुषोंने तहां २ भेटलाकर जिनको समर्पण करी ऐसे वह श्रीहरि, सायंकालके समय पश्चिमदिशा में आये और उसही समय सूर्यदेव अस्त होगये ॥३६॥ प्रथमस्कन्धमें दशमअध्याय समाप्त* ॥ सूतजी बोले, हे ऋषियों ! श्रीकृष्णजीने अपनी समृद्ध द्वारिका पुरीमें प्रवेश करके, मानो तिसदेशके निवासियोंका खेददूर करनेके निमित्त, अपना पाञ्चजन्य शंखबजाया ॥ १ ॥ तबजिसका मध्यभाग स्वेत होकरभी बजाते समय श्रीकृष्णजीके अधरकी लालिमासे लाल होगयाहै ऐसा वह शंख श्रीकृष्णजीके हस्त कमलों के सम्पुट में बजते समय लाल कमलों के समूहपे बैठकर उच्चस्वरसे शब्दकरने वाले राजहंसकी समान शोभित हुआ ॥ २ ॥ तब जगत्के भयदायक काल को भी भयभीत करनेवाले तिस शंखके शब्दको सुनकर, श्रीकृष्णके दर्शन के निमित्त उत्कण्ठित द्वारकाकी सकल प्रजा, तिन श्रीकृष्णकी ओर को चलदी ॥ ३ ॥ फिर श्रीकृष्णजीके समीप पहुँचतेही प्रजाने आदर के साथ, लाईहुई भेट उन के सन्मुख, जैसे सूर्यको दीपक समर्पण करते हैं तैसे समर्पण करी, और आनन्द से प्रफुल्लमुख हुई तिस प्रजाने, आत्माराम, सर्वदा अपने स्वरूपकी प्राप्तिसे ही पूर्णकाम,तथा दीनवत्सल स्वभाव के कारण सबके मित्र और सबके रक्षक तिन श्रीकृष्णजी से, हर्षके कारण गद्गदहुई वाणी करके जैसे छोटे बालक अपने पितासे भाषण करें, तिस प्रकार, भाषण करा ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे नाथ ! ब्रह्मदेव, सनकादि ऋषि और इन्द्रादि सकल देवताओं के प्रणाम करेहुए, इसलोकमें मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके उत्तम आश्रय और जहाँ सबके नाशक कालकी भी सामर्थ्य नहीं चलसकी ऐसे तुम्हारे चरणों में हम

प्रभुः ॥६॥ भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ॥ त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥ ७ ॥ अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ॥ प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥ ८ ॥ यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्कुरून्मधून्वाथ सुहृद्दिदृक्षया ॥ तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥९॥ इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ॥ शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीं ॥ १० ॥ मधुभोजदशार्हार्हकुकुरांधकवृष्णिभिः ॥ आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११ ॥ सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ॥ उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियं ॥१२॥ गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तः प्रतिहतातपां ॥ १३ ॥ सम्मार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ॥ सिक्तांगन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षतांकुरैः ॥ १४ ॥ द्वारि द्वारि गृहाणां च

निरन्तर नम्र रहेहैं ॥ ६ ॥ हे विश्वपालक ! आप हमारा कल्याण करने के निमित्त प्रसन्न हूजिये, तुम हमारे माता, पिता, मित्र, रक्षक, सद्गुरु और परमदेवता हो, तुम्हारी सेवा से ही हम कृतार्थ हुए हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! प्रेमपूर्वक मन्दहास्य सहित और कृपाकटाक्ष युक्त मुखकमल तथा सकल अङ्गोंकी अनुपम सुन्दरतासे शोभायमान, देवताओं को भी जिसका दर्शन दुर्लभ है ऐसे तुम्हारे स्वरूपका हम दर्शन करते हैं, इस कारण आपसे हम सनाथ और धन्यहैं ॥ ८ ॥ हे कमलदलनयन अच्युत ! जब तुम अपने मित्रों को देखने की इच्छासे हस्तिनापुर अथवा मथुराको जाते हो तव, जैसे सूर्य के दर्शनके विना नेत्रों को, तैसे ही तुम्हारे दर्शनके विना हमको एकक्षणभी करोड़ वर्षोंकी समान होजाताहै ॥९॥ इसप्रकार कहेहुए प्रजा के वचनोंको सुनकर वह भक्तवत्सल श्रीकृष्ण, अपनी कृपादृष्टिसे उनके ऊपर मानो अनुग्रह करते हुए द्वारकापुरी में चलेगये ॥ १० ॥ वह द्वारका—श्रीकृष्णकी समान बलवान्—मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक और वृष्णियों से, सर्पों से रक्षाकरी हुई भोगवती नगरीकी समान, सुरक्षित थी ॥ ११ ॥ और सब ऋतुओं में फलपुष्पादि सम्पत्ति युक्त पवित्र वृक्षलताओं के मण्डप, फलवाले वृक्षों के बाग, बगीचे, फुलवाड़ियें तथा क्रीड़ाके वनों करके चारों ओरसे घिरेहुए जो अनेकों कमलोंके सरोवर तिनसे युक्तथी ॥ १२ ॥ नगरके द्वार, गृहोंके द्वार और मार्गों में उत्सवके उत्साह से बाँधी हुई वन्दनवारोंसे युक्तथी. चित्र विचित्र ध्वजा और पताकाओंके अग्रभागमें लगेवस्त्रोंसे जिसमें सूर्यकी किरणोंका तापनहीं पहुँचताथा, ॥ १३ ॥ राजमार्ग, अन्य साधारण मार्ग, बाजारोंमें के मार्ग और प्रत्येक घरोंके आँगनों में कूड़ादूर करके स्वच्छकरीहुई, सुगन्धित जलसे छिड़कीहुई और फल, पुष्प, अक्षत तथा कोमलपत्तों से जहाँ तहाँ शोभितकरीहुई थी ॥ १४ ॥ और सकल स्थानोंके द्वारोंपर स्थापनकरेहुए

दध्यक्षतफलेक्षुभिः ॥ अलंकृता पूर्णकुंभैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ निशम्य प्रेष्ठमायांतं वसुदेवो महामनाः ॥ अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥१६॥ प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च सांबो जांबवतीसुतः ॥ प्रहर्षवेगोच्छ्वसितशयनासनभोजनाः ॥ १७ ॥ वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमंगलैः ॥ शंखतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ॥ प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥ १८ ॥ वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥१९॥ नटनर्त्तकगंधर्वाः सूतमागधवंदिनः ॥ गायंति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥२०॥ भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनिवर्त्तिनां ॥ यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥२१॥ प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ॥ आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥ २२ ॥ स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः

दधि, अक्षत, फल, इक्षु (ईख), पूर्णकलश, पूजनकी सामग्री धूप और दीप आदिसे युक्त थी ॥ १५ ॥ उस समय परमप्रिय श्रीकृष्णजीको आतेहुए सुनकर, महात्मा वसुदेवजी, अक्रूर, उग्रसेन, अद्भुतपराक्रमी बलराम ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और जाम्बवतीके पुत्र साम्ब, यह सब अतिहर्षके वेगसे शय्या, आसन और भोजनको त्यागकर ॥ १७ ॥ प्रेमके कारण जिनकी धीरता दूरहोगई है ऐसे वह यादव, शृङ्गार करेहुए एक गजराजको आगे करके, हाथोंमें फल पुष्पादि माङ्गलिक पदार्थोंको लेकर वेद मन्त्रोंका उच्चारण करने वाले ब्राह्मणों सहित, माङ्गलिक बाजोंके शब्द, आदर और हर्षसे युक्तहो रथोंमें बैठ श्रीकृष्ण जीकी ओरको चलदिए ॥ १८॥ उससमय. कानोंमें झलकनेवाले कुण्डलोंसे प्रकाशवान् कपोलोंकरके जिनके मुखपर शोभा आगई है, ऐसी सैंकड़ों नर्त्तकी श्रीकृष्णजी के दर्शनके निमित्त उत्कण्ठित होकर गाड़ी रथ आदिपे बैठ २ कर चलदीं ॥ १९ ॥ तथा हावभाव करनेवाले चतुर नट, तालपर नृत्य करनेवाले नर्त्तक, गान में प्रवीण गन्धर्व, पुराण कथा कहनेवाले सूत, वंशावली गानेवाले मागध और समयानुसार स्तुति करनेवाले बन्दीभी श्री कृष्णजी के अद्भुत चरित्रोंका गान करतेहुए उनके दर्शनके निमित्त चलदिये ॥ २० ॥ तब श्रीकृष्णभगवान् ने, अपने बलरामादि बान्धव तथा सकल पुरवासियों की भेंटें यथोचित रीति से लेकर, किसी को मस्तक नवाकर, किसी को नमस्कार करके, किसी को हाथ जोडने के साथ नमस्कार करके, किसी को हृदय से लगाकर, किसी से हाथ मिलाकर, किसी की ओर देखकर, किसी को उपदेश करके और किसी को इच्छित बरदान देकर इस प्रकार वसुदेवजी से लेकर उन्हों ने चाण्डालपर्यन्त सबका योग्यतानुसार सन्मान करा ॥ २१ ॥ २२ ॥ और वसुदेव आदि बड़े, गर्गाचार्य आदि ब्राह्मण तथा उग्रसेन आदि गुरुजनों के तिन श्रीकृष्णजी को आशीर्वाद देने तथा अन्य बन्दीजनोंके स्तुति करनेपर

स्थविरैरपि ॥ आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वंदिभिश्चाविशत्पुरम् ॥ २३ ॥ राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ॥ हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥ ॥ २४ ॥ नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसां ॥ न वितृप्यंति हि दृशः श्रियोधामांगमच्युतं ॥ २५ ॥ श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशां ॥ बाहवो लोकपालानां सारंगाणां पदाम्बुजम् ॥ २६ ॥ सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ॥ पिशंगवासा वनमालया बभौ घनो यथाऽर्कोडुपचापवैद्युतैः ॥२७॥ प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ॥ ववंदे शिरसा

उन्हों ने नगर में प्रवेश किया ॥ २३ ॥ हे शौनक ! तिन श्रीकृष्णजी के राजमार्ग में पहुँचनेपर तिन के दर्शनों के निमित्त उत्कण्ठित द्वारका के धनवान् पुरुषोंकी कुलीन स्त्रियें अपने२स्थानों के छज्जोंपर चढगई॥२४॥क्योंकि केवल जिनका शरीरही सुन्दरताका अनुपम स्थान है ऐसे तिन श्रीकृष्णको यद्यपि द्वारकावासी पुरुष नित्य देखते थे तथापि उन के नेत्र तृप्त नहीं होते थे ॥ २५ ॥ जिनका वक्षःस्थल लक्ष्मी का निवासस्थानहै जिनका मुख प्राणीमात्र के नेत्रोंका, सौन्दर्यरूप अमृत के पीनेका पात्र है, जिनके बाहुदण्ड इन्द्रादि लोकपालोंके निवासस्थानहैं और जिनके चरणकमल सारङ्ग कहिये भक्तोंके* आश्रय स्थानहैं ऐसे श्रीकृष्णजीका दर्शन करनेवालोंके नेत्र किसप्रकार तृप्त होसक्ते हैं ? ॥२६॥ जिनकी स्वेत छत्र और चँवरोंसे सेवा होरही है और जिन के ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होरही है ऐसे वह पीताम्बरधारी श्रीकृष्णजी, उस राजमार्ग में कण्ठ में धारणकरी हुई वनमाला × करके, सूर्य, चन्द्र, तारागणों से युक्त इन्द्रधनुष और विजली से जैसा मेघ शोभायमान होता है तैसी शोभा को प्राप्त हुए ÷ ॥ २७ ॥ तदनन्तर भगवान्. मातापिता के भवनों

* सारं जगत्सारभूतं भगवन्तं गच्छन्ति भक्त्या प्राप्नुवन्ति ते सारङ्गा भगवद्भक्ताः । अर्थात् जगत्के सार भगवान्को भक्ति से पाने के कारण भक्तों का नाम सारङ्ग है ।

× चरणोंसे लेकर कण्ठपर्यन्त लम्बी और जिसके कमल कभी न कुमलावें उस कमल के पुष्पोंकी मालाको वनमाला कहते हैं ।

÷ मेघ के ऊपर सूर्यमण्डल, दोनों ओर दो चन्द्रमा, चारों ओर नक्षत्र, मध्य में एक से एक सटेहुए दो इन्द्रधनुष और स्थिर रहनेवाली विजली ऐसी अघटितघटना होजानेपर जैसे मेघ शोभित होय तैसे ही मध्यमें वह मेघकी समान श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण, मस्तकपरसूर्य विम्बकी समान स्वेत छत्र, दोनों ओर दो पूर्ण चन्द्रकी समान दो चँवर, चारों ओर तारागणों की समान पुष्पोंकी वर्षा, बिजलीकी समान धारण कराहुआ पीताम्बर का जोड़ा, दोनों ओर परस्पर मिलेहुए दो इन्द्रधनुषों की समान वनमाला, इनसे अद्भुत शोभाको प्राप्तहुए।

सम देवकीप्रमुखा मुदा ॥२८॥ ताः पुत्रमंकमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ॥ हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९ ॥ अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमं ॥ प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥३०॥ पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ॥ उत्तस्थुरारात्सहसासनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ।३१। तमात्मजैर्दृष्टिभिरंतरात्मना दुरंतभावाः परिरेभिरे पतिम्॥ निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ३२ यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्यांघ्रियुगं नवं नवं ॥ पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि

मेंपधारे,तब माताओंने उनको हृदयसे लगाया और भगवान्‌नेभी देवकी आदि सातोंमाताओं को आनन्दपूर्वक मस्तक नमाकर प्रणामकिया॥२८॥स्नेह केकारण जिनके स्तनोंमें से दुग्ध टपकने लगा है ऐसी वह माताएँ पुत्र श्रीकृष्ण को गोदमें बैठाकर हर्ष से विह्वल मन हो आनन्दके अश्रुओं से श्रीकृष्णजी को सींचनेलगीं ॥ २९ ॥ तदनन्तर भगवान्, जहाँ सकल अभिलषित भोगों की सामग्रियें उपस्थित थीं और जहाँ रुक्मिणी आदि सोलहसहस्र रानियों के मन्दिर थे ऐसे अनुपम अपने भवन में पधारे ॥ ३० ॥ देशान्तर से लौटकर स्थानको आयेहुए पतिको दूरसे देखतेही श्रीकृष्णजी की रुक्मिणी आदि स्त्रियों के मनमें परम हर्ष हुआ और लज्जित हैं नेत्र और मुख जिनके ऐसी वह स्त्रियें, पतिके देशान्तर में होनेके समय धारण करे हुए व्रत * को त्यागकर तत्काल आसन और अन्तःकरण से उठखड़ी हुईं अर्थात् भगवान् के मिलने में अन्तःकरणकी ओट को भी न सहसकीं३१॥ हे शौनक ! अत्यन्तस्नेहवती वह स्त्रियें, आतेहुए अपनेपति श्रीकृष्णजी को प्रथम (परदेश में रहते समय) अन्तःकरणसे (ध्यानकरके) आलिङ्गन देतीथीं, और पतिके लौटकर महल में को आते समय दृष्टियों से तथा सर्वथा समीप आजानेपर पुत्रों के द्वारा आलिङ्गन दिया, उससमय लज्जित होनेवाली तिन स्त्रियों ने नेत्रों में आयेहुए प्रेम के अश्रुओं को यद्यदि बाहर न निकाल नेत्रोंके भीतर ही रोका तथापि श्रीकृष्णजी को दर्शन करके प्रेम से अत्यन्त विह्वल होने के कारण वह बाहर निकलकर टपकही पड़े ॥ ३२ ॥ यद्यपि भगवान् सदा उन के पास तिसपरभी एकान्त में रहते थे तथापि तिन स्त्रियोंको उन के चरण कमल क्षण२ में नवीन२ सेही प्रतीत होते थे, क्योंकि–उन चरणों को तो चञ्चलस्वभाव

* क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ अर्थात् क्रीड़ा करना, उबटन आदिलगाना, नृत्यादि का उत्सव देखना, किसी से हास्य करना और परगृह में जाना, इनको, परदेश में जिसका पति हो वह स्त्री त्यागदेय। ऐसा याज्ञवल्क्य स्मृति का वचन है ।

यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥३३॥ एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ॥ विधाय वैरं श्वसनो यथाऽनलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४ ॥ स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ॥ रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतो यथा ॥ ३५ ॥ उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडाऽवलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ॥ सम्मुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥ ३६ ॥ तमयं मन्यते लोको ह्यसंगमपि संगिनम् ॥ आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥३७॥ एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ॥ न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥३८॥ तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः ॥ अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥ इति श्रीभा० महा० प्र० श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशो नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

वाली लक्ष्मी भी कभी नहीं त्यागती है, फिर दूसरी कौन त्यागना चाहेगी ? ॥ ३३ ॥ हे ऋषियों ! इस प्रकार आप,शस्त्र धारण करे विनाही वह भगवान्, केवल पृथ्वीका भार भूतही जिनका जन्म है और अनेकों अक्षौहिणी सेनाओंसे सर्वत्र जिनका तेज फैलरहा है ऐसे दुष्टराजाओं में परस्पर वैर उपजाकर, उनका परस्परसे वध होनेपर 'जिस प्रकार वायु वनमें वाँसों के परस्पर घिसने से अग्नि उपजाकर उन के भस्म होजानेपर शान्त होजाता है तैसेही' विराम को प्राप्त होगए ॥ ३४ ॥ सो यह भगवान् अपनी माया से इस मनुष्यलोकमें अवतार धारकर साधारण पुरुषकी समान रुक्मिणी आदि उत्तम स्त्रियों के समूहके विषैं क्रीड़ा करनेलगे ॥ ३५ ॥ जिन स्त्रियोंके निर्भय गूढ़ अभिप्रायके सूचक स्वच्छ सुन्दर मन्दहास्य और लज्जायुक्त नेत्रों के कटाक्षोंवाले दृष्टिपातों से विस्मितहो, जगत् के मोहने में प्रवृत्तहुए कामदेवने भी मोहित होकर 'मेरे कार्य को यही करलेंगी' ऐसा विचार अपने धनुषको त्यागदिया, और की तो कथाही क्या ? ऐसी भी वह उत्तम स्त्रियें श्रीकृष्णजीके चित्त में कामविकार उत्पन्न करने को समर्थ न हुई ॥ ३६ ॥ तिनही श्रीकृष्णको असङ्ग होकर भी कारणवश मनुष्यलीला करतेहुए देखकर उन के वास्तविक तत्त्वको न जाननेवाला यह संसारी पुरुष, अपने दृष्टान्त से, अपनी समान ही मनुष्य मानता है ॥ ३७ ॥ यह ही ईश्वरकी ईश्वरताहै कि–वह, जिस प्रकार आत्माके आनन्दादि गुणों से बुद्धि,युक्त नहीं होती है तैसे,प्रकृति के कार्य स्त्री पुत्रादिके विषैं स्थित होकरभी उन के, गुणों के कार्य जो राग मोह सुख दुःखादि तिन से लिप्त नहीं होते हैं ॥ ३८ ॥ जैसे शास्त्रके जाननेवाले विद्वानों की बुद्धियें, जगत्के निमित्तमात्र ईश्वरको सगुण, निर्गुण, कर्त्ता, अकर्त्ता यथारुचि मानती हैं तैसे ही भर्त्ता श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको न जानने वाली अज्ञ रुक्मिणी आदि पत्नियों ने, एकान्तमें अपने चित्तानुकूल वर्त्ताव करनेवाले श्री कृष्णजी को अपने वशीभूत जाना ॥ ३९ ॥ प्रथम स्कन्ध में एकादश अध्याय समाप्त ॥

शौनक उवाच ॥ अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ॥ उत्तराया हतोगर्भई-शेनाजीवितः पुनः ॥ १ ॥ तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च शृणीहि नः ॥ निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान्यथा ॥ २ ॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामि गदितुं यदि मन्यसे ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥ ३ ॥ सूत उवाच अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रंजयन्प्रजाः ॥ निस्पृहःसर्वकामेभ्यः कृष्णपादाब्जसेवया ॥ ४ ॥ संपदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही ॥ जम्बुद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतं ॥ ५ ॥ किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः ॥ अधिजन्हुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥ ६ ॥ मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन ॥ ददर्श पुरुषं कंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥ ७ ॥ अंगुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ॥ अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतं ॥ ८ ॥ श्रीमदीर्घचतुर्बाहुं तप्तकांचनकुण्डलम् ॥ क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ॥ परि-

शौनक बोले कि–हे सूत ! अश्वत्थामाके छोड़ेहुए अति तेजस्वी ब्रह्मास्त्रसे मृतक समान हुए उत्तराके गर्भको भगवान् श्रीकृष्णने फिर जीवित किया ॥ १ ॥ तिन महाबुद्धिमान् परीक्षितका जन्म किसप्रकार हुआ ? उन्होंने कौन कर्मकरे ? और वह शरीरको त्याग, परलोकको जिसप्रकार गये ॥ २ ॥ इस सब वृत्तान्तको सुननेकी हमारी इच्छा है, यदि आप वर्णन करना उचित समझें तो हम श्रद्धावानों को उन राजा परीक्षित का चरित्र सुनाइये कि–जिनको शुकदेवजी ने ज्ञानका उपदेश दिया था ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि–हे शौनक ! श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवासे सकल विषयोंमें निस्पृह धर्मराज युधिष्ठिरने सकल प्रजा का प्रेमके साथ माता पिताकी समान पालनकरा ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णमें जिनका मनलगा है ऐसे धर्मराजको सम्पत्ति, यज्ञ, यज्ञसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि लोक, ब्राह्मण, पटरानी द्रौपदी, अनुकूल और पराक्रमी भ्राता, इच्छित फल देनेवाली पृथ्वी, जम्बूद्वीपका आधिपत्य और स्वर्ग पर्यन्त गयाहुआ यश इत्यादि देवताओंके भी अभिलाषा करने योग्य विषय क्या हर्षदायक हुए ? किन्तु जिसप्रकार बुभुक्षित पुरुषको अन्नके सिवाय चन्दनादि कोई पदार्थ सन्तोषदायक नहीं होता है तिसी प्रकार कृष्णकी भक्ति के सिवाय कोई भी पदार्थ धर्मराज को सुखदायक नहीं हुआ ॥५॥६॥ हे शौनक ! माता के गर्भमें स्थित वह वीर परीक्षित जब ब्रह्मास्त्र के तेजसे दग्ध होनेलगा तब उस ने वहाँ एक कोई अलौकिक पुरुष देखा ॥ ७ ॥ जो अंगुष्ठ प्रमाणवाला, स्वच्छ, देदीप्यमान सुवर्ण के मुकुटको धारे. अति रमणीय स्वरूप, बिजली की समान पीतपटधारी, श्यामवर्ण निर्विकार ॥ ८ ॥ शोभायमान चारभुजाओं से युक्त, तपायेहुए सुवर्ण की समान प्रकाश युक्त कुण्डलों से भूपित, कुछएक लालीसे शोभित नेत्रोंवाला, गदाधारी, और अपने चारों ओर फिरताहुआ

भ्रमंतमुल्काभं भ्रामयंतंगदांमुहुः ॥९॥ अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः॥ विधमंतं सन्निकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥ १० ॥ विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब् विभुः ॥ मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ ११ ॥ ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ॥ जज्ञे वंशधरः पांडोर्भूयः पांडुरिवौजसा ॥ १२ ॥ तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः ॥ जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥ १३ ॥ हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् ॥ प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥ १४ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितं ॥ एष ह्यस्मिन्प्रजातंतौ पूरूणां पौरवर्षभ ॥१५॥ दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ॥ रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना॥१६॥ तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ॥ भविष्यति न सन्देहो महाभागवतो महान् ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अप्येष वंश्यान् राजर्षीन्पुण्यश्लोका-

विजलीकी समान गदाको वारंवार घुमारहाथा ॥ ९ ॥ और जैसे सूर्य अपनी किरणों से शीतको निवारण करता है तैसे अपनी गदा से ब्रह्मास्त्र के तेज को नष्ट कर रहाथा, ऐसे पुरुष को अपने चारों ओर भ्रमताहुआ देखतेही वह गर्भस्थ वालक विचारने लगा कि—यह कौन है? ।१०। इस प्रकार अलौकिकरूपधारी,सर्वव्यापक,धर्मरक्षक,पापनाशक वह भगवान्, तिस ब्रह्मास्त्र का निवारण करके, तिस वालकके अपनी ओर देखते२ तहाँ ही अन्तर्धान होगये॥११॥ तदनन्तर अनुकूल गृहों सहित जो शुभगृह तिनके उदयसे युक्त और सकल गुणोंकी आगे को क्रमसे वृद्धि सूचित करनेवाले श्रेष्ठलग्नके समय पाण्डवों के वंशको धारण करनेवाला और पराक्रममें भी मानो दूसरा पाण्डुहीहै.ऐसा वह पुत्र उत्पन्न हुआ॥ १२॥ उस समय धर्मराजने अन्तःकरणमें सन्तुष्ट होकर धौम्य कृपाचार्य आदि ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन करवाकर तिस वालक का जातकर्मसंस्कार करवाया॥ १३ ॥ और धर्माचरण का समय जाननेवाले धर्मराजने पुत्रोत्पत्तिरूप पुण्यकालमें ब्राह्मणोंको सुवर्ण,गौ, पृथ्वी ग्राम, हाथी, उत्तमघोड़े और श्रेष्ठ अन्न दिये ॥ १४ ॥ तव प्रसन्नहुए वह ब्राह्मण, प्रेम से नम्रहुए धर्मराजके अर्थ कहनेलगे कि—हेपुरुकुलदीपक राजन् ! पुरुकुलके राजाओंका शुद्ध वंशतन्तु (वालक) दुर्निवार दैव से नष्ट होताहुआ,विष्णुभगवान्ने रक्षाकरके तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त यह तुमको दियाहै ॥१५॥१६॥ इसकारण यह विष्णुभगवान् का दियाहुआ होनेके कारण विष्णुरात नामसे प्रसिद्ध होकर,गुणोंकरके श्रेष्ठहोनेके कारण जगत्में निःसन्देह परमकीर्तिवान् और भगवद्भक्त होगा ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर वोले कि—हे सज्जनब्राह्मणों ! यह वालक,प्रशंसा और उत्तम कीर्ति करके अपने वंशके पहिले उदारचित्त और पवित्र है कीर्ति जिनकी ऐसे राजाओं के समान वर्त्ताव करनेवालाहोगा क्या?

न्महात्मनः ॥ अनुवर्त्तिता सुयशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥१८॥ ब्राह्मणा ऊचुः
पार्थ प्रजाऽविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ॥ ब्रह्मण्यः सत्यसन्धश्च रामो दा-
शरथिर्यथा ॥ १९ ॥ एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिविः ॥ यशो वि-
तनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥२०॥ धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जु-
नयोर्द्वयोः ॥ हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥ २१ ॥ मृगेन्द्र इव विक्रा-
न्तो निषेव्यो हिमवानिव ॥ तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ॥ २२ ॥
पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ॥ आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमा-
श्रयः ॥ २३ ॥ सर्वसद्गुणमाहात्म्य एष कृष्णमनुव्रतः ॥ रन्तिदेव इवोदारो
ययातिरिव धार्मिकः ॥ २४ ॥ धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः ॥ आ-
हर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥ २५ ॥ राजर्षीणां जनयिता शास्ता
चोत्पथगामिनाम् ॥ निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥ २६ ॥ तक्षका-
दात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ॥ प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसंगः पदं हरेः ॥

॥१८॥ब्राह्मणबोले कि-हेकुन्तीसुत धर्मराज ! यह बालक,साक्षात् मनुके पुत्र इक्ष्वाकुराजाकी समान प्रजापालन करनेवालाहोगा और ब्राह्मणों का हितकारी तथा अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करनेमें दशरथपुत्र श्रीरामचन्द्रजी की समान होगा ॥ १९ ॥ यह बड़ादाता और शरणागतोंकी रक्षा करनेवाला उशीनरदेशके स्वामी शिविराजा की समानहोकर दुष्यन्त के पुत्र भरतराजाकीसमान अपने जातिके और यज्ञ करने वालोंकी कीर्ति को बढ़ाने वाला होगा ॥ २० ॥ तथा यह बालक कुन्तीपुत्र (अर्जुन) और कार्त्तवीर्य (सहस्रबाहु) इन दोनो अर्जुनोंकी समान धनुर्धारी वीरोंमें अग्रणी होकर अग्निकी समान दुःसह और समुद्रकी तुल्य दुस्तर होगा ॥ २१ ॥ सिंहकी समान पराक्रमी, हिमालयकी समान साधु-ओंके सेवाकरने योग्य, अपराधों को सहने में पृथ्वीकी समान और सहनशीलतामें माता पिता की समान होगा ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी की समान सबको समदृष्टि से देखने वाला, म, हादेव की समान सदाचरणवालों पर प्रसन्न होनेवाला और जैसे श्रीहरि लक्ष्मी को आश्रय देतेहैं तैसे प्राणीमात्र को आश्रय देनेवाला होगा ॥ २३ ॥ यह बालक श्रीकृष्ण की समान सकल सद्गुणोंसे प्रसिद्ध होकर रन्तिदेवकी समान उदार और ययाति की स-मान धार्मिक होगा ॥ २४ ॥ धीरतामें राजाबलि की समान और श्रेष्ठ वासना के विषय में प्रह्लादकी समान होगा, यह अनेकों अश्वमेधों का कर्ता होकर वृद्धोंकी सेवाकरने वाला होगा ॥ २५ ॥ राजर्षि पुत्रोंका उत्पन्न करनेवाला, कुमार्गगामियों को दण्डदेनेवाला, और धर्म तथा पृथ्वी के कारण कलियुगकोभी निग्रहकरनेवाला होगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मण कुमार के भेजेहुए तक्षक से मेरीमृत्यु होगी ऐसा सुनकर यह, सकल राज्यादि विषयभो-

२७॥ जिज्ञासितात्मयाथात्म्योमुनेर्व्यासँसुतादसौ॥ हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्य द्धाऽकुतोभयम् ॥ २८ ॥ इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः॥ लब्धोपचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ॥ २९ ॥ स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः ॥ गर्भदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेत नरेष्विह ॥३०॥ स राजपुत्रो ववृधे आशु शुक्ल इवोडुपः॥ आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ।३१। यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया॥ राजाऽलब्धधनो दध्यावन्यत्र करदण्डयोः ३२ तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोच्युतचोदिताः ॥ धनंप्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ॥ ३३ ॥ तेन संभृतसंभारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्धरिं ॥ ३४॥ आहूतो भगवान् राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् ॥ उवास कतिचिन्मासान् सुहृदां प्रियकाम्यया ॥ ३५ ॥ ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः

गों को त्यागकर श्री हरिके चरणकी शरणलेगा ॥ २७ ॥ हेराजन्! यह बालक, व्यासपुत्र शुकदेव मुनिसे आत्मस्वरूप का यथार्थ ज्ञान पाकर और नाशवान् शरीर को गङ्गा में त्यागकर जहाँ कोई भय नहीं ऐसे साक्षात् मोक्षको प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार तिन, जातकका फल कहने में चतुर ब्राह्मणों ने धर्मराजके अर्थ परीक्षित का जन्म कर्म वर्णन किया, तदनन्तर धर्मराज से पूजित हो वह सबब्राह्मण अपने २ स्थानोंकोचलेगये२९ हे शौनक सो यहराजा, गर्भमें देखेहुए पुरुषका ध्यान करता हुआ, इसलोकमें दीखने वाले मनुष्यों में मैंने पहिले जिसको देखाथा वह कौनथा, ?, इस प्रकार की परीक्षा करताथा अतः सकल लोको में परीक्षित इसनाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३० ॥ जिस प्रकार शुक्लपक्ष में चन्द्रमा प्रतिदिन एक २ कलासे बढ़ता २ पूर्णिमाको षोड्शकलापूर्ण होजाताहै तैसेही वह राजपुत्र प्रतिदिन युधिष्ठिरादि पितामहाओं के समर्पण करे अन्नपानादि तथा चौंसठकलाओंसे बढ़ताहुआ पूर्णहोनेलगा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर कुछदिनोंमें. जातिद्रोह से उत्पन्न हुए पापको नाश करने की इच्छा करके अश्वमेधयज्ञसे यजन करने में प्रवृत्त हुए वह धर्मराज, कर और अपराधियोंसे लियेहुए दण्डको छोड़कर अन्य धनका संग्रह न होने के कारण चिन्ता करनेलगे ॥ ३२ ॥ तबउनकी इच्छा को जानकर श्रीकृष्णजी के भेजेहुए भीमसेनादि भ्राता उत्तर दिशा में जाकर, तहाँ पहिले मरुत्तराजा के यज्ञ में उच्छिष्ट करके ब्राह्मणों के फेंके हुए सुवर्ण पात्रादि बहुतसा द्रव्य लाये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर तिस द्रव्य से यज्ञकी सामग्री इकट्ठी करके ज्ञातिनाश के पापसे भयभीतहुए साक्षात् धर्मपुत्र *युधिष्ठिर ने तीन अश्वमेध यज्ञों से श्रीहरि का उत्तम प्रकार पूजन करा ॥ ३४ ॥* इस प्रकार धर्मराजने, यज्ञका प्रबन्ध करने के निमित्त जिन श्रीकृष्णको बुलाया था, उन्होने ब्राह्मणोंसे धर्मराजका अश्वमेध यज्ञ करवाया, और पाण्डवोंका चित्त प्रसन्न करने के

कृष्णया सह बन्धुभिः ॥ ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ छ ॥ छ ॥ सूत उवाच ॥ विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिं ॥ ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥ यावतः कृतवान्प्रश्नान् क्षत्ता कौषारवाग्रतः ॥ जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥ २ ॥ तं बंधुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः ॥ धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ॥ गांधारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी ॥ अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥ प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्वं इवागतं ॥ ३ ॥ ४ ॥ अभिसंगम्य विधिवत्परिष्वंगाभिवादनैः ॥ मुमुचुः प्रेमवाष्पौघं विरहोत्कंठ्यकातराः ॥ ५ ॥ राजा तमर्हयांचक्रे कृतासनपरिग्रहं ॥ तं भुक्तवंतमासीनं विश्रांतं सुखमासने ॥ प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वतां ॥ ६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अपि स्म-

निमित्त कितनेही मासपर्यन्त हस्तिनापुरमें निवास करा ॥ ३५ ॥ हे शौनक ! तदनन्तर धर्मराज, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी से आज्ञा लेकर वह श्रीकृष्ण अर्जुनको साथ लेकर यादवों सहित द्वारका को लौटकर चलेगये ॥ ३६ ॥ प्रथम स्कन्धमें द्वादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! तीर्थयात्राको गएहुए विदुरने मैत्रेय ऋषि से, अपनीगति हरिही हैं, ऐसा सुन तिस से जिज्ञासा दूर होनेपर, फिर हस्तिनापुरमें आये ॥ १ ॥ विदुरजीने मैत्रेय ऋषि से कर्मयोगादिके जानने के निमित्त जितने प्रश्न करेथे, उन में से तीन चारही प्रश्नों के उत्तरसे अर्थज्ञान होनेके कारण गोविन्द भगवान्के विषैं एकनिष्ठ भक्तिको प्राप्तहुए वह विदुर अन्यप्रश्नोंका उत्तर जाननेकी इच्छा से रहित होगए ॥ २ ॥ तिनबान्धव विदुर को आया देखकर भीमादि भ्राताओं सहित युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, सञ्जय, कृपाचार्य, कुन्ती ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! और गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा तथा द्रोणाचार्यकी स्त्री कृपी और भी पाण्डुराजा के कुलकी स्त्रियें, और पुत्रों सहित सकलजातिकी अन्य स्त्रियें, यह सब हर्षमें होकर, मूर्च्छादि कारणोंसे नष्टहुआ प्राण, यदि फिर पूर्ववत् शरीरस्थ होजाय तो, पहिलेके चेष्टारहितहुए हस्तपादादि अङ्ग जैसे उठते हैं, तैसे ही, उठकर तिन विदुरजी के सन्मुख चले ॥ ४ ॥ तदनन्तर वह पाण्डव, तिन विदुरजी को, आलिङ्गन और नमस्कारपूर्वक यथोचित विधिसे मिलकर, विरह के कारण उत्कण्ठा से-व्याकुलहुए तिन सबने नेत्रों से प्रेम के अश्रुओंकी धारा बहाई ॥ ५ ॥ तदनन्तर दियेहुए आसनपर विदुरजीके विराजमान होनेपर धर्मराजने उन की पूजा करी, तदनन्तर तिन विदुरजी के भोजनोत्तर स्थिरचित्त होकर सुख से आसनपै बैठनेपर, धर्मराज प्रेम से नम्र होकर धृतराष्ट्र आदि सबके सुनतेहुए कहनेलगे ॥ ६ ॥ युधिष्ठिर बोले कि-हे व्यास

रंथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् ॥ विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥ ७ ॥ कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमंडलं ॥ तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥ ८ ॥ भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ॥ तीर्थीकुर्वंति तीर्थानि स्वांतस्थेन गदाभृता ॥ ९ ॥ अपि नः सुहृदस्तात बांधवाः कृष्णदेवताः ॥ दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ॥ १० ॥ इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत् ॥ यथाऽनुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयं ॥११॥ नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितं ॥ नावेदयत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः १२॥ कंचित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखं ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥ १३ ॥ अबिभ्रदर्यमा दंडं यथावदघकारिषु ॥ यावद्दधार शूद्रत्वं

नन्दन ! जैसे पक्षी अपने बच्चों को पक्षोंकी छायासे पालते हैं तैसे ही, अपनी पक्षपातरूप छायासे बढायेहुए हम को क्या अब कभी स्मरण करते हो ? क्योंकि विष लाखाघर की अग्नि आदि अनेकों विपत्तियोंसे माता सहित हमको आपने बचायाथा ॥ ७ ॥ आपने भूमण्डलपर विचरतेहुए किसवृत्ति से देहका निर्वाह किया और भूतलपर तीर्थ तथा क्षेत्रों में से आपने किस२ का सेवन किया ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! आप से भगवद्भक्त, स्वयं तीर्थस्वरूप होते हैं और अपने चित्त में विराजमान गदाधारी श्रीकृष्णजीके प्रभाव से, सकल तीर्थोंको भी पातकी पुरुषोंके संसर्ग के कारण लगेहुए पापों को दूर करके पवित्र करते हैं ॥ ९ ॥ हे तात ! हमारे बान्धव, परममित्र और जिनके कृष्णही देवता हैं वह यादव अपनी नगरी में सुख से तो रहते हैं ? वह कहीं आप के देखने वा सुननेमें आये थे क्या ? ॥ १० ॥ धर्मराज के ऐसा प्रश्न करनेपर विदुरजीने, तीर्थयात्रामें जैसा अनुभव कराथा उसके अनुसार एक यदुकुल के नाश को छोड़कर शेष सब वृत्तान्त,क्रम से धर्मराज को सुनाया ॥ ११ ॥ यादवकुल के नाशको न वर्णन करने का कारण यह था कि स्वयमेव आकर प्राप्तहुआ इष्टजनों का वियोगरूप दुःख, मनुष्यों को सहना कठिन होता है इस कारण तिन पाण्डवों को दुःखित होतेहुए देखने को असमर्थ, तिन कृपालु विदुरजीने वह यादवों के नाश का वृत्तान्त नहीं कहा ॥ १२ ॥ फिर धर्मराज आदि से देवता की समान सत्कार कियेहुए वह विदुरजी, ज्येष्ठभ्राता धृतराष्ट्र को आत्मानात्मविचारका उपदेश देते और सब को हर्षित करतेहुए, कुछकाल पर्यन्त हस्तिनापुर में सुखसे रहे ॥ १३ ॥ यदि कहो कि विदुर तो शूद्र थे, उन्हो ने ज्ञानोपदेश कैसे किया ? तहाँ कहते हैं कि यम धर्मराज, शाप * के कारण शूद्ररूप होकर जबतक सौ वर्ष

* कहीं चोरोंके पीछे दौड़तेहुए राजदूत,तप करतेहुए माण्डव्य ऋषि के समीप उन चोरों को

शापोद्वर्षशतं यमः ॥ १४ ॥ युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरं ॥ भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥ १५ ॥ एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ॥ अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥ १६ ॥ विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ॥ राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतं ॥ १७॥ प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ॥ स एव भगवान्कालः सर्वेषां नः समागतः ॥ १८ ॥ येन चैवाभिपन्नोयं प्राणैः प्रियतमैरपि ॥ जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥ १९ ॥ पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ॥ आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥ २० ॥ अहो महीयसी जंतोर्जीविताशा यया

पर्यन्त पृथ्वीपर विदुर शरीर से रहे, तवतक यमलोक में पातकी पुरुषों को दण्ड देनेका कार्य अर्यमा नामक पितर ने किया ॥ १४ ॥ राज्यको प्राप्तहुए धर्मराज अपने वंशधर परीक्षित पौत्र (नाती) को देखकर इन्द्रादि लोकपालों की समान पराक्रमी भीमसेनादि भ्राताओं सहित, सर्वोपरि राज्य सम्पत्ति से हर्षित हुए ॥१५॥ इस प्रकारगृहस्थ के सुखमें आसक्त हुए तथा विषय सुख के व्यापार में मग्नहोने के कारण परमेश्वर को भूले हुए तिनधृतराष्ट्र आदि का, अतिसूक्ष्म गति होने के कारण जानने में न आनेवाला और परम दुस्तर आयुका बहुतसा समय वीतगया ॥ १६ ॥ एक समय तिस कालचक्रका मन में विचार करके विदुरजी धृतराष्ट्रसेकहनेलगे कि–हेराजन् धृतराष्ट्र ! देखो–बड़ाभयप्राप्त होनेवाला है, तुम शीघ्रही यहाँसे निकलकर चलेजाओ ॥१७ ॥ हेप्रभो! इस लोकमें जिसका निवारण कभीभी किसी उपाय से भी नहीं होसक्ता वह भगवान् काल, हम सवका ही अब आगया है ॥ १८ ॥ जिसकाल के ग्रास करनेपर यह देही परमप्यारे पाँच प्राणोंको तत्काल त्यागजाताहै, फिर अन्य धन पुत्रादि छूटजायँगे. इसमें तो आश्चर्य ही क्या ? ॥ १९ ॥ अब तुम्हारा गृह में रहना अनुचित है, क्योंकि हे राजन् ! तुम्हारे पितर, बन्धु, मित्र और पुत्र मरणको प्राप्तहोगये, अवस्थाभी वीतचुकी, देहभी जरा (बुढ़ापा) से शिथिल होगया, अबभी तुम दूसरे के स्थानपर पड़ेहुए हो ॥ २० ॥ आश्चर्य है कि प्राणी

पाकर, ऋषि सहित सवको बाँध राजाके पास ले आये, तदनन्तर वह सब राजाकी आज्ञा से शूलीपर चढायेगये,जब राजाने जाना कि अमुक ऋषिहैं, तब माण्डव्यको शूली से उतारकर क्षमाप्रार्थनादि के द्वारा प्रसन्न किया, इसके अनन्तर माण्डव्य मुनि ने यमराज के पास जाकर कुपित हो कहा कि मुझे शूलीपर क्यों चढायागया ? यमराज ने कहा तुमने बालकपनमें पतङ्ग कीटकों को कुशाकी नोकसे वेधकर क्रीड़ा करी थी, अतः ऐसा हुआ यह सुन माण्डव्यने शापदिया कि बालकपनमें अनजाने किये अपराधका बड़ाभारी दण्ड दिया अतः सौ वर्ष को तू शूद्र होजा,उस माण्डव्यऋषि के शापसे ही यमराज शूद्रशरीर विदुररूपहुए ।

भवान् ॥ भीमेनावर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥ २१ ॥ अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः ॥ हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥२२॥ तस्यापि तव देहोयं कृपणस्य जिजीविषोः ॥ परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥ २३ ॥ गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः ॥ अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ॥ २४ ॥ यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥ २५ ॥ अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ॥ इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥ २६ ॥ एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधित आजमीढः ॥ छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥ २७ । पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ॥ हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्सम्प्रहारः ॥

मात्रको जीवने की बड़ी आशा बनी रहती है हा! जिस भीम ने तुम्हारे सकलपुत्र मारे, उस के दियेहुए अन्नको तुम केवल आशासे ही गृहरक्षक श्वानकी समान भक्षण करतेहो ॥ २१ ॥ अरे राजन्! तुमने जिन को भस्म करने के निमित्त, लाखाघर में अग्नि दिलवाई थी, विष दिलवायाथा, जिनकी द्रौपदी नामक स्त्री का भरी सभामें अपमान कियाथा और जिनका राज्य तथा धन छीनाथा, उन के दियेहुए अन्नवस्त्रादि से प्राणों की रक्षा करके अब तुम्हारा कौनसा हित होगा ? ॥ २२ ॥ इस प्रकार दीनता से बचने की इच्छा करनेवाले भी तुम्हारा जरा से जीर्णहुआ यह शरीर, तुम्हारी इच्छा न होनेपर भी जीर्णहुए वस्त्रकी समान नष्ट होजायगा॥२३॥जो सकल विषयोंसे विरक्त और अभिमान रहित होकर,अपनीगति जैसे किसी को प्रतीत न हो तैसे, निरर्थकहुए अपने शरीरको त्यागे वही धीर कहाताहै ॥ २४ ॥ जो पुरुष, मरणका समय आने से पहिले, स्वयं विचारसे अथवा दूसरे के उपदेश से इसलोक में वैराग्ययुक्त और आत्मज्ञानी होकर हृदय में श्रीहरिका चिन्तवन करताहुआ, सकल संगों को त्याग सन्न्यासी होकर घरसे निकलजाताहै वहही पुरुषों में श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥ इस कारण अब तुम, जैसे युधिष्ठिरादि कुटुम्बी न जानसकें तिस प्रकार उत्तर दिशा को चलेजाओ, क्योंकि अबसे आगे को आनेवाला समय, प्रायः पुरुषोंके धीरता दया आदि गुणों का नाशक होगा ॥ २६ ॥ इसप्रकार छोटे भ्राता विदुर के समझानेपर,अजमीढ राजाके वंशमें उत्पन्नहुए वह प्रज्ञाचक्षु (जन्म के अन्ध केवल बुद्धिसे ही जाननेवाले) राजा धृतराष्ट्र, स्त्री धनादि में के अपने दृढ स्नेहपाशको तोड़कर, विदुर के दिखाएहुए मार्ग से उन के साथही साथ हस्तिनापुरसे निकलकर चलेगये ॥ २७ ॥ तब जैसे युद्ध में का शस्त्रका गहरा घाव शूरमात्र को आनन्ददायक होताहै, तैसेही निरभिमान पुरुषमात्र को आनन्द देनेवाले हिमालयपर्वतपर जातेहुए, अपने पति (धृतराष्ट्र) के पीछे२ सुशील प-

॥ २८ अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मभिः ॥ गृहं प्रवि-ष्टो गुरुवंदनाय नचापश्यत्पितरौ सौबलीं च ॥ २९ ॥ तत्र संजयमासीनं प-प्रच्छोद्विग्नमानसः ॥ गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥ ३० ॥ अंबा च हतपुत्रार्त्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत् ॥ अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः सभार्यया आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोपतत् ॥ ३१ ॥ पितर्युपरते पांडौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ॥ अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥ ३२ ॥ सूत उ-वाच ॥ कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः ॥ आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्या-हातिपीडितः ॥ ३३ ॥ विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ॥ अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥ ३४ । संजय उवाच ॥ नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनंदन ॥ गांधार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥ ३५ ॥ अथाजगाम भगवान्नारदः सहतुंबुरुः ॥ प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चय-

तिव्रता सुबलराजकुमारी गान्धारी भी निकलकर चलदी ॥ २८ ॥ इधर धर्मराज ने सूर्योदय के समय, सन्ध्यावन्दन और नित्यहवन करके तथा तिल, गौ, भूमि और सुवर्ण ब्राह्मणों को दानदेकर नमस्कार किया, तदनन्तर बड़ोंको वन्दना करने के निमित्त रणवास में गये, तहाँ विदुर, धृतराष्ट्र और गान्धारी इनमेंसे किसीको भी नहीं देखा ॥ २९ ॥ तब चित्त में व्याकुलहुए धर्मराज ने, तिस गृह में विराजमान सञ्जयसे बूझा कि हे सञ्जय ! दोनों नेत्रों से हीन और परमवृद्ध हमारे पितृव्य (ताऊ धृतराष्ट्र) कहां हैं ? ॥ ३० ॥ तथा सकल पुत्रोंके मरणसे परम दुःखितहुई हमारी माताकी समान गान्धारी कहाँ हैं ? अथवा हमारा हितचिन्तन करनेवाले वह धृतराष्ट्र,पुत्रशोक से खिन्न होकर और मेरी मूर्खतासे कुछ अपराध होजाने के कारण, शंकित होकर अपनी स्त्री सहित किधरको चलेगये ? या दुःखित होकर प्राण त्यागने के निमित्त क्या गङ्गामें जाकर गिरपड़े ? ॥ ३१ ॥ हमारे पिता महाराज पाण्डु के परलोकवासी होनेपर जिन धृतराष्ट्र और विदुर ने, कुन्ती सहित हम स्नेही बालकों की अनेकों दुःखों से रक्षा करी थी, वह आज यहांसे कहां को चलेगये ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि हे ऋषियों ! उस समय सञ्जय कृपा और स्नेह के कारण मनमें परमदुःखित और अप ने प्रभु (धृतराष्ट्र) के दर्शन न होनेके कारण उन के विरहसे अतिखिन्नथा इसकारण उस ने धर्मराजको कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ३३ ॥ फिर कुछ समय के अनन्तर सञ्जय अपने हाथों से दुःखके अश्रुओं को पोंछकर और आपही चित्त को थामकर, धृतराष्ट्र के चरणोंका स्मरण करताहुआ धर्मराजसे बोला ॥ ३४ ॥ सञ्जय बोला कि-हे कुलनन्दन ! महाबाहो धर्मराज ! मुझ को नहीं मालूम कि विदुर और धर्मराज तथा गान्धारी के चित्तमें क्या विचारहुआ, वह महात्मा न जाने मुझे वंचनाकर (. छोड़कर) कहाँचलेगये ॥ ३५ ॥ ऐसा

न्विवं ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिर उ० ॥ नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन् क्व गतावितः ॥ अंबा वा हतपुत्रार्त्ता क्व गता च तपस्विनी ॥ कर्णधार इवापारे भगवान्पारदर्शकः ॥ ३७ ॥ अथावभाषे भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ मा कंचन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ॥ ३८ ॥ लोकाः सपाला यस्येमे वहंति बलिमीशितुः ॥ स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥ ३९ ॥ यथा गावो नसि प्रोतास्तंत्यां बद्धाः स्वदामभिः ॥ वाक्तंत्यां दामभिर्बद्धा वहंति बलिमीशितुः॥४०॥ यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ॥ इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणां ॥ ४१ ॥ यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयं ॥ सर्वथा नहि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥ ४२ ॥ तस्माज्जह्यंग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्म-

---

भाषण करके संजय शोकाकुल होरहाथा कि तहाँ अकस्मात् तुम्बुरु सहित भगवान् नारद ऋषि आये उन को भीमादि लघुभ्राताओं सहित धर्मराजने उठकर नमस्कार कर, शोकके वेग के कारण उनका पूजन न करके भी पूजा करनेकी समान सत्कार करके प्रश्न करा ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिर बोले कि—हे भगवन् ! विदुर और धृतराष्ट्र मेरे पितृव्य (पिता के भ्राता) यहांसे कहांगये ? तथा पुत्र मरण के शोक से व्याकुल महातपस्विनी माता गान्धारी कहांगई ? यह मुझ को नहीं मालूम, आप अपार शोकसमुद्रमें डूबतेहुए प्राणियों को कर्णधार (मल्लाह) की समान तटपर पहुँचानेवालेहो अतः कृपा करके मुझको उनका पता बताओ ? ॥ ३७ ॥ यह सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ भगवान् नारद बोले कि—हे राजन् ! यह सब जगत् परमेश्वरके वशमें है, इसकारण तुम धृतराष्ट्र आदि का क्या ? किसीका भी शोक मतकरो ॥ ३८ ॥ इन्द्रादि लोकपालों सहित चौदहभुवन, जिस ईश्वरका पूजन करते हैं वही सकलप्राणियों का संयोग और वियोग करते हैं॥३९॥ जैसे नासिका में नाथ डालकर एक बड़े रस्से में अपनी अपनी पृथक् पृथक् रज्जुओं से बाँधेहुए वृषभ अपने स्वामी की आज्ञाकापालन करतेहैं तैसेही वेदवाणीरूप बड़ेरस्सेमें ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचारी आदि नामोंसे बँधेहुए यह सकल मनुष्य अपने२ धर्मानुसार परमेश्वरको पूजन समर्पण करतेहैं ४०॥ जैसे खेलकी अनेकों सामग्रियोंका संयोग वियोग खेलनेवालेकी इच्छासे होताहै तैसेही ईश्वरकी इच्छासे मनुष्योंका संयोग वियोग होताहै ॥ ४१ ॥ हेराजन् ! यदि तुम सकल प्राणियों को जीवरूपसे नित्य मानते होओ, देहरूपसे अनित्य मानते होओ अथवा अचिन्त्य शुद्ध ब्रह्मरूप से नित्य वा अनित्यभी कहने योग्य नहीं है ऐसा मानते होओ, और जीवके चेतन तथा देहके जड़ होनेसे नित्य और अनित्य दोनों है ऐसा मानते होओ तो भी अर्थात् इन चारों प्रकारपर ध्यान देनेसे केवल अज्ञान से उत्पन्नहुए स्नेहको छोड़ के तिन धृतराष्ट्र आदि का शोक करना योग्य नहीं है ॥ ४२ ॥ तिससे हेराजन् ! वन को गयेहुए वह दीन और अनाथ धृतराष्ट्र आदि मेरे विना कैसे जीवन का निर्वाह करेंगे ?

नः ॥ कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ॥ ४३ ॥ कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पांचभौतिकः ॥ कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथापरं ॥४४॥ अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदां ॥ फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनं ॥ ४५ ॥ तदिदं भगवान् राजन्नेक आत्मात्मनां स्वदृक् ॥ अंतरोऽनंतरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥ ४६ ॥ सोऽयमद्य महाराज भगवान्भूतभावनः ॥ कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभवाय सुरद्विषां ॥ ४७ ॥ निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ॥ तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥ ४८ ॥ धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गांधार्या च स्वभार्यया ॥ दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥४९॥ स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ॥ सप्तानां प्रीतये नाम्ना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥ ५० ॥ स्नात्वानुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ॥ अब्भक्ष उपशांतात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥ ५१ ॥ जितासनो जितश्वासः प्रत्या-

ऐसी अज्ञान से उत्पन्नहुई अपने मनकी व्याकुलताको त्याग दो ॥ ४३ ॥ क्योंकि सत्वादि गुणों को अस्तव्यस्त करनेवाले काल, जन्म मरणादि के कारण शुभ अशुभकर्म और सत्वादि गुणों के अधीन यह शरीर 'जैसे अजगर सर्पका ग्रसाहुआ पुरुष दूसरोंकी रक्षा नहीं करसक्ता है तैसे औरोंकी रक्षा कैसे करेगा ? ॥ ४४ ॥ हस्तरहित जीव हस्तवालोंके, और चरण रहित तृणादि चौपाये पशुओंके जीवन होते हैं,तिनमेंभी जो छोटे कीटादि हैं वह बड़े पक्षी आदिकों के जीवन होतेहैं. इस प्रकार जीव, जीवों के जीवितरहने के साधन हैं ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! यह चराचर जगत,स्वप्रकाश भगवान्‌काही स्वरूपहै और वह एकही सकल जीवोंका आत्माहै तथा वहही सकलजीवोंके भीतर अन्तर्यामी भोक्तारूप से और बाहर भोगने योग्य विषयरूपसे भासताहै, इस प्रकार एक होकर भी मायाके द्वारा अनेक प्रकार से प्रतीत होने वाले तिन प्रभु को तुम देखो ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! वह सकल प्राणियों के पालक भगवान् श्रीकृष्ण इससमय भूतलपर, दुष्टोंका नाश करने के निमित्त अवतरे हैं ॥ ४७ ॥ उन्होंने बहुतकुछ देवताओं का कार्य करलियाहै, यादवकुलका नाशरूप कुछएक कार्य शेषरहा है उसका वह अवसर देखरहे हैं, तिसके पूर्ण होनेपर निजधाम को पधारेंगे, अतः जिस समय पर्यंत ईश्वर इस भूलोक में हैं तवतक रहने का विचार करो ॥ ४८ ॥ हे धर्मराज ! धृतराष्ट्र अपनी स्त्री गान्धारी और भ्राता विदुरसहित, हिमालय के दक्षिणकी ओर ऋषियों के आश्रम को गये हैं ॥४९॥ जहाँ भागीरथी ने सातऋषियोंकी प्रसन्नताके निमित्त सातधारों में अपने सातभाग करे हैं, इसी कारण तिस तीर्थको सप्तस्रोता कहते हैं ५० तिसतीर्थ में वह धृतराष्ट्र, तीनोंकाल स्नानकरके और विधिपूर्वक अग्नि में हवन करके केवल जलका आहार करते हुए शान्त चित्तसे पुत्रैषणा, दारैषणा और वित्तैषणा से रहित होकर कालयापन कररहेहैं ॥ ५१ ॥ उन्होंने आसनऔर प्राणोंको जीतकर पाँचों इन्द्रियें

हृतषडिंद्रियः ॥ हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्वतमोमलः ॥५२॥ विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् ॥ ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ॥५३॥ ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः ॥ निवर्त्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ॥ ५४ ॥ तस्यांतरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ॥ स वा अद्यतनाद्राजन्परतः पंचमेहनि ॥ कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ॥५५॥ दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ॥ बहिःस्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनुवेक्ष्यति ॥५६॥ विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशम्य कुरुनंदन ॥ हर्षशोकयुतस्तस्माद्गंता तीर्थनिषेवकः ॥ ५७ ॥ इत्युक्त्वाथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतुंबुरुः ॥ युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ॥५८॥ इतिश्रीभा० महा० प्र० त्रयोदशोऽध्यायः

सूत उवाच ॥ संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बंधुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितं ॥ १ ॥ व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततो-

---

तथा छटे मन को वहिर्मुख करलिया है और श्रीहरिके चिन्तन से रज सत्व और तम इन तीनो गुणोंकी वृत्तियों को जीतलिया है ॥ ५२ ॥ ऐसेवह धृतराष्ट्र, अपने अहङ्कार के आश्रयस्थान मन को बुद्धिमें संयुक्त करके तिस बुद्धिका सर्वसाक्षी क्षेत्रज्ञ में लय करके तिस क्षेत्रज्ञकी एकता, आधाररूप शुद्धब्रह्म में 'जैसेघटको फोड़कर उस घटमें के आकाशकी एकता, महाकाश में मानतेहैं तैसे, मानकर ॥ ५३ ॥ जिन्होंने, मायाके गुणों की वासनाका नाशकरा है, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और मन का निरोध (रोकना) कराहै और सकल आहारों को त्यागा है, ऐसे वह धृतराष्ट्र इस समय वृक्ष के ठुंठकी समान निश्चलहैं, ॥५४॥ हे राजन्! सांसारिक व्यवहार सम्बंधी सकल कर्मों का त्याग करनेवाले तिन धृतराष्ट्र को, लौटाकर लानेकी चेष्टा करके तुम उनके विघ्नरूप न वनो; हे राजन्! वह धृतराष्ट्र, आज से आगे के पाँचवेदिन अपने शरीरको त्यागदेंगे और वह शरीरभी योगाग्नि से स्वयंही भस्म होजायगा ॥ ५५ ॥ तव योगाग्निसें, दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि इन तीनोंअग्नि और पर्णकुटी सहित पतिका शरीर भस्महोते देख वाहर स्थित साध्वी गान्धारीभी अपने पतिके पीछे उस अग्निमें प्रवेश करेगी ॥ ५६ ॥ हे कुरुकुलानन्ददायक! तिस समय, धृतराष्ट्र और गान्धारी के उस निर्याण को देखकर विदुर, अपने वन्धुको सद्गति और मृत्यु प्राप्त होनेसे हर्ष और शोक दोनोंसे युक्त होते हुए तीर्थ यात्रा करनेको सप्तस्रोतासे अन्यत्र चलेगये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार कहकर नारदऋषि तुम्बुरु सहित स्वर्ग लोकको चलेगये, धर्मराजनेभी उनके कथन को मनमें रखकर शोकको त्यागदिया ॥५८॥ प्रथमस्कन्ध में त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजीवोले कि—हेऋषियों! वान्धवोंको देखने और पवित्र कीर्ति श्रीकृष्णजी का आनन्दसमाचार जाननेके निमित्त, धर्मराजकी आज्ञासे अर्जुनको द्वारिका गयेहुए ॥ १ ॥ सातमास वीतगये तवभी द्वारिका से लौटकर अर्जुन न

र्जुनः ॥ ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥ २ ॥ कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः ॥ पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनां ॥ ३ ॥ जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृदंपतीनां च कल्कनम् ॥ ४ ॥ निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणां ॥ लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बंधुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितं ॥ ६ ॥ गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः ॥ नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमंजसा ॥ ७ ॥ अपि देवर्षिणादिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः ॥ यदात्मनोऽगमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥ ८ ॥ यस्मान्नः संपदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ॥ आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥ ९ ॥ पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान्भौमान्सदैहिकान् ॥ दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥ १० ॥ ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरंत्यंग पुनः पुनः ॥ वेपथुश्चापि हृदये आराद्दास्यंति वि-

आये और इधर धर्मराजने भयङ्कर शकुन देखे॥२॥जिसऋतुमें होनेवाले जो शीत उष्ण आदि धर्म उस ऋतुमें न होकर और ऋतुमें होनेलगे, ऐसीकालकी भयानकगति हुई. क्रोध, लोभ और मिथ्याभाषण में मनुष्योंकी रुचिहोगई तथा पाप कर्मसे जीविका करनेलगे॥३॥कपटयुक्त व्यवहार,वंचना(धोखेबाजी)सहित मित्रता,और पिता,माता,पुत्र,भ्राता तथा स्त्रीपुरुषोंमें परस्पर कलह होनेलगा ॥४॥ ऐसाविपरीत समय आनेपर होनेवाले अपशकुन और मनुष्योंकी लोभके कारण अधर्म में प्रवृत्ति देखकर धर्मराज भीमसेनसे कहनेलगे ॥५॥ युधिष्ठिरबोले,कि हे भीमसेन! बान्धवों के देखने और पवित्रकीर्त्ति श्रीकृष्णजी का आनन्दसमाचार जाननेके निमित्त मैंने अर्जुनको द्वारका में भेजाथा ॥ ६ ॥ उनको इस समय सातमास होगये तथापि वह तुम्हारे भ्राता अर्जुन; किसकारण अबतक लौटकर नहीं आये यह मेरे ध्यानमें नहीं आता ॥ ७ ॥ जिससमय श्रीकृष्णभगवान्, क्रीड़ाके निमित्त धारण करेहुए अपने शरीरको त्यागने की इच्छा करैंगे, वह नारदजीका बतायाहुआ समयही तो कहीं नहीं आगया ? ॥८॥ हे भीम ! उत्तमसम्पत्ति, सार्वभौम राज्य, उत्तम स्त्रियें, प्राणोंकी रक्षा, श्रेष्ठकुल, स्वाधीन सकल प्रजा और शत्रुओं से विजय पाना यह सब, जिन श्रीकृष्णजीसे हमको प्राप्तहुएहैं और जिनके अनुग्रह से सकललोक हमारे अनुकूल हुए, उन के वियोग के बिना ऐसे अपशकुन नहीं होसक्ते ॥ ९ ॥ हे नरश्रेष्ठभीम ! आकाश में बिजली के उत्पात आदि, भूतलपर भूकम्पादिक और देह में वामनेत्र फड़कना आदि जो चिन्ह होरहे हैं यह सब भयङ्कर उत्पात मेरी, बुद्धिको मोहित करनेवाला महान् भय शीघ्रही प्राप्त होगा, ऐसा सूचित करतेहैं १० हे भ्रातः! मेरी जंघा, नेत्र और भुजा यह वामअङ्ग वारम्बार फड़कते हैं, और मेरा हृदय

मियं ॥ ११ ॥ शिवैषोद्यंतमादित्यमभिरौत्यनलानना ॥ मामंग सारमेयोऽयमभिरौतिर्ह्यभीरुवत् ॥ १२ ॥ शस्ताः कुर्वंति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ॥ वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥ १३ ॥ मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कंपयन्मनः ॥ प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः ॥ १४ ॥ धूम्रा दिशः परिधयः कंपते भूः सहाद्रिभिः ॥ निर्घातश्च महांस्तात साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥ वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ॥ असृग्वर्षंति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥ १६ ॥ सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ॥ ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥ १७ ॥ नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ॥ न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥ १८ ॥ न पिबंति स्तनं वत्सा न दुह्यंति च मातरः ॥ रुदंत्यश्रुमुखा गावो न हृष्यंत्यृषभा व्रजे ॥ १९ ॥ दैवतानि रुदंतीव स्विद्यंति ह्युच्चलंति च ॥ इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥ भ्रष्ट-

काँपाजाताहै, यह उत्पात मुझे शीघ्रही अनिष्ट फल देंगे ॥ ११ ॥ हे भीम! यह सियारी मुखसे अग्नि उगलतीहुई, उदय होतेहुए सूर्य के सन्मुख रोती है, यह श्वान निःशङ्क होकर मेरे सन्मुख रुदनका ऊँचा शब्द कररहा है ॥ १२ ॥ गौ आदि श्रेष्ठ पशु, मेरे वामभाग में होकर जाते हैं, गर्दभ आदि मुझ को दाहिना करके जाते हैं और यह मेरे अश्व (घोड़े) भी मुझ को रुदन करतेहुए से दीखते हैं ॥ १३ ॥ यह मृत्युको सूचित करनेवाला कबूतर, मेरे मन को कम्पायमान करताहुआ, कठोर बोलरहा है, यह उलूक और प्रत्युलूक (काक) दोनों पक्षी, रात्रि में निद्रा न लेकर परस्पर कठोरशब्द करतेहुए इस जगत् को शून्य करने की इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥ दशोंदिशा धुएँसे भरीहुईसी होगई हैं, सूर्य चन्द्रमाके परिधि (घेरे) काँपते हैं, पर्वतों सहित भूमि डोलरही है, आकाश में विनाही मेघमण्डल के गर्जना के साथ बज्रपात होता है ॥ १५ ॥ कठोर स्पर्शवाला वायु, धूलि से सब दिशाओं में अन्धकार करताहुआ चलरहाहै, मेघमण्डल जिधर तिधर प्राणियों को भयदायक भयङ्कर रक्त की वर्षा कररहे हैं ॥ १६ ॥ यह देखो—सूर्य निस्तेजसा होरहा है, आकाश में ग्रहोंका परस्पर युद्ध होरहाहै, यह देखो—प्राणियों में मिलेहुए रुद्रभगवान् के गणों से स्वर्ग और पृथ्वी दोनों मानो प्रदीप्तसे होरहे हैं ॥ १७ ॥ महानदी, शोण आदि नद, सरोवर और सकलप्राणियों के मन, क्षोभयुक्त होरहे हैं, अग्नि घृतसे प्रज्वलित नहीं होताहै, यह काल न जाने क्या करेगा?बुद्धि में नहीं आता॥ १८ ॥बछड़े स्तन को नहीं पीते,गौएँ दूध नहीं दुहातीं किन्तु नेत्रों में अश्रुधारा बहातीहुई रुदन करती हैं, वृषभ गोठमें प्रसन्न नहीं हैं ॥ १९ ॥ देवप्रतिमा रुदन करती हुईसी प्रतीत होती हैं और उनके विग्रहपरसे पसीना टपकताहै तथा उनका स्वयंही अन्यत्रको उच्चाटन होताहै.यह देश ग्राम,नगर,बाग,रत्नोंकी खानें और ऋषियों के आश्रम

श्रियो निरानंदाः किमघं दर्शयंति नः ॥ २० ॥ मन्ये एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ॥ अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥ २१ ॥ इति चिंतयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ॥ राज्ञः प्रत्यागमद्ब्रह्मन्यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२ ॥ तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरं ॥ अधोवदनमब्बिन्दून्मुंचंतं नयनाब्जयोः ॥ २३ ॥ विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ॥ पृच्छतिस्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितं ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कच्चिदानर्त्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ॥ मधुभोजदशार्हार्हसात्वतांधकवृष्णयः ॥ २५ ॥ शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाऽथ मारिषः ॥ मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुंदुभिः ॥ २६ ॥ सप्तस्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ॥ आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयं ॥ २७ ॥ कच्चिद्राजाहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ॥ हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयंतगदसारणाः ॥ २८ ॥ आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ॥ कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान्सात्वतां प्रभुः ॥ २९ ॥ प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ॥ गंभीररयोऽनिरुद्धो वर्द्धते भगवानुत ॥ ३० ॥ सुषेणश्चारुदेष्णश्च सांबो जां-

निस्तेज तथा आनन्दशून्यसे होरहे हैं, यह हमको क्या दुःख दिखावेंगे ध्यानमें नहीं आता ॥२०॥ ऐसे उत्पातों से मुझे प्रतीत होताहै कि-अन्य पुरुषको शोभित न करनेवाले ध्वजा, वज्र, अंकुशादिके चिन्होंसे युक्त जो श्रीकृष्ण के चरण, तिनसे यह भूमि रहित होगइ है॥२१॥ हेऋषियों! ऐसे अपशकुनों को देखकर धर्मराज चिन्ताग्रस्त होरहेथे कि–अर्जुन द्वारकासे लौटकर हस्तिनापुर में आगये ॥२२॥ उससमय अर्जुन अतिदुःखित होनेके कारण नीचेको मुखकरके कमल समान नेत्रोंसे अश्रुधारा बहातेहुए, अद्भुत प्रकारसे अकस्मात् आकर धर्मराज के चरणोंपर गिरपड़े, तब तिसअर्जुनको निस्तेजदेखकर उद्विग्नचित्तहुए मित्रमंडली में विराजमान धर्मराजने नारदजीके कथनको स्मरण करके अर्जुनसे बूझा ॥ २३ ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर बोले कि–हेअर्जुन! मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सात्वत, अन्धक और वृष्णि, इन कुलोंके हमारे सम्बन्धी द्वारिका मे कुशल सेतो हैं ? ॥ २५ ॥ तथा हमारे शूरनामक पूजनीय पितामह (कुन्तीके पिता) कुशलपूर्वक तोहैं ? और हमारे मामा वसुदेव अपने छोटेभ्राताओं सहित सुखीतोहै ? २६ तिनवसुदेवकी, जो देवकी आदि सात स्त्रियें परस्पर बहिन और हमारी मामीहैं वह, अपने पुत्र, कन्या और, पुत्रवधुओं सहित कुशलपूर्वक तो हैं ? ॥२७॥ तथाराजा उग्रसेन, कंसनामक दुष्ट पुत्रसे बड़े दुःखितहुएथे वह, इससमय जीवित तो हैं ? और उनके भ्रातादेवक, हृदीक, हृदीकके पुत्र कृतवर्मा, तथा अक्रूर, जयन्त, गद, सारन और शत्रुजित् आदि सब यादव कुशलतोहैं ? यादवों के प्रभुभगवान् बलराम आनन्दतो हैं ॥ २८॥२९॥ यादवोंमें महारथी प्रद्युम्न आनन्द तो हैं ? गम्भीरवेगयुक्त भगवान् अनिरुद्ध वृद्धिकोतो प्राप्तहोते हैं ? ॥ ३० ॥ सुषेण, चारु-

बवतीसुतः ॥ अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥ ३१ ॥ तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः सुनंदनंदशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥ ३२॥ अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ॥ अपि स्मरंति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥ ३३ ॥ भगवानपि गोविंदो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः॥ ३४ ॥मंगलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ॥ आस्ते यदुकुलांभोधावाद्योऽनंतसखः पुमान् ॥ ३५ ॥ यद्बाहुदंडगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः ॥ क्रीडंति परमानंदं महापौरुषिका इव ॥३६॥ यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः॥निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरंति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥ ३७॥ यद्बाहुदंडाभ्युदयानुजीविनो यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ॥अधिक्रमंत्यंघ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचितां ॥ ३८ ॥ कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ॥ अलब्धमानोऽवज्ञातः किंवा तात चिरोषितः ॥ ३९ ॥ कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभि-

देष्ण तथा जाम्बवती के पुत्र साम्ब, एवं औरभीजो ऋषभ आदि श्रीकृष्ण के पुत्र,वह अपने २ पुत्रोंसहित आनन्दतो हैं?॥३१॥ तथा श्रुतदेव,उद्धव आदि श्रीकृष्ण के सेवक तथा सुनन्द नन्द आदि अन्यजो श्रेष्ठ यादवहैं वह सव बलराम और श्रीकृष्ण के भुजबलों के आश्रय से वर्ताव करतेहुए कुशल तो हैं?और यह सव स्नेहयुक्त चित्तसे हमारे कुशलसमाचारका तो स्मरण करते हैं? ॥३२॥३३॥तथा पृथ्वी,गौ और वेदकी रक्षा करनेवाले,ब्राह्मणोंके हितकारी और भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण, द्वारका नगरी के विषैं अपनी सुधर्मा नामक सभामें सकल यादवों सहित सुखी तो हैं?॥३४॥ क्योंकि वह बलभद्र सहित आदिपुरुष श्रीकृष्ण, सकल प्राणियोंके मङ्गल क्षेम और कल्याणके निमित्त यदुकुलरूप समुद्रमें पधारे हैं?॥ ३५ ॥ जिन श्रीकृष्ण के भुजदण्डों से रक्षित,अपनी द्वारका नगरी में,सकल लोकों सन्मान करेहुए यादव, परमानन्दसे "जैसे वैकुण्ठमें श्रीकृष्ण भगवान्के पार्षद तैसे" क्रीडा करते हैं॥३६॥ जिन श्रीकृष्णजीकी चरणसेवारूप उत्तम कर्मसे सत्यभामादि सोलह सहस्र स्त्रियेंभी, युद्धमें सकल देवताओंको जीतकर, उनके भोगकी सामग्री पारिजात कल्पवृक्ष आदि जो इन्द्राणीके भोगनेके योग्यहैं उनको हरण करके द्वारकामें लातीहैं ॥ ३७ ॥ जिनश्रीकृष्णके भुजदण्डोंके प्रभाव से समृद्धिको पानेवाले वीर यादव, सर्वथा निर्भय होकर,श्रेष्ठ देवताओंके योग्य, बलात्कारसे लाईहुई सुधर्मा नामक देवसभाको वारंवार चरणोंसे खूंदतेहैं॥ ३८ ॥ हेअर्जुन ! तुम्हारा शरीरतो नीरोगहै ? क्योंकि—तुम मुझे कान्तीहीनसे प्रतीतहोरहेहो ! हेअर्जुन ! तुमद्वारका में बहुत दिनोंरहे ? क्याद्वारकावासीबान्धवोंने तुम्हारा सन्मान नहीं किया ? अथवा उन्होंने उलटा अपमान किया ? ॥ ३९ ॥ किसीने निर्दयीपनेसे कठोर शा-

रंगलैः ॥ न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतं ॥ ४० ॥ कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियं ॥ शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥ ४१ ॥ कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् ॥ पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि ॥ ४२ ॥ अपिस्वित्पर्यभुंक्थास्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान् ॥ जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥ ४३ ॥ कच्चित्प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबंधुना ॥ शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥ ४४ ॥ इतिश्री भा०महा पु० युधिष्ठिरवितर्कोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥ सूत उवाच ॥ एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञा विकल्पितः ॥ नानाशंकास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥ १ ॥ शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः ॥ विभुं तमेवानुध्यायन्नाशंक्नोत्प्रतिभाषितुं ॥ २ ॥ कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनामृज्य नेत्रयोः ॥ परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कंठ्यकातरः ॥ ३ ॥ सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्या-

—दकहकर तुम्हारे चित्तपर प्रहारतो नहींकिया?,याचकोंको, आशासे मांगीहुईकिसी वस्तु का देना स्वीकार करके,क्या तुमने नहींदी ? ॥ ४० ॥ ब्राह्मण, बालक,गौ.वृद्ध, रोगी,स्त्री अथवा और किसी प्राणीके शरणागत होनेपर, शरणागतकी रक्षाकरनेवाले तुमनेकहींउस को त्यागतोनहींदिया ? ॥ ४१ ॥ तुमने अगम्य स्त्रीके विषैं गमनतो नहींकिया? तथा गमन करने योग्यस्त्रीका मलिनवस्त्रादिके कारण त्यागतोनहींकिया ? अथवा तुम अपनी समान योग्यता वाले वा अपनेसे कमयोग्यतावाले वीरोंसे मार्गमें पराजित तो नहींहुए ४२ अथवा अपनेसाथ भोजन करनेयोग्य वृद्ध वा बालकों को त्यागकर तुमने भोजनतो नहीं किया ? अथवा करनेके अयोग्य कोई निन्दित कर्मतो तुमने नहींकिया ? ॥ ४३ ॥ अथवा परमप्रिय, हृदयसे हित चाहनेवाले बन्धु श्रीकृष्णसे रहित होनेसे अपने को 'मैं शून्य हूँ ऐसा तुममानते हो क्या ? इनके सिवाय और किसी भी कारण से तुमको ऐसा दुःख नहींहोसक्ता ॥ ४४ ॥ प्रथम स्कन्धमें चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ छ ॥ सूतजीबोलेकि—हेऋषियों ! इसप्रकार श्रीकृष्णजीके वियोग से व्याकुल हुए अर्जुनका, अनेकों कारणोंसे शङ्का करने योग्य स्वरूप देखकर,उनके ज्येष्ठ भ्राता धर्मराजने बहुत से प्रश्न किये॥ १ ॥ तथापि शोकसे जिनका मुख और हृदय रूप कमल कुम्हलागया है ऐसे निस्तेजहुए वह अर्जुन श्रीकृष्णके ध्यानमें निमग्नहोतेहुए, धर्मराजको कुछभी उत्तर न देसके ॥ २ ॥ तदनन्तर बारंबार उत्पन्नहोतेहुए दुःखाश्रुओंको परमकष्टके साथ रोककर और बाहरआयेहुए अश्रुप्रवाह को हाथोंसे पोंछकर, श्रीकृष्णके विरहसे अति अधिक बढीहुई प्रेमपूर्ण उत्कण्ठासे व्याकुल होतेहुए वह अर्जुन ॥ ३ ॥ अपने,सारथीपने आदिके कार्योंमें श्रीकृष्णके करेहुये सखामात्र और मित्रताको स्मरण करके,हिचकी बँधजानेके कारण रुकेहुए कण्ठकी गद्गदवा-

दिषु संस्मरन् ॥ नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ वंचितोऽहं महाराज हरिणा बंधुरूपिणा ॥ येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥ ५ ॥ यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः ॥ उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥ ६ ॥ यत्संश्रयाद्द्रुपदगेहमुपागतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ॥ तेजो हृतं खलु मयाऽभिहतश्च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाऽधिगता च कृष्णा ॥ ७ ॥ यत्सन्निधावहमु खांडवमग्नयेऽदामिंद्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ॥ लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ॥ ८ ॥ यत्तेजसा नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे आर्योऽनुजस्तव गजायुत सत्त्ववीर्यः ॥ तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन् बलिमध्वरे ते ॥ ९ ॥ पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्लाघिष्ठचारु कबरं कितवैः स-

णीसे, अस्तव्यस्त शब्दोंमें, ज्येष्ठभ्राता धर्मराजसे कहनेलगे ॥ ४ ॥ अर्जुनबोलेकि–महाराज ! बन्धु श्रीकृष्णने मुझेधोखा देदिया, मेरेमें देवताओंकोभी आश्चर्य में डालनेवाली जो बड़ी सामर्थ्य थी उसकोउन्होने हरलिया ॥ ५ ॥ जिसप्रकार पिताआदि प्रियजनोंका यह शरीर, प्राणहीन होनेपर तत्काल शव शब्दसे कहाजाताहै और अमङ्गलहोताहै, तैसे ही, जिनके क्षणमात्रके वियोगसे यह सकललोक परम कुत्सित (बुरे) दीखने लगतेहैं ६ हे राजन् ! जिन श्रीकृष्णके आश्रय से द्रौपदीके स्वयम्वर के विषे द्रुपदराजाके स्थानपर आयेहुए काममदसे उन्मत्त राजाओंके तेज केवल धनुषउठाकरही मैंने हरलिये थे और वाण चढ़ाएहुए धनुष से मत्स्ययन्त्र को वेधकर द्रौपदी को पाया था ॥ ७ ॥ जिन श्री कृष्णजी की समीपता (सहायता) होनेपर मैंने, सकल देवताओं सहित इन्द्रदेवको जीतकर तिन इन्द्रदेव का खाण्डवनामक वन बलात्कार से (जबरदस्ती) अग्निको दिया और उस वनमें जिसकी रक्षाकरीथी तिस मयासुरकी रचीहुई, अद्भुत चतुराइयोंसे युक्त तथा अनेकों मायिक रचनाओं (तिलिस्मी बनावटों) से युक्त सभा हमको मिली. तदनन्तर दशोंदिशाओं से अनेकों राजे तुम्हारे राजसूय यज्ञ में भेटलेकर आये॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णजी के तेजसे,जिनको दशसहस्र हस्तीका बल और उत्साहशक्ति है ऐसे मेरे ज्येष्ठ और तुम्हारे छोटेभ्राता इनभीमसेनने राजाओंके मस्तकों पर चरण रखनेवाले जरासन्ध का यज्ञके निमित्त वध किया वह दुष्ट जरासन्ध पहिले महाभैरवके यज्ञके निमित्त जिन राजाओं को लायाथा उनको श्रीकृष्णजी ने वन्दीगृह से छुटाया इसकारण तिन राजाओं ने तुम्हारे राजसूय यज्ञ में अनेकों प्रकारकी भेटलाकर समर्पण करीं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! राजसूय यज्ञमें ऋत्विकों (यज्ञकरानेवाले ब्राह्मणों) के करेहुए महाभिषेक से अतिप्रशंसनीय हुए तुम्हारी द्रौपदी नामा स्त्री के, सुन्दर केशपाश (चोटी) को खोलकर दुःशा-

भायाम् ॥ स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तके-
शाः ॥ १० ॥ यो नो जुगोप वनमेत्य दुरंतकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्र-
भुग्यः ॥ शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्ताममंस्त सलिले विनिमग्नसंघः
॥ ११ ॥ यत्तेजसाथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्नि-

सन आदि कुटिलों ने सभामें स्पर्शकरा, उससमय स्मरणमात्र करनेसेही आकर प्राप्त हुए श्रीकृष्णजी को नमस्कार करते समय तिस द्रौपदी के नेत्रोंमें से दुःखके अश्रु, टपककर श्रीकृष्णजी के चरणोंपर गिरे, अतः तिस द्रौपदी के रक्षक जिन श्रीकृष्णजी ने तिनदुःशासनादि दुष्टोंका संहार करके उनकी स्त्रियों को विधवापनसे केशरहित किया ॥ १० ॥ जिन श्रीकृष्णजी ने द्वैतवनमें आकर, दशसहस्र शिष्यों की पंक्ति में मुख्य बनकर भोजन करनेवाले,दुर्योधन के भेजे दुर्वासा ऋषिसे प्राप्तहुए सङ्कटके समय हमारी रक्षा करीथी. क्योंकि-सूर्यकी दीहुई स्थाली (बटलोई) में लगेहुए शाकरूप अन्नके अंशको भोजन करके जो भगवान् तृप्तहुए. उनके तृप्त होनेसे ही, अघमर्षण करनेके निमित्त नदीके जलमें गोता लगानेवाले दुर्वासा आदि दश सहस्र ऋषियोंका समूह, त्रिलोकी को तृप्त हुआ मानकर अन्तःकरणमें सन्तुष्ट हो तहांसे अन्यत्रको चलागया * ॥ ११ ॥ तथा जिन श्रीकृष्णके

* महाभारतमें यह कथा इसप्रकार लिखी है कि—एक समय दुर्योधनने दुर्वासा ऋषिका अतिथि सत्कारकिया, तब प्रसन्न होकर ऋषिने दुर्योधनसे कहा कि—वर मांग, उस समय 'दुर्वासाके शापसे पाण्डवोंका नाश होजाय' ऐसा मनमें विचार दुर्योधनने कहा कि हे ऋषे ! युधिष्ठिर हमारे कुलमें मुख्यहैं अतः उनके यहांभी आप इसी प्रकार दशसहस्र शिष्योंसहित जाकर अतिथि बनिये परन्तु द्रौपदी भूँखी रहकर दुःखित न होय इसकारण उसके भोजन करलेनेपर आप युधिष्ठिरके समीप जायँ,दुर्वासा तथास्तु कहकर तहां से चल दिये और उसी प्रकार दशसहस्र शिष्यों सहित मध्यान्ह के समय युधिष्ठिर के समीप पहुँचे तब राजा युधिष्ठिर ने आदर सत्कार करके प्रार्थनाकरी कि—आप सब महाशय मध्यान्ह कालके सन्ध्यावन्दनादि से निवृत्त होकर भोजन के निमित्त आइये, यहसुन सकल मुनि अघमर्षण करने को जलाशय पर गये और तिसमें स्नानकरने के निमित्त गोतालगाया, इधर भोजन करानेकी चिन्तासे व्याकुल हुई द्रौपदी के स्मरण करतेही श्री कृष्ण रुक्मिणीको त्यागकर तत्काल भक्तवत्सलताके वशीभूतहो तहां आये और द्रौपदी के सकल वृत्तान्त निवेदन करनेपर बोले कि—हे द्रौपदि ! मैंभी भूखा हूँ प्रथम मुझे भोजन करा, तब तो द्रौपदी अति लज्जित होकर कहनेलगी कि—हे स्वामिन् ! जबतक मैं भोजन न करूँ तबतक इस सूर्य देवकी दीहुई बटलोईमेंका अन्न अक्षय रहता है कितनेही प्राणी

जं मे ॥ अन्येपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेंद्रभवने महदासनार्धम् १२ तत्रैव मे विहरतो भुजदंडयुग्मं गांडीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ॥ सेंद्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ॥ १३ ॥ यद्बांधवः कुरुबलाब्धिमनंतपारमेको रथेन ततरेऽहमतीर्यसत्वम् ॥ प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेजस्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ॥ १४ ॥ यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमंडलमंडितासु ॥ अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्म-

तेजसे मैंने, मल्लयुद्ध में त्रिशूलधारी भगवान् शिवको भी आश्चर्य में डाला, तब उन्होने प्रसन्न होकर मुझे अपना पाशुपत नामक अस्त्र दिया, तदनन्तर सकल लोकपालों ने भी अपने २ अस्त्र मुझे दिये और मैं इसही शरीरसे स्वर्गलोक में जाकर इन्द्रके पूजनीय आधे आसनपर वैठा ॥ १२ ॥ हे अजमीढ़ राजाके वंशमें उत्पन्न हुए धर्मराज ! तिस स्वर्ग लोक में मेरे यथेष्ट क्रीड़ा करते समय, इन्द्र सहित सकल देवताओं ने निवातकवचादि अपने दुर्जय शत्रुओंका वध करने के निमित्त, जिन श्रीकृष्ण करके अद्भुत पराक्रमयुक्त करेहुए तथा गाण्डीव धनुषके चिन्ह से शोभित मेरे वाहुदण्डका आश्रय किया था तिन सर्वव्यापक श्रीकृष्णने आज मुझे धोखादिया है अर्थात् वह मुझे त्याग निजधाम को पधारगये ॥ १३ ॥ जिन श्रीकृष्ण का आश्रय करनेवाला इकलाही मैं, जिसका अन्त और पारनहीं तथा जिसमें, जिनको जीतना कठिन ऐसे भीष्मजी आदि ही मानो वड़े २ जलचर थे, ऐसी कौरवों की सेनारूप समुद्रको रथके द्वारा तरगया और इससे प्रथमभी उत्तरगोग्रहण के समय मैंने, जिसको कौरव लेगये थे ऐसा गोसमूह रूप वहुतसा धन लौटालियाथा तथा शत्रुओंके ऊपर मोहकारक अस्त्र छोड़कर, उनके प्रतापके स्थानरूप जो रत्नजटित मुकुट आदि भूषण वह उनके मस्तक पर से हरणकरे थे ॥ १४ ॥ हेविभोधर्मराज ! जिनश्रीकृष्णने, मेरे सारथी वनकर, अतिपराक्रमी श्रेष्ठराजाओं के रथोंके समूहसे शोभायमान भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य आदिकी सेनाओंमें, तिन महारथी वीरों

भोजन करैं निवड़ नहींसक्ता और मेरे भोजन करतेही निवड़जाताहै सो हे भगवन् ! अव तो सव को भोजन कराकर मैंभी भोजन करचुकी इसकारण भोजन नहीं रहा, ऐसा द्रौपदीके कहनेपर भी भगवान् ने अति आग्रहसे वटलोई छीनकर उसके गलेमें लगाहुआ कुछ एक अन्नका अंश भोजन करके कहा कि–'इससे विश्वात्मा भगवान् तृप्तहों' और तदनन्तर भीमसेनसे कहा कि–भोजनके निमित्त मुनियोंको बुलाओ, उधर गोता लगाकर निकलते ही सव मुनि भगवान् के उतने कथन मात्रसे अत्यन्त तृप्त होगये, तव तो यह विचारकर कि 'युधिष्ठिरने हमारे निमित्त भोजन वनवाया है और हमें भूखही नहीं है अतः उसको न खासके तो उनका पाक वृथा होगा और हमारा हास्यभी होगा' तहांसे पलायमान होगये ।

नांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥ १५ ॥ यद्दोःषु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्त्तशल्यसैन्धववाह्लिकाद्यैः ॥ अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नो पस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ॥ १६ ॥ सौत्ये वृतः कुमतिनात्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ॥ मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥ १७ ॥ नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ॥ संजल्पितानि नरदेव हृदि स्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥ १८ ॥ शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ॥ सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ॥ १९ ॥ सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ॥ अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन् गोपैः रसे-

---

के आयु, मन, उत्साहशक्ति और वलको केवल दृष्टिसेही हरलियाथा ॥ १५ ॥ हेराजन् तुमने कौरवयुद्धके समय मुझे जिन श्रीकृष्णके हाथमें सौंपकर रक्षा करने की प्रार्थना करीथी, इसकारण द्रोण भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ और वाल्हीक आदिने मेरे ऊपर अनेकों अमोघ (कभी निष्फल न जानेवाले) अस्त्र छोडे परन्तु वह, 'जैसे हिरण्यकशिपु आदि दैत्यों के छोड़े हुए शस्त्र प्रल्हादको स्पर्शतक नहीं करसके थे तैसे मुझे स्पर्शतक नहीं करसके ॥ १६ ॥ सबके पूजनीय ब्रह्मादि देवता भी मोक्ष की प्राप्तिके निमित्त जिन श्रीकृष्णजी के चरणकमलों की सेवा करते हैं और जयद्रथके वधके दिन जल न मिलने के कारण मेरे रथके घोड़े थकगये थे तब भूमिको विदारकर जल निकालने के निमित्त मेरे भूतल में उतरने पर जिन भगवान् की अन्तर्यामी प्रेरणासे पूर्वापर के विचार से हीन हुए तिन रथपर स्थित शत्रुओं ने मेरे ऊपर प्रहार नहीं किया, ऐसे मुमुक्षु पुरुषों को आत्मज्ञान देनेवाले तिन ईश्वर को मैंने कुबुद्धिसे सारथी बनाया, इस कारण मुझको धिक्कार है॥ १७॥हे नरदेव धर्मराज! श्रीकृष्णजी के गम्भीर और सुन्दर मुसकुरानेसे शोभायमान हास्यके जोभाषण और हेपार्थ! हेअर्जुन! हेसखे! तथा हेकुरुनंदन! इस प्रकार पुकारने के जो भाषण वह इस समय स्मरण करतेहुए मेरे हृदयको विदीर्ण करेदेते हैं॥ १८॥ और सोना, वैठना, फिरना, अपनेगुणों की प्रशंसा करना और भोजनकरना इत्यादि कार्यों को श्रीकृष्ण मेरे विना कदापि नहीं करतेथे यदि कभी मेरे विना भोजनादि करलेतेथे तो, 'हे मित्र! तुम बड़े सत्यवादी हो ना? अच्छी मित्रता निवाही?' ऐसे ताने देकर मैं उन का तिरस्कार करताथा तथापि वह महात्मा अपने वडप्पनसे, जैसे मित्र मित्रका अपराध सहताहै और जैसे पिता पुत्र का अपराध सहताहै तैसे, कुबुद्धिसे मेरे करेहुए सकल अपराधों को सहतेथे ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र! भीष्मादि वीरों का तिरस्कार करनेवाला वही

द्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥ तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमंति ॥ सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥ २१ ॥ राजंस्त्वयाऽभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ॥ विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥ २२ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ॥ अजानतामिवान्योन्यं चतुःपंचावशेषिताः ॥ २३ ॥ प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितं ॥ मिथो निघ्नंति भूतानि भावयंति च यन्मिथः ॥ २४ ॥ जलौकसां जले यद्वन्महांतोऽदंत्यणीयसः ॥ दुर्वलान्वलिनो

मैं अर्जुन, जिस समय प्यारे सखा और हितू तिन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे वियोग को प्राप्त हुआ उसी समय चित्तके पूर्वापरविचार तथा अस्त्रों के मन्त्ररूप हृदय से रहित होगया फिर यहाँ को आतेहुए मार्ग में, श्रीकृष्णकी सोलह सहस्र स्त्रीरूप परिवार की रक्षा करते हुए, * हे राजन्! नीच ग्वालोंने साधारण स्त्रीकी समान, मुझको पराजितकियाहै॥२०॥ कौरव संग्राममें अनेकों राजे जिस को प्रणाम करते थे, वहही धनुष, वहही वाण, वहही रथ, वहही घोडे और वहही मैं रथी हूँ परन्तु यह सब सामग्री श्रीकृष्णसे रहित होने के कारण, जैसे भस्ममें किया हुआ हवन, मायावी पुरुष से मिली हुई वस्तु तथा ऊषर भूमिमें वोया हुआ अन्न व्यर्थ होता है तैसेही एक क्षण में व्यर्थ होगई ॥ २१ ॥ हे राजन्! तुम ने जिन वान्धवों की कुशल के विषयमें मुझसे प्रश्न किया था, वह द्वारका के निवासी आपके सम्बन्धी, ब्राह्मणों के शाप + से अतिमूढ़वुद्धि होकर वारुणी नामक मदिराको पी, तिस के मदसे विक्षिप्तचित्त होगये और वह परस्पर को न जाननेवाले से होकर शत्रुभावसे एक २ के ऊपर मुष्टियों (घूँसों) से प्रहार करने पर प्रायः सब का नाश होकर अब उनमें से चार वा पाँच यादव शेषरहे हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे राजन्! सकल प्राणियों में एक दूसरों को मारते हैं अथवा एक दूसरों की रक्षाकरते हैं यह सब प्रायः भगवान् ईश्वरका ही चरित्र है। ॥२४॥ हे राजन्! जैसे जलचरोंमें के मत्स्यादि जीवोंमें वडे जीव छोटे जीवों का भक्षण

* यहाँ यह शङ्का नहीं करना चाहियें कि–भगवान् की स्त्रियों का नीच ग्वालोंके हाथ में जाना कैसे हुआ ? क्योंकि-भगवान्की लीला अचिन्त्य है, एक समय इन देवाङ्गनाओंने, स्नान करतेहुए अष्टावक्र ऋषिकी स्तुति करके उनसे विष्णुभगवान्को पतिपाने का वर पाया तदनन्तर स्नान करके जलसे वाहर निकलनेपर उनके टेढ़ेवेढ़े शरीर को देखकर हँसीं तब उन्होंने यह शापभी दिया कि–तुम नीच दस्युओं के हाथ में पड़ोगी। इस शापके कारणही रुक्मिणी आदि स्त्रियें नीच ग्वालों के हाथ में पहुँचीं।

\+ यह ब्राह्मणशापकी कथा महाभारत के मुसलपर्व में लिखी है, अधिक विस्तार होने के कारण यहाँ नहीं लिखी ।

राजन्महांतो बलिनो मिथः ॥ २५ ॥ एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः ॥ यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्संजहारह ॥ २६ ॥ देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ॥ हरंति स्मरतश्चित्तं गोविंदाभिहितानि मे ॥ २७ ॥ एवं चिंतयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ॥ सौहार्देनातिगाढेन शांतासीद्विमला मतिः ॥ ॥ २८ ॥ वासुदेवांघ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा ॥ भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥ २९ ॥ गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्द्धनि ॥ कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमत्प्रभुः ॥ ३० ॥ विशोको ब्रह्मसंपत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः ॥ लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिंगत्वादसंभवः ॥ ३१ ॥ निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ॥ स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥ पृथाप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च तां ॥ एकांतभक्त्या भगवत्यधोक्ष-

करते हैं अथवा मनुष्यादिकों में जो बलवान् हैं वह दुर्बलों का बधकरते हैं और जो समान बल होते हैं वह परस्पर एक का एक बध करते हैं ॥ २५ ॥ तैसेही श्रीकृष्णने, महाबली यादव और पाण्डवों से अन्य जरासन्ध आदि का नाश करवाकर, पृथ्वी के भारभूत यादवोंसे ही परस्पर यादवोंका नाश करवाया है ॥ २६ ॥ हे राजन्! किस देश में तथा किस समय में कैसा वर्त्ताव करे, इसके उचित विचार से युक्त और हृदय के तापोंका समूल नाश करनेवाले श्रीकृष्ण के मधुरवाक्य, स्मरण आनेपर मेरे चित्तको खैंचते हैं २७ सूतजी बोले, कि–हे ऋषियो! इस प्रकार अर्जुन के प्रेमयुक्त अतिदृढ़भक्ति से श्रीकृष्णके चरणकमलों का ध्यान करनेपर उसकी बुद्धि शोकरहित, शान्त और निर्मल हुई ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण के चरणों का निरन्तर ध्यान करने से जिसका वेग बढ़ा है ऐसी दृढ़भक्तिसे अर्जुन की बुद्धि में की कामक्रोधादि सकल विषयवासना समूल नष्ट होगई २९॥ और युद्धके प्रारम्भ में जो गीतारूपज्ञान श्रीकृष्णजी ने कहा था वह, काल, कर्म, और विषयभोग में आसक्ति के कारण विस्मरण होगया था वह ही फिर अर्जुन को प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ तिस से अर्जुन को 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी ब्रह्मसम्पत्ति प्राप्त होने से उसके अन्तःकरण में की अविद्या समूल नष्ट होगई तब स्वयंही उस अविद्या के सत्व, रज और तम यह तीनों गुण और उनसे उत्पन्न हुआ लिङ्गशरीर (पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, बुद्धि और मन) और तिसके कार्य स्थूल शरीर की उत्पत्ति यह सब नष्ट होगये तिस से अर्जुन के मनमें का द्वैतभावरूप संशय दूर होगया और वह सर्वथा शोकरहित होगया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार भगवान् के स्वीकार करेहुए निजधामगमनरूप मार्ग और यदुकुलके संहार को सुनकर धर्मराजने एकाग्रचित्त से विचार करके स्वर्गमार्ग को गमन करने का निश्चय किया ॥ ३२ ॥ उस समय तिस अर्जुनके कथन को सुनकर यादवों का नाश और ब्रह्मादिकों की भी तर्कना

जे निर्वेशितात्मोपरराम संस्थते: ॥ ३३ ॥ ययाऽहरद्भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ॥ कंटकं कंटकेनेव द्वयं चापि शितुः समं ॥ ३४ ॥ यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः ॥ भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरं ॥ ३५ ॥ यदा मुकुंदो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ॥ तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः कलिरन्ववर्त्तत ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तदात्मनि ॥ विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥ ३७ ॥ स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ॥ तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिंचद्गजाह्वये ॥ ३८ ॥ मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं मग्नीनपिबदीश्वरः ॥ ३९ ॥ विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् ॥ निर्ममो निरहंकारः संछिन्नाशेषबंधनः ॥ ४० ॥ वाचं जुहाव मनसि

में न आनेवाले श्रीकृष्ण के निजधामगमन को जानकर कुन्ती ने भी अपना अन्तःकरण, इन्द्रियों के अगोचर श्रीकृष्ण के विषैं अनन्यभक्ति से स्थापन करके देहको त्यागदिया ३३॥ इसप्रकार अजन्मा श्रीकृष्णजी ने जिससमय यादवशरीर से पृथ्वी का भार, जैसे काँटेसे काँटा निकालते हैं तैसे, दूर किया था, तिस अपने शरीर को भी अन्त में त्यागदिया, क्योंकि अपना शरीर और जरासन्ध आदि के शरीर यह दोनोंही संहार करनेके विषय में परमात्मा श्रीकृष्णजी को एकसमान थे ॥ ३४ ॥ जैसे नट अनेकों मत्स्यकूर्मादि रूपों को धारता है और त्यागदेता है तैसेही भगवान् ने श्रीकृष्णरूप धारकर पृथ्वी का भार दूरकिया और अन्त में तिस कृष्णरूप को भी त्यागदिया ॥ ३५ ॥ जिनकी कथा श्रवण करने योग्य है ऐसे मुकन्द भगवान् ने जिसदिन अपने शरीर से इस पृथ्वी को त्यागा तिसदिनही अज्ञानी पुरुषों को अधर्म में प्रवृत्त करनेवाला कलियुग जिधर तिधर फैलगया ॥ ३६ ॥ उससमय ज्ञानी धर्मराजने, अपने देह, मन, स्थान, हस्तिनापुर तथा सकल राज्य में लोभ, असत्य, कपट हिंसा आदि अधर्मके समूहका जिधर तिधर विस्तार जानकर महाप्रस्थान करनेका निश्चय किया ॥ ३७ ॥ और तिन स्वतन्त्र धर्मराजने, स्वभाव से नम्र, गुणोंमें अपनी समान पौत्र परीक्षितका हस्तिनापुरमें समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके राज्यसिंहासन पर अभिषेक किया ॥ ३८ ॥ तथा मथुरानगरी में वज्रनामक अनिरुद्धके पुत्रको, शूरसेन देशके राज्यपर स्थापनकरके तदनन्तर प्राजापत्य नामक इष्टिकरके तिन समर्थ धर्मराजने गार्हपत्यादि अग्नियोंका पानकिया ॥ ३९ ॥ और अपने शरीरपरके पीताम्बरादि वस्त्र तथा कड़ेआदि सकल आभूषणोंको तहाँही त्याग ममता और अहङ्काररहित होकर सकल उपाधिरूप बन्धनोंको तोड़दिया ॥ ४० ॥ और उन्होंने वाणीआदि सकल इन्द्रियोंका क्रियाओं सहित मनमें लयकरके तिसमनका प्राण में लय किया, फिर तिसप्राणका अपानवायु में लयकरके अपानवायुका उत्सर्ग क्रियाओं

तत्प्राणे इतरे च तम् । मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पंचत्वे ह्यजोहवीत् ॥ ४१ ॥ त्रित्वे हुत्वा च पंचत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ॥ सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥ ४२ ॥ चीरवासा निराहारो बद्धवाङ्मुक्तमूर्धजः ॥ दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ ४३ ॥ अनवेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा ॥ उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ॥ हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः ॥ ४४ ॥ सर्वे तमनुनिर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥ ४५ ॥ ते साधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वात्यंतिकमात्मनः ॥ मनसा धारयामासुर्वैकुंठचरणांबुजं ॥ ४६ ॥ तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ॥ तस्मिन्नारायणपदे एकांतमतयो गतिं ॥ ४७ ॥ अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ॥ विधूतकल्मषास्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥ ४८ विदुरोपि

सहित मृत्युदेवतामें लय किया और तिसमृत्युका लय पञ्चभूतरूप देहमें किया, अर्थात् मृत्यु देहकीही होती है आत्मा की नहीं ऐसी भावना करी ॥ ४१ ॥ तदनन्तर तिन विचारवान् धर्मराजने पञ्चमहाभूतरूप देह का सत्व, रज और तम इनतीन गुणों में लय करके तिन तीनों गुणों का अविद्या में लय किया, तिस अविद्या का जीवात्मा में लय करके तिस शुद्ध त्वंपदार्थवाच्य जीवका निर्विकार परब्रह्म के विषैं लय किया अर्थात् देहादि प्रपञ्चके लय के विषय में पूर्वोक्त भावना करके देहाभिमान को त्यागदिया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर चीर (वृक्षों की छाल आदि) धारण करनेवाले, आहारत्यागी, मौनव्रतधारी और जिनके शीशपर केश खुले हुए हैं ऐसे वह धर्मराज अपना रूप, जड़, उन्मत्त और पिशाच की समान लोकों को दिखाते हुए ॥ ४३ ॥ भीमादिभ्रताओं की भी अपेक्षा न करके किसीके भी भाषण को न सुनते हुए. अन्तःकरण में परब्रह्मरूप श्रीकृष्ण का ध्यान करते हस्तिनापुर से बाहर निकलकर, जिस दिशा को गयाहुआ पुरुष फिर गर्भवास में नहीं आता है ऐसी पहिले भी महात्माओं की गमन करीहुई उत्तर दिशा में को चलेगये॥ ४४ तब भूतल की सकल प्रजा अधर्ममित्र कलियुग से व्याप्त होगई हैं ऐसा देखकर धर्मराज के भीम आदि सकल भ्राताओं ने भी उनके समान ही मनका निश्चय करके उनके पीछे २ गमन करा ॥ ४५ ॥ इसप्रकार तिन पांचों पाण्डवों ने, धर्म अर्थ काम मोक्ष को उत्तमप्रकार से साध कर अपनी मुख्यगति जान श्रीकृष्ण के चरणकमल का ही मन में ध्यान किया ॥ ४६ ॥ तिस ध्यान से प्रकट हुई भक्ति करके शुद्धचित्त हुए और निष्पाप पुरुषों के स्थानरूप नारायण के स्वरूप में एकाग्रचित्त हुए वह पाण्डव, लिङ्गदेहरहित अपने स्वरूपसे ही, विषयासक्त असत्पुरुषों को दुर्लभ जो मोक्षगति तिसको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ आत्मज्ञानी विदुरजी ने भी, प्रभास क्षेत्र में दृढभक्ति से श्रीकृष्ण के स्वरूप में चित्त की धारणा करके अपने शरीर

परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् ॥ कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥ ४९ ॥ द्रौपदी च तदाज्ञाय पतीनामनपेक्षतां ॥ वासुदेवे भगवति ह्येकांतमतिराप तं ॥ ५० ॥ यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पांडोः सुतानामिति संप्रयाणं ॥ शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिं ॥५१॥ इ० भा० म० प्र० पांडवस्वर्गारोहणं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सूत उवाच ॥ ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह ॥ यथा हि सूत्यामभिर्जातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा ॥१॥ स उत्तरस्य तनयामुपयेमे इरावतीं ॥ जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयन्सुतान् ॥ २ ॥ आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गंगायां भूरिदक्षिणान् ॥ शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षगोचराः ॥३॥ निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ॥ नृपलिंगधरं शूद्रं घ्नंतं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥ शौनक उवाच ॥ कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ॥ नृदेवचिह्नधृक् शूद्रः कोऽसौ गां यः पदाऽहनत् ॥ ५ ॥ तत्कथ्यतां महाभाग

को त्यागा और उस समय सन्मुख आयेहुए पितरों के साथ अपने अधिकार पर यमलोक में चलेगये ॥ ४९ ॥ इधर द्रौपदी भी उससमय अपने पतियों को अपनी ओर अपेक्षा (दृष्टि मात्रभी) नकरते देखकर श्रीकृष्णभगवान्केविषै एकाग्रचित्त होतीहुईउनकेस्वरूपमेंलीनहोगई ५० यह, श्रीकृष्णके प्रिय पाण्डुपुत्रोंका उत्तम महाप्रस्थान अत्यन्तमङ्गलदायक और अति पवित्र है अतः जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है वह श्रीकृष्णभगवानके विषैं भक्ति पाकर मोक्षरूप सिद्धिकोभी प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ प्रथमस्कन्धमें पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि-हे शौनक! पाण्डवों के स्वर्ग को पधारने के अनन्तर, जिसके जन्मके समय जातकका फल कहनेवाले ब्राह्मणोंने 'यह उत्तम रीतिसे राज्यकरेगा' ऐसा कहा था, तिसीप्रकार राजर्षियोंके उत्तम गुणोंसे युक्त वह महाभागवत राजा परीक्षित धौम्य कृपादि द्विजवरोंकी आज्ञानुसार समुद्र पर्यंत पृथ्वी का पालन करनेलगे ॥ १ ॥ उन्होंने उत्तरनामक अपने मातुलकी इरावती नामक कन्याके साथ विवाह किया और उससे जन्मेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ तदनन्तर तिन परीक्षितने कृपाचार्यको गुरु करके भागीरथी के तटपर बहुत दक्षिणावाले तीन अश्वमेध यज्ञ किये, तिन यज्ञोंमें सकल देवता अपना भाग लेनेको प्रत्यक्ष आये थे ॥ ३ ॥ एकसमय तिन राजा परीक्षितने दिग्विजयके समय मूर्त्तिमान् कलिका अपने पराक्रमसे निग्रह किया था, क्योंकि-वह शूद्ररूपी कलि, राजचिन्होंको धारणकरके गौ और वृषभ दोनोंको अपने चरणसे ताड़ना कररहा था ॥ ४ ॥ शौनक बोले कि-हे सूतजी! राजा परीक्षितने अपने दिग्विजयमें वध करनेके योग्य कलिका केवलनिग्रहही क्यों किया? क्योंकि-वह कलि अतिनीच शूद्ररूपसे राजचिन्ह धारण करके गौ और वृषभ के ऊपर लत्ताप्रहार कररहाथा ॥ ५ ॥ हे महाभाग सूतजी ! वह

यदि कृष्णकथाश्रयं ॥ अथवाऽस्य पदांभोजमकरंदलिहां सतां ॥ ६ ॥ किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ॥ क्षुद्रायुषां नृणामंग मर्त्यानाममृतमिच्छतां ॥ ७॥ इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥ नकश्चिन्म्रियते तावद्यावदास्त इहांतकः ॥ ८ ॥ एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः ॥ अहो नृलोके पीयेत हरिलीलाऽमृतं वचः ॥ ९ ॥ मंदस्य मंदप्रज्ञस्य वयो मंदायुषश्च वै ॥ निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥१०॥ सूत उवाच ॥ यदा परीक्षित्कुरुजांगले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ॥ निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौंडिराददे ॥ ११ ॥ स्वलंकृतं श्यामतुरंगयोजितं रथं मृगेंद्रध्वजमाश्रितः पुरात् ॥ वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ १२॥ भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून् ॥ किंपुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १३ ॥ तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनां ॥

परीक्षितका कलिको निग्रह करनेका चरित्र यदि श्रीकृष्णकी कथाका आश्रयकरनेवाला होय अथवा श्रीकृष्णजीके चरणकमलों के मकरन्दका स्वाद लेनेवाले सत्पुरुषोंकी कथाका आश्रय करनेवाला होय तो कहिये, क्योंकि-जिन अन्य दुर्भाषणोंसे आयुका वृथा क्षयही होता है तिन मिथ्यावाक्योंको कहकर और सुनकर कौन लाभ है? हे प्रिय सूतजी! अल्पायु और मरणधर्मी तथा मोक्षकी चाहना करनेवाले मनुष्योंके प्राणोंका नाश करनेवाला जो मृत्यु तिसको हमने इसयज्ञमें बुलाकर प्रथमही उससे प्रतिज्ञा कराली है कि-वह यहां केवल पशुओंकी हिंसामेंही प्रवृत्त होय,अतः वह मृत्यु जबतक यहां है तबतक इसयज्ञमें अन्य कोई भी मरणको नहीं प्राप्तहोगा,इसकारणही श्रेष्ठ ऋषियोंने तिस मृत्यु रूप भगवान्को यहां बुलायाहै,अतः इस मनुष्य लोकमें सकल पुरुष हरिलीलामृतरूप वचनका पानकरें।६।७।८।९ तिस हरिभजन के विना,अल्पायु,आलसी और मन्दबुद्धि पुरुषोंकी अवस्था आधी तो रात्रिमें निद्रासे वीतजातीहै और शेष आधी दिनमें व्यर्थकर्मोंके करनेमें वीतजातीहै॥१०॥सूतजीबोले कि-हे शौनक! कुरुजाङ्गल देशके हस्तिनापुरमें निवासकरनेवाले युद्धशूर राजा परीक्षित ने, अपनी सेनासे रक्षित देशों में कलियुग ने प्रवेश किया यह, अप्रिय होनेपरभी युद्धका प्रसङ्ग प्राप्तहोनेसे कुछएक प्रियवार्त्ता जिससमय सुनी उसीसमय, तिस दुष्टकादमन करनेको हाथमें धनुषलिया ॥ ११ ॥ तदनन्तर उत्तमता से सजाये श्यामवर्ण घोड़ोंसे जुतेहुए और सिंहके चिन्हवाली ध्वजासे शोभायमान अपने रथमें बैठकर वहराजा परीक्षित, रथ, घोड़े हस्ती और पैदलोंकी चतुरङ्गिनी सेनाको अपने चारोंओर लेकर दिग्विजयके निमित्त हस्तिनापुरसे बाहर निकले ॥ १२ ॥ उन्होंने, भद्राश्व. केतुमाल, भारत, उत्तरकुरुदेश और किंपुरुषादि सकल खण्डोंको जीतकर तहाँ के राजाओंसे करलिया ॥१३॥ और तहाँ २ के लोकोंका वर्णन करा-

प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥ १४ ॥ आत्मानं च परित्रातम-
श्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ॥ स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १५ ॥
तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृंभितलोचनः ॥ महाधनानि वासांसि ददौ हारान्म-
हामनाः ॥ १६ ॥ सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणा-
मं ॥ स्निग्धेषु पांडुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविंदे ॥
॥ १७ ॥ तस्यैवं वर्त्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहं ॥ नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासी-
त्तन्निबोध मे ॥ १८ ॥ धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गां ॥ पृच्छति-
स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥ १९ ॥ कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छा-
यासि म्लायतेषन्मुखेन ॥ आलक्षये भवतीमंतराधिं दूरे बन्धुं शोचसि कंचना-
ब ॥ २० ॥ पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणं ॥ अथो

हुआ, अपने पूर्वज भरतादि महाप्रतापी राजाओंका कृष्णके महात्म्य को प्रकट करनेवाला सशसुना ॥ १४ ॥ और अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्रके तेजसे करीहुई अपनीरक्षा, यादव पाण्डवों का परस्पर सत्य स्नेह और उनकी श्रीकृष्णके विषैं स्वाभाविक भक्ति ॥ १५ ॥ यहसब उन देशोंके लोकोंसे सुनकर तिनमहाउदार राजा परीक्षित ने परम सन्तुष्ट और प्रेमसे प्रफुल्लित-नेत्र युक्त होकर उनलोको को बहुमूल्यके वस्त्र और हारदिये ॥ १६ ॥ जिन श्रीकृष्ण को सकल जगत् वन्दना करताहै वहप्रभु, भक्तवत्सलताके कारण स्नेही पाण्डवोंके, सारथी बनना सभामें अग्रणी होना, चित्तानुकुल वर्त्ताव करना, मित्रता, दूतबनना, हाथमें खड्ग लेकर रात्रिभर खड़ेहुए जगतेरहना, पीछे २ चलना, स्तुति और नमस्कारकरना इत्यादि कार्यकरतेथे ऐसाप्रभुनके वहराजा परीक्षित श्रीकृष्णजीके चरणकमलोंमें अधिकताके साथ प्रेमभक्ति करनेलगे ॥ १७ ॥ हे शौनक ! इसप्रकार अपने पूर्वजोंके अनुसार तिसराजापरीक्षित के प्रतिदिन वर्त्ताव करतेहुए कुछहीकाल में जो एक आश्चर्यकारक घटनाहुई उसको तुम मुझसे श्रवण करो ॥ १८ ॥ साक्षात् धर्म वृषरूप धारण करके, एकही चरण से लँगड़ाताहुआ विचर रहाथा वह, मृत-सन्तान माता की समान मुखपर अश्रुधारा बहातीहुई तेजहीन गोरूपधारिणी पृथ्वीको देख कर उससे बूझने लगा ॥ १९ ॥ धर्म बोला कि—हे कल्याणि ! तेरा शरीरतो नीरोग है? कुछ एक कुमलायेहुए मुख के कारण तू निस्तेजसी होरही है, मुझे प्रतीत होताहै कि—तेरे अन्तःकरण में किसी प्रकारका दुःख है ? सो क्या हे मातः ! तू किसी दूर को गयेहुए बान्धव के शोक में है ? ॥ २० ॥ अथवा तीन चरणों से रहित होकर एकही चरणसेलँगड़ा २ कर फिरते हुए मेरा शोक कररही है ? अथवा आगेको शूद्रप्राय राजों से भोगी जाऊंगी, यह विचार कर अपना ही शोक कररही है ? अथवा जिनका हविर्भाग नष्टहोगया है ऐसे देवताओं के निमित्त शोक में है ? या इन्द्रके न वर्षने पर प्रजा अन्नके कारण दुःखित

सुरादीन् हृतयज्ञभागान्प्रजा उतस्विन्मघवत्यवर्षति ॥२१॥ अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान् शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्त्तान् ॥ वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान ॥ २२ ॥ किं क्षत्रबन्धून्कलिनोपसृष्टान् राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ॥ इतस्ततो वाऽशनपानवासःस्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥२३॥ यद्वाऽम्ब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ॥ अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलंबितानि ॥ २४ ॥ इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं वसुंधरे येन विकर्शितासि ॥ कालेन वा ते बलिनां बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमंब सौभगम् ॥ २५ ॥ धरण्युवाच ॥ भवान् हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ॥ चतुर्भिर्वर्त्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥ २६ ॥ सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः संतोष आर्जवं ॥ शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतं ॥ २७ ॥

होंगी यह विचारकर शोकमें पड़ी है ? ॥ २१ ॥ हे पृथ्वि ! पति और पुत्रोंसे रक्षा न करीहुई स्त्रियों का, वा माता पिता से रक्षा न करे हुए बालकों का, अथवा वही पतिपुत्र स्त्रियों को तथा मातापिता बालकों को उलटे मनुष्यभक्षी राक्षसों की समान क्लेश देंगे, इसका शोक कररहीहै अथवा कुकर्मी ब्राह्मणकुलों में रहनेवाली वाग्देवी (विद्या) का, अथवा ब्राह्मणों की भक्तिसे रहित राजकुलों में लोभवश सेवावृत्ति करने वाले ब्राह्मणों का तू शोक कररही है ? ॥ २२ ॥ अथवा कलियुग के ग्रसेहुए राजाओंका, अथवा तिन राजाओं के नष्ट भ्रष्ट करेहुए सकल देशों का, अर्थात् शास्त्रकी विधिनिषेधरूप आज्ञाको न मानकर जिधरतिधर अन्नादिका भोजन, जलादिका पान, वस्त्रादि धारण, अभ्यङ्गस्नान और मैथुन आदि कर्मों मे यथेष्ट प्रवृत्त होने वाले सकल प्राणियोंका तू शोक करती है क्या ? ॥ २३ ॥ अथवा हे मातः ! मेरे ऊपरके अधिक भारको दूर करनेके निमित्त अवतार धारनेवाले श्रीकृष्णने अन्तर्धान होकर तुझको त्यागदिया इससे हे पृथ्वि ! उनके मोक्षसुखदायक कर्मोंको स्मरण करके खिन्न होरही है क्या ? ॥ २४ ॥ हे वसुन्धरे ! सकल बलवानों में परमबली जो काल तिसने, देवताओंकाभी पूज्य तेरा सौभाग्य आज हरलिया क्या ? सो जिससे तू खिन्न होरही है वह अपने मनकी पीड़ाका कारण तू मुझसे कथनकर ॥२५॥ पृथ्वी बोली कि—हे धर्म ! जो मुझ से बूझरहा है सो सब तू जानताही है तथापि—मैंही कहूँ ऐसी तेरी इच्छा है तो कहती हूँ सुन. जिन श्रीकृष्णके आश्रयसे तप, शौच, दया और सत्य इन, लोकोंके सुखदायक चार चरणोंसे तू पूर्ण था ॥ २६ ॥ और सत्य, शौच, दया, क्षमा, दान, सन्तोष, सरल स्वभाव, मन और नेत्रादि बाहिरी इन्द्रियोंकी स्थिरता, अपने धर्मका आचरण, किसीसे शत्रु मित्र भाव न होना, सहन शीलता, लाभ होनेपरभी उदासीनता, शास्त्रका विचार, ॥२७॥ चेतन जड़का विचार, सकल तृष्णाओं से रहित होना, ऐश्वर्य, शूरता, प्रताप, बल, स्मरण, स्वतन्त्रता, चतुरता

ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः ॥ स्वातंत्र्यं कौशलं कांतिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥ २८ ॥ प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ॥ गांभीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः ॥ २९ ॥ एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ॥ प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियंति स्म कर्हिचित् ॥ ३० ॥ तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन सांप्रतं ॥ शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥ ॥ ३१ ॥ आत्मानं चानुशोचामि भवंतं चामरोत्तमं ॥ देवान्पितॄनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाश्रमान् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपांगमोक्षकामास्तपः समचरन् भगवत्प्रपन्ना ॥ सा श्रीः स्ववासमरविंदवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥ ३३ ॥ तस्याहमब्जकुलिशांकुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृतांगी ॥ त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोकान्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदंते ॥ ३४ ॥ यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतंत्रः ।

सुन्दरता, धीरता, कोमलता ॥ २८ ॥ प्रौढ़ता, विनय, सुन्दर स्वभाव, मनकी शक्ति, पांच ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति, भोगस्थान, गम्भीरता, चञ्चल न होना, विश्वासयुक्त बुद्धि, कीर्ति, सन्मान, गर्व न होना ॥ २९ ॥ हे भगवन् धर्म ! महत्त्वकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके प्रार्थना करने योग्य यह उनतालीस गुण तथा ऐसेही ब्राह्मणों पर दया करना, शरणागतकी रक्षा करना आदि बड़े २ गुण जिनके विषैं नित्य (स्वभावसे) रहते हैं वह कदापि नाशको नहीं प्राप्त होते हैं ॥३०॥ ऐसे सकल गुणोंके पात्र और लक्ष्मी के निवास श्रीकृष्णसे रहित तथा पापात्मा कलियुगके देखेहुए सकल लोकों का मैं शोक करतीहूँ ॥३१॥ श्रीकृष्णके वियोग से मैं अपना और देवश्रेष्ठ तेराभी शोक करती हूँ, इन्द्रादि देवता, अग्निष्वात्तादि पितर, ऋषि, साधु, तथा ब्राह्मणादि सकल वर्ण और ब्रह्मचर्यादि सकल आश्रमोंका शोक करतीहूँ ॥३२॥ हेधर्म ! श्रीकृष्णका विरह परमदुःसहहै, क्योंकि—जिस लक्ष्मीकी अपनी ओर कृपादृष्टि होनेके निमित्त ब्रह्मादि देवताओंने भी बहुतकाल पर्यन्त तपस्याकरी वह सबकी सेव्य लक्ष्मी, अपने निवासस्थान कमलकोभी त्यागकर उन श्रीकृष्ण के चरणोंकी सुन्दरताको अतिप्रीति के साथ सेवन करतीहै ॥ ३३ ॥ तिन भगवान् के कमल, वज्र, अंकुश और ध्वजा इन चिन्हों से शोभित सुन्दरचरणों करके मेरा शरीर उत्तमप्रकार से भूषित था और तिन भगवान् से सकल संपत्तियें मुझे प्राप्तहोनेपर मैं त्रिलोकीभर से अधिकशोभा पातीथी, परन्तु जब उस ऐश्वर्य का नाशकाल आया तब मुझको गर्व होतेही तिन भगवान् ने त्यागदिया ॥ ३४ ॥ हेधर्म ! जिन स्वतन्त्रभगवान् ने मेरे ऊपरका, असुरवंशके राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणीरूप अतिभार दूरकिया और तीन चरणों से हीन होनेके कारण दुःखितहुए तुझको निज पराक्रम से अपने विषैं चारों चरणों से पूर्णदशा को प्राप्तकरनेके निमित्त जिन्हो ने यादवों में सुन्दर अ-

त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण संपादयन्यदुषु रम्यमबिभ्रदंगम् ॥ ३५ ॥ का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ॥ स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां रोमोत्सवो मम यदंघ्रिविटंकितायाः ॥ ३६ ॥ तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ॥ परीक्षिन्नामराजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ३७॥

इति श्रीभाग० महापुराणे प्रथमस्कन्धे पृथ्वीधर्मसम्वादोनाम षोडशोऽध्यायः १६

सूत उवाच ॥ तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ॥ दंडहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलांछनं ॥१॥ वृषं मृणालधवलं मेहंतमिव बिभ्यतम् ॥ वेपमानं पदैकेन सीदंतं शूद्रताडितम् ॥ २ ॥ गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ॥ विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥ ३ ॥ पप्रच्छ रथमारूढः कार्त्तस्वरपरिच्छदं ॥ मेघगंभीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥ ४ ॥ कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलां बली ॥ नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः ॥ ५ ॥ कस्त्वं कृष्णे

वतार धारण करा ॥ ३५ ॥ तैसेही प्रेम के साथ देखना, मनोहरहास्य और चित्त में चुभने वाले भाषणों से सत्यभामादि स्त्रियों का गर्वसहित उद्धतपना जिन्हो ने दूरकिया और मेरी धूलिपर जिनके चरणों के चिन्ह होनेसे मेरे शरीरपर (धान्यों के मिषसे) रोमांच हो उठताथा तिन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका विरह कौनसी स्त्री सहलेगी ? ॥ ३६ ॥ इस प्रकार तिन पृथ्वी और धर्म के पूर्ववाहिनी सरस्वतीके तटपर (कुरुक्षेत्र में) परस्पर भाषण होनेके समय, तहाँ परीक्षितनामा राजर्षि आपहुँचे ॥ ३७ ॥ प्रथमस्कन्ध में षोडशअध्यायसमाप्त ॥ * ॥

सूतजीबोले, कि हेऋषियों ! तिस सरस्वती नदी के तटपर अनाथकी समान ताड़ित होतेहुए गौ और वृषभ इन दोनोंको राजा ने देखा और राजचिन्ह धारण करके हाथ में दण्ड लियेहुए एकशूद्र (कलि) को भी देखा ॥ १ ॥ उन में से वृषभ (धर्म) तो कमल के कन्द (भसींड़े) की समान स्वेतवर्ण था और भय से प्रतिक्षण में मानो मूत्र त्यागकररहा है ऐसीदशा में एक चरणसे खड़ाहोनेके कारण क्लेश पारहाथा और शूद्र के ताड़ना करनेसे थर थर कांपरहाथा २॥ वह गौ (पृथ्वी) होमके पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाली, शूद्रके लात मारनेसे दीन, वत्स रहित (धान्यादि रहित) होनेके कारण जिसके मुखपर अश्रुओंकी धारा बहरही थी और जो यज्ञका लोप होनेसे दुर्बल होकर तृणकी इच्छा कररही थी ॥ ३ ॥ ऐसा तिन दोनों को देखकर सुवर्णजटित रथमें बैठाहुआ वह राजा परीक्षित, अपने धनुषको चढ़ाकर मेघ समान गम्भीर वाणी करके तिन शूद्रादि से बूझने लगा ॥ ४ ॥ अरे दुष्ट ! तू कौन है ? यह कैसा अनर्थ है कि-तू मुझ रक्षकके होतेहुए बलात्कारसे इस दुर्बलको ताड़ना कररहा है, यदि कहे कि-मैं राजाहूँ सो तू केवल नटकी समान वेषमात्र से राजाप्रतीत होता है परन्तु तेरे कर्म निःसन्देह शूद्रोंकेसे हैं ॥५॥ अरे ! गाण्डीवधनुधारी अर्जुनसहित श्रीकृष्ण

गते दूरं सह गांडीवधन्वना ॥ शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन्वधमर्हसि ॥ ॥ ६ ॥ त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ॥ वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन् ॥ ७ ॥ न जातु पौरवेंद्राणां दोर्दंडपरिरंभिते ॥ भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन्विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८ ॥ मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद्भयं ॥ मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९ ॥ यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यंते साध्व्यसाधुभिः ॥ तस्य मत्तस्य नश्यंति कीर्त्तिरायुर्भगो गतिः ॥ १० ॥ एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्त्तानामार्तिनिग्रहः ॥ अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमं ॥ ११ ॥ कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद ॥ मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्त्तिनां ॥ १२ ॥ आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसां ॥ आत्मवैरूप्यकर्त्तारं पार्थानां कीर्त्तिदूषणं ॥ १३ ॥ जनेऽनागस्यघं युंजन्सर्वतोऽस्य च मद्भयं ॥ साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥ १४ ॥ अनागःस्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरंकुशः ॥ आहर्त्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि सांगदं ॥ १५ ॥ राज्ञो

के यहांसे दूर चलेजानेपर, निरपराधी प्राणियों के ऊपर एकान्तमें प्रहार करनेवाला तू कौन है ? ॥ ६ ॥ तू कमलके कन्दकी समान स्वेत वर्ण और तीन चरणोंसे रहित होकर एक चरणसे लँगड़ार कर चलनेवाला तू कोई देवता वृषभके स्वरूपमें मेरे अन्तःकरणको खेद देरहा है क्या ? ॥ ७ ॥ क्योंकि–पुरुकुलके श्रेष्ठ राजाओं के भुजदण्डों से रक्षित इस भूतलपर, तेरे सिवाय दूसरे किसीभी प्राणीके शोकके आँसू कभीभी नहीं गिरे ॥ ८ ॥ हे कामधेनुके पुत्र ! तू शोक न कर, शूद्रसे तुझको प्राप्तहुआ भय दूरहो, हे मातः ! मुझ दुष्टोंको दण्ड देनेवाले के जीतेहुए तेरा कल्याणही है, अतः रुदन न कर ॥ ९ ॥ हे साध्वि ! जिस राजाके देशमें निरपराधी प्रजाओंको दुष्ट लोकोंसे भय होता है तिस असावधान राजाकी कीर्त्ति, आयु, भाग्य और परलोक, यह सब नष्ट होजाते हैं ॥ १० ॥ अतः अपने राज्यमें पीड़ा पानेवाले सज्जनोंकी व्यथाको दूर करना, यहही राजाका मुख्य धर्म है इसकारण प्राणियोंको पीड़ा देनेवाले इस दुष्टका मैं वध करता हूँ ॥ ११ ॥ हे चारचरण वाले कामधेनुके पुत्र ! तेरे तीन चरण किसने काटदिये ? क्योंकि–कृष्णके सेवक जो राजा तिनके राज्यमें तुझसे दुःखी प्राणी नहीं होते थे ॥ १२ ॥ हे वृषभ ! तुझसे निरपराधी प्राणियों का कल्याणहो, तेरे स्वरूपको विरूप करनेवाला और पाण्डवों की कीर्त्तिमें दूषण लगानेवाला कौन पुरुष है, मुझे उसका नाम बता ? ॥ १३ ॥ जो निरपराधी सज्जनों को दुःख देता है, उसको सबप्रकार मुझसे भयहोता है, अतः मेरेदुष्टों को दण्ड देनेपर तुमसाधुओंका कल्याणही होगा ॥ १४ ॥ जोनिर्भय होकर निरपराध प्राणियोंको पीड़ादेताहै वह साक्षात् देवताहोतोभी मैं उसके बाजूबन्द सहित भुजाको उखाड़ कर लेआताहूँ ॥ १५ ॥ इसलोकमें आपदाकालके विनाहीं वेदमार्गका उल्लंघन करनेवाले

हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनं ॥ शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥ १६ ॥ धर्म उवाच ॥ एतद्वः पाण्डवेयानां युक्तमार्त्ताभयं वचः ॥ येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ॥ १७ ॥ न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ॥ पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥१८॥ केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ॥ दैवमन्येऽपरे कर्म स्वभावमपरे प्रभुं ॥ १९ ॥ अप्रतर्क्याद्निर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ॥ अत्रानुरूपं राजर्षे विमृशस्व मनीषया ॥२०॥ एवं धर्मे प्रवदति स सम्राद् द्विजसत्तम ॥ समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम्

अधर्मियोंको शास्त्रानुकूल दण्डदेकर धार्मिक सज्जनोंका निरन्तर पालनकरनाही राजाका मुख्यधर्महै ॥ १६ ॥ धर्मबोलाकि—हेराजन् ! जिनपाण्डवोंके गुणोंके समूहोंसे भगवान् श्री कृष्णभी दूतआदिबने, तिनपाण्डवोंके वंशमें उत्पन्न होनेवाले तुम्हारा यहकहना योग्यही है कि—मैं भयभीत पुरुषोंका भयदूरकरताहूँ ॥ १७ ॥ परन्तु हेराजन् ! जिसपुरुषसे इस समय प्राणीमात्रको क्लेशहोरहाहै उसको हमनहीं जानते, क्योंकि हम अनेकों मतधारी पुरुषोंके भिन्न २ प्रकारके वाक्योंसे मोहित होरहेहैं ॥१८॥ विकल्पवसन कहिये सकलभेदों को अपने ज्ञानसे आच्छादित करनेवाले योगीजन आत्माकोही अपने सुखदुःखका कारण+ कहतेहैं.अथवा विकल्पवसन * कहिये कुतर्की नास्तिक ऐसाकहतेहैंकि—कोई दैव सुख दुःखका प्रेरक नहींहै, क्योंकि— सुख दुःख कर्माधीनहैं और कर्मभी सुखदुःख नहींदेताहै, क्योंकि—वहप्राणीके अधीन और जड़है अतः प्राणी आपही सुखदुःखका देनेवाला प्रभुहै दूसराकोई नहींहै, ज्योतिषी दैवकहिये ग्रहादिरूप देवताओंको सुखदुःखकादाता कहतेहैं, मीमांसक कर्मको सुखदुःखका दाता कहतेहैं और प्रत्यक्षवादी चार्वाक स्वभाव कोही सुख दुःखका दाता कहतेहैं ॥१९॥ और जहां मनकी तर्कना नहीं चलती तथा जिसका वाणीसे वर्णन नहीं होसकता तिस परमेश्वरसेही जगत के उत्पत्ति पालन और प्रलय होते हैं ऐसा कितनोंहीं का निश्चय है, सो हेराजर्षे ! इन अनेकों मतोंमें कौन मत योग्यहै, इसका तुम अपनी बुद्धिसे निश्चय करलो ॥२०॥ ऐसा धर्मके कहने पर, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ शौनक ! वह सार्वभौम राजा परीक्षित,एकाग्रचित्तसे तिसधर्मके कथनका तत्त्व जानकर खेदरहितसा होता-

---

+ कहाभीहै "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन." अर्थात् आत्माही अपना बन्धुहै और आत्माही अपना शत्रु है।

* विकल्पं भेदं वसत आच्छादयन्तीति विकल्पवसना योगिनः । यद्वा विकल्पः कुतर्क एव वसनमावरणं येषां ते विकल्प वसना नास्तिकाः । समासके भेदसे विकल्पवसन नाम योगी और कुतर्कीनास्तिक इन दोनोंका है।

॥२१॥ धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ॥ यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥ अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ॥ चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः॥२३॥तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः॥ अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसंगमदैस्तव ॥२४॥इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ॥ तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥ २५॥ इयं च भूमिर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ॥ श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका२६॥ शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताधुना ॥ अब्रह्मण्यनृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यंति मामिति ॥ २७ ॥ इति धर्मं महीं चैव सांत्वयित्वा महारथः ॥ निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥ २८ ॥ तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलांछनं ॥ तत्पादमूलं शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥ २९ ॥ पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृ-

हुआ तिससे बोला ।।२१।।राजाने बूझा कि–हे धर्मज्ञ वृषभ ! तूने,जानकरभी अनिश्चित से वाक्य से, 'अपने घातकी पुरुष को नहीं बतावै' इस, अभिप्राय के अनुसार भाषण किया है, इससे वृषभरूप को धारण करनेवाला तू धर्म ही है क्योंकि—अधर्मी को जो नरक आदि प्राप्त होते हैं वहही उसके सूचक (बतानेवाले) को भी प्राप्त होते हैं२२॥ अथवा देवमाया की गति न प्राणीके ध्यान में आसक्ती है और न प्राणी उसको कह सक्ता है यह निश्चित है, इसकारणभी यह तुम न कहसके कि–मुझे दुःख देनेवालाअमुक है ।।२३।। तप, शौच (देह और अन्तःकरणकी शुद्धि),दया और सत्य यह तुम्हारे चार चरण लोक में प्रसिद्ध हैं, उनमें से तप, शौच और दया यह तीन चरण, अधर्म के स्मय (विस्मय), सङ्ग (दुःसङ्ग), और मद (गर्व) इन तीन अंशोंसे क्रमशः कटगये हैं ॥ २४ ॥ हे धर्म ! इस कलिकाल में तेरा एक सत्यरूप चरण रहाहै,तिस से ही पुरुष किसीप्रकार तेरा साधन करते हैं सो इस तेरे चरण को भी मिथ्याभाषण से बढ़ाहुआ यह अधर्मरूप कलि नष्ट करना चाहता है ॥ २५ ॥ और जिसका बड़ाभारी भार भगवान् ने दूर किया है ऐसी यह गोरूपधारिणी पृथ्वी,तिन भगवान्के ध्वजाअंकुशादि के चिन्ह वाले चरणोंके स्पर्शोंसे सर्वत्र शोभा पातीथी ॥ २६॥ वही साध्वी पृथ्वी श्रीकृष्णरहित होने से, पतिके वियोगवाली मन्दभाग्य स्त्री की समान शोभाहीन होकर आगेको शूद्र, ब्राह्मणों की भक्ति से शून्य और राजा का वेप धारकर मुझे भोगेंगे, ऐसा विचारकर नेत्रों से अश्रु बहाती हुई रुदन कररही है ॥ २७ ॥ इसप्रकार धर्म और पृथ्वी को समझाकर महारथी परीक्षितने अधर्मके कारणरूप कलिका वध करने को तीक्ष्णधार वाला खड्ग ग्रहण किया ॥ २८ ॥ यह जानकर कि राजा मेरे मारने को उद्यत हुआहै, वह कलि, राजाचिन्हों को त्यागकर भयसे व्याकुल होताहुआ तिन परीक्षित के चरणके अग्रभागपर मस्तक रखकर शरण आया ॥ २९ ॥ अपने चरणों में पड़ाहुआ देख कर

पया दीनवत्सलः ॥ शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥ ३० ॥
राजोवाच ॥ न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किंचित् ॥ न
वर्तितव्यं भवता कथंचन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥ ३१ ॥ त्वां वर्त्तमानं
नरदेवदेहेष्वनु प्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ॥ लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठा च
माया कलहश्च दम्भः ॥ ३२ ॥ न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्ति-
तव्ये ॥ ब्रह्मावर्त्ते यत्र यजन्ति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥ ३३ ॥ यस्मि-
न्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्त्तिर्यजतां शं तनोति ॥ कामानमोघान् स्थिरज-
ङ्गमानामन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितैवमादिष्टः
स कलिर्जातवेपथुः ॥ तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥ ३५ ॥ यत्र
क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ॥ लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ।
॥ ३६ ॥ तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ॥ यत्रैव नियतो वत्स्ये आ-
तिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये

दीनवत्सल शरणागतरक्षक कीर्त्तिमान् राजा परीक्षितने दया करके उसका वध नहींकिया और हँसते हुएऐसे कहने लगे ॥ ३० ॥ राजाबोले कि-रेशूद्र ! हाथ जोड़कर खड़ेहुए तुझको अर्जुन के यशकी रक्षा करनेवाले हम राजाओं से कुछ भय नहीं होगा परन्तु तू अधर्मका बन्धु है अतः अपने किसीभी अंश से मेरे राज्य में न विचरना ॥ ३१ ॥ तूने राजाओं के शरीर में प्रवेश किया कि तत्काल तेरे अनुकूल,लोभ,असत्य,चोरी,दुर्जनता, स्वधर्मत्याग, अलक्ष्मी, कपट कलह और दम्भ (ढोंगबनाना)यह अधर्मकी शाखाओं का समूह चारों ओर फैलता है, तिस अधर्मी राजाके सम्बन्ध से प्रजाभी धर्मभ्रष्ट होजाती है ॥ ३२ ॥ अतः हे अधर्मके बन्धू ! धर्म और सत्य के वर्त्तावयोग्य इस ब्रह्मावर्त्त देश में तू वर्त्ताव न कर, क्योंकि-इस देश में यज्ञ करने में प्रवीण ब्राह्मणादि वर्ण, अनेकों यज्ञों से यज्ञमूर्त्ति भगवान् का पूजन करते हैं ॥ ३३ ॥ जिस ब्रह्मावर्त्त देश में यज्ञों से पूजित, चराचर जगत् के आत्मा यज्ञमूर्त्ति भगवान् श्रीहरि,सदा भीतर बाहर व्याप्त रहने वाले वायु की समान सर्वान्तर्यामी ईश्वर होकरभी यज्ञ करनेवालों के कल्याण और उन के मनोरथों को सफल करते हैं ॥ ३४ ॥ सूतजीबोले कि-इसप्रकार राजा परीक्षितका आज्ञा दियाहुआ वह कलि, थर २ कांपनेलगा और दण्डपाणि यमकी समान हाथ में खड्ग लेकर वध करने को उद्यत हुए राजा परीक्षित से इसप्रकार कहने लगा ॥ ३५ ॥ कलिबोलाकि-हे सार्वभौम ! मैं तुम्हारी आज्ञानुसार जहां कहोगे तहां रहूँगा परन्तु जहां२ मैं जाताहूँ तहां २ ही मेरे वधके लिये हाथमें धनुषबाण लिये हुए तुम मुझे दीखतेहो ३६ इसकारण हे धर्मपालकों में श्रेष्ठ ! तुमको मुझे वह स्थान बताना उचितहै कि-जहाँ मैं तुम्हारी आज्ञा के अनुसार निश्चलता से बसूँ ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि-हे ऋषियों ! कलियुग के

ये ददौ ॥ द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः॥३८॥ पुनश्च याचमानाय जात रूपमदात्प्रभुः ॥ ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पंचमम् ॥ ३९ ॥ अमूनि पंच स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ॥औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥ ॥ ४० ॥ अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ॥विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥ ४१ ॥ वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति ॥ प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥ ४२ ॥ स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितं ॥ पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ॥ ४३ ॥ आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् ॥ गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४४ ॥ इत्थंभूतानुभावोयमभिमन्युसुतो नृपः ॥ यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४५ ॥इतिश्रीभा० प्र० कलिनिग्रहोनाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥ ७॥ सूत उवाच ॥ यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः॥अनुग्रहाद्भगवतः कृष्ण-

ऐसी प्रार्थना करनेपर परीक्षितने उसको, जहाँ क्रमसे असत्य, मद, काम और क्रूरता का वासहै ऐसे द्यूत, मद्यपान स्त्रीसङ्ग और हिंसा यह चार स्थान दिये ॥ ३८ ॥ फिरभी चारोंप्रकारके अधर्मकी जहाँ एकसाथ स्थिति हो ऐसास्थान मुझे दो; ऐसी कलियुग के प्रार्थना करनेपर राजाने उसको ऐसा स्थान सुवर्ण दिया, क्योंकि तिससुवर्ण से असत्य, मद, काम, क्रूरता और पाँचवां वैरभाव भी उत्पन्न होता है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार अधर्मसे उत्पन्न होनेवाला कलियुग, उत्तरानन्दन राजा परीक्षित के दियेहुए द्यूत आदि पांचस्थानो में, उन परीक्षितकी आज्ञा शिरपर धारणकरके, रहनेलगा ॥ ४० ॥ अतः आगेको अपनी उन्नति चाहनेवाला पुरुष, पूर्वोक्त सुवर्ण आदि पाँच विषयोंका भोग असक्तिसे कदापि न करे,तथा अपने वर्त्तावके अनुसार प्रजाको शिक्षा देनेवाला धर्मशील राजा और लोकरक्षक गुरु तो विशेषकरके, इनके सेवन से बचे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार परीक्षितने वृषभके नष्टहुए तप, शौच और दयारूप तीनचरण फिर जोड़दिये तथा पृथ्वीकेभी शोकको दूरकरके उसकी उन्नति करी ॥ ४२ ॥ हे ऋषियों ! वह राजा परीक्षित, वनको जानेकी इच्छा करनेवाले पितामह (दादा) युधिष्ठिरके दियेहुए राजसिंहासनपर अबतक विराजमान हैं ॥ ४३ ॥ युधिष्ठिरादिकी सम्पत्तिसे शोभायमान, महाकीर्त्तिमान् और परम भाग्यवान् वह सार्वभौम राजा परीक्षित, इससमय हस्तिनापुरमें निवास करते हैं ॥ ४४ ॥ यह अभिमन्युका पुत्र राजा परीक्षित ऐसा प्रभावशाली है कि–जिसके समुद्र पर्यंत पृथ्वीका पालन करतेहुए तुमने सहस्रवर्ष में पूर्ण होनेवाले सत्रनामक यज्ञ के करनेकी दीक्षा ग्रहण करी है ॥ ४५ ॥ प्रथमस्कंध में सप्तदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी बोले कि वह राजापरीक्षित, जब अपनी माताके गर्भ में था,उससमय,अश्वत्थामा के छोड़े ब्रह्मास्त्रसे भस्मसा होताहुआ भी अ-

स्याद्भुतकर्मणः ॥ १ ॥ ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् न संमुमोहो-रुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥२॥ उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः ॥ वैयासकेर्जहौ शिष्यो गंगायां स्वं कलेवरम् ॥ ३ ॥ नोत्तमश्लोकवार्त्तानां जुषतां तत्कथामृतम् ॥ स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेपि स्मरतां तत्पदाम्बुजं ॥ ४ ॥ तावत्कलिर्न प्रभवेत्प्रविष्टोऽपीह सर्वतः ॥ यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥ यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ॥ तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥६॥ नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारंग इव सारभुक् ॥ कुशलान्याशु सिद्ध्यंति नेतराणि कृतानि यत् ॥ ७ ॥ किंनु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा ॥ अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्त्तते ॥ ८ ॥ उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया ॥ वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥ ९ ॥ या याः

द्भुतकर्म करनेवाले श्रीकृष्णके अनुग्रह से नष्ट नहीं हुआ ॥ १ ॥ और जिसने अपना चित्त प्रेम के साथ भगवान् के विषैं लगायाथा, इस कारण ही जो ब्राह्मण के क्रोध से उठेहुए तक्षकरूपी प्राणनाशक भय से लेशमात्र भी खिन्न नहीं हुआ ॥ २ ॥ वहराजा सकल सङ्गोंको त्यागकर व्यासपुत्र शुकदेवजीका शिष्य हुआ और उनसे अजित भगवान् के स्वरूपको जानकर उसने गङ्गामें अपने शरीरका त्यागकरा ॥ ३ ॥ यहकुछ आश्चर्यकी बातनहींहै क्योंकि—उत्तमकीर्ति भगवान्‌की वार्ता में आसक्त होनेके कारण श्री कृष्णकी कथारूप अमृतका सेवन करनेवाले और उनके चरणकमलोंका ध्यान करनेवाले सत्पुरुषोंको अन्तकालमेंभी सम्भ्रम (बुद्धिकी विपरीतता) नहींहोताहै ॥ ४ ॥ वह अभिमन्युके पुत्र महासार्वभौम राजा परीक्षित, जबतक पृथ्वीका पालन करतेरहे तबतक, कलियुग सब स्थानमें प्रवृत्तहोकरभी अपनी प्रभुता न चलासका ॥५॥ क्योंकि—जिसदिन और जिस समय श्रीकृष्ण भगवान् पृथ्वीको त्यागकर निजधामको गये उसही समय यह अधर्मको उत्पन्न करनेवाला कलियुग पृथ्वीपर प्रवृत्त होगयाथा ॥ ६ ॥ परीक्षितने जो उसका वध नहीं करा इसमें कारणतो इतनाहीहैकि—जैसे भ्रमर पुष्पों मेंसे सारभूत रसको ग्रहणकरता है तैसेही, राजा परीक्षित सारग्राहीथे, अतः उन्होने कलियुगसे अधिक द्वेषनहींकिया सार यहहैकि—जिसकलियुगमें पुण्यकर्म सङ्कल्पमात्र से फलदेते हैं औरपाप प्रत्यक्ष करनेपरही फलदेतेहैं संकल्पमात्रसे फलनहींदेते ॥ ७ ॥ और जोकलि, असावधान पुरुषोंके विषैं सावधानीसे भेड़ियेकी समान विचरताहै तिस,केवलअधीर पुरुषोंके विषैंही शूरता दिखानेवाले परन्तु धैर्यवान् पुरुषोंका भयमाननेवाले कलियुगसे क्याहोसक्ताहै ? ऐसा मनमें विचारकर राजाने उससे द्रोहनहींकिया ॥ ८ ॥ हेऋषियो ! तुमने जो श्रीकृष्ण की कथायुक्त राजा परीक्षितका वृत्तान्त मुझसे बूझाथा वह पुण्य कथा मैंने तुम्हें सुनाई ॥ ९ ॥

कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ॥ गुणकर्माश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ॥ यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥ ११ ॥ कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ॥ आपाययति गोविंदपादपद्मासवं मधु ॥ १२ ॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवं ॥ भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ १३ ॥ को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ नांतं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ॥ १४ ॥ तन्नो भवान्वै भगवत्प्रधानो महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ हरेरुदारं चरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥ १५ ॥ स वै महाभागवतः परीक्षिद्येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः । ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन भेजे खगेंद्रध्वजपादमूलम् ॥ १६ ॥ तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठं ॥ आख्याह्यनंताचरितोपपन्नं पारीक्षितं

जिनके अनेकों चरित्र वर्णनकरनेके योग्यहैं तिन भगवान् के गुण और कर्मोंसे प्रवृत्तहुई जो २ कथा वेदशास्त्रादिमें प्रसिद्धहैं उन २ कथाओंका अपना हितचाहनेवाले पुरुषोंको अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ १० ॥ अतः हेसौम्य सूतजी ! तुम, मरण से भयभीत होनेवाले हमको,श्रीकृष्णजीका अमृततुल्य स्वच्छयश सुनाते हो अथवा इस यज्ञकर्ममें वहुधा वैगुण्य होनेके कारण फलप्राप्तिका विश्वास नहीं और हमारेशरीर हवनके धुएँसे धुमैले होरहेहैं ऐसे हमको तुम, श्रीकृष्ण के चरणकमल सम्बन्धी अपूर्वरसरूप मधुरकथामृतका पान करातेहो अतः तुम्हारी असंख्य वर्षों की आयु हो ॥ ११ ॥ विष्णुभक्तों के साथ समागम होने के वहुत थोड़े से काल के साथभी हम, स्वर्ग वा मोक्ष की तुलना नहीं करसक्ते, फिर उससे, मृत्युग्रस्त मनुष्य की राज्यादि सम्पत्तिकी समता नहीं है इसका तो कहनाही क्या?॥१३॥हेसूतजी ! अतिश्रेष्ठ ब्रह्मादिकोंके भी मुख्य आश्रय जो श्रीहरि तिनकी कथासे कौनसा रसका जाननेवाला पुरुष तृप्त होसक्ता है ? अर्थात्कोई तृप्त नहीं होसक्ता, क्योंकि जो योगियों में श्रेष्ठ महादेवजी ब्रह्माजी आदि हैं उनको भी निर्गुण परमेश्वरके गुणोंका अन्त नहीं मिला, सो जिस२ने जितना २ भगवान्का वर्णनकरा उतना २ ही उसको और श्रोताओं को नवीन २ प्रतीत हुआ उससे तृप्ति किसीकी भी नहीं हुई ॥१४॥ सो हे ज्ञानवान् सूतजी ! हमारी सकल मण्डलीमें तुम वड़े भगवद्भक्त हो, अतः सुनने की इच्छा करनेवाले हमको, महाश्रेष्ठ और योगियों के आश्रय जो श्रीकृष्ण तिनके उत्तम और निर्मल चरित्रों को विस्तारपूर्वक सुनाओ ॥ १५ ॥ तिन परमबुद्धिमान् महाभागवत राजा परीक्षितने, व्यासपुत्र शुकदेवजीके कहेहुए जिसज्ञान से मोक्षनामक भगवान् के चरणमूल की सेवा करी ॥ १६ ॥ वह परमपवित्र, आश्चर्य-

भागवताभिरामम् ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धा-
नुवृत्त्यापि विलोमजाताः ॥ दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधा-
नयोगः ॥ १८ ॥ कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ योऽनं-
तशक्तिर्भगवाननंतो महद्गुणत्वाद्यमनंतमाहुः ॥ १९ ॥ एतावतालं ननु सूचि-
तेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ॥ हित्वेतरान्प्रार्थयतो विभूतिर्यस्यांघ्रिरेणुं जु-
षतेऽनभीप्सोः ॥ २० ॥ अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिंचोपहृतार्हणांभः ॥
सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुंदात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥ २१ ॥ यत्रानुरक्ताः
सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु संगमूढं ॥ व्रजंति तत्पारमहंस्यमंत्यं यस्मिन्न-
हिंसोपशमः स्वधर्मः ॥ २२ ॥ अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष आत्मावगमो-

कारी, योगनिष्ठासे युक्त, अनन्त भगवान् के चरित्रों से सम्पन्न और भगवद्भक्तोंका अति प्रिय, श्रीशुकदेवजी का परीक्षित राजाके अर्थ वर्णन कराहुआ श्रीमद्भागवतरूप आख्यान स्पष्टरीति से हमें सुनाओ ॥ १७ ॥ सूतजी बोले—अहो ! प्रतिलोमजातिवाला (क्षत्रिय से ब्राह्मणी के विषैं उत्पन्न हुआ) भी मैं, तुम्हारे आदर करनेसे और शुकदेवजीकीसेवा से सफलजन्म हूँ, क्योंकि तुमसमान अतिश्रेष्ठ पुरुषों से लौकिक सम्भाषण का सम्बन्ध हुआ तो वह दुष्टकुल में हुई उत्पत्ति के कारण से होनेवाले मनमेंके दुःखका शीघ्रनाश करता है ॥ १८ ॥ फिर बड़े २ साधुओं के भी जो मुख्य आश्रय तिन परमात्मा का नामसङ्कीर्त्तन करनेवाले पुरुषके हीनकुलसम्बंधी मानसिक दुःख को, सत्पुरुषोंके साथ होने वाला भगवत्कथा सम्बन्धी प्रश्नोत्तररूप सम्बन्ध दूरकरदेताहै इसमें आश्चर्यहीक्याहै? जो भगवान् स्वरूपसे अन्तरहित होकर भी अनन्तशक्तियों से युक्त हैं और जिनके बहुत से गुण ब्रह्माजी आदि के विषैं विद्यमानहैं अतएव तिन नारायण को सकलशास्त्रोंमें अनंत नामसे कहा है ॥ १९ ॥ गुणो में श्रीनारायण की समान कोई नहींहै, फिर कोई अधिक नहीं है यहतो स्वयंही सिद्ध होगया. इस विषय में इतनाही कहना बहुत है कि—साक्षात् महालक्ष्मी, अपने प्रसादकी प्रार्थना करनेवाले ब्रह्मादिकोंको छोड़कर, अपनी इच्छा न करनेवालेभी जिन भगवान्के चरणरज की सेवा करती है, इससे तिन हरिके अनन्त गुणोंका अनुमान करलेना चाहिये ॥ २० ॥ तथा जिनके चरणके अँगूठे के नखसे निकलाहुआ, श्रीवामनजीकी पूजा करने के निमित्त ब्रह्माजीका समर्पण कराहुआ विष्णुपादोदक, लोकपालों सहित सकल जगत्को पवित्र करता है अतः भगवान् पदका 'षड्गुण ऐश्वर्य सम्पन्न' यह अर्थ इसलोकमें नारायणके सिवाय और किसमें घटसक्ता है ? ॥ २१ ॥ जिन नारायणके विषैं प्रेमभावपूर्वक आसक्त हुए विवेकी पुरुष, इन्द्रियोंको जीतकर और देहादि में दृढ़हुई आसक्तिको एकसाथ त्यागकर, जहाँ अहिंसा और शान्तता यह दोनों स्वाभाविक धर्म हैं ऐसे अन्तके परमहंस पदको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ हे सूर्यकी समान तेजस्वी

ऽत्र यावान् ॥ नभः पतंत्यात्मसमं पतत्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः॥२३॥ एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वने ॥ मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥ २४ ॥ जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमं ॥ ददर्श मुनिमासीनं शांतं मीलितलोचनम् ॥ २५ ॥ प्रतिरुद्धेंद्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतं । स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥२६॥ विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ॥ विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥ २७ ॥ अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्घसूनृतः ॥ अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह॥२८अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः॥ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च॥२९स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत्॥३०॥एष किं निभृताशेषकरणो

ऋषियों ! तुमने मुझसे भगवत्कथाके विषयका प्रश्नकरा है, सो मैं अपनी बुद्धि अनुसार तुम्हें भगवान् का माहात्म्य सुनाता हूँ, क्योंकि–जैसे सकल पक्षी अपनी २ शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ते हैं तैसेही ब्रह्मादि सकल ज्ञानीभी भगवान्की लीलाओंका यथाशक्ति वर्णन करते हैं ॥२३॥ एकसमय राजा परीक्षित,धनुष चढ़ाकर मृगया (शिकार) के निमित्त वनमें विचररहे थे उससमय मृगादि पशुओं के पीछे अधिक देरीतक फिरनेसे थगकये और अत्यन्त क्षुधा एवं तृषाने आघेरा ॥ २४ ॥ उस वनमें कोई जलका स्थान न देखकर वह राजा परीक्षित, एक प्रसिद्ध आश्रममें गये, तहां उन्होंने नेत्रमूंदे शान्तरूपसे विराजमान शमीक नामक मुनिको देखा ॥ २५ ॥ उन मुनिने दशों इन्द्रिय, पांचों प्राण, मन और बुद्धि इन सबको विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करलिया था और वह देहके व्यापारों से विरतहो, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंसे पर तुरीय (चौथे) पदको पाकर ब्रह्मभूत होनेके कारण विकारशून्य होगये थे ॥ २६ ॥ और बिखरीहुई जटा तथा कृष्ण मृगछालासे चारोंओर ढकेहुए थे, उस दशामें बैठेहुए ऋषिके पासजाकर प्यास से जिनका तालु सूखगया है ऐसे राजा ने जल मांगा ॥ २७ ॥ तिन मुनि से तृणों का आसन,बैठनेको स्थान,अर्घ और प्रियभाषणादि कुछ न मिलने से,मुझे इसऋषिने जानकरभी अनजानासा करके टालदिया, ऐसा समझकर वहराजाक्रुद्ध हुआ ॥ २८ ॥ तव हे शौनक ! भूँख और प्यास से व्याकुलहुए तिस राजापरीक्षित को, ब्राह्मण के ऊपर जो पहिले कदापि नहीं हुआथा ऐसा मत्सर (दूसरेकी उन्नति कौन सहना) और क्रोध उत्पन्न हुआ २९॥ तव क्रोधके कारण आश्रममेंसे निकलकर जातेहुए राजापरीक्षितने एक मराहुआ सर्प, धनुषके अग्रभागसे उठाकर तिनब्रह्मर्षि के कन्धेपर रखदिया और हस्तिनापुरको लौटगये ॥३०॥उससमय राजाका यह अभिप्रायथा कि-यह ऋषि अपनी सबइन्द्रियों को विषयोंसे हटाकर वास्तविक समाधिमें स्थितहैं अथवा क्षत्रिय आवें या जायँ उनसे हमारा कौनलाभहै?

मीलितेक्षणः ॥ मृषासमाधिरोहोस्वित्किन्नु स्यात्क्षत्रबंधुभिः ॥ ३१ ॥ तस्य पुत्रो-ऽतितेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः ॥ राज्ञाघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ अहो अधर्मः पालानां पीव्नां बलिभुजामिव ॥ स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रबंधुर्हि द्वारपालो निरूपित. ॥ स कथं तद्गृहे द्वास्थः सभांडं भोक्तुमर्हति ॥ ३४ ॥ कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनां ॥ तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलं ॥३५॥ इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् ॥ कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्जह ॥३६॥ इति लंघितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ॥ दंक्ष्यतिस्म कुलांगारं चोदितो मे ततद्रुहं ॥ ३७॥ ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो गले सर्पकलेवरं ॥ पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकंठो रुरोदह ॥ ३८ ॥ स वा आंगिरसो ब्रह्मन् श्रुत्वा सुतविलापनं ॥ उन्मील्य शनैः नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगं ॥ ३९ ॥ विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रो-

ऐसा समझकर मिथ्या(बनावटी) समाधिसे बैठे हैं?इसकी परीक्षा करूँ ॥३१॥ उन ऋषिका शृङ्गीनामक अतितेजस्वी बालक पुत्र,समान अवस्थावाले ऋषियोंके बालकोंके साथ आश्रम से बाहर खेलरहाथा,तहां उसने,मेरे पिताके कन्धेपर राजाने सर्प रखकर अपराध किया है ऐसा सुनकर उनबालकों के मध्यमें ही यह कहा कि-॥३२॥ मित्रों ! देखो यह, ऐश्वर्य आदि से पुष्टहुए राजाओंका कैसा अधर्म है? दासको,बलिभक्षण करनेवाले काककी समान अथवा द्वाररक्षक स्वानकी समान, अपने स्वामी के विषय में पापाचरणकरना कितना अन्याय है ॥ ३३ ॥ क्योंकि-ब्राह्मणों ने क्षत्रिय को अपना द्वारपाल नियत किया है, वह द्वारपाल स्वामी के घरमें के पात्रमेंकी वस्तुका भोगकरने को कैसे योग्य होसक्ता है ॥ ३४ ॥ अन्यायमार्ग से चलनेवालों को दण्डदेनेवाले श्रीकृष्ण निजधाम को पधारगये अतः यह राजे अब अपनी मर्यादाका उल्लंघन करते हैं सो आज मैं उनको शिक्षा देताहूँ मेरा पराक्रम देखो ॥ ३५ ॥ क्रोधसे लाल २ नेत्र करेहुए तिस शमीक ऋषिकेपुत्र शृङ्गीने अपनेसमान अवस्थावाले ऋषिपुत्रों से ऐसा कहकर कौशिकी नदीके जलका आचमनकर राजाके ऊपर वाणीरूप वज्र छोड़ा अर्थात् शाप दिया ॥ ३६ ॥ मराहुआ सर्प कन्धेपर रखकर मेरे पिता से द्रोह करनेवाले और लोकमर्यादाको लांघनेवाले कुलांगार को मेरी प्रेरणासे तक्षकसर्प आजसे सातवेंदिन डसेगा ॥ ३७ ॥ फिर वह बालक आश्रममें आकर पिताके कण्ठमें मृतसर्पका शरीर देखकर दुःखसे पीडित होताहुआ, कण्ठ खोलकर ऊँचे स्वरसे रोनेलगा ॥३८॥ हेशौनक ! तिन आङ्गिरस गोत्रमें उत्पन्नहुए शमीकऋषि ने पुत्र का विलापयुक्त रुदन सुनकर समाधिको त्यागा और धीरे २ नेत्र खोलकर अपने कन्धे पै मराहुआ सर्प देखा ॥ ३९ ॥ तत्काल उसको उतारके फैंककर पुत्रसे कहाकि-हेवत्स !

दिषि ॥ केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥ ४० ॥ निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनंदत् ॥ अहो बतांहो महदद्य ते कृतं स्वल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥ ४१ ॥ न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ॥ यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विंदंति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥ ॥ ४२ ॥ अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथांगपाणावयमंग लोकः ॥ तदा हि चोरप्रचुरो विनंक्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥ ४३ ॥ तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुंपकात् ॥ परस्परं घ्नंति शपंति वृंजते पशून् स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवो जनाः ॥ ४४ ॥ तदार्यधर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ॥ ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः ॥ ॥ ४५ ॥ धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः ॥ साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ॥ क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ॥ ४६ ॥ अ-

तू क्यों रोरहा है? किसीने तेरा अपकार कियाहै क्या? ऐसाबूझनेपर, तिसपुत्रने सववृत्तांत कह सुनाया ॥ ४० ॥ तव शापके अयोग्य राजापरीक्षितको पुत्रने शापदिया है ऐसा सुनकर तिन ब्राह्मण ने अपने पुत्रकी सराहना नहीं करी किन्तु यह कहाकि—अरेमूर्ख! तूने यह बड़ा पापकरा कि—बहुतथोड़े अपराधमें राजाको बड़ाभारी दण्डदिया ॥ ४१ ॥ अरे कच्चीमतिवाले! विष्णुनामसे प्रसिद्धजो राजा उसकोसाधारण मनुष्यकीसमान न मानना चाहिये क्योंकि—राजाके दुःसह तेजसे रक्षितहुई सकलप्रजा निर्भय होकर अनेकोंप्रकार के सुखपाती है ॥ ४२ ॥ हेपुत्र! राजा, साक्षात् चक्रपाणि विष्णुही होताहै वह यदि भूमिपर न होयतो किसीसे भी रक्षा न कराहुआ यहलोक, अनेकों चोरोंसे व्याप्त होकर, स्वामी के रक्षा न करेहुए भेड़ों के समूह की समान तत्काल नष्ट होजाय ॥ ४३ ॥ और राजाके नष्ट होनेपर लोकोंका धन हरनेवाले चोरोंसे जो पाप इस पृथ्वीपर होगा, उससे वास्तव में हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि वह पाप हमारेकारण होने से हमको प्राप्त होगा, इसलोकमें चोर अधिक होजाने से वह परस्परका वध करते हैं, कठोरभाषण करते हैं, एक दूसरे के पशु, स्त्री और अनेकों प्रकारकी वस्तुओं को छीनलेते हैं ॥ ४४ ॥ उस समय ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन तीनों वेदोंसे विहित और ब्राह्मणादि चारोंवर्णतथा ब्रह्मचर्यादि चारआश्रमोंके आचारसे युक्त जो मनुष्योंका श्रेष्ठधर्म वह नष्ट होजाताहैतदनंतर श्वान वा वानरोंकी समान केवल धन और स्त्रीसङ्गमें मनलगाकर आसक्त होनेवाले पुरुषोंका परस्पर वर्णमें सङ्कर होताहै॥ ४५ ॥ वह राजा परीक्षिततो, धर्मपालक, महाकीर्तिमान्, सार्वभौम, अश्वमेध यज्ञ करनेवाला साक्षात् परमभगवद्भक्त होनेसे राजमण्डलीमें ऋषिकीसमान अतिशांतस्वभावहै वहक्षुधा, तृषा, और थकावटसे व्याकुलथा इसकारण उससे यहअपराधबनगया तथापि वह हमारे शापका पात्र नहींथा॥ ४६ ॥ ऐसा विचारकर वहऋषि, पापदूरहोनेके निमित्त

पापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना ॥ पापं कृतं तद्भगवान्सर्वात्मा क्षंतुमर्हति ॥ ४७ ॥ तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हतापि वा ॥ नास्य तत्प्रतिकुर्वंति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥ ४८ ॥ इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः ॥ ॥ स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिंतयत् ॥ ४९ ॥ प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वंद्वेषु योजिताः ॥ न व्यथंति न हृष्यंति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥ ५० ॥ इति श्रीभाग० म० प्र० विप्रशापोपलंभनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं विचिंतयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ॥ अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १ ॥ ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ॥ तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥ २ ॥ अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ॥ दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥ ३ ॥ संचिंतयन्नित्थं-

भगवान् से प्रार्थना करतेहैंकि हेभगवन्! तुमसबके आत्माहो, अतः इसअबोध बालकके, निष्कारण तुम्हारेदासको दियेहुए शापरूप पापको क्षमा करिये॥४७॥क्योंकि—विष्णुभक्तोंका तिरस्कारकरो, उनकोधोखादो शापदो, वा उनका अपमानकरो या उनको ताड़नाकरो तबभी वह समर्थहोकरभी तिरस्कारादि करनेवालेका कुछबदलेमें अपकारनहीं करतेहैं॥४८॥ऐसापुत्र को कहकर वह शमीकऋषि पुत्रके करेहुए पापका दुःखकेसाथ पश्चात्ताप करनेलगे और परीक्षित राजाने जो स्वयं अपराध कियाथा तिसका मनमें ध्यानभी नहींकिया ॥ ४९ ॥ इसलोकमें जो साधुहैं उनको, दूसरोंसे यदिदुःखसुखादि प्राप्तहोयँ तोभीवह बहुधा तिस दुःख से पीड़ा और सुखसे हर्ष नहींमानतेहैं क्योंकि—आत्माके निर्गुण होनेके कारण वह सुख दुःखसे लिप्त नहीं होतेहैं ॥ ५० ॥ प्रथमस्कन्धमें अष्टादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ सूतजी बोलेकि—तदनन्तर वह पृथ्वीनाथ राजापरीक्षित तिस, ऋषिके कन्धेपर मृतसर्प स्थापनरूप अपने करेहुए निन्दनीय कर्मकी चिन्ताकरतेहुए खिन्नहोकर अपने से ही कहनेलगे कि—हाय! तिन गुप्ततेजस्वी निरपराधी ब्राह्मणके विषैं मैंने दुर्जनकी समान यहकैसा खोटा पापकर्मकरा ॥१॥ यह मैंने साक्षात् ईश्वरकाही तिरस्कार कराहै, अतः इसपापकामुझे निःसन्देह अपरिहार्य दुःखरूप फल प्राप्तहोगा-सो वह अनशीघ्रही 'मेरेपुत्रादि को प्राप्त न होकर' पापका प्रायश्चित्त होनेके निमित्त मुझेही प्राप्त होय, जिससेकि—मैंफिर ऐसाअपराध कदापि न करूँ ॥ २ ॥ मेरेहाथसे होनेवाले इस अपराधसे क्रुद्धहुआ ब्राह्मणकुलरूप अग्नि मेरे, राज्य, सेना और वृद्धिको प्राप्तहुएभण्डार के स्थान (खजाना) को आजही भस्म करदेय जिससेफिर, ब्राह्मण, वेदऔरगौकेविषयकी मेरे मनमें कदापि दुष्टभावना उत्पन्न न होय ३ इसप्रकार चिन्ताकरतेहुए राजा परिक्षित को शमीक ऋषि के भेजेहुये एकशिष्यने आकर

मर्थं शृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ॥ स साधु मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥ ४ ॥ अथो विहायेममभुं च लोकं विमर्शितौ हेयतया पुरस्तात् ॥ कृष्णांघ्रिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥ या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णांघ्रिरेण्वभ्यधिकांबुनेत्री ॥ पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥ इति व्यवच्छिद्य स पांडवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ॥ दध्यौ मुकुंदांघ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥ ७ ॥ तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः ॥ प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनंति संतः ॥ ८ ॥ अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरंगिराश्च ॥ पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥ ९ ॥ मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ॥ मैत्रेय और्वः कवषः कुंभयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥ ॥ १० ॥ अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ॥ नानार्षेयप्रव-

---

सूचितकिया कि—हेराजन्! शमीक ऋषिके पुत्रने तुम्हें शापदियाहै कि—आजसे सातवेंदिन तक्षकसे तुम्हारा मृत्युहोगी, ऐसाकहकर वहशिष्यचलागया तब, मुझ विषयासक्तकोयहशाप वैराग्यहोनेका कारणहै, ऐसासमझकर राजाने तिसतक्षकके विषरूपअग्निको श्रेष्ठमाना ४॥ इसके अनन्तर, यहलोक और स्वर्गरूप परलोक हितकारी नहीं हैं किन्तु त्यागनेयोग्य हैं, ऐसाराजाने शापसे प्रथमही विचाराथा उसविचारके अनुसारही इनदोनोलोकोंमेंसे मनको हटाकर, श्रीकृष्णकेचरणोंकी सेवाकरनाही सर्वपुरुषार्थोंका उत्तमसाधनहै, ऐसादृढ़निश्चयकिया और मरणकालपर्यन्त अनाहारव्रतकासङ्कल्प करके देवनदीभागीरथीके तटपर चलेगये ५॥ जो भागीरथी, शोभायमान तुलसीसे मिलीहुई जो श्रीकृष्णके चरणोंकी रज, तिससे अति पवित्र हुए जलसे वहतीहुई लोकपालों सहित सब लोकोंको भीतर बाहर पवित्र करती है, ऐसी गङ्गाकी, कौन मरणको प्राप्त होताहुआ पुरुष, स्नान पानादिके द्वारा सेवा नहीं करेगा? ॥ ६ ॥ इसप्रकार वह पाण्डववंशी राजापरीक्षित, प्राणत्यागके समयतक अन्नजलके त्यागका निश्चय करके और सकल तृष्णाओंको त्यागकर शान्तचित्त हो अनन्यभावसे मुक्तिदाता श्रीकृष्णके चरणारविंदोंका ध्यानकरनेलगा ॥ ७ ॥ उससमय अनेकों परमसमर्थ मुनि अपने २ शिष्यों सहित तहां परीक्षितके देखनेको आये, तीर्थस्नान के निमित्त नहीं, क्योंकि—वह सकल भुवनोंको पवित्र करनेवाले साधु, स्वयं तीर्थरूप हैं तथा प्रायः तीर्थयात्राके मिषसे सवतीर्थोंको पवित्रकरते हैं ॥ ८ ॥ अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्र, प्रमद, इध्मवाह ॥ ९ ॥ मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष; अगस्त्य; भगवान् वेदव्यास और नारद; यहसबथे ॥ १० ॥ तथा औरभी श्रेष्ठदेवर्षि, उत्तम

रान्समेतांनभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥ ११ ॥ सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ॥ विज्ञापयामास विविक्तचेता उपस्थितोऽग्रेभिगृहीतपाणिः ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ॥ राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ॥ १३ ॥ तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ॥ निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥ १४ ॥ तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ॥ द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५ ॥ पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ॥ महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥ १६ ॥ इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ॥ उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्र-

राजर्षि तथा अनेकों ऋषियों के गोत्रों में उत्पन्नहुए अरुणादि ऋषिआये, इनकीराजा ने पूजाकरके भूमिपर मस्तक नवाकर प्रणामकिया ॥ ११ ॥ जबवहसबऋषि, अपने २ आसनपर आनन्दपूर्वक वैठगये तब उनके सन्मुख खड़ेहोकर तिसशुद्धचित्तराजाने उनको फिर प्रणाम करके अपनेमनमें जोमरणपर्यन्त अनाहारव्रत का निश्चय कियाथा वह, योग्य है यानहीं यहनिवेदनकिया ॥ १२ ॥ उनके अनुमोदन करनेपर राजावोलाकि-हेऋषियों हमारे ऊपर तुमसमान ऋपियोंका अनुग्रहहोनेसे हम सवराजाओं में परम धन्यहैं, क्योंकि-हमसरीखे नीचकर्म करनेवाले राजाओंकाकुल, ब्राह्मणोंके चरणधोनेके जलकोफैंकनेके स्थान सेभी आगेफेंकाहुआहै अर्थात् जूठन, विष्टा, मूत्र, और चरणधोनेकेजलकोदूरफैंके ऐसीस्मृतिकी आज्ञाहै,क्षत्रियोंको उसस्थानसेभी दूररहनाचाहिये ऐसी हमारीदशाहै ॥ १३ ॥ ब्राह्मण कातिरस्कार करनेवाले, निरन्तर संसार में आसक्तचित्त मुझ पापबुद्धिको आत्मस्वरूपकी प्राप्तिहोनेके निमित्त चराचरजगत्के नियन्ता परमेश्वरहीइससमय ब्राह्मणके शापरूप से वैराग्यके कारण हुएहैं, क्योंकि-शापके होनेसे संसारमें आसक्त पुरुपको शीघ्रही भय लगनेलगताहै ॥ १४ ॥ अतः मैं ईश्वरमें चित्तकोलगाकर तुम्हारी शरणमें आयाहूँ, ऐसा तुम सकल ब्राह्मणों और गङ्गा देवीको विदितहो, ब्राह्मणका प्रेरणा कराहुआ तक्षक, कपट रूपसे आकर मुझे भलेही डसे, तुम इसका कुछ उपाय न करके विस्तारके साथ विष्णुभगवान् की कथाओंका गानकरो ॥ १५ ॥ और आगेको जिस जिस जन्ममें मैं जाऊँ तहाँ २ अनन्त परमेश्वरमें मेरी प्रीतिहो तथा भगवान्के आश्रित सज्जनों का समागम और उनके साथ मित्रताहो. अतः मैं सकल ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥ ऐसा निश्चय करके वह धैर्यधारी राजा, अपने राज्यका भार जन्मेजयनामक पुत्रको सौंपकर, आप भागीरथीके दक्षिणके तटपर पूर्वको जिनका अग्रभाग है ऐसे कुशोंकेऊपर उत्तरको

पत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥ १७ ॥ एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिवि देवसंघाः ॥ प्रशस्य भूमौ व्यकिरन्प्रसूनैर्मुदा मुहुर्दुंदुभयश्च नेदुः ॥ १८ ॥ महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ॥ ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् १९ नवा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु॥ ये ऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः॥२०॥ सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य कलेवरं यावदसौ विहाय॥ लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥ २१ ॥ आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्समं मधुच्युद्गुरु चाव्यलीकम् ॥ आभाषतैनानभिनन्द्य युक्तं शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥२२॥ समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्त्तिधरास्त्रिपृष्ठे॥ नेहाथवामुत्र च कश्चनार्थ ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥ २३ ॥ ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्र-

---

मुखकरके वैठा ॥ १७ ॥ इसप्रकार तिस सार्वभौम परीक्षित राजाके,निराहारव्रत का सङ्कल्प करके वैठनेपर,स्वर्गमें देवताओंने उनकी प्रशंसाकरके, भूमिपर उनके चारोंओर,हर्षित होतेहुए बारम्बार पुष्पोंकी वर्षाकरी और उनकी दुन्दुभियें भी बजीं ॥ १८ ॥ तव प्रजाके ऊपर अनुग्रह करनेमें अपनेस्वभाव और बलको लगानेवाले जोमहर्षि तहांथे वहभी ' इससमय यह अतिउत्तम किया ' इसप्रकार परीक्षित की प्रशंसा करके धन्यवाद देतेहुए, उत्तमकीर्त्ति भगवानके गुणोंसे सुन्दर वचन कहनेलगे ॥ १९ ॥ कि–हेराजन् परीक्षित ! राज्यको त्यागकर मरणपर्यन्त अन्नजलको त्यागनेका निश्चय करके श्रीकृष्ण के चरणकमलोंका ध्यान करतेहुए वैठना यह कार्य,तुम कृष्णके अनुगामियों में कोई आश्चर्यकी बात नहींहै, क्योंकि–इसपाण्डुके वंशोंमें उत्पन्नहुए युधिष्ठिर आदिने भगवत्प्राप्तिकी इच्छासे बडे२ राजाओं के मुकुटोंसे सेवन करेहुए सार्वभौमराज्यका तत्काल त्यागकरदिया ॥ २० ॥ इसप्रकार राजासे कहकर वहऋषि आपसमें कहनेलगे कि–जबतक यह राजापरीक्षित अपने शरीरको त्यागकर परलोकको जाय तबतक हम सब यहांही रहेंगे, क्योंकि–यह परमभगवद्भक्तहै अतः यह मायातीत, शोकरहित उत्तमलोकको जायगा ॥ २१ ॥ ऐसे उन ऋषियों के पक्षपातरहित, अमृतकी समान मधुर, गम्भीर अर्थभरे और सत्यभाषणको सुन कर, विष्णुभगवान्के चरित्रों को सुननेकी इच्छा करनेवाला वह राजापरीक्षित, उनऋषियों की प्रशंसा करके योग्यवचन कहनेलगा ॥ २२ ॥ जैसे सत्यलोकमें मूर्त्तिमान् वेदहैं, तैसेही आप सब ज्ञानमूर्त्तिहो और मेरे ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त अनेकोंस्थानोंसे आयेहो क्योंकि प्राणियों के ऊपर अनुग्रहकरना आपका स्वभावहै, इसके सिवाय इसलोक या परलोकमें आप का कोईभी कार्य नहींहै ॥ २३ ॥ अतः हेब्राह्मणो ! मैं तुमसे, विश्वासके साथ कर्त्तव्यकर्म का निश्चयहोनेके निमित्त यह करनेयोग्य प्रश्नकरता हूँ कि-सकललोकोंको सबअवस्थाओं में

न्य विंमा इति कृत्यतायाम् ॥ सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृश-ताभियुक्ताः ॥ २४ ॥ तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः॥ अलक्ष्यलिंगो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रीबालैरवधूतवेषः ॥ २५ ॥ तं द्वयष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाहंसकपोलगात्रम् ॥ चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कंबुसुजातकंठम् ॥ २६ ॥ निगूढजत्रुं पृथुतुंगवक्षसमावर्त्तनाभिं वलिवल्गूदरं च॥ दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलंबबाहुं स्वमरोत्तमाभं ॥ २७॥ श्यामं सदाऽपी-च्यवयोऽगलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ॥ प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वा-सनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥ २८ ॥ स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसा जहार ॥ ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपवि-वेश पूजितः ॥ २९ ॥ स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसंघैः ॥

और विशेष करके मरणको प्राप्तहोतेहुए पुरुषोंको अन्तकाल में जो कर्म करना चाहिये और जिसमें लेशमात्रभी पापका सम्बन्ध न हो उसका आप सब महाशय विचार करें ॥ २४ ॥ उससमय वहऋषि, योग, यज्ञ, तपऔरदानआदिको साधन वताकर परस्पर विवाद कररहेथे कि–इतनेहीमें तहाँ अकस्मात् भगवान् व्यासपुत्र शुकदेवजी,अपनीइच्छानुसार पृथ्वीपर वि-चरतेहुए आपहुँचे,उनमें वर्ण और आश्रमोंका कोईऐसा चिन्ह नहींदीखताथा जिससे पहिचाने जायँकि–अमुकवर्ण वा आश्रमकेहैं,क्योंकिवह अवधूत वेष धारणकरेहुए निजानन्दसे सन्तु ष्ट थे, उनको चारोंओरसे स्त्री औरवालक घेरेहुएथे ॥ २५ ॥ उनकी सोलह वर्षकीअवस्था और चरण,हाथ,जङ्घा,भुजदण्ड, कन्धे,और कपोलआदि सर्वअङ्ग देखनेमें सुकुमारथे, सुन्दर औरविशालनेत्र, ऊँचीनासिका, शोभादेनेवालेकर्ण, सुन्दरभौंसे शोभायमान मुखथा और कण्ठ शंखकीसमान तीन रेखाओंसे सुन्दर प्रतीत होताथा ॥२६॥ कण्ठ के नीचे दोनों ओर की दो अस्थियें मांससे ढकीहुई थीं, वक्षःस्थल विशाल और ऊँचा था, नाभि जलके भँवरकी समान गहरी थी, उदर (पेट) त्रिवलीसे शोभायमान था, वह दिगम्बर (नग्न) थे, उनके मस्तकके केश खुलकर चारोंओरको फैलेहुए थे, वह आजानुबाहु और विष्णुभगवान्‌कीसमान श्याम वर्णथे ॥ २७ ॥ निरन्तर तरुण रहनेवाले इनके सुन्दरशरीरकी कान्ति और मनोहरहास्य को देखकर स्त्रियोंका मन मोहित होताथा,उनकातेज यद्यपि गुप्त था तथापि उनकेलक्षणों को जाननेवाले तिन ऋषियोंने एकसाथ अपने आसनपरसे उठकर अभ्युत्थानदिया२८॥ तदनन्तर राजापरीक्षितने तिन आयेहुए अतिथिरूप शुकदेवजीको मस्तकसे प्रणाम करके पूजनकरा अर्थात् मैं आपकी शरणागतहूँ ऐसा कहकर उनके चरणोंपर मस्तक रक्खा, इसप्रकार शुकदेवजीका सन्मान होते देखकर जो अज्ञानी वालक स्त्रियें उनको चारोंओर से घेरेहुएथे वह सब तहांसे चलेगये फिर सबसे पूजित होकर वह शुकदेवजी ऊँचेआसन पर बैठे ॥ २९ ॥ उससमय,योगियोंमें परमपूजनीय अतिश्रेष्ठ १ शुकदेवजी-

व्यरोचतालं भगवान्यथेंदुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥ ३० ॥ प्रशांतमासीनमकुंठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ॥ प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृतांजलिर्नत्वा गिरा सूनृतयान्वपृच्छत् ॥ ३१ ॥ अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्याः क्षत्रबंधवः ॥ कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥ ३२ ॥ येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुद्ध्यंति वै गृहाः ॥ किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥ ३३ ॥ सांनिध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महांत्यपि ॥ सद्यो नश्यंति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥ ३४ ॥ अपि मे भगवान्प्रीतः कृष्णः पांडुसुतप्रियः ॥ पैतृष्वस्रेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबांधवः ॥ ३५ ॥ अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणां ॥ नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥ ३६ ॥ अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुं ॥ पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ३७ ॥ यच्छ्रोत-

तहाँ ब्रह्मर्षि. देवर्षि और राजर्षियोंके समूहोंसे चारोंओर घिरेहुए होनेपर,गुरुशुक्रादि ग्रह अश्विनीआदि नक्षत्र तथा अन्य तारोंसे वेष्टित (घिरेहुए) चन्द्रमाकी समान परमशोभाको प्राप्तहुए ॥३०॥ उससमय, सकल वेदशास्त्रादिमें जिनकी बुद्धिकीगतिहै ऐसे शांतमूर्ति आसनपर वैठेहुए तिन मुनिशुकदेवजीको, तिसपरमभगवद्भक्त राजापरीक्षितने स्वस्थचित्तसे आगेबढ़ मस्तकनवाकर प्रणामकिया और प्रश्न करने के निमित्त फिर हाथजोड़ नमस्कारकरके मधुरवाणी से कहाकि—॥ ३१ ॥ अहो ब्रह्मनिष्ठ शुकदेवजी ! मैं अधमक्षत्रियहोकरभी आज साधुसेवाकरनेके योग्यहूँ क्योंकि—आपने कृपाकर अतिथिरूपसे आकर मुझे योग्यकियाहै, यह आनन्दका समाचारहै ॥ ३२ ॥ जिन तुम्हारे स्मरणमात्रसे गृहस्थियोंके देह और स्थान तत्काल पवित्र होतेहैं. फिरदर्शन, स्पर्श और चरणधोना तथा आसनादिके द्वारा आपकीपूजा यदिउनसे बनपड़े तो वहशुद्धहोंगे, इसमेंआश्चर्यहीक्या ॥ ३३ ॥ हेमहायोगिन् ! जैसे विष्णुभगवान् से असुर आदिकोंका नाशहोताहै तैसेही तुम्हारी समीपतासे सकल पुरुषोंके महान् पापोंकाभी नाशहोजाता है ॥३४॥ पाण्डवोंके प्रियभगवान् श्रीकृष्ण, अपने फुफेरे भाई पाण्डवों की प्रसन्नता के निमित्त उनके गोत्र में उत्पन्नहुए मेरी बान्धवता स्वीकार करके मेरे ऊपर आज प्रसन्नहुए हैं, ऐसा प्रतीत होता है ॥ ३५ ॥ क्योंकि—श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके विना, जिनकीगति को कोई नहीं जानसक्ता ऐसे आपसे सत्पुरुषोंका दर्शन, 'जैसे किसी भिक्षुकको, जोचाहना हो मुझसे मांगले, ऐसा कहनेवाले सर्वसिद्धियुक्त उदार दाताका दर्शन होता है, तैसे, मुझ समान मरणको प्राप्तहोतेहुए मनुष्यको कैसे होसक्ताथा ? अर्थात् असम्भवथा ॥ ३६ ॥ अतः मरण को प्राप्त होताहुआ (अन्तकाल में) पुरुष इसलोकमें सर्वथा मोक्षप्राप्तिका कौनसा साधन करे ? यह मैं, योगियों के परमगुरु जो आप तिनसे बूझताहूँ ॥ ३७ ॥ हेप्रभो !

व्ययेथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ॥ स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययं ॥ ३८ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्गृहेषु गृहमेधिनां ॥ न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ॥ प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥ ४० ॥ इतिश्रीभा० म० अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कंधे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

पुरुष को जो श्रवणकरना चाहिये, जिसमन्त्रका जपकरना चाहिये, जो कर्मकरना चाहिये जिसका स्मरणकरना चाहिये और जिसकी सेवाकरना चाहिये सो कहिये तथा जो२ कर्म न करना चाहिये सो भी कहिये ॥ ३८ ॥ हेभगवन् ! आपकी स्थिति, गृहस्थी पुरुषोंके स्थानोंमें, एक गौका दूध दुहनेमें जितना समय लगता है उतने समयभी नहीं देखनेमें आती है सो फिर आपका दर्शन होना दुर्लभ है अतः यह विषय अबही मुझसे कहिये ? ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले कि-इसप्रकार मधुरवाणीसे राजापरीक्षितके शुकदेवजीसे प्रश्नकरनेपर वह व्यास पुत्र, धर्मज्ञभगवान् शुकदेवजी तिसराजासे कहनेलगे ॥४० ॥ श्रीरस्तु प्रथमस्कन्धमें एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥*॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि–मुरादाबादप्रवासि–भारद्वाजगोत्र–गौडवंश्य श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान–विद्यालये प्रधानाध्यापक–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोपनामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषानुवादेन च सहितः प्रथमस्कन्धः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयस्कन्धः

श्रीः ॥ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप ॥ आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १ ॥ श्रोतव्यादीनि राजेंद्र नृणां संति सहस्रशः ॥ अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनां ॥२॥ निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ॥ दिवा चार्थेहया राजन्कुटुंबभरणेन वा ॥ ३ ॥ देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ॥ तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४ ॥ तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयं ॥ ५ ॥ एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ॥ जन्मलाभः परः पुंसामंते नारायणस्मृतिः ॥ ६ ॥ प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः ॥ नैर्गुण्यस्था रमंते स्म गुणानुकथने हरेः ॥ ७ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितं ॥ अधीतवान् द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहं ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजीबोलेकि—हेराजन् ! तुमनेजो, मनुष्योंके श्रवण करनेयोग्य आदिकेविषय में प्रश्नकरा, सो यह तुम्हाराप्रश्न अतिश्रेष्ठ सकललोकोंका हितकारी और मुक्तपुरुषोंकाभी मान्यहै ॥ १ ॥ हेराजेन्द्र ! आत्मतत्त्वको न जाननेवाले प्रपञ्चमें आसक्त रहनेवालेतथा तिस गृहस्थमें हिंसाकर्म करनेवाले पुरुषोंके सुननेयोग्य तथा मननआदि करनेयोग्यसहस्रों शास्त्रहैं ॥ २ ॥ हेराजन् ! इन प्रपञ्चमें आसक्तपुरुषों की रात्रिकी आयु निद्रा वा मैथुनकर्मसे नष्टहोतीहै और दिनकी आयु धनप्राप्त करनेके वा कुटुम्बपालनके उद्योग में नष्टहोतीहै ॥३॥ शरीर, सन्तान तथा स्त्री आदि वास्तवमें मिथ्याहैं तथापि उनमें आसक्तहुआ यह पुरुष, माता पिता तथा अन्यपुरुषोंके मरणको देखकरभी यह नहीं समझता कि मेरा भी ऐसेही मरण होनाहै, यह इसका बड़ा प्रमादहै ॥ ४ ॥ इसकारण हेभरतकुलकेराजन् ! मोक्षकी इच्छावाला पुरुष सर्वात्मा भगवान् श्रीहरि ईश्वरको, सुने. कीर्त्तनकरे तथा स्मरणकरे ॥ ५ ॥ क्योंकि—सांख्यविचार, योगसाधन और अपने धर्म में अत्यन्त निष्ठा करकै जीवको अन्तकालमें नारायणका स्मरणहो, इतनाही मनुष्यजन्म पानेका परमलाभ है ॥ ६ ॥ हेराजन् ! वेदकेकहे विधिनिषेधसे निवृत्तहोकर निर्गुणब्रह्ममें लवलीन कितने ही परमहंस ऋषि, बहुधा श्रीहरिके गुणकीर्त्तनमें तत्पर रहतेथे ॥ ७ ॥ हेराजन् ! इस वेदसमान भागवतनामक महापुराणको मैंनेद्वापरकी आदिमें अपने पिताव्यासजीसेपढ़ाथा ॥ ८ ॥ हेराजर्षे ! मैं निरन्तर निर्गुणब्रह्ममें लवलीन रहताहूँ तथापि पुण्यश्लोक नारायण

परिनिष्ठितोपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया ॥ गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यद-
धीतवान् ॥ ९ ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् ॥ यस्य श्रद्दधता-
माशु स्यान्मुकुंदे मतिः सती ॥ १० ॥ एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयं ॥
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनं ॥ ११ ॥ किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हा-
यनैरिह ॥ वरं मुहूर्तं विदितं घटते श्रेयसे यतः ॥ १२ ॥ खट्वांगो नाम राज-
र्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः ॥ मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिं ॥ १३ ॥ त-
वाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवितावधिः ॥ उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्सांपरायि-
कम् ॥ १४ ॥ अंतकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ॥ छिंद्यादसंगशस्त्रेण स्पृहां
देहेऽनु ये च तं ॥ १५ ॥ गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः ॥ शुचौ
विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥ १६ ॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्मा-
क्षरं परं ॥ मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥ १७ ॥ नियच्छेद्विषये-

की लीलाओंसे चित्त आकर्षिताहोनेके कारण इस भागवतनामक आख्यानको पढ़ा ॥९॥
उसको अबमैं तेरे अर्थ वर्णन करताहूँ, क्योंकि—तू भगवान्‌का भक्तहै, जिसभागवतमेंदृढ़
विश्वास करनेवाले पुरुषकी शीघ्रही मुक्तिदाता श्रीकृष्णमें निष्कामभक्ति होतीहै ॥१०॥
हेराजन्! श्रीहरिका नामकीर्त्तनही, विषयभोगकी इच्छा करनेवालोंके सकलमनोरथों को
पूर्ण करनेवाला,संसारसे विरक्तहोकर सर्वथा निर्भयपद मोक्षकी इच्छावालोंको मोक्षप्राप्तिका
साधन और ज्ञानवान् योगियोंको भी ज्ञानप्राप्तिका साधन तथा फलहै,ऐसा सकलशास्त्रोंमें
निर्णयकराहै॥११॥ हेराजन्!यह नहीं समझना कि-मेरी आयु थोड़ी रहगई इसमें कैसे साधन
बनेगा?, क्योंकि-इसजीवलोकमें विषयी पुरुषकी आयुके बहुतसे वर्ष प्रमादसे अविचारमेंही
बीतजाते हैं सो उनसे फलही क्या?,उनवर्षोंकी अपेक्षा विचारकी दो घड़ीभी श्रेष्ठहैं,क्योंकि
उन दोघड़ीमेंही मनुष्य अपने हितका उपाय करताहै ॥१२॥ पहिले एकखट्वाङ्गनामक
राजर्षि होगये हैं. वह, इसभूलोकमें मेरी आयुकी दोघड़ीही शेषरही हैं, ऐसा जानकर तिस
एकमुहूर्त्तमेंही सकल संगोंको त्यागकर भयरहित श्रीहरिके स्वरूपमें जामिले ॥ १३ ॥
हे राजेन्द्र ! तेरी आयुके तो अभी सातदिन शेष हैं, अतः इतने अवकाशमें तुझे जो परलोक
का साधन करनाहो करले ॥ १४ ॥ हे राजन् ! पुरुष, अन्तकाल आनेपर प्रथम मृत्युका
भयत्यागे तदनन्तर देहमें और तिसदेहके सम्बन्धसे दृढ़हुई स्त्री पुत्रादि परिवारमेंकी मम-
ताको, वैराग्यरूप शस्त्रसे काटदेय ॥ १५ ॥ फिर वह विवेकीपुरुष, गृह दार आदिकोत्याग
ब्रह्मचर्य व्रत धारणकरे, और यात्राकरके पवित्रतीर्थोंमें स्नानकरे फिर शुद्ध एकान्तस्थान
में विधिपूर्वक बिछाएहुए आसनपर बैठाहुआ ॥ १६ ॥ अकार, उकार और मकार इन
तीन अक्षरवाले,सर्वमन्त्रश्रेष्ठ शुद्धओंकार मन्त्रका मनसे जपकरे, इस ब्रह्मस्वरूप के बीजरूप
ॐकारको विस्मरण न करताहुआ प्राणायाम करके मनको एकाग्र करे ॥ १७ ॥ निश्चया-

भ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥ १८ ॥ तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा ॥ मनो निर्विषयं युक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत् ॥ पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥ १९ ॥ रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः ॥ यच्छेद्धारणया धीरो हंति या तत्कृतं मलं ॥२०॥ यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः ॥ आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ यथा संधार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता ॥ यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलं ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जितासनो जितश्वासो जितसंगो जितेंद्रियः ॥ स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ॥ २३ ॥ विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसां ॥ यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥ २४ ॥ आंडकोशे शरीरेऽस्मिन्सप्तावरणसंयुते ॥ वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः ॥ २५ ॥ पातालमेतस्य हि पादमूलं पठंति पार्ष्णिप्रपदे

त्मकबुद्धिकी सहायतावाले मन के द्वारा इन्द्रियोंको विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करे, कर्मवासनासे विषयोंमें को दौड़नेवाले मनको निश्चयात्मकबुद्धिसे भगवतरूप में लगावे ॥१८॥ तदनन्तर ध्यानमें लाईहुई भगवान्की सकलमूर्त्तियोंपरसे अपने मनको हटने न देताहुआ उन मूर्त्तियोंके हरएक अङ्गका ध्यानकरे, ऐसे विषयवासनारहित अपने मनको भगवान्के स्वरूप चिन्तन में लगाकर अन्य किसीवस्तुका भी स्मरण न करे, जहां मन प्रसन्न होताहै वही विष्णु भगवान्का उत्तमस्थान है ॥ १९ ॥ यदि कदाचित् मन, रजोगुणसे विषयासक्त वा तमोगुण से मोहित होजाय तो विवेकीपुरुष धारणाकरके उसको फिर ईश्वरमें लगावे, क्योंकि धारणा, रज तम से उत्पन्नहुई विषयवासनारूप दोषोंका नाश करती है ॥ २० ॥ जिसधारणाके करनेसे योगीको परमेश्वर पूर्णसुखका स्थान प्रतीत होनेलगतेहैं और शीघ्र ही उन भगवान्में प्रेमयुक्तभक्ति होतीहै ॥ २१ ॥ राजा कहनेलगाकि–हेब्रह्मन् ! जैसी धारणा, पुरुषके मनमें की विषयवासनारूप दोषका शीघ्रनाश करतीहै, उसको किसस्वरूपमें कैसेलगावे, इस विषयमें आपका जो विचारहो वह मुझसे कहिये ॥ २२ ॥ शुकदेवजीबोलेकि–साधकपुरुष ऐसा अभ्यास करेकि–एकही आसनसे बहुतसमयपर्यन्तबैठा रहसके, प्राणायामके द्वारा श्वासको जीतै, अहन्ताममताको त्यागे, इन्द्रियोंको विषयोंमें न जानेदेय, ऐसी धारणा करके, भगवान्के स्थूलरूपमें बुद्धिकी सहायतासे मनकोलगावे २३ तिन भगवान्का यह विराट्स्वरूप, सम्पूर्णमहान् वस्तुओंसेभी बड़ाहै, जहांभूत, भविष्यत वर्तमान इनतीनोंकालमें होनेवाला यह चराचर जगत् देखनेमें आताहै ॥ ॥ २४ ॥ हेराजन् ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार और महत्तत्त्व इन सात आवरणों से वेष्टित (घिरेहुए) इस ब्रह्माण्डरूप शरीरमें जो वैराजनामक भगवान् परमपुरुष निवास करतेहैं वहही धारणाके विषय (स्थान) हैं ॥ २५ ॥ इनविराट्रूपभगवान्का, पाताल

रसातलं ॥ महातलं विश्वसृजोथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ॥ २६ ॥ द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च ॥ महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणंति ॥ २७ ॥ उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वेदनं वै जनोऽस्य ॥ तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥ २८ ॥ इंद्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ॥ नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गंधो मुखमग्निरिद्धः ॥ २९ ॥ द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतंगः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ॥ तद्भ्रूविजृंभः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥ ३० ॥ छंदांस्यनंतस्य शिरो गृणंति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ॥ हासो जनोन्मादकरी च माया दुरंतसर्गो यदपांगमोक्षः ॥ ॥ ३१ ॥ व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ॥ कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ॥ ३२ ॥ नद्योऽस्य

लोक चरणके नीचेका भाग (तलुआ) है, रसातल चरणका अग्रभाग (पंजा) और पिछलाभाग (ऐड़ी) है महातललोक गुलफस्थान (एड़ी के ऊपरकी गांठ) और तलातललोक दोनो जङ्घाहैं, ऐसा शास्त्रोंका कथनहै ॥ २६ ॥ सुतललोक विश्वमूर्त्तिपरमात्माकी दोनों जानु और वितल तथा अतल यह दोनों लोक ऊरु (घुटने) हैं,हेराजन् ! महीतल उसकी कमरके पीछेका भाग और आकाश उसका नाभिरूप सरोवरहै ऐसाकहतेहैं २७ ज्योतिश्चक्र (स्वर्ग) इन विराट्पुरुषका वक्षःस्थलहै, महर्लोक ग्रीवा और जनलोक इनका मुख है तपोलोक तिन आदिपुरुषका कपाल और सत्यलोक तिन सहस्रशीर्षा के अनन्त मस्तक हैं ॥ २८ ॥ इन्द्रादिदेवता इन विराट्पुरुष के बाहुहैं, दिशा कान और शब्द श्रोत्र इन्द्रिय है, दोनों अश्विनीकुमार तिन परमपुरुषके दो नासापुट और गन्ध इनकी घ्राण इन्द्रिय तथा प्रज्वलित अग्निहीमुख है ॥२९॥ अन्तरिक्षलोक इनविराट्पुरुषके दोनोंनेत्र-गोलक, सूर्य-चक्षु,रात्रि और दिन यह दोनों विष्णुभगवान् के नेत्रोंके पलक, ब्रह्मपद भौंकाविस्तार, जल तालुरूप और सकल रस जिव्हारूप हैं ॥ ३० ॥ सकल वेद इन अनन्त का मस्तकहै, यम दाढ़ है, स्त्रीपुत्रादि के विषैं जो संसारी पुरुषों का प्रेम है वही इस विराट् पुरुष के द्विज कहिये दांत हैं, लोकों को मोहित करनेवाली मायाही विराट्भगवान्का हास्य है और अनन्तसृष्टि उन के नेत्रों का कटाक्षहै, क्योंकि-उनके नेत्र के कटाक्ष से अनन्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥ लज्जा ऊपरका ओष्ठ, लोभनीचेका ओष्ठ, धर्म स्तन,और अधर्ममार्ग इन विराट्पुरुष की पीठ, दक्ष प्रजापति उनका मेढ़् (मूत्रेन्द्रिय) सूर्य और वरुण वृषण (अण्डकोश) सब समुद्र कोख और सकल पर्वत उनकी अस्थियों के समूह हैं ॥ ३२ ॥ हे राजेन्द्र ! सकल नदियें इन विश्वरूप परमात्मा की नाड़ियें,वृक्ष

नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ॥ अनन्तवीर्यश्वसितं मातरिश्वा गति-र्वयः कर्म गुणप्रवाहः ॥ ३३ ॥ ईशस्य केशान्विदुरम्बुवाहान्वासस्तु संध्यां कुरु-वर्य भूम्नः ॥ अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥ ३४ ॥ वि-ज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ॥ अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा न-खानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ॥ ३५ ॥ वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनु-र्मनीषा मनुजो निवासः ॥ गंधर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरःस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥ ३६ ॥ ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्रुरंघ्रिश्रितकृष्णवर्णः ॥ नानाभि-धाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः ॥ ३७ ॥ इयानसावी-श्वरविग्रहस्य यः सन्निवेशः कथितो मया ते ॥ स धार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किञ्चित् ॥ ३८ ॥ स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आ-त्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ॥ तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत-आत्मपातः ॥ ३९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे महापुरुषसंस्था-

रोम, वायु तिन अनन्तवीर्य का प्राण आयुरूप काल गमन और सत्वआदि गुणोंसे उत्पन्न होनेवाले कार्य तिन परमेश्वरकी क्रीड़ा है ॥ ३३ ॥ हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजन्! मेघोंको इन ईश्वर के केश और सन्ध्याकाल को तिनविभुका वस्त्र कहतेहैं, अव्यक्तको हृदय और नानाप्रकारके विकारों के भण्डार चन्द्रमाको तिनका मन कहते हैं ॥ ३४ ॥ महत्तत्त्व को तिन परमात्माका चित्त और रुद्रभगवान् को अन्तःकरण कहते हैं, घोड़ा—खच्चर ऊँट हाथी आदि उनके नखरूप तथा मृग आदि अन्य सकल पशु उनकी कमर में कल्पित हैं ॥ ३५ ॥ नानाप्रकार के पक्षी उनकी विचित्र शिल्पचातुरी है, मनु उनकी बुद्धि और मनुष्य उनका निवासस्थान है, गन्धर्व—विद्याधर—चारण—अप्सरा यह सब उनका स्वर है तथा दैत्योंकेसमूह में श्रेष्ठ प्रल्हादजी उनकी स्मृति हैं ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा और वैश्य उनमहात्माकी ऊरु (सांथल) हैं, शूद्र उनके चरणरूपहैं, परमपूजनीय वसु रुद्र आदि अनेकोंनामधारी देवताओंसे युक्त और चरु पुरोडाश आदि द्रव्यों से होनेवाला यज्ञ का विस्तार उन विराट्भगवान् का आवश्यक कर्म है ॥ ३७ ॥ यह इतनी जो भगवान्के शरीरकी रचना मैंने तुमसे कही, इसमहान् विराट्स्वरूपमें अपनी बुद्धिकी सहायतासे मनकीधारणा करीजातीहै, क्योंकि—इसस्वरूपके विना जगत् में कोई भी वस्तु नहीं रहसक्ती ॥ ३८ ॥ हेराजन्! जैसे एकही जीव स्वप्नमें अनेकोंशरीर धारकर उन की इन्द्रियों से सबको देखताहै, तैसेही ईश्वर सबकी बुद्धिकी वृत्तियों के द्वारा विषयोंका अनुभव करतेहैं, तिन सत्यस्वरूप आनन्दसागर परमात्माको भजै अन्यवस्तुमें कदापि प्रेम न करे क्योंकि अन्यपदार्थों में प्रेम करने से जीव जन्ममरणरूप संसारमें पड़ता है ॥ ३९ ॥ द्वितीय

नुवर्णने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुरा धारणयात्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ॥ तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाऽप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥ १ ॥ शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ॥ परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः ॥ २ ॥ अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ॥ सिद्धेऽन्यथाऽर्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥ ३ ॥ सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैर्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ॥ सत्यञ्जलौ किं पुरुधाऽन्नपात्र्या दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ॥ ४ ॥ चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ॥ रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥ ५ ॥ एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्धं

स्कन्ध में प्रथम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ शुकदेवजी बोले कि-हेराजन्! ऐसे भगवान्के विराट्रूपकी धारणासे प्रसन्नहुए श्रीहरिसे पहिले प्रलयकाल में नष्टहुई ब्रह्माजीकी स्मृति फिर प्राप्तहुई, तब निश्चितबुद्धि से अमोघज्ञानवान् ब्रह्माजीने इसविश्वको जैसा प्रलयसे पहिले था वैसाही रचदिया ॥ १ ॥ शब्दब्रह्म (वेद) की कर्मफलको वर्णन करनेकी ऐसीरीतिहै कि साधककी बुद्धि, अर्थशून्य होनेपरभी उनतुच्छ कर्मफलोंको स्वर्गलोक पितृलोक आदि नामों से ध्यानकरती है अर्थात् मुझे स्वर्गादिफल प्राप्तहों ऐसा चिन्तन करती है परन्तु उन मायारचित स्वर्गादिलोकों में सुखकी आशासे भ्रमताहुआ वह साधकपुरुष, तिन स्वप्नसमान स्वर्ग आदि लोकों में कहीं निर्दोष सुख नहीं पाता है ॥ २ ॥ अतः चतुरपुरुष नाममात्र सांसारिक पदार्थों में शरीरके निर्वाहमात्रमें जितनेकी आवश्यकताहो उतनेहीके पानेका यत्नकरे, देहनिर्वाहसे अधिक विषयभोगके पानेमें कियाहुआ यत्न केवल महान् परिश्रमहीहै ऐसाजान उससे बचे और यदि शरीरके निर्वाहके योग्य वस्तुभी बिनाश्रम मिलसकें तो उनके पानेमेंभी व्यर्थयत्न न करे ॥ ३ ॥ पृथ्वीके होते हुए, शय्याके निमित्त व्यर्थयत्नों के करनेसे क्या प्रयोजन है ? स्वयंसिद्ध भुजाके होते तकियों के निमित्त श्रम क्यों ?, अञ्जलिके होते अधिक अन्न रखनेके पात्रकी क्या आवश्यकता है ? दिशा वा वृक्षोंकी छाल होतेहुए रेशमी वस्त्रोंका कौन प्रयोजनहै ? ॥ ४ ॥ क्यामार्गमें फटेपुराने वस्त्रनहींहैं केवल लोकोपकारके निमित्तही जीनेवाले वृक्ष क्याफलों की भिक्षानहीं देते ? क्या सब नादियें सूखगई ? क्या पर्वतोंकी गुफा बन्दहोगई ? क्याअनन्यभावसे शरण आयेहुओंकी भगवान् रक्षा नहींकरते ? धिक्! धिक्! इन सबसामग्रियोंके होतेहुए विवेकी पुरुषधनके दुष्टमदसे अन्धहुए पुरुषोंकी सेवाक्यों करें ? ॥ ५ ॥ विरक्तपुरुष, भगवान्के स्वरूप में निश्चित बुद्धि लगाकर अपने अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्वयंही विराजमान प्रियआ-

आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः ॥ तन्निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥ ६ ॥ कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्तामृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात् ॥ पश्यन् जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापान् जुषाणम् ॥ ७ ॥ केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ॥ चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥ ८ ॥ प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं कदम्बकिंजल्कपिशंगवाससम् ॥ लसन्महारत्नहिरण्मयांगदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ॥ ॥ ९ ॥ उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ॥ श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकंधरमम्लानलक्ष्म्या वनमालया चितम् ॥ १० ॥ विभूषितं मेखलयांगुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ॥ स्निग्धामलाकुंचितनीलकुंतलैर्विरोचमानाननहासपेशलम् ॥ ११ ॥ अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभङ्गसंसूचितभू-

त्मा सत्यस्वरूप अनन्तभगवान् का आनन्दभरे चित्तसे भजनकरे; जिस भजनके करनेपर जन्ममरणरूप संसारके कारणरूप अज्ञानका नाश होताहै ॥ ६ ॥ इस कहीहुई भगवत्स्वरूपकी धारणाका अनादर करके पशुके सिवाय (कर्मठपनेके कारण ज्ञानहीन पुरुषोंके सिवाय) दूसरा कौन पुरुष, विषयोंके चिन्तनसे वैतरणीनदीकी समान (यमलोकके द्वारपर बहनेवाली नदीकी समान) दुःखरूप संसारमें पड़ेहुए और अपने कर्मोके अनुसार तीनप्रकारके तापोंको सहनेवाले प्राणियोंको देखताहुआ, आपभी तिन विषयों का सेवन करेगा ? अर्थात् कोईभी विवेकी पुरुष ऐसा नहीं करेगा ॥ ७ ॥ हेराजन् ! कितने ही योगी अपने देहके विषैं हृदयाकाशमें रहनेवाले प्रादेश (दशअङ्गुल) मात्र रूपधारी पुरुष का धारणासे स्मरण करतेहैं, जो पुरुष चारभुजाधारी और उन प्रत्येक भुजाओंमें क्रमसे, कमल,चक्र,शंख और गदाको धारण करेहुए हैं ॥ ८ ॥ जिसका मुख प्रसन्न,नेत्र कमल की समान प्रफुल्ल और कर्णोंपर्यन्त विशाल हैं, जिसका पीताम्बर कदम्बके पुष्पके केसरकी समान पीतवर्णहै,जिसके शोभायमान बाहुभूषण रत्नजटित सुवर्णकेहैं और जिसके कुण्डल तथा किरीट देदीप्यमान महारत्नों से रचित हैं ॥ ९ ॥ जिसके कमलसमान कोमलचरणको बड़े २ योगी अपने हृदयरूपी प्रफुल्लितकमलके मध्यमें ध्यानकरनेके निमित्त धारणकरते हैं, तिन ईश्वरके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीका चिन्ह है, कण्ठमें कौस्तुभमणि है, और कदापि न कुम्हलानेवाली वनमालासे जिनका सकल शरीर ढकगया है ॥ १० ॥ कमरमें मेखला (तागड़ी) है, हाथकी अङ्गुलिमें महामूल्य अँगूठी, चरणों में नूपुर (पावटे) और हाथोंमें कड़े आदि भूषणोंसे वह परमात्मा शोभित हैं, मस्तकपर चिकनी निर्मल घुँघराली नीलीअलकें मुखको परमशोभा देरही हैं और उनका हास्य तो अत्यन्तही सुन्दर प्रतीतहोता है ॥ ११ ॥ उन्होंने उदारलीलायुक्त हास्यसहित अवलोकन (चितवन) से शोभित भौं

येनुग्रहम् ॥ ईक्षेत चिंतामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयावतिष्ठते ॥ १२ ॥ एकैकशोऽङ्गानि धियानुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ॥ जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्परं परं शुद्ध्यति धीर्यथा यथा ॥ १३ ॥ यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन् विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ॥ तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥ १४ ॥ स्थिरं सुखं चासनमास्थितो यतिर्यदा जिहासुरिमंग लोकम् ॥ काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥ १५ ॥ मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि ॥ आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो लब्धोपशांतिर्विरमेत कृत्यात् ॥ १६ ॥ न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ॥ न यत्र

को कुछएक इधरउधरको चलाकर भक्तोंके ऊपर अपना परमअनुग्रह दिखाया है,इसप्रकार ध्यानमें प्रकटहोनेवाले जो ईश्वर तिनको,जबतक अपना मन उनमें धारणाके द्वारा स्थिर न होय अवलोकन करै ॥ १२ ॥ तदनन्तर तिनभगवान्के चरणसे लेकर हास्ययुक्त मुखपर्यंत प्रत्येक अंगका बुद्धिसे ध्यानकरै, चरणआदि जो२ अंग विनायत्न के ध्यानमें आजाय उस२ को त्यागकर आगेआगे के जंघाजानुआदि अंगोंका ध्यान, अपनी बुद्धि जिसप्रकार भगवत्स्वरूपमें स्थितरहे तिसरीतिसे करे ॥ १३ ॥ हेराजन् ! ब्रह्मादिदेवताभी जिससे नीच हैं ऐसे सर्वसाक्षी जगदीश्वरके विषैं जबतक प्रेमयुक्त भक्तियोग नहीं हो तबतक परमपुरुष के विराट्स्वरूपका स्मरण नित्यनैमित्तिक कर्मों के अन्तमें नियमसे करे ॥ १४ ॥ इसप्रकार मरणको प्राप्तहोतेहुए पुरुषका कर्त्तव्य कहकर अब योगसाधन के द्वारा उसके देहत्यागकी रीति कहते हैं कि-हेराजन्परीक्षित! जब उसके मनमें इसशरीरको त्यागनेका विचार होय तब अपने अन्तःकरण को देश (पवित्रक्षेत्रादि) और काल (उत्तरायण आदि) में न लगावे अर्थात् मरणका समय उत्तरायण वा पवित्रक्षेत्रहोनेसे सिद्धिहोगी ऐसा न विचारे,किंतु योगसाधनसे ही सिद्धिहोती है ऐसा दृढनिश्चय करके,मनसे इन्द्रियोंको वशमें करे,और स्थिर तथा सुखदायक आसनपैबैठकर अपने प्राणको रोकै ॥ १५ ॥ तदनन्तर योगाभ्यास करनेवाला वह गम्भीरपुरुष अपनी निर्मलबुद्धिसे मनको स्वाधीन करे, अर्थात् सङ्कल्पविकल्पात्मक मनका निश्चयात्मक बुद्धिमें लयकरे, फिर तिसबुद्धिका क्षेत्रज्ञ (जीव) में लयकरे, और जीवका लय शुद्ध परमात्मा में करके जो शुद्धपरमात्मा है वही मैं हूँ इसरीतिसे शुद्धब्रह्मस्वरूप में अपनी एकता करके सुखरूप होय और विधिनिषेधरूप सकल कर्मों से विराम पावे, क्यों कि-इससे आगे उसको कुछभी प्राप्त नहीं होगा ॥ १६ ॥ सोई कहते हैं कि-देवताओंको भी उलटदेनेवाला काल, जिस आत्मस्वरूप में किंचिन्मात्र भी न्यूनाधिक करनेको समर्थ नहीं होताहै फिर तहाँ जगत्पर प्रभुताकरनेवाले देवता कुछ करने को कैसे समर्थ होसक्तेहैं?

सत्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥ १७ ॥ परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥ १८ ॥ इत्थं मुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः ॥ स्वपार्ष्णिनापीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु पट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥ १९ ॥ नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ॥ ततोऽनुसंधाय धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥ २० ॥ तस्माद्भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः ॥ स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुंठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परं गतः ॥ २१ ॥ यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत

फिर अन्यप्राणियों की प्रभुता नहीं चलती यह स्वयंही सिद्धहोगया, क्योंकि—प्रभुता तहांही चलती है जहां गुण वा अहङ्कार आदिहों, आत्मस्वरूप में सत्वगुण नहीं है, रजोगुण नहींहै, तमोगुण नहीं है, अहङ्कार नहीं है, महत्तत्त्व नहीं है और प्रकृति भी नहीं है, वह आत्मस्वरूप सकलउपाधियों से रहित सर्वश्रेष्ठ है ॥ १७ ॥ आत्मस्वरूपके सिवाय सकल पदार्थ मिथ्या हैं अतः तिनका 'नेति—नेति" इस वाक्य से त्याग करने की इच्छा करनेवाले बड़े२योगी शरीर स्थान स्त्रीआदिके विषै की अहंता-ममता आदि को त्यागतेहैं और सबके पूज्य श्रीविष्णुके स्वरूपको क्षण२में अन्तःकरणकेद्वारा अनन्यभावसे आलिङ्गन करतेहैं तिस विष्णुस्वरूप को ही सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ मानते हैं ॥ १८ ॥ इसप्रकार शास्त्रके श्रवणआदि करके उत्पन्नहुए ज्ञान के प्रभावसे विषयभोगकी इच्छा नष्टहोकर ब्रह्मनिष्ठहुआ योगी, सकलकर्मोंको त्यागकर इसप्रकार अपने शरीरको त्यागे; कि—अभ्याससे वायुकी गति को वशमें कर वह योगी आसनपर बैठकर अपनी गुदा (अपानवायु के मार्ग) को वामचरणकी एड़ी से दाबकर प्राणवायुको ऊपरके मूलाधारचक्र आदि छःस्थानों में चढ़ावे ॥ १९ ॥ योगी, नाभि (मणिपूरकचक्र) में स्थितवायुको हृदय (अनाहतचक्र) में लेजाय, तहांसे उदानवायु के द्वारा वक्षःस्थलमें विशुद्धिनामक चक्रपर लेजाय, तदनन्तर तहाँ से वायुका बहुतसे मार्गोंसे बाहरको जाना सम्भवहै अतः वह स्वाधीनमन योगी एकाग्रबुद्धिसे ब्रह्मप्राप्तिके मार्गपर ध्यान रखकर तिसविशुद्धिचक्रके ही अग्रभागरूप अपनेतालुके नीचे तिसवायुको धीरे२ लेजाय ॥ ॥ २० ॥ तदनन्तर वह योगी, अपने दोनों कानों के छिद्र, दोनोंनेत्र, दोनों नासिकाके छिद्र, और मुख इन सातों प्राणके मार्गोंको रोककर तालुके मूलमें पहुँचायेहुए उसवायुको भ्रुकुटी के मध्यभागमें जो आज्ञाचक्र उस में लेजाय, तहाँ आधेमुहूर्त्तपर्यन्त ठहरकर यदि उस योगी को किसीप्रकारकी अपेक्षा नहो तो तहाँ अकुण्ठित ज्ञानदृष्टिसे ब्रह्मस्वरूपमें मिलतेसमय ब्रह्मरन्ध्र (तालु) को भेदकर इसशरीर और मन आदि सकलइन्द्रियोंको त्यागदेय ॥ २१ ॥ हेराजन् ! यदि उसयोगीको ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छाहोय अथवा जहाँ अणिमा महिमा आदि आठसि-

यद्विहारम् ॥ अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेंद्रियैश्च ॥ २२ ॥
योगेश्वराणां गतिमाहुरंतर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनांतरात्मनाम् ॥ न कर्मभिस्तां
गतिमाप्नुवंति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ २३ ॥ वैश्वानरं याति विहायसा
गतः सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा ॥ विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रं नृप
शैशुमारम् ॥ २४ ॥ तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः ॥
नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा रमंते ॥ २५ ॥ अथो अनंत-
स्य मुखानलेन दंदह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ॥ निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं य-
द्द्वैपरार्ध्यं तदु पारमेष्ठ्यम् ॥ २६ ॥ न यत्र शोको न जरा न मृत्यु र्नार्ति र्न
चोद्वेगऋते कुतश्चित् ॥ यच्चित्ततोऽदः कृपयाऽनिदंविदां दुरंतदुःखप्रभवानुदर्श-

---

द्रिये हैं ऐसे सिद्धोंके क्रीड़ाकरने के स्थानमें जानेकी इच्छाहोय, अथवा सत्वादिगुणोंके समूह रूप ब्रह्माण्डमें यथेष्ट विचरनेकी इच्छाहोय तो वह देहत्याग करतेसमय मन और इन्द्रियोंका त्याग न करके उनसे युक्तही तिस२ इच्छितस्थान के सुखभोगके निमित्त गमनकरे ॥२२॥ हेराजन् योगसिद्धि पुरुषका सूक्ष्मशरीर विशेषकर वायुमय होताहै अतः उसकी गति त्रिलोकी (पृथ्वी, अन्तरिक्ष,, स्वर्ग) के भीतर और बाहर (महर्लोक, जनलोक, तपोलोक व सत्यलोकमें) तथा ब्रह्माण्ड के बाहरभी होतीहै; वह गति यज्ञादि कर्मोंसे नहीं मिलती है किन्तु देवताओं की उपासना, तप, अष्टाङ्गयोग और समाधि (आत्मज्ञान)सेही मिलतीहै ॥२३॥ हेराजन्! वह योगी, अपनी तेजोमय सुषुम्नानाड़ीरूप ब्रह्मप्राप्तिके मार्ग से आकाश में गमन करनेपर प्रथम वैश्वानर अग्निके अभिमानी देवताके लोक में पहुँचताहै, इसके अनन्तर वह निष्पाप होकर कहीं आसक्त न होता हुआ तिस वैश्वानरस्थानके ऊपर श्रीहरि के शिशुमार नामक ज्योतिश्चक्रपर चढ़ता है अर्थात् तिसचक्रमें स्थितसूर्य आदि ध्रुवपर्यंत सकल स्थानो में जाता है ॥ २४ ॥ तदनन्तर सकल जगत्के आधार तिस विष्णुभगवान् के तारागणरूप शिशुमारचक्रको लांघकर वह योगी इकलाही अपने लिङ्गशरीरसे आगे ब्रह्मज्ञानियोंके निवासस्थान महर्लोक को जाताहै, जिसमें एककल्पकी आयुवाले ज्ञानवान् भृगुआदि ऋषि आनन्दमें मग्न रहतेहैं, वह महर्लोक स्वर्ग और उससे नीचे के लोकों में वसनेवालोंका वन्दनीयहै अर्थात् कर्ममार्गसे स्वर्गको गयेहुए प्राणी तहां नहीं पहुँचसक्तेहैं ॥ २५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजीके दिनके अन्तमें होनेवाले प्रलयकालमें शेषजीके मुखसे निकलीहुई अग्नि करके इस त्रिलोकीके विशेषतया भस्म होतेहुए तिसकी लपटोंका ताप महर्लोकमें जानेलगताहै, इसको देखकर वह योगी तहांसे निकलकर ब्रह्माजीके दो परार्द्धपर्यंत रहनेवाले सत्यलोकको जातेहैं,वह सत्यलोक योगादिसे सिद्धहुए पुरुषोंके विमानोंसेसेवित है ॥ २६ ॥ तिस सत्यलोक में शोक, जरा (बुढ़ापा) मृत्यु, पीड़ा और खिन्नता नहीं

नात् ॥ २७ ॥ ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनापोऽनलमूर्तिरत्वरन् ॥ ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिंगं ॥ २८ ॥ घ्राणेन गंधं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ॥ श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥ २९ । संभूतसूक्ष्मेंद्रियसन्निकर्षं मनोमयं देव-

हैं,परन्तु जो प्राणी इस भगवान्के ध्यानको नहीं जानतेहैं उनको जन्ममरण आदिका अपार दुःख भोगना पड़ताहै,यह जानकर उन दीनोंपर कृपा आजानेसे तो तिस सत्यलोकके निवासी सिद्धोंके मनमें कुछएकदुःख होताहै नहींतो इसके सिवाय दूसरा कोई दुःख नहींहोता है ॥ २७ ॥ ब्रह्मलोकमें गयेहुए जीवोंको तीनप्रकारकी गति मिलतीहै—जो पुण्यकर्मोके प्रभावसे ब्रह्मलोकको जातेहैं वह अपने २ पुण्यके अनुसार दूसरे कल्पमें बड़े २ अधिकारी होतेहैं, और जो हिरण्यगर्भ की उपासनाके प्रभावसे सत्यलोकमें जाते हैं वह ब्रह्माजी के साथ मुक्त होजाते हैं तथा जो भगवान्के उपासक हैं वह अपनी इच्छानुसार ब्रह्माण्ड को वेधकर विष्णुपदको प्राप्त होतेहैं,सातआवरणवाले ब्रह्माण्डको वेधकर भगवद्भक्तके जाने की रीति यहहै कि-ब्रह्मलोकमें विद्यमान वह भगवद्भक्त अपने सूक्ष्मशरीरकेद्वारा पृथ्वीरूप आवरणसेमिलताहै, उसके मनमें'ब्रह्माण्डको भेदकर कैसेजाऊँगा'यह भय किञ्चिन्मात्रभी नहींहोताहै, अतः वह पृथ्वीआदि प्रत्येक आवरणमें के भोगोंको भोगताहुआ अपनी इच्छानुसार शीघ्रता न करके अपने सूक्ष्मशरीरसे तिन २ आवरणों में एकताको प्राप्तहोताहै, पृथ्वीआदि आवरणोंके भोगोंका भोग होजानेपर वह जलरूपहोकर उदकावरणमें मिलजाताहै और अग्निस्वरूपसे अग्नि में मिलजाताहै उससमय उसको भीजने वा भस्महोनेका कुछदुःख नहींहोताहै, कुछकालमें तहाँके भोगोंकी इच्छा पूर्ण होनेपर वायुरूपमें मिलजाताहै तदनन्तर वायुमय सूक्ष्मशरीरसे आकाशमें मिलजाताहै, आकाशभी परमात्माकी उपासना करनेकी मूर्त्तियोंमें एकमूर्त्तिहीहै ऐसा उपनिषद्आदिमें कहाहै ॥ २८ ॥ वह योगी नासिका इन्द्रियकेद्वारा गन्धको प्राप्तहोताहै अर्थात् नासिका इन्द्रियगन्धरूप विषयका ग्रहणकरनेवालाहै और गन्ध तिस इन्द्रियका विषयहै मेरा स्वरूपनहींहै ऐसा समझकर तिस इन्द्रिय और विषयके सम्बन्धको त्यागदेता है इसीप्रकार जिह्वाके द्वारा रसको, दृष्टिकेद्वारा रूपको त्वचाके द्वारा स्पर्शको और कर्णोकेद्वारा शब्दको प्राप्तहोताहै तथा वाणी पाणि आदि कर्मेन्द्रियोंके द्वारा बोलना ग्रहणकरना आदि क्रियाओंको प्राप्तहोताहै ॥ २९ ॥ तदनन्तर वह योगी अहङ्कारतत्त्वमें जा मिलताहै, वह अहङ्कार सात्विक,राजस और तामस इन तीन प्रकारकाहै, तामस अहङ्कारमें पञ्चभूत और इन्द्रियोंका लय होताहै, राजस अहङ्कारमें दशों इन्द्रियें मिलजातीहैं और सात्विक अहङ्कारमें मन तथा देहका लयहोताहै,ऐसाहोनेपर वह योगी, अहङ्कारसहित लयरूपगतिके द्वारा महत्तत्त्वमें जामिलताहै और फिर सकल

मयं विकार्य ॥ संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसन्निरोधं ॥ ३० ॥
तेनात्मनात्मानमुपैति शांतमानंदमानंदमयोऽवसाने ॥ एतां गतिं भागवतीं गतो
यः स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽग ॥ ३१ ॥ एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाभिपृष्टे ह स
नातने च ॥८॥ ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेवः ॥ ३२ ॥
नह्यतोऽन्यः शिवः पंथा विशतः संसृताविह ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो
भवेत् ॥ ३३ ॥ भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ॥ तदध्यवस्यत्कूटस्थो
रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥ ३४ ॥ भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ॥
दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः

गुणोंके लयस्थान प्रकृतिरूप आवरणमें जामिलताहै ॥ ३० ॥ तिस प्रकृतिरूपसे आनन्दमय होकर सकल उपाधियोंके अन्तमें विकाररहित आनन्दमय परमात्मस्वरूपमें जामिलता है, हेराजन्! जो योगी, इस भगवत्स्वरूपकीगति को प्राप्तहोगया वह फिर निःसन्देह जन्म मरणरूप संसारके प्रवाहमें नहीं पड़ताहै ॥ ३१ ॥ हेराजन्! तूने पहिले "क्या श्रवणकरे" इस प्रश्नके बीच में मुक्तिविषयकमार्ग जो बूझाथा, सो यह सद्योमुक्ति और क्रममुक्तिरूप दोप्रकार से वेदमें वर्णन कराहुआ अनादिमार्ग तेरे अर्थ वर्णनकरा, पहिले ब्रह्माजीने वासुदेवभगवान् की आराधना करके उनसे प्रश्न कियाथा तब उन्होंने जो मार्ग बताया सो यह ही था ॥ ३२ ॥ हे राजन्! संसारीपुरुष को मोक्षमें जाने को तप योग आदि अनेकों मार्ग हैं परन्तु इसश्रवणकीर्त्तन आदि भागवतधर्म के आचरणसे सबकी भगवत्स्वरूप में प्रेमयुक्त भक्तिहोती है, इससे उत्तम हितकारी दूसरामार्ग नहीं है ॥ ३३ ॥ क्योंकि-पहिले एकाग्रचित्त ब्रह्माजीने सकल वेदों का तीनवार विचारकरा और अन्तमें उन्होंने अपनी बुद्धिसे यही निश्चयकरा कि-जिससे सर्वात्मस्वरूप श्रीहरि के विषैं प्रीतिहोय वही मार्ग उत्तम है ॥ ३४ ॥ यदि कहो कि-जैसी प्रीति वर्त्तावमें आयेहुए पदार्थों में होतीहै तैसी प्रीति अनुभवमें न आयेहुए भगवान् के स्वरूप में कैसे होगी? तहां कहते हैं कि-दूसरे से प्रकाशित होनेवाले मनबुद्धि आदिके लक्षणों करकै तथा अनुमान की सामग्रियोंसे सर्वसाक्षी भगवान् सकल प्राणियों में हैं ऐसा सिद्धहोताहै अर्थात् देहमें जो मन बुद्धिआदि हैं उनके स्थिरता चञ्चलता आदि धर्मों को जाननेवाला कोई अन्तर्यामी द्रष्टा अवश्य है, जैसे-कुल्हाड़ी आदि काटनेके साधन, काटनेवाले चेतन के विना कार्य नहीं करसक्ते तैसेही मनबुद्धि आदि भी जड़ हैं अतः किसी चेतन के आश्रय सेही अपना कार्य करते हैं, आज मनको अमुक कार्य के विचार में लगाना चाहिये, आजमनको एकाग्रकरके ईश्वरकी मानस पूजा करना चाहिये इत्यादि मनबुद्धिआदि के भिन्न २ कार्य जिसके हाथमें हैं ऐसा कोई ज्ञानस्वरूप ईश्वर प्रत्येक शरीरमें रहताहै, जब इसप्रकारके अनुमानसे प्रत्येकपुरुषको ईश्वर के होनेका विश्वास होताहै तो उसमें प्रीतिहोना भी अशक्य नहीं है ॥ ३५ ॥ अतः हे

सर्वत्र सर्वदा ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥ ३६ ॥ पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपथेषु संभृतं ॥ पुनंति ते विषयविदूषिताशयं व्रजंति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥ ३७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतं त्रिगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम ॥ नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १ ॥ ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिं ॥ इन्द्रमिंद्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥ देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुं ॥ वसुकामो वसून् रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥ ३ ॥ अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ॥ विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशां ॥ ४ ॥ आयुःकामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ॥ प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ ॥ ५ ॥ रूपाभिकामो गन्धर्वान्स्त्रीकामोऽप्सर उर्वशीं ॥

राजन् ! तुम अपने प्रश्नका यही उत्तर समझोकि—सर्वदेश सर्वकाल और सब दशा में सबप्रकार से मनुष्य भगवान् श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्त्तन और स्मरणकरें ॥ ३६ ॥ क्योंकि—साधुओं के अपना करके प्रकाशित करेहुए भगवान् के कथा रूप अमृतका जो अपने कर्णरूप अंजलियोंके द्वारा पान करते हैं अर्थात् आदर के साथ श्रवण करते हैं वह पुरुष विषयों के सेवनसे मलिनहुए अपने चित्तको पवित्र करते हैं और विष्णुभगवान् के चरणों के समीप जाते हैं अर्थात् संसारसे मुक्त होकर मोक्षपद पाते हैं ॥ ३७ ॥ इति द्वितीय स्कन्धमें द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेव जीबोलेकि—हेराजन् ! कदाचित् दैवयोगसे मनुष्य शरीर को प्राप्तहुए जीवोंमें जो बुद्धिमान् मरणसमयके समीप पहुँचतेहैं उनका अवश्य करनेयोग्य कौन कार्य है ? यह जो तुमने मुझसे प्रश्न कियाथा तिसका उत्तर,इससे पहिले अध्यायमें जो हरिकथा श्रवण आदि कहा वहही मुख्यता करके है ॥ १ ॥ ब्रह्मतेजकी इच्छा करनेवाला वेदपति ब्रह्माजीका,उत्तम इन्द्रियोंकी इच्छावाला इन्द्रका, और सन्तानकी इच्छावाला दक्षआदि प्रजापतियोंकापूजन करे ॥ २ ॥ सम्पत्तिकी इच्छावाला दुर्गादेवीका, तेजकी इच्छावाला अग्निका, धनकी इच्छावाला आठ वसुओंका और पराक्रमकी इच्छा करनेवाला ग्यारहरुद्रोंका पूजनकरे॥३॥ अन्न आदिकी इच्छावाला अदितिका, स्वर्गकी इच्छावाला अदितिके पुत्रों(बारहआदित्यों) का, राज्यकी कामनावाला विश्वेदेवाओंका और अपनी प्रजाकी अपने ऊपर ममताचाहनेवाला साध्यनामक देवताओंकी पूजाकरे॥४॥आयुकी वृद्धिचाहनेवाला दोनोअश्विनीकुमारों की,शरीर की पुष्टि चाहनेवाला पृथ्वीकी,और प्रतिष्ठा चाहनेवाला पुरुष, लोकके मातापिता द्यावाभूमिके अभिमानी देवताकी पूजाकरे।५।रूपकी चाहनावाला गन्धर्वोंकी,स्त्रीकी कामना-

आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥ यज्ञं यजेद्यशःकामः कोश-कामः प्रचेतसं ॥ विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थ उमां सतीम् ॥ ७ ॥ धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तंतुं तन्वन्पितॄन्यजेत् ॥ रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणा-न् ॥ ८ ॥ राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्वभिचरन्यजेत् ॥ कामकामो यजेत्सो-ममकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥ अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १० ॥ एतावानेव यजतामिह निःश्रे-यसोदयः ॥ भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसङ्गतः ॥ ११ ॥ ज्ञानं यदाप्रति-निवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ॥ कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भ-क्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥ शौनक उवाच ॥ इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः ॥ किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥ १३ ॥ एतच्छुश्रूषतां विद्वन्सूत नोऽर्हसि भाषितुं ॥ कथा हरिकथोदर्काः

वाला उर्वशीनामक अप्सराकी और सबके ऊपर आधिपत्य (हुकूमत) चाहनेवाला परमेष्ठी ब्रह्माजीकी पूजाकरे ॥ ६ ॥ यशको चाहनेवाला यज्ञपुरुष भगवान्की, धनका भण्डारचा-हनेवाला वरुणकी, विद्या चाहनेवाला शिवकी और स्त्रीपुरुष में परस्पर प्रीति चाहने वाला सती पार्वती की पूजाकरे ॥ ७ ॥ मुझसे धर्मकार्यबने ऐसी कामनावाला उत्तमश्लोक विष्णुभगवान् की, वंशवृद्धिकी कामनावाला पितरोंकी, सर्वप्रकार की बाधाओं से रक्षा चाहनेवाला यक्षों को और बलकी कामनावाला मरुद्गणनामक देवताओं की पूजाकरे ८॥ राज्यकी कामनावाला मन्वन्तर के पालक मनुनामक देवताकी, मारणोच्चाटनादि अभिचार करनेकी कामनावाला निर्ऋतिनामक लोकपालकी, अनेकों भोगों की इच्छावाला चन्द्रमा की और वैराग्यकी कामनावाला मायातीत परमेश्वरकी उपासना करे ॥ ९ ॥ किसीप्रकार की फलप्राप्ति की इच्छा न करनेवाला अथवा सबप्रकार के सुखों की इच्छा करनेवाला वा उदारबुद्धिहोने के कारण केवल मोक्षकी ही इच्छा करनेवाला पुरुष, तीव्रभक्तिकरके पूर्ण परब्रह्मरूप परमेश्वरकी आराधना करे ॥ १० ॥ इन्द्रादि देवताओं की आराधना करने वाले पुरुषको, भगवद्भक्तों की सङ्गति से भगवान् के स्वरूप में अचलभक्ति प्राप्त होनाही इसलोक में परमपुरुषार्थ का मुख्यफल है इससेभिन्न सकलफल तुच्छहैं॥ ११॥ हेराजन् ! जिस हरिकथाके श्रवणसे, तीनोंगुणोंसे उत्पन्नहुई कामक्रोधादि सकल लहरियों का नाश करनेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है, विषयों से वैराग्य होताहै, चित्त प्रसन्न होता है और मोक्ष प्राप्तिमें उपयोगीमार्ग जो भक्तियोग वहभी प्राप्तहोताहै अतः श्रवण के आनन्दसे तृप्त होने वाला कौनपुरुष ऐसी हरिकथा में प्रीति नहीं करेगा ? ॥१२॥ शौनकबोले कि—हे सूतजी ! इसप्रकार शुकदेवजी के कथनको सुनकर भरतकुलश्रेष्ठ राजापरीक्षित ने फिर, ब्रह्मज्ञानी और वेदादिसकलशास्त्रप्रवीण शुकदेवजी से दूसरा कौनसा प्रश्नकिया ? ॥ १३॥ हेज्ञानवान्

सतां स्युः सदसि ध्रुवं ॥ १४ ॥ स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथः ॥ बालक्रीडनकैः क्रीडन्कृष्णक्रीडां य आददे ॥ १५ ॥ वैयासकिश्च भगवान्वासुदेवपरायणः ॥ उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥ १६ ॥ आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ॥ तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥ १७ ॥ तरवः किं न जीवंति भस्त्राः किं न श्वसंत्युत । न खादंति न मेहंति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥ १८ ॥ श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ॥ न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥ १९ ॥ बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ॥ जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥ २० ॥ भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमांगं न

सूतजी ! तिसको सुनने की इच्छा करनेवाले जो हम तिन हमारे अर्थ आपको कथन करना उचित है क्योंकि—हमें निश्चय है कि—सत्पुरुषों की सभा में जो वार्ता होती है उसकी समाप्ति भगवान् की कथा में ही होती है ॥ १४ ॥ तिस में वह प्रसिद्ध पाण्डवनन्दन महारथी राजापरीक्षित बड़े भगवद्भक्त थे जो छोटी अवस्था में बालक्रीड़ाकी सामग्रियों से खेलतेहुएभी कृष्णपूजादि खेलोंकाही अनुकरण करतेथे ॥ १५ ॥ और वह भगवान्शुकदेवजीभी केवल ईश्वरभजनमें ही तत्परथे, उससमय शुकदेवजीके वक्ता और राजापरीक्षितके श्रोता होनेके कारण तहाँ इकट्ठीहुई साधुओंकी मण्डलीमें वेदादिकेविषै नानाप्रकारसे वर्णनकरेहुए गुणोंसे श्रेष्ठ जो भगवान्की कथा तिसका वर्णन अवश्यहुआहोगा ॥ १६ ॥ हे सूतजी ! नित्य उदय और अस्तको प्राप्तहोनेवाला यह सूर्य, वास्तव में पुरुषों की आयुकानाश करताहैं परन्तु जिसपुरुषने अपनी आयुका दशपलमात्र समयभी पुण्यकीर्त्ति भगवान्की कथा में व्यतीतकराहो उसकी आयु वृथा नहीं जाती है ॥ १७ ॥ जीवितरहना, श्वासलेना; भोजनकरना, मैथुनकर्म करना, इनकोही यदि आयुका फल मानाजाय तो क्या वृक्ष नहीं जीवित रहते हैं ! क्या लुहारकी धौंकनी श्वास नहीं लेती है ! और क्या ग्रामके पशु भोजन वा मैथुन नहीं करतेहैं ? ॥ १८ ॥ तिससे गदाग्रज भगवान् जिसके कर्णमार्ग में कभी भी नहीं आये वह मनुष्य के आकारवाला पशु, श्वान विष्टाभक्षणकरनेवाला शूकर ऊँट और गर्दभ (गधे) की अपेक्षाभी निन्दनीय है क्योंकि—श्वानादि में मैथुन के काल आदि का नियम तो होताहै और पशु लोकों के कार्यमें तो आतेहैं, परन्तु वह प्राणी इसयोग्यभी नहीं है ॥ १९ ॥ हेसूतजी ! उरुक्रम भगवान्की लीलाको श्रवण न करनेवाले जो कर्णहैं वह केवल सर्पादि के बिल (भट्ट) की समानहीं हैं, और जो दुष्ट जिह्वा भगवान्की कथाका गान नहीं करतीहै वह भेक (मेंडक) की जिह्वा की समान व्यर्थ बकवादकरनेवालीहै ॥ २० ॥ ऊँची पगड़ी और किरीट धारणकरेहुए शिर यदि मुक्तिदाता परमेश्वरको प्रणाम नहीं करता है तो वह केवल भार (शरीरके ऊपर बोझा) ही है, देदीप्यमान सुवर्णके कङ्कणोंसे भूषित

नमेन्मुकुन्दं ॥ शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥२१॥ बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ॥ पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥ २२ ॥ जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ॥ श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥ २३ ॥ तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ॥ न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥ २४ ॥ अथाभिधेह्यङ्ग मनोनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ॥ यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधुपृष्टः ॥ २५ ॥ इ० भा० म० द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ छ ॥ सूत उवाच ॥ वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ॥ उपधार्य मतिं कृष्णे औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥ १ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ॥ राज्ये चाविकले नित्यं विरूढां ममतां जहौ ॥२॥ पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ स-

भी हस्त, यदि श्रीहरि की पूजा न करें तो प्रेत (मुरदे) के हस्त की समान अमङ्गल (स्पर्श न करनेयोग्य) हैं ॥ २१ ॥ मनुष्यों के जो नेत्र विष्णुभगवान् की मूर्त्तिका दर्शन नहीं करते हैं वह मोरके परोंपैकी नेत्राकार चन्द्रिकाओं की समान निरर्थक हैं और मनुष्य के जो चरण परमेश्वरके क्षेत्रों में यात्राके निमित्त नहीं जातेहैं वह केवलवृक्षकी मूल(जड़) की समान जन्म धारण करेहुए हैं ॥ २२ ॥ जो मनुष्य भगवद्भक्तों के चरणरज को कदापि अपने मस्तकपर धारण नहीं करताहै वह जीताहुआभी मृत (मुरदे) की समान है और जो मनुष्य श्रीविष्णुभगवान् के चरणोंमें समर्पण करीहुई तुलसीकी गन्ध को ग्रहण नहीं करताहै वह श्वासें लेताहुआभी मृतकसमानहै॥२३॥स्वयं वा दूसरोंके उच्चारण करेहुए श्रीहरि के नामों से जो हृदय, नेत्रोंमें आनन्दके अश्रु आना,शरीरपर रोमाञ्च खड़े होना इत्यादिलक्षणोंके द्वारा प्रेम से गद्गद नहीं होताहै वह हृदय शिलाकी समान कठोर है२४॥ अतः हे सूतजी ! तुम हमारे मनके अनुकूलही उत्तम भाषण कररहे हो, सो राजा परीक्षित के उत्तम प्रश्न करनेपर, आत्मविद्या में पारङ्गत और भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ शुकदेवजी-ने जो तत्त्व वर्णन किया था वह हमको सुनाइये ॥ २५ ॥ इति द्वितीय स्कन्ध में तृतीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी बोले कि–हे ऋषियो ! इसप्रकार आत्मतत्त्व का निश्चय करदेनेवाले श्रीशुकदेवजी के कथन को सुनकर राजापरीक्षितने अपनी बुद्धि श्रीकृष्णजी के विषैं श्रवणादिके द्वारा भक्तिकरने में दृढ़ करी ॥ १ ॥ और शरीर, स्त्री, पुत्र, राजमहल,हस्ती घोड़े आदिपशु, धन,बान्धव और सार्वभौमराज्य में निरन्तर बढ़ीहुई अन्तःकरण की ममताको त्यागदिया ॥ २ ॥ और हे ऋषियो ! श्रीकृष्णकीलीलाओं को सुनने मे परमश्रद्धालु उदारचित्त राजापरीक्षितने अपने मरणकालको समीप आयाजानकर अपने धर्म अर्थ

त्तमाः ॥ कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ॥ ३ ॥ संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् ॥ वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ समीचीनं वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवानघ ॥ तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथां ॥ ५ ॥ भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया ॥ यथेदं सृजति विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥ ६ ॥ यथा गोपायति विश्वं यथा संयच्छते पुनः ॥ यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिःपरःपुमान् ॥ आत्मानंक्रीडयन्क्रीडन्करोति विकरोति च ॥ ७ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्हरेरद्भुतकर्मणः ॥ दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितं ॥ ८ ॥ यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोपि वा ॥ विभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥ ९ ॥ विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान्यथा ॥ शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान् खलु ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः ॥ हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रति-

काम तथा इसके सम्बन्धी नित्यनैमित्तिक कर्मोंका संन्यास(सम्यक्प्रकार त्याग)किया और प्रेमसे भगवान वासुदेवमें एकताको प्राप्तहोकर.तुमने जो मुझसे "ईश्वरचरित्र वर्णन करो" ऐसा प्रश्न कियाहै यहही प्रश्न उन्होंनेशुकदेवजी से किया था ॥३॥४॥ राजा ने कहा कि हे पुण्यमूर्त्ते ब्रह्मनिष्ठशुकदेवजी!आपसर्वज्ञ हो अतः आपका कथन अति उत्तमहै, क्योंकि आपके हरिकथा का वर्णन करतेहुए मेरा अज्ञान नष्ट होताहै ॥५॥ वह व्यापक भगवान्, ब्रह्मादिकी समान समर्थोंके भी विचारमें न आनेवाले इससकल चराचर विश्वको अपनी माया से किसप्रकार उत्पन्न करतेहैं ॥६॥ और किसप्रकार इसकी रक्षा करतेहैं तथा फिर किस रीतिसे इसका संहार करतेहैं ? यह मैं फिरभी जानना चाहताहूँ, वह अनेकों शक्तियोंसे युक्त परमपुरुष जिस २ शक्तिको स्वीकार करके क्रीड़ाकरनेके निमित्त अपनेकोही ब्रह्माजी आदि स्वरूपोंसे उत्पन्नकरतेहैं और तिसस्वरूपधारी अपनेको क्रीड़ाकरानेके निमित्त रामकृष्णादि अवतार धारण करतेहैं ॥ ७ ॥ हेब्रह्मज्ञानी शुकदेवजी ! अद्भुतकर्मकरनेवाले भगवान् श्रीहरिके चरित्रोंका बड़े २ विद्वानोंको भी ठीक २ समझ में आना अशक्य है, ऐसा मुझे प्रतीतहोता है ॥८॥ एकही परमात्मा सृष्टिआदिअनेकों कर्म करने के निमित्त पुरुषरूप से एकसाथ मायाके सत्वादि अनेकों गुणों को स्वीकार करते हैं अथवा ब्रह्मादि अवतारों के द्वारा क्रमसे गुणों को स्वीकार करते हैं ॥९॥ इस विषयमें मुझे सन्देह है, अतः आपमेरे ऊपर कृपाकरके इसविषयको यथार्थरूपसे वर्णन करिये, क्योंकि–आप योग शक्तियुक्त और वेदरूपब्रह्म तथा परमात्मस्वरूप में निःसंदेह पारङ्गत हो ॥ १० ॥ सूतजी बोले–कि हे ऋषियों ! इसप्रकार राजापरीक्षित के श्रीहरि के गुणानुवाद वर्णन करने के निमित्त प्रार्थना करनेपर शुकदेवजी ने इन्द्रियों के प्रेरक हृषीकेश भगवान् का स्मरण

वक्तुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ॥ गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥१२॥ भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदे सतामसंभवायाखिलसत्त्वमूर्तये ॥ पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥ १३ ॥ नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनां ॥ निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥ १४ । यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणं ॥ लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १५ ॥ विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ॥ विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १६ ॥ तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ॥ क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१७॥ किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसा-

---

करके प्रश्न का उत्तर कहने का प्रारम्भ किया ॥ ११ ॥ शुकदेवजी कहनेलगे कि—चराचर जगत्‌की उत्पत्ति स्थिति और संहारकरनेकी लीलासे रज, सत्व और तम इन तीनगुणों करके ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप धारण करनेवाले, सकल देहधारियों के हृदय में अन्तर्यामीरूप से विराजमान और जिनका मार्ग किसी के भी जानने में नहीं आता है तथा जिनकी महिमा अपार है ऐसे परमपुरुषरूप ईश्वरको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ १२ ॥ जो भगवान् साधुओंके दुःख दूरकरनेवाले, दुष्टोंकी उत्पत्तिही न होनेदेनेवाले, सकल देवताओंके भक्तोंको तिस२ देवताके रूपसे इच्छितफलदेनेवाले और परमहंस आश्रममें रहनेवाले पुरुषोंको आत्मस्वरूप देते हैं तिन भगवान्‌को मैं फिर प्रणामकरताहूँ॥१३॥ हे परमेश्वर ! तुम्हें मेरा वारम्वार प्रणाम है, तुम भक्तोंके पालकहो, भक्तिहीन पुरुषोंसे तुम्हारे ज्ञानकी दिशा भी दूर है, अर्थात् उनको तुम्हारा ज्ञान किञ्चिन्मात्रभी नहीं होता है, तुम्हारे ऐश्वर्यकीसमान ऐश्वर्य तथा तुमसे अधिक ऐश्वर्य किसीदूसरेका नहीं है, अतः निरुपम ऐश्वर्यरूप तेजसे अपने स्वरूपभूत ब्रह्ममें रमणकरनेवाले तुमको प्रणाम है ॥ १४ ॥ जिन परमेश्वरका कीर्त्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण वा पूजनकरनेपर तत्काल मनुष्य के पापोंका नाशहोजाता है और जिनकी कीर्त्ति परम मङ्गलकारिणी है तिनको मेरे अनेकों प्रणाम हैं ॥ १५ ॥ आत्मानात्मविवेकयुक्त सत्पुरुष, जिनके चरणकमलकी सेवासे अपने मनमेंकी इसलोक और परलोककी आसक्ति (कर्मफलकी इच्छा) को सर्वथा त्यागकर परिश्रमरहित होतेहुए मोक्षपदको प्राप्तहोते हैं तिन पुण्यकीर्त्ति भगवान्‌को मेरा वारम्वार प्रणाम है ॥ १६ ॥ तीव्रतप करनेवाले, दानी, यशोवन्त, योगी, मन्त्रवेत्ता और सदाचारवान् यह सबहीअपने २ कर्म जिनको समर्पण करेबिना मोक्षसुखनहीं पाते हैं तिन अतिपवित्र कीर्त्ति परमात्मा को मेरा वारम्वार प्रणाम है ॥ १७ ॥ भील, वायव्यदेश के तान्त्रमुखपुरुष

दयः ॥ येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १८ ॥ स एष आत्मात्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ॥ गतव्यलीकैरजशङ्करादिभिर्वितर्क्यलिंगो भगवान्प्रसीदताम् ॥ १९ ॥ श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः ॥ २० ॥ यदङ्घ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ॥ वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुंदो भगवान्प्रसीदताम् ॥ २१ ॥ प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ॥ स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥ २२ ॥ भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ॥ भुङ्क्ते गुणान्षोडश षोडशात्मकः सोऽलंकृषीष्ट भगवान्वचांसि मे ॥ २३ ॥ नमस्तस्मै भ-

तैलङ्गोंमें आन्ध्रजातिके मनुष्य, पुलिन्द और पुल्कस इन चाण्डालजातियोंके पुरुष, आभीर, कङ्क, यवन और खस इत्यादि यवनजातियों में के मनुष्य और जो अन्यभी पापजातियों के पुरुष हैं वह देखो जिनकेभक्तोंके आश्रय से शुद्धहोजाते हैं तिन महाप्रभावशाली ईश्वर को मेरा प्रणाम हैं ॥ १८ ॥ आत्मज्ञानीपुरुषोंने जिसको आत्मरूप मानाहै वह ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेदके द्वारा यज्ञादिकरनेवालोंके धर्मरूप, तपस्वियोंके तपरूप और निष्कपटभक्तिमान् ब्रह्मा शिव आदिभी जिनकेस्वरूपको आश्चर्यमें होकर देखतेहैं वहभगवान् मेरे ऊपर प्रसन्नहों ॥ १९ ॥ लक्ष्मीपति, यज्ञके पति, देवादि सकल प्रजाओंके पति, सबकी बुद्धियों के साक्षी, सत्यलोकादि और पृथ्वीके रक्षक, अन्धक वृष्णि और सात्वतनामक यादवकुलोंके पति तथा विपत्तिके समय रक्षा करनेवाले और भक्तोंके रक्षक भगवान् मेरेऊपर प्रसन्नहों ॥ २० ॥ जिनके चरणोंके ध्यानरूप समाधिसे शुद्धबुद्धिहुए विवेकीपुरुष परमात्माके यथार्थ तत्वको जानतेहैं और यथामति उसके माहात्म्यकाभी वर्णन करतेहैं, वह मुक्तिदाता भगवान् मेरेऊपर प्रसन्नहों ॥ २१ ॥ कल्पके आरम्भके समय ब्रह्माजीके हृदयमें सृष्टिकेस्मरण का विकाश करनेवाले जिन परमात्माके सरस्वतीको प्रेरणा करनेपर वही वेदवाणीरूप सरस्वती अपने शिक्षाव्याकरण आदि छः अङ्गोंसहित तिन ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट हुई ऐसे ज्ञानदाताओंमें श्रेष्ठ वह भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २२ ॥ जो व्यापक परम पुरुष पृथिवीआदि पञ्चमहाभूतके द्वारा इन भिन्न२नगररूप शरीरोंको रचकर इनमें प्रेरक रूपसे निवास करतेहैं और पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांचकर्मेन्द्रिय, पांचप्राण और मन इनसोलह तत्त्वोंके प्रेरक होकर शब्दस्पर्श आदि सोलह विषयोंका भोग करतेहैं वह भगवान् मेरे वाक्योंको, श्रोताओंको प्रिय और आनन्ददायक होनेके निमित्त शृङ्गारकरुणा आदि रसों से भूषितकरें ॥ २३ ॥ भक्तजनों ने जिन व्यासजीके मुखकमलमें के वेदान्तसूत्र तथा

गवते वासुदेवाय वेधसे ॥ पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवं ॥ २४ ॥ एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते ॥ वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥ ॥ २५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ७ नारद उवाच ॥ देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज ॥ तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनं ॥ १ ॥ यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो ॥ यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥ २ ॥ सर्वं ह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥ ३ ॥ यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः ॥ एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥ ४ ॥ आत्मन्भावयसे तानि न पराभावयन्स्वयं ॥ आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥ ५ ॥ नाहं वेद परं ह्यस्मि-

अनेकों पुराण आदि अनुपम ज्ञानमय रसका पानकराहै तिन परमतेजस्वी भगवान् व्यास जीको मेरा प्रणामहै ॥ २४ ॥ हेराजन् ! तूनेजो मुझसे प्रश्नकिया, यहही पहिलेनारदजी ने ब्रह्माजीसे कियाथा तब, जिनके हृदयमें वेदोंका प्रकाशहै ऐसे तिन स्वयम्भू ब्रह्माजी ने, जो अपनेअर्थ साक्षात् श्रीहरिने वर्णन कियाथा वह श्रीमद्भागवतपुराण तिन नारदजी के अर्थ कहा ॥ २५ ॥ इतिद्वितीयस्कन्धमें चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥४॥ नारदजीने कहा कि—हेदेवदेव ! तुम सकल प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले मूलपुरुषहो तुमको मेरा प्रणाम हो, तिसज्ञानका साधन मुझसे कहिये जिससे मुझे पूर्णरीतिसे आत्माके सत्यस्वरूप का ज्ञान होजाय ॥ १ ॥ हेप्रभो! यहजगत् जिसकेद्वाराप्रकाशितहोताहै जोइसजगत्का आश्रयहैजिससेयह उत्पन्न होताहै, जिसके स्वरूपमें लयहोता है, जिसके वशमें रहताहै और जिसकास्वरूप है, उसका वास्तविक स्वरूप क्या है सो मुझसे कहिये ? ॥ २ ॥ यह सबतुमको ज्ञात(मालूम) है, क्योंकि तुम पहिलेव्यतीतहुए, आगेको होनेवाले और इससमय वर्त्तमान जगत के प्रभु होनेके कारण 'जैसे आँवले को हथेलीपर रखनेसे उसका सब स्वरूपपूर्णरीतिसे जानाजाताहै तैसेही' इसजगत् का स्वरूपतुम्हें अपने अलौकिक ज्ञानके प्रभावसे पूर्णरीतिसे मालूमहै ॥ ३ ॥ हे ब्रह्माजी! प्रथम मुझसे यहकहियेकि-इकलेही तुम अपने सङ्कल्पमात्रसे पञ्चमहाभूतोंको उत्पन्न करके तिनसे देवमनुष्यादिकोंको उत्पन्न करतेहो, सोतुम्हे यहसृष्टिउत्पन्न करनेका ज्ञान किसनेदिया, तुम्हारा आधार कौनहै ? तुम किसके अधीनहो, तुम्हारा वास्तविक स्वरूप कौनसाहै ? ॥ ४ ॥ जैसेमकरी तन्तुरूप शक्तिका आश्रय करके भीतपर जाला पूरतीहै तैसेही तुम स्वयंही सकल शक्तियोंको स्वीकार करनेके विषयमें कुण्ठित नहींहोतेहो और श्रमरहितहोकर अपनेमेंही तिन प्राणियोंकी रक्षाकरतेहो ॥ ५ ॥ अतः हेविभो ! इस जगत् में उत्तम मध्यम वा अधम जोदेव मनुष्य आदि नामहैं. दोचरणवाली चारचरणवाली इत्यादिजो आकृति (सूरत) हैं और स्वेत कृष्ण आदिजो गुणहैं इनके द्वारा, बुद्धिस्थ होनेवाले

भावपरं न सम विभो ॥ नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किंचिदन्यतः ॥६॥ स भवानचरद्घोरं यत्तपः सुसमाहितः ॥ तेन खेदयसे नस्त्वं परां शङ्कां प्रयच्छसि॥७॥एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर ॥ विजानीहि तथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ॥८॥ ब्रह्मोवाच ॥ सम्यक्कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितं ॥ यदहं चोदितः सौम्य भगवद्वीर्यदर्शने ।९॥ नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भो ॥ अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ॥ १० ॥ येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहं ॥ यथाऽर्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥ ११ ॥ तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवंति जगद्गुरुम् ॥ १२ ॥ विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ॥ विमोहिता विकत्थंते ममाहमिति दुर्धियः ॥ १३ ॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥

जोसकल स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं वह तुम्हारे सिवाय किसी दूसरेसे उत्पन्न हुए हों ऐसामुझे प्रतीत नहींहोता किन्तु सब तुमसेही उत्पन्नहुए हैं ऐसा मैंनेमानाहै ॥ ६ ॥ परन्तु तुमने जो एकाग्र अन्तःकरणसे घोर तप किया इससे मेरेचित्तको खिन्न करतेहो, क्योंकि–और कोई दूसरा ईश्वरहोगा ऐसी मनमें शङ्का होतीहै ॥ ७ ॥ अतः हेसर्वेश्वर ! हेसर्वज्ञ ! यह पूर्वोक्त प्रश्नकरनेवाले मुझको तुम ऐसा उपदेशदोकि–जिससे मैं यहसब यथार्थरूपसे समझ जाऊँ ॥८॥ ब्रह्माजीबोलेकि–हेवत्स नारद ! तू लोकोंपर दयाकरनेवाला है अतः तेरा यह सन्देह में होकर प्रश्नकरना उत्तमहै, क्योंकि–हेसौम्यमूर्तिनारद ! तूनेप्रश्नकरके भगवान् के गुणोंको वर्णन करनेमें मेरीप्रवृत्ति करीहै अतःमुझे ऐसा प्रतीतहोताहैकि–तूने तत्वको जाननेकी इच्छाकरकेभी मेरेऊपर कृपाही करी है ॥ ९ ॥ हेनारद ! तूने मुझसे यह जो कहा कि–तुम भगवान् हो,सो यह तेराकहना मिथ्या नहींहै क्योंकि-जैसा तूकहताहै तैसा मेरा ऐश्वर्यहै, परन्तु मुझसे श्रेष्ठ जो ईश्वर तिसको न जानकर भ्रान्ति से मुझेही जगदीश्वर कहताहै, नहीं तो तेरेमुखसे ऐसावचन नहीं निकलसक्ता ॥१०॥ सो जिसप्रकार इस जगत्में सूर्य,अग्नि,चन्द्रमा,नक्षत्र,ग्रह,तारे आदि तेजस्वियोंका समूह भगवान्केहीप्रकाशसे लोकोंको प्रकाशित करताहै तैसेही मैंभी,तिस स्वयंप्रकाश ईश्वरके प्रकाशितकरेहुए जगत्को सृष्टिकर के प्रगट करताहूँ ॥११॥ हेनारद!तुझसे पुरुष जिस परमेश्वरकी अजेय मायासे मोहित होकर मुझकोही जगद्गुरु(सृष्टिकर्त्तापरमेश्वर)कहते हैं तिनभगवान् वासुदेवको मैं प्रणामकरता हूँ॥१२॥ मेरेकपटको यह भगवान् जानतेहैं ऐसासमझकर जिनपरमेश्वर की दृष्टिके सामने खड़े होनेमें लज्जित होनेवाली मायासे मोहितहुए मन्दबुद्धि पुरुष, यह 'गृहजनादि पदार्थ मेरेहैं और मैं इन सबका कर्ता धर्ता हूँ'ऐसी बकवाद करके अपनी प्रशंसा करतेहैं ॥१३॥ हे नारद ! पृथिवी आदि पञ्चमहाभूत, प्राणियोंके जन्मके कारणरूप पूर्वसञ्चित कर्म, तिन

वासुदेवात्परो ब्रह्मन् चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥ १४ ॥ नारायणपरा वेदा देवा नारायणांगजाः ॥ नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ १५ ॥ नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ॥ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥ १६ ॥ तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ॥ सृज्यं सृजामि सृष्टोहे-मीक्षयैवाभिचोदितः ॥ १७ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ॥ स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥ १८ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञान-क्रियाश्रयाः ॥ बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥ १९ ॥ स एष भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ॥ स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन्सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥ कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया ॥ आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभू-षुरुपाददे ॥ २१ ॥ कालाद्गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः ॥ कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥ २२ ॥ महतस्तु विकुर्वाणाद्रजःसत्त्वोपबृंहितात् ॥

कोक्षोभितकरनेवाला काल,तिसके परिणामका हेतु स्वभाव और भोक्ताजीव यहसबही पदार्थ यथार्थदृष्टिसे देखनेपर वासुदेवभगवान्से भिन्न नहीं हैं ॥ १४ ॥ अतः सबवेदनारायणपर हैं, देवताभी नारायणसेही उत्पन्नहुए हैं, स्वर्गादि लोक, अग्निष्टोम आदि यज्ञ, अष्टाङ्गयोग, अपनेधर्मका आचरणरूप तप, साक्षात् ज्ञान और मोक्षरूप गति यह सब नारायणपरही हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ सबके साक्षी, सबके मूलकारण, सर्वात्माईश्वरके कटाक्षसे प्रेरितहुआ और उनकाही उत्पन्नकराहुआ मैं. उनकेही रचनेयोग्य इसजगत्की रचनाकरताहूँ ॥ १७॥ उनही सर्वव्यापक निर्गुण परमेश्वरने जगत् की स्थिति,उत्पत्ति और संहार करनेकेनिमित्त मायाके द्वारा सत्वरज और तम इन तीन गुणों को स्वीकार कियाहै ॥ १८॥ वह तीनोंगुण पञ्चमहाभूत देवता और इन्द्रियोंके आश्रयरूप होकर, तिन देह इन्द्रियादिके विषैं ' मैं और मेरा ' इत्यादि अभिमान करनेवाले वास्तवमें भगवान् का अंश होनेके कारण सदा मुक्त परन्तु मायाको स्वीकार करेहुए जीवको बांधतेहैं॥ १९ ॥ हेनारद ! आवरण(परदा) करनेवाले सत्वरज और तम इन तीन गुणोंके कारण जिनका स्वरूप जीवकी बुद्धिमें नहीं आता ऐसे अधोक्षज भगवान्, सबके और मेरेभी नियन्ताईश्वरहैं ॥ २० ॥ तिस माया के नियन्ता परमेश्वरने अपने अनेकरूप होनेकी इच्छाकरी तब उन्होने अपनी मायासे अपने स्वरूपमें इच्छानुसार प्राप्तहुए, काल, जीवोंके अदृष्ट, कर्म और स्वभावको स्वीकार करा ॥ २१ ॥ तब ईश्वरने स्वीकार करेहुए कालसे, सत्व, रज और तम इनतीनगुणों में विषमता (न्यूनाधिकभाव) होकर, ईश्वरके स्वीकार करेहुए स्वभावसे तीन गुणों का रूपान्तर हुआ और कर्मसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ तदनन्तर सत्वगुण और रजोगुणसे वृद्धिको प्राप्तहुए महत्तत्त्व के विकारको प्राप्त होने पर तिससे, जिसमेंतमोगुण

तमःप्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ २३ ॥ सोऽहंकार इति प्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्त्रिधा ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ॥ द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥२४॥ तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः ॥ तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिंगं यद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ २५ ॥ नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः ॥ परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥ २६ ॥ वायोरपि विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः ॥ उदपद्यत तेजो वै रूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥ २७ ॥ तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदंभो रसात्मकम् ॥ रूपवत्स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात् ॥ २८ ॥ विशेषस्तु विकुर्वाणादंभसो गंधवानभूत् ॥ परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥ २९ ॥ वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैका-

अधिक है ऐसा द्रव्य (पञ्चमहाभूत) ज्ञान (मन और देवता) क्रिया (इन्द्रियें) इनसे युक्त एक विकार उत्पन्नहुआ ॥ २३ ॥ उसको अहङ्कार कहते हैं, हे समर्थनारद ! वह अहङ्कार विकार (रूपान्तर) को प्राप्तहोनेलगा तब उसके सात्विक, राजस और तामस यह तीन भेदहुए; उनको क्रमसे द्रव्यशक्ति (पञ्चमहाभूत उत्पन्न करनेवाला) क्रियाशक्ति (इन्द्रिय उत्पन्न करनेवाला) और ज्ञानशक्ति (अन्तःकरण तथा देवताओंको उत्पन्न करनेवाला) माना है ॥ २४ ॥ फिर विकारको प्राप्त होतेहुए तामस अहङ्कारसे आकाश उत्पन्नहुआ तिसका सूक्ष्मरूप और मुख्यगुण शब्द है, जिससे द्रष्टा (देखनेवाला) और दृश्य (दीखनेवाली वस्तु) समझेजाते हैं, जैसे भीतकी आड़में खड़ाहोकर कोई पुरुष 'यहहस्ती, यह हस्ती' ऐसे कोलाहलकरे तो उसहस्तीशब्दसे देखनेवाला और दीखनेवाली वस्तु यह दोनों जानेजाते हैं कि—भीतकीआड़में कोईपुरुष है और वह हस्तीको देखरहा है ॥ २५ ॥ तदनन्तर विकारको प्राप्त होतेहुए तिस आकाशसे स्पर्श गुणवाला वायु उत्पन्नहुआ वह आकाशकी अनुवृत्तिसे शब्दवान्भी हुआ, तिस वायुकाही भेद शरीरधारणका साधन प्राण हुआ तथा वह वायुही इन्द्रिय, मन और शरीरकी चेष्टाका कारणहुआ ॥ २६ ॥ तदनन्तर काल, कर्म और स्वभाव इनसे विकारको प्राप्तहुए वायुसे रूप गुणवाला तेज उत्पन्नहुआ, वह वायु तथा आकाशके गुणकी अनुवृत्ति होनेसे स्पर्श और शब्दसेभी युक्तहुआ ॥२७॥ तदनन्तर विकारको प्राप्त होनेवाले तेजसे रस गुणवाला जल उत्पन्नहुआ, वह जल, तेज, वायु तथा आकाशके प्रवेशसे युक्तहोनेके कारण रूप स्पर्श और शब्दयुक्तभी हुआ ॥२८॥ तदनन्तर विकारको प्राप्तहोतेहुए जलसे गन्ध गुणवाली पृथ्वी उत्पन्नहुई, उसमें कारणभूत आकाश जल तेज और वायुका प्रवेश होनेसे शब्द, स्पर्श, रूप और रस यहगुणभी हुए ॥ २९ ॥ सात्विक अहङ्कारसे मन और उसका अधिष्ठाता चन्द्रमा उत्पन्नहुआ, तथा तिसही सात्विक अहङ्कारसे दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और

रिका दश ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥ ३० ॥ तैजसात्तु विकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन् ॥ ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ ॥ श्रोत्रं त्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेढ्रांघ्रिपायवः ॥ ३१ ॥ यदैतेऽसंगता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः ॥ यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥ ३२ ॥ तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः ॥ सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥ ३३ ॥ वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् । कालकर्मस्वभावस्थो जीवो जीवमजीवयत् ॥ ॥ ३४ ॥ स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः ॥ सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥ ३५ ॥ यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति मनीषिणः ॥ कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥ ३६ ॥ पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ॥ ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥ ३७ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां

प्रजापति यह दश देवता उत्पन्नहुए, तिनमें पहिले पांच देवता श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण इन पांच ज्ञानेन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं, तथा दूसरे पांच देवता—वाणी, पाणी, चरण गुदा और उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) इन पांच कर्मेन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं ॥ ३० ॥ राजस अहङ्कारके विकारको प्राप्त होनेपर तिससे—श्रोत्र, त्वचा, घ्राण, दृष्टि और जिह्वा यह पांच ज्ञानेंद्रियें तथा वाणी, हस्त, चरण, पायु (गुदा) और उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) यह पांच कर्मेन्द्रियें, तथा ज्ञानशक्ति युक्तबुद्धि, क्रियाशक्तियुक्तप्राण, यह उत्पन्नहुए ३१ हेब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ नारद ! पञ्चमहाभूत, इन्द्रियें, मन और सत्वरजतम यह तीनोंगुण यह सब पदार्थ जब मिलेहुए नहींथे तब सुख आदि भोगोंके भोगनेके साधनरूप शरीरको रचनेमें समर्थ नहींहुए ॥ ३२ ॥ तदनन्तर भगवान्‌की शक्तिके प्रेरणाकरनेपर वह पंच महाभूत आदि पदार्थ एक एकमें परस्पर मिलकर और प्रधानगुणात्म (कार्यकारणरूप) अंशको ग्रहण करके, समष्टि (समूहरूप) और व्यष्टि (अवयवरूप) इस दोप्रकारके पिण्डब्रह्माण्डरूप शरीरके रचनेको समर्थहुए ॥ ३३ ॥ तिस शरीरके सहस्रों वर्ष पर्यन्त जलमें निर्जीव रहने के अनन्तर परमात्माने कालकर्म स्वभावमें प्रवेश करके तिस निर्जीव शरीरको सजीव किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर जिनके अनेकों जङ्घा, चरण, बाहुऔर नेत्रहैं तथा जिनके सहस्रों मुख और शिरहैं ऐसे परमात्मा ब्रह्माण्डको भेदकर पुरुषरूपसे तिसमेंसे बाहर निकले ॥ ३५ ॥ विद्वान्‌पुरुष जिन परमेश्वरके अङ्गोंसे ब्रह्माण्डमेंकेचौदह लोकोंकी कल्पना करतेहैं तिसमें कमरसे नीचेके सात अङ्गोंसे अतलआदि सातलोकों की और कमरके ऊपरके जङ्घाआदि सात अङ्गोंसे भूआदि सातलोकों की कल्पना करतेहैं ३६ तिस विराट् पुरुषके मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रियहैं और जङ्घाओंसे वैश्य उत्पन्नहुए औरचरणोंसे शूद्र उत्पन्नहुए ॥ ३७ ॥ इस विराट्रूप ईश्वरके चरणोंसे भूलोककी कल्पना करी

भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥ ३८ ॥ ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् ॥ मूर्द्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥ ३९ ॥ तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ॥ जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जंघाभ्यां तु तलातलं ॥ ४० ॥ महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलं ॥ पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥ ४१ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२ ॥ इ० भा० म० द्वि० पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ छ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः ॥ हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥ ॥ १ ॥ सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने ॥ अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥ २ ॥ रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी ॥ कर्णौ

है, नाभिसे भुवर्लोककी कल्पनाकरी है, हृदयसे स्वर्गलोक और वक्षःस्थलसे महर्लोक कल्पना कियागयाहै ॥ ३८ ॥ ग्रीवामें जनलोककी, दोनोस्तनोंसे तपःलोककी, मस्तकों से सत्यलोककी कल्पनाकरीहै और वैकुण्ठ उत्पन्न करेहुए लोकोंमें नहींहै किन्तु सनातन है ॥ ३९ ॥ तिस पुरुषकी कमरसे अतललोककी, ऊरुसे वितललोककी, घुटनोंसे पवित्र सुतललोककी और जङ्घाओंसे तलातल लोककी कल्पना करीहै ॥ ४० ॥ गुल्फों (पैरों के ऊपरकी गांठों) से महातलकी, प्रपदों (पैरोंके पञ्जों) से रसातलकी, चरणकेतलुओं से पातालकी कल्पना करीहै इसप्रकार वह पुरुष चौदहलोकरूपहै ॥ ४१ ॥ कोई तीनही लोकोंकी कल्पना इसप्रकार कहतेहैं कि-तिस पुरुषके चरणोंसे भूलोक और नाभिसे भुवःलोक कल्पित हुआहै तथा मस्तकसे स्वर्गलोककी कल्पना हुई है, इसप्रकार यह लोकोंकी कल्पना है ॥ ४२ ॥ इति द्वितीयस्कन्धमें पांचवांअध्याय समाप्त ॥ * ॥ ब्रह्माजी बोले कि-हेनारद!सकल प्राणियोंकीवाणी और उनकेअधिष्ठात्री देवता और अग्निका उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुषका मुख है, तिस विराट्पुरुषकी त्वचा आदि सात धातुएं गायत्रीआदि सात छन्दोंकी उत्पत्तिस्थानहैं और तिस विराट्पुरुषकी जिह्वा, हव्य (देवताओंका अन्न)कव्य (पितरोंका अन्न) अमृत (यज्ञमें बचाहुआ मनुष्यका अन्न) मधुर आदि छःरस,सकल प्राणियोंकी जिह्वा और वरुणदेवता इन सबका उत्पत्तिस्थानहै ॥१॥ और तिसके नासापुट (नथौड़)-सबके प्राण और वायुके परम उत्पत्तिस्थानहैं,उन की घ्राणइन्द्रिय,अश्विनीकुमार औषधि तथा साधारण और विशेष गन्धका उत्पत्तिस्थान है ॥ २ ॥ तिनकी चक्षुइन्द्रिय, रूप और प्रकाशका उत्पत्तिस्थानहै तिनके नेत्रोंके गोलक, सूर्य और स्वर्गके उत्पत्तिस्थानहैं, उनके कर्ण,दिशा और तीर्थोंके उत्पत्तिस्थानहैं उनकी श्रोत्रइन्द्रिय आकाश और शब्दका उत्पत्तिस्थान है, उनका शरीर, सुवर्ण आदि पदार्थ और शोभाका उत्प-

दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ॥ तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनं ॥ ३ ॥ त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ॥ रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः ॥४॥ केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युतां ॥ बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥ ५ ॥ विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ॥ सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदं ॥ ६ ॥ अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः ॥ ७ ॥ पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद ॥ हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥ ८ ॥ पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः ॥ नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥ ९ ॥ अव्यक्तरससिंधूनां भूतानां निधनस्य च ॥ उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥ १० ॥ धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च ॥ विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥ ११ ॥ अहं भवान्भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः ॥ सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः

त्तिस्थानहै ॥ ३ ॥ उनकी त्वचा स्पर्श वायु और सकल यज्ञोंका उत्पत्तिस्थान है तिन विराट्पुरुषके शरीरपरके रोम सकल वृक्षोंके वा जिनवृक्षोंके द्वारा यज्ञकी उत्तमप्रकारसें सिद्धि होती है तिनके उत्पत्तिस्थान हैं ॥ ४ ॥ इन विराट्पुरुषके मस्तकपरके केश मूँछ और नख यह मेघ विजली पाषाण और लोहेका उत्पत्तिस्थान हैं तिनके बाहु इन्द्रादि लोकपाल तथा बहुधा रक्षाकरनेवाले राजाओंके उत्पत्तिस्थान हैं ॥ ५ ॥ उनकेचरणों का रखना, भूलोक अन्तरिक्षलोक, स्वर्गलोक प्राप्तहुई वस्तुकी रक्षा और भयसे रक्षा इनका उत्पत्तिस्थान है, विराट्रूप श्रीहरिके चरण सकलमनोरथपूर्ण होनेके वरदानका स्थान हैं ॥ ६ ॥ तिनविराट्पुरुषकी शिश्न इन्द्रिय, जल वीर्य मेघ सृष्टि और प्रजापति इनका उत्पत्तिस्थान है, तिनविराट्पुरुषकी उपस्थ इन्द्रिय, सन्तान उत्पन्न करनेके निमित्त करे हुए स्त्रीसम्भोग से जो सुखका अनुभव होताहै तिसका उत्पत्तिस्थान है ॥ ७ ॥ हेनारद ! तिसपुरुषकी गुदा, यम मित्र और मलत्याग इनका उत्पत्तिस्थान है, उनका गुदास्थान, हिंसा दरिद्रता मृत्यु और नरकका उत्पत्तिस्थानहै ॥ ८ ॥ तिन विराट्पुरुषका पृष्ठ (पीठ), तिरस्कार अधर्म और अज्ञानका उत्पत्तिस्थान है. उनकी नाड़ी, शोणभद्र आदि नद और भागीरथी आदि नदियोंकी उत्पत्तिस्थानहै. और उनकी अस्थियों (हड्डियों) का समूह, पर्वतोंका उत्पत्तिस्थानहै. ॥ ९ ॥ उनका उदर (पेट), माया अन्नआदिका रस समुद्र और सकल प्राणियोंके प्रलयका स्थानहै. उनका हृदय सकल प्राणियोंके मनका उत्पत्तिस्थानहै ॥ १० ॥ हेनारद ! तिन विराट्पुरुषका चित्त, धर्म—मैं-तू-सनकादिऋषि-शिव साक्षात् आत्मज्ञान और शुद्ध अन्तःकरणका उत्पत्तिस्थानहै ॥ ११ ॥ मैं, तू, महादेव,

॥ १२ ॥ गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः ॥ पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः ॥ १३ ॥ अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः ॥ ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितस्तनयित्नवः ॥१४॥ सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥ १५ ॥ स्वधिष्ण्यं प्रतपन्प्राणो वहिश्च प्रतपत्यसौ ॥ एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ॥ १६ ॥ सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ॥ महिमैष ततो ब्रह्मन्पुरुषस्य दुरत्ययः ॥ १७ ॥ पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ॥ अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥ १८ ॥ पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः ॥ अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधोऽबृहद्व्रतः ॥ १९ ॥ सृती विचक्रमे विष्वङ्सा-

तुमसे आगे उत्पन्नहुए यह सनकादिऋषि, देवता, दैत्य, मनुष्य, हस्ती, पक्षी, मृग, सर्प; ॥ १२ ॥ गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, अजगर, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर चारण, वृक्ष, ॥ १३ ॥ तथा और अनेकों जलमें भूमिपर तथा आकाशमें रहनेवाले जीव, ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु, तारे, बिजली, मेघ ॥ १४ ॥ आदि पीछे उत्पन्नहुए विद्यमान और आगे को होनेवाले सकल चराचरजीव यहसब पुरुषरूपही हैं, यह सकलजगत् तिसपुरुष से व्याप्त है, और वह फिर तिस जगत्के बाहर दश अङ्गुल अधिकहै (यहाँ दशअंगुल शब्द अधिकता दिखाने के निमित्तहै परिमाण दिखानेवाला नहीं है) ॥ १५ ॥ जिसप्रकार आकाशम दीखने वाला यह सूर्य, अपने मण्डलको प्रकाशित करके तिसके बाहरके जगत्कोभी प्रकाशित करताहैं तैसेही विराट् पुरुष अपने देहको प्रकाशित करके ब्रह्माण्डको भी भीतर और बाहरसे प्रकाशित करता है ॥ १६ वहही परमेश्वर निर्भय मोक्षपदका स्वामी है क्योंकि—वह मृत्यु देनेवाले कर्मफलको लांघेहुए है अतः हेनारद ! ईश्वर सर्वरूप होकरभी नित्यमुक्त और मोक्ष का दाता है, इसकारण तिन विराट् पुरुष परमेश्वरकी महिमा अचिन्त्य है ॥ १७ ॥ भू आदि लोक तिन विराट् पुरुषके अवयवरूप कहेहैं, सो तिनके अवयवरूप लोकोंके आश्रयसे सकल प्राणियोंकी स्थिति होती है, ऐसा विद्वानोंका कथन है; भूलोक भुवःलोक और स्वर्गलोक इन तीनों लोकोंका मस्तकरूप जो महःलोक तिसका भी मस्तकरूप जो जनलोक तपःलोक और सत्यलोक इन तीनोंमें क्रमसे अमृत (अविनाशीसुख) क्षेम(सुखरूपता) और अभय (मोक्ष) स्थितहैं १८ और वहही त्रिलोकीके बाहर के जन तप और सत्य यह तीनलोक क्रमसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्न्यस्त इनआश्रमके पुरुषोंके स्थानहैं और चौथागृहस्थी तो ब्रह्मचर्यव्रतरहित होनेके कारण त्रिलोकीके भीतरहीहै ॥ १९ ॥ विषयभोगकी साधन जो कर्मरूप अविद्या और मोक्षप्राप्तिकी साधन जो उपासनारूप विद्या इन दोनोंका ही आश्रय करके रहने वाला जो पुरुष (जीव) वह, कर्मफलभोगसहित दक्षिणमार्गकरके और कर्मफलभोगरहित

शनानशने उभे ॥ यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥ २० ॥ यस्माद-
ण्डं विराड् जज्ञे भूतेंद्रियगुणात्मकः ॥ तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन्
॥ २१ ॥ यदास्य नाभ्यान्नलिनादहमासं महात्मनः ॥ नाविदं यज्ञसंभारा-
न्पुरुषावयवादृते ॥ २२ ॥ तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः ॥ इदं च दे-
वयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥ २३ ॥ वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो
जलं ॥ ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥ २४ ॥ नामधेयानि मंत्रा-
श्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ॥ देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तन्त्रमेव च ॥ २५ ॥
गतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणं ॥ पुरुषावयवैरेते सम्भाराः सम्भृता म-
या ॥ २६ ॥ इति संभृतसम्भारः पुरुषावयवैरहं ॥ तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवा-
यजमीश्वरम् ॥ २७ ॥ ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव ॥ अयजन्व्यक्त-
मव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥ २८ ॥ ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे ॥
पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥२९॥ नारायणे भगवति तदिदं

उत्तरमार्ग करके गमन करता है२०जिस ईश्वरसे ब्रह्माण्ड उत्पन्नहुआहै और तिसब्रह्माण्ड
में भूत, इन्द्रिय और गुणस्वरूप विराट् पुरुष उत्पन्नहुआ वह ईश्वर, जगत् विराट्शरीर तथा
ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर इनके बाहर भी "जैसे सूर्य अपने मण्डलको प्रकाशित करके बा-
हर भी प्रकाश करता है तैसे ही" विराजमान रहता है ॥ २१ ॥ हेनारद ! जब मैं इन वि-
राट्अन्तर्यामी महात्मा ईश्वरके नाभिकमल से उत्पन्नहुआ तब ईश्वरकी यज्ञरूपसे आरा-
धना करनेको मेरी इच्छा हुई परन्तु तिन विराट् पुरुष के अवयवों के सिवाय और कोई यज्ञ
की सामग्री मुझे मिली ही नहीं ॥ २२ ॥ हे श्रेष्ठनारद ! यज्ञका पशु, यज्ञका खम्भा कुशा
यह यज्ञकी भूमि, अनेकों गुणवाला वसन्तकाल, पात्र आदि वस्तुएँ, तण्डुल आदि औषधि
घृतादि द्रव्य, मधुर आदि रस, सुवर्ण आदि धातु, जल, ऋक् यजु और साम यह तीनों वेद
चातुर्होत्र आदि कर्म, ज्योतिष्टोम आदि नाम, स्वाहा आदि मन्त्र, दक्षिणा, सब कर्मों के नि-
यम, देवताओंके उद्देश, पद्धतिके ग्रन्थ, सङ्कल्प, अनुष्ठानकी रीति, विष्णुक्रम आदि गति,
देवताओंके ध्यान, प्रायश्चित्त, और कियेहुए कर्म भगवान्को समर्पणकरना, यह यज्ञकी
सामग्री तिस पुरुषके अवयवोंसेही मैंने कल्पनाकरी ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस
प्रकार पुरुषके अवयवों से यज्ञकी सामग्री इकट्ठीकरके मैंने उससामग्रीके द्वारा यज्ञ पुरुष
परमेश्वरका यज्ञसे पूजनकिया ॥ २७ ॥ तदनन्तर यह जो तेरे भ्राता मरीचि आदि
नौ प्रजापति हैं, इन्होंने एकाग्रचित्तसे वास्तवमें अव्यक्तहोकरभी इन्द्रादिरूपमें प्रकटहुए
तिन विराट्रूप यज्ञपुरुषका यजनकिया॥२८॥फिर मनु, अन्य ऋषि, पितर, देवता, दैत्य और
मनुष्योंनेयोग्यसमयमें अपने२ बहुतसे यज्ञोंके द्वारा जगद्व्यापकतिनपरमेश्वरकायजन(पूजन)
किया२९इसप्रकारजो निर्गुण होकरभीजगत्की उत्पत्ति आदिके समय मायाके द्वाराअनेकों

विश्वमाहितं ॥ गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥ ३० ॥ सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ॥ विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥ ३१ ॥ इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि ॥ नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकं ॥ ३२ ॥ न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ॥ न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥ ३३ ॥ सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः ॥ आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तं नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः ॥ ३४ ॥ नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलं ॥ यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वान्तमथापरे कुतः ॥ ३५ ॥ नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ॥ तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥ ३६ ॥ ये-

गुणोंकोस्वीकार करतेहैं तिन भगवान् नारायणके विषै यह जगत् स्थितहै॥ ३० ॥ तिनकाहीप्रेरणा कराहुआमैं जगत्की उत्पत्ति करताहूँ, उनके वशीभूत शिव इस जगत्का संहारकरते हैं और त्रिगुणात्मक मायाको स्वीकार करनेवाले वही नारायण विष्णुरूपसे इस जगतका पालन करतेहैं॥ ३१ ॥ हेतातनारद तूनेमुझसे जो प्रश्नकियाथा, यह तिसका उत्तर मैंनेतेरेअर्थ कहा, कार्य वा कारणरूप जो २ उत्पन्न होनेवाले पदार्थहैं वह परमेश्वरसे भिन्न नहींहैं ३२ हेनारद ! मैंने पहिले प्रेमरूपभक्ति करके गद्गदहुए चित्तसे श्रीहरिका ध्यानकियाथा अतः मेरी वाणी कभी भी मिथ्या नहीं होतीहै, मेरे मनकी गति (ज्ञान) किसी समयभीअसत्य नहीं होतीहै और मेरी इन्द्रियें खोटेमार्गकी ओरको कभीभी प्रवृत्त नहीं होतीहैं ॥ ३३ ॥ हेनारद ! भक्तिके विना कोईभी ज्ञान नहीं होताहै, इसविषयमें मैं अपनाही अनुभवतुमसे कहताहूँ, वेदरूप, तपःस्वरूप, मरीचिआदि सकल प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ और उनके वन्दनीय तथा उत्तम योगाभ्यास करके एकाग्रचित्त हुए मैंनेभी पहिले जिन भगवान्से अपनीउत्पत्ति हुईहै उनको बहुत समयपर्यन्त नहींजाना॥ ३४ ॥ तबशरणागत प्राणियोंकासंसारबंधन दूरकरनेवाले, कल्याणके स्थान और परममङ्गलरूप तिन ईश्वरके चरणको मैंनेअनन्यभावसे शरणली, तिससे, 'तिन भगवान्का माहात्म्य अचिन्तनीय है' ऐसा मुझेबोधहुआ, क्योंकि– जैसे आकाश अपनाअन्तनहीं पाता है तैसेही, वहभगवान् ईश्वर स्वयंभी, अपनी मायाके विस्तार का परिमाण नहीं जानसक्ते हैं फिर दूसरा कौनजानेगा ? तात्पर्य यह है कि–यदि आकाशपुष्प का ज्ञान न हो तो उससे सर्वज्ञपने में त्रुटि नहीं होती है ॥ ३५ ॥ क्योंकि– जिन भगवान् का वास्तविकरूप मुझे, तुझे और तेरे भ्राताओंको तथा महादेवजी की भी समझने में नहीं आताहै फिर और देवता तो समझहीं कैसेसक्ते हैं? अधिक तो क्या, तिनकी मायासे हमारी बुद्धियों के मोहित होनेके कारण उनकी मायाके रचेहुए इस जगत्को भी हम अपनी बुद्धि के अनुसारही जानते हैं पूर्णरीति से नहीं ॥ ३६ ॥ हेनारद ! मैं जिनमें अग्रणी

स्यावतारकर्माणि गायंति ह्यस्मदादयः ॥ न यं विदन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥ ३७ स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः ॥ आत्मात्मन्यात्मनात्मानं संयच्छति च पाति च ॥ ३८ ॥ विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितं ॥ सत्यं पूर्णमनाद्यंतं निर्गुणं नित्यमद्वयं ॥ ३९ ॥ ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशांतात्मेंद्रियाशयाः ॥ यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतं ॥ ४० ॥ आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ॥ द्रव्यं विकारो गुण इंद्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥ ४१ ॥ अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च ॥ स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥ ॥ ४२ ॥ गंधर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ॥ ये वा ऋषीणामृषभाः पितॄणां दैत्येंद्रसिद्धेश्वरदानवेंद्राः ॥ अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूतकूष्मांडयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥ ४३ ॥ यत्किंच लोके भगवन्महस्वदोजःसहस्वद्बलव-

हूँ ऐसे अनेकों पुरुष, जिनके अवतारोंकी लीलाओं का गानमात्र करते हैं परन्तु उसको यथार्थरीति से जानते नहीं हैं ऐसे भगवान्को मेरा प्रणाम है ॥ ३७ ॥ वह यह जन्मरहित पुराणपुरुष, प्रत्येक कल्पमें आपही कर्त्ता होकर अपनेमें अपनेद्वारा अपनेकोही उत्पन्न करते हैं पालन करते हैं और संहार करतेहैं ॥ ३८ ॥ तिन परमेश्वरका वास्तविकस्वरूप केवल शुद्ध ज्ञानमय, सबका अन्तर्यामी, संशयआदि रहित, स्थिर, सत्य, पूर्ण, जन्ममरणरहित, निर्गुण. नित्य और अद्वितीय है ॥ ३९ ॥ हेनारद ! जब मुनिजन, अपने देह, इन्द्रिय और मन को शान्त करके स्वाधीन करलेते हैं तबही वह तिस आत्मस्वरूप को जानते हैं और जब वहही प्रकाशवान् आत्मस्वरूप दुष्टपुरुषोंकी कुतर्कोंसे आच्छादित होताहै तब अन्तर्धान होकर उन की समझ में नहीं आताहै ॥ ४० ॥ व्यापक परमात्माका प्रथम अवतार सहस्रशीर्षादियुक्त पुरुषरूपहुआ; काल, स्वभाव, और कार्यकारणात्मक प्रकृति यह उन के शक्तिरूप अवतार हैं, मन, पञ्चमहाभूत, अहङ्कार, सत्वादिगुण, दशइन्द्रियें, ब्रह्माण्डशरीर, शरीराभिमानी जीव, और जगत्के स्थावर जङ्गमरूप सकल पदार्थ उनके सामान्य अवतारहैं ॥ ४१ ॥ मैं, महादेव और विष्णु यह उनके गुणावतारहैं, यह दक्षआदि प्रजापति, नारद, तेरीसमान भक्तजन, इन्द्रादि स्वर्गलोक के पालक गरुड़आदि पक्षियोंके राजा, राजाआदि मनुष्यलोकके रक्षक, पाताललोकके पालन करनेवाले ॥ ४२ ॥ गन्धर्व, विद्याधर, और चारणोंके अधिपति तथा यक्ष, राक्षस, सर्प और नागोंके अधिपति, तथा जो ऋषियोंमेंश्रेष्ठ, पितरोंमें श्रेष्ठ, दैत्यों के स्वामी, सिद्धोंके स्वामी, दानवों के स्वामी तथा और जो प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड (एकप्रकार की भूतयोनि;) जलजन्तु, मृग और पक्षियोंके स्वामी ॥ ४३ ॥ तथा इसलोक में और जो कोई वस्तु—ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रियोंकाबल, मनकीशक्ति, शरीरशक्ति वा विशेष क्षमा

त्समाविव ॥ श्रीर्ह्रीर्विभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपं ॥ ४४ ॥ प्राधान्यतो यानृष आमनंति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः॥ आपीयतां कर्णकषायशोषानतुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥ ४५ ॥ इति भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥ ब्रह्मोवाच ॥ यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः ॥ अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥ १ ॥ जातो रुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायां ॥ लोकत्रयस्य महतीमहरद्यदार्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥ २ ॥ जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ॥ ऊचे ययात्मशमलं गुणसङ्गपङ्कमस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥ ३ ॥ अत्रेरपत्यमभिकांक्षत आह तुष्टो दत्तो मयाहमिति यद्भगवान्स

से युक्तहो, अथवा जिसमें—शोभा, निन्दित कर्म की लज्जा, सम्पत्ति और बुद्धि यह विशेषरूपसे हों तथा जिसका वर्ण आश्चर्यकारकहो तिसपरभी वह वस्तु रूपवान् हो वा जो अरूपहो इनसबको ईश्वरकाहीरूपजाने ॥ ४४ ॥ हे नारद ! व्यापक पुरुषके जोकोई विशेष सुन्दर लीलावतार माने हैं उनको मैं तेरेअर्थ क्रमसेकहताहूँ श्रवणकर, वह असत् वार्त्ताओं के श्रवणसे होनेवाली कर्णोंकी मलिनता को दूरकरतेहैं ॥ ४५ ॥ इति द्वितीय स्कन्धमें षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले कि—हे नारद ! जब अनन्त भगवान् ने सर्वयज्ञमूर्त्ति वाराहरूप धारण करके प्रलयकालके जलमें डूबीहुई पृथ्वीको उबारनेके निमित्त उद्योग कियाथा, उससमय उन्होने तिस महासमुद्रमें अपने सन्मुख आयेहुए अतिप्रसिद्ध हिरण्याक्ष नामक दैत्यको अपनीदाढ़से, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको खण्ड२ करडालता है तैसे, दोखण्ड करदिया ॥ १ ॥ तिनहीनारायणने रुचिनामक प्रजापतिसे उनकी आकूतिनामक स्त्रीके उदर में सुयज्ञनामक अवतार धारणकरके, अपनी दक्षिणानामक स्त्रीके विषैं सुयमनामक देवता उत्पन्नकरे, और उन्होंनेही स्वयं इन्द्रहोकर त्रिलोकीके बड़े२ दुःखोंको दूरकिया अतः प्रथम उनका सुयज्ञनाम होनेपरभी स्वायम्भुव मनुने फिर उनका हरि नामरक्खा ॥ २ ॥ हेविप्र नारद ! तिनही ईश्वरने कर्दमऋषिके घरमें उनकी देवहूतिनामक स्त्रीके विषैं नौ बहिनोंसहित कपिलनामक अवतार धारणकरके अपनी माताको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया, जिस ब्रह्मविद्या करके तिस देवहूतिने उसहीजन्ममें, अपने अन्तःकरणको मलिन करनेवाले सत्वादि गुणोंकी आसक्तिरूप मलका सर्वथा त्यागकिया और वह तिन कपिलभगवान्की मोक्षगतिको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ वह भगवान्, पुत्रप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले अत्रिऋषिसे प्रसन्न होकर कहनेलगे कि—'मैंने अपनेको तुम्हेंदिया, अर्थात् मैंही तुम्हारा पुत्र होऊँगा, ऐसा कहकर वह विष्णु भगवान्ही उनके पुत्रहुए, सो उस अवतारमें उनका नाम दत्तहुआ, जिन दत्तात्रेयके च-

दुस्तः ॥ यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥ ४ ॥ तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् ॥ प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग् जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ॥ दृष्ट्वात्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः ॥ ६ ॥ कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यं ॥ सोऽयं यदन्तरमलं निविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥ ७ ॥ विद्धः सपत्न्युदितपत्रिभिरन्ति राज्ञो बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ॥ तस्मा अदाद्ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥ ८ ॥ यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतन्तम् ॥ त्रात्वाऽर्थितो जगति

रणकमलोंकी रजसे पवित्रहुए यदु—सहस्रबाहु आदि राजे इसलोक और परलोकमें भुक्ति मुक्तिरूप ऐश्वर्यको प्राप्तहुए ॥ ४ ॥ हे नारद ! सृष्टिके आरम्भमें मैंने, पृथक् २ लोकोंको उत्पन्नकरनेकी इच्छासे तप किया, तब मेरे अखण्डित तपसे प्रसन्नहोकर वह भगवान् आपही सनक सनन्दन सनातन और सनत्कुमार इनचाररूपोंसे प्रकटहुए, और तिन कुमार रूपधारी श्रीहरिने, पूर्वकल्पके प्रलयकालमें नष्टप्रायहुए आत्मज्ञानको इसकल्पमें उत्तमप्रकारसे वर्णनकिया, तिसको सुनतेही ऋषियोंने अपने अन्तःकरणमें उसका प्रत्यक्ष अनुभवकिया ॥५॥ दक्षकी मूर्तिनामक पुत्रीकेविषैं धर्मनामक ऋषिसें ईश्वरने अलौकिकतपस्वी नर और नारायण यह दो अवतार धारणकरे, तिन नरनारायणका तपभङ्ग करनेकेनिमित्त इन्द्रनेस्वर्गसे कामदेवकी सेनारूप जो अप्सरा भेजीथीं उन्होंने तहां भगवान्की उत्पन्न करीहुईअपनी समान दूसरी अप्सरादेखीं और लज्जित होकर तिन नरनारायण का तप भङ्गकरनेको समर्थ नहीं हुई ॥ ६ ॥ महादेवजीकी समान बड़े २ पुण्यात्मा पुरुष, अपनी क्रोधदृष्टिसे कामदेवको भस्म करडालतेहैं, परन्तु वह अपनेको जलानेवालेभी असह्य क्रोध को नहीं भस्म करतेहैं; अर्थात् वह क्रोधके वशीभूत होतेहैं; वह क्रोधभी जिनके निर्मल अन्तःकरणमें प्रवेश करनेमें अत्यन्त भयमानताहै, तिन नरनारायणके मनमें फिर कामतोप्रवेश करेगाही कैसे ? अर्थात् प्रवेश करही नहींसक्ता ॥ ७ ॥ उत्तानपाद राजाके समीपमेंसौतेलीमाताके वाक्यरूप बाणों से दुःखितहुए ध्रुवजी बालकहोकरभी निकलकर वनमें तप करनेको चलेगये; तब भगवान्ने प्रसन्न होकर, स्तुति करनेवाले उस बालककोध्रुवपददिया जिस ध्रुवपदकी उसके नीचे वसनेवाले कश्यप आदि सप्तऋषि स्तुति करतेहैं ॥ ८ ॥ जबराजा वेन धर्ममार्गको त्यागकर ब्राह्मणोंसे छल करनेलगा तब ब्राह्मणोंके वाक्यरूपी वज्रसेउसके बल और ऐश्वर्य दोनो नष्ट होकर नरकमें पड़नेपर ऋषियोंके प्रार्थना करेहुए जिन भगवान्ने

पुत्रपदं च लेभे दुग्धां वसूनि वसुधा सकलानि येन ॥ ९ ॥ नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम् ॥ यत्पारमहंस्यमृषयः प-दमामनंति स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः ॥ १० ॥ सत्रे ममास भगवा-न्हयशीरषाऽथो साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ॥ छन्दोमयो मखमयोऽखिल-देवतात्मा वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥ ११ ॥ मत्स्यो युगांतसमये मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ॥ विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥ १२ ॥ क्षीरोदधावमरदानवयूथपाना-मुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः ॥ पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणो-द्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ॥ १३ ॥ त्रैविष्टपोरुभयहा स नृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदं-ष्ट्राकरालवक्त्रम् ॥ दैत्येन्द्रमाशु गदयाऽभिपतंतमारादूरौ निपात्य विददार नखैः स्फु-

तिस वेनराजाके शरीरसे पृथुनामक अवतार धारण करके उसको अधोगतिसे वचाया और जगत्में पुत्रनामकी सार्थकता प्राप्तकरी तथा जगत्के जीवनके निमित्त गोरूप पृथ्वीको दुह-कर तिससे अन्नादिसकल वस्तुओंको रचा॥९॥यहीभगवान् नाभिनामक राजाकी मरुदेवी नामक स्त्रीके ऋषभनामक पुत्रहुए,उससमय इन्होने लोकोंको अपनी दशा जड़की समान दिखानेके निमित्त निरन्तर समाधिरूप योगक्रियाका आचरण किया, तव निजानन्दरूप, आत्मस्वरूपमें मग्न,शान्त इन्द्रियों से युक्त,सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाले और अहन्ता ममतादि सङ्गोंसे रहित थे, अतः अबभी सकल ऋषि तिन ऋषभदेवकी परमहंस आश्रमदशाकी स्तुति करते हैं॥१०॥तदनन्तर साक्षात् यज्ञपुरुषरूप तिनहीं भगवान्‌ने मेरे यज्ञमें हयग्रीवनामक अवतारधारण करा तिसका वर्ण सुवर्णकी समानथा; सर्ववेदरूप यज्ञरूप और सकलदेवता रूप तिन हयग्रीव भगवान्के श्वासलेते समय उनके नथोडोंमेंसे सुन्दर वेदवाणी प्रकटहुई ॥ ११ ॥ युगके अन्तसमय में होनेवाले विष्णुभगवान्के मत्स्यावतार को वैवस्वत नामक मनुने देखा वह,पृथ्वीरूप नौकाका आश्रय होनेके कारण सकलही जीवसमूहों के आश्रय हुए;तिन मत्स्यरूप ईश्वरनें मेरे मुखसे गिरेहुए वेदोंको ग्रहण करके महाभयङ्कर प्रलयकालके जलमें बड़े आनन्दके साथ-क्रीड़ाकरी ॥ १२ ॥ देवसमूह और दानवसमूहों की रक्षा करनेवाले महाबली देवते और दैत्य अमृतपानेके निमित्त जब क्षीरसमुद्रको मथरहेथे तव आदिदेव ने कूर्मरूप धारणकरके अपनी पीठपर मंदराचल को धारण किया; उससमय तिस पर्वतकी परिभ्रमण(घूमना)रूप सुखकारक रगड़से पठिकी कण्डू(खुजलाहट)शान्तहोनेसे तिनदेवको निद्रालेनेके योग्यसमयप्रतीत हुआ।१३॥देवताओंके भयकानाश करनेवाले तिन भगवान्‌ने घूमतीहुई भ्रुकुटि और दाढ़ोंसे भयङ्कर मुखवाले नृसिंहरूपको धारणकरके अपने सन्मुख गदा लेकर आतेहुए दैत्यराज हिरण्यकशिपुको अपनी जंघाओंपर डालकर नखोंसे

रन्तम् १४ अतःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त आर्तः॥ आहेद-मादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवःश्रवण मङ्गलनामधेय।१५। श्रुत्वा हरिस्तमर-णार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः॥ चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य त-स्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ॥ १६ ॥ ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां लोकान्विचक्रम इमान्यदथाधियज्ञः ॥ क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याच्ञामृते पथि चरन्प्रभुभिर्न चाल्यः ॥ १७ ॥ नार्थो बलेरयमुरुक्रम-पादशौचमापः शिखा धृतवतो विबुधाधिपत्यम् । यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्यदात्मानमंग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥ १८ तुभ्यं च नारद भृशं भ-गवान्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगं ॥ ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्व-दीपं यद्वासुदेवशरणा विदुरंजसैव ॥ १९ ॥ चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो-

विदीर्ण करडाला १४ एकसरोवरके विषैं महाबली नाकेने मुखमें जिसका चरण निगल लियाहै ऐसा एकगजराज परमदुःखितहुआ तब उसने अपनी सूँडमें सरोवरमेंका एकपुष्पलेकर इस-प्रकार नारायणकी प्रार्थनाकरी कि-हे आदिपुरुष ! हे सकल लोकनाथ ! हे पवित्रकीर्ति-युक्त ! हे प्रभो ! आपका नाम केवल श्रवणकरने मात्रसेही सबका मङ्गल करनेवाला है १५ यह वाक्य सुनकर अनन्तपराक्रमी वे भगवान् श्रीहरि, हाथमें चक्र ले, गरुड़जी के क-न्धेपर सवार होकर तहाँ आये और अपने सुदर्शन चक्र से नाकेका मुख विदार (फाड़) कर शरण आयेहुए तिस गजराजकी सूँड पकड़कर कृपावश तिस नाके के मुखमें से बा-हार निकाल लिया ॥ १६ ॥ यज्ञपति विष्णु (वामन) अदितिके पुत्रों में कनिष्ठ (छोटे) होकरभी गुणों करके श्रेष्ठ थे क्योंकि-उन्होंने अपने चरणसे लोकोंको व्याप्त करदिया, ध-र्ममार्ग से चलनेवाला पुरुष, याचना के विना समर्थपुरुषों से भी चलायमान नहीं होसका, अतः तिन वामनभगवान् ने तीनचरण भूमिकी याचना के मिष (बहाने) से राजा बलिसे सकलपृथ्वी ग्रहणकरली ॥ १७ ॥ हेराजन् ! त्रिविक्रमरूप वामनभगवान् का चरण धो-कर वह तीर्थजल मस्तकपर धारणकरनेवाले बलिराजाको देवताओं का आधिपत्य (इन्द्र-पद) मिलना, कोई कहनेयोग्य बड़ा पुरुषार्थ नहीं है; क्योंकि-तिस बलिराजाने तीनचरण भूमि देना स्वीकार करके तिसकथनको पूर्णकरे विना "शुक्राचार्यजी के शाप देनेपरभी" और कुछ करनेकी इच्छा नहीं करी, और तिसने अन्तमें तीसरेचरणकी पूर्णता होने के नि-मित्त अपना देहसमेत मस्तक आगे करके वामनजीको अर्पणकिया ॥ १८ ॥ हेनारद ! अपनेमें तेरीभक्ति अत्यन्त दृढ़हुई देखकर सन्तुष्टहुए तिनभगवान् ने हंसरूप से तेरे अर्थ भक्तियोग का उत्तम प्रकार वर्णनकरा और आत्मतत्त्व को प्रकाशित करनेवाले तथा ज्ञान के साधनरूप भागवतनामक पुराणका तुझे उपदेश किया. जिन हंसरूपके कहेहुए भक्ति-ज्ञान आदिको वासुदेवभगवान् के शरणागत भक्तही अनायासमें जानते हैं ॥ १९ ॥ वह

मन्वंतरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ॥ दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रि-
पृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः ॥ २० ॥ धन्वंतरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना
नृणां पुरुरुजां रुज आशु हंति ॥ यज्ञे च भागममृतायुरवावरुंधे आयुश्च वे-
दमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ २१ ॥ क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुगु-
ज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ॥ उद्धन्त्यसाववनिकंटकमुग्रवीर्यस्त्रिःसप्तकृत्व उरुधार-
परश्वधेन ॥ २२ ॥ अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरो-
र्निदेशे ॥ तिष्ठन्वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन्विरुद्ध्य दशकन्धर आर्ति-
मार्च्छत् ॥ २३ ॥ यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिध-
क्षोः ॥ दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥२४॥

ईश्वर स्वायंम्भुव आदि प्रत्येक मन्वन्तर में मनुवंशका पालन करने के निमित्त मनुरूप अ-
वतार धारणकरके दशों दिशाओंमें अपने प्रभावरूप चक्रको धारण करते हैं और अनेकों
चरित्रोंके द्वारा अपनी उत्तमकीर्त्ति, त्रिलोकी के पृष्ठभागपर विद्यमान सत्यलोकमें फैलाते
हुए, मन्वन्तर में कोई दुष्टराजा होजाय तो उसको दण्डदेते हैं ॥ २० ॥ स्वयं ही कीर्त्ति-
रूप वह भगवान्, धन्वन्तरिनामक अवतार धारकर महान्रोगोंसे ग्रस्त प्राणियोंके भी रोगों
को, अपने नाममात्रसे ही तत्काल दूर करते हैं. और जिनसे मरणरहित आयु प्राप्त होता
है ऐसे तिन धन्वन्तरिजीने पहिले दैत्योंका बन्दकराहुआ यज्ञमेंका अपना भाग फिर प्राप्त
करा वह अबभी इसलोकमें अवतार धारकर आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र) का प्रचार करते हैं ॥
२१ ॥ परशुराम अवतार धारणकरनेवाले यह महात्मा श्रीहरि उग्र पराक्रम करतेहुए,
जगत् का संहार करनेके निमित्त दैववश वृद्धिकोप्राप्तहुए, ब्राह्मणों से द्रोहकरनेवाले, वेद-
मार्गको त्यागनेवाले और नरकमें पड़कर दुःख भोगनेकी इच्छा करनेवाले क्षत्रियकुल का,
पृथ्वी को कण्टक की समान दुःखदायक होने के कारण अपने तीक्ष्ण धारवाले फरसे से
इक्कीसवार संहार करते हैं ॥ २२ ॥ वह माया के नियन्ता परमात्मा, हमारे ऊपर
अनुग्रह करनेमें तत्परहोतेहुए भरत आदि अंशोंसहित इक्ष्वाकुराजाके वंशमेंरामचन्द्र अवतार
धारकर राजादशरथकी आज्ञामें रहतेहुए सीताऔर लक्ष्मणसहित वनवासको जायँगे,जिनसे
विरोध करनेवाले रावणको महान्दुःख(मृत्युरूप)भोगना पड़ेगा२३लंकामेंपहुँचीहुईसीताजी
के विरहकेकारण अतिक्रुद्धहुए श्रीरामचन्द्रजी की आरक्तदृष्टिसे, अत्यन्त सन्तापको प्राप्त
हुआहै मत्स्य जलसर्प औरनाके आदि प्राणियोंका समुदाय जिसमें ऐसे भयसेथर २काँपते
हुए समुद्रने, 'जैसेपहिले महादेवजीने त्रिपुरासुरके पुरोंको भस्म करडालाथा तैसे' रावणके
नगर(लंका)को भस्मकरनेकी इच्छाकरनेवाले जिन श्रीरामचन्द्रजीकोशीघ्रही लंकामेंजानेको
मार्गदेगा॥२४॥सोश्रीरामचन्द्रजी, सीताकोहरनेवाले युद्धमें उत्कर्ष (डौल) के साथविचरते

वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदंतैर्विडंबितककुब्जुष ऊढहासम् ॥ सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥२५॥ भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ॥ जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥ २६ ॥ तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः ॥ यद्रिंगतांऽतरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम् २७ यद्वै व्रजे व्रजपशून्विषतोयपीथान्पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ॥ तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगं विहरन् ह्रदिन्याम् ॥ २८ ॥ तत्कर्म दिव्यमिव यन्निशि निःशयानं दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितांतकालं नेत्रे पिधाप्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥ २९ ॥ गृह्णीत यद्यदुपबंधममुष्य माता

हुए और अपने वक्षःस्थलके प्रहारसे जहाँतहाँ खण्ड खण्डकरके पड़ेहुए ऐरावतके दन्तोंसे प्रकाशितहुई दिशाओंका पालन करनेवालेरावणके, मेरीसमानदूसरा कौन पराक्रमीहै? ऐसा समझनेसे उत्पन्नहुए' महागर्वको प्राणों सहित, अपने धनुषसे छूटेहुए बाणों करके तत्काल विनष्ट करडालेंगे ॥ २५ ॥ दैत्योंके अंशरूप राजोंकी सेनाओंसे पीडितहुईभूमिका क्लेशदूर करनेके निमित्त वहभगवान्,अपने अंशरूप बलरामसहित श्रीकृष्ण अवतार धारण करेंगे. बलरामका वर्ण स्वेत और श्रीकृष्णका वर्ण श्यामहोगा.जिनकर्मोंके करनेकी उनकी अभिलाषा होगी उनकर्मोंको लोकनहींजानसकेंगे,वह अपनीमहिमाको प्रकाशित करनेवाले अमानुष (जोमनुष्योंसे न होसकें ऐसे) कर्मकरेंगे ॥ २६ ॥ बाल्यावस्थामें पूतनाके प्राण हरण करना, तीनमासकी अवस्थामें चरणसे शकटासुरको लौटदेना और घुटनों चलनेकी अवस्थामें वृक्षोंके मध्यमेंजाकर आकाशव्यापी अर्जुनवृक्षको उखाड़डालना, यह कार्ययदि श्रीकृष्ण ईश्वर नहींहोंतो कदापि नहीं होसक्तेहैं॥२७॥ तथा गोकुलके गौवृषभआदि तथा गोप आदिकोंके कालीदहके सरोवरमें विषयुक्तजल पीकर सबके मरणको प्राप्त होनेपर उनको कृपादृष्टिरूप अमृतकी वृष्टिसे जोजीवित करना और यमुनाजीमें क्रीडा करतेसमय तिस सरोवरको शुद्धकरनेके निमित्त,महाघोर विषसे जिसकीजिव्हा लपलप कररहीहै ऐसे कालिय नामक सर्पका तिसस्थानसे जो उच्चाटन करना यह सब श्रीकृष्णजीकेकर्म,दिव्यही होंगे।२८। तदनन्तर उसदिन रात्रिके समय यमुनाके तटपर मुञ्जाटवीनामक वनमें नन्दआदि व्रजवासी गोपोंके निद्रालेनेपर ग्रीष्म ऋतुके कारण सूखेहुएवनके दावानलसे चारोंओर भस्महोतेहुए जबवास्तवमें तिन सकल व्रजवासियोका अन्तसमयही मानो आपहुँचा तब बलरामसहित अचिन्त्यशक्तिमान् श्रीकृष्णजी, उन जागेहुए व्रजवासियोंके नेत्र मुंदवाकर तिस अग्निका पानकर उनकी सङ्कटसे रक्षा करेंगे, यह उनके कर्म निःसन्देह दिव्यही होंगे ॥ २९ ॥ इन

शुल्वं सुतस्य न तु तत्तदमुष्य माति ॥ यज्जृंभतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी सं-
वीक्ष्य शंकितमनाः प्रतिबोधिताऽसीत् ॥ ३० ॥ नंदं च मोक्ष्यति भयाद्वरुणस्य
पाशाद्गोपान्बिलेषु पिहितान्मयसूनुना च ॥ अह्न्यापृतं निशि शयानमतिश्र-
मेण लोकं विकुण्ठ उपनेष्यति गोकुलं स्म ॥ ३१ ॥ गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजवि-
प्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून् कृपया रिरक्षुः ॥ धर्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्त दिनानि
सप्तवर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥ ३२ ॥ क्रीडन्वने निशि निशाकररश्मि-
गौर्यां रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन ॥ उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्ह-
रिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥ ३३ ॥ ये च प्रलंबखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकं-
सयवनाः कुजपौंड्रकाद्याः॥ अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदंतवक्रसप्तोक्षशंवरविदूरथ-
रुक्मिमुख्याः ॥ ३४ । ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः कांबोजमत्स्य-
कुरुकैकयसृंजयाद्याः ॥ यास्यंत्यदर्शनमलं बलभीमपार्थव्याजाह्वयेन हरिणा

श्रीकृष्णजीकीमाता (यशोदा) इनको बाँधनेके निमित्त जो २ डोरीलेगी, वह डोरी इन बालकरूपको बाँधनेमें पूरीनहीं पड़ेगी और वह यशोदा, जम्भाई लेतेहुए इन श्रीकृष्णजी के मुखमें चौदह भुवन देखकर शङ्कामें पड़ेगी तब यह अपना ऐश्वर्य दिखाकर तिसको ज्ञानदेंगे ॥ ३० ॥ यह श्रीकृष्ण वरुणके पाशसे प्राप्तहुए भयसे नन्दजीको छुटावेंगे और मयासुरके पुत्र व्योमासुरकरके पर्वतकी गुफामें बन्दकरके रखेहुए गोपोंको छुटावेंगे, दिनमें करेहुए कार्यके परिश्रमसे रात्रिमें सोयेहुए गोकुलवासी लोकोंको-उनका मनोरथ पूर्णकरनेके निमित्त वैकुण्ठमें लेजायँगे ॥ ३१ ॥ गोपोंके इन्द्रका यज्ञ छोड़कर गोवर्द्धनकी पूजाकरनेसे क्रुद्धहो गोकुलका नाश करनेके निमित्त प्रलयकालके मेघोंके द्वारा इन्द्रके वर्षाकरनेपर कृपाकरके पशुओंकी रक्षाकरनेकी इच्छा करनेवाले श्रीकृष्णजी सातवर्षकी अवस्थामेंही अनायास अपने हाथपर, सातदिन पर्यंत लीलासे विनाश्रम छत्राक (भूमिमें सीलसे उत्पन्नहुए छत्राकार स्वेत पुष्प) की समान गोवर्धन पर्वतको धारण करेंगे ॥ ३२ ॥ फिर चन्द्रमाकी किरणोंसे स्वेतवर्ण शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें वृन्दावनके विषैं क्रीड़ाकरनेवाले नृत्यक्रीड़ाको उद्यतहुए वह श्रीकृष्ण, मञ्जुल पद और उच्चस्वरके मधुर आलापोंसे युक्त गानकेकारण कामोद्दीपनहोकर विवशहुई गोपियोंको बलात्कारसे हरण करनेवाले शङ्खचूड़ का शिर छेदन करेंगे ॥ ३३ ॥ और जो-प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, वृषभासुर, चाणूर आदि मल्ल, कुवलयापीड़नामक हस्ती, कंस, कालयवन, भौमासुर, पौंड्रक आदि तथा शाल्व, द्विविदवानर, बल्वल, दन्तवक्र, नग्नजित् राजा के सात वृषभ, शम्बरासुर, विदूरथ औररुक्मी आदि उत्पन्न होंगे ॥ ३४ ॥ तथा जो-काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय, सृंजय आदि रणशूर राजे, हाथमें धनुष धारण करके युद्धमें आवेंगे तिनको दिखानेमात्र १ बलराम

निलयं तदीयम् ॥ ३५ ॥ कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ॥ आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ॥ ३६ ॥ देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः । लोकान् घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥ ३७ ॥ यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ॥ स्वाहास्वधावषडिति स्म गिरो न यत्र शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान्युगान्ते ॥ ३८ ॥ सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ॥ अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥ ३९ ॥ विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ॥ चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥४०॥ नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरु-

भीम, अर्जुन आदि नाम धारण करनेवाले जो श्रीकृष्णजी वह वध करेंगे तब वह सब उनके वैकुण्ठलोकमें जायंगे ॥ ३५ ॥ कालवश मन्दबुद्धि और अल्पायुहुए पुरुषोंको, 'हमारा रचावेद बुद्धिस्थ होना कठिनहै' ऐसा जानकर सत्यवती के विषै व्यासरूपसे प्रकट हुए वहही भगवान् वेदरूपवृक्षका शाखारूपसे विभाग करेंगे ॥३६॥ वेदमार्गमें परमनिष्ठासे रहनेवाले परन्तु मयासुरके रचेहुए अदृश्यवेगयुक्त तीननगरोंमें बैठकर उन नगरोंसे लोकों का नाश करनेवाले देवद्वेषी दैत्योंकी बुद्धिमें मोह तथा लोभ उत्पन्न करनेवाला, पाखण्डी बुद्धवेष धारण करके वह भगवान्, उनको बहुतसे पाखण्डमार्गों का उपदेश देंगे ॥३७॥ जिससमय साधुओंके भी स्थानोंमें श्रीहरिकी कथाका श्रवण कीर्त्तन होता नहीं देखनेमेंआवेगा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण पाखण्डी होजायंगे, शूद्र राजे होंगे, और जब स्वाहा स्वधा वषट् यह शब्द सुननेमेंभी नहीं आवेंगे तब कलियुगके अन्त में वह भगवान् कलिको शासन करनेवाले कल्कि अवतार को धारण करेंगे ॥ ३८ ॥ हे नारद ! इसजगत्का सृष्टिके विषयमें जो—तप, मैं (ब्रह्मा), मरीचि आदि नौ ऋषि, और दक्ष आदि प्रजापति नियत करेहैं, पालन के विषयमें जो धर्म, विष्णु, स्वायम्भुव आदि चौदह मनु, इन्द्रादि देवता और पृथु आदि सार्वभौमराजे नियत करेहैं तथा संहार के विषय में जो अधर्म, महादेव, सर्प, और असुर आदि नियुक्त कियेहैं, यह सबही अनन्तशक्तिधारी तिन भगवान् की मायासे रचित विभूतियें हैं ॥ ३९ ॥ हेनारद ! जो बुद्धिमान् पुरुष, पृथ्वी के धूलिके कणोंकी भी गणना करचुकाहो वहभी, ऐसा कौनसापुरुषहै जो विष्णुभगवान् के पराक्रमोंकी गणना करनेमें समर्थ होगा ? अर्थात् कोई समर्थ नहीं होसक्ता, क्योंकि— जिन विष्णु भगवान् ने वामनावतार में अपने अस्खलित चरणके वेगसे, ब्रह्माण्डके बाहर विद्यमान अतिशय कम्पायमान होनेवाले सत्यलोक सहित सकल लोकों को धारणकिया ॥४० ॥ हेनारद !

परस्य कुतोऽपरे ये ॥ गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥ ४१ ॥ येषां स एव भगवान्दययेदनन्तः सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ॥ ते दुस्तरामतितरंति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥ ४२ ॥ वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ॥ पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिर्ऋभुरङ्ग उत ध्रुवश्च ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधिरघ्वंबरीपसगरागयनाहुषाद्याः ॥ मांधात्रलर्कशतधन्वनुरंतिदेवदेवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥ ४४ ॥ सौभर्युतंकशिबिदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ॥ येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेंद्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥ ४५ ॥ ते वै विदन्त्यतितरंति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ॥ यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥ ४६ ॥ शश्वत्प्रशांतमभयं प्रतिबो-

मैं (ब्रह्मा) और यह तुम्हारे बड़े भ्राता मरीचि आदि ऋषिभी तिन, परमेश्वरका और उनकी मायाके बलकाभी अन्त नहीं जानते हैं फिर अन्य साधारण पुरुष कैसे जानेंगे ? क्योंकि–जिनके सहस्रमुख हैं ऐसे आदि देवशेषजीभी, इनभगवान्के गुणोंका सहस्रमुखोंसे निरन्तर गानकरते हैं परन्तु अबभी उनगुणोंका पार नहींपाते हैं ॥ ४१ ॥ अतः वहही अनंतभगवान, जिसजीवके ऊपर 'यह मेरेतत्त्वको जानजाय और मेरीमायाको तरजाय ऐसी' दयाकरें और वह यदि निष्कपटभावसे सबप्रकारसे श्रीहरिके चरणोंका आश्रयकरे तो दुस्तर मायाकोभी तरजायँ और भगवान्के वैभवकोभी जाने, तथा उनकी श्वान काक आदिके भक्ष्यरूप देह पर 'यह मेराहै, यह मैं हूँ' ऐसी बुद्धिभी न रहे ॥ ४२ ॥ हे नारद ! मैं तिन परमात्माकी योगमायाको जानता हूँ और सनकादि सहित तुमभी जानतेहो, भगवान् महादेव, दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादजी, स्वायम्भुवमनुकी स्त्री शतरूपा और वह स्वायम्भुवमनु तथा तिनके प्रियव्रत आदि पुत्र, राजा प्राचीनबर्हि, ऋभु और ध्रुवभी जानते हैं ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकु, पुरूरवा, मुचकुंद, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय और ययाति आदि राजे; मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्मजी, बलि, अमूर्त्तरय, दिलीप ॥ ४४ ॥ सौभरि, उत्तङ्क, शिवि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत ऋषि, उद्धव, पराशर, भूरिषेण तथा अन्य जो विभीषण, हनुमान्, शुकदेव, पाण्डव, आर्ष्टिषेण, गन्धर्व, विदुर और श्रुतदेव आदि हैं यह सबही भगवान्की मायाको जानते हैं ॥ ४५ ॥ स्त्री, शूद्र, ताम्रमुख, भिल्ल आदि पापजातिके पुरुष तथा पशु पक्षी आदि जीवभी यदि भगवद्भक्तों के स्वभाव के अनुसार शिक्षाधारण करनेवाले हों तो वहभी देवमायाको जानते हैं और तरजाते हैं, फिर भगवान्के स्वरूपमें जिनका मन गुथाहुआ है ऐसे पुरुष जानते हैं और तरजाते हैं इसका कहनाही क्या ? ॥ ४६ ॥

धर्मात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वं ॥ शब्दो न यत्र पुरुकारकवान् क्रिया-
ऽर्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥ ४७ ॥ तद्वै पदं भगवतः परमस्य
पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥ सध्र्यङ् नियम्य यतयो यमकर्त-
हेतिं जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ॥ ४८ ॥ स श्रेयसामपि विभुर्भ-
गवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ॥ देहे स्वधातुविगमे-
ऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥४९ ॥सोऽयं तेऽभि-
हितस्तात भगवान्विश्वभावनः ॥ समासेन हरे नान्यदन्यस्मात्सदसच्च यत् ॥
॥ ५० ॥ इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितं ॥ संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमे-
तद्विपुलीकुरु ॥ ५१ ॥ यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति ॥ सर्वात्म-
न्यखिलाधारे इति संकल्प्य वर्णय ॥ ५२ ॥ मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्या-

जिसको ऋषि मुनि ब्रह्म कहतेहैं,वहही तिन परमपुरुष भगवान्का स्वरूपहै; वह नित्यसु-
खरूप, शोकरहित,निरन्तरशान्त, निर्भय, भेदशून्य, ज्ञानैकरस और विषय तथा इन्द्रियों
के संयोगसे रहितहै, जिसको साक्षात् जाननेको वेदभी समर्थ नहीं होतेहैं, जहाँ अनेकों
साधनोंसे होनेवाले कर्मोंके फलका सम्बन्धनहींहै और जिनके सन्मुख खड़ेहोतेहुए लज्जित
होनेवाली माया दूरसेही पीछे कोहटजातीहै ॥ ४७ ॥ जैसे आपही मेघरूपसे शोभित होने
वाला इन्द्र, कूपखोदनेके कुदाल आदि साधनोंको नहीं ग्रहण करताहै अर्थात् स्वयंजलका
भण्डार मेघरूपहोनेसे जैसे इन्द्रको जलके निमित्त कूपखोदनेको कुदालआदिकी आवश्यकता
नहींहै तैसेही यत्नकरनेवाले परमहंस ऋषि, जिसमें अपना मन एकाग्रतासे स्थिर करके ब्र-
ह्मसाक्षात्कार होनेपर,मोक्षप्राप्तिके निमित्त पहिलेस्वीकार करेहुए सकल साधनोंको त्यागदेते
हैं ॥ ४८ ॥ और जिनसे ब्राह्मणादिके शमदमादि साधनोंके द्वारा करेहुए शुभकर्मोंकीसिद्धि
होती है वहीभगवान् जीवोंके सकल पुण्यकर्मोंके प्रेरक और फलदाताहैं, यदिकहोकि—कर्म
करनेवालेके मरणको प्राप्तहोनेपर उसको स्वर्गादि कर्मफल कैसे मिलसक्ताहै ? तहाँकहतेहैं
कि-देह उत्पन्नहोनेके कारण जो पञ्चमहाभूत तिनका परस्पर वियोगहोनेसे देहकानाश होजाय
तोभी तिसदेहमें रहनेवाला वास्तवमें जन्मरहित भोक्ता पुरुष जीव,इसदेहकेसाथ आकाशकी
समान नाशको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ ४९ ॥ हेतातनारद ! तिन विश्वपालक भगवान्श्रीहरि
का वर्णन मैंने तेरेअर्थ संक्षेपसे कियाहै, क्योंकि—प्रकृतिआदि तत्व और तिनसे उत्पन्नहुए
सकल लोक तिनहरिसे पृथक् नहींहैं किन्तु तिनहरिकाही स्वरूप हैं और वह स्वयं माया
रचित पदार्थोंसे पृथक्हैं ॥५०॥ हेनारद ! भगवान्ने जो मुझसे भागवत कहीथीसोयही है,
यह भगवान्का विभूतिका संक्षेपहै अतः तू इसपुराणको,लोकोंमें विस्तारके साथ वर्णनकरके
प्रसिद्ध कर ॥ ५१ ॥ सर्वात्मा और मोक्षआदि सकल पुरुषार्थोंके आश्रय श्रीहरिमें जिस-
प्रकार लोकोंकीभक्तिहो तैसे विचारकरके हरिलीलाकी मुख्यताकेसाथ इसका वर्णनकरो ५२

नुमोदतः ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययात्मा न मुह्यति ॥ ५३ ॥ इतिश्रीभा-
गवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मनारदसम्वादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ राजो-
वाच ॥ ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन्गुणाख्याने गुणस्य च ॥ यस्मै यस्मै यथा प्राह
नारदो देवदर्शनः॥१॥एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदाम्वर॥ हरेरद्भुतवीर्यस्य
कथा लोकसुमङ्गलाः ॥ २ ॥ कथयस्व महाभाग यथाऽहमखिलात्मनि ॥ कृष्णे
निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥ ३ ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च
स्वचेष्टितं ॥ कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ॥४॥ प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण
स्वानां भावसरोरुहं ॥ धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥ ५ ॥
धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुंचति ॥ मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं
यथा ॥ ६ ॥ यदधातुमतो ब्रह्मन्देहारंभोऽस्य धातुभिः ॥ यदृच्छया हेतुना वा
भवन्तो जानते यथा ॥ ७ ॥ आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणं ॥ यावा-

इन ईश्वरकी मायाका वर्णनकरनेवाले, तिसवर्णनका अनुमोदन करनेवाले, और तिस वर्णन को दृढविश्वासके साथ श्रवणकरनेवाले पुरुषोंकीबुद्धि मायासे कदापि मोहित नहीं होतीहै५३ इतिद्वितीयस्कन्धमें सप्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ राजापरीक्षितने कहाकि—हेवेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी ! मायाके गुणोंसे रहित जोपरमेश्वर तिनके गुणोंका वर्णन करनेके निमित्त आज्ञा दियेहुए तिनज्ञानवान् नारदजीने, वह भागवत किस २ के अर्थ वर्णनकरी ? इस तत्त्वको जानने की मेरी इच्छा है, क्योंकि—अद्भुतपराक्रमी श्रीहरिकी कथा सकल लोकोंका मङ्गल करनेवालीहैं ॥ १ ॥ २ ॥ हेमहाभाग शुकदेवजी ! वहकथामुझेसुनाओ, जिससेकि—उसकथाको सुनकर मैं सकल आसक्तिरहित अपने मनको सर्वात्मा श्रीकृष्णजी के विषैं स्थापित करके इस शरीरका त्यागकरूँ ॥ ३ ॥ अपने चरित्रोंको प्रीतिपूर्वक श्रवण वा कीर्त्तन करनेवाले पुरुषके हृदयमें श्रीभगवान् थोडेहीकालमें प्रवेशकरतेहैं॥ ४ ॥और अपनेभक्तोंके हृदयकमलमें कर्णोंकेछिद्रोंकेद्वारा प्रविष्टहुए वह भगवान् जैसेशरदृऋतु जलकी मलिनताको नष्ट करतीहै तैसे, तिनभक्तोंके हृदयकमलके कामक्रोधादि सकलपापों का नाश करतेहैं॥५॥तदनन्तर रागद्वेषादि सकल क्लेश जिसने त्यागदियेहैं ऐसा शुद्धचित्तहुआ वह पुरुष,जैसे परदेशमें रहनेवाला पुरुष,धनप्राप्तकरनेके आदि सकलक्लेशोंको त्यागकर अपनेवर आनेपर वह फिरअपनेघरकोनहीं त्यगताहै तैसेही,श्रीकृष्णके चरणकमलोंको नहींत्यागता६ राजा परीक्षितने कहाकि—हेब्रह्मन् शुकदेवजी ! पञ्चमहाभूतके सम्बन्धसे रहित जो जीव तिसका जो पञ्चमहाभूतोंसे शरीर उत्पन्न होताहै वह क्या ईश्वरकी इच्छासे ही होता है वा कर्म आदि कोई तिसका कारणहै, यह आप यथार्थरीति से जानते हैं अतः मेरेअर्थ वर्णन करिये ॥ ७ ॥ जिन ईश्वरके नाभिकमलसे सकललोकोंकी रचनारूप कमलउत्पन्न

नयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ॥ तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ॥ ८ ॥ अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् ॥ ददृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥ ९ ॥ स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः ॥ मुक्त्वात्ममायां मायेशः शेते सर्वगुहाशयः ॥ १० ॥ पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः ॥ लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥ ११ ॥ यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ॥ भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ॥ १२ ॥ कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ॥ यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥ १३ ॥ यस्मिन्कर्मसमावायो यथा येनोपगृह्यते ॥ गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥ १४ ॥ भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् ॥ सरित्समुद्रद्वीपानां सम्भवश्चैतदोकसाम् ॥ १५ ॥ प्रमाणमण्डकोशस्य बाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥ महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥ १६ ॥ अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं

हुआ वह ईश्वरभी, जैसे यह जीव अपने गिनेहुए भिन्न२ अवयवोंसे युक्तहै तैसेही, सकल लोकरचनारूप अवयवोंसे युक्तही आपने वर्णनकरा, तब जीवकी अपेक्षा ईश्वरमेंविशेषता क्याहै ? ॥ ८ ॥ विशेषता होनाही चाहिये, क्योंकि–जिसके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजी भी जिनके अनुग्रहसे सकल प्राणियोंको उत्पन्न करतेहैं और जो सकलभूतों के नियन्ताहैं, तिन ब्रह्माजीनेभी उनके अनुग्रहसे ही उनके स्वरूपका दर्शन किया ॥ ९ ॥ ऐसे वह सकल जगत्के पालन, उत्पत्ति और नाश करनेवाले, सर्वान्तर्यामी, मायाके नियन्तापुरुष, अपनी मायाको त्यागकर किस स्वरूपमें रहतेहैं ? ॥ १० ॥ तथा इन्द्रादि लोकपालों सहित पाताल आदि सकललोक, तिस पुरुषके चरण आदि अवयवोंकेद्वारा पूर्वसे ही रचेहुएहैं ऐसा आपसे मैंने सुना और फिर सकललोक तथा लोकपालोंके द्वारा इस पुरुष के अवयव कल्पितहैं ऐसा सुना ॥ ११ ॥ महाकल्प और तिसमेंके अवान्तरकल्प कैसेहैं, भूत भविष्य और वर्त्तमान इन तीनप्रकारके कालका अनुमान (ज्ञान) कैसेहोता है, और स्थूल देहधारी मनुष्य पितर आदिकोंकी आयुका क्या प्रमाणहै ? ॥ १२ ॥ हेब्राह्मणश्रेष्ठ ! कालकी जो स्थूल और सूक्ष्मगतिहै वह कैसे जानीजाती है ? कर्मकेद्वारा प्राप्त होनेवाले स्थान कितने और किस प्रकारकेहैं ? ॥ १३ ॥ सत्वरज आदि गुणों को देव मनुष्यादि रूप परिणाम (रूपान्तर) मुझे प्राप्त हों ऐसी इच्छा करनेवाले जीवों में कौनसा अविकारी किसप्रकारके पुण्यपापरूप कर्मकलापका किसप्रकार आचरण करनेपर देवादिस्वरूपकोप्राप्तहोताहै? १४ पृथ्वी, पाताल, दशोंदिशा, आकाश, स्वर्ग, नौग्रह, नक्षत्र, पर्वत नदीसमुद्र और द्वीपोंकी उत्पत्ति किसप्रकारहै? और इनमें वसनेवाले प्राणियोंकी उत्पत्तिकिसप्रकारहै ? ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डके भीतर और बाहरकी रचना के प्रमाण, साधुओं के चरित्र; ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंके स्वभावोंका निश्चय, यहसब किसप्रकारहै? १६

हरेः ॥ युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥ १७ ॥ नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः ॥ श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥ १८ ॥ तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणं ॥ पुरुषाराधनविधिर्योगस्याध्यात्मिकस्य च ॥ १९ ॥ योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिङ्गभंगस्तु योगिनां ॥ वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥ २० ॥ संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः ॥ इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥ २१ ॥ यश्चानुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च सम्भवः ॥ आत्मनो वन्धमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥ २२ ॥ यथाऽऽत्मतंत्रो भगवान्विक्रीडत्यात्ममायया ॥ विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥ २३ ॥ सर्वमेतच्च भगवन् पृच्छते मेऽनुपूर्वशः ॥ तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं

तथा श्रीहरि के अति आश्चर्यकारी अवतारों के चरित्र, सत्ययुगादियुग, तिन युगों के समयका प्रमाण और प्रत्येक युगके धर्म किसप्रकार हैं ? सो कहिये ? १७ ॥ मनुष्यमात्रका साधारण धर्म क्या है ? ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के भिन्न २ विशेषधर्म कौनसे हैं ? भिन्न २ व्यापारसे आजीविका करनेवाले पुरुषों का नियमित व्यापाररूपधर्म कौन २ है ? पृथु आदि जो राजर्षि हुए उनका प्रजापालनरूप धर्म कौन है ? तथा विपत्तिकालमें आजीविका करनेवाले पुरुषोंका कौनसा धर्म है सो कहिये ? ॥ १८ ॥ प्रकृति आदि तत्त्वोंकी संख्या कितनीहै ? उनका स्वरूप क्याहै ? और तिन२ सकलकार्यों के उपयोगी होने में उनकास्वरूप कैसा होताहै ? देवपूजाकी कौन विधि है और अष्टाङ्गयोगसाधनकी कौनसी रीतिहै सो कहिये ? ॥ १९ ॥ योगीश्वरोंकी, अणिमा आदि सिद्धियोंके द्वारा अर्चिः आदि मार्ग करके गति किसप्रकार होती है ? योगियोंके लिङ्गशरीरका नाश किसप्रकार होताहै ऋग्वेदादि मुख्य वेद, आयुर्वेदादि (वैद्यक आदि) उपवेद, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणोंका स्वरूप क्या है ? ॥ २० ॥ सकल प्राणीमात्रका ब्रह्माजी के प्रत्येक दिनमें होनेवाला प्रलय, जगत्की स्थिति, ब्रह्माजी के सौ वर्ष के अनन्तर होनेवाला महाप्रलय, इष्ट (वैदिक यज्ञकर्म), पूर्त (कूप, तालाव, देवालय आदि बनवाना), अग्निहोत्र आदि काम्य कर्मों की रीति, और धर्म अर्थ काम मोक्ष में परस्पर विरोध न आवे तैसे आचरण करना, यह सब किसप्रकार है ? ॥ २१ ॥ प्रलयकालमें देहरूप उपाधिका नाश होनेपर फिर उसकी सृष्टि, पाखण्डमार्गकी उत्पत्ति, जीवके बन्धमोक्ष और तिन जीवोंकाबन्धमोक्षसे पृथक्स्वरूपमें रहना किसप्रकार होताहै ? ॥ २२ ॥ भगवान् सृष्टिके समय अपनी मायासे किसप्रकार क्रीड़ा करते हैं ? और प्रलयकालमें तिसमायाका त्याग करके वह व्यापक परमात्मा साक्षीकी समान उदासीन किसप्रकार रहते हैं ॥ २३ ॥ हे भगवन् महामुनि शुकदेवजी ! आपकी शरणमें आकर प्रश्न करनेवाला जो मैं तिसमेरेवूझे

प्रपन्नाय महामुने ॥ २४ ॥ अत्र प्रमाणं भगवान्परमेष्ठी यथात्मभूः ॥ परे चेहानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥२५॥ न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्ननशनादमी ॥ पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद्द्विजात् । २६ ॥ सूत उवाच ॥ स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः ॥ ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥ २७ ॥ प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितं ॥ ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २८ ॥ यद्यत्परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति ॥ आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥२९॥ इ० भा०म० द्वि० प्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ श्रीशुक उवाच ॥ आत्ममायामृते राजन्परस्यानुभवात्मनः ॥ न घटेतार्थसम्बन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥ १ ॥ बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया ॥

हुए इन प्रश्नोंके उत्तर तथा इनके सिवाय औरभी जो कथन करने के योग्यहों वह क्रमसे यथावत् वर्णन करना आपको उचितहै ॥ २४ ॥ साक्षात् ईश्वरसे उत्पन्न होकर सत्यलोक में रहनेवाले ब्रह्माजी को जैसे इस विषय का पूर्णज्ञानहै तैसेही, आपकोभी है, क्योंकि- आपका ब्रह्मा, नारद, व्यासजीके, क्रमसे सम्प्रदाय चलाआया है; और जो कोई यहां हैं वह गतानुगतिक (एकके पीछे दूसरे चलनेवाले) होनेके कारण, अपने पूर्वपुरुषाओंका तथा उनकेभी पूर्वपुरुषाओंका आचरणमात्र करते हैं उनको तत्त्वज्ञान नहीं है ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपसे प्रकटहुए भगवान्के कथारूप अमृतको पीतेहुए यह मेरे प्राण, ब्राह्मणके शापसे नियत करेहुए प्राणत्याग के समय से प्रथम धारण करेहुए इस निराहार व्रतसे भी व्याकुल नहीं होते हैं ॥ २६ ॥ सूतजी बोले कि-हे ऋषियों ! सभामें राजा परीक्षितके इसप्रकार भक्तरक्षक भगवान्की कथाके विषयमें प्रश्नकरनेपर शुकदेवजी परमप्रसन्नहुए ॥ २७ ॥ और सृष्टिके आरम्भमें जो भगवान्ने ब्रह्माजीके अर्थ कहाथा तिस वेदसमान भागवतपुराणके कहनेमें प्रवृत्तहुए ॥ २८ ॥ और पाण्डवोंके वंशमें श्रेष्ठ जो राजा परीक्षित तिसने जो२ बूझाथा तिस सकल भागवतकी कथाके प्रसङ्गको कहनेका श्रीशुकदेवजीने प्रारम्भकिया ॥ २९ ॥ इति द्वितीय स्कन्धमें अष्टम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहनेलगे कि-हे राजन् ! जैसे निद्रामें अनेकों स्वप्न देखनेवाले पुरुषको, तिस स्वप्न में देखेहुए पदार्थोंमेंसे एकपदार्थसेभी जागृत अवस्थाके समय वास्तविक सम्बन्ध नहींहोता है तैसेही ज्ञानस्वरूप आत्माका (जीवका), यथार्थ रीतिसे विचार करनेपर श्रीहरिकी मायाके सिवाय अन्य किसीभी कारणसे इन जड़ देहादिकोंके साथ सम्बन्ध नहीं होता है ॥ १ ॥ सो अनेकों स्वरूप धारण करनेवाली मायाके कारणसे यह जीव, बाल युवा आदि अनेकों अवस्था तथा देव मनुष्य आदि अनेकों जातियों से युक्तसा भासमान होता है और इन मायाके गुणोंसे उत्पन्नहुए देह इन्द्रियादि विषयों में आसक्तहोकर क्रीड़ा करने

रममाणो गुणेष्वस्याममाहमिति मन्यते ॥ २ ॥ यर्हि वाव महिम्नि स्वे परस्मिन्कालमाययोः ॥ रमेत गतसंमोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥ ३ ॥ आत्मतत्त्वविशुद्ध्यर्थं यदाह भगवानृतं ॥ ब्रह्मणे दर्शयन् रूपमव्यलीकव्रतादृतः॥४॥ स आदिदेवो जगतां परो गुरुः स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत ॥ तां नाध्यगच्छद्दृशमत्र सम्मतां प्रपञ्चनिर्माणविधिर्यया भवेत् ॥ ५ ॥ स चिंतयन् द्व्यक्षरमेकदाऽम्भस्युपाशृणोद्द्विर्गदितं वचो विभुः ॥ स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किंचनानां नृप यद्धनं विदुः ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशो विलोक्य तत्रान्यदपश्यमानः ॥ स्वधिष्ण्यमास्थाय विमृश्य तद्धितं तपस्युपादिष्ट इवादधे मनः ॥ ७ ॥ दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो जितानिलात्मा विजितोभयेंद्रियः ॥ अतप्यत स्माखिललोकतापनं तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः ॥ ८ ॥ त-

लगताहै अर्थात् मैं देहरूपही हूँ और विषय मेरे हैं ऐसा मानने लगता है ॥ २ ॥ और जब यह जीव मायाके मोहसे रहित होकर प्रकृतिपुरुष से भिन्न अपने स्वरूपमें रमणकरताहै तब अहन्ता और ममताको त्यागकर पूर्णानन्दस्वरूपसे रहताहै ॥ ३ ॥ पहिले ब्रह्माजीने निष्कपट तपसे भगवान् का आराधन कियाथा तब भगवान् ने ब्रह्माजीको अपना सत्य—ज्ञानपूर्णस्वरूप दिखाकर जो मार्ग कहाथा वहही सकल जीवोंको आत्मतत्त्व (मोक्ष) की प्राप्ति होनेका साधन है ॥ ४ ॥ आदिदेव जगत्के परमगुरु ब्रह्माजी अपने उत्पत्तिस्थान कमलपर बैठकर " सृष्टि किसप्रकार करनी चाहिये" ऐसा विचार करने लगे परन्तु जिससे प्रपञ्चको रचनेकी रीति सिद्धहो ऐसी सृष्टिके विषयमें उपयुक्तबुद्धि उनको प्राप्त नहींहुई ॥ ५ ॥ उस समय ऐसाविचार करतेहुए तिनब्रह्माजी ने एकसमय प्रलयकालके जलमें उत्पन्नहुआ एक शब्द सुना, 'क'से 'म'पर्यन्त जो पच्चीस अक्षर तिनको स्पर्श कहतेहैं, उनमें सोलहवां 'त'और इक्कीसवां'प'इन दो अक्षरोंका दोवार उच्चारणहुआ अर्थात्'तप, तप'ऐसाशब्दहुआ हेराजन्! जिसतपको निर्धनपुरुषोंका धन कहते हैं॥६॥तिस तप तप (तपकर तपकर)ऐसे शब्दको सुनकर ब्रह्माजीने 'इसवाक्य का कहनेवाला कौनहै'यह जाननेके निमित्त सब दिशाओंकीओरको देखा परन्तु उनको तहां कोई दूसरा नहींदीखा तबअन्तमें वह अपनेआसनपरही बैठगये और तप करनेपरही मेरा हितहै, ऐसाविचारकर किसीके उपदेश दियेहुए से तिनब्रह्माजीने तप करनेका निश्चय किया॥७॥तदनन्तर सुनेहुए 'तप, तप' इसवाक्यके अर्थ के विषयमें अमोघ (सफल) ज्ञानवान् और तपस्वियों में महातपस्वी तिन ब्रह्माजी ने अपने देहमें के वायु, मन, पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय इनको वशमें करके और एकाग्रचित्त होकर देवताओंके सहस्रवर्षपर्यन्त सकललोकोंको प्रकाशित करनेवाला दिव्य तप किया तदनन्तर तिस तपसे आराधनकरेहुए भगवान्ने उनकोअपनाश्रेष्ठ वैकुण्ठलोक दिखाया, जिसलोकसे श्रेष्ठ कोई दूसरालोक नहींहै ॥ ८ ॥ जहां क्लेश, अज्ञान औरभय

स्मै स्वलोकं भगवान्सभाजितः संदर्शयामास परं न यत्परं ॥ व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥ ९ ॥ प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः ॥ न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ १० ॥ श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशंगवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः ॥ सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ॥ प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः ॥ ११ ॥ भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते लसद्विमानावलिभिर्महात्मनां ॥ विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः ॥ १२ ॥ श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगायपादयोः करोति मानं बहुधा विभूतिभिः ॥ प्रेङ्खं श्रिता या कुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥ १३ ॥ ददर्श तत्राखिलसात्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिं ॥ सुनन्दनन्दप्रबलार्हणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं विभुम् १४ भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं प्रसन्नहासारुणलोचनाननं ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं

किञ्चिन्मात्र नहीं हैं, और परमपुण्यात्मा तथा देवता जिसकी स्तुति करतेहैं;जहां रजोगुण तमोगुण वा इनदोनोसे मिलाहुआ सत्वगुण नहीं रहताहै केवल शुद्ध सत्वगुणही रहताहै, जहां कालका पराक्रम (मरण) नहीं है ॥ ९ ॥ जहां मायाही नहीं तहां रागलोभादि विकार नहीं यह कहनेकी क्या आवश्यकता? जहांदेवदैत्योंके पूज्य जय विजय आदिपार्षद हैं,वह पार्षद श्यामवर्ण और स्वच्छ,कमलके दलकीसमान विशालनेत्रवाले, पीताम्बरधारी, सवही चतुर्भुज,जिनके शरीरोंपर अतितेजके समूह, उत्तम २ सुन्दरकान्तियुक्त अतिसुकुमार १०रत्नजटित पदक(एकप्रकारकेकण्ठे)और भूषणहैं,अतिप्रकाशवान् मूंगे,वैदूर्य (लसनियां) और कमलकंद (भसींड़े) कीसमान वर्णके तथा चारोंओर चमकनेवाले कुण्डल,किरीट और मालाओंसे शोभायमान रहतेहैं॥११॥जैसेआकाश बिजलीसहित मेघोंसे शोभायमान होताहै तैसेही,वहवैकुण्ठलोक,उत्तम स्त्रियोंकी कान्तिसे प्रकाशवान् और बड़े२भक्तोंके कान्तिमान् विमानोंकी पङ्क्तियोंसे शोभायमान है ॥ १२ ॥ जहां केवल वसन्तऋतुकेही सेवक भ्रमरोंसे गानकरीहुई मूर्त्तिमती लक्ष्मी, वेदोंमें वर्णनकरेहुए श्रीविष्णुभगवान्के चरणका नानाप्रकार के ऐश्वर्योंसे पूजनकरती है और झूलेपर बैठकर तिन अपने प्रियपतिकी अनेकों लीलाओंका गानकरती है॥१३॥ तिस वैकुण्ठलोकमें ब्रह्माजीने सकलभक्तोंके पति, लक्ष्मीके पति, यज्ञके पति, जगत्के पति और नन्द, सुनन्द, प्रबल तथा अर्हण आदि मुख्य पार्षदोंकरके चारोंओर से सेवाकरेहुए श्रीनारायणका दर्शनकिया ॥ १४ ॥ वह नारायण, भक्तोंपर अनुग्रहकरने को उद्यत,अपने स्वरूपका दर्शन करनेवाले भक्तोंके हृदयमें कृपादृष्टिसे हर्ष उत्पन्न करने वाले,प्रसन्न हास्य और आरक्त नेत्रोंवाला जिनका मुखहै ऐसे मुकुट और कुण्डलोंको धारण

चतुर्भुजं पीतांबरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥ १५ ॥ अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं वृतं चतुःषोडशपंचशक्तिभिः ॥ युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन् रममाणमीश्वरं ॥ १६ ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतांतरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ॥ ननाम पादांबुजमस्य विश्वसृग्यत्पारमहंस्येन पथाऽधिगम्यते ॥ १७ ॥ तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणं ॥ बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥१८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयाऽहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भसिसृक्षया ॥ चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनां ॥ ॥ १९ ॥ वरं वरय भद्रं ते वरेशं माऽभिवांछितं ॥ ब्रह्मन् श्रेयः परिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधिः ॥ २० ॥ मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनं ॥ यदुपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥ २१ ॥ प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते ॥ तपो मे हृदयं साक्षादात्माऽहं तपसोनघ ॥ २२ ॥ सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि

करनेवाले, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज, वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मीसे चिन्हित ॥ १५ ॥ अतिश्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान, प्रकृति-पुरुष-महत्तत्त्व इन चार, पांच ज्ञानेंद्रिय-पांच कर्मेन्द्रिय-मन और पांच महाभूत इन सोलह, तथा शब्दादि पांच विषय, इसप्रकार पचीस तत्त्वरूप शक्तियोंकरके चारोंओरसे वेष्टित (घिरेहुए) अन्यत्र स्थिर न रहनेवाले स्वाभाविक पूर्ण ऐश्वर्योंसे युक्त और अपनेही स्वरूपमें मग्नथे ॥ १६ ॥ तिनके दर्शनसे जिनके अन्तःकरणमें आनन्द भरगयाहै, शरीरपर रोमाञ्च खड़ेहोगयेहैं, और अतिप्रेम उत्पन्नहोनेके कारण नेत्रोंमें आनन्दके अश्रुभरगयेहैं ऐसे सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीने, तिन ईश्वरकेचरणकमलोंको प्रणामकिया, जोचरणकमल केवल ज्ञानमार्गसेही प्राप्त होसक्तेहैं ॥ १७ ॥ उससमय प्रसन्नहुए प्रियभगवान्‌ने, अपने दर्शनसे सन्तोष पानेवाले, अपने सन्मुख खड़ेहुए प्रजा उत्पन्न करनेके कार्यमें अपनीआज्ञाको माननेवाले तिन प्रियब्रह्माजीका, हाथ पकड़कर कुछ मन्दमुसकुरान करके शोभायमान वाणीसे भाषणकिया ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोलेकि–हेब्रह्मदेव ! तुम्हारे अन्तःकरणमें सकल वेदहैं, इस कारण तुमने, सकामभक्तोंके ऊपरभी प्रसन्न न होनेवाले मुझको, सृष्टिरचनेकी इच्छासे बहुतसमय पर्यन्त तपस्या करके पूर्णरीतिसे सन्तुष्टकियाहै॥ १९ ॥हेब्रह्मदेव ! वर देने में समर्थ जो मैं तिस मुझसे वरमांगलो, तुम्हारा कल्याणहो, अब तप पूर्ण होगया, क्योंकि–पुरुष को फलप्राप्तिके साधनका परिश्रम, मेरा दर्शन होने पर्यन्तही करनाचाहिये॥ २० ॥ तुम्हें मेरे वैकुण्ठलोकका जो दर्शन हुआ यह मेरी इच्छाकाही प्रभावहै, क्योंकि एकान्तमें मेरे उच्चारण करेहुए 'तप तप' ऐसे मेरे वाक्यको सुनकरतुमने उत्तम तप कियाहै॥ २१ ॥जब तुम सृष्टिके कार्यमें अत्यन्त मोहित होरहेथे उस समय तुमको मैंने 'तप तप' इस वाक्यका उपदेश दियाथा, हेनिष्पाप ब्रह्मदेव ! तप मेराहृदय है और मैं तपका साक्षात् आत्माहूँ ॥ २२ ॥ इस संपूर्ण चराचर विश्वको मैं तपसेही उ-

तपसा पुनः ॥ बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहां ॥ वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितं ॥ ॥ २४ ॥ तथाऽपि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितं ॥ परावरे यथा रूपे जानीयां ते त्वरूपिणः ॥ २५ ॥ यथात्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितं ॥ विलुम्पन्विसृजन् गृह्णन्बिभ्रदात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ क्रीडस्यमोघसंकल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते ॥ तथा तद्विषयां धेहि मनीषां मयि माधव ॥ २७ ॥ भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतन्द्रितः ॥ नेहमानः प्रजासर्गं बध्येयं त्वदनुग्रहात् ॥ २८ ॥ यावत्सखा सख्युरिवेश ते कृतः प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनं । अविक्लवस्ते परिकर्मणि स्थितो मा मे समुन्नद्धमदोऽजमानिनः ॥ २९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितं ॥ सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥ ॥ ३० ॥ यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ॥ तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मद-

---

त्पन्न करताहूं और तपसेही इसका संहार करताहूँ, तथा तपसे ही इसका पालनभीकरता हूँ, तपही मेरा वीर्य (शक्ति) है और अन्य पुरुषों को इसका आचरण करना अति कठिन है ॥ २३ ॥ ब्रह्माजीबोलेकि—हेभगवन् ! तुम सकल प्राणीमात्रके आश्रयहो और उनकी बुद्धियों में रहतेहो. सो अपने अकुण्ठित पूर्णज्ञानसे तुम, मेरे मनमें के कर्त्तव्य को जानतेही हो तथापि हेप्रभो ! रूपरहित तुम्हारे स्थूल सूक्ष्म स्वरूपको जिसप्रकार मैं जानूं यहही मुझ याचकको भिक्षा दीजिये ॥ २४ ॥ २५ ॥ हेमाधव ! जैसे मकरी आप ही बहुतसे तन्तु उत्पन्न करके उनसे अपनेकोही आच्छादित करलेती है और अन्तमे उनतन्तुओंको आपही भक्षण करलेतीहै तैसेही अपनी मायाके द्वारा अनेकों शक्तियोंसे बढ़ेहुए जगत्को,संहार करतेहो उत्पन्नकरतेहो और पालते हो,ऐसे सत्यसङ्कल्पतुम,आपही अपने द्वारा ब्रह्मादिरूप धारणकर जिसरीतिसे क्रीड़ा करतेहो तिसका ज्ञान होनेकी बुद्धि मुझमें स्थापितकीजिये॥२६।२७॥मैं आलस न करके आपके कथनानुसार सृष्टिका कार्य करताहूं परन्तु प्रजाओंकी सृष्टि करनेवालेभी मुझको अहङ्कारादिसे बन्धन प्राप्त नहो, इसके लिये आपका अनुग्रह चाहिये ॥ २८ ॥ हेईश ! तुमने सांसारिक मित्रकी समान हस्तस्पर्श (हाथ मिलाना) आदि के द्वारा ममता से मुझे अपना मित्रसमान मानाहै, इससेमैंप्रजासृष्टिरूप तुम्हारी सेवामें रहकर इन चराचर लोकोंको उत्तम मध्यम आदि भेदसेजबतक उत्पन्न करूँ तबतक, तुमसे प्राप्तहुए सन्मान के कारण 'मैंभी स्वतन्त्रहूँ इसप्रकारका' महान् अभिमान मुझको प्राप्त नहो ॥ २९ ॥ श्रीभगवान् बोले—हेब्रह्मदेव ! वेद आदि ग्रन्थों में कहाहुआ जो मेरा अनुभवयुक्त और भक्तिसहित अतिगुप्तज्ञान है वह और उस के साधन मैं तुमसे कहताहूं. सुनो—॥ ३० ॥ मेरे स्वरूपका परिमाण (अन्दाजा) और

नुग्रहात् ॥ ३१ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परं ॥ पश्चादहं यदे-
तच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहं ॥ ३२ ॥ ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत
चात्मनि ॥ तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥ ३३ ॥ यथा महांति
भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ॥ प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहं ॥ ३४ ॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र
सर्वदा ॥ ३५ ॥ एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ॥ भवान्कल्पविकल्पेषु न
विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संप्रदिश्यैवमजनो जनानां परमे-
ष्ठिनम् ॥ पश्यतस्तस्य तद्रूपमात्मनो न्यरुणद्धरिः ॥ ३७ ॥ अंतर्हितेंद्रियार्थाय

सत्ता जैसी है तथा मेरा स्वरूप,गुण और कर्म जैसेहैं तैसाही तत्त्वज्ञान मेरे अनुग्रहसे तुम
को प्राप्त हो ॥ ३१ ॥ सृष्टिसे पहिले मैंहीथा; स्थूल सूक्ष्म तथा इन दोनोंकी कारण जो
प्रकृति है यह सब मैंहीं हूँ, मुझसे भिन्न कुछ नहींहै,सृष्टिके अनन्तरभी मैंही होऊँगाजो
यह जगत् दीखरहा है सो भी मैंहीहूँ और प्रलयकालमें जो शेषरहताहै वहभी मैंहीहूँ ३२
जैसे आकाशमें एकही चन्द्रमाके होतेहुए किसी मनुष्यको पित्तादि विकारके कारण "दो
चन्द्रमा हैं" ऐसी मिथ्या प्रतीति होती है तैसेही आत्माके विषैं वास्तवमें सत्य न होतेहुए
भी देहादि वस्तु सत्यसे प्रतीत होते हैं अथवा जैसे राहु, ग्रहमण्डलमें विद्यमान होकरभी
दीखता नहीं है तैसेही आत्मा सत् रूपसे विद्यमान होकरभी प्रतीत नहीं होता है, इसको
आत्माकी मायाजाने ॥ ३३ ॥ जैसे पञ्चमहाभूत छोटे बड़े प्राणीमात्रके देहोंमें प्रविष्ट हैं
क्योंकि–तहाँ देखनेमें आते हैं परन्तु वास्तवमें वह तहां प्रविष्ट नहीं हुए हैं, किन्तु–वह
प्राणियोंकी उत्पत्तिसे प्रथमही कारणरूपसे तहाँ विद्यमानहैं.तैसेही तिन प्राणियोंके देहोंमें,
मैं बाहर और भीतर स्वतन्त्रतासे व्याप्त होनेके कारण प्रविष्ट होकरभी उनके गुण दोषोंसे
लिप्त नहीं होता हूँ ॥ ३४ ॥ जैसे मृत्तिका घटका कारण होनेसे तिन घटोंमें होती है यह
अन्वय है और फिरभी वह मृत्तिका कारणरूप करके तिन कार्यरूप घटोंसे पृथक् है यह व्य-
तिरेक है, तैसेही आत्मा सबका कारण होनेसे सब कार्योंमें अन्वित (व्याप्त होकर रहने
वाला) है फिरभी कारणरूप करके तिन कार्योंसे व्यतिरिक्त (पृथक्) है, इसप्रकार अ-
न्वय व्यतिरेकसे जो सर्वत्र सबकालमें रहता है वहही आत्मस्वरूप है, हे ब्रह्माजी ! आ-
त्माका तत्त्व जाननेकी इच्छा करनेवालोंको इतनाही विचार आवश्यक है ॥ ३५ ॥ हे ब्र-
ह्मदेव ! इस मेरे मतको एकाग्रचित्तसे धारण करो तब तुम सकल कल्पोंमें अनेकों प्रकारकी
सृष्टि उत्पन्न करतेहुएभी 'मैं सृष्टिका कर्त्ता हूँ' इसप्रकारके अभिमानसे कदापि मोहित नहीं
होगे ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! लोकोंकी सृष्टिके काममें मुख्य अधिकारी
ब्रह्माजीको इसप्रकार उपदेश करके, स्वयं अजन्मा होकर भक्तोंके कष्ट हरनेवाले तिन श्री
हरिने, ब्रह्माजीके देखतेहुएही अपने स्वरूपको गुप्त करलिया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर अपने

हरये विहितांजलिः ॥ सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥ ३८ ॥ प्रजोप-तिर्धर्मपतिरेकदा नियमान्यमान् ॥ भद्रं प्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ॥ ॥ ३९ ॥ तं नारदः प्रियतमो रिक्थादानामनुव्रतः ॥ शुश्रूषमाणः शीलेन प्र-श्रयेण दमेन च ॥ ४० ॥ मायां विविदिषन्विष्णोर्मायेशस्य महामतिः ॥ महा-भागवतो राजन्पितरं पर्यतोषयत् ॥ ४१ ॥ तुष्टं निशाम्य पितरं लोकानां प्रपिता-महम् ॥ देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनुपृच्छति ॥ ४२ ॥ तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणं ॥ प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥ ४३ ॥ नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ॥ ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥ ४४ ॥ यदुताहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् ॥ यथासीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥ ४५ ॥ इतिश्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥ मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ १ ॥ दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ॥ वर्ण-

प्रत्यक्ष दिखायेहुए स्वरूपको गुप्त करनेवाले तिन श्रीहरिको प्रणाम करके सकलभूतों के आश्रयरूप ब्रह्माजीने इस चराचर विश्वको पूर्वकी समान उत्पन्नकिया ॥ ३८ ॥ प्रजाओं के अधिपति धर्मपालक तिन ब्रह्माजीको अपने सकल पुत्रोंमें प्रिय, अनुकूल, अपनी इंद्रियों को स्वाधीन रखकर शील स्वभाव और विनयके सहित पिताकी सेवा करनेवाले, परम वि-चारवान्, भगवद्भक्त नारदजीने, मायाके नियन्ता विष्णुभगवान्की मायाको जानने के निमित्त तिन अपने पिता ब्रह्माजीको परम सन्तुष्ट किया ॥३९।४०।४१॥ तब अपने पिता और सकललोकोंके पितामह ब्रह्माजी, 'मेरे ऊपर सन्तुष्टहुए हैं' ऐसा जानकर नारदजीने, हे राजन्! इससमय तुमने जो मुझसे बूझा है, यही प्रश्नकिया ॥ ४२ ॥ तब सकल प्राणी मात्रको उत्पन्न करनेवाले तिन ब्रह्माजी ने सन्तुष्ट होकर नारदजीके अर्थ श्रीभगवान् से संक्षेपके साथ श्रवणकराहुआ यह दशलक्षण वाला श्रीमद्भागवत नामक पुराण कहा ४३ हेराजन्! फिरनारदजीने सरस्वती नदीके तटपर परब्रह्मका ध्यान करनेवाले अपरिमित तेजके निधि (खजाने) वेदव्यास मुनिसे यहपुराणकहा ॥ ४४ ॥ हेराजन्! विराट्रूप पुरुषसे यह जगत् किसप्रकार उत्पन्नहुआ? यह प्रश्नजोतुमनेकिया तथा औरभी जोप्रश्न किये तिन सबका यथोचित उत्तर भागवतकथा रूपसे कहताहूँ, सुनो-॥ ४५ ॥ इति द्वितीयस्कन्धमें नवम अध्यायसमाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीबोलेकि-हेराजन्! इस भागवत में १ सर्ग २ विसर्ग ३ स्थान ४ पोषण ५ ऊति ६ मन्वन्तर ७ परमेश्वरकी कथा ८ नि-रोध ९ मुक्तिऔर १० आश्रय यहदशविषयहैं ॥ १ ॥ तिसमें दशवां विषयजो सबका आश्रय परमात्मा तिसके तत्वज्ञानके निमित्तही महात्मापुरुष यहां सर्ग आदिनौलक्षणोंका

यन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥ २ ॥ भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः ॥ ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥३॥ स्थितिर्वैकुण्ठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ॥ मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥ ४ ॥ अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् ॥ पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥ ५ ॥ निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः ॥ मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥ ६ ॥ आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते ॥ स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥ ७ ॥ योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः ॥ यस्तत्रोभयविच्छेदः स स्मृतो ह्याधिभौतिकः ॥ ॥ ८ ॥ एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ॥ त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा

स्वरूप वर्णन करतेहैं, तिसमें श्रुतिके द्वारा स्तुति आदि करनेके समय तिसका प्रत्यक्ष वर्णन करतेहैं और अनेकों आख्यानोंके अन्तमें तात्पर्यरूपसे वर्णन करतेहैं ॥ २ ॥ परमेश्वरसे सत्वआदि तीनगुणोंके परिणाम करके उत्पन्नहुए जोआकाशादि पञ्चमहाभूत, तिनके शब्दादिपांचविषय, मनसहित ग्यारह इन्द्रियें, महत्तत्व और अहङ्कार इनकी विराट्सेहुई उत्पत्तिको सर्ग कहतेहैं, विराट्पुरुषने पञ्चमहाभूतादिके द्वारा जो स्थावर जङ्गमरूप सृष्टि उत्पन्नकरी तिसको विसर्ग कहतेहैं ॥ ३ ॥ उत्पन्न करीहुई सृष्टिकी मर्यादाका पालन करके परमेश्वर उसकी उन्नतिकरतेहैं तिसको स्थान कहतेहैं. भगवान् जो भक्तोंपर अनुग्रह करतेहैं तिसको पोषण कहतेहैं. पुण्य और पापकर्मोंके अनुसार होनेवाली वासनाओंकोऊति कहतेहैं. भगवान्के अनुग्रहके पात्रहुएजो मन्वन्तरोंके स्वामी तिनके धर्मको मन्वन्तर कहतेहैं ॥ ४ ॥ श्रीहरिके अवतारोंके चरित्र तथा श्रीहरिके अनुगामी सत्पुरुषोंके अनेकों आख्यानोंके द्वारा वृद्धिको प्राप्तहुई जोकथा तिनको ईशकथा कहतेहैं ॥ ५ ॥ परमेश्वरके योगनिद्राके स्वीकारकरनेपर जो इन जीवोंका इन्द्रियादिकों के सहित लयहोताहै तिसको निरोध कहतेहैं. मैंकरनेवालाहूँ. मैंभोगनेवालाहूँ, इत्यादि मायाकल्पित विपरीत स्वरूपको त्यागकर जो जीवकी ब्रह्मस्वरूपमें स्थिति तिसको मुक्ति कहतेहैं ॥ ६ ॥ जिससे सृष्टिऔर प्रलय होतेहैं जोसदाअपने ज्ञानस्वरूपसे सर्वत्र प्रकाशवान्है वह परब्रह्मस्वरूप परमात्मा सबका आश्रयहै,ऐसावेदादि सकल शास्त्रोंमें वर्णन कराहै ७ जोयह आध्यात्मिक(चक्षुआदि इन्द्रियोंका ज्ञाता)पुरुपरूपजीवहै वहही यह आधिदैविक(तिनचक्षुआदि इन्द्रियोंके अधिष्ठाता सूर्यादि देवतारूप) है, तिनदोनोंके एकहीहोनेपर उनका वियोग जिस एकही अधिष्ठानपर (स्थूलपर) होताहै वह आधिभौतिक (हस्तपादादि अवयव युक्त शरीर) है ॥ ८ ॥ जब आध्यात्मिक (जीव) आधिदैविक (देवता) और आधिभौतिक (शरीर) यह तीनों उपस्थित हों तबही दृश्यपदार्थ का ज्ञान होसक्ता है, इन में से यदि कोईसाभी

स्वाश्रयाश्रयः ॥ ९ ॥ पुरुषोऽण्डं विनिर्भिद्य यदाऽसौ स विनिर्गतः ॥ आत्मनो
ऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः ॥ १० ॥ तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासु स-
हस्रपरिवत्सरान् ॥ तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥ ११ ॥ द्रव्यं
कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ यदनुग्रहतः सन्ति न संति यदुपे-
क्षया ॥ १२ ॥ एको नानात्वमन्विच्छन् योगतल्पात्समुत्थितः ॥ वीर्यं हिर-
ण्मयं देवो मायया व्यसृजत् त्रिधा ॥ १३ ॥ अधिदैवमथाध्यात्ममधिभूतमिति
प्रभुः ॥ अथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधा भिद्यत तच्छृणु ॥१४॥ अन्तःशरीर आ-
काशात्पुरुषस्य विचेष्टतः ॥ ओजः सहो बलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः॥१५॥
अनुप्राणन्ति यं प्राणाः प्राणंतं सर्वजन्तुषु ॥ अपानंतमपानन्ति नरदेवमिवा-

एक न हो तो दूसरे दोनों कुछकार्य नहीं करसक्ते हैं अर्थात् इनमें स्वाधीन एकभी नहीं है अतः इनमें किसीकोभी आश्रय नहीं कहा जासक्ता, जो इन आध्यात्मिक आदि तीनों को ही अपने ज्ञानरूप अनुभवसे जानता है वहही परमात्मा, औरोंके आश्रयकेविना ही स्वयंसिद्ध आश्रयरूप और सबका सत्य आश्रय है ॥ ९ ॥ जिससमय वह पूर्वोक्त विराट्पुरुष, ब्रह्माण्डको भेदकर बाहरहुआ उससमय अपने निवास करनेको कोई स्थान हो ऐसी इच्छा करके तिस शुद्ध पुरुषने स्वच्छजलों की रचना करी ॥ १० ॥ और भगवान्ने अपने उत्पन्न करेहुए तिन जलोंमें सहस्रवर्षपर्यन्त वासकिया,इसप्रकार पुरुषसेजल उत्पन्न हुए और उनमें तिसने शयन किया अतः उसका नारायणनाम हुआ ॥ ११ ॥ पृथिवी आदि सकल द्रव्य, काल, कर्म, स्वभाव और जीव यह सबही जिन नारायण के अनुग्रह से अपने २ कार्य में समर्थ होते हैं और जिनके अनुग्रह के विना अपने कार्य में समर्थ नहीं होते हैं ऐसे वह प्रभु ईश्वर सृष्टिसे पहिले इकले ही थे और अनेकों प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छासे अपनी योगनिद्राकी शय्यापरसे उठे और उन्होंने योग-मायाके द्वारा वीर्य (गर्भरूपदेह) को उत्पन्न किया वह सुवर्णकी समान परमप्रकाशयुक्त तथा अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत इनतीन प्रकारका था,वह पुरुषका वीर्य प्रथम एक ही होकर जिसप्रकार तीनभेदोंको प्राप्तहुआ सो विस्तारके साथ कहता हूँ सुनो ॥१२॥ ॥ १३ ॥ १४ ॥ तिन पुरुषरूप भगवान्के, अपने शरीरमेंके आकाशमें क्रिया शक्तियों से अनेकों प्रकारकी क्रीड़ा करतेहुए, ओज (इन्द्रियशक्ति) सह (मनकी शक्ति) और बल (देहकीशक्ति) यह उत्पन्न हुए,तदनन्तर उनसे सूत्रात्मानामक सबका मुख्य प्राण उत्पन्न हुआ ॥ १५ ॥ जैसे राजा सभामें अपना कार्य करताहो तो उसके सेवक चतुराई के साथ कार्य करतेहैं तैसेही यह मुख्य प्राण जब सकलप्राणियोंमें गमनादिचेष्टा करनेलगता है तब सकल, इन्द्रियें अपना २ देखना सुनना आदि क्रियाएं करती हैं और उस प्राण

नुगाः ॥ १६ ॥ प्राणेन क्षिपता क्षुत्तृडंतरा जायते प्रभोः । पिपासतो जक्षतश्च प्राङ्मुखं निरभिद्यत ॥ १७॥ मुखतस्तालु निर्भिन्नं जिह्वा तत्रोपजायते ॥ ततो नानारसो जज्ञे जिह्वया योऽधिगम्यते ॥ १८ ॥ विवक्षोर्मुखतो भूम्नो वह्निर्वाग्व्याहृतं तयोः ॥ जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥ १९ ॥ नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति ॥ तत्र वायुर्गंधवहो घ्राणो नसि जिघृक्षतः ॥ २० ॥ यदात्मनि निरालोकमात्मानं च दिदृक्षतः ॥ निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥ २१ ॥ बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः ॥ कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोत्रं गुणग्रहः ॥ २२ ॥ वस्तुनो मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीततां ॥ जिघृक्षतस्त्वङ्निर्भिन्ना तस्यां लोममहीरुहाः ॥ तत्र चान्तर्बहिर्वातस्त्वचा लब्धगुणो वृतः ॥ २३ ॥ हस्तौ रुरुहतु-

के शरीरको त्यागदेनेपर सबके कार्य बन्द होजातेहैं ॥ १६ ॥ विराट्रूप प्रभुके शरीरमें प्राणवायु जब वेगके साथ विचरने लगता है तब प्रभुको क्षुधा और पिपासा (प्यास) उत्पन्न होती हैं, तब खाने और पीनेकी इच्छा करनेवाले तिस ईश्वरके देहमें से प्रथममुख उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ मुखसे तालु उत्पन्न हुआ, तिसमें जिह्वा इन्द्रिय उत्पन्न हुई तदनन्तर जिह्वासे जिसका ग्रहण होता है वह नानाप्रकारका मधुर आदि रस उत्पन्न हुआ यहां तालुस्थान, जिह्वा इन्द्रिय, अनेक रस उसके विषय और वरुण तिस इन्द्रियका देवता इसप्रकार चार उत्पन्न हुए (ऐसेही आगे भी चारोंको जानना) ॥ १८ ॥ बोलने की इच्छा करनेवाले प्रभुके मुखसे अग्नि (देवता) वाणी (इन्द्रिय) यह दोनो उत्पन्न हुए तिनसे बोलना (विषय) हुआ, तिनविराट्पुरुषका बहुतकालपर्यन्त जलमें निरोध रहा ॥ १९ ॥ उनके शरीरमेंका प्राणवायु वेगसे वहनेलगा तब उनकी नासिकाके दोनो पुट (नथौड़) उत्पन्नहुए, तिनमें गन्धको इधर उधर लेजानेवाला वायुदेवता हुआ, इसके अनन्तर तिसपुरुषको सूँघनेकी इच्छाहुई तबगन्धरूपी विषय तथा घ्राण इन्द्रिय यहदोनो उत्पन्नहुए ॥ २० ॥ जब ब्रह्माण्डमें किञ्चिन्मात्रभी प्रकाश नहींथा और तिसपुरुषको अपना शरीर तथा अन्यवस्तुओंके देखनेकी इच्छाहुई तब तिसके नेत्रगोलक उत्पन्नहुए तहांसूर्यदेवता, चक्षु इन्द्रिय और रूपविषय यह उत्पन्नहुए ॥ २१ ॥ तदनन्तर वेदोंकी करीहुई स्तुतिको श्रवणकरनेको तिसपुरुषकी इच्छाहोनेपर तिसके कर्ण उत्पन्नहुए, तहाँ दिशा देवता, श्रोत्रइन्द्रिय और शब्दविषयका ग्रहण यह उत्पन्नहुए ॥ २२ ॥ पदार्थोंकी—कोमलता, कठोरता, हलकापन, भारीपन, कुछ गरमपना और शीतलता इनगुणों को जाननेकी इच्छाहोनेपर तिसपुरुप के त्वचा उत्पन्नहुई और तहां रोम इन्द्रिय तथा वृक्ष देवता यहउत्पन्नहुए और तिसमें भीतर वाहर व्याप्तहोकर वायु (देवता) रहता है वह त्वचा के द्वारा स्पर्श विषयको ग्रहण करता है ॥ २३ ॥ नानाप्रकार के कर्म

स्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया ॥ तयोस्तु बलमिंद्रश्च आदानमुभयाश्रयं ॥ २४ ॥ गतिं जिगीषतः पादौ रुरुहातेऽभिकामिकां ॥ पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥ २५ ॥ निरभिद्यतशिश्नो वै प्रजानंदामृतार्थिनः ॥ उपस्थ आसीत्कामानां प्रियं तदुभयाश्रयं ॥ २६ ॥ उत्सिसृक्षोर्धातुमलं निरभिद्यत वै गुदं ॥ ततः पायुस्ततो मित्र उत्सर्ग उभयाश्रयः ॥ २७ ॥ आसिसृप्सोः पुरः पुर्या नाभिद्वारमपानतः ॥ तत्रापानस्ततो मृत्युः पृथक्त्वमुभयाश्रयं ॥ २८ ॥ आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यंत्रनाडयः ॥नद्यः समुद्राश्च तयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये ॥ २९ ॥ निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरभिद्यत ॥ ततो मनस्ततश्चंद्रः संकल्पः काम एव च ॥ ३० ॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जाऽस्थिधातवः ॥ भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो व्योमांबुवायुभिः ॥ ३१ ॥ गुणात्मकानींद्रियाणि भूतादिप्रभवा गुणाः ॥

करनेकी इच्छाहोनेपर तिसपुरुषके हाथ उत्पन्नहुए तिनमें बल इन्द्रिय, इन्द्र देवता और तिन दोनोंहाथोंसे देनालेना यह विषय उत्पन्नहुआ ॥२४॥ जिधर तिधरको गमनकरनेकी इच्छा होनेपर तिसपुरुष के चरण उत्पन्नहुए, तिनके साथही तिनके देवता स्वयं विष्णु प्रकटहुए, तिन चरणोंकी गमनरूप क्रिया के द्वारा पुरुष कुशा समिधा आदि हवन के पदार्थों को लाते हैं ॥ २५ ॥ सन्तान, स्त्री समागमका सुख और स्वर्गादि सुखकी इच्छा करनेवाले तिसपुरुष के शिश्न उत्पन्नहुआ, तिस में उपस्थ इन्द्रिय, और प्रजापति देवता उत्पन्न होकर तिन दोनों के आश्रयसे कामसुख उत्पन्नहुआ ॥ २६ ॥ भक्षणकरेहुए अन्न आदि के निःसार भागका त्यागकरनेकी इच्छा करनेवाले तिसपुरुष के गुदा उत्पन्नहुई, तिसका पायु इन्द्रिय और मित्र देवता उत्पन्नहोकर तिनदोनोंके आश्रय से मलत्याग उत्पन्नहुआ ॥ २७ ॥ एकदेह से अन्यदेहों में जानेकी इच्छा करनेवाले तिसपुरुष के नाभिद्वार उत्पन्नहुआ तिसमें अपानवायु और तिससे मृत्यु यह उत्पन्नहुए, प्राण और अपान इनदोनों वायुओं का नाभिसे (पृथक्करण) (जुदाई) होकर उनका जो पूर्वका सम्बन्ध छूटे यहही मृत्यु है ऐसा प्रसिद्ध है ॥ २८ ॥ अन्नजलको ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवाले तिसपुरुषके कुक्षि (कोख) आँते और नाडियें उत्पन्नहुई तिनमें नाडियोंकी नदियें तथा आँतोंका समुद्र यह देवताहुए तिस अन्नजलसे सन्तोषऔर पुष्टता प्राप्त होतेहैं ॥ २९ ॥ तदनन्तर तिस पुरुषको अपनी मायाका अधिक चिन्तनकरनेकी इच्छा होनेपर हृदय उत्पन्नहुआ, तहां मन इन्द्रिय और चन्द्रमा देवताहुआ तथा सङ्कल्प और इच्छा यह उसके विषय उत्पन्नहुए ॥ ३० ॥ तिसपुरुषके शरीर में त्वचा. चर्म, मांस, रक्त, मेद, मज्जा और अस्थि यह सात धातु, पृथिवी जल और तेज से उत्पन्नहुए हैं, आकाश जल और वायुसे प्राण उत्पन्न हुआ है ॥ ३१ ॥ श्रोत्र आदि इन्द्रियों के अपने २ शब्द आदि विषयों की ओर को खिंचनेपर यह शब्दादि गुण, पञ्चमहाभूत

मनः सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥ ३२ ॥ एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया ॥ मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतं ॥ ३३ ॥ अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणं ॥ अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परं ॥ ३४ ॥ अमुनी भगवद्रूपे मया ते अनुवर्णिते ॥ उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टे विपश्चितः ॥ ३५ ॥ स वाच्यवाचकतया भगवान्ब्रह्मरूपधृक् ॥ नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माकर्मकः परः ॥ ३६ ॥ प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन् पितृगणान्पृथक् ॥ सिद्धचारणगन्धर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३७ ॥ किन्नराप्सरसो नागान्सर्पान्किंपुरुषोरगान् ॥ मातॄरक्षःपिशाचांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥ ३८ ॥ कूष्मांडोन्मादवेतालान्यातुधानान् ग्रहानपि ॥ खगान्मृगान्पशून् वृक्षान् गिरीन् नृप सरीसृपान् ॥ ३९ ॥ द्विविधाश्चतुर्विधा ये ऽन्ये जलस्थलनभौकसः कुशलाकुशला मिश्राः कर्मणां गतयस्त्विमाः ॥ ४० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति तिस्रः सुरनृनारकाः ॥ तत्राप्येकै-

को उत्पन्न करनेवाले अहङ्कारसे उत्पन्न हुए हैं; मन काम क्रोध आदि सकल विकारोंका स्वरूप है और बुद्धि सकल पदार्थोंका अनुभव करादेनेवाली है ॥ ३२ ॥ यह भगवान्का स्थूल स्वरूप मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णन करा,यह पृथ्वी जल आदि आठ आवरणों(परदों)करके बाहरसे वेष्टित (ढकाहुआ) है ॥ ३३ ॥ इससे दूसरा भगवान्का सूक्ष्म शरीर है वह— इन्द्रियों से जाननेमें न आनेवाला, अप्रकट, विशेष आकारसे रहित, उत्पत्ति स्थिति और प्रलयसे शून्य, एकरूप और वाणी तथा मनका अगोचर है॥ ३४ ॥ इन भगवान्के स्थूल सूक्ष्मरूप मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णनकरे, यह दोनोंरूप उपासनाके निमित्त आरोपित और माया से उत्पन्नहुए हैं अतः ज्ञानीपुरुष इनको सत्यरूप मानकर स्वीकार नहीं करतेहैं ॥ ३५ ॥ वह परमात्मा भगवान्, वास्तवमें कर्मरहित हैं और मायासे ब्रह्माजीका स्वरूप धारणकरके कर्मसेयुक्त होतेहुए देव मनुष्यादिकेविषें शिव-राम इत्यादि नाम, जटाभस्मधारी-श्यामसुंदर इत्यादि स्वरूप और कामदेवदहन—रावणवध आदि भिन्न२ कर्मोंको धारणकरते हैं ॥३६॥ हे राजन् ! दक्ष आदि प्रजापति, स्वायम्भुव आदि मनु, इन्द्र आदि देवता, नारद आदि ऋषि, पितर, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, गुह्यक ॥ ३७ ॥ किन्नर, अप्सरा, हस्ती, सर्प, किम्पुरुष, निर्विष सर्प, षोडशमातृ, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायकनामक गण ॥ ३८ ॥ कूष्माण्ड, उन्माद और वेतालनामक गण, यातुधाननामक राक्षस, सूर्य आदि ग्रह, पक्षी, हरिण, सिंह, व्याघ्रादि पशु, वृक्ष, पर्वत, डसनेवाले छोटे२ जीव ॥ ३९ ॥ दो प्रकारके (स्थावर और जङ्गम) चार प्रकारके (जरायुज,स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज) जलमें, पृथ्वीपर और आकाशमें रहनेवाले प्राणी, इन सबके वह भगवान् भिन्न२ नामरूप और तिनके कर्मोंको धारण करते हैं; हे राजन्! इन पुण्य, पाप और पुण्यपाप मिलेहुए इन तीनों प्रकार के कर्मो के अनुसार उत्तम, खोटी और मध्यम गति देते हैं ॥ ४० ॥

कैशो राजन् भिद्यते गतयस्त्रिधा ॥ यदैकैकतरोऽन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते ॥ ॥ ४१ ॥ स एवेदं जगद्धाता भगवान् धर्मरूपधृक् ॥ पुष्णाति स्थापयन् विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः ॥ ४२ ॥ ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः ॥ सन्नियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः ॥ ४३ ॥ इत्थंभावेन कथितो भगवान् भगवत्तमः ॥ नेत्थंभावेन हि परं द्रष्टुमर्हन्ति सूरयः ॥ ४४ ॥ नास्य कर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते ॥ कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययारोपितं हि तत् ॥ ४५ ॥ अयं तु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः ॥ विधिः साधारणो यत्र सर्गाः प्राकृतवैकृताः ॥ ४६ ॥ परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहं ॥ यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ॥ ४७ ॥ शौनक उवाच ॥ यदाह नो भवान्सूत क्षत्ता

तिन देवताओं की सात्विक, मनुष्योंकी राजस और नरकके प्राणियों की तामस ऐसेतीन प्रकारकी गति होती है, इन तीनोंमें से भी प्रत्येक गति तीन २ प्रकार की भिन्न २ होती है जिससे कि–तीनों गुणोंमें के एक २ गुणके दूसरे दो गुणों से मिलनेपर उनकास्वभाव भिन्न २ प्रकारका होताहै ॥ ४१ ॥ इसप्रकार परमात्माका ब्रह्मरूपसे सृष्टिकर्त्तापन कह कर अब उनके विष्णुरूप से पालन करनेका वर्णन करते हैं कि–वही धर्मस्वरूप धारण करनेवाले विश्वम्भर भगवान्, तिर्यक्योनियोंमें मत्स्यआदि मनुष्यों में रामकृष्णआदिऔर देवताओं में हयग्रीव आदि अवतार धारण कर इस चराचर विश्वको धर्म में स्थापनकरके पालन करते हैं ॥ ४२ ॥ तदनन्तर जैसे वेगके साथ चलताहुआ पवन मेघमण्डलकीघटाओं को दूर करदेता है तैसेही काल, अग्नि और रुद्ररूपी वह भगवान्, अपने उत्पन्न करेहुए इसजगत्का काल के द्वारा संहार करते हैं ॥ ४३ ॥ इसप्रकार परम ऐश्वर्यवान् भगवान् का वेदों में वर्णन कराहै, परन्तु जो ज्ञानीहैं वह ऐसे उत्पादक आदि रूपसे तिनपरमात्मा को जानने में तत्पर नहीं होते हैं ॥ ४४ ॥ क्योंकि–वास्तवमें परमेश्वर इसजगत्केउत्पत्ति आदि कर्मोंके कर्त्ता नहीं हैं; वेदोंनेभी उनके कर्त्तापनेका मुख्यताके साथ वर्णन नहीं करा है किन्तु परमेश्वर का कर्तृत्व दूर करने को तिस कर्तृत्व (कर्त्तापने) का अनुवादमात्र कियाहै, क्योंकि–वह जगत्का कर्त्तापन ईश्वर के ऊपर मायासे कल्पित है ॥ ४५ ॥ यह ब्रह्माजी का महाकल्प अवान्तर (बीच २ में होनेवाले) कल्पों सहित उदाहरणकेनिमित्त संक्षेपसे वर्णन करा है; जिस महाकल्प में प्रकृति से उत्पन्न हुए महत्तत्त्व आदिकों की सृष्टि की रीति और अवान्तर कल्पोंमें स्थावर आदि सृष्टि की रीति कही है, यह सृष्टि की साधारण रीति अन्य कल्पों में भी ऐसे ही होतीहै ॥४६॥ हे राजन् कालका स्थूल सूक्ष्म प्रमाण, कल्पके लक्षण और तिसके अवान्तरकल्प तथा मन्वन्तरआदि विभाग यहसब आगे (तृतीयस्कन्धमें) विस्तारकेसाथ कहूँगा, तिसमेंपाद्मनामक कल्पका मैं विस्तार के साथ वर्णनकरताहूँ तुम सुनो ॥४७॥ शौनकबोलेकि-हेसूतजी ! तुमने पहिले जो मुझसे

भागवतोत्तमः ॥ चचार तीर्थानि भुवस्त्यक्त्वा बंधून्सुदुस्त्यजान् ॥ ४८ ॥ कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः ॥ यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्त्वमुवाचह ॥ ४९ ॥ ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितं ॥ बंधुत्यागनिमित्तं च तथैवागतवान्पुनः ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ॥ तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥ ५१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥

कहाथाकि—जिनको त्यागना परम दुःखदायक था ऐसे बान्धवोंको त्यागकर महाभागवत विदुरजी, पृथ्वीपरके सकल तीर्थ और क्षेत्रोंके स्थानोंमें विचरनेको चलेगये ॥ ४८ ॥ उनका और मैत्रेय ऋषिका आत्मज्ञानके विषय में सम्वाद किस स्थानपर हुआथा ? और विदुरजीके प्रश्न करनेपर योगीश्वर भगवान् मैत्रेयजीने तिन विदुरजीको जोकुछतत्त्वज्ञान सुनायाहो वह हमेंसुनाइये, और हेसूतजी ! तिन विदुरजीने जो अपने बान्धवोंका त्याग किया तिसकाकौनकारणहुआथा ? और वह फिर अपनेघर किसकारण आये ! यह सब तिनविदुरजीका चरित्र हमें सुनाइये ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि—हेऋषियो ! तुमनेजो मुझसे प्रश्नकरा यहही पहिले राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे कियाथा तबतिन महामुनि शुकदेवजीने जोउत्तरकहा वहराजाके करेहुए प्रश्नके क्रमसे मैं तुम्हारेअर्थ वर्णनकरताहूँ ॥ ५१ ॥ इतिद्वितीय स्कन्धमें दशम अध्याय समाप्तहुआ ॥ शुभमस्तु ॥ * ॥ * ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि—मुरादाबादप्रवासि—भारद्वाजगोत्र—गौड़वंश्य—श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान—विद्यालये प्रधानाध्यापक—सर्वतन्त्रस्वतन्त्र—महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोपनामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषानुवादेन च सहितः द्वितीयस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ समाप्तोऽयम् द्वितीयस्कन्धः ॥

अथ तृतीयस्कन्धः

श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल ॥ क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥ यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ॥ पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयणासि सङ्गमः ॥ कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥ ३ ॥ नह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः ॥ तस्मिन्वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥ ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता ॥ प्रत्याह तं सं बहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा तु राजा स्वसुतानसाधून्पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ॥ भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबन्धून्प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥ ६ ॥ यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यं ॥ न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्त्रैर्हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥ ७ ॥ द्यूते त्वध-

श्रीशुकदेवजी बोले कि-हेराजन्! परीक्षित! पूर्वकाल में, सकलसम्पत्तियुक्त अपने गृहको त्यागकर वनमें गयेहुए विदुरजीने भगवान् मैत्रेय ऋषिसे इसप्रकार यहही प्रश्न कियाथा ॥ १ ॥ हेराजन्! विदुरजीके घरकी सम्पत्तिका कहांतक वर्णन करें-जहां यह विश्वपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवों के दूत बनने को हास्तिनापुरमें गयेथे; तबइन्होंने दुर्योधनके घरको त्यागकर अपना करके मानेहुए विदुरजीके घरमें विनाबुलायेही प्रवेश कियाथा ॥ २ ॥ राजाने कहाकि-हेप्रभो! भगवान् मैत्रेयजीके साथ विदुरजीका समागम कहां हुआथा? और उनदोनोंका परस्पर सम्वाद कब हुआथा? यह हमें सुनाइये॥३॥ निर्मलचित्त विदुरजीका तिन श्रेष्ठ मैत्रेयजीके प्रति कियाहुआ प्रश्न थोड़े अर्थकाप्रकाशित करनेवाला नहींथा, किन्तु वह प्रश्न सज्जन पुरुषोंके अनुमोदन से बढ़ाहुआ था ॥ ४ ॥ सूतजीबोले कि—हेऋषियों! राजा परीक्षित के इसप्रकार प्रश्न करनेपर तिन महाज्ञानी ऋषिवर शुकदेवजी ने प्रसन्न होकर तिस परीक्षितसे, हेराजन्! सुनो, ऐसा कहकर उत्तर कहनेका प्रारम्भ किया ॥ ५ ॥ शुकदेवजी बोलेकि-हेराजन्? जब जन्मके अन्ध और विवेकहीन राजा धृतराष्ट्रने, अपने दुष्ट पुत्रोंका अधर्मसे पोषण करतेहुए, अपने छोटेभ्राता के अनाथ पुत्रोंको लाक्षाघरमें भेजकर दाहकरा ॥ ६ ॥ तथा जब सभामें अपनी पुत्रवधू धर्मराजकी स्त्री, जिसके स्तनों परका केशर रुदन करते २ दुःखके अश्रुओंसे धुलगया है ऐसी द्रौपदीके केशों को खेंचना, इस अपने दुःशासन पुत्रके निन्दित कर्म को तिसराजा धृतराष्ट्र ने नहीं रोका ॥ ७ ॥ और द्यूतसभामें अधर्मसे जीते हुए, सहनशील, सत्यपालक,

मेण जितस्य साधोः सत्यावलम्बस्य वनागतस्य ॥ न यांचतोऽदात्समयेन दायं तमोजुषाणो यदजातशत्रोः ॥ ८ ॥ यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ॥ न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः॥९॥यदो-पहूतो भवनं प्रविष्टो मंत्राय पृष्टः किल पूर्वजेन॥ अथाह तन्मंत्रदृशां वरीयान् यन्मं-त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति॥१०॥ अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः ॥ सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन् रुषा यत्त्वमलं बिभेषि ॥ ११ ॥ पार्थांस्तु देवो भगवान्मुकुन्दो गृहीतवान् स क्षितिदेवदेवः ॥ आस्ते स्वपुर्यां यदु-देवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥ १२ ॥ स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमत्या ॥ पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुलकौ-शलाय ॥ १३ ॥ इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ॥ अस-

---

वनवास भोगकर आयेहुए और पहिले करेहुए नियम (कौल) के अनुसार अपना राज्य का भाग (हिस्सा) मांगते हुए भी धर्मराज को, पुत्रके मोहरूप अज्ञान में फँसेहुए तिन धृतराष्ट्र ने जब राज्यका भाग नहीं दियो॥ ८ ॥ और जब अपना भाग मांगनेके निमित्त कौरवों के पास पाण्डवों के भेजेहुए भगवान् श्रीकृष्णने भरीसभा में पुरुषों को अमृत की समान मधुर प्रतीत होनेवाले जो वचन कहे वह, जिसके राज्यभोग के पुण्य का अंश नष्ट होगया है ऐसे धृतराष्ट्र वा दुर्योधनने सन्मान के साथ स्वीकार नहीं करे ॥ ९ ॥ और जब धृतराष्ट्र के, 'पाण्डवों को राज्यका-भाग देना चाहिये या नहीं' ऐसी सम्मति करनेके निमित्त बुलाएहुए विदुरजी राजमन्दिरमें गये और उनसे धृतराष्ट्र ने प्रश्नकिये,उस समय, सम्मति देनेवालों में अतिश्रेष्ठ तिन विदुरजीने जोकुछ कहा तिसको राजमन्त्री पुरुष अवभी 'विदुरनीति' नामसे कहते हैं ॥ १० ॥ विदुरजीके कथनकासार यह है, विदुरजी ने कहाकि हेराजन् धृतराष्ट्र! तुम्हारे दुःसह अपराध को सहनेवाले धर्मराज को तुम राज्यका भागदेदो क्योंकि–जिस अपराधके कारण तुम, जिससे अत्यन्तही (मेरेपुत्रोंका नाश करदेगा इसकारण) भय मानते हो वह भीमसेनरूप सर्प छोटे भ्राताओं सहित क्रोध से लम्बिश्वासें (फुङ्कारें) छोड़रहाहै॥ ११ ॥हेराजन्! पाण्डवोंको जिनमुक्तिदाता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपना करके मानलियाहै वहयादवोंके परमदेवता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीपरके सकल राजाओंको जीतकर ब्राह्मणऔर देवताओंकी सहायता करतेहुए अवभी अपनीद्वारिका नगरीमें निवास करतेहैं, अतः पाण्डवोंका भाग शीघ्रही देदो ॥१२॥ हे-राजन् ! जिसकोतुम सन्तान जानकर पालरहेहो यह श्रीकृष्णसे द्वेषकरनेवाला दुर्योधन मूर्त्तिमान् दोषही तुम्हारेघरमें घुसाहुआहै. सो अपने कुलके कल्याणके निमित्त इसअमङ्गल पुत्रका तुम शीघ्र त्यागकरदो नहींतो तुम श्रीकृष्णजीसे विमुख होजाओगे और तुह्मारी सकल सम्पत्तियोंका नाश होजायगा ॥ १३ ॥ जिनके स्वभावकी साधुजन इच्छा करतेहैं

स्फुरितः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्णानुजसौबलेन ॥ १४ ॥ क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ॥ तस्मिन्प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसानः ॥ १५ ॥ स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ॥ स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरुमानयानः ॥ १६ ॥ स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ॥ अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥ १७ ॥ पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु ॥ अनन्तलिङ्गैः समलङ्कृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥ १८ ॥ गां पर्यटन् मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ॥ अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥ १९ ॥ इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान्प्रभासं ॥ तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥ २० ॥ तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयं ॥

तिन विदुरजीके इसप्रकार कहनेपर, कर्ण, दुःशासन और शकुनिसहित, अतिक्रोधसे जिसका नीचेका ओष्ठ फड़करहाहै ऐसे दुर्योधनने तिनविदुरजीका तिरस्कारकरके यहकहा कि—॥ १४ ॥ अरे इस कुटिल दासीपुत्रको यहां किसने बुलायाहै, चमत्कार देखोकि—यह स्वयंजिसघरका अन्नखाकर पुष्टहुआ उसकेही प्रतिकूलहो शत्रुका कार्य साधनेको उद्यत हुआहै, तथापि यह हमारा बड़ाहै अतःइसको जीवदान देकर शीघ्रही नगरसे निकाल दो ॥ १५ ॥ इसप्रकार भ्राता धृतराष्ट्रके सामने दुर्योधनके अतितीखे बाणसमान कर्णोंमें प्रवेश करनेवाले कठोरवचनोंसे मर्मस्थानोंमें पीड़ितहुएभी वह विदुरजी, मनमें कुछदुःख न मानकर, यहसवभगवान्की मायाका माहात्म्यहै, ऐसा समझतेहुए अपने धनुषको राज मन्दिर के द्वारपररख स्वयंही नगरसे निकलकर चलेगये ॥ १६ ॥ कौरवोंके पुण्यसे प्राप्तहुए वहविदुरजी, हस्तिनापुरसे बाहर जाकर 'कुछपुण्यकर्म करना चाहिये'ऐसीइच्छासे. भूतल पर ब्रह्मरुद्रादि अनन्तमूर्ति धारण करनेवाले भगवान् जिस२ स्थानमें रहेहैं तिन तीर्थपाद विष्णुभगवान्के पवित्र क्षेत्रोंमें यात्रा करनेकोचलदिये ॥ १७ ॥ विष्णुभगवान्की मूर्त्तियों से शोभायमान नगर, पर्वत, कुञ्ज (लताआदि से छायाहुआ स्थान) स्वच्छजलकी नदियें और सरोवर,तीर्थ तथा क्षेत्रोंमें वह विदुरजी इकलेही विचरनेलगे १८ इसप्रकार विचरनेवाले तिन विदुरजीने, एकान्तमें पवित्र अन्न भोजनकरना. प्रत्येक तीर्थमें स्नानकरना, पृथ्वीपर शयन करना, शरीरको दववाना तथा तैलमलना आदि संस्कारोंको त्यागना,वृक्षोंकी छाल आदि ओढ़ना, किसीकोभी अपना परिचय न देना इत्यादि श्रीहरिको प्रसन्न करनेवाले अनेकों व्रत धारण किये ॥ १९ ॥ वह विदुरजी इसप्रकार भरतखण्डमें तीर्थयात्रा करते२ कितनेही कालके अनन्तर जब प्रभासक्षेत्रमें जाकर पहुँचे इतने समयमेंही श्रीकृष्णजी की सहायता से धर्मराज एकचक्र और एकछत्र पृथ्वीका राज्य करनेलगे ॥ २० ॥

संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीं ॥ २१ ॥ तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ॥ तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥ २२ ॥ अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ॥ प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमंदिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति २३॥ ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजाङ्गलांश्च ॥ कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥ २४ ॥ स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतं ॥ आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् २५ कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ॥ आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥ २६ ॥ कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमंग शौरिः ॥ यो वै स्वसॄणां पितृवद्ददाति वरान्वदान्यो

इधर तिस प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर विदुरजीने, बांसोंके परस्पर घिसनेसे उत्पन्नहुई अग्नि करके जैसे वन भस्म होजाताहै तैसे, परस्परकी स्पर्धासे कौरवोंका नाश होगया, यह वृत्तान्त सुना, तदनन्तर वह विदुरजी कौरवोंका शोक करतेहुए मौनधारणकरे पश्चिमवाहिनी सरस्वतीनदी की ओरको चलदिये ॥ २१ ॥ और उन्होंने तिसनदीके तटपरके त्रिततीर्थ, शुक्रतीर्थ, मनुतीर्थ, पृथुतीर्थ, अग्नितीर्थ, असिततीर्थ, वायुतीर्थ, सुदासतीर्थ, गोतीर्थ, गुहतीर्थ और श्राद्धदेवतीर्थ इन ग्यारह प्रसिद्ध तीर्थोंका क्रमसे सेवनकिया॥२२॥और तहाँ अन्यऋषि तथा देवताओं के बनायेहुए,जिनके शिखरोंपर के सुवर्णके कलसों पर चक्रोंकी मूर्त्तियें शोभा देरहीहैं ऐसे अनेकों विष्णुभगवान् के मन्दिर तिन विदुरजीने देखे,जिनमन्दिरों के शिखरोंपर विराजमान चक्रोंके दर्शनसे दूररहनेवाले पुरुषोंको भी बारम्बार श्रीकृष्णभगवान्का स्मरणहोताहै ॥ २३ ॥ तदनन्तर धनधान्यादिसे सम्पन्न सुराष्ट्र (सूरत), सौवीर, मत्स्य, कुरु, और जाङ्गलदेशों को लांघकर कितनेही समयमें वह विदुरजी यमुनाजी के तटपर आपहुँचे, सो तहाँ भगवद्भक्त उद्धवजीभी आयेहुए थे तिनको देखा ॥ २४ ॥ उससमय तिन विदुरजीने, नीतिशास्त्रमें प्रवीण, बृहस्पतिजीके पुरातन प्रसिद्ध शिष्य और श्रीकृष्णजीके सेवक होनेके कारण अतिशान्तिमूर्त्ति तिन उद्धवजी को प्रेमके साथ हृदयसे लगाया और उनसे भगवान्के प्रजारूप यादव तथा कौरवोंकी कुशल बूझी ॥ २५ ॥ विदुरजी बोले कि—हे उद्धवजी ! अपने नाभिकमलसे उत्पन्नहुए ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे इस लोकमें अवतार धारणकरनेवाले पुराणपुरुष बलराम और श्रीकृष्ण, पृथ्वीका कल्याण करके सबको आनन्द देतेहुए वसुदेवजीके घरमें कुशलसे तो हैं? ॥ २६ ॥ हेउद्धवजी ! हम कौरवोंके परममित्र और पूज्य वह वसुदेवजी कुशल तो हैं ? जोकि—अतिउदार होनेके कारण "जैसे पिता अपनी पुत्रियोंको प्रियपदार्थ देताहै तैसे" अपनी भगनी (बहिन) और उनके

वरतर्पणेन ॥ २७ ॥ कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग वीरः ॥ यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रान्स्मरमादिसर्गे ॥ २८ ॥ कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ॥ यमभ्यषिञ्चच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥ २९ ॥ कच्चिद्धरेः सौम्यसुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणीरथिनां साधु साम्बः ॥ असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या देवं गुहं योऽम्बिकया धृतोऽग्रे ॥ ३० ॥ क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ॥ लेभेऽञ्जसाधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥ ३१ ॥ कच्चिद्बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ॥ यः कृष्णपादाङ्कितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥ ३२ ॥ कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ॥ या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥ ३३ ॥ अपिस्विदास्ते भगवान्सुखं वो यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ॥

पतियोंको इच्छित पदार्थ देकर उनके मनोरथ पूर्ण करते हैं ॥ २७ ॥ हे उद्धवजी ! यादवोंके सेनापति वीर प्रद्युम्नजी प्रसन्न तो हैं ? जो पूर्वजन्ममें कामदेव थे और इस जन्म में भी, पुत्र होनेकी अभिलाषासे ब्राह्मणोंकी आराधनाकर उनके आशीर्वाद करके जिनको श्रीकृष्णभगवान्से रुक्मिणी ने पायाहै ॥ २८ ॥ सात्वत, वृष्णि, भोज और दाशार्ह कुलों के स्वामी उग्रसेन, कंसके भय से प्राणवचानेके निमित्त राज्यसिंहासन की आशाको दूरसे ही छोड़गये थे, उनका कमलनयन श्रीकृष्णभगवान्ने फिर राज्याभिषेक किया वह कुशल तो हैं ? ॥ २९ ॥ हेसौम्य ! जाम्बवतीने अनेकों व्रत करके जिनको उत्पन्न किया था, वह पराक्रमादि गुणोंमें श्रीकृष्णकी समान, सकल रथियों में श्रेष्ठ श्रीहरिके पुत्र साम्ब भलीप्रकारसे सुखी तो हैं ? इनकोही पहिले पार्वती ने अपने गर्भ में धारण कियाथा, तब इनका नाम स्वामिकार्त्तिकेय था और यह देवताओं के सेनापतिथे ॥ ३० ॥ परमहंसयति महात्माओं को भी दुर्लभ भगवत्स्वरूप का ज्ञान जिनको विष्णुभगवान् की सेवासे सहजमें ही प्राप्त होगया और जिन्होंने अर्जुनसे धनुर्वेद का भेद सीखा वह सात्यकि आनन्दतो हैं ३१ प्रेम के कारण जिनका लोकलज्जारूप धैर्य नष्ट होगया और जो श्रीकृष्णजी के वज्र अंकुश आदि लक्षणयुक्त चरणों से चिन्हितमार्गोंकी धूलियों में लोटते फिरते थे वह भगवान्के शरणागत, ज्ञानी तथा निष्पाप अक्रूर क्षेमकुशल तो हैं ॥ ३२ ॥ ऋक्, यजु और साम यह तीन वेद, जैसे अपने मंत्रों में यज्ञ के विस्ताररूप अर्थ को धारण करते हैं तैसे ही जिन्होंने अपने गर्भ में श्रीकृष्णदेवको धारणकिया था तिन देवकी का 'जिसके पुत्र वामनरूप विष्णुभगवान् हुए उस अदिति नामक देवमाता की समान, मङ्गल तो है ? ॥ ३३ ॥ जो चित्त, अहङ्कार बुद्धि और मन इन चार प्रकारके अन्तःकरणके भेदोंमेंसे चौथा जो मन तत्स्वरूपहोकर तिस

यमामनन्ति स्मह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥ ३४ ॥ अपि स्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ॥ हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्णगदादयः स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥ ३५ ॥ अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुं ॥ दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ३६ ॥ किंवा कृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुंचत् ॥ यस्यांघ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रं ॥ ३७ ॥ कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां गांडीवधन्वोपरतारिरास्ते ॥ अलक्षितो यच्छरकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥ ३८ ॥ यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृतौ पक्ष्मभिरक्षिणीव ॥ रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्त्रात् ॥ ३९ ॥ अहो पृथाऽपि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनाऽपि तेन ॥ यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥ ४० ॥ सौम्यानुशोचे तमधःपतंतं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ॥ निर्या-

---

के ही प्रवर्त्तक हैं, अतः वेद जिनको शब्दका उत्पत्तिस्थान कहते हैं वह तुम्हारे बान्धव, उपासकोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले भगवान् अनिरुद्धजी सुखी तो हैं ? ॥ ३४ ॥ हे सौम्य ! अपने अन्तर्यामी देवता श्रीकृष्णजीकी अनन्यभक्तिके साथ सेवा करनेवाले अन्य हृदीक, सत्यभामाके पुत्र तथा गद आदि सकल यादव सुखसे तो विचरतेहैं?॥ ३५ ॥ जिन धर्मराजकी सभामें उनकी साम्राज्य लक्ष्मीको देखकर और अनेकों स्थानपरमिलीहुई उनकी विजयको स्मरण करके दुर्योधनको अत्यन्त दुःख हुआथा वह धर्मराज अपनी भुजाओंकी समानवर्त्ताव करनेवाले अर्जुन और श्रीकृष्ण सहित धर्ममार्गसे धर्ममर्यादाकी रक्षा तो करते हैं ? ॥ ३६ ॥ गदाके भिन्न २ प्रकारके युद्धमें विचरतेहुए जिसके चरणकी ठसक को रणभूमि नहीं सहसक्ती थी तिन सर्पकी समान अतिक्रोधी भीमसेनने अपराध करनेवाले कौरवोंके विषयमें, बहुत दिनोंसे मनमें धारण कराहुआ क्रोध तिन कौरवोंके ऊपर छोड़ा या नहीं ? ॥ ३७ ॥ जिसके बाणोंसे ढकजानेके कारण न दीखनेवाले तथा कपटसे किरात(भील)का रूपधारण करेहुए शिवजीभी प्रसन्नहुए और जो रथसमूहोंकी रक्षा करनेवाले वीरोंमें कीर्त्तिप्राप्तकरता है वह गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन अपने शत्रुओंका नाशकरके आनन्दपूर्वक तो है?॥ ३८ ॥ जिन माद्रीके पुत्रोंकी, माताके मरणके अनन्तर कुन्तीके पुत्ररूप माननेपर, धर्मराज, भीमसेन और अर्जुन इन तीनोने 'जैसे पलक नेत्रोंकीरक्षाकरतेहैं तैसे' रक्षाकरीथी वह नकुल सहदेव, 'जैसेदोगरुड़ इन्द्रकेमुखमेंसे अपना भोजनरूप अमृत निकाललें तैसे' युद्धमें शत्रुओं से अपनाराज्य छीनकरसुखसे क्रीड़ातो करतेहैं?॥ ३९ ॥ कैसाआश्चर्यहै ! जिस अतिरथीइकले वीरने केवल धनुषकी सहायता से चारों दिशाजीतीं तिस, राजर्षियों में श्रेष्ठराजा पाण्डु के वियोगको सहकर तिनके पीछे केवल बालकों के निमित्त जीवन धारण करनेवाली कुन्तीकी क्या कुशल पूछूँ ! परन्तु वह जीवित तो है ? ॥ ४० ॥ हेसौम्य ! जिसने धर्मराज

पितो येन सुहृत्स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान्समनुव्रतेन ॥ ४१ ॥ सोऽहं हरेर्मर्त्यविडंबनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः ॥ नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र ॥ ४२ ॥ नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ॥ वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशो ऽप्युपैक्षताघं भगवान्कुरूणां ॥ ४३ ॥ अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसां ॥ नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतंत्रम् ॥ ४४ ॥ तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ॥ अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ ४५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसम्वादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ॥ प्रतिवक्तुं न चोत्सेहे औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥ १ ॥ यः पं-

---

आदिसे द्रोह करके मानो मरणको प्राप्तहुए अपनेभ्राता (राजापाण्डु) से द्रोह कराहै और जिसने अपने पुत्रोंकी इच्छानुसार, हितू वाक्य कहनेवाले मुझप्रत्यक्षभ्राताको नगरसे वाहरनिकलवाया तिस अधोगतिको प्राप्त होनेवाले धर्मराजका मैं वारंवार शोककरताहूँ ४१ हे उद्धव ! इसप्रकार कौरवोंसे अपमानको प्राप्तहुआभीमैं मनुष्यकी समान आकृति से मनुष्योंकी चित्तकी वृत्तियोंको मोहित करनेवाले सर्वाधार श्रीकृष्णजीके अनुग्रहसे उनके ही माहात्म्यको देखताहुआ आश्चर्यरहितहो, इसपृथ्वीपर आनन्दके साथ गुप्तरूपसे विचरता रहताहूँ ॥ ४२ ॥ मुझेतो ऐसा प्रतीत होताहैकि—विद्या,धन और उत्तम कुलमें जन्म इनतीनप्रकारके मदोंसे उद्धत (वेहोश) होकर, अपनीसेनाओंसे वारंवार पृथ्वीको कम्पायमान करनेवाले दुष्टराजाओंके वधकरके शरणागतोंका दुःख दूरकरनेकी इच्छासेही अपराधके समयदण्डदेनेको समर्थ होकरभी भगवान्‌ने कौरवोंके अपराधोंकी उपेक्षाकरीहै। ४३। भगवान् स्वयं जन्म रहितहैं और उनके जन्म (अवतार) दुष्टोंका नाश करनेके निमित्त होतेहैं और तिन अकर्ताके कर्म, सकलजनोंकी सत्कर्मोंमें प्रवृत्ति करानेके निमित्त होतेहैं. यदि ऐसा न होतो—गुणातीत तथा आनन्दस्वरूपमें निमग्न हुआ कौन शरीरको स्वीकार करके कर्मोंका जाल फैलानेके निमित्त चेष्टाकरे ? अर्थात् कोईनहींकरे ॥ ४४ ॥ अतःहेमित्रउद्धवजी ! तीर्थकीसमान पवित्र करनेवाली जिनकी कीर्तिहै और जोजन्मरहित होकरभी सकल शरणागतलोकपालोंकी तथा अपनी वेदरूप आज्ञामें रहनेवाले सकलसज्जनोंकीरक्षाकेनिमित्त यादवोंमेंप्रगटहुएहैंतिनश्रीकृष्णभगवान्‌कीकथाकहो। ४५ ।।तृतीयस्कन्धमेंप्रथमअध्यासमाप्त।। श्रीशुकदेवजी बोले कि—इसप्रकार विदुरजीने परमप्रिय श्रीकृष्णजीका समाचार उद्धवजीसे बूझा, तवतो उत्कण्ठासे जगदीश्वर श्रीकृष्णभगवान् का स्मरण आजाने के कारण वह भगवद्भक्त उद्धवजी बहुत देरी पर्यन्त विदुरजी को कुछ उत्तर नहीं देसके ॥ १ ॥ क्यों

न्हायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ॥ तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥ २ ॥ स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः ॥ पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥ ३ ॥ स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णांघ्रिसुधया भृशं ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधुनिर्वृतः ॥ ४ ॥ पुलकोद्भिन्नसर्वांगो मुंचन्मीलद्दृशा शुचः ॥ पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥ ५ ॥ शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः ॥ विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥ ६ ॥ उद्धव उवाच ॥ कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ॥ किं पुनः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहं ॥ ७ ॥ दुर्भगो बत लोकोयं यदवो नितरामपि ॥ ये संवसंतो न विदुर्हरिं मीनां इवोडुपम् ॥ ८ ॥ इंगितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्वताः ॥ सात्वता-

कि–जिन उद्धवजीने पांचवर्ष की अवस्था में अपनी माता के प्रातःकाल के समय भोजन के निमित्त बुलानेपर, बाललीला (खेल) से जो कृष्णपूजा करतेथे उसको छोड़करातिस भोजन की इच्छा नहीं करी ॥ २ ॥ वह उद्धवजी तिन श्रीकृष्णकी सेवा में ही समय विताते हुए वृद्धावस्थाको प्राप्त होगयेथे अतः श्रीकृष्णजी के विषय में विदुरजी के प्रश्न करते ही उनको अपने स्वामी (श्रीकृष्ण) के चरणों का स्मरण आगया और विरहसे व्याकुल होगये, इस दशामें वह उत्तर देही कैसेसक्तेथे ? ॥ ३ ॥ सो उद्धवजी दोघड़ी पर्यन्त भाषणरहित होकर निश्चल दशामें रहे, उन्होंने श्रीकृष्णके चरणोंकेस्मरण रूप अमृत का परमसुख पाया और तीव्र भक्तिसे श्रीकृष्णजीके ध्यानरूप अमृतकेप्रवाह में निमग्नरहे ॥ ४ ॥ जिनके सकल शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगए हैं, जिनके मुँदे हुए नेत्रों में से प्रेमके अश्रुओंकी धारावहरही है और जो भगवान्के चरणारविन्दोंके विषैस्नेह के प्रवाह में परमनिमग्न हुए हैं ऐसे उद्धवजीको देखकर विदुरजीने जाना कि–यह कृतकृत्य होगये ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर वह उद्धवजी धीरे २ भगवत्स्वरूपसे हटकर फिर देहकी सावधानी (होश) में आये और नेत्रों को पोंछकर श्रीकृष्णजीकी चातुरीकेस्मरण से आश्चर्य में पड़ेहुए से विदुरजी से भाषण करनेलगे ॥ ६ ॥ उद्धवजी बोले कि–हेविदुरजी ! श्रीकृष्णरूप सूर्यके अस्त होने पर, कालरूप महासर्प से निगलेहुए अपनेगृहों में, तुम्हारे बूझे हुए बान्धवों की मैं क्या कुशल कहूँ ? ॥ ७ ॥ हा ? यहलोकही दुर्भाग्य है तिसमें यादव तो सर्वथाही भाग्यहीन हैं क्योंकि–क्षीरसमुद्र में विद्यमान चन्द्रमा को जैसे पहिले तहां रहनेवाले मत्स्यों ने ' यह चंद्रमा है ' ऐसा नहीं जानाथा तैसेही, श्रीकृष्णके साथ रहतेहुए यादवों ने भी ' यह श्रीहरि हैं ' ऐसा नहीं जाना ॥ ८ ॥ दूसरोंके मनके विचारको जाननेवाले, परमचतुर और श्रीकृष्णजीके साथ एक स्थानपर क्रीड़ा करनेवाले तिन यादवों ने सकल प्राणियों के आधाररूप श्रीकृष्णजी को, यह कोई यादवोंमें श्रेष्ठहैं

मूर्धभिं सर्वे भूतावासममंसत ॥ ९ ॥ देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः ॥ भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥ १० ॥ प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणां ॥ आदायांतरधाद्यस्तु स्वबिंबं लोकलोचनम् ॥ ११ ॥ यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतं ॥ विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणांगं ॥ १२ ॥ यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ॥ कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥ ॥ १३ ॥ यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलाऽवलोकप्रतिलब्धमानाः ॥ व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥ १४ ॥ स्वशांतिरूपेष्वितरैः स्व-

ऐसा जाना ॥ ९ ॥ जो यादव, देवमाया से मोहित होकर श्रीकृष्णजी को 'यह हममें के यादवहैं' ऐसा मानतेथे और जो शिशुपाल आदि राजे निरर्थक वैरबुद्धि करके उनकी निन्दा करते थे, तिनके वाक्योंसे,आत्मस्वरूप श्रीहरिके विषैं चित्त लगानेवाले हमसरीखों की बुद्धिमोह में नहीं पड़ती है ॥ १० ॥ जिन्होंने पहिले तपस्या नहीं करी ऐसे पुरुषों को, भगवान् ने, अपना सकल सुन्दरतायुक्त स्वरूप दिखाकर, उनकीतृप्ति नहीं हुई इतने ही में उनके नेत्ररूप अपने स्वरूपको खैंचकर अन्तर्धान करलिया ॥ ११ ॥ तिसस्वरूप को ईश्वर ने अपनी योगमाया का बल दिखाने के निमित्त ग्रहण कियाथा, और वह मृत्यु लोक के भक्तों के कष्टहरणकी अनेकों लीलाओंका साधनथा,उसको देखकर स्वयंनारायण भी आश्चर्य में होजाते थे क्योंकि—वह सुन्दरता और ऐश्वर्यकी अतिपराकाष्ठा (दशा) का स्थानथा और कौस्तुभ आदि सकल आभूषणोंसे भी शोभित होनेवाले करचरण आदि अवयवों से भूषितथा ॥ १२ ॥ अहो ! धर्मराजके राजसूय यज्ञमें नेत्रों को आनन्द देनेवाले जिस श्रीकृष्णजी के स्वरूप को देखकर, त्रिलोकी के सकल प्राणीमात्र ने,सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी की नवीन सृष्टि के विषैं चराचर जगत्को रचने में जोकुछ चतुराई है वह आजयहां विराजमानइसकृष्णमूर्त्तिमें पूरीहोगईइससेअधिक चतुराईविधातामें नहीं है ऐसामानाथा* १३ जिन श्रीकृष्णजीके स्वरूपके प्रेमपूर्वक हास्य, रास और लीलायुक्त अवलोकन (कटाक्षों) से सत्कारको प्राप्तहुई गोकुलकी स्त्रियें, तिस कृष्णस्वरूपके प्रतिदिन वनमें जानेपर, उसके पीछेही दृष्टियोंसहित अपनी चित्तकी वृत्तियोंके चलेजानेसे, अपने घरके कार्योंको अधभर मेंही छोड़कर चित्रोंमें बनाईहुई पुतलियोंकी समान निश्चल होकर बैठजाती थीं ॥ १४ ॥

* यद्यपि श्रीकृष्णजीका शरीर उनकीही योगमाया से रचाहुआथा ब्रह्माजीकी रचना नहींथी तथापि लोकदृष्टिके अनुसार ऐसा वर्णन किया है, क्योंकि-श्रीकृष्णभगवान् तो स्वयंही कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थये ।

रूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकंपितात्मा ॥ परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोपि जातो भगवान्यथाग्निः ॥ १५ ॥ मां खेदयत्येतदजस्य जन्मविडंबनं यद्वसुदेवगेहे ॥ ब्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदनंतवीर्यः ॥ १६ ॥ दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवंद्य पित्रोः ॥ तातांब कंसादुरुशङ्कितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनां ॥ १७ ॥ को वा अमुष्यांघ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीर्त पुमान्विजिघ्रन् ॥ यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतांतेन तिरश्चकार ॥ ॥ १८ ॥ दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोपि सिद्धिः ॥ यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥ १९ ॥ तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविन्दं ॥ नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥ २० ॥ स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्या

देव ऋषि आदि अपने शान्त (सत्वगुणी) स्वरूपोंको अपनेही दैत्यदानव आदि घोर (तमोगुणी और रजोगुणी) स्वरूपोंसे पीड़ा प्राप्त होनेपर, वह सत्वगुणी पुरुषोंपर दया करनेवाले सर्वेश्वर भगवान् वास्तवमें जन्मरहित होकर भी, महाभूतस्वरूपसे सर्वत्र व्याप्त भी अग्नि जैसे काष्ठमें प्रकट होताहै तैसे, प्रकृतिके महत्तत्त्वनामक अंशसे युक्तहोकर यादवकुलमें प्रकटहुए ॥ १५ ॥ हेविदुरजी ! वसुदेवके घर (कारागार) में जन्मरहित भी भगवान् ने जो जन्म लेनेका अनुकरण (नकल) किया और आप अनन्तपराक्रमी होकर भी उन्होंने कंससे भयभीतसे होकर जो गोकुलमें निवास किया तथा कालयवन आदि शत्रुओं से भयभीतसे होकर जो वह मथुरानगरीसे निकलकर चलेगये,यह उनकी सकललीला मेरे चित्तको वेधती हैं ॥ १६ ॥ तथा श्रीकृष्णजी का कंसके वधके अनन्तर, अपने माता पिता देवकी वसुदेवके चरणोंको प्रणाम करके, हेतात ! हेमातः ! हम अबतक कंससे बहुत भय मानतेथे अतः हमसे तुम्हारी कुछ सेवा न बनपड़ी, इस हमारे अपराधको क्षमा करके हम दोनों पुत्रोंपर आप प्रसन्न हों, इसप्रकारका भाषण स्मरण आकर मेरे चित्तको परमदुःखित करताहै ॥ १७ ॥ जिन श्रीकृष्णजी ने अतिशोभायमान अपनी भृकुटिरूप कालशक्तिसे भूमि का सकल भार दूरकिया उनके चरणकमलोंकी रजके सुगन्धको ग्रहण करनेवाला कौनसा पुरुष, तिन प्रभुको विस्मरण करनेमें समर्थ होगा ॥ १८ ॥ अहो ! नारदादि बड़े २ योगी, उत्तम योगसाधनों से जिस मोक्षरूप सिद्धिको चित्तसे चाहतेहैं वह, आजन्म श्रीकृष्णसे द्वेष करनेवालेभी शिशुपाल को राजसूय यज्ञमें प्राप्तहुई यह तुमनेही प्रत्यक्ष देखाहै,ऐसे श्रीकृष्णके विरहको,कौन ऐसाहै जो सहेगा? ॥१९॥ तथा और भी जो भूमण्डलपरके वीर,कौरवपाण्डवोंके युद्धमें आयेथे वह अर्जुनके शस्त्रोंसे निष्पाप होतेहुए अपने नेत्रोंसे,नेत्रोंको आनन्ददायक श्रीकृष्णजीके मुखकमलको देखकर उनके वैकुण्ठ लोकको चलेगये ॥२०॥ हे विदुरजी ! श्रीकृष्णजी तो त्रिलोकी के नाथ,स्वयंसिद्ध पूर्णप-

प्तसमस्तकामः ॥ बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥२१॥ तत्तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान्नो विग्लापयत्यंग यदुग्रसेनम् ॥ तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठि-धिष्ण्ये न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥ २२ ॥ अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघां-सयाऽपाययदप्यसाध्वी ॥ लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ २३ ॥ मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचि-त्तान् ॥ ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसे सुनाभायुधमापतन्तम् ॥ २४ ॥ वसु-देवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने ॥ चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचि-तः ॥ २५ ॥ ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्विबिभ्यता ॥ एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥ २६ ॥ परीतो वत्सपैर्वत्सांश्चारयन् व्यहरद्विभुः ॥ यमुनोपवने कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥ २७ ॥ कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्र-

रमानन्दरूप सम्पत्तिसे प्राप्तहुए सकल भोगोंसे युक्त थे, उनकी समान वा उनसे अधिक दूसरा कोई नहीं है और भेंट वा पूजालेकर आयेहुए चिरकालीन लोकपालों ने अपने मु-कुटोंके अग्रभागों से (अर्थात् मुकुटोंकी रगड़के शब्दोंसे) उनके चरण रखनेके आसनकी स्तुतिकरी हैं ॥ २१ ॥ वह श्रीकृष्णभगवान् आप खड़ेहोकर, राज्यसिंहासनपर बैठेहुए राजा उग्रसेनसे 'हे देव (राजाधिराज) ! आप इसकार्यकी विनयपर ध्यानदें' ऐसी जो प्रार्थना करते थे, वह उनका दासत्व, उनके हम सेवकोंको अत्यन्त खिन्न करता है ॥२२॥ परन्तु केवल कृपाके सिवाय इसका कोई कारण देखनेमें नहीं आता, अहो ! पूतनाने प्रा-णान्त करनेकी इच्छासे, अपने स्तनोंमें कालकूट विषभरकर वह कृष्णको स्तनपान कराने के मिषसे पिलाया, ऐसी दुष्ट वह पूतना तिन श्रीकृष्णसे, यशोदा माताके योग्य गतिको प्रा-प्तहुई, इसकारण अनुपम दयासागर श्रीकृष्णको छोड़ दूसरे किस साधारण पुरुषकी हम शरणजायँ॥२३॥हेविदुरजी ! चक्रधारी श्रीहरि जिनके कन्धेपरहैं ऐसेयुद्धमें आयेहुएगरु-ड़जीका जिन्होंने दर्शनकिया और त्रिलोकीनाथ भगवान्के विषैं क्रोधके आवेशरूप मार्ग से जिनका चित्तगयाहै ऐसे दैत्योंकोभी मैं भगवद्भक्तमानताहूँ,क्योंकि-वहभीमुक्तिहीपातेहैं२४ अबउद्धवजी श्रीकृष्णजीका चरित्र संक्षेपसे कहतेहैं—ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर भगवान्, पृथ्वीका भार दूरकरनेके निमित्त कंसके बन्दीघरमें वसुदेवजीकी देवकीके विषैं उत्पन्नहुए ॥ २५ ॥ तदनन्तर कंससेभयभीत पितावसुदेवजीके, गोकुलमें नन्दजीके यहाँ पहुँचादेने पर,उन्होंने अपने ईश्वरीय तेजको गुप्तरखकर बलरामसहित तहाँ ग्यारहवर्ष पर्यन्त निवास किया ॥ २६ ॥ ग्वालोंसहित भगवान्ने बछड़ोंको चरातेसमय, शब्दकरनेवाले पक्षियों से जहाँके वृक्षव्याप्तहोरहेहैं ऐसे यमुनाके तटके बागों में क्रीड़ा करी ॥ २७ ॥ भोले सिं-हशावक (सिंहके बच्चे) कीसमान जिनका देखनाहै वहभगवान्, गोकुलवासीपुरुषोंके देखने

जौकसाम् ॥ रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥ २८ ॥ स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषं ॥ चारयन्ननुगान् गोपान् रणद्वेणुररीरमत् ॥ २९ ॥ प्रयुक्तान् भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः ॥ लीलया व्यनुदत्तांस्तान्बालः क्रीडनकानिव ॥ ३० ॥ विपन्नान्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् ॥ उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥ ३१ ॥ अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः॥ वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययं विभुः ॥ ३२ ॥ वर्षतीन्द्रे व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः ॥ गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥ ३३ ॥ शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन् रजनीमुखं ॥ गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ३४॥ इतिश्रीभाग० तृ० द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ५ ॥ उद्धव उवाच ॥ ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ॥ निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं हतं

येअन्य बाललीलाएं दिखातेहुए कभीरुदनकरतेहुएसे कभीहँसतेहुएसे प्रतीतहोतेथे ॥ २८ ॥ वहीभगवान् कुछबड़े होनेपर स्वेतवर्णकी गौ और वृषभोंसे युक्त लक्ष्मीके स्थानरूप गोधनको चरातेहुए बाँसुरी बजाकर साथके गोपोंकोआनन्द देते थे ॥२९॥ उससमयउन्होंनेजैसे बालक, खेलनेके निमित्त बनाएहुए मृत्तिकाके वा तृणोंके व्याघ्र सिंहादि को तोड़ मरोड़ डालताहै तैसे, कंसके भेजेहुए यथेष्टरूप धारण करनेवाले मायावी तृणावर्त्त बकासुर आदि दैत्योंको साधारण लीलासे ही परलोकको पहुँचादिया ॥३०॥ और उन्होंने कालियनामक सर्पको वशमें करके यमुना में से निकालकर रमणकद्वीपको भेजदिया और जहरीले जलसे मरणको प्राप्तहुए गोप और गौओं को उठाकर, पूर्वकी समान स्वच्छ और निर्विष हुआ यमुनाका जल पिलाया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर बढ़ेहुए धनका सत्कर्ममें व्यय और इन्द्र का मानभङ्ग करनेका मनमें विचारकरके तिनप्रभु श्रीकृष्णजीने उत्तम ब्राह्मणोंके द्वारा नंदजीके हाथसे गौओंकी पूजा और गोवर्द्धन उत्साहरूप यज्ञकरवाया ॥ ३२ ॥ हेविदुरजी ! अपना मानभङ्ग होनेके कारण क्रोधसे इन्द्रके मूसलधार जल बरसानेपर अतिव्याकुलहुए व्रजपर अनुग्रह करनेवाले भगवान्ने गोवर्द्धनपर्वतरूप लीला(खेल)के छत्रको धारण करके उनकी रक्षाकरी ॥ ३३ ॥ शरदृतुके चन्द्रमाकी किरणों से प्रकाशयुक्त रात्रि के मुखका सन्मान करतेहुए गोपियोंके मण्डलको शोभायमान करनेवाले वह भगवान् मधुर स्वरसे गानकरते २ तिनके साथ आनन्द में निमग्नहुए ॥ ३४ ॥ इति तृतीय स्कन्ध में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥*॥ उद्धवजी कहनेलगे कि—हेविदुरजी ! तदनन्तर बलरामसहित वह श्रीकृष्णजी अपने माता पिताको सुखदेनेकी इच्छासे मथुरापुरी में आये और अपने शत्रुसमूहके स्वामी कंसको अतिऊँचे राजसिंहासनपरसे बलात्कारसे(जबरदस्ती)नीचेगिराकर परलोकगतिको पहुँचाया और प्राणहीनहुए तिसके शरीरको (मातापिताको प्रियप्रतीत

न्यकपद्द्यसुमोजसोर्यमीम् ॥ १ ॥ सान्दीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरं॥ तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥ २ ॥ समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूपयैषाम् ॥ गान्धर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥ ३ ॥ ककुद्मतो विद्धनसो दमित्वा स्वयम्वरे नाग्नजितीमुवाह ॥ तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञान्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥ ४ ॥ प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुरार्च्छत् द्युतरुं यदर्थे ॥ वज्र्यद्रवत्तं सगणो रुषांऽधः क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ॥ ५ ॥ सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ॥ आमन्त्रितस्तत्तनयाय शेपं दत्त्वा तदन्तःपु- रमाविवेश ॥ ६ ॥ तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबन्धुं ॥

होनेके निमित्त) रङ्गभूमि में शिवर तिथरको खचेड़ा ॥ १ ॥ तदनन्तर बलराम सहित तिन श्रीकृष्णजीने सन्दीपन नामक गुरुसे एकवार मात्रउपदेश करनेपरही अङ्गोंसहितचारों वेद पढ़लिये और तिन गुरुको,पञ्चजननामक दैत्यके उदरको फाड़कर तिसके द्वारा मरण को प्राप्तहुआ उनगुरुका पुत्र, यमलोक से लाकर गुरुदक्षिणा में दिया तथा उनको औरभी वरदान दिये ॥२॥ तदनन्तर राजाभीष्मककी रुक्मिणीनामक कन्याने,लक्ष्मीकी समानअपने स्वरूपकी सुन्दरतासे मोहित करके स्वयम्वरमें जो राजे बुलायेथे,उनके शीसपर चरण रखकर अर्थात् उनका तिरस्कारकरके, उनके प्रत्यक्षदेखतेहुए श्रीकृष्णजीने रुक्मिणीकेसाथ अपना विवाह गान्धर्वविधि (परस्परके सङ्केतरूप नियम) से होनेकी इच्छासे, जैसे गरुड़, इन्द्रसे अमृत छीनले तैसे, अपना भाग, लक्ष्मी की अंशभूत रुक्मिणी को हरलिया ॥ ३ ॥ तदनन्तर राजा अग्निजित्के विना नथे सातवृषभोंको नाथकर स्वयम्वरमें भगवान्ने उनकी पुत्री नाग्निजितीसे विवाह करलिया और तिन वृषभोंने पहिले जिनका गर्व दूरकरदिया था तथापि फिर नाग्निजितीकी इच्छाकरके श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेको आयेहुए तिन शस्त्रधारी अज्ञराजाओं का एकभी शस्त्रका प्रहार अपने ऊपर न लेकर अपने शस्त्रों से उनका संहार करडाला ॥ ४ ॥ वह स्वतन्त्रभी भगवान् स्त्री के वशीभूतपुरुषकी समान अपनी सत्यभामानामक स्त्रीका प्रिय करने के निमित्त स्वर्गमेंका पारिजातक वृक्ष द्वारिकामें लाये, उस के कारण से इन्द्राणी के कथनानुसार वज्रधारी इन्द्र क्रोधसे अन्ध (विवेकहीन) होकर देवताओं को साथमें ले युद्ध करने को आये थे, इससे निश्चय इन्द्रको स्त्रियोंके खेलनेका हरिणरूप खिलौना कहाजासक्ता है ॥ ५ ॥ निजशरीरसे आकाशकाभी ग्रास करनेवाले अपने पुत्रनरकासुर को युद्धमें श्रीकृष्णजी के चक्रसे मरणको प्राप्तहुआ देखकर,पृथ्वीके प्रार्थना करनेपर भगवान्ने उसके भगदत्त नामकपुत्रको अपने हरणकरने से शेष रहाहुआ राज्य देकर उसके अन्तःपुर में प्रवेश किया ॥ ६ ॥ तहाँ नरकासुरकी पहिले हरकर लाईहुई

उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहितावलोकैः॥७॥आसां मुहूर्त एकस्मिन्ना-नागारेषु योषितां॥ सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ।८।तास्वपत्यान्यजनय-दात्मतुल्यानि सर्वतः॥ एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥ कालमागध-शाल्वादीननीकै रुन्धतः पुरं॥ अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत्॥१०॥ शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च॥अन्यांश्च दन्तवक्रादीनवधीत्कांश्च घातयत्॥ ॥ ११ ॥ अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् ॥ चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः॥१२॥स कर्णदुःशासनसौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषं॥ सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमूर्व्यां न ननन्द पश्यन् ॥ १३ ॥ कियान्भुवोऽयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ॥ अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनां ॥ १४ ॥ मिथो यदैषां भविता विवादो मध्वामदाताम्रवि-

जो राजकन्या थीं वह, तिन दीनबन्धु श्रीहरिको देखतेही तत्काल उठकर खड़ी होगईं और उन्होंने अति हर्षयुक्त लज्जासहित प्रेमपूर्वक दृष्टिपातसे श्रीकृष्णजीको पतिरूपसे वरलिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने तिन सकल राजकन्याओंको द्वारकामें लाकर निराले २ मन्दिरोंमें रखदिया और अपनी योगमायासे तिन स्त्रियोंके योग्य अपने उतनेही रूप प्रकट करके तिन प्रत्येक मन्दिरों में एकही मुहूर्त्तमें जाकर सकल कन्याओंसे विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजीने अपनी मायाका विस्तार होनेकी इच्छासे तिन प्रत्येक राजकन्याओं के विषैं, सकल गुणोंमें अपनी समान दश २ पुत्र उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ तदनन्तर सेनाओंसे अपनी मथुरानगरीको घेरनेवाले कालयवन, जरासन्ध, शाल्व आदि राजाओंका मुचकुन्द भीम आदिके द्वारा भगवान्ने वध करवाया और तिससे अपने भक्तोंकी सर्वत्र कीर्त्ति फैलाई ॥ १० ॥ शम्बरासुर, द्विविद वानर, बाणासुर, मुर, बल्वल तथा अन्यभी जो दन्तवक्र आदि शत्रु, उनमेंसे कितनोंहीका भगवान्ने स्वयं वधकिया और कितनोंहींका प्रद्युम्न बलराम आदिसे संहार करवाया ॥ ११ ॥ हे विदुरजी ! पाण्डु और धृतराष्ट्र इन तुम्हारे भ्राताओंके पुत्रोंके पक्षमें सहायता करनेके निमित्त कुरुक्षेत्रमें आनेवाले जिन राजाओं की सेनाओंसे भूमि डगमगागई थी तिन राजाओंकाभी श्रीकृष्णजीने संहारकिया ॥ १२ ॥ हे विदुरजी ! कर्ण, दुःशासन और शकुनिके खोटे उपदेशोंसे जिसकी राज्यलक्ष्मी और आयु नष्ट होगई है और जिसकी जंघा टूटगई है ऐसे सेना और बान्धवों सहित युद्धभूमिमें मरणको प्राप्त होकर पड़ेहुए दुर्योधनको देखकरभी वह श्रीकृष्णजी आनन्दित नहीं हुए ॥ १३ ॥ और मनमें कहनेलगे कि–द्रोण, भीष्म, अर्जुन और भीमसेन आदिके द्वारा दूर कराहुआ यह अठारह अक्षौहिणी रूप भूमिका भार, यदि देखाजाय तो कितना है ? अर्थात् कुछभी नहीं है, क्योंकि–मेरे अंशभूत जो प्रद्युम्न आदि वीर तिनकरके परम दुःसह यादवोंकी सेना अबभी जैसीकी तैसी बनीहुई है ॥ १४ ॥ जब मद्यपानके मदसे लालनेत्र

लोचनानां ॥ नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥ १५ ॥ एवं सञ्चिन्त्य भगवान् स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजं ॥ नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥ १६ ॥ उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना ॥ स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥ १७ ॥ अयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः ॥ सोऽपि क्ष्मामनुजै रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः ॥ १८ ॥ भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ॥ कामान्सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥ १९ ॥ स्निग्धस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया । चरित्रेणानवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥२०॥ इमं लोकममुं चैव रमयन्सुतरां यदून् ॥ रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥ २१ ॥ तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान् बहून् ॥ गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥ २२ ॥ दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् ॥ को विश्रम्भेत

हुए इन यादवोंमें परस्पर कलह होगा तब इसही उपायसे इनका नाश होगा, इनके नाश का दूसरा कोई उपाय नहीं है, इसकार्य में मेरे उद्योग करनेपर यह यादव अपने आप मद्यपान आदि करके नष्ट होजायँगे ॥ १५ ॥ ऐसा विचारकर भगवान् ने धर्मराज को उनके राज्यसिंहासनपर स्थापन किया और साधु पुरुषों का मार्ग दिखलाकर अपने सकल मित्रों को आनन्दित किया ॥ १६ ॥ उत्तराके विषैं अभिमन्यु ने जो पुरुवंशका बीजरूप उत्तम गर्भस्थापन किया था, वह अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से नष्टसा होगयाथा परन्तु भगवान् ने उसकी फिर रक्षा करी ॥ १७ ॥ तदनन्तर प्रभुने धर्मराज से तीन अश्वमेध यज्ञों के द्वारा नारायण का पूजन कराया, वह धर्मराज भी श्रीकृष्णजी के कथनानुसार अपने छोटे भ्राताओं सहित पृथ्वी की रक्षा करते हुए राज्यसुख का आनन्द भोगनेलगे ॥ १८ ॥ तिन जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्णजी ने भी लौकिक और वैदिक मार्गके अनुसार प्रकृति और पुरुषके विवेकरूप सांख्यशास्त्रकेविचार से सकल पदार्थों में मनकी आसक्तिको त्यागकर द्वारका पुरीमें विषयोंका उपभोग करने लगे ॥ १९ ॥ स्नेहयुक्त मन्दमुसकुरान सहित अवलोकनसे, अमृतसमान मधुरवाणी से, कल्याणकारी पवित्र चरित्रों से और लक्ष्मी वा सकल शोभाओं के मुख्यस्थानरूप स्वरूप से ॥ २० ॥ इसलोक और परलोक को आनन्द देतेहुए और विशेषतया यादवोंको आनन्दित करते हुए, रात्रि के द्वारा जिनको आनन्द प्राप्त होता है ऐसी स्त्रियों के विषैं जिन का क्षणिक प्रेम है ऐसे तिन भगवान् श्रीकृष्णने भी द्वारिका में आनन्द भोगा ॥ २१ ॥ इसप्रकार बहुतसे वर्षों पर्यन्त विषयों को भोगनेवाले श्रीकृष्णजी को भी गृहस्थधर्म और विषयभोगके उपायों में वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ जब अपने अधीन भोगों में भी

योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥ २३ ॥ पुर्यां कदाचित्क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः ॥ कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥ २४ ॥ ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः ॥ ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्देवविमोहिताः ॥ २५ ॥ तत्र स्नात्वा पितॄन्देवान् ऋषींश्चैव तदम्भसा ॥ तर्पयित्वाथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥ २६ ॥ हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकम्बलान् ॥ यानं रथानिभान्कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥ २७ ॥ अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्वा भगवदर्पणम् ॥ गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्द्धभिः ॥ २८ ॥ इ० भा० तृ० विदुरोद्धवसम्वादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ उद्धव उवाच ॥ अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ॥ तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥ तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् ॥ निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥२॥

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णजीको वैराग्य हुआ तब भक्तिपूर्वक ज्ञानके द्वारा भगवान्का अनुगामी कौन दैवका वशीभूत पुरुष, दैवके अधीन रहनेवाले विषयों में विश्वासपूर्वक प्रीति करेगा ? अर्थात् कोई नहीं करेगा ॥ २३ ॥ एकसमय द्वारकामें क्रीड़ा करतेहुए यादव और भोजवंशके बालकों के कोपित करेहुए तथा भगवान् के अभिप्राय को जानने वाले ऋषियों ने तिन बालकों को'यादवकुलका नाश होजायगा'ऐसा शापदिया॥२४॥ तदनन्तर कईमास के अनन्तर श्रीकृष्ण के मोहित करेहुए वृष्णि; भोज और अन्धक आदि यादव (तिसशापको निवारण करनेके निमित्त)रथोंमें बैठकर प्रसन्न होतेहुए प्रभासक्षेत्रको गये२५ उन्होंने तहांके तीर्थ में स्नान करके और तिस तीर्थ के जलसे ऋषि तथा पितरोंका तर्पण करके ब्राह्मणोंको शीलस्वभाव आदि अनेकों गुणयुक्त अनेकों गौ दान करकेदीं ॥ २६ ॥ तथा सुवर्ण, चांदी, शय्या, वस्त्र, कृष्णमृगछाला, शालदुशाले, पालकी, रथ, हाथी,कन्या दानलेनेवाले ब्राह्मणों के कुटुम्बका निरन्तर निर्वाह करनेवाली भूमि ॥ २७ ॥ औरबहुत से रसों सहित अन्न यह सब भगवान् को समर्पण करने की बुद्धिसे तिन ब्राह्मणोंकोदेकर गौ और ब्राह्मणों की सेवा करने के निमित्त प्राण धारण करनेवाले तिन शूर यादवों ने भूमिपर मस्तक नवाकर तिन ब्राह्मणोंको प्रणाम किया ॥२८॥ इतितृतीयस्कन्धमें तृतीय अध्यायसमाप्त ॥ * ॥ उद्धवजी कहनेलगे कि–हेविदुरजी ! तदनन्तर तिन ब्राह्मणों के भोजन करने को आज्ञा देनेपर तिन यादवों ने भोजन करके धान्यकी पिट्ठी में से निकाला हुआ एकप्रकार का वारुणी नामक मद्यपिया, तिससे वह ज्ञानभ्रष्ट. (बेसुध) हो दुर्वचन (गाली) कहकर एक एकका मर्म (गुप्तदोष) खोलने लगे॥१॥ तबतो मद्यके दोषसेउनके चित्तोंमें परस्पर विरोध होकर सूर्यास्तके समय, बांसों के परस्पर घिसनेसे उत्पन्नहुई अग्निसे जैसेति नबांसोंके सकलझुण्डोंकानाशहोजाताहैतैसेही,परस्पर युद्धहोकरयादवोंकानाशहोगया

भगवान्स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः ॥ सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥ ३ ॥ अहं प्रोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह ॥ बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥ ४ ॥ अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिंदम ॥ पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥ ५ ॥ अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् ॥ श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनं ॥ ६ ॥ श्यामावदातं विरजं प्रशान्तारुणलोचनं ॥ दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ॥ ७ ॥ वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणांघ्रिसरोरुहं ॥ अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलं ॥ ८ ॥ तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखः ॥ लोकाननुचरन्सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥ ९ ॥ तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः प्रमोदभावानतकन्धरस्य ॥ आशृण्वतो मामनुरागहाससमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहमन्तर्मनसीप्सितं ते ददामि यत्तद्दुरवापमन्यैः ॥ सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥ ११ ॥ स एष साधो चरमो भवानामासादितस्ते

तबवह भगवान् अपनी मायाकी उसगतिको देखकर, सरस्वती के जलका आचमनकरके एक पीपलके वृक्षके नीचे जाबैठे ॥ ३ ॥ शरणागतोंका दुःख दूरकरने वाले और अपने कुलका संहारकरने की इच्छा करनेवाले तिनभगवान्ने मुझसे कहाकि—तुम बदरिकाश्रम को चलेजाओ ॥ ४ ॥ तथापि हेशत्रुनाशक विदुरजी ! तिन भगवान्केकुल संहार आदि मनके विचारको जाननेवाला परन्तु उनके चरणके वियोगको न सहनेवालामैं तिनस्वामीके पीछेही प्रभासक्षेत्रमेंगया ॥ ५ ॥ तहाँ अपने स्वामीको खोजते २ मैंने, सरस्वतीनदीके तटपर विराजमान वास्तवमें आश्रमरहित तथापि लक्ष्मीके आश्रय तिनभगवान्को इकलाही देखा ॥ ६ ॥ वह भगवान् श्यामसुन्दरमूर्ति, शुद्धसत्वगुणमय, प्रसन्न और लालनेत्रोंवाले तथा चतुर्भुज और पीताम्बरधारीथे॥७॥बामजङ्घापर दाहिना चरणकमल रखकर एक छोटेसे पीपलके वृक्षका आश्रय करके बैठेहुए और विषयसुखको त्यागकर आत्मानन्दसे पूर्णथे॥८ उससमय, व्यासजी जिनके हितचिन्तकमित्रहैं ऐसे परमभगवद्भक्त योगसिद्ध मैत्रेय ऋषि संसारमें विचरते २ स्वयंही तहाँ आपहुँचे ॥ ९ ॥ तबतो श्रीकृष्णमें परमप्रेम करनेवाले और उनकेदर्शनसे आनन्दप्राप्त होनेकेकारण तथा प्रेमभावसे जिनका मस्तक नम्रहै ऐसे वह मैत्रेय ऋषिके सुनतेहुए, वह मुक्तिदाता श्रीकृष्णजी, प्रेमयुक्त हास्यपूर्वक कृपाकटाक्षों से मेरासकलश्रम दूरकरतेहुए कहनेलगे ॥ १० ॥ श्रीभगवान् बोलेकि—हेउद्धव ! मैंतुम्हारे मनकी भीतरी इच्छाको जानताहूँ, तुम पूर्वजन्ममें आठवसुओंमेंसे एक वसुथे तब विश्वस्रष्टा वसुके यज्ञमें मेरी प्राप्ति होनेके निमित्त तुमने मेरीयज्ञकेद्वारा आराधना करीथी अतःऔरों को जो मिलना कठिनहै ऐसा अपनी प्राप्तिका साधन (ज्ञान) मैंतुम्हेंदेताहूँ ॥ ११ ॥हेसाधो

मदनुग्रहो यत् ॥ यन्मां नृलोकान् रह उत्सृजंतं दिष्ट्या ददृश्वान्विशदानुवृत्त्या ॥ १२ ॥ पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ॥ ज्ञानं परं मन्महिमावभासं यत्सूरयो भागवतं वदंति ॥ १३ ॥ इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहं ॥ स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरस्तं मुञ्चन् शुचः प्रांजलिराबभाषे ॥ १४ ॥ कोन्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ॥ तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन् भवत्पदांभोजनिषेवणोत्सुकः ॥ १५ ॥ कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनं ॥ कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मंरतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥ १६ ॥ मंत्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः ॥ पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥ १७ ॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान् समग्रं ॥

इस जीवलोकको त्यागकर वैकुण्ठको जानेवाला जोमैंतिसका अनन्य भक्तिसे जो तुमने एकान्तमें दर्शन कराहै वड़ा श्रेष्ठहुआ क्योंकि–जिसजन्ममें तुमनेमेरा अनुग्रह प्राप्त कराहै यह तुह्माराजन्म सवजन्मोंमें अन्तकाही होगा इसके अनन्तरतुम मुक्तहोजाओगे ॥ १२॥ पहिले वीतेहुए पाद्मकल्पके विषैं सृष्टिके आरम्भमें मेरी नाभिसे उत्पन्न होकर कमल पर वैठेहुए ब्रह्माजीसे जोमैंने कहाथा और जिसको विवेकी पुरुष भागवत कहतेहैं तथा जिससे मेरी लीला जानीजातीहैं तिसज्ञानका मैं तुमको उपदेशदेताहूँ ॥ १३ ॥ इसप्रकार तिन परम पुरुष भगवान्के आदरपूर्वक भाषणकरनेपर उनकी कृपादृष्टिरूप अनुग्रहका पात्रहुआ मैं, हर्षसे जिसके शरीरपर रोमाञ्च खड़ेहोगएहैं, गद्गदकण्ठहोगया तथा प्रेमके अश्रुओंका प्रवाह चलरहाहै ऐसा होताहुआ हाथजोड़कर तिन श्रीकृष्णभगवान्से कहनेलगाकि– १४ हेप्रभो ! तुम्हारे चरणकमलकी सेवा करनेवाले पुरुषोंको इसलोकमें धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारोंमें से कौनसा पदार्थ दुर्लभहै ? अर्थात् कोईभी दुर्लभ नहींहै, तथापि सर्वव्यापक मैं तिस पुरुषार्थकी इच्छा नहीं करताहूँ, क्योंकि–मेरी उत्कण्ठा तो केवल तुम्हारे चरणों की सेवा करनेमें ही है ॥ १५ ॥ हेप्रभो ! निरीह होकर तुम्हारा कर्म, अजन्मा होकर तुम्हारा जन्म, कालस्वरूप होकर शत्रुओंके भयसे तुम्हारा भागना और द्वारकाके दुर्ग (किले) का आश्रय करके रहना तथा निजस्वरूपमें रमणकरनेवाले तुम्हारा अनेकों स्त्रियों के साथ रहना, इन विषयोंमें ज्ञानीपुरुषोंकी भी बुद्धि खिन्न होतीहै (चक्कर खाती है) ॥ १६ ॥ हेप्रभो हेदेव ! अखण्ड आत्मज्ञानसम्पन्न तुम, सम्मतिके समय मुझे बुलवाकर साधारण अज्ञानी पुरुषकी समान ध्यानदेकर जो मुझसे बूझते थे वह आपका भाषण स्मरण आकर मेरे मनको मोहमें डालदेताहै ॥ १७ ॥ हेप्रभो ! आत्मस्वरूपका प्रकाश करदेनेवाला जो उत्तमज्ञान तुमने ब्रह्माजीकेअर्थ पूर्णरीति से कहाथा वह यदि मेरे समझने योग्य

अपि क्षेमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदाञ्जसा यद्वृजिनं तरेम ।१८। इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान्परः। आदिदेशारविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् १९ स एवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः। प्रणम्य पादौ परिवृत्त्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥२०॥ सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभो ॥ गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥ २१ ॥ यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः ॥ मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधं ॥ ज्ञानेनाशमयत् क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥ २३ स तं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः ॥ विश्रम्भादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥२४॥ विदुर उवाच ॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ॥ वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्याः सुभृत्यार्थकृतश्चरन्ति ॥२५॥ उद्धव उवाच ॥ ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषारवोऽन्ति मे ॥ साक्षाद्भगवतादिष्टो मर्त्यलोकं

होय तो कृपाकरके कहिये जिससे कि मैं दुःखरूप संसारको सहजमें तरजाऊं ॥ १८ ॥ इसप्रकार अपने मनका अभिप्राय जब मैंने श्रीकृष्णजीको जताया तब तिन कमलनयन भगवान् परमेश्वरने मुझे अपने स्वरूपके परमस्थितिरूप ज्ञानका उपदेश किया ॥ १९ ॥ इसप्रकार आराधन करेहुए गुरुरूप श्रीकृष्णभगवान्से परमार्थरूप आत्मज्ञानका मार्ग प्राप्त करनेपर मैं तिन देव की प्रदक्षिणा और तिनके चरणोंको प्रणाम करके तिनके विरह से व्याकुल होताहुआ यहां चलाआया हूँ ॥ २० ॥ सो मैं, श्रीकृष्णभगवान्के दर्शनसे आनन्दयुक्त और वियोगसे दुःखित होताहुआ अब तिन प्रभुके प्रिय बदरिकाश्रमको जाता हूँ ॥२१॥ जहाँ देव नारायण और भगवान् नर यह लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले दोनों ऋषि कोमल और तीव्र दुर्घटतप कल्पकी समाप्तिपर्यन्त करनेका निश्चयकरेहुए विराजमान हैं ॥ २२ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! इसप्रकार अपने प्रियबान्धवोंकी मरणरूप अप्रियवार्त्ताको सुनकर तिन ज्ञानी विदुरजीने चित्तपर आरूढहुए शोकको विवेकरूप जलसे धोदिया ॥ २३ ॥ और हे कौरवकुलमें श्रेष्ठ राजन् परीक्षित ! तिन विदुरजीने श्रीकृष्णजी की परिवारमण्डली में मुख्य और बदरिकाश्रमको जानेवाले तिन परमभगवद्भक्त उद्धवजीसे विश्वासपूर्वक यह आगे कहाहुआ भाषणकरा ॥२४॥ विदुरजी बोले कि-हेउद्धवजी ! योगीश्वर श्रीकृष्णजीने आत्मतत्त्वके रहस्यको प्रकाशित करनेवाले जिस ज्ञानका तुम्हारे अर्थ उपदेश किया था वह आपको मेरे अर्थ वर्णन करना उचितहै. क्योंकि-विष्णु भगवान्के सेवक अपने सेवकोंको प्रयोजन सिद्ध करनेके निमित्त ही विचरते हैं ॥ २५ ॥ उद्धवजी बोले कि-श्रीकृष्णजी ने तुम्हें स्मरण कराया इससे साक्षात् भगवान्नें ही तुम्हें ज्ञानोपदेश करही दियाहै, परन्तु असम्भावना (विपरीतभावना) और संशयकी निवृत्तिके

जिहासता ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति सह विदुरेण विश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः ॥ क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां समुषित औपगविर्निशां ततोऽगात् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः ॥ स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्धरिरपि तत्यजे आकृतिं त्र्यधीशः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ब्रह्मशापोपदेशेन कालेनामोघवांछितः ॥ संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन्देहमचिंतयत् ॥ २९ ॥ अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयं ॥ अर्हत्युद्धव एवाद्धा संमत्यात्मवतां वरः ॥ ३० ॥ नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः ॥ अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥ ३१ ॥ एवं त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः शब्दयोनिना ॥ बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥ ३२ ॥ विदुरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ क्रीडयोपात्तदे-

लिये कोई तो गुरु तुमको करनाही चाहिये अतः तुम तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये कुषीरवाके पुत्र मैत्रेय ऋषिकी सेवाकरो, क्योंकि—जब भगवान् मृत्युलोक को त्यागकर जानेलगे थे तब साक्षात् भगवानने तुम्हें उपदेश देनेके निमित्त मैत्रेय ऋषिको मेरे सामने आज्ञा दीथी ॥ २६ ॥ शुकदेवजी कहनेलगे कि—इसप्रकार विदुरजी के साथ विश्वमूर्त्तिभगवान् के गुणोंकी कथारूप अमृतसे तीनोंतापोंको शान्तकर उद्धवजीने उस रात्रिको यमुनातट पर क्षणभरकी समान विताया और प्रातःकाल होतेही तहाँसे बदरिकाश्रमको चलेगये ॥ २७ ॥ राजापरीक्षित बोले कि—यादवों में सेनापतियों के समूहोंका पालन करनेवाले वृष्णि और भोजवंशियोंके भी ब्राह्मणोंके शापसे परलोकगामी होनेपर जब त्रिलोकीनाथ श्रीहरिने भी अपना शरीर त्यागदिया तो उनमें यादवोंके मुख्य उद्धवजी कैसे बचरहे ? ॥२८॥ शुकदेवजीने कहा कि—जिनके मनकी इच्छा निष्फल नहीं होती है तिन श्रीहरिने, ब्राह्मणों का शाप जिसका मिष है ऐसे कालके द्वारा अपने कुलका संहारकरके अपने शरीरको भी त्यागनेका निश्चयकरके यह विचार किया कि—॥२९॥ अब इसलोकको त्यागकर मेरे वैकुण्ठको जानेपर मेरे आश्रयसे रहनेवाले साक्षातज्ञानको आगे परम्परासे उपदेश करनेको आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ यह उद्धवजी ही योग्यहैं ॥ ३० ॥ यह समर्थ उद्धव अणुमात्र भी मुझसे कम नहीं हैं, क्योंकि विषयों से इनके चित्तमें विकार नहीं होता है अतः मेरे विषयके ज्ञानका लोकों को उपदेश करतेहुए यह यहांही रहें ॥ ३१ ॥ ऐसा विचारवेदों के उत्पत्तिस्थान त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णजी के आज्ञा दियेहुए उद्धवजी बदरिकाश्रममें जाकर समाधि के द्वारा श्रीहरिकी पूजा करने लगे ॥ ३२ ॥ इधर विदुरजीभी लीलासे देहधारण करनेवाले श्रीकृष्ण परमात्मा के प्रशस्त चरित उद्धवजी से सुनकर तथा धीर पुरुषों की धीरताको बढ़ानेवाले और अन्य पशुसमान अधीर पुरुषों को दुष्कर ऐसे तिन श्रीकृष्णजी

हस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥ ३३ ॥ देहन्यासं च तस्यैवं धीराणां धैर्यवर्धनं ॥ अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥ ३४ ॥ आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितं ॥ ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥ ३५ ॥ कालिंद्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः ॥ प्रापद्यत स्वःसरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥ ३६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृ० विदुरोद्धवसम्वादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधं ॥ क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः॥१॥ विदुर उवाच ॥ सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वाऽन्यदुपारमं वा॥ विंदेत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्नः ॥ २ ॥ जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवादधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ॥ अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥ ३ ॥ तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शन्नः संराधितो भगवान् येन पुंसां ॥ हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥ करोति कर्माणि कृतावतारो यान्यात्मतंत्रो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यथा ससर्जाग्रे

के देहत्यागरूप समाचार सुनकर ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ और हेराजन्! श्रीकृष्ण ने मनसे मेरा स्मरण कियाथा यह सुनकर उन भगवद्भक्त उद्धवजी के चलेजानेपर इन सब बातोंका और श्रीकृष्णजीका ध्यानकरतेहुए वह विदुरजी प्रेमसे विह्वलहोकर रुदनकरनेलगे॥३५॥ तदनन्तर भरतकुल में श्रेष्ठ वह ज्ञानीविदुरजी आगे कुछ दिनोंके अनन्तर यमुनाके तटसे जहां मैत्रेय ऋषिथे तहां भागीरथीके तटपर जापहुँचे ॥ ३६ ॥ इति तृतीयस्कन्धमें चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! कुरुकुलमें श्रेष्ठ वह विदुरजी गङ्गाद्वार (हरिद्वार) के विषैं विराजमान महाज्ञानी मैत्रेयऋषिके पास जाकर तिन सुशीलता आदि और दयालुता आदि गुणों से सन्तुष्ट और प्रेमयुक्त भगवान् की भक्तिसे शुद्धचित्त होतेहुए प्रश्न करनेलगे ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे मैत्रेयऋषि! सकलप्राणी सुख के निमित्त कर्म करते हैं और उनसे सुखकी प्राप्ति वा दुःख की निवृत्ति होती नहींहै किन्तु उलटा तिनकर्मोंसे दुःख प्राप्त होताहै अतः इस दुःखमय संसारमें हमको कौनसा कर्म करना चाहिये सो कहिये? क्योंकि आप त्रिकालदर्शी हैं ॥ २ ॥ मुझे तो ऐसा प्रतीत होताहै कि—दैववश श्रीकृष्णसे विमुखहुए अधर्म में तत्पर और दुःखित दीनजनोंपर अनुग्रह करने के निमित्तही आपसमान विष्णुभगवान् के कल्याणकारक भक्त भूतलपर विचरते हैं ॥ ३ ॥ तिससे हे साधुवर्य! जिसमार्गसे आराधन करेहुए भगवान्, पुरुष के भक्ति से पवित्रहुए हृदयमें प्रकट होकर आत्माका प्रत्यक्ष अनुभव करादेनेवाला पुरातन ज्ञानदेते हैं वह सुखरूप मार्ग हमारे अर्थ वर्णन करिये ॥ ४ ॥ त्रिगुणमयी मायाके नियन्ता स्वतन्त्र भगवान्, रामकृष्णादि

इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगतो विधत्ते ॥ ५ ॥ यथा पुनः स्वे ख इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ॥ योगेश्वराधीश्वर एक एतदनुप्रविष्टो बहुधा यथासीत् ॥ ६ ॥ क्रीडन्विधत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः । मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥७॥ यैस्तत्त्वभेदैरधि लोकनाथो लोकानलोकान्सहलोकपालान् ॥ अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्वनिकाय भेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥ ८ ॥ येन प्रजानामुत आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ॥ नारायणो विश्वसृडात्मयोनिरेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ॥ ९ ॥ परावरेषां भगवन्व्रतानि श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ॥ अतृप्नुम क्षुल्लसुखावहानां तेषामृते कृष्णकथामृतौघात् ॥ १० ॥ कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ॥ यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं

अवतार धारण करके जो कर्म करते हैं और स्वयं इच्छारहित होकर इससकलविश्वको उन्होने जैसे रचाहै और उसकी रक्षाकरके जिसप्रकार जीविका का निर्वाह करते हैं ॥ ५ ॥ और वही भगवान् इससकल जगत्को प्रलयके समय अपने हृदयरूप आकाश में लीनकरके सृष्टिके सकल व्यापारों से पृथक् होतेहुए अपनी योगमायाके विषैं जिसप्रकार शयन करते हैं और सृष्टिके समय योगैश्वर्ययुक्त देवताओं के नाथ वह एकही इसजगत्में प्रवेश करके ब्रह्मा विष्णु आदि अनेकों रूपोंको जैसे बनाते हैं ॥ ६ ॥ और वह भगवान्, ब्राह्मण आदि वर्ण, गौ और देवताओंका कल्याण करनेके निमित्त मत्स्य आदि अवतारोंसे क्रीड़ा करतेहुए जैसे कर्मकरते हैं वह आप मेरे अर्थ वर्णनकरें; क्योंकि—पुण्यश्लोकचूड़ामणि श्रीहरिके अमृततुल्य चरित्रोंको वारम्वार श्रवण करतेहुएभी हमारा मन तृप्त नहीं होता है ॥ ७ ॥ अतःलोकपालों के अधिपति परमेश्वरके रचे सकल प्राणियोंके समूहोंके भिन्न २ भेदजिनमें देखनेमें आतेहैं तिन, लोकपालोंसहित लोकों को और लोकालोकपर्वतके वाहरके भागोंको, जिनपरस्पर भिन्न महत्तत्व आदि परस्पर भिन्न तत्त्वों के समूहों से रचाहै ॥ ८ ॥ और हेब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मैत्रेयजी ! तिन जगत्कर्त्ता स्वयंसिद्ध नारायणने जिसप्रकार जीवोंके स्वभाव कर्म, रूप और नामोंके भेदरचे हैं सोसवभी वर्णन करिये ॥ ९ ॥ हेभगवन् ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन उच्चवर्ण और शूद्रादि नीचवर्णोंके धर्म मैंने व्यासजीके मुखसे वारंवार सुने हैं, श्रीकृष्णकी कथारूप अमृतकीधाराके सिवाय तिन तुच्छसुख देनेवाले सकल धर्मों को सुनते २ हम तृप्त होगये हैं परन्तु श्रीकृष्णजीकी कथासे हमारी तृप्ति नहीं हुईहै ॥ १० ॥ क्योंकि जो भगवान् अपने चरित्रोंको सुननेवाले पुरुषोंके मनमें कर्णोंके द्वारा प्रवेशकर के संसारमें डालनेवाली गेहदेह आदिकी प्रीतिआदिको नष्ट करदेतेहैं तिन तीर्थपाद भगवान्के आपसमान महात्माओं की सभामें नारदआदिसे स्तुति करेहुए कथारूप अमृतके प्रवाहसे

छिनत्ति ॥ ११ ॥ मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखापि ते भारतमाह कृष्णः ॥ यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥१२॥ सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ॥ हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥ १३ ॥ तान् शोच्यशोच्यानविदोऽनुशोचे हरेः कथायां विमुखानघेन ॥ क्षिणोति देवो निमिषस्तु येषामायुर्वृथा वादगतिस्मृतीनां ॥ १४ ॥ तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम् ॥ उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबन्धो शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ १५ ॥ स विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ॥ चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यं ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवं भगवान् पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविर्मुनिः ॥ पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहु मानयन् ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान्साध्वनुगृह्णता ॥ कीर्ति

कौनपुरुष तृप्त होगा ? ॥११॥ हेमैत्रेयजी ! तुम्हारे मित्र वेदव्यास मुनिनेभी मोक्षधर्म के अन्तमें भगवान्के गुणोंका वर्णन करनेकी इच्छासेही भारत इतिहास कहाहै, तिसमेंभीविषयसुखके वर्णन से मनुष्योंकी बुद्धिको श्रीहरिकी कथाके ओरकोही लानेका यत्न किया है॥१२॥ वह बुद्धि,हरिकथामें श्रद्धा करनेवाले पुरुषकी श्रवण आदिकेद्वारा आगे२को वृद्धि को प्राप्त हुई, अन्य विषयोंमें वैराग्य उत्पन्न, करतीहै और श्रीहरिके चरणोंके वारंवार स्मरणसे तृप्त होनेवाले तिस पुरुषके सकल दुःखोंका शीघ्रहीनाश करतीहै ॥ १३ ॥ परन्तु पूर्वके पापोंके प्रभावसे जो श्रीहरिकी कथासे विमुख रहते हैं ऐसे भारतके तात्पर्यको न जाननेवाले और शोचनीय पुरुषोंकी अपेक्षाभी अत्यन्त शोचनीय तिन अज्ञानी पुरुषोंका मैं वारंवार शोककरताहूँ क्योंकि तिन हरिकथासे विमुखपुरुषोंके कायिक वाचिक मानसिक सकल कर्मव्यर्थहोतेहैं इसकारण उनकी आयुको निरन्तर जागता रहने वाला कालरूपी देव हरताहै॥१४॥ इससे हेदीनबन्धो मैत्रेयजी!सुखदायक पवित्रकीर्ति श्रीहरिकी कथाओंमें जोसारभूत कथाहो उसको,भ्रमर जैसे पुष्पोंमेंसे सारको निकाललेताहै तैसे अन्यकथाओंमें से निकालकर इसजगत्के कल्याणके निमित्त हमसे कहिये ॥१५॥ जिन ईश्वरने जगत्की उत्पत्ति स्थिति और नाशके निमित्त प्रथम त्रिगुणमयी शक्तिको स्वीकार कियाहै तिनही ईश्वरने मनुष्योंमें रामकृष्णादि अवतारधारकर जोअमानुषकर्म करेहैं वहमेरेअर्थ वर्णनकरिये ॥१६॥शुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! इसप्रकार पुरुषोंके कल्याणके निमित्त जब विदुरजीने तिनभगवान् मैत्रेयमुनिसे प्रश्नकिया तब वह मुनि विदुरजीका बहुतकुछ मानकरतेहुए उत्तर कहनेलगे॥ १७॥ मैत्रेय बोले कि हे साधो विदुर ! लोकोंपर पूर्ण अनुग्रह करनेवाले और श्रीहरिमें जिनका चित्तलगाहै ऐसे तुमने, अपनी कीर्तिको लोकमें बढ़ानेवाला यह बड़ा सु-

वितन्वता लोके आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥ १८ ॥ नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बाद-
रायणवीर्यजे ॥ गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वरः ॥ १९ ॥ मांडव्यशा-
पाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः ॥ भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात्
॥ २० ॥ भवान्भगवतो नित्यं संमतः सानुगस्य च ॥ यस्य ज्ञानोपदेशाय मा-
दिशद्भगवान्व्रजन् ॥२१॥ अथ ते भगवल्लीलायोगमायोपबृंहिताः ॥ विश्वस्थि-
त्युद्भवांतार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः॥२२॥ भगवानेक आसेदमग्र आत्मात्मनां विभुः
आत्मेच्छानुगतावात्मा नानामत्युपलक्षणः २३ स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमे
कराट् ॥ मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥ २४ ॥ सा वा एतस्य सं-
द्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ॥ मायानाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥
॥ २५ ॥ कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ॥ पुरुषेणात्मभूतेन वीर्य-
माधत्त वीर्यवान् ॥ २६ ॥ ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् ॥ वि-

न्वर प्रश्नकरा है ॥ १८ ॥ हे विदुर ! तुम व्यासपुत्रका ऐसा कार्य, कुछ आश्चर्यकी वात नहीं है क्योंकि—सबके दुःखोंको हरनेवाले ईश्वरको तुमने एकाग्र भक्तिसे अपने हृदय में स्थान दिया है ॥ १९ ॥ हे विदुर ! तुम पुण्य पापके न्यूनाधिक भाव२ के अनुसार प्रजाओं का शासन करनेवाले भगवान् यमहो और माण्डव्य ऋषिके शापके कारण, व्यासजी से उनके विचित्रवीर्य नामक भ्राताकी दासीके विषैं उत्पन्नहुए हो ॥ २० ॥ हे विदुर ! तुम भगवान् श्रीकृष्णके और उनकी मण्डलीकेभी सदा प्रियहो, क्योंकि—तुम्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश करनेके निमित्त वैकुण्ठको जातेहुए वह श्रीकृष्णभगवान् मुझे आज्ञा देगए हैं॥२१॥ अतः हे विदुर ! विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयसे युक्त तथा योगमायासे वढीहुई भगवान्की लीलाएं मैं क्रम से तुम्हारे अर्थ वर्णन करता हूँ ॥ २२ ॥ सृष्टि से पहिले, द्रष्टा और दृश्य आदि बुद्धियों से समझ में न आनेवाले सकलजीवोंके मूलरूप और नियन्ता, परमात्मा भगवान्, 'मैं इकलाही रहूँ' ऐसी इच्छा होनेके कारण इकलेही थे दूसरा कोई नहीं था ॥ ॥ २३ ॥ उससमय इकले ही प्रकाशवान् तिन द्रष्टापरमात्माने दूसरा कोई दृश्य नहीं देखा, उससमय यद्यपि उनकी माया आदि शक्तियें लीनथीं तथापि उनकी ज्ञानशक्ति जागृतथी अतः उन्होने अपनेको न होनेकी समान माना ॥ २४ ॥ हे महाभागविदुर ! तिन विश्व व्यापक परमात्माने जिसके द्वारा इस चराचर जगत्को रचा वही उन द्रष्टा परमात्माकी कार्यकारणरूप मायानामक शक्तिहुई ॥ २५ ॥ तदनन्तर कालशक्तिसे गुणक्षोभहुई तिस मायाके विषैं, ज्ञानशक्तिमान् उन अधोक्षज परमात्माने अपने अंशरूप पुरुषके द्वारा चिदाभास (चैतन्यशक्ति) रूप वीर्य स्थापन किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर कालकी प्रेरणाकरी हुई मायासे महत्तत्त्व उत्पन्नहुआ, वह स्वयं अनुभव ज्ञानस्वरूप और अपने शरीरमें वि-

ज्ञानात्मात्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ॥ २७ ॥ सोऽप्ययंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः ॥ आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥ २८ ॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत ॥ कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥ ॥ २९ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ॥ ३० ॥ वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ॥ तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च ॥ तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ॥ ॥ ३१ ॥ कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः ॥ नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥ ३२ ॥ अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ॥ ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥ ३३ ॥ अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् ॥ आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ॥ ३४ ॥ ज्योतिषांभोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितं ॥ महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ३५

वमान जगत्को प्रकट करनेवाला और अज्ञानका नाश करनेवाला था ॥ २७ ॥ तिस महत्तत्त्वपर भगवान्का दृष्टिपात होतेही वह चिदाभास (निमित्त कारण) तीने गुण (उपादान कारण) और काल (रूपान्तर होनेका कारण) के अधीन होकर, उसने इस जगत्को रचनेकी इच्छासे आपही अपने स्वरूपका रूपान्तर किया है ॥ २८ ॥ तब रूपान्तरको प्राप्त होनेवाले तिस महत्तत्त्वसे अहङ्कार उत्पन्नहुआ, वह अहङ्कार–अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव इन तीनप्रकारका होकर आकाश आदि पञ्चमहाभूत, दश इन्द्रिय, दशदेवता और मनका आश्रयहुआ ॥२९॥ वह अहङ्कार सात्त्विक,राजस और तामस ऐसे तीनप्रकारका हुआ और विकारको प्राप्त होतेहुए अहङ्कारसे मन उत्पन्न हुआ और जिनसे शब्दादि विषयोंका अनुभव होताहै वह देवताभी तिस सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्नहुए ॥ ३० ॥ पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय यह राजस अहङ्कारसे उत्पन्न हुई, तामस अहङ्कार से आकाशका सूक्ष्मरूप शब्द उत्पन्नहुआ, तिस शब्दसे तिसका (शब्दका) ही बोधकरानेवाला आकाश उत्पन्नहुआ ॥ ३१ ॥ फिर काल, माया और चैतन्य के अंशके द्वारा, भगवान्के अवलोकन करेहुए आकाशने, अपने से उत्पन्नहुए स्पर्शका रूपान्तर करके तिससे वायुको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ वह वायुभी आकाशसे युक्त और स्वयं अनेकों शक्तियोंसेयुक्त था,तिसने विकारको प्राप्त होनेपर अपनेसे तेजका सूक्ष्मभूतरूप और तिसमे लोकोंकी दृष्टिको प्रकाश देनेवाला तेज उत्पन्न किया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर वायुसे युक्त और ईश्वरका अवलोकन कराहुआ तेज,काल माया और चिदाभास के द्वारा रूपान्तरको प्राप्तहोनेलगा तब उसने रसगुणयुक्त जलको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर ब्रह्मका अवलोकनकराहुआ वह तेजयुक्त जल जब काल माया और चिदाभासके द्वारा विकारको प्राप्तहोनेलगा तब उससे गन्धरूप सूक्ष्मगुणयुक्त पृथ्वी उत्पन्न हुई॥३५॥

भूतानां नभआदीनां यद्यद्भव्यावरावरम् ॥ तेषां परानुसंसर्गाद्यथासंख्यं गुणान्विदुः ॥ ३६ ॥ एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ॥ नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमाम ते देव पदारविंदं प्रपन्नतापोपशमातपत्रं ॥ यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥ ३८ ॥ धातर्यदस्मिन्भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ॥ आत्मँल्लभंते भगवंस्तवांघ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ३९ ॥ मार्गंति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छंदःसुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ॥ यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥ ४० ॥ यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय ॥ ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥ ४१ ॥ विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ॥ व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥४२॥ यत्सानुबन्धेऽसति

हेविदुर ! आकाश वायु आदि भूतोंमें जो २ भूत आगे पीछे उत्पन्नहुए उन २ में पहिले उत्पन्नहुए भूतका सम्बन्ध होनेके कारण आकाशको एक,वायुके दो, तेजके तीन इसक्रम से अधिक २ गुणहैं ऐसा कहते हैं ॥ ३६ ॥ काल माया और ईश्वरके अंससे क्रम करके प्राप्तहुए परिणाम. रूपान्तर और ज्ञानकला इन लक्षणों से युक्त विष्णुभगवान्के अंशरूप महत्तत्त्व आदिके अभिमानी देवता भिन्न२ होने के कारण ब्रह्माण्डकी रचनारूप अपना कार्य करने में असमर्थ होतेहुए, हाथ जोड़कर तिन व्यापक परमात्माकी स्तुति करनेलगे ॥ ३७ ॥ देवता बोले कि-हेदेव ! शरणागतोंका ताप दूरकरनेको छत्ररूप जो तुम्हारे चरणकमल तिनको हम प्रणाम करते हैं,जिन चरणकमलोंका आश्रय करनेवाले संन्यासीलोक बड़ेभारी संसाररूप दुःखको दूर फैंकदेते हैं॥३८॥हेधातः! हेईश ! हेभगवन् ! इस संसार में त्रिविधतापोंसे दुःखितहुए सकलप्राणी (तुम्हारी चरणसेवाके विना) आत्मस्वरूप में विद्यमान भी सुखको नहीं पाते हैं, तिससे हम ज्ञानपूर्ण तुम्हारी चरणछायाका आश्रय करते हैं ॥ ३९ ॥ हेभगवन् ! जिस तुम्हारे चरणको बड़े २ ऋषि, विषयासक्तिरहित अपने शुद्ध अन्तःकरणमें ' तुम्हारे मुखकमलरूप घोंसलेमें से उत्पन्नहुए वेदरूप पक्षियों के आश्रयसे' ढूँढते हैं और जो तुम्हारा चरण ' अपने जलसे पातकोंका नाश करनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजीका उत्पत्तिस्थान है' तिस आपके पवित्र चरणकी हम शरण हैं ॥४०॥ श्रद्धासे और श्रवणपूर्वक प्रेमयुक्त भक्तिकरके शुद्धहुए हृदयमें जिस तुम्हारे चरणकमलके ध्यानसे प्राप्तहुए वैराग्ययुक्त ज्ञानके द्वारा कितनेही पुरुष ज्ञानी होजाते हैं तिस आपके चरणकमलरूप आसनकी हम शरणहैं ॥४१॥ हेप्रभो ! जगत्की उत्पत्ति स्थिति और नाश करनेके निमित्त अवतार धारनेवाले आपके चरणकमल; स्मरण करनेपर भक्तों को मोक्षसुख देते हैं तिन आपके चरणकमलोंकी हम सब शरण आये हैं ॥ ४२ ॥हेभग-

देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ॥ पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ॥४३॥ तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ॥ अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥४४॥ पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ॥ वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाऽञ्जसाऽन्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ ४५॥ तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ॥ त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषाम् श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥ ४६ ॥ तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽऽद्य त्वयानुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ॥ सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥ ४७ ॥ यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र ॥ यथोभयेषाम् त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥ ४८ ॥ त्वं नः सुराणामसि सान्व-

वन्! देहरूपनगरी में वास करनेवाले भी तुम्हारा जो चरणकमल, वह इन्द्रियादि सहित अति तुच्छरूप देहके विषैं और तिसके उपयोगी जो गृह आदि तिनके विषैं 'मैं और मेरा' इस-प्रकारका अभिमान करनेवाले जीवोंको अत्यन्त दुर्लभ हैं तिस तुम्हारे चरणकमलकी हम सेवा करते हैं ॥ ४३ ॥ हेवेदवर्णित परमेश्वर ! विषयाभिमुख इन्द्रियोंसे जिनका मन वि-षयोंकी ओरको खिचाहुआ है वह विषयी पुरुष, तुम्हारी लीलाओंकी कथा वर्णन करने वाले सत्पुरुषों को निःसन्देह नहीं देखते हैं फिर उनको तुम्हारी कथा का श्रवण और तुम्हारे चरणकमल का दर्शन तो होही कैसे सक्ता है ? ॥ ४४ ॥ हे देव ! जोपुरुष, तुम्हारी कथारूप अमृतके पीनेसे बढ़ीहुई भक्तिसे शुद्धचित्त होते हैं वह वैराग्य करके बलवान् उत्तम ज्ञानको पाकर अनायासमेंही तुम्हारेवैकुण्ठलोकको प्राप्तहोते हैं ॥ ४५ ॥ तथा दूसरेभी ज्ञानीपुरुष, आत्मस्वरूपमें मनको स्थिरकरके तिसउपायके प्रभावसे बलवती मायाको जीतकर पुरुषरूप तुम्हारेस्वरूपमेंही प्रवेशकरतेहैं परन्तु उनको मोक्षकी प्राप्तिमें योगाभ्यासरूप परिश्रमकरना पड़ताहै और तुम्हारी भक्तिरूप सेवासेतो परिश्रम न होकर अनायासमेंही मुक्तिप्राप्तहोतीहै ॥ ४६ ॥ हेआदिपुरुष परमेश्वर ! तुम ने लोकोंकी सृष्टि करनेके निमित्त तीनगुणोंकेस्वभावोंसे जोहमें उत्पन्न कराहै सो हमसब परस्पर पृथक् होनेके कारण, जिसनिमित्त तुमने हमें उत्पन्न कराया तिस तुम्हारी क्रीड़ाके साधन ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके समर्पण करने में समर्थ नहीं हैं ॥ ४७ ॥ अतः हे अजन्मा ! हम ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके तुम्हें सकलभोग जिसप्रकार समर्पण करें और अ-पनी योग्यतानुसार हमभी अन्न भक्षणकरें तथा यह सकलजीव जिसब्रह्माण्ड में रहकर तुम्हें और हमें सकल भोग समर्पणकरके निर्विघ्नताके साथ स्वयंभी अन्न भक्षण करसकें ऐसी आप योजना करिये ॥ ४८ ॥ तुम कार्यसहित हम देवोंके उत्पन्न करनेवाले निर्विकार पु-

यानां कूटस्थं आद्यः पुरुषः पुराणः ॥ त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥ ४९ ॥ ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन्करवाम किं ते त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥ ॥ ५० ॥ इतिश्रीभा० महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ छ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः ॥ प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशम्य गतिमीश्वरः ॥ १ ॥ कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः ॥ त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥ २ ॥ सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणं ॥ भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥ ३ ॥ प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिको गणः ॥ प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषं ॥ ४॥ परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृग्गणः ॥ चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिंल्लोकाश्चराचराः ॥ ५ ॥ हिरण्मयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ आंडकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ६ ॥ स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्ति-

राणपुरुषहो, इसकारण हे देव ! वास्तव में जन्मरहित होकरभी तुमने सत्वादि गुण और कर्मोंके उत्पत्तिस्थान तथा जन्मरहित अपनी शक्तिरूप मायाके विषैं महत्तत्त्वरूप गर्भको स्थापन कियाहै ॥ ४९ ॥ अतःहेसर्वरूप देव ! महत्तत्त्व आदि हमसव देवता जिसकार्यके लिये उत्पन्नहुएहैं वह आपका कौनसा कार्य करें ? तिसकेलिये तुमही हमारे ऊपर अनुग्रह करनेवालेहो अतः हमें अपनी क्रियाशक्तिसहित ज्ञानदृष्टिदीजिये ॥ ५ ॥ इतितृतीय स्कन्धमें पंचमअध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयऋषिबोलेकि—हेविदुरजी ! इसप्रकार तिनईश्वर ने,एकमें एक न मिलकर पृथक् २ विश्वरचना करनेमें असमर्थ तिन अपनी शक्तियोंकी दशा को देखकर ॥ १ ॥ अद्भुतपराक्रमी तिनभगवान्ने उससमय कालशक्तिको स्वीकारकरके तेईस तत्त्वोंके समूह में अन्तर्यामी रूपसे एकसाथ प्रवेशकरने के पहिले लीनहुई क्रियाशक्तिको प्रकट कर तिस चेष्टारूप क्रियाशक्ति से एक एकसे परस्पर छूटेहुए तिन तत्त्वोंके समूहको एकत्र करके जोड़दिया ॥३॥ तब परमेश्वर के प्रेरितकरेहुए, जिनकी क्रियाशक्ति जागृतहुईहैऐसे तिन तेईस तत्त्वोंके समूह ने अपने२ अंशसे विराट्शरीर उत्पन्नकिया ४ विश्वरचना करनेवाले तत्त्वोंका समूहही अपने२ में प्रविष्टहुए परमेश्वर के द्वारा परस्पर संयुक्त होकर अपने कुछ अंशों से जिसमें चराचर लोक रहरहे हैं ऐसे पुरुषरूप करके परिणामको प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥ वह सुवर्णमय विराट्पुरुष, सकलजीवों सहित ब्रह्माण्डके मध्य में जलके विषैं देवताओंके सहस्रवर्षपर्यन्त रहा ॥ ६ ॥ वह विराट्पुरुष, विश्वरचना करनेवाले तत्त्वोंका गर्भरूप ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा भोक्तृशक्ति से युक्तथा तिसने आपही अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा एक (हृदय) क्रियाशक्तिके द्वारा दश (प्राण) और भोक्तृशक्तिके द्वारा तीन (अ-

मान् ॥ विवेभाजातवैनात्मानमेकधा दशधा त्रिधा ॥ ७ ॥ एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः ॥ आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥ ८ ॥ साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा ॥ विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥ ९ ॥ स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः ॥ विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥ १० ॥ अथ तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह ॥ निरभिद्यंत देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥ ११ तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लोकपालोविशत्पदं ॥ वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययासौ प्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः ॥ जिह्वयांऽशेन च रसं ययासौ प्रतिपद्यते ॥ १३ ॥ निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां पदं ॥ घ्राणेनांशेन गंधस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ १४ ॥ निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालोऽविशद्विभोः ॥ चक्षुषांऽशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ १५ ॥ निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोनिलो-

ध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत इसप्रकार विभाग करे ॥ ७ ॥ क्योंकि—यह विराट्रूप पुरुष, सकलजीवोंका आत्मा और परमात्मा का नारायणनामक आदि अवतार है, जिसस्वरूप में यह चराचर प्राणियोंका समूह सुरक्षितरूप से निवास करता है ॥८। वह विराट् पुरुष दश इन्द्रियों सहित मन, सकलइन्द्रियों के देवता, सकलइन्द्रियों के शब्दादि विषय, इन भेदोंसे तीन प्रकारका, प्राण-अपान-व्यान-उदान-समान-नाग-कूर्म-कृकल-देवदत्त और धनञ्जय इन भेदों से दश प्रकारका और हृदयरूपसे एकप्रकारका है॥९॥जो अधोक्षज भगवान्, विश्वको उत्पन्न करनेवाले देवताओं की प्रार्थना का स्मरण करके तिनकी अनेकों प्रकारकी वृत्ति चलानेके निमित्त अपनी चैतन्यशक्ति से विराट् पुरुषके 'आगेको ऐसाकरूँ, यह विचार मनमें आनेलगा ॥ १० ॥ तदनन्तर चिन्तन करेहुए तिस विराट्शरीरके देवताओं के योग्य कितनेही स्थानउत्पन्नहुए वहमैं तुमसे कहताहूँ सुनो ॥ ११ ॥ तिसविराट् पुरुपके प्रथम मुख उत्पन्नहुआ, तिसमें अग्निकोणकास्वामी अग्नि, वाणीरूप अपनीशक्तिसहित प्रविष्ट हुआ, जिसवाणीरूप शक्तिकेद्वारा यह पुरुप शब्दका उच्चारणकरता है ॥ १२ ॥ तिसविराट् पुरुप के तालु उत्पन्नहुआ तिसमें लोकपालवरुणने जिह्वा इन्द्रियरूप अपनी शक्तिसहित प्रवेशकिया, जिस जिह्वा से जीव रसको ग्रहणकरता है ॥१३॥ तिन विष्णुके दो नासिका के छिद्र उत्पन्नहुए, तिनमें अश्विनीकुमारनामक दोनों देवताओंने अपनी घ्राण इन्द्रियरूप शक्ति सहित प्रवेशकिया जिसघ्राण के द्वारा जीव गन्धविषयको ग्रहणकरताहै ॥ १४ ॥ तिन व्यापक विराट्पुरुपके नेत्र उत्पन्नहुए तिन में लोकपाल सूर्य ने अपनी चक्षु इन्द्रियरूप शक्तिसहित प्रवेशकिया, जिसचक्षुके द्वारा जीवको रूपका ज्ञान होताहै ॥ १५ ॥ तिनविराट् पुरुप के चर्म उत्पन्नहुई, तिनमें लोकपाल वायुने अपनी त्वचारूप इन्द्रियसहित प्रवेशकिया जिस

विशत् ॥ घ्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥ कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः ॥ श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥ १७ ॥ त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः ॥ अंशेन रोमभिः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥ मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् ॥ रेतसांशेन येनासावानन्दं प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥ गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् ॥ पायुनांशेन येनासौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥ २० ॥ हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविन्द्रः स्वःपतिराविशत् ॥ वार्तयांऽशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते २१ ॥ पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत् ॥ गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥ २२ ॥ हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत् ॥ मनसांशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥ आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोविशत्पदं ॥ कर्मणांशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥ २४ ॥ सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान् धिष्ण्यमुपाविशत् ॥ चित्तेनांशेन येनासौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥ २५ ॥ शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत ॥ गुणानां

से जीवको शीत उष्ण आदि स्पर्शका ज्ञानहोता है ॥ १६ ॥ तिनविराट् पुरुष के कर्ण उत्पन्न हुए, तिस अपने स्थानमें सकलदिशाओं ने अपनी श्रोत्ररूप इन्द्रियसहित प्रवेशकिया, जिस श्रोत्र इन्द्रिय से जीवको शब्दका ज्ञान होताहै ॥ १७ ॥ तिसपुरुष के त्वचा उत्पन्नहुई, तिस स्थान में सकलऔषधियोंने अपनी रोमरूपशक्तियों सहित प्रवेश किया, जिन रोमांचों करके जीवको कण्डू (खुजलाना) रूप आनन्दकी प्राप्ति होतीहै ॥ १८ ॥ तिसकेशिश्न उत्पन्न हुआ, उसअपने स्थानमें प्रजापतिने वीर्यशक्तिसहित प्रवेशकिया, जिसवीर्यरूप शक्तिसे यहजीव सम्भोगरूप आनन्दको प्राप्तहोताहै ॥ १९ ॥ तिस पुरुषके गुदा उत्पन्नहुई तिसमें लोकरक्षक मित्रदेवने पायुनामक इन्द्रियकी शक्तिसहित प्रवेशकिया, जिसइन्द्रियके द्वारा यहजीव अन्नआदिके मलकात्यागकरताहै २० तिसपुरुषके हाथ उत्पन्नहुए, तिनमें स्वर्गलोक के पालक इन्द्रने क्रयविक्रयरूप शक्तिसहित प्रवेशकिया, जिससे यहजीव अपनी आजीविका करताहै॥ २१ ॥ तिसपुरुषके चरण उत्पन्नहुए, तिनमें लोकोंके रक्षाकरनेवाले विष्णुने अपनी गतिरूप शक्तिसहितप्रवेश किया, जिसगतिकेद्वारा पुरुष, जहाँजानाहोता है तहाँपहुँच जाताहै ॥ २२ ॥ तिसपुरुषके हृदय उत्पन्नहुआ, तिसमें चन्द्रमाने अपनी मनरूप शक्ति सहित प्रवेशकिया, जिसमनकेद्वारा यहपुरुष, सङ्कल्पआदि क्रियाएँ करताहै ॥ २३ ॥ तिस पुरुष के अहङ्कार उत्पन्न हुआ, तिसमें अहङ्कार (रुद्र) ने अहंक्रिया शक्तिसहित प्रवेश किया, जिस शक्तिसे इस पुरुषको कर्त्तव्य कर्म का ज्ञान होता है॥ २४ ॥ तिस पुरुष के बुद्धि और चित्त उत्पन्नहुए, तिनमें ब्रह्माजीने अपनी चेतनाशक्ति सहित प्रवेशकिया, जिस चेतनाशक्ति से जीवको ज्ञान होता है ॥ २५ ॥ इस पुरुष के मस्तकसे स्वर्गलोक

वृत्तयो येषु प्रतीयंते सुरादयः ॥ २६ ॥ आत्यंतिकेन सत्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे ॥ धरां रजःस्वभावेन पणयो ये च तानुनु ॥ २७ ॥ तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः ॥ उभयोरंतरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥ २८ ॥ मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह ॥ यस्तन्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥ २९ ॥ बाहुभ्योवर्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः ॥ यो जातस्त्रायते वर्णान्पौरुषः कंटकक्षतात् ॥ ३० ॥ विशोवर्तत तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः ॥ वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥ ३१ ॥ पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषा धर्मसिद्धये ॥ तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥ ३२ ॥ एते वर्णाः स्वधर्मेण यजंति स्वगुरुं हरिम् ॥ श्रद्धयात्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सह वृत्तिभिः ॥ ३३ ॥ एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः ॥ कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥ ३४ ॥ ॥ अथापि कीर्तयाम्यंग यथामति यथाश्रुतम् ॥

चरणों से भूमि और नाभि से आकाश उत्पन्न हुआ, इन तीनो लोकों में सत्व रज और तम इन तीन गुणों से उत्पन्न हुए देवता मनुष्य आदि देखने में आते हैं ॥ २६ ॥ तिन में देवता अधिक सत्वगुण के कारण स्वर्गलोक को प्राप्तहुए, और यज्ञ आदि व्यवहारकरने वाले मनुष्य तथा मनुष्योंके कार्यमें आनेवाले गौ आदि पशु यह रजोगुणी स्वभावकेकारण पृथ्वीपर वसते हैं॥२७॥रुद्रके पार्षदगण तमोगुणी स्वभाव होनेके कारणभगवान्के नाभि स्थानमें स्वर्ग और पृथ्वी के मध्यके अन्तरिक्षलोक में रहते हैं ॥ २८ ॥ हेविदुरजी ! पुरुष के मुखसे वेद और ब्राह्मण उत्पन्न हुए, जो ब्राह्मण मुखसे उत्पन्न होनेके कारण सब वर्णों में मुख्य और सबके गुरु हैं ॥ २९ ॥ भुजाओंसे प्रजापालनरूप क्षत्रियवृत्ति और तिस वृत्तिसे आजीवन करनेवाला क्षत्रिय उत्पन्नहुआ, जो विष्णुके अंश होनेकेकारण सकल वर्णों की चोर आदि उपद्रवों से रक्षा करता है ॥ ३० ॥ तिन विभुकी जङ्घाओं से लोकों का निर्वाह चलाने वाली वैश्यवृत्ति उत्पन्न हुई, और तिससे वैश्य उत्पन्नहुए, जो वैश्य सकल प्राणियों की जीविका के साधन (खेती आदि) करतेहैं ॥ ३१ ॥सकल धर्मों की सिद्धिके निमित्त भगवान्के चरणों से प्रथम सेवावृत्ति उत्पन्न होकर तिसको चलानेवाला शूद्रभी उत्पन्न हुआ जिसकी सेवारूप वृत्ति से श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥ ३२ ॥ यह चारों वर्ण अपनी २ वृत्तियों सहित जिससे उत्पन्न हुए तिस अपने गुरु रूप श्रीहरि का अपनी शुद्धिके निमित्त श्रद्धापूर्वक आराधन करते हैं ॥ ३३ ॥हेविदुर जी ! काल, कर्म और स्वभाव इन शक्तियों से युक्त जो भगवान् तिनकी योगमाया के प्रभावसे बढ़ेहुए इस विराट्स्वरूपका पूर्णरीति से वर्णन करनेको कौन पुरुष इच्छाकरेगा? अर्थात् वर्णन करना तो बहुत दूर रहा इच्छाभी करना अशक्य है ॥३४ ॥ तथापि हेवि-

कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्याभिधासतीम् ॥ ३५ ॥ एकांतलाभं वचसो नु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ॥ श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ॥ ३६ ॥ आत्मनोवसितो वत्स महिमा कविनादिना ॥ संवत्सरसहस्रांते धिया योगविपक्वया ॥ ३७ ॥ अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी ॥ यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ॥ ३८ ॥ यतोऽप्राप्य निवर्तंते वाचश्च मनसा सह ॥ अहं चान्ये इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥ ३९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृ० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः ॥ प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः ॥ लीलया चापि युज्येरन् निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः । २ ॥ क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषाऽ-

दुरजी ! ईश्वरको छोड़ विषयों के वर्णन से अपवित्र हुई अपनी वाणी को पवित्र करने के निमित्त मैंने श्रीहरिकी कीर्त्ति गुरुसे सुनी है तैसीही यथामति वर्णन करता हूँ ॥ ३५ ॥ क्योंकि–ब्रह्मज्ञानियों का कथन है कि–पुण्यश्लोकशिखामणि श्रीहरि के गुणकीर्त्तनकरना पुरुषकी वाणी का और साधुपुरुषों के वर्णन करेहुए कथामृतको पीने में तत्पर होनाकर्णों का मुख्यलाभ है ॥ ३६ ॥ हेतात विदुर ! आदिकवि ब्रह्माजी ने सहस्रवर्ष पर्यन्त तप करके परिपक्कहुई बुद्धिसे भी क्या जगदाधार श्रीहरि की महिमाजानी ? किन्तु नहीं ३७ तिससे भगवान् की माया ब्रह्मादि सकल मायावन्तों को भी मोहित करती है, क्योंकि–जबवह महात्मा हरिही अपनी मायाके वैभवका पार नहीं पातेहैं तो फिर और कैसेजानसक्ते हैं ? ॥ ३८ ॥ अतः जिन भगवान् को जानने के निमित्त प्रवृत्त हुई मनसहित वेदवाणी भी स्वरूपका ज्ञान न होनेके कारण जिनके समीपसे लौट आतीहै,अहङ्कारके देवता रुद्र तथा इन्द्रियों के अधिपति अन्य देवताभी जिनके सकल माहात्म्यको जानने में पराङ्-मुख होतेहैं तिन भगवान् को मैं प्रणाम करताहूँ॥३९॥तृतीयस्कन्धमेंषष्ठअध्यायसमाप्त * श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् परीक्षित ! वेदव्यास के पुत्र तिन ज्ञानी विदुरजीने पूर्वोक्त प्रकारसे भाषण करनेवाले मैत्रेयऋषिको अपने प्रार्थनारूप भाषणसे सन्तुष्ट करके यह कहा ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि–हेब्रह्मन् ! ज्ञानस्वरूप निर्गुण भगवान्‌को सत्वादिगुणोंका सम्बन्ध लीलासे भी किसप्रकार होताहै ? और स्वयं निर्विकार होनेपर उनके हाथसे जगत् की सृष्टि आदि भिन्न २ कार्य किसप्रकार होते हैं ॥ २ ॥ छोटे बालकको खेलमें प्रवृत्त होनेके लिये एक इच्छा (अतृप्तपना) होतीहै अथवा खेलनेवाले दूसरे बालकोंकी प्रेरणा से उसको खेलनेकी इच्छा होती है और ईश्वर तो स्वयं पूर्णकामहै अतः उसको तो इच्छा होनी नहीं चाहिये सो कैसे होती है ? और वह सर्वदा दूसरोंसे निवृत्त (असङ्ग) रहता

न्यतः ॥ स्वतस्त्वसंस्य च कथं निवृत्तस्य सदान्यतः ॥ ३ ॥ अस्त्राक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्यात्ममायया ॥ तया संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यभिधास्यति ॥ ४ ॥ देशतः कालतो योऽसावचस्थातः स्वतोऽन्यतः ॥ अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥ ५ ॥ भगवानेक एवैकः सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः ॥ अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्मे मनो विद्वन् खिद्यते ज्ञानसंकटे ॥ तन्नः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः ॥ प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते ॥ ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम् ॥ ९ ॥ यदर्थेन विनाऽमुष्य पुंस आत्मविपर्ययः ॥ प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥ १० ॥ यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिस्तत्कृतो गुणः ॥ दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनोऽना-

है अतः उसको दूसरोंसे भी क्रीड़ामें प्रवृत्ति होना कैसे सङ्घटित होता है ॥ ३ ॥ हेमैत्रेय जी ! भगवान् ने अपनी त्रिगुणमयी मायासे इस विश्वको रचाहै, तिस मायासेही इसका पालन करताहै और वहही उत्पत्तिकी प्रतिकूल रीतिसे संहार करेगा ॥ ४ ॥ ऐसा जो तुमने कहा सो तो यदि जीवको अविद्याका वास्तविक सम्बन्ध हो तब घटसक्ताहै परन्तु जब जीव का ज्ञानस्वरूप, देशसे दीपकके प्रकाशकी समान, कालसे बिजलीकी समान, अवस्थासे स्मरणकी समान, अपनेसे स्वप्नकी समान और अन्य वस्तुओं से घट आदिकी समान कदापि नाशको नहीं प्राप्तहोता है तो जीव अविद्या (अज्ञान) से कैसे युक्त होगा ? ॥ ५ ॥ यदि यह भगवान् ईश्वरही जीवरूप से सकल शरीरों में रहताहै तो इस जीवको भाग्यहीन पना (आनन्द आदिका नाश) वा कर्मोंके द्वारा क्लेश क्यों होताहै ? यदि बिनाकारण ही ऐसा मानलियाजाय तो फिर ईश्वरको भी दुःख सम्बन्ध आदि क्यों नहीं होता? ॥६॥ हेविद्वन् ! हेप्रभो ! इस अज्ञानरूप कठिनमार्गमें मेरा मन दुःखित होरहाहै अतः मेरे मनमें के इस महान् मोहको दूर करिये ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–इसप्रकार अपनेको तत्त्वज्ञान प्राप्त होनेकी इच्छा करनेवाले विदुरजीने जब प्रश्न किये तब वह मैत्रेय ऋषि गर्वरहित होतेहुए भगवान्के विषे चित्तलगाकर कुछ मुसकुरातेहुए से कहने लगे ॥८॥ मैत्रेयजी बोले कि–हेविदुरजी ! यह भगवान्की माया है कि–यह जीव वास्तवमें सर्वथा मुक्तहै तिसको बन्धन होना वा दीनता होनी, यह वार्त्ता तर्ककरनेपर सर्वथा विरुद्धहै अर्थात् ठीक नहीं है परन्तु ठीक प्रतीत होतीहै ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्न देखनेवाले इसपुरुषको मेराशिर फूटगया वा हाथ पैर टूटगये इसप्रकार अपने शरीरमें ही होनेवाला विरुद्धज्ञान सत्य नहीं होताहै परन्तु सत्यसा प्रतीत होताहै तैसेही जीवको बन्धन वा क्लेश होना केवल आभासमात्र है ॥ १० ॥ जैसे जीवको बन्धन और क्लेशका अनुभव होता है तैसे

त्मनो गुणः ॥ ११ ॥ स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया ॥ भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥ १२ ॥ यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ ॥ विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥ १३ ॥ अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ॥ कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥ १४ ॥ विदुर उवाच ॥ सञ्छिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो ॥ उभयत्रापि भगवन्मनो मे संप्रधावति ॥ १५ ॥ साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममायायनं हरेः ॥ आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ॥ १६ ॥ यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः ॥ तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥ १७ ॥ अर्था-

ईश्वरको भी क्यों नहीं होता ? इसका तो यह कारण है कि—जैसे जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब पड़तेही उसको जलके करेहुए कम्प आदि धर्म प्राप्त होते हैं अर्थात् असत् होनेपरभी देखने में आते हैं परन्तुवह आकाश में के चन्द्रमा में नहीं दीखते हैं तिसी प्रकार देह इन्द्रिय आदि अनात्मवस्तुओंके धर्म मिथ्याहोनेपरभी द्रष्टाअभिमानी जीवमें दीखतेहैं ईश्वरसे इनका कोई सम्बन्धनहींहै ॥ ११ ॥ अनात्मामें आत्मबुद्धि, इसलोकके सकल सङ्गोंको त्यागकर ईश्वरार्पणकरेहुए धर्मके आचरणसे वा भगवान्‌की कृपाकरकेप्राप्त हुई भगवद्भक्तिसे धीरे २ नष्टहोतीहै ॥ १२ ॥ जबभगवान्‌के सौन्दर्यआदि गुणों के महत्त्वको जानकर विषयोंसे हटीहुईइन्द्रियें, अन्तर्यामीरूपसे हृदयमें रहकर सबके दुःख हरनेवाले तिन परमेश्वरके विषैंलीन होजातीहैं तब जैसे सोतेहुए पुरुषके सब क्लेशदूरहोजाते हैं तैसेही जीवके सकल क्लेशनष्ट होजातेहैं॥ १३॥मुरारिभगवान्‌के गुणोंका वर्णनऔर श्रवण करना सकल क्लेशोंका नाश करताहै फिर अपनेमनमें आईहुई तिनईश्वरके चरण कमलोंकी धूलिकी सेवाकरनेकी प्रीतिसकल क्लेशोंका नाश करतीहै इसका क्याकहना? १४ विदुरजी बोलेकि-हेप्रभो!आपके उत्तमवचनरूप खड्गसे मेरासंशय पूरा२नष्टहोगया.अब मेरामनईश्वर की स्वतन्त्रता और जीवकी परतन्त्रता इनदोनोंमें प्रवेश करताहै, इन दोनों विषयोंमें मुझे सन्देहनहीं रहा १५क्योंकि—हे विद्वन्!स्वप्नमें प्रतीत होनेवाले शिरश्छेदन आदिकी समान व्यर्थ और निराधार यह जीवकी भाग्यहीनता श्रीहरिके आश्रयसेही भासती है, इसके सिवाय, दूसरा जगत्‌की उत्पत्ति आदिका कोईभी मूलकारण नहीं है, यह जो आपने कहा सो ठीकही है ॥ १६ ॥ इसलोकमें एक तो देहादिमें परम आसक्ति रखनेवाला अतिमूढ़ जीव और दूसरा जो प्रकृतिसे परे रहनेवाले ईश्वरको प्राप्तहुआ ज्ञानी जीव, यह दोनोंही सुखसे रहते हैं, परन्तु जो दुःख देखकर संसारको त्यागना चाहताहै तथापि आत्मस्वरूप का अनुभव न होनेके कारण संसारको छोड़नेको समर्थ नहीं होता है वह मध्यम श्रेणीका जीव बहुत क्लेश पाता है ॥ १७ ॥ हे मैत्रेयजी ! मैं तो अब, यह जो अनित्य प्रपञ्च दे-

भावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः ॥ तां चापि युष्मच्चरणसेवयाऽहं पराणुदे ॥ १८ ॥ यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः ॥ रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥ १९ ॥ दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु ॥ यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥ २० ॥ सृष्ट्वाग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनु प्राविशद्विभुः ॥ २१ ॥ यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्रांघ्र्यूरुबाहुकम् ॥ यत्र विश्व इमे लोकाः सविकाशं समासते ॥ २२ ॥ यस्मिन्दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् ॥ त्वयेरितो यतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥ २३ ॥ यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः ॥ प्रजा विचित्राकृतय आसन्याभिरिदं ततम् ॥ २४ ॥ प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् ॥ सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वन्तराधिपान् ॥ २५ ॥ एतेषामपि वंशांश्च वंश्यानुचरितानि

स्वनेमें आता है इसमें वास्तविक (सत्य) कुछ नहीं है, यह केवल भ्रान्तिमात्र है, ऐसा जानकर कृतार्थ होगया, अब जो भ्रान्ति रहगई है उसकोभी आपके चरणोंकी कृपासे दूर करदूंगा ॥ १८ ॥ जिन आपसमान पुरुषोंकी चरणसेवासे, मधुदैत्यनाशक, अनादि, पुराणपुरुष भगवान् के चरणोंमें, संसार दुःखका नाश करनेवाला स्वाभाविक उत्साह और प्रेमयुक्त भक्तियोग प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ ऐसी भगवत्सेवा और भगवान्के वैकुण्ठलोक की प्राप्तिके मार्गरूप जो तुमसे साधु पुरुष, तिनकी सेवा,अल्प पुण्याईवाले पुरुषोंको दुर्लभ है, क्योंकि–तिन साधुओंमें नित्य देवदेव जनार्दन भगवान् का गान होता है ॥ २० ॥ हे मैत्रेयजी ! तुमने पहिले कहाकि–व्यापक ईश्वरने सृष्टिके प्रारम्भ में इन्द्रियादि सहित महत्तत्त्वआदि सकलतत्त्वोंको क्रमसे रचा और उनके अंशोंसे विराट्शरीर उत्पन्न करके तिसमें स्वयंप्रवेश किया ॥ २१ ॥ सहस्रोंचरण, जङ्घा और भुजायुक्त तिस विराट्पुरुष को वेद 'अनादि सिद्धपुरुष, कहतेहैं. जिसमें यह सकल लोक संकोच न करके उत्तमतासे रहतेहैं ॥ २२ ॥ जिसमें इन्द्रिय, विषय और इन्द्रियोंके देवता इन तीनोंसे सहित दश प्रकारका प्राण रहताहै, ऐसापूर्व में आपने कहा, और जिससे ब्रह्माणादि चारोंवर्णउत्पन्न हुएहैं तिस परमेश्वरकी ब्रह्मादि विभूतियें मुझसे कहिये ॥ २३ ॥ जिनविभूतियोंमें पुत्र पौत्र (पोते), दौहित्र (पुत्रीकेपुत्र), और गोतियों सहित, नानाप्रकारकी भिन्न २ स्वरूपोंवाली प्रजा उत्पन्नहुई और उनसे यह सकल ब्रह्माण्ड व्याप्त होगया ॥ २४ ॥ सकल प्रजापतियोंके पालक जो ब्रह्माजी उन्होंने कौनसे प्रजापति (प्रजा उत्पन्न करनेवाले) उत्पन्न किये और पशु पक्षी आदिकोंकी सृष्टिकी रीति तथा तिसके अवान्तर भेद एवं चौदह मन्वन्तरों के अधिपति कौन २ मनु उत्पन्न करे ॥ २५ ॥ हे मैत्रेयजी ! तिन मनुके वंश में कौन२ से राजे उत्पन्नहुए ? और उन्होंने कौन२ चरित्र किये ? तथा भूमिके ऊपर और

च ॥ उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजासते ॥ २६ ॥ तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय ॥ तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्रिणाम् ॥ वद नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥ २७ ॥ गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् ॥ सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥ २८ ॥ वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥ २९ ॥ यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो ॥ नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥ ३० ॥ पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम् ॥ जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥ ३१ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः ॥ वार्तया दण्डनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥ ३२ ॥ श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन्पितॄणां सर्गमेव च ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम् ॥ ३३ ॥ दानस्य तपसो वापि यच्चेष्टापूर्तयोः फलं ॥ प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥ ॥ ३४ ॥ येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः ॥ संप्रसीदति वा येषामेतदा-

नीचे जो लोक हैं एवं भूलोकका प्रमाण तथा रचना कैसी है सो वर्णन करिये ॥ २६ ॥ पशु, मनुष्य, देव, सर्प, पक्षी, तथा जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज यह चारप्रकार के प्राणी कैसे उत्पन्नहुए ? सृष्टिका सब विभाग मुझसे वर्णन करिये ॥ २७ ॥ तैसेही ब्रह्मा आदि तीनगुणोंके अवतारोंसे जगत्के उत्पत्ति स्थिति संहार तथा तिस जगत्के आश्रयको उत्पन्न करनेवाले तिन लक्ष्मीके निवासस्थान श्रीनारायणके उत्तम पराक्रम मुझसे कहिये ॥ २८ ॥ हे प्रभो मैत्रेयजी ! कमण्डलुधारण आदि चिन्ह, आचार और शम दम आदि स्वभाव इन लक्षणोंसे, ब्राह्मण आदि चार वर्ण और ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों का विभाग किसप्रकार है ? ऋषियोंके जन्म कर्म आदि, वेदोंका विभाग ॥ २९ ॥ यज्ञके जुदे२ प्रकार, योगका मार्ग, ज्ञानका मार्ग, ज्ञानके साधन, सांख्यशास्त्रका मार्ग भगवान्का कहुआ तन्त्रमार्ग ॥ ३० ॥ पाखण्डमार्ग में होनेवाली प्रतिकूल प्रवृत्ति, नीचवर्ण के पुरुषों से उत्तमवर्णकी स्त्रियों में होनेवाली सन्तानों का प्रकार, सत्व आदि गुण और कर्मों से उत्पन्न हुए जीवोंकी उत्तम आदि गति कौन हैं और कितने प्रकारकी हैं ॥ ३१ ॥ तथा धर्म अर्थ काम और मोक्षकी प्राप्ति का ऐसा कौनसा उपाय है कि–जिसमें परस्पर विरोध न आवे, आजीविका, राजनीति, और शास्त्रश्रवण इनकी भिन्न२ कौन विधि है? ॥३२ ॥ हेमैत्रेयजी ! श्राद्धकी क्या विधिहै ? पितरों की उत्पत्ति किसप्रकारहै ? ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की कालचक्रपर रचना किसप्रकार है ? ॥ ३३ ॥ तथा दान, तप, इष्ट (यज्ञ आदि) और पूर्त्त (धर्मार्थ धर्मशाला सरोवर कूप आदि बनवाना) का क्या फल है ? परदेश में गएहुए और सङ्कट में पड़ेहुए पुरुष का कौन धर्म है ? ॥ ३४ ॥ और हे नि-

र्थ्याहि चानघ ॥ ३५ ॥ अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम ॥ अना-पृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥ ३६ ॥ तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रति-संक्रमः ॥ तत्रेमं क उपासीरन्क उस्विदनुशेरते ॥ ३७ ॥ पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च ॥ ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥ ३८ ॥ निमि-त्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः ॥ स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥ ३९ ॥ एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान् हरेः कर्मविवित्सया ॥ ब्रूहि मे ऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥ ४० ॥ सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ॥ जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन्कलामपि ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थ-मापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ॥ प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां सञ्चोदि-तस्तं प्रहसन्निवाह ॥ ४२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽ-ध्यायः ॥ ७ ॥ छ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो यल्लोकपालो भ-

ष्पापमुने ! सकल धर्मों को उत्पन्न करनेवाले जनार्दन भगवान् जिन साधनोंसे सन्तुष्टहोते हैं वा जिसप्रकार लोकों पर प्रसन्न होते हैं यह सब मुझसे कहिये ॥ ३५ ॥ क्योंकि–हे द्विजवर ! दीनोंपर दया करनेवाले गुरु, अपनी निरन्तर सेवा करनेवाले शिष्यों को और पुत्रों को विनाबूझे हुए हितकारी विषय का उपदेश करते हैं ॥ ३६ ॥ हेभगवन् ! पहिले कहेहुए तिन तत्त्वोंका प्रलय कितने प्रकारकाहै ? हाथों में चँवर धारण करेहुए सेवकजिस प्रकार शयन करतेहुए राजाकी सेवा करते हैं तैसे ही प्रलयकालमें योगनिद्रा करकेशयन करतेहुए परमात्माकी कौन २ सेवा करते हैं ? और उससमयपरमात्माके शयन करनेपर कौन २ निद्रालेते हैं ॥ ३७ ॥ जीव का तत्त्व क्या है ? और परमेश्वर का स्वरूप क्याहै? कि जिस अंशसे जीव और ईश्वरकी एकता हुई सो मुझसे कहिये ? तथा उपनिषदोंमें गुरु शिष्यों के सम्वाद से उत्पन्न होनेवाला जो ज्ञान कहा है सो मुझसे कहिये ? ॥ ३८ ॥ हेनिष्पाप मैत्रेयजी ! इसलोक में जो विद्वान् होगए उन्होने जो ज्ञान के साधन कहेहों वह भी मुझसे कहिये, क्योंकि–मनुष्यों को अपने आप ज्ञान, भक्ति और वैराग्य कैसे प्राप्तहो सक्ता है अर्थात् नहीं होसक्ता ॥ ३९ ॥ अतःश्रीहरिके सृष्टिआदि कर्मोंको समझनेकीइच्छा करनेवाले मेरे इनकहेहुए प्रश्नोंके उत्तरवर्णनकरिये, मैंतो आपकामित्रहूँ औरअविद्यासे ज्ञान नष्ट के कारण अज्ञानसे व्याप्तहोरहाहूँ ॥ ४० ॥ हेनिष्पाप ! सकल वेदयज्ञ, तप और दान यह तत्त्व उपदेश से जीवको दियेहुए अभयदानके सोलहवें भागकी समान भी नहींहोसक्ते हैं ४१ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हेराजन् ! कौरवकुलमें श्रेष्ठजो विदुरजी तिनके, ज्ञानके साधनभूत पुराणोंमें प्रसिद्ध विषयोंमें प्रश्नकरके, भगवत्कथाके विषै उत्तमरीतिसे प्रेरणाकरे हुए तिन ऋषिवर मैत्रेयजीने, हर्षयुक्तहोकर हँसते २ हुएही विदुरजीसे उत्तरकहनेका प्रारम्भकिया ॥ ४२ ॥ इति तृतीय स्कन्धमें सप्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी बोले कि–अहो ! देखो

गवत्प्रधानः ॥ बभूविथेहाजितकीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्यभीक्ष्णं ॥ १ ॥ सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य॥ प्रवर्त्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥ २ ॥ आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणं देवमकुंठसत्वं ॥ विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥ ३ ॥ स्वमेव धिष्ण्यं बहु मानयंतं यं वासुदेवाभिधमामनन्ति ॥ प्रत्यग्धृताक्षांबुजकोशमीषदुन्मीलयंतं विबुधोदयाय ॥ ४ ॥ स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशंतश्चरणोपधानं ॥ पद्मं यदर्चंत्यहिराजकन्याः सप्रेम नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥ ५ ॥ मुहुर्गृणंतो वचसाऽनुरागस्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ॥ किरीटसाहस्रमणिप्रवेकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥ ६ ॥ प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ॥ सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ॥ ॥ ७ ॥ सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ॥ जगाद-

---

यह पुरुराजाका वंशसाधुओंके सेवनकरनेके योग्यहै; क्योंकि—इसवंशमें भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ लोकपाले तुम धर्मराज उत्पन्नहुएहो, और तुम श्रीहरिभगवान्‌की कीर्तिरूपमालाकोक्षण क्षण में नवीन करतेहो ॥ १ ॥ हे विदुरजी ! संसारमें तुच्छसुखकी प्राप्तिके लियेबड़े २ दुःख पानेवाले मनुष्योंके तिस दुःखकी शान्ति होनेके निमित्त तुमने मुझसे प्रश्नकरेहैं, सो मैं अब तुमसे भागवतनामक पुराण कहनेका प्रारम्भ करताहूँ जिसपुराणको पहिले साक्षात् शेष भगवान्‌ने ऋषियोंसे कहाथा ॥ २ ॥ एकसमय पाताललोकमें वसनेवाले अकुण्ठित—ज्ञान पूर्णभगवान् आदिदेव शेषजीके प्रति, तिनसेभी श्रेष्ठश्रीवासुदेव भगवान्‌का स्वरूपजाननेकी इच्छासे सनत्कुमार आदि ऋषियोंने प्रश्नकिया ॥३॥ उससमय शेषजी, तिन,वेदमें वर्णन करेहुए अपने आश्रय वासुदेव परमेश्वरके आनन्दस्वरूपको ध्यानमेंलाकर मानसिक पूजा कररहेथे, उन्होंने अन्तर्मुख वृत्तिसे परमात्माकी ओर लगाईहुई अपने नेत्रकमलोंकी कलियोंको, तिन सनत्कुमार आदिका कल्याण होनेके निमित्त कुछ २ खोला ॥ ४ ॥ नागकन्या अपनेको मनमाना पतिमिलनेकी इच्छासे नानाप्रकारकी पूजनकी सामग्रियोंसे जिनका पूजनकरतीहैं ऐसे तिनशेषजीके चरणरखनेके कमलको; गङ्गाजलसे भीगे अपने जटाजूटोंसे स्पर्श करनेवाले, तिनशेषजीके प्रभावके पूर्णज्ञाता और अतिप्रेमके कारण जिनमें आधेअक्षर मुखसे उच्चारण होतेहैं ऐसे स्तुतिवाक्योंसे तिन सङ्कर्षणरूप शेषजीके चरित्रोंका बारंवार वर्णन करनेवाले उन सनत्कुमार आदि ऋषियोंने, सहस्र मुकुटोंपर जड़ेहुए उत्तम२ रत्नोंसे जिनके उत्तम सहस्रफण देदीप्यमानहोरहेहैं ऐसेशेषजीसे प्रश्नकिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ उस समय तिन शेषभगवान्‌ने, मोक्षधर्ममें तत्परजो सनत्कुमारजी तिनसे यह भागवत कही ऐसा प्रसिद्धहै; हेविदुरजी ! फिरसनत्कुमारसे सांख्यायनजीके प्रश्नकरनेपर, उन्होंने यहभागवत उत्तम ब्रह्मज्ञानी सांख्यायनजीसे कही ॥७॥ तदनन्तर परमहंस धर्मको चलानेवाले और

सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥ ८ ॥ प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम्॥ सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय॥९॥उदाप्लुतं विश्वमिदं तदासीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृङ् न्यमीलयत्। अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतो निरीहः ॥१०॥सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः॥उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे यथाऽनलो दारुणि रुद्धवीर्यः॥११॥चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या॥कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतन्त्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे॥१२॥तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान्॥ गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाऽभिद्यत नाभिदेशात् ॥ १३ ॥ स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन॥ स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥ १४ ॥

परमेश्वरकी विभूति वर्णन करनेके इच्छुक तिन सांख्यायन जीने अपने गुणवान् शिष्य हमारे पराशर नामक गुरु और बृहस्पतिजीसे यह वर्णन करी ॥ ८ ॥ तदनन्तर, 'तूपुराण वक्ताहोगा'। यह वरदान जिनको पुलस्त्यऋषिने दियाहै ऐसे तिन दयालु पराशर मुनिने यह आदिपुराण मेरेअर्थ वर्णनकरा. सो हेतात विदुर! अबमैं, हरिकी कथा सुननेमें श्रद्धावान् और भगवान्की सेवामें तत्पर रहनेवाले तुम्हारेअर्थ वह पुराण वर्णन करताहूँ ॥ ९॥ हे विदुरजी! जिससमय यह सकल विश्व प्रलयकालके समुद्रमें डूबगया था उससमय, जिनकी चेतनताशक्ति सबकालमें प्रकाशित रहतीहै ऐसे आत्मस्वरूपमें आनन्द मनानेवाले, निरीह एक और शेषशय्यापर पौढ़ेहुए तिनभगवान्ने निद्राके मिषसे अपने नेत्र मूँद लिये थे॥ १०॥ जिसप्रकार दाह आदि शक्तियें जिसकी प्रकट नहीं हैं ऐसा अग्नि काष्ठमें रहता है तैसेही वह परमात्मा, अपने शरीरमें सकल प्राणियोंके सूक्ष्म शरीरोंको स्थापन करके अपनी काल नामक शक्तिको प्रकट करतेहुए तिस अपने अधिष्ठान (निवासके स्थान) रूप जलमें रहते थे ॥ ११ ॥ इसप्रकार अपनी चैतन्यशक्तिसहित चारों युगों के सहस्रवार बीतने पर्यन्त जलमें शयन करनेवाले और सृष्टिकालमें अपनेको जगाने के निमित्त आज्ञा करीहुई अपनी कालशक्ति से ही, सकलसृष्टि के साधनरूप कर्मोको जिन्हों ने सिद्ध किया है ऐसे तिन परमात्माने, अपने शरीरमें लीनहुए सकललोकों को देखा॥ १२ ॥ तत्र सूक्ष्मभूतों (शब्द स्पर्श आदि) की ओर दृष्टिडालनेवाले तिन परमेश्वर के शरीरमें सूक्ष्मरूप से रहनेवाला सूक्ष्मभूतोंका समूह, सृष्टिकालके अनुकूल रजोगुणसे क्षोभित होकर उत्पन्न होताहुआ तिस नाभिस्थानमें से कमलकी कलीके रूपमें बाहरको निकला ॥ १३ ॥ प्राणीमात्र के पुरातन कर्मोको सूचित करनेवाले कालके द्वारा विष्णुभगवान्से उत्पन्नहुई वह कमलकी कली अपने तेजसे तिस अपारजलको सूर्यकी समान प्रकाशित करतीहुई एकायकी जलके ऊपर आई ॥ १४ ॥ तिस कलीमें से वह सकल जीवके भोग्य पदार्थों का

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः भावीविशत्सर्वगुणावभासं ॥ तस्मिन्स्वयं वेदमयो वि-
धाता स्वयंभुवं यं स्म वदंति सोऽभूत् ॥ १५ ॥ तस्यां स चांभोरुहकर्णिका-
यामवस्थितो लोकमपश्यमानः ॥ परिक्रमन्व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनु-
दिशं मुखानि ॥ १६ ॥ तस्माद्युगांतश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढं ॥
अपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥ १७ ॥ क एष
योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाऽब्जमनन्यदप्सु ॥ अस्ति ह्यधस्तादिह किंचनै-
तदधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यं ॥ १८ ॥ स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरन्तर्ज-
लमाविवेश ॥ नार्वाग्गतस्तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वंस्तदविंदताजः ॥ १९ ॥
तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ॥ यो देहभाजां भयमी-
रयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥ २० ॥ ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्व-
धिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ॥ शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधि-
योगः ॥ २१ ॥ कालेन सोऽजः पुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ॥ स्वयं तदन्तः-

प्रकाशक चौदहभुवनरूप कमल उत्पन्नहुआ, उनही सर्वशक्तिमान् विष्णुभगवान्ने तिस कमलमें अन्तर्यामीरूपसे प्रवेशकिया-तब उस कमलमेंसे जिनको स्वयम्भू कहतेहैं वह विना पढ़ेही स्वयं वेदमूर्त्ति ब्रह्माजी उत्पन्नहुए ॥ १५ ॥ वह तिस कमलके बीच मेंकी कर्णिका पर बैठेहुएथे सो जब उनको जगत् नहीं दीखा और तिस जगत्को देखनेके निमित्त आ-काशमें चारोंओर दृष्टिलगाकर देखनेलगे तब उनको हरएक दिशामें एक२इसप्रकार चार मुख प्राप्तहुए ॥ १६ ॥ यह कैसा आश्चर्य है कि—उससमय, प्रलयकालके पवनसे ख-लबलायेहुए जलमें से उत्पन्नहुई तरङ्गों के समूहके कारण तिस जलके ऊपरआयेहुए क-मलपर विराजमान ब्रह्माजीने भी लोकतत्त्व (कमल) क्या है ? और मैं कौन हूँ ? यह ठीक २ नहीं जाना ॥ १७ ॥ उन्हों ने मनमें कहा कि—कमलकी कर्णिकापर बैठाहुआ यह मैं कौन हूँ ? जलमें यह कमल कहांसे आया ? यह कमल किसी वस्तुके आश्रयसे तो होगाही ! तिसकारण इसके नीचे कोई वस्तु अवश्य होनी चाहिये ॥ १८ ॥ हेविदुरजी ऐसा विचारकर उन ब्रह्माजीने तिस कमलकी दण्डीके छिद्रमें को होकर जलमें प्रवेशकिया और तिसकमलकी नालके आधारको खोजते२वह नीचेगये तथापि उनको वह आधार मिला नहीं ॥ १९ ॥ हेविदुरजी ! तिस अपार अन्धकारमें अपने रचनेवालेको खोजते२ब्रह्माजी को बहुतकाल(सौवर्ष)वीतगया, जो काल—ईश्वर का शस्त्र है और प्राणीमात्रको मरणरूपभय देताहुआ आयु का नाश करता है ॥ २० ॥ तदनन्तर जिनकी अभिलाषा पूर्ण नहींहुई है ऐसे वह ब्रह्माजी तहांसे लौट आये और फिर अपने कमलरूप स्थानपर बैठकरधीरे२ अभ्यासके द्वारा अपने प्राणको जीतकर चित्तको विषयों से हटा अन्तर्मुख किया और स-माधि में स्थित होगये ॥ २१ ॥ तदनन्तर सौवर्ष पर्यन्त समय वीतजानेपर परिपक्वदशा

हृदयेऽवभातमपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥ २२ ॥ मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ॥ फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥ २३ ॥ प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ॥ रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्रजो वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः ॥ २४ ॥ आयामतो विस्तरतः स्वमाननदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण ॥ विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृतश्रियाऽपाश्रितवेषदेहम् ॥ २५ ॥ पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मं ॥ प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलिचारुपत्रम् ॥ २६ ॥ मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ॥ शोणायितेनाधरबिम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्र्वा ॥ २७ ॥ कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा स्वलंकृतं मेखलया नितम्बे ॥ हारेण चानन्तधनेन वत्स श्रीवत्सवक्षःस्थलवल्लभेन ॥ २८ ॥ परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् ॥

को प्राप्तहुए समाधि से तिन ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्तहुआ तब उन्होंने पहिले जिसकोखोजते हुए भी नहीं पायाथा वह परमेश्वरका स्वरूप अपने हृदयमें स्वयं प्रकट हुआ देखा २२ शेषजी के सहस्र फणरूप छत्रके ऊपर चारों ओर देदीप्यमान रत्नों के प्रकाशसे जिसके चारों ओर का अन्धकार नष्ट होगया है ऐसे प्रलयकाल के जलमें, कमलके तन्तुकीसमान गौरवर्ण शेषरूप विस्तारवाली शय्यापर शयन करते हुए एक पुरुषको देखा ॥ २३ ॥ वह पुरुष सन्ध्यासमय के पीतवर्ण मेघरूप वस्त्र धारण करे, अनेकों सुवर्णके शिखररूप शिरोभूषणधारे, रत्न जलके प्रवाह औषधि और पुष्पों की वनमाला पहिने और वांसोंकी पंक्तिरूप हाथ तथा वृक्षरूप चरणों से युक्त हरितमणिके पर्वत की शोभाका अपनी कान्तिसे तिरस्कार कररहेथे ॥ २४ ॥ वह पुरुष, त्रिलोकी के स्थानरूप, नानाप्रकार के दिव्य आभूषण और वस्त्रों से शोभायमान तथा लम्बाई और चौड़ाई में अनूपम शरीरको धारण करेहुए और अपने तिस शरीरपर अनेकों प्रकारके भूषण धारण कियेहुए थे ॥ ॥ २५ ॥ और वह, अपने मनोरथ पूर्ण होनेके निमित्त वेदविहित पवित्र मार्गसे आराधना करनेवाले भक्तों को, नखरूप चन्द्रमा की किरणों से भिन्न २ प्रकाशित होने वाले अङ्गुलिरूप पत्रों से शोभायमान, मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला अपना चरण, कृपा करके दिखा रहेथे ॥ २६ ॥ वह, लोकों के दुःखको हरनेवाले हास्यसे युक्त, चारोंओर को चमकनेवाले कुण्डलों से भूषित, रक्तवर्ण अधर की कान्तिसे युक्त और नासिका तथा मनोरम भ्रकुटिसे युक्त अपने मुखके द्वारा अपने भक्तोंका सत्कार कररहे थे ॥ २७ ॥ हेतात विदुरजी ! वह पुरुष, कमर में—कदम्बके पुष्पके केसरकी समान पीतवर्ण पीताम्बर और मेखला(तागड़ी)परमशोभायमान तथा श्रीवत्सके चिह्नयुक्त वक्षःस्थलमें प्रेमपूर्वकधारण करेहुए बहुमूल्य हारसे शोभायमानथे॥२८॥अव्यक्तनाम स्पष्टप्रतीति न होनेवालीमाया वा

अव्यक्तमूलं भुवनांघ्रिपेंद्रमहींद्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥ २९ ॥ चराचरौको भगवन्महीध्रमहींद्रबन्धुं सलिलोपगूढम् ॥ किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्गमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥ ३० ॥ निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ॥ सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासदम् ॥ ३१ ॥ तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोजमात्मानमम्भः श्वसनं वियच्च ॥ ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥ ३२ ॥ स कर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ॥ अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥ ३३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः८॥

ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ॥ नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥१॥ रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ॥

ब्रह्मही जिसका मूलहै, बहुमूल्य बाहुभूषण तथा उत्तम रत्नोंसे शोभित बाहुदण्डरूप अनन्तशाखाओंयुक्त तथा जिनकेकन्धे नागराजके फणोंसे वेष्टितहैं ऐसे वह भगवान् (चन्दनके वृक्षरूप)थे२९चराचर(पशुपक्षीआदिचर और वृक्षपाषाण आदि अचर)के आश्रय,सर्पराजके बंधु,चारोंओर जलसे घिरेहुए सहस्रों किरीटरूप सुवर्णके शिखरोंसे युक्त,जिनके शरीरपर कौस्तुभरत्न स्पष्ट विराजमान है (ऐसे वह भगवान् पर्वतके समान शोभित थे) ॥३०॥ वह हरि, वेदरूप भ्रमरोंसे शोभित जो अपनी कीर्त्तिरूप वनमाला तिसको पहिने और सूर्य, चन्द्रमा, वायु एवं अग्निभी जहां न पहुँचसकें ऐसे, तथा त्रिलोकीमें देदीप्यमान और रक्षा करनेके निमित्त चारोंओर फिरनेवाले संग्रामके साधन सुदर्शनचक्र आदि शस्त्रोंकोभी जिनका प्राप्तहोना दुर्घट था ॥ ३१ ॥ ऐसे ईश्वरका दर्शन होतेही जगत्की रचना करनेवाले तिन ब्रह्माजीको सृष्टि उत्पन्नकरनेका ज्ञान प्राप्तहुआ और उन्होंने श्रीनारायणकी नाभिरूप सरोवरमें कमल, तिसमें विद्यमान अपनी स्वरूप, प्रलयकालका जल, वायु और आकाश इन पांच वस्तुओंको देखा इनके सिवाय उन्होंने और कुछ नहीं देखा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर रजोगुणसे व्याप्त और प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छावाले वह ब्रह्माजी, अपनी देखीहुई वह पांच वस्तु सृष्टिका कारण हैं ऐसा देखकर, सृष्टि रचनेमें उत्सुक होतेहुए, जिनका मार्ग अदृश्य है ऐसे परमात्मामें अपना मन लगाकर तिन स्तुतियोग्य भगवान्की स्तुति करनेलगे ॥३३॥तृतीय स्कन्धमें अष्टम अध्याय समाप्त॥ * ॥ब्रह्माजी कहनेलगे कि-हे भगवन्! आज मैंने आपको बहुतसमयके अनन्तर जानाहै,जीवोंको आपका ज्ञाननहीं होताहै,यह उनका महान्दोष हैं,तुम्हारेसिवाय दूसरी कोईभी सत्य वस्तु नहींहै और जो है,ऐसीप्रतीति होती है वहभी सत्यनहींहै,क्योंकि—मायाके सत्व,रज और तम इन तीन गुणोंके मेलके कारण तुमही अनेकप्रकारके भासतेहो॥१॥हेदेव ! चैतन्यशक्तिकी प्रकटताके कारण जिनसे सर्वदा अ-

आद्यो गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥ २ ॥ नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानंदमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ॥ पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्भूतेंद्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोस्मि ॥ ३ ॥ तद्वा इदं भुवनमंगल मंगलाय ध्याने स्म नो दर्शितन्त उपासकानाम् ॥ तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं यो नादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसंगैः ॥ ४ ॥ ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रंति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ॥ भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥ तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ॥ तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न ते ऽङ्घ्रिमभयम्प्रवृणीत लोकः ॥६॥ दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसंगात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेंद्रिया ये। कुर्वंति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥७॥ क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतो-

ज्ञान दूर रहताहै ऐसा तुम्हारा, सैकड़ों अवतारोंका मूलभूत यह स्वरूपहै, कि—जिसकेनाभिकमलरूप आधारसे मैं उत्पन्नहुआ हूँ, यह तुमनेही सज्जनोंके ऊपर अनुग्रहकरने को प्रथम धारणकरा है ॥ २ ॥ हेपरमात्मन् ! निरन्तर प्रकाशरूप, भेदरहित और आनन्द रूप जो आपका निर्गुणस्वरूप वह इस रूपसे निरालाहै ऐसा मुझे नहीं दीखता; सो वह यही है, इसकारण ही आपके इस विश्वरचना करनेवाले परन्तु विश्वसे निराले, पञ्चमहाभूत और इन्द्रियों के कारण, मुख्य, उपासनायोग्य स्वरूपका मैंने आश्रय कियाहै ॥ ३ ॥ हेजगत् के मङ्गलरूप ! वही यह अपनारूप आपने हम उपासकों के कल्याणके निमित्त ध्यान में दिखाया है, तिससे यद्यपि निरीश्वरवादरूप कुतर्क का आश्रय करके नरक में पड़नेवाले लोकों ने तुम्हारा अनादर किया है तथापि हे भगवन् ! तिन आपको मैं प्रणाम करताहूँ॥४॥हेनाथ! जोपुरुष, वेदरूप पवनके उड़ाकर लाएहुए तुम्हारे चरणरूप कमलकी कली के गन्ध को अपने कर्णरूप छिद्रों से सेवन करते हैं अर्थात् वेदोंकी गान करी हुई तुम्हारी कथा को सुनते हैं, उन निजजनोंके हृदयकमल को त्यागकर तुम कदापिदूर नहीं जाते हो क्योंकि वह दृढ़भक्तिसे तुम्हारे चरणकमल को ग्रहण करते हैं ॥ ५ ॥ हेदेव ! जबतक प्राणी तुम्हारे चरणोंका आश्रय नहीं करताहै तब तक उसको द्रव्य, स्थान और मित्र आदि के कारण से भय, शोक, इच्छा, तिरस्कार और अतिलोभ, यह सब सताते हैं और सकल दुःखों का मूलकारण 'यह मेरा है' इसप्रकार का दुराग्रह भी होताहै॥६॥ अतः सकल दुःखों को दूर करनेवाला जो श्रवण कीर्तन आदिरूप तुम्हारा प्रसङ्ग तिससे अपनी इन्द्रियों को हटाकर अतितुच्छ लेशमात्र विषयसुखके निमित्त चिरकाल पर्यन्त सकाम कर्म करनेवाले और जिनका चित्त लोभसे ग्रसाहुआ है ऐसे दीनपुरुषों को दैव से मूढ़बुद्धि (हतभाग्य) हुए जानो ॥ ७ ॥ हे अच्युत उरुक्रम भगवन् ! क्षुधा, पिपासा,

ण्र्णवातवर्षैरितरेतराच्च ॥ कामाग्निना च्युतरुषा च सुदुर्भरेण संपश्यतो मन उरु-
क्रम सीदते मे ॥ ८ ॥ यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थमायाबलं भगवतो
जन ईश पश्येत् ॥ तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थाऽपि दुःखनिवहं वहती
क्रियार्था ॥ ९ ॥ अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्ष-
णभग्ननिद्राः ॥ दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्प्रसंगविमुखा इह संस-
रन्ति ॥ १० ॥ त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ
पुंसां ॥ यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥
॥ ११ ॥ नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ॥
यत्सर्वभूतदयया सदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥ १२ ॥ पुं-
सामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ॥ आराधनं भ-
गवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ॥ १३ ॥ शश्वत्स्वरूपमह-

कफ, वात, पित्त, शीत, उष्ण, वायु, वर्षा और परस्पर से एवं अति दुःसह कामाग्नि तथा क्रोधकरके वारम्वार पीड़ितहुई इन प्रजाओं को देखतेहुए मेरा मन, अति दुःखित होता है ॥ ८ ॥ हेईश्वर ! जबतक यह लोक, परमऐश्वर्यवान् जो आप तिनकी; इन्द्रिय और विषयरूप से परिणामको प्राप्तहुई मायाके प्रभावसे युक्त यह जगत्, 'तुमसे पृथक् है' ऐसा देखताहै तबतक ही, जिसमें कर्मोंके फल भोगने पड़ते हैं ऐसा वास्तवमें मिथ्याभूत परन्तु दुःख देनेवाला यह संसार निवृत्त नहीं होताहै ॥ ९ ॥ हेदेव ! तुम्हारे श्रवण कीर्त्तन आदिको त्यागनेवाले ऋषिभी, दिनमें धनप्राप्तिके निमित्त नानाप्रकारके उद्योग करनेवाले—रात्रि में निद्राकरके व्यर्थ अपनी आयु वितानेवाले अथवा नानाप्रकारके स्वप्न देखकर क्षण २ में निद्रासे जागनेवाले और दैववश जिनके द्रव्यप्राप्ति के सकलउद्योग व्यर्थ होगये हैं ऐसे होतेहुए इसलोक में अनेकों दुःखरूप संसारको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ हेनाथ ! श्रवणकेद्वारा जिनका मार्ग देखाहै ऐसे तुम, भक्तपुरुषोंके भक्तिसे शुद्धहुए हृदयकमलमें निःसंदेह निवास करतेहो, हेउत्तमकीर्तियुक्त ! वह तुम्हारेभक्त अपनेमनमें तुम्हारा जोस्वरूपचिन्तन करतेहैं उस उसही स्वरूपको तुम भक्तोंपर अनुग्रहकरनेके निमित्त प्रकटकरतेहो ॥ ११ ॥ हे परमेश्वर ! तुम एकहो और अन्तर्यामीरूपसे सकल पुरुषोंमें विद्यमानहो तथा सबके मित्रहो अतः दुर्जनोंको प्राप्त न होनेवाली, सकल प्राणियोंके ऊपरदयाकरनेसे जैसे शीघ्रहीप्रसन्नहोते हो तैसे अन्तःकरणमेंकामनारखकर देवगणोंके अतिउत्तम सामग्रियोंके द्वारा आराधना करने से भी आप प्रसन्ननहीं होतेहो ॥ १२ ॥ अतः हे भगवन् ! यज्ञ आदि नानाप्रकारके कर्म, दान, उग्रतप और व्रतधारणकरके आपका आराधनकरनाही पुरुषोंके सत्कर्मोंका उत्तमफल है, क्योंकि—आपको समर्पण कराहुआ धर्म कदापि नष्ट नहीं होता है ॥ १३ ॥ अतः हे भ-

सैवं निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥ १४ ॥ यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ॥ ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥ १५ ॥ यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलं ॥ भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ १६ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ १७ ॥ यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ॥ तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥ १८ ॥ तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयात्मकृतसेतुपरीप्सया यः ॥ रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो

गवन्! सर्वदा स्वरूपके प्रकाश करकेही द्वैत बुद्धिरूप भ्रमका नाश करनेवाले ज्ञानके आश्रय आप पुरुषोत्तमको मेरा नमस्कारहो, तथा जगत्की उत्पत्ति स्थिति और संहार करने के निमित्त जो माया तिसके विलास करके क्रीड़ा करनेवाले तुम परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ प्राणत्याग के समय परवशहुए भी जो प्राणी तुम्हारे, देवकीनन्दन, भक्तवत्सल, गोवर्द्धनधारी इत्यादि नामोंका उच्चारणमात्रभी करते हैं वह अनेकोंजन्मों में करे पापोंको एक साथ त्यागकर, मायाआदि सकल आवरणों से रहित ब्रह्मपदको प्राप्तहोते हैं तिनजन्मरहित ईश्वरकी मैं शरणहूँ ॥ १५ ॥ जो प्रथम एक हैं और फिर सत्व रज तम इन तीनगुणों से अपने मूल (प्रकृति) के तीनभेद करके, उत्पत्ति स्थिति और लय के कारण भूत स्वयं विष्णु, मैं (ब्रह्मा) और शङ्कर यह तीन जिसके गुद्दे हैं ऐसे होकर तदनन्तर प्रत्येक गुद्देकी मरीचि आदि ऋषिरूप तथा मन्वन्तर आदिरूप शाखा उपशाखायुक्त होतेहुए वृद्धिको प्राप्तहुए हैं तिन जगद्वृक्षरूप भगवान्‌को मेरा नमस्कारहो ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारे बताएहुए निज पूजनरूप हितकारी अपने कर्ममें ध्यान न देनेवाला यह प्राणी इससंसारमें जबतक विपरीत कर्मों में तत्पर रहताहै तबतक जो बलवान् काल, तिसप्राणी की जीवनकी आशाकोही शीघ्रतासे छेदन करडालता है तिस कालरूप परमेश्वरको नमस्कारहो ॥ १७ ॥ जो मेरा सत्यलोकरूपस्थान दो परार्द्धसमयपर्यन्त रहनेवाला होनेकेकारण सबलोकोंका वन्दनीय है तिस स्थान पर विराजमानभी मैं जिन कालरूप आपसे भयभीत होता हूँ और जिन आपकी प्राप्ति के निमित्त मैंने बहुतवर्षोंपर्यन्त तपक्रिया तिनयज्ञके अधिष्ठाता आप को नमस्कारहो जो तुम विषय सुखकी प्रीतिसे रहितहोकरभी, अपनीही रचीहुई धर्ममर्यादाका पालन करनेकी इच्छा से पशु, पक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीवयोनियोंमें अपनी इच्छानुसार शरीरधारकर क्रीड़ा

भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १९ ॥ यो विद्ययाऽनुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ॥ अंतर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥ २० ॥ यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्यलोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ॥ तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ २१ ॥ सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान्भगेन ॥ तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाऽहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥ २२ ॥ एष प्रपन्नवरदो रमयात्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ॥ तस्मिन्स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युंजीत कर्मशमलं च यथा विजह्यां ॥ २३ ॥ नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञान शक्तिरहमासमनंतशक्तेः॥ रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मारीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥ २४ ॥ सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनांबुरुहं विजृंभन् उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या

करतेहो, तिन पुरुषोत्तमरूप तुम भगवान् को नमस्कारहो ॥ १९ ॥ तम मोह आदि पांच प्रकारकी अविद्यासे व्याप्त न होकरभी अपने उदरमें सकल लोकोंकी रचनाका संहार करनेवाले तुम, लोकोंको निद्रासुख 'ऐसे मिलता है' यह उपहाससे दिखातेहुए, भयङ्कर तरङ्गोंकी पङ्क्तियों से युक्त जलके विषैं, शेषसर्परूप शय्याका स्पर्शही जिसमें अनुकूल है ऐसी योगनिद्रा (स्वाधीन निद्रा) को स्वीकार करतेहो ॥ २० ॥ हे स्तुतियोग्य भगवन्! जिन तुम्हारे नाभिकमलरूप स्थान से मैं उत्पन्न हुआ हूँ, जिनके अनुग्रह से सृष्टि रचकर त्रिलोकी पर उपकार करनेवाला हुआ हूँ, जिनके उदरमें सकलजगत् रहता है और योगनिद्रा के अन्त में जिनके नेत्र प्रफुल्लित कमलकी समान दीखने लगेहैं ऐसे तुमको प्रणामहो ॥ २१ ॥ वही यह सकल लोकों के हितकारी, एक, आत्मस्वरूप, शरणागतों का प्रियकार्य करनेवाले भगवान्, जिस ज्ञान और ऐश्वर्य के द्वारा जगत् को सुखी करते हैं तिसही ज्ञानसे मेरी बुद्धिको संयुक्त करें, कि जिससे इस जगत्को मैं पहिले की समान फिर उत्पन्न करूँ ॥ २२ ॥ शरणागत पुरुषों को वर देनेवाले यह भगवान् अपनी शक्तिरूप लक्ष्मीसहित गुणावतार धारण करके जो २ अघटित कर्म करेंगे तिन २ कर्मों में,तिनही भगवान् के प्रभाव से युक्त इस जगत्को, अपनीही आज्ञासे उत्पन्नकरने वालेभी मेरी बुद्धिकी प्रवृत्तिकरें, जिस बुद्धिके प्रभाव से सृष्टिरूप कर्म में अभिमान और तिससे बनेहुए पापका मैं त्याग करूँ ॥ २३ ॥ इस प्रलयकाल के जलमें शयन करतेहुए जिन अनन्तशक्तिपुरुष की नाभिरूप सरोवरमेंसे महत्तत्त्वरूप चित्तका अभिमानीमैंउत्पन्न हुआ, तिनकेही इस विचित्ररूप जगत् को फैलानेवाले मेरी, वेदरूप वाणी के उच्चारण का नाश नहो ॥ २४ ॥ वह यह परम दयालु पुराणपुरुष भगवान्, परमप्रेमयुक्तहास्य

गिरोपनयतात्पुरुषः पुराणः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसंभवं निशाम्यैवं
तपोविद्यासमाधिभिः ॥ यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम स खिन्नवत् ॥ २६ ॥
अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य ब्रह्मणो मधुसूदनः ॥ विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकराम्भसा
॥ २७ ॥ लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः ॥ तमाहागाधया वाचा
कश्मलं शमयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्ग उ-
द्यममावह ॥ तन्मयापादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥ २९ ॥ भूयस्त्वं
तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयां ॥ ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मन् लोकान् द्रक्ष्य-
स्यपावृतान् ॥ ३० ॥ तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः ॥ द्रष्टासि
मां ततं ब्रह्मन् मयि लोकांस्त्वमात्मनः ॥ ३१ ॥ यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्व-
ग्निमिव स्थितम् ॥ प्रतिचक्षीत मां लोको जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥ ३२ ॥ यदा
रहितमात्मानं भूतेन्द्रियगुणाशयैः स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन्स्वाराज्यमृच्छति ३३॥
नानाकर्मवितानेन प्रजा बह्वीः सिसृक्षतः ॥ नात्मावसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः

से नेत्रकमलको खोलतेहुए, जगत् का कल्याण और मेरे ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त
स्वयं उठकर मधुरवाणी से मेरा खेद दूरकरें ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि–हेविदुरजी !
इसप्रकार वह ब्रह्माजी तपस्या, उपासना और समाधि के प्रभाव से अपने उत्पत्तिस्थान
विष्णुभगवान्का दर्शनकर अपने मन और वाणीकी शक्तिके अनुसार स्तुति करकेश्रांत
(थकेहुए) से होकर मौन होगए ॥ २६ ॥ तदनन्तर वह मधुसूदन भगवान्, मुझे
लोकरचना का ज्ञान कैसे होगा ऐसी चिन्तासे खिन्न होनेवाले तिन ब्रह्माजीका अभि-
प्राय जानकर और उनको तिस प्रलय के जल से खिन्नचित्त हुए देखकर परमगम्भीर
वाणी से उनका खेद दूर करतेहुए कहनेलगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्
बोले कि—हेवेदगर्भ ! तुम आलस न करो, सृष्टिरचने का प्रयत्न करो, तुम जिसकी
मुझसे प्रार्थना करतेहो उसका मैंने पहिले ही प्रबन्ध करदिया है ॥ २९ ॥ हेब्रह्माजी
तुम फिर तपस्या करो और समाधि से मेरे स्वरूप का ध्यान करो तब तुह्मारे अन्तःकरण
में दोनोलोक स्पष्ट दीखने लगेंगे ॥ ३० ॥ तदनन्तर हेब्रह्माजी ! भक्तिपूर्वक चित्त को ए-
काग्रकरके अपनेमें और जगत् में व्याप्त होकर स्थित मुझको देखोगे और मेरे में सकल
लोकों तथा जीवोंकोभी देखोगे ॥ ३१ ॥ काष्ठमें स्थित अग्निकी समान सकल प्राणियोंमें
व्याप्त होकर रहनेवाले मुझको, जब यह लोक देखेगा तबही अपने अज्ञानको त्यागेगा ३२
क्योंकि–जब यह लोक, पञ्चमहाभूत, इन्द्रियें, गुण और अन्तः करणसे रहित अपने जी-
वात्मा को, मुझ परमात्माके स्वरूपसे युक्त देखताहै तबही मोक्ष पाताहै ॥ ३३ ॥ हेब्रह्मा
जी ! अनेको प्रकारके कर्मोंके फैलाव से बहुतसी प्रजा उत्पन्न करतेहुए भी तुम्हाराचित्त

॥३४॥ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः ॥ यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥३५॥ ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् ॥ यन्मां त्वं मन्यसेऽयुक्तं भूतेन्द्रियगुणात्मभिः ॥ ३६ ॥ तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः ॥ नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥ ॥ ३७ ॥ यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाऽभ्युदयाङ्कितम् ॥ यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥ ३८ ॥ प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया ॥ यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं मानुवर्णयन् ॥ ३९ ॥ य एतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् ॥ तस्याशु संप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥ ४० ॥ पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना ॥ राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥ ॥ ४१ ॥ अहमात्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन्प्रेयसामपि ॥ अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः ॥ ४२ ॥ सर्ववेदमयेनेदमात्मनात्मात्मयोनिना ॥ प्रजाः

जो मोहित वा आसक्त नहीं होताहै यह मेरा परम अनुग्रह है ॥ ३४ ॥ और सृष्टि रचते हुए भी तुम्हारा मन, जोमेरे में लगाहै अतः आदिऋषि तुमको यह अतिपापीभी रजोगुण, मोहित नहीं करेगा ॥ ३५ ॥ हेब्रह्माजी ! तुम जो मुझे, भूत, इन्द्रिय, गुण और अहङ्कार से अलिप्त (विलग) मानतेहो इसकारणही प्राणीमात्रके जाननेमें अतिदुर्लभ मेरे स्वरूपको आज तुमने जानाहै ॥ ३६ ॥ हेब्रह्माजी ! जलमें कमलकी दण्डीके मार्गसे, तिसकमलकी मूलको खोजनेवाले तुम्हे, 'मेरा कोई आश्रय है यानही ?' ऐसा सन्देह उत्पन्न होनेपर मैंने यह अपना स्वरूप हृदयके भीतरही दिखायाहै ॥ ३७ ॥ हेब्रह्माजी ! तुमने मेरी कथाके अभ्युदयसे युक्त जो मेरी स्तुति करी और तुह्मारी तपस्यामें जो निष्ठाहुई यह सब मेराही अनुग्रहहै॥३८॥सगुणरूपसे भासतेहुएभी वास्तवमें मुझनिर्गुणका वर्णनकरके, लोकोंका कल्याण होनेकी इच्छासे जो तुमने मेरी स्तुति करी तिससेमैं तुह्मारे ऊपरप्रसन्नहूँ,तुम्हारा कल्याणहो॥३९॥जो पुरुष तुम्हारे कहेहुए इस स्तोत्रसे नित्यस्तुति करके मेरा भजन करेगा उसकेऊपर सकल प्रकारके वर देनेमें समर्थ मैं शीघ्रही प्रसन्न होऊँगा॥४०॥हेब्रह्माजी ! तालाव आदि बनवाना, तपकरना,यज्ञआदि अनुष्ठान करना,दानदेना,योगसाधनाकरना और समाधि लगाना, इनसे प्राप्तहोने वाला जो मोक्षफल वह मेरी प्रीतिहीहै, ऐसातत्त्वज्ञानियों ने माना है ॥ ४१ ॥ हेब्रह्माजी ! देह इन्द्रियादि जिसके निमित्त प्रियहोतीहैं तिस जीवका भी मैं आत्माहूँ और पुत्र आदि सकलप्रिय वस्तुओं से भी अधिक प्यारा हूँ अतः सबको मेरेमेंही प्रीति करना चाहिये ॥ ४२ ॥ हेब्रह्माजी ! तुम सकलप्राणियों के आत्मा और सकल वेदस्वरूपहो,मैं सबको उत्पन्न करनेवाला आत्मा तुम्हारे अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ अतः मेरे स्वरूपमें विद्यमान जो त्रिलोकी और प्रजाहै तिसको तुम

सृजं यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥४३॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पद्मोद्भवे विदुरमैत्रेयसम्वादे नवमोऽध्यायः ९ विदुर उवाच ॥ अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥ १ ॥ ये च मे भगवन् पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ॥ तान्वदस्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संचोदितस्तेन क्षत्त्रा कौषारवो मुनिः ॥ प्रीतः प्रत्याह तान् प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विरिञ्चोपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥ ४ ॥ तद्विलोक्याब्जसंभूतो वायुना यदधिष्ठितः ॥ पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥ ५ ॥ तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ॥ विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुं सहाम्भसा ॥ ६ ॥ तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ॥ अनेन लोकान् प्राग्लीनान्कल्पिताऽस्मीत्यचिन्तयत् ॥ ७ ॥ पद्मकोशं तदाविश्य भगवत्कर्मचोदितः

पूर्वकी समान रचो ॥४३॥ मैत्रेयजी बोले, कि-हेविदुरजी ! इसप्रकार वह प्रकृतिपुरुषके नियन्ता कमलनाभ भगवान्,तिन जगत्की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी कोइसप्रकार जगतके रचनेका ज्ञान प्रकाशित करके अन्तर्धान होगये ॥४४॥ तृतीयस्कन्ध में नवम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ विदुरजी कहनेलगे कि-हेमैत्रेयजी ! भगवान्के अन्तर्धान होनेपर सब लोकों के पितामह प्रभु ब्रह्माजीने अपने देहसे और मनसे कितने प्रकारकी प्रजाउत्पन्न करी ? ॥ १ ॥ हेभगवन् आप उत्तम ज्ञानी हैं अतः मैंने आपसे जो पहिले प्रश्न कियेहैं उनके क्रमसे उत्तर कहिये और मेरे सकल सन्देहों को दूर करिये ॥ २ ॥सूतजीकहते हैं कि-हेशौनकजी ! तिन विदुरजीके इसप्रकार प्रश्न करनेपर वह मैत्रेय ऋषि प्रसन्नहो कर हृदय में विद्यमान तिन सकल प्रश्नोंका उत्तर देनेलगे ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि-हेविदुरजी ! अजन्माभगवान् श्रीनारायणने जैसा कहाथा तिसी के अनुसार ब्रह्माजी ने भी श्रीनारायणके विषें अपना मन लगाकर देवताओं के सौ वर्ष पर्यन्त तपकिया ॥४॥ तदनन्तर, वह ब्रह्माजी जिस कमलपर बैठेथे तिस कमलको और तिस प्रलयकालके प्रबल वायुसे काँपतेहुए जलको देखकर ॥ ५ ॥ बढ़ेहुए तप और परमात्माविषयक उपासनाके प्रभावसे बल और ज्ञान जिनके बढ़ेहैं ऐसे तिन ब्रह्माजीने, जलसहित तिसवायुको पीलिया ॥ ६ ॥ और आप जिसपर बैठेथे तिस आकाशव्यापी कमल को बचाहुआ देखकर पूर्व में लीनहुए लोकों को मैं इसकमलके द्वाराही फिर रचूँगा, तिन ब्रह्माजी ने ऐसा विचार किया ॥ ७ ॥ और अपने करनेयोग्य कर्म में भगवान के प्रेरणा करेहुए तिन ब्रह्माजी ने

एकं व्यभांक्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥ ८ ॥ एतावान् जीवलो-
कस्य संस्थाभेदः समाहृतः ॥ धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥
॥ ९ ॥ विदुर उवाच ॥ यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ काला-
ख्यं लक्षणं ब्रह्मन् यथा वर्णय नः प्रभो ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गुणव्य-
तिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ॥ पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत्
॥ ११ ॥ विश्वं वै ब्रह्म तन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ॥ ईश्वरेण परिच्छिन्नं
कालेनाव्यक्तमूर्त्तिना ॥ १२ ॥ यथेदानीं तथाऽग्रे च पश्चादप्येतदीदृशं ॥ सर्गो
नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥ १३ ॥ कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्र-

---

उस कमलकी कलीमें प्रवेश करके उसएकहीके त्रिलोकीरूपसे (भूः, भुवः, स्वः यह तीन विभाग करे; वह कमल इतनाबड़ाथा कि—उसमें चौदह लोकोंकी वा तिससेभी अधिक लोकोंकी रचना होना सम्भवथी॥८॥ब्रह्माजीके प्रत्येक दिनमें जिनकी सृष्टि होतीहै तिनजीवों के भोगने योग्य लोकोंकी सृष्टिका प्रकार इतनाही(त्रिलोकीरूपही)शास्त्र में कहाहै,क्योंकि यह परमेष्ठी * (ब्रह्माजी) निष्काम आचरण करेहुए धर्मका फलरूपहैं अर्थात्—मह लोक, जनलोक तपोलोक, और सत्यलोक यह निष्काम धर्मके फल हैं इसकारण इनका और इनमें वसनेवाले लोकों का, ब्रह्माजी के प्रतिदिनमें नाश नहीं होताहै, यह दोपरार्द्ध पर्यन्त रहतेहैं, यह त्रिलोकी काम्यकर्म का फलरूप है इसकारण इसकेही ब्रह्माजी के प्रतिदिन में उत्पत्तिनाश होते हैं ॥ ९ ॥ विदुरजीबोले कि—हेब्रह्मन् प्रभो ! अद्भुतकर्म करनेवाले अनेकरूपधारी श्रीहरिका जो कालनामक लक्षण तुमने मुझसे कहा तिसको विस्तारके साथ कहो ॥ १० ॥ मैत्रेयजी बोले हेविदुरजी ! सत्व, रज और तम इनतीन गुणों से उत्पन्नहुए महत्तत्त्व आदि परिणामोंके द्वारा सुनने में आनेवाला वास्तव में स्वरूपशून्य और आदि अन्त शून्य जो काल तिसकेही निमित्तको स्वीकार करके ईश्वरने अपने को ही जगत्‌रूपसे रचाहै ॥ ११ ॥ पहिले विष्णुभगवान्‌की मायासे लयकोप्राप्त होकर ब्रह्मस्वरूपहुए इसजगत्‌को ईश्वरने गुप्तरूपकालके द्वारा भिन्न२प्रकाशितकिया १२ यह जगत् जैसा अब दीखरहाहै प्रलयसे पहिलेभी ऐसाही था और प्रलयके अनन्तर फिरभी ऐसाही उत्पन्न होगा तिसकालके द्वारा प्रकृतिसे (देवजातिकी) छःप्रकार की और विकृति से (मनुष्यजातिकी) तीन प्रकारकी, ऐसे नौ प्रकारकी सृष्टि उत्पन्नहुई है और वह दोनों (प्राकृत और वैकृत) मिलकर दशवां भी एक सृष्टिका प्रकारहै ॥ १३ ॥ तैसेही इस

---

* यहां परमेष्ठी शब्दसे, ब्रह्माजी के सौ जन्मों के द्वारा हजार अश्वमेध करके मिला हुआ सत्यलोक तथा महर्लोक, जनलोक, और तपोलोक समझना ।

तिसंक्रमः ॥ आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥ १४ ॥ द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियादयः ॥ भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥ १५ ॥ चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः ॥ वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥ १६ ॥ षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ॥ 'षडिमे' प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥ १७ ॥ रजोभाजो भगवतो 'लीलेयं' हरिमेधसः ॥ सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥ १८ ॥ वनस्पत्योषधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ॥ उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः ॥ १९ ॥ तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशतिधा मतः ॥ अविदो भूरितमसो

सृष्टिका, काल, द्रव्य और गुणके द्वारा नित्य, नैमित्तिक तथा प्राकृतिक यह तीनप्रकार का प्रलय होताहै; महत्तत्त्वकी उत्पत्ति पहिली सृष्टिहै;सत्व,रज और तम इन तीनगुणों में परमात्मासे न्यूनाधिकभाव होनेका नाम महत्तत्त्व है॥१४॥जिससे पञ्चमहाभूत, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है वह अहङ्कार दूसरी सृष्टि है, जिस में पृथिवी आदि पञ्चमहाभूत उत्पन्न करनेकी शक्तिहै वह शब्दादि सूक्ष्मभूतोंकी उत्पत्तिका प्रकार तीसरी सृष्टि है ॥ १५ ॥ जो ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियरूप इन्द्रियोंकी उत्पत्तिका प्रकार है वह चौथी सृष्टि है, सात्विक अहङ्कार से इन्द्रियोंके अभिमानी देवताहुए, यह पाँचवीं सृष्टिहै, इसमें ही मनका अन्तर्भाव है ॥ १६ ॥ जीवोंका आवरण और विक्षेप करनेवाली तामिस्र आदि पांचप्रकारकी अविद्याकी जो सृष्टि है वह छठी है,यह प्रकृतिसे उत्पन्न हुई छः प्रकारकी सृष्टिहै;अब विकृति से उत्पन्नहुई सृष्टि मुझसे सुनो ॥ १७ ॥ जो अपने में मन लगानेवालों के संसार में के दुःखोंका नाश करती है वह रजोगुणको धारण करनेवाले भगवान्की ही लीलाहै. स्थावरों [वृक्ष पाषाण आदि] की जो छः प्रकार सृष्टि है वह सातवीं सृष्टि है ॥ १८ ॥ पुष्पों के विना आये ही जिनमें फल आते हैं वह गूलड़, बड़, पीपल आदि वनस्पति,एकवार फल आकर उनके पकतेही जो नष्ट होजाते हैं वह गेहूँ, जौ आदि औषधि, चढ़नेको किसी के आश्रय की अपेक्षा करनेवालीं गिलोय आदि लता, जिनकी छालकड़ी होती है वह वांस आदित्वक्सार,एकप्रकारकी लताही परन्तु जिनको चढ़नेको आश्रय की अपेक्षा नहीं होती है वह वेत आदि वीरुध्,और प्रथम पुष्प आकर तदनन्तर तिन पुष्पों के द्वाराही जिनमें फल आवें आंब आदि वृक्ष, इन सबकी गति और आहार ऊपर को होते हैं इनकी ज्ञानशक्ति प्रकट नहीं होती है इनको भीतर से स्पर्श का ज्ञान होता है और प्रत्येकका कोई एक विशेषधर्म (सिफ्त) होता है ॥ १९ ॥ तिर्यक् (तिरछी गति और आहारवाले) जातिवालोंकी आठवीं सृष्टि है, वह अट्ठाईस प्रकारकी मानी है, इन सबोंको, 'कल क्या होगा' सो ज्ञान नहीं होता है, केवल भोजन,

घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥ २० गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो रुरुः ॥ द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥ २१ ॥ खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी यथा ॥ एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान्पशून् ॥ २२ ॥ श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ ॥ सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥ २३ ॥ कंकगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः ॥ हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥२४॥ अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् ॥ रजोऽधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः॥२५॥ वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम॥ वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥२६॥ देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः॥ गंधर्वाऽप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥२७॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्या-ध्राः किन्नरादयः ॥ दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥ २८ ॥

मैथुन और विश्राम आदिकाही ज्ञान होता है, घ्राण इन्द्रियसे (सूँघकर) वस्तुको पहिचानते हैं और इनके मनमें सुख वा दुःखका परिणाम अधिक समयतक नहीं रहता है ॥ २० ॥ हे विदुरजी ! बैल, बकरी, भैंसा, हरिण, शूकर, नीलगौ, रुरु (एकप्रकारका मृग), मेंढा और ऊँट यह दो खुरवाले पशुओंकी जाति हैं ॥ २१ ॥ हे विदुरजी ! गर्दभ, घोड़ा, खच्चर, गौर (एकप्रकारका मृग), शरभ और चमरी (वनगौ) यह एक खुरवाले पशुओंकी जातिहैं, अब पांचनखवाले पशुओंके भेद कहता हूँ सुनो ॥ २२ ॥ कुत्ता, गीदड़, भेड़िया वाघ, बिलार, खरगोश, साही, सिंह, वानर, हाथी, कछुआ, और गोह यह बारह पाँच नखवाले पशुहैं मगर आदि जलचर और कंक, गिज्ज, वाज, शिकरा, भास, भल्लूक, मोर हंस, सारस, चकवा, काक और उलूक, आदि पक्षी यह थलचर, इसप्रकार जलचरऔर थलचर मिलकर तिर्यक् जाति का एकभेद है, इसप्रकार तिर्यक् जातिकी सृष्टिके अट्ठाईस भेद हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ हेविदुरजी ! ऊपरसे नीचेको गति और आहारवाले मनुष्यों की एक सृष्टि है वह नवीं है, तिन मनुष्यों में रजोगुण का अंश अधिक है और वह कर्म करने में तत्पर तथा दुःखरूप संसार में सुख माननेवाले हैं ॥ २५ ॥ हेश्रेष्ठ विदुरजी ! सातवीं आठवीं और नवमी यह तीनप्रकार की सृष्टियें वैकृत (पहिली छः सृष्टियोंके वि-कारसे उत्पन्न हुई) हैं, आगे कहाहुआ देवताओं का सर्गभी वैकृत ही है, जो सात्विक अहङ्कार से उत्पन्न हुई देवताओंकी सृष्टि है वह पहिले ही प्राकृत सृष्टि में कही है, जो सनत्कुमार आदि की सृष्टि है वह प्राकृत और वैकृत मिलकर दोनों प्रकार की दशवीं है; क्योंकि वह सनकादि देवता और मनुष्य दोनोंही में है ॥ २६ ॥ देवता, पितर, दैत्य, गन्धर्व—अप्सरा यक्ष राक्षस, भूत—प्रेत—पिशाच, सिद्ध—चारण—वि-द्याधर, किन्नर—किम्पुरुष, यह आठप्रकारकी देवताओंकी सृष्टिहै हे विदुरजी ! ब्रह्माजीकी रचीहुई यह दशप्रकारकी सृष्टि मैंने तुमसे कही ॥ २७ ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर वंश और

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वंतराणि च ॥ एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥ २९ । सृजत्यमोघसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ॥ परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥ १ ॥ सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ॥ कैवल्यं परममहानविशेषो निरंतरः ॥ २ ॥ एवं कालोप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम ॥ संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥ ३ ॥ स कालः परमाणुर्वै यो

मन्वन्तर, मैं तुमसे कहता हूँ. इसप्रकार वह सत्यसङ्कल्प परमात्मा हरि, रजोगुणसे युक्तहो, ब्रह्माका रूप धारणकरके कल्पकी आदिमें अपने प्रभावसे अपनीही जगत्रूप से रचना करते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ इति तृतीयस्कन्धमें दशम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी बोले कि-हे विदुरजी ! जो महत्तत्त्व आदि वस्तुमात्रके अंशोंमें से अन्तका अंश कि-जिसके आगे किसीप्रकारसेभी अंश (भाग) नहीं होसक्ता तथा कार्य और समूह अवस्था को प्राप्त न होनेवाला जो अतिसूक्ष्म भाग सदा अपने स्वरूपमेंस्थित रहताहै उसको 'परमाणु' जानना जिन बहुत से परमाणुओं के एक स्थानपर मिलनेसे मनुष्यों के घट-पट इत्यादि अवयवी पदार्थोंका भास होता है, तात्पर्य यह है कि-परमाणु हरएक वस्तुका अतिसूक्ष्म स्वरूप है ॥ १ ॥ जिस का अतिसूक्ष्मरूप परमाणुहै तिसके ही रूपान्तरको प्राप्त न होनेवाले कार्यरूप पदार्थ का जो अन्तका स्वरूप कि-जिसमें कोई भी विशेषधर्म वा भेद-भाव देखनेमें नहीं आता है उसको 'परममहान्' जानना तात्पर्य यह कि-इस सकल प्रपञ्चरूप कार्य का अतिमहान्स्वरूप है ॥ २ ॥ हे साधुश्रेष्ठ विदुरजी ! जैसे परमाणु अति सूक्ष्म पदार्थ है और ब्रह्माण्ड अतिस्थूल पदार्थ है तैसेही कालभी स्थूल सूक्ष्म वा मध्यम है ऐसा अनुमान करना चाहिये, क्योंकि--वह काल स्वयं अप्रकट है और परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त छोटेबडे पदार्थों में व्याप्त होनेके कारण भगवान् की शक्तिसे युक्त, इस दीखतेहुए जगत् में फैलाहुआ और जगत् को उत्पन्न-पालन और प्रलयकरनेमें समर्थ है॥ ३॥ जो प्रपञ्चकी परमाणुरूप सूक्ष्म अवस्था का उपभोग करता है वह काल परमाणु होता है और जो इसप्रपञ्चकी सकल अवस्थाओंका उपभोग करताहै वह काल परममहान् (बहुत बड़ा) है अर्थात् सूर्य, कालकी गति जानने का मुख्य साधन है, ग्रह नक्षत्र और तारोंके चक्रपर सूर्य फिरता है, वह आधे निमेष में आठसहस्र आठकोस चलता है, इसप्रकार चलनेवाले सूर्यको परमाणुकी समान स्थानको उल्लंघन करने में जो काल लगताहै उस को परमाणुकाल कहतेहैं, तिसही सूर्य को द्वादशराशिरूप ग्रह नक्षत्रोंके चक्रपर फिरनेमें जितना काल लगता है उसको सम्वत्सर कहतेहै, तिनसम्वत्सरोंके आवागमनके द्वारा

भुंक्ते परमाणुतास् ॥ ततो विशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥ ४ ॥ अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ॥ जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥ ५ ॥ त्रसरेणुत्रिकं भुंक्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः ॥ शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥ ६ ॥ निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ॥ क्षणान् पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥ ७ ॥ लघूनि वै समाम्नाता दश पंच च नाडिका ॥ ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्यामः सप्त वा नृणां ॥ ८ ॥ द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरंगुलैः ॥ स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥ ९ ॥ यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ॥ पक्षः पंचदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥ १० ॥ तयोः समुच्चयो मासः पितृणां

युग मन्वन्तरोंके क्रम जो ब्रह्माजीके दोपरार्द्ध (१००वर्ष) हैं वह परममहान् (बहुतबड़ा) है॥४॥ दोपरमाणुओं का एक अणु होता है, वह अणु तीन होंतो एक त्रसरेणु माना जाता है, झिरीमें को होकर घरमें पड़ीहुई सूर्य की किरणों में जो बहुत से रजके करण उड़करआकाश में जातेहुए दीखते हैं उनमें जो बहुतही छोटाहो वह त्रसरेणु होताहै, यह अत्यन्त ही हलका होने के कारण भूमिपर नहीं गिरता है ॥ ५ ॥ तीन त्रसरेणु की समान स्थानको उल्लङ्घन करने में सूर्य को जितना काल लगता है उसको त्रुटि कहते हैं, तिन सौ त्रुटियों का एकवेध होता है, तीन वेधका एकलव कहाता है ॥ ६ ॥ तीन लव को एक निमेष समझे, तीन निमेष का एक क्षण होताहै, पांच क्षण को एक काष्ठा जानतेहैं तिन पन्द्रह काष्ठाका एक लघु होता है ॥ ७ ॥ पन्द्रह लघुकी एक घड़ी कही है, तिन दो घड़ीका एक मुहूर्त्त और छः वा सात घड़ी होनेपर मनुष्योंका एक पहर होता है, यह प्रमाण, प्रातःकाल और सायंकालको एक २ इसप्रकार दो मुहूर्त्त छोड़कर शेष दिनरातके काल में संयुक्त होता है ॥ ८ ॥ पांच गुञ्जा (घुंघची) का एक मासा, सोलह मासेका एक कर्ष (तोला), चारकर्षका एकपल (छटांक) और सोलह पलका एक प्रस्थ (सेर) ऐसा प्रमाण माना है, सो छः पल तांबेका एकपात्र एकप्रस्थ (शेरभर) जल आने के योग्य बनवाकर उसके, मध्यभाग में चारमासे सुवर्ण की चार अङ्गुललम्बी करीहुई शलाका से छिद्र करे अर्थात् ऐसा छिद्रकरे कि जिसमेंको वह शलाकानिकल सके, तिस छिद्रमेंको होकर प्रस्थभर जल भीतर भरनेपर वह पात्र जल में डूबजाताहै, उतने समय को घड़ी कहते हैं ॥ ९ ॥ हेविदुरजी ! चार २ पहर का मनुष्यों का एकदिन और रात्रि इसप्रकार अहोरात्र होता है, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है, वह पक्ष शुक्ल और कृष्ण ऐसे दोप्रकार का होता है ॥ १० ॥ वह दोनों पक्ष मिलकर एकमास होता है, तिसको पितरों का एक दिनरात जाने, दोमास की एक ऋतु होती है, छःमास का

तदहर्निशं ॥ द्वौ तावृतुः पंडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥ ११॥ अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः ॥ संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितं ॥१२॥ ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ॥ संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ॥ १३ ॥ संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च ॥ अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥ १४ ॥ यः सृज्यं शक्तिमुरुधोच्छ्वसयन् स्वशक्त्या पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ॥ कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मै बलिं हरत वत्सरपंचकाय ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् ॥ परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥ ॥ १६ ॥ भगवान्वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ॥ विश्वं विचक्षते धीरा योगराद्धेन चक्षुषा ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥ १८ ॥ चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ॥ संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि श-

एक अयन होताहै वह अयन—दक्षिणायन और उत्तरायण दोप्रकारका होता है, दोअयनका मिलकर देवताओं का एक दिनरात होता है, बारहमास का एक संवत्सर (वर्ष) होता है, सौवर्षकी मनुष्योंकी परमायु कहीहै॥११।१२॥परमाणुसे लेकर संवत्सरपर्यन्तके काल करके ग्रह नक्षत्र और ताराके चक्रपर फिरनेवाले कालरूप सूर्यभगवान् भुवनकोशकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ १३ ॥ हेविदुरजी ! तिसही वर्षभर,समयके, सूर्य, बृहस्पति, सवन, चन्द्रमा और नक्षत्र की गति के भेदसे सम्वत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर,अनुवत्सर, और वत्सर यह पांच नाम कहेहैं ॥ १४ ॥ जो सूर्य पञ्चमहाभूतों में एक तेजोमय मण्डलरूप हैं और अपनी कालनामक शक्ति के प्रभाव से, बीज आदि में की अंकुर आदि उत्पन्न होने की शक्तिको अनेक प्रकार से पकाकर, यज्ञ आदि के द्वारा सकाम पुरुषोंके सत्व आदि गुणमय स्वर्ग आदि फलको विस्तारतेहुए पुरुषोंका मोह दूर करने के निमित्त आकाश में शीघ्रगमन करतेहैं,तिन पांचप्रकारके सम्वत्सरोंकी प्रेरणाकरनेवाले सूर्यनारायणकोतुमपूजनसमर्पणकरो ॥१५॥ विदुरजी बोलेकि-हेमैत्रेयजी!पितर,देवता और मनुष्योंकी परमायु अपने२प्रमाणसे सौ २ वर्षकीहै, यह आपने कहा;अब-जो ज्ञानी भृगुआदि ऋषि, त्रिलोकीके बाहरहैं तिन महात्माओं की आयुका प्रमाण मुझसे कहिये॥१६॥आप योगशक्तिसे युक्तहैं रातः कालरूप भगवान्की गति आपकोविदितहै,क्योंकि—आपसे ज्ञानी पुरुष, योगाभ्याससे सिद्धहुई ज्ञानदृष्टि करके सकल जगत् को देखतेहैं॥१७॥मैत्रेयजी बोलेकि—हेविदुरजी ! युगके आरम्भकी सन्ध्या और अन्त के अंश सहित,सत्ययुग वा त्रेता, द्वापर, और कलि यह चार युग (चौकड़ी) देवताओंके बारहसहस्र वर्षमें पूरे होतेहैं., ऐसा कहाहै ॥ १८ ॥ तिन

तानि च ॥ १९ ॥ सन्ध्यांऽशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः ॥ तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥ २० ॥ धर्मश्चतुष्पान्मनुजान् कृते समनुवर्तते ॥ स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥ २१ ॥ त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् ॥ तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥ २२ ॥ निशाऽवसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते ॥ यावद्दिनं भगवतो मनून् भुंजंश्चतुर्दश ॥ २३ ॥ स्वं स्वं कालं मनुर्भुंक्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ॥ मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंशा ऋषयः सुराः ॥ भवन्ति चैव युगपत्सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥ २४ ॥ एष दैनंदिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ॥ तिर्यङ्नृपितृदेवानां संभवो यत्र कर्मभिः ॥ २५ ॥ मन्वन्तरेषु भगवान् बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः ॥ मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥ २६ ॥ तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ॥ कालेनानुगतोशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥ २७ ॥ तमेवान्वपिधीयन्ते लोका भूरादय-

सत्ययुग आदि चारों युगोंका प्रमाण क्रमसे देवताओंके मान करके, चार तीन, दो, एक सहस्र और सहस्रसे दुगुने सौ,कहाहै; अर्थात् देवताओंके ४८००वर्षका सत्ययुग, ३६०० वर्षका त्रेता, २४००वर्षका द्वापर और १२००वर्षका कलियुगहै ॥ १९॥ सौ संख्यावाले सन्ध्या और अंशके मध्य में जोकाल चार सहस्र आदि वर्षोंका होताहै उसकोही युगोंके जाननेवाले पुरुष'युग' नामसे कहतेहैं; तिस प्रत्येक युगमें भिन्न २ प्रकारका धर्मकहाहै ॥ २० ॥ सत्ययुगमें मनुष्योंमें चतुष्पाद कहिये पूर्ण धर्म रहताहै वहीधर्म त्रेता आदि आगे २ के युगोंमें एक२चरणसे बढ़तेहुए अधर्मके प्रभावसे कम होजाताहै॥२१॥हेतात ! विदुरजी!त्रिलोकीसे बाहरके ब्रह्मलोक आदि लोकोंमें वसनेवाले पुरुषोंका,देवताओंके मानसे सहस्रयुग होनेपर एकदिन होताहै और उनकी उतनीही रात्रि होतीहै जिस रात्रिमें ब्रह्माजी शयन करतेहैं ॥ २२ ॥ तिसरात्रिके समाप्त होनेपर फिर आरम्भ हुआ लोकोंकी सृष्टिका क्रम (सिलसिला) ब्रह्माजीके दिनभर चलता रहताहै. तवतक चौदह मनु होजातेहैं २३ प्रत्येक मनु अपने २ अधिकार का समय, दिव्य मानसे चारयुगोंके इकहत्तर आवृति और कुछअधिक अर्थात् ७१ $\frac{6}{14}$ कालतक भोगताहै; प्रत्येक मन्वन्तरमें मनु. उसके वंशके राजे सप्त ऋषि, देवता,इन्द्रऔर इन्द्रके अनुयायी गन्धर्व आदि सब एकसाथ अधिकारी होतेहैं२४ यह त्रिलोकी को चलानेवाला और ब्रह्माजी के प्रत्येक दिनमें होनेवाला सृष्टिका क्रमहै, जिस में अपने २ कर्मों से पशु, पक्षी, मनुष्य, पितर और देवताओं की उत्पत्ति होती है॥२५॥ सब मन्वन्तरों में भगवान् सत्वगुण को स्वीकार करके अपने अंशरूप मनु आदिकोंके स्वरूपसे पराक्रम प्रकट करतेहुए इस जगत्की रक्षा करते हैं ॥ २६ ॥ और तमोगुण का अंश ग्रहण करके अपने सृष्टि रचनेके व्यापार को बन्दकरनेवाले और कालवश जिनमें त्रिलोकीका लय हुआहै ऐसे वह ब्रह्माजी, दिनके अन्तमें स्वस्थ होकर शयन करतेहैं॥२७॥

सूर्यः ॥ निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥ २८ ॥ त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या संकर्षणाग्निना ॥ यांत्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोर्दिताः ॥ ॥ २९ ॥ तावत्त्रिभुवनं सद्यः कल्पांतैधितसिंधवः प्लावयंत्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः ॥ ३० ॥ अन्तः स तस्मिन्सलिले आस्तेऽनंतासनो हरिः ॥ योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥ ३१ ॥ एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः ॥ अपेक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयःशतम् ॥ ३२ ॥ यदर्धमायुपस्तस्य परार्धमभिधीयते ॥ पूर्वः परार्धोऽपक्रांतो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥ ३३ ॥ पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ॥ कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥ ३४ ॥ तस्यैव चांते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते ॥ यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥ ३५ ॥ अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ॥ वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः ॥ ३६ ॥ कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते ॥ अव्याकृतस्यानंतस्य अनादेर्जगदात्मनः

अर्थात्-जहाँ चन्द्रमा नहीं. सूर्य नहीं ऐसी ब्रह्माजीकी रात्रिका प्रारम्भ होते ही तत्काल भूः, भुवः और स्वः यह तीनलोक अन्तर्धान होजाते हैं ॥ २८ ॥ उससमय शेषजी के मुखमेंकी अग्निरूप भगवान्की शक्तिसे जब त्रिलोकी का दाह होनेलगताहै तब तिस अग्नि की तेजी से पीड़ितहुए भृगु आदि ऋषि महर्लोकको छोड़कर जनलोकमें जातेहैं ॥ २९ ॥ इतने ही में कल्पान्तरूप कालके कारण वृद्धिको प्राप्तहुए समुद्र,अति क्षोभित प्रचण्डपवनों से जिनकी लहरें कम्पायमान होरही हैं, ऐसे होकर तत्काल त्रिलोकीको डुबोदेते हैं ॥ ३० ॥ तिस जलमें वह शेषशायी श्रीहरि, योगनिद्रासे नेत्रोंको मूँदलेते हैं उससमय जनलोकनिवासी भृगु आदि मुनि उनकी स्तुति करते हैं ॥ ३१ ॥ इसप्रकारकी कालकी गति से प्रतीत होनेवाले दिनरात्रियोंके द्वारा, सब प्राणियोंकी आयुसे अधिक ब्रह्माजी की सौ वर्षकी आयुभी सम्पूर्ण हुईसी है ॥ ३२ ॥ क्योंकि-उन ब्रह्माजी की आयुके आधे भाग को परार्द्ध कहते हैं, तिसमें पहिला परार्द्ध तो समाप्त होगया. अब दूसरा परार्द्ध चलरहा है ॥ ३३ ॥ पहिले परार्द्ध के प्रारम्भमें ब्राह्मनामक एक बड़ाकल्प होगया तिसमें, जिस को शब्दब्रह्म कहते हैं वह ब्रह्माजी उत्पन्नहुए ॥ ३४ ॥ तिसही पहिले परार्द्ध के अन्त में, जिसको पाद्म कहते हैं वह कल्पहुआ था, तिसकल्प में श्रीहरि की नाभिरूप सरोवर में से त्रिभुवनरूप कमल उत्पन्नहुआ था ॥ ३५ ॥ हे विदुरजी ! वाराह नामसे प्रसिद्ध यह कल्प तो, दूसरे परार्द्ध के प्रारम्भ में हुआ ऐसा प्रसिद्ध है, इस कल्प में विष्णुभगवान् ने वाराह अवतार धारण करा था ॥ ३६ ॥ यह द्विपरार्द्धनामक काल, मायारूप उपाधिसे रहित अनादि अनन्त जगदात्मा के केवल एक

॥३७॥कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः॥ नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥ ३८ ॥ विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः ॥ आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ॥ ३९ ॥ दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत्॥ लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः॥ ४ ॥ तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥ ४१ ॥ इति० भा० म० तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः ॥ महिमा वेदगर्भोऽथ यथास्राक्षीन्निबोध मे ॥ १ । ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् ॥ महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत ॥ भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यांस्ततोऽसृजत् ॥ ३ ॥ सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः ॥ सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥ ४ ॥ तान्बभाषे

निमेषकी समान माना है ॥ ३७ ॥ जिसका आदि अंश परमाणु है और अन्तका अंश दो परार्द्ध है ऐसा यह काल, देह-स्थान आदिका अभिमान करनेवाले पुरुषमात्रका नाश करनेको समर्थ है, परन्तु सर्वव्यापक परमेश्वरके ऊपर प्रभुता नहीं करसक्ता है ॥ ३८ ॥ हे विदुरजी ! प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और शब्द स्पर्श आदि पांच सूक्ष्मभूतोंका उत्पन्न कराहुआ, ग्यारह इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत इसप्रकार सोलह विकारोंसे युक्त और भीतर पचास करोड़ योजन चौड़ा तथा बाहर एकसेएक दशगुणा ऐसे पृथ्वी आदि सात आवरणोंसे चारोंओरसे वेष्टित (लिपटाहुआ) यह ब्रह्माण्डकोश जिनके विषैं प्रवेशकरके परमाणुकी समान दीखता है, इतनाही नहीं किन्तु ऐसे औरभी करोड़ों ब्रह्माण्डोंके समूहोंके समूह हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और जो प्रधान आदि सकल कारणोंकाभी कारण अक्षर ब्रह्म है, तिसको साक्षात् परमात्मा सर्वव्यापी विष्णुका उत्तम स्वरूप कहते हैं ॥ ४१ ॥ इति तृतीयस्कन्धमें एकादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहनेलगे कि–हे विदुरजी ! इस प्रकार मैंने तुमसे परमात्माकी कालनामक महिमा कही, अब जिसप्रकार ब्रह्माजीनें प्रजा उत्पन्नकरीं सो तुम मुझसे सुनो ॥ १ ॥ ब्रह्माजीने पहिले तम (अपने स्वरूपको न जानना), मोह (देह इन्द्रियादिकोंमें 'मैं' ऐसी बुद्धि), महामोह (भोगोंकी इच्छा), तामिस्र (भोगोंकी इच्छाका भङ्ग होनेपर क्रोध) और अन्धतामिस्र (भोगोंका सर्वथा नाशहोनेपर अपना मरणसा हुआसा जानना) यह पांचप्रकारकी अज्ञानकी वृत्तियें (पञ्चपर्वा अविद्या) उत्पन्न करीं ॥ २ ॥ परन्तु इस पापरूप सृष्टिको देखकर उनके मनको सन्तोष न हुआ अतः तदनन्तर उन ब्रह्माजीने, भगवान्के ध्यानसे पवित्रहुए अपने मनसे अन्य सनक, सनन्द, सनातन और सनत्कुमार यह चार, कर्मरहित नैष्ठिक ब्रह्मचारी (आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाले) मुनि उत्पन्न करे ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी ने तिन पुत्रों

स्वभूः पुत्रान्प्रजाः सृजत पुत्रकाः ॥ तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥
॥ ५ ॥ सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः ॥ क्रोधं दुर्विषहं जातं
नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥ धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः ॥ सद्यो-
ऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥ ७ ॥ स वै रुरोद देवानां पूर्वजो
भगवान् भवः ॥ नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥ ८ ॥ इति
तस्य वचः पाद्मो भगवान् परिपालयन् ॥ अभ्यधाद्भद्रया वाचा मा रोदीस्त-
त्करोमि ते ॥ ९ ॥ यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः ॥ ततस्त्वामभि-
धास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥ १० ॥ हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं
मही ॥ सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि ते ॥ ११ ॥ मन्युर्मनुर्महि-
नसो महाञ्छिवः ऋतुध्वजः ॥ उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥ १२ ॥
धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाऽम्बिका ॥ इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र
ते स्त्रियः ॥ १३ ॥ गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः ॥ एभिः

से कहा कि-' हेपुत्रों तुम प्रजा उत्पन्न करो ' परन्तु मोक्षधर्म का आचरण करने-
वाले और वासुदेव भगवान् में लवलीन उन पुत्रों ने ब्रह्माजी के तिसकथन के
अनुसार प्रजा रचनेकी इच्छा नही करी ॥ ५ ॥ इसप्रकार आज्ञाको न माननेवालेपुत्रों
करके तिरस्कार करेहुए वह ब्रह्माजी, तिरस्कारके कारण प्रकटहुए दुःसह क्रोध को
रोकने का यत्न करनेलगे ॥ ६ ॥ परन्तु बुद्धिसे रोकाहुआ भी वह क्रोध ब्रह्माजी की
भृकुटि के मध्यभागमेंको निकल तत्काल काले और तांबेकी समान वर्णवाले पुत्रके रूपसे
उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ देवताओं से भी पहिले उत्पन्न हुए वह भगवान् रुद्र,रुदनकरने
लगे तब ' तू क्यों रुदन करता है ? ' ऐसा ब्रह्माजी के बूझनेपर उन्होने कहा कि-हे
जगद्गुरो ! ब्रह्माजी ! तुम मेरे नाम रक्खो और मुझे बसने को स्थान दो ॥ ८ ॥ऐसा
उनका वचन सुनकर, तिसको पूरा करने के निमित्त, उन भगवान् ब्रह्माजी ने मधुर
वाणी से ऐसा कहा कि-हेपुत्र ! तू रुदन न कर ! तूने जो कहा वह तेरा कार्य करताहूँ
॥ ९ ॥ हे देववर्य ! तूजो खिन्नहुए बालककी समान रुदन करताहै अतः तुझे सकल प्रजा
' रुद्र ' इसनामसे पुकारेंगी ॥ १० ॥ हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि
जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा, और तपस्या यह तेरे बसने के स्थान, तेरे बूझने से प्रथमही
मैंने रचरक्खे हैं ॥ ११ ॥ तथा मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव,ऋतुध्वज,उग्ररेता
भव, काल, वामदेव और धृतव्रत यह ग्यारह तेरेनाम हैं ॥ १२ ॥ हेरुद्र ! धी, वृत्ति,
उशन्ना,उमा, नियुत्सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा, दीक्षा और रुद्राणी यह ग्यारह
तेरी प्रिय स्त्रियें हैं ॥ १३ ॥ हेरुद्र ! इननाम और स्थानों को ग्रहणकर, क्योंकि तू प्रजाओं

सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥१४॥ इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नील-
लोहितः ॥ सत्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥ १५ ॥ रुद्राणां रुद्रसृष्टानां
समन्ताद्ग्रसतां जगत् ॥ निशाम्यासंख्यशो यूथान्प्रजापतिरशंकत ॥१६॥ अलं प्रजाभिः
सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम ॥ मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्वणैः ॥ १७ ॥
तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् ॥ तपसैव यथापूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं
भवान् ॥ १८ ॥ तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजं ॥ सर्वभूतगुहावासमञ्जसा
विन्दते पुमान् ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवमात्मभुवादिष्टः परिक्रम्य गिरां
पतिम् ॥ बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥ २० ॥ अथाभिध्यायतः सर्गं
दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥ भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥ २१ ॥ मरी-
चिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः
॥ २२ ॥ उत्संगान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः ॥ प्राणाद्वसिष्ठः संजातो
भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥ २३ ॥ पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः ॥

का अधिपति है अतः तू अब स्त्रियोंसहित इन नाम और स्थानोंसे युक्त होकर बहुतसी प्रजाएँ उत्पन्नकर ॥ १४ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजीके आज्ञा दियेहुए तिन नीललोहित भगवान् रुद्रने, अपने बल, काला और ताम्रवर्ण, तथा उग्र स्वभावके प्रभावसे अपनी समान बहुतसी प्रजा उत्पन्न करीं ॥ १५ ॥ तदनन्तर तिन रुद्रभगवान् ने, रुद्रोंके बहुतसे समूह उत्पन्न करे, वह चारोंओर जगत्को ग्रसनेलगे, ऐसा देखकर ब्रह्माजी मनमें सन्देहकरके कहनेलगे १६ हेसुरश्रेष्ठ ! तूने भयङ्कर नेत्रों से, मुझसमेत दशों दिशाओंको भस्म करनेकी इच्छा करनेवाली जो प्रजा उत्पन्न करीं, ऐसी प्रजाओं से भरपाया ॥ १७ ॥ हेरुद्र ! अब तू सकल प्राणियोंका सुखकारी तपकर, तेरा कल्याण हो, तू तपके प्रभावसे पहिलेकी समान इस जगत्को फिर उत्पन्न करेगा ॥ १८ ॥ क्योंकि-यह पुरुष, तपके प्रभावसे ही सकल प्राणियों के हृदयमें बसनेवाले परमतेजःस्वरूप अधोक्षज भगवान् को अनायासमें प्राप्त करता हैं ॥१९॥ मैत्रेयजी कहनेलगे कि–हे विदुरजी ! ब्रह्माजी के ऐसी आज्ञा करनेपर तिन रुद्रभगवान्ने 'ठीक है' ऐसाकहर वेदवाणी के पतिरूप तिन ब्रह्माजीकी प्रदक्षिणा कर आज्ञा ली और उन्हों ने तपकरने के लिये वनमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ इधर सृष्टि के विषयका विचार करनेवाले और भगवान्की शक्तिकरके युक्त तिन ब्रह्माजी के, लोकों की वृद्धिके कारणरूप दशपुत्र उत्पन्नहुए ॥ २१ ॥ वह मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और उनमें दशवें नारदहुए ॥ २२ ॥ तिनमें ब्रह्मा जीकी गोदी में से नारदजीहुए, अँगूठे में से दक्षहुए, प्राणों से वसिष्ठहुए, त्वचा में से भृगु हुए, हस्तों में से क्रतुहुए ॥ २३ ॥ नाभि में से पुलह हुए. पुलस्त्यऋषि कर्णों में से उत्प-

अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥ २४ ॥ धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् ॥ अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ २५ ॥ हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् ॥ आस्याद्वाक् सिन्धवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥ २६ ॥ छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः ॥ मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥ २७ ॥ वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः ॥ अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥ २८ ॥ तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः ॥ मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥ ॥ २९ ॥ नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे ॥ यस्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥ ३० ॥ तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो ॥ यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥ ३१ ॥ तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा ॥ आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥ ३२ ॥ स इत्थं गृ-

---

न्न हुए, मुख में से अङ्गिराहुए, नेत्रों में से अत्रिहुए और मनसे मरीचिहुए ॥ २४ ॥ फिर ब्रह्माजी सृष्टि उत्पन्न करनेका विचार करनेलगे, तब उनके दाहिने स्तनमें से धर्म उत्पन्न हुआ, तिस धर्ममें स्वयं नारायण वासकरते हैं, तथा ब्रह्माजी की पीठसे अधर्म उत्पन्न हुआ, जिस अधर्म से लोकोंको भयदेनेवाला मृत्यु उत्पन्नहुआ ॥ २५ ॥ फिर ब्रह्माजी के हृदयसे काम, भ्रकुटि से क्रोध, नीचे के ओठसे लोभ, मुखसे वाणी, शिश्न से सातों समुद्र और गुदासे पापको फैलानेवाली यह राक्षसजाति उत्पन्न हुई ॥ २६ ॥ और उनकी छायासे देवहूति के पति प्रभु कर्दम ऋषि उत्पन्नहुए. इस प्रकार ब्रह्माजी के मनसे और देह से यह सकल जगत् उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ हे विदुरजी ! ब्रह्माजीकी वाणीनामक एक कन्याथी वह अपनी परमसुन्दरता से पिता के मनको हरती हुईसी अतिकोमलाङ्गी थी, वह सकामचित्त वाली नहींथी, ब्रह्माजी कामबुद्धि से उसकी चाहना करनेलगे, ऐसा हमने सुनाहै ॥ २८ ॥ तव अपने पिताको अधर्म में बुद्धिलगातेहुए देखकर तिनकेही पुत्रजो मरीचि आदि पहिले कहेहैं उन ऋषियोंने, विश्वास के साथ प्रार्थनाकरी ॥ २९ ॥ कि–हेतात ! धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेवाले तुम, अपने शरीरसे उत्पन्न हुए कामको वशमें न करके, जो कन्यागमनकी इच्छा करतेहो, यह कार्य नतो तुमसे पहिले ब्रह्मादिकों ने करा और न तुह्मारे आगे को होनेवालोंमें कोई ऐसा करेगा ॥ ३० ॥ हेजगद्गुरो ! यह कार्य, तुमसे तेजस्वियोंको भी कीर्तिकारक नहीं होगा, क्योंकि–तेजस्वी पुरुषोंके वर्त्तावको देखकर उसके अनुसारही वर्त्ताव करताहुआ यह लोक कल्याणका पात्र होताहै ॥ ३१ जिन परमेश्वरने अपने स्वरूपमें विद्यमान इसजगत्को, अपने तेजसे प्रगट किया तिन भगवान्को प्रणामहो, वही भगवान् इन ब्रह्माजी को अधर्म से हटाकर धर्मकी रक्षाकरने को योग्य हैं ॥ ३२ ॥ इसप्रकार अपने सन्मुख कहतेहुए

ऐतः पुत्रान्पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् ॥ प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥ ३३ ॥ तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥ कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ॥ कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान्समवेतान्यथा पुरा ॥ ३४ ॥ चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह ॥ धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥ ३५ ॥ विदुर उवाच ॥ स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत् ॥ यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ३६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान्वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥ ॥ ३७ ॥ आयुर्वेदं धनुर्वेदं गांधर्वं वेदमात्मनः ॥ स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ ३८ ॥ इतिहासपुराणानि पंचमं वेदमीश्वरः ॥ सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥ ३९ ॥ षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ ॥ आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवं ॥ ४० ॥ विद्या दानं तपः

अपने मरीचि आदि ऋषिरूप पुत्रोंको देखकर तिन प्रजापतियों के पति ब्रह्माजीने, कुकर्म में अपनी प्रवृत्ति होनेके कारण लज्जितहोकर उसीसमय अपने शरीरको त्यागदिया ॥ ३३ ॥ एकसमय ब्रह्माजी ऐसा विचार कररहे थे कि—मैंने जैसे पहिले कल्पमें लोक उत्पन्नकिये थे तैसेही सङ्गतिसे अब इनको कैसे रचूँगा, सो उससमय उनके चारोंमुखसे चार वेद उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ तथा उपवेद और न्यायसहित, होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन चार ऋत्विजोंके कर्म, यज्ञ आदि अनुष्ठान, धर्मके चार चरण, ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रम और उन आश्रमोंके वर्त्तावकी रीतियें, यह सब उनके मुखोंसेही उत्पन्नहुए ॥ ३५ ॥ विदुरजी बोले कि—हे तपोधन मैत्रेय ऋषे ! विश्वस्रष्टाओं के अधिपति तिन ब्रह्माजीने अपने मुखोंसे वेदादि उत्पन्नकिये परन्तु उन्होंने अपने जिस२ मुखसे जो२ उत्पन्नकियाहो सो मुझसे कहिये ॥ ३६ ॥ मैत्रेय ऋषि बोले कि—हे विदुरजी ! तिन ब्रह्माजीने अपने पूर्व आदि चार मुखोंसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद यह क्रमसे उत्पन्नकिये और तिसहीक्रम से शस्त्र (होताका कर्म), इज्या (अध्वर्युका कर्म), स्तुतिस्तोम (उद्गाता का कर्म) और प्रायश्चित्त (ब्रह्मा का कर्म) यह चार उत्पन्न करे ॥ ३७ ॥ तथा आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र), धनुर्वेद (शस्त्रविद्या) गान्धर्ववेद (गानविद्या) और स्थापत्यवेद(कला विद्या) यह चार उपवेद तिन अपने पूर्वादि मुखों से क्रमसे उत्पन्न किये ॥ ३८ ॥ तथा-तिन सर्वदर्शी ब्रह्माजीने, अपने सकल मुखोंसे पञ्चमवेदरूप इतिहासपुराण उत्पन्न किये ॥ ३९ ॥ उन्होंने अपने पूर्वके मुखसे षोडशी और उक्थ यह दोयाग उत्पन्न किये, दक्षिणके मुखसे चयन और अग्निष्टोमनामक याग,पश्चिमके मुखसे आप्तोर्याम और अतिरात्र नामक याग तथा उत्तरके मुखसे गोसव और वाजपेय यह दो याग उत्पन्नकिये ॥ ४० ॥

सत्यं धर्मस्येति पदानि च ॥ आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह वृत्तिभिः ॥ ॥ ४१ ॥ सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा ॥ वार्तासञ्चयशालीन-शिलोञ्छ इति वै गृहे ॥ ४२ ॥ वैखानसा वालखिल्यौदुंबराः फेनपा वने ॥ न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥ ४३ ॥ आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दंडनीतिस्तथैव च ॥ एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो ह्यस्य दह्रतः ॥ ४४ ॥ तस्यो-ष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः ॥ त्रिष्टुप् मांसात्स्नायुतोऽनुष्टुप् ज-

तथा शौच, दया, तप और सत्य यह धर्म के चार चरण और वृत्तियों सहित ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रम उन्होने अपने पूर्वआदि चारों मुखों से क्रम से उत्पन्न किये ॥ ४१ ॥ तिनमें से ब्रह्मचर्य आश्रम में—सावित्र (यज्ञोपवीत होनेके समय से गायत्री के अध्ययनके निमित्त तीन दिन पर्यन्त धारण कियाजानेवाला ब्रह्मचर्य व्रत) प्राजापत्य (एक वर्ष पर्यन्त धारण किया जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत) ब्राह्म (वेद पढ़ने की समाप्तिपर्यन्त धारण किया जानेवाला ब्रह्मचर्य व्रत) और बृहत् (मरणकालपर्यन्त धारण किया जानेवाला ब्रह्मचर्य व्रत) ऐसे चारप्रकार के व्रत हैं, गृहस्थ आश्रम में—वार्त्ता (शास्त्रमें कही हुई कृषि आदि वृत्तिसे जीविका करना) सञ्चय (यजमानों को यज्ञ आदि कर्म कराने पर जो द्रव्य मिले तिससेही जीविका करना) शालीन (जो विना मांगे मिले उससे ही निर्वाह करना) और शिलोञ्छ (खेतों में पड़ेहुए अन्नके कण लाकर उनसे ही जीविका करना) ऐसी चार प्रकारकी वृत्ति है ॥ ४२ ॥ वानप्रस्थ आश्रममें वैखानस (विना हलजुते उत्पन्नहुए अन्नआदिसे निर्वाह करनेवाले), वालखिल्य (नवीन अन्न मिलतेही पहिले इकट्ठे रखेहुए अन्नका त्याग करनेवाले), औदुम्बुर (प्रातःकाल उठकर जिसदिशाको दृष्टिहो उधरसेही फल आदि लाकर निर्वाह करने वाले) और फेनप(स्वयं वृक्षोंपरसे गिरेहुए फल आदि खाकर निर्वाह करनेवाले)यह चार प्रकारहैं. और संन्यासआश्रममें-कुटीचक(अपनेआश्रमको कहेहुएकर्मोंका मुख्यतासेआचरण करनेवाले), बव्होद(जिनकर्मोंके न करनेसे प्रत्यवाय लगताहै उतनेही मात्र कर्मकरके ज्ञान का अभ्यास करनेवाले) हंस(किञ्चिन्मात्रभी कर्म न करके केवलज्ञानका अभ्यास करनेवाले) और निष्क्रिय (जिनकोज्ञान होगयाहै ऐसे) यह चारों उत्तरोत्तर श्रेष्ठहोतेहैं॥ ४३ ॥आन्वीक्षिकी (मोक्षप्राप्ति करानेवाली विद्या), त्रयी (स्वर्गादि फल देनेवाली विद्या) वार्त्ता(खेतीआदि व्यापार) और दण्डनीति (द्रव्य प्राप्ति करानेवाली राजनीति) यहचार और भूः, भुवः, स्वः तथा भूर्भुवःस्वः यह चार व्याहृतियें ब्रह्माजीके पूर्वआदि चारोंमुखोंसे क्रमशः उत्पन्न हुई और प्रणव (ॐ) उनके हृदयाकाश से उत्पन्नहुआ ॥ ४४ ॥ तिनप्रभुब्रह्माजीके लोमोंसे उष्णिक्छन्द, त्वचासे गायत्री, मांससे त्रिष्टुप्, स्नायुसे अनुष्टुप् और अस्थियोंसे

गत्यस्थ्नः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ मज्जायाः पंक्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् ॥ स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः॥४६॥ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तस्था बलमात्मनः ॥ स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥ ४७ ॥ शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः ॥ ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥ ४८ ॥ ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे ॥ ४९ ॥ ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतं ॥ ज्ञात्वा तद्धृदये भूयश्चिन्तयामास कौरव ॥ ५० ॥ अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥ नह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकं ॥ ५१ ॥ एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥ कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥ ५२ ॥ ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् ॥ ५३ ॥ स्त्री याऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥ तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे ॥ ५४ ॥ स चापि

जगती यह छन्द उत्पन्नहुए ४५ ॥ मज्जासे पंक्ति छन्द उत्पन्न हुआ, प्राणसे बृहती छन्द उत्पन्न हुआ. उनके जीवसे—क—से—म—पर्यन्त पचीसवर्ण उत्पन्न हुए, उनके देहसे स्वर उत्पन्नहुए ॥ ४६ ॥ उनकी इन्द्रियोंसे—श, ष, स, ह यह चार वर्ण उत्पन्नहुए ऐसा कहतेहैं. उनके बलसे य, र, ल, व, यह चारवर्ण उत्पन्नहुए और क्रीड़ासे निषाद, ऋषभ गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम यह सातस्वर, उत्पन्नहुए॥४७॥ हेविदुरजी ! जिनके व्यक्त और अव्यक्त यह दो स्वरूपहैं तिन शब्दब्रह्म स्वरूप ब्रह्माजीको,ऐश्वर्य आदि अनेकों शक्तियोंयुक्त परमेश्वर सगुण और निर्गुणस्वरूपसे निरन्तर प्रकाशित होतेहैं॥४८॥ तदनन्तर उन ब्रह्माजीने दूसरा शरीर ग्रहण करके मनसे सृष्टि रचनेका विचार किया॥४९॥ हेकुरुवंशी विदुरजी! सृष्टि रचनेमें समर्थ होकरभी मरीचि आदि ऋषियोंकी सृष्टि फैली नहीं ऐसा समझकर वह ब्रह्माजी सृष्टिकी वृद्धि होनेके निमित्त फिर हृदय में चिन्तवन करने लगे ॥ ५० ॥ कि—अहो ! क्या कहूँ ! मैं निरन्तर प्रजाकी वृद्धिके कार्यमें तत्पर रहता हूँ तथापि वृद्धि नहीं होती है, यह बड़े आश्चर्य की बात है, इसमें दैवही विघ्न कररहा है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजी के, यथोचित कार्य करतेहुए और दैवपर विश्वास रखने पर उससमय उनके शरीरके एकायकी दोभाग होगए, उनको अबभी लोक,'यह बड़ाही आश्चर्य है कि ब्रह्माजी के शरीर के दोभाग होगए ' ऐसा कहते हैं ॥ ५२ ॥ तिनशरीर के दोनो भागों में से एक मिथुन (स्त्री पुरुष का जोड़ा) उत्पन्न हुआ, उनमें जोपुरुष था वह स्वायम्भुवनामक सार्वभौम मनु हुआ ॥ ५३ ॥ और जो स्त्री थी वह महात्मा मनुकी शतरूपा नामक पटरानी हुई, तिन दोनों से मैथुनधर्म के द्वारा प्रजा, वृद्धिकोप्राप्त होनेलगी ॥५४॥ हेसाधुश्रेष्ठ विदुरजी ! तिन स्वायम्भुव मनु के,शतरूपाके विषैं प्रियव्रत

शतरूपायां पंचापत्यान्यजीजनत् ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ॥५५॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥ आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमां ॥ दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥५६॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः॥ १२ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप ॥ भूयः पप्रच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ स वै स्वायंभुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयंभुवः ॥ प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ॥ २ ॥ चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम ॥ ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥ ३ ॥ श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य नन्वंजसा सूरिभिरीडितोर्थः॥ तत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुंदपादारविंदं हृदयेषु येषां ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानं ॥ प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ५ मैत्रेय उवाच ॥ यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायंभुवो मनुः ॥ प्रांजलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥ ६ ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद्वृत्तिदः पिता ॥

और उत्तानपाद यह दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति, और प्रसूति यह तीन कन्या ऐसे, पांच सन्तति हुईं; तदनन्तर उन्होने अपनी आकूतिनामक कन्या रुचिनामा ऋषिको दी, विचली देवहूति कर्दम ऋषिको दी और तीसरी प्रसूति दक्षको दी इन तीन कन्याओं की सन्ततिसे यह जगत् भरगया है ॥५५।५६॥ इतितृतीय स्कन्ध में द्वादश अध्याय समाप्त ॥*॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हेराजन् ! इसप्रकार कहतेहुए मैत्रेयजी की पवित्र वाणी सुन कर वासुदेवकी कथा का आदर करनेवाले विदुरजीने फिर प्रश्न किया ॥ १ ॥ विदुरजी ने कहा कि-हेमुने ! ब्रह्माजी के प्यारे पुत्र सार्वभौम स्वायम्भुव मनुने, प्रिया स्त्री प्राप्त होने पर क्या किया ? ॥ २ ॥ हेसत्तम ! तिन आदि राजा राजर्षि का, चरित्र श्रद्धापूर्वक सुननेवाले मेरे अर्थ कहिये, क्योंकि वह श्रीहरिके आश्रय से ही रहते थे ॥ ३ ॥ जिन भगवद्भक्तोंके अन्तःकरणमें मोक्ष देनेवाले ईश्वरके चरणकमल निरन्तर प्रकट होतेहैं तिन भक्तोंके गुणोंको सुनना ही, पुरुषों के चिरकालपर्यन्त श्रमकरके पाएहुए शास्त्रज्ञान का मुख्यफल है, ऐसा विद्वानों ने वर्णन करा है ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! जिनकी गोदमें प्रत्यक्षभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने चरण फैलाकर बैठतेथे तिन अतिनम्र विदुरजी करके इसप्रकार प्रश्न करके भगवान्की कथामें प्रवृत्त करेहुए मैत्रेय ऋषि, परमहर्ष के साथ पुलकितशरीर होकर कहनेलगे ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि-हेविदुरजी ! जब अपनी स्त्रीसहित स्वायम्भुव मनु उत्पन्नहुए तब उन्होंने हाथ जोड़कर अतिनम्रताके साथ ब्रह्माजी से कहा कि-॥ ६ ॥ हेभगवन् ! तुमही एक इन सकल प्राणियों के उत्पन्न क-

अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥ ७ ॥ तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु ॥ यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर ॥ यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनाऽर्पितम् ॥९॥ एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ ॥ शक्त्याऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ॥ १० ॥ स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः ॥ उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥ ११ ॥ परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप ॥ भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशो नु तुष्यति ॥ ॥ १२ ॥ येषां न तुष्टो भगवान्यज्ञलिंगो जनार्दनः ॥ तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥ १३ ॥ मनुरुवाच ॥ आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन ॥ स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥ १४ ॥ यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महांऽभसि ॥ अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥ १५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथासन्नामवेक्ष्य गाम् ॥

रनेवाले और पालन करनेवाले पिता हो तथापि हम सन्तानों के कौनसा कार्य करने से आपकी शुश्रूषा होगी ? ॥ ७ ॥ और हमसे होने योग्य कर्मोंमें जिस कर्मके करने से हमारी इसलोकमें सर्वत्र कीर्त्ति फैलकर परलोक में भी हमको उत्तमगति प्राप्तहोय, तिस कार्यको करनेकी हमको आज्ञा करिये. हे स्तुतिपात्र ! आपको प्रणाम हो ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि–हेतात मनु ! तूने जो ' मुझे आज्ञाकरो ' ऐसा निष्कपटभाव से कहकर अपनेको मेरे अर्पण कराहै, इससे मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, हेभूपते ! तुम दोनोंका कल्याण हो ॥ ९ ॥ हेवीर !, पुत्र नम्रतासे मत्सरतारहित होकर, अपनी शक्तिके अनुसार पिता की आज्ञा आदरके साथ स्वीकार करें, इतनेसेही उनको पिताकी पूजा करनी चाहिये ॥ ॥ १० ॥ अतः अब तुम अपने गुणोंके अनुसार सन्तान, इस शतरूपाके विषैं उत्पन्न कर के पृथिवीके धर्मकी रक्षाकरो और यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुषकी आराधना करो॥ ११ ॥हेराजन् ! प्रजाओं की रक्षाकरने से मेरी अत्युत्तम सेवा होयगी और प्रजाओंका पालन करनेवाले तेरेऊपर हृषीकेशभगवान्भी प्रसन्न होंगे ॥ १२ ॥ यज्ञरूप जनार्दन भगवान् ,जिसके ऊपर प्रसन्न न हों उसका सबप्रकारका परिश्रम वृथाहै,क्योंकि–उसने अपने आत्माकाही अनादर किया है १३ मनुने कहा कि–हेपापनाशक प्रभो !मैं,आप भगवान्की आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करूँगा,परन्तु यहां सकल प्रजाओंके और मेरे रहनेके योग्य स्थान आप दिखादीजिये १४॥ हे देव ! सकल प्राणियोंकी निवासस्थान यह पृथ्वी तो अथाह जलमें डूबीहुई है सो इस भूदेवीके उद्धारके निमित्त प्रयत्न करिये ॥ १५ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! मनुके कहनेके अनुसार पृथ्वीको जलमें डूबीहुई देखकर ब्रह्माजीने 'अब मैं इसको ऊपरको

कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥ १६ ॥ सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता ॥ अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ॥ १७ ॥ यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥ कर्त्तव्यं करुणासिन्धुस्तीर्थकीर्त्तिरधोक्षजः ॥ १८ ॥ इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ ॥ वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥ १९ ॥ तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत ॥ गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥ २० ॥ मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह ॥ दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥ २१ ॥ किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् ॥ अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥ २२ ॥ दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः ॥ अपिस्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥ २३ ॥ इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः ॥ भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥ २४ ॥ ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् ॥ स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥ २५ ॥ निशम्य ते

कैसे निकालूं' इस विषयका बहुतसमय पर्यंत बुद्धिसे,ऐसा विचारतेरहे कि-॥ १६ ॥ मेरे सृष्टिको उत्पन्न करतेहुए,पृथ्वी अकालमें उत्पन्नहुए जलोंसे डूबकर रसातलमें को चलीगई. अब इसमें, ईश्वरकरके सृष्टिके निमित्त नियुक्त कराहुआ मैं, क्याकरूँ ? ॥ १७ ॥ सो जिन ईश्वरके हृदयसे मैं उत्पन्नहुआ हूँ वह ही पवित्रकीर्त्ति, करुणासिंधु अधोक्षज भगवान् कार्य का उचित उपायकरें ॥ १८ ॥ हेविदुरजी ! इसप्रकार ब्रह्माजीके विचार करतेहुए एकायकी उनकी नासिकाके छिद्रमें से एक अँगूठेके पोरुए की समान शूकराकार बालक निकला ॥ १९ ॥ हे भारत विदुरजी ! ब्रह्माजीके देखते२ ही आकाशमेंही वह शूकराकार बालक क्षणमात्रमें ठीक हस्तीकी समान होगया, यह सबोंको बड़ा आश्चर्य प्रतीतहुआ ॥ २० ॥ तब मरीचि आदि ब्राह्मण, सनकादि ऋषि और स्वायम्भुव मनुसहित ब्रह्माजीने तिस वराहरूपको देखकर उसके विषयमें अनेकों प्रकारकी तर्कना करीं ॥ २१ ॥ शूकरके मिष (बहाने) से हमारे सामने विद्यमान यह कौन प्राणी है? क्या यह मेरी नासिकामें से ही निकलकर बाहर पड़ा है ? यह तो बड़ा आश्चर्य है ॥ २२ ॥ पहिले तो यह अँगूठेके पोरुए की समान दीखा था वही एकक्षणमें प्रचण्ड शिलाकी समान होगया,कहीं यह यज्ञरूप भगवान् ही तो अपना वास्तविकरूप छिपाकर मेरे मनको मोह में नहीं डालरहेहैं?॥२३॥वह ब्रह्माजी अपने पुत्रोंसे इसप्रकार तर्कना कररहे थे कि-इतनेही में तिनयज्ञपुरुष भगवान्ने तिस अपनेशरीरको बड़ेभारी पर्वतकी समान करके गर्जना करी२४॥ अपनी गर्जनासे दशों दिशाको शब्दायमान करनेवाले तिन सर्वव्यापक श्रीहरि ने ब्रह्माजी और तिन सकल श्रेष्ठब्राह्मणों को हर्षित करा ॥ २५ ॥ तब जनलोक, तपोलोक और

घर्घरितं स्वखेदक्षयिष्णुमायामयसूकरस्य ॥ जनस्तपःसत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयो गृणन्स्म ॥ २६ तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्मावधार्यात्मगुणानुवादम् ॥ विनद्य भूयो विबुधोदयाय गजेंद्रलीलो जलमाविवेश ॥ २७ ॥ उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन्खररोमशत्वक् ॥ खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान् महीध्रः ॥ २८ ॥ घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् क्रोडापदेशः स्वयमध्वरांगः ॥ करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतोऽविशत्कम् ॥ २९ ॥ स वज्रकूटांगनिपातवेगविशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ॥ उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥ ३० ॥ खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाप उत्पारपारं त्रिपरू रसायां ॥ ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥ ३१ ॥ स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरु-

सत्यलोक निवासी तिन ऋषियोंने, अपने खेदको दूर करनेवाली तिस, मायासे वराहरूप धारी भगवान्की गर्जनाको सुनकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेदके पवित्र मंत्रोंसे उनकी स्तुति करी ॥ २६ ॥ यज्ञरूप वराहने, अपने गुणकीर्तनसे पूर्ण तिस, भक्तोंकी करीहुई वेदरूप स्तुतिको सुनकर, उनके उदयके निमित्त फिर गर्जकर गजराजकी समान लीला करतेहुए जलमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥ जिन्होंने अपनी पूंछ ऊपरको खड़ी करली है, जिन की ग्रीवापर के लम्बे २ केश कम्पायमान होरहेहैं, आकाशमें विचरनेवाले, घोरआकारवाले, जिनकी त्वचापरके रोम तीखेहैं, खुरोंसे जिन्होने मेघोंको अस्तव्यस्त करदिया है, जिनकी दाढ़ स्वेत है, जिनकी दृष्टिका प्रकाश जिधरतिधर फैलाहुआ है ऐसे पृथ्वीका उद्धार करनेवाले वह भगवान्. भयङ्कर दाढ़ोंसे युक्त होकरभी अपनी सौम्यदृष्टि से तिन स्तुतिकरनेवाले ऋषियों की ओर को देखकर अपनी नासिका से, पृथ्वी की पता लगानेके निमित्त सूँघते२ जलमें घुसगये।२८।२९। उससमय वज्रमय पर्वतकी समान जो भगवान् का शरीर तिसके गिरने के वेगसे जिसका भीतर का भाग खलबलागया है ऐसा वह मेघकी समान गर्जने वाला समुद्र, आर्त्तसा होकर, फैलीहुई तरङ्गरूप लम्बी २ अपनी भुजाओं से भगवान् की शरणगया और ' हे यज्ञपालक! मेरी रक्षा करो ' ऐसा कहकर विलाप करने लगा ॥३०॥ उससमय, प्रातःसवन मध्यान्हसवन और तृतीयसवन यह तीन सवन (यज्ञ) जिनके शरीरके जोड़ हैं ऐसे तिन यज्ञमूर्ति वराह ने बाणकी समान आंकड़ेदार अपने खुरोंसे तिस अपार जलको विदीर्ण करके पाताल में जाकर वह पृथ्वी देखी, जो सकल प्राणियोंकी आधार थी और पहिले, प्रलयकालके जल में शयन करने को उद्यतहुए तिन भगवान्ने जिसको आपही अपने उदर में धारण किया था ॥ ३१ ॥ तदनन्तर जलमें डूबीहुई उस पृथ्वीको अपनी दाढ़से उखाड़कर रसातल से बाहर आनेपर वह भगवान् परमशोभित हुए, उससमय तिस जलके विषैं हाथमें गदा लेकर ऊपरको च-

चे रसायाः ॥ तत्रापि दैत्यं गदया पतंतं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥ ३२ ॥ जघान रुंधानमसह्यविक्रमं स लीलयेभं मृगराडिवांभसि ॥ तद्रक्तपंकांकितगंडतुंडो यथा गजेंद्रो जगतीं विभिंदन् ॥ ३३ ॥ तमालनीलं सितदंतकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपंतं गजलीलयांऽग ॥ प्रज्ञाय बद्धांजलयोऽनुवाकैर्विरिंचिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥ ३४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ॥ यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ ३५ ॥ रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकं ॥ छंदांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वंघ्रिषु चातुर्होत्रं ॥ ३६ ॥ स्रुक् तुण्डे आसीत्स्रुव ईश नासयो रिडोदरे चमसाः कर्णरंध्रे ॥ प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ३७ ॥ दीक्षाऽनुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीय-

ढ़कर आनेवाले और पृथ्वीको ऊपरको लानेमें रोकनेवाले असह्यपराक्रमी हिरण्याक्ष दैत्यको 'मेरे होतेहुए तुम तिरस्कार क्यों सहते हो, इसप्रकार' सुदर्शनचक्र के कहने से जिनको तीव्र क्रोध होआयाहै ऐसे तिन भगवान् ने, सिंह जैसे हस्तीका प्राणान्त करता है तैसे सहजमें ही मारडाला; उससमय जैसे कोई गजराज मट्टीके टीले में टक्कर मारकर आवे और उसके गण्डस्थल ताम्रवर्णकी मट्टी लगकर लाल २ होगएहों तैसे, तिन भगवान्के कपोल और मुख हिरण्याक्षके रुधिरकी कीचसे लाल २ होगए थे ॥३२॥ ३३ ॥ हेविदुरजी ! हाथीकी समान, लीला से अपने स्वेत दन्तोंके अग्रभागपर पृथ्वीको उखाड़कर धारण करनेवाले और तमालवृक्ष (आबनूस) की समान श्यामवर्ण तिन वराहरूप ईश्वरको देखकर ब्रह्मादि ऋषि, हाथजोड़कर वेदके सूक्तोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ ऋषि बोले, कि—हे किसीके जीतने में न आनेवाले भगवन् ! तुम्हारी सर्वदा जयजयकार हो, हे यज्ञपते ! अपनी वेदत्रयीरूप मूर्तिको वारम्वार कँपानेवाले तुमको प्रणामहै; जिन आपके शरीरके रोमोंके छिद्रों में सकल यज्ञ लीन से होरहे हैं तिन, पृथ्वीका उद्धार करनेके निमित्त वराहरूप धारनेवाले तुमको प्रणामहै ॥ ३५ ॥ हेदेव ! यह जो तुम्हारा यज्ञात्मक शरीर है सो वास्तवमें पापी पुरुषोंकी दृष्टि के सामनेनहीं आसक्ता; क्योंकि तुम्हारी त्वचामें गायत्री, उष्णिक् आदि छन्द रहतेहैं. केशोंके विषें दर्भ है, दृष्टिमें घृत है, और चारों चरणों में होता—अध्वर्यु आदि चार ऋत्विजोंके चार कर्महैं ॥ ३६ ॥ हेईश्वर ! तुम्हारे मुखके अग्रभागमें जुहू (हंसके मुखके आकारवाला) पात्रहै, नासिकाके दोनो छिद्रोंमें स्रुवानामक यज्ञका पात्र है, उदर में इड़ा (हाथभर लम्बा चौकोना) पात्रहै, कानके छिद्रों में चमस (आठ अंगुल के सोमपात्र) हैं, मुखमें प्राशित्र (गौके कानकी समान) पात्र है. कण्ठके छिद्रमें ग्रह (बारह सोमपात्र) हैं और हेभगवन् ! आपका चर्वण ही अग्निहोत्र है ॥ ३७ ॥ हे यज्ञवराह ! दीक्षा (यज्ञमें दीक्षित होने के निमित्त कीहुई इष्टि) ही वारम्वार धारण करा-

दंष्ट्रः ॥ जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥ ३८ ॥ सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ॥ सत्राणि सर्वाणि शरीरसंधिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥ ३९ ॥ नमो नमस्तेऽखिलमंत्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ॥ वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ४० ॥ दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ॥ यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतंगजेंद्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ४१ ॥ त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ॥ चकास्ति शृंगोढघनेन भूयसा कुलाचलेंद्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ४२ ॥ संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ॥ विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४३ ॥ कः श्र-

---

हुआ तुम्हारा अवतार है, उपसद् (इस नामकी तीन इष्टियें) तुम्हारी ग्रीवा है, प्रायणीय और उदयनीय (इस नामकी दो इष्टि) तुम्हारी दाढ़ हैं, प्रवर्ग्य (महावीर) तुम्हारी जिह्वा है, सभ्यावसथ्य (सभ्यकहिये होमरहित अग्नि, आवसथ्यकहिये जिसमें हवन कियाजाय वह अग्नि) यह यज्ञरूप तुम्हारा मस्तक है, चिति (इष्टिकाचयन) तुम्हारा प्राण है ॥ ३८ ॥ हे देव ! सोमरस तुम्हारा वीर्य है, प्रातःसवनादि तीन सवन तुम्हारी बालकपन आदि तीन अवस्था हैं, अग्निष्टोम आदि सात संस्था तुम्हारी सात धातु हैं, द्वादशाह आदि सकल सत्र तुम्हारे शरीरके जोड़ हैं अर्थात् तुम सकल यज्ञ-क्रतुरूपहो और उनमेंकी सकल इष्टियें तुम्हारे सन्धिस्थानोंके बन्धन हैं ॥ ३९ ॥ सकल मन्त्र, देवता और घृत आदि द्रव्यरूप, सकल यज्ञरूप और कर्मरूप तुमको वारंवार नमस्कारहो. वैराग्य, भक्ति और मन की स्थिरतासे प्राप्त होनेवाले ज्ञानस्वरूप और ज्ञान देनेवाले गुरुरूप आपको वारम्वार नमस्कार है ॥ ४० ॥ हे भूमिके धारण करनेवाले भगवन् ! जैसे जलमें से बाहर निकलने वाले मदोन्मत्त हस्तीकरके दाँतोंपर धारण करीहुई पत्तोंसहित कमलिनी शोभा पाती है तैसेही तुम्हारी अपनी दाढ़पर धारण करीहुई यह भूमि पर्वतोंसहित अति शोभाको प्राप्त होरही है ॥ ४१ ॥ अथवा अपने ऊपर मेघोंको धारण करनेवाले बड़े २ शिखरोंसे जैसे किसी कुलपर्वतकी शोभा होती है तैसेही तुम्हारे वेदत्रयीरूप इस वराहशरीर की, दाँतोंपर धारण करेहुए भूमण्डलसे शोभा होरही है ॥ ४२ ॥ हे देव ! स्थावर और जङ्गम दोनों प्रकारके विश्वके रहनेकी व्यवस्था (ठीकठाक) करनेके निमित्त, अपनी पत्नीरूप इस जगन्माता (पृथ्वी) को उत्तमप्रकारसे स्थापनकरो क्योंकि—तुम सकल जगत्के पिताहो, जैसे यज्ञ करनेवाले पुरुष, मन्त्रसे अरणीमें अग्नि स्थापन करते हैं तैसे तुमने भूमिके विषैं अपना तेज (लोकोंको पीठपर धारण करनेकी शक्ति) स्थापन किया है अतः इस पृथ्वीपर बसनेवाले हम, तुम पितासहित इस माताको नमस्कार करते हैं ॥ ४३ ॥

दधीतान्यतमस्तवे प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ॥ न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥ ४४ ॥ विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयं ॥ सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥ ४५ ॥ स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ॥ यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ॥ ४६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ सलिले स्वखुराक्रांत उपाधत्तावितावनिं ॥ ४७ ॥ स इत्थं भगवानुर्वीं विष्वक्सेनः प्रजापतिः ॥ रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥ ४८ ॥ य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ॥ शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥ ४९ ॥ तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ॥ अनन्यदृष्ट्या भजतां

हेप्रभो ! पातालमें गईहुई भूमिका जो तुमने उद्धार किया, इसकार्य को करने का तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन मनमेंभी विचार करसक्ताथा ? अर्थात् कोईभी नहीं करसक्ताथा तथापि सकल आश्चर्योंके स्थानरूप तुममें, यह पृथ्वीका उद्धार आश्चर्यकारक नहीं है क्योंकि- तुमनेतो अपनी मायासे इस अति आश्चर्यकारी जगत्को रचाहै ॥ ४४ ॥ हेईश्वर ! अपने इस वेदरूप शरीरको कम्पायमान करनेवाले तुमने अपने शरीरपर के लम्बे२ केशोंके अग्रभागोंसे उड़ाईहुई पवित्र जलकी बिन्दुओंसे, जन तप और सत्यलोकवासी जो हम तिनके ऊपर छिड़ककर अतिपवित्र कियाहै ॥ ४५ ॥ हेदेव ! तुम्हारे जिनकर्म्मोंका अन्त नहीं है उनतुम्हारे कर्म्मोंका अन्तजाननेकी जो इच्छा करताहै उसकी बुद्धि नष्टहुई समझना चाहिये, हेभगवन् ! यह सकलविश्व,तुम्हारीही योगमायासे प्राप्तहुए विषयोंके कारण मोहित होरहाहै, अतः अचिन्त्य अनन्तशक्ति आपको जानकर यह विश्व जैसे तुम्हारी भक्तिकरे त्योंही तुम इसके ऊपर अनुग्रह करो ॥ ४६ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हेविदुरजी ! इसप्रकार तिन ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंके स्तुति करनेपर तिन जगत्रक्षक भगवान्ने अपने खुरोंसे खलबलाएहुए तिस जलके ऊपर पृथ्वीको स्थापन करा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर प्रजापालक दुःख हरनेवाले तिन विष्वक्सेन भगवान्ने, पातालसे लीलाकरकेही ऊपरको निकाली हुई पृथ्वीको जलमें पहिले कहे अनुसार स्थापन करके निजधामको गमन किया ॥ ४८ ॥ हेविदुरजी ! जिनके,मायाके प्रभावसे करेहुए चरित्र वर्णन करनेयोग्य हैं, और जिनके विषै लगाईहुई बुद्धि सकल दुःखोंका नाश करतीहै तिन हरिकी इस अतिमङ्गलकारी सुन्दरकथा को जो पुरुष भक्तिसे सुनताहै वा दूसरे को सुनाता है तिसके हृदयमें जनार्दन भगवान् शीघ्रही प्रसन्न होतेहैं ॥ ४९ ॥ हेविदुरजी ! तिन सकल आशीर्वादोंके स्वामी के प्रसन्न

गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥ ५० ॥ को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ॥ आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम् ॥ ५१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सूकररूपानुवर्णने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ छ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितां हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ॥ पुनः स पप्रच्छ तमुद्यताञ्जलिर्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ॥ आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥२॥ तस्य चोद्धरतः क्षौणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया ॥ दैत्यराजस्य च ब्रह्मन्कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ॥ यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥ ४ ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयाऽर्भकः ॥ मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥ ॥ ५ ॥ अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा ॥ ब्रह्मणा देवदेवेन दे-

---

होनेपर कौन वस्तु दुर्लभ है ? कुछ दुर्लभ नहीं है. तथापि उनसे विषयभोग की याचना न करे, क्योंकि—वह थोड़े समयपर्यन्त रहनेवाले हैं और सबके हृदयों में वसनेवाले वह भगवान् अनन्यभावसे अपनी भक्ति करनेवाले पुरुषोंको अपनी उत्तमगति स्वयंही देतेहैं ५० इससे अहो ! इसलोकमें पुरुषार्थोंके तत्त्व को जाननेवाला और कौनसा पुरुष, संसारनाशक पुरातन कथाओंमें से भगवत्कथामृतका अपने कानरूप अञ्जलियों से पानकरना त्यागेगा ! पशुके सिवाय दूसरा कोई नहीं त्यागेगा ॥५१॥ इति तृतीय स्कन्ध में त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हेराजन् ! भगवत्कथाको सुननेका व्रतधारण करनेवाले वह विदुरजी, मैत्रेय ऋषिकी वर्णन करीहुई, पृथ्वीका उद्धार करने के निमित्त वराह अवतार धारण करनेवाले श्रीहरिकी कथाको सुनकर, पूरी २ तृप्ति न होने के कारण फिर हाथ जोड़कर मैत्रेयजी से प्रश्न करनेलगे ॥ १ ॥ विदुरजी बोले, हेमुनिवर ! तिनही यज्ञमूर्ति श्रीहरिने आदिदैत्य हिरण्याक्षका वधकिया, ऐसा मैंने सुना ॥ २ ॥ परन्तु हे ब्रह्मन् ! अपनी दाढ़के अग्रभागसे सहजमें ही पृथ्वीका उद्धार करनेवाले तिन भगवान्का और हिरण्याक्ष दैत्यराजका युद्ध किसकारण से हुआ ? ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी ने कहाकि—हेवीर ! तुमने बहुतसुन्दर प्रश्न किया, क्योंकि तुमने मनुष्योंकी मृत्यु के पाश को काटनेवाली श्रीहरिकी अवतारकथा बूझी है ॥ ४ ॥ नारदमुनि की गानकरीहुई जिसकथा के प्रभाव से उत्तानपाद राजाका पुत्र बालक ध्रुव, मृत्युके मस्तकपर अपना चरण रखकर विमान में बैठ अचलस्थान के ऊपर चढ़गया ॥ ५ ॥ अब तुमने जो प्रश्नकियाहै इसी विषयका पहिले सकल देवताओंके ब्रह्माजीसे प्रश्न करनेपर, देवदेव ब्रह्माजी

वानामनुपृच्छताम् ॥ ६ ॥ दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् ॥ अपत्यकामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छयार्दिता ॥ ७ ॥ इष्ट्वाऽग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ॥ निम्लोचत्यर्क आसीनमग्न्यगारे समाहितम् ॥ ८ ॥ दितिरुवाच ॥ एष मां त्वत्कृते विद्वन् काम आत्तशरासनः ॥ दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥ ९ ॥ तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः ॥ प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुङ्क्तामनुग्रहं ॥ १० ॥ भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः ॥ पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ॥ ११ ॥ पुरा पिता नो भगवान् दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ॥ १२ ॥ स विदित्वात्मजानां नो भावं संतानभावनः ॥ त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥ १३ ॥ अथ मे कुरु कल्याण कामं कंजविलोचन ॥ आर्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि ॥ १४ ॥ इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् ॥ प्रत्याहानुनयन्वाचा प्रवृद्धानंगकश्मलाम् ॥

ने देवताओंके अर्थ वर्णन कराहुआ यह इतिहास मैंने सुनाहै ॥ ६ ॥ वह इसप्रकारहै कि हेविदुरजी ! दक्षप्रजापतिने अपनी दितिनामक कन्या, मरीचिके पुत्र कश्यपजीको दीथी, वह एकसमय अपनी सपत्नियों के सन्तान देखकर ' मेरेभी सन्तानहो ' ऐसी इच्छा करके कामातुर होतीहुई सूर्यास्त होनेपर प्रदोषसमय में, जिनकी जिह्वा अग्नि है ऐसे यज्ञपति श्रीविष्णुभगवान् का पायस से हवन करके हवनमन्दिर में समाधिस्थ बैठेहुए अपने पति की इच्छा करनेलगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ दितिने कहा कि—हे सर्वज्ञ ! जैसे मदमत्त हाथी केले के वृक्षको पीड़ा देता है तैसे, धनुषको धारण करेहुए यह कामदेव अपनी शूरता प्रकट करताहुआ मुझदीनको आपके निमित्त पीड़ित करहा है ॥ ९ ॥ अतः पुत्रवती सपत्नियों की सुखसम्पदाओं से सन्ताप को प्राप्त होनेवाली मेरे ऊपर आप अनुग्रह करो। आपका कल्याणहो ॥ १० ॥ आपसा पति जिनके विषैपुत्ररूप से उत्पन्न होताहै ऐसी पतिसे अधिक सन्मान पानेवालीं स्त्रियों की कीर्ति सबलोकोंमें फैलतीहै ॥ ११ ॥ पूर्वमें हमारे पिता भगवान् दक्षने, हम पुत्रियोंपर परमप्रेम करतेहुए 'हेपुत्रियों तुम किस २ पतिको वरोगी' ऐसा हम सब पुत्रियों से पृथक् २ बूझा ॥ १२ ॥ उससमय वंशकी वृद्धि की इच्छा करनेवाले तिन हमारे पिताने, हमसब पुत्रियोंका अभिप्राय जानकर उनमें से आपके स्वभाव के अनुसार वर्त्ताव करनेवालीं हम तेरह कन्या आपको समर्पण करीं ॥ १३ ॥ अतः हेकमलनयन ! मङ्गलरूप ! मेरी इच्छा पूर्ण करो, क्योंकि— हेसर्व श्रेष्ठ ! आपसमान महान् पुरुषोंके विषैं मुझसमान दीनजनोंकी शरणजाना निष्फल नहीं होताहै ॥ १४ ॥ हेविदुरजी ! इसप्रकार अतिबढ़ेहुए कामदेवसे मोहित दीन और अधिक प्रार्थना करतीहुई तिस अपनी भार्याको, सन्ध्याकाल टलनेके निमित्त, वाणीसे समझातेहुए

॥ १५ ॥ एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ॥ तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥ १६ ॥ सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ॥ व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथाऽर्णवम् ॥ १७ ॥ यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि ॥ यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ॥ १८ ॥ यामाश्रित्येन्द्रियारातीन् दुर्जयानितराश्रमैः ॥ वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥ १९ ॥ न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि ॥ अप्यायुषा वा कार्त्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥२०॥ अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् ॥ यथा मां नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥२१॥ एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना ॥ चरंति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥२२॥ एतस्यां साध्वि संध्यायां भगवान् भूतभावनः॥ परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥२३॥ श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतजटाकलापः ॥ भस्मावगुंठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः प-

तिन मरीचिके पुत्र कश्यपऋषिने कहा ॥ १५ ॥ हेडरपोक प्रिये ! यहमैं, तेरे मनमें जिस की इच्छाहै तिसतेरे प्रिय कार्य को करताहूँ, क्योंकि– जिससे पुरुषके धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थोंकी सिद्धिहोतीहै तिस पत्नीकी इच्छाको कौन पुरुष पूर्ण नहीं करेगा ॥ १६ ॥ जैसे कर्णधार (मलाह) नौका करके दूसरे पुरुषोंके सहित आपभी समुद्रको तरजाताहै तैसे सपत्नीक पुरुष, अपने गृहस्थ आश्रमके द्वारा, दूसरे आश्रमोंके प्राणियों को लेकर (तिनको अन्न, वस्त्र आदि देकर) आपभी दुःखरूप समुद्रको तरजाताहै॥ १७ हेमानिनि ! जिसको,तीनप्रकारकापुरुषार्थ चाहनेवाले पुरुष का आधा अङ्ग कहाहै, जिसके ऊपर अपने सकलकर्मोंका भार रखकर यह पुरुष,निश्चिन्ततासे अपने व्यवहार चलाताहै १८ जैसे दुर्गपति (किलेका मालिक) लूटनेवाले शत्रुओंको सहज में जीतलेता है, तैसेही हम जिसका आश्रय करके, अन्य आश्रमवालोंके जीतनेमें न आनेवाले इन्द्रियरूप शत्रुओं को सहज में जीतलेते हैं ॥ १९ ॥ हे घरकी स्वामिनि ! हम और हमारी समान अन्य जो गुणग्राही पुरुष हैं वह, अनेक उपकार करनेवाली तुझसी अपनी भार्याओं के उपकारका प्रत्युपकार (बदला) करनेको, अपनी पूरी आयु करकेभी समर्थ नहीं होसक्ते ॥ २० ॥ तथापि सन्तान प्राप्त होनेके निमित्त इस तेरे मनोरथ को पूर्ण करताहूँ, परन्तु लोक मेरी निंदा न करें, अतः दो घड़ी पर्यन्त धीरज धर ॥ २१ ॥ यह समय राक्षस आदि भयङ्कर प्राणियों के फिरने का है और देखने में तथा स्वभाव में भी भयङ्करहै, क्योंकि–इससमय महादेवजी के अनुचर भूत, जिधर तिधर विचररहे हैं ॥ २२ ॥ हेपतिव्रते ! इस सन्ध्याकालके समय प्राणीमात्र का परिपालन करनेवाले भूतपति भगवान् महादेवजी, भूत प्रेत आदि गणों को अपने साथ लेकर वृषभ पर बैठकर विचररहेहैं ॥ २३ ॥ श्मशानकी वायुकी गांठसे उड़ाए

श्यति देवरस्ते ॥ २४ ॥ न यस्य लोके स्वजनः परो वा नात्याद‍ृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ॥ वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥२५॥ यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ॥ निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥ २६ ॥ हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः स्वात्मन्रतस्याविदुषः समीहितम् ॥ यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥ २७॥ ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया ॥ आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेन्द्रिया ॥ जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥२९॥ स विदित्वाऽथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि ॥ नत्वा दिष्टाय रहसि तयाऽथोपविवेश ह ॥ ३० ॥

हुए धूलिसे अटाहुआ और बिखराहुआ जिनका जटाजूट देदीप्यमान होरहा है और भस्म मलाहुआ,निर्मल तथा सुवर्णकी समान जिनका शरीरहै ऐसे तेरे देवर जो महादेव वह,चन्द्र, सूर्य और अग्नि इन अपने तीन नेत्रोंसे जगत्‌मेंके सकल पदार्थोंको देखरहे हैं२४इसजगत्‌में जिनको कोई अपना वा पराया नहींहै तथा जिनका कोई परममान्य वा निन्दापात्र भी नहींहै, तथापि जिन्होने भोगकर निर्माल्यकी समान अपने चरणसे दूर फैंकीहुई मायाकी रचीहुई सम्पत्तियोंकी हम,अनेकों व्रतोंकरके महादेवजीकी आराधना कर आशाकरते हैं यह कैसे आश्चर्यकी बात है ॥२५॥ अपने ऊपरके मायाके आवरण (परदे)को दूरकरनेकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् पुरुष, जिनके निर्दोष चरित्रोंका वर्णन करते हैं, जिनकी समान वा जिनसे अधिक कोई दूसरा नहीं है और साधुरूपोंकी गतिरूप होकरभी जिन महादेवजीने पिशाचोंके आचरणकी समान वर्त्ताव किया है ॥ २६ ॥ जिन्होंने वस्त्र, पुष्प, आभूषण और केशोंको सँभालने आदिके द्वारा, श्वानोंके भक्षण करनेयोग्य अपने शरीरको आत्मा मानकर लालन किया है वही अभागे अज्ञानीपुरुष, आत्मस्वरूपमें मग्न रहनेवाले शिवजीके लोकशिक्षारूप आचरणका हास्य करते हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मादि देवताभी जिनकी रचीहुई धर्ममर्यादा का पालन करते हैं, इस सकल विश्वको जिन्होंने उत्पन्न कियाहै, और सृष्टिको रचनेवाली मायाभी जिनकी आज्ञा के अनुसार कार्य करती हैं तिन महादेवजीने स्वयं पिशाचोंकी समान आचरण धारण करा है ! इससे निःसंदेह जगद्व्यापक भगवान् की लीला अचिन्त्य है ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी कहतेहैं कि–हेविदुरजी ! कश्यपजी के इसप्रकार कहनेपर भी कामदेवसे व्याकुलहुई तिस दितिने, वेश्याकी समान निर्लज्ज होकर उन ब्रह्मर्षि का वस्त्र पकड़लिया ॥ २९ ॥ तदनन्तर उन कश्यपजी ने निषिद्ध कर्म करने में अपनी स्त्रीके उस आग्रहको जानकर कोई उपाय न चलनेके कारण दैवरूप ईश्वरको नमस्कार करके तदनन्तर एकान्त में उसके साथ सङ्गम किया ॥३०॥तदनन्तर

अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ध्यायन् जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ ३१ दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत ॥ उपसङ्गम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥३२॥ दितिरुवाच ॥ न मे गर्भमिमं ब्रह्मन् भूतानामृषभोऽवधीत् ॥ रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसं ॥३३॥ नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ॥ शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ॥३४॥ स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः ॥ व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥ ३५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् ॥ निवृत्तसंध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥ ३६ ॥ कश्यप उवाच ॥ अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ॥ मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥ ३७ ॥ भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ ॥ लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रंदयिष्यतः ॥ ३८ ॥ प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसां ॥

तिन मुनिने स्नानकरके प्राणायाम कर मौनव्रत धारण किया और शुद्ध सत्वमूर्त्ति निर्मल तेज (सूर्य) का ध्यान करतेहुए सनातन ब्रह्मरूप गायत्रीमन्त्र का जप किया ॥३१॥ हेविदुरजी ! दिति तो, तिस निन्दितकर्मसे लज्जित हो कश्यप ऋषिके समीप जाकर नीचे को मुख करेहुए कहनेलगी ॥ ३२ दितिबोली—हेब्रह्मन् ! मैंने जिनका अपराध किया है वह भूतपति भगवान् रुद्र, मेरे इस गर्भका नाश नकरें ॥ ३३ ॥ जो अपराधियोंके प्रति अतिभयङ्कर, सकाम कर्म करनेवालों को तिन कर्मोंका फल देनेवाले, निष्काम कर्म करने वालों को मुक्ति देनेवाले, वास्तवमें दण्डका त्याग करनेवाले परन्तु दुष्टोंके विषय में दण्ड धारण करनेवाले और तिन दुष्टोंका नाश करनेके विषयमें क्रोधरूप धारण करनेवालेहैं तिन सकलदुःखनाशक महादेवजी को नमस्कार है ॥ ३४ ॥ वह पूर्ण दयालु,सतीके पति मेरी भगिनीके स्वामी भगवान् महादेवजी,सर्वथा निर्दयी व्याधकोभी जिनके ऊपर दया आजाय ऐसी हम स्त्रियों के ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि—हेविदुरजी ! थर ३ कांपतीहुई और ' मेरी सन्तान का इस लोक और परलोक में कल्याण हो ' ऐसी इच्छा करनेवाली तिस अपनी स्त्री को देखकर, सन्ध्याकाल के समय करनेयोग्य कर्मोंसे निवट-कर वह कश्यप ऋषि, तिस स्त्री से कहनेलगे ॥ ३६ ॥ कश्यपजी ने कहा कि—अरी अभद्रे ! चण्डी तेरा अन्तःकरण अशुद्ध होने से, सन्ध्याकाल का अमङ्गल समय होने से, मेरी आज्ञा को न मानने से और रुद्र भगवान् के अनुचर देवोंका अपमान करने से तेरे अमङ्गलकारी दो अधम पुत्र होंगे और वह लोकपालों सहित त्रिलोकी को वारम्वार दुःख देंगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उनके द्वारा निरपराधी दीन प्राणियों का वध होने पर, स्त्रियों के ऊपर बलात्कार होने पर और अपराधके कारण भगवद्भक्तों के क्रोधित होनेपर, उससमय

स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥ ३९ ॥ तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भ-
गवाँल्लोकभावनः ॥ हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाद्रीञ्छतपर्वधृक् ॥ ४० ॥ दि-
तिरुवाच ॥ वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना ॥ आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा-
क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥ ४१ ॥ न ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च ॥ नार-
काश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ॥४२॥ कश्यप उवाच । कृतशोकानुता-
पेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ॥ भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥ ४३ ॥
पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ॥ गास्यन्ति यद्यशः शुद्धं भगवद्यश-
सा समम् ॥ ४४ ॥ योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यंति साधवः ॥ निर्वैरादिभिरा-
त्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥ ४५ ॥ यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकं।
स स्वदृग् भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥ ४६ ॥ स वै महाभागवतो म-
हात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः ॥ प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये निवेश्य वै-
कुंठमिमं विहास्यति ॥४७॥ अलंपटः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्य-

लोकों की रक्षा करनेवाले यह विश्वेश्वर भगवान् क्रुद्ध होतेहुए अवतार धारण करके,जैसे वज्रधारी इन्द्र पर्वतों का छेदन करता है तैसे तेरे पुत्रों का वध करेंगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ दिति बोली कि—हे प्रभो ! सुदर्शन चक्रके प्रभावसे जिनकी भुजा उदार (मुक्ति देनेवाली) हैं तिन साक्षात् विष्णु से मेरे पुत्रों का वध हो ऐसा मैं चाहती हूँ परन्तु किसी क्रोधितहुए ब्राह्मण से (शापके द्वारा) मेरे पुत्रोंका वध नहो॥४१॥ क्योंकि ब्राह्मणके शाप से भस्महुए और प्राणीमात्रको भय देनेवाले,इन दोनोंपर नरकके प्राणी भी दया नहीं करतेहैं और वह प्राणी, जिस २ किसी दूसरी योनिमें जातेहैं तहां२के प्राणीभी उनके ऊपर दयानहीं करते हैं ॥४२॥ कश्यपजी ने कहा, कि—हे प्रिये ! अपने करेहुए अपराधके निमित्त दुःख और पश्चात्ताप मानने से, तत्काल योग्य अयोग्य बातका विचारकरने से विष्णुभगवान् के विषैं परम मान्य करने से तथा शिवजी और मैं इन दोनोके विषैं आदरभाव करने से ॥ ४३ ॥ तेरे पुत्रके चार पुत्रोंमेंसे एक पुत्र साधुओंका माननीय होगा, जिसकी पवित्र कीर्ति को पुरुष भगवान् के यश के साथ गावेंगे ॥ ४४ ॥ जैसे हीनवर्ण (खोटे) सोने को दाह (तपाने) आदि उपायों से शुद्ध करते हैं तैसेही साधुपुरुष तिस तेरे पौत्र (पोते प्रह्लाद) का स्वभाव प्राप्त करने के निमित्त, निर्वैरभाव और समदर्शीपने आदि उपायों से अपने अन्तःकरण को शुद्ध करेंगे ॥ ४५ ॥ यह भगवत्स्वरूप जगत्, जिन के अनुग्रह से आनन्द पाता है वह सर्वसाक्षी भगवान्,जिसकी (प्रह्लादजी की) 'भगवान्ही सत्य हैं'इस समदृष्टिसे प्रसन्न होंगे ॥ ४६ ॥ परमभगवद्भक्त, उदारचित्त, महाप्रतापी और बड़ों के भी बड़े वह प्रह्लादजी अतिबढ़ीहुई भक्ति से शुद्ध करेहुए अन्तःकरण में श्रीविष्णु भगवान् को स्थापन करके देह आदि के विषैं के अभिमान को त्यागदेंगे ॥ ४७ ॥ विषयों में लवलीन न होनेवाले

थितो दुःखितेषु ॥ अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता नैदाधिकं तापमिवोडुराजः ॥४८॥ अंतर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छाऽनुगृहीतरूपम् ॥ पौत्रस्तव श्रीललनाललामं द्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमंडिताननं ॥ ४९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशं ॥ पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वासीन्महामनाः ॥ ५० ॥ इतिश्री भा० महापुराणे तृतीयस्कन्धे दितिकश्यपसम्वादे चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः ॥ दधार वर्षाणि शतं शंकमाना सुरार्दनात् ॥ १ ॥ लोके तेन हतालोके लोकपाला हतौजसः ॥ न्यवेदयन्विश्वसृजे ध्वांतव्यतिकरं दिशाम् ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् ॥ न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥ ३ ॥ देवदेव जगद्धातर्लोकनाथशिखामणे ॥ परेषामपरेषां त्वं भूतानामसि भाववित् ॥ ४ ॥ नमो विज्ञानवीर्याय माययेदमुपेयुषे ॥ गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयो-

सुन्दर स्वभाववाले, गुणों के निधि (खजाने), दूसरों के ऐश्वर्य को देखकर प्रसन्न होनेवाले, दूसरों के दुःखित होनेपर दुःख माननेवाले और वैरभावशून्य वह प्रह्लादजी, जैसे चन्द्रमा ग्रीष्म ऋतु के ताप का नाश करता है तैसे, जगत् के शोक का नाश करनेवाले होंगे ४८ हे प्रिये ! इस जगत् में भीतर और बाहर व्याप्त होकर रहनेवाले, निर्दोष, भक्तों की इच्छा के अनुसाररूप धारण करनेवाले, लक्ष्मीरूप ललना के परमभूषण और दमकतेहुए कुण्डलों से जिनका मुख शोभायमानहै तिन कमलनयन भगवान् का,तेरा पोता प्रल्हाद प्रत्यक्ष दर्शन करेगा ॥ ४९ ॥ मैत्रेयजी ने कहाकि–हे विदुरजी ! 'मेरा पोता भगवद्भक्त होगा' ऐसा सुनकर दिति ने परम आनन्द माना, और मेरे पुत्रोंका वध भगवान् के हाथों से होगा, ऐसा जानकर, उनकी सद्गति होगी, इस अभिप्राय से उसके मन को सन्तोप हुआ ॥ ५० ॥इति तृतीय स्कन्धमें चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–हे विदुरजी !, मेरे पुत्रों से देवताओं को पीड़ा प्राप्त होगी, ऐसी शङ्कित हुई तिस दिति ने, औरों के तेजका नाश करनेवाले तिन कश्यपजी के वीर्य को सौ-वर्षपर्यंत गर्भ में धारण किया ॥ १ ॥ तिस तेज से लोकों में चन्द्रमा-सूर्यपर्यन्त का प्रकाश क्षीण होनेपर, हतवीर्य हुए इन्द्रादि लोकपालों ने, अन्धकार से हुई दिशाओंकी अस्तव्यस्तता (गड़बड़ अर्थात् कौन दिशा किधर है इस के ज्ञान का अभाव) ब्रह्माजी से निवेदन करी ॥ २ ॥ देवताओं ने कहा कि–हे विधातः ! जिस आपके ज्ञान को काल नहीं छूसक्ता है ऐसे आप भगवान् को विदित न हो ऐसी कोई भी बात नहीं है अतः हम जिस से अत्यन्त भयभीत हुए हैं वह अन्धकार कहां से आया है सो आप जानते ही हैं ॥ ३ ॥ हे देवदेव ! हे जगत्पालक ! हे लोकपालमुकुटमणे ! तुम सब ही छोटे बड़े प्राणियों के अभिप्राय को जानते ही हो ॥ ४ ॥ हे देव ! अनेकों प्रकार

नये ॥ ५ ॥ येत्वानन्येन भावेन भावयन्त्यात्मभावनं ॥ आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्मकं ॥ ६ ॥ तेषां सुपक्वयोगानां जितश्वासेन्द्रियात्मनां ॥ लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः ॥७॥ यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावस्तन्त्येव यन्त्रिताः ॥ हरन्ति बलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः ॥ ८ ॥ स त्वं विधत्स्व शं भूमन् तमसा लुप्तकर्मणाम् ॥ अदभ्रदयया दृष्ट्या आपन्नानर्हसीक्षितुम् ॥ ९ ॥ एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम् ॥ दिशस्तिमिरयन्सर्वा वर्धतेऽग्नि रि वैधसि ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स प्रहस्य महावाहो भगवान् शब्दगोचरः ॥ प्रत्याचष्टात्मभूर्देवान्प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मानसा मे सुतायुष्मत्पूर्वजाः सनकादयः ॥ चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः ॥ १२ ॥ ते एकदा भगवतो वैकुंठस्यामलात्मनः ॥ ययु-

के ज्ञानरूप बलसे युक्त आप को नमस्कार है, माया के द्वारा रजोगुण को धारण करनेवाले और इस ब्रह्माजी के अवतार को धारण करनेवाले तथा सकल प्रपञ्च के कारण आप को नमस्कार है ॥ ५ ॥ अपने में सकल भुवनों को पूर रखनेवाले, कार्य-कारणस्वरूप होकर भी वास्तव में उन से पृथक् और सकल जीवों को उत्पन्न करनेवाले ऐसे आप का जो अनन्यभक्ति से ध्यान करते हैं तिन-प्राण, इन्द्रिय और मनको जीतनेवाले, योगसाधना जिनकी पकगई है तथा आपकी प्रसन्नता जिन्होंने पाई है ऐसे पुरुषोंका कहीं भी तिरस्कार नहीं होताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥ सकल प्रजा, जिन आपकी वेदवाणीरूप डोरीसे बँधीहुई होकर, नासिकामें नाथ डालेहुए वृषभ जैसे अन्नका बोझा पहुँचाते हैं तैसे, अपने अधिकार के अनुसार कर्म करके आपको और हमें बलि समर्पण करैहैं ऐसे जगत् के नियन्ता आप को नमस्कारहै ॥ ८ ॥ हे परमेश्वर ! जिस के कारण दिन और रात्रिका विभाग नहीं जानाजाता है ऐसे अन्धकार से जिनके कर्म बन्द होगए हैं ऐसे हमारा आप कल्याण करिये, अब आप को हम शरणागतों के ऊपर पूर्ण कृपादृष्टि करना योग्य है ॥ ९ ॥ हे देव ! जैसे गीले काठ में स्थापन कराहुआ अग्नि, धूम उत्पन्न करताहुआ बढ़ने लगता है तैसेही, कश्यपऋषि ने दिति के उदर में स्थापन कराहुआ यह गर्भरूप तेज, सब दिशाओं को अन्धकार से भरताहुआ बढ़नेलगा है ॥ १० ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि-हेमहावीर ! विदुरजी ! देवताओं की प्रार्थना सुननेवाले वह ब्रह्माजी, दिति की कुचेष्टा पर ध्यान जाने से हँसकर देवताओं को सन्तुष्ट करतेहुए मधुर वाणीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी ने कहाकि-हे देवताओं ! तुम से प्रथम उत्पन्न हुए मेरे मानसिक पुत्र सनत्कुमार, सनक सनन्दन और सनातन. किसी सांसारिक सुख की इच्छा न करतेहुए, सत्यलोक से निकल कर अन्य सब लोकों में आकाशमार्ग से विचररहे थे ॥ १२ ॥ वह एकसमय फिरते २

वैकुंठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतं ॥ १३ ॥ वसंति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुंठमूर्तयः ॥
येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिं ॥ १४ ॥ यत्र चाद्यः पुमानास्ते भग-
वान् शब्दगोचरः ॥ सत्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन्वृषः ॥ १५ ॥
यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ॥ सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्ति-
मत् ॥ १६ ॥ वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र गायंति लोकशमलक्षपणानि
भर्तुः ॥ अंतर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपंतः
॥१७॥पारावतान्यभृतसारसचक्रवाकदात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः॥कोलाह-
लो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृंगाधिपे हरिकथामिव गायमाने॥१८॥मंदारकुंदकुरबोत्प-
लचंपकार्णपुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः ॥ गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन
तस्या यस्मिंस्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ॥१९॥ तत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृ-

निर्मलचित्त विष्णुभगवान् के सबलोकों के वन्दनीय वैकुण्ठलोक में पहुँचे ॥ १३ ॥ जिन्होंने पहिले निष्काम धर्म करके श्रीहरि का आराधन किया है वह सबही पुरुष, विष्णुभगवान् की समान मूर्ति धारण करके उसवैकुण्ठलोक में वास करते हैं ॥ १४ ॥ जिस वैकुण्ठलोक में वेदान्तमार्ग करके ही जानने में आनेवाले पुराणपुरुष धर्मरूप विष्णुभगवान, शुद्ध सतो-गुणी--मूर्ति धारण करके हम भक्तों को सुख देनेके निमित्त रहते हैं ॥ १५ ॥ जहाँ जैसे मूर्ति धारण करे मोक्ष ही हो ऐसा, सकल ऋतुओं में पुष्पादि सम्पत्तियों से युक्त, मनोरथपूर्ण करनेवाले वृक्षोंसे शोभायमान नैःश्रेयस-नामक वनहै॥ १६ ॥जिस वनमें,स्त्रियों-सहित विमानो में बैठकर विचरनेवाले विष्णुभक्त, जलमें जिनका मकरन्द (सुन्दर सुगन्ध) फैला है ऐसे फूले हुए वसन्त ऋतुके मोगरेके पुष्पों के,वायुसे आयेहुए सुगन्ध करके जिनकी बुद्धियों को विघ्न होरहाहै ऐसेभी वह विष्णुभक्त, तिससुगन्धको लानेवाले वायुका तिरस्कार करतेहुए,सकल लोकोंके पापनाशक भगवान्के चरित्र गातेहैं॥ १७॥जिस वनमें किसी श्रेष्ठ भ्रमरके,उच्चस्वर से हरिकथाकी समानगान करने लगने-पर,कबूतर,कोकिल,सारस,चकवा,चातक,हंस,तोता तीतर और मोरों का स्वाभाविक कल २ शब्दभी क्षणमात्र को रुकजाता है, इससे तहांके पक्षियों को भी हरि--कथा के सुनने का आनन्द मिलता है, यह दिखाया ॥ १८ ॥ जिस वनमें तुलसी की मालाओं से भूषित श्रीहरिके, तिस तुलसी की सुगन्ध की प्रशंसा करने पर, तिसही वन में रहनेवाले--मन्दार, कुन्द, तिलक उत्पल, (रात्रि में खिलनेवाला) कमल चम्पा, अर्ण, पुन्नाग, नागकेसर, मौलसिरी, अम्बुज (दिन को खिलनेवाला कमल)और पारिजात--नामक पुष्पों के वृक्ष, सुगन्धयुक्त होकर भी, हमारी अपेक्षा भगवान् को तुलसी प्रिय है इसकारण उसकी तपस्या बहुत है ऐसा मानते हैं, इससे ज्ञात होता है कि तहांके निवासी गुणग्राही हैं मत्सरतायुक्त नहीं है ॥ १९ ॥ जो वैकुण्ठ, केवल हरिचरणोंमें नम्र

वैदूर्यमरकतहेममयैर्विमानैः ॥ येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः कृष्णा-
त्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ॥ २० ॥ श्रीरूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं
लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ॥ संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्ज-
तीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥२१॥ वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु प्रेष्यान्विता
निजवने तुलसीभिरीशं॥अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्रमुच्छेषितं भगवते-
त्यमताङ्ग यच्छ्रीः ॥ २२ ॥ यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादाच्छृण्वन्ति येऽ-
न्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ॥ यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारास्तांस्तान्
क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ॥ २३ ॥ येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्र-
पन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र ॥ नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य सं-
मोहिता विततया बत मायया ते ॥ २४ ॥ यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृ-

---

रहनेवाले निष्काम भगवद्भक्तों को ही प्राप्त होनेवाले, वैदूर्य—मणियों से जड़ेहुए सुवर्णके विमानों से भराहुआ है, जिन विमानो में बैठेहुए कृष्णभक्तों के मनमें 'जिनकी विशाल कटि और मुखपर के हास्य से परम शोभा होरही है ऐसी' उत्तम स्त्रियें अपने हाव-भावों से काम उत्पन्न नहीं करसक्तीं ॥ २० ॥ जिस लक्ष्मी का अपने ऊपर अनुग्रह होने के निमित्त ब्रह्मादि देवता यत्न करते हैं वह मूर्त्तिमती लक्ष्मी भी, जिस वैकुण्ठ में, स्फटिककी भीतों (दीवारों) से युक्त और मध्य २ में शोभा लाने के निमित्त जिसमें सुवर्ण की पट्टी लगरही हैं ऐसे. श्रीहरिके मन्दिर में अपने चञ्चल—स्वभाव को त्यागकर नूपुरों से अपने चरणकमल को शब्दायमान करतीहुई, हाथ में क्रीडा के निमित्त धारण करेहुए कमलसे सन्मार्जन करतीहुई (बुहारी देतीहुई) सी प्रतीत होती है ॥ २१ ॥ हे देवताओं! जिस वैकुण्ठ में, दासियों को साथ लेकर अपने 'लक्ष्मीवन—नामक' बगीचे में तुलसीदलों के द्वारा श्रीहरि की पूजा करनेवाली लक्ष्मी ने, मूंगों से चारों ओर से जिनके तट बने हैं ऐसी स्वच्छ जलकी वापियों में, सुन्दर केश और सरलनासिकायुक्त अपने मुखको देखकर यह भगवान् का चुम्बन कियाहुआ होने के कारण परम शोभित है' ऐसा माना है ॥ २२ ॥ पापनाशक श्रीहरि की सृष्टि आदि लीलाओं की कथा को त्याग अन्य (अर्थ—काम आदि की) विषयों से युक्त होने के कारण बुद्धि को भ्रष्ट करनेवाली निन्दित कथाओं को जो पुरुष सुनते हैं वह तिस वैकुण्ठ—लोक में नहीं जाते हैं, जो निन्दनीय कथा—पुण्योंका नाश करनेवाली और हतभाग्य लोगों को श्रवण करनेपर आश्रय रहित घोर नरकमें डालतीहैं, यह कितने दुःखकी बात है ! ॥ २३ ॥ हे देवताओं ! जिस मनुष्यजन्म में धर्मज्ञान—सहित तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है, तिस, हमशरीरों के भी प्रार्थना करनेयोग्य—मनुष्यजन्म को प्राप्तहुए जो पुरुष, भगवान् का आराधन नहीं—करते हैं वास्तव में उनको सर्वत्र फैलीहुई भगवान् की माया से अत्यन्त मोहित हुआ जाने ॥ २४ ॥ और भगवान् की

स्या दूरे यमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ॥ भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुराग-
वैक्लव्यवाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥ २५ ॥ तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवन्द्यं
दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानशोचिः ॥ आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योगमाया-
बलेन मुनयस्तदथो विकुण्ठम् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः
कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ॥ देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्यकेयूरकुण्ड-
लकिरीटविटङ्कवेषौ ॥२७॥ मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ विन्यस्तयाऽसितच-
तुष्टयबाहुमध्ये ॥ वक्त्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग्र-
भसं दधानौ ॥ २८ ॥ द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्रक-
पाटिकायाः ॥ सर्वत्र ते ऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या विश्वं चरन्त्यविहता विग-
ताभिशङ्काः ॥२९॥ तान्वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्वृद्धान्दशार्धवयसो वि-

श्रवण-कीर्त्तन आदि भक्तिसे, देह आदि के विषैं अभिमान-रहित तथा श्रीहरि के उत्तम यशका परस्पर वर्णन होनेपर प्रेमसे जिनका कण्ठ गद्गद होजाता है और नेत्रोंमें से आनंद के आँसू वहने लगते हैं, शरीरपर रोमाञ्च होजाता है तथा जिनके दयालुता आदि-युक्त स्वाभाव की हमसे भी इच्छा करतेहैं ऐसे भगवद्भक्त, हमारे स्थानसे भी ऊपर जो वैकुण्ठ लोक तहां जाते हैं ॥ २५ ॥ विश्वगुरु भगवान् के रहने का स्थान, सकल भुवनोंमें मुख्य और वन्दनीय तथा बड़े २ देवताओं के विमानों से प्रकाशित तिस अपूर्व दिव्य वैकुण्ठ लोक को योगसाधना के प्रभाव से प्राप्त होनेके अनन्तर वह सनकादि ऋषि परम आनन्द को प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ तदनन्तर उन ऋषियों ने, तिस वैकुण्ठ-लोकमें भगवान्के दर्शन की उत्कण्ठा के कारण, मार्ग में चमत्कारों को देखने में कहीं भी आसक्त न होकर छः ड्यौढ़ियों को लांघकर आगे सातवीं ड्यौढ़ी-पर, समान अवस्थावाले,गदाधारी,बहुमूल्य बाहुभूषण, किरीट और कुण्डलों से जिनका वेष अतिसुन्दर है ऐसे दो देव (द्वारपाल) देखे ॥ २७ ॥ वह द्वारपाल श्यामवर्ण चारभुजाओं के मध्य में धारण करीहुई,मदोन्मत्त भ्रमरोंसे युक्त और कण्ठसे लेकर चरणोंपर्यन्त लटकतीहुई वनमालाओं से शोभित और तिरछी चढ़ीहुई भ्रुकुटियों से, फड़कतेहुए नासापुटोंसे और लाल २ नेत्रोंसे कुछ एक क्रोध युक्त प्रतीत होते थे ॥ २८ ॥ तिन सनक आदि ऋषियों ने, सुवर्ण की वनी, हीरेजड़ीं किवाड़ोंवाली छः ड्यौढ़ियों में जैसे पहिले प्रवेश कियाथा तैसेही सातवीं ड्यौढ़ीमें भी देखते हुए जय विजय द्वारपालोंसे न बूझकर भीतर प्रवेश किया, क्योंकि-वह मुनि सर्वत्र सम-दृष्टि के कारण बेरोकटोक निःशङ्क होकर विचरते थे ॥ २९ ॥ उससमय जिनका स्वभाव ब्राह्मणों के हितकारी भगवान् के प्रतिकूल है ऐसे तिन दोनों द्वारपालों ने, वृद्ध होकर भी पांच वर्षके कुमारों की समान दीखनेवाले,आत्मज्ञानी होनेके कारण निषेध करने के अयोग्य

दितात्मतत्त्वान् ॥ वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥ ३० ॥ ताभ्यां मिषत्स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा ह्यपि हरेः प्रतिहारपाभ्याम् ॥ ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभंग ईषत्कामानुजेन सहसा त उपप्लुताक्षाः॥ ३१॥ मुनय ऊचुः॥ को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः ॥ तस्मिन्प्रशांतपुरुषे गतविग्रहे वां को वात्मवत्कुहकयोः परिशङ्कनीयः॥ ३२॥ नह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षावात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ॥ पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं यतोऽस्य ॥ ३३॥ यद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ॥ लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे

तिन दिगम्बर चार सनकादि ऋषियों को देखकर 'अहो ! देखो वैकुण्ठ में भी इनका कैसा उद्धतपना है ' इसप्रकार उनका उपहास करके हाथमें धारण करेहुए बेतके द्वारा उनको भीतर जाने से रोकदिया ॥ ३० ॥ अन्य देवताओं के देखतेहुए श्रीहरिके द्वारपालों करके निषेध करेहुए अतिपूजनीय भी वह ऋषि, अतिप्रिय भगवान् के दर्शन की इच्छा का भङ्ग होनेके कारण कुछएक क्रोध करके एकायकी आरक्तनेत्र होकर कहनेलगे ॥ ३१ ॥ ऋषियों ने कहा कि—अरे द्वारपालो! उत्तमप्रकार से करीहुई भगवान्की आराधनाकरके इस वैकुण्ठलोक में आकर रहनेवाले समदृष्टि पुरुषों में तुम दोनों ही का यह कैसा विषम स्वभाव (किन्हीं को भीतर जानेदेना और किन्हीं को नहीं जानेदेना इसप्रकार का खोटास्वभाव) दीखता है. यहाँ भगवद्भक्तों के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं आता है और श्रीहरि अति शान्त पुरुष होनेके कारण और उनके स्वरूप में विरोधभाव न होने के कारण यहाँ किसी प्रकार की शङ्का ही नहीं है; ऐसा होतेहुए यहाँ तुमको ही ऐसी शङ्का होती है कि—'हम जैसे कपटीहैं तैसा कोई दूसराभी भीतर चलाजायगा' इससे प्रतीत होताहै कि—यहां केवल तुम ही लोकवञ्चकहो ? ३२ क्योंकि—जैसे घटाकाश महाकाशमें अन्तर्भूत होताहै तैसे ही ज्ञानी पुरुष इस वैकुण्ठमें सकल विश्वको अपने उदरमें धारणकरनेवाले भगवान्से अपना कुछ अंतर नहीं देखतेहैं किन्तु 'हमारा स्वरूप परमात्मासे भिन्न नहींहै' ऐसा मानते हैं, ऐसा होनेपर, देवताओं का वेषधारण करनेवाले तुमकोभी, इन परमेश्वरके विषैं,जैसे किसी राजाके विषय में उन के सेवकों को ' महाराज के पेट में कहीं कोई छुरा आदि तो न मारदेय ?, ऐसाभय होता है. तैसाही भय हुआ है ॥ ३३ ॥ तिस से इन वैकुण्ठपति परमात्मा के सेवक होकरभी मन्दबुद्धि रहनेवाले तुम्हारे कल्याण के निमित्त, इस अपराध के योग्य दण्ड का हम विचार करतेहैं;तुमने मन में भेदभाव माना अतः जिन लोकों में मन में भेदभाव रखनेवाले पापी मनुष्य को, काम क्रोध और लोभ यह तीन शत्रु प्राप्त होते हैं, उनही लोकों में इस वैकुण्ठ से निकल

रिपवोऽस्य यत्र ॥ ३४ ॥ तेषामितीरितमुभाववधार्य घोरं तं ब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः ॥ सद्यो हरेरनुचरावुरु बिभ्यतस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ३५॥ भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ॥ मा वोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोऽधः ॥ ॥३६॥ एवं तदैव भगवानरविन्दनाभः स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः॥ तस्मिन्ययौ परमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन् सहश्रीः ॥३७॥ तं त्वागतं प्रतिहृतौपयिकं स्वपुंभिस्तेऽचक्षताक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यं। हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरशीकराम्बुम्। ३८।कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशंतम् ॥ श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिं सुभगयंतमिवात्मधिष्ण्यम् ॥३९॥ पीतांशुके पृथुनितंबिनि विस्फु-

---

कर चले जाओ ॥ ३४ ॥ इसप्रकार तिन सनकादि ऋषियों के कथन को सुनकर और सकल शस्त्रों सेभी जिसका निवारण न होसके ऐसा भयङ्कर उस ब्रह्मशाप को जानकर, तिन ऋषियों से, परमभय पानेवाले वह श्रीहरि के दोनो द्वारपाल, तत्काल अतिभय के कारण उन ऋषियों के चरण पकड़कर उन के सामने लम्बे लम्बे लेटगए ॥ ३५ ॥ द्वारपालों ने कहा कि–हे श्रेष्ठ मुनियों ! आपने हम अपराधियों को जो दण्ड करा वह होय क्योंकि–वह प्रभुकी आज्ञा का भङ्ग करनेके कारण हमसे यहां बनेहुए सकल ही पापोंका नाश करेगा, परन्तु आपको ' हमने इनको वृथा शाप दिया इसप्रकार का ' जो कृपा-सूचक पश्चात्ताप हुआहै उसके लेशकरके,यहांसे निकलकर मूढ़योनियोंमें जानेवालेभी हमको भगवान् के स्मरणका नाश करनेवाला मोह न प्राप्त होय ॥ ३६॥ हे देवताओं ! इसप्रकार मेरे द्वारपालों ने साधुओंका अपराध किया है ऐसा जानकर उसही समय सज्जनों के प्रिय कमलनाभ भगवान् ने, परमहंस बड़े २ ऋषि भी जिन की खोज करतेहैं ऐसे अपनेचरणों की गति करके ही, जहां वह रोकेगए थे तहां लक्ष्मी सहित पहुँचे ॥ ३७ ॥ उस समय सनक–आदि ऋषियों ने, समाधिके द्वारा ध्यान करनेयोग्य तिन प्रत्यक्ष आयेहुए परब्रह्म रूप श्रीहरि का दर्शन किया,जिन श्रीहरि को उनके सेवकों ने गमनके उपयोगी पादुका छत्र आदि सामग्री लाकर दी हैं, दोनो ओर हंसपक्षियोंकी समान शोभित व्यजनों(पङ्खों) की सुखकारी वायुसे चलविचल होनेवाले–श्वेतछत्ररूप चन्द्रमाकी, किरणोंकी समान शोभायमान मोतियों की लरियों की झालरों में से जिनके शरीर–पर जलकी बिन्दुएं टपक रही हैं ॥ ३८॥ द्वारपाल और सनकादि–ऋषियों के ऊपर अनुग्रह करनेको उत्कण्ठित इच्छा करने योग्य गुणों के स्थान कृपादृष्टि के कटाक्षों से भक्तों के हृदय में आनन्द उत्पन्न करनेवाले, श्यामवर्ण और विशाल वक्षःस्थलपर शोभायमान लक्ष्मी करके सकल लो-कों के चूड़ामणिरूप अपने वैकुण्ठलोक को मानो शोभा देनेवाले ॥ ३९ ॥ विशाल कटिभाग

रत्या कांच्याऽलिभिर्विरुतया वनमालया च ॥ वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥ ४० ॥ विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्ह-गण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम् ॥ दोर्दण्डषंडविवरे हरता परार्ध्यहारेण कं-धरगतेन च कौस्तुभेन ॥ ४१ ॥ अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिंदिरायाः स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यं ॥ मह्यं भवस्य भवतां च भजंतमंगं नेमुर्निरीक्ष्य न वितृप्तदृशो मुदा कैः ॥ ४२ ॥ तस्यारविंदनयनस्य पदारविं-दकिंजल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ॥ अंतर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां सं-क्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥ ४३ ॥ ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोशमु-द्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुंदहासं ॥ लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमंघ्रिद्वंद्वं नखारु-णमणिश्रयणं निदध्युः ॥ ४४ ॥ पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गैर्ध्यानास्पदं

में धारण करेहुए पीताम्बर–पर झलकतीहुई मेखला और भ्रमरों की झङ्कार से गुञ्जारतीहुई वनमाला से युक्त, जिनके हाथों के पहुँचों में सुन्दर२ कड़े और तोड़े हैं ऐसे, अपना एक हाथ गरुड़जी के कन्धे पर रखकर दूसरेहाथ से लीला के निमित्त लियेहुए कमल को घर २ फिरा ने वाले ॥ ४० ॥ अपनी कान्ति से बिजली की दमक कोभी परास्तकरनेवाले मकराकृति कुण्डलों से शोभित करनेयोग्य कपोल और ऊँची नासिकासे जिनका मुख शोभितहै, जिनके मस्तक–पर रत्नजटित किरीटहै चारों भुजाओं में शोभायमान मूल्यवान् मुक्तामाल और कण्ठ में धारण करीहुई कौस्तुभमणिसे जो शोभायमानहैं ॥४१॥ अधिक क्या कहाजाय, ' मैं ही सकल सुन्दरताओं की निधि हूँ, इसप्रकार का लक्ष्मीका गर्व इन भगवान्की सुन्द-रता में अस्त होरहा है, ऐसी, भक्तों ने अपने मनमें तर्कना करके निश्चय कियाथा, और हेदेवताओं ! मेरे निमित्त रुद्रके निमित्त और तुम्हारे निमित्त मूर्त्ति धारण करनेवाले तिन विष्णुभगवान् का दर्शन करके, जिनके नेत्रों को तृप्ति नहीं हुई है ऐसे, तिन सनकादि ऋषियोंने आनन्दमें निमग्न होकर मस्तक नवा साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥४२॥ उससमय तिन कमलनयन भगवान् के चरणकमलों के केसरों से मिलेहुए तुलसी के मकरन्दों से युक्त वायुने, नासिका करके अन्तःकरण में प्रवेशकरने से, ब्रह्मानन्द का सेवन करने वाले भी तिनऋषियों के चित्तमें हर्ष और देहमें रोमाञ्च उत्पन्नकरा ४३ तदनन्तर अतिसुन्दर आरक्तवर्ण अधरोष्ठ में कुन्दकली की समान दांतों का प्रकाश जिस में है ऐसे नीलकमल के मध्यभाग की समान भगवान्के मुखका दर्शनकरके तिनऋषियोंने; पूर्ण–मनोरथ होतेहुए उनके नखरूप मणियों के आश्रयभूत चरणकमलों का दर्शन किया, उससमय उनकी फिर ऊपरको मुखकी ओर और फिर नीचेको चरणोंकी ओरको देखनेकी वारम्वारइच्छा होनेलगी परन्तु एकसाथ भगवान् के सकल स्वरूप को देखने की शक्ति न होनेके कारण वह भगवान् का ध्यान करनेलगे ॥४४॥ तदनन्तर इस जगत् में योगमार्ग से मोक्षकीखोज

बहुमतं नयनाभिरामम् ॥ पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः समगृणन्युतमष्टभोगैः ॥ ४५ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः ॥ यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्राऽनुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥ ४६ ॥ तं त्वां विदाम भगवन् परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन संप्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ॥ यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥ ४७ ॥ नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किं त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ॥ येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥ ४८ ॥ ॥ कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ॥ वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रि-

---

करनेवाले पुरुषों के ध्यान के विषय, अनेकों तत्त्वज्ञानियों के माननीय, नेत्रों को आनन्द देनेवाले और दूसरों को कदापि प्राप्त न होनेवाले तथा नित्य अणिमादि आठ विभूतियों से युक्त, पुरुषरूप दिखानेवाले तिन भगवान् की वह ऋषि स्तुति करनेलगे ॥ ४५ ॥ कुमार बोले कि—हे अनन्त ! जो तुम हृदय में विद्यमान होकर भी दुष्टचित्त पुरुषों को प्रतीत नहीं होते हो, तथापि हमारे अन्तःकरण में नित्य स्फुरित होते थे और आप का प्रत्यक्ष दर्शन तो आज ही हुआ है इस के सिवाय जिससमय आप से उत्पन्न हुए हमारे पिताजी ने (ब्रह्माजी ने) आप का रहस्य (तत्त्व) हमारे अर्थ वर्णन किया था तब ही हमारे कर्णों के द्वारा आपने हमारे अन्तःकरण में प्रवेश किया था ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! विषयों में विरक्त और अभिमानरहित ऋषि, आप की कृपा से प्राप्तहुए श्रवण आदि दृढ़ भक्तियोगों करके अपने अन्तःकरण में जिसको जानते हैं, केवल तिस आत्मतत्त्वरूप ही शुद्ध सतोगुणी मूर्त्ति करके तुम भक्तों को प्रतिक्षण आनन्दित करनेवाले हो ऐसा हम जानते हैं ॥ ४७ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे चरणों का आश्रय करके रहनेवाले, वर्णन करनेयोग्य और पवित्र जिन का यश है ऐसे, तुम्हारी कथा का रस जाननेवाले जो प्रवीण पुरुष हैं वह मोक्षरूप आप के प्रसाद को भी कुछ नहीं गिनते हैं फिर तुम्हारी भृकुटि के चलाने मात्र से ही जिन में भय प्राप्त होता है ऐसे अन्य इन्द्रपद आदि को क्या चाहेंगे ? ॥ ४८ ॥ हे भगवन् ! आजपर्यंत हमारे हाथों से कोई पाप ही नहीं बना, आज तो तुम्हारे भक्तों को हम ने शाप दिया इससे हम से सकल पापों का एक पाप बनगया अतः तिन अपने पापों से हमारा नरक में यथेष्ट जन्म हो परन्तु यदि हमारा चित्त, जैसे भ्रमर काँटों से बिंधनेपर भी पुष्पों में ही रमण करता है तैसे विघ्नों को कुछ न गिनकर तुम्हारे चरणों में ही रमे और हमारी वाणी, जैसे तुलसी गुणों की अपेक्षा न करके केवल आप के चरणों के सम्बन्ध से ही शोभा पाती है तैसे तुम्हारे चरणों करके ही यदि शोभा पावे तथा हमारे कर्णों के छिद्र, तुम्हारी गुणवाली

शोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥ ४९ ॥ प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूतरूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ॥ तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः ॥ ५० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तद्गृणतां तेषां मुनीनां, योगधर्मिणां ॥ प्रतिनंद्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च ॥ कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रातामतिक्रमं ॥ २ ॥ यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः ॥ स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥ ३ ॥ तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्मदैवं परं हि मे ॥ तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुंभिरसत्कृताः ॥ ४ ॥ यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि ॥ सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हन्ति त्वचमिवामयः ॥ ॥ ५ ॥ यस्यामृतामलयशःश्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ॥ सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृ-

कथासे पूर्ण हों तो यहही हम को बहुत है ॥ ४९ ॥ हे विपुलकीर्त्ति परमेश्वर ! तुम ने जो यह रूप हमारे सामने प्रकट किया है तिस से हमारे नेत्रों को परम-सुख हुआ, और जो तुम विषयासक्त पुरुषों को दृष्टिगोचर होने को अशक्य होकर भी हमारे दृष्टिगोचर हुए, तिन आप को हमारा नमस्कार है, ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् को साष्टाङ्ग नमस्कार किया ॥ ५० ॥ इति तृतीय स्कन्ध में पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ ब्रह्माजी ने कहा कि–हे देवताओं ! योगसाधना करनेवाले तिन ऋषियों के इसप्रकार कहने पर उनके भाषण को अङ्गीकार करके वैकुण्ठवासी भगवान् इसप्रकार कहनेलगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–हे ऋषियों ! सो यह जय और विजय मेरे पार्षद हैं, जिन्होंने मुझे कुछ न गिनकर तुम्हारा बड़ा अपराध करा है ॥ २ ॥ हे ऋषियों ! तुमतो मेरे भक्त होने के कारण मेरे स्वरूप ही हो अतः तुम्हारा अपमान हुआ सो मेरा ही हुआ, इसकारण मेरे अभिप्राय के अनुसार तुमने इनको जो दण्ड दिया वहही मुझे मान्य है ॥ ३ ॥ क्योंकि–ब्राह्मण ही मेरे परम दैवत हैं, जो मेरे सेवकों ने तुम्हारा अनादर किया वह मेरा ही किया ऐसा मैं समझता हूँ और उसके निमित्त मैं आपसे क्षमा प्रार्थना करता हूँ ॥ ४ ॥ क्योंकि सेवकों के अपराध करने–पर, लोक उसके स्वामीका ही नाम लेते हैं; वह लोकोंके निंदा-वचन, जैसे स्वेत कोढ़ त्वचा का नाश करता है तैसे, तिस स्वामी की कीर्त्ति को दूषित करते हैं ॥ ५ ॥ जिस मेरे निर्मल अमृतरूप यशको श्रवण करने में मनके लगनेपर वह श्रवण करनेवाला चाण्डाल हो तबभी सकल जगत् को तत्काल पवित्र करता है, वह वैकुण्ठवासी मैं तुम्हारे द्वारा ही अतिउत्तम पवित्र कीर्त्तिको प्राप्त हुआ हूँ अतः तुम्हारे प्रतिकूल वर्त्ताव करनेवाली अपनी भुजाको भी मैं काटडालूं फिर औरों की तो कथा ही कौन ?

त्तिम् ॥ ६ ॥ यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलं ॥
न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान्वहंति ॥
॥ ७ ॥ नाहं तथाऽद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मु-
खेन ॥ यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥
॥ ८ ॥ येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोगमायाविभूतिरमलांघ्रिरजः किरीटैः ॥
विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणांभः सद्यः पुनाति सहचन्द्रललामलोकान् ॥
॥ ९ ॥ ये मे तनूर्द्विजवरान् दुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ॥
द्रक्ष्यंत्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान् गृध्रा रुषा मम कुषंत्यधिदण्डनेतुः ॥ १० ॥
ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयंतस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ॥
वाण्याऽनुरागकलयात्मजवद्गृणंतः संबोधयंत्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥ ११ ॥ तन्मे

॥ ६ ॥ जिस ब्राह्मण की सेवा करके चरणकमल में पवित्ररेणु धारण करनेवाला, तत्काल सकल लोकों के पाप दूर करनेवाला और सुन्दर स्वभाववाला जो मैं तिसको, 'जिसकी कृपादृष्टिके लेशके निमित्त ब्रह्मादि देवताभी व्रत आदि धारण करते हैं, वह' लक्ष्मी भी नहीं त्यागती है ॥ ७ ॥ मेरे दो मुखहैं, एक अग्नि और दूसरा ब्राह्मण, तिनमें ब्राह्मण ही मेरा मुख्य मुखहै क्योंकि-मेरे विषैं अपने सकल कर्म्मो को समर्पण करके सन्तुष्टहुए और टपकते हुए घृतसे व्याप्त अन्न आदि के प्रत्येक ग्रासको रसके स्वादके साथ भक्षण करनेवाले ब्राह्मणों के मुखसे मैं जैसा प्रसन्न होता हूँ तैसा, यज्ञमें यजमानके अर्पण करेहुए घृत आदि होमद्रव्यों को भक्षण करताहुआ भी मैं सन्तुष्ट नहीं होता हूँ ॥ ८ ॥ और जिस मेरी अखण्ड और अप्रतिहत योगमायासम्बन्धी अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य सम्पत्तियें हैं और जिसका चरणोदक महादेवजी सहित सकल लोकों को तत्काल पवित्र करता है, ऐसा मैं अपने किरीटोंसे जिनकी पवित्र चरणधूलि को धारण करता हूँ तिन ब्राह्मणों के कर्मको कौन नहीं सहेगा ? अर्थात् सबको ही सहना चाहिये ॥ ९ ॥ और, पातकों से जिनकी विवेकदृष्टि नष्ट होगई है ऐसे जो पुरुष, मेरे शरीररूप श्रेष्ठ ब्राह्मण-दूध देनेवाली गौएं और अनाथ प्राणियों को मुझसे भेददृष्टि करके देखते हैं उनको, मेरे अधिकार दिये हुए यमराजके गृध्रके आकारवाले दूत सर्प की समान क्रुद्ध होकर अपनी चोंचोंसे नोंचते हैं ॥ १० ॥ तैसेही जो पुरुष कठोर भाषण करनेवाले भी ब्राह्मणों की प्रसन्न अन्तःकरण से वासुदेवबुद्धि करके हास्यरूप अमृत से सींचेहुए कमल की समान प्रफुल्लित मुखसेयुक्त होतेहुए प्रेमपूर्वक मधुर वाणीसे स्तुति करते हैं और पिता जैसे अपनी सन्तानोंको ढाढस देता है तैसे ढाढस देते हैं और मैंने जैसे पहिले भृगु ऋषि को बुलायाथा तैसे भक्तिपूर्वक बुलाते हैं, उन्होंने मुझे वशमें करलिया ऐसा समझो ॥ ११ ॥ जिससे इन द्वारपालों ने

स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ॥ भूयो ममां-
तिकमितां तदनुग्रहो मे यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥ १२ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम् ॥ नास्वाद्य मन्युदष्टा-
नां तेषामात्माऽप्यतृप्यत ॥ १३ ॥ सतीं व्यादाय शृण्वन्तो लघ्वीं गुर्वर्थगह्वराम् ।
विगाह्यागाधगंभीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥ ते योगमाययारब्धपार-
मेष्ठ्यमहोदयम् ॥ प्रोचुः प्रांजलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः ॥ १५ ॥ ऋ-
षय ऊचुः ॥ न वयं भगवन्विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् ॥ कृतो मेऽनुग्रहश्चे-
ति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥ १६ ॥ ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्र-
भो ॥ विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥ १७ ॥ त्वत्तः सनातनो
धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव ॥ धर्मस्य परमो गुह्यो निर्विकल्पो भवान्मतः ॥ १८ ॥

अपने स्वामी का (मेरा) ब्राह्मणों के विषय में ऐसा निश्चय न जानकर तुम्हारा तिरस्कार कराहै अतः यह अपराध के योग्य अधमगति को शीघ्रही प्राप्तहों और फिर मेरे समीप आवें, मेरे सेवकोंका शापवश प्रवास शीघ्रही सम्पूर्ण हो, ऐसा होनेपर तुम्हारा मेरे ऊपर बड़ाभारी अनुग्रह होगा ॥ १२ ॥ब्रह्माजीने कहा कि—हे देवताओं ! इसप्रकार तिन भगवान्की, ऋषिकुलके योग्य और सुन्दर, दिव्यवाणी के रसका स्वाद ग्रहण करके, क्रोध से व्याप्तहुए तिन सनकादि ऋषियों के मनकी तृप्ति नहीं हुई ॥ १३ ॥ गौरवके सूचक, थोड़े अक्षरों से युक्त, अर्थ की ओर ध्यान देनेपर बड़े विकट, अभिप्राय गठन और अर्थमें गम्भीर तिस भगवान् की वाणी को सनकादि ऋषियोंने कान देकर सुना और उसका विचार किया परन्तु,'क्या यह हमारी प्रशंसा करते हैं?वा निन्दा करते हैं? अथवा हमारे कियेहुए दण्डका सङ्कोच करतेहैं ?' इसविषय में भगवान्का अभिप्राय उनकी समझमें नहीं आया १४ तदनन्तर कुछ समय में 'हमारी प्रशंसा करते हैं' ऐसा जानकर हर्षयुक्त और जिन के शरीरपर रोमाञ्च खड़े होगए हैं ऐसे वह ऋषि, हाथ जोड़कर, योगमाया के द्वारा अपने परम ऐश्वर्यका उत्कर्ष प्रकट करनेवाले तिन भगवान् से बोले ॥ १५ ॥ ऋषियों ने कहाकि—हे देव ! हे भगवन् ! तुम, सर्वेश्वर होकरभी 'तुम ने हमारे ऊपर अनुग्रह किया' ऐसा जो कहते हो, तिस में आपका क्या अभिप्राय है सो हम नहीं समझे ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! मैं ब्राह्मणों का हितकारी हूँ, मेरे परम दैवत ब्राह्मणही हैं, ऐसा जो तुम प्रकट करतेहो सो लोकशिक्षा के निमित्त है, इसमे कुछ सन्देह नहीं है. वास्तविक दृष्टि से देखनेपर तो हेभगवन् आप देवताओंके भी पूज्य तथा ब्राह्मणोंके आत्मा और आराध्य देवता हो ॥ १७ ॥ क्योंकि—वेद में वर्णन कराहुआ जो अनादि धर्म सो आप सेही उत्पन्न हुआ है. तुम्हारेही अवतारों से उसकी रक्षा होती है और तिस धर्म में गुप्त, मुख्य--फल--रूप निर्विकार तुमहीहो ऐसा वेदों ने माना है ॥ १८ ॥ क्योंकि-आप के अनुग्रह से योगीजन, संसारबन्धन, से

तरंति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात् ॥ योगिनः स भवान् किंस्विदनुगृह्येत यत्परैः ॥ १९ ॥ यं वै विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः ॥ धन्यार्पितांघ्रितुलसीनवदामधाम्नो लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥ २० ॥ यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसंगः ॥ स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजःपुनीतः श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वं ॥ २१॥ धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुग त्रिभिः स्वैः पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ॥ नूनं भृतं तदभिघाति रजस्तमश्च सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥ २२ ॥ न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदिहात्मगोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ॥ तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तव देव पंथा लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत्प्रमाणम् ॥ २३ ॥ तत्ते ऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सोः क्षेमं जनाय निज-

छूटकर अनायास मेंही मृत्यु को तरजाते हैं, तिन आप के ऊपर औरों का अनुग्रह करना यह कथन कैसे सम्भव होसक्ता है ? ॥ १९ ॥ ऐश्वर्य आदि की इच्छा करने वाले अन्य ब्राह्मणों ने जिन की चरणरज अपने मस्तकपर धारण करी है, वह लक्ष्मीभी, पुण्यात्मा पुरुषों करके तुह्मारे चरणों के विषैं समर्पण करीहुई नवीन तुलसीकी मालापर बैठनेवाले श्रेष्ठ भ्रमरों का स्थापन अपने को मिलने की इच्छा करकेही क्या निरन्तर तुह्मारी सेवा करतीहै ?॥ २० ॥परन्तु परम भगवद्भक्तों के विषैं ही असीम प्रेमभाव रखनेवाले जो तुम तिन तुह्मारे निर्दोष चरणों की सेवा करनेवाली तिस लक्ष्मी का भी बड़ाभारी सन्मान नहीं करते हो तिन, सकल ऐश्वर्यों के आश्रयस्थान परमशुद्ध तुम को, मार्ग २ में लगेहुए ब्राह्मणों के चरणरज और श्रीवत्सका चिन्ह यह दोनों पवित्र करते हैं क्या ? अर्थात् नहीं करते हैं तथापि तुम उन को भूषण समझकर स्वीकार करेहुए हो, सो यह सब तुह्मारा भाषण आदि निःसन्देह लोकशिक्षा के निमित्त ही है ॥ २१ ॥ हेभगवन् ! धर्मरूप धारण करनेवाले आपकी विशेष महिमासे युक्त, तप शौच और दया इन तीन चरणों से हमें इच्छित वर देनेवाली आपकी शुद्ध सतोगुणी मूर्त्तिकरके अर्थात् तिन २ अवतारों के द्वारा, धर्माचरण के नाशक जो तमोगुण और रजोगुण तिनको दबाकर ब्राह्मण और देवताओं के निमित्त ही इस चराचर विश्वकी रक्षा करी है ॥ २२ ॥ हे देव ! धर्मरूप तुम, यदि रक्षाकरनेयोग्य ब्राह्मणकुल की, प्रियभाषणयुक्त प्रतिष्ठा के द्वारा रक्षा न करोगे तो उसी समय तुम्हारा चलाया हुआ सबका कल्याण करनेवाला वेद में कहेहुए धर्मका मार्ग नष्ट होजायगा क्योंकि–श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण को ही और पुरुष प्रमाण समझकर ग्रहण करते हैं अर्थात् यदि तुम ब्राह्मणों की स्तुति और पूजन करना छोड़ दोगे तो उस ही मार्गको और लोक स्वीकार करेंगे ॥ २३ ॥ हे देव ! लोकों

शक्तिभिरुद्धृतारेः ॥ नैतावता अधिप नेवर्त्तं विश्वभर्तुस्तेजः क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोदः ॥ २४ ॥ यं वाऽनयोर्दममधीश भवान्विधत्ते वृत्तिं नु वा तदनुमन्महि निर्व्यलीकम् ॥ अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो येनासौ वयमगुंक्ष्महि किल्बिषेण ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः संरंभसम्भृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ॥ भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् ॥ वैकुंठं तदधिष्ठानं विकुंठं च स्वयंप्रभम् ॥ ॥ २७ ॥ भगवंतं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ॥ प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः संशन्तो वैष्णवीं श्रियम् ॥ २८ ॥ भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् ॥ ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हंतुं नेच्छे मतं हि मे ॥ २९ ॥ एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा।पुराऽपवारिता द्वारि विशन्तीमय्युपारते३० मयि संरंभयो

का कल्याण करनेकी इच्छा को धारण करनेवाले राजे आदिरूप अपनी शक्तिके प्रभाव से अधर्म का नाश करनेवाले और सतोगुण के निधिरूप आप को तिस वेदमार्ग का भ्रष्टहोना कदापि अभीष्ट नहीं है,इससे धर्मकी रक्षाकरने के निमित्त ही तुम ब्राह्मणों के विषैं नम्र हुए हो, तिस से त्रिगुण के नियन्ता विश्वपालक आपके तेजको हानि नहीं पहुँचती है, क्योंकि आपके नमस्कार करना आदि सकल कार्य विनोदमात्र (लोकशिक्षा) है ॥२४॥ अतः हे सर्वेश्वर ! तुम इन दोनों द्वारपालोंको जो मनमें आवे वह दण्ड करिये वा अधिक जीविका (ईमान) देदीजिये, इसमें हमारी सम्मति है अथवा हमने तुम्हारे निरपराधी द्वारपालों को शाप दिया है अतः हमको जो दण्ड देना उचित समझो सो भी दो२५ श्रीभगवान् बोले कि—हे ब्राह्मणो!तुमने जो इनको शाप दिया वह मैंने ही रच दिया था,ऐसासमझो,यह लोकपाल शीघ्रही दैत्ययोनिको प्राप्तहों,तहां मेरेऊपर क्रोधके आवेश करके बढ़ीहुई चित्तकी एकाग्रता से जिनकी योगसाधना दृढ़हुई है ऐसे होकर फिर शीघ्रही मेरे समीप (वैकुण्ठ में) आवें ॥ २६ ॥ब्रह्माजी बोले, इसके अनंतर वे सनकादि मुनिजन नयनोंको आनंददायक भगवान्के निवास वैकुंठको देखकर तथा स्वयंप्रकाश विकुण्ठ हरिके दर्शन करके ॥ २७॥ भगवान्को प्रणाम करके,प्रदक्षिणा करके और उनसे आज्ञा लेकर,प्रसन्नहो विष्णुभगवान्की श्रीशोभा को वर्णन करते हुए अपने मार्ग को चलेगए ॥ २८ ॥ इधर भगवान् अपने द्वारपालोंसे बोले कि,तुम भय मत करो, तुह्मारा कल्याणहो, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ भी मैं ब्राह्मणके तेज (शाप) को मेटने की इच्छा नहीं करता हूँ,क्योंकि यह मेरा माननीय है ॥ २९॥ जिस समय मैं योगनिद्राको प्राप्त हुवा और तुम दोनोंने द्वारमें प्रवेशकरती हुई रमा (लक्ष्मी) को रोका, तब क्रुद्ध हुई रमा ने यह शाप दिया था, जोकि ब्राह्मणोंने इस समय कहा ॥ ३० ॥ तुम मेरे विषैं विरोधभक्ति करके ब्रह्मशापको भोगकर

गेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् ॥ प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ३१॥ द्वास्थावादिश्य भगवान्विमानश्रेणिभूषणं ॥ सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥ ३२ ॥ तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः ॥ हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥ ३३ ॥ तदा विकुंठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः॥ हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥ ३४॥ तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः ॥ दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥ ३५ ॥ तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः ॥ आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥ ३६ ॥ विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ॥ क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ३७॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ७ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः॥ ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥ १ ॥ दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशङ्किनी॥ पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥ २ ॥ उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः॥

अल्पकालमें ही मेरे समीप फिर आय प्राप्त हो जाओगे ॥ ३१ ॥ इसप्रकार भगवान् जय औ विजय दोनो द्वारपालों को आज्ञा करके, विमानों की श्रेणियों करके भूपित सर्वातिशय लक्ष्मी युक्त अपने मंदिर में प्रवेश करते हुए ॥ ३२ ॥ देवों में श्रेष्ठ, ब्राह्मणों के शापसे हत होगई है श्री (शोभा) जिनकी ऐसे गर्व करके रहित वे दोनो जय और विजय पार्षद दुस्तर हरिलोक (वैकुण्ठ) से गिरे ॥ ३३ ॥ हे देवों ! उससमय वैकुंठलोक से गिरते हुए उन दोनों को देखकर विमानों के शिखरों पर स्थित वैकुण्ठवासी लोको में बड़ा हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३४ ॥ वह हरि के पार्षदों मे श्रेष्ठ, दोनों कश्यपजी के उग्र तेज (वीर्य) को प्राप्त हुए इस समय दिति के उदरमें प्रविष्ट हैं॥३५॥ तिन दोनो यमल असुरो के तेज करके आज तुम्हारा तेज तिरस्कृत हो रहा है, क्योंकि इस समय भगवान् ही ऐसा करने की इच्छा करते हैं ॥ ३६ ॥ जो आद्य पुरुष इस विश्व संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय के हेतु हैं, और योगीश्वरों कोभी जिन की योगमायाका उल्लंघन करना कठिन है ऐसे तीन गुणों के ईश वह भगवान् सत्वगुणकी वृद्धिके समय में हमारी क्षेम करेंगे, तिसमें फिर हमारे विचार करने का कौन प्रयोजन है ? ॥ ३७ ॥ इति तृतीय स्कन्ध में षोड़श अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहने लगे कि–ब्रह्माजी के कहेहुए अन्धकारके कारण को सुनकर सब देवता निःशङ्क हो स्वर्गलोकको चलेगये १ इधर अपने पतिके (कश्यपजी के) कहने के अनुसार 'मेरे पुत्रों से देवताओं को पीड़ा प्राप्त होगी' ऐसी शङ्का मनमें करनेवाली तिस पतिव्रता दितिने, सौ वर्ष पूरे होनेपर साथ२ दो पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २ ॥ जिससमय वह हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु उत्पन्नहुए

दिवि भुव्यंतरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥ ३ ॥ सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः ॥ सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥ ४ ॥ ववौ वायुः सुदुःस्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः ॥ उन्मूलयन्नगपतीन्वात्यानीको रजोध्वजः ॥ ५ ॥ उद्धसत्तडिदंभोदघटया नष्टभागणे ॥ व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदं ॥ ६ ॥ चुक्रोश विमना वार्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः ॥ सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपंकजाः ॥७॥ मुहुः परिधयोऽभूवन्सराह्वोः शशिसूर्ययो ॥ निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥ ८ ॥ अंतर्ग्रामेषु मुखतो वमंत्यो वह्निमुल्वणं ॥ शृगालोलूकटंकारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥९॥ संगीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधरां ॥ व्यमुंचन्विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥ १० ॥ खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नंतो धरातलं ॥ खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन्वरूथशः ॥ ११ ॥ रुदंतो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन् खगाः ॥ घोषेऽरण्ये च पशवः

उससमय स्वर्ग में, पृथ्वी में और आकाश में लोकों को परम भय उत्पन्न करनेवाले बहुतसे उत्पात हुए ॥ ३ ॥ पर्वतोंसहित भूमियें जहां तहां कम्पायमान होनेलगीं, सब दिशा जलतीहुई सी दीखनेलगीं, अङ्गारों सहित बिजलियें गिरनेलगीं और महान् भयको सूचित करनेवाले धूमकेतुओं का आकाश में उदय होनेलगा ॥ ४ ॥ आँधीरूप सेना तथा रजों के कणरूपी ध्वजा से, बड़े २ वृक्षों को उखाड़डालनेवाला, शरीर को कठिन प्रतीत होने वाला और फूत्कार (सन्नाटे के) शब्दों को उच्चारण करनेवाला वायु वारम्वार चलने लगा ॥ ५ ॥ अति हँसने की समान बिजलियों से युक्त मेघों करके जिसमें सूर्य आदि का प्रकाश नष्ट होगया है ऐसे आकाश में घना अन्धकार भरजाने के कारण तिलभरभी स्थान किसी के देखने में नहीं आता था ॥ ६ ॥ समुद्र खिन्नचित्त हुए पुरुष की समान घनड़ाकर गरजनेलगा, उसकी तरङ्गें ऊँची २ उछलने लगीं और उसके भीतरके मगर आदि जलजन्तु खलबलागए, सरोवर बावड़ी आदि सहित नदियें क्षोभित होगईं उनमेंके कमल सूखगए ॥ ७ ॥ आकाश में राहुसे ग्रसेहुए सूर्य चन्द्र के ऊपर वारम्वार परिधि (घेरे) होनेलगे, विना घटाओं के आकाश में भयङ्कर गर्जना और पर्वतों की गुहाओं में से रथों की घरघराट की शब्दकी समान ध्वनि निकलने लगी ॥ ८ ॥ ग्रामों में घुसकर मुखों में से भयङ्कर अग्नि की वमन करनेवालीं गीदड़ियें भयसूचक रुदन करनेलगीं उनके साथ शृगाल और उलूक भी कठोर शब्द करनेलगे ॥ ९ ॥ तथा जिधर तिधर श्वान अपनी ग्रीवा को ऊँची और लम्बी करके कभी गानकी समान कभी रुदन की समान अनेक प्रकार के शब्द करने लगे ॥ १० ॥ हे विदुरजी ! उन्मत्तहुए गर्दभों के झुण्ड के झुण्ड, अपनीजाति की अनुसार कर्कश शब्दों से रैंकते हुए और अपने खुरों से पृथ्वी को खोदतेहुए इकठ्ठे होर कर भागने लगे ॥ ११ ॥ तिन गर्दभों के शब्दों से भयभीत हुए पक्षी रोते २ अपने घोंसलों

शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥ १२ ॥ गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः ॥ व्यरुदन्देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुर्विनाऽनिलं ॥ १३ ॥ ग्रहान्पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः ॥ अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परं ॥ १४ ॥ दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पातान्नतत्तत्त्वविदः प्रजाः ॥ ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसंप्लवं ॥ १५ ॥ तावादिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ ॥ ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥ १६ ॥ दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदंगदाभुजौ ॥ गां कंपयंतौ चरणैः पदे पदे कट्या सुकांच्याऽर्कमतीत्य तस्थतुः ॥ १७ ॥ प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक् स्वदेहाद्यमयोरजायत ॥ तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥ १८ ॥ चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च ॥ वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥ १९ ॥ हि-

---

में से निकल २ कर उड़ने लगे और गोठ तथा वनमें गौ आदि पशु तिन गर्दभोंकी भयङ्कर गर्जना से भयभीत होकर मलमूत्र का त्याग करनेलगे ॥ १२ ॥ गौएँ भयभीत होगई और उन को दुहने से रुधिर निकलनेलगा, मेघ पूय (राद) की वर्षा करनेलगे, देवताओं की मूर्त्तियों के नेत्रों में से अश्रुधारा वहनेलगीं, विना ही वायुके वृक्ष आपसे आप टूट२ कर गिरने लगे ॥ १३ ॥ विशेष उत्तेजित हुए शनि-मङ्गल आदि पापग्रह, गुरु बुध आदि शुभ ग्रहों का उल्लङ्घन करके जानेलगे और वह वक्रगति से फिर पीछे को फिरकर परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ १४ ॥ यह कहेहुए तथा और भी बड़े २ उत्पात होतेहुए देखकर, उन के कारण को न जाननेवाले, सनकादि ब्रह्मपुत्रों को छोड़कर और सकल प्रजा के लोक भयभीत होगए तथा ऐसा सोचनेलगे कि—क्या आज जगत् का प्रलय ही होजायगा ? ॥ १५ ॥ इधर तिन दोनों आदिदैत्यों के उत्पन्न होते ही उन का पूर्व-सिद्ध पराक्रम प्रकट होनेलगा और वह अपने लोहसमान शरीरों से एकसाथ बड़े पर्वतों की समान बढ़ने लगे ॥ १६ ॥ फिर थोड़े ही समय में अपने सुवर्ण के किरीटों के अग्रभागों से स्वर्गलोक को स्पर्श करने वाले, शरीर की विशालता से दिशाओं को भरनेवाले, भुजाओं के विषैं देदीप्यमान बाजूबन्दों को धारण करनेवाले और पद२ पर अपने चरणों से पृथ्वी को कम्पायमान करनेवाले वह दोनों आदि दैत्य, तागड़ीसे शोभायमान अपनी कमरसे सूर्यको लाँघकर खड़ेहुए १७॥ तब कश्यप ऋषि ने उन दोनों पुत्रों में से जो अपने शरीर से प्रथम गर्भ रहा था तिस का नाम हिरण्यकशिपु रक्खा और उस दिति ने जिस को प्रथम उत्पन्न किया उसका हिरण्याक्ष नाम रक्खा, इस के ही अनुसार लोक उन को पुकारनेलगे ॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी से वर पा लिया था इसकारण उसने उन्मत्त होकर अपने बाहुबल से इन्द्रादि लोकपालों सहित तीनों लोक वश में कराइये ॥ १९ ॥ उस का प्रिय छोटा भ्राता हिरण्याक्ष

रण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् ॥ गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृ-
गयन् रणम् ॥ २० ॥ तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्कांचननूपुरं ॥ वैजयंत्या
स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदं ॥ २१ ॥ मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् ॥
भीता निलिल्यिरे देवास्तार्क्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥ २२ ॥ स वै तिरोहिता-
न्दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् ॥ सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन् व्यनदद्भृशं ॥२३॥
ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन् गंभीरं भीमनिःस्वनं ॥ विजगाहे महासत्त्वो वार्धिं
मत्त इव द्विपः ॥ २४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका यादोगणाः सन्नधियः
ससाध्वसाः ॥ अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥
॥ २५ ॥ स वर्षपूगानुदधौ महाबलश्चरन्महोर्मीन् श्वसनेरितान्मुहुः ॥ मौर्व्याऽभि-
जघ्ने गदया विभावरीमासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥ २६ ॥ तत्रोपलभ्यासुर-
लोकपालकं यादोगणानामृषभं प्रचेतसं ॥ स्मयन्प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद

नित्य हिरण्यकशिपु के प्रिय कार्य करता था, वह एक समय युद्ध करने की इच्छा से हाथ में गदालेकर रणमण्डल को खोजताहुआ स्वर्ग में पहुँचा ॥ २० ॥ जिस का वेग अति दुःसह है,जिस के चरणों में विराजमान सुवर्ण के नूपुर छम२ बजरहे हैं, जिसने अपने कण्ठ में वैजयन्ती नामक माला धारण करी है, जिस ने कन्धेपर एक बड़ी भारी गदा धारण करी है जो शूरता, शरीर का बल तथा ब्रह्माजी के वर के कारण घमण्डी और निर्भय होरहा है ऐसे हिरण्याक्ष को देखकर भयभीतहुए देवता, जैसे गरुड़जी से डराहुआ सर्प जहां स्थान पाता है तहां दुबक रहता है तैसेही, दुबक गए ॥२१॥२२॥ उससमय वह दैत्यराज, 'इन्द्रसहित सकल देवता अपने तेज करके गुप्त होगए' ऐसा देखकर, देवताओं में मेरेसाथ युद्ध करनेवाला मत्त वीर कोईनहीं है ऐसा देखताहुआ बड़े जोरसे गर्जना करने लगा ॥ २३ ॥ तदनन्तर तहां से लौटकर वह महाबली हिरण्याक्ष, जलक्रीड़ा करने की इच्छा से भयङ्कर गर्जना करनेवाले अपरम्पार समुद्र को मदोन्मत्त गजराज की समान विलोड़नेलगा ॥ २४ ॥ इसप्रकार तिस के समुद्र में घुसतेही वरुणकी सेना में के सकल जलचर प्राणी भयभीत होगए और उन को कुछ सुध नहीं रही, उसने किसी के ऊपर प्रहार नहीं किया तथापि उस के तेज से ही वह ललकारेहुए से होकर बहुत दूरको भागकर चलेगए ॥ २५ ॥ हेतात विदुरजी ! ऐसा महाबली वह हिरण्याक्ष बहुत वर्षों पर्यन्त समुद्र में विचरतारहा और वायु से उत्पन्नहुई बड़ी २ तरङ्गो पर तीखी लोहेकी गदा से वारंवार ताड़ना करताहुआ कुछ कालमें वरुणकी विभावरी नामक राजधानीमें जापहुँचा २६ तहां पाताल लोक के अधिपति सकल जलचरों में श्रेष्ठ राजा वरुण के समीप जाकर वह उनकी प्रलम्भना करने के निमित्त उनको, एक साधारण नीच पुरुष की समान नमस्कार

मे देह्यधिराज संयुगं ॥ २७ ॥ त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनां॥विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुरायजत्प्रभो ॥ २८ ॥ स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपां पतिः ॥ रोषं समुत्थं शमयन् स्वया धिया व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयं ॥ २९ ॥ पश्यामि नान्यं पुरुषात् पुरातनाद्यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदं॥आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहि तं मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥ ३० ॥ तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः ॥ यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥ ३१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्ष-दिग्विजये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ छ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तदेवमाकर्ण्य जले-शभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ॥ हरेर्विदित्वा गतिमंग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥ १ ॥ ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानाव-निमग्रदंष्ट्रया ॥ मुष्णंतमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो

करके हँसता २ कहनेलगा कि—हे राजाधिराज ! मुझे युद्धदान दीजिये॥ २७ ॥ हेप्रभो ! वरुण ! तुमलोकपाल राजाधिराज होने के कारण, दुर्मद के से अपने को वीर मानने वाले जो पुरुष हैं उनकी वीरताके घमण्ड को दूर करनेवाले और परम कीर्त्तिमान् हो, क्योंकि—तुमने पहिले एकसमय सकल दैत्य दानवों को जीतकर राजसूय यज्ञके द्वारा ईश्वर का यजन कियाथा ॥ २८ ॥ अति मदोन्मत्त तिस शत्रुके इसप्रकार अत्यन्त उपहास करने पर वह भगवान् वरुणजी उदयहुए क्रोधको अपनी बुद्धि से रोकतेहुए कहनेलगेकि-अरे हिरण्याक्ष ! हमतो युद्ध आदि करने का कार्य छोड़कर स्वस्थ रहते हैं ॥ २९ ॥ हे दैत्यश्रेष्ठ ! युद्ध में तुझ प्रवीण को सन्तुष्ट करै ऐसा पुराणपुरुष विष्णुभगवान्के सिवाय दूसरा कोई पुरुष मुझे नहीं दीखता है, अतः तू उनके समीप जा, तुझसे शूरपुरुष उनकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३० ॥ जो तुझसे दुष्ट पुरुषों का समूल नाश करने के निमित्त और साधु पुरुषों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अनेकों प्रकार के अवतार धारण करतेहैं. तू उस शत्रुके समीप गया कि—तत्काल तेरा सकल घमण्ड दूर होकर, कुत्तों से घिराहुआतू रणभूमि पर शयन करेगा (मरणको प्राप्त होगा) ३१ ॥ इति तृतीय स्कन्ध में सप्तदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! विष्णुभगवान् के हाथ से तू मरण को प्राप्त होगा ' इसप्रकार तिन वरुणजी के कथन को सुनकर मनमें हर्षित हुआ वह मदोन्मत्त हिरण्याक्ष, तिस कथन पर कुछ ध्यान न देकर और नारद ऋषिसे 'श्रीहरि कहां हैं ' यह जानकर बड़ी शीघ्रता से वह रसातलमें को चलागया ॥ १ ॥ तहां अपनी दाढ़के अग्रभाग से पृथ्वी को ऊपर निकालकर धारण करनेवाले. आसपास के सकल वीरों

मृगः ॥ २ ॥ आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो रसौकसां विश्वसृजेयमर्पितां ॥ न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥ ३ ॥ त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो यो मायया हन्त्यसुरान्परोक्षजित् ॥ त्वां योगमाया-बलमल्पपौरुषं संस्थाप्य मूढ प्रमृजे सुहृच्छुचः ॥ ४ ॥ त्वयि संस्थिते गदया शीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ॥ वलिं हरन्त्यृषयो ये च देवाः

को जीतनेवाले और नेत्रों की आरक्त कान्ति से अपने (हिरण्याक्षके) तेजको लुप्त करने वाले तिन वराहरूप श्रीहरि को देखकर वह हिरण्याक्ष दैत्य हँसकर कहनेलगा कि—अहो ! कैसा आश्चर्य है कि--वनमें (*स्तुतिपक्ष में वन कहिये जलमें) विचरनेवाला यह मृग अर्थात् वराह पशु (स्तुतिपक्ष में मृग कहिये योगीजन जिनकी खोज करते हैं ऐसे श्रीनारायण) यहाँ जल में दीख रहा है ॥२॥ फिर वह भगवान् से कहने लगा कि—हेअज्ञ! (स्तुतिपक्ष में अज्ञ कहिये जिससे अधिक जाननेवाला कोई नहीं है ऐसे सर्वज्ञ !) इधर आ, इस पृथ्वी को छोड़ दे, यह ब्रह्माजी ने हम पातालवासियों को दी है, हे वराहरूप धारण करनेवाले देवाधम अर्थात देवताओं में अधम ! (स्तुतिपक्ष में देवाधम कहिये जिससे देवता अधम हैं ऐसे देवश्रेष्ठ) मेरे देखतेहुए इसको लेजाकर तू इसके सहित कल्याणको नहीं प्राप्त होगा (स्तुतिपक्ष में नहीं काकूक्ति से समझना अर्थात् क्या कल्याण को नहीं प्राप्त होगा ? अर्थात् प्राप्त होगा ही) ॥३॥ क्या हमारे शत्रुओं ने हमारा अभव कहिये नाश करने के निमित्त (स्तुतिपक्ष में अभव अर्थात् भव जो संसार तिसका अभाव कहिये मोक्ष के निमित्त) क्या तुम्हें भृत कहिये पुष्ट (स्तुतिपक्ष में भृत कहिये आश्रय) कियाहै जो तू हमारा परोक्षजित् कहिये परोक्ष में जय को प्राप्त होनेवाला (स्तुतिपक्ष में परोक्षजित् कहिये दूर रहकर ही चाहे जिसको जीतनेवाला) होकर दैत्यों को मारडालता है. अरे मूढ़ ! (स्तुतिपक्ष में मूढ़प्र इतना शब्द लेना अर्थात् मूढ़पुरुषों के ऊपर अनुग्रह करने वाले) योगमाया का ही जिसको बल है (स्तुतिपक्ष में जिसका योगमायारूप अचिन्त्य बल है) ऐसे अल्पपौरुष कहिये अल्पपराक्रमी (स्तुतिपक्ष में अल्पपौरुष कहिये जिसके सामने लोकों का पराक्रम तुच्छ है) तुझको संस्थाप्य कहिये मारकर (स्तुतिपक्ष में संस्थाप्य कहिये हृदय में भक्तिपूर्वक स्थापन करके आज अपने बान्धओं के शोक (स्तुतिपक्ष में शोक कहिये संसारदुःख) को दूर करूँ ॥ ४ ॥ हमारे हाथसे छूटीहुई गदाकरके मस्तक शीर्ण कहिये चूर्ण (स्तुतिपक्ष में अशीर्ण लेना अर्थात् चूर्ण नहीं) होनेके कारण तू संस्थित कहिये मरण को प्राप्त होनेपर तेरी आराधना करनेवाले ऋषि और देवता सब ही

* यहाँ हिरण्याक्ष ने भगवान् की निन्दा के निमित्त कहेहुए वाक्यों का स्तुतिपर अर्थ भी निकलता है ॥

स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥ ५ ॥ स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरैर्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ॥ तोदं मृषन्निरगादम्बुमध्याद्ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥ ६ ॥ तं निःसरन्तं सलिलादनुद्रुतो हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः ॥ करालदंष्ट्रोऽशनिनिःस्वनोऽब्रवीद्गतह्रियां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥ ७ ॥ स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ॥ अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोरेः ॥ ८ ॥ परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं कांचनचित्रदंशम् ॥ मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ९ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ॥ न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ॥ १० ॥ एते वयं न्यासहरा रसौकसां गतह्रियो गदया द्रावितास्ते ॥ तिष्ठामहेऽथापि कथंचिदाजौ स्थेयं क्व

अमूल कहिये निराश्रय (स्तुतिपक्ष में अमूल कहिये काकूक्ति से क्या निर्मूल?) होकर स्वयं नष्ट होजायँगे ॥ ५ ॥ ऐसे शत्रु के दुर्वचनरूप भालों से पीड़ितहुए वह वराहभगवान् अपने दाढ़के अग्रभागपर स्थित पृथ्वी को भयभीत देखकर, हिरण्याक्ष के दुर्भाषणों को सहन करतेहुए मगर से पीड़ितहुई हस्तिनी सहित हाथी की समान जल में से बाहर निकले ॥ ॥ ६ ॥ उससमय जैसे हस्ती के पीछे मगर दौड़ताहुआ जाता है तैसे जलसे बाहर निकलनेवाले तिन वराहभगवान् के पीछे जानेवाला, जिसके केश सुवर्ण की समान पीतवर्ण हैं, जिसकी दाढ़ें ऊँची हैं और जिसका शब्द वज्रपातकी समान कठोर है ऐसा वह हिरण्याक्ष कहनेलगा कि—अरे निर्लज्ज (स्तुति पक्ष में लोकनिन्दा से डरनेवाले) असत्पुरुषों को (स्तुतिपक्ष में जिनसे दूसरे सत्पुरुष नहींहैं ऐसे आपकी समान परमकृपालु पुरुषों को) निन्दनीय क्या है! अर्थात् वह भयसे भागजाते हैं (स्तुतिपक्षमें दाढ़पर स्थित पृथ्वी की रक्षा करनेके निमित्त यदि कुछ भागनाभी पड़ेतो उनको निन्दाकारक नहींहोता है.) ॥ ७ ॥ तदनन्तर भगवान् ने जलके ऊपर पूर्व के योग्यस्थान पर पृथ्वी को स्थापित करके उसमें अपनी आधारशक्ति का प्रवेश किया और हिरण्याक्ष दैत्य के देखतेहुए देवताओंने उन भगवान्के ऊपर पुष्पोंकी वर्षाकरी और ब्रह्माजीने उनकी स्तुतिकरी ८ उससमय अपने पीछे आनेवाले, सुवर्ण के आभूषणों से शोभित, हाथ में गदा लियेहुए, अद्भुत कवचधारी और अपने दुर्भाषणों से वारंवार चित्तको दुःखित करनेवाले तिस हिरण्याक्ष से, प्रचण्ड क्रोध में भरे भगवान् ने, हँसते २ कहा ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि—अरे हिरण्याक्ष! ठीक है हम वनचर पशु हैं, परन्तु तुझसमान ग्रामसिंहो (कुत्तो) को ढूँढ़ते फिरते हैं, अरेअभद्र! मृत्युरूपी फाँसी से बँधेहुए तुझसरीखों की आत्मश्लाघा को हमसे वीरपुरुष कुछ नहीं समझते हैं ॥ १० ॥ अरे! हम तुझसरीखे रसातलवासियों की धरोहड़

यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥ ११ ॥ त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः ॥ संस्थाप्य चास्मान् प्रमृजाश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥ १२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् ॥ आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव ॥ १३ ॥ सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेन्द्रियः ॥ आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाऽभ्यहनद्धरिम् ॥ १४ ॥ भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि ॥ अवञ्चयत्तिरश्चीनो योगारूढ इवान्तकम् ॥ १५ ॥ पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः ॥ अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भाद्दष्टदच्छदम् ॥ १६ ॥ ततश्च गदयारातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः ॥ आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥१७॥ एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च ॥ जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १८॥ तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहताङ्गयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्व्योः।

के हरनेवाले निर्लज्ज हैं अतः तूने गदा से हमें भगाया है इस से यद्यपि हम युद्ध कर ने को समर्थ नहीं हैं तथापि किसीप्रकार तेरे सामने युद्ध करने को खड़े हैं क्यों कि-तुझसे बली पुरुषों से वैर उत्पन्न कर के कहाँ जायँगे ? अतः हम को खड़ा रहनाही आवश्यक है ॥ ११ ॥ तू वास्तव में पैदल योधाओं का अधिपति है अतः निःशङ्क होकर हमारा तिरस्कार करने का शीघ्र यत्न कर, और हमारा वध करके अपने सुहृद्जनों के शोक का मार्जनकर, जो अपनीं करीहुई प्रतिज्ञाको पूर्ण नहीं करताहै वह असभ्य होताहै १२ मैत्रेय जी कहते हैं कि-हेविदुरजी! इसप्रकार भगवान् ने धिक्कार देकर क्रोधसे तिस हिरण्याक्ष का बहुत ही उपहास किया उससमय पकड़कर खेल कियेजातेहुए सर्पकी समान उसने दुःसह क्रोध धारण करा ॥ १३ ॥ उससमय जिसकी इन्द्रियें मारे क्रोधके वशमें नहीं रहीं हैं और हाँप रहा है ऐसे तिस दैत्य ने बड़े वेगके साथ दौड़कर श्रीहरिके अङ्गपर गदा का प्रहार किया ॥ १४ ॥ जैसे पूर्ण योग को प्राप्त हुआ योगी अपनी मृत्यु को बचाजाता है तैसे शत्रु के, वक्षःस्थलपर करेहुए, गदा के प्रहार को भगवान् कुछएक टेढ़े होकर बचागये ॥ १५ ॥ तदनन्तर फिरकर अपनी गदाको लेकर वारम्वार घुमानेवाले और क्रोधसे अधरोष्ठ को कम्पायमान करतेहुए हिरण्याक्ष के शरीरपरको, क्रोध में हुए श्रीहरि दौड़कर गए ॥१६॥ हे विदुरजी! तदनन्तर प्रभुने शत्रुकी दाहिनी भौं पर प्रहार करने के निमित्त अपनी गदा फैंकी, इतने ही में गदायुद्ध में चतुर तिस हिरण्याक्ष दैत्य ने उस गदाको अपने पास आने से पहिले ही अपनी गदासे तोड़ गिराया ॥ १७ ॥ इसप्रकार हिरण्याक्ष दैत्य और वराहरूप भगवान् यह दोनो वीर अत्यन्त क्रुद्ध हो कर अपने २ को जय मिलनेकी इच्छासे बड़ी २ गदाओं से परस्पर प्रहार करने लगे ॥१८॥ जिसप्रकार दो मदोन्मत्त सांडों का गौ के निमित्त परस्पर युद्ध होता है तिसीप्रकार परस्पर

विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ॥ १९ ॥ दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायागृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ॥ कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥ २० ॥ आसन्नशौंडीरमपेतसाध्वसं कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमं ॥ विलक्ष्य दैत्यं भगवान् सहस्रणीर्जगाद नारायणमादिसूकरम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एष ते देव देवानामंघ्रिमूलमुपेयुषाम् ॥ विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥ २२ ॥ आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः ॥ अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कंटकः ॥ २३ ॥ मैनं मायाविनं दृप्तं निरंकुशमसत्तमम् ॥ आक्रीड बालवद्देव यथाशीविषमुत्थितं ॥ २४ ॥ न यावदेष वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः ॥ स्वां देवमायामास्थाय तावज्जह्यघमच्युत ॥ २५ ॥ एषा घोरतमा संध्या लोकच्छंबट्करी प्रभो ॥ उपसर्पति

जीतने की इच्छा करके एक २ से स्पर्धा (हिरस)करनेवाले, तीखी गदाओं करके जिन के शरीरपर घाव होगए हैं, घावोंसे बहते हुए रुधिरकी गन्धसे जिनका क्रोध अत्यन्तही बढ गया है और अनेक प्रकार के गदायुद्ध के पैंतरों से फिरनेवाले तिन देवदैत्य दोनों का पृथ्वीके निमित्त बड़ाभारी युद्ध हुआ ॥ १९ ॥ हे विदुरजी ! यज्ञ ही जिसके अङ्ग हैं ऐसे माया करके वराह अवतार धारणकरनेवाले तिन महात्मा भगवान् और हिरण्याक्ष दैत्यका पृथ्वी के निमित्त वैरभाव बढकर युद्ध चलनेपर तिसके देखने की इच्छा करने वाले ब्रह्माजी ! ऋषियों सहित तहां आपहुँचे ॥ २० ॥ और जिसको शूरता प्राप्त हुई है, जिस का भय दूर होगया है, जिसने भगवानके रचेहुए उपायकी योजना करी है और जिस के पराक्रम को हटाना कठिन है ऐसे तिस हिरण्याक्ष दैत्य को देखकर, सहस्रों ऋषियों के अधिपति भगवान् ब्रह्माजी ने अपूर्व वराहरूप धारण करनेवाले श्रीनारायण से कहा ॥ २१ ॥ ब्रह्मा जी कहनेलगे कि–हे देव ! यह दैत्य तुम्हारे चरणों में शरण आयेहुए देवता, ब्राह्मण, गौ और निरपराध प्राणियों को भय देनेवाला, धन और प्राणोंको हरनेवाला, मुझसे वरदानपाया हुआ और कण्टककी समान सबको दुःख देनेवाला है, इसके समान कोई दूसरा योधा न होने के कारण यह अपने समान योधा को खोजनेके निमित्त सारी त्रिलोकी में घूमता था ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे देव ! जिसप्रकार अज्ञानी बालक पूँछ आदि पकडकर क्रुद्धहुए सर्प से खेलता है तैसेही, मायावी, घमण्डी, निरंकुश, दुष्टों में अग्रणी इस असुरसे तुम खेल मतकरो ॥ २४ ॥ हे देव अच्युत ! यह भयङ्कर दैत्य अपने क्रूरसमय (संध्या) को प्राप्त होकर जबतक सामर्थ्य करके वृद्धि को प्राप्त न हो तबतक तुम अपनी दिव्यमाया को स्वीकार करके इस दुष्ट का वध करो ॥ २५ ॥ हे सर्वात्मन् ! प्रभो लोकों का नाश करनेवाला अति भयङ्कर यह सन्ध्याकाल समीप ही आरहा है,

सर्वात्मन्सुराणां जयमावह ॥ २६ ॥ अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् ॥ शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ॥ २७ ॥ दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ॥ विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्षवधे अष्टादशोऽध्यायः १८

मैत्रेय उवाच ॥ अवधार्य विरिंचस्य निर्व्यलीकामृतं वचः ॥ प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपांगेन सोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ ततः सपत्नं मुखतश्चरंतमकुतोभयम् ॥ जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥ २ ॥ सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात् ॥ विघूर्णितापतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३ ॥ स तदा लब्धतीर्थोपि न बबाधे निरायुधम् ॥ मानयन्स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥ ४ ॥ गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते ॥ मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चास्मरद्विभुः ॥ ५ ॥ तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ॥ चित्रा

अतः उस से पहिले ही तुम देवताओं को जय प्राप्त करादो ॥ २६ ॥ इस समय दो घड़ी को अभिजित् नामक योग है और वह समाप्त ही होनेको है अतः हम सकल सुहृदों का कल्याण होने के निमित्त तुम इस दुर्जय शत्रु का शीघ्र ही वध करो ॥ २७ ॥ यह दैत्य, पहिले शाप के अनन्तर अनुग्रह के समय तुम्हारे रचेहुए मृत्यु केसमीप स्वयं ही प्राप्त हुआ है यह बड़े आनन्दकी बातहै अतः अबतुम पराक्रम करके युद्ध में इसका वध करो और सबलोकों को सुख में स्थापन करो ॥ २८ ॥ इति तृतीय स्कन्ध में अष्टादश अध्याय समाप्त

मैत्रेयजी कहते हैं कि– हे विदुरजी ! भगवान् अमृत की समान मधुर और निस्कपट तिन ब्रह्माजी के कथनको सुनकर, 'प्रत्यक्ष कालरूप भी मुझको यह ब्रह्माजी समय बतारहेहैं ऐसा मन मे लाकर' हँसे और प्रेमयुक्त कटाक्ष से उन के कथन को स्वीकार किया ॥ १ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी की नासिका से उत्पन्नहुए तिन वराहरूप भगवान् ने छलाँगमारकर अपने सन्मुख निर्भय होकर विचरनेवाले हिरण्याक्ष दैत्य की ठोडी पर गदा का प्रहार किया ॥ २ ॥ तिस गदापर, हिरण्याक्ष के अपनी गदा का प्रहार करने पर वह गदा भगवान् के हाथ में से निकलकर घर२ करतीहुई नीचे गिरते समय शोभाको प्राप्तहुई यह बड़े आश्चर्य की बातहुई ॥ ३ ॥ उससमय हिरण्याक्ष को शत्रु के ऊपर प्रहार करने को समय मिला परन्तु उसने शस्त्रहीन हुए भगवान् के ऊपर प्रहार नहीं किया किन्तु "युद्ध में शस्त्ररहित योधा के ऊपर प्रहार न करे" इस धर्मको उसने माना और विष्वक्सेन भगवान् को अत्यन्तही क्रोधित किया ॥४॥ इधर भगवान् के हाथ में की गदा नीचे गिरपड़ने के कारण दर्शकमण्डलीमें हाहाकार होनेलगा तब प्रभुने उस हिरण्याक्षके धर्मकी प्रशंसा करी और अपने सुदर्शन चक्रका स्मरण किया, उसीसमय आकर प्राप्त हुए चक्रको उन्होने धारणकिया ५॥

वाचोऽतद्विदां खेचराणां तत्रास्मासन् स्वस्ति 'तेऽमुं' जहीति ॥ ६ ॥ स तं निशम्यात्तरथांगमग्रतो व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम् ॥ विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो रुषा स्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥ ७ ॥ करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां सञ्चक्षाणो दहन्निव ॥ अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥ ८ ॥ पदा सव्येन तां साधो भगवान् यज्ञसूकरः ॥ लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥ ९ ॥ आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि ॥ इत्युक्तः स तदा भूयस्ताडयन् व्यनदद्भृशम् ॥ १० ॥ तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान् समवस्थितः । जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥ ११ ॥ स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः ॥ नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥ १२ ॥ जग्राह त्रिशिखं

उससमय जिन का चक्र दैत्यों का वध करने को शीघ्रता चांहरहा है और अपने पार्षदों में मुख्य तथा दैत्यों में अधम तिस हिरण्याक्ष के साथ युद्ध करने में तत्पर उन भगवान् को देखकर उन के प्रभाव को न जाननेवाले आकाशचारी देवताओं की विचित्र प्रकार की बातें होनेलगीं, हे देव ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम इस का वध करो ॥ ६ ॥ उससमय, कमलनयन चक्रधारी भगवान् को, युद्ध के निमित्त सज्जित (तयार) होकर अपने सामने ही खड़े हैं ऐसा देखकर क्रोध से जिस की इन्द्रियें क्षुब्ध (बेकाबू) होगई हैं ऐसा वह दैत्य लम्बी २ श्वासें लेताहुआ नीचे के ओठ को चाबनेलगा ॥ ७ ॥ भयङ्कर दाढ़ोंवाले और अपने क्रोधयुक्त नेत्रों से मानों भस्म करेडालता है इसप्रकार देखनेवाले तिस दैत्य ने, सन्मुख उछलकर 'अब मैंने तुझे हत कहिये मारहीडाला' (स्तुतिपक्ष में हत कहिये जान ही लिया) ऐसा कहकर अपनी गदा से तिन भगवान् के शरीर पर प्रहार किया ॥ ८ ॥ हे साधो विदुरजी ! उससमय यज्ञवराहरूप भगवान् ने, उस शत्रु के देखतेहुए ही पवन की समान वेग से आतीहुई तिस गदा को दाहिने चरण से सहज में ही नीचे गिरादिया ॥९॥ और उससे कहा कि—अरे असुर ! तू अपने इस आयुध को ले, और फिर युद्ध का उद्योग कर; क्योंकि—तुझे मेरे जीतने की इच्छा है, तब तो उस हिरण्याक्ष ने फिर उस गदा को लेकर भगवान् के शरीर पर को फैंकी और परम भयानक गर्जना करी ॥ १० ॥ उससमय सन्मुख खड़ेहुए उन भगवान् ने, उस गदा को अपने ऊपर आतीहुई देखकर, 'जैसे गरुड सर्पिणी को पकड़ता है तैसे' सहज में ही उसगदा को पकड़लिया ॥ ११ ॥ इसप्रकार ईश्वर के सामने अपने पराक्रम को चलता न देखकर हतगर्व और निस्तेज हुए तिस महादैत्य को, श्रीहरि ने लौटाकर दीहुई उस गदा को फिर ग्रहण करने की इच्छा नहींहुई ॥ १२ ॥ अतः उसने ब्राह्मण के ऊपर जारण मारण आदि अभिचार कर्म करनेवाले पुरुष की समान, वराहरूप धारी यज्ञपुरुष के विनाश के निमित्त तीन नोकोंवाले, अग्नि की समान

शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् ॥ यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥१३॥ तं-दोर्जसा दैत्यमहाभटार्पितं चकासदन्तः खं उदीर्णदीधिति ॥ चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना हरिर्यथा ताक्ष्यपतत्रमुज्झितम् ॥ १४ ॥ वृक्णे स्वशूले बहुधारिणा हरेः प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ॥ प्रवृद्धरोपः स कठोरमुष्टिना नदन् प्रहृत्यांतरधीयतासुरः॥१५॥ तेनेत्थमाहतः क्षत्तभगवानादिशूकरः॥नाकंपत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥१६॥ अथोरुधाऽसृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ॥ यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम्॥१७॥प्रववुर्वायवश्चंडास्तमःपांसवमैरयन्॥दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥ द्यौर्नष्टभगणाऽभ्रौघैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥ १९॥ गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नानायुधमुचोऽनघ ॥ दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मु-

जाज्वल्यमान और अपना कार्य करने में तत्पर एक त्रिशूल हाथ में लिया ॥ १३ ॥ उससमय दैत्यों में महाशूर तिस हिरण्याक्ष ने भगवान् के ऊपर वेगसे फैंकाहुआ वह अतितेजस्वी त्रिशूल, आकाश में चमकने लगा तबतो भगवान् ने अपने तीखी धारवाले चक्र से उसके इसप्रकार खण्ड २ करदिये जैसे पहिले देवताओं को जीतकर अमृतका कलश ले जानेवाले गरुड़जीने,अपने ऊपर इन्द्र के छोड़ेहुए वज्रका मान करनेके निमित्त अपना एक पर उखाड़दिया था और उसको इन्द्र ने काट दिया था ॥ १४ ॥ भगवान् ने,सुदर्शन चक्र से मेरे त्रिशूल के बहुत से टुकड़े करडाले, यह देख अति क्रुद्ध हुआ वह हिरणयाक्ष गर्जना करता २ श्रीहरि के सन्मुख आकर उनके, लक्ष्मी के स्थानभूत विशाल वक्षःस्थल पर अपने कठोर घूँसे का प्रहार करके अपने आप अन्तर्धान होगया ॥ १५ ॥ हे विदुर जी ! इसप्रकार तिस दैत्य करके वक्षःस्थलपर प्रहार करनेपरभी वह आदि वराहरूप भगवान् पुष्पों की माला से ताड़ना करेहुए हस्ती की समान किसी अंश मेंभी किञ्चिन्मात्र भी कम्पायमान नहीं हुए ॥ १६ ॥ हे विदुरजी ! तदनन्तर तिस दैत्य ने योगमाया के नियन्ता श्रीहरि के ऊपर अनेकों प्रकार की आसुरी मायाका प्रयोग किया, जिस माया को देखकर भयभीतहुई सकल प्रजाओंने, इस जगत् के प्रलय होने का समय समीपही आगया है ऐसा जाना ॥ १७ ॥ उसके मायाको फैलाने के समय प्रचण्ड पवन चलने लगे, और उन से जिधर तिधर को धूलियें उडकर अन्धकार होगया, सकल दिशाओं मेंसे गोफनोंसे फैंकेहुए से पत्थर बरसने लगे ॥ १८ ॥ तथा बिजली की तड़तड़ाहट और गर्जना सहित बारंबार राद, केश, रुधिर, विष्ठा, मूत्र और अस्थियों की वर्षा करनेवाले मेघमण्डलों से आकाश में के तारागण दीखना बन्द होगए ॥ १९ ॥ हे निष्पाप विदुरजी ! नाना प्रकार के शस्त्रों की वर्षा करनेवाले पर्वत जिधर तिधर दीखनेलगे और हाथ में त्रिशूल

क्तमूर्धजाः ॥ २० ॥ बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुंजरैः ॥ आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोतिवैशसाः ॥ २१ ॥ प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयत् ॥ सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥ २२ ॥ तदा दितेः समभवत्सहसा हृदि वेपथुः ॥ स्मरन्त्या भर्तुरादेशं स्तनाच्चासृक् प्रसुस्रुवे ॥ २३ ॥ विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाव्रज्य केशवं ॥ रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेवस्थितं बहिः ॥ २४ ॥ तं मुष्टिभिर्विनिघ्नंतं वज्रसारैरधोक्षजः ॥ करेण कर्णमूलेऽहन्यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥ २५ ॥ स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः ॥ विशीर्णबाह्वंघ्रिशिरोरुहोऽपतद्यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्वता ॥ २६ ॥ क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदं ॥ अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो इमां कोऽनुलभेत संस्थितिं ॥ २७ ॥ यं योगिनो योगसमाधिना

लेकर आईहुई, खुले केशवाली राक्षसियें चारों ओर दीखनेलगीं ॥ २० ॥ तहाँ हाथ में शस्त्र लेकर प्राप्तहुए अनेकों यक्ष राक्षसों ने तथा पैदल (सिपाही), घोडे, रथ और हाथियों ने अतिभयङ्कर 'मारो,काटो' ऐसी वाणी उच्चारण करीं ॥ २१ ॥ उस समय प्रातःसवन मध्यान्हसवन और तृतीयसवन यह तीन जिनके चरणहैं ऐसे यज्ञरूप भगवान्‌ने हिरण्याक्ष की उत्पन्न करीहुई तिस आसुरी मायाका नाश करनेवाले प्रिय सुदर्शन चक्रको छोडा॥२२॥ उससमय ' विष्णुभगवान् अवतार धारकर तेरे पुत्रोंका नाश करेंगे ' ऐसे पति (कश्यप जी) के कथन को स्मरण करनेवाली दिति के हृदय में एकसाथ कम्प उठखड़ाहुआ और स्तनों में से रुधिर टपकने लगा ॥ २३ ॥ इधर हिरण्याक्ष दैत्य अपनी मायाके नष्ट होने पर फिर भगवान् के सन्मुख आकर 'अपनी भुजाओंके मध्यमें दबाकर भगवान् का चूरा२ करडालूँ ऐसी इच्छा करके ' शीघ्रता से आलिङ्गन करने को उद्यत हुआ परन्तु उसको ऐसा ही दीखा कि—भगवान् मेरी भुजाओं के मध्य (कौलिया)मे बाहरहैं॥२४॥उस समय वज्रसमान मुष्टियों (घूंसों) का प्रहार करनेवाले तिस हिरण्याक्ष के कर्णमूल (कनपटी) पर, जैसे इन्द्रने वृत्रासुर के कण्ठ में वज्रका प्रहार कियाथा तैसे भगवान् ने अपने हाथ (थप्पड़) का प्रहार किया ॥ २५ ॥ सकल जगत् को जीतनेवाले भगवान्‌ने अवज्ञा (तिरस्कार) के साथ जिसके ऊपर प्रहार किया है ऐसा वह हिरण्याक्ष दैत्य, जिसका शरीर चारों ओर चक्कर खारहा है, जिसके नेत्र बाहर को निकलपड़ेहैं और जिसकीभुजा चरण तथा मस्तकपर के केश अस्तव्यस्त होगए हैं ऐसा होकर आँधी के उखाड़ेहुए बड़े भारी वृक्षकी समान भूमिपर गिरपड़ा ॥ २६ ॥ उससमय तहां आयेहुए देवता, जिसका पराक्रम आजपर्यन्त कहीं भी कुण्ठित नहीं हुआथा ऐसे भयङ्कर दाढ़ोंवाले ओठों को चाबते हुए तिस हिरण्याक्ष को भूमिपर पड़ाहुआ देखकर कहनेलगे कि—अहो ! ऐसा मृत्यु किसको प्राप्त होसक्ता है ? ॥ २७ ॥क्योंकि—अविद्या करके आरोपित लिङ्गशरीर

रहो ध्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया ॥ तस्यैष दैत्यर्षभः पदा हतो मुखं प्र-
पश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥ २८ ॥ एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिं ॥
पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येते ह जन्मभिः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो न-
मस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौ गृहीतामलसत्वमूर्त्तये ॥ दिष्ट्या हतोऽयं जगताम-
रुन्तुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं हिर-
ण्याक्षमसह्यविक्रमं स सादयित्वा हरिरादिसूकरः ॥ जगाम लोकं स्वमखण्डि-
तोत्सवं समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥ ३१ ॥ मया यथाऽनूक्तमवादि ते
हरेः कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितं ॥ यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो महामृधे
क्रीडनवन्निराकृतः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भ-
गवत्कथां ॥ क्षत्तानन्दं परं लेभे महाभागवतो द्विज ॥ ३३ ॥ अन्येषां पुण्य-
श्लोकानामुद्दामयशसां सतां ॥ उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥

से मुक्त होने की इच्छा करके समाधि लगाकर योगीजन जिसका एकान्त में ध्यान करते हैं तिन भगवान् के मुखकी ओर को देखते हुए उनके अगले चरण (हाथ) से ताडना करेहुए इस श्रेष्ठ दैत्य ने अपने शरीर को त्यागा है अतः इसके अहोभाग्य का क्यावर्णन कियाजाय ? ॥ २८ ॥ वैकुण्ठवासी भगवान्के जय विजय नामक पार्षदही यह हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु ब्रह्मशाप से दैत्ययोनि को प्राप्त हुए थे और फिर कईएक जन्मों में अपने स्थान को प्राप्त होंगे ॥ २९ ॥ देवता कहनेलगे कि-हेईश्वर ! तुम सकलप्रकारके यज्ञों के विस्तार को प्रवृत्त करनेवाले हो और जगत् की रक्षाके निमित्त तुमने शुद्ध सतोगुणी मूर्त्ति धारण करी है ऐसे आपको वारम्वार नमस्कार है, सकल प्राणियों को दुःख देनेवाला यह हिरण्याक्ष मृत्यु को प्राप्त हुआ, सो वहुतही श्रेष्ठ कार्य हुआ, हम आप के चरणो की भक्ति से आज आनन्द को प्राप्त हुए हैं ॥ ३० ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हे विदुरजी इसप्रकार वह आदिवराह भगवान् जिसके पराक्रम को कोई न सहसके ऐसे हिरण्याक्ष का वध करके, ब्रह्मादि देवताओं के स्तुति करतेहुए, अपने अखण्ड आनन्द युक्त वैकुण्ठलोक को चलेगये ॥ ३१ ॥ हे सुमित्र विदुरजी ! महायुद्ध में भगवान् ने अद्भुतपराक्रमी हिरण्याक्ष दैत्यका जिसप्रकार खेलने के खिलौने की समान वध करा वह वराह अवतार धारण करने वाले श्रीहरि का चरित्र मैंने जैसा गुरुमुखसे सुनाथा वैसा तुम्हें कहसुनाया ॥ ३२ ॥ सूतजी ने कहा कि-हे शौनकऋषे ! इसप्रकार मैत्रेयजी की कही हुई भगवान् की कथा को सुनकर परम भगवद्भक्त विदुरजी महान् आनन्दको प्राप्तहुए ॥ ३३ ॥ पुण्यकीर्त्ति परमयशस्वी अन्य सत्पुरुषों की कथा सुनकर जब आनन्द प्राप्त होता है तो फिर श्रीवत्सचिन्हधारी विष्णुभगवान् की कथा को सुनकर आनन्द प्राप्तहोने

॥ ३४ ॥ यो गजेन्द्रं झषग्रस्तं ध्यायंतं चरणांबुजं ॥ क्रोशंतीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद्द्रुतं ॥ ३५ ॥ तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ॥ कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥ ३६ ॥ यो वै हिरण्याक्षवधं महाद्भुतं विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ॥ शृणोति गायत्यनुमोदतेऽजसा विमुच्यते ब्रह्मवधादपि द्विजाः ॥ ३७ ॥ एतन्महापुण्यमलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषां प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं नारायणोऽन्ते गतिरंग शृण्वतां ॥ ॥ ३८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ ७ ॥ शौनक उवाच ॥ महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायंभुवो मनुः ॥ कान्यन्वतिष्ठत् द्वाराणि मार्गायावरजन्मनां ॥ १ ॥ क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकांतिकः सुहृत् ॥ यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥ २ ॥ द्वैपायनाद-

का कहनाही क्या ? ॥ ३४ ॥ यदि भक्ति कीजाय तो पशुओंको भी अनायास में ही भगवत्प्राप्ति होसक्तीहै, नहीं तो देवताओं को भी भगवत्प्राप्ति दुर्लभ है, ऐसा वर्णन करते हैं जिन भगवान् ने ग्राहके ग्रसेहुए और चरणकमल का ध्यान करनेवाले गजराज को, ' उसकी हथिनियों के दुःख के साथ चिंघारने पर ' तत्काल सङ्कट से मुक्त करदिया, तिन अनन्य शरणागत और सरलस्वभाववाले मनुष्यों करके सुखसे आराधना करने योग्य और दुष्टपुरुषों को सर्वथा जिनकी आराधना करना अशक्यहै ऐसे भगवान् की सेवा उनके उपकारों को जाननेवाला कौन पुरुष नहीं करेगा ? सबही करेंगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हेशौनकादि ऋषियो ! जो पुरुष पृथ्वी का उद्धार करने के निमित्त वराहावतार धारण करनेवाले भगवान् के हिरण्याक्ष वधरूप इस परम अद्भुत चरित्र को सुनता है, गान करता है वा दूसरे के वर्णन करने पर उसकी प्रशंसा करता है वह सहजमें ही ब्रह्महत्यादि पापों से मुक्त होजाता है ॥ ३७ ॥ हेविदुरजी ! स्वर्ग आदि की प्राप्ति करानेवाले, अत्यन्त पवित्र, धन देने वाले, कीर्त्तिकारक, आयुकी वृद्धि करनेवाले, मनोरथों को पूर्ण करनेवाले और प्राण तथा इन्द्रियों की शक्ति बढानेवाले इस चरित्र का श्रवण करनेवाले पुरुषों को अन्तकाल में श्रीनारायण से एकता होना रूप गति प्राप्त होती है ॥ ३८ ॥ इति तृतीय स्कन्धमें एकोनविंश अध्याय समाप्त॥*॥ शौनक जी ने कहा कि—हेरोमहर्षण के पुत्र सूत जी ! पृथ्वीरूप स्थान प्राप्त होनेपर स्वायम्भुव मनु ने, पहिले ईश्वर के विषैं लीनहुए अर्वाचीन प्राणियों के निर्गम (उत्पत्ति) के विषय में क्या उपाय किया ? ॥ १ ॥ तथा विदुरजी परमभगवद्भक्त और श्रीकृष्णजी के अथाह प्रेमयुक्त मित्र थे, उन्हों ने दुर्योधन आदि पुत्रों सहित अपने ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र को, श्रीकृष्णजी का अनादर करने के कारण (श्रीकृष्णजी ने पाण्डवों का भाग देनेको कहा, तिस कथनको न मानने के कारण) त्याग दिया ॥ २ ॥ और जो विदुरजी व्यासपुत्र होकर अपनी महिमाकरके व्यास

नवरो महित्वे तस्य देहजः ॥ सर्वात्मनाश्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥ ॥ ३ ॥ किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया ॥ उपगम्य कुशावर्त्त आसीनं तत्त्वविक्तमम् ॥ ४ ॥ तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः ॥ आपो गाङ्गा इवाघघ्नीर्हरेः पादांबुजाश्रयाः ॥ ५ ॥ ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः ॥ रसज्ञः कोऽनुतृप्येत हरिलीलाऽमृतं पिबन् ॥ ६ ॥ एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः ॥ भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ॥ लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं सञ्जातहर्षो मुनिमाह भारतः ॥ ८ ॥ विदुर उवाच ॥ प्रजापतिपतिः सृष्ट्वा प्रजासर्गे प्रजापतीन् ॥ किमारभत मे ब्रह्मन् प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥ ९ ॥ ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायंभुवो मनुः ॥ ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥ १० ॥ सद्वितीयाः किमसृजन्स्वतन्त्रा उत

जी से किञ्चिन्मात्र भी न्यून नहीं थे, क्योंकि—वह सर्वात्मभाव से श्रीकृष्णजी का आश्रय करनेवाले और श्रीकृष्णजी के भक्तों की अनुकूल रीति से सेवा करनेवाले थे ॥ ३ ॥ और जो तीर्थसेवाके प्रभावसे निष्पाप होगये थे तिन विदुरजी ने हरिद्वार में जाकर तहाँ बैठेहुए तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ मैत्रेय ऋषि से दूसरा कौन सा प्रश्न किया था ॥ ४ ॥ हेसूतजी ! उन दोनों का सम्वाद चलनेपर श्रीहरि के चरणकमलों का आश्रय करनेवाली और गङ्गाजलकी समान पापोंका नाश करनेवाली निर्मल कथाओं का ही प्रारम्भ हुआ होगा? ॥ ५ ॥ सो वर्णन करनेयोग्य उदारकर्म करनेवाले श्रीहरि की कथारूप अमृत को पीनेवाला तथा रस को जाननेवाला कौनसा पुरुष, तिस कथारूप अमृत के विषय में तृप्ति पावेगा ? अतः तिस कथा को हमारे अर्थ वर्णन करो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ६ ॥ इसप्रकार नैमिषारण्य में रहनेवाले शौनक आदि ऋषियों के प्रश्न करनेपर रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा नामक सूतजी, भगवान् के विषैं अपना मन लगाकर तिन ऋषियों से बोले कि-हे ऋषियों ! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर कहता हूँ सुनो ॥ ७ ॥ सूतजी ने कहा हे ऋषियों ! अपनी मायासे वराह अवतार धारण करनेवाले भगवान् की, पाताल से पृथ्वी का उद्धार और अनायास में हिरण्याक्ष का वध करने की लीलाको सुनकर परम आनन्दित हुए विदुरजी ने मैत्रेय ऋषि से बूझा ॥ ८ ॥ विदुरजी ने कहा कि हेमैत्रेय ऋषे ! भगवान्की आराधना की रीति को जाननेवाले सकल प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्माजी ने जगत् की सृष्टि के विषय में मरीचि आदि प्रजापतियों को उत्पन्न करके फिर किस कार्य का प्रारम्भ किया सो मुझसे कहो ॥ ९ ॥ जिन मरीचि आदि ब्राह्मण और स्वायम्भुव मनु का पहिले वर्णन करा, उन्हों ने ब्रह्माजी की आज्ञा से इस जगत् को कैसे उत्पन्न किया ? ॥ १० ॥

कर्मसु ॥ आहोस्वित्संहताः सर्वे इदं स्म समकल्पयन् ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च ॥ जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद्गुणत्रयात् ॥ १२ ॥ रजःप्रधानान्महतस्त्रिलिंगो दैवचोदितात् ॥ जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पंचशः ॥ १३ ॥ तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकं ॥ संहत्य दैवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥ १४ ॥ सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः ॥ साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥ १५ ॥ तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ॥ सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् १६ ॥ सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये ॥ लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥ १७ ॥ ससर्जच्छाययाविद्यां पञ्चपर्वाणमग्रतः ॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥ १८ ॥ विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमय-

अर्थात् उन्हों ने सपत्नीक होकर इस जगत् को उत्पन्न किया, अथवा सकल कर्मों को वह स्वतन्त्र होकर इकले ही करते थे, अथवा सबने एक साथ मिलकर परस्पर की सहायता से इस जगत्को रचा ? सो मुझसे कहिये ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि–हेविदुर जी ! जिनकी तर्कना करना अशक्य है ऐसे पूर्वकल्पके जीवोंके अदृष्ट कर्म, मायाके नियन्ता पुरुष और काल इन तीन हेतुओं से, निर्विकार भगवान् की प्रेरणा करके क्षुब्धहुए तीन गुणों से महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ वह स्वतः सत्वगुणात्मक और अहङ्कार की उत्पत्ति के समय रजोगुणमय था. दैव के प्रेरणा करेहुए तिस रजो गुणमय महत्तत्त्व से सात्विक, राजस और तामस यह तीन प्रकार का अहङ्कार उत्पन्न हुआ, तिस शब्द स्पर्श आदि पांच सूक्ष्मभूत और तिनके द्वारा आकाश आदि पञ्च महा भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और तिन के देवता, यह तत्त्व उत्पन्न हुए ॥ १३॥ वह तत्त्व एक २ होकर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने में असमर्थ थे, फिर दैवयोगसे इकट्ठे होकर उन सबोंने पञ्चमहाभूतात्मक एक सुवर्णमय ब्रह्माण्डकोश को उत्पन्न किया । १४। वह अण्डकोश, चेतनतारहित होने के कारण कुछ अधिक एक सहस्रवर्षपर्यन्त समुद्रके जल में तैसाही पडारहा, तदनन्तर उसका आश्रय करके ईश्वरही नारायणरूपबने ॥ १५ ॥ तिन नारायण की नाभि से सहस्र सूर्यकी समान अतिप्रकाशवान् और सकल प्राणियोंका निवास स्थान एक कमल उत्पन्नहुआ और तिसमें स्वयं ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ उससमय ब्रह्माण्डके गर्भरूप जलमें शयन करनेवाले तिनभगवान्ने ब्रह्माजीके अन्तःकरणमें प्रवेशकिया तब उन ब्रह्माजीने पूर्वकल्पकी समान नामरूप आदि व्यवस्थाके द्वारा इस जगत्को रचा ॥१७॥ब्रह्माजी ने अपनी छायारूप अज्ञानके द्वारा प्रथम–तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह और महातम यह पांचप्रकारकी अविद्या उत्पन्न करी ॥ १८॥ तिस अपने से उत्पन्न

यम् ॥ जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥ १९ ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुपसृष्टास्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः ॥ मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ॥ २० ॥ देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत ॥ अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ॥ २१ ॥ देवताः प्रभया या या दीव्यन् प्रमुखतोऽसृजत् ॥ ते अहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥ २२ देवोऽदेवान् जघनतः सृजति स्मा-तिलोलुपान् ॥ त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥ २३ ॥ ततो हसन् स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः ॥ अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः पराऽपतत् ॥ २४ ॥ स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥ २५ ॥ पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः ॥ ता इमा यभितुं पापा

हुई तामसी सृष्टि को देखकर खिन्न होनेवाले ब्रह्माजी ने तिस अपने देह को त्याग दिया, वह देह रात्रिरूप हुआ तदनन्तर क्षुधा और तृषाके उत्पत्तिस्थान तिन ब्रह्माजीके रात्रिरूप देहको, तिसही देहसे उत्पन्न हुए यक्ष राक्षसों ने स्वीकार किया ॥ १९ ॥ उससमय क्षुधा और तृषासे व्याकुलहुए वह यक्ष राक्षस,तिन ब्रह्माजी को ही भक्षण करनेके निमित्त उनकी ओर को दौड़े और परस्पर ऐसे कहनेलगे कि—हम क्षुधा और तृषासे व्याकुल हो रहे हैं अतः अपने पिता समझकर इनकी रक्षा न करो किन्तु इनका भक्षणही करो ॥२०॥ यह सुनकर भयभीत हुए ब्रह्माजी उन से कहनेलगे कि—अरे यक्ष राक्षसों ! तुम मेरे पुत्र हुए हो इस से मुझे भक्षण न करो किन्तु मेरी रक्षा ही करो. उन में से जिन्होंने पहिले यह कहा था कि—ब्रह्माजी को भक्षण करो वह यक्ष हुए और जिन्होंने कहा था कि—रक्षा न करो वह राक्षस हुए ॥ २१ ॥ फिर ब्रह्माजी ने प्रकाशरूप स्वरूप धारण करके अपनी कांति के द्वारा, मुख्यता करके जो २ सात्विक देवता हैं उनको उत्पन्न किया और तिस शरीर का त्याग करदिया. उससमय क्रीडा करतेहुए तिन सात्विक देवताओं ने ब्रह्माजी के त्यागे हुए उस दिनरूप कान्ति को स्वीकार किया ॥ २२ ॥ फिर ब्रह्माजीने अपनी कमर के आगे के भाग से अत्यन्त स्त्रीलम्पट दैत्यों को उत्पन्न किया, वह विषयासक्त होनेके कारण कामातुर होकर ब्रह्माजी से ही मैथुन करने को उद्यत हुए ॥ २३ ॥ तदनन्तर हँसनेवाले वह भगवान् ब्रह्माजी, निर्लज्ज असुरों को अपने पीछे लगेहुए देखकर क्रोध में भरगए और फिर उन से भयभीत होकर वेगसे भागनेलगे ॥ २४ ॥ और दौड़ते २ वह ब्रह्माजी, शरणागतों का दुःख दूर करनेवाले तथा भक्तों के उपर अनुग्रह करने के निमित्त, उनकी इच्छाके अनुसार अपना स्वरूप दिखानेवाले श्रीहरिकी शरणागत जाकर कहने लगे ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! परमात्मन् ! तुम मेरी रक्षाकरो तुम्हारी आज्ञा से मैंने जो प्रजा उत्पन्न करी वही यह पापिष्ट होकर बलात्कार से (जबरदस्ती) मैथुन करने के

उपाक्रामंति मां प्रभो ॥ २६ ॥ त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः । त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥ २७ ॥ सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ॥ विमुंचात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥ २८ ॥ तां क्वणच्चरणांभोजां मदविह्वललोचनां ॥ कांचीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसं ॥ ॥ २९ ॥ अन्योन्याश्लेषयोत्तुंगनिरंतरपयोधराम् ॥ सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ॥ ३० ॥ गूहंतीं व्रीडयात्मानं नीलालकवरूथिनीम् ॥ उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे संमुमुहुः स्त्रियम् ॥ ३१ ॥ अहो रूपमहो धैर्यमहो अस्या नवं वयः ॥ मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥ ३२ ॥ वितर्कयंतो बहुधा तां संध्यां प्रमदाकृतिं ॥ अभिसंभाव्य विश्रंभात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः । ॥ ३३ ॥ कासि कस्यासि रम्भोरु को वाऽर्थस्तेऽत्र भामिनि ॥ रूपद्रवि-

निमित्त मेरे पीछे लगरही हैं ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! दुःखी पुरुषों का पूर्ण दुःख दूर करनेवाले एक तुम ही हो और जो तुम्हारे चरणों का आश्रय नहीं करते हैं उन पुरुषों को दुःख देने वाले भी एक तुम ही हो ॥ २७ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजी के प्रार्थना करनेपर दूसरों के मन का अभिप्राय जाननेवाले तिन भगवान् ने उन की उस दीनदशा को जानकर कहा कि— हे ब्रह्माजी ! तुम इस अपने कामदूषित शरीर को त्याग दो, यह सुन ब्रह्माजी ने उस मूर्त्ति का त्याग किया अर्थात् वह मनोवासना छोड़दी ॥ २८ ॥ हे विदुरजी ! ब्रह्माजी की त्यागी हुई वह तनु सन्ध्याकाल की अभिमानी देवता हुई, कामवासना के प्रदीप्त होने का यही समय है, दैत्यों को वह सन्ध्यारूप समय स्त्री की समान प्रतीत हुआ कि—जिसके चरणकमल पायजेवों से शब्दायमान होरहे हैं, जिसके नेत्र तारुण्यमद के कारण लाल२ होरहे हैं, मेखला (तागड़ी) की लड़ों से शोभित साड़ी को धारण करने से जिस की कमर ढकीहुई है, परस्पर रगड़ लगने के कारण जिस के ऊँचे स्तनों के मध्य में कुछ भी अन्तर नहींरहा है. जिस की नासिका और दन्तों की बत्तीसी सुन्दर है, जिस का हास्य स्नेहयुक्त और चितवन लीलायुक्तहै और जिसके कालेभौंराले केशों का जूड़ा मस्तक पर शोभा देरहा है ऐसी लज्जा के कारण अपने शरीर को आँचल से ढकतीहुई तिस स्त्रीरूपिणी सन्ध्या को देखकर सकल दैत्य अत्यन्त ही मोहित होगए ॥२९॥३०॥३१॥ और परस्पर कहनेलगे कि—आहा ! इस का कैसा सुन्दर रूप है कैसी धीरता है, आहा ! इस की नवीन अवस्था कैसी अद्भुत है ! काम से पीड़ित हुए भी हम सबों में यह कामविकाररहित सी विचररही है ॥ ३२ ॥ वह कुबुद्धि अनेकों प्रकार की तर्कना करते २ स्त्रीरूपधारिणी तिस सन्ध्या का सत्कार करके बड़े प्रेम के साथ उस से बूझनेलगे ॥ ३३ ॥ कि—अरी रम्भोरु ! तू किस जाति की है, किस की कन्या है, अरी विलासिनि ! यहां तेरा क्या कार्य है ? अरी ! अपने

र्पण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥ ३४ ॥ या वा काचित्त्वमबले दिष्ट्या संद-र्शनं तव ॥ उत्सुनोपीक्षमाणानां कंदुकक्रीडया मनः ॥ ३५ ॥ नैकत्र ते जय-ति शालिनि पादपद्मं घ्नत्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम् ॥ मध्यं विषीदति बृ-हत्स्तनभारभीतं शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः ॥ ३६ ॥ इति सायन्तनीं संध्यामसुराः प्रमदायतीम् ॥ प्रलोभयन्तीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥ ३७ ॥ प्रहस्य भावगंभीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना ॥ कान्त्या ससर्ज भगवान् गन्धर्वा-प्सरसां गणान् ॥ ३८ ॥ विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियां ॥ त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ॥ ३९ ॥ सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्म-तन्द्रिणा ॥ दिग्वाससो मुक्तकेशान् वीक्ष्य चामीलयद्दृशौ ॥ ४० ॥ जगृहुस्तद्वि-सृष्टां तां जृम्भणाख्यां तनुं प्रभोः ॥ निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्यते ॥ येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥ ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं

वरनेयोग्य अमूल्यरूपसे हमदुर्भाग्यों को (समर्पण न करके) अतिदुःखित कररही है ॥ ३४ ॥ अरी अबले ! तू चाहे किसी जाति की हो, तेरा दर्शन हमें हुआ यह बड़े आ-नन्द की बात है. परन्तु अरी तू गेंद की क्रीड़ा से देखनेवाले हम सबों के मनको हरलेय है ॥ ३५ ॥ अरी शोभने ! ऊपर २ को उछलनेवाली गेंद को वारम्वार अपनी हथेली से ता-ड़न करनेवाली, तेरे चरणकमल एकस्थान पर स्थिर नहीं रहतेहैं, बड़े २ स्तनों के भार से झुकीहुई तेरी पतली कमर गेंद खेलने में अत्यन्त ही श्रम पातीहै तेरी निर्मल दृष्टि आलस्य से युक्त हुई सी जिधर तिधरको पड़तीहै और तेरी चोटीके केशोंका समूह अतिमनोहरहै ३६॥ इसप्रकार तिन मूढबुद्धि दैत्यों ने, स्त्री की समान प्रतीत होनेवाली और लोभ उत्पन्न करनेवाली तिस सायङ्कालकी सन्ध्या को, यह स्त्री ही है ऐसा मानकर ग्रहण करा॥३७॥ फिर ब्रह्माजी ने गूढ़ अभिप्राय से गम्भीरता के साथ मुसकुराकर आप ही अपने को सूँ-घनेवाली अर्थात् अपने ही स्वरूप की सुन्दरतासे गर्वीली एक तेजःपुञ्जरूप मूर्त्ति धारण करके उसके द्वारा गन्धर्व और अप्सराओं के बहुतसे गण उत्पन्न करे ॥ ३८ ॥ फिर तिस सौन्दर्ययुक्त प्रियमूर्त्ति का त्यागकिया, तिस चाँदनी रूप हुई मूर्त्ति को तिनही वि-श्वावसु आदि गन्धर्वों ने ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ फिर भगवान् ब्रह्माजी ने अपनी तन्द्रा (आलस्य) से भूत और पिशाचों को उत्पन्न किया और केशखुले दिगम्बर (नङ्गे) तिन भूत पिशाचों को देखकर उन्होने अपने नेत्र मूँदलिये ॥ ४० ॥ हे विदुरजी ! तदनन्तर तिन ब्रह्माजी की त्यागीहुई उस जम्भाई नामकमूर्त्ति को तिन ही भूतपिशाचों ने ग्रहण किया; जिस करके प्राणीमात्र में इन्द्रियों का शिथिलपना देखने में आता है उसको निद्रा कहते हैं और जिस शिथिलपने के कारण मलमूत्रादि से संयुक्त हुए अपवित्र प्रा-णियों को जो भ्रान्ति में डालते हैं तिन भूतादि के गणों को उन्माद कहते हैं; ॥ ४१ ॥

भगवानजः ॥ साध्यान् गणान् पितृगणान् परोक्षेणासृजत्प्रभुः ॥ ४२ ॥ त आत्मसर्गं तत्कायं पितरः प्रतिपेदिरे ॥ साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ॥ ४३ ॥ सिद्धान्विद्याधरांश्चैव तिरोधानेन सोऽसृजत् ॥ तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ॥ ४४ ॥ स किन्नरान् किंपुरुषान् प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः ॥ मानयन्नात्मनात्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥४५॥ ते तु तज्जगृहू रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना ॥ मिथुनीभूय गायन्तस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥ ४६ ॥ देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिन्तया ॥ सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ॥ ॥ ४७ ॥ येऽहीयन्तामुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे ॥ सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ॥ ४८ ॥ स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः ॥ तदा मनून् ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ॥ ४९ ॥ तेभ्यः सोऽत्यसृज-

तदनन्तर एकसमय अपने को बलवान् माननेवाले भगवान् प्रभु ब्रह्माजी ने, अपने अदृश्य रूप से साध्यगण और पितृगणों को उत्पन्न किया ॥ ४२ ॥ तिन साध्य और पितरों ने जिस से अपनी उत्पत्ति हुई उस ब्रह्माजी की त्यागीहुई देह को ग्रहण किया, जिस देह को पहुँचने की इच्छासे, कर्ममार्गावलम्बी पुरुष, अपने पितररूपी साध्य और पितरों को, श्राद्ध आदि करके हव्य कव्यरूप अन्न समर्पण करते हैं ॥ ४३ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी ने, अपने देखतेहुए अकस्मात् अपनी गुप्त होनेकी शक्ति से सिद्ध और विद्याधरोंको उत्पन्न किया, और उनको वह अपनी अन्तर्धान नाम अद्भुत देह अर्पण करी ॥ ४४ ॥ तदनन्तर वह प्रभु ब्रह्माजी एकसमय, अपने प्रतिबिम्ब को देखते हुए, आपही अपने को सुन्दर माननेलगे और उन्होंने अपने उस प्रतिबिम्ब के द्वारा किन्नर तथा किम्पुरुषों को उत्पन्न किया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी ने जो अपनी प्रतिबिम्ब देह त्यागीथी उसको तिन किन्नरों ने ग्रहण करलिया अतः वह दोनों गण एकसाथ मिलकर अपने बिम्बरूप ब्रह्माजी के करेहुए पराक्रम का वर्णन करके उषा(प्रभात)काल में उसका गान करते हैं ॥ ४६ ॥ तदनन्तर जब सृष्टि की वृद्धि नहीं हुई तब उसकी वृद्धि कैसे होगी ? इस बडी भारी चिन्तासे अपने विस्तारवाले शरीर को फैलाकर सोयेहुए ब्रह्माजी ने अपना मनोरथ सिद्ध न होने के कारण, क्रोध से उस शरीर को त्यागदिया ॥ ४७॥ हे विदुरजी ! उस ब्रह्माजी के शरीर से जो केश गिरेथे उनसे अहिनामक सर्प उत्पन्नहुए, और हाथ पैर सकोड़कर चलते हुए तिसही शरीर मे सर्प और नाग हुए, वह अत्यन्तही चपल और क्रोधी थे और उनका शरीर ग्रीवाके विषें फनरूपसे फैला हुआथा ॥ ४८ ॥ इसप्रकार सृष्टि करके अन्त में वह ब्रह्माजी अपने को ही, 'मैं कृतकृत्य हूँ, ऐसा मानने लगे; तदनन्तर उन्होंने अपने मनके द्वारा लोकों की रक्षा करनेवाले चौदह मनु उत्पन्न करे ॥ ४९ ॥ तिन जितेंद्रिय ब्रह्माजी ने, अपना वह पुरुषाकार शरीर तिन मनुओं को

स्त्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान्॥ तान् दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिं ॥ ॥ ५० ॥ अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं वत ते कृतं ॥ प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्साकमन्नमदामहे ॥ ५१ ॥ तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना ॥ ऋषीन् ऋषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥ ५२ ॥ तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ॥ यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ विदुर उवाच ॥ स्वायंभुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः ॥ कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥ १ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायंभुवस्य वै ॥ यथा धर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीं ॥ २ ॥ तस्य वै दुहिता ब्रह्मन् देवहूतीति विश्रुता ॥ पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयाऽनघ ॥ ३ ॥ तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः ॥ ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥ ४ ॥ रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन्दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः ॥ यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीं ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो

समर्पण करा, उससमय उन मनुओं को देखकर, पहिले उत्पन्न करेहुए देवगन्धर्वादि ब्रह्माजी की परमप्रशंसा करनेलगे ॥५०॥ अहो जगत् के रचनहार देव ! तुमने मनुओं को उत्पन्न करा यह अति उत्तम हुआ, क्योंकि इन मनुओं की सृष्टि में अग्निहोत्र आदि सकल कर्म्मोंके चलने के कारण हम सबभी तुम्हारे साथ अन्न भक्षण करते हैं ॥ ५१ ॥ तप, उपासना, योग और श्रेष्ठ समाधि के द्वारा ब्रह्माजी ने इंद्रियें वश में करके अपनी अभीष्ट ऋषिरूप प्रजाओं को उत्पन्न किया ॥ ५२ ॥ उन्होने, समाधि, योग, अणिमादि सिद्धि, तप, ज्ञान, और वैराग्य से युक्त तिस अपने शरीर का एक २ अंश उन ऋषियों को दिया ॥ ५३ ॥ तृतीय स्कन्ध में विंशतितम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ विदुरजी कहते हैं कि–हे मैत्रेयजी ! जिस में मैथुन के द्वारा प्रजावृद्धिको प्राप्त हुई है वह जगत् में परममान्य स्वायम्भुव मनु का वंश मुझसे वर्णन करिये ॥ १ ॥ और तिन स्वायम्भुवमनु के प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दोनों पुत्रों ने सात द्वीपवाली पृथ्वी का पालन कैसे किया सो भी मुझसे कहिये ॥ २ ॥ हे अनघ ! ब्रह्मन् ! तुमने देवहूति नाम से प्रसिद्ध जो तिस स्वायम्भुव मनु की कन्या और कर्दम प्रजापति की स्त्री कही तिस यम नियम आदि योगके लक्षणों से युक्त देवहूतिके विषैं तिन महायोगी कर्दम ऋषिने कितनी सन्तानें उत्पन्न करीं, उनको सुनने की इच्छा करनेवाले मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माजी के पुत्र भगवान् रुचि ऋषि तथा दक्ष प्रजापतिने मनु की आकूति और प्रसूति नाम्नी कन्याओं को पाकर जैसी सृष्टि करी सोभी कहिये ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी

ब्रह्मणोदितः ॥ सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥ ६ ॥ ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः ॥ संप्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषं ॥७॥ तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षः कृते युगे ॥ दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥ ८ ॥ स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजं ॥ स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोंबरं॥९॥किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरं ॥ श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्शस्मितेक्षणं॥१०॥विन्यस्तचरणांभोजमंसदेशे गरुत्मतः॥दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षःश्रियं कौस्तुभकंधरं११जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः॥ गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृतांजलिः॥१२॥ ऋषिरुवाच ॥ जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ॥ यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः ॥ १३ ॥ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्पादा-

ने कहा हे विदुरजी ! प्रजाओं को रच, इसप्रकार ब्रह्माजी के आज्ञादियेहुए भगवान् कर्दमजीने सरस्वती के तटपर दशसहस्र वर्षपर्यन्त तपस्या करी ॥ ६ ॥ तदनन्तर कर्दम ऋषि समाधिसहित क्रिया-योगके द्वारा भक्ति करकै शरणागतों को वरदेनेवाले भगवान् की सेवा करनेलगे ॥ ७ ॥ हे विदुरजी ! उससमय सत्ययुग था उस में दश सहस्रवर्ष पर्यन्त तपस्या होनेपर प्रसन्नहुए कमलनयन भगवान् ने, वेदों करके ही जाननेयोग्य ब्रह्ममय स्वरूप को धारण करके तिन कर्दम ऋषि को दर्शन दिया । ८ ॥ उससमय तिन कर्दमजीने, सूर्य की समान निर्मल और जिनके कण्ठ में सूर्यविकासी स्वेतकमलों की और चन्द्रविकासी कुमुदों की माला है, जिन के मुखकमलपर चिकने और कालेभौंरे की समान केशों के समूह हैं, जो निर्मल पीताम्बरधारण करेहुए हैं ॥ ९ ॥ जिन्होंने, मस्तकपर किरीट, कानों में कुण्डल और हाथों में शंख, चक्र तथा गदा धारणकरीहै, जिन्होंनें चौथे हाथ में क्रीडा के निमित्त एकश्वेत कमल धारण करा है, जिनका हास्य के साथ अवलोकन मनको आनन्द देनेवाला है ।। १० । जिनके वक्षःस्थल में लक्ष्मी और कण्ठ में कौस्तुभ रत्न है ऐसे, गरुडजी के कन्धेपर अपना चरणकमल रखकर आकाश में आये हुए भगवान् को देखकर ॥ ११ ॥ कर्दमऋषि को अपना मनोरथ पूर्ण हुआ प्रतीत होकर हर्ष हुआ और उन्होंने प्रेमयुक्त चित्त से भगवान् को पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर आगे कहेहुए वाक्यों के द्वारा उनकी स्तुति करी ॥ १२ ॥ कर्दमजी कहनेलगे कि- हे स्तुतियोग्य ! परमेश्वर ! यह बड़े आनन्द की बात है कि-हमने आज, सकल जीवों के समूहरूप आप के दर्शन से अपने नेत्रों की सफलता प्राप्त करी. क्योंकि—पवित्र कुल में अनेकों जन्म धारण करके योगसिद्ध हुए योगीजन तिस आप के दर्शन की इच्छा करते हैं परन्तु उनको दर्शन नहीं होता है ॥१३॥ हे ईश्वर ! तुम्हारी

रविंदं भवसिंधुपोतम् ॥ उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥ १४ ॥ तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ॥ उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघांघ्रिपस्य ॥ १५ ॥ प्रजापतेस्ते वचसाऽधीश तंत्या लोकः किलायं कामहतोनुबद्धः ॥ अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्लानिमिषाय तुभ्यम् ॥ १६ ॥ लोकांश्च लोकानुगतान्पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ॥ परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥ ॥ १७ ॥ न तेजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ॥ षण्नेम्यनंतच्छदि यत्त्रिणाभि करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥ १८ ॥ एकः स्वयं सन् जगतः सिसृक्षयाद्वितीययात्मन्नधियोगमायया ॥ सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णना-

मायासे जिनकी बुद्धि नष्ट होगई है वही पुरुष विषयों के लेशमात्र के निमित्त संसार समुद्र से तरने में नौकारूप तुम्हारे चरणकमलों की सेवा करते हैं तुमतो उनको वह विषयभोग भी देतेहो जो कि—नरकवासी जीवोंको भी प्राप्त होजातेहैं १४ हेईश्वर इसप्रकार सकाम पुरुषों की निंदा करनेवाला मैं भी, तिन पुरुषोंकी समान होकर अपनेसे स्वभाववाली और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति करानेवाली स्त्री को वरने की इच्छा से कल्पवृक्ष की समान सकल मनोरथ पूर्ण करनेवाले तुम्हारे चरणकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ ॥ १५ ॥ हे धर्ममूर्ते ! परमेश्वर ! तुम प्रजानाथ की वाणीरूप डोरी से जैसे यह सकामलोक बँधाहुआ है तैसेही मैं भी तिन लोकों के अनुसार देव, ऋषि और पितरों के ऋणसे मुक्त होने के निमित्त कालरूप आपको बलि समर्पण करता हूँ अर्थात् कर्ममय आपकी आज्ञा का पालन करने के निमित्त स्त्री की इच्छा करता हूँ ॥ १६ ॥ हे देव ! तुम्हारे भक्त तो, विषयासक्तपुरुषों को तथा उनके अनुसारी मुझसमान कर्म जड़ों को कुछ न गिनकर, तापत्रयनाशक तुम्हारे चरणरूप छत्र का आश्रय करके परस्पर संसार को दूर करनेवाली तुम्हारी कथारूपअमृत का श्रवण कीर्त्तन आदि पान करके क्षुधा तृषा आदि देह धर्मोंको दूर करते हैं ॥ १७॥ इसकारण ही ब्रह्मरूप धुरीमें चारों ओर फिरनेवाला, अधिकमास सहित तेरहमास जिसके दाँते हैं, तीनसौ साठ दिनरातरूप जिस के पर्व अर्थात् जोड़हैं, छः ऋतुरूप जिसमें नेमि हैं क्षण और लव आदि रूप जिसमें पत्ते की समान धारा हैं, तीन चातुर्मास्य जिसमें आधारभूत चक्र (आमन) हैं ऐसा चराचर जगत् की आयु को खैंचकर भागनेवाला, तीव्रवेगवान् यहतुम्हारा सम्वत्सरात्मक कालचक्र इनतुम्हारे भक्तोंकी आयुको कम नहींकरसक्ता हे भगवन् ! तुम स्वयं एकही, जगत् को उत्पन्न करने की इच्छासे अपने विषैं धारण करी हुई अद्वितीय योगमाया के द्वारा प्रकटहुई अपनी शक्तियों करके, भीतपर जाले पूरनेवाली मकड़ी की समान इस जगत्को उत्पन्न करते हो, इस का पालन करते हो और

भिर्भगवान् स्वशक्तिभिः॥१९॥ नैतद्बताधीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मं॥अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या तनुवा विलक्षितः॥२०॥ तं त्वाऽनुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमायया वर्त्तितलोकतन्त्रं ॥ नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पीयसि कामवर्षं॥२१॥ ऋषिरुवाच॥इत्यव्यलीकं प्रणुतोऽब्जनाभस्तमाबभाषे वचसाऽमृतेन॥सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः॥ ॥ २२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ विदित्वा तव चैत्यं मे पुरैव समयोजि तत् ॥ यदर्थमात्मनि यमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥ २३ ॥ न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्ष मदर्हणं ॥ भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनां ॥ २४ ॥ प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमङ्गलः ॥ ब्रह्मावर्त्तं योऽधिवसन् शास्ति सप्तार्णवां

अन्त में इस का संहार भी करते हो ॥ १९॥ हे ईश्वर ! तुम हम भक्तों को जो शब्दादि विषयसुख देते हो,यह मायाकल्पित होने के कारण यद्यपि तुम्हे,भक्तों को देना अभीष्ट नहीं है तथापि कृपाकरके हमारे अर्थ अनुग्रह के निमित्त, वह हमको प्राप्त हो अर्थात् हमारे देवता, ऋषि और पितरों के ऋणसे मुक्त होनेपर वह हमको मुक्ति देनेवाला हो क्योंकि माया के द्वारा तुलसी की माला से शोभायमान अपनी सगुणमूर्त्ति से हमें दर्शन दिया है इस से हमें भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हों ॥ २० ॥ हे देव ! जो तुम अपनी मायाके द्वारा इस जगत् के व्यवहार चलने के निमित्त अनेकों साधन उत्पन्न करते हो अर्थात् सकल प्राणियों को विषयभोग देतेहो और ज्ञानके द्वारा प्राणियों के सकल कर्मों को नष्ट करके उनको मुक्ति देतेहो इसकारण ही सकाम और निष्काम पुरुष जिन, आपके चरणों को वन्दना करते हैं और थोड़ी सी आराधना करनेपर भी जो तुम भक्तों के मनोरथ पूर्ण करते हो तिन आप भगवान् को मैं वारम्वार नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! इसप्रकार निष्कपटभाव से स्तुति कियेहुए, गरुड़जी के कन्धेपर बैठकर शोभित होनेवाले और प्रेमयुक्त मन्दहास्य के साथ अवलोकन करने से जिनकी भृकुटि भ्रमणकररही है ऐसे वह कमलनाभ भगवान्, अमृतसमान, वाणी से तिनकर्दम ऋषि के प्रति कहनेलगे ॥ २२ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–तुमने जिस के निमित्त उत्तम प्रकार से अपने नियमों के द्वारा मेरा पूजन किया है तिस तुह्मारे हृदय के भावको जानकर मैंने पहिलेसे ही उस कार्यकी उत्तमता से टीकठाक करलोहै ॥ २३ ॥ हे प्रजापति कर्दम ! साधारण पुरुषों करके भी कराहुआ मेरा पूजन कदापि निष्फल नहीं होता है फिर जिन्होने अपने चित्तको एकाग्र करके मेरे विषैं लगाया है ऐसे तुमसे महात्माओं का कराहुआ मेरा पूजन कैसे निष्फल होगा ? ॥ २४ ॥ जिसका सदाचार सवत्र प्रसिद्ध है ऐसा ब्रह्माजी का पुत्र स्वायम्भुवमनु नामक एक सार्वभौम राजाहै जो ब्रह्मावर्त्त

महीं ॥ २५ ॥ स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया ॥ आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥ २६ ॥ आत्मजामसितापांगीं वयःशीलगुणान्वितां ॥ मृगयंतीं पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ॥ २७ ॥ समाहितं ते हृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् ॥ सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ॥ ॥ २८ ॥ या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति ॥ वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यंत्यंजसात्मनः ॥ २९ ॥ त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः ॥ मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ॥ ३० ॥ कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ॥ मय्यात्मानं सहजगद्द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि मां ॥ ॥ ३१ ॥ सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने ॥ तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं तमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः ॥ जगाम बिंदुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥ ३३ ॥ निरीक्षतस्तस्य ययावशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ॥ आकर्णयन्पत्त्ररथेन्द्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम॥

में रहताहुआ सात समुद्रपर्यन्त की पृथ्वीका पालन करता है॥२५॥हे ब्राह्मण! धर्मके तत्व को जाननेवाला वह राजर्षि तुझे देखनेके निमित्त अपनी शतरूपारानी सहित परसोंके दिन यहां आवेगा॥२६॥ हे प्रभो ! योग्यपति पाने की इच्छाकरनेवाली श्यामवर्ण नेत्रकटाक्षों से युक्त और अवस्था सुन्दर स्वभाव तथा गुणोंसे युक्त अपनीकन्या को वह मनु, अवस्था आदि करके योग्य तुमको समर्पण करेगा॥२७॥हे ब्राह्मण ! वह राजकन्या, विवाह होनेपर आगे को दश सहस्र वर्ष पर्यंत यथेष्ट रीति से तुम्हारी सेवा करेगी तिससे तुम्हारा अन्तःकरण उस स्त्री के विषैं निरन्तर सावधानी के साथ लगारहेगा ॥ २८ ॥ फिर वह देवहूति तुम्हारा वीर्य अपने गर्भ में धारण करके नौ कन्याओं को उत्पन्न करेगी,उन तुम्हारी नौ कन्याओं के विषैं मरीचि आदि ऋषि अनायास में ही अपने पुत्र उत्पन्न करेंगे ॥ २९ ॥ तुमभी मेरी वेदरूप आज्ञा के अनुसार उत्तम अनुष्ठान करके शुद्धांतःकरण होवोगे और मेरे विषैं सकल कर्मों के फल समर्पण करके मेरी शरण आओगे ॥ ३० ॥ पहिले गृहस्थ आश्रम में तुम जीवों के ऊपर दया करके अर्थात् उनको अन्न वस्त्र आदि देकर और फिर सन्यास धर्म के द्वारा उन सबों को अभय देकर ज्ञानवान् हुए तुम, जगत् सहित अपने को मेरे में और मुझको भी अपने में देखोगे ॥ ३१ ॥ हे महामुने! मैंभी अपने अंशरूप कला के द्वारा तुम्हारे वीर्य से संयुक्त होकर तुम्हारी देवहूति नामक स्त्री के विषैं अवतार धारूँगा और सांख्य शास्त्ररूप संहिता की रचना करूँगा ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! इसप्रकार उन कर्दम ऋषि से कहकर तदनन्तर इन्द्रियों को वश में करनेपर प्रकट होनेवाले तिन भगवान् ने, सरस्वती नदी से घिरेहुए उस

॥ ३४ ॥ अथ संप्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः ॥ आस्ते स्म विंदुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥ ३५ ॥ मनुः स्यंदनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् ॥ आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीं ॥ ३६ ॥ तस्मिन् सुधन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् ॥ उपायादाश्रमपदं मुनेः शांतव्रतस्य तत् ॥ ३७ ॥ यस्मिन् भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिंदवः ॥ कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशं ॥ ३८ ॥ तद्वै विंदुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतं ॥ पुण्यं शिवामृत-जलं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३९ ॥ पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः ॥ सर्व-र्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियाऽन्वितं ॥ ४० ॥ मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमर-विभ्रमं ॥ मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलं ॥ ४१ ॥ कदंबचंपकाशोककरंज-बकुलासनैः ॥ कुन्दमन्दारकुटजश्चूतपोतैरलंकृतं ॥ ४२ ॥ कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः

विन्दुसर से अपने लोक को गमन किया ॥ ३३ ॥ तप और मन्त्रजप आदि साधनों से सिद्धहुए योगीश्वरों ने जिन के वैकुण्ठ मार्ग का सर्वोत्तम रूप से वर्णन करा है ऐसे तिन परमात्मा ने उन कर्दम ऋषि के देखतेहुए, अपने वाहनरूप गरुड़जी के वृहद्रथन्तर नामक पक्षों करके उच्चारण करेहुए होने के कारण स्पष्ट सुनने में आनेवाले सामगान को और उस की आश्रय ऋचाओं को सुनते हुए गमन किया ॥३४॥ इसप्रकार उन शुद्धस्वरूप परमात्मा के तहां से चलेजानेपर वह भगवान् कर्दम ऋषि, 'परसों के दिन स्वायम्भुव मनु यहां आवेंगे ऐसे' भगवान् के कहेहुए समय की बाट देखते हुए तिस विन्दुसर के तटपर अपने आश्रम में रहे ॥ ३५ ॥ हे उत्तम धनुष धारण करनेवाले विदुरजी ! इधर स्वायम्भुवमनु भी अपनी स्त्रीसहित सुवर्ण के भूषणों से शोभित रथमें बैठकर और अपनी कन्या को भी रथपर बैठाकर पृथ्वीपर विचरतेहुए जो दिन भगवान् ने कहा था उस दिन, शान्तस्वभाव तिन कर्दम ऋषि के आश्रम में पहुँचे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जहाँ शरणमें आयेहुए कर्दमजी के ऊपर करीहुई कृपा से व्याप्त हुए भगवान् के नेत्रों में से प्रेम के अश्रुओं की बिन्दु तहांके सरोवर में गिरीथीं अतः तिस आश्रम और सरोवर का बिन्दुसरोवर नाम पड़ाहै, वह पवित्र सरोवर सरस्वती नदी करके चारोंओर से घिराहुआथा, और आरोग्यकारी अमृतसमान जलसे भराहुआ होने के कारण बड़े २ ऋषियों की मण्डली से सेवा किया हुआथा, तहां मधुरभाषी मंगलकारी पशुपक्षी रहते थे, वह आश्रम का स्थान पवित्र वृक्ष लताओं के झाड़ों से युक्त था और सब ऋतुओं में आनेवाले फल तथा पुष्पों से परिपूर्ण होकर स्वयं उत्पन्न हुए गछेहुए वनके वृक्षों की पंक्तियों से शोभायमान था; मत्त हुए मयूररूप नटोंकी नृत्यछटासे शोभायमानथा और मत्तहुए कोकिल तहां कूक माररहेथे; कदंब चम्पा, अशोक, कंजा, मौलसिरी, असन, कुन्द, मन्दार, कुटज और आँबके पौधोंसे शो-

कुररैर्जलकुक्कुटैः ॥ सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गुकूजितं ॥ ४३ ॥ तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवयकुञ्जरैः ॥ गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥ ४४ ॥ प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः ॥ ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन्हुतहुताशनं ॥ ४५ ॥ विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरं ॥ नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापांगावलोकनात् ॥ ४६ तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥ प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् ॥ उपसंसृत्य मलिनं यथाऽर्हणमसंस्कृतम् ॥ ४७ ॥ अथोटजमुपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः ॥ सपर्यया पर्यगृह्णात्प्रतिनंद्यानुरूपया ॥ ४८ ॥ गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः ॥ स्मरन् भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥४९॥ नूनं चंक्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते ॥ वधाय चासतां यस्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥५०॥ योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां

भित ! जलकाक, जलके ऊपर तैरनेवाले बत्तक आदि पक्षी, हंस. कुरर, जलमुरग, सारस, चकवा और चकोर की मधुर कलकलाहटसे युक्त, और हरिण, शूकर, सेई, वनगौ, हाथी गोपुच्छ (सकल शरीर में कृष्णवर्ण और ताम्रवर्ण मुख तथा गौ की समान पूँछवालाएक प्रकार का वानर), सिंह, वानर, मर्कट, नकुल और कस्तूरीमृग, इनसे वह आश्रमव्याप्त था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तिस आदि राजा स्वायम्भुव मनुने, अपनी कन्या सहित तिस पवित्र आश्रम में प्रवेश करके, तहां ब्रह्मचारियों के योग्य अग्नि में हवन करके बैठेहुए कर्दम ऋषि को देखा ॥ ४५ ॥ वह मुनि बहुत काल पर्यन्त उग्रतपस्या में लगनेवाले अपने शरीर से प्रकाशवान् थे, और यद्यपि वह वास्तव में तपस्या करने के कारण दुर्बल थे तथापि भगवान् के प्रेमपूर्वक कटाक्षों के अवलोकन करके और उनके साथ भगवान् ने जो भाषण किया था वही अमृतरूपी चन्द्रकला में की सुधा तिसके श्रवण के द्वारा प्राशन (पान) करके वह अतिदुर्बल नहीं दीखते थे ॥ ४६ ॥ और आकार में ऊँचे, जटाधारी, वल्कल (वृक्षकी छाल) ओढ़े तथा कमल के पत्रकी समान नेत्रवाले तिन मुनिके समीप जाकर स्वायम्भुव मनुने जो देखा तो जैसे कोई महामूल्य तेज पुञ्ज रत्न ऊपरसे संस्कार (जिलो) न होनेके कारण मलिन दीखता है तैसे उन मुनि को देखा ॥४७॥ तदनन्तर कर्दमजीने अपनी पर्णकुटी में आयेहुए और अपने आगे नम्रहुए तिस राजाको आशीर्वाद देकर योग्यपूजासे उसका सन्मान किया ॥४८॥ तदनन्तर भगवान् की आज्ञाको स्मरण करतेहुए वह मुनि, पूजाको ग्रहण करके नम्रतासे आगे बैठेहुए स्वायम्भुव मनु को, अपनी मधुर वाणी से सन्तुष्ट करतेहुए कहनेलगे कि-॥४९॥ हे राजन् ! तुह्मारा पृथ्वीपर विचरना निःसन्देह सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के दमन के निमित्त है. क्योंकि-तुम विष्णुभगवान् की प्रत्यक्ष पालनशक्तिरूप हो ॥ ५० ॥

यमधर्मप्रचेतसाम् ॥ रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः॥५१॥ न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितं ॥ विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डो रथेन त्रासयन्नघान् ॥५२॥ स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मण्डलं भुवः ॥ विकर्षन् बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥५३॥ तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः॥ भगवद्रचिता राजन् भिद्येरन्बत दस्युभिः॥५४॥अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः ॥ शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो विनङ्क्ष्यति ॥ ५५ ॥ अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः ॥ तद्वयं निर्व्यलीकेन मतिपद्यामहे हृदा ॥ ५६ ॥ इति श्रीभा० महा०तृ०स्क० एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिं ॥ सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥ ॥ १ ॥ मनुरुवाच ॥ ब्रह्माऽसृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया ॥ छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलंपटान् ॥ २ ॥ तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात्सह-

तुम जगत् को पालन करने के निमित्त सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, इन्द्र, वायु, यमधर्मराज और वरुण का स्वरूप अपनेविषै धारण करते हो तिन विष्णुरूप आपको मेरा नमस्कार हो ५१ हे राजन्! टन २ शब्दकारी भयङ्कर धनुष को धारण करनेवाले तुम,अपने विजयी,रत्न जटित रथ में बैठकर, तिस रथ के घरघराहट शब्द करके शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करतेहुए और अपनी सेना के चरणों से खूँदेहुए भूमण्डल को कम्पायमान करतेहुए बड़ी भारी सेना को साथ लेकर यदिसूर्य की समान भ्रमणनहीं करो तो—॥५२॥५३॥हेराजन्! वर्णों की और आश्रमों की व्यवस्था के विषय में भगवान् की बाँधीहुई सकल मर्य्यादा को चोर(नास्तिक)अस्तव्यस्त करडालें तब कितना अनर्थ होजाय?॥५४॥ और यदितुम धर्मकी रक्षा करने के विषय में उदासीन होजाओ तो स्वेच्छाचारी और धनलोभी पुरुषों करके अधर्म बहुत ही बढ़जाय और दुष्टपुरुषों से पीड़ित हुआ यह जगत् नष्ट होजाय॥५५॥ तथापि हेवीर! तुम विशेषताकरके (खासकर) जिसकारणसे यहां ही आयेहो,वह कारण मैं तुम से बूझता हूँ और उसको मैं निष्कपट मन से स्वीकार करूँगा ॥५६॥ इतितृतीय स्कन्ध में एक विंश अध्याय समाप्त ॥२१॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी! इसप्रकार जिनके सकल गुण और कर्म्मोंका उत्तमता के साथ स्पष्ट वर्णन करा है ऐसे वह सार्वभौम स्वायम्भुव मनु,अपनी कीर्तिका वर्णन सुन लज्जितसे होकर,अपनाकथनसमाप्त करके स्वस्थ बैठेहुए तिन कर्दम ऋषिसे बोले॥१॥मनुने कहा कि–हेऋषे!वेदमय ब्रह्माजीने अपने वेदरूप शरीरकी रक्षा होनेके निमित्त अपने मुखसे,तप,ज्ञान और अष्टाङ्गयोगयुक्त तथा विषयोंमें लम्पट न होनेवाले तुम ब्राह्मणोंको उत्पन्न कियाहै॥२॥ और तिन ब्राह्मणोंकी रक्षाके निमित्त तिनही अनन्त चरण ब्रह्माजी ने अपने अनन्त हाथों से हम क्षत्रियों को उत्पन्न कियाहै

त्रपात् ॥ हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमङ्गं प्रचक्षते ॥ ३ ॥ अतो ह्यन्योऽन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ॥ रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥ तव संदर्शनादेवच्छिन्ना मे सर्वसंशयाः ॥ यत्स्वयं भगवान्प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥ ५ ॥ दिष्ट्या मे भगवान् दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् ॥ दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥ ६ ॥ दिष्ट्या त्वयाऽनुशास्तोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान्॥ अपावृतैः कर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥७॥ स भवान् दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम ॥ श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम ॥ अन्विच्छति पतिं युक्तं वयःशीलगुणादिभिः ॥ ९ ॥ यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् ॥ अशृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥ १० ॥ तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतां मया ॥ सर्वात्मनाऽनुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥ ११ ॥ उद्यतस्य

इसकारण ब्राह्मणकुल का उनको हृदय और क्षत्रियकुलको उनका शरीर कहते हैं॥ ३ ॥ इसप्रकार एकही शरीर से सम्बन्ध होने के कारण अपनी २ और परस्पर की रक्षा करने वाले तिन ब्राह्मण और क्षत्रियों की वही देव रक्षा करता है कि–जो सर्वजगत् रूप होकर निर्विकार है ॥४॥ हे ऋषे ! आप के दर्शन से मेरे सकल संशय दूर होगए,क्योंकि–प्रजाकी रक्षा करने की इच्छा करने वाले मेरा कर्त्तव्य कर्म तुमने आपही परमप्रीति के साथ वर्णन किया ॥ ५ ॥ अधिक क्या कहूँ ! जो अपने मनको वशमें नहीं करते हैं तिन पुरुषों के देखने में न आनेवाले आपका दर्शन मुझे हुआ अतः मेरा अहोभाग्य है ! और आपके मङ्गलकारी चरणरज का स्पर्श मेरे मस्तक को हुआ यहभी बड़े आनन्द की वार्त्ता है ॥ ६ ॥ अहाहा !! मेरे भाग्योदय से ही तुमने मेरे अर्थ राजधर्म का उपदेश करके मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है और मैंने भी प्रारब्ध के उदय करके ही अपने खुलेहुए कर्णरन्ध्रों से आप के मनोहर भाषण सेवन करे हैं ॥ ७ ॥ अतः हे ऋषे ! कन्या के प्रेमके कारण ' इसको योग्यवर कैसे मिलेगा ? ' इस चिन्ता से खिन्नचित्त हुए मुझदीन के कथन को आप कृपा करके श्रवण करलें ॥ ८ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहिन यह मेरी देवहूति नामक कन्या अवस्था–स्वभाव और गुण आदि करके योग्य पति की इच्छा करती है ॥ ९ ॥ तुम्हारा स्वभाव, विद्या, रूप, अवस्था और गुण जब इस ने नारद मुनि से सुना तब से ही इस ने तुम्हें वरने का निश्चय करलियाहै॥ १०॥ अतः हेद्विजवर ! भक्तिपूर्वक मेरी समर्पण करीहुई इस कन्या को तुम स्वीकार करो, क्योंकि–गृहस्थाश्रम के कर्मों में सब प्रकार से यह तुम्हारे योग्य है ॥ ११ ॥ इस प्रार्थना को आप नहीं न करें, क्योंकि–सकल संगों

हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ॥ अपि निर्मुक्तसंगस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥ १२ ॥ य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते ॥ क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥ १३ ॥ अहं त्वाऽशृणवं विद्वन् विवाहार्थं समुद्यतम् ॥ अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा ॥ आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥ १५ ॥ कामः स भूयान्नरदेव तस्याः पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः ॥ क एव ते तनयां नाद्रियेत स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ॥ १६ ॥ यां हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम् ॥ विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमानाद्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥ १७ ॥ तां प्रार्थयन्तीं ललनाललामसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ॥ वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥

का त्याग करनेवाले पुरुष को भी स्वयं प्राप्त हुए विषय का निरादर करना उचित नहीं फिर विषयासक्त पुरुष को कैसे उचित होसक्ता है ? ॥ १२ ॥ जो पुरुष विनो याचना के अपने पास आईहुई वस्तु का अनादर करके फिर उस वस्तु की किसी कृपण पुरुष से याचना करता है उसका यश यदि सर्वत्र फैलाहुआ हो तब भी नष्ट होजाता है और अन्य पुरुषों से तिरस्कार होकर उसका मानभङ्ग भी होता है ॥ १३ ॥ हे विद्वन् ! मैंने सुना है कि—आप विवाह के निमित्त उद्यत हैं अतः सावधि (गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेपर्यंत) ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाले तुम मेरी अर्पण करीहुई इस कन्या को स्वीकार करो ॥ १४ ॥ ऋषि ने कहा कि—हे राजन् ! ठीक है, वास्तव में मेरी विवाह करने की इच्छा है और यह तुम्हारी कन्या भी अप्रत्ता है अर्थात् तुमने किसी दूसरे को इसके देने का वचन नहीं दिया है अतः हम दोनों की अनुरूप (यथोचित) यह पहिली ही विवाह की विधि है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! वेद में कहीहुई विधि के विषय में प्रसिद्ध यह जो तुम्हारा अपनी कन्या का मेरे साथ विवाह करने का मनोरथ है सो पूर्ण हो, क्योंकि-अपने शरीर की कान्ति से आभूषण आदि की शोभाका तिरस्कार करनेवाली तुम्हारी कन्याका कौन आदर नहीं करेगा ? ॥ १६ ॥ पहिले एकसमय पायजेब पहिरने के कारण रुनझुन् २ शब्द करनेवाले चरणों से जो शोभायमान थी और जिसके नेत्र गेंद की ओरको लगे होनेके कारण चञ्चल होरहे थे ऐसी, राजभवन की छत्तपर क्रीड़ा करनेवाली जिस तुम्हारी कन्या को देखकर, अति मोहसे व्याकुलचित्त हुआ विश्वावसु नामक गन्धर्व, अपने विमानमें से नीचे गिरपड़ा था १७ ऐसी. स्त्रियों में अतिसुन्दर, लक्ष्मी की सेवा से रहित पुरुषों को जिसका दर्शनपर्यन्त भी होना कठिन है ऐसी तुझ मनुकी कन्या और उत्तानपाद राजा की बहिन, यदि अपने घर आकर पति होने के निमित्त अपनी प्रार्थना करतीहै तो कौनसा ज्ञाता (समझदार)

॥ १८ ॥ अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे । अतो धर्मान्पारमहंस्यमुख्यान् शुक्लप्रोक्तान् बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥ १९ ॥ यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वावतिष्ठते ॥ प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं परं प्रमाणं भगवाननन्तः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाष आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ॥ धियोपगृह्णन् स्मितशोभितेन मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥ २१ ॥ सोऽनुज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् ॥ तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥ २२ ॥ शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् ॥ दंपत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासःपरिच्छदान् ॥ २३ ॥ प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः ॥ उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥ २४ ॥ अशक्नुवंस्तद्विरहं मुञ्चन्बाष्पकलां मुहुः ॥ आसिञ्चदम्ब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥ २५ ॥ आमन्त्र्य तं मुनि-

पुरुष उस को अङ्गीकार नहीं करेगा ? ॥ १८ ॥ अतः कुछ नियमित कालपर्यन्त अर्थात् मेरे देहसे गिरेहुए वीर्य को यह धारण करे तवतक मैं इस साध्वी को ग्रहण करूँगा.तदनन्तर संन्यास लेकर भगवान् के कहेहुए ज्ञान को प्राप्त करनेमें मुख्य और हिंसारहित शम दम आदि धर्मों को बहुत आदर के साथ स्वीकार करूँगा ऐसा मेरा विचार है॥ १९ ॥ क्योंकि—जिनसे अनेकों चमत्कारों का भराहुआ यह जगत् उत्पन्न हुआ है, जिन के विषैं इस का लय होगा, और इससमय यह जगत् जिन के विषैहै वह प्रजापतियों के अधिपति अनन्त भगवान् ही केवल मुझे मान्यहैं अर्थात् तीनों ऋणों से मुक्त होनेपर संन्यास ग्रहण करने के विषय में तिन भगवान् की ही मुझे आज्ञा है ॥ २० ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हेउग्रधनुपधारण करनेवाले विदुरजी ! वह कर्दमऋषि इतनाही कहकर अपनी बुद्धि से पद्मनाभ भगवान् का ध्यान करतेहुए स्वस्थ वैठगए, उससमय उनके मन्दहास्य से शोभित मुखकी ओर को देखकर देवहूति का चित्त उनको वरने को लोभी हुआ ॥२१॥ कर्दमजी का कथन सुनकर वहमनुभी,अपनी रानी और कन्याके निश्चयको स्पष्ट रीतिसे जानकर प्रसन्नहुए और उन्होंने अनेकों गुणगणोंसे युक्त तिन कर्दम ऋषिको शीलादिगुणवती अपनी कन्या समर्पण करी २२ उससमय महारानी शतरूपा ने वड़े प्रेम से तिन दोनों कन्या और वरको वड़े२ मूल्य के दहेज, भूषण, वस्त्र और गृह के योग्य पात्रादि दिये ॥ २३ ॥ इसप्रकार वह सार्वभौम मनु अपनी कन्या, योग्य वरको देकर निश्चिन्त हुए और तहाँ से जातेसमय उन्होंने अपनी कन्या को भुजाओं से आलिङ्गन किया और उसके विरह को न सहकर उत्कण्ठा मे गद्गदचित्त हुए और वारंवार नेत्रों में से प्रेमाश्रु बहातेहुए अरी पुत्रि ! अरी वेटी ! इसप्रकार कन्या से कहतेहुए उन्हो ने उस के सकल शिर के केश भिजोदिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

वरमनुज्ञातः सहानुगः ॥ प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥ २६ ॥ उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः ॥ ऋषीणामुपशांतानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥ २७ ॥ तमायांतमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्त्तात्प्रजाः पतिं ॥ गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥ २८ ॥ बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसंपत्समन्विता ॥ न्यपतन्यत्र रोमाणि यज्ञस्यांगं विधुन्वतः ॥ २९ ॥ कुशाः काशास्त एवासन् शश्वद्धरितवर्चसः ॥ ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे ॥ ३० ॥ कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगवान्मनुः ॥ अयजद्यज्ञपुरुषं लब्धा स्थानं यतो भुवं ॥ ३१ ॥ बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निर्विश्य समावसत् ॥ तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥ सभार्यः सप्रजः कामान् बुभुजेऽन्याविरोधतः ॥ ३२ ॥ संगीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ॥ प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन्हरेः

तदनन्तर तिन ऋषिवर कर्दमजी से बूझकर, उनके आज्ञा देनेपर, वह राजा, स्त्री सहित रथ पर चढ़े और सेवकों सहित अपने नगर को चलदिये ॥ २६ ॥ उससमय ऋषिकुलके योग्य जो सरस्वती नदी तिसके सुन्दर दोनो तटोंपर के अतिशान्त ऋषियों की आश्रमरूप सम्पत्तिको देखते २ मार्ग से चलेगए ॥ २७ ॥ इधर ब्रह्मावर्त्त देश की सकल प्रजा, अपनी रक्षा करनेवाला राजा देशको आरहा है,ऐसा जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और उनकेगुण गाकर स्तुति करतीं और बाजे बजाती हुई ब्रह्मावर्त्त में से निकलकर उनके सन्मुख गईं ॥ २८ ॥ इस देश में सकल प्रकार की सम्पत्तियों से पूर्ण एक बर्हिष्मती नामक राजधानीथी, जिसमें पहिले यज्ञवराह अवतार धारण करनेवाले भगवान् ने अपने शरीरको कम्पायमान कराथा तव उससे भूमिपर रोम गिरेथे ॥ २९ ॥ वही रोम नित्य हरेवर्ण के रहनेवाले कुश और कांस (कुशका एक भेद) रूपसे पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे, जिस कुश और कांस के द्वारा ऋषियों ने यज्ञनाशक राक्षस आदि का तिरस्कार करके विष्णु भगवान् की प्रीति के निमित्त यज्ञ कियाथा ॥ ३० ॥ वराहरूप भगवान्से भूमिरूपस्थान मिलनेपर भगवान् मनुने भी जिस नगरी में कुश और काश नामक बर्हि फैलाकर यज्ञरूप विष्णुभगवान् का यजन कियाथा इसकारण उस नगरी का नाम बर्हिष्मती हुआ अतः भूमि स्वर्ग से श्रेष्ठ है और तिस में भी वह ब्रह्मावर्त्त स्थान श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ अस्तु, वह मनु,जिस बर्हिष्मती नामक नगरीमें पहिले रहताथा तिसमें फिर त्रिविधतापनाशक अपने पुरातन मंदिर में प्रवेश करके उसने अपनी स्त्री और संतानों सहित धर्म्मानुकूल विषयों को भोगा ॥ ३२ ॥प्रातःकाल के समय अपनी स्त्रियों सहित देवगायक गंधर्व, तहांआकर उनकी सत्कीर्त्ति का उत्तम प्रकार से गान करते थे तथापि वह राजा अपनी कीर्त्ति को सुनने में आसक्त न होकर, स्वयं प्रेमपूर्ण अन्तःकरण से श्रीहरि की कथा को ही सुनताथा

कथाः ॥ ३३ ॥ निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायंभुवं मनुम् ॥ यदा भ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परं ॥ ३४ ॥ अयातयामास्तस्यासन्यामाः स्वांतरयापनाः ॥ शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥ ३५ ॥ स एवं स्वांतरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् ॥ वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः ॥ ३६ ॥ शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ॥ भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधंते हरिसंश्रयं ॥ ३७ ॥ यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधान् शुभान् ॥ नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥ ३८ ॥ एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतं ॥ वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥ ३९ ॥ इतिश्रीभा० तृ० द्वाविंशतितमोऽध्यायः मैत्रेय उवाच ॥ पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिंगितकोविदा ॥ नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥ १ ॥ विश्रंभेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ॥

॥ ३३ ॥ वह स्वायम्भुव मनु; चाहें जितने भोगों को रचने में समर्थ, मननशील और भगवत्परायणथा अतः उसको सकल ही विषयभोग धर्ममार्ग से किंचिन्मात्र भी हटानेको समर्थ नहीं हुए ॥ ३४ ॥ विष्णु का ध्यान करनेवाले विष्णुकी कथा रचनेवाले तिसकथा को वर्णन करनेवाले और सुननेवाले तिस मनु के मन्वन्तर में के काल के सबही पहर आदि भाग,कदापि निष्फल नहीं बीते ॥ ३५ ॥ इसप्रकार वासुदेव भगवान् की कथा के प्रसङ्ग करके तिस मनुने, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं को जीतकर, सत्ययुग, द्वापर, त्रेता और कलि इन चारों युगों के इकहत्तर वार व्यतीत होनेपर्यंत मन्वन्तर का समय सुख से व्यतीत करा ॥ ३६ ॥ हे व्यासपुत्र विदुरजी ! श्रीहरि का आश्रय करके रहनेवाले पुरुष को, शरीरके रोग आदि, मनके चिंता आदि, अन्तरिक्ष के बिजली गिरना आदि, मनुष्यों से होनेवाले तिरस्कार आदि और पञ्चमहाभूतों से होनेवाले अतिवर्षा आदि क्लेश कैसे पीड़ा देसक्ते हैं ? ॥ ३७ ॥ वह मनु सकल प्राणीमात्र के हितकारी थे इसकारण एक समय बहुत से मुनियों ने उनसे प्रश्न करा;तब उन्होने (मनुस्मृतिरूपसे) मनुष्यों के साधारण धर्म, ब्राह्मण आदि वर्णों के और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के शुभकारी नानाप्रकारके विशेष धर्म स्पष्ट रीति से वर्णन करे हैं ॥ ३८ ॥ हे विदुरजी ! वर्णन करने के योग्य तिन आदि राजा स्वायम्भुव मनु का यह अद्भुत चरित्र तुम्हारे अर्थ मैंने वर्णन करा है अब उनकी कन्या देवहूति का आख्यान कहता हूँ सुनो ॥ ३९ ॥ इतितृतीय स्कन्ध में द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि हे विदुरजी ! इधर देवहूति के माता पिताके आश्रम में से चलेजानेपर, पति के अभिप्राय को जाननेवाली वह सुशीला देवहूति, जिसप्रकार पार्वतीजी प्रभुशङ्कर की निरन्तर सेवा करती हैं तिसीप्रकार; अपने पतिकी प्रीति के साथ सेवा करनेलगी ॥ १ ॥ हे विदुरजी ! सावधान रहकर पति की आज्ञानुसार वर्त्ताव

शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भो ॥ २ ॥ विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं
लोभमघं मदम् ॥ अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ॥ ३ ॥ स वै देव-
र्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ॥ दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ॥४॥
कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया ॥ प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृ-
पयाऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ कर्दम उवाच ॥ तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शु-
श्रूषया परमया परया च भक्त्या ॥ यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो
नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥ ६ ॥ ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपःसमा-
धिविद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ॥ तानेव ते मदनुसेवनयाऽवरुद्धान्
दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥ ७ ॥ अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्वि-
जृम्भविभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ॥ सिद्धाऽसि भुंक्ष्व विभवान्निजधर्म-
दोहान् दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥ ८ ॥ एवं ब्रुवाणमबला-
ऽखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ॥ संप्रश्रयप्रणयविह्वल-

करनेवाली तिस देवहूति ने, विषयभोग की इच्छा, कपट, द्वेष, लोभ, निषिद्ध आचरण और उन्मत्तपन। इन दुर्गुणों को त्यागकर; शरीर और मनकी शुद्धि, गौरव, इंद्रियों को वश में करना, सेवाधर्म, प्रेम और मधुरभाषणके द्वारा तिन महातेजस्वी पति को संतुष्ट किया ॥२॥ ॥३॥ तदनन्तर देवर्षियों में श्रेष्ठ वह कर्दम ऋषि, दैवकी कर्त्तव्यताको भी पलटनेमें समर्थ ऐसे अपनेसे, महान् विषयभोग मिलनेकी इच्छा करनेवाली, अपनी सेविका, पातिव्रत्यव्रत के आचरणसे दुर्बलहुई और उसमेंभी बहुतहीकाल बीतनेके कारण अतिदुर्बलहुई तिस देवहूति को देखकर कृपासे आर्द्र हो, प्रेम करके गद्गद हुई वाणी करके उससे कहने लगे॥४॥५॥ कर्दमजी ने कहा कि—हे मनुकन्ये! मेरा मान रखने वाली तेरी इस उत्तम सेवा और परमभक्ति से आज मैं सन्तुष्ट हूँ, क्योंकि—प्राणियों को अतिप्रिय और अनेकों प्रकार से रक्षा करने योग्य इस अपने शरीर को मेरे निमित्त तूने क्षीण करलिया और आगेपीछे का कुछ विचार नहीं किया ॥ ६ ॥ अतः पहिले स्वधर्म में तत्पर रहनेवाले मेरी जो तप, समाधि, उपासना और अन्तःकरण की एकाग्रता करके भगवदनुग्रह की प्राप्ति तिस के प्रभाव से प्राप्तहुए जो भय और शोक रहित दिव्यभोग, वहही मेरीसेवा करने से तुझे मिले हैं, वह तुझे दिव्य दृष्टि देकर मैं दिखाताहूँ देख ॥ ७ ॥ और जो मनुष्यों के भोग हैं वह उरुक्रम भगवान् की भ्रुकुटी के तिरछे होनेसे ही जिन में के मनोरथ नष्ट होजाते हैं ऐसे तुच्छ हैं और तू तो मेरी सेवा से कृतार्थ होगई है अतः राज्यभर की सम्पदा व्यय (खर्च) करने से भी मनुष्यों को प्राप्त न होनेवाले, केवल पातिव्रत्य धर्म से ही तुझे प्राप्तहुए ऐसे दिव्य भोगों का तू अब उपभोग कर ॥ ८ ॥ हे विदुरजी ! इसप्रकार कहनेवाले और श्रीहरि की सकल योगमाया तथा सब प्रकार की उपा-

या गिरैर्व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाह ॥ ९ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्त्तः ॥ यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसङ्गो भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनां ॥ १० ॥ तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं येनैष मे कर्शितोऽतिरिरंसयात्मा ॥ सिद्ध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमो योगमास्थितः ॥ विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥ १२ ॥ सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितं ॥ सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तंभैरुपस्कृतं ॥ १३ ॥ दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ॥ पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥ १४ ॥ स्रग्भिर्विचित्रमा-

सना को जानने में प्रवीण तिन अपने पति कर्दमजी की ओर को देखकर वह देवहूति निश्चिन्त हुई और जिस का मुख कुछएक लज्जायुक्त, अवलोकन के समय विकसित और हास्ययुक्त है ऐसी वह, नम्रता और प्रेम के साथ गद्गद वाणी से कहनेलगी ॥ ९ ॥ देवहूति बोली कि—हे विप्रवर नाथ ! आप अमोघ योगमाया के स्वामी हैं अतः आपका दिव्य भोगों को उत्पन्न करना ठीक ही है और उस को मैं समझती हूँ तथा इस से मुझे आनन्द प्राप्त होता है; परन्तु हे विभो ! जो आपने विवाह के समय 'गर्भधारण होने पर्यंत तेरे अङ्गका सङ्ग होगा ऐसा' मुझे वचन दिया था वह अब पूर्ण हो; क्योंकि—पतिव्रता स्त्रियों को अपने पूज्य पति से सन्तान की प्राप्ति होना यह एक बड़ाभारी लाभ है ॥ १० ॥ हे भगवन् ! तिस अङ्गसङ्ग के विषयमें जो कुछ साधनकरने हों उनको कामशास्त्र के अनुसार सम्पादन करो, जिन अभ्यङ्ग, स्नान, भोजन, पान आदि साधनों के द्वारा अतिरमण करने की इच्छा करके कृश और दीन हुआ, तुह्मारे ! उद्दीपित करेहुए कामदेव से पीड़ित हुई मेरा, यह शरीर रतिसुख को भोगने में समर्थ होय. और उस के अनुकूल एक स्थान रचने का भी विचार करिये ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! इसप्रकार देवहूति के कहनेपर तिस अपनी प्रिया का प्रिय करने की इच्छा करके कर्दम ऋषि ने योगसमाधि लगाकर तिसके द्वारा तत्काल यथेच्छ विचरनेवाला एक विमान उत्पन्न करा ॥ १२ ॥ वह दिव्य विमान सकल कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, सबप्रकार के रत्नोंसे युक्त, और जिस में सब प्रकारकी सम्पत्तियों के उत्कर्ष की अधिकता है ऐसावह विमान रत्नों के खम्भों से शोभित था ॥ १३ ॥ वह दिव्य पर्यङ्क (पलँग) आदि सामग्रियोंसे युक्त, सबकाल में सुखकारी और चित्रविचित्र छोटे बड़े परदे तथा पताकाओं से शोभायमान था ॥ १४ ॥ तथा जिनपर बैठेहुए भ्रमर मधुरशब्द से गुञ्जाररहे थे ऐसे अनेकों वर्ण के पुष्पों की मालाओं से युक्त और दुपट्टे, पीताम्बर आदि रेशमी वस्त्रों से तथा सूत

ल्याभिर्मञ्जुसिंजत्पडंघ्रिभिः ॥ दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥ १५ ॥ उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक् पृथक् ॥ क्षिप्तैः कशिपुभिः कांतं पर्यंकव्यजनासनैः ॥ १६ ॥ तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् ॥ महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥ १७ ॥ द्वास्सु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् ॥ शिखरेष्विंद्रनीलेषु हेमकुंभैरधिश्रितं ॥ १८ ॥ चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः ॥ जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥ १९ ॥ हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितं ॥ कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥ २० ॥ विहारस्थानविश्रामसंवेशप्रांगणाजिरैः ॥ यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥ ॥२१॥ ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा। सर्वभूताशयाभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयं ॥ २२ ॥ निमज्ज्यास्मिन् ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह ॥ इदं शुक्लकृतं

के उत्तम २ वस्त्रों से सुशोभित था ॥ १५ ॥ एक के ऊपर एक इसप्रकार रचेहुए मन्दिरों (मञ्जलों) में शय्या, पलँग, पंखे, चौकी आदि पृथक्२स्थापित होने के कारण वह अति रमणीय था ॥ १६ ॥ तथा वह स्थान २ पर स्थापित नानाप्रकार की मूर्ति और चित्रादि कों करके शोभायमान था तथा मरकतमणिकी स्थली (फरसबन्दी) और मूँगोंकी वेदियों (बैठने के स्थानों) से शोभायमान था ॥ १७ ॥ तथा प्रत्येक द्वार में मूँगोंकी देहलियों से शोभित था और उस के द्वारों के किवाड़ हीरो से जड़ेहुए थे, उस के शिखर इन्द्रनील मणियों के थे और उन के ऊपर सुवर्ण के कलश रक्खेहुए थे ॥ १८ ॥ तथा हीरोंकी भीतों में जड़ीहुई उत्तम २ पद्मराग मणियों से वह विमान नेत्रयुक्त सा प्रतीत होता था और महामूल्य चित्र विचित्र रङ्ग की छतों और सुवर्णमय वन्दनवारों से युक्त था ॥ १९ ॥ तिस विमान में स्थान २ पर चातुरी से रचेहुए हंस और कबूतरों के समूहको यह हमारी जाति के बैठे हैं ऐसा मानकर, सत्य हंसों के और कबूतरों के समूह उनके समीप वारम्वार आ बैठकर शब्द करते थे ॥ २० ॥ और वह विमान जैसे अपने को सुखकारक होय तैसे रचेहुए क्रीड़ा के स्थान, शयन के मन्दिर, वस्त्रादि धारण करनेके भवन, गृहके आगे चौक, और द्वार के बाहर अजिर (मैदान) इन करके स्वयं मायावी (विमानको उत्पन्न करनेवाले) तिन कर्दम ऋषिको भी आश्चर्यकारक सा हुआ ॥२१॥ हेविदुरजी ! इसप्रकारके उस गृहको देखकर भी तिस में दासी आदि न होने के कारण तथा अपना शरीर मलिन होनेके कारण, अति प्रसन्न न हुए अन्तःकरणवाली तिस देवहूति से, सकल प्राणियों के अन्तःकरणके अभिप्रायों को जाननेवाले वह कर्दम ऋषि स्वयं ही कहनेलगे ॥ २२ ॥ कि–हे भीरु ! तू खिन्न क्यों होरही है ? इस बिन्दुसर में स्नान करके फिर इस विमान पर चढ़; यह शुक्लरूप विष्णुभगवान् का रचाहुआ बिन्दुसरोवर

तीर्थमाशिषां यौपकं नृणाम् ॥ २३ ॥ सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवले-
यक्षणा ॥ सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥ २४ ॥ अङ्गं च मलपं-
केन संछन्नं शबलस्तनं ॥ आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥ २५ ॥
सांऽन्तःसरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः ॥ सर्वाः किशोरवयसो ददर्-
शोत्पलगंधयः ॥ २६ ॥ तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्रांजलयः स्त्रियः ॥ वयं
कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किं ॥ २७ ॥ स्नानेन तां महार्हेण स्ना-
पयित्वा मनस्विनीं ॥ दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदं ॥ २८ ॥ भूष-
णानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमंति च ॥ अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतास-
वम् ॥ २९ ॥ अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजांबरम् ॥ विरजं कृतस्वस्त्य-
यनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥ ३० ॥ स्नातं कृतशिरःस्नानं सर्वाभरणभूषितं ॥
निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्कांचननूपुरम् ॥ ३१ ॥ श्रोण्योरध्यस्तया कांच्या कांचन्या

नामक तीर्थ, मनुष्यों के सकल मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है (इसमें स्नान करते ही तुझे जो २ चाहिये सब मिलेगा) ॥ २३ ॥ हेविदुरजी ! इसप्रकार तिस, पतिके कथनको आ-दरके साथ सुनकर, मलिन वस्त्र और जटाओं को धारण करनेवाली तथा मलिन स्तनों से युक्त मैलकी कीच से सने शरीरवाली वह कमलाक्षी देवहूति केवल निर्मल जलके आश्रय स्थान, सरस्वतीनदी के मध्यभाग में विराजमान तिस बिन्दुसरोवर में घुसी ॥२४॥२५॥ उसने तिस सरोवर में गोता लगाते ही, तिस अपने स्थान में बैठीहुई एक सहस्र कन्या देखीं; वह सबही अवस्था में तरुण थीं और उन सबके शरीरों में कमल की समान सुग-न्धि आतीथी ॥ २६ ॥ तिन स्त्रियों ने उस देवहूति को देखते ही अकस्मात् उठकरहाथ जोड़ कथन करा कि–हम तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारा कौनसा कार्य करें, वह हमसे कहो ॥ २७ ॥ हे विदुरजी ! तदनन्तर उन दासियोंने ही तिस अपनी स्वामिनीकी इच्छा जान कर महामूल्य की स्नानकी सामग्री और उबटन आदि तिस उत्साहयुक्त देवहूति के शरीर को लगाकर तिसे स्नान कराया और धारण करनेके निमित्त उसको नवीन स्वच्छ दोवस्त्र दिये ॥ २८ ॥ और उन्होंने देवहूति को उसके मनको प्रिय प्रतीत होनेवाले अतिउत्तम दमकदार आभूषण, छः रसवाले अन्न और मधुर तथा मादक (नशीले) पान (शरबत) दिये ॥ २९ ॥ तदनन्तर देवहूति ने अपने शरीर को आरसी में प्रतिबिम्बरूप से देखा वह मस्तकसे स्नान कराहुआ, निर्मल, स्वच्छवस्त्रधारी, कण्ठ में पुष्पों की और सुवर्ण के दानों की मालाधारी, हाथ में सुवर्ण कड़े तोड़े और चरणों में छम २ बजनेवाले सुवर्ण के नूपुरों से शोभितथा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कमरमें सुवर्ण की रत्नजटित तागड़ी से युक्त, कण्ठ में बहुमूल्य रत्नहार और पदक (जुगनू) से शोभितथा, तथा और मुक्ता आदिके

बहुरत्नया ॥ हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितं ॥ ३२ ॥ सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापांगेन चक्षुषा ॥ पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥ ३३॥ यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिं ॥ तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥ ३४ ॥ भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा ॥ निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥ स तां कृतमलस्नानां विभ्राजंतीमपूर्ववत् ॥ आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीं ॥ ३६ ॥ विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् ॥ जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥ ३७ ॥ तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रियया ऽनुरक्तो विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ॥ बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृत इवोडुपतिर्नभस्थः ॥ ३८ ॥ तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्रद्रोणीष्वनंगसखमारुतसौभगासु ॥ सिद्धैर्नुतो द्युधु-

अनेकों आभूषणों से भूषित, सुन्दर दाँतोंकी बत्तीसी-सुरेख भ्रुकुटि—काले भौंरेसे केश और कमलकी कलियों से स्पर्धा (हिरस) करनेवाले मनोहर सप्रेम कटाक्षयुक्त नेत्रों से मुख के विषैं शोभा को प्राप्त, स्त्रियों करके हरिद्रा कुंकुम लगाना आदि मांगलिक उपचार करा हुआ और दासियों करके अनेकप्रकार के ताम्बूल देना आदि सत्कार किया हुआथा ३२ ॥ ३३ ॥ हे विदुरजी ! ऐसे अपने शरीर को, आरसी में के प्रतिबिम्ब में देखकर ऋषियों में श्रेष्ठ अपने प्रियपति का जिससमय देवहूति ने स्मरण किया उसीसमय जहां वह कर्दम प्रजापति थे तहांही स्त्रियों सहित वह आपसे आप ही जापहुँची॥ ३४ ॥उससमयसहस्रों स्त्रियों से घिरीहुई मैं, अपने पति के सन्मुख हूँ ऐसा देखकर और यह'मेरे पतिकी सामर्थ्य है ऐसा जानकर उसने बड़ा आश्चर्य माना ॥ ३५ ॥ हे कामरूप शत्रुको जीतनेवाले विदुरजी ! जिसने मलको दूर करनेवाला स्नान कियाहै, जो अपूर्व शोभा पारही है,विवाह से प्रथमका अपना स्वरूप जिसने फिर धारणकरा है, जो उत्तम वस्त्र धारण करे हुए हैं, जिसके मनोहर स्तन कञ्चुकी (चोली) से ढकेहुए हैं और विद्याधरों की सहस्रों स्त्रियें जिसकी शुश्रूषा कररही हैं ऐसी तिस अपनी भार्या देवहूति को, प्रेमभावयुक्त तिन कर्दम जी ने उस विमानमें बैठाया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और जो अपनी प्रिया से अनुराग करते हैं तथापि जिनकी स्वाधीनता किंचिन्मात्रभी नष्ट नहीं हुई है और विद्याधर जिनके शरीर की सेवा कररहे हैं ऐसे वह कर्दममुनि, तिस विमान में अपनी प्रियासहित बैठे—उससमय जैसे आकाश में उदयहुआ अतिसुन्दर पूर्ण चन्द्रमा,खिलीहुई कमलिनियों के समूहसे युक्त तथा तारागणों से घिरने पर जैसे शोभा पाता है तैसे शोभित हुए ॥ ३८ ॥ तदनन्तर सिद्ध जिनकी स्तुति कररहेहैं और स्त्रियोंके समूहसे युक्त तिन कर्दम ऋषिने तिसविमान के द्वारा, इन्द्रादि आठों लोकपालों के विहार करने के स्थान जिसके ऊपर हैं ऐसे

निपातशिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ॥ ३९ ॥ वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके ॥ मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥ ॥ ४० ॥ भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ॥ वैमानिकानत्यशेत चरँल्लोकान्यथाऽनिलः ॥ ४१ किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसां ॥ यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥ ४२ ॥ प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान्स्वसंस्थया ॥ बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥ ४३ ॥ विभज्य नवधात्मानं मानवीं सुरतोत्सुकां ॥ रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान्मुहूर्त्तवत् ॥ ४४ ॥ तस्मिन्विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता । न चाबुध्यत तं कालं पत्यापीच्येन सङ्गता ॥ ४५ ॥ एवं योगानुभावेन दंपत्यो रममाणयोः ॥ शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ॥ ४६ ॥ तस्यामाधत्त रेतस्तां भा-

मेरुपर्वत की सुन्दर गुफाओं में कुवेरकी समान चिरकाल पर्यन्त क्रीड़ाकरी, वह गुफा कामदेव का उद्दीपक मित्र जो मन्दपवन तिसके चलने से मनोहर और जिनमें स्वर्ग से पृथ्वीपर गिरनेवाली गङ्गाजी के वक्र २ शब्द की मधुर गूंजसे युक्तथीं ॥ ३९ ॥ तदनन्तर चित्तमें सन्तुष्टहुए तिन कर्दमजी ने, अपनी सुन्दर स्त्रीसहित, वैश्रम्भक, सुर-सन, नन्दन, पुष्पभद्रक, मानस और चैत्ररथ नामक देवताओं की आनन्दवाटिकाओं में यथेच्छ क्रीड़ा करी ॥ ४० ॥ उससमय विस्तारवाले अतितेजस्वी और बैठनेवाले की जहां की इच्छा होय तहां जानेवाले तिस विमान में बैठकर वायु की समान त्रिलोकी में विचरने वाले तिन कर्दम ऋषि ने, नित्य विमान में बैठकर विचरनेवाले देवताओं को भी पीछे क-रदिया ॥ ४१ ॥ हेविदुरजी ! जिन पुरुषों ने भगवान् के संसारदुःखनाशक चरण का आ-श्रय किया है तिन वीर पुरुषों को क्या नहीं प्राप्त होसक्ता है ? ॥ ४२ ॥ अस्तु, वह महा-योगी कर्दम ऋषि, द्वीप, खण्ड इत्यादि अनेकों प्रकार की रचना के द्वारा परम आश्चर्य-कारी यह जितना भूमण्डल है सो सब अपनी स्त्री को दिखाकर तदनन्तर अपने आश्रम में को आने के निमित्त पीछे को लौटे ? ॥ ४३ ॥ तदनन्तर उन कर्दमजी ने, अपने नौ स्वरूप धारण करके रतिक्रीड़ामें उत्कण्ठित हुई तिस सुन्दरी मनु की कन्या को रमण करातेरहो घड़ी की समान, कितने ही वर्षों के समूहों पर्यन्त क्रीड़ा करी ॥ ४४ ॥ उससमय तिस विमानमें रतिक्रीड़ाकी उत्सुकताको बढ़ानेवाली उत्तम शय्याका आश्रय करके अपने अति सुन्दर पति से सङ्गत हुई तिन देवहूति ने बहुत से वर्षों पर्यन्त बीताहुआ वह काल कुछ भी न जाना ॥ ४५ ॥ इसप्रकार विषयभोगमें उत्सुक और योगशक्तिसे चाहें जितने पदार्थ उत्पन्न करके रमण करनेवाले तिन दोनों स्त्री पुरुषों के सैंकड़ों वर्ष बहुत थोड़े कालकी समान बीतगए ॥ ४६ ॥ तदनन्तर मेरे बहुतसी सन्तानें हों ऐसे देवहूति के मनोरथ को जानने

वयन्नात्मनात्मवित् ॥ नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विभुः ॥ ४७ ॥ अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः ॥ सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ॥ ४८ ॥ पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदालक्ष्योशती सती ॥ स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥ ४९ ॥ लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया ॥ उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥ ५० ॥ सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् ॥ अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥ ५१ ॥ ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ॥ कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ ५२ ॥ एतावताऽलं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो ॥ इंद्रियार्थप्रसंगेन परित्यक्तपरात्मनः ॥ ५३ ॥ इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या

वाले और उस को पूर्ण करने में समर्थ तिन आत्मज्ञानी कर्दम ऋषि ने, उस देवहूति को अपना आधा शरीर मानकर तथा अपने स्वरूपके नौ भाग करके उसके विषैं वीर्य स्थापन किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उसही दिन वह देवहूति, प्रसूत हुई और उस के नौ कन्या उत्पन्न हुईं; वह सब अङ्गों में सुन्दर थीं और उन के शरीर में से लालकमल की सी सुगन्ध निकलती थी ॥ ४८ ॥ उसीसमय सकल संगों को त्यागकर मेरे पति वन को जाते हैं, ऐसा देखकर वह पतिव्रता सुन्दरी देवहूति, व्याकुल और खिन्नहुए अन्तःकरण से, नखरूप मणि की कान्ति से युक्त अपने चरण करके भूमि को कुरेदतीहुई नीचे को ग्रीवा करके नेत्रों से गिरनेवाले अश्रुपात को रोककर, बाहर से हँसरही है, ऐसा दिखातीहुई वह धीरे २ पति से मधुरभाषण करनेलगी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ देवहूति ने कहा कि—हे प्रभो ! आपने मुझे जो वचन दिये थे उन सब को पूर्ण करदिया तथापि अब शरण में आईहुई मुझ को आप अभय देने को समर्थ हैं ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मनिष्ठ ऋषे ! इन आपकी कन्याओं को अपने २ योग्य पति,स्वयं ही ढूँढने चाहियें,यह मेरेऊपर एक बड़ा सङ्कट आकर पड़ा;अस्तु यह तो जैसा होगा देखाजायगा, परन्तु आप के संन्यास धारण कर वन को चलेजाने पर मेरा शोक दूर करने के निमित्त एक ब्रह्मनिष्ठपुत्र चाहिये था, केवल कन्या होने से ही आपका पितृऋण नहीं दूर हुआहै अतः आप और भी कुछएक दिनों स्थानपररहें तब मेरे एक ब्रह्मज्ञानी पुत्र होजायगा वह मेरे सकल शोकों को तो दूर करदेगा ॥५२॥ 'तू भक्ष्यभोज्य आदि विषयों को भोग तुझे ब्रह्मज्ञान से क्या प्रयोजनहै !' यदि ऐसा कहो तो हे प्रभो ! परमात्मस्वरूप का त्याग करनेवाली मेरे, विषयों में लिप्त होकर ही बीतेहुए इतने काल से ही अलंहै अर्थात् विषयोंमें लिप्त होकर अवतकका जो समय निरर्थक गया सोतो गयाही परन्तु आगे का काल तो भगवान् के भजन में लगे ऐसी मेरी इच्छा है॥५३॥ आप ब्रह्मज्ञानी हैं ऐसा न जाननेवाली मैंने आजपर्यन्त केवल इन्द्रियों को सन्तुष्ट करनेमें

प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः ॥ अजानन्त्या परं भावं तथाऽप्यस्त्वभवाय मे ॥ ५४ ॥ संयोगः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया ॥ स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥ ५५ ॥ नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ॥ न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ ५६ ॥ साऽहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् । यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥ ५७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः ॥ दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते ॥ भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्संप्रपत्स्यते ॥ २ ॥ धृतव्रताऽसि भद्रं ते दमेन नियमेन च ॥ तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ॥ ३ ॥ स त्वयाऽऽराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः ॥ छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥ ४

ही आसक्त होकर अज्ञान से आप के विषे प्रसङ्ग किया, परन्तु अब तो आप की कृपा से मुझे पुत्र की प्राप्ति कराकर आप संसार दुःख से छुड़ाने में सहायता दीजिये ॥ ५४ ॥ अज्ञान से कुछ नहीं होगा, विषयासक्त पुरुषों के साथ करीहुई सङ्गति ही संसार का कारण होतीहै और वही सङ्गति आपसमान सत्पुरुषों के साथ करने पर मोक्ष देने को समर्थ होतीहै ॥ ५५ ॥ इस सृष्टि में जिन प्राणियों के कर्म, धर्म में उपयोगी (सहायक) नहीं होतेहैं, वैराग्य होने का साधन नहीं होतेहैं, और वैराग्य केद्वारा श्रीहरि की सेवा में परिसमाप्ति भी नहीं पाते हैं वह प्राणी जीवित ही मृतकसमान हैं ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! मुक्ति भी देने को समर्थ ऐसे आप का समागम होनेपरभी जो मुझे आज पर्यन्त बन्धन से मुक्त होने की इच्छा नहीं हुई, इसकारण भगवान् की मायाने मुझे दृढ़ता से फँसारक्खा है इसमें किसीप्रकारका सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ इतितृतीय स्कन्ध में त्रयोविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! इसप्रकार वैराग्य के साथ भाषण करनेवाली तिस विनयवती मनुकी पुत्री (देवहूति) से, वह परमदयालु कर्दममुनि, शुद्धरूप विष्णुभगवानके पहिले कहेहुए भाषण का स्मरण करके कहनेलगे ॥ १ ॥ ऋषिने कहा कि–हे प्रशंसनीय गुणोंवाली राजपुत्री ! तू अपने निमित्त इसप्रकार का खेद न कर क्योंकिथोड़ेकाल में अविनाशस्वरूप जगदीश्वर भगवान् तेरे उदरमें शीघ्रही अवतार धारण करेंगे ॥ २ ॥ हे प्रिये ! आजपर्यन्त तैंने भिन्न २ प्रकार के बहुतसे व्रत करे हैं अतः तेरा कल्याणहोगा अब आगे को भी इन्द्रियों को वशमें करना, नानाप्रकार के नियम, तपस्या और दान आदि करके तू भक्तिपूर्वक ईश्वर की सेवाकर ॥ ३ ॥ तेरे आराधना करेहुए वह शुक्लरूप भगवान् विष्णु जगत् में मेरा यश बढ़ानेके निमित्त तेरे उदर में अवतार धारेंगे और तुझे ब्रह्मज्ञान का उपदेश करके तेरे हृदय की अहङ्काररूप ग्रन्थि का छेदन करेंगे ॥ ४ ॥

मैत्रेय उवाच॥देवहूत्यपि सन्देशं गौरवेण प्रजापतेः॥सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ५ तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः॥ कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि॥६॥अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः॥ गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा॥ ७॥ पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः॥ प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मनांसि च॥८॥ तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम्॥ स्वयंभूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात्॥९॥भगवन्तं परं ब्रह्म सत्वेनांशेन शत्रुहन्॥ तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट्॥ १०॥ सभाजयन् विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम्॥ प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमं चेदमभ्यधात्॥ ११॥ ब्रह्मोवाच॥ त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः॥ यन्मे सञ्जगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन्॥ १२॥ एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः॥ बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः॥ ॥ १३॥ इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः॥ सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृ-

मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी! देवहूति भी कर्दम प्रजापति की आज्ञापर पूर्ण विश्वास रखकर, निर्विकार होकर भी जगत् को सन्मार्ग का उपदेश करनेवाले गुरुरूप पुराणपुरुष की आराधना करनेलगी॥ ५॥ तदनन्तर बहुतसा काल बीतजानेपर, जैसे काठ में से अग्नि प्रकट होता है तैसे मधुसूदन भगवान्, कर्दम मुनि के वीर्य का आश्रय करके तिस देवहूति के उदर से प्रकट हुए॥ ६॥ उससमय स्वर्ग में, देवताओं ने बाजे बजाए, अति घनघोर मेघ आकर गर्जनेलगे, गन्धर्व आनन्द के साथ तिन ईश्वर की गीतों में स्तुति करनेलगे, अप्सरा नृत्य करनेलगीं॥ ७॥ देवों के उछालेहुए दिव्य पुष्प पृथ्वीपर गिरने लगे, सकल दिशा, जल और सब के मन प्रसन्न हुए॥ ८॥ उससमय मरीचि आदि ऋषियोंसहित ब्रह्माजी, सरस्वती नदी से वेष्टित तिस कर्दम ऋषि के आश्रमस्थान में आपहुँचे॥ ९॥ हे शत्रुनाशक विदुरजी! जिस में तत्त्वों का वर्णन है ऐसा सांख्यशास्त्र विशेषता से लोकों के अर्थ कहने के निमित्त, वह परब्रह्मरूप भगवान् सत्वगुणरूप अंश से अवतरे हैं ऐसा जाननेवाले स्वतःसिद्ध ज्ञानवान् वह ब्रह्माजी, अपने विशुद्ध अन्तःकरण से भगवान् के चिकीर्षित कर्मका अभिनन्दन(वाह २)करते,आनन्द के अश्रु और रोमाञ्च आदि लक्षणों करके हर्षयुक्त हुई हैं इन्द्रियें जिनकी ऐसे दीखतेहुए,कर्दम ऋषि और देवहूतिसे कहनेलगे॥ १०॥ ११॥ ब्रह्माजी ने कहा कि—हे वत्स कर्दम ऋषे! तुम दूसरों का मान करनेवाले हो, तुम ने मेरा सन्मान करके मेरी आज्ञा मानी अतः तुमने निष्कपटभाव से मेरा पूजन किया, मैं ऐसा मानता हूँ॥ १२॥ पुत्र पिता के विषय में, उन की आज्ञा को 'ठीक है' ऐसा कहकर बहुत सन्मान के साथ स्वीकार करें; इतनी ही उन की मुख्य पितृसेवा है॥ १३॥ हे साधो वत्स! यह तुम्हारी, सिंह की समान कृश (पतली) कमरवाली सुंदर

इयिष्यन्त्यनेकधा ॥ १४॥ अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि ॥ आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥ १५ ॥ वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ॥ भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥ १६ ॥ ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरन् जटाः ॥ हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥ १७ ॥ एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः ॥ अविद्यासंशयग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥ १८ ॥ अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः ॥ लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सहनारदः ॥ हंसो हंसेन यानेन त्रिधामपरमं ययौ ॥ २० ॥ गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः॥ यथोदितं स्वदुहितॄः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥ २१ ॥ मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये ॥ श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥ २२ ॥ पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ॥ ख्यातिं

स्वरूपवती कन्याएँ, अपने वंश के द्वारा इस सृष्टि को अनेकों प्रकार से बढ़ावेंगी ॥ १४ ॥ अतः अब तुम इन अपनी कन्याओं को, इच्छानुकूल और स्वभावानुकूल मरीचि आदि श्रेष्ठ ऋषियों को समर्पण करो और भूतलपर अपनी कीर्त्ति फैलाओ ॥ १५ ॥ हे मुने ! मैं तो ऐसा जानता हूँ कि-यह तुम्हारे पुत्र, प्राणिमात्र के सकल मनोरथोंको पूर्ण करनेवालेहैं और कपिलनामक देह को धारण करनेवाले यह पुराण पुरुष विष्णुभगवानही अवतीर्ण हुएहैं॥ १६॥हेमुनिकन्ये देवहूति ! तेरे उदर में प्रवेश करनेवाले सुवर्ण की समान केश,कमलकी समाननेत्र और कमलके चिह्नयुक्त चरणकमलवाले यह कैटभनाशकभगवान, शास्त्रमें कहेहुए ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञानका उपदेश करके कर्मवासनाओं को दूर करतेहुए, तेरे अन्तःकरणके अज्ञानरूप संदेहकी ग्रन्थिका छेदन करके पृथ्वीपर विचरेंगे॥१७॥१८॥ यह सकल सिद्धोंके स्वामी,सांख्यशास्त्रका उपदेश करनेवाले पण्डितों से पूजित होकर तेरी कीर्त्ति को बढ़ानेवाले होंगे और लोक में कपिलनामसे प्रसिद्ध होंगे ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! जगत् को रचनेवाले ब्रह्माजी ने कर्दमऋषि और देवहूति को इसप्रकार आश्वासन देकर अपने साथ आयेहुए ऋषियों में से मरीचि अत्रि आदि ऋषियों को विवाहके निमित्त तहां ही छोड़कर, नारद और सनकादि इन पांचपुत्रोंके साथ हंसपर बैठकर सत्यलोक को चलेगये ॥ २० ॥ हे विदुरजी ! ब्रह्माजी के चलेजाने पर उनकी आज्ञा के अनुसार कर्दम ऋषि ने, अपनी कन्याएं मरीचि आदि प्रजापतियों को दीं २१ अपनी कलानाम्नी कन्या मरीचि ऋषि को दी, तथा अनुसूया अत्रि को, श्रद्धा अङ्गिराको, और हविर्भू पुलस्त्यजी को समर्पण करी॥२२॥स्वभाव आदि गुणों करके योग्यगतिनामक कन्या पुलहऋषि को, क्रियानामक साध्वी कन्या क्रतु को, ख्याति भृगुको और अरुन्धती

च भृगवेयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुंधतीं ॥ २३ ॥ अथर्वणेऽददाच्छांतिं यया यज्ञो वितन्यते ॥ विप्रर्षभान्कृतोद्वाहान्सदारान्समलालयत् ॥ २४ ॥ ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् ॥ प्रातिष्ठन्नन्दिमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥ स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभं ॥ विविक्त उपसंगम्य प्रणम्य समभाषत ॥ २६ ॥ अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमंगलैः कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥ २७ ॥ बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ॥ द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदं ॥ २८ ॥ स एव भगवानद्य हेलनं न गणय्य नः ॥ गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥ २९ ॥ स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ॥ चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्द्धनः ॥ ॥ ३० ॥ तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ॥ यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥ ३१ ॥ त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाऽद्धा सदाऽभिवादार्हणपादपीठम् ॥ ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियां पूर्त्तमहं प्रपद्ये ॥ ३२ ॥

वसिष्ठजी को समर्पण करी॥२३॥जिसके द्वारा यज्ञ पूर्ण होता है वह शान्तिनाम्नी कन्या अथर्वऋषिकोदी-इसप्रकार विवाह करनेवाले तिनसपत्नीक महर्षियोंको कर्दमजीने प्रियवस्तुएं देकर सन्तुष्ट किया ॥२४॥ हेविदुरजी ! तदनन्तर स्त्रियोंको स्वीकार करनेवाले वह ऋषि आनन्दसे तिन कर्दम ऋषिकी आज्ञा लेकर पत्नियों सहित अपने२ आश्रमोंको चलेगये२५॥ इधर तिन कर्दमजी ने, देवश्रेष्ठ विष्णुभगवान् का मेरे घर अवतार हुआ है, ऐसा जानकर एकान्त में उन के समीप जा नमस्कार करके कहाकि– ॥ २६ ॥ अहो ! इस सृष्टि में अपने पापकर्मों करके संसार में अनेकप्रकार के ताप पानेवाले प्राणियों के ऊपर देवता निःसन्देह बहुतकाल में प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ अनेकों जन्मों में सिद्धहुई उत्तम योगसमाधि के द्वारा संन्यासी पुरुष भी एकान्त में जिन तुम्हारे चरणके दर्शन का प्रयत्न करते हैं ॥ २८॥ ऐसे तुम अपने भक्तोंके हितकारी भगवान्,तुम्हारी कितनी ही अवज्ञा करनेपरभी उस अपराधपर ध्यान नहीं देतेहुए मुझ विषयासक्त के घर आज उत्पन्न हुए हो २९ ॥ तोभी भक्तों का मान बढ़ानेवाले तुम प्रत्यक्ष भगवान्, सांख्यशास्त्र का प्रचार चाहते हुए, 'मैं तुम्हारे यहां अवतार लूंगा' ऐसी अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के निमित्त मेरेघर प्रकट हुए हो ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! वास्तव में तुम निराकार हो, तथापि तुम्हारे भक्तोंको जो २ तुम्हारे चतुर्भुज आदिरूप प्रिय लगते हैं वह २ ही तुम्हें प्रिय लगते हैं अर्थात् उनको ही तुम धारण करते हो॥३१॥तिसमे तत्त्व को जाननेकी इच्छा करनेवाले विवेकी पुरुषों करके, प्रत्यक्ष सर्वदा प्रणाम करने योग्य जिन का पादपीठ (चरण रखनेकी चौकी) है ऐसे ऐश्वर्य, वैराग्य, कीर्ति, ज्ञान, वीर्य और सम्पत्ति इन छःप्रकार के ऐश्वर्यों करके युक्त जो तुम तिन तुम्हारी मैं शरणहूँ॥३२॥हेभगवन् ! रूपशक्तियें जिनके अधीनहैं अर्थात्

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ॥ आत्मानुभूत्याऽनुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥ ३३ ॥ आस्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयाऽवतीर्णर्ण उताप्तकामः ॥ परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन्विशोकः ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ॥ अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥ ३५ ॥ एतन्मे जन्म लोकेस्मिन् मुमुक्षूणां दुराशयात् ॥ प्रसंख्यानाय तत्त्वानां संमतायात्मदर्शने ॥ ३६ ॥ एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा ॥ तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतं ॥ ३७ ॥ गच्छ कामं मया पृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा ॥ जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥ ३८ ॥ मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् ॥ आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोको

प्रकृति, पुरुष, महत्तत्व, काल, अहङ्कार, लोक और लोकपाल जिन का स्वरूप हैं और चेतन शक्ति के द्वारा जिन के विषैं सब प्रपञ्च लीन होरहाहै तिन कपिलनामक आप परमेश्वर की मैं शरण हूँ ॥ ३३ ॥ हे देव! तुह्मारे अनुग्रह से मैं, देवता, ऋषि और पितरोंके ऋण से मुक्त हुआहूँ और मेरे सकल सांसारिक मनोरथ भी पूर्ण होगए, अतः मैं अवसंन्यासमार्गको ग्रहण करके शोकरहित होताहुआ यथेच्छ विचरूँगा अतः अव संन्यास ग्रहण करनेके निमित्त सकल प्रजाओंके पालक आपकी मैं आज्ञा मांगता हूँ ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि—हे कर्दमजी! मैंने जो तुम्हारे घर अवतार धारण कराहै सो ज्ञानके उपदेशके निमित्त ही है, अतः तुम्हें घरमें भी मुक्ति दुर्लभ नहींहै, अब यदि तुम्हें सन्न्यास धारणकरके जानाही आवश्यक प्रतीत होता हो तो जाओ परन्तु मेरा स्मरण करते रहना, क्योंकि—वैदिक वाक्यों में वा लौकिक वार्त्तालापोंमें मेरी आज्ञा सबको प्रमाण है अतः तुमसे करीहुई प्रतिज्ञाको सत्य करने के निमित्त मैंने यह अवतार धारण करा है ॥ ३५ ॥ इसलोक में प्रकटहुआ यह मेरा अवतार, लिङ्गशरीर से मुक्त होने की इच्छा करनेवाले मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान प्राप्त होने में सम्मत प्रकृति पुरुष आदि तत्त्वों के निरूपण करने के निमित्त है ॥ ३६ ॥ यह सूक्ष्म आत्मज्ञान का मार्ग यद्यपि पहिले ही से चला आरहा है तथापि वहुतकाल होजाने से नष्टप्राय सा होगया है अतः उसका फिर प्रचार करनेके निमित्त मैंने यह देह धारण करा है ऐसा जानो ॥ ३७ ॥ हे ऋषे! मैंने तुम्हें आज्ञा दी, अतः अब तुम इच्छानुसार चलेजाओ, और मृत्युको जीतना परम कठिन है परन्तु तुम मुझे समर्पण करेहुए सकल कर्मों के द्वारा उसको जीतकर मोक्षकी प्राप्ति के निमित्त मेरी (परमात्मा की) उपासना करो ॥ ३८ ॥ सकल प्राणियों के अन्तःकरण में रहनेवाला जो मैं स्वयंप्रकाश परमात्मा तिस को, अपने देहस्थित आत्मा में ही मनसे देखकर, तुम शोक से छूटोगे और

भयंमृच्छसि ॥ ३९ ॥ मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् ॥ वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति ॥ ४० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ॥ दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगामह ॥ ४१ ॥ व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः ॥ निःसंगो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥ ४२ ॥ मनो ब्रह्मणि युंजानो यत्तत्सदसतः परं ॥ गुणावभासे विगुण एकभक्त्यानुभाविते ॥ ४३ ॥ निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वंद्वः समदृक् स्वदृक् ॥ प्रत्यक् प्रशांतधीर्धीरः प्रशांतोर्मिरिवोदधिः ॥ ४४ ॥ वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ॥ परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥ आत्मानं सर्वभूतेषु भगवंतमवस्थितम् ॥ अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ॥ ४६ ॥ इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ॥ भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥ ४७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेये

मोक्षसुख पाओगे ॥ ३९ ॥ मैं देवहूति माता को, सञ्चित और क्रियमाण आदि सब प्रकार के कर्मोंकी वासनाएँ मन से दूर करनेवाली अध्यात्मविद्या कहूँगा, जिसके प्रभाव से वह देवहूति संसारभय को तरजायगी और मोक्षसुख पावेगी ॥ ४० ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी! इसप्रकार तिन कपिल मुनि के कर्दम प्रजापति को उत्तमप्रकारसे कहनेपर, आनन्दको प्राप्तहुए वह कर्दम ऋषि, तिन कपिलजीकी प्रदक्षिणा करके वनमें को चलेगये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर जिसका रक्षक आत्माही है ऐसे वह गृहस्थाश्रम—अग्नि और सकल सङ्गोंको त्यागनेवाले कर्दम मुनि, मनन करनेवाले ऋषियों के योग्य अहिंसाव्रत को धारण करके पृथ्वीपर इच्छानुसार विचरनेलगे ॥४२॥ तिन ऋषि ने कार्य और कारण से पर, तीनों गुणों का प्रकाश करनेवाले और अनन्यभक्ति करके प्रत्यक्ष जानने में आनेवाले निर्गुण ब्रह्मके विषैं अपना मन लगाया ॥ ४३ ॥ देहमें अभिमान हीन और स्त्री पुत्रादिमें ममता रहित, सुखदुःखादि द्वन्द्वशून्य, वैररहित, सर्वत्र समदृष्टि, अपने स्वरूपको जाननेवाले तथा जिसकी तरङ्गें शान्तहैं ऐसे समुद्रकी समान शांत और विषयों से निवृत्त होकर, परमात्माके विषैं लगाईहुई शान्तबुद्धि युक्त तथा धैर्यवान् होकर ॥ ४४ ॥ वह अपने उत्कट भक्तियोग के द्वारा, सर्वज्ञ अन्तर्यामी वासुदेव भगवान् के विषैं अपना अन्तःकरण स्थिर करके अज्ञानबन्धनसे मुक्त होते हुए ॥ ४५ ॥ सकल प्राणियों के विषैं व्याप्त होकर रहनेवाले व्यापक भगवान् को और तिन भगवान् के विषैं विद्यमान सकल प्राणियों को अभेदबुद्धि से देखने लगे ॥ ४६ ॥ उससमय इच्छा और द्वेषरूप मनके धर्मों से रहित, सर्वत्र समानबुद्धि और भगवद्भक्ति युक्त तिन कर्दम ऋषिको, भगवद्भक्तों को प्राप्त होनेवाली भागवती गति प्राप्त हुई ॥ ४७ ॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ७ ॥ शौनक उवाच ॥ कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ॥ जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥ १ ॥ नह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् ॥ विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यन्ति मेऽसवः ॥ २ ॥ यद्यद्विधत्ते भगवान् स्वच्छन्दात्मात्ममायया ॥ तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्त्तन्यान्यनुकीर्त्तय ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रेयो भगवांस्तथा ॥ प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया ॥ तस्मिन्बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान्कपिलः किल ॥ ५ ॥ तमासीनमकर्माणं तत्त्वमार्गाग्रदर्शनम् ॥ स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरती वचः ॥ ६ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् ॥ येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नाऽन्धं तमः प्रभो ॥ ॥ ७ ॥ तस्य त्वं तमसोऽन्धस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् ॥ सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते

इति तृतीय स्कन्ध में चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ शौनक जी ने कहा कि—हेसूत जी ! वह प्रकृति पुरुष आदि तत्त्वों की संख्या का प्रचार करनेवाले साक्षात् भगवान् कपिल जी, स्वयं जन्मरहित होकर भी मनुष्यों को आत्मतत्त्व का ज्ञान कराने के निमित्त उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ सकल पुरुषों में श्रेष्ठ और सकल योगियों में परममाननीय इन महामुनि कपिल जी की कीर्त्ति को श्रवण करने के विषय में, परमेश्वर के बहुत से चरित्र सुनते हुए भी मेरी इन्द्रियें पूर्ण २ तृप्त नहीं होती हैं ॥ २ ॥ अतः अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार देह धारण करनेवाले भगवान् जो २ चरित्र करते हैं वह सब कर्म वर्णन करने के योग्य हैं अतः श्रद्धा के साथ श्रवण करनेवाले मेरे अर्थ वह सब वर्णन करिये ॥ ३ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे शौनक जी ! जैसे तुमने मुझ से प्रश्न किया ऐसे ही विदुर जी करके आत्मविद्याके विषय में प्रेरणा करेहुए, भगवान्, व्यासजी के सखा मैत्रेय जी, विदुरजी के प्रश्नों के अनुसार उन से उत्तर कहने लगे ॥ ४ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि—हेविदुरजी ! महामुनि भगवान् कपिलजी पिता कर्दम ऋषि के वनमें को चलेजाने पर माता का प्रिय करने की इच्छा से कुछ दिनों तिस बिन्दुसरोवरके तटपर ही रहे ॥ ५ ॥ एक दिन ब्रह्मा जी के कथन को स्मरण करतीहुई वह देवहूति, आसन पर बैठेहुए, वास्तव में कर्मरहित परन्तु मुमुक्षुओं को तत्त्वमार्ग का सिद्धान्त दिखानेवाले तिन अपने पुत्र से कहनेलगी ॥६॥ देवहूति बोली कि—हे जगद्व्यापक प्रभो ! मैं इन दुर्निवार इन्द्रियों की तृप्ति के निमित्त विषयों की अभिलाषा से अत्यन्त ही श्रान्त होरही हूँ, और विषय देकर तिन इन्द्रियों की तृप्ति करती हुई गाढ़ अन्धकाररूप संसार में पड़ी हुई हूँ ॥ ७ ॥ तिस संसाररूप दुष्पार अन्धकार से पार लगानेवाले दिव्य चक्षुरूप तुम, ' तुम्हारे अनुग्रह से ही इस

लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥ ८ ॥ य आद्यो भगवान्पुंसामीश्वरो वै भवान् किल । लोकस्य तमसाऽन्धस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥९॥ अथ मे देव संमोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ॥ योऽवग्रहोऽहं ममेती त्येतस्मिन्योजितस्त्वया ॥१०॥ तं त्वागताऽहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारं ॥ जिज्ञासयाऽहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं निशम्य पुंसामपवर्गवर्धनम् ॥ धियाऽभिनंद्यात्मवतां सतां गतिर्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे ॥ अत्यंतोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥ १३ ॥ तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुराऽनघे ॥ ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वांगनैपुणम् ॥ १४ ॥ चेतः खल्वस्य वन्धाय मुक्तये चात्मनो मतं ॥ गुणेषु सक्तं वन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥ १५ ॥ अहंममाभिमानोत्थैः कामलो-

---

समय मेरे जन्मों के अन्त का समय अनेपर मुझे प्राप्तहुए हो ॥ ८ ॥ जो भगवान् पुराणपुरुष ईश्वर जीवोंके नियन्ता हैं और जो अज्ञानरूप अन्धकार से अन्धहुए पुरुषोंको, उदितहुए सूर्य की समान ज्ञानचक्षु देनेवाले हैं वही आप कपिल हैं इस में कोई सन्देह नहींहैं९ हे देव ! अब तुम मेरे इस महामोह को दूरकरदो, क्योंकि—इन देह इन्द्रिय आदि कों के विषैं 'यह मैं और यह मेरा' इत्यादि दुर्वासना और तिससे उत्पन्नहुए प्रीति आदि सब प्रकारोंको तुमनेही उत्पन्न किया है ॥ १० ॥ तिन तुह्मारी शरणमें, मैं प्रकृति पुरुष का ज्ञान होने के निमित्त प्राप्तहुई हूँ, तुम शरणागतों की रक्षा करनेवाले और अपने भक्तों के संसाररूप वृक्ष को छेदन करने में कुठार (कुल्हाड़ी) रूप तथा श्रेष्ठ धर्मज्ञानियों में भी श्रेष्ठ हो ऐसे आप को मैं नमस्कार करती हूँ ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हेविदुरजी ! इसप्रकार पुरुषोंकी मोक्षमें प्रीति उत्पन्न करनेवाली अपनी माता की निर्दोष अभिलाषा को सुनकर तत्काल मन्द मुसकुरा न से जिन का मुख शोभायमान हुआ है और आत्मज्ञानी पुरुषों के अधिपति तिन महामुनि कपिलजीने, मन से उसकी प्रशंसा करके कहने का प्रारम्भ किया ॥ १२ । श्री भगवान् ने कहा कि—हेमातः ! मनुष्योंको मोक्ष की प्राप्तिका उपाय और आत्मा के विषैं समाप्त होनेवाला योगही मेरा माननीय है, क्योंकि—तिस योगकी प्राप्ति होनेपर सांसारिक दुःखोंकी तथा विषय सुख की निवृत्ति होती है ॥१३। हे पतिव्रते मातः ! जो योगमार्ग पहिले श्रवण करनेकी इच्छा करनेवाले ऋषियों से मैंने कहाथा वही यह सकल अङ्गोंसे पूर्ण योगमार्ग अब मैं तुझसे कहताहूँ १४ हेमात !इस आत्माके बन्धन और मुक्तिका कारण चित्तहीहै इससे भिन्न दूसरा कोई नहींहै,वह चित्त शब्दादि विषयोंमें आसक्त होनेपर बन्धनका कारण होताहै और वही ईश्वरके विषैं प्रेमी होनेपर मुक्तिका कारण होताहै॥१५॥जिससमय वह मन देह आदिके विषैं

भादिभिर्मलैः ॥ वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥ १६ ॥ तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परम् ॥ निरन्तरं स्वयंज्योतिरणिमानमखंडितम् ॥१७॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना ॥ परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसं १८ न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ सदृशोऽस्ति शिवः पंथा योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥१९॥ प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ॥ स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतं ॥ २० ॥ तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनां ॥ अजातशत्रवः शांताः साधवः साधुभूषणाः ॥ २१ ॥ मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढां ॥ मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबांधवाः ॥ २२ ॥ मदाश्रयाः कथाः मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ॥ तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥ २३ ॥ त एते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्जिताः ॥ संगस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः संगदोषहरा हि ते ॥ २४ ॥ सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ॥ तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्ति-

' मैं ' इसप्रकार का अहङ्कार और पुत्र आदि के विषैं ' यह मेरे हैं ' इसप्रकारकी ममता इन दोनो अभिमानों से उत्पन्न हुए काम लोभ आदि मलों (विकारों) से रहित होकर शुद्ध होताहै अर्थात् उसको सुख वा दुःख यह दोनों प्राप्त न होकर समान होजाताहै तत्वज्ञान वैराग्य और भक्ति से युक्तहुए तिस मनके द्वारा यह पुरुष अपने को, प्रकृति से पर केवल, भेदरहित, स्वयंप्रकाश, अतिसूक्ष्म, अखण्डित और उदासीन हूँ, ऐसा देखता है और प्रकृति को क्षीण शक्तिहुई देखता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ योगाभ्यास करने वाले पुरुषों को, ब्रह्मप्राप्ति होने में सर्वात्मरूप भगवान् के विषैं करीहुई निष्काम भक्तिकी समान दूसरा सुखकारी मार्ग नहींहै ॥ १९ ॥ दुष्ट पुरुषों का समागम ही जीवात्मा को बांधनेवाला दृढ़ पाश (फाँसी) है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं और वही समागम यदि सत्पुरुषों से कियाजाय तो मोक्ष का खुलाहुआ द्वार है ऐसा जानो ॥ २० ॥ जो, सहनशील दयालु, शत्रुहीन, प्राणिमात्र के मित्र, गम्भीर स्वभाववाले, शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करनेवालेहैं और सुशील ही जिनका भूषणहै वह सत्पुरुष हैं; और जो मेरे विषैं अनन्यभाव से भक्ति करते हैं, मेरे निमित्त सकल व्यावहारिक कर्म्मों को तथा स्वजन और बान्धवोंको त्यागते हैं, मेरी निर्मल कथाओं को सुनतेहैं अथवा वर्णन करतेहैं तिन मेरे विषैं चित्त लगाने वाले भक्तोंको संसारके नानाप्रकारके ताप दुःखित नहीं करतेहैं ॥२१॥२२॥२३॥ हेपतिव्रते मातः! सकल संगों को त्यागकर रहनेवाले, पहिले कहे लक्षणों से युक्त जो साधु हैं उनका ही समागम तुझे करना चाहिये, क्योंकि—वही सत्पुरुष, ऐसे हैं कि—दुष्ट पुरुष वा विषयों के सङ्ग से उत्पन्न हुए जन्म मरण आदि दोषों का नाश करतेहैं ॥२४॥ साधुओं के समागम से ही, मेरे

रनुक्रमिष्यति ॥ २५ ॥ भक्त्या पुमान् जातविराग ऐन्द्रियाद्दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिंतया ॥ चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥ ॥ २६ ॥ असेवयाऽयं प्रकृतेर्गुणानां ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ॥ योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे ॥ २७ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ काचित्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ॥ यया पदं ते निर्वाणमञ्जसाऽन्वश्नवा अहं ॥ २८ ॥ यो योगो भगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः ॥ कीदृशः कति चांगानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥ २९ ॥ तदेतन्मे विजानीहि यथाऽहं मन्दधीर्हरे ॥ सुखं बुद्ध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विदित्वाऽर्थं कपिलो मातुरित्थं जातस्नेहो यत्र तन्वाऽभिजातः ॥ तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥ ३१ ॥

पराक्रमों का यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा अन्तःकरण और कर्णो को सुखी करनेवाली कथाओं का सुनना बनता है, तिन कथाओं के सेवन से मोक्षरूप श्रीहरि के विषैं प्रथम श्रद्धा तदनन्तर प्रीति और तदनन्तर भक्ति क्रम से उत्पन्न होती है ॥ २५ ॥ तदनन्तर मेरी करीहुई सृष्टि आदि लीलाओं के वारम्वार चिन्तवन करने से मेरे विषैं उत्पन्नहुई भक्ति के द्वारा, इस लोक में दीखनेवाले और स्वर्गादि लोकों में के सुनने में आनेवाले विषयों के सुखों से मनुष्य को वैराग्य उत्पन्न होता है और वह मनुष्य, आत्मसाधन के उद्योग में तत्पर होकर योगाभ्यास करताहुआ, जिन में भक्ति मुख्य है ऐसे योग के मार्गो करके अन्तःकरण को स्वाधीन करने का प्रयत्न करता है ॥ २६ ॥ वह पुरुष माया के गुणों से उत्पन्नहुए शब्दादि विषयों के सेवन को त्यागकर, वैराग्य से बढ़ेहुए ज्ञान, अष्टाङ्गयोग और मेरे में समर्पण करीहुई भक्ति के द्वारा इस देह में ही मुझ सर्वान्तर्यामी को प्राप्त करलेता है ॥ २७ ॥ देवहूति ने कहा कि—हे कपिलजी ! जिससे मोक्षरूप तुम्हारे स्वरूप को मैं तत्काल सर्वात्मभाव करके प्राप्त होजाऊँ, वह तुम्हारे विषैं करनेयोग्य, भक्ति कौनसी है ? तिस में भी मुझ स्त्री के योग्य कौनसी है ? ॥ २८ ॥ हे मोक्षरूप ! आपने जो भगवत्प्राप्ति करानेवाला योग कहा कि—जिस से तत्त्वज्ञान होता है वह कौनसा है ? और उस के अङ्ग कितने हैं ॥ २९ ॥ हे भक्तसङ्कटनाशक देव ! मैं मन्दबुद्धि स्त्री, समझने में परम कठिन तिस योगमार्ग को, तुम्हारी कृपा से जैसे अनायास में समझजाऊँ तैसे मुझे समझाकर कहो ॥ ३० ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! कपिल मुनि, जिस के उदर से स्वयं शरीर धारकर उत्पन्नहुए तिस माता के ऐसे अभिप्राय को जान दयायुक्त हुए और जिस में प्रकृति आदि तत्त्वों का निरूपण है तथा जिस को सांख्यशास्त्र कहते हैं तिसका, भक्ति के विस्तार का और योग का उत्तम प्रकार से वर्णन करा ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि-हे मातः ! शुद्धचित्त पु-

श्रीभगवानुवाच ॥ देवानां गुणलिंगानामानुश्रविककर्मणाम् ॥ सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥ ३२ ॥ अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ॥ जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥ ३३ ॥ नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्मत्पादसेवाऽभिरता मदीहाः ॥ येऽन्योऽन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥ ३४ ॥ पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यंब संतः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ॥ रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥ ३५ तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षितवामसूक्तैः ॥ हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुंक्ते ॥ ३६ ॥ अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टांगमनुप्रवृत्तम् ॥ श्रियं भागवतीं वाऽस्पृहयन्ति भद्रां परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥ ३७ ॥ न कर्हिचिन्मत्पराः शांतरूपे नंक्ष्यन्ति नो मे निमिषो लेढि हेतिः ॥ येषामहं प्रिय

रूपों की, विषयों का ज्ञान करानेवाली और वेद में कहे कर्म करनेवाली जो इन्द्रियें तिन की, सत्वमूर्त्ति श्रीहरि के विषें विना यत्न के ही सिद्ध हुई जो निष्काम प्रवृत्ति वही भक्ति है, वह अणिमादि सिद्धियों से बड़ी है, जैसे उदर की अग्नि (जाठराग्नि) प्राणियों के भक्षण करेहुए अन्न को सहज में ही पचाकर नष्ट करदेती है तैसे ही वह भक्ति लिङ्ग शरीर का नाश करदेती है तिसका ही नाम मोक्ष है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ कितने ही, मेरे ही निमित्त सकल व्यापार करनेवाले भक्त, मेरे चरणों की सेवा में निमग्न होतेहुए, मुझ से सायुज्यमुक्ति पाने की चाहना नहीं करते हैं किन्तु वह भक्त एक स्थानपर इकट्ठे होकर प्रेमपूर्वक मेरी लीलाओं का परस्पर वर्णन करते हैं ॥ ३४ ॥ हे मात. ! और वही भगवद्भक्त, प्रसन्नमुख, आरक्तनेत्र और इच्छित वरदेनेवाले मेरे दिव्य रूपोंका दर्शन करते हैं और उन के साथ श्रवण करने योग्य सप्रेम भाषण करते हैं।३५। मनोहर मुख नेत्र आदि अवयवोंवाले, उदार लीला करनेवाले,मन्दहास्य के साथ अवलो-कन करने वाले और मधुरभाषी तिन मेरे रूपों ने जिन का मन और इन्द्रियें अपनी ओर को खैंचली हैं ऐसे वह मेरे भक्त, मोक्ष की इच्छा नहीं करते हैं तथापि वह भक्ति ही उन को मोक्ष की प्राप्ति करादेती है ॥ ३६ ॥ अज्ञान दूर होनेपर वह भगवद्भक्त, माया का नियन्ता जो मैं तिस मेरे सत्यलोक में की भोगसम्पत्तियों की तथा भक्तिके पीछे अपने आप प्राप्तहुई अणिमा महिमा आदि आठ ऐश्वर्योंकी और वैकुण्ठमेंकी सुखकारी सम्पत्तियों की इच्छा नहीं करते हैं तथापि मेरे वैकुण्ठलोक में उनको वह सिद्धियें प्राप्त होतीही हैं ॥ ३७ ॥ हे मातः ! जिनका. प्रिय, आत्मा, पुत्र, सखा, गुरु, सुहृद् और इष्ट देवता मैं ही हूँ तिन एक मेरा ही आश्रय करनेवाले भक्तों का,शान्तरूप वैकुण्ठमें किसी प्रकारभी

आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टं ॥ ३८ ॥ इमं लोकं तथैवाऽमुमात्मानमुभयायिनम् ॥ आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः ॥ ॥ ३९ ॥ विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखं ॥ भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥ ४० ॥ नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ॥ आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥४१॥ मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ॥ वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥४२॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः ॥ क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशंत्यकुतोभयं ॥४३॥ एतावानेव लोकेस्मिन्पुंसां निःश्रेयसोदयः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥ ४४ ॥ इति भा० म० तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ॥ यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥१॥ ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ॥ यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रंथिभेदनम् ॥ २ ॥ अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ प्रत्यग्धामा स्वयं-

नाश नहीं होता है, क्योंकि मेरा कालचक्र उनका ग्रास नहीं करता है ॥ ३८ ॥ हेमातः! इसलोक में, परलोक में तथा दोनों लोकों में गमन करनेवाला देह और उस देह के सम्बन्ध वाले यहां के ऐश्वर्य, पशु और गृहों का तथा औरभी सकल विषयों का त्याग करके अनन्य भक्ति के द्वारा जो मुझ सर्वसाक्षी का भजन करते हैं उन को मैं मृत्युरूप संसार के पार करदेताहूँ।३९।४०।हेमातः!प्रकृति और पुरुषका नियन्ता,सकल प्राणियों काअन्तर्यामी और षड्गुण ऐश्वर्य युक्त जो मैं परमात्मा तिसको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी यह घोर संसार भय दूरनहीं होताहै॥४१॥यह वायु मेरे भयसे ही चलताहै,सूर्य मेरे भयसे ही प्रकाश करता है,इन्द्र मेरे भय से ही वर्षा करताहै,अग्नि जलाताहै और मृत्युभी मेरेभयसे ही विचरता है।४२।अतः योगी पुरुष अपना कल्याण करनेके निमित्त ज्ञान वैराग्ययुक्त भक्तिके द्वारा मेरे निर्भय चरणकी शरण लेते हैं ॥ ४३ ॥ इस लोक में तीव्र भक्तिके द्वारा मेरे विषैं अर्पण करा हुआ मन स्थिर होता है इतना होनाही पुरुषोंकी मोक्षप्राप्ति का उदयहै ॥ ४४ ॥ इति तृतीय स्कन्ध में पञ्चविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–हेमातः! अबतक मैंने तेरे अर्थ भक्तियोग कहा अब तत्त्वों के पृथक् २ लक्षण कहता हूँ उनको जानकर पुरुष मायाके गुणों से छूटता है ॥ १ ॥ हेमातः! अहङ्काररूप हृदयकी ग्रन्थि का भेदन करनेवाला आत्मदर्शनरूप ज्ञान, पुरुषकी मोक्षप्राप्ति का कारणहै ऐसा कहते हैं, वह ज्ञान तत्त्वों के लक्षण जानने से होता है अतः तत्त्वों के लक्षण कहने के क्रमसे वह ज्ञान भी तुझ से वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥ हेमातः! जिसमें व्याप्त हुआ यह जगत् प्र-

ज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥ ३ ॥ स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ॥ यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥ ४ ॥ गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ॥ विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया ॥ ५ ॥ एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् ॥ कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ॥ ६ ॥ तदस्य संसृतिर्बन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतं ॥ भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः ॥ भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ८ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम ॥ ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्चयदात्मकम् ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानं प्रकृतिं

काशित होता है वह आत्माही पुरुष है, वह स्वयं प्रकाश, अन्तर्ज्ञानरूप, प्रकृति से पर, निर्गुण और अनादि है ॥ ३ ॥ आवरण और विक्षेप इन दो शक्तियों करके प्रकृति के अविद्या और माया यह दो भेदहैं तिनमें अविद्या ज्ञान को ढकनेवाली जीवकी उपाधिहै और माया ब्रह्माण्डका विस्तार करनेवाली ईश्वर की उपाधि है; पुरुषके ही जीव और ईश्वर यह दो भेद हैं, तिन जीव प्रकृतिका ज्ञान न होनेसे जीव संसारको प्राप्त होताहै और ईश्वर प्रकृतिको अपने वश में रखकर जगत्की उत्पत्ति,स्थिति और संहार करता है, अब प्रकृति के अज्ञान से जीवको संसार कैसे प्राप्त होताहै सो कहते हैं–तिसही व्यापक जीवरूप पुरुष ने,विष्णुकी त्रिगुणमयी शक्ति प्रकृति को, समीप आनेपर लीला करके सहजमें ही स्वीकार किया है॥४॥सत्व,रज और तम इन तीन गुणों के द्वारा अपनी समान त्रिगुणमयी अनेक प्रकारकी प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाली तिस प्रकृति को देखकर वह जीव ज्ञानका आवरण करनेवाली तिसके द्वारा तत्काल मोहितहुआ अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूपको भूलगया॥५॥ इसप्रकार पुरुष प्रकृति के अध्यास से, प्रकृति के गुणों के कर्म करने पर, वह मैंने ही करे, ऐसा तिन कर्मों का कर्त्तृत्व अपने में मानता है ॥ ६ ॥ तिस मानने से ही इस साक्षी पुरुष को अकर्त्ता होकर कर्मों का बन्धन, ईश्वर होकर तिन कर्मों की करीहुई परतन्त्रता, और सुखस्वरूप होकर संसार प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ पुरुष को शरीर, इन्द्रिय और देवताओं के धर्म प्राप्त होनेका कारण प्रकृति ही है और सुखों के तथा दुःखोंके भोक्तृत्व का कारण प्रकृति से पृथक् रहनेवाला पुरुष है अर्थात् कूटस्थ में, स्वयं विकार न होनेपर भी प्रकृति का परिणाम रूपजो देहादि के विषैं कियाहुआ अहङ्कार तिसमें,ही यद्यपि कर्त्तृत्व आदि सकल धर्म्मों का अनुभव होताहै तथापि तिस अहङ्कारके जड़ होनेके कारण भोगरूप धर्म चैतन्यस्वरूप पुरुषके विषैंही प्रतीत होताहै ॥८॥ देवहूतिने कहा कि-हे पुरुषोत्तम! स्थूल और सूक्ष्म कार्य्य जिसका स्वरूप हैं तिन प्रकृति,पुरुषरूप इसजगत्के कारणभूत दोनो तत्वोंको मेरेअर्थ वर्णन करिये॥९॥

प्राहुरविशेषं विशेषवत् ॥ १० ॥ पंचभिः पंचभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा ॥ एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥ ११ ॥ महाभूतानि पञ्चैव भूरापो ऽग्निर्मरुन्नभः ॥ तन्मात्राणि च तावंति गन्धादीनि मतानि मे ॥ १२ ॥ इंद्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः ॥ वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते ॥ १३ ॥ मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यंतरात्मकम् ॥ चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥ १४ ॥ एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह। संनिवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः ॥ १५ ॥ प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयं ॥ अहङ्कारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥ १६ ॥ प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ॥ चेष्टा यतः स भगवान् काल इत्युपलक्षितः ॥ १७ ॥ अतः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ॥ समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥ १८ ॥ दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ

श्री भगवान् बोले जिस में कोई भी विशेष धर्म नहीं है तथापि जो विशेष धर्म्मों का आधार है अर्थात् जैसे आकाश में घटपटादि कोई पदार्थ नहीं है परन्तु वह सकल पदार्थों का आधार है तैसेही जो त्रिगुणात्मक, इन्द्रियों का अगोचर, कार्य कारणरूप और नित्यतत्व है उसकोही प्रधान वा प्रकृति कहते हैं ॥ १० ॥ पाँच, पाँच, चार और दश मिलकर इनचौवीस तत्वोंकेसमूह को प्रधान कार्यरूप ब्रह्म कहते हैं ॥ ११ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पांच भूत हैं और इनके गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द यह पाँच सूक्ष्मरूप मेरे मान्यहैं। १२। इन्द्रियेंदश हैं, कर्ण त्वचा, दृष्टि, जिव्हा, नासिका वाणी, हाथ, चरण, शिश्न और दशवीं गुदा कहाती है ॥ १३ ॥ अन्तःकरण के—मन, बुद्धि, अहङ्कार, और चित्त यह चार भेद हैं, वह अपनी सङ्कल्प निश्चय, अभिमान और चिन्ता इन भिन्न२बोधक वृत्तियों से समझनें आताहै । १४ । इतनी ही यह चौवीस प्रकारकी सगुणब्रह्मकी संख्याविशेष तत्वज्ञानी पुरुषोंने कहीहै, और जो कालहै उसको पचीसवां तत्व कहते हैं, वह काल प्रकृति कीही अवस्था विशेष है। १५। कितने ही लोक तो पुरुष के पराक्रम को ही काल कहते हैं, वह काल दो प्रकार का है एक संहार करनेवाला, और दूसरा सृष्टि करनेवाला. जिससे, प्रकृतिरूप उपाधिको स्वीकारकरनेवाले और देहपरभी 'मैं' ऐसा अभिमान करनेसे मूढ होकर रहनेवाले कर्त्ता जीवको भयप्राप्त होता है वह काल संहार करनेवालाहै॥ १६ ॥ और हेमनुपुत्रि ! जिससे, नामरूप आदि विभागरहित गुणों की समतारूप प्रकृति की चलन आदि चेष्टा होती हैं वह भगवान् काल सृष्टि को करनेवाले हैं ॥ १७ ॥ इसप्रकार यह भगवान अपनी माया के द्वारा सकल प्राणियों के भीतर अन्तर्यामीरूप से और बाहर कालरूप से व्याप्त होरहे हैं, ॥ १८ ॥ जीव के अदृष्ट का फल मिलने का समय आनेपर, जिस के गुणों में क्षोभ उत्पन्न हुआ है और जो

परः पुमान् ॥ आधत्त वीर्यं सोऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥ १९ ॥ विश्वमात्मगतं व्यंजन् कूटस्थो जगदंकुरः ॥ स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥२०॥ यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शांतं भगवतः पदं । यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकं॥२१॥स्वच्छत्वमविकारित्वं शांतत्वमिति चेतसः॥ वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथाऽपां प्रकृतिः परा॥२२॥महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसम्भवात्॥क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥ २३ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ॥ मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥ २४ ॥ सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनंतं

अपने प्रकट होने का स्थान है ऐसी प्रकृति के विषें सब के नियन्ता पुरुष ने, अपनी चैतन्य शक्तिरूप वीर्य स्थापन किया, तब उससे तेजस्वी महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ यह महत्तत्त्व जैसे का तैसा ही रहनेवाला जगत् का पहिला अंकुरहुआ; इसने अपने में सूक्ष्मरूप से भरे हुए विश्व को प्रकट करने के निमित्त अपने तेजसे, अपने ही स्वरूप को ढकनेवाले (जिसने पहिले प्रलयकाल के समय महत्तत्त्व का प्रकृति में लय किया था तिस) प्रलयकाल के तीव्र अन्धकार को पीलिया ॥ २० ॥ हेमातः! प्रसङ्ग से प्राप्तहुई चतुर्व्यूह की उपासना अब मैं तेरे अर्थ वर्णन करता हूँ—जो सकल वेदों में प्रसिद्ध, निर्मल,सत्वगुण रूप और रागद्वेष आदिरहित भगवत्प्राप्ति का स्थान कहाहै और जिसको वासुदेव नामक चित्तभी कहते हैं वह महत्तत्त्व ही है, तिस की अधिभूतरूप से महत्तत्त्व संज्ञा, अध्यात्म रूप से चित्तसंज्ञा और उपास्य देवतारूप से वासुदेव संज्ञा है इसका अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ है और यह चतुर्व्यूहोपासना में पहिला व्यूहहै ॥ २१ ॥ जैसे जलका यथार्थ लक्षण—पृथ्वी का संसर्ग होनेसे पहिले तथा झाग तरङ्ग आदि उत्पन्न होनेसे पहिले स्वच्छता, शान्तता और मधुरता होता है और तदन्तर भूमि वायु आदि के सम्बन्ध से झाग आदि विकार युक्त होता है तैसेही चित्त का लक्षण—वृत्ति उत्पन्न होनेसे प्रथम स्वच्छ (भगवान् का बिम्ब ग्रहण करने के योग्य) निर्विकार (लय वा चंचलतारहित) और शान्त (गम्भीर) होकरभी, वृत्तियें उत्पन्न होनेपर कामक्रोध आदि विकारयुक्तहोता है ऐसा कहाहै ॥ २२ ॥ भगवान् की चित् शक्ति से उत्पन्न हुआ जो महत्तत्त्व वह जब कालगति से विकारको प्राप्त होनेलगा तब उस से, सकल कर्मों में जिसकी शक्ति है ऐसा तीन प्रकारका अहङ्कार उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ वह सात्विक, राजस और तामस था, तिस तीन प्रकार के अहङ्कार से क्रमसे मन, इन्द्रिय और पञ्चमहाभूतों की उत्पत्तिहुई ॥ २४ ॥ तिस अहङ्कार को ही प्रत्यक्ष सहस्रमुख, अनन्त, भूत इन्द्रियों के देवतारूप सङ्कर्षण पुरुष कहते हैं, चारप्रकार की व्यूहोपासना में इसको दूसरा व्यूह जाने.इसकी अधिभूतरूपसे भूत इन्द्रिय और मनका समुदाय यह संज्ञा अध्यात्मरूप से अहङ्कार संज्ञा और उपास्यदेवतारूप से सङ्कर्षण संज्ञा

मर्चक्षते ॥ संकर्षणाख्यं पुरुषं भूतेंद्रियमनोमयम् ॥ २५ ॥ कर्तृत्वं कारणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ॥ शांतघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः ॥ ॥ २६ ॥ वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत ॥ यत्संकल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसम्भवः ॥ २७ ॥ यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ॥ शारदेंदीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥ २८ ॥ तैजसात्तु विकुर्वाणाद्बुद्धितत्त्वमभूत्सति ॥ द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिंद्रियाणमनुग्रहः ॥ २९ ॥ संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च ॥ स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षलणं वृत्तितः पृथक् ॥ ३० ॥ तैजसानींद्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः ॥ प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञान शक्तिता ॥ ३१ ॥ तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् ॥ शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं च शब्दगम् ॥ ३२॥ अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेव च ॥

है तथा इसका देवता रुद्र है ॥ २५ ॥ देवतारूप से कर्तृत्व, इन्द्रियरूप से कारणत्व और भूतरूप से कार्यत्व अथवा सत्व, रज और तम इन गुणों के सम्बन्ध से शान्तत्व, भयङ्करत्व और अतिमूढत्व यह अहङ्कार के लक्षण हैं॥ २६ ॥ फिर विकारको प्राप्त होनेवाले सात्विक अहङ्कार से मनरूप तत्त्व उत्पन्न हुआ, जिस मनके सङ्कल्प विकल्पोंसे अनेकों प्रकारकी कामनाओं की उत्पत्ति होती है॥ २७ ॥ इस मनको ही अनिरुद्धनामक देव और इन्द्रियोंका अधिपति कहते हैं यह शरद्ऋतुके नीलकमलकी समान श्यामवर्ण है और योगीजन इसको शनैः २ वश में करते हैं. चतुर्व्यूहोपासना में इसको तीसरा व्यूह जाने. इस की अधिभूतरूप से और अध्यात्मरूप से मन संज्ञा है और उपास्यदेवतारूप से अनिरुद्ध संज्ञा है तथा इसका अधिष्ठाता देवता चन्द्रमा है॥ २८ ॥ हेपतिव्रते ! विकार को प्राप्त होनेवाले राजस अहङ्कार से बुद्धिरूप तत्त्व उत्पन्न हुआ. इस तत्त्वके, वृत्तियों के भेदसे भिन्न२ लक्षणहैं—पदार्थों के स्वरूपको समझनेका विशेष ज्ञान, इन्द्रियों के ऊपर विषयोंको मिलादेने का अनुग्रह करना, संशय, विपरीत ज्ञान, निश्चय, स्मरण और निद्रा यहहैं चतुर्व्यूहोपासना में इसको चौथा व्यूह जाने, इसकी अधिभूतरूपसे बुद्धिसंज्ञा और उपास्य देवतारूपसे प्रद्युम्न संज्ञा है, इसका अधिष्ठाता ब्रह्मा है ॥ २९ ॥ ३० ॥ पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच ज्ञानेन्द्रिय यह राजस अहङ्कार से उत्पन्न हुई, क्योंकि-कर्म यह शक्ति प्राण की है और वह प्राण राजस अहङ्कार का कार्य है अतः कर्म करनेवाली इंद्रियें राजस अहङ्कार का कार्य हैं, तैसे ही ज्ञान बुद्धि की शक्ति है और वह बुद्धि राजस अहङ्कार का ही कार्य है ॥ ३१ ॥ भगवान् की शक्ति का प्रेरणा कराहुआ तामस अहङ्कार जब विकार को प्राप्त होनेलगा तब उससे सूक्ष्मभूत शब्द उत्पन्न हुआ तिस शब्द से आकाशनामक महाभूत उत्पन्न हुआ तिस शब्द विषय को ग्रहण करनेवाली श्रोत्र इ-

तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥ ३३ ॥ भूतानां छिद्रदातृत्वं बहि-
रन्तरमेव च ॥ प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणं ॥ ३४ ॥ नभसः
शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः ॥ स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक्स्पर्शस्य च
संग्रहः ॥ ३५ ॥ मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च ॥ एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं
तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥ ३६ ॥ चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः ॥ स-
र्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥ ३७ ॥ वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं
दैवेरितादभूत् । समुत्थितं ततस्तेजश्चक्षू रूपोपलम्भनम् ॥ ३८ ॥ द्रव्याकृतित्वं
गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेव च ॥ तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥
॥ ३९ ॥ द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् ॥ तेजसो वृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुत्तृडे-
व च ॥ ४० ॥ रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् ॥ रसमात्रमभूत्तस्मादं-
भो जिह्वा रसग्रहः ॥ ४१ ॥ कषायो मधुरस्तिक्तः कट्वम्ल इति नैकधा ॥

न्द्रिय है ॥ ३२ ॥ पदार्थ का आश्रय होना, देखनेवाले को बोध करानेवाला चिन्ह होना और आकाश के सूक्ष्मरूप से रहना, यह शब्द के लक्षण हैं ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं ॥ ३३ ॥ तथा प्राणिमात्र को स्थान देना, भीतर और बाहर व्यवहार करने को स्थान देना, और प्राण, इन्द्रिय तथा मन का आश्रय होना यह आकाश का कार्यरूप लक्षण है ॥ ३४ ॥ फिर काल की गति से तिस शब्दगुण सहित आकाश के विकार को प्राप्त होनेपर उस से स्पर्शरूप सूक्ष्मगुण उत्पन्न होकर तिस से वायु उत्पन्न हुआ; स्पर्श को ग्रहण करनेवाली त्वचा इन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥ कोमलता, कठोरता, शीतता, उष्णता और वायु का सूक्ष्मरूप होना यह स्पर्श के लक्षण हैं ॥ ३६ ॥ वृक्षोंकी शाखा आदि हिलना, तृण आदिका एक स्थानपर इकट्ठा होना, सर्वत्र गतिहोना, सुगन्ध आदि पदार्थ नासिकासे लेना, शीत उष्ण आदि पदार्थों का त्वचासे संयोग करना और सकल इन्द्रियोंको अपना२ कार्य करनेकी शक्ति देना, यह वायुके कार्यरूप लक्षण हैं ॥ ३७ ॥ दैवके प्रेरणा करेहुए स्पर्शगुणवाले वायु से रूपनामक सूक्ष्मभूत उत्पन्नहुआ, तिससे तेज उत्पन्नहुआ रूपको ग्रहण करनेवाला चक्षु इन्द्रिय है ॥ ३८ ॥ हे पतिव्रते ! पदार्थमात्रको आकार प्राप्त करदेना, पदार्थों के आधारसे प्रतीत होना, पदार्थकी रचना की समान रचना होना और तेजका विशेषगुण होकर रहना यह रूपके लक्षण हैं । ३९ ॥ प्रकाश करना, पकाना, क्षुधा और तृषाको उत्पन्न करके उनको दूर करने के निमित्त खाना और पीना तथा पदार्थों को सुखाना यह तेज के कार्यरूप लक्षण हैं ॥ ४० ॥ रूप जिस का विशेष गुण है तिस तेज के दैव से प्रेरित होकर विकार को प्राप्त होनेपर उस से सूक्ष्मगुण रस उत्पन्न हुआ और तिस से जल उत्पन्न हुआ, रस को ग्रहण करनेवाली जिह्वा इन्द्रिय है ॥ ४१ ॥ मूल में एक मधुर ही रस है, वह अन्य द्रव्यों के संसर्ग से.

भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥ ४२ ॥ क्लेदनं पिंडनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोदनम् ॥ तापापनोदो भूयस्त्वमंभसो वृत्तयस्त्विमाः ॥ ४३ ॥ रसमात्राद्विकुर्वाणादंभसो दैवचोदितात् ॥ गन्धमात्रमभूत्तस्मात् पृथ्वी घ्राणस्तु गंधगः ॥ ४४ ॥ करंभपूतिसौरभ्यशांतोग्रादिभिः पृथक् ॥ द्रव्यावयववैषम्याद्गंधे एको विभिद्यते ॥ ४५ ॥ भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् ॥ सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्ति लक्षणम् ॥ ४६ ॥ नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ॥ वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ॥ ४७ ॥ तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते ॥ अंभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः ॥ भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ॥ ४८ ॥ परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन्समन्वयात् ॥ अतो विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते ॥ ॥ ४९ ॥ एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै ॥ कालकर्मगुणोपेतो जग-

कसैला, मधुर, तीखा (चरपरा), कड़ुवा, अम्ल और लवण ऐसे अनेकों भेदवाला होता है ॥ ४२ ॥ भिजोना, मृत्तिका आदि के चूर्ण को पिण्डाकार करना, जीवन देना, तृपा को दूर करना, पदार्थ में कोमलता लाना, तापको दूरकरना और कूप आदि में से बाहर निकाललेने पर भी फिर उत्पन्न होना; यह जलके कार्यरूप लक्षण हैं ॥ ४३ ॥ रसगुण वाले जलके दैव से प्रेरित होकर विकारको प्राप्त होनेपर उससे गन्धनामा सूक्ष्मगुण उत्पन्न हुआ और तिस गन्धसे पृथ्वी उत्पन्न हुई, गन्ध को ग्रहण करनेवाली घ्राण इंद्रिय है ॥ ४४ ॥ वह गन्ध एक होकर भी संसर्गी पदार्थों के मेल से मिश्रगन्ध, सुगन्ध, दुर्गंध शान्त, उग्र और अम्ल आदि भिन्न २ भेदों को प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ प्रतिमादिरूप से ब्रह्मवस्तु की साकारता प्राप्त करना, दूसरे आश्रय की अपेक्षा न करके स्थित होना, जल आदि धारण करना, आकाश आदि का भिन्न २ पना दिखाना और सकल प्राणी तथा उनके पुरुषत्व आदि धर्मों को प्रकट करना यह पृथ्वी के कार्यरूप लक्षण हैं। ४६। आकाश का गुणविशेष शब्द जिसका विषय है उसको श्रोत्र इन्द्रिय कहते हैं, वायुका गुण विशेष स्पर्श जिसका विषयहै उसको त्वक् इन्द्रिय कहतेहैं॥४७॥तेज का गुणविशेष रूप जिसका विषयहै उसको चक्षु इन्द्रिय कहतेहैं, जलका गुणविशेष रस जिसका विषय है उसको रसना इन्द्रिय कहतेहैं, भूमिका गुणविशेष गन्ध जिसकाविषयहै उसको घ्राण इन्द्रिय कहते हैं। ४८। आकाश आदि कारणोंके शब्द आदि धर्म, वायु आदि कार्य्योंके विषैं अन्वयके द्वारा दीखतेहैं अतः आकाश आदि पञ्चमहाभूतोंके शब्द आदि सकल गुण भूमिमें ही मिलते हैं ॥ ४९ ॥ महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चमहाभूत यह सात उत्पन्न होकर एकमें एक न मिलकर पृथक् २ ही रहे, तब उनसे सृष्टि न होनेके कारण काल, कर्म और सत्वादिगुणों सहित

दादिरूपाविशत् ॥ ५० ॥ ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योऽण्डमचेतनम् ॥ उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौ विराट् ॥ ५१ ॥ एतदण्डं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ॥ तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ॥ यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ॥ ५२ ॥ हिरण्मयादण्डकोशादुत्थाय सलिले शयात् ॥ तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ॥ ५३ ॥ निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् ॥ वाण्या वह्निरथो नासे प्राणोतो घ्राण एतयोः ॥ ५४ ॥ घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः ॥ तस्मात्सूर्यो न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततो दिशः ॥ ५५ ॥ निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्र्वादयस्ततः ॥ तत ओषधयश्चासन् शिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥ ५६ ॥ रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् ॥ गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ ५७ ॥ हस्तौ च निरभिद्येतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् ॥ पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्यां ततो

जगत्के आदि कारण परमेश्वर ने उन में प्रवेश किया ॥ ५० ॥ तदनन्तर तिन परमेश्वर से प्रेरित होकर परस्पर मिलेहुए तिन महत्तत्त्व आदि तत्त्वों से एक जड़ अण्ड उत्पन्न हुआ और उस से विराट् पुरुष की उत्पत्ति हुई ॥५१॥ इस अण्डका नाम विशेषहै,इसमें इन सब लोकों का विस्तार भराहुआ है, इस के चारों ओर जल,तेज, वायु, आकाश और अहङ्कारके क्रमसे,एकसे एक दशगुणा ऐसे लपेट लगरहेहैं और सबके बाहर प्रकृतिका लपेट है, यह भगवान् श्रीहरिका स्वरूपहै ॥ ५२ ॥ सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने, जल में के तिस तेजोमय ब्रह्माण्ड में,अपनी उदासीनता को त्यागकर और तहां ही रहकर तिस ब्रह्माण्ड में आगे कहेहुए अनेकों प्रकार के छिद्र करे ॥ ५३ ॥ इस ब्रह्माण्डरूप पुरुष के प्रथम मुख उत्पन्न हुआ, तिस में वाणी (इन्द्रिय) उत्पन्न हुई, और उस के साथही उसका देवता अग्नि उत्पन्न हुआ. तदनन्तर इस के दोनों नासापुट उत्पन्न हुए तिन में प्राण सहित घ्राण इन्द्रिय ने प्रवेश किया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस का देवता तहां, आकर रहा, तदनन्तर उस के नेत्रगोलक उत्पन्न हुए तिन में चक्षु इन्द्रिय और उन का देवता सूर्य आकर रहा,फिर उसके कर्णोंके छिद्र उत्पन्न हुए तहाँ कर्णेन्द्रिय और उसकी देवता दिशा आकर रहीं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर विराट् पुरुष के त्वचा उत्पन्न हुई उसपर केश, दाढ़ी, रोम आदि इन्द्रिय तथा उनकी देवता औषधि रहीं;फिर इसके शिश्न उत्पन्न हुआ॥५६॥ तिस में वीर्य और उसका देवता जल आकर रहा; फिर उसके गुदा उत्पन्न हुई तिस में अपान इन्द्रिय और उस की देवता लोकों को भय देने वाली मृत्यु आकर रही॥५७॥ फिर इसके हाथ उत्पन्न हुए तिन में बल नामक इन्द्रिय और इन्द्र नामक देवता आकर रहे, इस के चरण उत्पन्न हुए, तिन में गति इन्द्रिय और उन के देवता विष्णु आकर रहे

हरिः ॥ ५८ ॥ नाड्योऽस्य निरभिद्यन्त ताभ्यो लोहितमाभृतं ॥ नद्यस्ततः
समभवन्नुदरं निरभिद्यत ॥ क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् ॥५९॥
अथास्य हृदयं भिन्नंहृदयान्मन उत्थितम्॥मनसश्चन्द्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धे गिरां
पतिः॥ अहंकारस्ततोरुद्रश्चित्तंचैत्यस्ततोऽभवत्६०एते ह्यभ्युत्थिता देवा नै-
वास्योत्थापनेऽशकन् ॥ पुनराविविशुः खानि तमुत्थापयितुं क्रमात् ॥ व-
ह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६१ ॥ घ्राणेन नासिके वायु-
र्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ अक्षिणी चक्षुषादित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६२ ॥
श्रोत्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ त्वचं रोमभिरोषध्यो नो-
दतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६३ ॥ रेतसा शिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदा विराट्॥गुदं
मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६४ ॥ हस्ताविन्द्रो बलेनैव नोदतिष्ठ-
त्तदा विराट् ॥ विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६५॥ नाडीर्नद्यो
लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिन्धुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट्

॥ ५८ ॥ इस के नाड़ी उत्पन्न हुई, तिन में रक्त इन्द्रिय भरकर रहा, तदनन्तर तहां नदी देवता हुई; फिर इस के उदर उत्पन्न हुआ, तहां क्षुधा और तृषा यह इन्द्रिय हुई तदनंतर उन का देवता समुद्र हुआ ॥ ५९ ॥ हृदय उत्पन्न हुआ, हृदय से मन उत्पन्न हुआ, तिस मन से उस का देवता चन्द्रमा हुआ, तिस ही हृदय में दूसरी एक बुद्धि उत्पन्न हुई, उस से उस के देवता ब्रह्माजी हुए; तिस ही हृदय में अहङ्कार उत्पन्न हुआ, उस से उस के देवता रुद्र हुए, उस ही हृदय में चित्त हुआ उस से उसका देवता क्षेत्रज्ञ हुआ ॥ ६० ॥ इन में मुख्य देवता क्षेत्रज्ञ है, क्योंकि-उस के विना, उत्पन्न हुए यह सकलही देवता, इस विराट् पुरुष को उठाने का उद्योग करते हुए भी उठाने को समर्थ नहीं हुए तब उन्हो ने उसको उठाने के विषय में फिर क्रमसे अपने २ स्थान में प्रवेश किया अग्नि ने वाणी के साथ मुख में प्रवेश किया, तबभी विराट् पुरुष नहीं उठा ॥ ६१ ॥ वायुने घ्राण इन्द्रिय के साथ नासिका में प्रवेश किया तब भी विराट् पुरुष नहीं उठा, सूर्य ने चक्षु इन्द्रिय के साथ नेत्रों में प्रवेश किया तबभी विराट् पुरुष नहीं उठा ॥ ६२ ॥ दिशाओं ने श्रोत्र इन्द्रिय के साथ कर्णों में प्रवेश किया तबभी विराट् पुरुष नहीं उठा, सकल औषधियों ने केश और रोमों सहित त्वचापर निवास किया तबभी विराट् पुरुष नहीं उठा ॥ ६३ ॥ जलने वीर्य सहित शिश्नमें प्रवेश किया तबभी विराट् पुरुष नहीं उठा, मृत्यु अपान इन्द्रिय के साथ गुदामें आकर रही तबभी विराट् पुरुष नहीं उठा ॥ ६४ ॥ इन्द्र बल-सहित हाथों पर आकर रहा तब भी विराट् पुरुष नहीं उठा, विष्णु गतिसहित चरणों पर रहे, तब भी विराट् पुरुष नहीं उठा ॥ ६५ ॥ सकल नदियों ने रक्त के साथ

॥ ६६ ॥ हृदयं मनसा चन्द्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ बुद्ध्या ब्रह्माऽपि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६७॥ चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ॥ विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥ ६८ ॥ यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेन्द्रियमनोधियः ॥ प्रभवन्ति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥ ६९ ॥ तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ॥ भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्यात्मनि चिन्तयेत् ॥ ७० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेये तत्त्वसमाम्नाये षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ॥ अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥ १ स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ॥ अहंक्रियाविमूढात्मा कर्तास्मीत्यभिमन्यते ॥ २ ॥ तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येनाड़ियों में प्रवेश किया तब भी विराट्पुरुष नहीं उठा क्षुधा और तृषा के साथ समुद्र ने उदर में प्रवेश किया तब भी विराट् पुरुष नहीं उठा, ॥ ६६ ॥ चन्द्रमाने मनके साथ हृदय में प्रवेश किया तब भी विराट् पुरुष नहीं उठा ब्रह्माजी ने बुद्धि के साथ हृदय में प्रवेश किया तब भी विराट् पुरुष नहीं उठा, रुद्र ने अहङ्कार के साथ हृदय में प्रवेश किया तब भी विराट् पुरुष नहीं उठा ॥ ६७ ॥ जब चित्त के देवता क्षेत्रज्ञ जीव ने चित्त के साथ हृदय में प्रवेश किया उसीसमय विराट् पुरुष जलमें से उठा ॥ ६८ ॥ जैसे किसी सोयेहुए पुरुष को, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि यह सब अपने बलसे जीवकी सहायताके विना उठाने को समर्थ नहीं होते हैं तैसे अग्नि आदि देवता भी क्षेत्रज्ञ के प्रवेश के विना विराट् पुरुष को उठाने को समर्थ नहीं हुए ॥६९॥ तिस अन्तर्यामी आत्माको, श्रवण,कीर्त्तन आदिरूप भक्ति,अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा विषयों में वैराग्य और प्रकृति पुरुषके स्पष्ट ज्ञानके द्वारा,इस देह में ही भिन्न रूप से विचारकर अष्टाङ्ग योगके अभ्यास से एकाग्रकरीहुई बुद्धिके द्वारा चिन्तवनकरे।७०।इति तृ०स्क०में षड्विंश अ०समास ॥*॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–हे मातः! जैसे जल में प्रतिबिम्बित हुआ सूर्य, जल में के कम्प आदि विकारों से युक्त हुआ सा भासता है तथापि आकाश में का वास्तविक बिम्बरूप सूर्य, तिन कम्प आदि विकारों से लिप्त नहीं होता है तैसे ही प्रकृति के कार्य देव मनुष्य आदि शरीरों में विद्यमान पुरुष (जीव) तिन देव मनुष्य आदि शरीरों में के सत्वादि गुणों करके रचेहुए पुण्य पाप आदि से और सुख दुःख आदि से लिप्त हुआ सा भासता है तथापि वह वास्तव में अकर्त्ता, अविकारी और निर्गुण होनेके कारण उन से लिप्त नहीं होता है ॥ १ ॥ ऐसी वास्तविक दशा होने से यह दोषरहित पुरुष, जिससमय देह के सुन्दरता आदि गुणोंपर आसक्ति करता है तब अहङ्कार के द्वारा अपने स्वरूप को भूलकर 'मैं ही सकल कर्म्मों का करनेवाला हूँ' ऐसा अभिमान धारण करता है ॥ २ ॥ तिस अभिमान

त्यनिर्वृतः ॥ प्रासंगिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ ३ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्त्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ४ ॥ अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि ॥ भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम् ॥ ५ ॥ यमादिभिर्योगपथैरभ्यसञ्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥ मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च ॥ ६ ॥ सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसंगतः ॥ ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥ ७ ॥ यदृच्छयोपलब्धेन संतुष्टो मितभुङ्मुनिः ॥ विविक्तशरणः शान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ८ ॥ सानुबन्धे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहं ॥ ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ९ ॥ निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः ॥ उपलभ्यात्मनात्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥

के कारण देह आदि के करेहुए पुण्य पाप आदि कर्म्मों से परतन्त्र और सर्वदा सुखरहित होताहुआ, उत्तम, अधम और मध्यम—देव तिर्यक् और मनुष्यों के विषैं जन्म मरण रूप संसार मार्ग को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ हे मातः ! विषयों के ध्यान में लगेहुए पुरुष को स्वप्न में के भय शोक आदि अनर्थों की प्राप्ति जैसे जागनेपर निवृत्त नहीं होती है तैसे जन्ममरणरूप संसार में सत्य कुछ नहीं है, यह यदि सत्य है तो ज्ञान हुए विना, विषयोंका चिन्तवन करनेवाले पुरुष का संसार निवृत्त नहीं होता है ॥ ४ ॥ अतः दुष्ट इन्द्रियों के विषयरूप मार्ग में आसक्तहुए चित्तको दृढभक्ति के द्वारा और तीव्र वैराग्य के द्वारा धीरे२ अपने वशमें करे ॥ ५ ॥ हे मातः ! दृढ़भक्ति और तीव्र वैराग्य के साधन यह हैं कि—साधक पुरुष यम नियम आदि योगमार्गों के द्वारा विषयासक्त अन्तःकरण को वशमें करने का अभ्यास करे, परमेश्वरही मुझे मोक्ष देंगे ऐसा विश्वास धारकर मेरे में सत्य प्रेमभाव करता हुआ मेरी कथाओंको सुने ॥ ६ ॥ सकल प्राणियोंमे समदृष्टि रक्खे किसीके भी साथ वैरभाव न करे, किसी पदार्थमें भी आसक्त न होय, ब्रह्मचर्य और मौन इन दोनों व्रतों को धारण करे, ईश्वरको समर्पण करने की बुद्धिसे अपने धर्मका आचारण करे, ॥ ७ ॥ विना यत्न करे ही जो कुछ मिलजाय उससे ही सन्तुष्ट रहे, परिमित आहार करे, मनन करने का स्वभाव रक्खे, राग, लोभ आदि से रहित, सबका शुभचिन्तक, दयालु और धैर्यधारी होय ॥ ८ ॥ स्त्री पुत्र आदि सहित अपने देह आदि के विषैं 'मैं और मेरा' ऐसा अभिमान न करे, अर्थात्—प्रकृति और पुरुषके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान होकर उसके प्रभाव से बुद्धि की जाग्रत् आदि अवस्था दूर होती हैं और भेदबुद्धिका नाशहोता है, फिर पुरुष अहङ्कारावच्छिन्न आत्मा के द्वारा शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त होकर, जैसे मनुष्य, चक्षु इन्द्रिय में विद्यमान देवतारूप सूर्य के प्रभाव से, आकाश में के सूर्यबिम्ब को देखता है तैसे आत्मा को अभेदबुद्धि करके देखनेवाला पुरुष, देह आदि उपाधियों से

॥ १० ॥ मुक्तलिंगं सदाभासमसति प्रतिपद्यते ॥ सतो बंधुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥ ११ ॥ यथा जलस्थ आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते ॥ स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥ १२ ॥ एवं त्रिवृदहंकारो भूतेन्द्रियमनोमयैः ॥ स्वाभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥ १३ ॥ भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया ॥ लीनेष्वसति यस्तत्र विनिद्रो निरहंक्रियः ॥ ॥१४॥ मन्यमानस्तदात्मानमनष्टो नष्टवन्मृषा ॥ नष्टेऽहंकरणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥१५॥ एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मानं प्रतिपद्यते ॥ साहंकारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥ १६ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्न विमुंचति कर्हिचित् ॥ अन्योऽन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥ १७ ॥ यथा गन्धस्य

रहित, मिथ्याभूत अहङ्कार के विषें सत्यरूपसे भासनेवाले, मायाके अधिष्ठान, मिथ्या प्रपञ्च के प्रकाशक और सकल पदार्थोंमें व्याप्त होकर रहनेवाले परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूपकोप्राप्त होता है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ जब सूर्य का प्रतिबिम्ब जलमें पड़कर तिस प्रतिबिम्ब का दूसरा प्रतिबिम्ब भीतपर पड़ता है तब घरमें किसी पुरुष को, तिस भीतपर पड़ेहुए प्रतिबिम्ब के सम्बन्ध से आकाश में के सूर्य का वास्तविक बिम्ब जैसे दृष्टिगोचर होता है॥ १२॥ तैसे ही भूत इन्द्रिय और मनमें अहङ्कार का प्रतिबिम्ब है और अहङ्कारमें आत्माका प्रतिबिम्ब है अतः देह इन्द्रिय मनरूप प्रतिबिम्बके द्वारा जिसमें ब्रह्मका प्रतिबिम्ब पड़ा है ऐसा त्रिगुणात्मक अहङ्कार लक्षित होता है और तदनन्तर तिस ब्रह्मके प्रतिबिम्बित युक्त अहङ्कार के द्वारा परमार्थ ज्ञानरूप आत्मा लक्षित होता है ॥ १३ ॥ पञ्चमहाभूत, शब्द आदि विषय, इन्द्रिय, मन बुद्धि और अहङ्कार का निद्रा की दशा में अप्रकटरूप दशाके विषैं, निद्राके द्वारा लय होनेपर जो जागृत होता है और जिसको किञ्चिन्मात्र भी अहङ्कार नहीं होता है वही आत्मा है ॥ १४ ॥ हे मातः! वह जागते में सकल विषयोंका देखनेवाला होताहै अतः स्पष्टरीति से दीखता है और निद्रा में भूत, इन्द्रिय, तथा अहङ्कारके नष्ट होनेपर, जैसे कोई द्रव्य का लोभी पुरुष द्रव्य नष्ट हुआ कि– स्वयं भी नष्ट होगया, ऐसा मानता है तैसे ही उस अवस्था में आत्मा अपने नष्ट न होने पर भी व्यर्थ ही अपने को नष्टहुआ सा मानता है ॥ १५ ॥ विवेकी पुरुष ऐसा विचार करके, अहङ्कारसहित कार्य कारणात्मक सकल द्रव्यों के प्रकाशक और आश्रयरूप आत्मा को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ देवहूति ने कहा कि–हेसर्वज्ञप्रभो! भक्ति और वैराग्य के द्वारा मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होगा परन्तु प्रकृति पुरुषको कैसे छोड़ेगी? क्योंकि–पुरुषके विना देह इन्द्रियादिरूप प्रकृतिका स्वरूप जानने में नहीं आता है और प्रकृति के विना पुरुष का स्वरूप भी प्रकट नहीं होता है अतः दोनों में परस्पर एक का दूसरे को आश्रय है और दोनों ही नित्य हैं अतः प्रकृति पुरुष को कदापि नहीं त्यागती है ॥ १७ ॥ जैसे गन्ध और भूमि, यह

भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः ॥ अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥ ॥ १८ ॥ अकर्तुः कर्मबन्धोयं पुरुषस्य यदाश्रयः ॥ गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥ १९ ॥ क्वचित्तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्बणम् ॥ अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना ॥ तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसंभृतया चिरं ॥ २१ ॥ ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ॥ तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥ २२ ॥ प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशं ॥ तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥ २३ ॥ भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः ॥

दोनों पदार्थ; तथा जल और रस, यह दोनों पदार्थ भिन्न २ होकर कहीं भी नहीं रहतेहैं तैसेही प्रकृति और पुरुष यह दोनों परस्पर एक को एक छोड़कर कहीं भी नहीं रहते हैं ॥ १८ ॥ अतः वास्तव में कर्त्तापने से रहित पुरुष को, जिस प्रकृति के गुणों के आश्रय करके यह कर्मों से बन्धन पाना है, तिन प्रकृति के गुणों के होतेहुए पुरुष को कैवल्य (मोक्ष) कैसे प्राप्त होगा ? अर्थात् कदापि नहीं होगा ॥ १९ ॥ तत्वों के विचारके प्रभावसे किसी पुरुष का संसाररूप प्रचण्ड भय दूर हुआसा होजाय तब भी तिस संसारके हेतु जो प्रकृति के गुण उन के नष्ट न होने के कारण वह फिर उत्पन्न होजाता है ॥ २० ॥ श्री भगवान् ने कहा कि–हेमातः ! प्रकृति का सम्बध होते ही पुरुष को बन्धन नहीं प्राप्त होताहै किन्तु तिस प्रकृति में श्रेष्ठता मानकर पुरुष के आसक्ति करनेपर ही उस को बन्धन प्राप्त होता है और आसक्ति छूटते ही मोक्ष होती है अतः मनुष्य ईश्वरार्पण बुद्धि करके निष्कामभाव से अपने धर्मोंका आचरण करे, अन्तःकरणको रागद्वेष आदि विकार रहित निर्मल रक्खे, कथाओं के श्रवण आदि से उत्तरोत्तर बढ़नेवाली मेरी दृढ़भक्ति करे ॥ २१ ॥ प्रकृति पुरुष के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करे, किसीप्रकार की भी विषयवासना से दोलायमान न होनेवाले तीव्र वैराग्य को धारण करे, शास्त्र की आज्ञा के अनुसार परिमित भोजन आदि सेवन करके तपस्या करे और अष्टाङ्ग योगका साधन करे विघ्नों को कुछ न गिन कर आत्मस्वरूप के विषें चित्त की एकाग्रता करे॥२२॥ इतने साधनों के द्वारा प्रतिदिन धीरे२क्षीण करीहुई पुरुषकी प्रकृति(मोहरूप अविद्या), जैसे अग्निको उत्पन्न करनेवाला अरणिनामक काष्ठ, अपने से उत्पन्न हुई अग्नि से भस्म होकर नष्ट होजाता है तैसेही वह प्रकृति, इसही जन्म में प्राप्तहुए ज्ञान के द्वारा नष्ट होजाती है ॥ २३ ॥ और तिसके भोग (विषय) भोगते हुए ही तिसके विषें संसार दुःख के कारण अनेकों दोष हैं, यह नित्य पुरुष के देखने में आता है, फिर तिसका सर्वथा त्याग करके और अपने आनन्दरूपमें रहकर, ईश्वररूपहुए तिस पुरुषका वह प्रकृति कुछ भी अशुभ नहीं करसक्ती

नैश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥ २४ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ २५ ॥ एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ॥ युञ्जतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥ २६ ॥ यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ॥ सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभवनान्मुनिः ॥ २७ ॥ मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा ॥ निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयं ॥ २८ ॥ प्राप्नोतीहाञ्जसा धीरः स्वदृशा च्छिन्नसंशयः ॥ यद्गत्वा न निवर्त्तेत योगी लिंगाद्विनिर्गमे ॥ २९ ॥ यदा न योगोपचितासु चेतो मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽङ्ग ॥ अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्यादात्यंतिकी यत्र न मृत्युहासः ॥ ३० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ७ ॥ ७ ॥ ७ ॥

है॥२४॥जैसे स्वप्न,सोतेहुए पुरुषको शोक भय आदि अनेकों अनर्थ उत्पन्न करता है परन्तु वही स्वप्न,जागेहुए तिस पुरुषको ज्ञान होय तो मोहित करनेको समर्थ नहीं होताहै॥२५॥ तिसीप्रकार प्रकृति पुरुषके तत्वको जानकर मेरेविषैं अन्तःकरणको स्थिर करनेवाले और आत्मस्वरूपमें रमण करनेवाले पुरुषोंकी प्रकृति कदापि मोहकेद्वारा हानिकारकनहीं होतीहै ॥ २६ ॥अतः इसप्रकार बहुत से जन्मोंपर्यन्त के काल करके जब विवेकी पुरुष, निजस्वरूप में निमग्न होताहै तबही उसको ब्रह्मलोकपर्यन्तके सकललोकोंमें वैराग्य उत्पन्न होताहै २७ तदनन्तर मेरेविषैं परमप्रीतियुक्त और आत्मस्वरूपके तत्वको जाननेवाला वह भक्त, मेरे परम अनुग्रह से स्वरूप साक्षात्कार होतेही देह आदि के विषैं अभिमानरूप संशयसे रहित और धैर्यवान् होताहुआ, मेरे आश्रयसे रहनेवाले परमपुरुषार्थरूप कैवल्यनामक अपने निरतिशय आनन्दरूप को सहजमें ही प्राप्त होजाता है; प्रारब्ध कर्मों के अन्तमें लिङ्ग शरीर का नाश होकर, जिस स्वरूप को पहुँचाहुआ योगी फिर इस मायारूप संसारमें आकर कदापि नहीं पड़ता है ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे मातः ! इसप्रकार मोक्ष की प्राप्तिके विषय में उद्योग करनेवालेको विघ्नरूप अणिमादि सिद्धियें आकर प्राप्त होती हैं. तिन योग साधनों करकेही उन्नति को प्राप्तहुई और योग के सिवाय अन्य कारणसे प्राप्त न होनेवाली तथा अत्यन्त मोहित करनेवाली सिद्धियों के विषैं यदि तिस योगीका चित्त नहीं फँसे तो उसको, पहिले कहीहुई परमपुरुषार्थरूप मेरी गति प्राप्त होती है; जिस मोक्षरूप गति में, मृत्युका गर्व किञ्चिन्मात्रभी नहीं चलसक्ता अर्थात् यदि योगीका चित्त सिद्धियोंमें फँसजाय तो मृत्युको गर्व होजाताहै कि–'अहो बड़े सिद्धको भी मैंने सिद्धिका लोभ दिखाकर अपने वशमें करलिया, इसकारण अणिमादि सिद्धि आकर प्राप्त हों तबभी योगी उन में आसक्त न होने के निमित्त सावधान रहे ॥३०॥ इति तृतीय स्कन्धमें सप्तविंश अध्याय समाप्त ॥*॥

श्रीभगवानुवाच ॥ योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ॥ मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथं ॥ १ ॥ स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनं ॥ दैवाल्लब्धेन सन्तोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥ २ ॥ ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मे रतिस्तथा ॥ मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनं ॥ ३ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥ ॥४॥ मौनं सदासनजयः स्थैर्यं प्राणजयः शनैः ॥ प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणां विषयान्मनसा हृदि ॥ ५ ॥ स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणं ॥ वैकुण्ठलीलाभिध्यानं समाधानं तथात्मनः ॥ ६ ॥ एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो

श्रीभगवान् ने कहा कि—हे राजकन्ये देवहूति ! योग दो प्रकारका है, एक निर्बीज और दूसरा सबीज, तिसमें मनको विषयों से हटाकर आत्मस्वरूप में लगाना निर्बीज योग है और ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करते हुए मनको विषयों से छुटाने का नाम सबीज योग है इनमें सबीज योगके लक्षण मैं तुझ से कहताहूँ, जिस विधि के अनुसार प्रसन्न हुआ मन सन्मार्ग कहिये उत्तम मोक्षमार्गकी ओरको जाताहै ॥ १ ॥ योगका अभ्यास करनेवाला अपनी शक्ति के अनुसार निजधर्म का आचरण करे, अधर्म वा परधर्म से बचता रहे, दैवसे जो कुछ अन्न आदि मिले उतनेही में सन्तुष्ट रहे, आत्मज्ञानियों के चरण की पूजा करे ॥ २ ॥ धर्म, अर्थ और काम का सम्बन्ध रखनेवाले धर्म से निवृत्त होना, मोक्षसम्बन्धी धर्म में प्रीति रखना, परिमित * और पवित्र अन्न भोजन करना निरन्तर एकान्त और निर्भयस्थानमें रहना ॥ ३ ॥ हिंसा न करना सत्य बोलना किसी की चोरी न करना, जितने पदार्थसे प्रयोजन सिद्ध होताहो उससे अधिक संग्रह न करना ब्रह्मचर्य से रहना, तप करना, देह और अन्तःकरण की शुद्धि रखना, वेद आदि पढ़ना और ईश्वरका पूजन करना ॥ ४ ॥ मौन रहना, आसन को उत्तमता से जीतकर शरीर को स्थिर रखना, धीरे २ (प्राणायाम के द्वारा) प्राणवायु को वशमें करना, मनकेद्वारा इन्द्रियों को बाहरी विषयों से हटाकर हृदय में को लाना ॥ ५ ॥ मूलाधार चक्र आदि जो शरीर में प्राण के स्थान हैं उनमें से किसी एक स्थानपर मनसहित प्राणको धारण करना, भगवान् की लीलाओं का चिन्तवन करना और मनको परमात्मा के विषैं एकाग्र करना ॥ ६ ॥ इन उपायों से वा व्रत दान आदि अन्य उपायों से प्राणवायु को जीतने

*—"द्वौभागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत्। मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत्॥" अर्थात् उदर में जितना भोजन समासक्ता हो उस के चारभाग करे तिनमें दो भाग अन्न से भरे, एकभाग जल से भरे और एक भाग पवन के आने जाने के निमित्त खाली रक्खे, इसको स्मृति में परिमित भोजन कहाहै ॥

दुष्टमसत्पथम् ॥ बुद्ध्या युञ्जीत शनकैर्जितप्राणो ह्यतन्द्रितः ॥ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् ॥ तस्मिन्स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥ ८ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ॥ प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम् ॥ ९ ॥ मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ॥ वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥१०॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ ॥ ११ ॥ यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम् ॥ काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ॥ १२ ॥ प्रसन्नवदनांभोजं पद्मगर्भारुणेक्षणं ॥ नीलो-

---

वाला साधक पुरुष, सावधानी के साथ विषयों के सङ्ग से दूषित हुए और उसही विषय रूप खोटे मार्ग में को जानेवाले मनको, बुद्धि की सहायता से युक्ति के साथ परमेश्वरकी ओर लगावे ॥ ७ ॥ पवित्र स्थल में पहिले कुश, उसपर मृगचर्म और उसपर वस्त्र इस प्रकार आसन बिछाकर उसके ऊपर बहुत देरी पर्यन्त बैठने परभी श्रम नहीं प्रतीतहोय ऐसा अभ्यास करके आसन को जीते, फिर उस आसन पर बैठेहुए अपनेको जिसप्रकार सुखहोय तैसे स्वस्तिक + आदि आसनमुद्रा से सूधा बैठकर प्राणायाम का अभ्यासकरे ॥ ८ ॥ पूरक (बाहरके वायुको नासिका के एकछिद्र से भीतर को खैंचना) कुम्भक (उस वायुको नासिका के दोनो छिद्र बन्द करके भीतर ही रोकना)और रेचक(नासिका के खैंचनेवाले से दूसरे छिद्रमें को उस रोके हुए वायुको बाहर को छोड़ना) इनके द्वारा वा प्रतिकूलरूप से अर्थात् पहिले रेचक फिर कुम्भक और उसके अनन्तर पूरक करके, जैसे कि–अपना चित्त चञ्चल न होकर स्थिर रहे, तैसे प्राण के मार्ग को शुद्ध करे ॥ ९ ॥ जैसे वायु और अग्नि से तपाहुआ सुवर्ण अपने में नीचधातुरूप मल को त्यागता है तैसे ही प्राणायाम के अभ्यास से श्वास को जीतनेवाले योगीका मन,काम क्रोध आदि को त्यागकर थोड़े ही काल में निर्मल होजाता है ॥ १० ॥ हेमातः। योगी, प्राणायाम के द्वारा अपने वात,कफ आदि दोषों को शान्त करे, धारणा (वायु के साथ मन को स्थिर करना) के द्वारा पापों को भस्म करडाले, प्रत्याहार के द्वारा विषयों का सम्बन्ध तोड़े और ध्यान करके राग लोभ आदि दुर्गुणों को नष्ट करे ॥ ११ ॥ इसप्रकार योगाभ्यास करके साधक पुरुष का मन जब निर्मल और स्थिर होजाय तब वह अपनी नासिका के अग्रभाग पर * दृष्टिबाँधकर भगवान् की मूर्त्ति का ध्यान करे ॥ १२ ॥ जिनका मुखारविन्द प्रसन्न

+ "ऊरु जंघान्तराधाय पादाग्रे जानुमध्यगे। योगिनो यदवस्थानं स्वस्तिकं तद्विदुर्बुधाः ॥" अर्थात् जंघाओ के बीच में ऊरु और जानुके बीचमें चरण के अग्रभाग स्थापित करके जो योगी का बैठनाहै उस को पण्डित स्वस्तिक आसन कहते हैं।

* इधर उधर को दृष्टि के चञ्चल होने से विक्षेप और दृष्टि के मूँदने में लय होता है अतः नासिका के अग्रभागपर दृष्टि लगाना कहा है ॥

त्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १३ ॥ लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम्॥श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्॥१४॥ मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ॥ परार्घ्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम्॥१५॥ काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयांभोजविष्टरं॥दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम्१६ अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरं॥१७॥ कीर्त्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ॥ ध्यायेद्देवं समग्राङ्गं यावन्न च्यवते मनः। ॥ १८ ॥ स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयं ॥ प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥ १९ ॥ तस्मिन् लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ॥ विलक्ष्यैकत्र संयुज्यादङ्गे भगवतो मुनिः ॥ २० ॥ संचिंतयेद्भगवतश्चरणारविंदं

है, जिनके नेत्र कमल के गर्भ (मध्यभाग) की समान रक्तवर्ण हैं, जिनका वर्ण नीलकमल के पात की समान श्याम है, जिन्होंने हाथों में शङ्ख, चक्र और गदा को धारण करा है ॥ ॥ १३ ॥ जिनका धारण कराहुआ रेशमीवस्त्र खिलेहुए कमलके केसर की समान पीतवर्ण है, जिनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह है, जिनकी ग्रीवा कौस्तुभमणि से शोभित है ॥ १४ ॥ मधुपानसे मत्तहुए भ्रमरों की मधुर झङ्कार से युक्त वनमाला करके जो वेष्टित (लिपटेहुए) हैं जिनके शरीर पर बहुमूल्य के हार, कड़े, तोड़े, मुकुट, बाजूबन्द और नूपुर शोभा देरहे हैं ॥ १५ ॥ जिनका कटिभाग रत्नजटित तागड़ी की लड़ों से अत्यन्त ही शोभित होरहा है, भक्तोंका हृदयकमल ही जिनका आसन है, जो परमसुन्दर और शान्तरूप होकर भक्तों के मन तथा नेत्रों के आनन्द को बढ़ानेवाले हैं ॥ १६ ॥ जो अपने भक्तोंकी ओरको अत्यन्त ही मनोहर दृष्टिसे देखरहे हैं,जिनको निरन्तर सबलोक नमस्कार करते है, जो किशोर अवस्थावाले और भक्तों के ऊपर अनुग्रह करनेके कार्य में तत्पर होरहे हैं ॥ १७ ॥ जिनकी कीर्त्ति वर्णन करने योग्य और पुण्यकारिणी है और जो नल, युधिष्ठिर आदि पुण्यश्लोकों से भी अधिक यशस्वी हैं. हे देवहूति ! इसप्रकार के सकल अङ्गवाले तिन देव का तबतक ध्यान करे कि—जबलों उससकल अवयवयुक्त स्वरूप से अपना मन चलायमान नहीं होय ॥ १८ ॥ अपने को जैसा प्रिय होय तैसे, खड़ेहुए चलतेहुए सिंहासनपर बैठेहुए, शेषशय्यापर शयन करतेहुए, अनेकों प्रकारकी देखने योग्य लीलाएँ करतेहुए और हृदयरूप गुहा में विराजमान देव का, शुद्ध भक्तियुक्त अन्तःकरण से ध्यान करे ॥ १९ ॥ तदनन्तर तिन भगवान् के स्वरूप पर चित्त स्थिर होनेपर तथा उनके सकल अवयव एकसाथ चित्तमें चित्रित होनेलगे तब वह मनन करनेवाला योगी, अपने मन को भगवान् के एक एक अवयव के विषैं लगावे ॥ २० ॥ प्रथम उत्तमता से भगवान् के चरणकमल का ध्यान करे, जो चरणकमल वज्र, अङ्कुश,

वज्रांकुशध्वजसरोरुहलांछनाढ्यम् ॥ उत्तुंगरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्ना-भिराहतमहद्धृदयांधकारम् ॥ २१ ॥ यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ॥ ध्यातुर्मनःशमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविंदम् ॥ २२ ॥ जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्योऽखिलस्य सुरवंदितया विधातुः ॥ ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्संलालितं हृदि विभोरभवस्य कुर्यात् ॥ २३ ॥ ऊरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमानावोजोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ ॥ व्यालंबिपीतवरवाससि वर्त्तमानकांचीकलापपरिरंभि नितंबबिम्बम् ॥ २४ ॥ नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् ॥ व्यूढं हरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य ध्यायेद्द्वयं विश-

---

ध्वजा और कमल के चिन्हों से युक्त है तथा जिस ने ऊँचे, आरक्तवर्ण और शोभायमान नखों की पाँति की किरणोंसे, ध्यान करनेवाले सत्पुरुषों के हृदय में के अज्ञानरूप अन्धकार का नाश करा है ॥ २१ ॥ जिस के धोने से उत्पन्नहुई भागीरथी के संसार से तारनेवाले जल को मस्तकपर धारकर शिवजी भी शिवरूप हुए हैं अर्थात् परमसुख को प्राप्त हुए हैं और जो चरणकमल, ध्यान करनेवाले पुरुषों के मन में के पापरूप पर्वतपर गिरकर वज्रकी समान होता है, तिस, भगवान् के चरणकमल का चिरकालपर्यन्त ध्यान करे ॥ २२ ॥ तदनन्तर तिन भवभञ्जन भगवान् की दोनों जङ्घाओं का हृदय में ध्यान करे, जिन जङ्घाओं की, सर्व जगत् को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी की माता-सकल देवताओं की वन्दनीया कमलनयना लक्ष्मी ने, अपनी ऊरु (साँथलों) पर रखकर नवीनपत्तों की समान कोमल अपने हाथों की कान्ति से बड़ी चतुराई के साथ सेवा करी है ॥२३॥ तदनन्तर भगवान् की गरुड़जी के कन्धेपर शोभायमान जो ऊरु (साँथलें) तिन का ध्यान करे, जो ऊरु बलका आधार हैं और जो अलसी के पुष्प की समान श्यामकान्ति से शोभायमान हैं तदनन्तर भगवान् के कटिप्रदेश का ध्यान करे, जिस के ऊपर एड़ी पर्यन्त लम्बायमान उत्तम पीताम्बर और उस के ऊपर तागड़ी की लड़ें हैं ॥ २४ ॥ तदनन्तर सकल भुवनों के समूह के निवास्थान भगवान् के उदर के मध्यभाग में विराजमान नाभिरूप ह्रद (कुण्ड) का ध्यान करे,जिस में से,स्वयम्भू ब्रह्माजी का उत्पत्तिस्थान सर्वलोकरूप कमल उत्पन्न हुआ तदनन्तर भगवान् के मरकतमणि की समान उत्तम दोनों स्तनों का ध्यान करे, जो स्तन स्वच्छ हारों की किरणों से गौरवर्ण दीख रहे हैं ॥ २५ ॥ तदनन्तर योगी, सकल लोकों के वन्दनीय भगवान् के श्रेष्ठ वक्षःस्थल का ध्यान करे, जो वक्षःस्थल महालक्ष्मी का निवासस्थान है, तथा जो भक्तजनों के मन को और नेत्रों को आनन्दित करता है तदनन्तर भगवान् के कण्ठ का मन में ध्यान करे, जो कण्ठ, शोभाके

द्हारमयूखगौरम् ॥ २५ ॥ वक्षोऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानं ॥ कण्ठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥ २६ ॥ बाहूंश्च मन्दरगिरेः परिवर्त्तनेन निर्णिक्तबाहुवलयानधिलोकपालान् ॥ संचिंतयेद्दशशतारमसह्यतेजः शंखं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥ २७ ॥ कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन ॥ मालां मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां चैत्यस्य तत्त्वममलं मणिमस्य कण्ठे ॥ ॥ २८ ॥ भृत्यानुकंपितधियेह गृहीतमूर्तेः सञ्चिंतयेद्भगवतो वदनारविंदम् ॥ यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥ २९ ॥ यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं भूत्या स्वया कुटिलकुंतलवृन्दजुष्टं ॥ मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतन्द्रितं उल्लसद्भ्रु ॥ ३० ॥ तस्याव-

निमित्त धारण करेहुए कौस्तुभमणि कोभी परमशोभा देता है ॥ २६ ॥ तदनन्तर भगवान् के बाहुओं का ध्यान करे, जिन बाहुओं के आश्रय से सकल लोकपाल रहते हैं और समुद्रमन्थन के समय रई के स्थान में लगाएहुए मन्दराचल के वारंवार फिरने से जिन में धारण करेहुए भूषण अधिक उज्ज्वल होगये हैं तदनन्तर जिस के तेज को शत्रु नहीं सहसक्ते हैं ऐसे सहस्र दाँतोंवाले भगवान् के चक्र का ध्यान करे फिर भगवान् के करकमल में राजहंस की समान शोभा पानेवाले पाञ्चजन्य नामक शंख का ध्यान करे ॥ २७ ॥ तदनन्तर शत्रुरूप योधाओं के रुधिर की कीच से भरीहुई भगवान् की प्यारी कौमोदकी गदा का स्मरण करे. तदनन्तर भ्रमरों के समूह का जो झङ्कारशब्द तिस से युक्त भगवान् की वनमालाका चिन्तवन करे.तदनन्तर इन भगवान्के कण्ठ में×'जीवोंका शुद्ध तत्त्व' जो कौस्तुभमणि है तिसका ध्यान करे॥२८॥तदनन्तर भक्तोंके ऊपर दया करनेकी बुद्धिसे भूतलपर अवतार धारनेवाले भगवान् के मुखकमलका ध्यान करे.जो मुखकमल—विशेष करके दमकतेहुए मकराकृति कुण्डलोंके हलनेसे प्रकाशवान् निर्मल कपोल और ऊँची नासिका से युक्तहै॥२९॥ और जो मुख—बलखायेहुए केशों के समूहसे, कमलसमान नेत्रों से तथा चलायमान भ्रुकुटियोंसे युक्तहै,जो योगसाधनोंसे शुद्ध हुए ही मनमें प्रकट होताहै तथा जो अपनी शोभा करके भ्रमरोंसे सेवित और दो मत्स्योंने जिस का आश्रय कियाहै ऐसे लक्ष्मी के निवासस्थान कमलका भी तिरस्कार करताहै तिस,भगवान्के मुखकमल का आलस्य को त्यागकर एकाग्रता से ध्यान करे ॥ ३० ॥ तदनन्तर भगवान् के अवलोकन का परम

× " आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम् । बिभर्ति कौस्तुभमणिं स्वरूपं भगवान् हरिः ॥ " अर्थात्-इस जगत् की निर्लेप, निर्गुण, निर्मल आत्मा और निजस्वरूप कौस्तुभमणि को भगवान् श्रीहरि धारण करते हैं ॥

लोकमधिकं कृपयाऽतिघोरतापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः ॥ स्निग्धस्मितानु-
गुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायां ॥ ३१ ॥ हासं हरेर-
वनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ॥ संमोहनाय रचितं नि-
जमाययास्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥ ३२ ॥ ध्यानायनं प्रहसितं बहु-
लाधरोष्ठभासारुणायिततनुद्विजकुन्दपंक्ति ॥ ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य वि-
ष्णोर्भक्त्यार्द्रयाऽर्पितमना न पृथग्दिदृक्षेत् ॥३३॥ एवं हरौ भगवति प्रतिलब्ध-
भावो भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ॥ औत्कण्ठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्य-
मानस्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥३४॥ मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं

प्रेम के साथ हृदय में ध्यान करे, जो अवलोकन—भगवान् को अधिक दया आनेके कारण उन्होंने भक्तों के अतिभयङ्कर त्रिविध तापों की शान्ति करने के निमित्त—भक्तों के ऊपर नेत्रों के द्वारा योजित किया है और जो अवलोकन प्रेमयुक्त हास्य सहित तथा परमप्रसन्नता से भराहुआ है ॥ ३१ ॥ फिर तिन भगवान् के मन्दहास्य का ध्यान करे, जो मन्दहास्य—शरणागतों के तीव्रशोक से उत्पन्न हुए अश्रुओं के समुद्र को सुखानेवाला है अर्थात् भक्तों के शोक को दूर करनेवाला है. फिर भगवान् के परमसुन्दर भ्रुकुटिमण्डल का ध्यान करे, जिस भ्रुकुटिमण्डल को मुनियों के ऊपर उपकार करने के निमित्त, साक्षात् कामदेव को भी मोहित करने को भगवान् ने अपनी माया के द्वारा रचा है ॥ ३२ ॥ तदनन्तर अपने हृदय में जानेहुए विष्णुभगवान् के प्रहसन का ध्यान करे, जिस हास्य में नीचे के ओठ की अधिक कान्ति से कुछएक ललिमायुक्त प्रतीत होनेवाली सूक्ष्म दन्तरूप कुन्दकली की पङ्क्ति दमकरही है और जो परमहास्य प्रयत्न के विना ही ध्यान में आनेवाला है. इसप्रकार भगवान् के भिन्न २ अङ्गों का ध्यान करके, प्रेमयुक्त भक्ति से अपना मन उन परमेश्वर में ही लगाकर, उन को छोड़ किसी भी दूसरी वस्तु के देखने की इच्छा न रक्खे ॥ ३३ ॥ इसप्रकार के ध्यानमार्ग से भगवान् श्रीहरि के विषैं जिस का प्रेमहुआ है, जिसका हृदय भक्ति से द्रवीभूत (पिघलाहुआ) है, जिसके शरीर पर आनन्द के कारण रोमाञ्च खड़े होनेलगे हैं और जो हर्ष की अधिकता से गद्गदकण्ठ होकर आनन्दके समुद्रमें वारम्वार निमग्न होनेलगा है, वह पुरुषही, मत्स्य को पकड़ने का साधन जो बाड़श (कांटा) तिसकी समान भगवान् को वशमें करनेका साधन जो चित्त तिसको भी, तिस ध्यान करने योग्य भगवान् की मूर्त्तिपर से धीरे २ हटाताहै अर्थात् वह ज्योंही परम आनन्दमें निमग्न होने लगा कि ईश्वरके स्वरूप का ध्यान करने के विषय में उसका प्रयत्न कम होता चलाजाता है ॥ ३४ ॥ हे मातः ! इसप्रकार साधना करके जब साधक योगी का मन, परमानन्द का अनुभव मिलने के कारण शब्द

विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः ॥ आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधान-मेकमन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ॥ ३५ ॥ सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ॥ हेतुत्वमप्यसति कर्त्तरि दुःखयोर्यत् स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥ ३६ ॥ देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥ ३७ ॥ देहोपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३८ ॥ यथा पुत्राच्च वि-

स्पर्श आदि विषयों से रहित होकर निर्विषय और निराश्रय होता है तब वह, " जैसे दीपक की ज्योति (लौह) तेल बत्ती आदिका नाश होनेपर अपनी कारणभूत महाभूत ज्योतिरूप से परिणाम को प्राप्त होती है तिसीप्रकार ' अनायासमें परब्रह्मरूपसे परिणाम को प्राप्त होता है. इस अवस्थाके विषैं देह इन्द्रियादिकों में अभिमानरहित वह पुरुष, मैं ध्यान करनेवाला और परमेश्वर ध्यान करनेयोग्य है इसप्रकार के व्यवधानों (ओलट) से रहित अखण्ड आत्माके साक्षात्कारका अनुभव करता है ॥ ३५ ॥ वह पुरुष योगाभ्यास से प्राप्तहुई अविचाररहित इस अपने मनकी आनन्दवृत्ति करके, सुख दुःख रहित तिस परमानन्दस्वरूप ब्रह्मके विषैं लयको प्राप्त होता हुआ, परमात्माके तत्त्व को जानने वाला वह योगी, पहिले जो सुख दुःखों का भोक्तापना अपने आत्मामें देखता था उसको भी इस अवस्थामें, अविद्या के कल्पना करेहुए अहङ्कार के विषैं ही देखता है ॥ ३६ ॥ ' जैसे मदिरा के मदसे अन्धहुआ कोई पुरुष, अपनी कमर में लपेटे हुए वस्त्र को, है वा गिरगया, यह कुछ नहीं देखता है तैसेही ' अन्तके शरीर में—विद्यमान वह सिद्धयोगी, जिस शरीरसे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति हुई है वह शरीर प्रारब्ध कर्म वश आसन परसे उठ बैठा वा उठकर तहां ही खड़ारहा वा तहांसे कहीं अन्यत्र चलागया अथवा फिर भी आसनपर आबैठा, इन बातों का भी अनुसन्धान नहीं रखता है फिर सुख दुःख पर क्या दृष्टि रक्खेगा ? ॥ ३७ ॥ हे मातः ! प्रारब्ध कर्मवश चलनेवाला वह शरीर; जबतक उसकी उत्पत्तिके कारण कर्म रहते हैं तबतक इन्द्रियोंसहित जीवित रहता ही है; परन्तु जिसको समाधि पर्यन्त का योग सिद्ध होगया है और जिसने आत्मपदार्थ को जानलियाहै वह सिद्ध योगी, स्त्री पुत्र आदि प्रपञ्चसहित इस शरीर को, स्वप्न में दीखनेवाले शरीर की समान मानकर उसको फिर अभिमान से स्वीकार नहीं करता है ॥ ३८ ॥ जैसे अतिप्रीति के कारण अपना करके मानेहुए पुत्र से वा द्रव्य से उनको जाननेवाला पुरुष पृथक् है, ऐसा सब के अनुभव में आता है तिसीप्रकार देह इन्द्रिय आदि से इनका देखने

ताच्च पृथगग्न्यः प्रतीयते ॥ अध्यात्मत्वेनाभिमतादेहादेः पुरुषस्तथा ॥ ३९ ॥ यथोल्मुकाद्विस्फुलिङ्गाद्धूमाद्वापि स्वसंभवात् ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमताद्यथाग्निः पृथगुल्मुकात् ॥ ४० ॥ भूतेंद्रियांतःकरणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ॥ आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ४१ ॥ सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥ ४२ ॥ स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ॥ योनीनां गुणवैषम्यात्तथात्मा प्रकृतौ स्थितः ॥ ४३ ॥ तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ॥ दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४४ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेये साधनानुष्ठानं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ देवहूतिरुवाच ॥ लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ स्वरूपं लक्ष्यतेऽमीषां येन तत्पारमार्थिकम् ॥ १ ॥ यथा सांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते ॥

वाला पुरुष (जीव) पृथक् है, ऐसा समझे ॥ ३९ ॥ जैसे यह अग्नि ही है ऐसे मानेहुए जलते काठ से वा अग्नि से उत्पन्न हुए धुएं से वा अंगारेमें के बुझेहुए काठसे उसका दाहक और प्रकाशक अग्नि भिन्न है तिसीप्रकार ॥ ४० ॥ भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरण का द्रष्टा जीवात्मा तिन भूत आदि से भिन्न है और उसजीवात्मा से भी उसका द्रष्टा ब्रह्मसंज्ञक भिन्न है तैसे ही प्रकृति से उस का प्रवर्त्तक भगवान् भिन्न है ॥ ४१ ॥ अमृत एव जैसे उद्भिद् जरायुज, अण्डज और स्वेदज इन चार प्रकार के प्राणियों में, सकल लोक, पञ्चमहाभूतों को अभेदबुद्धि से देखते हैं, तैसे ही स्थावर जङ्गमात्मक सकल प्राणियो में उपादान कारणरूप से रहनेवाले आत्मा को और आत्मा के विषैं कार्यत्वरूप से रहनेवाले सकल प्राणीमात्र को अभेदरूप से देखे ॥ ४२ ॥ जैसे एक ही अग्नि, अपने प्रकट होने के स्थान काष्ठों के विषैं उनकी ह्रस्वत्व (छोटापन)-दीर्घत्व (बड़ापन) आदि भिन्न २ स्थितियों के कारण ह्रस्व दीर्घ आदि नानाप्रकार के रूपवाला प्रतीत होता है तैसे ही, देव आदि शरीरों के विषैं रहनेवाला अत्मा उनके स्वभाव के अनुसार तैसा२ही भासमानहोता है परन्तु वास्तव में एकही है ॥ ४३ ॥ तिससे हे मात ! देवहूति ! भगवद्भक्त, देह आदि रूप से परिणाम को प्राप्तहुई, अपने को मोहित करनेवाली इस देव की अचिन्त्य शक्ति रूप प्रकृति को विचार के द्वारा जीतकर अपने वास्तविक स्वरूप करके स्थित होय ४४ इति तृतीय स्कन्ध में अष्टाविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ देवहूति कहनेलगी कि—हे प्रभो ! इन महत्तत्त्व आदिकों का वास्तविक स्वरूप जिस के द्वारा जानाजाता है वह प्रकृति का, पुरुष का और महत्तत्त्व आदिकों का भिन्न २ लक्षण जैसा सांख्यशास्त्र में कहा है वैसा ही तुमने मुझ से कहा है, तिन लक्षणों का मूल भक्तियोग को कहते हैं, तिस भक्तियोग

भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥ २ ॥ विरागो येन पुरुषो भगवन् सर्वतो भवेत् ॥ आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा मम संसृतीः ॥ ३ ॥ कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते ॥ स्वरूपं बत कुर्वन्ति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥ ४ ॥ लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुषश्चिरं प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ॥ श्रान्तस्य कर्मस्वनुविद्धया धिया त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनन्द्य महामुनिः ॥ आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणाऽर्दितः ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तियोगो बहुविधो मार्ग-भामिनि भाव्यते ॥ स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥ ७ ॥ अभिसंधाय यद्धिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ॥ संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥ ८ ॥ विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा ॥ अर्चादावर्चयेद्यो

का मार्ग मुझसे विस्तारके साथ कहिये ॥ १ ॥ २ ॥ और हे भगवन्! जिनके सुननेसे मुमुक्षु पुरुष को सर्व पदार्थों में वैराग्य होय वह जीवलोककी अनेक प्रकारकी जन्ममरणरूप संसृति मुझ से वर्णन करिये ॥ ३ ॥ और जिस के भय से लोग पुण्यकर्म करते हैं तथा जो ब्रह्मादिकों के ऊपर भी आज्ञा चलानेवाला है तिस महापराक्रमी अपने स्वरूप काल का स्वरूप भी मुझ से कहिये ॥ ४ ॥ क्योंकि-यह सकल लोक तो अज्ञानी और मिथ्याभूत देह आदि के विषैं अहङ्कारी होने के कारण, कर्मों में आसक्त हुई बुद्धि करके तिन २ कर्मों को करते २ थककर संसाररूप अपार अन्धकार के विषैं गाढ़निद्रामें पड़ेहुएहैं और तुम तो इन को जगाने के निमित्त योगमार्ग को प्रकाशित करनेवाले साक्षात् सूर्य ही प्रकट हुए हो अतः मैं तुमसे प्रश्न करती हूँ ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे कुरुश्रेष्ठ विदुरजी ! इसप्रकार देवहूति के प्रश्न करनेपर प्रसन्न हुए और जीवोंपर दयालु हुए तिन महामुनि कपिलजी ने, माता के सुन्दर कथन का सत्कार करके उस से कहा ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि—हे देवहूति! भक्तिमार्ग अनेकों मार्गों करके भिन्न २ प्रकार का होरहा है, क्योंकि—मनुष्यों का भाव ही अनेकों प्रकार के फल और सङ्कल्पों के भेद से बहुत प्रकार के भेदवाला होता है ॥ ७ ॥ जैसे—जो कोई क्रोधी पुरुष, अपने और परमात्मा में भेददृष्टि रखताहुआ किसी की हिंसा, दम्भ और स्पर्धा (हिंसे) को मन में रखकर मेरी भक्ति करता है वह तामस (अधम श्रेणी का) भक्त है. इन तामस भक्तों में भी तीन भेद हैं—हिंसा के निमित्त भक्ति करनेवाला अति अधम है, दम्भ के निमित्त भक्ति करनेवाला मध्यम और स्पर्धा की बुद्धि से भक्ति करनेवाला इन में उत्तम है ॥ ८ ॥ जो भेददृष्टि पुरुष, माला-चन्दन-स्त्री आदि विषय और धन आदि ऐश्वर्य की इच्छा करके मूर्त्ति आदि में मेरी पूजा करता है वह राजस (मध्यम श्रेणी का) भक्तहै. इन राजस भक्तों के भी तीन भेदहैं-विषयसुखके निमित्त भक्ति करनेवाला

मां पृथग्भावः स राजसः ॥ ९ ॥ कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम् ॥ यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्विकः ॥ १० ॥ मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ॥ मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाऽम्भसोम्बुधौ ॥ ११ ॥ लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ॥ अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥ सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ॥ दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ १३ ॥ स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ॥ येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १४ ॥ निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा ॥ क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः ॥ १५ ॥ मद्धिष्ण्यदर्शन-

अधम, कीर्त्ति के निमित्त भक्ति करनेवाला मध्यम और ऐश्वर्यके निमित्त भक्ति करनेवाला उत्तमहै ॥ ९ ॥ और जो भेददृष्टि पुरुष, पापों का क्षय होनेकी इच्छाकरके वा वह कर्म ईश्वरके अर्पण हों अर्थात् उनसे ईश्वर प्रसन्न हों ऐसी इच्छा करके अथवा 'पूजन करे' ऐसी वेद की आज्ञा है तिस को पूर्ण करने की इच्छा करके मेरी पूजा करता है वह सात्विक (उत्तम श्रेणी का) भक्त है. इस में भी तीन भेद हैं-पापक्षय के निमित्त भक्ति करनेवाला कनिष्ठ, ईश्वरप्रीति के निमित्त भजनेवाला मध्यम और विधि के पूर्ण करने के निमित्त भक्ति करनेवाला उत्तम है. इसप्रकार तामस, राजस और सात्विक इस तीन प्रकारकी भक्ति में प्रत्येक के तीन २ होनेसे नौ भेदहैं.इन नौ भेदोंमेंभी प्रत्येकके श्रवण,कीर्त्तन, स्मरण चरणसेवा, अर्चन, वन्दन दासभाव सखाभाव और आत्मनिवेदन यह नौ २ भेद होने से सब मिलकर सगुण भक्तिके ८१ भेदहैं। १० निर्गुण भक्ति एकही प्रकारकी है-जैसे गङ्गाके जलकी गति समुद्रकी ओर को होती है तैसे ही मुझ सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के विषैं मेरे भक्तवत्सलता आदि गुणों के श्रवण मात्र से किसी भी फल की इच्छा वा भेदबुद्धि न करके मनकी एकाग्रगति होना, ऐसी जो भक्ति है सो निर्गुण भक्ति योग का लक्षण है ऐसा कहा है ॥ ११ ॥ १२ ॥ ऐसी निर्गुणभक्ति करनेवाले पुरुषों को, सालोक्य (मेरे साथ एक लोक में रहना), सार्ष्टि (मेरे ऐश्वर्य को भोगना), सामीप्य (मेरे पास रहना), सारूप्य (मेरी समान रूप होना) और एकत्व अर्थात् सायुज्य (मेरे रूप में एकतापाना) यह चार प्रकारकी मुक्ति मैं दूँ तो भी वह भक्त, मेरी सेवा को छोड़ दूसरी कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते हैं फिर उनको किसीप्रकार की कामना तो होही कैसे सक्ती है ? ॥ १३ ॥ अतः यह कहाहुआ भक्तियोगही आत्यन्तिक (अटल) कहाता है जिस से मनुष्य, सत्व, रज और तमोगुणरूप संसार को लांघकर मेरे स्वरूपवाला होने के योग्य होता है ॥ १४ ॥ किसीप्रकार की इच्छा न करके श्रद्धापूर्वक उत्तम रीति से निजधर्म का आचरण करना, निष्काम बुद्धिसे अवैध हिंसा न करके पञ्चरात्र आदि में कहीहुई रीति से मेरी पूजा करना ॥ १५ ॥ मेरी मूर्त्तिका दर्शन, उस

स्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनैः ॥ भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासंगमेन च ॥ १६ ॥ महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ॥ मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥ १७ ॥ आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसंकीर्तनाच्च मे ॥ आर्जवेनार्यसंगेन निरहंक्रियया तथा ॥ १८ ॥ मद्धर्मिणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः ॥ पुरुषस्यांजसाभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि मां ॥ १९ ॥ यथा वातरथो घ्राणमावृंक्ते गन्ध आशयात् ॥ एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥२०॥ अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ॥ तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥ २१ ॥ यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरं ॥ हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥ २२ ॥ द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ॥ भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥ २३ ॥ अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययो-

मूर्त्ति के चरणोंका स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करतेहुए प्राणीमात्र में ' यह परमेश्वररूप ही है' ऐसी भावना करना, मन धैर्य और विषयों में वैराग्य रखना ॥ १६ ॥ सत्पुरुषोंका बहुत आदर करना, अनाथों पर दया करना, अपनी समान गुणवाले पुरुषों से मैत्री रखना, अहिंसा आदि यम और जप पाठ आदि नियम धारण करना ॥ १७ ॥ आत्मस्वरूप का वर्णन करनेवाले शास्त्रों का वारम्वार श्रवण करना, मेरे नामों का सङ्कीर्त्तन करना, मनकी सरलता रखना, सत्पुरुषों का समागम करना, देह आदि के अभिमान को छोड़देना ॥ १८ ॥ ऐसे गुणों से भागवत धर्मोका आचरण करनेवाले पुरुष का अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध होजाता है और वह अन्तःकरण मेरे गुणों का श्रवण होते ही मेरे में अनायास ही आसक्त होजाता है ॥ १९ ॥ जैसे वायु से उड़कर आनेवाला सुगन्ध अपने स्थान (पुष्पआदि) से घ्राण इन्द्रिय को अपने वशमें करलेता है तैसेही भक्तियोग में निमग्नहुआ और सुख दुःख आदि में समानभाव को प्राप्त हुआ चित्त, परमात्मा को वश में करलेता है ॥ २० ॥ मैं सकल भूतों का आत्मा होने के कारण, प्राणीमात्रमें निरन्तर रहता हूँ तिस मेरा तिरस्कार करके अर्थात् सकल प्राणियों में मुझे न देखकर जो, मरण को प्राप्त होनेवाले देह आदिमें आत्मदृष्टि रखकर केवल मूर्त्तिमात्र में ही मेरी पूजा करता है वह पूजा का अनुकरणमात्र (ढोंग) करता है ॥ २१ ॥ सकल प्राणियों में आत्मस्वरूप से रहनेवाले मुझ ईश्वर का अवमान करके जो मूर्खता से केवल मूर्त्तिमात्रकी ही पूजाकरता है वह मानो केवल भस्म में हवन करता है अर्थात् जैसे भस्म में हवन करना निष्फल है तैसे उसकी वह सेवा निष्फल है ॥ २२ ॥ देह आदि में अभिमान रखनेवाला, भेददृष्टि, सकल प्राणियों में वैरभाव रखनेवाला और सकल प्राणियों के देहों में विद्यमान जो मैं तिस से द्वेष करनेवाले पुरुष का मन कभी भी शान्ति नहीं पाता है ॥ २३ ॥ हे निष्पाप देवहूति ! थोड़ी वा बहुत वस्तुओं के द्वारा

त्पन्नयाऽनघे ॥ नैवं तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥ २४ ॥ अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ॥ यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ ॥ २५ ॥ आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम् ॥ तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥ २६ ॥ अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् । अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥ २७ ॥ जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ॥ ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥ २८ ॥ तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः ॥ तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥ २९ ॥ रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः ॥ तेषां बहुपदाः-

---

इकट्ठी करीहुई सामग्री करके प्रतिमा के विषैं पूजा किया हुआ भी मैं, प्राणीमात्रका अवमान करनेवाले पुरुष पर कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता हूँ ॥ २४ ॥ अतः हेमातः ! जब तक पुरुष, सकल प्राणियों में रहनेवाले मुझको अपने हृदय में नहीं जानता है तबतक वह अपने नित्य नैमित्तिक कर्म करके जो कुछ,अवकाश मिले उसमें मूर्ति आदिके विषैं मेरा(परमेश्वर का) पूजन करता रहे ॥ २५ ॥ जो मनुष्य, अपने में परमेश्वर में और सकल प्राणियों में बहुत थोड़ा भी भेद मानता है तिस भेददृष्टि मनुष्यको, मैं ही मृत्युरूप होकर अति दुःसह संसार दुःख देता हूँ ॥ २६ ॥ अतः सकल प्राणियोंमें वास करनेवाला और सकल प्राणियों का अन्तर्यामी जो मैं तिस मेरा, अपने से श्रेष्ठका अधिक सन्मान,समान में मित्रभाव, हीन में दान और सर्वत्र समदृष्टि करके पूजन करे ॥ २७ ॥ हे मङ्गलरूप देवहूति ! मृत्तिका पाषाण आदि अचेतनों की अपेक्षा वृक्ष आदि सचेतन प्राणी श्रेष्ठ हैं, तिनसे श्वास लेनेवाले जङ्गम प्राणी श्रेष्ठ हैं, उनसे जिनको ज्ञान है वह श्रेष्ठ हैं और उन से भी इन्द्रियों की वृत्तिवाले (जिनको रूप रस आदि का ज्ञान होताहै वह वृक्ष* आदि) श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ तिन में भी स्पर्श को जाननेवाले की अपेक्षा रसको जाननेवाले (मत्स्य आदि) श्रेष्ठ हैं, तिनसे भी गन्ध को जाननेवाले (भ्रमर आदि) श्रेष्ठ हैं, तिनसे शब्द को जाननेवाले (सर्प आदि) श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥ तिनमें भी रूपको भेद जाननेवाले (काक आदि) श्रेष्ठ हैं, तिनसे भी मुखमें नीचे और ऊपर दोनों ओर दांतोंवाले (वानर आदि) श्रेष्ठहैं, तथा चरण रहित प्राणियोंसे बहुतसे चरणवाले श्रेष्ठहैं,तिनसे चार चरण

---

* महाभारत शान्ति पर्व,मोक्ष धर्म में लिखा है कि वृक्ष इन्द्रियवाले हैं क्योंकि वह देखना आदि सब व्यापार करते हैं, वृक्ष सुगन्ध से बढ़ता है और दुर्गन्ध से जलजाता है इससे प्रतीत होताहै कि वृक्षके घ्राण इन्द्रिय है, मीठे जलसे हरा रहता है खारे से सूखजाता है इससे प्रतीत होता है रसना इन्द्रिय है, ऐसी ही और जानना ॥

श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥३०॥ ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः॥ ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥ ३१ ॥ अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान्स्वकर्मकृत् ॥ मुक्तसंगस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥ ३२ ॥ तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः ॥ मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ॥ न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥ ३३ ॥ मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन् ॥ ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥३४॥ भक्तियोगश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः ॥ ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥३५॥ एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्मविचेष्टितम् ॥ ३६ ॥ रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते ॥ भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम् ॥ ३७॥ योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्त्यखि-

वाले (पशु आदि) श्रेष्ठ हैं, तिनसे दो चरणवाले मनुष्य आदि श्रेष्ठहैं॥ ३० ॥ उनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारवर्ण श्रेष्ठ हैं,तिन में भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ब्राह्मणों में भी वेदको जाननेवाले श्रेष्ठ हैं. उनमें भी वेद का अर्थ जाननेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ अर्थ जाननेवालों की अपेक्षा दूसरोंका सन्देह दूर करनेवाले (मीमांसक) श्रेष्ठ हैं तिनसे भी अपने (वर्णाश्रमको कहेहुए) कर्म करनेवाले श्रेष्ठ हैं, तिनसे भी सकल सङ्गों को त्यागकर रहनेवाले वा निष्काम कर्म करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३२ ॥ तिनसे भी, जिन्होंने अपने सकलकर्म–तिन कर्म्मोंके फल और शरीर यह सबही मुझे अर्पण करदियाहै तिंससे मेरी प्राप्ति होनेमें जिनको कोई प्रतिबन्धक (रोकनेवाला) ही नहीं रहाहै वह श्रेष्ठहैं अपना शरीर मुझे समर्पण करनेवाले, मुझे कर्मोंका फल अर्पण करनेवाले, कर्त्तापनेके अभिमानसे रहित और समदृष्टि रखनेवाले पुरुषसे अधिक उत्तमप्राणी मैं किसीको भी नहीं देखताहूँ ३३ सो भगवान् ईश्वर ही जीवरूप से सकल प्राणियों में विराजमान हैं, ऐसा जान सकल प्राणियोंका बहुत सन्मान मनसे करके प्रणाम करे॥३४॥हे मनुकन्ये ! भक्तियोग और अष्टाङ्गयोग-यह दोनों मैंने तुझ से कहे जिनमें से एक का भी आचरण करनेपर पुरुषको परमेश्वररूप की प्राप्ति होती है ॥ ३५ ॥ हे पतिव्रते ! भगवान् ब्रह्म परमात्माका जो यह प्रकृति पुरुषरूप और उन दोनों से भिन्न भी जो स्वरूपहै तिसको ही दैव कहते हैं; जिस की प्रेरणा से जीवों को कर्म की नाना प्रकार की गति प्राप्त होती हैं ॥ ३६ ॥ यह ही स्वरूप-पदार्थमात्र के भिन्न २ होने का कारण है अतः यह काल कहाता है, जिसकाल से महत्तत्त्व आदि तत्त्वों को और तिन के अभिमान से भेददृष्टि माननेवाले जीवों को भय प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ जो काल–सकल जगत् का आश्रय होनेके कारण सकल प्राणियों के भीतर प्रवेश कर के पञ्चमहाभूतों के द्वारा सकल प्राणियों का संहार करता है व-

लोऽश्रयः ॥ स विष्ण्वाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः ॥ ३८ ॥ न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः ॥ आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमन्तकृत् ॥ ३९ ॥ यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥ यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात् ॥ ४० ॥ यद्वनस्पतयो भीतो लताश्चौषधिभिः सह ॥ स्वे स्वे कालेऽभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥ ४१ ॥ स्रवन्ति सरितो भीतो नोत्सर्पत्युदधिर्यतः ॥ अग्निरिन्धे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥ ४२ ॥ नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः ॥ लोकं स्वदेहं तनुते महान्सप्तभिरावृतम् ॥ ४३ ॥ गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् ॥ वर्ततेऽनुयुगं येषां वश एतच्चराचरम् ॥ ४४ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥४५॥

इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ७ ॥

ही यह काल, जगत् को वश में रखनेवाले ब्रह्मादि कों का भी प्रभु (तिनको अपने वशमें रखनेवाला) है और यज्ञ आदि कर्मों का फल देनेवाला विष्णुनामक है ॥ ३८ ॥ इस काल का कोई प्रिय नहीं है, कोई शत्रु नहीं है और कोई बान्धव भी नहीं है, यह स्वयं सावधान होकर असावधान पुरुषों में प्रवेश करता है और उनका संहार करता है॥३९॥ जिस के भय से जगत् का निर्वाह करनेवाला वायु भी सर्वत्र विचरता है, जिस के भय से सूर्य समय २ पर ताप उत्पन्न करता है, जिस के भय से इन्द्र वर्षा करता है, जिस के भय से नक्षत्रों का समूह प्रकाशित होता है ॥ ४० ॥ जिस से भयभीत हुए वनस्पति और लता इन औषधियों सहित अपने २ वसन्त आदि समयमें पुष्प और फलों को प्रकट करते हैं ॥ ४१ ॥ जिस से भयभीतहुई नदियें बहती हैं और जिससे भयभीत हुआ समुद्र भी अपनी मर्यादा को उल्लङ्घन नहीं करता है, जिस के भय से अग्नि प्रज्वलित होता है, जिस के भय से पर्वतोंसहित भूमि डूबती नहीं है ॥ ४२ ॥ जिसकी आज्ञा से यह आकाश, प्राणियों के रहने को स्थान देता है, जिसकी आज्ञा से महत्तत्त्व, जगत् के मूल अंकुररूप अपने शरीर से पृथिवी आदि सात आवरणों से लिपटे हुए लोक को ब्रह्माण्ड रूप से विस्तृत करता है ॥ ४३ ॥ जिन के वश में यह चराचर जगत् है वह सत्व रज, तम, इन तीन गुणों के नियन्ता ब्रह्मा—विष्णु और रुद्रनामक देवता भी, जिस के भय से इस विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कार्य में प्रत्येक कल्प में प्रवृत्त, होते हैं ॥ ४४ ॥ वह काल, वास्तव में अनादि अनन्त और अविनाशी है तथा पिता आदि के रूप से पुत्र आदिकों को उत्पन्न करताहुआ जगत् को उत्पन्न करनेवाला है और मृत्यु के द्वारा अन्तकाल का भी मरण करताहुआ सब का अन्त करनेवाला है ॥ ४५ ॥ इति तृतीय स्कन्ध में एकोनत्रिंशत् अध्याय समाप्त ॥ * ॥

कपिल उवाच ॥ तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरु विक्रमं॥ काल्यमानो-ऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥ १ ॥ यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुख-हेतवे ॥ तं तं धुनोति भगवान्पुमान् शोचति यत्कृते ॥ २ ॥ यदध्रुवस्य दे-हस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः ॥ ध्रुवाणि मन्यते मोहाद्गृहक्षेत्रवसूनि च ॥ ३ ॥ जन्तुर्वै भव एतस्मिन्यां यां योनिमनुव्रजेत् ॥ तस्यां तस्यां स लभते निर्वृ-तिं न विरज्यते ॥ ४ ॥ नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ॥ नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥ ५ ॥ आत्मजायासुतागारपशु-द्रविणबन्धुषु ॥ निरूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते ॥ ६ ॥ संदह्यमानसर्वांग एषामुद्वहनाधिना ॥ करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥ ७ ॥ आक्षिप्तात्मे-न्द्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ॥ रहो रचितयालापैः शिशूनां कलभाषि-णाम् ॥ ८ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतंत्रेष्वतन्द्रितः ॥ कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुख-

कपिलजी ने कहा कि—हे मात ! जैसे मेघों की पंक्ति वायुसे इधर उधर को उड़जाती है तथापि वह वायुके पराक्रम को नहीं जानती है तिसीप्रकार पहिले कहेहुए बलवान् काल से भिन्न २ अनेकों दशाओंको प्राप्त होनेवालाभी यह लोक तिन काल भगवानूके पराक्रम को ठीक २ नहीं जानता है ॥ १ ॥ यह पुरुष, जिस २ वस्तुको, अपने को सुख प्राप्त होने के निमित्त सम्पादन करता है उस २ का यह समर्थ काल नाश करदेता है ऐसा होनेपर यह पुरुष तिस वस्तु के निमित्त शोक करता रहाता है ॥ २ ॥ वह दुर्बुद्धि पुरुष स्त्री पुत्र आदि सहित नाशवान् अपने शरीर के सम्बन्ध से प्राप्तहुए स्थान, क्षेत्र और धन को अज्ञान में सदा रहनेवाला मानताहै इसकारण उनका नाश होनेपर उसको शोक होता है ॥ ३ ॥ इस संसार में प्राणी, जिन २ देव मनुष्य आदि योनियों में जन्म लेगा तिन२ योनियों में सुख को प्राप्त होने के कारण विरक्त नहीं होता है ॥४॥ देखो—नरकमें के भी जीव, तहांके विष्ठा आदि आहार से सुख प्राप्त होने के कारण भगवान्की मायासे मोहित होते हुए तिस अपने कीट आदि योनि को भी त्यागने की किञ्चिन्मात्रभी इच्छा नहीं करते हैं ५ मनुष्य तो, अपना शरीर, स्त्री, सन्तान, स्थान, पशु, द्रव्य, और बन्धुओं के विषें अपने मनमें मनोराज्य (अधिक २ सुख बढ़ाने का विचार) करता हुआ अपने को धन्यमानता है ॥ ६ ॥ तदनन्तर इन स्त्री पुत्रादिकों का पोषण किसप्रकारकरूँ, ऐसी चिन्तासे उसका सकल शरीर भस्म सा होता है तब वह दुरात्मा मूढ़ एकके पीछे दूसरा ऐसे निरन्तर पापकरता रहता है ॥ ७ ॥ व्यभिचारिणी स्त्रियों के एकान्त में फैलायेहुए, सम्भोग आदि रूप मायाजाल से और सन्तानों के मधुर २ आलापों से जिस का मन और इन्द्रियें मोहितहुई हैं ऐसा वह गृहस्थाश्रमी पुरुष, दुःखों से भरेहुए कपटधर्मों से युक्त अपने स्थानमें आलस्य न

यन्मन्यते गृही ॥ ९ ॥ अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान् ॥ पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयं ॥ १० ॥ वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनः पुनः ॥ लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥ ११ ॥ कुटुंबभरणाकल्पो मन्दभाग्यो वृथोद्यमः ॥ श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायञ्छ्वसिति मूढधीः ॥ १२ ॥ एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तदा ॥ नाद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥ १३ ॥ तत्राप्यजातनिर्वेदो भ्रियमाणः स्वयं भृतैः ॥ जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ १४ ॥ आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ॥ आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ १५ ॥ वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः ॥ कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥ १६ ॥ शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः वाच्य-

करके दुःख का निवारण करताहुआ यह सुखहै ऐसा मानताहै परन्तु वास्तविकसुख नहीं पाता है॥८॥९॥शास्त्रकी मर्यादाको लाँघकर बड़ी हिंसा करके जिधर तिधरसे मिलेहुए धनआदिके द्वारा तिन स्त्रीपुत्रादिकों का पोषण करता है और तिन सब के भोजन आदि से निबटनेपर शेष रहे अन्न आदिको आप भक्षण करताहै, इसप्रकार उनके पोषणसे आप अधोगति पाताहै१० आजीविका के निमित्त वह जिन २ व्यापारों का आरम्भ करता है वह आरम्भ करेहुए व्यापार वारम्वार अस्तव्यस्त होजाते हैं तव उनमें हानि होनेपर स्वयं धन प्राप्त करनेमें असमर्थ और लोभ से विवेकहीन होताहुआ वह दूसरों का धन हरनेकी इच्छा करता है ॥११॥ और तिस प्रारब्धहीन सम्पदारहित पुरुषके धनप्राप्ति के सकल उपायों के निष्फल होनेलगनेपर, कुटुम्ब के पालन में असमर्थ होने से दीनहुआ वह मूढबुद्धि पुरुष, 'क्या करूँ, मेरी उन्नति कैसी होगी' ऐसी चिन्ता करताहुआ लम्बे २ श्वास छोड़ता है ॥ १२ ॥ इसप्रकार उसके हाथों से अपना पालन न होनेके कारण 'जैसे दुष्ट किसान बूढ़े बैलका आदर नहीं करता है तैसे' उस के स्त्री पुत्र आदि पहिले अपना पोषण करने के समय में जैसा आदर करतेथे तैसा वृद्ध अवस्था में नहीं करते हैं और तो क्या उसको अन्न वस्त्र भी नहीं देतेहैं ॥ १३ ॥ ऐसा निरादर होनेलगता है तवभी उसको वैराग्य नहीं होता है, जरा से उसकास्वरूप विरूप होजाता है, भोजनकराहुआ अन्न पचता नहीं है, अतः अल्प आहार करनेवाला, अल्प व्यापार करनेवाला रोगग्रस्त और अन्त में मरणोन्मुख होजाय तवभी, वह पाहिले पोषण करेहुए स्त्री पुत्रादिकोंसे पोषित होताहुआ तिनके अपमानके साथ दियेहुए अन्न आदिको भक्षण करके घरकी रक्षा करनेवाले श्वानकी समान घरमें पड़ा रहताहै ॥ १४ ॥ ॥ १५ फिर कफसे उस के वायुकी मार्गरूप नाड़ियें रुकजाती हैं, खाँसी और श्वास उत्पन्न होकर उसको महान् कष्ट होताहै और प्राण निकलने के समय ऊर्ध्वगतिहुए वायुसे उस के नेत्रों के डले बाहरको निकलकर वह कण्ठ में घर घर शब्द करनेलगता है ॥ १६ ॥ शयन

मानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥ १७ ॥ एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्मा-ऽजितेन्द्रियः ॥ म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः ॥ १८ ॥ यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ॥ स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥ ॥ १९ ॥ यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् ॥ नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा ॥ २० ॥ तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः ॥ पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥ २१ ॥ क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तवालुके ॥ कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥ २२ ॥ तत्र तत्र पतन् श्रान्तो मूर्छितः पुनरुत्थितः ॥ पथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥ २३ ॥ योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः ॥ त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥ २४ ॥ आ-

---

करताहुआ और कालपाश (मृत्यु) के वश में हुआ वह, समीप बैठकर शोक करनेवाले तिन बान्धवों से घिराहुआ उन के 'बाबा, दादा' आदि पुकारने के शब्दों से बुलायाहुआ भी नहीं बोलता है ॥ १७ ॥ इसप्रकार जिस ने इन्द्रियों का जय न करके केवल कुटुम्ब के पोषण में ही अपना शरीर लगाया है वह अन्त में प्राप्त होनेवाली बड़ीभारी पीड़ा से नष्ट बुद्धि होकर तिन बान्धवों को रोतेहुए छोड़कर मरणको प्राप्त होताहै॥ १८॥ तब वह अपने लेने को आयेहुए और क्रोध के कारण नेत्र निकालतेहुए भयङ्कर यमदूतों को देखकर बहुत ही भयभीत होता है और मलमूत्रोत्सर्ग करता है ॥ १९ ॥ जैसे राजा के दूत अपराधी मनुष्य को बाँधकर लेजाते हैं तैसे ही दो यमदूत तिस प्राणी को, पीड़ा भोगने के योग्य इस देह में ही रोककर, बलात्कार से कण्ठ में पाश (फाँसी) से बाँधकर बड़े लम्बे मार्गों में खचेड़तेहुए लेजाते हैं ॥ २० ॥ तिन दूतोंके 'तोड़ो, मारो' इत्यादि वाक्योंसे जिसका हृदय फटाजाता है ऐसा थर२ काँपनेवाला और मार्ग में जिस को कुत्ते फाड़ २ करखाते हैं ऐसा वह पीड़ित होने के कारण अपने पापों को स्मरण करता हुआ, क्षुधा और पिपासा से व्याकुल, सूर्य की ताप—वन की दौं और वायु की उष्णता से जिसमेंकी वालुका तपरही है और जहाँ विश्राम का स्थान और जल किञ्चिन्मात्र भी नहीं है ऐसे मार्ग में अतिताप पानेवाला अतएव चलने को असमर्थ होनेपरभी पीठ में चाबुक से ताड़ित होताहुआ बड़ी कठिनता से चलता है ॥ २१ ॥ २२ ॥ चलते २ थकजाने के कारण मार्ग में जहाँ तहाँ गिर पड़ता है, मूर्छित होजाता है परन्तु फिर उठ बैठता है इसप्रकार अन्धकार से भरे और अति दुःखदायी मार्ग मेंको यमदूत तिस प्राणी को लेजाते हैं ॥ २३ ॥ यमकी नगरी पृथ्वी से ९९००० योजन दूर है, इतने मार्ग में तिस प्राणी को यमदूत तीन मुहूर्त्त में और (अत्यन्तही पापी हुआ तो) दो मुहूर्त्त में लेजाते हैं, इसमें तिस प्राणी को अत्यन्त ही दुःख भोगना पड़ता है ॥ २४ ॥ फिर तहाँ की यातना

दीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ॥ आत्ममांसादनं क्वापि स्वकृत्तं परतोऽपि वा ॥ २५ ॥ जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ॥ सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥ २६ ॥ कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्योभिदापनम् ॥ पातनं गिरिशृङ्गेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः ॥ २७ ॥ यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः ॥ भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥ २८ अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ॥ या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥ २९ ॥ एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरंभर एव वा ॥ विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत्फलमीदृशम् ॥ ३० ॥ एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वं कलेवरम् ॥ कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम् ॥ ३१ ॥ दैवेनासादितं तस्य

उस के शरीर के चारों ओर जलतेहुए काठ बाँधकर उस के अङ्गों को जलाना; उस के शरीरका मांस उससे ही कटवाकर वा किसी दूसरे से नुचवाकर वह उस कोही भक्षण कराना ॥ २५ ॥ यम के स्थान में कुत्तों से वा गिद्धों से, जीतेहुए ही उस प्राणी की आँतें बाहर निकलवाना, सर्प बीछू डाँस आदि डसनेवाले प्राणियों से उस के शरीर को पीड़ा देना ॥ २६ ॥ उसका एक २ अङ्ग शस्त्र से काटना, हाथी आदिकों से उस के अङ्गों को कुचलवाना, पर्वतों के शिखरोंपर से उस को नीचे ढकेलदेना, जल में वा अन्धकारमय खाड़ी में उस को बन्द करदेना ॥ २७ ॥ इत्यादि यातना तथा औरभी तामिस्र, अन्धतामिस्र तथा रौरव नरक आदि प्राप्तहोते हैं, वह पुरुष हो वा स्त्री हो उस ने परस्पर की आसक्ति से पाप करके जो यातना सम्पादन करीहैं वहतो भोगनी ही पड़ती हैं ॥ २८ ॥ हेमातः ! नरक वा स्वर्ग यह दोनों इसलोक में ही है, ऐसा विचारवान् पुरुषों का कथनहै, क्योंकि नरक की जो पीड़ा हैं वह इस लोक में भी कीट आदि योनियों में प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं ॥ २९ ॥ इसप्रकार कुटुम्ब का पोषण करनेवाला, वा अपना ही उदरभरनेवाला वह पुरुष, तिस कुटुम्ब को वा देह को इस लोकमें ही छोड़कर परलोक में जा अपने पाप कर्मों के पूर्वोक्त फल को भोगता है ॥ ३० ॥ प्राणीमात्र से द्रोह करके जिस का पोषण करा तिस अपने शरीर को और कुटुम्ब को जहां का तहां ही छोड़कर, कियेहुए सकल पापों को भोगने के निमित्त साथ लेकर स्वयं इकला नरक में जाकर पड़ता है ॥ ३१ ॥ जैसे 'प्राणी अपने कुटुम्ब और शरीरको यहां ही छोड़जाता है तैसे पापों को भी यहां ही छोड़कर क्यों नहीं जाता ? ' ऐसा कहो तो हे मातः ! तिस कुटुम्बपोषण के समय बने हुए पाप का फल परमेश्वर उसके समीप पहुँचादेते हैं वह नरक में उसको ही भोगना पड़ता है, प्राणी ईश्वराधीन होने के कारण इस लोक में ही पापका त्याग करके जानेको समर्थ नहीं होता है, अन्तकाल में ईश्वरकी शरण जाकर यह अपने पापों की क्षमा करा-

शमलं निरये पुमान् ॥ भुंक्ते कुटुम्बपोषस्य हृतवित्त इवातुरः ॥ ३२ ॥ केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः ॥ याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदं ॥ ॥ ३३ ॥ अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ॥ क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥ ३४ ॥ इतिश्रीभा० महा० तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने कर्मविपाको नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥छ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये॥स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः॥१॥ कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् ॥ दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥ ॥ २ ॥ मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्र्याद्यङ्गविग्रहः ॥ नखलोमास्थिचर्माणि लिंगच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥ ३ ॥ चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः ॥ षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥४॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसं-

---

लेष, यदि ऐसा कहो तो, उसलमय—चोरों ने जिस का द्रव्य लूट लियाहै ऐसा पुरुषजैसे द्रव्य की चिन्ता से लम्बे २ श्वास छोड़ता है उसको कुछभी योग्य अयोग्य विचार नहीं सूझता है तैसेही अन्तकाल में इसकी दशा होजाती है ॥ ३२ ॥ केवल अधर्म करके कुटुम्बके पोषणमें उत्कण्ठित रहनेवाला जीव नरक,में के अन्तिमस्थान अन्धतामिस्र नरक में जाता है ॥ ३३ ॥ इसप्रकार यमलोक के नरकका भोग होजानेपर मनुष्यजन्म प्राप्त होने से प्रथम जितनी यातना और श्वान शूकर आदि की योनि भोगनी हैं उन सबको क्रमसे भोगकर पाप का क्षय होने के कारण शुद्ध होकर फिर इसलोक में मनुष्यजन्मको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ इति तृतीय स्कन्ध में त्रिंशत् अध्यायसमाप्त ॥ * ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे मातः ! यह प्राणी देहप्राप्तिके निमित्त, जिसका प्रवर्त्तक ईश्वर है तिस पूर्व जन्मों के कर्म करके किसी पुरुष के शरीरमें धान्यके कण का आश्रय करके प्रवेशकरता है और उसके वीर्य के कण का आश्रय करके स्त्री के उदर में प्रवेश करता है ॥ १ ॥ स्त्री के उदर में प्रवेश करनेवाले तिस जीव का आश्रय कराहुआ वीर्य,एकरात्रिमें रक्तसे मिलता है, पांच रात्रि में बुलबुले की समान गोल होजाता है, दश दिन में बेरके फलकी समान कुछ कड़ा होजाता है, तदनन्तर मांसके पिण्ड की समान होता है और यदि वह वीर्य तिर्यक् योनि में होय तो अण्डे की समान होजाता है ॥ २ ॥ एकमास में उसके मस्तक उत्पन्न होता है, दो मासमें हाथ पैर आदि अवयवों का विभाग होताहै, तीनमास में नख, रोम, अस्थि, और त्वचा उत्पन्न होती है तथा पुरुष प्रदर्शक लिङ्गका वा स्त्री प्रदर्शक योनिछिद्र की उत्पत्ति होतीहै ॥ ३ ॥ चारमासमें मांस आदि सातधातु उत्पन्न होती हैं. पांच मास में क्षुधा और तृषा उत्पन्न होती हैं, छःमासमें चर्म से वेष्टित होकर वह प्राणी दाहिनी कोख में फिरने लगता है ॥ ४ ॥ माता के भक्षण करेहुए अन्न जल

मंते॥ शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जंतुर्जंतुसंभवे॥५॥ कृमिभिः क्षतसर्वांगः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम्। मूर्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः॥६॥ कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः॥ मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वांगोत्थितवेदनः॥७॥ उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः॥ आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः॥८॥ अकल्पः स्वांगचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे॥ तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम्॥ स्मरन् दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विंदते॥९॥ आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः॥ नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥१०॥ नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः॥ स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥११॥ जन्तुरुवाच॥ तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्तनानातनोर्भुवि चलच्चरणारविंदं॥ सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा॥१२॥ यस्त्वत्र बद्ध इव

आदि से जिसकी सात धातु वृद्धि को प्राप्त होरही हैं ऐसा वह जीव, कीट आदि के उत्पत्तिस्थान, विष्टामूत्र आदि के गढ़हे में सोता रहता है॥ ५॥ क्षुधासे व्याकुल हुए तहांके कीट-जब इसके सकल शरीर को नोचने लगते हैं तब यह सुकुमार होने के कारण अति क्लेश को प्राप्त होता है और क्षण २ में मूर्छित होजाताहै॥ ६॥ कटु तीखा, गरम खट्टा रूखा और वक्सा इत्यादि माता के भक्षण करेहुए दुःसह पदार्थों का जब इसको स्पर्श होने लगता है तब इसके सकल अङ्गों में वेदना उत्पन्न होने लगती हैं॥ ७॥ तहां गर्भाशय से वेष्टित और बाहर माता की आँतों से वेष्टित तथा कुण्डल की समान तिरछीहुई पीठ और ग्रीवा वाला यह प्राणी माता की कोख में को मस्तक करके रहता है॥८॥ तिस गर्भवास में पूर्वकर्मवश उस को स्मरण होता है और सैंकड़ों जन्मों में करेहुए कर्मों का स्मरण करकें बड़े लम्बे २ श्वासों को छोड़नेवाला वह जीव, क्या कुछ सुख पाता है? किन्तु कुछ सुख नहीं पाता है॥ ९॥ सातवें मास के आरम्भ से उसको, यदि सैंकड़ों जन्मों में करेहुए कर्मों का ज्ञान होता है तो प्रसूतिकाल के वायु से इधर उधरको चलायमान होताहुआ तिस उदर में ही विष्टे से उत्पन्न हुए कीड़ों की समान एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता है॥ १०॥ उससमय सात धातुरूप बन्धनों से बँधाहुआ वह देह को आत्मा देखनेवाला जीव, गर्भवास आदि रूप संसारदुःख से भय पाताहुआ पश्चात्ताप करके, जिन्होंने उदर में प्रवेश कराया तिन भगवान् की हाथ जोड़कर व्याकुल हुई वाणी से स्तुति करता है॥११॥ जीव कहता है कि-हेभगवन्! आपने मुझ विषयासक्त योग्य को गर्भवासरूप गति दिखलाई है तिन, शरण में आयेहुए जगत् की रक्षा करने के निमित्त अपनी ही इच्छा से नानाप्रकार के अवतार धारण करनेवाले आपके, भूमिपर चलनेवाले निर्भय चरणकमलकी, संसार के तापसे सन्तप्त हुआ मैं शरण हूँ॥ १२॥ जो इस माता के उदर

कर्मभिरावृतात्मा भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायां॥ आस्ते विशुद्धमविकारमखण्डबोधमातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि॥ १३॥ यः पञ्चभूतरचिते रहितः शरीरे छन्नो यथेन्द्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहं॥तेनाविकुण्ठमहिमानमृषिं तमेनं वन्दे परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम्॥ १४॥ यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन्सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण॥ नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमंतरेण॥ १५॥ ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्त्तितांशः॥ तं जीवकर्मपदवीमनुवर्त्तमानास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम॥ १६॥ देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः॥ इच्छन्नितो विवासितुं गणयन्स्वमासान्निर्वास्यते कृ-

में पञ्चमहाभूत, इन्द्रियें और अन्त.करणके आकार से परिणाम को प्राप्तहुई देहरूप माया का आश्रय करके, पुण्यपापरूप कर्मों से जिसका स्वरूप आच्छादित हुआ है इसकारणे ही बँधाहुआ सा रहनेवाला वह ही मैं, अनेकों प्रकार के सन्ताप को प्राप्तहुए मेरे हृदय में ही प्रतीत होनेवाले, पुण्य पाप आदि के सम्बन्ध से रहित और निर्विकार अखण्डज्ञानरूप भगवान् को नमस्कार करता हूँ॥ १३॥ जो मैं पञ्चमहाभूत के रचेहुए शरीर के विषैं मिथ्या ही आच्छादित हुआ हूँ अर्थात् इन्द्रियें, सत्वादिगुण, शब्द आदि विषय और चिदाभास में अभिमान करनेवाला हूँ परन्तु वास्तव में मैं वैसा आच्छादित नहीं हूँ, क्योंकि तिस शरीर से रहित (असङ्ग) हूँ ऐसा मैं, तिस शरीरसे जिसके स्वरूप का आनन्द कदापि लुप्त नहीं होता है ऐसे प्रकृति और पुरुष के नियन्ता सर्वज्ञ पुरुष को वन्दना करताहूँ॥ १४॥ क्योंकि–जिसकी माया से मोहित हुआ, जिसमें अनेकप्रकार के सत्वादिगुणों से उत्पन्न हुए कर्म ही बड़ेभारी बन्धन हैं ऐसे संसार सम्बन्धी प्रवृत्तिमार्ग के विषैं तिन कर्म बन्धनों से क्लेश भोगताहुआ फिरनेवाला और स्वरूपके आनन्द को भूलाहुआ यह जीव, तिन भगवान् के अनुग्रह के विना दूसरे किसी उपाय से फिर यह अपने स्वरूपकी सेवा करेगा? और किसी उपायसेभी आत्मस्वरूपको नहीं प्राप्तहोसक्ता अतः उनकी ही शरण जाना योग्यहै॥ १५॥ मुझे इससमय जो यह त्रिकालज्ञान हुआ है वह, उनको छोड़कर दूसरे किसने दिया? क्योंकि–तिनदेवने ही स्थावर जङ्गमरूप प्राणियोंके विषैं अपना अन्तर्यामीरूप यश स्थापित कियाहै, अतः जीवके बन्धनरूप कर्मके अनुसार चलनेवाले हम, अपने आध्यात्मिक आदि त्रिविध तापकी निवृत्ति के अर्थ उन की सेवा करते हैं॥ १६॥ हे भगवन्! यह देहधारी जीव, दूसरे शरीर के विवर (माताके पेट) में के रुधिर विष्टा और मूत्र के कूप में पड़ाहुआ है, जठराग्नि से इसका शरीर अति ताप पारहा है, यह इसमें से बाहर को निकलने की इच्छा करता है और अपने महीने गिनरहा है और इसका अन्तः-

प्रणधीर्भगवन्कदा नु ॥ १७ ॥ येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ॥ स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनाऽञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥ १८ ॥ पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ॥ यत्सृष्टयाऽऽस तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम् ॥ १९ ॥ सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ॥ यत्रोपयातमुपसर्पति देव माया मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत् ॥ २० ॥ तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदात्मनैव ॥ भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरन्ध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥ २१ ॥ कपिल उवाच ॥ एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ॥ सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ २२ ॥ तेनावसृष्टः

करण भी अति दीन होगया है सो इस को अब आप कब बाहर निकालेंगे ? ॥ १७ ॥ हे ईश ! परमदयालु अनुपम आपने, इस दश महीने के अनधिकारी जीव को ऐसा ज्ञान दिया है सो हे दीनानाथ ! परमेश्वर तुम अपने करेहुए उपकार से स्वयं ही सन्तुष्ट हूजिये, क्योंकि-केवल नमस्कार करने के सिवाय कौनसा पुरुष, इस तुम्हारे करेहुए उपकार का प्रत्युपकार करसक्ता है ? अर्थात् कोई नहीं करसक्ता ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! यह संसारमें के पशु आदि जीव, अपने शरीर में केवल उस शरीरसे उत्पन्न हुए सुख दुःखोंकोही देखते हैं और कुछ नहीं देखते हैं और मैं तो जिन के दियेहुए विवेकज्ञानसे शम दम आदि साधन युक्त हुए शरीर को धारकर शरीर के भीतर और बाहर प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाले अहङ्कारके स्थान, भोक्ता की समान भासमान होनेवाले, तिन अनादि पूर्ण भगवान् का दर्शन करता हूँ ॥ १९ ॥ अतः हे प्रभो ! इस गर्भवास में यद्यपि मैं परम दुःख से रहता हूँ तथापि गर्भसे बाहर अन्धकारसे भरेहुए कूपकी समान; विवेकको ढकनेवाले संसारमें पड़ने की इच्छा नहीं करता हूँ, क्योंकि—इस संसार में पड़ेहुए प्राणी को हे देव ! तुम्हारी माया वशमें करलेती है फिर देह पुत्र आदि के विषै 'मैं और मेरा ' ऐसा अभिमान उत्पन्नहोता है तदनन्तर जन्ममरणादि की परम्परा वाला यह संसारचक्र पीछे लगता है ॥ २० ॥ अतः जैसे फिर अनेकों गर्भवास आदिरूप यह दुःख मुझे प्राप्त नहों तैसेयहां ही रहकर, यदि यहां बहुतसे दुःख प्राप्तहों तबभी धीरज धरकर व्याकुल न होताहुआ अपने वशमें करीहुई बुद्धि से हृदयमें विष्णुभगवान्के चरण को धारकरमैं शीघ्रही संसारदुःख से अपना उद्धारकरलूँगा कपिल जीने कहा कि—हेमातः ! दश महीने का वह जीव, गर्भवास में ही इसप्रकार भगवान् की स्तुति करके मुक्त होनेके निमित्त जब अपनी बुद्धिका निश्चय करता है त्यों ही प्रसूति काल का वायु उस अधोमुख जीव को बाहरको निकालने को प्रेरणा करताहै ॥ २२ ॥

सहसा कृत्वावाक्शिर आतुरः ॥ विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ २३ ॥ पतिता भुव्यसृङ्मूत्रे विष्टाभूरिव चेष्टते ॥ रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥ २४ ॥ परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ॥ अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥ २५ ॥ शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुस्वेदजदूषिते ॥ नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥ २६ ॥ तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ॥ रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ २७ ॥ इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च ॥ अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः ॥ २८ ॥ सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ॥ करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ॥ २९ ॥ भूतैः पञ्चभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मति ॥ ३० ॥ तदर्थं

तिस वायु से एकाएकी उस स्थानसे धकेला हुआ वह जीव नीचे को मस्तक करके अतिव्याकुल मूर्च्छित और नष्ट होगई है स्मरणशक्ति जिस की ऐसा होकर बड़े कष्ट से बाहर आकर गिरता है ॥ २३ ॥ भूमिपर माता के रुधिर में और मूत्र में पड़ाहुआ वह जीव, विष्टा से उत्पन्नहुए कीटोंकी समान चेष्टा करनेलगता है और गर्भवासमें का वह ज्ञान नष्ट होनेपर विपरीत गति को (देह आदिकों पर अभिमानको) प्राप्त होकर वह प्राणी वारंवार रुदन करने लगता है॥ २४ ॥ अभिप्राय को न जाननेवाले पुरुषों करके पोषण कियाजाता हुआ और परवश वह बालक, जो कोई अपने प्रतिकूल वस्तु देय तो तिस का निषेध करने को समर्थ नहीं होता है ॥ २५ । अधिक क्याकहूँ, खटमल डांस आदिके कारण दुःखदायक स्वच्छता रहित पलँगपर शयन करायाहुआ वह जीव, अपना शरीर खुजलानेको उठनेवैठने की चेष्टा करने को असमर्थ होकर रुदन करता है ॥ २६ ॥ जैसे छोटे कीड़ेको वडाकीडा पीडा देता है तैसे, कोमल त्वचा (खाल) वाले और गर्भवास में का ज्ञान जाता रहने के कारण रोते हुए उस बालक को, डांस, मच्छर, खटमल आदि प्राणी पीडा देते हैं ॥ २७ ॥ इसप्रकार वह प्राणी बालक अवस्थाके दुःखों को भोगकर फिर युवा अवस्थासे पहिली पौगण्ड अवस्थाके पढ़ने आदिके दुःख को भोगताहै तदनन्तर युवा अवस्था आनेपर कामवासनायुक्त हुआ वह पुरुष, जितनी चाहिये उतनी वस्तु न मिलने के कारण अज्ञान से क्रोध में भरकर शोक से व्याप्त होता है और देह के साथ बढ़ेहुए अभिमान से तथा क्रोध से युक्त होकर अपना ही नाश करने के निमित्त दूसरे कामीजनों से वैरभाव करने लगता है ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ आकाश आदि पञ्चमहाभूत से उत्पन्न हुए देह में, अज्ञानी, दुराग्रही तथा खोटी बुद्धिवाला यह प्राणी 'मैं और मेरा' ऐसे विचारको वारंवार हृदयमें स्थानदेता है ३० । इस प्राणीका अज्ञान और कर्म के द्वारा उत्पन्न हुआ जो यह शरीर, जन्म, वृद्धावस्था,

कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ॥ योऽनुयाति ददत् क्लेशमविद्याकर्मबन्धनः ॥ ॥ ३१ ॥ यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ॥ आस्थितो रमते जंतुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ॥ शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयं ॥ ३३ ॥ तेष्वशांतेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु ॥ संगं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥ ३४ ॥ न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसंगतः ॥ योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३५ ॥ प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ॥ रोहिद्भूतां सोन्वधावदृक्षरूपी हतत्रपः ॥ ३६ ॥ तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोन्वखण्डितधीः पुमान् ॥ ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ॥ ३७ ॥ बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या

व्याधि और मरण आदि दुःखही देता है, तिस शरीरके निमित्त यह प्राणी वारंवार कर्म करताहै और उस कर्मसे बँधकर श्वान सूकर आदि योनियों में जन्ममरणरूप संसारको पाता है ॥ ३१ ॥ कभी सन्मार्ग से वर्त्ताव करता हुआ भी यह प्राणी यदि शिश्न और उदर की तृप्ति के निमित्त ही अनेकों उद्योग करनेवाले नीच पुरुषों का सङ्ग करके उनके अनुसार वर्त्ताव करनेलगता है तो यमदूत उसको 'पीड़ायुक्त शरीर में डालकर नरक को लेजाते हैं' इत्यादि पूर्व कहेहुए नरक में पड़ता है ॥ ३२ ॥ क्योंकि-दुर्जनोंके सङ्ग से सत्य, पवित्रता, दया, मौन, बुद्धि, सम्पत्ति, लज्जा, कीर्ति, सहनशीलता, इन्द्रियों को वश में करना, मन को वश में करना और ऐश्वर्य यह सकल गुणनष्ट होजातेहैं ॥ ३३ ॥ इसकारण, विषयों के आनन्द में मग्न रहनवाले, मूढ़, काम क्रोध आदि से विक्षिप्तचित्त हुए, शोक करने योग्य और खेलने के हरिण कीसमान स्त्रियों के वश में रहनेवाले जो असज्जन पुरुष, उन की सङ्गति कदापि नहीं करे ॥ ३४ ॥ स्त्रियों के सङ्ग से अथवा स्त्रियों में आसक्त रहनेवाले विषयलम्पट पुरुषों का सङ्गकरने से जैसा इसपुरुष को मोह वा बन्धन प्राप्त होता है तैसा और किसी की संग ति से नहीं होता है ॥ ३५ ॥ सृष्टि के कर्त्ता ब्रह्माजी अपनी कन्या सरस्वती को देखकर उस के स्वरूप की सुन्दरता से मोहित हुए, उससमय उन के उस खोटे अभिप्राय को जानकर उस कन्या ने हरिणी का रूप धारण करके भागना आरम्भ किया, यह देखकर वह ब्रह्माजी भी हरिण का स्वरूप धारण करके मरीचि आदि ऋषियों के देखतेहुए निर्लज्जता से उस के पीछे भागने लगे ॥ ३६ ॥ अहो ! जब साक्षात् ब्रह्माजीकी यह दशा तो फिर उनके उत्पन्न करेहुए मरीचि आदि ऋषि, तिन मरीचि आदिके उत्पन्न करेहुए कश्यप आदि ऋषि और तिन कश्यपआदि के भी रचेहुए जो देव मनुष्य आदि प्राणी, उन में केवल एक नरनारायणको छोड़कर दूसरा ऐसा कौन पुरुषहै? जिस की संसारमें स्त्रीरूप माया से बुद्धि न मोहित हुई हो ३७ हेमातः!

जयिनो दिशां ॥ या करोति पदाक्रांतान् भ्रूविजृंभेण केवलम् ॥ ३८ ॥ संगं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ॥ मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥ ३९ ॥ योऽपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता ॥ तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥ ४० ॥ यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीं ॥ स्त्रीत्वं स्त्रीसंगतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥ ॥ ४१ ॥ तामात्मनो विजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम् ॥ दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥ ४२ ॥ देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन् ॥ भुंजान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥ ४३ ॥ जीवोस्यानुगतो देहो भूतेंद्रियमनोमयः ॥ तन्निरोधोस्य मरणमाविर्भावस्तु संभवः ॥ ४४ ॥ द्रव्योपलब्धिस्थान

देखो ! इस मेरी स्त्रीरूप माया का कैसा बल है ! जो केवल अपने कटाक्ष ही फेंककर, दिग्विजय करनेवाले वीरोंकोभी चरणके नीचे करलेतीहै ३८सो जिसकोमेरी सेवासे आत्मस्वरूप की प्राप्तिहुईहै और योगका फल प्राप्त करनेकी जिसकी इच्छाहै,उसको स्त्री का संग कदापि नहीं करना चाहिये क्योंकि—मुमुक्षु पुरुषको यहस्त्री केवल नरकका द्वारहै ऐसा कहतेहैं ३९ जो परमेश्वर की रचीहुई स्त्रीरूप माया, सेवा करने आदि के मिष से धीरे २ अपने समीप आती है उस को मुमुक्षु पुरुष, तृणों से ढकेहुए कूप की समान अपनी मृत्यु (अनर्थ करनेवाली) जाने ॥ ४० ॥ मोक्ष की इच्छा करनेवाली स्त्रीभी, पूर्वजन्म में यह मेरा जीव, पुरुषरूप था और स्त्रीके विषै आसक्त होने के कारण अन्तकाल में स्त्रीका ध्यान करके स्त्रीरूप को प्राप्त हुआहै तैसे ही इस जन्म में भी पुरुष के ध्यानसे आगे के जन्म में पुरुष रूप को प्राप्त होगा और ऐसा वारंवार होनेपर कदापि संसारसे छुटकारा नहीं होगा, ऐसाजानकर, पुरुषकी समान वर्त्ताव करनेवाली जिस मेरी मायासे मोहितहोकर,द्रव्य,सन्तान और स्थान आदि देनेवाला पतिहै,ऐसा मानती है, तिस पति सन्तान और स्थान आदि रूपसे प्रतीत होनेवाली मेरी माया को 'जैसे व्याधे का गान मृग के नाश का कारण होताहै तैसेही, अपने प्रारब्ध करके समीप आयाहुआ यह मेरा मृत्यु है ऐसा समझे ॥४१॥४२॥ हेमातः! जीव का उपाधिरूप जो लिङ्गशरीर तिसके द्वारा पुरुष,एकलोकसे दूसरे लोकमें जाकर प्रारब्ध कर्मोंके फलको भोगताहुआ निरन्तर दूसरा शरीर प्राप्त होने के कारणभूत कर्मों को करता है॥४३॥यह जीव का उपाधिरूप लिङ्गशरीर,इसआत्माकी मुक्ति होने पर्यन्त पीछे लगा रहताहै वह सूक्ष्मशरीर तथा भूत इन्द्रिय और मन का विकार जो यह स्थूलशरीरहै, इन दोनों के अपना कार्य करने के अयोग्य होनेपर इस जीव का मरण होता है और उन दोनों शरीरों के फिर प्रकट होने को तिस जीवका जन्म कहते हैं ॥ ४४ ॥ पृथ्वीआदि (घटपट आदि) द्रव्यों के साक्षात्कार होने के स्थान इस स्थूल शरीर की, शब्दआदि

नस्य द्रव्येक्षायोग्यता यदा ॥ तत्पञ्चत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥ ४५ ॥ यथाऽक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनोयोग्यता यदा ॥ तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः ॥४६॥ तस्मान्न कार्यः संत्रासो न कार्पण्यं न सम्भ्रमः बुद्ध्वा ॥ जीवगतिं धीरो मुक्तसंगश्चरेदिह ॥ ४७ ॥ सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया ॥ मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरं ॥ ४८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने जीवगतिरेकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ कपिल उवाच ॥ अथ यो गृहमेधीयान् धर्मानेवावसन्गृहे काममर्थं च धर्मांश्च दोग्धि भूयः पिपर्त्ति तान् ॥ १ ॥ स चापि भगवद्धर्मात्काममूढः पराङ्मुखः ॥

विषयों के ग्रहण करने में, वृद्ध अवस्था आदि के कारण जब सामर्थ्य नहीं रहती है तब स्थूल शरीर में के सूक्ष्म शरीर को भी अपना कार्य करने की शक्ति नहीं रहती है और स्थूल शरीर नाश को प्राप्त होजाता है वही उसका मरण होता है, वही स्थूलशरीर सूक्ष्मशरीर के साथ फिर उत्पन्न होता है और ' यह शरीर आदि ही मैं हूँ' ऐसे अभिमानसे विषयों के ग्रहण करने को समर्थ होता है तब वही उसका जन्म कहाताहै ॥४५॥ जैसे मोतियाबिन्दु आदि विकारों से दूषित हुए नेत्रों के गोलकों में रूप को ग्रहण करने की शक्ति नहीं रहती है तब उन गोलकों में रहनेवाले चक्षु इन्द्रिय में भी सामर्थ्य नहीं रहती है और दोनों के असमर्थ होने के कारण जीवकी भी द्रष्टापने के विषय में अयोग्यता होजाती है इसीप्रकार स्थूल शरीर की अयोग्यता होनेपर लिङ्गशरीर में भी अयोग्यता होजाती है और तिन दोनों की अयोग्यता के कारण जीवको भी अयोग्यता प्राप्त होकर मरण होजाता है तैसे ही फिर उन दोनों में योग्यता उत्पन्न होनेपर जीवमें योग्यता आकर जन्मका व्यवहार होनेलगता है वास्तव में यह जन्म और मरण दोनों कल्पितहैं ॥४६॥ इसकारण मुमुक्षु पुरुष मरण का भय न माने तथा सुख दुःख आदि प्रारब्ध के वशमें होने के कारण बचने के निमित्त दीनता न दिखावे और जीविका के निमित्त प्रयत्न भी न करे किन्तु जीवकी गति को अछेद्य और अभेद्य जानकर धैर्यवान् और देह आदिकों में आसक्तिरहित हो इस संसार में विचरे ॥ ४७ ॥ माया के रचेहुए इसलोक में योगसाधनऔर वैराग्य से युक्त सुविचाररूप बुद्धिके द्वारा देहकी आसक्ति को त्यागेहुए,वर्त्ताव करता रहे ॥ ४८ ॥इति तृतीय स्कन्ध में एकत्रिंशत अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥

कपिलजी ने कहा कि—हे देवहूति ! अब जो गृहमें ही रहनेवाला पुरुष,अपने गृहस्थाश्रम के धर्मोंका आचरण करके धर्म, द्रव्य और विषयभोगको प्राप्तकरताहै वह, जैसे गौओंको चराकर दूध दुहनेवाला पुरुष, वारम्बार दूध की आशा से तिन गौओं को चराता रहता है तैसेही ' उन अपने आचरण करेहुए धर्मों का ही वारम्वार आचरण करता है ॥ १ ॥

यजंते क्रतुभिर्देवान् पितॄंश्च श्रद्धयान्वितः ॥२॥ तच्छ्रद्धयाक्रान्तमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् ॥ गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यंति ॥ ३ ॥ यदा चाहीन्द्रशय्यायां शेतेऽनन्तासनो हरिः ॥ तदा लोका लयं यान्ति त एते गृहमेधिनाम् ॥ ४ ॥ ये स्वधर्मान्न दुह्यन्ति धीराः कामार्थहेतवे ॥ निःसंगा न्यस्तकर्माणः प्रशांताः शुद्धचेतसः ॥ ५ ॥ निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहंकृताः ॥ स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥ ६ ॥ सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम् ॥ परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यंतभावनम् ॥७॥ द्विपरार्द्धावसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ॥ तावदध्यासते लोकं परस्य परचिंतकाः ॥ ८ ॥ क्ष्मांऽभोनलानिलवियन्मनइन्द्रियार्थभूतादिभिः परिवृतं प्रतिसञ्जिहीर्षुः ॥ अव्याकृतं विशंति यर्हि गुणत्रयात्मा कालं पराख्यमनुभूय परः स्वयंभूः ॥ ॥ ९ ॥ एवं परेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ॥

परन्तु वह काम से मोहित हुआ पुरुष, ईश्वर की आराधनारूप भगवत् धर्म से विमुख होकर श्रद्धाके साथ यज्ञ आदि करके देवताओंकी और श्राद्ध आदि करके पितरों की आराधना करता है ॥ २ ॥ वह उन देव पितर आदिकों में 'यही मेरा मनोरथ पूर्ण करेंगे' ऐसे विश्वास युक्त बुद्धिवाला होकर उनकी आराधना के व्रत को ही धारण करताहै,उस कर्म से वह चन्द्रलोक में जाकर और तहां अमृत पीकर पुण्य समाप्त होते ही फिर इस लोकमें लौटआता है ॥ ३ ॥ हे मातः ! ब्रह्माजी के दिन के अन्तसमय में जब अनन्तासन श्रीहरि शेषशय्यापर शयन करते हैं तब यह गृहस्थाश्रमी को प्राप्त होनेवाले लोक नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ ४ ॥ और जो विवेकी पुरुष अर्थ और कामके निमित्त निजधर्म का आचरण न करके केवल ईश्वरार्पण बुद्धि से निजधर्म का आचरण करते हैं वह पुरुष, विषयों में आसक्ति रहित, ईश्वरार्पण कर्म करनेवाले, शान्त, शुद्धचित्त,मोक्षधर्म में तत्पर, निरहङ्कार और पुत्र आदि में ममता न करतेहुए, अपने धर्म्माचरण और शुद्ध अन्तःकरणके द्वारा, सूर्य के द्वारा (अर्चिः आदि मार्ग करके) स्थावर जङ्गम जगत् के नियन्ता, इस जगत्के उपादानकारण और निमित्तकारणरूप परिपूर्ण पुरुष में जाकर मिलजाते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ हे मातः ! जो पुरुष, परमेश्वर दृष्टि से हिरण्यगर्भ की उपासना करनेवाले हैं वह दो परार्द्धके अनन्तर जो ब्रह्माजी का प्रलय कहा है उससमयपर्यन्त सत्यलोक में रहते हैं ॥८॥ हेमातः ! देवता आदिकों से श्रेष्ठ त्रिगुणात्मक ब्रह्माजी दो परार्द्धसमय पर्यन्त अपने अधिकारको भोगकर, पृथ्वी, जल, तेज,वायु आकाश, मन, इन्द्रिय, शब्दादि विषय और अहङ्कार आदियुक्त ब्रह्माण्ड का संहार करने की इच्छा से जब परमेश्वर के स्वरूप में जा मिलते हैं ॥ ९ ॥ तबही पहिले के कथनके अनुसार सत्यलोक में जाकर भगवान् हिरण्य

तेनैव साकममृतं पुरुषं पुराणं ब्रह्म प्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥ १० ॥ अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् ॥ श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥ ११ ॥ आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः ॥ योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्त्तकैः ॥ १२ ॥ भेददृष्ट्याऽभिमानेन निःसङ्गेनापि कर्मणा ॥ कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्त्तिना ॥ जाते गुणव्यतिकरे यथापूर्वं प्रजायते ॥ १४ ॥ ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च तेपि धर्मविनिर्मितम् ॥ निषेव्य पुनरायान्ति गुणव्यतिकरे सति ॥ १५ ॥ ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयान्विताः ॥ कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥ १६ ॥ रजसा कुण्ठमनसः कामात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ पितॄन्यजन्त्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥ १७ ॥ त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः ॥ कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥ १८ ॥ नूनं दैवेन

गर्भ का ध्यान करतेहुए बैठकर, प्राण वायु और मन को जीतनेवाले योगी, तिन ब्रह्मा जी सहित, उत्तम परमानन्द ब्रह्मरूप पुराणपुरुष में जाकर मिलतेहैं, तिस से पहिले नहीं मिलते हैं, क्योंकि–पहिले वह निरभिमानी नहीं होते हैं ॥ १० ॥ तिस से हेमातः! सकल भूतों के हृदयकमल में जिन्हों ने वास किया है, जिन का पराक्रम तूने मुझसे सुना है तिन भगवान् की शरण में तू प्रेमके साथ जा ॥ ११ ॥ स्थावर जङ्गम प्राणियों को रचनेवाले ब्रह्मा जी, निष्काम कर्म करनेवाले होनेपरभी, कर्तृत्व के कारण उत्पन्न हुए अभिमान और भेददृष्टि करके, मरीचि आदि ऋषि, सनत्कुमार आदि योगेश्वर और अन्य भी योगशास्त्र को प्रवृत्त करनेवाले सिद्धोंसहित सर्वान्तर्यामी गुणों के नियन्ता ब्रह्मरूप श्रेष्ठ पुरुषसे एकताभाव को प्राप्त होकरभी फिर सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वररूप काल के द्वारा सत्त्व आदि गुणों का परस्पर मेल होनेपर पूर्व की समान उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ तथा वह मरीचि आदि ऋषि भी, स्वधर्माचरण से प्राप्तहुए ब्रह्मलोक में ऐश्वर्यों को भोग कर सृष्टि के आरम्भ में, गुणों में न्यूनाधिकभाव होनेपर फिर उत्पन्न हुए अपने अधिकारपर आते हैं ॥ १५ ॥ जो पुरुष इसलोकके विषें सकामकर्म्मों में आसक्तचित्त और श्रद्धावान् होतेहुए वेदोंमें कहे सकल काम्य और नित्य कर्म्मों को करते हैं ॥ १६ ॥ और रजोगुणसे विक्षिप्तचित्त हुए इन्द्रियों को वश में न करनेवाले तथा घरके कार्य्यों में अन्तःकरण से अत्यन्त गुथेहुए जो पुरुष, प्रतिदिन पितरों की आराधना करते हैं ॥ १७ ॥ वह पुरुष, धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों में ही तत्पर होने के कारण, जिनके बड़े २ पराक्रम कीर्त्तन करनेयोग्य हैं ऐसे मधुसूदन भगवान् की कथा में विमुख होते हैं ॥ १८ ॥ जैसे विष्टा के कीड़े, उत्तम २ पदार्थ मिलतेभी उनको त्यागकर विष्टा को ही भक्षणकर तेहैं

विहंता ये चाच्युतकथासुधां ॥ हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः १९॥ दक्षिणेन पथार्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते ॥ प्रजामनुप्रजायंते श्मशानांतक्रियाकृतः ॥ २० ॥ ततस्ते क्षीणसुकृताः पुनर्लोकमिमं सति ॥ पतंति विवशा देवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः ॥ २१ ॥ तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनं ॥ तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदाम्बुजम् ॥ २२ ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २३ ॥ यदाऽस्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ॥ न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥ २४ ॥ स तदैवात्मनात्मानं निःसंगं समदर्शनं ॥ हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥ २५ ॥ ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ॥ दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥ २६ ॥ एतावानेव योगेन समग्रेणेह यो-

तैसेही जो भगवत्कथारूप अमृतको त्यागकर अमङ्गल वार्त्तालाप करतेहैं वह पुरुष वास्तव में प्रारब्ध के मारेहुए (भाग्यहीन) हैं ॥ १९ ॥ गर्भाधान संस्कार से श्मशान पर्यन्त (और्ध्वदैहिक कर्म पर्यन्त) सकल संस्कार करनेवाले वह पुरुष, धूम नामक दक्षिणमार्ग से अर्यमानामक पितरों के राजाके लोक को जाते हैं और तहांसे फिर अपने पुत्रादिकों के वंशमें जन्म लेते हैं ॥ २० ॥ हे पतिव्रते ! देवहूति, भोगसे उनका पुण्य क्षीण होजाता है उसी समय देवता उनके ऐश्वर्य को छीनलेते हैं तब वह विवश होकर इसलोक में आ पडते हैं ॥ २१ ॥ इससे हेमातः ! तू, जिनका चरण कमल सेवा करनेयोग्य है तिन परमेश्वर की, उनके गुणों का आश्रय करके रहनेवाली भक्ति से सेवाकर ॥ २२ ॥ क्योंकि वासुदेव भगवान् की भक्ति करनेपर वह ब्रह्म साक्षात्कार करादेनेवाला ज्ञान और संसारके विषैं वैराग्य शीघ्रही उत्पन्न होता है ॥२३॥ हेमातः ! जब इस भगवद्भक्तका चित्त, भगवान् के गुणोंकी प्रीति से तिन भगवान् के विषैं निश्चल होकर, इन्द्रियों की वृत्तियोंके द्वारा शब्द स्पर्श आदि एकरूप विषयोंपर ' यह मेरा प्रिय है और यह मेरा अप्रिय है ' इसप्रकार की विषम दृष्टि को नहीं ग्रहण करता हैं ॥ २४ ॥ उसी समय वह भक्त, शुद्ध अन्तःकरण से, त्याग करने योग्य वा ग्रहण करने योग्य है ' इत्यादि विभाग से रहित, समान, स्वप्रकाश और प्रकृति के अध्यास से रहित स्वरूपभूत आत्मा को, मैं ही परमानन्दरूप हूँ ऐसा देखताहै २५ हेमातः ! ज्ञानस्वरूप, एक पदार्थ, देखनेवाला—दीखने योग्य आदि भिन्न२ स्वरूपवाला प्रतीत होता है और भिन्न२ शास्त्रों में भिन्न२ शब्दों से वर्णन किया जाता है, उपनिषदों में परब्रह्म, योगशास्त्रमें परमात्मा ईश्वर, सांख्यशास्त्रमें पुरुष और भक्तिशास्त्रमें भगवान् प्रसिद्धहैं।२६। हे मातः ! योगी को, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और अष्टाङ्गयोग के द्वारा जो सकल विषयों में वैराग्य का होना है वह ही शास्त्र का सम्मत इच्छितफल प्राप्त करना है ॥ २७ ॥

गिलः ॥ युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसंगस्तु कृत्स्नशः ॥ २७ ॥ ज्ञानमेकं परा-
चीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणं ॥ अवभात्यर्थरूपेण भ्रांत्या शब्दादिधर्मिणा ॥२८॥
यथा महानहंरूपस्त्रिवृत्पञ्चविधः स्वराट् ॥ एकादशविधस्तस्य वपुरण्डं जग-
दतः ॥ २९ ॥ एतद्वै श्रद्धया भक्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः ॥ समाहिता-
त्मा निःसङ्गो विरक्त्या परिपश्यति ॥ ३० ॥ इत्येतत्कथितं गुर्वि ज्ञानं
तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ येनानुबुद्ध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोगश्च
मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ॥ द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः ॥
॥ ३२ ॥ यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः ॥ एको नानेयते तद्वद्भगवा-
ञ्छास्त्रवर्त्मभिः ॥ ३३ ॥ क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपःस्वाध्यायमर्शनैः ॥ आत्मे-
न्द्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणां ॥ ३४ ॥ योगेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन

हे मातः ! एक निर्गुण ब्रह्म ही, बहिर्मुख हुई इन्द्रियों के द्वारा शब्दादि धर्मवाले आकाशादि पदार्थरूप से (देव मनुष्य आदि रूप से) केवल भ्रम करके भासित होता है, तिस में भेद दृष्टि रखकर 'मैं और मेरा' इसप्रकार जो आसक्ति करनाहै सो ही बन्धन है तिसको दूर करने के निमित्त मुमुक्षु पुरुषको यत्न करना चाहिये ॥२८॥ जैसे महत्तत्त्व, अहङ्कार रूप से सत्व रज-तम ऐसे तीन प्रकारका, महाभूतरूपसे पांचप्रकारका तथा इन्द्रियरूपसे ग्यारहप्रकारका भासित होताहै और जिन अहङ्कार आदिसे स्वप्रकाश जीव और तिस जीवके शरीर ब्रह्माण्ड और जगत् भासमान होतेहैं तैसे, ज्ञान ही शब्दादि विषयों के रूप से अनेकों प्रकारका भासता है ॥२९॥ परन्तु निरन्तर श्रद्धा, भक्ति, योगाभ्यास और वैराग्यसे जिसका अन्तःकरण एकाग्र हुआ है और जिस ने सर्वत्र आसक्ति को त्यागदिया है वह ही इससकल प्रपञ्चको ब्रह्मस्वरूप देखताहै॥३०॥ हेपूजनीय देवहूति ! जिससे प्रकृति और पुरुषका वास्तविक स्वरूप जानाजाताहै जिससे ब्रह्मका साक्षात्कार होता है वह ज्ञान मैंने तुझसे कहा ॥ ३१ ॥ हेसाध्वि ! निर्गुण वस्तुके विषय का ज्ञान योग और मेरे विषैं निष्ठाके साथ किया हुआ निष्काम भक्तियोग इन दोनों का ही भगवत्प्राप्तिरूप लक्षण एक ही है ॥३२॥ जैसे रूप रस आदि बहुत से गुणों का आश्रय करनेवाला गुड़ आदि एकही पदार्थ भिन्न२ विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियों से नानाप्रकारका अर्थात् चक्षु इन्द्रिय से भदमैला, रसना इन्द्रिय से मधुर, घ्राण इन्द्रिय से सुगन्धियुक्त, स्पर्श इन्द्रिय से ठण्डा आदि प्रतीत होता है तैसे ही एकही भगवान् शास्त्रों के भिन्न २ मार्गों से नानाप्रकार के प्रतीत होते हैं ॥ ३३ ॥ अर्थात् कूप खुदवाना सरोवर बनवाना आदि कर्म, यज्ञ आदि अनुष्ठान, अनेकों प्रकार के दान, तप, वेद पढ़ना, वेद के वाक्यों का विचार, मन और इन्द्रियों को जीतना, ईश्वर को ही सकल कर्म समर्पण करना, आठ प्रकार का योग, नौ प्रकार की भक्ति, प्रवृत्ति निवृत्ति

चैव हि ॥ धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च ॥ ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणः स्वदृक् ॥ ३६ ॥ प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधं । कालस्य चाव्यक्तगतेर्योऽन्तर्धावति जन्तुषु ॥ ३७ ॥ जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ॥ यास्वङ्ग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥ ३८ ॥ नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ॥ न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥ ३९ ॥ न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ॥ नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥ ४० ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे ॥ भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाऽभिरताय च ॥ ४१ ॥ बहिर्जातविरागाय शान्तचित्ताय दीयतां निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥ ४२ ॥ य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ॥ यो वाऽभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥ ४३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

रूप अर्थात् सकाम और निष्काम ऐसा दो प्रकार का धर्म, आत्मतत्त्व का ज्ञान और दृढ़ वैराग्य इन उपायोंसे स्वप्रकाश भगवान्‌कीही सगुण और निर्गुणरूपसे प्राप्ति होतीहै।३४। ॥ ३५॥ ३६ ॥ हेमातः! सात्विक, राजस, तामस और निर्गुण यह चार प्रकारका भक्तिका स्वरूप और जो प्राणिमात्रके जन्म आदि विकारोंका कारण होताहै तथा जिसकी गति किसी की समझमें नहीं आती ऐसे कालका स्वरूप भी मैंने तुझसे कहा ॥ ३७॥ हेमातः! जिसकर्म में प्रवेश करनेवाला जीव, अपने वास्तविक स्वरूपको नहीं जानताहै, तिन अज्ञानसे करेहुए कर्मों करके जीवको प्राप्त होनेवाली नानाप्रकारकी संसृति (संसार) भी मैंने तुझसे कहीहै ३८ हे देवहूति! मेरा कहाहुआ यह तत्त्वज्ञान, खल (दूसरोंको धोखा देनेवाले), उद्धत, घमण्डी, नास्तिक और पाखण्डी पुरुषों के अर्थ कदापि न कहे ॥ ३९ ॥ तथा विषयों में आसक्त, घर स्त्री, पुत्र धन आदि में आसक्त, मेरी भक्ति न करनेवाले और मेरे भक्तोंसे द्वेष करनेवाले से भी न कहे ॥ ४० ॥ गुरुके और मेरे ऊपर विश्वास रखनेवाला, मेरी भक्ति करनेवाला, नम्र, तत्त्वज्ञानियों में दोषदृष्टि न रखनेवाला, प्राणीमात्र के ऊपर दया करनेवाला, गुरुजनों की और मेरी सेवा करने में तत्पर, बाहिरी विषयों में वैराग्यदृष्टि रखनेवाला, शान्तचित्त, मत्सरतारहित, भीतर और बाहर शुद्धता रखनेवाला तथा जिसको मैं सकल वस्तुओं से अधिक प्यारा हूँ तिस पुरुष को इस तत्त्वज्ञानका उपदेश करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हेमातः! मुझमें चित्त लगानेवाला जो पुरुष, श्रद्धा के साथ इस कथा को एकवार सुनेगा वा पढ़ेगा निःसन्देह उसको मेरे पदकी प्राप्ति होगी ॥ ४३ ॥ इति तृतीय स्कन्ध में द्वात्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ॥ विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य तुष्टाव तत्त्वविषयांकितसिद्धिभूमिम् ॥१॥ देवहूतिरुवाच ॥ अथाप्यजोऽन्तःसलिले शयानं भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ॥ गुणप्रवाहं सदशेषबीजं दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥ ॥ २ ॥ स एव विश्वस्य भगवान् विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसंधिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥ ३ ॥ स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं नु यस्योदर एतदासीत् ॥ विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुरंघ्रिपानः ॥ ४ ॥ त्वं देहतंत्र प्रशमाय पाप्मनां निदेशभाजां च विभो विभूतये ॥ यथावतारास्तव सूकरादयस्तथायमप्यात्मपथोपलब्धये ॥ ॥ ५ ॥ यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ॥ श्वादोऽपि

मैत्रेयजी कहते हैं कि-हे विदुरजी ! इसप्रकार कर्दम प्रजापति की प्रियपत्नी और कपिलजी की माता देवहूति ने कपिलजी के भाषण को सुनकर,जिसका मोहरूप परदा दूर होगया है ऐसी होती हुई, तत्त्वरूप विषय से युक्त और सांख्यशास्त्र को प्रवृत्त करनेवाले उन कपिलजी को नमस्कार करके स्तुति करनेलगी ॥ १ ॥ देवहूति बोली कि-हे कपिलजी ! जिन तुम्हारी नाभिकमल से उत्पन्न हुए प्रत्यक्ष ब्रह्माजी ने भी, जलमें शयन करके पञ्चमहाभूत, इन्द्रिय, शब्दादि विषय और मन से व्याप्त, सत्व आदि गुणों के प्रवाह से युक्त और सकल प्रपञ्चके बीजभूत तुम्हारे स्वरूपका केवल ध्यान ही किया,ऐसा करनेसे भी वह स्वरूप कुछ शीघ्रता से उन के ध्यानमें नहीं आया ॥ २ ॥ वह सत्यसङ्कल्प, क्रियारहित सकल जीवोंके नियन्ता, अतर्क्य और अनन्त शक्तियोंसे युक्त तथा गुणोंके प्रवाहसे अपनी शक्तियोंके अनेक विभाग करनेवाले तुमही विश्वकी उत्पत्ति,स्थिति और संहारकरते हो ३ ॥ हे नाथ ! तैसेही प्रलयकालमें,जिन तुम्हारे उदरमें यह सकल जगत् प्रविष्ट हुआथा और जिन तुमने माया से बालक का रूप धारकर अपने चरण का अगूँठा चूँसते२ इकले ही वड़के पत्रपर शयन कियाथा, तिन तुम्हें मैंने उदर में किसप्रकार धारण किया ? वास्तव में तुह्मारी लीला अतर्कनीय है ॥४॥ हे प्रभो ! तुम दुष्टों का नाश करने के निमित्त और अपनी आज्ञा में चलनेवाले सज्जनोंके कल्याणके निमित्त शरीर धारते हो, इसकारण जैसे पहिले तुम्हारेवराह आदि अवतार हुएथे तैसेही यहभी तुम्हारा अवतार भक्तों को ज्ञानमार्ग दिखाने के निमित्त हुआ है ॥ ५ ॥ इसकारण तुम्हारा दर्शन करके मैं कृतार्थ हुई हूँ,क्योंकि-किसी समयमें तुम्हारे नामों के श्रवण से वा कीर्त्तन करने से वा तुम्हें नमस्कार करने से अथवा तुम्हारा स्मरण करने से, साक्षात् चाण्डाल हो तो वह भी सोमयाग करनेवाले पुरुषोंसे अधिक आदर करनेयोग्य है, सो हे भगवान् ! तुम्हारा दर्शन करके पुरुष कृ-

सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नुदर्शनात् ॥ ६ ॥ अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ॥ तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ ७ ॥ तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् । स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् ॥ वाचाविक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥ ९ ॥ कपिल उवाच ॥ मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ॥ आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥ ॥ १० ॥ श्रद्धत्स्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद्ब्रह्मवादिभिः ॥ येन मामभवं याया मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रदर्श्य भगवान्सतीं तामात्मनो गतिं ॥ स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥ १२ ॥ सा चापि तन-

तार्थ होजायगा, इस का तो कहना ही क्या ? ॥ ६ ॥ अहा हा ! हे परमेश्वर ! जिस की जिव्हापर तुह्मारा नाम रहता है वह चाण्डाल होयतोभी, उस नाम के कारण से ' तुमसे विमुख होकर यज्ञ आदि करनेवाले ब्राह्मणों से भी श्रेष्ठ है, अधिक क्या कहूँ ! जो तुह्मारे नामका कीर्त्तन करतेहैं उनही श्रेष्ठ पुरुषोंने तप किया उन्होनेही हवन किया उन्होने ही सब तीर्थों में स्थान किया और उन्होने ही वेदोंका पठन पाठन किया, क्योंकि—सकल पुण्य कर्म तुह्मारे नाम कीर्त्तन के भीतर हैं ॥ ७ ॥ विषयोंसे हटायेहुए मनमें जिनका चिन्तवन कियाजाता है, जिन्होने अपने स्वरूप के प्रकाशसे सत्वादि गुणोंके प्रवाहरूप संसार का विध्वंस कियाहै, जिनके गर्भ में वेदहै, जिनको वेदान्त शास्त्रमें परब्रह्म सांख्यशास्त्र मे पुरुष और पुराणों में विष्णु कहते हैं तिन आप कपिल जी को मैं वन्दना करती हूँ ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी कहतेहैं कि-हेविदुरजी! देवहूतिने जब कपिल नामक परमपुरुष भगवान् की इसप्रकार स्तुति करी तब माता में प्रीति रखनेवाले तिन कपिलजी ने, स्नेह से गद्गद हुई वाणी में माता से इसप्रकार कहाकि—॥ ९ ॥ हेमातः ! तुझे सेवन करने में अति सहल, मेरे कहेहुए इस मार्गसे यदि तू चलेगी तो बहुत ही शीघ्र उत्तमफलरूप जीवन्मुक्ति को प्राप्त होगी ॥ १० ॥ हेमातः ! ब्रह्म ज्ञानियों के प्रीति के साथ सेवन करेहुए इसमेरे कथन पर तू विश्वास रख, इसप्रकार वर्त्ताव करने से तू संसार से छूटकर मेरे जन्ममरण रहित स्वरूप को पावेगी, इस मत को न जाननेवाले पुरुष मृत्युरूप संसार में पड़ते हैं अर्थात् संसार में से उनका कभी भी छुटकारा नहीं होता है ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि हे विदुरजी ! इसप्रकार वह भगवान् महामुनि कपिलजी, ब्रह्मज्ञानियों की सेवन करीहुई और सुखसाध्य आत्मगति माता को दिखाकर, तिस ब्रह्मतत्वको जाननेवाली माता देवहूति के आज्ञा देनेपर ईशान दिशाकी ओर को चलेगए ॥ १२ ॥ तदनन्तर वह देवहूति भी पुत्र के उपदेश

थोक्तेन योगादेशेन योगयुक् ॥ तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥ १३ ॥ अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान्कुटिलालकान् ॥ आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशं ॥ १४ ॥ प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृंभितं ॥ स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥ १५ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥ १६ ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नप्रदीपा आभान्ति ललना रत्नसंयुताः ॥ १७ ॥ गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यं बह्वमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहंगमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥ १८ ॥ यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः ॥ वाप्यामुत्पलगंधिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥ १९ ॥ हित्वा तदीप्सिततममप्याखण्डलयोषितां ॥ किञ्चिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥ २० ॥ वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा ॥ ज्ञाततत्त्वाऽप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥ २१ ॥ तमेव ध्या-

करेहुए योगमार्ग से अपने चित्त को एकाग्र करके सरस्वती नदी के मुकुटकी समान शोभादायक बिन्दुसरोवर नामक अपने आश्रम में समाधि लगाकर समय को व्यतीत करने लगी ॥ १३ ॥ त्रिकाल स्नान करने से पीतवर्ण हुए, जटाकी समान रूखेहुए, घुघुराले केशवाले, और तीव्र तपस्या से दुर्बल हुए वल्कलधारी अपने शरीर को धारण करनेवाली तिस देवहूति ने, कर्दमजी के तप के प्रभाव से और योगशक्ति से बढ़े हुए अनूपम तथा देवताओंके भी प्रार्थना करने योग्य तिस अपने घरके सुखका अभिमान त्यागदिया॥ १४॥ १५॥ जिस घर में हाथी दांत के पलँग और उन के ऊपर दूध के फेनकी समान स्वेत सुजनी बिछरही थीं, सुवर्ण के पात्र आदि सकल सामग्रियें और अति कोमल गद्देवाली सुवर्ण की कुरसियें थीं ॥ १६ ॥ जहाँ ऊँची मरकतमणि स्वच्छ स्फटिक की भीतोंपर बनीहुई सुन्दर स्त्रियें हाथ में दियेहुए पद्मराग आदि रत्नों के दीपकों से शोभा पारही थीं ॥ १७ ॥ उस घर के समीप में एक बगीचा था, वह मन्दार पारिजात आदि अनेकों प्रकार के फूलेहुए देव वृक्षों से मनोहर प्रतीत होता था, जिस में पक्षियों के जोड़े मधुर २ शब्द कररहे थे, जहाँ पुष्पों का मकरन्द पीकर मत्तहुए भ्रमर गान कररहे थे ॥ १८ ॥ जहाँ कमलों की सुगन्धवाली बावड़ी में घुसीहुई और कर्दम ऋषि ने क्रीड़ा के समय स्वीकार करीहुई अपना (देवहूति का) किन्नर गन्धर्व आदि गान करते थे ॥ १९ ॥ और जिस को देखकर इन्द्र की स्त्रियों को भी ऐसी इच्छा होती थी कि—यह हमें मिलजाय, ऐसे बगीचे का भी अभिमान (ममता) त्यागकर पुत्र के चलेजाने से खिन्न हुई तिस देवहूति ने अपना मुख कुछएक उदास किया ॥ २० ॥ प्रियपति (कर्दमजी) के संन्यास लेकर वन में को चलेजाने के अनंतर पुत्र के वियोग से व्याकुल हुई वह देवहूति, आत्मतत्त्व को जाननेवाली थी, तो भी जैसे प्रेम करनेवाली गौ बछड़े के बिछुड़ने से विह्वल होती है तैसे विह्वल हुई ॥ २१ ॥

यती देवमपत्यं कपिलं हरिम् ॥ बभूवाचिरतो वत्स निस्पृहा तादृशे गृहे ॥ ।२२। ध्यायती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम् ॥ सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचितया ॥ २३ ॥ भक्तिप्रवाहयोगेन वैराग्येण बलीयसा ॥ युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥ २४ ॥ विशुद्धेन तदात्मानमात्मना विश्वतोमुखम् ॥ स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये ॥ निवृत्तजीवापत्तित्वात्क्षीणक्लेशाप्तनिर्वृतिः ॥ २६ ॥ नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा ॥ न सस्मार तदात्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः २७॥ तद्देहः परतः पोषोऽप्यकृशश्चाध्यसम्भवात् ॥ बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ स्वांगं तपोयोगमयं मुक्तकेशं गतांबरम् ॥ दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥ २९ ॥ एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम् ॥ आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं भगवंतमवाप ह ॥ ३० ॥ तद्वीरासीत्पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलो-

हे वत्सविदुरजी ! तिस देवहूति ने, पुत्ररूप श्रीहरि कपिलदेव का ध्यान करके थोड़े ही समय में पहिले जिस की सकल सम्पदाओं का वर्णन करा है ऐसे घर के विषय में ममता त्याग दी ॥ २२ ॥ तदनन्तर, पुत्र कपिलजी ने, ध्यान करने के योग्य जो भगवान् का प्रसन्नमुखयुक्त स्वरूप कहा था तिस सकल अवयवयुक्त स्वरूप का और तिस स्वरूप के एक२ अङ्ग का, शुद्ध अन्तःकरण से ध्यान करके तिस देवहूति ने, भक्ति के अखण्डप्रवाह, तीक्ष्ण वैराग्य और यथोचित पूजादि कर्मों के अनुष्ठान से उत्पन्न हुए ब्रह्म साक्षात्काररूप ज्ञान के द्वारा, स्वरूप के प्रकाश से ही जिन का माया के गुणों का रचाहुआ देह इन्द्रियादि भेद दूर होगया है ऐसे आत्मा को सर्वव्यापकरूप से जानकर ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जीव के आश्रय ब्रह्मरूप भगवान् के विषैं अपनी बुद्धि लगाई, उससमय उसका जीवभाव नष्ट होने के कारण सकल क्लेश नष्ट होकर परमानन्द प्राप्त हुआ और सर्वदा समाधि लगी रहने के कारण उस का अहं-ममता-रूप भ्रम दूर होगया. इसकारण उससमय, जैसे जागेहुए पुरुषको स्वप्नमें देखेहुए शरीरका ध्यान नहीं रहता है तैसे उसको अपने शरीर की भी सुध नरही ॥२६।२७॥ उससमय उसका शरीर, कर्दमजी की रचीहुई विद्याधरियों से पोषित होता था, ऐसा मनोदुःख न होने के कारण दुर्बलभी नहीं हुआ तथापि उबटन आदि न होने के कारण मैलसे भरकर धुएँवाली अग्निकी समान शोभाको प्राप्तहुआ ।२८। अधिक क्याकहें जिसकीबुद्धि वासुदेव भगवान्में प्रवेश करगई है ऐसीतिस देवहूतिने तपोमय, खुले केशवाले जिसके वस्त्र अलग जापड़े हैं ऐसे प्रारब्धके रक्षा करेहुए अपने शरीर कोभी नहीं जाना।२९। हे विदुर जी ! इस प्रकार कपिलजी के कहने के अनुसार साधना करके वह देवहूति, शीघ्र ही, सर्वश्रेष्ठ, अन्तर्यामी, नित्यमुक्त और ब्रह्मरूप भगवान् में एकता को प्राप्त होगई ॥ ३० ॥ हे वीर विदुर जी ! जहां तिस देवहूति को योगसिद्धि (मुक्ति) प्राप्तहुई वह 'सिद्ध पद' नाम से

त्र्यैविश्रुतं ॥ नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिमुपेयुषी ॥ ३१ ॥ तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् ॥ स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥ ३२ ॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवान् पितुराश्रमात् ॥ मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥ सिद्धचारणगंधर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥ स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ॥ ३४ ॥ आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः ॥ त्रयाणामपि लोकानामुपशांत्यै समाहितः ॥ ३५ ॥ एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ ॥ कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः ॥ ३६ ॥ य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यं ॥ भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविन्दम् ॥ ३७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३३

त्रिलोकी में प्रसिद्ध परम पुण्य कारी क्षेत्र है ॥ ३१ ॥ हे शान्तस्वरूप विदुरजी ! योगसाधना से जिसके शरीर के वातुमल नष्ट होगएहैं ऐसी तिस देवहूतिका वह शरीर ही,नदियोंमें श्रेष्ठ, सिद्धों से सेवित और सिद्धि देने वाली एक नदीरूप हुआ ॥ ३२ ॥ वह महायोगी भगवान् कपिलजी भी माताकी आज्ञा लेकर पिताके आश्रम से ईशान दिशा को चलेगए ॥ ३३ ॥ और तहां, सिद्ध,चारण,गन्धर्व, मुनितथा अप्सराओं के समूहों के स्तुति करने पर समुद्रने भी उन की स्तुति करके अपनेमें निवास करने को स्थान दिया ॥३४॥ तहां सांख्य शास्त्र के आचार्यों ने जिनकी स्तुति करी है ऐसेवह कपिलजी, त्रिलोकी के सकल प्राणियों को योगके अभ्याससे ज्ञान मोक्षकी प्राप्ति होनेके निमित्त एकाग्र चित्तसे समाधि लगाकर अबभी रहते हैं ॥ ३५ ॥ हेतात विदुरजी ! तुमने जो मनुका वंशआदि मुझसे बूझाथा सो सब मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णनकरा और उसके प्रसङ्ग से कपिल और देवहूति का पापनाशक सम्वाद भी कहा ॥ ३६ ॥ जो पुरुष आत्मयोग रूप (भगवान् के ध्यानरूप) सकल शास्त्रों के रहस्य इस महामुनि कपिलजी के उपदेश को प्रतिदिन सुनता है अथवा दूसरेको सुनाता है उसको गरुड़ध्वज भगवान की भक्ति प्राप्त होकर भगवान् के चरण कमलकी प्राप्ति होती है ॥३७॥ इतितृतीय स्कन्ध में त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि—मुरादाबादप्रवासिभारद्वाजगोत्र—गौड़वंश्य—श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान—विद्यालये प्रधानाध्यापक—सर्वतन्त्रस्वतन्त्र—महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोप—नामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषानुवादेन च सहितः तृतीयस्कन्ध समाप्तः ॥

समाप्तोयं तृतीयः स्कन्धः

अथ चतुर्थस्कन्धप्रारम्भः

श्रीगणेशाय नमः ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ १ ॥ आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ॥ पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥ प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ॥ मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३ ॥ यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ॥ या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी ॥ ४ ॥ आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषं । स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥ ५ ॥ तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ॥ तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६ ॥ तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शांतिरिडस्पतिः ॥ इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट्॥७॥ तुषिता नाम ते देवा आसन्स्वायंभुवांतरे ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः॥८॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तृणा-

मैत्रेयजी कहते हैं कि–हेविदुरजी ! स्वायंभुव मनुके शतरूपा स्त्री के विषैं आकृति, देवहूति और प्रसूति यह तीन कन्या तथा प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्नहुए ॥ १ ॥ तिन में आकूति नामक कन्या यद्यपि भ्राताओं से युक्त थी तथापि, मेरे बहुत से पुत्र हों ऐसी इच्छा वाले मनुजीने, शतरूपा स्त्री की सम्मति लेकर, पुत्रिकाधर्म के आश्रय से अर्थात्–'इस के जो पुत्र होगा वह मुझे देदेना' ऐसी जामाता से प्रतिज्ञा कराकर, वह रुचि ऋषिको दी ॥ २ ॥ तिन ब्रह्मतेजस्वी भगवान् प्रजापति रुचिने उत्तम प्रकार से ईश्वरकी आराधना करके तिसस्त्रीके विषैं एककन्या और एक पुत्रको उत्पन्नकरा ॥ ३ ॥ उन दोनोंमें जो पुरुष था वह यज्ञस्वरूप साक्षात् विष्णुभगवानही थे और जो स्त्री थी वह दक्षिणा नामवाली, कदापि विष्णुभगवान् से वियोग न पानेवाली लक्ष्मी का अंशावतार थी ॥ ४ ॥ चारों ओर जिसका प्रकाश फैलाहुआहै ऐसे, अपनी कन्याके पुत्र (यज्ञ)को स्वायम्भुव मनु बड़े आनन्दके साथ अपनेघर ले आये और रुचिने दक्षिणाको ग्रहण किया ॥ ५ ॥ वह कन्या दक्षिणा, विवाह के योग्य होकर पतिकी इच्छा करनेलगी, तब यज्ञपति विष्णुभगवान्ने वरलिया, तब वह सन्तुष्टहुई और उन्होंने भी सन्तोष पाकर उस के विषैं बारह पुत्र उत्पन्न करे ॥ ६ ॥ तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वन्ह, सुदेव और रोचन यह बारह थे ॥ ७ ॥ वह बारहों स्वायम्भुव मन्वन्तरमें तुषित नामक देवताहुए, मरीचि आदि सात ऋषि हुए, यज्ञनामक श्रीहरिका अवतार हुआ, देवताओंके अधिपति इन्द्रभी वही हुए ॥ ८ ॥ मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद

मनुरुक्तं तदंतरम्॥९॥देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः ॥ तत्संबंधि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ॥१०॥दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः॥ प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान्॥११॥याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः॥तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे॥१२॥पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा॥ कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥ १३ ॥ पूर्णिमासूत विरजं विश्वगं च परंतप ॥ देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥ १४ ॥ अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीन् जज्ञे सुयशसः सुतान् ॥ दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ किंचिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदां वरः ॥ सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥ १७ ॥ तस्मिन्प्रसूनस्तवकपलाशाशोककानने ॥ वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समंततः ॥ १८ ॥ प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः ॥ अतिष्ठदेक-

यह दोनों महाप्रतापी पुत्र उत्पन्नहुए और उन के पुत्र पौत्र तथा दौहित्रों (धेवतों) के वंश से तिस मन्वन्तर की रक्षाहुई ॥ ९ ॥ हेतात विदुरजी! मनुने अपनी दूसरी कन्या देवहूति कर्दमऋषि को दी, उनका चरित्र, मेरे कहतेहुए में तुम प्रायः सुनही चुकेहो ॥ १० ॥ तदनन्तर भगवान् मनुजीने, अपनी तीसरी प्रसूतिनामक कन्या दक्षनामक ब्रह्माजी के पुत्र को दी जिनदक्ष से बढ़ीहुई बहुतसी सन्तान त्रिलोकी में फैलीहुई है ॥ ११ ॥ मरीचि आदि ब्रह्मर्षियोंकी जो नौ स्त्री कर्दमजी की कन्या मैंने पहिले तुमसे कही थीं, उनकी पुत्र आदि सन्तान परम्परा मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ १२ ॥ कर्दमजीकी कन्या और मरीचि की स्त्री कला ने, कश्यप और पूर्णिमा नामक दो पुत्र उत्पन्न करे, जिन दोनोंके वंश से यह जगत् भराहुआहै ॥ १३ ॥ हे शत्रुतापन विदुरजी ! पूर्णिमाने, विश्वग और विरज यह दो पुत्र तथा देवकुल्या नामक कन्याको उत्पन्न करा, जो देवकुल्या श्रीहरिके चरणको धोनेकेकारण दूसरे जन्ममें स्वर्गकी नदी (गङ्गा) हुई ॥ १४ ॥ अत्रिऋषिकी स्त्री अनसूयाने विष्णु, शिव और ब्रह्माजी के अंश से, दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमा इन सुन्दर यशवाले तीन पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ विदुरजीने कहा कि-हे गुरो ! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण, देवताओं में श्रेष्ठ, ब्रह्मा, विष्णु और शिव किस कार्यवश अत्रिऋषि के घर प्रकटहुए थे सो मुझसे कहिये ? ॥ १६ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ अत्रिऋषिको सृष्टि रचने के निमित्त ब्रह्माजी के आज्ञा करनेपर वह तपस्या करने का निश्चय करके अपनी अनसूया नामक स्त्री के साथ ऋक्ष नामक कुलपर्वतपर चलेगये ॥ १७ ॥ और तहां निर्विन्ध्या नामकनदी के बहतेहुए जल से चारों ओर शब्दायमान पुष्पके गुच्छों से शोभित पलाश और अशोक के वनमें ॥ १८ ॥ वह

पादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः॥ १९ ॥ शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः॥ प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिंतयन् २० तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना ॥ निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥ २१ ॥ अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥ वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥ २२ ॥ तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ॥ उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥ ॥ २३ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः ॥ वृषहंससुपर्णस्थान् स्वैः स्वैश्चिन्हैश्च चिह्नितान् ॥ २४ ॥ कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलंभितान् ॥ तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥ २५ ॥ चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥ २६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ॥ ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वस्तेभ्यः क एव भगवतां म इहोपहूतः ॥ २७ ॥ एको मयेह भगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ॥ अत्रा-

अत्रिऋषि प्राणायाम के प्रभाव से अपने मनको वश में करके 'जो कोई जगदीश्वर है, उसकी मैं शरण हूँ, वह मुझे अपनीसमान सन्तान दें, ऐसा विचारकर शीत उष्ण और सुख दुःख आदि को सहते हुए केवल पवन का आहार करके सौ वर्षपर्यन्त एक चरणसे खडे रहे ॥ १९ ॥ २० ॥ तिस प्राणायाम रूप ईंधन से प्रज्वलित होकर अत्रिजी के मस्तक में से वाहर निकले हुए अग्निसे त्रिलोकी को ताप पातेहुए देखकर अप्सरा, ऋषि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर और सर्प जिनकी कीर्त्ति को गारहेहैं ऐसे ब्रह्मा विष्णु, महेश यह तीनों देवता, तिन अत्रिजीके आश्रममें आपहुँचे॥२१॥२२ उससमय एकाएकी समीप आयेहुए उनके प्रकट होनेसे जिनका मन प्रकाशयुक्त हुआहै ऐसे एक चरणसे खड़ेहुए उन अत्रिजी ने तिन श्रेष्ठदेवताओंको देखा।२३। वृषभ, हंस और गरुड़पर बैठेहुए, त्रिशूल कमण्डलु और चक्र आदि अपने २ चिन्हों की पहिचानवाले और हास्ययुक्त मुख से अपनी प्रसन्नताको प्रकट करनेवाले उन देवताओं को देखते ही, अत्रिजी ने भूमि पर दण्डकी समान नमस्कार करके, हाथ में पूजा की सामग्री लेकर उनकी पूजा करी, फिर वह ऋषि, उन देवताओं की कान्तिसे ज्योतिर्हीन हुए नेत्र मूँदकर ॥ २४ ॥ २५ ॥ अपना अन्तःकरण उनकी ओर को लगातेहुए हाथ जोड़कर सकल लोकों में श्रेष्ठ तिन देवताओंकी अर्थभरी मधुरवाणी से स्तुति करनेलगे ॥ २६ ॥ अत्रिजी ने कहा कि–हे देवताओं ! जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के कार्यों में भिन्न २ गुणों के द्वारा, प्रत्येक युग में भिन्न २ प्रकार की मूर्त्ति धारण करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश तुमही हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, मैंने यहाँ एककी ही स्तुति करीथी, वह तुममें से कौन से हैं सो कृपा करके मुझ से कहो ॥ २७ ॥ मैंने यहाँ अपने को पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छा से अनेकों प्रकारकी सामग्री

गतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूरी ब्रूत प्रसीदंत महानिह विस्मयो मे ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ॥ प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ यथा कृतस्ते संकल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ॥ सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन् यद्वै ध्यायति ते वयं ॥ ३० ॥ अथास्मदंशभूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुताः ॥ भवितारोऽग भद्रं ते विस्रप्स्यंति च ते यशः ॥ ३१ ॥ एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः ॥ सभाजितास्तयोः सम्यग्दंपत्योर्मिषतोस्ततः ॥ ३२ ॥ सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ॥ दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधांगिरसः प्रजाः ॥ ३३ ॥ श्रद्धा त्वंगिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः ॥ सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥ ३४ ॥ तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ उतथ्यो भगवान्साक्षात् ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥ ३५ ॥ पुलस्त्यो जनयत्पत्न्यामगस्त्यं

से एक ही भगवान् का चित्त में ध्यान किया था और सकल देहधारी प्राणियों के मन के भी अगोचर तुम तीनों यहां क्योंकर आकर प्राप्त हुए हो यह आप मुझपर प्रसन्न होकर कहिये, क्योंकि–इस विषय में मुझे बड़ा आश्चर्य प्रतीत होरहा है ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे समर्थ विदुरजी ! वह तीनों श्रेष्ठ देवता, उन ऋषि का ऐसा कथन सुनकर हँसे और मधुरवाणी में उन ऋषि से यह कहा ॥ २९ ॥ देवताओंने कहा कि–हे अत्रिजी ! तुमने जैसा मन में विचारा था तैसाही हुआ है उस के प्रतिकूल कुछ नहीं हुआ है क्योंकि–तुम सत्यसङ्कल्पहो, तुमने जिस एक जगदीश्वर तत्त्वका ध्यान किया था, वही हम तीनों हैं; हम तीनों में कुछभी भेद नहीं है ॥ ३० ॥ हे मुने ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे जगत् में प्रसिद्ध तीन पुत्र हमारे अंश से उत्पन्न होंगे, और वह तुम्हारी कीर्त्ति को फैलावेंगे ॥ ३१ ॥ इसप्रकार उन श्रेष्ठ देवताओं के अत्रि ऋषि को इच्छित वर देनेपर उन दोनों स्त्री पुरुषों ने उन का उत्तमप्रकार से पूजन करा, तदनन्तर वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तिन दोनों के देखतेहुए अपने २ स्थान को चलेगये ॥ ३२ ॥ तिन अत्रि ऋषि के, ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा, विष्णुभगवान् के अंश से योगशास्त्र में प्रवीण दत्तात्रेयजी और शिवजी के अंश से दुर्वासा ऋषि, यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए, अब उन ब्रह्माजी के तीसरे पुत्र अङ्गिरा ऋषि की सन्तान का वर्णन करते हैं ॥ ३३ ॥ अङ्गिरा ऋषि की स्त्री श्रद्धा ने, सिनीवाली, कुहू, राका और चौथी अनुमति यह चार कन्या उत्पन्न करीं ॥ ३४ ॥ तिन अङ्गिरा ऋषि के और दो पुत्र भी स्वारोचिष मन्वन्तर में प्रसिद्ध हुए, एक उतथ्य और दूसरे ब्रह्मज्ञानी भगवान् बृहस्पति ॥ ३५ ॥ ब्रह्मा जी के चौथे पुत्र पुलस्त्य ऋषिकी, हविर्भू नामक स्त्री के गर्भसे अगस्त्य और महातपस्वी विश्रवा यह दो पुत्र उत्पन्न हुए, तिनमें अगस्त्यजी दूसरे

च हविर्भुवि ॥ सोऽन्यजन्मनि दहाग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥ ३६ ॥ तस्य यक्षपतिर्देवः कुवेरस्त्विडविडासुतः ॥ रावणः कुंभकर्णश्च तथाऽन्यस्यां विभीषणः ॥ ३७ ॥ पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ॥ कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥ ३८ ॥ क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत ॥ ऋषीन् षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३९॥ ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप ॥ चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ४० ॥ चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च॥उल्वणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोऽपरे ॥४१॥ चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ॥ दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निवोध मे ॥ ४२ ॥ भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ॥ धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्परां ॥४३ ॥आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात् ॥ ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः ॥ कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना

जन्म में जठराग्नि हुए ॥ ३६ ॥ विश्रवा की इडविडा नामक स्त्री के उदर से जो पुत्रहुआ वही यक्षों के राजा कुवेर देवता हुए, तिन विश्रवा ऋषि की केशिनी नामक दूसरी स्त्री से रावण,कुम्भकर्ण और विभीषण,यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए॥३७॥हेमहाबुद्धिमान् विदुरजी ! ब्रह्माजी के पांचवें पुत्र पुलह ऋषि की पतिव्रता गति नामक स्त्री के,कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् और सहिष्णु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए॥३८॥ब्रह्माजी के छठे पुत्र क्रतु ऋषि की क्रिया नामक स्त्रीसे ब्रह्मतेज करके जाज्वल्यमान वालखिल्य नामक साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए॥३९॥ हे शत्रुतापन विदुरजी ! ब्रह्माजी के सातवें पुत्र वसिष्ठजी की ऊर्जा (अरुन्धती) नामक स्त्री के गर्भ से आचरण और मन की शुद्धि वाले चित्रकेतु आदि सात पुत्र उत्पन्न हुए, वही सात ब्रह्मर्षि (सप्तऋषि) हुए॥४०॥ चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण,वसुभृद्यान और द्युतिमान् दूसरीस्त्री से वसिष्ठजी के शक्ति आदि और पुत्र उत्पन्न हुए॥४१॥ ब्रह्माजी के आठवें पुत्र अथर्वा ऋषि की स्त्रीने, एक व्रतधारी दधीचि नामक पुत्र पाया, उस के कारणवश अश्विनीकुमारों ने घोड़े का शिर लगाया था अतः उसको 'अश्वशिरा' भी कहतेथे, अब ब्रह्माजी के नवें पुत्र भृगुजी का वंश कहाता हूँ सुनो॥ ४२ ॥ महाभाग भृगुजी ने, ख्यातिनामक स्त्री के विषें धाता और विधाता यह दो पुत्र तथा भगवान् की भक्त एक श्रीनामक कन्या को उत्पन्न करा ॥ ४३ ॥ उन दोनों को मेरु ऋषिने, अपनी आयति और नियति नामक दो कन्या दीं. उन दोनों कन्याओं ने तिन दोनों ऋषियों से मृकण्ड और प्राण इन दो पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ ४४ ॥ मृकण्ड के मार्कण्डेयहुए प्राणकेपुत्र वेदशिरा नामक मुनिहुए, भृगुजी के और एक कविनामक पुत्रथे, जिन कविका

सुतः ॥ ४५ ॥ सर्वे ते मुनयःक्षत्तर्लोकान्सर्गैरभावयन् ॥ एष कर्दमदौहित्र-सन्तानः कथितस्तव ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥ ४६ ॥ प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥ तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥ ॥ ४७ ॥ त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥ पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥ ४८ ॥ श्रद्धा मैत्री दया शांतिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्त्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥ ४९ ॥ श्रद्धाऽसूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया ॥ शांतिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥ ५० ॥ योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ॥ मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥ ५१ ॥ मूर्त्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥ ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनंदत्सुनिर्वृतम् ॥ ५२ ॥ मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः ॥ दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ५३ ॥ मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥ नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममंगलं ॥ देवा ब्रह्मादयः

ज्ञानवान् उशाना (शुक्र) नामक पुत्रहुआ ॥ ४५ ॥ हेविदुरजी ! उन इन सकल मुनियों ने, अपनी २ पुत्र पौत्र आदि सन्तान परम्परा से त्रिलोकी को भरदिया. यह कर्दम ऋषि के दौहित्र (पुत्री के पुत्र) की सन्तान मैंने तुमसे कही यह उत्तम वर्णन, श्रद्धाके साथ सुननेवाले पुरुष के पातकों को तत्काल दूर करदेता है, ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी के दक्षनामक पुत्र ने, स्वायम्भुव मनु की तीसरीकन्या प्रसूति के साथ विवाह करा उन विभु दक्ष ने, उस प्रसूति के विषैं कमलनयनी सोलह कन्या उत्पन्न करीं, ॥ ४७ ॥ उन में से तेरह कन्या धर्म को दीं. तथा एक अग्नि को दी एक इकट्ठेहुए सकल पितरों को दी. तथा एक जन्ममरणरूप संसार को दूर करनेवाले शिवजी को दी ॥ ४८ ॥ श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री और मूर्ति यह तेरह धर्मकी स्त्री थीं. उन में से श्रद्धा ने शुभको, मैत्रीने प्रसादको, दयाने अभय को, शान्ति ने सुख को, तुष्टि ने आनन्द को, पुष्टिने गर्व को, क्रियाने योग को, उन्नतिने अहङ्कार को, बुद्धिने अर्थ को, मेधा ने स्मृति को, तितिक्षाने क्षेमको और ह्री ने विनय को, इसप्रकार वारह के वारहपुत्र उत्पन्न हुए, और सकल गुणोंकी उत्पत्ति स्थान मूर्ति ने नर और नारायण ऋषि को उत्पन्न किया उन के जन्मसमयमें यह विश्व, उत्साह में निमग्न होकर परम आनन्दको प्राप्त हुआ॥४९॥५०॥५१॥५२॥लोकोंके मन और दिशा प्रसन्नहुईं,शान्तपवन चलनेलगे, नदियों के जल स्वच्छ होगए, पर्वतोंने भी अपने भीतर के रत्न प्रकट करके प्रसन्नता दिखाई स्वर्ग में वाजे वजनेलगे, तहाँसे भूमिपर पुष्पों की वर्षा होने लगी, ॥ ५३ ॥ मुनिगण सन्तोष पाकर उन नर नारायण की स्तुति करनेलगे, गन्धर्व और किन्नर, भगवान्

सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥ ५४ ॥ देवा ऊचुः ॥ यो मायया विरचितं नि-
जयात्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ॥ एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्ति-
नाद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥ ५५ ॥ सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपश-
माय सृष्टान् सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन
यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपतारविन्दम् ॥ ५६ ॥ एवं सुरगणैस्तात भगवन्तावभि-
ष्टुतौ ॥ लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गन्धमादनम् ॥ ५७ ॥ ताविमौ वै भगवतो
हरेरंशाविहागतौ ॥ भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥५८॥ स्वाहा-
ऽभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् ॥ पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनं
॥ ५९ ॥ तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ त एवैकोनपञ्चाशत्साकं
पितृपितामहैः ॥ ६० ॥ वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आग्नेय्य

का यश गानेलगे देवाङ्गना नृत्य करनेलगीं, चारों ओर ऐसा परममङ्गल होनेपर ब्रह्मा आदि सकल देवता नूतन स्तोत्रों से उन नर नारायण की स्तुति करनेलगे ॥ ५४ ॥ देवता बोले—आकाशमें वायुसे उड़ते हुए बादलोंके खण्डों में मनुष्य, जैसे २ घोड़े हस्ती आदि की कल्पना करता है, तैसे २ वह पदार्थ उसको भासने लगते हैं उसी प्रकार जिस परमेश्वरने, अपनी माया से आत्मस्वरूप के विषैं इसजगत् को रचा है, और उस आत्मा का प्रकाश होनेके निमित्त धर्मऋषिके यहां तिस ऋषिरूपसे आज यह अवतार प्रकट हुआ है तिस अन्तर्यामी पुरुष को हम प्रणाम करते हैं ॥ ५५ ॥ जिसके तत्त्व का शास्त्र के द्वारा भी केवल अनुमानही कियाजाता है, प्रत्यक्ष नहीं जानाजाता, वही यह भगवान् लक्ष्मी के निवासस्थान कमल को भी सुन्दरता से पीछे करने वाले अपने पूर्ण कृपादृष्टि युक्त नेत्रकमल से, जगत् की मर्यादा की रक्षा करने के निमित्त सत्वगुण से उत्पन्न करेहुए हम देवताओं की ओर देखें ॥ ५६ ॥ हे विदुरजी! इसप्रकार देवगणों से स्तुति करेहुए तिन भगवान् नरनारायण ने देवताओंकी ओर को देखा, तदनन्तर देवताओं से पूजित वह - नरनारायण तपस्या करने के निमित्त गन्धमादन पर्वत पर चलेगये ॥ ५७ ॥ वही यह भगवान् श्रीहरि के अंश नरनारायण, पृथ्वी का भार दूर करने के निमित्त यादव और कौरवों के कुलमें अवतार धारकर दोनोंही कृष्णनामक कृष्ण अर्जुन यहां आये हैं ॥ ५८ ॥ अग्नि की पत्नी स्वाहा के पावक, पवमान और शुचि यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए; यह तीनो अग्नि के अभिमानी देवता हैं और होम की सामग्री का भक्षण करते हैं ॥ ५९ ॥ उनसे पैंतालीस प्रकारका अग्नि उत्पन्न हुआ है, वही अग्नि तीन पितर और एक पितामह मिलकर उनचास होते हैं ॥ ६० ॥ वेद को जाननेवाले पुरुष, यज्ञकर्म में, जिन उनचास अग्नि के नामों से प्रसिद्ध आग्नि

इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ॥ ६१ ॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः ॥ साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥ ६२ ॥ तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ॥ उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥ ६३ ॥ भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता ॥ आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥ ६४ ॥ पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ॥ अप्रौढैवात्मनात्मानमजहाद्योगसंयुता ॥ ६५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विदुरमैत्रेयसम्वादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ७ ॥ ७ ॥ ७ ॥ विदुर उवाच ॥ भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीं ॥ १ ॥ कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शांतविग्रहम् ॥ आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥ २ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्जामातुः श्वसुरस्य च ॥ विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥ ३ ॥ मैत्रे-

देवतादिक इष्टियें करते हैं, वही यह अग्नि थे अग्नि लौकिक नहीं थे ॥ ६१ ॥ अग्निष्वात्त (इस लोक में केवल स्मार्त्त कर्म करके पितर योनि को प्राप्त हुए), बर्हिषद्(इस लोक में अग्नि होम आदि यज्ञ करके पितर योनि को प्राप्तहुए) सोमप (यज्ञमें सोमपान करने वाले), आज्यप (यज्ञ में घृतपान करनेवाले), साग्निक (जिनका श्राद्ध के समय में अग्नौकरण है) और निराग्निक (जिन का अग्नौकरण नहीं है) इन सब पितरों की पत्नी दक्षकी कन्या स्वधा हुई ॥ ६२ ॥ तिन पितरों से स्वधाने, वयुना और धारिणी यह दो कन्या उत्पन्न करीं; वह दोनों ही ब्रह्मज्ञान का उपदेश करनेवाली और शास्त्र के तथा अनुभव के दोनों प्रकार के ज्ञानमें पारगामी थीं, इसकारणही उनकी आगे को सन्तान नहीं चली ॥ ६३ ॥ दक्षकी कन्या शङ्कर की स्त्री सती, गुणों से तथा स्वभाव से अपने योग्य महादेवजी की सेवा में सदा तत्पर रही तबभी उसके पुत्र नहीं हुआ ॥ ६४ ॥ उसने, विना अपराधही महादेवजी से मेरे पिता दक्ष प्रतिकूल हैं, ऐसा देखकर, तिसके क्रोध से कौमार अवस्थाओं में ही योगसमाधि लगाकर आपही अपने शरीर को त्यागदिया॥ ६५ ॥ इति चतुर्थ स्कन्ध में प्रथम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ *॥ विदुरजी ने कहा कि-हे ऋषे ! कन्या के ऊपर प्रीति करनेवाले दक्ष ने, अपनी सतीनामक कन्या का अनादर करके, सुशील पुरुषों में अग्रणी महादेवजी से किसकारण अत्यन्त द्वेष किया था ? ॥ १ ॥ शिवजी के माहात्म्य का कहांतक वर्णन करें ? जो स्थावर जङ्गमरूप विश्व के गुरु, वैरभावरहित, केवल शान्तस्वरूप, आत्मस्वरूप में रमण करनेवाले और जगत् के परमपूजनीय देवता हैं ऐसे शिवजी से दक्ष ने द्वेष कैसे किया ? ॥ २ ॥ सो हे ब्रह्मन् ! जिसकारण सती ने, जिन का त्यागना कठिन है ऐसे प्राणों को भी त्यागदिया; जामाता और श्वसुर का परस्पर ऐसा द्वेष होने का क्या कारण हुआ ? सो मुझ से कहो

ये उवाच ॥ पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः ॥ तथाऽमरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥ ४ ॥ तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वार्कमिव रोचिषा ॥ भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तन्महत्सदः ॥ ५ ॥ उदतिष्ठन्सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः ॥ ऋते विरिञ्चं शर्वं च तद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥ ६ ॥ सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान्साधु सत्कृतः ॥ अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥ ७ ॥ प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः ॥ उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥ ८ ॥ श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ॥ साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥ ९ ॥ अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ॥

॥ ३ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि—पूर्वकाल में, मरीचि आदि जगत् के रचयिता ऋषियों के सत्र में, अपने सेवकोंसहित सकल महर्षि, देवता, मुनि और अग्नि यह सब एक स्थानपर इकट्ठे हुए थे ॥ ४ ॥ तिस सभा में को आतेहुए सूर्यकी समान प्रकाशवान् तथा अपने तेजसे उस विशाल सभा के चारोंओर के अन्धकार को दूर करनेवाले दक्ष को देखकर उन की कान्ति से चकित हुए वह सकल ऋषि, अग्नि और सभासद, ब्रह्माजी और शिवजी के सिवाय एकसाथ अपने२आसनोंपर से उठ खड़ेहुए। ५॥६॥ इसप्रकार सभासदों से उत्तम प्रकार सत्कारकरेहुए वह भगवान् दक्ष लोकोंके गुरु ब्रह्माजीको नमस्कार करके,उनकीआज्ञा से अपने आसनपर बैठगये ॥७॥ तदनन्तर पहिले ही बैठेहुए शिवको देखकर 'इन्होंने उठकर मेरा सत्कार नहीं किया' यह देखते ही वह वर्त्ताव दक्षको सह्य नहीं हुआ सो उन्होंने उसी समय अपनी वामकहिये वक्रदृष्टि (स्तुतिपक्षमें वामकहिये सुन्दर दृष्टि) से शिवजीकी ओर को देखकर उनको मानो दहन् कहिये भस्म करेदेतेहैं (स्तुतिपक्ष में दहन् कहिये मानो अपने क्रोधसे अपने को ही भस्म करेदेते हैं) ऐसे क्रोधमें होकर उनसे कहनेलगे*॥८॥ अहो ! ब्रह्मर्षि, देवता और अग्नि आदि सकल सभासदों ! अज्ञान से वा मत्सरता(देख जलनेपन) से, न कहकर मैं सज्जनों के वर्त्तावके विषय में कहता हूँ अतः उस मेरे कहने को तुम सुनो ॥ ९ ॥ यह निरपत्रप कहिये निर्लज्ज (स्तुतिपक्ष में निरपत्रप कहिये अद्वैतरस में निमग्न होने के कारण लोकलज्जा से रहित) शङ्कर तो इन्द्रादि लोकपालों के यशोघ्न कहिये यशका नाश करनेवाला (स्तुतिपक्ष में यशोऽघ्न कहिये अपने पराक्रम से इन्द्रादिलोकपालों के यशका नाश करनेवाला) है, क्योंकि—स्तब्ध कहिये उचित वर्त्ताव को त्याग गर्व से फूलेहुए (स्तुतिपक्ष में स्तब्ध कहिये ब्रह्मस्वरूप) इसने आज मेरा अपमान करके साधु पुरुषों का आचरण कराहुआ मार्ग दूषित (स्तुतिपक्षमें दूषित

* यहां शिवजी की निन्दा करने के निमित्त दक्षने, अपनी उच्चारण करीहुई वाणी से उनकी वास्तवमें स्तुतिही करी है अतः स्तुतिपक्ष का अर्थ भी लिखदिया है ।

सद्भिराचरितः पन्थां येन स्तब्धेन दूषितः ॥ १० ॥ एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ॥ पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥ ११ ॥ गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाऽप्यकृत नोर्चितम्॥१२॥ लुप्तक्रियायाशुचये मानिने भिन्नसेतवे ॥ अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥ १३ ॥ प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ॥ अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥ १४ ॥ चिताभस्मकृतस्नानः प्रेत-

कहिये स्वयं अचल होनेके कारण उठने आदि को अस्वीकार) कियाहै ॥१०॥ इसने साधु पुरुषकी समान,सावित्रीकी तुल्य योग्य मेरी का ब्राह्मणोंके और अग्निके समक्ष पाणिग्रहण कियाहै अतः यह मेरे शिष्यत्व कहिये छोटेपन को (स्तुतिपक्षमें अशिष्यत्व कहिये वन्दनीयपने को) प्राप्तहुआ है ॥ ११ ॥ मर्कटलोचन कहिये जिस के नेत्र वानर की समान हैं (स्तुति पक्ष में मर्कट लोचन कहिये विषयासक्त पुरुषों का उद्धार कैसे होगा यह देखनेवाले) इसने मृगशावक की समान सुन्दर नेत्रोंवाली मेरी कन्या का पाणिग्रहण (विवाह) करके उठकर सत्कार करना और नमस्कार करना आदि शिष्टाचार के योग्य जो मैं तिस का केवल शब्दमात्रसे भी सत्कार नहीं किया,यह इस को योग्य नहीं था ॥१२॥ अहो ! क्या करूँ? लुप्तक्रिय कहिये क्रियाभ्रष्ट (स्तुतिपक्ष में लुप्तक्रिय कहिये सकल क्रियारहित), अशुचि कहिये अपवित्र (स्तुतिपक्ष में अशुचि कहिये अत्यन्त पवित्र), मानी कहिये अभिमानी (स्तुतिपक्ष में अमानी कहिये निरभिमानी), और भिन्नसेतु कहिये मर्यादा को तोड़कर वर्त्ताव करनेवाले (स्तुतिपक्ष में अभिन्नसेतु कहिये मर्यादा का उल्लङ्घन न करनेवाले) इस को अनिच्छन् कहिये कन्या देने की इच्छा नहीं होने पर भी (स्तुतिपक्ष में अनिच्छन् कहिये यह ईश्वरहैं जाने मेरी कन्याको ग्रहण करेंगे या नहीं?ऐसी चिन्ताके कारण देने की इच्छा न करतेहुए)जैसे कोई किसी शूद्रको वेदवाणी देताहै(स्तुतिपक्षमें जैसे कोई पुरुष,शूद्र+ कहिये ज्ञानभक्ति आदि के उपदेश से शोकको दूर करनेवाले योग्य पुरुषको वेदवाणी देता है) तैसे मैंने इसको अपनी सुन्दर कन्या दी है ॥ १३ ॥ भयङ्कर श्मशानभूमि में भूतगण और प्रेतगणों से घिराहुआ यह केश खोलकर नग्न हो उन्मत्तवत् कहिये उन्मत्त की समान (स्तुतिपक्ष में उन्मत्तवत् कहिये वास्तव में उन्मत्त नहीं किन्तु केवल उन्मत्त की समान वर्त्ताव करके दिखानेवाला) हँसता और रुदन करताहुआ फिरता है ॥ १४ ॥

+ स्तुतिपक्ष में शूद्र शब्द जातिवाचक नहीं है किन्तु यौगिक है "शुचं शोकं कृपया ज्ञानभक्त्याद्युपदेशेन द्रावयतीति शूद्रः" अर्थात्–कृपा और ज्ञान भक्ति के द्वारा शोक को दूर करनेवाला शूद्र शब्द का अर्थ है " पृषोदरादि गण " के अनुसार चकार का लोप और उकार को दीर्घ होकर यह शूद्र शब्द सिद्ध होता है ॥

स्रङ् न्रस्थिभूषणः ॥ शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः ॥ पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनां ॥ १५ ॥ तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ॥ दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विनिन्द्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ॥ दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥ १७ ॥ अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः ॥ सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥ १८ ॥ निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापं ॥ तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनं

यह चिता की भस्म से स्नान करेहुए रहता है कण्ठ में प्रेतों की माला धारण करे रहता है (स्तुतिपक्ष में भी यह ठीक ही है क्योंकि-योगी को अपनी ऐसी ही दशा संसार को दिखाना लिखा है जिस से किसी का संग न होय) मनुष्यों की अस्थियें ही इस का आभूषण हैं, इस का नाम शिव है परन्तु वास्तव में यह अशिव कहिये अमङ्गलरूप है (स्तुति पक्ष में अशिव कहिये इन से दूसरा कोई कल्याण करनेवाला नहीं है) यह स्वयं मत्त कहिये मतवाला सा (स्तुतिपक्ष में अमत्त कहिये सावधान) है, और इस को मत्त कहिये उन्मत्त (स्तुतिपक्ष में अमत्त कहिये सुन्दर स्वभाववाले) पुरुष इस को प्रिय हैं, यह केवल तमोगुणी स्वभाव वाले प्रमथभूतगणों का अधिपति है ॥ १५ ॥ ऐसा होने पर भी सकल लोकों के अधिपति ब्रह्माजी ने मुझे आज्ञा दी इसकारण मैंने अपनी सुशीला कन्या, इस नष्टशौच कहिये पवित्रतारहित (स्तुतिपक्षमें नष्टशौच कहिये पतितपुरुषों को भी पवित्र करनेवाले) और दुर्हृद कहिये दुष्टचित्त (स्तुतिपक्षमें दुर्हृद् कहिये दुष्ट पुरुषों के विषयमेंभी 'यह मेरे दया करने योग्यहैं, ऐसा जिनका हृदय है) इस भूतपति (स्तुतिपक्ष में सकलप्राणियोंके पति) को देखो! मैंने अपनी कन्या देदी ! यह बत कहिये बड़े खेदकी बात है (स्तुतिपक्षमें बत कहिये परमेश्वर को मैंने अपनी कन्या दी यह बड़े आनन्दकी वार्त्ता है ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! ऐसे, किसीप्रकारभी प्रतिकूल न होकर मौन बैठेहुए शिवजी की तिन दक्षप्रजापतिने निन्दा करके क्रोधमें हो जलका आचमन करके उन शिवजी कोशाप देने को उद्योग किया॥१७॥ कि–यह शिव देवगणाधम कहिये सकल देवताओंमें अधम (स्तुतिपक्ष में देवगणाधम कहिये जिसके अपेक्षा सकल देवता न्यूनशक्ति वाले हैं ऐसा)है अतः इसको देवयज्ञ में,इन्द्र विष्णु आदि देवताओंके साथ हविर्भाग न मिले (स्तुतिपक्ष में भी वही अर्थ कि–इन को इन्द्र विष्णुआदि देवताओं के साथ यज्ञ का भाग न मिले क्योंकि–यह सब से आगे भाग पानेयोग्य हैं) ॥ १८ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हेविदुरजी ! उससमय चारों ओर से सभामें के मुख्य सभासदोंके, दक्ष प्रजापति को निषेध करनेपरभी वह शिवजी को शाप देकर अति क्रुद्ध होतेहुए तिस

॥ १९ ॥ विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ॥ दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ।२०॥ य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ॥ द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥ २१॥ गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ॥ कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ॥ ॥२२॥ बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ॥ स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥ २३ ॥ विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ॥ संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥ २४ ॥ गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा ॥ मथ्ना चोन्मथितात्मानः संमुह्यन्तु हरद्विषः ।२५। सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः ॥ वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्विह ॥ २६ ॥ तस्यैवं वदतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ॥ भृगुः प्रत्य-

सभामण्डप में से निकलकर चलेगये ॥ १९ ॥ इधर शिवजी के सेवकों में श्रेष्ठ नन्दीश्वर ने उस शाप को सुनतेही क्रोध के आवेश से नेत्रों को लाल २ करके दक्ष प्रजापति को और उन की करी हुई शिवजी की निन्दा को जिन्होंने सराहाथा तिन ब्राह्मणों को भयङ्कर शाप दिया ॥२०॥ जो मूर्ख दक्ष, 'मेरा यह नाशवान् शरीर ही श्रेष्ठ है ' ऐसा मानकर, किसीसे भी द्रोह न करनेवाले शिवजीसे द्रोह करताहै, इसकी भेददृष्टिही बनी रहेगी, इसको कभी तत्त्व ज्ञान नहीं होगा॥२१॥कि–जोयह मूर्ख दक्ष ! कपटयुक्त आचारवाले गृहस्थाश्रम में तुच्छ विषय सुख की इच्छा से गुँथे रहकर, वेदों के 'चातुर्मास्य यज्ञ करने वाले को अक्षय पुण्य प्राप्त होता है, ऐसे कर्म की प्रशंसा करनेवाले वाक्यों से, इस की बुद्धि नष्ट होजाने के कारण यह कर्मों के ही समूह को फैलाता रहता है ॥ २२ ॥और इसकी बुद्धि को ' देहही आत्मा है ' ऐसा मानने का नित्य अभ्यास होने के कारण यह आत्मा को भूलकर पशुकी समान होगयाहै अत यह अत्यन्त स्त्रीलम्पट होगा और इस दक्षका शीघ्र ही बकरे की समान मुख होजायगा ॥ २३ ॥ इसको यही शापदेना योग्य है, क्योंकि–यह अपनी बुद्धिसे कर्मकाण्डरूप अज्ञान को ही तत्त्वज्ञान समझताहै इसकारण यह मूर्ख है, इस सभा में शिवजी का अपमान करनेवाले इसकी जिन ब्राह्मणों ने सराहना करी है वहभी जन्ममरणरूप संसारको प्राप्त हों ॥ २४ ॥ कर्ममार्गकी स्तुति करनेवाले वाक्यरूप पुष्पोंसे प्रफुल्लित हुई वेदवाणीरूप लताके, मनको क्षोभित करनेवाले कर्मफलरूप बड़ेभारी मधुगन्ध से इनका चित्त मोहित होरहा है इसकारण ही शिवजी से द्वेष करनेवाले यह ब्राह्मण, तैसेही कर्म करने में आसक्त रहें अर्थात् इनको मोक्ष की प्राप्ति न होय ॥२५॥ यह ब्राह्मण भक्ष्य अभक्ष्य के ज्ञान से रहित होकर देह आदिका पोषण करने के निमित्त विद्या, तप और व्रत को धारण करनेवाले; द्रव्य, शरीर और इन्द्रियों में ही परमसुखमान कर निमग्न रहनेवाले तथा याचना करनेवाले भिक्षुक) होकर इस पृथ्वीपर विचरें॥२६॥

सृजंश्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ॥ २७ ॥ भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः ॥ पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥ २८ ॥ नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः ॥ विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥ २९ ॥ ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ ॥ सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः ॥ ३० ॥ एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः ॥ यं पूर्वे चानुसन्तस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥ ३१ ॥ तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ॥ विगर्ह्य यात पाखण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान् भवः ॥ निश्चक्राम ततः किञ्चिद्विमना इव सानुगः ॥ ३३ ॥ तेपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् ॥ संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥ ३४ ॥ आप्लुत्यावभृथं यत्र गंगा यमुनयान्विता ॥

मैत्रेयजी कहतेहैं कि–हे विदुरजी ! इसप्रकार ब्राह्मणों के कुल को शाप देनेवाले तिस नंदिकेश्वर के कथन को सुनकर, भृगुऋषि ने, बदले में शिवजी के भक्तोंको दुस्तर शापदिया ॥२७॥ कि जो कोई शिवजी के व्रतों को धारण करनेवाले वा उनके अनुयायी हैं वह सब सत्शास्त्रों के शत्रु पाखण्डी हों ॥ २८ ॥ जिस शिवजी की दीक्षामें, गुड़से उत्पन्नहुई, पिष्ठी से उत्पन्नहुई और मधुसे उत्पन्न हुई सुरा वा ताल आदि वृक्षों से उत्पन्न हुआ मद्य यही देवताओंकी समान पूजनीय माने हैं तिस शिवदीक्षा में पवित्रता रहित, अज्ञानी और शरीरपर जटा, भस्म तथा हाड़ धारण करनेवाले पुरुष प्रवेश करें ॥ २९ ॥ अरे ! तुम जो, वर्ण, आश्रम और इनसे युक्त पुरुषों के धर्म को धारण करनेवाले वेदकी, तथा वेदकी आज्ञाके अनुसार रहनेवाले ब्राह्मणोंकी निन्दाकरतेहो इसकारण तुमने पाखण्डकाही आश्रय किया है ॥ ३० ॥ अरे अधिक क्या कहूँ ! जिसका मूलकारण विष्णु भगवान्हैं और पूर्वकाल के ऋषियोंने भी जिसमार्ग का आश्रय किया है ऐसा यह सनातन वैदिकमार्गही सकल लोकों का कल्याण करनेवाला है ॥ ३१ ॥ तिस अत्यन्त शुद्ध और सज्जनोंके सनातन मार्ग वेदकी, निन्दा करने के कारण तुम अब, जहाँ भूतपति ही मुख्य देवताहैं ऐसे वेदविरुद्ध पाखण्डमार्ग में विचरो ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! इसप्रकार उन भृगु ऋषि के शाप देनेपर, अनुचरमण्डली सहित वह रुद्र भगवान् 'इस परस्पर शाप देने से परस्पर का नाश होता है ऐसा चित्त में आने के कारण' कुछएक खिन्न से होकर तिस सभा में से निकलकर चलेगये ॥ ३३ ॥ हे महाधनुर्धारी विदुरजी ! सृष्टि को रचनेवाले तिन प्रजापतियों ने भी जहाँ सब में श्रेष्ठ श्रीहरि पूजनीय हैं ऐसे उस अपने सहस्रवर्ष में पूर्ण होनेवाले सत्रको समाप्त करके, जहां गङ्गा यमुनाका सङ्गम हुआहै तिस प्रयागक्षेत्रमें अवभृथ (यज्ञके अन्तका) स्नानकरा तदनंतर वह सब ऋषि और मुनि मन और शरीरसेनिर्मलहोतेहुए

विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥ ३५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः ॥ जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥ १ ॥ यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥ २ ॥ इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च ॥ बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः ॥ आसन्कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥ ४ ॥ तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ॥ सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ ५ ॥ व्रजतीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ॥ विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥६॥ दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः ॥ पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥ ७ ॥ सत्युवाच ॥ ६ ॥ प्रजापतेस्ते श्वसुरस्य सां-

तहां से अपने२स्थानको चलेगये॥३४॥३५॥इति चतुर्थस्कन्धमें द्वितीय अध्यायसमाप्त॥*॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हेविदुरजी ! इसप्रकार निरन्तर द्वेष भावसे वर्त्ताव करनेवाले तिन श्वसुर (दक्ष) और जामाता (महादेवजी) को बहुत काल वीतगया ॥ १ ॥ जिसमें महादेवजी का भाग नहीं वह यज्ञ ही नहीं, परन्तु दक्षने, द्वेष और गर्वसे महादेवजी को त्यागदिया था, तिस में द्वेष का कारण मैं पहिले अध्याय में तुम से कहचुका हूँ, अब गर्व का कारण कहता हूँ, सुनो ! जब परमेष्ठी ब्रह्माजी ने दक्षका सकल प्रजापतियों के आधिपत्य में अभिषेक किया तब उन को गर्व होगया ॥ २ ॥ इसकारण उन्होंने महादेवजी आदि ब्रह्मज्ञानियों का तिरस्कार करके अर्थात् उन को यज्ञ में विनाबुलाए और हविका भाग विनादिये ही शास्त्र की आज्ञाके अनुसार प्रथम वाजपेय यज्ञ करके तदनन्तर बृहस्पति सव नामक उत्तम यज्ञके करने का प्रारम्भ किया ॥३॥ तिस यज्ञ में दक्ष ने,सकल ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर और देवताओं का दक्षिणा आदि देकर उत्तमता से सत्कार किया और उनकी स्त्रियों कीभी, वस्त्र आभूषण आदि देकर पतियों के साथ में पूजा करी॥४॥ उससमय तिस यज्ञ के विषय की कुछ बातचीत आकाश में देवताओं के परस्पर करतेहुए, दक्षकन्या सती देवी ने, 'मेरे पिता के यहां यज्ञ का बड़ाभारी उत्सव होरहाहै, ऐसा सुना ॥ ५ ॥ और सकल दिशाओं में से गन्धर्व आदि श्रेष्ठ उपदेवताओं की,कमलनयनी स्त्रियों को, कण्ठ में जुगनी आदि भूषण और कानों में दमकतेहुए कुण्डल धारण करके, बहुमूल्य वस्त्र पहिनकर तथा पतियों के साथ विमानों पर बैठकर अपने घर के समीप को होकर जातीहुई देखतेही, सती के मन में उधरजाने की उत्कण्ठा हुई और वह अपनेपति भूतनाथ महादेवजी से कहने लगी ॥६॥७॥ सतीने कहा कि–हेनाथ ! इससमय तुह्मारे

भवत निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ॥ वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थितामी विबुधा व्रजन्ति हि ॥ ८ ॥ तस्मिन्भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः ॥ अहं च तस्मिन्भवताऽभिकामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥९॥ तत्र स्वसॄर्मे ननु भर्तृसंमिता मातृष्वसृः क्लिन्नधियं च मातरम् ॥ द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमना महर्षिभिरुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ॥ १० ॥ त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ॥ तथाऽप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥ ११ ॥ पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितोऽप्यलंकृताः कान्तसखा वरूथशः ॥ यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं नभो विमानैः कलहंसपाण्डुभिः ॥ १२ ॥ कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ॥ अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं

श्वसुर दक्ष प्रजापति के यहां यज्ञ का बड़ाभारी उत्सव हो रहाहै, यह समाचार सत्य है, यदि आप की इच्छा होय तो मैं भी उधरजाऊँ, अभी वह यज्ञ पूर्ण नहींहुआ है, क्योंकि यह सकल देवता चलेजारहे हैं ॥ ८ ॥ तहां मेरी बहिनें अपनों से मिलने के निमित्त अपने पतियों सहित जायँगी ही, कदापि इस अवसर पर नहीं चूकेंगी, मेरीभी इच्छा है कि मैं आपके साथ तहाँ जाकर माता पिता के दियेहुए वस्त्र आभूषण आदि को आप के साथ स्वीकार करूँ ॥ ९ ॥ हेसुखकारी स्वामिन् ! अपने पतियों के योग्य मेरी बहिनें, मौसियें और मुझे देखतेही प्रेम से विह्वल होनेवाली अपनी माता को देखने के निमित्त मेरा चित्त बहुत दिनों से उत्कण्ठित होरहा है, सो मैं तहां सब को देखूँगी और बड़े २ ऋषियों के रचेहुए उत्तम यज्ञ का उत्सव तथा खड़ीहुई यज्ञ की ध्वजा देखने को मिलेगी, यह भी कैसा आनन्द होगा ॥ १० ॥ हेअजन्मा प्रभो ! यह आश्चर्य कारी त्रिगुणमय जगत्, तुम्हारे विषें तुम्हारी माया का रचाहुआ दीखरहा है,इसकारण तुम्हें उस यज्ञ को देखने से विशेष आनन्द नहीं होगा,यह ठीकहै तथापि हेशङ्कर ! मैं उत्कण्ठित स्वभाव वाली स्त्री होनेके कारण तुह्मारे स्वरूपको न जाननेवाली दीनहूँ अतः मुझे अपनी जन्मभूमिको देखनेकी इच्छाहुईहै। ११। हे नाथ! तुम अभवहो अर्थात् तुम्हारा जन्म नहींहुआ इसकारण तुम नहीं जानतेहो कि-स्वजनवियोग कैसा दुःखद है,देखो ! जिनका दक्षसे कुछ सम्बन्ध नहींहै ऐसी और स्त्रियोंके झुण्डके झुण्ड उत्तम आभूषण धारणकरके अपने पतियोंके साथ दक्षके यज्ञ में को जारहे हैं; हे दयालो ! नीलकण्ठ ! उन स्त्रियों के आकाश में को जाते हुए राजहंसों की समान शुभ्र विमानों से देखो ! आकाश की कैसी शोभा होरही है ॥ १२ ॥ पिता के घर होतेहुए आनन्द के उत्सव का वृत्तान्त सुनकर कन्या का शरीर, उसको देखनेके निमित्त जाने की चेष्टा क्यों नहीं करेगा ! अर्थात् करेगाही, यदि कहो कि-बुलाये विना

भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ १३ ॥ तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वांछितं कर्तुं भ-
वान्कारुणिको बताऽर्हति ॥ त्वयात्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपिता माऽनु-
गृहाण याचितः ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं गिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः
प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन्सुहृत्प्रियः ॥ संस्मारितो मर्मभिदः कुवागिषून्यानाह को
विश्वसृजां समक्षतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयोदितं शोभनमेव शो-
भने अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ॥ ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसा-
ऽनात्म्यमदेन मन्युना ॥ १६ ॥ विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भि-
रसत्तमेतरैः ॥ स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशस्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसां ॥
॥ १७ ॥ नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान्प्रतीयादनवस्थितात्मनां ॥ ये-
ऽभ्यागतान्वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥ १८ ॥ तथाऽरि-

नहीं जाना चाहिये सो हे नाथ ! जो सत्पुरुष होते हैं वह, मित्रों के, रक्षकों के, गुरुजनों के और माता पिताके घर विना बुलाये भी चलेजातेहैं ॥ १३ ॥ अतः हे देव ! आपप्रसन्न हूजिये, तुम दयालु होने के कारण मेरी याचना को पूर्ण करने के योग्य हो क्योंकि-परम ज्ञानी होकर भी तुमने मुझे अपने शरीर के आधेभाग में स्थान दिया है, इसकारणही, 'अर्द्धनारी नटेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हो, सो मेरी याचना को स्वीकार करके मुझे पिताके घर जाने की आज्ञा देकर अनुग्रह करो ॥ १४ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हे विदुरजी ! इसप्रकार प्रिया (सती) के प्रार्थना करेहुए, स्वजनों में प्रेम करनेवाले शिवजी को, दक्ष ने सकल प्रजापतियों के सन्मुख जो हृदय को वेधनेवाले अपशब्दरूपी बाण छोड़ेथे उन का स्मरण हो आया, सो उन्होंने हँसतेहुए सती को उत्तर दिया ॥ १५ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि-अरी शोभने ! सज्जन पुरुष, विना बुलाये भी अपने बड़ों के घर जातेहैं, यह तेरा कहना उचित है परन्तु वह अपने बड़े, परमवली देह आदि के अभिमान से प्राप्तहुए मद वा क्रोध से, अपने घर विना बुलाये आनेपर दोषदृष्टि रखनेवाले हों तो, उनके घर जानेपर कल्याण कदापि नहीं होगा ॥ १६ ॥ हे सती ! यदि यह कहे कि-तुमसे समर्थ पुरुषों पर दक्ष कैसे दोषदृष्टि करसक्ते हैं ? तो कहता हूँ, सुन-विद्या, तपस्या, द्रव्य, सुन्दर दृढ़शरीर, अवस्था और कुल यह जो सज्जनों के छः गुण हैं, सो यही नीच पुरुषों में दोषरूप होजाते हैं, इनसे नीच पुरुषों का विवेक ज्ञान सर्वथा नष्ट होकर, उनको-मैं विद्वान्, मैं तपस्वी, इसप्रकार का गर्व होजाता है और इसदशा से उनकी दृष्टि दूषित हो जाती है तथा वह उद्धत होकर श्रेष्ठ पुरुषोंके तेजकी ओर किञ्चिन्मात्र भी ध्यान नहींदेते हैं ॥ १७ ॥ तिससे जो अपने घर आयेहुए पुरुषों को, कुटिलबुद्धिमे भौं चढ़ेहुए क्रोध युक्त नेत्रों से देखने लगते हैं ऐसे अव्यवस्थित चित्तवाले पुरुषों के घरकी ओर, वह अपने बान्धव हैं, ऐसा समझकर भूलकर भी नहीं जाय ॥ १८ ॥ हे प्रिये ! अपने कपटबुद्धि

र्भिन्नो व्यथते शिलीमुखैः शेतेदिताङ्गो हृदयेन दूयता ॥ स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः॥१९॥ व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानामसि सुभ्रु संमता॥ अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः॥२०॥ पापच्यमानेन हृदातुरेन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम्॥ अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा पदं परं, द्वेष्टि यथाऽसुरा हरिं॥२१॥ प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे॥ प्राज्ञैःपरस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने॥२२॥ सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः॥सत्त्वे च तस्मिन् भगवान्वासुदेवो ह्यधोऽक्षजो मे नमसा विधीयते ॥२३॥ तत्ते निरीक्ष्यो न पिताऽपि देहकृद्दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च

वान्धवों के निन्दायुक्त वाक्यों से मर्मस्थान में ताड़ना किया हुआ पुरुष, जैसा व्यथितहुए अन्तःकरण में रात्रिदिन सन्ताप पाता है तैसा, शत्रुके वाणों से शरीर के खण्ड २ होकर गिर पड़ें तवभी सन्ताप नहीं पाता है, क्योंकि शत्रुके वाणों से विधे को चाहें निद्रा आ-जाय परन्तु मर्मस्थान में पीड़ा पाये हुए को किसीसमय भी शान्ति नहीं होती है॥ १९॥ अरी सुन्दर भ्रूवाली प्रिये ! इससमय उत्तमदशा में विद्यमान दक्ष प्रजापति की सकल कन्याओं में तू परमप्रिय है ऐसा यद्यपि मुझे पूर्णतया विदित है तथापि मैं तुझ से निश्चय के साथ कहता हूँ कि—तुझे तहाँ पितासे मान नहीं मिलेगा क्योंकि—तेरा मुझ से सम्बन्ध होने के कारण दक्ष को बड़ा दुःख है ॥ २० ॥ जीव की चित्त की वृत्ति के साक्षी निर-हङ्कारी सत्पुरुषों की पवित्र कीर्त्ति और समृद्धि को देखकर अति सन्ताप पायेहुए हृदय वाला और सकल इन्द्रियें जिस की दुःख मानरही हैं ऐसा यह अज्ञपुरुष, उन साधुपुरुषों के ऐश्वर्य को एकायकी प्राप्त करने को समर्थ नहीं होता है अतः जैसे दैत्य श्रीहरि से द्वेष करते हैं तैसे उन से केवल द्वेषमात्र ही करता है ॥ २१ ॥ अरी सुमध्यमे ! इधर देख ! पुरुषों में जो परस्पर—सन्मुख जाना, नम्रता दिखाना, नमस्कार करना आदि सत्कार का व्यवहार है, सो सत्पुरुषों में उत्तमता के साथ कियाजाता है अर्थात् साधुपुरुष—सर्वा-न्तर्यामी पुरुष श्रीवासुदेव भगवान् का ही मन से सत्कार करते हैं देहाभिमानी पुरुषों का नहीं करते हैं, इसकारण दक्ष के अन्तर्यामी वासुदेव का मैंने अपने मन से सबप्रकार सत्कार किया था ॥ २२ ॥ हे प्रिये ! शुद्ध अन्तःकरण का वासुदेव नाम है क्योंकि—उस निर्मल अन्तःकरण में वह षड्गुण ऐश्वर्यवान् पुराणपुरुष वासुदेव भगवान्, किसीप्रकार का प्रति-बन्ध नहीं होय तो अनुभव में आते हैं, उन का स्वरूप इन्द्रियों से नहीं जानाजाता है उन परमेश्वर को मैं नमस्कार करके आराधना करता हूँ ॥ २३ ॥ हे सुन्दरि ! अब तुझसे इतनाही कहना है कि—विश्वसृष्टाओं के यज्ञ में गयेहुए मुझ निरपराधी का

ये ॥ यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ॥ २४ ॥ यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ॥ संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ २५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे उमारुद्रसम्वादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतावदुक्त्वा विरराम शङ्करः पत्न्यंगनाशं ह्युभयत्र चिंतयन् ॥ सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधास सा ॥ १ ॥ सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहाद्रुदत्यश्रुकलाऽतिविह्वला ॥ भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यती वैक्षत जातवेपथुः ॥ २ ॥ ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ॥ पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्प्रेम्णात्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ॥ ॥ ३ ॥ तामन्वगच्छन् द्रुतविक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराःसहस्रशः ॥ सपार्षदयक्षा

उस दक्षने दुर्भाषणों से तिरस्कार किया है अतः वह दक्ष मेरा शत्रु है, सो यद्यपि वह तेरे शरीर को उत्पन्न करनेवाला पिता है तथापि तू उस का दर्शन करने को न जा,और उसके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले पुरुषों का भी तू मुख मत देख ॥ २४ ॥ इतना कहने परभी, मेरे कथन को कुछ न गिनकर यदि तू तहां जायगी तो तेरा कल्याण नहीं होगा अर्थात् तेरा अपमान होगा और प्रतिष्ठित पुरुष का यदि अपने सम्बन्धीसे अपमान होजाय तो वह तत्काल उसके मरणका कारण होताहै ॥ २५ ॥ इति चतुर्थ स्कन्ध में तृतीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहतेहैं कि–हेविदुरजी! शिवजी ऐसा कहकर, दोनों प्रकार मेरी पत्नीके शरीरका नाश होगा, अर्थात् इसको यदि जानेको कहता हूँ तो तहाँ जातेही दक्षने अपमान किया कि-यह दुःखित होकर तहांही प्राण त्यागदेगी ! और यदि जानेका निषेध करता हूँ तो यह क्रोध में होकर अवही प्राण त्यागदेगी,ऐसा विचारकर मौन होरहे; तवतो वह सती अपने मातृकुल को देखने की इच्छा से स्थानसे चलदी, परन्तु आज्ञा को न मानकर जाने से शिवजी मुझे त्यागदेंगे,इस भयसे फिर स्थान में को लौटकर आई इसप्रकारचित्त में दोलायमान हुई ॥ १ ॥ मातृकुल के पुरुषों को देखने की इच्छा का भङ्ग होने के कारण खिन्नचित्त, स्नेह से रुदन करने वाली, नेत्रोंमें भरआये हुए आँसुओंसे अतिविह्वल और क्रोध से कांपती हुई वह भवानी, मानो तिन अप्रतिभट (जिन की समता करने वाला कोई वीर नहीं है ऐसे) शिवजी को क्रोध से भस्म करदेती है, ऐसी दृष्टि से उन की ओर कोदेखने लगी ॥ २ ॥ तदनन्तर शोक से और क्रोध के आवेश से खिन्न हुए अन्त करण तथा स्त्रीस्वभाव से जिसकी बुद्धि मोहित होगईहै ऐसी वह सती, जिन सज्जनों के प्रिय शिवजी ने अपना आधा शरीर भी देदियाथा उनको त्यागकर लम्बे २ श्वास छोड़ती हुई अपने माताके स्थान को जाने के निमित्त चलदी ॥ ३ ॥ तव सती इकलीही

मणिमन्मदादयः पुरोवृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ॥ ४ ॥ तां सारिकाकन्दुकदर्पणांबुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ॥ गीतायनैर्दुंदुभिशंखवेणुभिर्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किता ययुः ॥ ५ ॥ आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ॥ मृद्दार्वयःकाञ्चनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभांडं यजनं समाविशत् ॥ ६ ॥ तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ॥ ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥ ७ ॥ सोदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ॥ दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनन्दिता सती ॥ ८ ॥ अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ॥ अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ॥ ९ ॥ जगर्ह साऽमर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम् ॥ स्वतेजसा भूतग-

शीघ्रता से जारही है ऐसा देखकर, शिवजीके पार्षदों ने बड़ा अयोग्य समझा सो मणिमान् मद आदि पार्षद और यक्षों सहित सहस्रों शिवजी के सेवक, नन्दिकेश्वर को आगे करके उसके पीछे २ शीघ्रता से चलदिये ॥ ४ ॥ उन्होंने तिस सती को नन्दिकेश्वर पर बैठा कर, नगाड़े, शंख, मुरली, आदि गान की सामग्रियें, सारिका, गेंद, दर्पण, कमल, स्वेतछत्र, चँवर और माला आदि सामग्रियें साथ लेकर वह सब चलदिये॥ ५ ॥ तदनन्तर वह सती, जहां जिधर तिधर वेदोच्चारणकी ध्वनि होने के कारण यज्ञमें का पशुहिंसारूप कर्म वा ब्राह्मणोंका वेद-विषयक विवाद शोभित होरहाथा, जहां मृत्तिका, काठ, लोहा, सुवर्ण, दर्भ और चर्म के पात्र बनाये थे ऐसे ब्राह्मण, ऋषि और देवताओं से सेवन करेहुए यज्ञमण्डप में पहुँची॥ ६ ॥ उससमय तहाँ आई हुई उस सती का जब यज्ञ करने वाले दक्ष ने अपमान किया तब उस के भय से भगिनी और माता के सिवाय किसी ने भी उस का आदर नहीं किया केवल उसकी माता और भगिनियों ने ही आदर के साथ प्रेम से गद्गदकण्ठ होकर हर्षित हो उस को कण्ठमें लगाया॥ ७ ॥ उससमय पिताने जिसका अपमान कराहै ऐसी तिस सतीने, माता और मौसियों के परम आदर के साथ दियेहुए वस्त्र आभूषण आदि को तो क्या आसन कोभी स्वीकार नहीं किया, और भगिनियोंके अपने सम्बन्ध के अनुसार कियेहुए कुशल प्रश्नकी उचित वार्ताकी ओरभी ध्यान नहीं दिया ॥ ८ ॥ इसप्रकार यज्ञ मण्डप में तिस जगत् की स्वामिनी का अनादर होनेपर, जिसमें रुद्र का हविर्भाग नहींहै ऐसे उस यज्ञको देखकर, तथा सर्व शक्तिमान् अपने पतिकी, पिताकी करीहुई अवज्ञाको सुनकर वह सती, मानो क्रोध से लोकों को भस्म करेडालती है ऐसी आकृति से परम क्रुद्ध हुई ॥ ९ ॥ और वह देवी, कर्ममार्ग का उत्तम अभ्यास होनेके कारण 'मैंही विद्वान् हूँ, ऐसा गर्व रखनेवाले तिस शिवद्वेषी दक्ष का प्राणान्त करनेको खड़ेहुए भूतगणोंको अपने तेजसे निषेध करके, सकल मण्डलीके सुनते

णान्समुत्थितान्निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ॥ १० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ॥ तस्मिन्समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥ ११ ॥ दोषान्परेषां हि गुणेष्वसाधवो गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विज ॥ गुणांश्च फल्गून्बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघं ॥ १२ ॥ नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिंदा कुणपात्मवादिषु ॥ सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम् ॥ १३ ॥ यद्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसंगादघमाशु हंति तत् ॥ पवित्रकीर्त्ति तमलंघ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥ १४ ॥ यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ॥ लोकस्य यद्वर्षति चाशिषो

हुए क्रोधके आवेशसे बोलतेमें रुकनेवाली वाणीसे दक्षकी इसप्रकार निन्दा करनेलगी ॥ १० ॥ श्री देवीने कहाकि हे दक्ष ! सकल प्राणियों के प्रिय आत्मा शङ्करको,इस लोकमें अतिश्रेष्ठ कोई नहीं है और प्रिय तथा अप्रियभी कोई नहीं है, तिन सर्वान्तर्यामी निर्वैर शिवसे तेरे सिवाय कौन विरोध करेगा ! ॥ ११ ॥ अरे ब्राह्मणाधम ! इस लोकमें चारप्रकारके पुरुष कहेजाते हैं—जो तुझ से निन्दक हैं वह दूसरों के गुणोंपर दोषदृष्टि ही रखते हैं, गुणदृष्टि नहीं रखते वह अधम हैं, कितने ही गुणों को गुण और दोषों को दोष कहतेहैं वह साधारण श्रेणी के पुरुष हैं, दूसरे कितने ही पुरुष, प्राणीमात्र के गुणोंपर दृष्टि रखते हैं किसीके दोषों को ग्रहण नहीं करते हैं वह उत्तम सत्पुरुष हैं और कोई पुरुष ऐसेभी हैं कि—वह लोकों में थोड़े भी गुण होंतो उनको बहुत करके जगत् में दिखाते हैं वह परमश्रेष्ठ साधु पुरुष हैं इन में से चौथीश्रेणी के पुरुषोंपर (शिवजी और उनके भक्तोंपर) तू दोषदृष्टि रखता है, सो यह आश्चर्य नहीं तो क्या है? ॥ १२ ॥ निरन्तर जड़शरीर को ही आत्मा कहनेवाले दुष्ट पुरुषों के हाथ से, बड़ीईर्षाके साथ सत्पुरुषों की निन्दा होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, यद्यपि साधुपुरुष अपनी निन्दा को सहलेते हैं तथापि उनकी धूलियोंसे ही निन्दकों के तेजका ध्वंस होजाताहै अर्थात् उन साधुओं के सेवकही उनको उस निन्दा का फलदेते हैं तथापि वह बड़ोंकी निन्दा करतेही हैं, यदि ऐसा न करेंतो उनको दुर्जन कैसे कहाजाय ॥ १३ ॥ क्याकहूँ ! जिसका प्रसिद्ध 'शिव' यह दोअक्षर का नाम यदि प्रसङ्गवश एकबारभी वाणी से उच्चारण कियाजाय तो सकल मनुष्योंके पातकोंका तत्काल नाश करता है और जिनकी आज्ञाका कोई भी उल्लंघन नहीं करता है तिन पवित्रकीर्त्ति शिव से तू द्वेष करता है अतः तू अमङ्गलरूप है ॥ १४ ॥ जिनके चरण कमल, ब्रह्मानन्दरूप मकरन्द की इच्छाकरनेवाले साधु पुरुषों के मनरूप भ्रमरों से सदा सेवा कियेजाते हैं और जो याचकों के मनोरथों को पूर्ण करतेहैं इसप्रकार भुक्ति और मुक्ति देनेवाले जगतके हितकारी

अर्थिनस्तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्वबन्धवे ॥ १५ ॥ किं वा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटाः श्मशाने॥ तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत्पिशाचैर्ये मूर्द्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥ १६ ॥ कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ॥ छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥ १७ ॥ अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ॥ जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥ १८ ॥ न वेदवादाननुवर्त्तते मतिः स्व एव लोके रमतो महामुनेः ॥ यथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ॥ १९ ॥ कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं वेदे विविच्योभयलिंगमाश्रितम् ॥

शिवजी से तू द्रोह करता है ! ॥ १५ ॥ तू कहता है कि शिवजी परम अमङ्गल हैं क्योंकि–वह अपनी जटाओं को फैलाकर स्मशान में पिशाचों के साथ बैठते हैं, स्मशानों के प्रेतों की माला, चिता की भस्म और मनुष्यों के कपालों का आभूषण धारण करते हैं, परन्तु यह वार्त्ता, तुम्हें छोड़कर और जो ब्रह्मादि देवता हैं क्या वह नहीं जानते हैं जो शिवजी के चरणोंपर से नीचे गिरेहुए निर्माल्य को मस्तकपर धारण करते हैं ॥ १६ ॥ मुझेतो ऐसा प्रतीत होता है कि–जहां धर्मरक्षक ईश्वर की, मर्यादा को न माननेवाले पुरुष निन्दाकरते हैं तहां, उस निन्दा को सुननेवाला पुरुष यदि समर्थ हो तो उस निन्दा करनेवाले पुरुष की अमङ्गल शब्द उच्चारण करनेवाली दुष्ट जिह्वा को बलात्कार से (जबरदस्ती) छेदन करदेय, और यदि ऐसा करनेकी शक्ति नहीं होय तो अपने प्राणों को त्याग देय तथामरण वा मारण इन दोनोंमेसे कोई भी कार्य न करसके तो कानोंपर हाँथ रखकर तहांसे निकल कर तो चलाहीजाय परन्तु उस निन्दा को बैठाहुआ सुनता न रहे, ऐसा करना ही धर्महै ॥ १७ ॥ इसकारण नीलकण्ठ शिवकी निन्दा करनेवाले तुझ से उत्पन्न हुए इस शरीर को अब मैं धारण नहीं करूँगी क्योंकि-भ्रमसे भक्षण करेहुए अपवित्र अन्नको वमनकरके निकालदेनाही पुरुष की शुद्धि का कारण है ऐसा पुरुष कहते हैं ॥ १८ ॥ हे दक्ष!अपने स्वरूप में ही रमण करनेवाले, वैराग्यवान्, महामुनि की बुद्धि, वेद में के विधिनिषेधरूप मार्ग के अनुसार वर्त्ताव करनेवाली होकर नहीं रहती है, क्योंकि–जैसे देवताओं की गति आकाशमेंही होतीहै, मनुष्यकीगति भूमिपरही होतीहै तैसेही देहाभिमानी तथा ज्ञानी पुरुषों का वर्त्ताव भिन्न२ होताहै और वह प्रवृत्तिमार्ग तथा निवृत्तिमार्गमें गुथाहुआ होता है अतः अपने धर्म में स्थित पुरुष दूसरे के धर्म की तथा दूसरे पुरुष की निन्दा न करे । १९॥ क्योंकि–विषयों में प्रीति रखनेवाले पुरुषों को कहाहुआ सकामकर्म और विषयोंसे विरक्त रहनेवाले पुरुषों को कहाहुआ निष्काम कर्म, यह दोनों प्रकार का कर्म ठीकही है,क्योंकि

विरोधि तद्यौगपदैककर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ॥ २० ॥ मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ॥ तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिंगा अवधूतसेविताः ॥ २१ ॥ नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना॥व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसंगत स्तज्जन्म धिग्यो महतामवद्यकृत् ॥ २२॥ गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ॥ व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्ध्यहं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदंगजं ॥ ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन् क्षितावुदीचीं निषसाद शांतवाक् ॥ स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥

यह दोनों प्रकार के कर्म वेद में अधिकारी के भेदसे भिन्न २ कहे हैं; वह परस्पर विरुद्ध होने के कारण एक कर्त्ता के हाथ से एक समय में नहीं होसक्ते अतः सकाम कर्म करने वाले ने निष्काम कर्म नहीं किये और निष्काम कर्म करनेवाले ने सकाम कर्म नहीं किये तो उसको जैसे दोष नहीं होता है तैसे, ब्रह्मरूप शिवजी ने सकाम और निष्काम दोनों प्रकार के कर्म नहीं किये हैं तो उनको दोष नहीं है, क्योंकि—वह दोनों प्रकार के कर्मों से मुक्त हैं इसकारण उनकी निन्दा करना तुझे योग्य नहीं है ॥ २० ॥ हे दक्ष ! यह शिवजी, चिता की भस्म से स्नान करेहुए नग्न फिरते रहते हैं, यह जो तैंने बड़ २ करी सो भी निरर्थक हैं, क्योंकि—हमें अणिमादि सिद्धियोंसे जो पदवी मिलीहैं वह तुम्हेंकदापि नहीं मिलेंगी, तुम्हारी पदवियें तो—यज्ञशाला में रहकर तहाँ के अन्न खाकर तृप्तहुए धूममार्गी कर्मठ पुरुषों की स्तुति करीहुई हैं हम उधर को भ्रम सेभी नहीं देखती हैं, और हमारी पदवियें (ऐश्वर्य) तो तुमसमान पुरुषों के देखने मेभी नहीं आती हैं, क्योंकि—इच्छामात्र से प्रकट होनेवाली हैं और ब्रह्मज्ञानीही उन को सेवन करते हैं, इस कारण मैं सम्पत्तिवाला हूँ और रुद्र दरिद्र हैं ऐसा गर्व तू मतकर२१ अरे महादेवजी का अपराध करनेवाले तुझसे उत्पन्नहुए इसमेरे अतिनिन्दित शरीरसे अब कोई कार्य नहीं है, तुझ दुर्जन के सम्बन्ध से मुझे लज्जित होना पड़ा है, जो साधुओं का अपमान करता है उस से जन्म लेनेको धिक्कार है ॥ २२ ॥ अरे दक्ष ! जब किसी समय हास्यविनोदमें भगवान् शिव, तेरा सम्बन्ध दिखानेवाले 'दाक्षायणी' (दक्षकन्या) नाम से पुकारते हैं तब मैं हास्य विनोद के भाषण को छोड़कर नीचे मुखकरेहुए अत्यन्त दुःखित होतीहूँ, सो तेरे शरीरसे उत्पन्नहुए प्रेतसमान इस शरीरको देख अभी त्यागेदेतीहूँ ।२३। मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे क्रोधादि शत्रुनाशक विदुरजी ! वह सती उस यज्ञमें दक्ष से इस प्रकार कहकर मौन होगई और पीली साड़ी पहिनकर उत्तर दिशा को मुख करके आसन लगाकर बैठगई, तदनन्तर उस ने नेत्र मूँदकर योग की रीति से समाधि लगाने का यत्न

॥ २४ ॥ कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ॥ शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं कण्ठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत् ॥ ॥ २५ ॥ एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितमंकमादरात् ॥ जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणां ॥ २६ ॥ ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिंतयती न चापरं ॥ ददर्श देहो हतकल्मषः सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥ २७ ॥ तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्धा-हेति वादः सुमहानजायत ॥ हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता ॥ २८ ॥ अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ॥ जहावसून्यद्विमतात्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥ २९ ॥ सोयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ॥ यदंगजां स्वां

किया ॥ २४ ॥ तदनन्तर सब के स्तुति करनेयोग्य तिस सती ने, प्रथम आसनको जीत कर ऊर्ध्वगति प्राण और अधोगति अपान इन दोनों वायुओं को नाभिचक्र में एकस्थानपर स्थिर किया, और उन को ऊर्ध्वगति करके नाभिचक्र से ऊपर हृदय में पहुँचाया, तदनंतर बुद्धि के साथ उन को तहां ही स्थिर किया, तदनन्तर तहां स्थिर हुए उस वायु को धीरे २ कण्ठमार्ग से भ्रुकुटियों के मध्य में ललाटस्थान पर पहुँचाया ॥ २५ ॥ इस प्रकार योगमार्ग में प्रवीण तिस सतीने, सकल सत्पुरुषों में परमश्रेष्ठ शिवजी के वारंवार आदर के साथ अपनी जंघापर स्थापन करेहुए अपने शरीर को, दक्ष के ऊपर क्रोध के कारण त्यागने का मन में विचारकर एकसाथ अपने सकल अङ्गोंमें वायुऔरअग्नि की धारणा करी ॥ २६ ॥ तदनन्तर सकल जगत् के गुरु अपने पति के चरणकमल के भजनानन्द से चित्त को एकाग्र करनेवाली तिस सती ने, पति के सिवाय दूसरे किसी की ओर चित्त को नही लगाया, तब उसका शरीर निष्पाप हुआ और वह सती को समाधि से उत्पन्न हुए अग्नि करके तत्काल भस्म होगया ॥ २७ ॥ उस बड़े आश्चर्य को देखनेवाले देवताओंका आकाश में और पृथ्वीपर बड़ाभारी 'हाहा कार' शब्द मचगया, वह कहनेलगे कि–अरे ! देवताओं में श्रेष्ठ जो शिवजी उनकी प्रिया स्त्री को दक्षप्रजापति ने क्रोधित करदिया, इसकारण उस सती देवी ने अपने प्राणों को त्यागदिया ॥ २८ ॥ अहो ! सकल स्थावर जङ्गम जगत् जिसकी प्रजा है तिस दक्ष प्रजापति की यह कैसी दुष्टता है, देखो ! निरन्तर सत्कार पाने योग्य अपनी उदारचित्त कन्याकाभी जिसने इतना तिरस्कार करा कि–जिससे उसने अपने प्राणोंकोभी त्यागदिया ॥ २९ ॥ ऐसा यह निर्दयचित्त और ब्रह्मद्रोही दक्ष प्रजापति, संसार में बड़ी अपकीर्त्ति पावेगा, क्योंकि–इसशिवद्रोही दक्षने अपने अपराधके कारण,प्राणों को त्यागनेके निमित्त

पुरुषद्विड्दुहितां न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥ ३० ॥ वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वासुत्यागमद्भुतम् ॥ दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥ ३१ ॥ तेषामापततां वेगं निशम्य भगवान् भृगुः ॥ यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥ ॥ ३२ ॥ अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा ॥ ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥ ३३ ॥ तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः ॥ हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥ ३४ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सतीदेहोत्सर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ छ ॥ मैत्रेय उवाच । भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात् ॥ स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभिर्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥ क्रुद्धः सुदष्टौष्ठपुटः स धूर्जटिर्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ॥ उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन् गंभीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥ २ ॥ ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ॥ करालदंष्ट्रो ज्व-

उद्यत हुई अपनी कन्या को रोका भी नहीं ॥ ३० ॥ इसप्रकार लोकों के कहतेहुए सती के उस प्राण त्यागरूप अद्भुत कर्म को देखकर उसके पार्षद, हाथ में शस्त्र लेकर दक्षके मारने को उद्यत हुए ॥ ३१ ॥ वह दक्षके शरीरपर को दौड़कर आरहे हैं ऐसा देखते ही भगवान् भृगुजी ने यज्ञ में विघ्न करनेवालों का नाश करनेवाले मन्त्रको पढ़कर दक्षिणाग्नि में हवन किया ॥ ३२ ॥ इसप्रकार उन भृगुनामक अध्वर्यु के हवन करने पर, जिन्होंने पहिले तपके प्रभाव से सोमरस पायाथा वह ऋभुनामक सहस्रों देवता, तत्काल अग्निकुण्ड में से बाहर को निकले ॥ ३३ ॥ तदनन्तर ब्रह्मतेज से देदीप्यमान उन देवताओं के जलतेहुए काठरूप आयुधों से ताड़ना करेहुए गुह्यकों सहित वह सकल प्रमथ गण आदि दशों दिशाओं में को पलायमान होगए ॥ ३४ ॥ इति चतुर्थस्कन्धमें चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! दक्ष से अपमान को प्राप्त हुई सती मरण को प्राप्त होगई और तिस यज्ञ में उत्पन्न हुए ऋभु नामक देवताओं ने मेरे पार्षदों की सेना को भगादिया, ऐसा नारदजी से सुनकर शिवजी को बड़ा क्रोध आया ॥ १ ॥ तब क्रोध में हुए तथा जिन्होंने नीचे का ओठ चावा है ऐसे तिन धूर्जटि रुद्र ने, बिजलीकी दमक की समान वा अग्निकी लपटोंकी समान अति तेजवाली एक जटाको उखाड़ कर, बड़ी गर्जनाकरी और एकसाथ खड़े होकर उसको भूमिपर पटका ॥ २ ॥ उसीसमय उस से एक भव्य पुरुष (वीरभद्र) उत्पन्न हुआ, वह ऐसा प्रतीत होता था मानों अपने शरीर से स्वर्ग को स्पर्श कररहा है और मेघ की समान श्यामवर्ण था, उस के सहस्र भुजा थीं, सूर्य की समान प्रखर तीन नेत्र थे, भयङ्कर दाढ़ें थीं, जलतीहुई अग्नि की समान उस के मस्तकपर केश थे, वह गले में मनुष्यों के कपालों की माला धारण करेहुए

लदंशिमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥ ३ ॥ तं किं करोमीति गृणन्तमाह बद्धांजलिं भगवान्भूतनाथः ॥ दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां त्वमग्रणी रुद्रभटांशको मे ॥ ४ ॥ आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ॥ मेने तदात्मानमसंगरंहसा महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥ ५ ॥ अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवं ॥ उद्यम्य शूलं जगदंतकांतकं संप्राद्रवद्घोषणभूषणांघ्रिः ॥ ६ ॥ अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ॥ तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥ ७ ॥ वाता न वांति न हि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदंडः ॥ गावो न काल्यंत इदं कुतो रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥ ८ ॥ प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजि-

था और हाथोंमें अनेकों आयुध ऊपरको करके धारणकरेहुए था ॥ ३ ॥ और हाथ जोड़कर 'हे प्रभो ! मैं आप का कौनसा कार्य करूँ ?' ऐसा कहनेवाले तिस वीरभद्र से भगवान् भूतनाथ शङ्कर कहनेलगे कि—हे युद्ध करने में चतुर वीरभद्र ! तू मेरे अंश से उत्पन्न हुआ है इसकारण मेरे सकल योधाओं का अधिपति होकर दक्ष का वध और उस के यज्ञ का विध्वंस कर ॥ ४ ॥ हे तात विदुरजी ! शिवजी के क्रोध में भरकर ऐसी आज्ञा करनेपर तिन वीरभद्रजी ने, उन प्रभु देवाधिदेव की प्रदक्षिणा करी और उसीसमय उन्होंने वीर शोभा से अपने को ऐसा माना कि—इससमय मेरे वेग को कुंठित करनेवाला कोई नहीं है, मैं बड़े २ प्रबल वीरों का भी पराक्रम सहसकूँगा ॥ ५ ॥ तदनन्तर जिन के चरणों में छम२ बजनेवाले नूपुर हैं और जिन के पीछे २ अत्यन्त गर्जना करनेवाले रुद्र के पार्षदों के गण चलरहे हैं ऐसे तिन वीरभद्र ने अतिभयङ्कर बड़ीभारी गर्जना करी और जगत्का अन्तकरनेवाले साक्षात् मृत्युकाभी अन्त करने को समर्थ ऐसे त्रिशूलको हाथमें लेकर दक्षके यज्ञ की ओरको धावा किया ॥ ६ ॥ इधर यज्ञमण्डपमें बैठेहुए ऋत्विज्, यजमान, सदस्य, ब्राह्मण और ब्राह्मणों की स्त्रियों ने, उत्तरदिशा में उठीहुई धूलि को देखकर 'अरे ! यह अन्धकार है या क्या है ! अरे ! अरे ! यह तो धूलि है, परन्तु यह कहां से आई' ऐसा विचार करा ॥ ७ ॥ उन्होने कहा—आँधी तो चल नहीं रही है, और इधरको चोरोंका दल आरहा है; ऐसा कहो सोभी सम्भव नहीं है क्योंकि अपराधियों को उग्रदण्ड देनेवाला प्राचीनबर्हि राजा अभी जीवितहै, गौओंको शीघ्र२ हाँककर लेजाने का यह समय नहींहै, परन्तु यह धूलि कहाँसेआई ? क्या जगत्का प्रलयही होनेवालाहै ॥८॥ तब खिन्न हुई प्रसूति (दक्षकी स्त्री) आदि स्त्रियें कहनेलगीं कि—अहो ! सती ने, कुछ अपराध नहीं किया था तथापि प्रजापति दक्ष ने सकल कन्याओं के देखते हुए तिस अपनी

नस्यैपे तस्य ॥ यत्पश्यंतीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीमवदध्यावनागां ॥ ॥ ९ ॥ यस्त्वंतकाले व्युप्तजटाकलापः स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेंद्रः ॥ वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥ १० ॥ अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या ॥ करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥ ११ ॥ बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मखे महात्मनः ॥ उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥ १२ ॥ तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ॥ पिंगैः पिशंगैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥ १३ ॥ केचिद्बभंजुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथापरे ॥ सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसं ॥ १४ ॥

कन्या का जो अपमान करा, यह उस पापका ही फल है ॥ ९ ॥ यह केवल सती का ही अपमान नहीं हुआ है किन्तु शिवजी का भी अपमान है,जो शिवजी जगत् का प्रलय होने के समय अपने जटाजूट को अस्तव्यस्त खोलकर और छितराकर अपने त्रिशूल के अग्रभाग पर दिग्गजों को रखकर मेघों की गर्जनाकी समान प्रचण्ड अट्टहास्य से मानो दिशाओं के खण्ड २ करे डालते हैं ऐसे होतेहुए शस्त्रों से ऊँची हुई अपनी भुजारूप ध्वजाओं को फैलाकर हर्ष के साथ नृत्य करते हैं ॥ १० ॥ जिनके तेजको कोई सह नहीं सक्ता, जिन्हों ने एकवार भ्रुकुटी चढ़ाई कि-उनकी समान जगत् में असह्य कोई नहीं है तथा जिन्हों ने भयङ्कर दाढ़से तारागणों के समूह को अस्तव्यस्त करडाला है ऐसे तिन कोप का स्वभाववाले शिवजी को कोपित करनेवाले ब्रह्माजी का भी क्या कल्याण होसक्ता है ? सो जहाँ ब्रह्माजीकी भी पार नहीं बसाती तहां दक्षकी कौन कथा ॥ ११ ॥ इसप्रकार खोटे चिह्न देखकर चञ्चलहुई है दृष्टि जिनकी ऐसे पुरुष अनेकों प्रकारकी वार्त्ता कररहे थे इतने हीमें परमसमर्थ दक्षको भी भयदायक एकके पीछे एक ऐसे सहस्रों बड़े २ उत्पात आकाशमें और भूमि पर जहां तहां होनेलगे ॥ १२ ॥ हे विदुर जी ! उसीसमय में हाथों में नानाप्रकार के शस्त्र लेकर ऊपरको शस्त्रोंके हाथ उठाये, कितनेही बौने कितने ही काले, कितने ही पीले और कितनों ही के मुख मगरकी समान लम्बे थे ऐसे तिन चारोंओर से दौड़तेहुए आनेवाले रुद्र भगवान् के पार्षदों ने तिस महायज्ञ को घेरलिया ॥ १३ ॥ कितनोंही ने प्राग्वंश (यज्ञशाला के पूर्व और पश्चिम के खम्भोंपर रक्खाहुआ जो पूर्वपश्चिम को विस्तारवाला काष्ठ) तोड़ डाला, कितनोंही ने यज्ञमण्डप के पश्चिम में स्त्रियों के बैठने के स्थान का, औरों ने यज्ञशाला के आगे के सभामण्डप का और कितनों हीने सभामण्डप के आगे की हविर्धानी का-नाश किया तथा उत्तर की ओरकी अग्नीध्रशाला काभी नाश किया, कितनोंहीने यजमान के स्थान का और भोजनशाला का भी नाश किया ॥ १४ ॥ कितनों ही ने यज्ञ के

रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैके ऽग्नीननाशयन् ॥ कुंडेष्वमूत्रयन्केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥१५॥ अबाधंत मुनीनन्ये एके पत्नीरतर्जयन् ॥ अपरे जगृहुर्देवान् प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥१६॥ भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिं ॥ चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥ १७ ॥ सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ॥ तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः ॥ भृगोर्लुलुंचे सदसि योऽहसत् श्मश्रु दर्शयन् ॥ १९ ॥ भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य रुषा भुवि ॥ उज्जहार सदस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥ २० ॥ पूष्णश्चापातयद्दंतान्कालिंगस्य यथा बलः ॥ शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥ २१ ॥ आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ॥ छिंदन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत्त्र्यंबकस्तदा ॥ २२ ॥ शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्न-

पात्र फोड़डाले, कितनोंहीने अग्नि बुझादी, दूसरोंने कुण्ड में मूत्र करदिया और कितनोंही ने उत्तर वेदी की सीमा के सूत्रों को तोड़डाला ॥ १५ ॥ कितनो ही ने ऋषियों को बाँधना प्रारम्भ करदिया, कितनेही स्त्रियों को धमकानेलगे, कितनोंही ने समीप खडेहुए और भागकर गयेहुए देवताओंको पकड़ा ॥ १६ ॥ मणिमान् ने भृगु ऋषिको बाँधा, वीरभद्रने दक्ष प्रजापति को पकड़ा, चण्डीशने पूषा देवताको पकड़ा और नन्दिकेश्वरने भगदेवको पकड़ा ॥ १७॥ उससमय देवताओंसहित ऋत्विज और सदस्य इन सबोंनेभी, रुद्र भगवान्के पार्षदोंकी करीहुई इस करतूतको देखकर, तिन पार्षदों के फैंकेहुए पत्थरोंसे अति पीड़ाको प्राप्त होनेपर 'जिसको जिधरमार्गमिला वह उधरकोही चलागया' इसप्रकार पलायन किया ॥ १८ ॥ तब महापराक्रमी वीरभद्रने, हाथ में स्रुवा लेकर हवन करनेवाले तिन भृगु ऋषि की डाढ़ी मूँछें उखाड़ लीं, जिन भृगु ऋषि ने विश्वस्रष्टाओं के यज्ञ में अपनी मूँछों को दिखाकर (ताव देकर) शिवजी का हास्य करा था ॥ १९ ॥ फिर तिन वीरभद्र ने ही भगदेव को क्रोध से भूमिपर पटक कर उस के नेत्र निकाल लिये, क्योंकि—पहिले सभा में बैठेहुए जिस भगदेव ने, दक्षप्रजापति के शिवजी की निन्दा करनेपर उन को नेत्रों से विशेष सूचना दी थी अर्थात् सैन चलाकर उकसाया था ॥ २० ॥ और तिन वीरभद्र ने, जैसे बलराम ने कलिंग देश के राजा के दांत उखाड़ लिये थे तैसे पूषा देवता के दांत उखाड़ दिये, जिस ने जगत् के गुरु महादेवजी का, दक्षप्रजापति के शाप देते समय दांत दिखाकर हास्य किया था ॥ २१ ॥ फिर वह त्रिनेत्र वीरभद्र, दक्ष की छातीपर बैठकर तीखी धार वाले खड्ग से उस के मस्तक को काटनेलगे तथापि उससमय वह उस के शिरको धड़ से काटकर अलग करने को समर्थ नहीं हुए ॥ २२ ॥ इसप्रकार तिन पशुपति वीरभद्र ने, अनेकों शस्त्र अस्त्रों से दक्ष के मस्तकके छेदनका यत्न किया परन्तु उस के कण्ठ की त्वचा

त्वचं हरः ॥ विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ॥ यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥ २४ ॥ साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् ॥ भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥ २५ ॥ जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः ॥ तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥ २६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ छ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ॥ शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥ १ ॥ सञ्छिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ॥ स्वयम्भुवे नमस्कृत्य कार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥ २ ॥ उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसम्भवः ॥ नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥ ३ ॥ तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ॥ क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥ ४ ॥ अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं ये बर्हिषो भा-

किञ्चिन्मात्र छिली भी नहीं तब तो परम आश्चर्य में पड़कर उन्होंने बहुत देरीपर्यन्त विचार किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर तिन पशुपति वीरभद्र ने, गला घोटना आदि उपायों से ही यज्ञ में पशु को मारते हैं, ऐसा देखकर, तिस उपाय से यजमान पशुरूप दक्ष के धड़ से उस के शिर को अलग करदिया ॥ २४ ॥ उससमय वीरभद्र के तिस कर्म की प्रशंसा करनेवाले उन भूत, प्रेत और पिशाचों में 'अति उत्तम हुआ, अति उत्तम हुआ' ऐसा शब्द होनेलगा और अन्य ब्राह्मणादिकों में इस के विपरीत 'बहुत बुराहुआ' ऐसा शब्द होनेलगा ॥ २५ ॥ उससमय परमक्रोध में भरेहुए तिन वीरभद्र ने, उस मस्तकका उस ही यज्ञ की दक्षिणाग्नि में हवन करदिया और उस ही अग्नि से यज्ञमण्डप को भस्म करके फिर कैलास पर्वतपर को लौटगये ॥ २६ ॥ इति चतुर्थ स्कन्ध में पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! इसप्रकार रुद्र के पार्षदों ने, शूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, परिघ, मुद्गर और दूसरे आयुधों से जिन को पराजित किया है और जिनके अङ्ग शूल आदि से छिन्न भिन्न होगए हैं ऐसे भयभीत हुए ऋत्विज, सदस्य और सकल देवता ब्रह्माजी के पास गये और उन को नमस्कार करके जो कुछ वृत्तान्त हुआ था निवेदन कर सुनाया ॥ ॥ १ ॥ २ ॥ वह भगवान् ब्रह्माजी और सर्वव्यापी श्रीनारायण इस होनी को प्रथम से ही समझकर दक्ष प्रजापति के यज्ञ में नहीं गए थे ॥ ३ ॥ उस वृत्तान्त को सुनकर ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा कि—हे देवताओं ! संसार में यह एक साधारण नियम है कि—अधिक बलवानों के अपराध करनेपर भी, अल्पशक्ति पुरुषों ने अपने पराक्रम से उन का अपराध करने की इच्छाकरी कि—वह इच्छा उन की कल्याण करनेवाली नहीं होती है ॥ ४ ॥ यहां तो तुमने, यज्ञ में भाग ग्रहण करनेवाले शिवजी का भाग बन्द करके उन का अपराध

गभाजं परादुः ॥ प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ आशासाना जीवितमध्वरस्य लोकः सपालः कुपिते न यस्मिन् ॥ तमाशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥ ६ ॥ नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वं ॥ विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥ ७ ॥ स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ॥ ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥ ८ ॥ जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः ॥ जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥ ९ ॥ नानामणिमयैः शृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥ १० ॥ नानाऽमलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानुभिः ॥ रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥ ११ ॥ मयूरकेकाभिरुतं मदान्धा-

करा है, फिर तुम्हारा कल्याण कैसे होसक्ता है ? तथापि वह प्रसन्न होनेवाले हैं, इसकारण तुम निर्मल अन्तःकरण से उनके चरणकमल को ग्रहण करके उनको प्रसन्न करो ॥ ५ ॥ हे देवताओ जिन शिवजी के क्रुद्ध होनेपर त्रिलोकी और उसमें के सकल लोकपाल नष्ट होजायँगे, वह पहिले ही दक्षके मर्मभेदी दुर्वचनों से हृदयमें विधेहुएथे,इस परभी प्रियपत्नी से वियोग होगया, सो अब तुम शीघ्रही तहां जाकर उन देवसे क्षमा मांगो और अपना 'यज्ञ फिर ठीक होय' ऐसी इच्छा दिखाओ ॥ ६ ॥ हम तो तहां जाने से भयभीत होते हैं तुम ही कोई उपाय करदो ऐसा न कहना, क्योंकि जिनस्वतन्त्र शिवजी के सत्यस्वरूप को वा बल और पराक्रम के प्रमाण को मैं नहीं जानता हूँ; यह यज्ञ नामक इन्द्र, तुम देवता तथा अन्य जो सकल प्राणी एवं ऋषि हैं वहभी नहीं जानते हैं, ऐसे पुरुष को शान्त करने का उपाय कौन करसक्ता है ? ॥ ७ ॥ वह ब्रह्माजी देवताओं से ऐसा कहकर और उनको तथा प्रजापतियों सहित पितरों को साथ लेकर अपने सत्यलोकसे प्रभु महादेवजीके प्रियस्थान पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर्वतपरको चलदिये ॥८॥ वह पर्वत, जन्म से औषधि, तप, मन्त्र और योग की सिद्धिवाले देवताओं से संयुक्ततथा निरन्तर किन्नर, गन्धर्व और अप्सराओं से भरा रहताथा ॥ ९ ॥ और अनेकों प्रकारके रत्नमय शिखरों से नानाप्रकारकी गेरू आदि धातुओं से, चित्र विचित्र स्थलों से नानाप्रकार के हरिण आदि पशुओं के स्थलों से और अनेकों जाति के वृक्ष—लता तथा झाड़ों से युक्तथा ॥ १० ॥ तथा स्वच्छ जलके अनेकों झरने, अनेकों गुफा और सुन्दर शिखरों से युक्त होने के कारण वह पर्वत, पतियों के साथ क्रीड़ाकरनेवाली सिद्धों की स्त्रियों को प्रिय लगताथा ॥ ११ ॥ मोरों की बोलियों से शोभित और पुष्पों का मद पीकर मदान्ध हुए भ्रमरों के गानके स्वरोंसे युक्त तथा कोकिलाओंकी ऊँची

लिर्विमूर्छितम् ॥ ध्वनितं रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥ १२ ॥ आह्वयं-तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्द्रुमैः ॥ व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ॥ १३ ॥ मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ॥ तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥ १४ ॥ चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचंपकैः ॥ पाटलाशोकवकुलैः कुंदैः कुरवकैरपि ॥ १५ ॥ स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वररेणुकजातिभिः ॥ कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥ पनसोदुंबराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिंगुभिः ॥ १६ ॥ भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जंबुभिः ॥ खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेंगुदैः ॥ १७ ॥ द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥ कुमुदोत्पलकल्हारशतपत्रवनर्द्धिभिः ॥ १८ ॥ नलिनीसु कलं-कूजत्खगवृन्दोपशोभितम् ॥१९॥ मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः॥ गवयैर्नाभिभिर्व्याघ्रैर्निर्जुष्टं महिषादिभिः ॥२०॥ कदलीखण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥ पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया ॥ विलोक्य भूतेशगिरिं

कूक तथा अन्य पक्षियों के शब्दों से भी गुञ्जार रहाथा॥ १२ ॥ ऊँची२शाखारूप हाथ वाले कल्पवृक्षों से वह पर्वत मानों पक्षियों को बुलावता हुआ सा, बड़े २ हाथियों करके चलताहुआसा और झरनों के शब्दों से बोलताहुआसा प्रतीत होताथा ॥ १३ ॥ मन्दार, पारिजात, सरल, तमाल, साल, ताड़, कोविदार, असन और अर्जुन के वृक्षों से शोभाय मान था ॥ १४ ॥ तथा, आम, कदम्ब, काला अशोक, नाग, पुन्नाग, चम्पक, पाटल, अशोक, मौलसिरी, कुन्द, कुरवक, सुवर्ण की समान शतदलकमल, उत्तम २ इलायची और मालती की बेलें, कुब्जक, मोगरा और माधवी की लताओं से शोभितथा ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ वह पनस, गूलर, पीपल, पिलखन, वड़, हिंगु भोजपत्र, औषधि * पूगीफल, बड़ीपूगी,जामुन,खजूर,आँवड़ा,उत्तम जाति के आम,प्रियाल,मधुक,जियापोता आदि वृक्षों की जातियोंसे तथा ठोस बाँसोंसे और कीचक+बाँसोंसे वह पर्वत शोभित था उसपर अनेकों सरोवरथे और उनमें कुमुद, उत्पल, कल्हार और शतपत्रनामक कमल खिले हुएथे तथा मधुर बोलनेवाले पक्षियों के समूहों से शोभायमान प्रतीत होताथा ॥ १७॥ १८॥ १९ ॥ हरिण,वानर,शूकर,सिंह,रीछ,सेई, वनगौ,शरभ,बाघ, रुरुनामकमृग,और वनके भैंसे आदि पशुओंसे युक्त था ॥२०॥ तथा तहाँके सरोवरोंके तटपर उत्पन्नहुए केलेके वनों से शोभाय

* " ओषध्यः फलपाकान्ताः" जो फल पकने के अनन्तर नष्ट होजायँ उन केले आदिके विरवाओं को ओषधि कहते हैं ।

\+ ' कीचका वेणवस्तेस्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः ' उन बांसों का नाम कीचक है जो वायु के लगनेसे शब्दायमान होते हैं ।

विबुधा विस्मयं ययुः ॥ २१ ॥ ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीं ॥ वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पङ्कजं ॥ २२ ॥ नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः ॥ तीर्थपादपदांभोजरजसाऽतीव पावने ॥ २३ ॥ ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः ॥ क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥ २४ ॥ ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुंकुमपिञ्जरम् ॥ वितृषोऽपि पिबंत्यंभः पाययन्तो गजा गजीः ॥ २५ ॥ तारहेममहारत्नविमानशतसंकुलां ॥ जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्घनम् ॥ २६ ॥ हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् ॥ द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥ २७ ॥ रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् ॥ कलहंसकुलप्रेष्ठं खरदण्डजलाशयम् ॥

मान था सती देवी के स्नान करने से जिसका जल परमपवित्र होगयाहै ऐसी नन्दा नामक नदी से वह कैलास पर्वत चारोंओरसे घिराहुआया, ऐसे उस पर्वत को देखकर वह सकल देवता आश्चर्य में होगये ॥ २१ ॥ तदनन्तर देवताओंने उस कैलास पर्वतपर अलका नामक नगरी और सौगन्धिक नामक वन को देखा, तिस वन में सौगन्धिक नामक उत्तम गन्धवाले कमल उत्पन्न होते हैं इसकारण ही उस वन का सौगन्धिक नाम पड़ाहै ॥ २२ ॥ और तिस अलका नगरी के बाहर की ओर नन्दा और अलकनन्दा यह दो नदियें थीं वह श्रीहरि के चरण के ऊपर की धूलिके कणोंके सम्बन्ध से अतिपवित्र थीं ॥ २३ ॥ हेविदुरजी ! जिन नदियों के जल में, अनेकों प्रकार के विहार करने से श्रम को प्राप्तहुई देवाङ्गना, स्वर्ग से नीचे उतरकर अपने प्रिय पतियों के साथ स्नान करके, उसजल को पुरुषों के ऊपर उछालतीहुई क्रीड़ा करती हैं ॥ २४ ॥ और तिनस्त्रियों के शरीरों को लगेहुए तथा स्नानके समय धुलेहुए नवीन केसर के कारण पीलेहुए जिन नदियों के जल को पीनेकी इच्छा न होनेपर भी हस्ती हस्तिनियों को पिलातेहुए आपभी पीते हैं ॥ २५ ॥ तिन नदियों से चारों ओर घिरी हुई वह अलका नगरी, रुपहली, सुनहली, और महामूल्य रत्नों के सैंकड़ों विमानों से भरी हुई तथा यक्षों की अनेकों स्त्रियों से शोभायमान थी वह–बिजली सहित स्वेत, पीले, ताम्रवर्ण और काले मेघों से जैसे आकाश शोभित होता है तैसी शोभा पारही थी ॥ २६ ॥ ऐसी तिस कुवेर की नगरी को छोड़कर वह देवता आगे को चलदिये, तव उन्हो ने सौगन्धिक नामक वन देखा; वह चित्र विचित्र फूल, फल तथा पत्तों के झुंड जिनपर हैं ऐसे आश्रय लेने वालों के मनोरथों को पूर्ण करनेवाले वृक्षों से हृदयको प्रिय लगता था ॥ २७ ॥ जिस वन में भ्रमरों की गुञ्जार, कोकिलाओं के समूहों की कूकों से अति मनोहरता को प्राप्त होरहीथी, जो राजहंसों के समूह को अतिप्रिय था, जहां कमलों से शोभायमान सरोवरथे,

॥ २८ ॥ वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना ॥ अधिपुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथसन्मनः ॥ २९ ॥ वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः ॥ प्राप्तं किंपुरुषैर्दृष्ट्वा त आराद्ददृशुर्वटम् ॥ ३० ॥ स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः ॥ पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥ ३१ ॥ तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणं सुराः ॥ ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ॥ ३२ सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् ॥ उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥ ॥ ३३ ॥ विद्यातपोयोगपथमास्थितं तदधीश्वरम् ॥ चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥ ३४ ॥ लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् ॥ अङ्गेन सन्ध्याऽभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥ ३५ ॥ उपविष्टं दर्भमय्यां बृ-

---

कनपटियों की खाज दूर करने को वन के हाथियों से अत्यन्त रगड़े हुए हरिचन्दन के वृक्षों पर से आनेवाले पवन के स्पर्श से जो, यक्षों की स्त्रियों के मन को क्रीड़ा करने के निमित्त वारंवार अत्यन्त विह्वल करताथा ॥ २८ ॥ २९ ॥ जहां स्थान २ पर कमलों की पंक्तियोंसे भरे हुए और वैदूर्य मणियोंकी पैरियों से बँधी हुई बावड़ियें थीं; और जहां किम्पुरुष नामक एक प्रकार के देवता, क्रीड़ा करने को आये हुए थे, तिस सौगन्धिक वन को देखकर वह देवता आगे को बढ़े सो तहाँ से थोड़ीही दूरीपर उन्होंने एक वट का वृक्ष देखा ॥ ३० ॥ वह सौ योजन ऊँचा था, और उसकी पौन २ सौ योजन लम्बी शाखाओं का विस्तार चारों ओर फैला हुआ था, वह चारों ओर निश्चल छाया कर रहा था, उसपर पक्षियों का एक भी घोंसला न होने के कारण उसके नीचे रहने वालों को पक्षियों की कलकलाहट का खेद किञ्चिन्मात्र भी नहीं था ॥ ३१ ॥ हे विदुरजी ! तिन महायोगमय और मुमुक्षु पुरुषों के आश्रय करने योग्य वड़ के वृक्ष के नीचे वैठे हुए, मानो क्रोध को त्यागकर साक्षात् काल ही बैठा है ऐसे श्रीशङ्कर को देवताओं ने देखा ॥ ३२ ॥ वह शङ्कर अति शान्तमूर्त्ति थे इस कारण शान्तियुक्त सनन्दन आदि महासिद्ध और यक्षराक्षसों के रक्षक (शिवजी के) सखा कुवेर, यह सब उनके समीप वैठकर उनकी उपासना कररहेथे ॥ ३३ ॥ आपही सकल जगत् के हितकारी और पालक होने के कारण, प्राणीमात्र के प्रेम से जो, मेरा आचरण देखकर ऐसा ही सकल लोक वर्त्ताव करें, ऐसी उदार बुद्धि से उपासना, चित्त की एकाग्रता और समाधि इन के मार्ग को आचरण करके लोकों को दिखारहेथे ॥ ३४ ॥ जो सन्ध्याकाल के मेघ की समान दमकते हुए अपने शरीर पर तपस्वियोंके योग्य, भस्म, दण्ड, जटा और कृष्ण मृगचर्म को तथा मस्तक पर चन्द्रमा की कला को धारण करेहुए थे ॥ ३५ ॥ वह कुशा के आसनपर बैठकर कितने ही सत्पुरुषों के सुनतेहुए, प्रश्न करनेवाले नारदजी

स्यां ब्रह्म सनातनम् ॥ नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥ ३६ ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ॥ बाहुं प्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥ ३७ ॥ तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ॥ सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥ ३८ ॥ स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ॥ उत्थाय चक्रे शिरसाभिवन्दनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥ ३९ तथापरे सिद्धगणा महर्षिभिर्ये वै समन्तादनु नीललोहितम् ॥ नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ॥ शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥ ४१ ॥ त्वमेव भगवन्नेतच्छिवश-

को सनातन ब्रह्म का उपदेश कररहे थे ॥ ३६ ॥ वह दाहिनी जङ्घापर वाम चरणकमल और दाहिने घुटनेपर बाईं बाहु रखकर, वीरासन + लगाकर दाहिने पहुँचे में रुद्राक्षों की माला पहिनकर तर्कमुद्रा * से बैठेहुए थे ॥ ३७ ॥ वाम जङ्घा को दृढ़ करने के निमित्त योगपट्ट (बैसाखी) का आश्रय करके, ब्रह्मानन्द के विषैं चित्त की वृत्ति को एकाग्र कर स्वस्थ बैठेहुए विचारवानों में परमविचारवान् तिन शङ्कर को लोकपालोंसहित ऋषियों ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया ॥ ३८ ॥ देवता और दैत्यों के अधिपति जिनके चरणोंको प्रणाम करते हैं ऐसे सब के पूजनीय होकर भी तिन शिवजी ने, ब्रह्माजी मेरे पास आये हैं ऐसा देखकर 'जैसे कश्यप ऋषि को आयेहुए देखकर वामन अवतार धारण करनेवाले विष्णु ने उठकर प्रणाम किया था तैसे' आसनपर से उठकर महादेवजी ने ब्रह्माजी को मस्तक नवाकर प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ तिसीप्रकार अन्य सिद्धपुरुष तथा महादेवजी के समीप में बैठेहुए बड़े २ ऋषियों ने भी ब्रह्माजी को प्रणाम किया, इसप्रकार शिवजी और शिवगणों ने जिन को प्रणाम कियाहै ऐसे ब्रह्माजी हँसतेहुए चन्द्रशेखर से कहनेलगे ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी ने कहा कि—हे शङ्कर ! यद्यपि तुम ने लोकशिक्षा के निमित्त अपना छोटापन दिखाकर मुझे पिता की समान प्रणाम किया है तथापि तुम विश्व के स्वामी हो और जगत् का उत्पत्तिस्थान जो प्रकृति तथा बीज जो पुरुष तिनकाभी मूलकारण जो निर्विकार ब्रह्म सोतुम ही हो यह मैं जानता हूँ ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! जैसे मकरी आप ही तन्तुओं को उत्पन्न करती

+ एकपादमथैकस्मिन् विन्यसेदूरुसंस्थितम् । इतरस्मिंस्तथा बाहुं वीरासनमिदं स्मृतम् ॥ अर्थात्—अपना एक चरण दूसरी जंघापर चढ़ाकर और जिस जंघापर चरण न हो उसपर बाहु रक्खे इस आसन को योगशास्त्र में वीरासन कहा है ॥

* तर्जन्यंगुष्ठयोरग्रे मिथः संयोज्य चांगुलीः । प्रसार्य बन्धनं प्राहुस्तर्कमुद्रेति तान्त्रिकाः ॥ अर्थात्—अंगूठे के समीप की तर्जनी नामक अँगुली और अंगूठे के अग्रभाग में एक से एक को परस्पर मिलाकर चिमटी की समान करे शेष तीन अँगुलियों को फैलीहुई ही रक्खे, इस बन्धन को तान्त्रिक लोग तर्कमुद्रा कहते हैं ॥

वत्योः सरूपयोः ॥ विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥ ४२ ॥
त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ॥ त्वयैव लोकेऽव-
सिताश्च सेतवो यान् ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥ ४३ ॥ त्वं कर्मणां
मंगल मंगलानां कर्तुः स्म लोके तनुषे स्वः परं वा ॥ अमङ्गलानां च तमि
स्रमुल्बणं विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥ ४४ ॥ न वै सतां त्व-
च्चरणार्पितात्मनां भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ॥ भूतानि चात्मन्यपृथग् दिद-
क्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥ ४५ ॥ पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः
परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ॥ परान्दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदास्तान्माऽऽवधीद्दैववधान्
भवद्विधः ॥ ४६ ॥ यस्मिन्यदा पुष्करनाभमायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ॥

है और उनमें क्रीड़ा करके फिर उनको अपनेमें लय करलेतीहै तैसेही तुमभी निजस्वरूप प्र
कृति पुरुषके विषैं क्रीड़ा करतेहुए इस जगत्को उत्पन्न करतेहो, पालतेहो और फिर लय भी
करते हो ॥ ४२ ॥ तुमनेही धर्म और अर्थ को उत्पन्न करनेवाले वेदकी रक्षा के लिये
दक्ष को निमित्त करके इस यज्ञ को उत्पन्न कराहै और व्रतधारी ब्राह्मण जिस धर्ममर्यादा
का भक्तिपूर्वक पालन करते हैं उस धर्मकी मर्यादा को भी लोकों में तुमनेही बाँधा है
॥४३॥ हेमङ्गलरूप! तुमही उत्तम कर्म करनेवालेको स्वर्ग वा मोक्ष तथा निन्दितकर्म करने-
वाले को भयङ्कर नरक देतेहो किसीपुरुपको विपरीत फल मिलता है इसका कारण क्याहै ?
अर्थात् दक्ष के उत्तम कर्म करनेपर उसका नाश क्यों हुआ?॥ ४४ ॥ यदि
कहोकि—क्रोध के कारण ऐसा हुआ सो ठीक नहीं, क्योंकि—यह क्रोध जैसे पशुकी
समान अज्ञानी को घेरलेता है तैसे, जिन्होने अपना अन्तःकरण तुह्मारे चरणों में समर्पण
करा है, जिन्हों ने सकल प्राणियों में तुमही हो ऐसी दृष्टि करी है और जो आत्मस्वरूप
में सकल प्राणीमात्र को अभेदभाव से देखते हैं तिन सत्पुरुषों को प्रायः अपने वशमें नहीं
करसक्ताहै फिरवह क्रोध तुम को कैसेप्राप्त होसक्ता है! ॥ ४५ ॥ भेददर्शी होने के का-
रण कर्मकाण्ड में ही जिनकी दृष्टि है, जिनका अन्तःकारण दुष्ट है, जिनके मनको दूसरों
की उन्नतिसे सदा क्लेश होता है और जो मर्मभेदी होनेके कारण अपने दुर्वचनों से दूसरों
कोपीड़ा देते हैं उनका दैवसे ही वध होताहै अतःउनका नाश करने के निमित्त आपसमान
साधुओं को नहीं प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ४६ ॥ मुझे तो यही योग्य प्रतीत होताहैकि-
आप साधुओं के वर्त्ताव की ओर ध्यान देकर इस के ऊपर अनुग्रह ही करें क्यों कि—
कमलनाभ भगवान् की माया से मोहित हुई है बुद्धि जिनकी ऐसे पुरुष, जिस देश और
जिससमय 'यह मैं और यह दूसरा' ऐसा भेद मानकर साधुओंका अपराध करते हैं
तिस देश और तिस समय में सत्पुरुष अपने दयालु स्वभाव से 'हमारा प्रारब्ध ही ऐसा है,

कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥ ४७ ॥ भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरन्तयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ॥ तया हतात्मस्वनुकर्मचेतःस्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥ ४८ ॥ कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्य मनो प्रजापतेः ॥ न यत्र भागं तव भागिनो ददुः कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥ ४९ ॥ जीवताद्यजमानोयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ॥ भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥ ५० ॥ देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः ॥ भवताऽनुगृहीतानामाशु मन्योऽस्त्वनातुरम् ॥ ॥ ५१ ॥ एष ते रुद्र भागोस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ॥ यज्ञस्ते रुद्र भागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥ ५२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रुद्रसांत्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ॥ अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥ १ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिंतये ॥

इस में तिन पुरुषें का कौन अपराध है ?' ऐसा विचार कर अन्त में उन के ऊपर कृपा ही करते हैं, उन का नाश करने को उद्यत नहीं होते हैं ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! परमपुरुष की अथाह माया से तुम्हारी बुद्धि का स्पर्श भी न होने के कारण तुम सर्वज्ञ हो; अतः जिनकी बुद्धि को उस माया ने मोहित करलियाहै इसकारण ही जिनका मन कर्म करनेमें आसक्त होरहा है उनके ऊपर आप को अनुग्रह ही करना योग्य है ॥ ४८ ॥ तिससे हे शङ्कर जिस यज्ञमें कुबुद्धि यज्ञ करानेवालों ने जो यज्ञको सफल करता है तिस यज्ञ का भागपाने योग्य आप को भाग नहीं दिया इसकारण ही तुम्हारे विध्वंस करडालने से समाप्त न हुए तिस दक्ष प्रजापति के यज्ञ का आप फिर उद्धार करें ॥ ४९ ॥ यह यजमान(दक्ष) जीवित होय, भगदेवता फिर नेत्रों को प्राप्तहों, भृगु की डाढ़ी मूछें फिर उगआवें, और पूषा देवताके दांतभी पहिले की समान निकल आवें ॥ ५० ॥ हे शिव ! शस्त्र और पत्थरों से जिनके शरीर टूटगये हैं तिन देवता और ऋत्विजों को तुम्हारी कृपा से शीघ्र नीरोगता प्राप्त हो ॥ ५१ ॥ हे रुद्र ! यज्ञ होनेपर जितना पदार्थ शेष रहेगा वह निश्चय तुम्हारा भाग हो, हे यज्ञविध्वंसक रुद्र ! तुम्हारे भाग से आज यज्ञ को पूर्णता प्राप्तहो ५२ इति चतुर्थस्कन्ध में षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहतेहैं कि—हेमहावीर विदुरजी! इसप्रकार ब्रह्माजी के विनती करनेपर सन्तोष को प्राप्तहुए शिवजी ने, हँसकर ब्रह्माजी से 'सुनो' ऐसा कहकर उत्तर देने का प्रारम्भ किया ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी ने कहा कि— हे प्रजापते ब्रह्माजी ! देवकी माया से मोहित हुए अज्ञानी पुरुषों के अपराध को न मैं कभी कहता हूँ और न मनमें ही लाता हू, परन्तु धर्ममर्यादा की रक्षा करने के लिये उस

देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥ २ ॥ प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वज-मुखं शिरः ॥ मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥ ३ ॥ पूषा तु यज-मानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् ॥ देवाः प्रकृतसर्वाङ्गा ये म उच्छेषणं ददुः ॥ ॥ ४ ॥ बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः ॥ भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मी-ढुष्टमोदितम् ॥ परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ६ ॥ ततो मी-ढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः ॥ भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ॥७॥ विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान् भवः ॥ सन्दधुः कस्य कायेन सवनी-यपशोः शिरः । ८ ॥ सन्धीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः ॥ सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥ ९ ॥ तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः ॥ शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥ १० ॥ भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनु-

अपराधका मैं उनको दण्ड देता हूँ ॥ २ ॥ जिसका मस्तक पाहिले जलगया है तिस दक्ष प्रजापति के वकरे का शिर लगाने पर लगजायगा, भगदेवता यज्ञ में के अपने भागको मित्र नामक देवताकी दृष्टिसे देखेंगे ॥ ३ ॥ पूषा देवता तो जो चवानेकी वस्तुहो उसको यजमानके दांतोंसे चावकर भक्षण करें और पिष्ट (हलुआ आदि पिट्ठीहुई वस्तु) भक्षण करें, जिन देव ताओं ने मुझे यज्ञमें का शेषभाग दिया है उनके सकल अङ्ग पहिले की समान जैसेके तैसे होजायँगे ॥ ४ ॥ अध्वर्यु और ऋत्विजों में जिनकीवाहु टूटगई हैं उनकी वाहुओं के कार्य अश्विनीकुमार की वाहुओं से होंगे और जिन के हाथ टूटगए हैं उनके हाथोंके कार्य पूषादेवता के हाथों से होंगे, भृगु के वकरे की डाढ़ी मूछें लगेंगी ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हेविदुरजी ! उससमय सवने शिवजी के कथन को सुनकर सन्तुष्ट अन्तःकरण से 'वहुत उत्तम, वहुत उत्तम ' ऐसा कहा ॥ ६ ॥ तदनन्तर ऋषियोंसहित देवताओं ने ' आपको आकर सव कार्य करना चाहिये ' ऐसी शिवजी से प्रार्थना करके,शिवजी और ब्रह्माजी के साथ फिर तिस यज्ञमण्डप में आये ॥ ७ ॥ और उन्होने भगवान् शिवजी के कथनानुसार सव कार्य करके दक्षके धड़ में यज्ञके पशुका मस्तक जोड़दिया ॥ ८ ॥ मस्तक जोड़ने के अनन्तर रुद्र भगवान् की कृपादृष्टि से देखेहुए वह दक्ष, तत्काल जैसे कोई सोताहुआ मनुष्य जागकर उठताहै तैसे उठकर खडा हुआ सो अपने सन्मुख शिव जी को देखा ॥ ९ ॥ वर्षाकाल का सरोवरोंका मलिन जल जैसे शरद ऋतु आनेसे निर्मल होता है तैसे शिवजी से पाहिले द्वेष करने के कारण जिनदक्षका अन्तःकरण पापयुक्त होगयाथा वही दक्ष उस समय शिवजी के दर्शन से निर्दोष होगये ॥ १० ॥ और शिवजी की स्तुति करनेका दक्षने मनमें विचार किया परन्तु मरणको प्राप्तहुई कन्या का स्मरण

रागतः ॥ औत्कण्ठ्याद्बाष्पकलया सम्परेतां सुतां स्मरन् ॥ ११ ॥ कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितः सुधीः ॥ शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशम्प्रजापतिः ॥ १२ ॥ दक्ष उवाच ॥ भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ॥ न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥ १३ ॥ विद्यातपोव्रतधरान्मुखतः स्म विप्रान् ब्रह्मात्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक् ॥ तद्ब्राह्मणान्परमसर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ॥ १४ ॥ योऽसौ मयाऽविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्मां अर्वाक्पतंतमर्हत्तमनिंदयाऽपात् दृष्ट्यार्द्रया स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ॥ १५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः ॥ कर्म संतानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥ १६ ॥ वैष्णवं यज्ञसंतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः॥पुरोडाशं निरवपन्वीरसंसर्गशुद्धये॥१७॥

आजाने के कारण प्रेम और उत्कण्ठा से विह्वल हुए दक्ष प्रजापति स्तुति न करसके ११ तब प्रेमसे विह्वल हुए परमबुद्धिमान् दक्ष प्रजापति ने बड़े कष्टसे अपने मनको रोककर निष्कपटभाव से शिवजी की स्तुति करी ॥ १२ ॥ दक्षने कहा—हेभगवन् ! मैंने पहिले तुम्हारी यद्यपि बहुत निन्दा करी तथापि आपने मेरी उपेक्षा न करके मुझे दण्ड दिया, यह मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह करा, तुम्हारे और विष्णु भगवान् के हाथ से अधम ब्राह्मणों कीभी उपेक्षा नहीं होती है फिर जो व्रतधारी हैं उनकी उपेक्षा कैसे होसक्ती है ? ॥ १३ ॥ हेप्रभो ! वेदका और आत्मतत्त्व का, सम्प्रदाय की परम्परासे लोकों को ज्ञान होनेके निमित्त तुमने प्रथम अपने मुख से विद्या, तपस्या और व्रत को धारण करनेवाले ब्राह्मणों को उत्पन्न किया है, सो जैसे ग्वाला हाथ में दण्ड लेकर पशुओं की रक्षा करता है तैसे आप दुष्टोंको दण्ड देकर सकल सङ्कटोंसे ब्राह्मणों की रक्षा करते हो ॥ १४ ॥ तत्त्वज्ञानहीन मैंने भरीसभा में दुर्वचनरूप बाणों से आप को वेधा तथापि आपने उस अपराधको न गिनकर, महात्माओं की निन्दा करने के कारण नरक में पड़तेहुए मेरी, कृपादृष्टि से रक्षा करी, तिस अपने करे हुए उपकार सेही आप प्रसन्न हों, क्योंकि—उसका प्रत्युपकार (बदले में उपकार) करने की मुझ में शक्ति नहीं है ॥ १५ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! तिन दक्ष प्रजापति ने, इसप्रकार महादेवजी से अपराध को क्षमा कराकर ब्रह्माजी की सम्मति पाय, उपाध्याय, ऋत्विज और अग्नि की सहायता से तिस यज्ञ कर्म को आगे को चलाया ॥ १६ ॥ तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने, प्रमथ आदि वीरों के संसर्ग का दोष दूर होने के निमित्त और यज्ञ का कर्म आगे को चलने के निमित्त, विष्णुभगवान् को समर्पण करने का त्रिकपाल पुरोडाश सिद्ध किया

अध्वर्युणात्तहविषा यजमानो विशांपते ॥ धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥ १८ ॥ तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश ॥ मुष्णंस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥ १९ ॥ श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः ॥ शङ्खाब्जचक्रशरचापगदासिचर्मव्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥ २० ॥ वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासावलोककलया रमयंश्च विश्वम् ॥ पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः ॥ २१ ॥ तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः ॥ प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः ॥२२॥ तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः ॥ मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥ २३ ॥ अप्यर्वाग्वृत्तयो यस्य महित्वात्मभुवादयः ॥ यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥२४॥ दक्षो गृहीता-

अर्थात् तीन कपालों पर पुरोडाश नामक हवन की वस्तु होमकरने के निमित्त विष्णुभगवान् के प्रकट होने की प्रार्थना करी ॥ १७ ॥ हे विदुर जी ! पुरोडाश की आहुति हाथ में धारणकरनेवाले अध्वर्यु के साथ यजमान दक्षने जब शुद्धबुद्धि से विष्णुभगवान् का ध्यान किया सो तत्कालही विष्णुभगवान् तहां प्रकट हुए ॥ १८ ॥ उससमय दशों दिशाओं को उज्ज्वल करनेवाली अपनी कांति से तिन सभासदों के तेज को मन्द करनेवाले वह भगवान्, बृहत् और रथन्तर नामक दो साम जिसके पक्ष (पर) हैं तिस गरुड़पर चढ़कर तहां आपहुँचे ॥ १९ ॥ वह—श्यामवर्ण, कमर में सुवर्ण की तागडी पहिनेहुए, सूर्यकी समान तेजस्वी मुकुट को धारे, नीलकेश रूप भ्रमरों से शोभायमान मुखकमलवाले, शङ्ख, पद्म, चक्र, बाण, धनुष, गदा, तलवार और ढाल इन आठ आयुधों को धारण करेहुए सुवर्ण के आभूषणों से युक्त आठ भुजाओं करके प्रफुल्लित कनेर के वृक्ष की समान शोभित थे २० उनके वक्षःस्थल में लक्ष्मी का निवास था, वनके पुष्पों की माला पहिने; और सुन्दर हास्य तथा कटाक्षपातों से सकल विश्व को आनन्दित कररहेथे, पंखा और चँवर जिन के दोनों ओर राजहंस के पंखों की समान ढुलरहे थे, शिरपर श्वेत छत्ररूप चन्द्रमा शोभाको बढ़ारहाथा॥२१॥इस प्रकार भगवान् को आये हुए देखकर, ब्रह्मा, इन्द्र और शिव जिन में प्रधान हैं ऐसे सकल देवताओं ने एकसाथ उठकर नमस्कार किया ॥ २२ ॥ भगवान्के तेज से क्षीणकान्ति हुए, भयभीत और प्रेम से गद्गद हुई वाणीवाले देवताओं ने, मस्तकपर दोनों हाथ जोड़कर उन अधोक्षज भगवान् की स्तुति करी ॥ २३ ॥ ब्रह्मादि सकल देवताओं की मनवाणी की पहुँच यद्यपि भगवान् की महिमा पर्यन्त नहीं थी तथापि सबके ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त स्वरूप धारकर प्रकटहुए विष्णुभगवान् की वह यथामति स्तुति करनेलगे ॥ २४ ॥ उस समय एकाग्रचित्त और हाथ जोड़े

हर्णसादनोत्तमं यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुं ॥ सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृतं मुदा गृणन्प्रपेदे प्रयतः कृतांजलिः ॥ २५ ॥ दक्ष उवाच ॥ शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायां ॥ तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्यामास्ते भवानपरिशुद्ध ईवात्मतन्त्रः ॥ २६ ॥ ऋत्विज ऊचुः ॥ तत्त्वं न ते वयमनंजन रुद्रशापात् कर्मण्यवग्रहधियो भगवन् विदामः ॥ धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदो व्यवस्थाः ॥ २७ ॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्रव्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्णात्मगेहोरुभारः ॥ द्वंद्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥ २८ ॥ रुद्र उवाच ॥ तव वरद वरांघ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ॥ यदि रचितधियं

हुए तिस दक्ष प्रजापति ने, पूजा की सामग्री से भराहुआ पात्र हाथमें लेकर, जगत् को रचनेवाले ब्रह्मादिकों के परमगुरु और नन्द सुनन्द आदि पार्षदों से घिरेहुए उन यज्ञपति भगवान् की पूजा करके आनन्द के साथ स्तुति करताहुआ वह उनकी शरणगया॥२५॥ दक्षने कहा-हे परमेश्वर ! अपने स्वरूप में रहनेवाले और जिनसे बुद्धि की जाग्रत आदि अवस्था सदा दूर रहती हैं ऐसे अद्वितीय शुद्ध चैतन्यस्वरूप तुमही हो, मायाका तिरस्कार करके स्वतन्त्र रहते हो तथापि उस माया के द्वारा मनुष्य शरीर का नाटक धारकर उस में रहतेहुए, रामकृष्ण आदि अवतारों में रागद्वेष आदि से युक्त से प्रतीत होते हो ॥२६॥ ऋत्विजों ने कहा--हे निरञ्जन भगवन् ! हम रुद्र के अंश नन्दिकेश्वर के शाप से केवल कर्म्मोंमेंही आग्रह करनेवाली बुद्धि धारते हुए आपके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते हैं, किन्तु जिस यज्ञ की सिद्धि के निमित्त, 'अमुक कर्म में अमुकही देवता है, दूसरा नहीं है' ऐसी व्यवस्था से तुम रहेहो, ऐसे धर्म को चलानेवाले ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में वर्णन करे हुए इस यज्ञ नामक तुम्हारे स्वरूपकोही हम जानते हैं ॥२७॥ सदस्यों ने कहा—हे शरण देनेवाले देव ! जिसमें विश्राम का स्थान कोई हैही नहीं, अनेकों क्लेशरूप विकट स्थान हैं, मृत्युरूप उग्रसर्प बैठाहुआ ताकरहा है, विषयरूप मृगतृष्णा का जल है, सुख दुःख लाभ हानि जय पराजय आदि द्वन्द्वरूप गढ़हे हैं, दुष्ट पुरुषरूप हिंसक पशुओं का भय और शोकरूप वड़वानल धधकरहा है ऐसे इस संसारमार्ग में जाता हुआ, अहङ्कारका स्थान शरीर और ममताका स्थान घर इनके बोझेसे पिचनेवाला और काम वासना से पीड़ित हुआ यह अज्ञानी जीवोंका समूह आप के चरणरूप विश्राम के स्थानको कब पावेगा ? ॥ २८ ॥ रुद्र ने कहा—हे वरदायक ! इस लोक में सकल पुरुषार्थों की प्राप्ति के साधन और निष्काम मुनियों से भी आदर के साथ पूजनेयोग्य आप के पूजनीय

मांविधं लोकोपविद्धं जंपति न गणये तच्चत्परानुग्रहेण ॥ २९ ॥ भृगुरुवाच यन्मायया गहनयाऽपहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपंतः ॥ नात्मन् श्रितं तव विदंत्यधुनाऽपि तत्त्वं सोयं प्रसीदतु भवान्प्रणतात्मबंधुः ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थभेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत् ॥ ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयाद्व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥ ३१ ॥ इंद्र उवाच ॥ इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानन्दकरं मनोदृशाम् ॥ सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ॥ ३२ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाद्य दक्षकोपात् ॥ तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥ ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अनन्वितं ते भगवन्विचेष्टितं यदात्मनाचरसि हि कर्म नाज्यसे ॥ विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्त्ततीं भवान् ॥ ३४ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ अयं

चरण में बुद्धि की स्थापना करनेवाले मुझको अज्ञानी पुरुष, यद्यपि आचार भ्रष्ट कहते हैं तथापि तुम्हारे परम अनुग्रह से उस कथनको कुछ नहीं गिनता हूँ ॥ २९ ॥ भृगुजी ने कहा कि-हे देव ! तुम्हारी अगाध माया ने जिनके आत्मज्ञान को हरलिया है वह ब्रह्मादिक जीव, अज्ञानरूप अन्धकार में सोरहे हैं और निजस्वरूप में स्थित आपके वास्तविक तत्त्वको अबभी नहीं जानते हैं ऐसे शरणागत भक्तों के आत्मा और हितकारी आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३० ॥ ब्रह्माजीने कहा हे प्रभो ! पदार्थों को पृथक् २ जाननेवाली इन्द्रियों के द्वारा पुरुष जो कुछ देखेगा वह सब आप का वास्तविक स्वरूप नहीं है क्योंकि-ज्ञान, शब्दादि विषय और श्रोत्र आदि इन्द्रियों के आश्रयरूप आप तिस प्रपञ्च से पृथक् हो ॥ ३१ ॥ इंद्र ने कहा-हे अच्युत ! दैत्यों के नाशक, ऊपर को उठे हुए शस्त्रों को धारण करनेवाली आठ भुजाओं से युक्त यह जगत् को पालन करनेवाला आप का स्वरूप भी प्रपञ्च की समान मायारचित नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि-यह हमारे मन और दृष्टि को जैसा आनन्द देता है ऐसा प्रपञ्च नहीं देता है ॥ ३२ ॥ ऋत्विजों की स्त्रियों ने कहा-हे यज्ञमूर्त्ते ! आप का पूजन करने के निमित्त ब्रह्माजीका पहिलेका उत्पन्न कराहुआ यह यज्ञ आज दक्षके ऊपर क्रोध से शिवजीने विध्वस्त करडाला है, सो श्मशान भूमि की समान उत्साह रहित हुए इस हमारे यज्ञको तुम अपनी कमलसमान सुन्दर दृष्टिसे पवित्र करो ॥ ३३ ॥ ऋषियों ने कहा-हे भगवन् ! आपकी अद्भुत लीला है, क्योंकि तुम आप कर्म करतेहो परन्तु उनसे लिप्तनहीं होतेहो, दूसरे पुरुष अपने को ऐश्वर्य मिलने की इच्छा से जिसकी उपासना करते हैं वह लक्ष्मी, आप ही निरन्तर तुम्हारी सेवा करती रहती है तो भी तुम उसका कुछ आदर नहीं करते हो अर्थात् उसमें आसक्त नहीं होते हो ॥ ३४ ॥ सिद्धों ने कहा-हे देव ! हमारा मनरूप हाथी, क्लेशरूप दावानलसे सन्तप्त

त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्ध ॥ तृषार्तोऽवगाढो न संस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः ॥ ३५ ॥ यजमान्युवाच ॥ स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ॥ त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनैः कबन्धो यथा पूरुषः ॥ ३६ ॥ लोकपाला ऊचुः ॥ दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यं ॥ माया ह्येषा भवदीया हि भूमन्यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥ ॥ ३७ ॥ योगेश्वरा ऊचुः ॥ प्रेयान्न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ॥ अथापि भक्त्येश तयोपधावतामनन्यवृत्त्यानुगृहाण वत्सल ॥ ३८ ॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयात्ममा-

होने के कारण पिआस से व्याकुल होताहुआ इससमय तुम्हारी कथारूप निर्मल अमृतकी नदी में प्रवेश करके गोता लगाये बैठा है, तहाँ ब्रह्मानन्द में निमग्न हुए पुरुषकी समान उसको संसाररूप दावानल का स्मरणभी नहीं होता है और उस नदीमें से बाहर को नहीं निकलता है ॥ ३५ ॥ यजमान की स्त्री ने कहा—हे ईश्वर ! आप यहाँ आये, यह बड़ा अनन्द हुआ, आप हमारे ऊपर प्रसन्नहों, आपको नमस्कार करतीहूँ, हे लक्ष्मीपते ! मनोहर लक्ष्मीसहित तुम मेरी रक्षा करो; हे यज्ञपते ! जैसे मस्तक अलग होकर धड़मात्र शेष रहा पुरुष, हाथ चरण आदि अङ्गों से शोभा नहीं पाता है तैसेही यज्ञभी तुम्हारे विना प्रयाज अनुयाज आदि अङ्गों से शोभा नहीं पाता है ॥ ३६ ॥ लोकपालों ने कहा—हे सर्वव्यापक! जिससे सकल दीखनेवाले पदार्थ देखेजाते हैं ऐसे अन्तर्यामी द्रष्टा तुम, नाशवान् विषयों को देखनेवाली हमारी इन्द्रियों से क्या देखेगये ? किन्तु नहीं; जो तुम, पांचभूतोंसहित छठे जीवकी समान हमें प्रतीत होते हो यह तुम्हारा वास्तविक स्वरूप नहींहै किन्तु तुम्हारी माया है अर्थात् तुम शुद्धचित्त पुरुषों को शुद्धसत्वरूप प्रतीत होते हो और हम विषयासक्त इन्द्रियोंवाले हैं अतः हमको तुम जीव से प्रतीत होते हो, सो आप के वास्तविकरूप को न जाननेवाले हमको धिक्कार है ॥ ३७ ॥ योगेश्वरों ने कहा कि—हे प्रभो ! परब्रह्मस्वरूप आपसे जो मनुष्य, अपने को वा सकल जीवों को भिन्न नहीं मानता है अर्थात् सकल प्राणियों में ईश्वरबुद्धि रखता है उस से अधिक प्यारा आप को कोई नहीं है, यह ठीक है तथापि हे भक्तवत्सल ईश्वर ! एकचित्तभक्ति से आपकी सेवा करनेवाले हमपर अनुग्रह करिये ॥ ३८ ॥ जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाश होने के लिये जीवोंके प्रारब्ध से जिसके गुण अनेकों भेद पाते हैं तिस अपनी मायासे तुमने अपने स्वरूप में ब्रह्मा आदि भिन्न २ रूप रचेहैं परन्तु अपनी केवल स्वरूप की स्थिति से तुमने आत्मामें भासनेवाले गुण और उन के कारण दीखनेवाले भिन्न२ रूप यह

यया ॥ रचितात्मभेदमूर्तये स्वसंस्थया विनिवर्त्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये ॥ निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेपि च ॥ ४० ॥ अग्निरुवाच ॥ यत्तेजसाऽहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वरे आज्यसिक्तं ॥ तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोस्मि यज्ञं ॥ ४१ ॥ देवा ऊचुः ॥ पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन्सलिले उरगेन्द्राधिशयने ॥ पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥ ४२ ॥ गंधर्वा ऊचुः ॥ अशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ॥ क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य च भूमन् तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ॥ ४३ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ त्वन्मायाऽर्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ॥ क्षिप्तो-

सब दूर करदिये हैं ऐसे आपको नमस्कार हो ॥३९॥ शब्दब्रह्म ने कहा-मैं और ब्रह्मादिक भी जिसके स्वरूप को नहीं जानते हैं ऐसे वास्तव में निर्गुण होकर शुद्धसत्वगुणी मूर्ति धारकर धर्म आदिका फल देनेवाले तुम भगवान् को नमस्कार है ॥ ४० ॥ अग्निने कहा जिसके तेजसे मैं प्रज्वलित होकर उत्तम यज्ञ में घृत से सींचेहुए होम के पदार्थों को देवताओं के समीप लेजाकर जिसका तिसको पहुँचाता हूँ, तिन—आश्रावय, अस्तु श्रौषट्, यज, ये यजामहे और वषट्' इन पाँचमंत्रों से जिसका उत्तम पूजन होता है और अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और साम इन पाँचरूपवाले यज्ञरूप तुम यज्ञपालक को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥ देवताओं ने कहा—हेदेव ! जिन आपने पहिले वीतेहुए कल्प में अपने उत्पन्न करेहुए इस कार्यरूप जगत् को, अपने उदर में रखकर, तिस प्रलयकाल के जल में शेषरूप शय्या के ऊपर शयन किया था और उससमय जन आदि लोकोंमें रहनेवाले सिद्धों ने जिनके ज्ञानमार्ग का अपने हृदय में चिन्तवन किया था वही तुम पुराणपुरुष आज हमारी दृष्टि के मार्ग में आगेहो, सो तुम हम सेवकोंकी रक्षा करते हो ॥ ४२ ॥ गन्धर्वों ने कहा—हे जगद्व्यापक ! सर्वेश्वर ! देव ! यह मरीचि आदि ऋषि और ब्रह्माजी, इन्द्रादि, रुद्रादि देवता, तुम्हारे अंशकेही अंशावतार हैं और यह सकल जगत् तुम्हारी क्रीड़ा की सामग्री से भराहुआ भाण्ड (पात्र) है ऐसे आपको हम नित्य नमस्कार करते हैं ॥४३॥ विद्याधरों ने कहा—हम को तो ऐसा प्रतीत होताहै कि—तुम्हारे भजन से धर्मादि चारों प्रकार के पुरुषार्थ के साधन इस शरीर को पाकरभी विषयवासना में फँसाहुआ यह संसार, तुम्हारी माया से मोहित होता है और इस शरीर आदि में 'यह मैं, यह मेरा' ऐसा अभिमान करके, नम्रता से वर्त्ताव करना आदि धर्ममार्ग को

ध्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उद्व्युदस्येत् ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ॥ त्वं सदस्यर्त्विजो दंपती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥ ४५ ॥ त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ॥ स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥ ४६ ॥ स प्रसीद त्वमस्माकमाकांक्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणां ॥ कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥ ४७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्ररुद्रावमर्शितम् ॥ कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञभावने ॥ ४८ ॥ भगवान्स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् ॥ दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं ब्रह्मा च शर्वश्च

त्यागकर इसकेही पुत्रादि इसको अनेकों धिक्कार देतेहैं, देखो तो भी तुच्छ विषयोंमें आसक्त होताहुआ अपने मोह को नहीं त्यागता है; परन्तु हे देव ! तुम्हारी कथारूप अमृत को सेवन करनेवाला पुरुष अपने मोह का सर्वथा त्याग करदेता है ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणों ने कहा कि–हे भगवन् ! तुम ही यज्ञ, तुम ही हवन की सामग्री, तुमही अग्नि, तुम ही स्वयं मंत्र, समिधा,कुशा और यज्ञके पात्र हो, तथा सदस्य, ऋत्विज, यजमानकी स्त्री, यजमान, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमरस,घृत और पशु यह सब तुम ही हो ४५ हे वेदत्रयीमूर्त्ते ! तुमने पहिले, यज्ञक्रतुरूप * वराह अवतार धारण करके, योगियों के स्तुति करतेहुए. जैसे गजराज कमलिनी को शूंड से पकड़कर ऊपर को उखाड़लेता है तैसे, गर्जना करतेहुए तुमने अपनी दाढ़ करके रसातलमें से पृथ्वी को सहजमें ही निकाल लिया था ॥ ४६ ॥ हे यज्ञके रक्षक ! हमारे सत्कर्म नष्ट होने के कारण, हम आप के दर्शनोंकी इच्छा कररहे थे इसकारण आप हमारेऊपर प्रसन्न हूजिये और इस ज्ञय का उद्धार करिये यह आपको दुष्कर नहींहै; क्योंकि–यदि मनुष्य तुम्हारे नामका उच्चारण भी करलें तो यज्ञ में के सकल विघ्न नष्ट होजाते हैं और हमतो आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे मङ्गलरूप विदुरजी ! जब इसप्रकार उन सबों ने, यज्ञरक्षक इन्द्रियनियन्ता भगवान् की स्तुति करी तब,उन ज्ञानी दक्ष ने, वीरभद्रके दूषित करने के कारण पूर्ण न होनेवाले यज्ञको पूर्ण करने का प्रारम्भ किया ॥ ४८ ॥ हे निष्पाप विदुरजी ! उससमय भगवान् सर्वान्तर्यामी होनेके कारण सकल देवताओं के भागके भोक्ता और निजानन्दसे तृप्त थे, तथापि अपने त्रिकपाल पुरोड़ाशरूप भाग से प्रसन्न होते हुए से दक्षसे कहनेलगे ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–हे दक्ष ! जगत् का परम कारण,

* जिसमें पशु बांधनेका खम्भा होता है उनको यज्ञ कहते हैं उसकाही एक भेद क्रतु है ।

जगतः कारणं परं ॥ आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥५० ॥ आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ॥ सृजन् रक्षन्हरन्विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचितां ॥ ५१ ॥ तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ॥ ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥ ५२ ॥ यथा पुमान्न स्वांगेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् ॥ पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥ ५३ ॥ त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदां ॥ सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन्स शान्तिमधिगच्छति ॥ ५४ मैत्रेय उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिं ॥ अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥ ५५ ॥ रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत्समाहितः ॥ कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ॥ उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥ ॥ ५६ ॥ तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे ॥ धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥ ५७ ॥ एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ॥

सबका आत्मा, महासमर्थ, सर्वसाक्षी, स्वयंप्रकाश और उपाधि रहित मेरे ही यह ब्रह्मा और शिवरूप हैं ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मण दक्ष ! वहीमैं, अपनी त्रिगुणमयी मायाका आश्रय करके जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करता हुआ, जैसा कार्य हो उसके योग्य भिन्न २ रूपको धारकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन नामों को धारण करता हूँ। ५१ ॥ तिस सर्वान्तर्यामी, केवल अद्वितीय मुझ ब्रह्मरूप के विषैं, ब्रह्माजी और शिव क्या सकल प्राणियों को जो भेदबुद्धि से देखता है वह पुरुष अज्ञानी है ॥ ५२ ॥ जैसे कोईभी पुरुष हो अपने मस्तक हाथ आदि अङ्गों में, यह दूसरे के हैं ऐसी बुद्धि कदापि नहीं करता है तैसेही मेरे विषैं तत्पर हुआ विद्वान् पुरुष सकल प्राणियों में भेदभाव नहीं रखता है ५३ तिससे हे ब्राह्मण ! वास्तव में एकरूप और सकल प्राणियों के आत्मा जो यह ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों में जो भेदभाव नहीं रखता है वह शान्ति (मोक्ष) पाता है ॥ ५४ ॥ मैत्रयजी कहते हैं कि-हे विदुरजी ! इस प्रकार भगवान् के उपदेश करनेपर वह प्रजापतियों का अधिपति दक्ष, त्रिकपाल पुरोडाश के भाग से विष्णुभगवान् का पूजन करके अंग और प्रधान इन दोनों प्रकार से उसने सकल देवताओं का पूजन करा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर शुद्ध अन्तःकरण से उन दक्ष ने, यज्ञ में शेष बचेहुए भाग से श्रीरुद्रभगवान् को सन्तुष्ट करके, यज्ञ में के अन्तके उदवसान नामक कर्मसे और भी सोमपान करने वाले देवताओं का पूजन करके ऋत्विजों के साथ अवभृथ स्नान किया ॥ ५६ ॥ तदनन्तर अपनी सामर्थ्य सेही जिसको सिद्धि मिली है ऐसेभी तिस दक्ष को देवता, 'तेरी बुद्धि धर्म में स्थिर रहो' ऐसा आशीर्वाद देकर स्वर्ग को चलेगये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार दक्ष की कन्या सतीने अपने पहिले शरीर को त्यागकर मेनका नामक हिमालय की

जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥ ५८ ॥ तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका ॥ अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषं ॥ ५९ ॥ एतद्भगवतः शंभोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः ॥ श्रुतं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥ ॥ ६० ॥ इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ॥ यो नित्यदाकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥ ६१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञसंधानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ छ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ॥ नैते गृहान्ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥ १ ॥ मृषा धर्मस्य भार्यासीद्दम्भं मायां च शत्रुहन् ॥ असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥ २ ॥ तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते ॥ ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥ ३ ॥

स्त्री के गर्भ से जन्म लिया ॥ ५८ ॥ जैसे प्रलयकाल में निद्राको प्राप्तहुई जगत्कर्त्री शक्ति, नई सृष्टि के आरम्भ में फिर ईश्वरके पास पहुँचती है, तैसेही वह अम्बिका देवी (पूर्वजन्मकी सती) अनन्य-शरणागतों को प्राप्त होनेवाले तिनही अपने प्रियपति शिव जीको फिर वरकर सेवा करने लगी ॥ ५९ ॥ हे विदुरजी ! यज्ञका विध्वंस करनेवाले भगवान् शंकरका यह चरित्र, मैंने बृहस्पति के शिष्य परमभगवद्भक्त उद्धवजीसे पहिले सुनाथा ॥ ६० ॥ हे विदुरजी ! जो मनुष्य, इस अत्यन्त पवित्र, यशके बढ़ानेवाले, आयु के बढ़ानेवाले और सकल पापों का नाशकरनेवाले ईश्वर के चरित्र को नित्य भक्तिभावसे सुनता है वा वर्णन करता है वह अपने और दूसरों के पापको दूर करता है ॥ ६१ ॥ इति चतुर्थस्कन्ध में सप्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा नारदजी, ऋभु, हंस अरुणि और यति, इन नैष्ठिक (जन्मभर) ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करनेवाले ब्रह्माजी के पुत्रों ने गृहस्थाश्रम को स्वीकार नहीं किया इसकारण इनका वंश नहीं चला ॥ १ ॥ हे शत्रुनाशक ! विदुरजी ! ब्रह्माजी का एक अधर्म नामक पुत्र था,उसकी स्त्री मृषा (असत्य) ने दम्भ (धोखादेना) नामक पुत्र और माया (कपट का वर्त्ताव) नामक कन्या को उत्पन्न करा, वह अधर्म की सन्तान थे इस कारण उन्होंने धर्ममार्ग को छोड़कर परस्पर स्त्री पुरुषका सम्बन्ध करलिया, अधर्म के आगे के वंश में भी ऐसाही बहिन भ्राताका धर्मविरुद्ध विवाह हुआ है इधर निर्ऋति के सन्तान नहीं थी सो उसने इन दोनों को सन्तान मानकर रखलिया ॥ २ ॥ हेमहामते विदुरजी ! तिन दम्भ और माया से लोभ पुत्र और निकृति (शठता) कन्या, यह दो उत्पन्न हुए,उनके क्रोध और हिंसा यह दो सन्तान हुई,इन दोनों केभी कलि(कलह) और उसकी बहिन दुरुक्ति (दुर्वचन) यह दो सन्तान हुई ॥ ३ ॥ हे सत्तम विदुरजी ! कलि ने उस

दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम ॥ तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरय-
स्तथा ॥ ४ ॥ संग्रहेण मयाख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ॥ त्रिःश्रुत्वैतत्पुमा-
न्पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥ ५ ॥ अथातः कीर्त्तये वंशं पुण्यकीर्त्तेः कु-
रूद्वह ॥ स्वायंभुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥ ६ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ
शतरूपापतेः सुतौ ॥ वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥ ७ ॥ जाये
उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ॥ सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो
ध्रुवः ॥ ८ ॥ एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ॥ उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं
राजाऽभ्यनन्दत ॥ ९ ॥ तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् ॥ सु-
रुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥ १० ॥ न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भ-
वानारोढुमर्हति ॥ न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥ ११ ॥
बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् ॥ नूनं वेद भवान्यस्य दुर्लभेऽर्थे
मनोरथः ॥ १२ ॥ तपसाराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ॥ गर्भे त्वं सा-

दुरुक्ति में भय नामक पुत्र और मृत्यु नामक कन्याको उत्पन्न किया भय और मृत्यु ने भी परस्पर समागम करके निरय(नरक)नामक पुत्र और यातना नामक पुत्रीको उत्पन्न किया॥४। हे पवित्र विदुरजी ! मैंने तुमसे यह अधर्म का वंश संक्षेप से कहा है, मनुष्य इस पुण्यकारी आख्यान को तीन वार सुननेपर अपने मन के मल (पापवासना) को दूर करता है ॥ ५ ॥ हे कुरुकुल के भूषण ! अब आगे, श्रीहरि के अंश जो ब्रह्माजी उन के आधे शरीर से उत्पन्न हुए पवित्रकीर्ति स्वायम्भुव मनु का वंश भी मैं तुम से कहता हूँ ॥६॥ स्वायम्भुव मनु की शतरूपा नामक स्त्रीके गर्भ से प्रियव्रत और उत्तानपाद यह दो पुत्र हुए, वह वासुदेव भगवान् के अंश से उत्पन्न होने के कारण जगत् की रक्षा करने में तत्पर हुए॥७॥उन में उत्तानपाद राजाके सुरुचि और सुनीति यह दो स्त्रियें थीं,उनमें सुरुचि राजा को जैसी अधिक प्रिय थी वैसी ध्रुवजी की माता सुनीति प्रिय नहीं थी ॥८॥ एकसमय राजा सुरुचि के उत्तम नामक पुत्र को गोदी में वैठाकर खिलारहे थे सो उससमय ध्रुव के भी मन में आया कि—पिता की गोदी में वैठूं और वैठनेलगे तव (सुरुचि के भय से) राजा ने ध्रुव को गोदमें न वैठने दिया ॥ ९ ॥ उससमय, राजाके प्रेम से परम गर्व में भरीहुई तिस सुरुचि ने, राजा की गोदमें वैठने की इच्छा करनेवाले अपनी सौत के पुत्र ध्रुवजी से ईर्षा में भरकर कहा॥१०॥कि—अरे वेटा ! ठीक है तू राजाका पुत्र है तथापि मैंने तुझे अपनी कोखमें नहीं धारण करा है अर्थात् तू मेरे मार्गसे उत्पन्न नहीं हुआहै इसकारण तू राजा के आसनपर चढ़ने के योग्य नहीं है ॥ ११ ॥ अरे ! तुझे जो दुर्लभ वस्तु के पाने की इच्छा हुई है सो तू वास्तव में अज्ञानी वालक है, इसी से,मैं और स्त्री के गर्भ में वढ़ा हूं यह वात अभी तेरे ध्यान में नहीं आई है॥१२॥अव यदि तुझे राजाके आसनकी इच्छा हो

धर्यात्मानं यदीच्छसि नृपासनं ॥ १३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्याः सु-
दुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाऽहिः ॥ हित्वा मिषन्तं पितरं सन्न-
वाचं जगाम मातुः प्ररुदन्सकाशम् ॥ १४ ॥ तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं
सुनीतिरुत्संग उदूह्य बालं ॥ निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं सा विव्यथे यद्ग-
दितं सपत्न्याः ॥ १५ ॥ सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोकदावाग्निना दावल-
तेव बाला ॥ वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोजश्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥
॥ १६ ॥ दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला ॥ मामं-
गलं तात परेष्वमंस्था भुंक्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ॥ १७ ॥ सत्यं सुरु-
च्याऽभिहितं भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृहीतः ॥ स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते
यां भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥ १८ ॥ आतिष्ठ तत्तात विमत्सर-
स्त्वमुक्तं समात्राऽपि यदव्यलीकम् ॥ आराधयाधोक्षजपादपद्मं यदीच्छसि

तो तू तपस्याके द्वारा ईश्वरकी आराधना करके उन ईश्वर के ही अनुग्रह से अपने को मेरे गर्भ में जन्म मिलनेका यत्न कर॥ १३॥मैत्रेयजी कहते हैं कि–हेविदुरजी इसप्रकार,सौतेली माता के अतिकठोर वचनवाणोंसे हृदय में विधेहुए वह ध्रुवजी दण्डसे ताड़ना करे हुए सर्प की समान क्रोध से लंबे२श्वास लेतेहुए,प्रत्यक्ष देखनेवाले परन्तु सौतेली माताके प्रेमसे जिसकी बुद्धि खोटी होरही है ऐसे अपने पिताको त्यागकर रोतेहुए अपनी माता के समीप चलेगए ॥ १४ ॥ जिसका नीचेका ओठ फड़क रहा है और जो लम्बे २ श्वास लेरहा है ऐसे तिस ध्रुव बालक को उस सुनीति ने अपनी गोद में बैठाकर, नगरवासियों के मुख से जो सौत ने वचन कहे थे उन को सुनकर अति दुःख माना ॥ १५ ॥ और अपनी सौत के वचनों को स्मरण करतीहुई वह सुनीति, वन में दावानल से जैसे लता मुरझाजाती है तैसे शोकरूप दावानल से अन्तःकरण में दुःखित होकर अपने कमलसमान नेत्रों से अश्रुधारा वहा-नेलगी और एकाएकी धीरज छोड़कर विलाप करनेलगी ॥ १६ ॥ उससमय, इसदुःख का पार न देखतीहुई और लम्बे २ श्वास लेतीहुई वह सुनीति, अपने बालक ध्रुव से कह नेलगी कि–बेटा ! दूसरे ने कठोर वचन कहे, यह उसने अपराध करा, ऐसा मन में न वि-चारो, क्योंकि–जो मनुष्य दूसरे को दुःखदेता है उन को वह दुःख आप ही भोगना पड़ता है ॥ १७ ॥ बेटा ! सुरुचि ने, जो कहा सो सत्य ही है, क्योंकि–जिस मुझे महाराज 'स्त्री' वा 'दासी' कहकर वर्त्ताव करने में लज्जित होते हैं ऐसी मुझ मन्दभागिनी ने तुझे गर्भ में धारण करा और मेरे ही स्तनों के दूध को पीकर तू बढ़ा है ॥ १८॥ सो हेबेटा! मेरे उत्तमनामक पुत्रकी समान तुझे राजाके आसनपर बैठनेकी इच्छा होय तो विष्णु भगवान् के चरणकमल की निष्कपटभाव से आराधना कर एसा, जो तेरी सौतेली माताने कहा है, उस के अनुसार

ऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥ १९ ॥ यस्यांघ्रिपद्मं परिचर्य विश्वविभावनायात्तगुणा-
भिपत्तेः ॥ अजोऽध्यतिष्ठत्खलु पारमेष्ठ्यं पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ॥
॥ २० ॥ तथा मनुर्वो भगवान्पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ॥ इष्ट्वाऽभि-
पेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ॥ २१ ॥ तमेव व-
त्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिं ॥ अनन्यभावे निजधर्मभा-
विते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषं ॥ २२ ॥ नान्यं ततः पद्मपलाशलोचना-
द्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कञ्चन ॥ यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेत-
रैरङ्ग विमृग्यमाणया ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं सञ्जल्पितं मातुराकर्ण्या-
र्थागमं वचः ॥ संनियम्यात्मनात्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥ २४ ॥ नारद-
स्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह वि-
स्मितः ॥ २५ ॥ अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यतां ॥ बालोऽप्ययं

ही तू,माता के ऊपर की मत्सरता को त्यागकर तिन श्रीहरि की आराधना कर ॥१९॥हेबेटा! जगत्का पालन करने के निमित्त जिन्हों ने सत्वगुणी स्वरूप को धारण करा है,तिन भगवान् के चरणकमल की सेवा करके ब्रह्माजी को भी,'अपने मन और प्राणों को वश में करनेवाले योगियों के वन्दना करनेयोग्य'सर्वोत्तम स्थान मिलाहै ॥२०॥तैसे ही तुह्मारे दादा भगवान् स्वायम्भुव मनु ने ईश्वरसर्वान्तर्यामी हैं,ऐसी बुद्धिसे बहुत दक्षिणावाले यज्ञों के द्वारा जिन भगवान् की आराधना करके,और उपायोंसे दुर्लभ ऐसे इस भूलोक के और स्वर्गलोक के सुखों को पाकर मरण होनेपर मोक्षसुख को भी पाया था ॥ २१ ॥ इस से हेबेटा ! तूभी, मोक्ष की चाहनावाले पुरुष जिस के चरणकमल के मार्ग को ढूँढते हैं तिन भक्तवत्सल प्रभु की शरणमें जा और अपने धर्म के आचरण से शुद्ध करेहुए तथा अनन्यभक्तियुक्त अपने मनमें तिन पुरुषोत्तम को स्थापन करके सेवाकरो ॥ २२ ॥ हेबेटा ! जिसको दूसरे ब्रह्मादि ढूँढते हैं वह साक्षात् लक्ष्मी भी दीपक की समान हाथ में कमल लेकर जिनको ढूँढती है तिन कमलनयन भगवान् के सिवाय दूसरा कोई भी तेरे दुःख को दूरकरनेवाला मुझे नहीं दीखता ॥ २३ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! ध्रुवजी, ऐसे अपनी माता के विलापरूप परन्तु अपनी अभिलाषा को सिद्ध करनेवाले कथन को सुनकर अपनी ही विवेकयुक्त बुद्धि से मन को वश में करके पिता के नगर से निकलकर चलेगए ॥ २४ ॥ हे विदुरजी ! नारदजी, इस वृत्तान्त को सुनकर और उन ध्रुवजी के मन की अभिलाषा को जानकर उन के समीप आये और पापों का नाश करनेवाला (परम पवित्र) अपना हाथ उनके मस्तकपर रखकर आश्चर्य में होतेहुए अपने से ही कहनेलगे ॥२५॥ अहो ! अपमान न सहनेवाले क्षत्रियों का तेज तो देखो ! कैसा विलक्षण है ! यह ध्रुव छोटासा

हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ नाधुनाऽप्यवमानं ते सन्मानं वापि पुत्रक ॥ लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥ २७ ॥ विकल्पे विद्यमानेऽपि नह्यसंतोषहेतवः ॥ पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥ २८ परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः॥ दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥ २९ ॥ अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि ॥ यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥ ३० ॥ मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेनोरुजन्मभिः ॥ न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥३१॥ अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः ॥ यतिष्यति भवान्काले श्रेयसां समुपस्थिते॥३२॥यस्य यद्दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ॥ आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥३३॥ गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ॥ मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न

बालक होकर भी अपनी सौतेली माता के दुर्वचन को हृदय में धारण करेहुए है ॥२६॥ तदनन्तर नारदजी ध्रुवजी से कहनेलगे कि—अरे बालक! खेलने के खिलौनों में प्रेम करने वाला तू, अभी पांच वर्षका कुमार ही है, सो इस अवस्था में तुझे सन्मान वा अपमान का भेद नहीं प्रतीत होता होगा, ऐसा मुझे अनुमान होता है ॥ २७ ॥ और यदि मान वा अपमान का भेद तेरी समझ में आता है तो पुरुष को असन्तोष होने का कारण मोह को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है सो तुझे असन्तोष नहीं रखना चाहिये क्योंकि—संसार में जो कुछ सुख वा दुःख प्राप्त होता है वह अपने कर्मों से ही मिलता है ॥ २८ ॥ तिस से हे बेटा ध्रुव ! बुद्धिमान् पुरुष, ईश्वर के अनुकूल हुए विना उद्योग सफल नहीं होता है ऐसा मन में समझकर अपने प्रारब्ध से जो कुछ मिलजाय उतने से ही सन्तुष्ट रहे२९ अब तू माता के कहेहुए योग की रीति से जिस देव का प्रसाद मिलने की इच्छा करता है उस देवकी तो,मुझे प्रतीत होताहै पुरुषों को आराधना करना महाकठिन है॥३०॥क्योंकि सकल सङ्गों को त्यागकर तीव्र योगवाली समाधि करके मुनिजन बहुत से जन्मों पर्यन्त उस के मार्ग को खोजतेहुए भी उसका पता नहीं पाते हैं ॥ ३१ ॥ इस से हे ध्रुव ! अब तू इस अपनी वृथा हठ को छोड़दे,आगे को अपना कल्याण करने का समय आने पर अर्थात् वृद्ध अवस्था में तू भगवान् को पाने का यत्न करना ॥ ३२ ॥ और दूसरी यह बात है कि—सुख वा दुःख इनमें से प्रारब्धवश जो जिसको प्राप्त होय उससे ही अर्थात् सुख मिले तो पुण्य का क्षय होता है और दुःख मिले तो पापका क्षय होता है ऐसा समझकर आत्मा को सन्तुष्ट रखनेवाला जो प्राणी है वही इस संसाररूप अन्धकार के पार होता है (मुक्त होता है) ॥ ३३ ॥ यदि कहो कि—आत्मसन्तोष कैसे करे तो अरे बालक ! जो अपने से गुणों में अधिक होय उसको देखकर प्रसन्न होय, निन्दा न करे; गुणों में कम

तापैरभिभूयते ॥ ३४ ॥ ध्रुव उवाच ॥ सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनां ॥ दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥ ३५ ॥ अथापि मे विनीतस्य क्षात्रं घोरमुपेयुषः ॥ सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥ ३६ ॥ पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे ॥ ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितं ॥ ३७ ॥ नूनं भवान्भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः ॥ वितुदन्नटते वीणां हिताय जगतोऽर्कवत् ॥ ३८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तथा ॥ प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकंपया ॥ ३९ ॥ नारद उवाच ॥ जनन्याभिहितः पंथाः स वै निःश्रेयसस्य ते ॥ भगवान्वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनं ॥ ४१ ॥ तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ॥ पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ ४२ ॥ स्नात्वाऽ

होय उसको देखकर दया करे तिरस्कार न करे; और जो अपने समान गुणवाला होय उस से मित्रभाव रक्खें, स्पर्धा (डाह) न करे; ऐसा करनेवाले प्राणी को किसीप्रकार के ताप से पीड़ा नहीं होती है ॥ ३४ ॥ ध्रुवजी ने कहा-हेज्ञानी नारदजी ! सुख दुःखों के प्राप्तहोने पर जिनकी विचारशक्ति नष्ट होगई है ऐसे पुरुषों को शान्ति रखने का जो यह उपाय आपने कृपा करके दिखाया है सो हमसमान पुरुषों के जानने में आना अति कठिन है ३५ क्योंकि-घोर क्षत्रियस्वभाव प्राप्त होनेसे मुझ विनयहीन के 'सुरुचि के कठोरभाषणरूप बाणों से विधेहुए' हृदय में तो आपका उपदेश ठहरता नहीं है॥३६॥ इससे हेब्रह्मज्ञानी नारद जी ! हमारे पूर्वपुरुषाओंको तथा दूसरे किसीको भी जो प्राप्त न हुआ ऐसात्रिलोकी में जो अति उत्तमस्थान हो उसको जीतने की इच्छा करनेवाले मुझ को आप सन्मार्गका उपदेश करें ३७॥ और मेरा हित करना आप चाहते ही हैं, क्योंकि-आप ज्ञानवान् ब्रह्माजीके शरीर से उत्पन्न हुए हो, सो वास्तव में वीणा बजातेहुए जगत् का हित करने के निमित्त सूर्य की समान विचरते हो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हे विदुरजी ! ऐसे ध्रुवजी के कहने को सुन कर तत्काल प्रसन्नहुए भगवान् नारदजी, कृपा करके तिन बालक ध्रुवजी को सत् वचन का उपदेश करते हुए कहनेलगे ॥ ३९ ॥ नारदजीने कहा कि-अरे ध्रुव ! सुनीति माता ने जिन का तुझ से वर्णन किया है वही भगवान् वासुदेव, तेरे कल्याण का मार्ग हैं, सो तू भगवान् में एकाग्र चित्तलगाकर उनकाही भजनकर ॥ ४० ॥ जो पुरुष धर्म, अर्थ, काम वा मोक्ष, इनमें से किसी भी कल्याण की इच्छा करता है उसको वह कल्याण प्राप्त होने में, श्रीहरिके चरण की सेवा करनाही एक साधन है ॥ ४१ ॥ इससे हे बेटा ध्रुव ! तेरा कल्याण हो, अब तू, जहां पवित्र मधुवन है और सदा हरि का वास है तिस यमुना के पवित्र तटपर चलाजा ॥ ४२ ॥ तहां तीनों समय यमुना के पवित्र जलमें स्नान करके

नुसेवनं तस्मिन्कालिन्द्याः सलिले शिवे ॥ कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥ ४३ ॥ प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलं ॥ शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुं ॥४४॥ प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणं ॥ सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥४५॥ तरुणं रमणीयांगमरुणोष्ठेक्षणाधरम् ॥ प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम्॥४६॥ श्रीवत्सांकं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥ ४७ ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ॥ कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससं ॥ ४८ ॥ काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् ॥ दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥ ४९ ॥ पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चतां ॥ हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥ ५० ॥ स्मयमानमभिध्यायेत्सानुरागावलोकनं ॥ नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥ ५१ ॥ एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः ॥

और देवताओं को नमस्कार करना आदि अपने अधिकार के योग्य कर्मों को करके तू अपने बैठने के निमित्त कुशा आदि का आसन बिछाकर उसके ऊपर बैठ ॥४३॥ और पूरक, कुम्भक, रेचक इन तीन प्रकार के प्राणायामों को करके प्राण, इन्द्रिय और मनकी चञ्चलता को धीरे २ कम करता हुआ, धीरज धरकर श्रीहरि की धारणा करना ॥४४॥ जो भगवान् भक्तों को वरदान देने को उत्कण्ठित हैं, जिनका मुख और नेत्र सदा प्रसन्न रहते हैं, जो उत्तम नासिका, सुन्दर भ्रुकुटि, और मनोहर कपोल वाले तथा देवताओं में सुन्दर और तरुण हैं. जिनके अंग देखने में रमणीय हैं, जो कुछ एक लालीयुक्त ओठ और नेत्रों को धारण करतेहुए शरणागतों के आश्रय और सुखकारी तथा आश्रय करने योग्य एवं कृपा के समुद्रहैं ॥४५॥४६॥ जिनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स का चिन्हहै, जो मेघसमान श्यामवर्ण और पुरुष के लक्षणों से युक्त तथा कण्ठमें वनमाला को धारण करे हुए हैं, जिनकी भुजा—शंख, चक्र,गदा और पद्म से शोभायमानहैं ॥४७॥ जिनके मस्तक पर किरीट, कानों में कुण्डल, भुजदण्डों में बाजूबन्द और हाथोंमें कड़े हैं, जिनके कण्ठ को कौस्तुभमणि शोभा देरहीहै, जो रेशमी पीताम्बर पहिरे हुएहैं ॥४८॥ जिनकी कमर के चारो ओर तागड़ी का लपेट है, जिनके चरणों में सुवर्ण के नूपुर शोभायमान हैं, जिन का स्वरूप देखनेयोग्य और शान्त तथा मन एवं नेत्रों को आनन्द देनेवाला है ॥४९॥ जो हीरे की कनी की समान दमकनेवाली नखों की पंक्तिवाले अपने चरणों से, पूजा करने वाले भक्तों के हृदयकमल की कली के मध्यस्थानको घेरकर हृदय में विराजमान हैं॥ ५०॥ इसप्रकार श्रीहरि के स्वरूप की धारणा करके, तदनन्तर निश्चल और एकाग्र करेहुए मन से ' वह श्रेष्ठ वरदान देनेवाले प्रभु मेरी ओर प्रेमदृष्टि से देखते हुए मुसकुरा रहे हैं ' ऐसा चिन्तवन करे ॥ ५१ ॥ इसप्रकार भगवान् के परममङ्गलकारी रूपका ध्यान करनेवाले पुरुष

निवृत्त्या परया तूर्णं संपन्नं न निवर्तते ॥ ५२ ॥ जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ॥ यं सप्तरात्रं प्रजपन्पुमान्पश्यति खेचरान् ॥५३॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय, मंत्रेणानेन देवस्य कुर्याद्द्रव्यमयीं बुधः ॥ सपर्यां विविधैर्द्रव्यै-र्देशकालविभागवित् ॥ ५४ ॥ सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥ शस्तांकुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुं ॥ ५५ ॥ लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषु वार्चयेत् ॥ आभृतात्मा मुनिः शांतो यतवाङ् मितवन्यभुक् ॥ ५६ ॥ स्वेच्छाऽवतारचरितैरचिंत्यनिजमायया ॥ करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयंगमम् ॥ ५७ ॥ परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः ॥ ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुंज्यान्मन्त्रमूर्त्तये ॥ ५८ ॥ एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतं ॥ परिचर्यमाणो भगवान्भक्तिमत्परिचर्यया ॥ ५९ ॥ पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः ॥ श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनां ॥ ६० ॥ विरक्तश्चेन्द्रियरतौ

का मन, परमानन्द से भगवान् के स्वरूप में शीघ्र मिलजाने पर, फिर तहां से पीछे को नहीं लौटता है ॥ ५२ ॥ हे राजपुत्र! अब मैं तुझ से जप करनेयोग्य परमगुप्त मन्त्र कहता हूँ, जिस मन्त्र का सात दिन पर्यन्त जप करनेवाला पुरुष, आकाश में विचरने वाले देवता गन्धर्व आदिकों का दर्शन करता है ॥ ५३ ॥ 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मंत्र से, देश और काल के भिन्न २ प्रकार को जानने वाला चतुर पुरुष, नाना प्रकार के द्रव्यों से श्रीहरि की द्रव्यमयी पूजा करे ॥ ५४ ॥ शुद्ध जल, वनके पुष्प, मूल, फल, पत्ते, दूर्वा के अंकुर भोजपत्र आदि रूप वस्त्र तथा भगवान् की प्रिया तुलसी से प्रभुका पूजनकरे ५५ शिला काठ आदि की रचीहुई भगवान् की मूर्त्ति प्राप्त करके उसपर वा पृथ्वी जल आदि के विषैं ही परमेश्वर की भावना करके पूजनकरे, उस पूजा के पूर्ण होनेके निमित्त, पूजाकरने वाला अपने चित्त को स्थिर रक्खे, शान्ति धारण करे, मौन रहे और वनमें के कन्दमूल का परिमित भोजन करे, मनन करता रहे ॥ ५६ ॥ उत्तमकीर्त्ति भगवान् अपनी अचिन्त्य मायारूप शक्ति से इच्छानुसार मनोहर अवतार धारकर जो २ मनोहर चरित्र करेंगे * उन २ को मन में लाकर उनका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ हे ध्रुव! पहिले जो मैंने तुझ से भगवान् की पूजा की रीति कही है वह सबही द्वादश अक्षरवाले गुप्तमन्त्र के द्वाराही मंत्ररूप श्रीहरिको अर्पण करे ॥ ५८ ॥ इसप्रकार अपनी इच्छानुसार शरीर वाणी और मनसे भक्ति के साथ पूजन करके पूजेहुए भगवान्, तिन निष्कपट रीति से उत्तमप्रकार सेवा करने वाले देहधारी पुरुषों को, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमेंसे जौनसा चाहिये वही कल्याणकारी मनोवाञ्छित फल देकर उनकी भक्तिको बढ़ातेहैं ॥५९॥६०॥ इसकारण साक्षात् मुक्तिकी

* यह होनेवाले समय का प्रयोग करनेका यह कारण है कि-ध्रुवजी के समय में भगवान्के बहुत से अवतार नहीं हुए होंगे।

भक्तियोगेन भूयसा ॥ तं निरन्तरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥ ६१ ॥ इत्यु-
क्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः॥ ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥६२॥
तपोवनं गते तस्मिन्प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः ॥ अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उ-
वाच तं ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ राजन्किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता ॥
किंवा न रिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः ॥६४॥ राजो वाच॥सुतो मे बालको
ब्रह्मन् स्त्रैणेनाकरुणात्मना ॥ निर्वासितः पंचवर्षः सह मात्रा महान्कविः॥६५॥
अप्यनाथं वने ब्रह्मन्मा स्मादंत्यर्भकं वृकाः ॥ श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्ला-
नमुखांबुजम् ॥ ६६ ॥ अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय ॥ योऽङ्कं
प्रेम्णा रुरुक्षन्तं नाभ्यनन्दमसत्तमः ॥ ६७ ॥ नारद उवाच ॥ मा मा शुचः
स्वतनयं देवगुप्तं विशांपते ॥ तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यद्यशो जगत् ॥ ६८ ॥
सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः ॥ ऐष्यत्यचिरतो राजन्यशो विपुलयं-

प्राप्तिके लिये,विषयोंके भोगसे विरक्त होकर निरन्तर प्रेमयुक्त पूर्ण भक्तिसे उन भगवान् का भजन करे॥६१॥इसप्रकार नारदजी के कहनेपर वह राजकुमार ध्रुव, उन नारदजी की प्रदक्षिणा और फिर नमस्कार करके,श्रीहरिकेचरणोंके चिन्होंसे भूषिततिसपुण्यकारक मधुवनमें को चलेगये॥६२॥इसप्रकार उन बालक ध्रुवजी के तपोवनमें को चलेजाने पर नारद मुनि इधर उत्तानपाद राजा के नगर में को चलेआये, तहां राजा ने सत्कार के साथ अर्घ्य पाद्य आदि से उन की पूजाकरी, तदनन्तर आसनपर सुखसे बैठेहुए उन नारदजी ने राजा से बूझा॥६३॥ नारदजी ने कहा कि–हे राजन्! तुम्हारा मुख अतिकुमलायाहुआ सा होरहा है तिसपर भी बहुत २ देरीपर्यंत चिन्ता में मग्न रहते हो इस का क्या कारण है? तुम्हारा कोई अर्थ सहित काम वा धर्म तो नष्ट नहीं होगया? ॥ ६४ ॥ राजा ने कहा–हे ब्रह्मन्! क्या कहूं ? स्त्री के वश में होकर दयाहीनचित्तवाले मैंने, अपने परमबुद्धिमान् पुत्र को, पांचवर्ष का बालक होतेहुए भी,मातासहित निकालदिया ।६५॥ हे ब्रह्मन्! वनमें थकेहुए, भूखे और जिस का मुखकमल कुमलागया है ऐसे चाहें जहां सोयेहुए उस मेरे अनाथ बालक को वन में भेड़िये तो नहीं खाजायँगे ? ॥ ६६ ॥ अहो! स्त्री के वश में हुए मेरे चित्त की दुष्टता तो देखो ! कि–मुझ दुष्टशिरोमणि ने, बेटे के प्रेम से गोदी में बैठने की इच्छाकरनेपर मैंने उस को अपनी गोद में न बैठनेदिया ॥ ६७ ॥ देवर्षि नारदजी ने कहाकि–हेराजन्! जिसकी कीर्ति सकल जगत् में छारही है उस देव के रक्षा कियेहुए अपने पुत्र का कुछ शोक न कर, क्योंकि–उसका प्रभाव तुमने अभीतक नहीं जाना है ६८ ॥ हेराजन्! वह तुम्हारा समर्थ पुत्र, इन्द्रादि लोकपालों कोभी जिस का करना कठिन है ऐसा कर्म करके जगत् में तुम्हारे यश को फैलाताहुआ शीघ्र ही लौटकर

स्तव ॥ ६९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः ॥ राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ॥ ७० ॥ तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ॥ समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥ ७१ ॥ त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः ॥ आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ॥ ७२ ॥ द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ॥ तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥ ७३ ॥ तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ॥ अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥ ७४ ॥ चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ॥ वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥ ७५ ॥ पञ्चमे मास्यनुमासे जितश्वासो नृपात्मजः ॥ ध्यायन्ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥ ७६ ॥ सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ॥ ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥ आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ॥ ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकं-

आवेगा ॥ ६९ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हे विदुरजी ! इसप्रकार नारदजी के कहने को सुनकर वह राजा, राज्यलक्ष्मी का अनादर करके पुत्रकेही ध्यान में रहनेलगा ॥ ७० ॥ इधर ध्रुवजी ने मधुवन में जाकर यमुना में स्नान किया और जिस रात्रि में तहां पहुँचे थे उसी रात्रि में देह की शुद्धि के निमित्त उपवास करके एकाग्रचित्त हो नारदजी के उपदेश के अनुसार चित्तलगाकर भगवान् की पूजाकरी ॥ ७१ ॥ फिर तीन २ दिन उपवास कर के चौथे दिन शरीर के निर्वाह के योग्य कैथ और बेर खाकर उन ध्रुवजी ने श्रीहरि की आराधना करतेहुए एक मास बितादिया ॥ ७२ ॥ तथा दूसरे महीने में छठे २ दिन वृक्षों से गिरेहुए पत्ते तृणआदि के भक्षण से देह निर्वाह करके तिन ध्रुवजी ने व्यापक प्रभु की आराधना करी ॥ ७३ ॥ तीसरे मास में भी नवें २ दिन शरीर के निर्वाह के निमित्त केवल जलही पीकर उन ध्रुवजी ने समाधि के द्वारा उत्तमकीर्ति भगवान् की आराधना करी ॥ ७४ ॥ चौथे महीने में भी उन्होंने बारहवें २ दिन एकसमय वायुका भक्षण करके प्राणायाम से श्वासको वश में कर हृदय में श्रीहरिका ध्यान करतेहुए शरीर को धारण करा, इसप्रकार ध्रुवजी ने हरमास में तपस्या की वृद्धि और भोजन की न्यूनता (कमी) करी ॥ ७५ ॥ फिर पाँचवाँ मास लगनेपर वह राजकुमार ध्रुवजी, प्राणवायुको जीतकर ब्रह्मवस्तु का ध्यान करतेहुए एक चरण से खम्भे की समान निश्चल खड़ेहुए ७६ फिर शब्द आदि विषय और इन्द्रियें जिसमें रहती हैं ऐसे अपने मनको सकल पदार्थों से हटाकर तहाँ ही भगवान् के स्वरूप का (ब्रह्मका) ध्यान करनेवाले तिस बालक ने ब्रह्म वस्तु से भिन्न कुछ नहीं देखा ॥ ७७ ॥ इसप्रकार, तिन बालक ध्रुवजी के, महत्तत्त्व आदिके आधार और प्रकृति पुरुष के नियामक ब्रह्मस्वरूप को हृदय में धारण करनेपर उन के

पिरे ॥ ७८ ॥ यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदंगुष्ठनिपीडिता मही ॥ ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे ॥ ७९ ॥ तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया ॥ लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिं ॥ ८० ॥ देवा ऊचुः ॥ नैवं विदामो भगवन्प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यं ॥ ८१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्त्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ॥ यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा ॥ ८२ ॥ इतिश्रीभा० म० च० ध्रुवचरिते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ त एवमुच्छिन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ॥ सहस्रशीर्षाऽपि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥ १ ॥ स वै धिया योगविपाकतीव्रया

तेजको सहने में असमर्थ हुए तीनोंलोक कम्पायमान हो उठे ॥ ७८ ॥ वह राजकुमार ध्रुवजी, जिससमय ब्रह्मस्वरूप का ध्यान करतेहुए एक चरण से खड़े हुए थे उससमय उन के अंगूठे से दबाहुआ पृथ्वी का आधाभाग, जैसे नौकामें बड़ेभारी हस्ती के खड़े करने पर उस के दाहिने वा बायें चरण से दबाहुआ नौका का आधाभाग दाहिनी ओर को वा बाईं ओर को झुकजाता है तैसे झुकगया ॥ ७९ ॥ और वह ध्रुवजी, अपने प्राणों को तथा उनके बाहर भीतर जाने के द्वारों को रोक कर अपने से अभेददृष्टि रखकर विश्वरूप श्रीविष्णुभगवान् का ध्यान करनेलगे तब श्वास बन्द होने के कारण अत्यन्त पीड़ित हुए लोकपालों सहित सब देवता श्रीहरि की शरण में गये ॥८०॥ देवताओं ने कहा, हे भगवन्! स्थावर जङ्गम सकल प्राणियों के शरीरमें ऐसी प्राणों की रुकावट कभी भी हुई हो ऐसा हमें तो स्मरण नहीं होता अतः शरण लेने योग्य आपकी शरणमें हम आयेहैं, सो आप इस सङ्कटसे हमें छुटाइये ८१ श्रीभगवान् ने कहा कि-हे देवताओं! तुम भय न करो जिससे तुम्हारे प्राण रुकगये हैं वह उत्तानपाद राजा का पुत्र ध्रुव, अपने प्राण वायु को रोककर प्रेमभावसे मुझमें एकता को प्राप्त हुआ है, तिस बालक को मैं दुष्कर तपस्या से हटाता हूँ, तुम अपने२स्थान को जाओ॥८२॥इति चतुर्थ स्कन्ध में अष्टम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हे विदुरजी! इसप्रकार भगवान् के वाक्यसे निर्भय हुए, वह देवता उनको भगवान् को नमस्कार करके स्वर्गलोक को चलेगये; इधर वह विश्वरूप परमात्मा भी, अपने भक्त ध्रुव को देखने के लिये गरुड़पर बैठकर मधुवनमें आपहुँचे ॥१॥ उस समय ध्रुवजी ने, योगकी दृढ़ता करके निश्चल हुई बुद्धि से हृदयकमल की कली में भासमान होनेवाले बिजली की समान देदीप्यमान श्रीहरि

हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ॥ तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिः स्थितं तदवस्थं ददर्श ॥ २ ॥ तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिताववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत् ॥ दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकश्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ॥ ३॥ स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वाऽस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ॥ कृतांजलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥ ४ ॥ स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः॥तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥ ५ ॥ ध्रुव उवाच ॥ योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ॥ अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ ६ ॥ एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ॥ सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गु-

के रूपको एकाएकी अन्तर्धान हुआ जानकर तत्काल अपने समाधि को उतारा और नेत्र खोलकर देखा तो वह जो हृदय में भासित होताथा सो ही भगवान् का स्वरूप दृष्टि पड़ा ॥ २ ॥ उनके दर्शन से किङ्कर्त्तव्यताविमूढ़हुए (वेसुधहुए) ध्रुवजी ने अपने शरीर को भूमिपर दण्डे की समान लुटाकर भगवान् की ओर को देखते२ भगवान् को वन्दना करी, उस समय वह ध्रुवजी, मानो अपने नेत्रों से भगवान् के स्वरूप का पान ही कररहे हैं, मानो मुखसे भगवान् का चुम्बन कररहे हैं और अपनी भुजाओं से मानो भगवान् को आलिङ्गन कररहे हैं ऐसे प्रतीत हुए ॥ ३ ॥ उस समय ध्रुवजी के और सकल प्राणियों के हृदयमें व्याप्त होकर रहनेवाले तिन भगवान् ने, अपने गुणों को वर्णन करने की इच्छा करनेवाले परन्तु उस वर्णन करने की रीति को न जाननेवाले इसकारण ही केवल हाथ जोड़कर आगे खड़े हुए उन ध्रुवजी को जानकर करुणा करके अपने वेद-मय शंख का उनके कपोल से स्पर्श किया ॥ ४ ॥ उसही समय भगवान् की दी हुई दिव्यवाणी को पाकर, जिन्होंने जीव और ईश्वर के स्वरूप का निश्चय करलिया है, इस कारण ही जिन का ईश्वर के विषें प्रेम जमाहुआ है और जिनको आगे अटलपद प्राप्त होने वाला है ऐसे वह ध्रुवजी, जिन की बड़ी कीर्त्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है ऐसे भगवान् की स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ ध्रुवजी ने कहा कि-सकल शक्तियों को धारण करनेवाले जो भगवान् अपनी चैतन्यशक्ति से मेरे अन्तःकरण में प्रवेश करके, इस मेरी शयन करती हुई वाणी को और हाथ, चरण, कर्ण, त्वचा आदि इन्द्रियों को भी जीवित करते हैं ऐसे सब-के अन्तर्यामी षड्विध ऐश्वर्य्यवान् आप को मेरा नमस्कार हो ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! जैसे अग्नि वास्तव में एकही है परन्तु नाना प्रकार के काष्ठों में लम्बा गोल आदि नानाप्रकार का भासता है तैसे ही सब के अन्तर्यामी आप एकही हैं परन्तु अनेकों गुण

णेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥ त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ॥ तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो ॥८॥ नूनं विमुग्धमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ॥ अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यमिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणां ॥ ९ ॥ या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ॥ सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ माभूत्किं त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥ १० ॥ भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसंगो भूयादनंत महताममलाशयानां ॥ येनांजसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथाऽमृतपानमत्तः ॥ ११ ॥ ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ॥ ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविंदसौगंध्यलु-

---

वाली अपनी माया नामक शक्ति से इस महत्तत्त्व आदि सकल जगत् को उत्पन्न कर के, इन्द्रिय आदि रूप से परिणाम को प्राप्तहुई तिस माया के मिथ्याभूत गुणो में रहते हो इस कारण तिस २ इंद्रिय के अग्नि आदि देवतारूप से नानाप्रकार के प्रतीत होते हो ॥७॥ हे नाथ ! तुम्हारे दिये हुए ज्ञान के प्रभाव से तुम्हारी शरण में आये हुए ब्रह्माजी ने भी इस जगत् को निद्रा लेकर उठे हुए पुरुष की समान देखा इस कारण हे दीनबन्धो ! मुक्त पुरुषोंके भी आश्रय करने योग्य तुम्हारे चरण को तुम्हारे करे हुए उपकार को जाननेवाले पुरुष कैसे विस्मरण करसक्ते हैं, यदि कोई विस्मरण करदेय तो उसको कृतघ्न ही समझना चाहिये ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! जो विषयों का सुख प्राणियों को नरक में भी मिलजाता है तिस शव (मुरदे) की समान शरीर के भोगने योग्य सुखकी जो पुरुष इच्छा करते हैं और जन्म मरण रूप संसार से मुक्ति होने के कारण, कल्पवृक्ष की समान तुम्हारी, जो पुरुष विषय सुख की प्राप्ति के लिये सेवा करते हैं वह पुरुष वास्तव में तुम्हारी माया से मूढ़ बुद्धि होरहे हैं, ऐसा जाने ॥ ९ ॥ हे नाथ ! आप के चरणों का ध्यान करने पर वा तुम्हारे भक्तों का चरित्र सुनने पर प्राणियों को जो आनन्द प्राप्त होता है वह निजानन्दरूप ब्रह्म में भी नहीं प्राप्त होता है फिर मृत्यु की तलवार रूप पल घड़ी आदि काल से खण्ड २ करे हुए स्वर्ग के विमानों पर से नीचे गिरनेवाले जीवों को वह सुख नहीं प्राप्त होगा, इस का तो कहनाही क्या ? ॥ १० ॥ इस कारण हे अनन्त निरन्तर तुम्हारी भक्ति करने वाले शुद्धचित्त सत्पुरुषों से मेरा वारंवार समागम होय कि—जिन सत्पुरुषों के समागम से मैं तुम्हारे गुणों की कथारूप अमृत के पीने से उन्मत्त होकर, अनेकों दुःखों से भरे हुए इस भयङ्कर संसार समुद्र को अनायास मेंही तर जाऊंगा ॥ ११ ॥ हे कमलनाभ ईश्वर ! तुम्हारे चरणकमल की सुगन्धि से जिनका मन लुभागया है ऐसे प्रेमी भक्तों का समागम

व्यहृदयेषु कृतप्रसंगाः ॥ १२ ॥ तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ॥ रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥ १३ ॥ कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान्स्वदृगनन्तसखस्तदंके ॥ यन्नाभिसिंधुरुहकाञ्चनलोकपद्मगर्भे द्युमान्भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥ १४ ॥ त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यद्बुद्ध्यवस्थितिमखंडितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥ १५ ॥ यस्मिन्विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतंति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ॥ तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्यमानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥ १६ ॥ सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्ममाशी-

करनेवाले जो पुरुषहैं वह इस अति प्रिय मनुष्य देह का और इस के सम्बन्धी पुत्र, मित्र, घर, द्रव्य, स्त्री आदिकों का भी स्मरण नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ हे जन्म आदि विकार रहित ईश्वर ! पशु आदि तिर्यक् योनि, पर्वत, वृक्ष, पक्षी, सर्प, देवता, दैत्य और मनुष्य आदिकों से भरे हुए और महत्तत्व आदि अनेकों कारणों से युक्त इस तुम्हारे स्थूल विराट् स्वरूप को ही मैं जानता हूँ. इस से दूसरे स्वरूपको कि–जिस में शब्द की पहुँच नहीं तिस ब्रह्मस्वरूप को नहीं जानता हूँ ॥ १३ ॥ हे ईश्वर कल्प की समाप्ति के समय इस सकल जगत् को अपने उदर में रखकर, जिन के सखा शेषजी हैं ऐसे जो पुराणपुरुष भगवान् अपने स्वरूप में दृष्टि रखकर उन शेषजी के ऊपर शयन करते हैं तथा जिनकी नाभिरूप समुद्र में सकल लोकों का उत्पत्ति स्थान सुवर्णमय कमल उत्पन्न होकर उस में से तेजस्वी ब्रह्माजी प्रकट होते हैं ऐसे आप भगवान् को मैं नमस्कार करताहूँ ॥ १४ ॥ हे ईश्वर ! आप का जीव से बड़ा भेद है, क्योंकि–तुम नित्यमुक्त हो, जीव आप की कृपा होनेपर मुक्त होता है, तुम सब प्रकार से शुद्ध हो, जीव मलिन है, तुम ज्ञानस्वरूप हो, जीव अज्ञानी है, तुम आत्मा हो, जीव जड़ है, तुम निर्विकार हो, जीव को अनेकों विकार प्राप्त होते हैं, तुम सब के आदिपुरुष और अनादि हो, जीव आदिमान् है, तुम सकल ऐश्वर्ययुक्त हो, जीव ऐश्वर्यहीन है, तुम तीनों गुणों के ऊपर स्वामीपन चलाते हो, जीव पराधीन है, क्योंकि–तुम बुद्धि की अनेकों प्रकार की अवस्थाओं को अपनी अखण्ड चैतन्यशक्ति से देखते हो, जीव में वह शक्ति नहीं है, इसकारण तुम ही जगत् का पालन करने के निमित्त यज्ञपति विष्णुभगवान् होकर विराजते हो ॥ १५ ॥ जिस में, एक से एक विरुद्ध रहनेवाली, विद्या आदि अनेकों प्रकार की शक्तियें, क्रम से अकसात् उत्पन्न होती हैं तिन एक, अनन्त, आद्य, आनन्दरूप, निर्विकार और ब्रह्मस्वरूप आप की मैं, शरण में आया हूँ ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! परमानन्दमूर्त्ति आप के चरणकमल की निष्काम

स्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्त्तेः ॥ अप्येवमार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥ १७॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथाभिष्टुत एवं वै सत्सङ्कल्पेन धीमता ॥ भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच । वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ॥ तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥ १९ ॥ नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति ॥ यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ २० ॥ मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनां ॥ धर्मोऽग्निः कश्यपः शुक्रो मुनयो ये वनौकसः ॥ चरन्ति दक्षिणीकृत्य भ्रमन्तो यत्सतारकाः ॥ २१ प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिता मंडलं भुवः ॥ २२ । त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः ॥ अन्वेषंती वनं याता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ।२३।

बुद्धि से सेवा करनेवाले पुरुष को, यद्यपि राज्य आदि से भी श्रेष्ठ परमार्थ फल मिलता है इस में कोई सन्देह नहीं है तथापि हे परमेश्वर ! भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने में तत्पर तुम 'जैसे नवीन व्याहीहुई गौ अपने बछड़े को दूध पिलाती है और भेड़िये आदि से रक्षा करती है तैसे ही सकामभाव से आराधना करनेवाले भी हम भक्तों को इच्छित वरदान देकर अन्त में संसारभय से हमारी रक्षा करते हो ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हे विदुरजी ! श्रेष्ठ वासनाओं को धारण करनेवाले बुद्धिमान् ध्रुवजी के इसप्रकार स्तुति करने पर भक्तवत्सल भगवान् ने आनन्द के साथ उनकी स्तुति को स्वीकार करके इस प्रकार कहा ॥ १८॥ श्रीभगवान् ने कहा कि-हे राजकुमार ध्रुव ! तेरे मन के सङ्कल्प को मैं जानता हूँ, तेरा कल्याण हो, तुझे जिस पद की चाहना है वह पद मिलना यद्यपि दुर्लभ है तथापि तूने उत्तम तपस्या करीहै अतः वह पद मैं तुझे देता हूँ ॥ १९॥ हे कल्याणरूप ! जो तेजस्वी अचल स्थान आज पर्यन्त किसी ने नहीं पाया है, जहां ग्रह, नक्षत्र और तारागणों का ज्योतिश्चक्र स्थापन कराहुआ है ॥ २० ॥ जो कल्पपर्यन्त रहनेवाले लोकों से भी अधिक समय पर्यंत रहनेवाला है, नक्षत्ररूप-धर्म, अग्नि, कश्यप, शुक्र और तपस्या के निमित्त वन में रहनेवाले ऋषि जिसकी प्रदक्षिणा करके, खम्भे के चारों ओर धान्य आदि निकालने के निमित्त फिरनेवाले वृषभोंके समूह की समान फिरतेहैं, वह स्थान मैंने तुझे दिया है ॥ २१ ॥जब तेरा पिता राजा उत्तानपाद तुझे पृथ्वी का राज्य देकर वनको चलाजायगा तब धर्म का आश्रय करनेवाला और जिसकी इन्द्रियें कदापि श्रम नहीं मानेंगी ऐसा तू छत्तीस सहस्र वर्षों पर्यन्त पृथ्वी की रक्षा करेगा ॥ २२ ॥ फिर तेरा उत्तम नामक सौतेला भ्राता वनमें मृगया (शिकार) के निमित्त जाकर तहां मरण को प्राप्त होजायगा तब उस में प्रेम करनेवाली तेरी सौतेली माता सुरुचि उसको ढूँढने के निमित्त वन में जाकर दावाग्नि में भस्म होकर प्राण त्याग देगी ॥ २३ ॥

इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ॥ भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥ २४ ॥ ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतं ॥ उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदं ॥ बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥ २६ ॥ सोपि सङ्कल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् ॥ प्राप्य सङ्कल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोभ्यगात्पुरम् ॥ २७ ॥ विदुर उवाच ॥ सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्जितम् ॥ लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान् स्मरन् ॥ नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥ २९ ॥ ध्रुव उवाच ॥ समाधिना नैकभवेन यत्पदं विदुः सनन्दादय ऊर्ध्वरेतसः ॥ मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥ ३० ॥ अहो बत ममाना-

फिर तू, मुझ यज्ञमूर्त्ति का बहुत दक्षिणावाले यज्ञों से यजन करके और इस लोक में उत्तम प्रकार से विषयों को भोगकर अन्त में मेरा स्मरण करेगा ॥ २४ ॥ फिर तू, जहां गया हुआ मनुष्य लौटकर नहीं आता है तिस सप्तर्षिमण्डल के भी, ऊपर के सब लोकों के नमस्कार करे हुए मेरे अचल स्थान में जायगा ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुर जी ! इस प्रकार ध्रुवजी के आराधना करे हुए वह गरुड़ध्वज भगवान् ध्रुवजी को अपना अटल पद देकर उन बालक ध्रुवजी के देखते हुए अपने स्थान को चलेगए ॥ २६ ॥ वह ध्रुवजी भी विष्णुभगवान् की चरणसेवा से प्राप्त हुए और जिसके सामने सकल मनोरथों की समाप्ति है ऐसे उत्तम मनोरथरूप अटलपद को पाकर भी अतिसन्तुष्ट न होते हुए अपनी नगरी को लौटगए ॥ २७ ॥ विदुरजी ने कहा कि–हे मैत्रेयजी ! सकाम पुरुषों को जिसका मिलना अतिकठिन है ऐसे श्रीहरि के परमपद को, श्रीहरि के चरण की आराधना से एकही जन्म में पाकर भी, पुरुषार्थ के तत्त्व को जाननेवाले ध्रुवजी ने अपने को, मानो मेरा मनोरथ पूर्णहुआ ही नहीं ऐसा, क्यों माना ? ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! सौतेली माता के वचनरूप बाणों से हृदय में बिंधेहुए और उन वचनरूप बाणों को स्मरण करतेहुए उन ध्रुवजी ने, मुक्तिदाता भगवान् से मुक्ति की इच्छा नहीं करी इस कारण पश्चात्ताप करा ॥२९॥ ध्रुवजी ने कहा कि–अहो ! आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाले सनन्दन आदि ऋषिभी, अनेक जन्मों में अभ्यास करे हुए समाधियोग से जिन के स्वरूप को जानने में समर्थ होते हैं उन देव के चरणों की छाया को मैं केवल छः मासमें ही पाकरभी भेदबुद्धि रखने के कारण उससे दूर होगया ॥ ३० ॥ अहो ! देखो तो मुझ मन्दभाग्य अज्ञानी की यह कैसी मूढ़ता है ! जो

स्वयं मन्दभाग्यस्य पश्यत ॥ भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यदन्तवत् ॥ ३१ ॥
मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः ॥ यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषम-
सत्तमः ॥ ३२ ॥ दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् ॥ तप्ये द्वितीये-
ऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥ ३३ ॥ मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गता-
युषि ॥ प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥ भवच्छिदमयाचेऽहं भवं
भाग्यविवर्जितः ॥ ३४ ॥ स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो
बत ॥ ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥ ३५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ न
वै मुकुन्दस्य पदारविंदयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ॥ वाञ्छन्ति तद्दा-
स्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनःसमृद्धयः ॥ ३६ ॥ आकर्ण्यात्मजमा-
यान्तं संपरेत्य यथागतं ॥ राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥ ३७ ॥ श्र-

संसार का नाश करनेवाले भगवान् के चरणके समीप पहुँचकरभी नाशवान् पदकी याचना करी ॥ ३१ ॥ जिस अतिनीच मैंने, नारदजी के सत्य वचनको भी नहीं माना तिस मेरी बुद्धि, 'इसकी अपेक्षा हम में हीनता होजायगी' ऐसा समझकर न सहनेवाले देवताओं ने दूषित करदी ॥ ३२ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्न में मन के कल्पना करेहुए सर्प व्याघ्र आदि को सचा मानकर दुःख पाता है तैसे ही, आत्मा के सिवाय दूसरी किसी वस्तु के सत्य न होने परभी देवकी मायाके प्रभाव से भेदभाव रखनेवाला मैं, भ्राताही मेरा शत्रु है ऐसी भेददृष्टिरूप हृदय के रोग से दुःख पारहा हूँ ॥ ३३ ॥ अहो ! क्या कहूँ ! जैसे आयुहीनहुए पुरुष के रोगकी चिकित्सा करना वृथा होता है ऐसे ही, तपस्या से जिनका प्रसन्न होना, परम कठिन है ऐसे परमात्मा को प्रसन्न कर उन से प्रार्थना करके मुझे प्राप्त हुआ यह अचल स्थान व्यर्थ है क्योंकि–संसार का नाश करनेवाले भगवान् से भाग्यहीन मैंने संसारही मांगलिया है ॥ ३४ ॥ जैसे निर्धन मनुष्य, सार्वभौम राजा के प्रसन्न होनेपर उस से तंदुलों की किनकी सहित भूसी को मांगे तैसे ही निजानन्द देनेवाले ईश्वर से, पुण्य हीन मैंने मूर्खता करके केवल अभिमान ही मांगलिया है ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे तात विदुरजी ! मुकुन्दभगवान् के चरणों की रज के कणों का सेवन करनेवाले तथा स्वयंसिद्ध प्राप्तहुए पदार्थों से ही मन को सन्तुष्ट रखनेवाले तुम समान पुरुष, उन भगवान् के दासपने के सिवाय अपने को और किसी भी विषय के मिलने की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ३६ ॥ इधर उत्तानपाद राजा ने, जैसे मरण को प्राप्तहुआ मनुष्य जीवित होकर श्मशान से लौटकर आवे तैसे अपने पुत्र के आने का समाचार सुनकर, 'मुझ भाग्यहीन को भला यह कल्याणकारक फल कैसे प्राप्त होसक्ता है ? ऐसा समझकर' उस समाचार को बहुत समयपर्यंत सत्य नहीं माना ॥ ३७ ॥ परन्तु फिर

द्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः ॥ वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनं ॥ ३८ ॥ सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥ ३९ ॥ शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः ॥ निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥ ४० ॥ सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते ॥ आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥ ४१ ॥ तं दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात् ॥ अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥ ॥ ४२ ॥ परिरेभेऽङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् ॥ विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् ॥ ४३ ॥ अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः ॥ स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥ ४४ ॥ अभिवन्द्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः ॥ ननाम मातरं शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥ ४५ ॥ सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् ॥ परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्ग-

---

'तेरा पुत्र शीघ्रही लौटकर आवेगा' ऐसे नारदजी के वचन पर विश्वास करके हर्ष के वेग से परवश और अति प्रसन्न हुए तिस राजा ने समाचार लानेवाले सेवकको बहुत मूल्य का हार दिया ॥ ३८ ॥और वह राजा सुवर्ण के आभूपणों से शोभित तथाउत्तम घोड़े जुतेहुए रथपर चढ़कर अनेकों ब्राह्मण, कुलके वृद्ध, मन्त्री और बांधवों से घिरा हुआ, अपने पुत्र के देखने को उत्कण्ठित होकर शंख और दुंदुभियों के शब्द, वेदघोप तथा बीनवाजे के शब्दके साथ अपने नगरसे शीघ्रही चलदिया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तथा इस राजा की रानी सुनीति और सुरुचि सुवर्ण के भूपणों को धारणकर उत्तम नामक पुत्र सहित एकही पालकी में बैठकर ध्रुवजी के सन्मुख जाने को चलदीं ॥ ४१ ॥ वगीचे के समीप आतेहुए उन ध्रुवजी को देखकर प्रेम से विन्हल हुआ वह राजा, तत्काल रथ से नीचे उतरकर उनके पास गए ॥ ४२ ॥ पुत्र के देखने को वहुत दिनों से जिस का चित्त उत्कण्ठित होरहा है ऐसे तिस राजा ने लम्बे २ श्वास छोड़कर, भगवान् के चरण का स्पर्श करने से जिस के सकल पाप और बन्धन नष्ट होगए हैं ऐसे तिस अपने पुत्र ध्रुवजी को दोनों भुजाओं करके दृढ़ता पूर्वक हृदय से लगाया ॥ ४३ ॥तदनन्तर, जिस का बड़ाभारी मनोरथ पूर्ण हुआ है ऐसे तिस राजा ने, पुत्र का मस्तक वारंवार सूंघा और शीतल नेत्रों के जलों से उस को स्नान कराया ॥ ४४ ॥ इस प्रकार पिता के सत्कार करे हुए और सज्जनों में आगे गिनने योग्य तिन ध्रुवजीने पिता के चरणों में वन्दना करी तव पिता ने आशीर्वाद देकर कुशलप्रश्नपूर्वक ध्रुवजी से भापण करने के अनन्तर उन्हों ने अपनी दोनो माताओं को मस्तक से प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ तव चरणों में नमे हुए ध्रुवजी को सुरुचि ने उठाकर हृदय से लगाया और प्रेम से गद्गद हुई वाणी में 'बेटा चिर-

दया गिरा ॥ ४६ ॥ यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ॥ तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयं ॥ ४७ ॥ उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योऽन्यं प्रेमविह्वलौ ॥ अङ्गसंगादुत्पलकावस्रौघं मुहुरूहतुः ॥ ४८ ॥ सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतं ॥ उपगुह्य जहावाधिं तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥ ४९ ॥ पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः ॥ तदाभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ॥ ५० ॥ तां शशंसुर्जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा ॥ प्रतिलब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं भुवः ॥ ५१ ॥ अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्तिहा ॥ यदनुध्यायिनो वीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥ ५२ ॥ लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ॥ आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोविशत्पुरम् ॥ ५३ ॥ तत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः ॥ सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पू-

जीव रहो ' ऐसा आशीर्वाद दिया ॥ ४६ ॥ हे विदुरजी ! सुरुचि के प्रेमभाव उत्पन्न हुआ यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि--जैसे जल अपने आपही नीचे में को वहता चला जाता है तैसे ही, मैत्री, और सकल प्राणियों में समानदृष्टि आदि गुणों से जिसके ऊपर श्रीहरि भगवान् प्रसन्न हों उस के सन्मुख सकलही प्राणी नम्रहोजातेहैं ४७ तदनन्तर उत्तम और ध्रुवजीभी परस्पर हृदय से आलिङ्गन करके मिले उससमय दोनोही प्रेम से विह्वल हुए, अङ्ग के स्पर्श से परस्पर दोनों के शरीर पर रोमाञ्च खड़ेहोगए और उन्होंने वारंवार आनन्दाश्रु के प्रवाह को धारण करा ॥ ४८ ॥ उससमय ध्रुवजी की माता सुनीति तो प्राणों से भी अधिक प्रिय तिस अपने पुत्र को छाती से लगाकर उसके अङ्ग के स्पर्श से आनन्दित होतीहुई सकल दुःखों को भूलगई ॥ ४९ ॥ हेवीर विदुरजी ! उससमय नेत्रों में से उत्पन्न हुए मङ्गलकारी आनन्द के अश्रुओं से सींचेहुए, तिस वीरमाता सुनीति के स्तनों में से वारंवार दूध टपक नेलगा ॥ ५० ॥ उससमय सब मनुष्य तिस रानी सुनीति की प्रशंसा करनेलगे कि—तेरे मन के दुःख को दूर करनेवाला यह ध्रुव पुत्र वहुत दिनों से खोयाहुआ होकर फिर लौटकर आगया यह बड़े आनन्दकी वार्त्ता है यह चिरकाल पर्यन्त भूमण्डल की रक्षा करेगा ॥ ५१ ॥ हमें तो निःसन्देह ऐसा प्रतीत होता है कि—जिन भगवान् का वारंवार ध्यान करनेवाले समर्थ पुरुष, अति दुर्जय मृत्यु होयतो उसकोभी जीत लेते हैं तिन भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले भगवान् की तूने पूर्वजन्मों में उत्तमप्रकार से पूजा करी होगी ॥ ५२ ॥ हेविदुरजी ! इसप्रकार लोकों के सत्कार करेहुए ध्रुवजी को भ्राता सहित हथिनीपर वैठाकर प्रसन्नचित्त और सब के स्तुति करेहुए राजा ने नगर में प्रवेश किया ॥ ५३ ॥ वह नगर स्थान २ पर लगारहुए शोभायमान मकराकृति वन्दनवारों करके, फलफूलसहित केले और पूगीफल के छोटे २ पौधों

गपोतश्च तद्विधैः ॥ ५४ ॥ चूतपल्लववासःस्रङ्मुक्तादामविलम्बिभिः ॥ उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥ ५५ ॥ प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः ॥ सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥ ५६ ॥ मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् ॥ लाजाऽक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ॥ ५७ ॥ ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः ॥ सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ॥ ५८ ॥ उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः ॥ शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ॥ ५९ ॥ महामणिव्रातमये स तस्मिन् भवनोत्तमे ॥ लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥ ६० ॥ पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥ ६१ ॥ यत्र स्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥ ६२ ॥ उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ ६३ ॥ वाप्यो वैदूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ॥ हंस-

से ॥५४॥ और आमके पल्लव, वस्त्र, फूलोंकीमाला और मोतियोंकीलड़ें जिनकेकण्ठमें बाँधी हुई लटकरहीहैं ऐसे दीपक सहित कलशोंसे प्रत्येक द्वारमें शोभितथा ॥५५॥ तथा सुवर्णकी जरीके तनाव वा झालरोंवाले सुन्दर विमानोंके शिखरोंसे देदीप्यमान जो परकोटा, नगर के द्वार और ऊँचे २ मन्दिरोंसे जहां तहां अत्यन्त शोभायमानथा ॥५६॥ तहां आँगन, गलियें, सड़कें, दुकानोंकेबाजार, यह सब स्वच्छ करेहुए थे और उन के ऊपर चन्दन छिड़का हुआथा, तथा जहाँ तहाँ लाजा (खीलें), अक्षत, फूल, फल, तन्दुल और बलि स्थापन करेहुए थे ॥५७॥ मार्गमें जहां तहां नगर की स्त्रियों ने दृष्टि पड़े हुए ध्रुवजी को प्रेम से उत्तम आशीर्वाद देकर उनके ऊपर स्वेत सरसों, अक्षत, दधि, सुगन्धित जल, दूर्वा, फूल और फलों की वर्षा करी और मनोहर गीत गाने लगीं, उस समय तिन ध्रुवजी ने उन अति सुन्दर गीतों को सुनते हुए पिता के नगर में प्रवेश किया ॥ ५८ ॥ पिता के उत्तमता से लाड़ करे हुए तिन ध्रुवजी ने उत्तम रत्नों से जड़े हुए उस सुन्दर मन्दिर में, जैसे स्वर्ग में देवता रहते हैं तैसे आनन्द के साथ निवास किया ॥ ६० ॥ तिस राजमन्दिर में दूध के झागों की समान स्वेत और कोमल बिछौने, हाथीदांत के पलँग, सुवर्ण की जरी के परदे, बहु मूल्य आसन तथा और बहुत सी सुवर्ण की सामग्रियें थीं ॥ ६१ ॥ तहां उत्तम मरकत मणि से जड़ी स्फटिक की भीतों में सुन्दर पुतलियों के हाथों में रत्न के दीपक शोभा देरहे थे ॥ ६२ ॥ तिस मन्दिर के चारों ओर, शब्द करनेवाले पक्षियों के जोड़े तथा गुञ्जार करनेवाले भ्रमरों के समूहोंसे सुन्दर प्रतीत होनेवाले देवलोक के अनेकों चित्र विचित्र प्रकार के वृक्षोंसे शोभित बगीचे थे ॥ ६३ ॥ और उन बगीचों में वैदूर्यमणि से जिन

कारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥ ६४ ॥ उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तं ॥ श्रुत्वा दृष्ट्वाद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परं ॥ ६५ ॥ वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च सम्मतम् ॥ अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥ ६६ ॥ आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशाम्पतिः ॥ वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥६७॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥७॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ॥ उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥ १ इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः ॥ पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥ २ ॥ उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा ॥ हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्मातास्य गतिं गता ॥ ३ ॥ ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचार्पितः ॥ जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥ ४ ॥ गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेविताम् ॥ ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यक-

की पैड़ियें बांधी गई हैं और जिन में लाल, नीले तथा स्वेत कमलों के अनेकों समूह हैं तथा हंस, कारण्डव पक्षियों के अनेकों झुण्डों की एवं चक्रवाक और सारसों की सेवा करी हुई बावड़ी थीं ॥ ६४ ॥ तहां उत्तानपाद राजर्षि को भी, पुत्र का वह परम अद्भुत पराक्रम सुनकर और देखकर परम आश्चर्य प्रतीत हुआ ॥ ६५ ॥ फिर राजा ने, मेरा पुत्र ध्रुव युवा अवस्था में आगया, उसकी आज्ञा को मन्त्री मानने लगे और प्रजा उसके ऊपर प्रीति करनेलगी, ऐसा देखकर उनको पृथ्वी के राज्य का अभिषेक करदिया ॥६६॥ तदनन्तर उन प्रजापालक राजा ने, मैं वृद्ध होगया हूँ ऐसा मन में विचारा तथा संसार से विरक्त होकर अपनी दशा का विचार करने के निमित्त वन को गमन किया ॥ ६७ ॥ इति चतुर्थस्कन्ध में नवम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेय जी कहते हैं कि–हेविदुरजी ! ध्रुव जी ने शिशुमार नामक प्रजापति की कन्या को वरा, फिर उसके गर्भ से उनके कल्प और वत्सर यह दो पुत्र हुए ॥ १ ॥ तथा तिन महाबली ध्रुवजी ने इला नामक वायु की कन्या से विवाह करा, तदनन्तर उस स्त्री के विषैं उनके उत्कल नामक एकपुत्र और एक सुन्दर कन्या ऐसे दो सन्तान हुईं ॥ २ ॥ उत्तम तो अपना विवाह करने से प्रथमही मृगया (शिकार) के निमित्त हिमालय पर्वत पर जाकर तहां एक बलवान् यक्षके द्वारा परलोक को सिधारगया, तब उसको ढूँढने के निमित्त उस की माता सुरुचि वन में गई वह दावानल में कूदकर परमधाम को पधारगई ॥ ३ ॥ इधर, मेरे भ्राता का यक्षने प्राणान्त करडाला, ऐसा समाचार पाकर क्रोध, असहनशीलता और शोक में भरेहुए ध्रुवजी जयदायक रथ में बैठकर यक्षों की राजधानी (अलका नगरी) पर चढ़ाई करने को चलदिये ॥ ४ ॥ वह राजा प्रथम शिवजी के भूतगणों के

संकुलाम् ॥ ५ ॥ दध्मौ शंखं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन् ॥ येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥ ६ ॥ ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः ॥ असहन्तस्तन्निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥ ७ ॥ स तानापततो वीर उग्रधन्वा महारथः ॥ एकैकं युगपत्सर्वानहन् बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥ ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि ॥ मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥९॥ तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः ॥ शरैरविध्यन्युगपद् द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥ १० ॥ ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः ॥ शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥ ११ ॥ अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ॥ इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्त्तुमयुतानि त्रयोदश ॥ १२ ॥ औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ॥ न उपादृश्यत च्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥ १३ ॥ हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ॥ हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः

सेवन करीहुई उत्तर दिशा की ओर जाकर हिमालय की द्रोणी (चारों ओर के ऊँचे २ टीलों से घिरे हुए स्थान) में गुह्यकोंसे भरीहुई एक नगरी देखी ॥ ५ ॥ तदनन्तर महा शक्तिमान् तिन ध्रुवजी ने,आकाश और दिशाओं को गुञ्जारित करते हुए अपने शंखको बजाया, तिस शब्दसे यक्षों की स्त्रियें विक्षिप्त सी होकर अत्यन्त भयभीत हुईं ॥ ६ ॥ तदनन्तर उस शब्दको न सहनेवाले वह बलवान् कुवेर के योधा यक्ष, तत्काल शस्त्रों को ठीक करके नगरी से बाहर निकले और ध्रुवजी के शरीर के ऊपर को धावा करा ॥७॥ तव प्रचण्ड धनुषधारी उन महारथी ध्रुवजी ने, अपने ऊपर को चढ़कर आते हुए तिन एकलाख तीससहस्र यक्षों को,एक२के तीन२बाण मारकर सबको एकसाथ वेधडाला॥८॥ उससमय उन सबही यक्षों ने ललाट में लगे हुए उन बाणों से अपने को पराजित हुआ मानकर ध्रुवजी के उस कर्म की प्रशंसा करी ॥ ९ ॥ तदनन्तर चरण के स्पर्शको सहन न करनेवाले सर्प की समान ध्रुवजी के उस कर्म को न सहनेवाले और उनसे परिवर्त्तन (बदला) लैने की इच्छा करनेवाले तिन यक्षों ने ध्रुवजी के ऊपर एकसाथ दुगुने (छः छः) बाणों का प्रहार किया ॥ १० ॥ तदनन्तर अति क्रोध में हुए और ध्रुवजी का तिरस्कार करने की इच्छा करनेवाले तिन १३०००० यक्षों ने, रथ और सारथियों सहित उन ध्रुवजी के ऊपर परिघ (लोहे के डण्डे),खड्ग,भाले,शूल,कुल्हाड़े,बर्छी पट्टे, गोफन,और चित्र विचित्र छुरे लगेहुए बाणोंकी एकसमान वर्षा करना प्रारम्भ करदी॥११॥ तब वह उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुवजी, बड़ीभारी शस्त्रों की वर्षा से, मेघों की वर्षा से ढकेहुए पर्वत की समान आच्छादित होकर ऐसे होगए मानों दीखते ही नहीं हैं ॥ १२ ॥ उसीसमय आकाश में विमानपर बैठकर वह दशा देखनेवाले सिद्धों के मुख में से हाहा

पुण्यजनार्णवे ॥ १४ ॥ नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे ॥ उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥ धनुर्विस्फूर्जयन् दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् ॥ अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥ १६ ॥ तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसां ॥ कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥ १७ ॥ भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ॥ ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥ १८ ॥ हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ॥ आस्तृतास्तारणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥ १९ ॥ हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः ॥ प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेंद्रविक्रीडितयूथपा इव ॥ २० ॥ अपश्यमानः स तदाततायिनं महामृधे कञ्चन मानवोत्तमः ॥ पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥ २१ ॥ इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यत्तः परेषां प्रतियोगशंकितः ॥

कार शब्द निकला कि—अरे ! आज यह मनुष्यरूप सूर्य, हाय ! हाय ! यक्षों की सेनारूप समुद्र में डूबकर नष्ट होगया ॥ १४ ॥ इधर रणभूमि में 'हमारी जय होगयी' ऐसा स्पष्ट कहनेवाले यक्षों के बड़ीभारी गर्जना करनेपर, अकस्मात् 'जैसे कुहर में से सूर्यभगवान् बाहर को निकलते हैं तैसे' ध्रुवजी का रथ अस्त्रों के समूह से बाहर निकला ॥ १५ ॥ तब अपने दिव्य धनुष का टङ्कार शब्द करनेवाले और शत्रुओं के मन में खेद उत्पन्न करनेवाले तिन ध्रुवजी ने 'जैसे वायु मेघमण्डल को उड़ादेता है तैसे' तिन अस्त्रों के समूहों का चूर्ण २ करडाला ॥ १६ ॥ धनुष से छूटेहुए ध्रुवजी के तीखे बाण, 'जैसे इन्द्रका वज्र पर्वतों के उदर में प्रवेश करे तैसे' राक्षसों के कवचों को फोड़कर उन के शरीरों में विधगये ॥ १७ ॥ हे विदुरजी ! उससमय वीरों को सुन्दर प्रतीत होनेवाली वह रणभूमि, बाणों से काटे हुए तिन यक्षों के सुन्दर कुण्डलधारी मस्तकों से, सुवर्णमय तालके वृक्षकी समान दमकती हुई जङ्घाओं से, कड़े तोड़े आदि करके भूषित हाथों से और महामूल्यहार बाजूबंद, मुकुट और पगड़ियों से भरजाने के कारण शोभित होनेलगी ॥ १८ ॥ १९ ॥ तिन क्षत्रिय श्रेष्ठ ध्रुवजी के बाणों से मरण को प्राप्तहुए यक्षों में से जो कुछ राक्षस शेषरहे थे वहभी प्रायः छिन्न भिन्न शरीरवाले होकर, जैसे सिंह से युद्ध क्रीड़ा करके दुःखितहुए गजेन्द्र भागजाते हैं तैसेही, रणमें से भागगये ॥ २० ॥ उससमय तिन श्रेष्ठ राजा ध्रुव को, उस बड़ीभारी रणभूमि के विषें हाथमें शस्त्र लेकर युद्धके निमित्त खड़ारहे ऐसा एकभी योधा दृष्टि नहीं पड़ा, उन ध्रुवजी के मन में शत्रुओं की नगरी को देखने की इच्छा थी परन्तु वह उस नगरी में गये नहीं. क्योंकि—मायावी शत्रु के मन में आगेको क्या करने की इच्छा है सो किसी को प्रतीत नहीं होता है ॥ २१ ॥ इसप्रकार

शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥ २२ ॥ क्ष-
णेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ॥ विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयत्स्तनयि-
त्नुना ॥ २३ ॥ ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ॥ निपेतुर्गगनादस्य क-
बन्धान्यग्रतोऽनघ ॥ २४ ॥ ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतोदिशम् ॥ ग-
दापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥ २५ ॥ अहयोऽशनिनिश्वासा वमन्तो-
ऽग्निं रुषाऽक्षिभिः ॥ अभ्यधावन्गजा मत्ताः सिंहव्याघ्राश्च यूथशः ॥ २६ ॥
समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवम् ॥ आससाद महाह्रादः कल्पांत इव-
भीषणः ॥२७॥ एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनां ॥ ससृजुस्तिग्मगतय आ-
सुर्या माययाऽसुराः ॥२८॥ ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तरां ॥ निशम्य तस्य
मुनयः शमाशंसन्समागताः ॥ २९ ॥ मुनय ऊचुः ॥ औत्तानपादे भगवांस्तव
शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्त्तिहरो विपक्षान् ॥ यन्नामधेयमभिधाय निशम्य

अपने सारथि से कहकर 'शत्रुओं से फिर युद्ध होने की मन में शङ्का करने वाले और चित्रविचित्र रङ्ग के रथ में बैठेहुए तिन ध्रुवजी ने एकायकी आंधी के द्वारा समुद्रमें से निकला हुआ सा एक बड़ाभारी शब्द सुना और दशों दिशाओं में धूलि छाई हुई दीखने लगी ॥ २२ ॥ और क्षणमात्र में, जिस में बिजली दमक रही है और गड़-गड़ाहट का भयङ्कर शब्द होरहा है ऐसे मेघमण्डलों से, चारों दिशाओं में आकाश छागया ॥२३॥ वह मेघ, रक्तका प्रवाह, कफ, पीव, विष्ठा, मूत्र और चर्बी की वर्षा करने लगे तथा आकाश में से इन ध्रुवजी के आगे धड़ गिरने लगे॥२४॥ तदनन्तर आकाश में एकपर्वत दीखनेलगा,सब दिशाओंमेंसे गदा,परिघ,खड्ग और मूसल गिरनेलगे और पत्थरों कीवर्षाभीहोनेलगी॥२५॥क्रोधके कारण अपने नेत्रोंमेंसे अग्निको उगलनेवाले और बिजली की समान तीव्रश्वास छोड़नेवाले सर्प चारों ओर से दौडनेलगे तथा उन्मत्त हाथी, सिंह और व्याघ्रोंके समूहके समूह ध्रुवजीके शरीरके ऊपरको दौडकर आनेलगे॥२६॥तथा समुद्र प्रलय-कालके समुद्रकी समान उग्र और भयङ्कर होकर बड़ी गर्जना करताहुआ अपनी लहरों से चारों ओर की पृथ्वीको डुबाता हुआ तिन ध्रुवजी के समीप आनेलगा॥२७॥ हेविदुरजी ! क्रूर कर्म करने की ओर जिनकी सदा प्रवृति रहतीहै ऐसे उन असुरोंने (यक्षोंने) अपनी आसुरी माया से इसप्रकार धैर्यहीन पुरुषोंको भय देनेवाले अनेकों उत्पात प्रकट करे ॥ २८ ॥ इस प्रकार यक्षोंने तिस अतिदुस्तर माया को ध्रुवजी के ऊपर फैलाया है, ऐसा सुनकर तहां आये-हुए ऋषियों ने उन ध्रुवजी से कल्याणकारी ऐसा भाषण किया ॥ २९ ॥ मुनियों ने कहा हेउत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुवजी ! जिन का नाम उच्चारण करनेपर वा सुननेपर मनुष्य अना-यास में ही दुस्तर मृत्यु को भी तरजाता है वह शरणागतों की पीड़ा हरनेवाले और शार्ङ्ग नाम

चाद्धा लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमंग मृत्युं ॥ ३० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः ॥ संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥ १ ॥ संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः ॥ क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥ २ ॥ तस्यार्षास्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुङ्खाः कलहंसवाससः ॥ विनिःसृता निर्विविशुर्द्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥ तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैरितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः ॥ तमभ्यधावन्कुपिता उदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः ॥४॥ स तान् पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान् ॥ निनाय लोकं परमर्कमण्डलं व्रजन्ति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः ॥ तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसश्चित्ररथेन भूरिशः ॥ औत्तानपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥ ६ ॥ मनुरुवाच ॥ अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना ॥ येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥

क धनुष को धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् नारायण तुह्मारे शत्रुओं का नाश करें ॥३०॥ इति चतुर्थ स्कन्ध में दशम अध्याय समाप्त ॥ ॥ * ॥ ॥ * ॥ ॥ * ॥ * ।

मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! ध्रुवजी ने, इसप्रकार कहनेवाले ऋषियों का कथन उपदेशकी समान सुनकर जलका आचमन करा,और नारायण का रचाहुआ जो नारायणास्त्र उसका धनुषपर प्रयोग किया ॥ १ ॥ हे विदुरजी ! ज्ञान का उपदेश होने पर जैसे विषयवासनारूप क्लेश नष्ट होजाते हैं तिसी प्रकार इस अस्त्र का प्रयोग होते ही गुह्यकोंकी रचीहुई माया तत्काल सर्वथा नष्ट होगई ॥ २ ॥ उन राजा ध्रुवजी ने, ज्योंही धनुषपर नारायणास्त्र का प्रयोग किया त्योंही उसमें से निकले हुए सुवर्ण की मूल वाले और राजहंसों के पंखवाले वाण, जैसे मोर कठोर केका शब्द करते हुए वनमें फिरते हैं तैसे सायँ २ शब्द करते हुए शत्रुओं की सेना में प्रविष्ट हुए ॥ ३ ॥ उन तीखी धारवाले वाणों से युद्ध में घायलहुए वह यक्ष, क्रोध में भरकर, फन उठाकर गरुड़जी के ऊपर को दौड़नेवालेसर्पों की समान अपने शस्त्र उठाकर जिधर तिधर ध्रुवजी के ऊपर को दौड़ने लगे ॥ ४ ॥ तव ध्रुवजी ने, युद्ध में अपने शरीर के ऊपर को दौड़कर आनेवाले और वाणों से कटगये हैं बाहु, जंघा, कण्ठ और उदर जिन के ऐसे उन यक्षों को, संन्यासी सूर्यमण्डल को वेधकर जिस लोक में जाते हैं उस लोक को पठादिया ॥ ५ ॥ इसप्रकार चित्रविचित्र रंग के रथ में वैठेहुए वह ध्रुवजी, उन निरपराधी यक्षों का वहुत ही संहार कररहे हैं ऐसा देखकर उन के दादा स्वायम्भुव मनु, दयालु होकर ऋषियों सहित तहां आये और ध्रुवजी से कहनेलगे ॥ ६ ॥ मनुजी ने कहा–हेवत्स ध्रुवजी ! जिस क्रोधके कारण तुमने इन निरपराधी यक्षों का वध किया है उस, नरक के द्वाररूप पापी क्रोध को अब पूरा करो

नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् ॥ वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥ ८ ॥ नन्वेकस्यापराधेन प्रसंगाद्बहवो हताः ॥ भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयांग भ्रातृवत्सल ॥ ९ ॥ नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनां ॥ यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥ १० ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् ॥ आराध्याप दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ११ ॥ स त्वं हरे-रनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः ॥ कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥ ॥ १२ ॥ तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ॥ समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥ १३ ॥ संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ १४ ॥ भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि ॥ तयोर्व्यवायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तते

॥७॥ हे तात ध्रुव ! यक्षों ने तेरा कोई अपराध नहीं किया तब भी तैने उन का प्राणान्त करना प्रारम्भ करदिया, यह कर्म हमारे कुल के योग्य नहीं है, क्योंकि—सत्पुरुष ऐसे कर्म की बड़ी निन्दा करते हैं ॥ ८ ॥ अरेबेटा ! तेरा भ्राता के ऊपर प्रेम था. तिस भ्राता के मरण से अतिदुःखित हुआ तूने, एक के करेहुए अपराध के कारण अनेकों यक्षों को वध करा, क्या यह उचित है! ॥ ९ ॥ इस जड़शरीर को आत्मा मानकर जैसे पशु परस्पर एकका एक वध करते हैं, तैसे प्राणीमात्र की हिंसा करना, यह—हृषी केश भगवान् की भक्तिकरनेवाले साधुओं का मार्ग नहीं है ॥ १० ॥ हेध्रुव ! तूने बालक अवस्था में ही सकल प्राणीमात्र में आत्मबुद्धि रखकर, जिन की आराधना करना परम कठिन है ऐसे सर्वान्तर्यामी श्रीहरि की आराधना करके, विष्णुभगवान् का सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करलिया है ॥ ११ ॥ वह श्रीहरि का ध्यान करनेवाला तू, भगवान् के भक्तों का भी माननीय हुआहै;इस कारण साधुओंके मार्गकी रक्षा करनेवाले तूने यह पापकर्म कैसे करा ! ॥१२॥ महात्मा पुरुषोंके विषैं सहन शीलता,अपने से अधम पुरुषों में दया, समान पुरुषोंमें मित्रता और सकल प्राणियोंमें समानदृष्टि, इन गुणों से सर्वात्मा भगवान् प्रसन्नहोतेहैं॥ १३ ॥ और भगवान् के प्रसन्न होनेपर पुरुष,मायाके गुणों से और उन के कार्यरूप लिङ्गशरीर से मुक्त होताहै तथा सुखस्वरूप ब्रह्मपद्को प्राप्तहोताहै ॥ १४॥ हेध्रुव ! शरीर आदिरूपसे परिणामको प्राप्त हुए पञ्च महाभूतों से स्त्री और पुरुष यह दोनों उत्पन्न होतेहैं ऐसा प्रसिद्ध है, इस संसार में उन स्त्री पुरुषों के समागम से दूसरे स्त्री पुरुषों की उत्पत्ति होती है॥१५॥ हेराजन् ! इसप्रकार सृष्टि का क्रम चलता है तथा पालन करने के आकार से रचेहुए पञ्चमहाभूतों के द्वाराही प्राणियों की रक्षा होती है और मारनेवाले शरीरोंके आकार से रचेहुए प्राणियों के द्वारा प्राणियों का संहार होता है, इस प्रकार चलाहुआ यह सकल ही प्रकार परमात्माकी

सर्गः स्थितिः संयम एव च ॥ गुणव्यतिकराद्राजन्मायया परमात्मनः ॥ १६ ॥ निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥ १७ ॥ स खल्विदं भगवान्कालशक्त्या गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ करोत्यकर्त्तैव निहन्त्यहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥ १८ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकं ॥१९॥ न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ॥ तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा यथा रजांस्यनिलं भूतसङ्घाः ॥२०॥ आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः ॥ उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधा-

माया से सत्वादि गुणों में न्यूनाधिकभाव होने से होता अपने आप नहीं होता है ॥ १६ ॥ हे बेटा! उस निर्गुण ईश्वर के तिन सृष्टि आदि कर्मों में निमित्तमात्र होने से, यह कार्य कारणरूप सकल जगत् उसकेही आधार से, 'जैसे निमित्तमात्र चुम्बक से अर्थात् उसके आधार से जड़लोहे का टुकड़ा घूमता है तैसे, घूमरहा है ॥ १७ ॥ हे ध्रुव! काल के क्रमसे गुणों में क्षोभ उत्पन्न होकर न्यूनाधिकता होनेपर परमेश्वर की शक्ति के भेद होते हैं तब वह भगवान् वास्तव में अकर्त्ता होकर भी इस जगत्को उत्पन्न करते हैं और संहार करनेवाले न होकर भी संहार करते हैं ऐसा प्रतीत होता है,वास्तव में सर्वव्यापी परमात्मा की कालशक्ति अचिन्तनीय है ॥ १८ ॥ हे ध्रुव! वह कालरूप परमेश्वर स्वयंजन्म रहित, अविनाशी और कदापि क्षीण न होनेवाली शक्ति से युक्त होकर भी पिता आदि के द्वारा पुत्र आदि को उत्पन्न करके सृष्टिकर्त्ता होतेहैं और दूसरों को वध करनेवाले चोर आदि का भी मृत्यु के द्वारा वध करते हुए अन्तकारक होते हैं; अभिप्राय यह है कि–पिता आदि की भी उत्पत्ति आदि दूसरों से होने के कारण वह स्वाधीनतासे उत्पत्ति आदि करनेवाले नहीं हैं; ईश्वरही सबका नियन्ता होने के कारण सब का कारण है ॥ १९ ॥ समानभाव से सकल प्रजा में प्रवेश करनेवाले इन कालरूप परमात्मा का कोई भी अपना वा पराया नहीं है परन्तु जैसे पवन चलनेपर धूलिके कण उस के पीछे २ उड़ते हैं तैसेही कालरूप परमात्मा के पीछे २ कर्माधीन सकल प्राणियों के समूह विचरते हैं अर्थात् अपने२ कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगते हैं, जैसे धूलि के कण, अन्धकारमें, प्रकाशमें जलमें वा अग्नि आदि में कहीं भी पड़े तो उसमें वायुमें कुछ विकार नहीं होता है तैसेही जिस जिस कर्म के अनुसार प्राणियों को, सुख दुःख आदि भले बुरे फल भोगने पड़ें तो उससे कालरूप परमात्मा में कुछ दोष नहीं आता है ॥ २० ॥ यह व्यापक परमात्मा अपने स्वरूप में स्थित होने के कारण वृद्धि वा ह्रासरहित होकर कर्म के अधीन जो प्राणी उनकी आयु की वृद्धि वा क्षय (अकाल मृत्यु) अथवा देव

त्यसौ ॥ २१ ॥ केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप ॥ एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥ २२ ॥ अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च ॥ न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसम्भवम् ॥२३॥ न चैते पुत्रक भ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः ॥ विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥२४॥ स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च ॥ अथापि ह्यनहङ्कारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥ २५ ॥ एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः ॥ स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥ २६ ॥ तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ॥ यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥२७॥ यः पञ्चवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ॥ वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥ २८ ॥ तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहं व्यपाश्रितंनिर्गुणमेकमक्षरम् ॥

ताओं में उत्तमता और कीट पतङ्ग आदि में अधमता उत्पन्न करते हैं ॥२१॥ हेराजन्! इनही ईश्वर को कोई (मीमांसक) कर्म कहते हैं, कोई (चार्वाक) स्वभाव कहते हैं, कोई (पौराणिक) काल कहते हैं, दूसरे (ज्योतिषी) दैव और कितने ही (वात्स्यायन आदि) काम कहते हैं ॥ २२ ॥ हे बेटा ध्रुव ! जिनसे महत्तत्त्व आदि अनेकों शक्ति उत्पन्न हुई हैं इसकारण ही जिनका जानना कठिन है ऐसे तिन अव्यक्त परमेश्वर के मन में क्या करने की इच्छा है ? कोई नहीं समझता है, फिर आपही जिससे उत्पन्नहुए उसके वास्तविक स्वरूप को कौन जानसक्ता है ? ॥ २३ ॥ अतः हे बालक! यह कुवेर के सेवक तेरे भ्राताके मारनेवाले नहीं हैं, क्योंकि—हे बेटा! मनुष्यके जन्म वा मृत्युका केवल ईश्वरही कारणहै २४ और यद्यपि वही ईश्वर जगत्को रचताहै, वही रक्षाकरताहै और वही संहारभी करताहै तथापि अहङ्कारसे रहित होनेकेकारण वह गुण कर्मोंसे लिप्तनहींहोता है २५क्योंकि-अपनीशक्तिरूप माया से युक्त होकर यहभूतात्मा भूताधिपति और भूतपालक परमेश्वर भूतों को उत्पन्न करते हैं, उनका संहार करते हैं और रक्षाभी करते हैं ॥२६॥ हेबेटा ध्रुव ! जैसे नासिका में नाथ डालकर रज्जु से बांधेहुए बैल,स्वामी का बोझा ढोते हैं, तैसेही ब्रह्मादिक देवता भी नामरूप रज्जुओं मे बँधकर ईश्वर को बलि समर्पण करते हैं अर्थात् परमेश्वर के नियत करे हुए सृष्टि आदि कर्म्मों को करते हैं, उनही अभक्तों को मृत्यु (वारंवार मृत्युरूप संसार) और भक्तों को मोक्ष देनेवाले, जगत् के आश्रय भगवान् की तू शरण ले ॥ २७ ॥ क्योंकि—जब सौतेली माता के कथन से मर्मस्थान में बिधा हुआ तू पांच वर्ष का ही था तबही अपनी माता को छोड़कर वन में चलागया था और तपस्या करके अधोक्षज भगवान् की आराधनाकर त्रिलोकी के मस्तक पर का ध्रुव पद पाया है ॥ २८ ॥ इस कारण हे ध्रुव ! अब अपनी अन्तर्दृष्टि करो, ' यह मित्र है, यह

आत्मानंमान्विच्छ विमुक्तं आत्मदृग्यस्मिं न्निदं भेदमसत्प्रतीयते ॥ २९ ॥ त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ॥ भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥ ३० ॥ संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ॥ श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथामयम् ॥ ३१ ॥ येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् ॥ न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥ ३२ ॥ हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ॥ यज्जघ्निवान्पुण्यजनान् भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥ ३३ ॥ तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः ॥ न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवं ॥ तेनाभिवंदितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥ ३५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य वैश-

शत्रुहै' इत्यादि भेद जिसमेंहै, ऐसा यह विश्व,वास्तवमें मिथ्या होनेपरभी,जिनके विषैं सत्य सा प्रतीत होता है तिन भेदभाव रहित मन में रहनेवाले, निर्गुण, निर्विकार, एक और नित्य मुक्त परमात्मा को ढूँढ ॥ २९ ॥ सो उसी समय तू, प्रत्यगात्मा, अनन्त, आनन्दस्वरूप सर्वशक्तिमान् भगवान् की परमभक्ति करके धीरे धीरे ' यह मेरा है, यह मैं हूँ ' ऐसी दृढ़ता को प्राप्त हुई अविद्या की ग्रन्थि को सर्वथा भेदन करेगा अर्थात् अविद्या के बन्धन से छूट जायगा ॥ ३० ॥ इस कारण हे राजन् ! जैसे औषधियों से रोग की शान्ति करते हैं कल्याण कारी कार्यों में विघ्न करनेवाले इस अपने परमबली शत्रु क्रोध को तू बहुत से भगवद्गुणों के श्रवण से वश में कर, तेरा कल्याण हो ॥ ३१ ॥ जिस क्रोध में भरे हुए पुरुष से पुरुष को परमभय प्राप्त होता है तिस क्रोध के वश में अपने को अभय चाहनेवाला चतुर पुरुष कदापि न होय ॥ ३२ ॥ और यक्षोंको भ्राताका प्राणान्त करनेवाला मानकर क्रोध में भरेहुए तूने जो उनका वध करा है, सो यह तो शिवजी के भ्राता की समान परम मित्र कुवेर काही तिरस्कार करा है ॥ ३३ ॥ सो बड़े पुरुषों के तेज से अपने कुलके ऊपर जबतक कोई आपत्ति नहीं आवे तबतक ही तू सावधान होकर नम्रता के साथ अधीनता के वचनों से उन कुवेर को शीघ्रही प्रसन्न करले ॥ ३४ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि हे विदुरजी ! स्वायम्भुवमनु. अपने पौत्र ध्रुव को इस प्रकार उपदेश करके, फिर अपने को उसके वन्दना करने पर ऋषियों सहित अपने नगर को लौट गए ॥ ३५ ॥ इति चतुर्थस्कन्ध में एकादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! ध्रुवजी का क्रोध दूर होगया और वह यक्षों के वध से निवृत होगए. ऐसा जानकर भगवान् कुवेर तहां आये, तहां उन के साथ के चारण, यक्ष

सादपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः ॥ तत्रागतैश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवद-
त्कृतांजलिं ॥ १ ॥ धनद उवाच ॥ भो भो क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि ते-
ऽनघ ॥ यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥ २ ॥ न भवानव-
धीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव ॥ काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः
॥ ३ ॥ अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि ॥ स्वाप्नीवाभात्य-
तद्ध्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥ ४ ॥ तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवंतमधोक्ष-
जम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥ ५ ॥ भजस्व भजनीयांघ्रिम-
भवाय भवच्छिदम् ॥ युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्यात्ममायया ॥ ६ ॥ वृ-
णीहि कामं नृप यन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदे विशङ्कितः ॥ वरं वरार्होऽम्बुज-
नाभपादयोरनन्तरं त्वां वयमङ्ग शुश्रुम ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स राजराजेन
वराय चोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ॥ हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं
यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥ ८ ॥ तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडा-

और किन्नर स्तुति कररहे थे, उन को देखते ही ध्रुवजी ने हाथ जोड़े तब कुवेर ने ध्रुवजी से कहा ॥ १ ॥ कुवेर बोले-हे निष्पाप क्षत्रिय के पुत्र ! तू ने अपने पितामह (मनुजी) के उपदेश से जिस का त्यागना कठिन था ऐसे वैरभाव का त्याग करा है इसकारण तेरे ऊपर मैं परमप्रसन्न हूँ ॥ २ ॥ वास्तव में देखाजाय तो तू ने यक्षों का और यक्षों ने तेरे भ्राता का वध नहीं करा है, क्योंकि-प्राणियों के नाश वा उत्पन्न होने का कारण केवल वह समर्थ काल ही है ॥ ३ ॥ जिस के कारण बन्धन और दुःख आदि प्राप्त होते हैं वह 'मैं और तू' इसप्रकार की स्वप्न की समान मिथ्याबुद्धि, पुरुष को, अज्ञान के कारण मिथ्यारूप शरीरपर अभिमान होने के कारण प्राप्त होती है ॥ ४ ॥ इसकारण हे ध्रुव ! तेरा कल्याण हो, अब तू अपने घर को जा, और सकल प्राणियों में आत्मबुद्धि रखकर संसार से मुक्त होने के निमित्त, जिनकी मूर्त्ति सर्व विश्वरूप है, जिनके स्वरूप का ज्ञान इन्द्रियों को नहीं होता है, जिनके चरण सेवा करनेयोग्य हैं, जो संसार का नाश करते हैं जो अपनी माया के द्वारा त्रिगुणमयी शक्ति से युक्त होकर भी वास्तव में निर्गुण हैं तिन भगवान् की आराधना कर ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे उत्तानपाद राजा के पुत्र राजा ध्रुव ! हमने सुना है कि-तू कमलनाभ भगवान् के चरणों के समीप रहनेवाला है, इसकारण तू वरदान देने का पात्र है,सो तू सङ्कोच न करके जो मनकी इच्छा हो मुझ से निर्भय होकर मांग ले ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हे विदुरजी ! ऐसे महाभक्त परम बुद्धिमान् उन ध्रुव जी को वरमांगने के निमित्त कुवेर के प्रेरणा करनेपर ध्रुवजी ने श्रीहरि का अटल स्मरण मांगा कि-जिस से जीव अनायास में ही संसाररूप दुस्तर अन्धकार को तरजाता है ॥ ८ ॥

सुतः ॥ पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥ अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥ १० ॥ सर्वात्मन्यच्युते सर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन् ॥ ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥ ११ ॥ तमेवं शीलसम्पन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् ॥ गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥ १२ ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् ॥ भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥ १३ ॥ एवं बहुसवं कालं महात्माविचलेन्द्रियः ॥ त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥ १४ ॥ मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि ॥ अविद्यारचितं स्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥ १५ ॥ आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ॥ भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥ १६ ॥ तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्ध्वासनं जितमरुन्मनसाहृताक्षः ॥ स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप ए-

तदनन्तर प्रसन्न मन से ध्रुवजी को अचल स्मृति देकर, उन के देखते हुए वह इड़विड़ा के पुत्र कुवेरजी अन्तर्धान होगए और ध्रुवजी भी अपने नगर को लौट आए ॥ ९ ॥ तदनन्तर उन ध्रुवजी ने व्रीहि आदि पदार्थ, हवन आदि कर्म और इन्द्र आदि देवताओं से सिद्ध होनेवाले यज्ञ का फल देनेवाले जो यज्ञपति भगवान् उनका बहुतसी दक्षिणावाले अनेकों यज्ञों से आराधन करा ॥ १० ॥ इसप्रकार वह ध्रुवजी सबके आत्मा और सकल उपाधियों से रहित अच्युत भगवान् के विषैं अखण्ड प्रवाह की भक्ति करता हुआ अपने और सकल प्राणियों के भीतर वह एक व्यापक परमेश्वर ही विराजमान हैं, ऐसा देखने लगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार सुन्दर स्वभाववाले, ब्राह्मणों के हितकारी, दीनवत्सल, और धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेवाले उन ध्रुवजी को सकल प्रजा पिता की समान मानने लगीं ॥ १२ ॥ उन ध्रुवजी ने ऐश्वर्य आदि के भोग से पुण्यका क्षय करके और यज्ञ आदि अनुष्ठानोंके द्वारा पापों का क्षय करके छत्तीस सहस्र वर्षपर्यन्त भूमण्डल का राज्य किया ॥ १३ ॥ जिन की इन्द्रियें वश में हैं ऐसे उन राजा ध्रुवजी ने, इसप्रकार धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग को सिद्ध करनेवाले बहुत वर्षों पर्यन्त के समय को विताकर अपने वत्सरनामक पुत्र को राज्यसिंहासन देदिया ॥ १४ ॥ वह ध्रुवजी, अज्ञान से कल्पित हुए स्वप्न की समान वा गन्धर्व नगर की समान यह शरीर आदि सकल विश्व, अपने आत्मा के विषैं भगवान् की मायासे रचाहुआ है ऐसा जानते हुए—अपना शरीर, स्त्री, संतान, मित्र, सेना, संपदाओं से भराहुआ भण्डार, रणवास, क्रीड़ा करनेके मनोहर भवन और समुद्र के तटपर्यंत भूमण्डल यह सब काल के चक्र में पड़े हुए (अनित्य) हैं ऐसा विचारकर बदरिकाश्रम को चलेगए ॥ १५ ॥ १६ ॥ और तहां पवित्र जलमें स्नान करके जिनकी इंद्रियें

तद्ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥१७॥ भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्र-
मानन्दबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ॥ विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचिताङ्गो नात्मानम-
स्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ॥१८॥ स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद् ध्रुवः ॥ वि-
भ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् । १९ ॥ तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ
किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ ॥ स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहाराङ्गदचारु-
कुण्डलौ ॥ २० ॥ विज्ञाय तावुत्तमगायकिङ्करावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः
॥ ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥ २१ ॥
तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ॥ सुनन्दनन्दावुप
सृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसम्मतौ ॥ २२ ॥ सुनन्दनन्दावूचतुः ॥ भो भो

परमशुद्ध होगई हैं, ऐसे उन ध्रुवजी ने आसन लगाकर, प्राणवायु को जीतकर मन से अपनी इन्द्रियों को बाहिरी विषयों से हटाया और भगवान् के स्थूल विराट्स्वरूप में अपना मन लगाया, तदनन्तर ध्यान करते २ ' मैं ध्यान करनेवाला हूँ और यह विराट् स्वरूप ध्यान करनेयोग्य, है ऐसे भेद के परदे को दूर करके अन्त में उन्होने समाधि के विषैं उस स्थूल स्वरूप के चिंतवनको भी त्यागदिया अर्थात् उनको उसका भी स्मरण नहीं रहा ॥ १७ ॥ हे विदुरजी ! इसप्रकार भगवान् श्रीहरि के विषैं सदा परमभक्ति करने वाले वह ध्रुवजी, आनन्द की अश्रुधारा से व्याकुल होकर जिनका हृदय द्रवीभूत होगया है और जिनके सकल शरीरपर रोमाञ्च खडे होगए हैं ऐसे होकर अंत में उनका शरीराभिमान इतना दूर होगया कि-उनको ' यह मैं हूँ ' इतनाभी मान नहीं रहा ॥ १८ ॥ तदनन्तर उन ध्रुवजी ने, आकाश में से नीचे को उतरनेवाले और उदय होतेहुए चन्द्रमा की समान दशों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाले श्रेष्ठ विमान् को देखा ॥ १९ ॥ और उस विमानमें चतुर्भुज, श्यामवर्ण किशोर अवस्थावाले, लाल कमल की समान सुन्दर नेत्रवाले, गदाके सहारे से खड़ेहुए, उत्तम वस्त्रधारी, किरीटहार बाजूबन्द और सुन्दर कुण्डल पाहिने हुए सुनन्द और नन्द इन दो श्रेष्ठ देवताओं को देखा ॥ २० ॥ तदनन्तर वह उत्तमश्लोक भगवान् के सेवक हैं, ऐसा जानकर वह ध्रुवजी, उठकर खड़े होगए; और यह दोनों मधुसूदन भगवान् के पार्षदोंमें प्रधान हैं ऐसामन में होने के कारण आनन्द की घवड़ाहट में, उनका पूजन आदि करने का क्रम भूलकर, केवल भगवान् के नाम उच्चारण करते हुए उनको नमस्कार करके सन्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गए ॥ २१ ॥ तव पद्मनाभ भगवान् के माननीय उन सुनन्द नन्द पार्षदों ने, जिनका चित्त श्रीकृष्ण जी के चरणों में लगरहा है और जो प्रेमभावके साथ मस्तक नमाकर सन्मुख खड़े हैं ऐसे उन ध्रुवजी के समीप जाकर मन्द २ मुसुकराते हुए कहा ॥२२॥

राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ॥ यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥२३॥ तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ॥पार्षदाविह सम्प्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥ २४ ॥ सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ॥ आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो ग्रहर्क्षताराः परियन्ति दक्षिणम् ॥ २५ ॥ अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित् । आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २६ ॥ एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ॥ उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥ २७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतां वाचमुरुक्रमप्रियः ॥ कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलो मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥ २८ ॥ परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च ॥ इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥२९॥ तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ॥ मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥ ३० ॥ तदा दुन्दुभयो

सुनन्द नन्द कहने लगे कि-हे राजन् तुम्हारा परम कल्याण हो तुम सावधान चित्त से हमारे कथन को सुनो, तुमने पांच वर्ष की अवस्था में अपनी तपस्या से जिन देव को तृप्त किया है उन सकल विश्व के रक्षक शार्ङ्गधन्वा देव के हम पार्षद हैं; तुम्हें भगवान् के धाम को लेजाने के निमित्त यहां आये हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ देखो सप्तऋषियों से विद्वान् जिस पदको न पाते हुए केवल नीचे रहकर उसकी ओर को देखते हैं और सूर्य चन्द्र आदि ग्रह, नक्षत्र और तारागण जिस के चारों ओर प्रदक्षिणा करते फिरते हैं, उस जगत् के परम वन्दनीय सर्वोत्तम विष्णुपदपर अब तुम चढ़ो ॥ २५ ॥ हे ध्रुवजी ! तुह्मारे पूर्व पुरुषाओं ने वा दूसरे किसीने भी जो कभी नहीं पाया तिन जगत् के वन्दनीय सर्वोत्तम विष्णु पदपर अब तुम चढ़ो ॥ २६ ॥ पुण्यकीर्ति वालों में श्रेष्ठ भगवान ने यह उत्तम विमान भेजा है, हे चिरञ्जीव ध्रुव ! तुमको इस विमानपर चढ़ना चाहिये ॥ २७ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हेविदुरजी ! उन भगवान् के प्रिय ध्रुवजीने, विष्णुभगवान के श्रेष्ठ भक्तोंका वह अमृतसमान कथन सुनकर स्नान किया और अपने नित्य के मङ्गल कर्मों को निबटाकर बदरिकाश्रम वासी ऋषियों को नमस्कार करके उन का आशीर्वाद पाया ॥ २८ ॥ फिर उन्होने उस श्रेष्ठ विमान की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया और सुवर्ण की समान तेजस्वी स्वरूप धारकर मन में उस विमानपर चढ़ने की इच्छा करी ।२९। इतने हीमें उन उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुवजी ने देखा कि-मूर्तिमान् मृत्यु अपने समीप आकर हाथजोड़े खड़ाहै, और वह विष्णुभगवान् का स्मरण करके उस मृत्युके मस्तकपर अपना चरण रखकर अद्भुत विमानपर चढ़े ॥ ३० ॥ उससमय देवताओं ने बाजे बजाये दुन्दुभि, मृदङ्ग, पणव आदि बाजे बजनेलगे, मुख्य २ गन्धर्व गान करनेलगे और आका

नेदुर्मृदंगपणवादयः ॥ गंधर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥ स च
स्वर्लोकमारोक्ष्यन्सुनीतिं जननीं ध्रुवः ॥ अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये
त्रिविष्टपम् ॥ ३२ ॥ इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ॥ दर्शयामास-
तुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥ ३३ ॥ तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः
सुरैः ॥ अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥ ३४ ॥ त्रिलोकीं देव-
यानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ॥ परस्ताद्यद् ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥
॥ ३५ ॥ यद्भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनुविभ्राजन्त एते ॥ यन्ना-
व्रजन् जन्तुषु येऽननुग्रहा व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम् ॥ ३६ ॥
शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः ॥ यान्त्यञ्जसाऽच्युतपदमच्युतप्रिय-
बान्धवाः ॥ ३७ ॥ इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ॥ अभूत्त्रयाणां
लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥ ३८ ॥ गंभीरवेगोनिमिषं ज्योतिषां चक्रमा-
हितम् ॥ यस्मिन् भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥ ३९ ॥ महिमानं

श में से भूतलपर पुष्पो की वर्षा होनेलगी ॥ ३१ ॥ उससमय स्वर्गलोक में को चढ़नेवाले उन ध्रुवजी को सुनीति माता का स्मरण आया और वह मन में कहनेलगे कि–मैं अपनी दीन माता को त्यागकर दुर्गम स्वर्ग लोक को इकलाही कैसे जाऊंगा ॥ ३२ ॥ उससमय ध्रुवजीके चित्तकी वार्ता को जानकर उन देवश्रेष्ठ नन्द और सुनन्द ने ध्रुवजी को आगे विमान पै बैठकर जातीहुई सुनीति देवी दिखाई ॥ ३३ ॥ फिर मार्ग में जहां तहां विमानोपर बैठेहुए देवताओं ने जिनके ऊपर, प्रशंसा करके पुष्पों की वर्षा करी है ऐसे तिन ध्रुवजी ने सूर्य आदिग्रहों को देखा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर विमान में बैठकर शश्वत स्थान को जानेवाले तिन ध्रुवजी ने त्रिलोकी और सप्त ऋषियों को लांघकर उन के ऊपर के विष्णु पद के विषैं गमन करा ॥ ३५ ॥ जो ध्रुवपद सदा अपने तेजसे प्रकाशवान् रहता है, यह तीनोंलोक जिसकी कान्ति से प्रकाशित होते हैं, प्राणियों में जो निर्दयी हैं वह जिस पद में नहीं पहुँचते हैं, जो पुरुष सदा पुण्यकर्म करनेवाले हैं वह ही उसस्थान में पहुँचते हैं ॥ ३६ ॥ शान्त, सब में समदृष्टि रखनेवाले, शुद्ध, सकल प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले और परमात्मा कोही प्रिय तथा बान्धव माननेवाले जो पुरुषहैं वह इस भगवत्पद के विषैं अनायासमें पहुँचतेहैं ।३७। इसप्रकार श्रीकृष्ण ही जिन के मुख्य आश्रय हैं ऐसे वह उत्तानपादराजाकेपुत्र ध्रुवजी,त्रिलोकी के मस्तकपर के निर्मल रत्नकीसमानहोकररहे ।३८। हे विदुरजी ! निरन्तर भ्रमनेवाला ज्योतिरूप तारागणों का चक्र, जिस ध्रुवपद में,स्थापित होने के कारण. उसके आश्रय से, खम्भे के आश्रय से गम्भीर वेग से जैसे वृषभों का समूह घूमता है तैसे, घूमता रहता है ॥ ३९ ॥ भगवान् नारद जी ने, ध्रुवजी की ऐसी

विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ॥ आतोद्यं वितुदन् श्लोकान्सत्रेऽगायत्प्रचेतसां ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ नूनं सुनीतेः पतिदेवतायास्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिं॥ दृष्ट्वाऽभ्युपायानपि वेदवादिनो नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥४१॥ यः पञ्चवर्षो गुरुदारवाक्शरैर्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता॥ वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥ ४२ ॥ यः क्षत्रबन्धुर्भुवि तस्याधिरूढमन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ॥ षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं संमतं सताम् ॥४४॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥ ॥ ४५ श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाऽभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् ॥ भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात् क्लेशसंक्षयः ॥ ४६ ॥ महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ॥

महिमा देखकर, वीणा बजाते २ प्रचेतस् राजाओं के ब्रह्मसत्र में भगवान् के माहात्म्यका वर्णन करने के प्रसङ्ग से ध्रुवजी की महिमा प्रकट करनेवाले तीन श्लोकों का गान करा ॥ ४० ॥ नारद जी ने कहा कि–अधिक तो क्या, जिस का पति ही देवता है ऐसी सुनीति के पुत्र ध्रुवजी को तपस्या के प्रभाव से जो गति मिली उस को बड़े २ ब्रह्मर्षि, भागवत धर्मों का आचरण करकेभी वास्तव नहीं पासक्ते ? फिर राजाओंकी वातही कहां रही ॥ ४१ ॥ जिन ध्रुवजीने पांच वर्ष की बालक अवस्था में ही अपनी सौतेली माता के वचनरूप बाणों से विदीर्ण होने के कारण विव्हल हुए हृदय से वन में जाकर मेरे उपदेश के अनुसार वर्ताव करके, अपने भक्तों के मैत्री आदि गुणों से वश में होनेवाले अजेय भगवान् को वश में करलिया ॥ ४२ ॥ आहा ! उस ध्रुव की कैसी महिमा है, अहो ! जिसने पांच वा छः वर्ष की अवस्था में थोड़े ही दिनों में भगवान् को प्रसन्न करके जो पद पाया और जिस पर चढ़े, ध्रुवजी के आगे भूमण्डल पर उत्पन्न होनेवाला कोई क्षत्रिय, सहस्रों वर्ष यत्न करकेभी क्या उस पद पर चढ़ने की इच्छामात्र भी कर सकेगा ? जब इच्छामात्रभी करना कठिन है तो चढ़ना तो बहुतही दूर रहा ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! जो तुमने मुझसे यहां प्रश्न कराथा, सो यह साधु पुरुषों का माननीय परम यशस्वी ध्रुवजी का चरित्र आदि से अन्त पर्यन्त मैंने तुम से कहा ॥ ४४ ॥ यह आख्यान धन का देनेवाला, यश का बढ़ानेवाला, आयु का बढ़ानेवाला, पुण्यकारक परममङ्गलकारक, स्वर्गदायक ध्रुवजी के स्थान का प्राप्त करानेवाला, प्रशंसा करनेयोग्य और पापों का नाश करनेवाला है ॥ ४५ इस ध्रुवजीके चरित्र को भक्ति के साथ वारंवार सुनने पर भगवान् के विषें भक्ति प्राप्त होती है जो सकल क्लेशों का नाश करती है ॥४६॥

यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनां ॥ ४७ ॥ प्रयतः कीर्त्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ॥ सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥ ४८ ॥ पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथ वा ॥ दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेऽर्कदिनेऽपि वा ॥ ४९ ॥ श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः ॥ नेच्छंस्तत्रात्मनात्मानं संतुष्ट इति सिद्ध्यति ॥ ५० ॥ ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतं ॥ कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥ ५१ ॥ इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ॥ हित्वाऽर्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं जगाम ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणं ॥ प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत ॥ कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्र-

---

यह चरित्र, महत्त्व पानेकी इच्छा करनेवालों को महत्त्व के पाने का साधन है, इस के सुननेवाले को सुशीलता आदि गुण प्राप्त होते हैं, इसके द्वारा, तेजस्वी होने की इच्छा करनेवालों को तेज और मान की इच्छा करनेवालों को सन्मान मिलता है ॥ ४७ ॥ मनुष्य एकाग्रचित्त होकर पुण्यकीर्त्ति ध्रुवजी के इस विस्तारवाले चरित्र का प्रातःकाल और सायङ्काल के समय ब्राह्मणादि के समूह में कीर्त्तन करे ॥ ४८ ॥ भगवान् का पवित्र चरण ही मेरा आधार है,ऐसी बुद्धिवाला जो पुरुष,पूर्णिमा,अमावास्या द्वादशी, श्रवण नक्षत्र, दिनक्षय (जिस दिन तिथि घटी हो), व्यतीपात, सङ्क्रान्ति वा रविवार के दिन निष्काम बुद्धि से श्रद्धावान् पुरुषों को यह आख्यान सुनावे तो वह पुरुष आपही अपने आत्मा में सन्तुष्ट होकर भगवान् की प्रसन्नतारूप सिद्धि को पावेगा ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ और जिसने भगवान् के मार्ग का तत्त्व नहीं समझा है उस पुरुष को, जो यह अमृतरूप ज्ञान देता है उस दयालु दीननाथ के ऊपर भगवान् कृपा करते हैं ॥ ५१ ॥ हे कुरुकुल में श्रेष्ठ विदुरजी ! जो ध्रुवजी बालकही, अपने खेलने के खिलौने और माता के स्थान को त्यागकर श्री विष्णुभगवान् की शरण में गए, जिन के जगत् में प्रसिद्ध और पवित्र कर्म हैं उन ध्रुवजी का चरित्र मैंने तुम से कहा ॥ ५२ ॥ इतिचतुर्थ स्कन्ध में द्वादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ सूतजी कहते हैं कि–हे ऋषियों ! इसप्रकार मैत्रेयजी के वर्णन करेहुए ध्रुवजी के विष्णु पदारोणह को सुनकर जिन के हृदय में दृढ़भक्ति उत्पन्न हुई है ऐसे विदुरजी ने, उन मैत्रेय ऋषि से फिर प्रश्न करने का प्रारम्भ किया ॥ १ ॥ विदुरजी ने कहा कि–हे तपमें तत्पर मैत्रेयजी ! प्रचेतस् राजाओं के ब्रह्मसत्र में नार-जी

मासते ॥ २ ॥ मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् ॥ येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ॥ ३ ॥ स्वधर्मशीलैः पुरुषो भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥ ४ ॥ यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ॥ मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कार्त्स्न्येनाचष्टुमर्हसि ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनं ॥ सार्वभौमश्रियं नैच्छदाधिराज्यासनं पितुः ॥ ६ ॥ स जन्मनोपशान्तात्मा निःसंगः समदर्शनः ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ॥ ७ ॥ आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ॥ अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनुसंततम् ॥ ८ ॥ अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः ॥ स्वरूपमवरुंधानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ॥ ९ ॥ जडांधबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः ॥ लक्षितः पथि बालानां प्रशांतार्चिरिवानलः ॥ १० ॥ मत्वा तं

ने ध्रुवजी का माहात्म्य वर्णन करा, ऐसा आपने मुझ से कहा है परन्तु वह प्रचेतस् नाम वाले कौनथे ? किस के पुत्र थे ? किसके वंश में प्रसिद्ध थे और वह कहां सत्र कररहे थे ? ॥ २ ॥ हे भगवान् ! जिन नारदजी ने पञ्चरात्र ग्रन्थ में श्री हरि की पूजाकी रीति रूप कर्मयोग कहा है और जिनको भगवान् का साक्षात् दर्शन होता है. उन नारदजी को मैं परम भगवद्भक्त मानता हूँ ॥ ३ ॥ आप के कहने से ऐसा प्रतीत होता है कि-प्रचेतस् नामक पुरुष निजधर्म में तत्पर थे और वह यज्ञमूर्त्ति भगवान् की आराधना कररहे थे तथा उसी प्रसङ्ग में तहां भक्तिमान् नारदजी ने भगवान् की लीलाओं का वर्णन करा था ॥ ४ ॥ सो हे मुनिवर ! नारदजी ने, तिस यज्ञ में जो भगवान् की कथा वर्णन करी थी उसको सुनने की इच्छा करनेवाले मुझ को वह सब सुनाने की कृपा करिये ॥ ५ ॥ ध्रुवजी के वंश में ही वह प्रचेतस् हुए ऐसा वर्णन करने के निमित्त मैत्रेयजीने कहा कि- हे विदुरजी ! ध्रुवजी के उत्कल नामक पुत्र ने, अपने पिता ध्रुवजी के वनको चले जानेपर उनके राज्यसिंहासन की और सार्वभौम सम्पत्ति की किञ्चिन्मात्र भी इच्छा नहीं करी ॥ ६ ॥ क्योंकि-वह जन्म से ही शान्तचित्त, निःसङ्ग और समदृष्टि होकर सकललोकों में आत्मा ही व्याप्तहै और आत्मामें सकल लोक व्याप्तहैं ऐसा देखताथा ॥ ७ ॥ और जिसकी अखण्डयोगरूप अग्नि से कर्मरूप मल व मलकी वासना सर्वथा भस्म होगई हैं ऐसा वह उत्कल- अपने को स्वरूपभूत, शान्त, भेदरहित, ज्ञानरसरूप, आनन्दमात्र और सर्वव्यापक ब्रह्म ही हूँ ऐसा जानकर, उस आत्मा से पृथक् कुछ नहीं देखता था ॥ ८ ॥ ९ ॥ वह उत्कल, अज्ञानी पुरुषों को मार्ग में-जड़, अन्धा, बहरा, उन्मत्त वा गूँगा जैसा हो, ऐसा प्रतीत होता था, परन्तु वास्तव में देखाजाय तो उस की बुद्धि तैसी नहीं थी किन्तु वह-जिस की लपटें शान्त होगई हैं ऐसी अग्नि की समान, साधारण पुरुषों की बुद्धि में न आनेवाला महाज्ञानी था ॥ १० ॥ इसकारण मन्त्रियों के साथ कुल के वृद्ध पुरुषों ने, उस उत्कल को जड़

जडं वन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः ॥ वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥ ११ ॥ स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान् ॥ पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥ १२ ॥ पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ॥ प्रातर्मध्यंदिनं सायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥ १३ ॥ प्रदोषो निशीथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ॥ व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥ १४ ॥ स चक्षुः सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ॥ मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ॥ १५ ॥ पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तं धृतव्रतम् ॥ अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिविमुल्मुकम् ॥ १६ ॥ उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान् पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ॥ अंगं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमंगिरसं गयं ॥ १७ ॥ सुनीथांऽगस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणं ॥ यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥ १८ ॥ यमंगं शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल ॥ गतासोस्तस्य भूयस्ते ममंथुर्दक्षिणं करं ॥ १९ ॥ अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ॥ जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥ २० ॥ विदुर उवाच ॥ तस्य

और उन्मत्त समझकर उस के ही छोटे भ्राता, ध्रुवजी की भ्रमि नामक स्त्री का जो वत्सर नामक पुत्र था उसको राज्याभिषेक करदिया ॥ ११ ॥ वत्सर की प्रिया स्त्री स्वर्वीचि ने छः पुत्र उत्पन्न करे, उन के नाम—पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय थे ॥ १२ ॥ उन में से पुष्पार्णकी प्रभा और दोषा यह दो स्त्रियेंथी उनमेंसे प्रभा नामक स्त्री के—प्रातःकाल, मध्यन्दिन (दोपहर) और सायङ्काल यह तीन काल के अभिमानी देवता पुत्रहुए ॥ १३ ॥ दूसरी दोषानामक स्त्री के, प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट यह तीन पुत्र हुए; उन में से व्युष्ट की पुष्करिणी नामक स्त्री के गर्भ से सर्वतेजस् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ तिस सर्व तेजकी आकूति नामक स्त्री के विषैं चक्षुनामक मनु पुत्र हुआ, उस मनु की नड्वला नामक पटरानी ने निर्दोष आचरणवाले बारह पुत्र उत्पन्न करे ॥ १५ ॥ उनके नाम—पुरु, कुत्स, त्रित्र, द्युम्न, सत्यवान्, ऋत, व्रत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिवि और उल्मुक थे ॥ १६ ॥ उल्मुक ने पुष्करिणी के विषैं—अङ्ग, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा, और गय यह छः श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न करे ॥ १७ ॥ अङ्ग की जो सुनीथा नामक स्त्री थी उसने वेन नामक दुष्ट पुत्र को उत्पन्न करा, वह राजर्षि अङ्ग, तिस वेन के दुष्ट स्वभाव के कारण दुःखित होनेसे, विरक्त होकर नगर से निकलगया ॥ १८ ॥ हे विदुरजी! जिनकी वाणी ही वज्र है ऐसे कोप में भरे हुए मुनियों ने, वास्तव में मरण की बुद्धि से उस को शाप दिया तिस से वह तत्काल मरण को प्राप्त होगया तब फिर उन ऋषियों ने मरण को प्राप्त हुए उसकी दाहिने बाहु को मथा ॥ १९ ॥ क्योंकि उस समय लोकों में राजा के न होने के कारण सकल प्रजा चोरों से पीड़ित होगई थी ॥ २० ॥ विदुरजी ने

शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः ॥ राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥ २१ ॥ किंवांऽहो वेनमुद्दिश्य ब्रह्मदंडमयूयुंजन् ॥ दंडव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥ २२ ॥ नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ॥ यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥ २३ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितं ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अंगोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुं ॥ नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥ २५ ॥ तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथर्त्विजः ॥ हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥ २६ ॥ राजन्हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयासादितानि ते ॥ छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥ २७ ॥ न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि ॥ यन्न गृह्णन्ति भागान्स्वान् ॥ ये देवाः

कहा कि—हे मुनिवर ! अङ्ग राजा तो सुन्दर स्वभाव का निधि, साधु, ब्राह्मणों का हितकारी, और महात्मा था उसके ऐसी दुष्ट सन्तान किस कारणसे हुई? जिससे कि—खिन्न होकर उसको घर से निकलना पड़ा ॥२१॥ और धर्म को जानने में प्रवीण ऋषियों ने, दुष्टों के दमन का व्रत धारण करनेवाले वेन राजा में कौनसा अपराध समझकर शापरूप ब्रह्मदण्ड दिया ॥२२॥ धर्मशास्त्र को देखाजाय तो, प्रजा का पालन करने वाला राजा यदि कदाचित् प्रजा का अपराध करे तो भी उसका तिरस्कार न करे, क्योंकि—वह अपने प्रभाव से इन्द्रादि लोकपालों की शक्ति अपने में धारण करे हुए है ॥२३॥ अतः हे ब्रह्मन ! श्रद्धा और भक्ति युक्त मुझको यह सुनीथा के पुत्र (वेन) का चरित्र आप सुनावें, क्योंकि—भूत और भविष्यत् को जाननेवालों में आप परम श्रेष्ठ हैं ॥ २४ ॥ प्रारब्ध में न होनेपर पुत्र, काम्य कर्म के द्वारा बलात्कार से मिलजाय तो वह सुख देनेवाला नहीं होता है यह दिखाने के निमित्त अङ्गराजा के पुत्र उत्पन्न होने की रीति कहते हुए मैत्रेयजी बोले कि—हे विदुरजी ! ऋषियों की समान आचण करनेवाले अङ्गराजा ने अश्वमेध नामक बड़ेभारी यज्ञका प्रारम्भ किया, उस में वेद के जाननेवाले ब्राह्मणों ने हवि का भाग ग्रहण करने के निमित्त देवताओं का आवाहन करा परन्तु वह नहीं आये ॥ २५ ॥ तब वह ऋत्विज विस्मय में होकर उस यजमान से कहनेलगे कि—हे राजन् ! हमारे होम करेहुए तुम्हारे होम के पदार्थों को देवता ग्रहण नहीं करते हैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! होम के द्रव्य दूषित भी नहीं हैं किन्तु निर्दोश हैं और तुम ने श्रद्धा के साथ उन की योजना करी है और उन में मन्त्र वैगुण्य भी नहीं है, क्योंकि—ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंको धारण करनेवाले हमारे उच्चारण करेहुए मन्त्र बलहीन नहीं हैं ॥ २७ ॥ और हमें नहीं प्रतीत होता कि—इस यज्ञ में किसीभी कारण से अणुमात्रभी देवताओं की हेलना (अपराध) हुई हो, ऐसा होनेपर भी कर्म के साक्षी के देवता यहां आकर

कर्मसाक्षिणः ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सु-दुर्मनाः । तत्प्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥ २९ ॥ नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह ॥ सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम् ॥ ३० ॥ सदसस्पतय ऊचुः ॥ नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक् स्थितम् ॥ अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक् त्वमप्रजः ॥ ३१ ॥ तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप ॥ इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥ ३२ ॥ तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः ॥ यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥ ॥ ३३ ॥ तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः ॥ आराधितो यथैवैष तथा पुंसां फलोदयः ॥ ३४ ॥ इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये ॥ पुरोडाशं निरवपन् शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ३५ ॥ तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यम-

अपने हविर्भाग को ग्रहण नहीं करते हैं, न जाने इसका कौन कारण है ! ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! यह ब्राह्मणोंका कथन सुनकर वह यजमान अङ्गराजा खिन्न हुआ और अनुष्ठान में मौन धारण करनेपर भी उस ने तिन ऋत्विजों की आज्ञा से, उन देवताओं के न आने का कारण सदस्यों से बूझने के लिये मौनव्रत को छोड़कर इसप्रकार कहा कि–॥ २९ ॥ हे सदसस्पतियों ! इस यज्ञ में मंत्रों के द्वारा आवाहन करनेपर भी देवता नहीं आते हैं और हवि के भाग को ग्रहण नहीं करते हैं, ऐसा मैंने कौनसा पाप करा है सो कहिये ? ॥ ३० ॥ सदसस्पति कहनेलगे कि–हे राजन् ! इस जन्म में तुझ से बनाहुआ पाप किञ्चिन्मात्र भी शेष नहींरहा है. यदि किसीसमय कुछ पाप बना होगा तो प्रायश्चित्तों के द्वारा वह होही गया है, परन्तु जिसकारण से तुम इस जन्म में पुत्रहीन हुए हो ऐसा एक तुह्मारा पूर्वजन्म का पाप है ॥ ३१ ॥ अतः हे राजन् ! जिसप्रकार देवता हविरूप भाग को ग्रहण करेंगे वह तू अपने उत्तम पुत्र होने का साधन प्रथम कर, तेरा कल्याण हो, तेरेपुत्र कामेष्टिसे यजन करनेपर यज्ञभोक्ता भगवान् श्रीहरि तुझे पुत्रदेंगे ।३२ यदि साक्षात् यज्ञपुरुष श्रीहरि ही पुत्र की प्राप्ति के निमित्त वरेजायँगे तो उनके वरदान देने को यहां आनेपर उन के साथ सब ही देवता यहां आवेंगे और अपने २ भाग को ग्रहण करेंगे॥३३॥ ऐसा मन में विचार न करना कि–यह अतितुच्छ फल श्रीहरि कैसे देंगे, क्योंकि–मनुष्य जिन २ विषयों की इच्छा करता है, वह २ विषय श्रीहरि उस को देते हैं, जैसे श्रीहरि का आराधन कियाजाय वैसे ही फल की प्राप्ति पुरुषों को होती है॥३४॥ ऐसे सदसस्पतियों के कथन को सुनकर पुत्र कामेष्टि के करने का निश्चय करके, उन ऋत्विजों ने तिस राजा अङ्ग को पुत्र की प्राप्ति होने के निमित्त, पशु के विषैं यज्ञरूप से रहनेवाले विष्णुभगवान् के निमित्त पुरोड़ाश तयारकरके उस का हवन किया ॥३५॥

लांबरः ॥ हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥ ३६ ॥ स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाऽञ्जलिनौदनम् ॥ अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥ ॥ ३७ ॥ सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युरादधे ॥ गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥ ३८ ॥ स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ॥ अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥ ३९ ॥ स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ॥ हन्ति साधून्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥ ४० ॥ आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः॥ प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत्॥४१॥ तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ॥ यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥ ४२ ॥ प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ॥ कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥ ४३ ॥ यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणां ॥ यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ॥ ४४ ॥ कस्तं प्रजा-

तब अग्निकुण्डमें से सुवर्ण के पुष्पों की माला को पहिने,स्वच्छ वस्त्र धारे, एक पुरुष हाथ पर सुवर्ण के पात्र में सिद्धहुआ पायस (खीर) लियेहुए निकला ॥ ३६ ॥ तब उन बुद्धिमान् राजाने, ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर अंजुलि में वह पायस लिया और उस को सूंघ कर प्रसन्नता के साथ अपनी स्त्रीको दिया ॥ ३७ ॥ तब उस पुत्रहीन सुनीथा रानी ने उस पुत्र देनेवाले पायस को भक्षण करा,फिर पति से उस के गर्भ रहा, और प्रसूतिकाल आनेपर उस के पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३८ ॥ वह बालक छोटेपन से ही अधर्म के वंशमें उत्पन्न हुए मृत्यु नामक अपने मातामह (नाना) की समान आगे को अधर्म करनेवाला हुआ ॥ ३९ ॥ फिर वह दुष्ट साक्षात् व्याध की समान घातक होकर धनुष चढा वन में जाकर दीन मृगों का वध करता था, उससमय उस को देखकर सकल लोक 'अरे यह वेन आरहा है' ऐसा कहकर चिल्लाने लगते थे ॥ ४० ॥ अतिदारुण और निर्दयी वह वेन क्रीड़ा करने के स्थान में खेलतेहुए अपनी समान अवस्थावाले बालकों को बलात्कार से जैसे यज्ञ में पशुओं को मुक्कों से मारते हैं, तैसे मारताथा ॥ ४१ ॥ तब अङ्ग राजा ने उस अपने दुष्ट पुत्र के कर्म को देखकर उस को अनेकों प्रकार से समझाया परन्तु अन्त में जब वह उस को मार्गपर नहीं लासका तब अत्यन्त खिन्न होकर कहाकि— ॥ ४२ ॥ जो गृहस्थी पुत्रहीन हैं, उन्हों ने पूर्वजन्म में परमेश्वर की बहुतकुछ आराधना करी होगी क्योंकि—उनको कुपुत्र के कारण का परम दुःसह दुःख नहीं भोगना पड़ता है ॥ ४३ ॥ जिस कुपुत्र से पुरुषों की अपकीर्ति होती है, बड़ा अधर्म होता है, सब से वैरभाव होजाता है और अन्तःकरण में अपार दुःख उत्पन्न होता है ॥४४॥ तथा जिसके कारण घर दुःखदायक प्रतीत होने लगता है उस पुत्र नामसे प्रसिद्ध होनेवाले अपने मोहरूप बन्धनको

ऽपदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः ॥ पण्डितो बहुमन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥ ॥ ४५ ॥ कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ॥ निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत् क्लेशनिवहा गृहाः ॥ ४६ ॥ एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ॥ अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥ ४७ ॥ विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ॥ विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥ ४८ ॥ अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीं ॥ ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरव भर्तृविप्लवं ॥ ४९ ॥ इतिश्रीभागवते म० चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ ॥ १३ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ॥ गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥ १ ॥ वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ॥ प्रकृत्यसंमतं वेनमभ्यषिंचन् पतिं भुवः ॥ २ ॥ श्रुत्वा नृपा-

---

कौन चतुर पुरुष उत्तम मानेगा? अर्थात् कोई उत्तम नहीं मानेगा ॥ ४५ ॥ अथवा मुझे प्रतीत होता है कि–निरन्तर शोक के स्थान सद्गुणी पुत्र की अपेक्षा दुर्गुणी पुत्र होनाही श्रेष्ठ है, क्योंकि–दुर्गुणी पुत्र के कारण घर सबप्रकार से दुःखदायक होजाता है तब पुरुष को उस घरसे वैराग्य होजाता है (जो कि कल्याण का द्वार है) ॥ ४६ ॥ हे विदुरजी ! इसप्रकार खिन्नचित्त होने के कारण निद्रारहित हुआ वह राजा अङ्ग, एकदिन आधी रात्रि के समय उठकर गाढ़निद्रा में सोतीहुई वेन की माता (सुनीथा रानी) को त्यागकर, बड़े२ ऐश्वर्यों की प्राप्तिके साधन तिस अपने घरसे निकलकर इसप्रकार चलागया कि-किसीको विदित नहीं हुआ ॥ ४७ ॥ तदनन्तर दूसरे दिन हमारा राजा विरक्त होकर निकलगयाहै ऐसा जानकर, पुरोहित, मन्त्री और मित्रमण्डली आदि सकल प्रजा शोक से अत्यन्त व्याकुल होकर जैसे कुयोगी पुरुष, अन्तर्यामीरूप से रहनेवाले गुप्त पुरुष की खोज करते हैं तैसे, उन को पृथ्वीपर खोजनेलगे परन्तु जैसे अन्तर्यामी आत्मा कुयोगी पुरुषों को नहीं प्रतीत होता है तैसे ही वह यद्यपि पृथ्वीपर ही कहीं था परन्तु उन को मिला नहीं ॥ ४८ ॥ हे विदुरजी ! तब, जिन को अङ्ग राजा का कहीं भी पता नहीं लगा है ऐसे, नेत्रों में से अश्रुधारा बहानेवाले और जिन का परिश्रम व्यर्थ हुआ है ऐसे वह नगर में को लौटके आये तथा तहां विराजमान ऋषियों को प्रणाम किया और उन से 'हम ने बहुत खोजकरी परन्तु राजा का कहीं पता नहीं लगा' यह कहा ॥ ४९ ॥ इति चतुर्थ स्कन्ध में त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! लोकों के हितकारी और ब्रह्मज्ञानी तिन भृगुजी आदि ऋषियों ने, प्रजा की रक्षा करनेवाले राजा के नष्ट होने से सकल मनुष्य पशु की समान हुए जाते हैं ऐसा देखकर वीरमाता (शूर पुत्र की माता) सुनीथा की सम्मति लेकर मन्त्रीमण्डल की सम्मति न होनेपर भी उस वेन को पृथ्वी के राज्य का अभिषेक करदिया ॥ १ ॥ २ ॥

सनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ॥ निलिल्युर्दस्यवः सर्वे सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥ ३ ॥ स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ॥ अवमेने महाभागान् स्तब्धः संभावितः स्वतः ॥ ४ ॥ एवं मदांध उत्सिक्तो निरंकुश इव द्विपः ॥ पर्यटन् रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥ ५ ॥ न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ॥ इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥ ६ ॥ वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् ॥ विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥ ७ ॥ अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ॥ दारुण्युभयतो दीप्ते इव तस्करपालयोः ॥ ८ ॥ अराजकभयादेष कृतो राजाऽतदर्हणः ॥ ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनां ॥९॥ अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् ॥ वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसम्भवः ॥१०॥ निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः ॥ तथाऽपि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥ ११ ॥ तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनो-

उससमय, अतिभयङ्कर दण्ड देनेवाला वेन राज्यसिंहासन पर बैठा है, ऐसा सुनकर, सकल चोर ऐसे जहां तहां छुपगए जैसे सर्प के भय से चूहे छुपजाते हैं ॥३॥ इधर राज्यसिंहासन पर बैठाहुआ और इन्द्र आदि आठ लोकपालों के ऐश्वर्यों से उन्मत्त हुआ वह वेन, उद्धतपने से अपने को ही 'मैं शूर हूँ, मैं पण्डित हूँ, ऐसा मानता हुआ, परम भाग्यवान् ऋषियों का तिरस्कार करनेलगा ॥ ४ ॥ इस प्रकार निरङ्कुश हाथी की समान उच्छृंखल और मदान्धहुआ वह राजा, भूमि और स्वर्ग को कम्पायमान करता हुआ अपने रथ के ऊपर बैठकर फिरनेलगा, और हे ब्राह्मणों ! तुम कोई यज्ञ न करो, दान न दो, होम न करो, ऐसी सकल भूमण्डल पर डौंडी पिटवाकर, उसने धर्म्माचरण का निषेध किया ॥५॥६॥ तब उस दुराचारी वेन का यह कर्म देखकर ऋषियों ने मन में विचारा कि अब लोकोंपर कोई सङ्कट अवश्य आवेगा, सो दयालु होकर सब एक स्थान पर इकट्ठेहुए और परस्पर कहने लगे कि--॥ ७ ॥ अहो ! दोनों ओर से काष्ठ के जलनेलगनेपर उस के मध्य में की पिपीलिका (चींटी) आदि जीवों को जैसे दोनों ओर से प्राणसङ्कट प्राप्त होता है तैसे ही लोकों को, एक ओर चोरोंसे और दूसरी ओर राजा से इसप्रकार दोनों ओर बड़ाभारी सङ्कट प्राप्तहुआहै ।८। राजाके न होने से प्रजाओंको चोर आदिका भय होताहै इसकारण राजसिंहासनके अयोग्यभी इस वेन को हमने राजा करादिया, अब उस से ही लोकोंको भय होनेलगा, सो अब लोकों का कल्याण कैसे होयगा ? ॥ ९ ॥ दूध से सर्प का पोषण करना जैसे पोषण करने वाले को भी अनर्थकारी होता है, तैसे ही यह बनाव बना है सुनीथा के उदर से उत्पन्न हुआ यह वेन स्वभाव से ही दुष्ट है और हमने इस को प्रजाओं का पालन करनेवाला राजा बनादिया है, अब वही हम सब प्रजाओं का नाश करने की इच्छा करता है तथापि हम इस को समझावेंगे तब उसके करेहुए पातकों का हमसे स्पर्श नहींहोयगा ।१०।११।

ऽस्माभिःकृतो नृपः ॥ सान्त्वितो यदि नो वाचं न गृहीष्यत्यधर्मकृत् ॥ १२॥ लोकधिक्कारसंदग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ॥ एवमध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः ॥ उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥१३॥ मुनय ऊचुः ॥ नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ॥ आयुःश्रीबलकीर्त्तिनां तव तात विवर्द्धनम् ॥ १४ ॥ धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः ॥ लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ॥ १५ ॥ स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ॥ यस्मिन्विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥ १६ ॥ राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चोरादिभ्यः प्रजा नृपः ॥ रक्षन्यथा बलिं गृह्णन् इह प्रेत्य च मोदते ॥ १७॥ यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः इज्यते ॥ स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥ १८ ॥ तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः ॥ परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरे-

---

वेन का आचार दुष्ट है, वह अधर्म का वर्त्ताव करता है यह जानते हुए भी हमने उसको राज्याभिषेक करादिया, इस कारण अब हमें समझाने की रीति से चार बातें कहकर उस को शान्त करना चाहिये, फिर वह यदि हमारे कहने पर ध्यान नहीं देगा तो, लोकों के धिक्कार से ही प्रायः भस्म हुए इस वेन राजा को हम अपने तेज से भस्म करदेंगे ॥१२॥ ऐसा निश्चय कर के, जिनका क्रोध गुप्त है ऐसे उन ऋपियों ने वेन राजा के समीप जाकर प्रियवाक्यों से समझाकर उस से वार्त्तालाप करने का प्रारम्भ किया ॥ १३ ॥ ऋपियोंने कहा—हे राजन्! सुनो,हम तुमसे एक निवेदन करते हैं जो तुम्हारी आयु,सम्पदा,बल, और कीर्त्ति को बढ़ानेवाला है, उसको तुम सुनो ॥ १४ ॥ हेराजन्! यदि पुरुप, वाणी, मन शरीर और बुद्धि से धर्म का आचरण करे तो वह धर्म, उन पुरुषों को वह लोक देता है कि जिन में किञ्चिन्मात्र भी शोक नहीं है और निष्काम पुरुषों को मोक्ष देताहै।१५। सो हे वीर! जिस धर्म का नाश होने से राजा अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट होजाताहै वह 'प्रजाओं का पालन करनारूप धर्म' कदापि नष्ट न होनेपावे ॥१६॥ हे राजन्! दुष्ट मन्त्रियों से और चोर आदिकों से प्रजा की रक्षाकरनेवाला जो राजा प्रजाओं से, शास्त्र की आज्ञा के अनुसार कर आदि लेता है वह इस लोक में और परलोक में सुख पाता है ॥ १७ ॥ हे महाभाग! जिस राज्य में वा नगर में वर्ण और आश्रम को धारणकरनेवाले पुरुप अपने धर्म से भगवान् यज्ञपुरुप की आराधना करते हैं और राजा परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करता है उस राजा के ऊपर: भूतपालक विश्वात्मा भगवान् सन्तुष्ट होते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ ब्रह्मादिकों केभी ईश्वर तिन भगवान् के प्रसन्न होनेपर क्या दुर्लभ है! अर्थात् कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है, इसके अतिरिक्त उस राजा को इन्द्रादि

श्वरे ॥ लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ॥ २० ॥ तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ॥ यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन् स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥ २१ ॥ यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभिर्वितायमानेन सुराः कला हरेः ॥ स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥ २२ ॥ वेन उवाच ॥ बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ॥ ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥ २३ ॥ अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम् ॥ नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥ २४ ॥ को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ॥ भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषितां ॥ २५ ॥ विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ॥ पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपाम्पतिः ॥ २६ ॥ एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ॥ देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २७ ॥ तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः ॥ बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः को-

लोकपालों सहित सकल लोक आदर के साथ बलि (कर) देते हैं ॥ २० ॥ तिससे हे राजन् ; सकललोक और उनकी रक्षा करनेवाले इन्द्रादि देवता तथा उनकी प्राप्ति के कारणरूप यज्ञों के नियन्ता ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तिनमें वर्णन करेहुए, होममय द्रव्यमय और तपोमय उन भगवान्‌का अनेकों प्रकार के यज्ञोंसे, तुम्हारे ऐश्वर्य के निमित्त आराधना करनेवाले अपने देश के लोकों के अनुकूल वर्त्ताव करना तुझे योग्य है ॥ २१ ॥ हे वीर ! तेरे देश में के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के विधिपूर्वक करेहुए यज्ञों के द्वारा उत्तम प्रकार से आराधना करेहुए श्रीहरि के अंशरूप देवता परम सन्तुष्ट होकर इच्छित फल देंगे, इसकारण उन देवताओं का तिरस्कार करना तुझे योग्य नहींहै ॥२२॥ वेन ने कहा कि-अरे ! ब्राह्मणों ! अधर्म में धर्म माननेवाले तुम बड़े मूर्ख हो, जो तुम जीविका चलानेवाले और रक्षा करनेवाले पति को (मुझको) त्यागकर जारकी समान मिथ्या पति की (परमेश्वरकी) आराधना करते हो, ऐसे तुम से मैं क्या कहूँ ? ॥ २३ ॥ ॥ जो मूर्ख पुरुष, राजारूप ईश्वर का तिरस्कार करते हैं वह इसलोक में वा परलोक में कल्याण नहीं पावेंगे ॥ २४ ॥ पति में स्नेह न रखनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री की जारके ऊपर प्रीति होती है तैसे ही तुम्हारी जिस के ऊपर इतनी भक्ति है वह यज्ञपुरुष नामवाला कौन है ? ॥२५॥ विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, पर्जन्य कुबेर, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि और वरुण, यह सब तथा और भी वरदान तथा शाप देने में समर्थ जो देवता हैं वह राजाके शरीरमें रहते हैं इसकारण राजा सर्वदेवमयहै ॥२६॥२७॥ सो हे ब्राह्मणों ! तुम चित्त से मत्सरता को दूर करके सकल कर्मों के द्वारा मेरा पूजन करो, और

अग्रभुक् पुमान् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ॥ अनुनीयमानस्तद्याच्ञां न चक्रे भ्रष्टमंगलः ॥ २९ ॥ इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना ॥ भग्नायां भव्ययाच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥ ३० ॥ हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ॥ जीवन् जगदसावाशु कुरुते भस्मसात्ध्रुवं ॥ ३१ ॥ नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ॥ योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिंदत्यनपत्रपः ॥ ३२ ॥ को "वैनं" परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् ॥ प्राप्त ईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥ ३३ ॥ इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः ॥ निजघ्नुर्हुंकृतैर्वेनं हतमच्युतनिन्दया ॥ ३४ ॥ ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ॥ सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥ ३५ ॥ एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः ॥ हुत्वाऽग्नीन्सत्कथांश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥ ॥ ३६ ॥ वीक्ष्योत्थितान्महोत्पातानाहुर्लोकभयङ्करान् ॥ अप्यभद्रमनाथाया

मुझे ही बलि समर्पण करो, मुझ से भिन्न दूसरा कौन पुरुष पूजन करने योग्य है ?॥२८॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! इसप्रकार ऋषियों के प्रार्थना करने परभी, विपरीत बुद्धि, महापापी, और जिसके पुण्य का क्षय होगया है ऐसा वह वेन राजा, शास्त्रविरुद्ध मार्ग से वर्त्ताव करता हुआ, उनकी प्रार्थना को अङ्गीकार न करके और उलटा दोष देने लगा ॥ २९ ॥ हे विदुरजी ! इसप्रकार अपने को पण्डित माननेवाले तिस राजाने जिन का अपमान करा है ऐसे वह ब्राह्मण, 'हमारी बड़ी भारी याचना वृथा हुई' ऐसा जान कर उस राजाके ऊपर क्रुद्ध हुए और कहनेलगे ॥ ३० ॥ अरे ! यह पापी स्वभाव से ही दुष्ट है, अतः इसका वध करना चाहिये, यह जीवित रहा तो शीघ्रही सकल जगत्को भस्म करडालेगा, इस में सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ देखो ! यह दुराचारी निर्लज्ज पुरुष यज्ञपति श्रीविष्णुभगवान्की निंदाकरताहै,अतःराज्यसिंहासनपर बैठनेकेयोग्य नहींहै।३२। अहो ! जिन के अनुग्रह का पात्र होनेके कारण, जो ऐसे बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त हुआ है ऐसा इस एक कृतघ्नी वेनको छोड़कर कौन पुरुष है जो उन विष्णु भगवान् की निन्दा करेगा ? अर्थात् कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ हेविदुरजी ! इसप्रकार जिन के हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ है ऐसे उन ऋषियोंने, वेन के मारण का निश्चय करके, अच्युत भगवान् की निन्दा सेहीं मृतकसमान् हुए तिस वेन का केवल हुङ्कारमात्र सेही वध करा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर उन ऋषियों के अपने २ आश्रमों को चलेजानेपर पुत्र का शोक करनेवाली सुनीथा ने अपने मृतपुत्र के शरीर की मन्त्रविद्या और तेल औषधि आदि के द्वारा रक्षा करी ॥ ३५ ॥ एकसमय, वह ऋषि सरस्वती नदी के जल में स्नान करके और अग्नि में हवन करके तटपर बैठे परस्पर भगवत्कथा कहरहे थे ॥३६॥ इतने ही में उन्होंने देखा कि—चारोंओर लोकोंको भय देनेवा

दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥ ३७ ॥ एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतो दिशः ॥ पांसुः समुत्थितो भूरिश्चोराणामभिलुंपतां ॥ ३८ ॥ तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुंपतां ॥ भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसतां ॥ ३९ ॥ चोरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् ॥ लोकान्नावारयन् शक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥ ४० ॥ ब्राह्मणः समदृक् शांतो दीनानां समुपेक्षकः ॥ स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभांडात्पयो यथा ॥ ४१ ॥ नांगस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति ॥ अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥ ४२ ॥ विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ॥ ममन्थुरूरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥ ४३ ॥ काककृष्णोऽतिह्रस्वांगो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ॥ ह्रस्वपान्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्द्धजः ॥ ॥ ४४ ॥ तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनं ॥ निषीदेत्यब्रुवंस्तात

ले वड़े २ उत्पात होरहे हैं, सो परस्पर कहने लगे कि–इसराजहीन हुई पृथ्वी का कहीं चोरों से अमङ्गलतो नहीं होयगा? ऐसा वह ऋषि कहरहे थे कि–इतनेही में लोकों का धन लूट कर लेजानेवाले चोर चारों ओर दौड़नेलगे सो उनके कारण बड़ी धूलि उड़ी ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उस समय, उस पृथ्वीपति वेन राजा के मरण को प्राप्त होनेपर, लोकों का द्रव्य लूटनेवाले चोरों से और एक–एक को परस्पर मारनेवाले दुर्जनों से साधु पुरुषों को उपद्रव प्राप्त होरहा है ऐसा जानकर और सकल देश–चोरों से भरा हुआ, निर्बल और राजहीन होगया है, ऐसा जानकर चोर आदि को दूर करने में समर्थ होकर यदि उन का निवारण न कियाजाय तो उस में दोष है, ऐसा देखनेवाले भी उन ऋषियों ने तिन चोर आदि का निवारण नहीं किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाला और शान्त ब्राह्मण भी, यदि दीन पुरुष की उपेक्षा करे अर्थात् उसके ऊपर दया न करे तो उसका भी तप (पुण्य), जैसे फूटे हुए घड़े में से जल धीरे २ टपक जाता है तैसे ही, धीरे २ क्षीण होकर अन्त में नष्ट होजाता है, जब ब्राह्मणोंको ही दीनों की उपेक्षा करने से दोष लगता है तो फिर क्षत्रिय का तो कहना ही क्या ? ॥ ४१ ॥ सो दीन पुरुषों की उपेक्षा करने का दोष हमें न लगे, ऐसा विचार कर उन ऋषियों ने यह उपाय सोचा कि–यह अङ्ग राजा का वंश नष्ट होने योग्य नहीं है, क्यों कि–इस वंश में जिनका वीर्य कदापि नष्ट होनेवाला नहीं है ऐसे श्रीनारायण का आश्रय करनेवाले राजे हुए हैं ॥ ४२ ॥ ऐसा निश्चय करके ऋषियों ने उस मरण को प्राप्त हुए वेन राजा की जङ्घाओं को वेग से मथा तब उस में से एक बौना पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ४३ ॥ वह काककी समान काला था, उसके अङ्ग अति छोटे २ थे, भुजा छोटीथीं ठोड़ी मोटीथी चरण छोटे २ थे नासिका चिपटीथी, नेत्र लाललाल थे और केश ताँवे की समान वर्ण के थे ॥ ४४ ॥

स निषादस्ततो भवत् ॥४५॥ तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः॥ ये-
नाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणं ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थ-
स्कन्धे पृथुचरिते निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥ ॥ ७ ॥ मैत्रेय
उवाच ॥ अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः॥ वाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथु-
नं समपद्यत ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः॥ ऊचुः परमसन्तुष्टा
विदित्वा भगवत्कलाम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपा-
लनी॥ इयं च लक्ष्म्याः सम्भूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥ ३ ॥ अयं तु प्रथमो राज्ञां
पुमान्प्रथयिता यशः ॥ पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥ ४ ॥ इयं च
सुदती देवी गुणभूषणभूषणा अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुंधती ॥ ५ ॥
एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया ॥ इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽन-
पायिनी ॥ ६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गंधर्वप्रवरा जगुः ॥
मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ॥ ७ ॥ शङ्खतूर्यमृदंगाद्या ने-

---

वहपुरुपउत्पन्नहोते ही दीनकी समान नम्रहोकर उनऋपियों से कहनेलगाकि—'मैं कौनकार्य करूँ?' ऋपियोंनेकहा हेतात! निपीद (बैठ) इसकारण वहआगेको निपादनाम से प्रसिद्ध हुआ॥४५॥ उसउत्पन्नहुए पुरुषने,वेनराजाके सकलभयङ्कर पापग्रहणकर लियेथे अतः वह पापरूपहुआ,उस के वंशमें उत्पन्नहुए पुत्र, पौत्र, दौहित्र आदि पर्वतों पर और वनोंमें दीखनेवाले नैपाद (भील आदि) थे ॥ ४६ ॥इति चतुर्थ स्कन्ध में चतुर्दश अध्याय समाप्त. मैत्रेयजी कहतेहैं कि—हे विदुरजी! तदनन्तर फिर ब्राह्मणों ने, उस पुत्रहीन राजा के दोनों बाहुओं को मथा,उन में से एक स्त्री और एक पुरुप का जोड़ा उत्पन्न हुआ॥१॥ ब्रह्मज्ञानी ऋपि,उस उत्पन्नहुए जोड़े को देखकर और उस को परमेश्वर का अंशावतार मानकर अति प्रसन्न होतेहुए कहनेलगे॥२॥ ऋपियों ने कहा कि—यह पुरुप,विष्णुभगवान् का,जगत् की रक्षा करनेवाला अंशावतार है, तथा यह स्त्री, पुरुपोत्तम से कदापि वियोग न पानेवाली लक्ष्मी का अवतार है ॥ ३ ॥ इन दोनों में जो पुरुप है वह तो जगत् के सकल राजाओं में पहिला, अपनी कीर्त्ति को प्रसिद्ध करनेवाला तथा महाकीर्त्तिमान् पृथु नाम से प्रसिद्ध महाराजा होगा ॥ ४ ॥ और उत्तम कटि, सुन्दर दाँतोंवाली, गुण और आभूपणों को भी शोभा देनेवाली यह देवी आर्चि नाम से प्रसिद्ध होकर पतिभाव से पृथु कीही सेवाकरनेवाली होगी ॥ ५ ॥ यह लोकोंकी रक्षा करने के निमित्त साक्षात् श्रीहरि का अवतार हुआ है, और यह स्त्री विष्णु भगवान् का वियोग न सहनेवाली और नित्य उनकीही सेवामें तत्पर रहनेवाली लक्ष्मीही उत्पन्नहुई है ॥ ६ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी! इसप्रकार सकल ब्राह्मण उन स्त्री और पुरुप की प्रशंसा करने लगे, गान करनेवालों में श्रेष्ठ गन्धर्व,उनका गान करनेलगे सिद्धों ने उन के ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करी और अप्सरा नृत्य करनेलगीं ॥ ७ ॥ तथा स्वर्ग

दुंदुभयो दिवि ॥ तत्र सर्वे उपाजग्मुर्देवर्षिपितॄणां गणाः ॥८॥ ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः ॥ वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥ ९ ॥ पादयोररविंदं च तं वै मेने हरेः कलां ॥ यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आभिषेचनिकान्यस्मै आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥ ११ ॥ सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ॥ द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥ १२ ॥ सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः ॥ पत्न्याऽर्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥ १३ ॥ तस्मै जहार धनदो हैमं वीरं वरासनम् ॥ वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥ १४ ॥ वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजं ॥ इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥ १५ ॥ ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ॥ हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥ ॥ १६ ॥ दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तथाऽम्बिका ॥ सोमोऽमृतमयानश्वां-

में देवताओं के बजाएहुए शंख, तुरही, मृदङ्ग और नगाड़े आदि बाजे महाशब्द से बजनेलगे, देवता, ऋषि और पितरों के सकल समूह उन राजा पृथु का दर्शन करने को तहां आये ॥८॥ जगद्गुरु ब्रह्माजी ने, इन्द्रादि लोकपालों के साथ तहां आकर पृथु राजा के दाहिने हाथ में गदाधारी विष्णुभगवान् का रेखारूप चिन्ह देखा और चरण में कमलका चिन्ह देखा तब तो उस राजा पृथु को श्रीहरि का अवतार माना, क्योंकि जिसके हाथपर और रेखाओंसे न मिलाहुआ रेखारूप चक्रका चिन्ह हो वह भगवान् का अवतार होता है, ऐसा सिद्धान्त है ॥ ९ ॥ १० ॥ फिर वेद के पारगामी ब्राह्मणों ने उस राजा पृथु के राज्याभिषेक का प्रारम्भ किया; उस समय, सब पुरुष, चारों ओर से अभिषेक की सामग्री लाने लगे ॥ ११ ॥ नदी, समुद्र, पर्वत, नाग, गौ, पक्षी, पशु, स्वर्ग, पृथ्वी और सकल प्राणियोंने उन राजा पृथु को अपनी २ योग्यतानुसार भेट लाकर दी ॥ १२ ॥ ब्राह्मणों के अभिषेक करे हुए वह राजा पृथु, उत्तम वस्त्र पहिनकर और उत्तम आभूषण धारण करके, आभूषण धारण करे हुई अपनी अर्चि नामक स्त्री के साथ सुवर्ण के सिंहासनपर ऐसे शोभायमान हुए मानो दूसरे अग्नि ही हैं ॥ १३ ॥ हे विदुरजी ! उस राजा पृथु को, कुवेर ने सुवर्ण का उत्तम सिंहासन अर्पण करा, वरुण ने जिस में सदा जल की विन्दुएं टपकती हैं ऐसा चन्द्रमा की समान स्वेत छत्र दिया, वायु ने बालों के दो चँवर, धर्म ने सदा दमकनेवाली पुष्पों की स्वेत माला, इन्द्र ने उत्तम किरीट, यमने शत्रुओं को वश में करने वाला दण्ड, ब्रह्माजी ने वेदमय कवच, सरस्वती ने उत्तम मुक्ताओं का हार, विष्णु भगवान् ने, सुदर्शन चक्र, लक्ष्मी ने अक्षय सम्पत्ति, शिवजी ने जिसके ऊपर चन्द्रमा की समान दश चिन्ह थे ऐसा एक खड्ग, पार्वती ने चन्द्राकार सौ चिन्हवाली ढाल, चन्द्रमा ने मरण-श्रम-खेद आदि से रहित स्वच्छ घोड़े, विश्वकर्मा ने अति सुन्दर रथ, अग्निने बकरे

स्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥ १७ ॥ अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ॥
भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥ १८ ॥ नाट्यं सुगीतं वा-
दित्रमन्तर्धानं च खेचराः ॥ ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥
॥ १९ ॥ सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥ सूतोऽथ मागधो वन्दी
तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥ २० ॥ स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥
मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥ भो सूत हे
मागध सौम्य वन्दिँल्लोकेऽधुना स्पष्टगुणस्य मे स्यात् ॥ किमाश्रयो मे
स्तव एष योज्यतां मा मय्यभूवन् वितथा गिरो वः ॥ २२ ॥ तस्मात्परो-
क्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ॥ सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे
जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥ २३ ॥ महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः कः स्ता-
वकैः स्तावयतेऽसतोऽपि तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो जनावहासं कुम-

---

और वृषभ के सींगों का बनाहुआ दृढ धनुष, सूर्य ने अपनी किरणों की समान शीघ्रतासे दूर देश को जानेवालेबाण, पृथ्वीने चरण रखते ही इच्छित स्थानपर पहुँचानेवाली पादुका, स्वर्ग के अभिमानी देवता ने मैं प्रति दिन पुष्पों की वर्षा करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा, आकाश में विचरनेवाले विद्याधर आदिकों ने नृत्य—गान—बाजे बजाना और गुप्त होना इन की प्रवीणता का प्राप्त होना, ऋषियों ने सत्य होनेवाले आशीर्वाद, समुद्रने अपनेमें उत्पन्न हुआ शंख और सात समुद्र—पर्वत तथा नदियों ने महात्मा राजा पृथु को रथ के जाने का मार्ग दिया; तदनन्तर सूत, (पुरानी गाथाएं सुनानेवाले) मागध (वंशावली गानेवाले) और वन्दी (समयके अनुसार भाषण करनेवाले) यह सब राजाकी स्तुति करनेको खड़े हुए ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ उस समय तिन सूत आदि को स्तुति करने को खड़ेहुए जानकर वह वेनका पुत्र महापराक्रमी राजा पृथु, कुछ एक हँसकर मेघ की समान गम्भीर वाणी से इस प्रकार कहनेलगा ॥ २१ ॥ राजा पृथुने कहा—हेसूत ! हेमागध ! हेसौम्य वन्दिन् ! लोकों में मेरे गुण प्रगट होनेपर मेरी स्तुति होसकेगी, अभी तो मेरे ऐसे कोई भी गुण प्रकट नहींहुए कि—जिन के आश्रय से स्तुति होसके, फिर मेरी स्तुति इससमय कौन से गुणों के आश्रय से होगी, सो मेरेविषें तुह्मारी उच्चारण करीहुई वाणी व्यर्थ न हो, इसकारण तुम स्तुति करनेयोग्य, जिन के गुण प्रकट हैं ऐसे भगवान् की स्तुति करो ॥ २२ ॥ हेमधुरभाषी सूतादिकों ! मेरे अभी गुण प्रकट नहींहुए हैं इससे कुछकाल के अनन्तर गुण प्रकट होनेपर तुम्हें मेरी स्तुति करना चाहिये, वर्णन करनेयोग्य उत्तमश्लोक भगवान् के गुणों के वर्णन को छोड़कर सभ्य पुरुष, जिस के गुण प्रकट नहींहुए हैं ऐसे मेरीस्तुति नहीं करेगा ॥ २३ ॥ सज्जनों के सुशीलता आदिगुण अपने में प्राप्त करने को समर्थ होकर उन गुणों के अपने में न होने पर भी, वह गुण इस में होजायँगे ऐसा मन में विचारकर कौन कुबुद्धि पुरुष उनकी स्तुति

तिर्न वेद ॥ २४ ॥ प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः ॥ ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वापि गर्हितम् ॥ २५ ॥ वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः॥ कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥२६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥७॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः॥ तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया॥१॥नालं वयं ते महिमानुवर्णने यो देववर्योऽवततार मायया॥ वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि वभ्रमुर्धियः॥२॥ अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कलाऽवतारस्य कथाऽमृतादृताः॥ यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥३॥ एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्त्तयन् ॥ गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम् ॥४॥ एष वै लोकपालानां

सूतमागधादि से करावेगा ? यदि करावेतो वह मूर्ख है, क्योंकि—यह शास्त्र आदि का अभ्यास करेगा तो अमुक २ गुण इसमें उत्पन्न होंगे, ऐसे स्तुति करनेवालोंसे स्तुतिवाक्यों के द्वारा हास्य कराहुआ वह कुबुद्धि पुरुष,लोकों के करेहुए अपने हास्य को नहीं जानता है ॥ २४ ॥ जो महात्मा समर्थ पुरुष प्रसिद्ध हैं वह अपनी स्तुति को सुनने में लज्जित होतेहुए 'जैसे प्रमाद के कारण बनेहुए गो ब्राह्मणवध आदि निन्दित कर्मोंकी प्रशंसा नहीं करते हैं तैसेही अपने वर्णन करनेयोग्य पराक्रम की भीस्तुति नहीं करते हैं ॥ २५ ॥ हे स्तुति के पढ़नेवालों ! हमतो इसलोक में श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा आजपर्यन्त प्रसिद्ध नहींहुए हैं सो अज्ञ पुरुष की समान तुमसे अपनी स्तुति कैसे कराऊँ ? ॥२६॥ इति चतुर्थस्कन्ध में पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥*॥ मैत्रेयजी कहते हैं, हे विदुरजी ! इसप्रकार राजा पृथुके भाषण करनेपर उसकी वाणीरूप अमृत के सेवन से चित्त में सन्तुष्ट हुए उन सूत मागध बन्दियोंने ऋषियोंकी प्रेरणासे उनकी स्तुतिकरी॥१॥ कि—जो देवताओंमें श्रेष्ठ (विष्णुरूप) तुम, अपनी इच्छासे अवतार लेकर यहां पधारेहो, तिन तुह्मारी महिमा को वर्णन करने की हम में सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि—वेनराजा के शरीर से उत्पन्नहुए तुम्हारे चरित्रों के जाननेमें ब्रह्मादिकों की बुद्धि भी भ्रम में पड़ीहुईहै फिर तहां हमारी क्या गणनाहै? ॥२॥ तथापि श्रीहरि के अंश से उत्पन्न हुए, महायशस्वी, तुम्हारी कथारूप अमृत का आदर करनेवाले हम, ऋषियों के प्रेरणा करने से, ऋषियों ने हमारे अन्तःकरण में जैसा उपदेश दिया है उस के अनुसार तुम्हारे स्तुति करनेयोग्य कर्मोंका विस्तार के साथ वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥ अहो ! धर्म की रक्षा करनेवाले पुरुषों में श्रेष्ठ यह राजा, सकल लोकों को अपने२ धर्म में प्रवृत्त करके, वर्ण और आश्रमों की मर्यादा को पालन करनेवाला और उस धर्म मर्यादा के विरोधी दुराचारी पुरुषों को दण्ड देनेवाला होगा ॥ ४ ॥ यह एक ही समय२ पर

विभेत्येकस्तनो तनूः॥काले काले यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम्॥५॥वसु काल उत्पादत्ते काले चायं विमुञ्चति॥समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः॥६॥ तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रमतामपि॥ भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान्॥७॥ देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः॥ कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यत्यञ्जसेन्द्रवत्॥८॥ आप्याययत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना॥ सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा॥९॥ अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो गंभीरवेधा उपगुप्तवित्तः॥ अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा॥१०॥ दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत्॥ नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः॥११॥ अन्तर्बहिश्च भूतानां पश्यन्कर्माणि चारणैः॥ उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव

यज्ञ आदि कर्मों को प्रवृत्त करके स्वर्ग का हित करना और सृष्टि आदि रचकर भूलोक का हित करना, इसप्रकार दोनों लोकोंका हित होने के निमित्त पालन, पोषण, प्रसन्न करना आदि जैसे २ कार्यों का समय प्राप्त होगा तैसी तैसी, अपने शरीर में इन्द्रादि लोकपालों की मूर्त्ति (अंश) को धारण करेगा ॥ ५ ॥ सकल प्राणियों में समान बुद्धि रखनेवाला और अपना प्रताप प्रकट करनेवाला यह राजा पृथु, जैसे सूर्य समय के अनुसार पृथ्वीपर के जल को अपनी किरणों से सुखाता है और वर्षाकाल में उस की वर्षा करता है, तैसेही यह उचित समयपर प्रजाओं से द्रव्य (कर) लेगा और दुर्भिक्ष आदि के समय फिर उस द्रव्य को दे देगा ॥ ६ ॥ पृथ्वी की समान सहनशील वृत्ति रखनेवाला यह दयालु राजा पृथु, दुःख से पीड़ित हुए पुरुष यदि अपने शिरपर चरण रखकर लांघजायँगे तो भी उन के अपराध को सहलेगा ॥ ७ ॥ यह राजा के स्वरूप को धारण करनेवाले श्रीहरि, इन्द्र के वर्षा न करने पर प्राणसङ्कट में पड़ीहुई प्रजाओं की इन्द्र की समान अनायास में ही रक्षा करेगा ॥ ८ ॥ यह राजा प्रेम के साथ अवलोकन करनेवाले और स्वच्छ मुसकुरान से सुन्दर अपने मुखरूपी चन्द्रमा से लोकों को परम आनन्द देता है ॥ ९ ॥ जिस के नगर में प्रवेश करने के और बाहर को निकलने के मार्ग प्रकट नहीं हैं, जिस के कर्त्तव्य कर्मों को प्रारम्भ से प्रथम कोई नहीं जानसक्ता है,जिस का साधन का उपाय गम्भीरहै,जिसकाद्रव्य उत्तमप्रकार से रक्षा कराहुआ है,जिस का शरीर मन्त्री आदिकों के द्वारा उत्तमप्रकार से रक्षा कराहुआ है और जो अपार माहात्म्यवाला है तथा जिस के शरीर में सत्य सुशीलता आदि गुणों के स्थान विष्णुभगवान् वास करते हैं ऐसा यह राजा पृथु सबप्रकार वरुण की समान होगा ॥ १० ॥ यह वेनरूप अग्नि से उत्पन्नहुआ अरणि, शत्रुओं को प्राप्त होने को अथवा सहन करने को अशक्य है और यह समीप होकर भी दूर रहनेवाला होने के कारण तिरस्कार करने को भी अशक्य है ॥ ११ ॥ यह राजा सकल प्राणियों के भीतर बाहर विचरनेवाले वायु की समान

देहिनाम् ॥ १२ ॥ नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि ॥ दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥ १३ ॥ अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ॥ वर्तते भगवानर्को यावत्तपति गोगणैः ॥ १४ ॥ रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ॥ अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥ १५ ॥ दृढव्रतः सत्यसंधो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ॥ शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥ १६ ॥ मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः ॥ प्रजासु पितृवत् स्निग्धः किंकरो ब्रह्मवादिनाम् ॥ १७ ॥ देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्द्धनः ॥ मुक्तसंगप्रसङ्गोयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥ १८ ॥ अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयाऽवतीर्णः ॥ यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतं ॥ १९ ॥ अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रे र्गोप्तैकवीरो नरदेवना-

---

सबके मनमें के और बाहर के कर्म्मों को दूतों के द्वारा देखताहुआ भी अपनी स्तुति वा निंदा के विषय में 'साक्षी आत्मा की समान' उदासीन रहकर वर्त्ताव करेगा ॥ १२ ॥ धर्ममार्ग में स्थित यह राजा, अपने शत्रुओं के पुत्र को भी दण्ड के योग्य न होनेपर दण्ड नहीं देगा और दण्ड पाने के योग्य अपने पुत्र को भी दण्ड देगा ॥ १३ ॥ इस पृथु राजा का चक्र (आज्ञा वा रथ का चक्र) मानसपर्वतपर्यंत सूर्यभगवान् अपनी किरणों से जितने प्रदेशमें प्रकाश करते हैं तहां पर्यंत चलेगा, उस को रोकनेवाला कोई नहीं होगा ॥ १४ ॥ यह राजा अपने मनोहर आचरणों से सकल लोकोंको प्रसन्न करेगा इसकारण ही इस को सकल प्रजा 'राजा' कहेंगी ॥ १५ ॥ यह अखण्डित व्रतधारी, सत्यप्रतिज्ञ, ब्राह्मणभक्त, वृद्धों की सेवा करनेवाला, सकल प्राणीमात्र के आश्रय करनेयोग्य, दूसरों का यथोचित सन्मान करनेवाला, दीनोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाला ॥ १६ ॥ दूसरोंकी स्त्रियों में माताकी समान दृष्टि रखनेवाला, अपनी स्त्री के ऊपर देहके अर्द्धभाग की समान प्रीति रखनेवाला, प्रजाओंके ऊपर पिताकी समान स्नेह करनेवाला, वेदके अर्थ को जाननेवालों की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाला॥ ॥ १७ ॥ सकल प्राणियों के ऊपर अपने जीव की समान प्रेम करनेवाला, मित्रोंके सुखको बढ़ानेवाला, भगवद्भक्तोंका समागम करनेवाला और दुराचारी पुरुषोंको शिक्षा देने में यम की समान होगा ॥ १८ ॥ जिस ईश्वर को वास्तविक स्वरूप से जानने पर ज्ञानी पुरुष, अविद्या के रचेहुए, सत्य से प्रतीत होनेवाले भी इस सकल जगत् को गन्धर्व नगर में के पदार्थों की समान मिथ्याही देखते हैं, वही यह तीनों गुणों के नियन्ता, निर्विकार, सबके आत्मा भगवान् अपने अंश से उत्पन्न हुएहैं ॥ १९ ॥ निरुपम पराक्रमी यह राजाधिराज पृथु, उदयाचल पर्यन्त भूमण्डल की रक्षा करेगा और उस के निमित्त अपने जयदायक रथ में बैठ हाथ में धनुष लेकर सूर्यकी समान भूमण्डल

थः ॥ आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथाऽर्कः ॥ २० ॥ अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः ॥ मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तद्यश उद्धरन्त्यः ॥ २१ ॥ अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानां ॥ यो लीलयाऽद्रीन्स्वशराग्रकोट्या भिन्दन्समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥ २२ ॥ विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदा चरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ॥ तदा निलिल्युर्दिशि दिश्यसंतो लांगूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥ २३ ॥ एषोऽश्वमेधान् शतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ॥ अहारपीद्यस्य हयं पुरंदरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥२४॥ एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवंतमेकम् ॥ आराध्य भक्त्या लभतामलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥ २५ ॥ तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ॥ श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ २६ ॥ दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पा-

को दाहिनी ओर कर के प्रदक्षिणा करेगा ॥ २० ॥ तव इन्द्रादि लोकपालों सहित सकल राजे, अपने अपने देश में इस राजा को भेट समर्पण करेंगे इस में किसी प्रकार का सन्देह नही हैं और उन राजाओं की स्त्रियें, इस के यश का गान करती हुई इस आदि राजा को साक्षात् चक्रपाणि विष्णु मानेंगी ॥ २१ ॥ यह सकल प्रजाओं की जीविका चलाने वाला, प्रजापालक, राजाधिराज पृथु, गौ का रूप धारण करनेवाली पृथ्वी को दुहेगा और पर्वतों के खण्ड २ करनेवाले इन्द्र की समान अपने धनुष के अग्रभाग से अनायास में ही पर्वतोंका चूर्ण करके पृथ्वी को इकसार करेंगे॥२२॥और जैसे सिंह ज्योंही अपनी पूँछ को खड़ी करके वन में विचरनेलगा कि–तत्काल सकल क्षुद्र पशु चारों ओर को भागनेलगते हैं तैसे ही यह जव शत्रुओं को असह्य अपने आजगव (मेंढे और वृषभ के सींग के वनाये हुए) धनुष का टङ्कार शब्द करता हुआ युद्ध में भूमिपर विचरेगा तव दुष्ट शत्रु दिशा २ में को भागकर गुप्त होजायँगे ॥ २३ ॥ जहां से सरस्वती की उत्पत्ति हुई है तहां यह राजा सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा तिन में अन्त के अश्वमेध यज्ञ के होते में पुरन्दर नामक इन्द्र, 'यह अश्वमेध समाप्त होनेपर यह राजा मेरे स्थान को लेलेगा' इस भय से तिस यज्ञ में विघ्न करने के निमित्त इस पृथु के यज्ञ का घोड़ा हरकर लेजायगा ॥ २४ ॥ यह राजा अपनी राजवाड़ी की आराम वाटिका में एक ज्ञानी सनत्कुमार ऋषि से भेट करके उनकी भक्तिके साथ आराधना करके उन से वह ज्ञान पावेगा कि-जिस के द्वारा परब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार होताहै।२५।इसप्रकार प्रसिद्ध है पराक्रम जिसका ऐसा महापराक्रमी राजापृथु, सर्वत्रप्रसिद्ध अपनेसम्बन्धकी गाथारूप वाणियोंको जहाँतहांसुनेगा।२६। इसप्रकार सकल दिशाओं को जीतने के कारण जिसकी आज्ञा को रोकनेवाला कोईभी नहीहै ऐसा यह राजा

टितलोकशल्यः ॥ सुरासुरेंद्रैरुपगीयमानमहानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥ २७ ॥ इतिश्रीभागवते म० च० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः ॥ छन्दयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनंद्य च ॥ १ ॥ ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान् भृत्यामात्यपुरोधसः ॥ पौरान् जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥२॥ विदुर उवाच ॥ कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ॥ यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥३॥ प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ॥ तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥४॥ सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् ॥ लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥ यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवतः प्रभोः ॥ श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥६॥ भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च ॥ वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथाम्प्रति ॥ प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥

पृथु, अपने तेज से लोकों को दुःख देनेवाले दुष्टोंको निर्मूल करके, देवता और दैत्योंके स्वामी भी जिसके महान् पराक्रमका गान करतेहैं ऐसाहोताहुआ पृथ्वीका अधिपति होगा ॥२७॥ इति चतुर्थस्कन्धमें षोड़श अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हेविदुरजी ! इस प्रकार सूत मागध और वन्दियों ने गुण और कर्मोंका वर्णन करके जिनकी स्तुति करी है ऐसे भगवान् महाराज पृथु ने, उन सूत आदिकों की प्रशंसा करके और यथेष्ट वस्त्र आभूषण आदि से उनका सत्कार करके सन्तुष्ट किया ॥ १ ॥ तथा उन राजापृथु ने, ब्राह्मण आदि चारों वर्ण, सेवक, मन्त्री, पुरोहित, नगरवासी पुरुष, देशवासी पुरुष, तेली तम्बोली आदि तथा राजकार्य करनेवाले पुरुषों का योग्य सत्कार किया ॥ २ ॥ विदुरजी ने कहा कि–हे मैत्रेयऋषे ! पृथुराजा ने जिसको दुहा वह पृथ्वी अनेकों रूप धारण करने को समर्थ थी फिर उस ने गौकाही स्वरूप क्यों धारण करा ? और उस दुहने के समय वत्स (बछड़ा) कौन बना था, किसप्रकार दुहागया था और पात्र क्या था ॥३॥ और स्वभावसेही नीची ऊँची पृथ्वीको उन्हो ने इकसार कैसे किया ? और उन राजापृथु के यज्ञके घोड़ेका इन्द्रने किसकारणहरणकरा ? ॥४॥ हेब्रह्मनिष्ठ मैत्रेयजी ! ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठभगवान सनत्कुमारसे अपरोक्ष ज्ञानसहित ब्रह्मज्ञान पाकर वह राजर्षि (पृथु) किसगतिको पहुँचे ॥ ५ ॥ यह मेरा बूझाहुआ, और पृथुरूप से जिन्हों ने इस पृथ्वीको दुहा उन सत्कीर्तिमान भगवान् प्रभु श्रीकृष्ण का जो औरभी पवित्र तिस पृथु नामक अवतारकी कथा से सम्बन्ध रखनेवाला, यश होय वह मुझे सुनाइये, क्योंकि मैं तुम्हारा (गुरुका) और उन अधोक्षज भगवान्का भक्त होकर उनके यशको सुनने में तत्पर हूँ ॥६॥७॥ सूतजी कहतेहैं कि-हे शौनकजी ! इसप्रकार विदुरजीके, वासुदेव भगवान् की कथा के विषय में प्रेरणा करेहुए वह मैत्रेय ऋषि सन्तुष्ट हो उन विदुरजी की

॥८॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदाभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रैरामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ॥ प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥९॥ वयं राजन् जाठरेणाभितप्ता यथाऽग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ॥ त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥१०॥ तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं क्षुधार्दितानां नरदेवदेव ॥ यावन्न नङ्क्ष्याम हे उज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वं किल लोकपालः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवनम् ॥ दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥ १२ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः ॥ संदधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥ १३ ॥ प्रवेपमाना धरणी निशम्योदायुधं च तं ॥ गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥ १४ ॥ तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः ॥ शरं धनुषि संधाय यत्र यत्र पलायते ॥ १५ ॥ सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चान्तरं तयोः ॥ धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शा-

---

प्रशंसा करके कहनेलगे ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि—हे विदुरजी ! जब ब्राह्मणों ने पृथु राजा का अभिषेक करा और उन से, तुम सकल प्राणियों के पालक हो, ऐसा कहा तब भूतल के अन्नरहित होने के कारण भूँख से जिन का शरीर दुर्बल होगयाहै ऐसे प्रजा के पुरुषों ने उन राजा पृथु के समीप आकर कहा कि—॥ ९ ॥ हे राजन् ! जैसे वृक्ष, कोटर (खोकल) में की अग्नि से भस्म होता है तैसे ही हम पेट की ज्वाला से अति सन्तप्त होगए हैं, सो तुम्हें हमारी जीविका चलाने के निमित्त और चोर आदिकों से हमारी रक्षा करने को ऋषियोंने उत्पन्न कराहै इस से शरण लेनेयोग्य तुम्हारी शरण में हम आये हैं सो हे राजाधिराज ! तुम ही लोकों के पालक और जीविका चलानेवाले स्वामीहो इसकारण क्षुधासे पीड़ित हुए हम अन्न न मिलने के कारण जबतक नाश को न प्राप्त हों उस से पहिले ही तुम हमें अन्न देने का यत्न करिये ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हेविदुरजी ! राजा पृथुने प्रजा के करुणासहित विलाप के वचन सुनकर बहुत समयपर्यन्त ध्यान करा, तिससे भूतल के अन्नरहित होने का कारण उन्होंने जाना ॥ १२ ॥ पृथ्वीने औषधि और बीजों का ग्रास करडाला है इसप्रकार का निश्चय राजापृथुने अपनी बुद्धि से करा और हाथ में धनुष लेकर 'त्रिपुरासुरका वध करनेवाले शिवजीकी समान, क्रोधमें भरकर भूमिका वध करने के निमित्त धनुष पर वाण चढ़ाया ॥ १३ ॥ उससमय आयुध को उठानेवाले राजापृथु को देखकर भयसे काँपतीहुई पृथ्वी, गौका रूप धारण करके, जैसे व्याधे के भय से हरिणी भागती है तैसे, भागनेलगी ॥ १४ ॥ तब क्रोध में भराहुआ और जिस के नेत्र लाल २ होरहेहैं ऐसा वह राजापृथु धनुषपर वाण चढ़ाकर जिधर २ को वह भूमिभय से भागनेलगी उधर २ को उसके पीछे २ गया ॥ १५ ॥ वह भूमि, पूर्वादि दिशा, अग्निकोण आदि विदिशा, स्वर्ग,

नृधतायुधम् ॥ १६ ॥ लोके नाविंदत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः ॥ त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥ १७॥ उवाच च महाभागं धर्मज्ञापन्नवत्सल ॥ त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥ १८ ॥ स त्वं जिघांससे कस्मादीनामकृतकिल्विषां ॥ अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ॥१९॥ प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागःस्वपि जन्तवः ॥ किमुत त्वद्विधा राजन् करुणा दीनवत्सलाः ॥ २० ॥ मां विपाट्याजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितं ॥ आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमम्भसि धारयसि ॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥ वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीं ॥ भागं बर्हिषि या वृक्ते न तनोपि च नो वसु ॥ ॥ २२ ॥ यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः ॥ तस्यामेवं हि दुष्टायां दण्डो नात्र न शस्यते ॥ २३ ॥ त्वं खल्वोपधिबीजानि प्राक् सृष्टानि स्वयं-

पृथ्वी और अन्तरिक्ष में को भागकर तहां शस्त्र उठाये पीछे आनेवाले राजा को देखा १६ जैसे मृत्यु से भयमान कर भागीहुई प्रजाओं को उसमृत्यु से छुटानेवाला कोई नहीं मिलता है तैसेही, भागतीहुई उस भूमिको, जब पृथुराजासे छुटानेवाला लोक में कोई नहीं मिला तब वह भय से खिन्नहुए अन्तःकरण से पीछे को लौटी ॥ १७ ॥ और उस महाभाग राजा पृथु से कहनेलगी कि–हे धर्मज्ञ ! हे शरणागतवत्सल ! जब तुम सकल प्राणियों की रक्षा करने में प्रवृत्त हुए हो तो मेरी भी रक्षाकरो ॥ १८ ॥ हे राजन् ! मुझ दीन और निरपराधिनी को तुम किसकारण मारनेकी इच्छा कररहे हो ? जब कि-तुम्हें सकल लोक धर्मज्ञ मानते हैं तब तुम मुझ स्त्री का (धर्मविरुद्ध) वध कैसे करोगे ? ॥ १९ ॥ हे राजन् ! स्त्रियें यदि अपराध करें तो भी, साधारणपुरुष भी उन के ऊपर प्रहार नहीं करते हैं फिर तुमसमान दयालु और दीनवत्सल पुरुष निरपराधिनी स्त्रियों के ऊपर शस्त्र नहीं चलावेगा इसका तो कहना ही क्या ? ॥ २० ॥ तिसमें भी जिस के ऊपर सकल विश्व रहता है ऐसी दृढ़ नौकारूप मेरा नाशकरके तुम अपने को और सकल प्राणियों को जल में कैसे रक्खोगे ? ॥ २१ ॥ राजा पृथु ने कहा कि–हे पृथिवि ! तू मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन करती है इसकारण मैं तेरा वध करता हूँ, जो तू यज्ञ में देवतारूप से हमारे दियेहुए हवि के भाग को ग्रहण करती है और फिर हम को ही धान्य आदि द्रव्य नहीं देती है ॥ २२ ॥ जो तू गौ प्रतिदिन धान्य के तृण भक्षण करती है और स्तनों में से दुग्ध कुछ भी नहीं देती है, इसकारण दुष्टा और अपराध करनेवाली तेरे ऊपर दण्डकरना अयोग्य नहीं है किन्तु योग्य ही है ॥ २३ ॥ तू तो, ब्रह्मानी ने लोकों के जीवन धारण करने के निमित्त रचेहुए औषधि और बीजों को अपने पेट में रोक बैठी है, उन को तू लौटा दे, इसप्रकार मेरे कहनेपर भी मेरा तिरस्कार करके तू उन औषधि और बीजोंको लौटाकर नहीं देती है इसकारण तू निः-

भुक्त्वा ॥ न मुञ्चस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥ २४ ॥ अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ॥ शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥ २५ ॥ पुमान्योषिदुत क्लीब आत्मसंभावनोऽधमः ॥ भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥ २६ ॥ त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः ॥ आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ २७ ॥ एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतांतमिव बिभ्रतम् ॥ प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही सञ्जातवेपथुः ॥ २८ ॥ धरोवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ॥ नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुतद्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥ २९ ॥ येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसंग्रहः ॥ स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वराडुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥ ३० ॥ य एतदादावसृजच्चराचरं स्वमाययात्माश्रययावितर्क्यया ॥

सन्देह मन्दबुद्धि (वध करनेयोग्य) है ॥ २४ ॥ इसकारण मैं अपने बाणों से तुझे विदीर्ण करके तेरे मांस से, क्षुधा के कारण पीड़ित हुई इस दीन प्रजाकी क्षुधा को दूर करके इन के विलापको शान्त करूँगा ॥ २५ ॥ पुरुष हो, स्त्री हो वा नपुंसक हो जो केवल अपनी ही प्रशंसा करके प्राणीमात्र के विषय में निर्दयी (दुःख उत्पन्न करनेवाला) होता है वह अधम है, उस का वध, राजाओं को दोष देनेवाला नहीं होता है ॥ २६ ॥ इसकारण कपट से गौ का रूप धारण करनेवाली, दुष्टमदमाती, तुझ उद्धता के बाणों से तिल समान खण्ड२ करके मैं अपनी योगशक्ति से इन प्रजाओं को जल में ही स्थापन करूँगा ॥ २७ ॥ इसप्रकार कठोरभाषण करनेवाले और यम की समान क्रोधमयी मूर्त्ति धारण करनेवाले तिन राजा पृथु को पृथ्वी ने प्रणाम करा और हाथ जोड़कर थर२ कांपतीहुई कहनेलगी ॥ ॥ २८ ॥ पृथ्वी ने कहा कि–हे देव ! तुम माया के प्रभाव से नानाप्रकार के (शान्त घोर आदि) रूप धारण करनेवाले हो इसकारण सगुणरूप प्रतीत होते हो परन्तु वास्तव में तुम मायासे पर पुरुषोत्तम हो, ऐसे तुम को नमस्कार हो; जो तुम अपने सच्चिदानन्दस्वरूप का अनुभव करके, पञ्चमहाभूत, इन्द्रियें और देवताओं के समूहरूप शरीर आदिकों में अहङ्कार करने से उत्पन्न होनेवाले रागद्वेषादि तरङ्गों को दूर करदिया है ऐसे आप को नमस्कार हो ॥ २९ ॥ अहो ! मेरे ऊपर जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज यह चार प्रकार के प्राणी रहते हैं इसकारण मैं सकल प्राणियों के रहने का स्थान हूँ ऐसी मुझ को जगत् के नाथ आपने ही रचा है, वही आप स्वतन्त्र भगवान् अब शस्त्र उठाकर मेरा वध करने को उद्यत हुए हो, सो अब मैं दूसरे किस की शरण में जाऊँ ? ॥ ३० ॥ जिन आप भगवान् ने, अपने ही आश्रय से रहनेवाली, अचिन्त्य मायाके द्वारा इस स्थावर जङ्गमरूप विश्व को प्रथम उत्पन्न करा है और इस समय उस मायाके द्वारा पृथु अ-

तयैव सोऽयं किल गोवपुर्धृतः कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥ ३१ ॥ नूनं बतेशस्य समीहितं जनैस्तन्मायया दुर्जययाऽकृतात्मभिः ॥ न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥ ३२ ॥ सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः॥ तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥ ३३ ॥ स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ॥ संस्थापयिष्यन्नज मां रसातलादभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥ ३४ ॥ अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः प्रजाः भवानद्य रिरक्षिषुः किल ॥ स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥ ३५ ॥ नूनं जनैरीहितमीश्वराणामस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ॥ न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभिस्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥ ३६ ॥ इतिश्रीभागवते महा-

---

वतार धारकर इसका पालन करने को उद्यत हुए हो, वही धर्म की रक्षा करनेवाले भगवान् आप, इस समय गोरूपधारिणी मुझ पृथ्वी का वध करने की इच्छा करते हो, यह बड़े आश्चर्य की बात है ! ॥ ३१ ॥ क्या कहूँ ? जिन आप स्वतन्त्र परमात्मा ने प्रथम ब्रह्माजी को उत्पन्न करके उन से इस जगत् की रचना करवाई और जो वास्तव में एक होकर भी माया करके अनेक प्रकार के भासते हो ऐसे ईश्वररूप आपकी लीला को, आपकी दुर्जयमाया से विक्षिप्तचित्त हुए पुरुष, वास्तविक रूप से नहीं जानसक्ते हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण, पञ्चमहाभूत, इन्द्रियें, देवता, बुद्धि और अहङ्काररूप अपनी शक्तियोंके द्वारा जो तुम, इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हो और जिनकी अविद्या एवं विद्यारूप शक्तियें बन्धन और मोक्ष का कारण हैं ऐसे सर्वान्तर्यामी आप परम पुरुष को मेरा नमस्कार है ॥३३॥ हे जन्म आदि विकार रहित सर्वव्यापक परमेश्वर ! जिन आप ने पहिले, भूत–इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप इस जगत् को उत्पन्न कराथा, वही तुम अपने रचे हुए जगत् की उत्तम प्रकार से स्थापना करने के निमित्त आदि वराह अवतार धारण करके पाताल में गई हुई मुझको जल में से ऊपर को निकालकर लायेथे ॥ ३४ ॥ वही आप वराहमूर्त्ति भगवान्, जल के ऊपर नौकाकी समान आधाररूप मेरे ऊपर रहने वाली प्रजाओं की रक्षा करने की इच्छा से इस समय वीरमूर्त्ति पृथुरूपसे उत्पन्न हुए हो, वह आप ' मैं दूध नहीं देतीहूं इस थोड़े से अपराध के कारण ' तीखे बाणों से मेरा वध करनेकी इच्छा करते हो, सो यह उचित नहीं प्रतीत होता है इस कारण तुम कृपा करके मेरी रक्षा करो ॥ ३५ ॥ ईश्वररूप आपकी गुणों की सृष्टिरूप माया से जिनका चित्तरूप मार्ग (ज्ञानमार्ग) मोहित होरहा है ऐसे मुझ से जनों करके आपकी माया वास्तविकरूप से नहीं जानीजाती है इस कारण भक्तों का यश बढ़ानेवाले आप को मेरा नमस्कार हो ॥ ३६ ॥ इति चतुर्थस्कन्ध में सप्तदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥

पुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुविजये धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥
॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ॥ पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥१॥ सन्नियच्छाभि भो मन्युं निबोध श्रावितं च मे ॥ सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः॥२॥अस्मिन् लोकेऽथवाऽमुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयःप्रसिद्धये॥३॥ तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान् पूर्वदर्शितान्॥ अवरः श्रद्धयोपेत उपायान्विन्दतेऽञ्जसा ॥४॥तानना दृत्य यो विद्वानर्थानारभते स्वयं ॥ तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः॥५॥ पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशांपते॥ भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः॥६॥ अपालिताऽनादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः॥ चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः॥७॥ नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन

मैत्रेयजी कहते हैं कि-हेविदुरजी! इसप्रकार पृथ्वी ने राजा पृथु की स्तुति करी परन्तु प्रजाओं का प्रयोजन सिद्ध न होने के कारण क्रोध से जिनका नीचे का ओठ फड़करहाहै ऐसे उन पृथु को देखकर भयभीत हुई वह पृथिवी बुद्धि से मन को रोककर उन से फिर कहनेलगी कि- ॥ १ ॥ हेराजन्! तुम अपने क्रोध को रोको और मैं जो कहती हूँ उस को सुनो, जैसा भ्रमर प्रत्येक पुष्प में से मद निकाल लेताहै तैसेही ज्ञानी पुरुष, सकल वार्त्ताओं में से सारभाग को ग्रहण करलेते हैं ॥ २ ॥ हे राजन्! तत्वज्ञानी ऋषियों ने, इसलोक वा परलोक में मनुष्यों का कल्याण होने के निमित्त अनेकों प्रकार के उपाय विचारेहैं औरउन को कार्य में लाकर देखा भी है ॥ ३ ॥ जो इधर का प्राणी, प्राचीन पुरुषों के दिखायेहुए उन उपायों को विश्वास के साथ कार्य में लाता है उस को अनायास में ही इच्छित फल मिलजाते हैं ॥ ४ ॥ और जो अज्ञानी पुरुष, प्राचीन ऋषियों के कहेहुए उपायों का अनादर करके आपही अपनी इच्छा से कल्पना करेहुए उपायोंका प्रारम्भ करता है उस के वारंवार प्रारम्भ करेहुए भी वह उद्योग निस्फल होते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन्! पहिले ब्रह्माजी ने जिन औषधियोंको उत्पन्न करा था,उन औषधियोंको आचारभ्रष्ट,दुराचारी पुरुष भक्षण करनेलगे ऐसा मैंने देखा ॥६॥ और लोकों का पालन करनेवाले साधारण राजाओं ने,चोर आदिकों को दूर करके मेरी रक्षा नहीं करी और यज्ञ आदिकों को बन्द करके उलटा मेरा अनादर करा तथा सकल लोक चोर समान होगए ऐसा जानकर मैंने विचार किया कि-दुष्टों की भक्षण करीहुई औषधियें फिर उत्पन्न नहीं होंगी और यज्ञादि कर्म सर्वथा बन्द होजायँगे इस कारण यज्ञोंके साधन को अपने पास रक्खूँ, सो उन औषधियों का मैंने ग्रास कर लिया है ॥ ७ ॥ वह औषधियें अधिक समय बीतजाने के कारण मेरे उदर में क्षीण सी होगई हैं, सो उन को पाने के निमित्त, पूर्वके ऋषियोंका

भूयसा ॥ तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥ ८ ॥ वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव ॥ धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनं ॥ ९ ॥ दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन ॥ अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वाञ्छते यदि ॥ १० ॥ समां च कुरु मां राजन्देववृष्टं यथा पयः ॥ अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्त्तेत मे विभो ॥ ११ ॥ इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः ॥ वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥ १२ ॥ तथापरे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः ॥ ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ १३ ॥ ऋषयो दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम ॥ वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि ॥ ॥ १४ ॥ कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन् ॥ हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ॥ १५ ॥ दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् ॥ विधायादूदुहन्क्षीरमयःपात्रे सुराऽऽसवं ॥ १६ ॥ गन्धर्वाप्सरसोऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पयः ॥

कहाहुआ जो दुहनारूप उपाय है उसके द्वारा तुम उन को निकाल लो ॥८॥ हे वीर ! हे महाबाहो ! हे भूत पालक ! यदि तुम्हें सकल प्राणियों को बल देनेवाले इच्छित अन्न को प्राप्त करने की इच्छा होय तो मुझे गौ का रूप धारण करनेवाली का कोई बछड़ा कल्पना करो क्योंकि—उसके विना दूध नहीं निकलेगा ॥ ९ ॥ तथा दूध के योग्य पात्र की कल्पना करो, और दुहनेवाले को भी नियत करो कि—जिसके द्वारा मैं परम प्रेम के साथ तुम्हें दुग्धरूप अन्न आदि वहुत से पदार्थ दूँगी ॥ १० ॥ हे राजन् ! इन्द्र का वर्षा करा हुआ जल, वर्षा ऋतु के वीतजाने पर भी, जिस प्रकार मेरे ऊपर सर्वत्र रहे तैसे तुम मुझे इकसार करो, तव प्रजा का मनोर्थ पूर्ण होकर तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ११ ॥ हे विदुरजी ! इसप्रकार के सन्तोषदायक और इच्छित कार्य को सिद्ध करनेवाले भूमि के वाक्य को सुनकर, राजा पृथु ने, स्वायंभुव मनु को वत्सवनाकर अपने हाथ रूपपात्र में व्रीहि यव आदि सकल ओषधिरूप दूध दुहा ॥ १२ ॥ जैसे पृथु ने पृथ्वी के वाक्य से सार ग्रहण किया, तिसीप्रकार औरभी विद्वान् पुरुष, सर्वत्र दूसरों के वाक्यों में से अपने कार्य के योग्य सारांश को ग्रहण करते हैं इसकारण पृथु के दुहने के अनन्तर पृथु की वश में करीहुई तिस भूमिको अन्य ऋषि आदिकों नेभी दुहकर इच्छित वस्तुओं को पाया॥ १३॥हेविदुरजी! पृथुके दुहने के अनन्तर सकल ऋषियों ने बृहस्पति को वत्स वनाकर भूमि देवी का इन्द्रियरूप पात्र में वेदरूप दूध दुहा ॥ १४ ॥ देवताओं ने इन्द्र को वत्स वनाकर सुवर्णमय पात्र में अमृत, मन की शक्ति, इन्द्रियों की शक्ति और शारीरिक बलरूप दूध दुहा ॥ १५ ॥ दैत्य औरदानवों ने, असुरों में श्रेष्ठ प्रल्हादजी को वत्सवनाकर लोहेके पात्र में सुरा और आसवरूप मद्य को दुहा ॥ १६ ॥ गन्धर्व और अप्सराओं ने, विश्वावसु को वत्सवनाकर कमलरूप पात्र

वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥ १७ ॥ वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत ॥ आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥ १८ ॥ प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः सङ्कल्पनामयीं ॥ सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥ १९ ॥ अन्ये च मायिनो मायामन्तर्धानाद्भुतात्मनां ॥ मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीं ॥ २० ॥ यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः ॥ भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥ २१ ॥ तथाऽहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकं ॥ ॥ विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥ २२ ॥ पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् ॥ अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥ २३ ॥ क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे ॥ सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाऽचरमेव च ॥ २४ ॥ वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः ॥ गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून् स्वसानुषु ॥ २५ ॥

में वाणी की मधुरता (गान) और सुन्दरतारूप दूध दुहा ॥ १७॥ श्राद्ध में के देवता महाभाग पितरों ने, अर्यमा को वत्स बनाकर मृत्तिका के कच्चे घड़े में श्रद्धा से कव्य × रूप दूध दुहा ॥ १८ ॥ सिद्धपुरुषों ने कपिलमुनि को वत्स बनाकर आकाशरूप पात्र में, सङ्कल्पमात्र से उत्पन्न होनेवाली अणिमादि अष्टसिद्धियों को दुहा, तथा विद्याधरादि देवताओं ने भी कपिल मुनि को ही वत्स बनाकर आकाशरूप पात्र में, गुप्त होकर फिरना इत्यादि विद्या को दुहा ॥ १९ ॥ तिसीप्रकार औरभी मायावी किम्पुरुष आदिकों ने मयासुरको वत्स बनाकर आकाशरूप पात्र में, अपने शरीर को गुप्त करके अद्भुतरूप धारण करनेवाले पुरुषों की अन्तर्धान होने की शक्तिरूप माया को दुहा ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इन रक्तकी भक्षण करनेवाली सकल देवताओंकी योनियोंने भूतपति रुद्रको वत्सबनाकर कालरूप पात्र में रुधिर का मद्यरूप दूध दुहा ॥ २१ ॥ तथा फनवाले और फनहीन सर्प, कद्रू के पुत्र नाग,और वृश्चिक (बीछू) आदिकोंने तक्षक को वत्स बनाकर अपने मुखादिरूप पात्रमें विषरूप दूध दुहा ॥२२॥सकल पशुओंने नन्दकेश्वरको वत्स बनाकर अरण्यरूप पात्र में तृणरूप दूध दुहा,और मांसभक्षी दाढ़वाले पशुओं ने सिंह को वत्स बनाकर अपने शरीररूप पात्र में मांसरूप दूध दुहा, पक्षियों ने गरुड़जी को वत्स बनाकर अपने शरीरमें जङ्गम (कीट आदि) और स्थावर (फल आदि) भक्षण के पदार्थ रूप दूध को दुहा ॥२३॥२४॥ सकल वृक्षों ने वटके वृक्ष को वत्स बनाकर अपने शरीर में प्रत्येक ने भिन्न २ रसरूप दूध को प्राप्त करा, पर्वतों ने हिमालय पर्वत को वत्स बनाकर अपने २ शिखर आदि स्थानों में अनेक प्रकार की गेरू पेवड़ी आदि धातुरूप दूध को प्राप्त करा ॥ २५ ॥ इस

× पितरों के उद्देश से जो अन्न अर्पण कियाजाता है उस का नाम कव्य है ॥

सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः ॥ सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ २६ ॥ एवं पृथ्वादयः पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः ॥ दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥ २७ ॥ ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः ॥ दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥ २८ ॥ चूर्णयन्स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ॥ भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥ २९ ॥ अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता ॥ निवासान्कल्पयाञ्चक्रे तत्र तत्र यथाऽर्हतः ॥ ३० ॥ ग्रामान्पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च ॥ घोषान्व्रजान्सशिविरानाकरान् खेटखर्वटान् ॥ ३१ ॥ प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना ॥ यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः ॥ ३२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुविजयेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८ ॥*॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ॥ ब्रह्मावर्त्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥ १ ॥ तदभिप्रेत्य भगवान्कर्मातिशयमात्मनः ॥ शतक्रतुर्न ममृषे पृ-

प्रकार सब ने पृथु राजा की वश में करी हुई और इच्छित वस्तु प्राप्त करदेनेवाली तिस पृथ्वी को अपने २ में जो मुख्य था उसको वत्स बनाकर अपने २ पात्र में पृथक् २ दूध दुहा ॥ २६ ॥ हे विदुरजी ! इस प्रकार अन्न भक्षण करनेवाले राजा पृथु आदिकों ने पृथ्वी को, वत्स, दोहनपात्र आदि के भेद से दुहकर भिन्न २ दूध के रूप से अपने २ इच्छित अन्नादि पदार्थ प्राप्त करे ॥२७॥ तदनन्तर सन्तुष्ट हुए और मेरे कन्या हो ऐसी इच्छा करनेवाले तिन महीपति राजा पृथु ने, सकल मनोरथों को पूर्ण करनेवाली तिस पृथ्वी को प्रेम के साथ कन्या मानना स्वीकार किया ॥ २८ ॥ तदनन्तर उन समर्थ राजाधिराज महाराज पृथु ने अपने धनुष के अग्रभाग से पर्वतों के शिखरों का चूर्ण करके इस भूमण्डल को प्रायः इकसार करदिया ॥ २९ ॥ तदनन्तर प्रजा की रक्षा करके उनका आजीविन चलानेवाले भगवान् राजा पृथु ने, इस भूमण्डल पर लोकों के निमित्त जहां तहां यथोचित रीति से गांव, पुर, नगर, नाना प्रकार के किले, भीलोंकी पल्लियें, गौओं के योग्य स्थान, सेना के ठहरने के स्थान, खान, किसानों के गांव और पर्वतों की खाड़ियों में के ग्राम आदि बसने के स्थान रचे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे विदुरजी ! इस भूमण्डल पर राजा पृथु से पहिले यह नगर ग्राम आदि की रचना नहीं थी, यह जब राजा पृथु ने रचना करदी तब से सकल प्रजा जहां तहां निर्भय होकर सुख के साथ बसनेलगी ॥ ३२ ॥ इति चतुर्थस्कन्ध में अष्टादश अध्याय समाप्त ॥*॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! तदनन्तर जहां पूर्ववाहिनी सरस्वती नदी है ऐसे मनु के ब्रह्मावर्त्त नामक क्षेत्रमें तिन राजा पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ करनेके निमित्त दीक्षा ग्रहण करी ॥ १ ॥ तब भगवान् केही अवतार

थोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ २ ॥ यत्र यज्ञपतिः साक्षाद्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः ॥ ३ ॥ अन्वितो ब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः ॥ उपगीयमानो गन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥ ४ ॥ सिद्धविद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ॥ ५ ॥ कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः ॥ तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥६॥ यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वकामदुघा सती ॥ दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ॥७॥ ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् ॥ तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥८॥ सिन्धवो रत्ननिकरान् गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ॥ उपायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥९॥ इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् ॥ असूयन्भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत् ॥ १० ॥ चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् ॥ वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥११॥

ऐसे यज्ञ नामक इन्द्र ने तिन पृथुरूप भगवद्वतार का जो सौ अश्वमेधरूप यज्ञ के महोत्सव का कर्म था, उसको अपने इन्द्रपद का हरण करनेवाला जानकर सहन नहीं किया ॥ २ ॥ पृथु के जिस यज्ञ महोत्साह में सर्वान्तर्यामी, सकल लोकों के गुरू, कर्त्तुं अकर्त्तुं अन्यथा कर्त्तुं समर्थ भक्तों का दुःख दूर करनेवाले भगवान् साक्षात् यज्ञपपि ईश्वर प्रत्यक्ष दर्शन देतेथे ॥३॥ उनके साथ ब्रह्माजी, शिव, और अनुचरों सहित लोकपाल आते थे तथा गन्धर्व, ऋषि और अप्सराओंके समूह सन्मुख खड़े होकर उनकी कीर्त्ति गाते थे ॥ ४ ॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, गुह्यक आदि देवयोनि और नन्द सुनन्द आदि विष्णुभगवान् के मुख्य २ पार्षद, कपिल, नारद, दत्तात्रेय, सनकादि महायोगी तथा और भी जो कोई विष्णुभगवान् की सेवा के निमित्त उत्सुक भगवद्भक्त थे वह भी उन के साथ आये थे ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ हे भरतकुल में श्रेष्ठ विदुरजी ! जिस यज्ञ में हवन के पदार्थों को देनेवाली पृथिवी, सकल अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाली कामधेनु के स्वरूप से यजमान के इच्छित मनोरथों को परिपूर्ण करती थी ॥ ७ ॥ नदियें, ईख दाख आदि के रस, दूध, दधि, पीने के पदार्थ (शरवत), घृत, मठा आदि गोरसों को बहाकर लातीथीं; बड़े २ वृक्ष, अपनी शाखाओं में से मधु टपकाते हुए बहुत से फूल फलों को उत्पन्न करते थे ॥ ८ ॥ समुद्र अनेकों रत्न लाकर देते थे, पर्वत चार प्रकार के अन्न लाकर देते थे, राजाओं सहित सकल लोक भेट लाकर अर्पण करते थे ॥ ९ ॥ जिन के स्वामी अधोक्ष भगवान् हैं ऐसे तिन राजा पृथु के पूर्व कहे हुए बड़े अभ्युदय (ठाठ) के साथ होते हुए कर्म को देखकर उसको न सहनेवाले भगवान् इन्द्रने, उस यज्ञ में विघ्न करा ॥ १० ॥ जब राजा पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञों से यज्ञपति भगवान् के यजन का प्रारम्भ किया तब स्पर्धा (डाह) करनेवाले इन्द्र ने, गुप्तरूप से उनके अश्वरूप यज्ञ के पशु को हर लिया ॥ ११ ॥

तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा ॥ आमुक्तमिव पाखण्डं यो ऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥ १२ ॥ अत्रिणा चोदितो हन्तुं पृथुपुत्रो महारथः ॥ अन्वधावत संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १३ ॥ तं तादृशाकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मं शरीरिणम् ॥ जटिलं भस्मनाच्छन्नं तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥ १४ ॥ वधान्निवृत्तं तं भूयो हन्तवेऽत्रिरचोदयत् ॥ जहि यज्ञहनं तात महेन्द्रं विबुधाधमम् ॥ १५ ॥ एवं वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा ॥ अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥ ॥ १६ ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट् ॥ वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥ १७ ॥ तत्तस्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः ॥ नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥ १८ ॥ उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः ॥ चपालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥ १९ ॥ अत्रिः संदर्शया-

तब भगवान् अत्रि ऋषि ने, आकाश में घोड़ा लेकर भागते जातेहुए और जिस में पुरुषों को अधर्म में ही ' यह धर्म है ' ऐसी भ्रान्ति होती है इस प्रकार के पाखण्ड वेष को कवच (बख्तर) की समान धारण करनेवाले तिस इन्द्रको देखा ॥ १२ ॥ तब अत्रि ऋषि करके उस इन्द्रका वध करने को प्रेरणा कराहुआ महारथी राजा पृथु का पुत्र, क्रोध में भरकर तिस भागतेहुए इन्द्रके पीछे चलदिया और 'अरे खड़ा रह' खड़ारह, इसप्रकार कहनेलगा ॥ १३ ॥ परन्तु शिरपर जटा धारण करनेवाले और सकल शरीरपर भस्म मलेहुए पाखण्डवेषधारी तिस इन्द्रको देखकर 'यह तो धर्मात्माहै' ऐसामाना और उसपृथुराजाके पुत्रने, उस का वध करने के निमित्त उस के ऊपर बाण नहींछोड़ा ॥ १४ ॥ तब तो 'यह धर्मात्माही है, ऐसा समझकर इन्द्रका वध करने से हटेहुए पृथु के पुत्र को देखकर उस इन्द्र का वध करने को फिर अत्रि ऋषिने प्रेरणा करी कि—अरे बेटा ! घोड़े को चुराकर यज्ञ में विघ्न करनेवाले देवताओं में अधम इस इन्द्रका तू वध करडाल ॥ १५ ॥ इस प्रकार आज्ञा कराहुआ वह पृथु का पुत्र, अति क्रोध में भरगया, और जैसे पहिलेसीता को लेकर जातेहुए रावण के ऊपर जटायु दौड़ाथा तैसे, आकाश मार्ग में शीघ्रता से जाते हुए तिस इन्द्रके पीछे दौड़ा ॥ १६ ॥ तब वह स्वतन्त्र इन्द्र, उस अश्व को और रूपको त्यागकर गुप्त होगया और वह वीरपुत्र भी अपना घोड़ा लेकर पिताके यज्ञमण्डपमें आया ॥ १७ ॥ हे समर्थ विदुरजी ! तब तहां विराजमान बड़े २ ऋषियों ने उस पृथु के पुत्र के तिस अद्भुत कर्म को देखकर (उसके अनुसार) विजिताश्व नाम रक्खा ॥ १८ ॥ फिर उस समर्थ इन्द्र ने, घना अन्धकार उत्पन्न कर, उसमें छुपकर, चपालयुक्त * खम्भे में सुवर्ण की डोरीसे जो घोड़ा बँधाहुआ था उसको खोला और डोरी सहित हरकर लेचला

* यज्ञ के खम्भे के मस्तक पर एक काठकी कड़ी होतीहै उसको ' चपाल ' कहते हैं ।

मास त्वरमाणं विहायसा ॥ कपालखट्वांगधरं वीरो नैनमबाधत ॥ २० ॥ अत्रिणा चोदितस्तस्मै संदधे विशिखं रुषा ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्थावन्तर्हितः स्वराट् ॥ २१ ॥ वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् ॥ तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥ २२ ॥ यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया ॥ तानि पापस्य खण्डानि लिंगं खण्डमिहोच्यते ॥ २३ ॥ एवमिंद्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया ॥ तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिर्नृणाम् ॥ २४ ॥ धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु ॥ प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥ २५ ॥ तदभिज्ञाय भगवान्पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ इन्द्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥ २६ ॥ तमृत्विजः शक्रवधाभिसंधितं विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ॥ निवारयामासुरहो महामते न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥ २७ ॥ वयं मरुत्वंतमिहार्थनाशनं ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ॥ अयातयामोपहवै-

॥ १९ ॥ उससमय आकाशमार्ग में भागकर जाताहुआ वह इन्द्र, अत्रिऋषिने फिरभी पृथुके पुत्र को दिखाया, उससमय इन्द्र,कपाल और खट्वाङ्ग यह दो शस्त्र धारण करेहुए था इसकारण उसको धर्मात्मा समझकर वह वीर उसका वध करने को प्रवृत्त नहीं हुआ ॥ २० ॥ तदनन्तर अत्रि ऋषि के फिर कहने से राजपुत्र ने उस इन्द्रके ऊपरको क्रोध से वाण चढ़ाया, इतने ही में वह स्वतन्त्र इन्द्र घोड़े को और उसरूप को त्यागकर गुप्त होगया ॥ २१ ॥ तदनन्तर वह वीरपुत्र अपने अश्वको लेकर पिताके यज्ञमण्डपमें आया; उससमय इंद्र के तिस पाखण्डरूप निन्दनीय कर्म को मूढ़बुद्धि पुरुषों ने उत्तम मानकर स्वीकार किया ॥ २२ ॥ इसप्रकार घोड़े को हरने की इच्छा से इन्द्र ने जो२ रूपधारण करे वह २ सब पापके चिन्ह थे ॥ २३ ॥ इसप्रकार पृथु राजाके यज्ञ को भ्रष्ट करने की इच्छासे इंद्रने पाखण्ड वेप धारकर वारम्वार घोड़े को हरण करने की इच्छासे धारणकरके त्यागेहुए, धर्म से भासनेवाले,अविचारी पुरुषों को सुन्दर प्रतीत होनेवाले और वार्त्तालाप करने में चतुर जो नग्न (जैन) रक्तपट (बौद्ध कापालिकादि) पाखण्डवेप तिन में भ्रमसे ' यह धर्म है ' ऐसा समझने के कारण मनुष्यों की बुद्धि प्रायः आसक्त होनेलगी ॥ २४ ॥ २५ ॥ इंद्र के इस निन्दित कर्म को जानकर क्रोध में भरे हुए महापराक्रमी तिन भगवान् राजा पृथु ने जब अपने धनुप को सम्हालकर इन्द्रके मारने को हाथ में वाण लिया ॥ २६ ॥ हे विदुरजी ! इन्द्र के वधकी इच्छा करनेवाले, क्रोध आवेश होनेके कारण जिस की ओर को देखा न जासके तथा शत्रुओं को जिसका वेग सहना असह्य है ऐसे तिस राजा पृथु को, इन्द्र का वध करने की इच्छा करते हुए देखकर ऋत्विजोंने रोका और राजा पृथु से कहा—हे महामते ! इस यज्ञ कर्म में विधि के कहेहुए पशुके वध के सिवाय दूसरे का वध करना तुझे योग्य नहीं है ॥ २७ ॥ इसकारण तुम्हारी कीर्त्ति से क्षीण तेज हुए, यज्ञमें

रनन्तरं प्रसह्य राजन् जुहवाम तेऽहितम् ॥ २८ ॥ इत्यामन्त्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा ॥ स्रुग्घस्तान् जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयम्भूः प्रत्यषेधत ॥ २९ ॥ न वध्यो भवतामिन्द्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः ॥ यं जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ॥ ३० ॥ तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः ॥ इन्द्रेणानुष्ठितं राज्ञः कर्मैतद्विजिघांसता ॥ ३१ ॥ पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः ॥ अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ॥ ३२ ॥ नैवात्मने महेन्द्राय रोषमाहर्तुमर्हसि ॥ उभावपि हि भद्रं ते उत्तमश्लोकविग्रहौ ॥ ३३ ॥ मास्मिन्महाराज कृथाः स्म चिन्तां निशामयास्मद्वच आदृतात्मा ॥ यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥ ३४ ॥ क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः ॥ धर्मव्यतिकरो यत्र

विघ्न करनेवाले इसतुम्हारे शत्रु इंद्रको हम अपने नित्यसिद्ध मन्त्रोंके द्वाराबुलातेहैं और फिर हेराजन्! तुम्हारेशत्रुका हम बलात्कारसे अग्निमें होम करेदेतेहैं ॥२८॥ हेविदुरजी! इसप्रकार यजमानसे कहकर क्रोधसे हाथमें स्रुवा लेकर इंद्रको बुलाने के निमित्त होम करने को उद्यत हुए उन पृथुराजाके ऋत्विजों को ब्रह्माजी ने आगे बढ़कर इसप्रकार निषेध करा कि—॥ २९ हे ऋत्विजो! यज्ञ के द्वारा जिनकी आराधना करीजाती है वह सकल देवता, जिस इन्द्र के हाथ पैर आदि अङ्ग हैं और यज्ञ की रक्षा के निमित्त तुम जिसको मारने की इच्छा करते हो, उस इन्द्र का तुम्हें वधकरना योग्य नहीं है, क्योंकि—यह यज्ञ नामक इन्द्र साक्षात् भगवान् का अवतार है ॥ ३० ॥ सो हे ब्राह्मणो! राजा पृथु के यज्ञ कर्म में विघ्न करने की इच्छावाले इन्द्र ने, धर्म का नाश करनेवाले पाखण्डमार्ग को उत्पन्न करके, कैसा बड़ा अनर्थ करा है, देखो! इस कारण अब इस बलवान् इन्द्र से तुम मित्रभाव ही करलो, नहीं तो वह और भी पाखण्ड के मार्गों को उत्पन्न करेगा और उन से संसार में अनर्थ होने लगेगा ॥ ३१ ॥ इस कारण तुम अब आगे को यज्ञ कर्म करने में आसक्त न होवो, इस महाकीर्त्तिमान् राजा पृथु का यह अनुष्ठान निन्यानवे यज्ञों से ही पूर्ण हो, ऐसा ऋत्विजों से कहकर राजा पृथु से कहा—हे राजन्! तुम मोक्ष धर्म के जाननेवाले हो, इस कारण उत्तम प्रकार से करे हुए इन निन्यानवे यज्ञों से ही तुम्हे सन्तोष करना उचित है ॥३२॥ हे राजन्! तुम और यह इन्द्र, दोनोंही उत्तम कीर्त्ति परमेश्वर के ही अवतार हो इस कारण तिस अपने साक्षात् स्वरूप इन्द्र के ऊपर तुम्हें क्रोध करना उचित नहीं है, राजन्! तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३३ ॥ हे राजाधिराज! इसकी तुम चिन्ता नहीं करना कि—'आरम्भ कराहुआ यज्ञ कर्म समाप्त कैसे होगा? तुम आदर के साथ हमारे वचन को सुनो, जो कार्य दैव काही बिगाड़ा हुआ होता है उसको सिद्ध करने का मनुष्य उद्योग करने लगे तो केवल उसका मन क्रोध में भरकर घोर मोह में पड़ता है परन्तु दैव का बिगाड़ा हुआ कार्य कदापि ठीक नहीं होसक्ता ॥ ३४ ॥ इस कारण हे राजन्! यदि तुम आगे

पाखण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥३५॥ एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाखण्डैर्हारिभिर्जनम् ॥ ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥ ३६ ॥ भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपम् ॥ वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलासि वैन्य ॥३७॥ स त्वं-विमृश्यास्य भवं प्रजापते संकल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ॥ ऐन्द्रीं च माया-मुपधर्ममातरं प्रचण्डपाखण्डपथं जहि प्रभो ॥ ३८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशाम्पतिः ॥ तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनापि च सं-दधे ॥ ३९ ॥ कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे ॥ वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥ ४० ॥ विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः ॥ आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥४१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुविजये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ * ॥ ॥ * ॥

को यज्ञ कर्म का अनुष्ठान बन्द नहीं करोगे तो, इन्द्र के रचे हुए पाखण्डों से, जैसे इस तुम्हारे यज्ञ में धर्म का नाश हुआ है इसी प्रकार आगे को और भी धर्म का नाश होगा, इस कारण अब इस यज्ञ कर्म को रहने दो. ऐसा तुम से कहनेका कारण इतनाही है कि—देवताओं में रजोगुण की वृद्धि होने के कारण बड़ा दुराग्रह भराहुआ है सो उन को समझाना कुछ कार्य नहीं देता ॥ ३५ ॥ राजन्! देखो तो सही! जो इन्द्र तुम्हारे यज्ञ का द्रोह करनेवाला और घोड़े का चुरानेवाला है उसके उत्पन्न करे हुए इन मनोहर पाखण्डों ने इन प्राणियों का मन कैसा अपनी ओर को खैंच लिया है ॥ ३६ ॥ हे राजन्! समय की अनुसार चलताहुआ लोगोंका धर्म, जब वेन राजा के दुराचरणों से लुप्त होने लगा तब उस धर्म की रक्षा करने के निमित्त वेन के शरीर से इससमय इस पृथ्वीपर तुम विष्णुभगवान्का अवतारूप प्रकटहुए हो ॥३७॥ इस कारण हे प्रजापालक प्रभो! ऐसे तुम, जिन विश्वकी रचनाकरनेवाले भृगु आदि ऋषियोंने,जगत्की रक्षाके निमित्त वेनके शरीरका मन्थनकरकेतुम्हें उत्पन्नकियाहै उनके 'प्रजाओंकी रक्षाकरना इस' सङ्कल्पको पूर्णकरो और अधर्मकी उत्पन्न करनेवाली जो प्रचण्डपाखण्डमार्गरूप इन्द्रकी माया उसको दूरकरो ॥३८॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी! इसप्रकार ब्रह्माजीने जब राजा पृथु को उपदेश करा तब, राजाने उसीप्रकार यज्ञ को आगेको चलाने का आग्रह छोड़कर इन्द्रसे मित्रता करके सन्धि (मेल) करली ॥ ३९ ॥ तदनन्तर पृथुके उस यज्ञ में हविका भाग देकर जिन वरदान देनेवाले देवताओं को सन्तुष्ट किया था उन देवताओं ने, अवभृथ (यज्ञके अन्त का) स्नान करेहुए तिन महापराक्रमी राजा पृथुको वरदानदिये ॥ ४० ॥ हे विदुरजी! जिनका आशीर्वाद यथार्थ है तथा जिनको उस राजा से श्रद्धा के साथ दक्षिणा और सत्कार प्राप्तहुआ है उन ब्राह्मणों ने सन्तुष्टहोकर तिस आदिराज पृथुको आशीर्वाद दिये ॥ ४१ ॥ इति चतुर्थस्कन्ध में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ * ॥

मैत्रेय उवाच ॥ भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः ॥ यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एष तेऽकार्षीद्भङ्गं हयमेधशतस्य ह ॥ क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि ॥ २ ॥ सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः ॥ नाभिद्रुह्यंति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥ ३ ॥ पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया ॥ श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥ ४ ॥ अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः ॥ आरब्ध इति नैवास्मिन्प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥५॥ असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते गृहे ॥ अपत्ये द्रविणे वाऽपि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥६॥ एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः ॥ सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्मात्मात्मनः परः ॥ ७ ॥ य एवं सं-

---

मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! केवल देवताओं ने ही राजापृथु को वरदान नहीं दिये किन्तु वैकुण्ठपति, यज्ञभोक्ता, यज्ञ के अधिपति और सर्वव्यापक विष्णुभगवान् ने भी राजा पृथु के यज्ञ से इन्द्रसहित सन्तुष्ट होकर वरदेनेकी इच्छा करके राजा से कहा १। श्रीभगवान् कहनेलगे–हे राजन् ! इस इन्द्रने जो तुम्हारे सौवें यज्ञ में भङ्ग किया है इस कारण इससमय लज्जित होकर 'तुम दोनों मेरेही अवतार हो इसकारण' अपने ही स्वरूपभूत तुम से यह क्षमा माँगता है, सो तुम्हे इसके अपराध को क्षमा करना उचितहै।२। हे मनुष्यदेव ! यह दीखता हुआ शरीर आत्मा नहीं है, इसकारण इस लोक में पुरुषों के विषैं जो श्रेष्ठ विचारवान् साधु पुरुष हैं वह किसी भी प्राणी से निष्कारण द्रोह नहीं करते हैं ॥ ३ ॥ यदि तुमसे विवेकी पुरुष, देवकी (मेरी) माया से देह आदि में अभिमान रखकर द्रोह आदि करनेमें प्रवृत्त होंगे तो समझना चाहिये कि–उनको चिरकाल पर्यन्त करीहुई वृद्धों की सेवा का कुछभी फल न मिलकर केवल परिश्रम ही हुआ है४ इसकारण हे राजन् ! अज्ञान, विषयवासना और कर्मो से यह शरीर उत्पन्न हुआ है, ऐसा जाननेवाला ज्ञानी पुरुष, इन देह गेह आदिकों में कभी भी आसक्त नहीं होता है ॥५॥ जो ज्ञानी पुरुष, इस शरीरपर प्रेम करके आसक्त नहीं रहता है वह इस शरीर के रचेहुए घरके ऊपर, सन्तान के ऊपर और धनकेऊपर क्यों ममता करनेलगा है ? अर्थात् कभी ममता नहीं करेगा ॥ ६ ॥ तो वह देह से भिन्न आत्मा कौनसा है कि–जिस के ज्ञान से देह आदिके ऊपर आसक्ति नहीं होती है ? सो दिखाते हैं–आत्मा शरीर से भिन्न है, क्योंकि–वह एक, शुद्ध, स्वप्रकाश, निर्गुण, गुणोंका आधार, सर्वव्यापक, आवरण रहित और दूसरे आधाररूप आत्मा से रहित है तथा यह शरीर–अनेकों प्रकार का, मलिन, जड़, सगुण, गुणों के आश्रय से रहनेवाला, परिच्छिन्न (साढ़ेतीन हाथका आदि) वस्त्रादिकों से आच्छादित,दीखनेवाला और चलनाआदि चेष्टा के प्रेरक आत्मासे युक्त है ॥ ७ ॥ इसप्रकार अपने में रहनेवाले आत्माको जो जानता है वह देह

तमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषं ॥ नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥
८ ॥ यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ भजते शनकैस्तस्य मनो रा-
जन्प्रसीदति ॥ ९ ॥ परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः ॥ शांतिं मे समवस्थानं
ब्रह्मकैवल्यमश्नुते ॥ १० ॥ उदासीनमिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् ॥ कू-
टस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ भिन्नस्य लिंगस्य गुणप्र-
वाहो द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ॥ दृष्टासु संपत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रि-
यन्ते मयि बद्धसौहृदाः ॥ १२ ॥ समः समानोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखे
च जितेंद्रियाशयः ॥ मयोपक्लृप्ताखिललोकसंयुतो विधत्स्व वीराखिललोकर-
क्षणम् ॥ १३ ॥ श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्सांपराये सुकृतात् षष्ठमंशं ॥
हर्ताऽन्यथा हृतपुण्यः प्रजानामरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥ १४ ॥ एवं द्विजाग्र्या-

में स्थित होता हुआ भी देह के सुख दुःखादि विकारों से लिप्त नहीं होता है, क्यों-
कि—वह मेरे स्वरूप कहिये ब्रह्म में मन को लय करताहुआ लवलीन रहता है ॥ ८ ॥
हे राजन् ! जो पुरुप, निष्काम बुद्धि से श्रद्धायुक्त होताहुआ अपने धर्म के आचारण से नित्य
मेरी आराधन करता है उसका मन धीरे २ प्रसन्न (शुद्ध) होता चलाजाता है ॥ ९ ॥
तदनन्तर मन की शुद्धि होनेपर वह पुरुप, विपयों से विरक्त होकर उत्तम ज्ञान को प्राप्त
होताहुआ शान्ति-सुख पाता है अर्थात्—किसीप्रकार कीभी क्रिया वा व्यापार न करके जो
रहना' इसप्रकार के मेरे सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मपद को प्राप्त होता है ॥ १० ॥ देह, ज्ञाने-
न्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन को देखनेवाला होकर भी, उन में उदासीनसा रहताहुआ, इस
निर्विकार आत्माको जो जानताहै वह ब्रह्मस्वरूपको प्राप्तहोताहै ॥ ११ ॥ हेराजन् ! पञ्चमहा-
भूत, ज्ञानेन्द्रियें, कर्मेंद्रियें इन इन्द्रियों के अभिमानी देवता और चैतन्याभासरूप अन्तःक-
रण से युक्त और आत्मा से भिन्न इस लिङ्ग शरीर को ही जन्म मरण, सुख दुःख आदि संसार
प्राप्त होता है आत्मा को नहीं प्राप्त होता है, ऐसा जानकर मेरेविषैं दृढ़ प्रेम रखनेवाले विचार
वान् पुरुप, सम्पत्ति वा विपत्ति प्राप्त होनेपरभी हर्ष शोक आदि विकारों को नहीं प्राप्त होते हैं
॥ १२ ॥ इसकारण हेवीर ! तू सुख और दुःखको एक समान मानकर, उत्तम—मध्यम और
अधम इन तीन प्रकार के प्राणियों के ऊपर समदृष्टि रख और इन्द्रियें तथा मन को जीतकर
मुझ ईश्वर के ही प्राप्त करायेहुए मन्त्री आदि सकल लोकों से युक्त होताहुआ सकल लोक
की रक्षा कर ॥ १३ ॥ हेराजन् ! प्रजाओं का पालन करना ही राजा का कल्याण करनेवाला है,
क्योंकि—प्रजाकी रक्षाकरनेवाले राजाको परलोकमें प्रजाके करेहुए पुण्यका छठाभाग मिलता
है और यदि राजा इसके प्रतिकूल वर्त्तावकरे तो, प्रजाकी रक्षा न करके केवल उनसे करलेनेपर
प्रजा उसके पुण्य को हरतीहैं, प्रजाओंके करेहुए पापका फल राजाको भोगना पड़ताहै १४

नुमतानुवृत्तधर्मप्रधानोऽन्यतमोऽविताऽस्याः ॥ ह्रस्वेन कालेन गृहोपयातान् द्र-
ष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥ १५ ॥ वरं च मत्कञ्चन मानवेन्द्र वृणीष्व 'तेऽहं
गुणशीलयन्त्रितः ॥ नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती
॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् ॥ अनु-
शासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥ १७ ॥ स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं
स्वेन कर्मणा ॥ शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥ १८ ॥ भगवानथ वि-
श्वात्मा पृथुनोपहृतार्हणः ॥ समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणाम्बुजः १९ प्रस्था-
नाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलंबितः ॥ पश्यन्पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सतां
॥ २० ॥ स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ॥ न
किंचनोवाच स बाष्पविक्लवो हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥ २१ ॥ अथावमृ-

इसकारण उत्तम २ ब्राह्मणों की सम्मति के अनुसार और अपनी कुलपरम्परा के अनुकूल धर्म का मुख्यरूप से पालन करनेवाला और अधर्म आदि में आसक्त न होनेवाला तू पृथ्वी की रक्षा करने लगेगा तो सकललोक तुझ से प्रीति करेंगे ॥ १५ ॥ हे मानवेन्द्र ! तू मुझ से कुछ वरदान मांग, तेरे शान्ति आदि गुण और निर्मत्सरता आदि स्वभाव को देखकर मैं तेरे वश में होगया हूँ, सुख दुःख आदि में एकसमान बुद्धि रखनेवाले पुरुष को मैं जैसा सहजमें प्राप्त होजाता हूँ, तैसे यज्ञ, तपस्या और योगाभ्यास करने से भी सहज में नहीं प्राप्त होता हूँ ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! सबलोकों में जिनकी आज्ञा चलती है और सकल लोकों के गुरु हैं उन भगवान् ने, जगद्विजयी राजा पृथु को इसप्रकार उपदेश दिया तब राजा पृथु ने भी उस श्रीहरि की आज्ञा को शिरपर धारण किया ॥ १७ ॥ और घोडे को चुरानारूप अपने कर्म से लज्जित होकर क्षमा मांगने के निमित्त चरणों में गिरनेवाले इन्द्रको इन राजा पृथुने प्रेम के साथ हृदय से लगाकर सर्वथा द्वेषभाव को त्यागदिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर राजापृथु ने, क्षण क्षण में बढनेवाली भक्ति से जिन के चरणकमल को ग्रहणकरा है और जिनको पूजा समर्पण करी है ऐसे सज्जनों के मित्र जगत् के आत्मा कमलदलनयन वह विष्णुभगवान् भी, तहां से वैकुण्ठलोक में जाने को उद्यत हुए परन्तु उस राजा के ऊपर कुछ अनुग्रह करने के निमित्त जाने में विलम्ब करके उसराजा की ओर को देखतेहुए कुछदेर तैसेही थमेरहे ॥ १९ ॥ २० ॥ उस समय हाथ जोड़कर खडाहुआ वह राजा पृथु भी, अपने ऊपर भगवान् की बड़ी भारी कृपा देखकर परमप्रेम करके आनन्द के अश्रुओं से भरेहुए नेत्रोंसे श्रीहरि का दर्शन न करसका और गद्गदकण्ठ होजाने के कारण कुछ कहभी नहीं सका, अन्त में (हारकर) वह स्तब्ध (सुन्न) खडारहा और उस ने उन श्रीहरि का हृदय से दृढ़आलिङ्गन करके हृदय में उनको धारण किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर राजा कुछ देरी में अपने अश्रुप्रवाह को

ज्याश्रुकलो विलोकयन्नतृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम् ॥ पदा स्पृशन्तं क्षितिमंस उन्नते विन्यस्तहस्ताग्रमुरङ्गविद्विषः ॥ २२ ॥ पृथुरुवाच ॥ वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद्बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनां ॥ येनारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥२३॥ न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ॥ महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो. विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥ २४ ॥ स उत्तमश्लोकमहन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ॥ स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥ २५ ॥ यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ॥ कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥ २६ ॥ अथाभजे त्वाऽखिलपूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः ॥ अप्या

पोंछकर, देखने से तृप्त न होनेवाली अपनी दृष्टि के सन्मुख विराजमान, चरणों + से भूमि को स्पर्श करने वाले तथा गरुड़जी के कन्धेपर अपने हाथ का अग्रभाग टेककर स्थित पुरुषोत्तम भगवान् को देखता देखता कहनेलगा ॥ २२ ॥ पृथु ने कहा कि-हे प्रभो ! हे ईश ! ज्ञानीपुरुष, वरदान देनेवाले जो ब्रह्माजी आदि तिनको भी वरदान देनेवाले जो आप तिन से, देह में अभिमान रखने वाले पुरुषों के भोगनेयोग्य वरदान को कैसे मांगेगा ? अर्थात् कभी नहीं मांगेगा, क्योंकि-हे मोक्षधिपते ! नरक में वास करनेवाले प्राणियों को भी जो विषयभोग प्राप्त होजाते हैं वही मैं तुमसे नहीं मांगता ॥ २३ ॥ हे नाथ ! परमश्रेष्ठ साधुओं के हृदय में से मुखमें को होकर बाहर निकलाहुआ तुम्हारे चरणकमलका मकरन्द (तुम्हारीकीर्त्ति सुनने को) जहां नहीं मिलती है ऐसे मोक्षपदको भी आपसे मांगने की मुझे इच्छा नहीं है इसकारण तुम्हारे यशको सुनने के निमित्त मुझे दशसहस्र कान दो, यही वरदान मुझे चाहिये २४ क्योंकि-हे पुण्यकीर्त्तिमान् ईश्वर ! साधुओं के मुखमेंसे बाहरको निकलेहुए तुम्हारे चरणकमलके अमृत कणोंका जोवायु, वह तत्त्वमार्गको भूलेहुए भ्रष्टयोगियोंको फिर आत्मज्ञानकी स्फूर्ति करादेता है; सो सारके ग्रहणकरनेवाले भक्तोंको भक्तिके सिवाय दूसरा कोईप्रयोजन है ही नहीं, भक्तिमेंही मोक्षपर्यंत सकलसुखहैं २५ इसकारण हे मङ्गलमूर्ते ! सकल पुरुषार्थ मुझे प्राप्त हों इस इच्छा से साक्षात् लक्ष्मी ने भी, जिन आप के यश को सुनने का ही उत्तमता से वरदान मांगलिया है ऐसे आप के कल्याण कारी यश को सत्पुरुषों की मण्डली में जो अकस्मात् एकवार भी श्रवण करता है वहपुरुष यदि गुणज्ञ होगा तो उस गुणों के श्रवण में एक पशुको छोड़कर दूसरा कौन उकतावेगा ! अर्थात् कोई नहीं उकतावेगा ॥ २६ ॥ इसकारण लक्ष्मी की समान तुम्हारा भजन करने में उत्सुक

+ देवता अपने चरण कदापि पृथ्वीपर नहीं लगाते हैं, परन्तु इससमय भक्त के प्रेम से अपनपे को भूलगए, ऐसा सूचित करने केनिमित्त यह वर्णन है ।

वयोरेकपतिस्पृधोः कलिर्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥ २७ ॥ जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितं ॥ करोति फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः स्वे एव धिष्ण्येभिरतस्य किं तया ॥ २८ ॥ भजंत्यथ त्वामत एव साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयं ॥ भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥ २९ ॥ मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजंतमात्थ यत् ॥ वाचा नु तंत्या यदि ते जनोऽसितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥ ३० ॥ त्वन्माययाऽद्धा जन ईश खंडितो यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ॥ यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुं ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक् तमाह राजन्मयि भक्ति-

होकर सकल गुणोंके आश्रय और सकल पुरुषों में श्रेष्ठ जो तुम तिन तुम्हाराही सेवन करूँगा परन्तु मुझे शंका होती है कि–एकही पति की स्पर्धा करनेवाले और एक तुम्हारेही चरणमें एकसमान मनको लीन करनेवाले हम दोनों का (लक्ष्मी का और मेरा) जैसे पहिले यज्ञ में इन्द्र का और मेरा कलह हुआथा तैसाही कलह तो कहीं नहीं होगा ! ॥ २७ ॥ हेजगन्नाथ! तिस जगत् की मातासे मेरा वैमनस्य होगाही क्योंकि–तुम्हारी सेवा करना रूपजो उसका कर्म उसमें हमारी इच्छा हुई है; परन्तु तुम दीनवत्सल हो इसकारण भक्तों का सेवा करना आदि कर्म वहुत् थोड़ा होयतो उस को भी तुम वहुत अधिक मानलेते हो, 'सो जिस प्रकार इन्द्रका और मेरा विवाद चलनेपर तुमने मेराही पक्ष लिया तैसेही मेरा और लक्ष्मीका विरोध होगा तव भी तुम मेराही पक्ष करोगे, क्योंकि–निजस्वरूप में रमण करनेवाले आप को लक्ष्मी से भी क्या प्रयोजन है ! ॥ २८ ॥ और इसकारण ही इच्छा रहित साधु पुरुष,ज्ञान की प्राप्ति होजानेपर भी,माया के गुणों के कार्य का विलास जहां नष्ट होगया है; ऐसे आप कीही भक्ति करते हैं; उन को निरन्तर तुह्मारे चरण का स्मरण करने के सिवाय दूसरा कोई और फल हो, ऐसा हमें तो प्रतीत होता नहीं ॥ २९ ॥ हे परमेश्वर ! तुम अपना भजन करनेवाले मुझसे 'वर मांग' ऐसा जो कहते हो सो तुह्मारी वाणी जगत् को मोहित करने वालीहै,ऐसा मुझे प्रतीत होता है, हे देव ! यह वाणी तो क्या परन्तु तुह्मारी वेदरूप वाणीभी,लोकोंको मोहित करके बांधलेतीहै,यदि तुह्मारी वेद वाणीरूप डोरीसे यहमनुष्यबँधा हुआ नहीं होता तो यह वारंवार फलोंके पाने की अभिलाषाओं से मोहित होकर कर्मक्यों करता ! ॥ ३० ॥ हे ईश्वर ! यह मूर्ख प्राणी,स्त्री पुत्र आदि की जो इच्छा करताहै इस कारण तुम्हारी मायाने इसको,सत्यस्वरूप आपसे अलग कर रक्खाहै इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है, इस कारण मेरी तो यही प्रार्थना है कि–मायाने जिस को फँसा रक्खाहै उसको आप और न फँसावें, किन्तु जिस प्रकार पिता आपही अपने पुत्र का हित करता है तैसे आप को भी हमारा हित करना उचित है ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजीकहतेहैं कि–हे विदुर जी !

रस्तु ते ॥ दिष्ट्येदृशी धीर्मयि ते कृता यया मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजां ॥ ३२ ॥ तत्त्वं कुरु मयादिष्टमप्रमत्तः प्रजापते ॥ मदादेशकरो लोकः सर्वत्राप्नोति शोभनम् ॥ ३३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्यार्थवद्वचः ॥ पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥ ३४ ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगाः ॥ किंनराप्सरसो मर्त्याः खगा भूतान्यनेकशः ॥ ॥ ३५ ॥ यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्ताञ्जलिभक्तितः ॥ सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठानुगतास्ततः ॥ ३६ ॥ भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः ॥ हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ३७ ॥ अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः संदर्शितात्मने ॥ अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥ ३८ ॥ इतिश्रीभा० म० चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ॥ महासुरभिभिर्धूपैर्मंडितं तत्र तत्र वै ॥ १ ॥ चंद-

जब उन आदिराजा पृथु ने इस प्रकार जगत् को देखनेवाले परमेश्वर की स्तुति करी, तब वह बोले कि–हे राजन् ! मेरे विषैं तेरी भक्ति हो, तू धन्य है जो तूने मेरे विषैं ऐसी प्रेम युक्त बुद्धि धारण करी, जिस बुद्धि के प्रभाव से प्राणी मेरी दुस्तर माया कोभी तरजाता है ॥ ३२ ॥ इस कारण हे प्रजापते ! तुम विषयों में आसक्त न होकर मेरी कही हुई राजनीति के अनुसार प्रजा की रक्षा करो, मेरी आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाला पुरुष इस लोक में और परलोक में सुख पाता है ॥ ३३ ॥ मैत्रेय जी कहते हैं कि–हे विदुरजी! इस प्रकार राजा पृथु के यथार्थ वचनों से सत्कार करेहुए अच्युत भगवान् ने, वेन के पुत्र राजा पृथु के, सबको सुखदायक, पहिले कहेहुए वचन का सत्कार करके और राजा के ऊपर अनुग्रह कर निज धाम को जाने का विचार किया ॥ ३४ ॥ तब देव, ऋषि, पितर गन्धर्व, सिद्ध, चारण, सर्प, किन्नर, अप्सरा, मनुष्य, पक्षी, अनेकों प्रकारके प्राणी ॥ ३५ ॥ और विष्णु भगवान के पार्षद इन सब का राजा ने ' यह भगवान् का अंश हैं ' इस बुद्धि से स्तुति, दक्षिणा देना और हाथ जोड़कर नमस्कार करना इत्यादि शिष्टाचारों से भक्ति के साथ सत्कार करा, तदनन्तर वह सब तहां से अपने अपने स्थान को चलेगए ॥ ३६ ॥ तदनन्तर प्रभु अच्युत भगवान् भी उपाध्याय और ऋत्विजों सहित तिन राजर्षि पृथु का मन हरते हुए अपने वैकुण्ठ लोक को चलेगए ॥ ३७ ॥ तदनन्तर राजा पृथुने भी, जिन्होंने अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाया है उन दृष्टिमार्ग को लांघ कर गए हुए देवाधिदेव वासुदेव भगवान् को नमस्कार करके अपने नगर में प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ इति चतुर्थ स्कन्ध में विंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! उस समय राजा पृथु का नगर स्थान २ पर, मोतियों की लड़ें, फूलों की मालाएं, रेशमी वस्त्र, सुवर्ण के पुष्पों की वन्दनवारें, और अत्यन्त सुगन्धित धूप से शोभायमान था ॥ १ ॥ उस नगर

नागुरुतोयोद्रथ्याचत्वरमार्गवत् ॥ पुष्पाक्षतफलैस्तोक्मैर्लाजैरर्चिर्भिरर्चितम् ॥ ॥२॥ सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतम् ॥ तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥३॥ स्त्रियस्तं दीपबलिभिः संभृताशेषमङ्गलैः ॥ अन्वीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमण्डिताः ॥ ४ ॥ शङ्खदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजां ॥ विवेश भवनं वीरैः स्तूयमानो गतस्मयः ॥ ५ ॥ पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः ॥ पौरान् जानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥ ६ ॥ स एवमादीन्यनवद्यचेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः ॥ कुर्वन् शशासावनिमण्डलं यशः स्फीतं निधायारुरुहे परं पदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ तदादिराजस्य यशो विजृम्भितं गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् ॥ क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गृणन्तमर्चयन् ॥८॥ विदुर उवाच ॥ सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रै लब्धा-

में की गलियें, चौराहे और सड़कें, चन्दन तथा काले अगरके जल से सींची हुईथीं और वह नगर जहां तहां स्थापन करे हुए फूल, अक्षत, फल दूब के अङ्कुर, लाजा (खीलें) और दीपकों से पूजित था ॥ २ ॥ उस नगर में कितने ही स्थानों पर फूल-फल-सहित केले के खम्भे और पूगीफल के पौधे खड़े करे हुए थे, वह चारों ओर आम्र के वृक्ष आदि के कोमल पत्तों की वन्दनवारों से शोभायमान था ॥ ३ ॥ तिस नगर में जब राजा पृथु ने प्रवेश किया त्योंही सकल प्रजा और कानों में देदीप्यमान कुण्डल पहिने सुन्दर कन्या, दीपक, बलि, दधि, अक्षत, दूर्वा, फलयुक्त कलश और सूत में लिपटे हुए लड्डू आदि मङ्गल की सामग्री लेकर राजाके सन्मुख आई ॥४॥ तदनन्तर वह गर्वरहित परमप्रतापी राजा, शंख, दुन्दुभि आदि बाजों के शब्द, ऋत्विज् ब्राह्मणों के वेदपाठ और सूत, मागध, बन्दियों के स्तुतिपाठ करतेहुए राजभवन में गया ॥ ५ ॥ भवन में प्रवेश करनेसे प्रथम ही तहां पुरवासी और देशवासी पुरुषों ने राजाकी पूजाकरी तब उनके ऊपर प्रसन्न हुए तिस महायशस्वी राजा ने, तिन लोकों को इच्छितवर देकर सबका यथायोग्य सत्कार करा ॥ ६ ॥ जिस का आचरण निर्दोष है और जो गुणों से बढ़ाहुआ होने के कारण परमपूजनीय है तिस राजा पृथु ने, लोकों के हाथसे न होसकें ऐसे बड़े २ कर्म करके भूमण्डल का पालन करा और पृथ्वीपर अपनी उज्वलकीर्ति स्थापन करके अन्त में परमपद को प्राप्तहुआ ॥ ७ ॥ सूतजी कहते हैं कि–हे शौनकजी ! वह परम भगवद्भक्त विदुरजी,ज्ञान वैराग्य आदि सकल गुणों से परिपूर्ण और गुणी लोकों के प्रशंसा करेहुए इस आदिराजा (पृथु) के यशको वर्णन करनेवाले मैत्रेय ऋषि का सत्कार करते हुए कहने लगे ॥ ८ ॥ विदुरजी ने कहा कि–हे ऋषे ! राजा पृथुका जब ब्राह्मणों ने अभिषेक किया उससमय सकल देवताओं से जिस को भेट मिली हैं, तिन से

शेषसुरार्हणः ॥ बिभ्रच्च वैष्णवं तेजो बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥ ९ ॥ को-
न्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ॥ लोकाः स-
पाला उपजीवन्ति काममद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥
गंगायमुनयोर्नद्योरंतरा क्षेत्रमावसन् ॥ आरब्धानेव बुभुजे भोगान्पुण्यजिहासया
॥ ११ ॥ सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् । अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्य-
त्राच्युतगोत्रतः ॥ १२ ॥ एकदासीन्महासत्रदीक्षा तत्र दिवौकसाम् ॥ समाजो
ब्रह्मर्षीणां राजर्षीणां च सत्तम ॥ १३ ॥ तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथार्हतः ॥
उत्थितः सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥ १४ ॥ प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः
कंजारुणेक्षणः ॥ सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥ १५ ॥
व्यूढवक्षा बृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः ॥ आवर्तनाभिरोजस्वी कांचनोरुरुदग्र-

पृथ्वीको दुहा ऐसी अपनी भुजाओं में विष्णुभगवान् का तेज धारण करनेवाले तिस राजा पृथु ने आगे को क्या चरित्र करा ॥९॥ अहो ! जिनके पृथ्वी को दुहनारूप पराक्रम के उच्छिष्ट (जूठन) समान वस्तुओं से सकल राजे और इन्द्रादिलोकपालों सहित सकल प्राणी, अबभी उपजीवन करते हैं उनकी कीर्त्ति को कौन पुरुष गुणका ग्रहण करनेवाला होकर नहीं सुनेगा ? सब सुनेंगे ही, इसकारण उनके शुद्ध कर्म को आप मेरे अर्थ वर्णन करिये ॥ १० ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! गङ्गा और यमुना नदी के मध्यमें के क्षेत्र (अन्तर्वेदी) में वास करनेवाला वह राजा पृथु, केवल अपने प्रारब्ध कर्मों के अनुसार प्राप्तहुए भोगों को भोगताथा, और भोग मिलने की इच्छा से नवीन २ सकाम कर्म नहीं करता था उसका भोगों को भोगना केवल पुण्यकर्मों का क्षय होनें की इच्छा से ही था, सुखकी आसक्ति से नहीं था ॥ ११ ॥ उसकी आज्ञा का कहीं भङ्ग नहीं होताथा, ब्राह्मणों के कुलके सिवाय तथा जिनके कुल देवता अच्युतभगवान् हैं तिन भगवद्भक्तों के सिवाय पृथ्वी के सातों द्वीपों में वह इकलाही दण्डकर्त्ता था ॥ १२ ॥ हेविदुरजी ! एकसमय उस राजा ने महासत्र करने की दीक्षा ग्रहण करीथी, उस सत्र में–देवता, ब्रह्मर्षि, और राजर्षियों का बड़ाभारी समाज इकट्ठा हुआथा ॥ १३ ॥ तहां सत्र के पूजनीय लोकों का उस ने यथायोग्य पूजन करा, तदनन्तर जैसे तारागणों के मध्य में चन्द्रमा का उदय होता है तैसे वह राजा पृथु सभा के मध्य में उठकर खड़ाहुआ ॥ १४ ॥ वह शरीर से ऊँचा था, उस की भुजा पुष्ट और लम्बी थीं, उस का वर्ण गौर, नेत्र कमल की समान लाल, नासिका सूधी, मुख प्रसन्न, देखने में सौम्य, कन्धे पुष्ट और दांतों की पंक्ति तथा हास्य सुन्दर था ॥ १५ ॥ वक्षःस्थल विशाल और कमर बड़ी थी, पेट त्रिवली से सुन्दर तथा पीपल के पत्ते की समान ऊपर को चौड़ा और नीचे को संकुचित था,

पात् ॥ १६ ॥ सूक्ष्मवक्रासितस्निग्धमूर्धजः कम्बुकंधरः ॥ महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥ १७ ॥ व्यंजिताशेषगात्रश्रीर्नियमे न्यस्तभूषणः ॥ कृष्णाजिनधरः श्रीमान् कुशपाणिः कृतोचितः ॥ १८ ॥ शिशिरस्निग्धताराक्षः समैक्षत समंततः ॥ ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥ चारुचित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविक्लवम् ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः ॥ सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ॥ २० ॥ अहं दंडधरो राजा प्रजानामिह योजितः ॥ रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥ २१ ॥ तस्य मे तदनुष्ठानाद्यानाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ लोकाः स्युः कामसंदोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥ २२ ॥ य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ॥ प्रजानां शमलं भुंक्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥ २३ ॥ तत्प्रजा भ-

उस की नाभि, जल के भँवर की समान, देह बलवान्, ऊरु सुवर्ण की समान उज्ज्वल, और पैरों के पञ्जे ऊँचे थे ॥ १६ ॥ उस के मस्तकपर के केश, सूक्ष्म, तिरछे, काले और दमकते हुए थे, कण्ठ शङ्ख की समान तीन रेखाओं से चिन्हित था, वह बहुमूल्य का एक वस्त्र पहिनकर दूसरा ओढ़ेहुए था ॥ १७ ॥ सत्र (यज्ञ) की दीक्षारूप निमित्त के कारण उस ने शरीरपर के सकल आभूषण उतारडाले थे इसकारण केवल वस्त्र से ही उस के सकल शरीर की शोभा प्रकट दीखरही थी, वह शरीरपर कृष्णमृगचर्म्म धारण करेहुए था, हाथ में कुश की पवित्रियें पहिनेहुए था, वह परमकान्तिमान् और योग्य कर्म्मों का करनेवाला था ॥ १८ ॥ उस के नेत्रों के तारे सकल लोकों का ताप दूर करनेवाले और स्नेहयुक्त थे, वह राजा चारोंओर को देखकर सभा के चित्त को आनन्दित करता हुआ अपनी अनुभव करीहुई वाणी को उच्चारण करता हुआ उससमय सब के ऊपर उपकार करने के निमित्त कहनेलगा, वह उसका कथन कर्णों को मधुर प्रतीत होने वाला, चमत्कारिक पदों से युक्त, प्रशंसनीय, शुद्ध, गम्भीर अर्थ से भरा और भ्रान्तिरहित था ॥ १९ ॥ २० ॥ राजा ने कहा–हे सभासदो ! तुम सज्जनजन जो यहां आये हो वह सब मेरे कथन को सुनो, तुम्हारा कल्याण हो, क्योंकि–धर्म के तत्त्व को जानने की इच्छा करनेवाले पुरुषों को अपने मन का विचार सत्पुरुषों के सम्मुख कहना उचितहै २१ इस भूलोक में, ऋषियों ने, मुझे सकल प्रजाओं का राजा नियत कराहै इसकारण मैं उन प्रजाओं को दण्ड देनेवाला, रक्षा करनेवाला उन की भिन्न २ प्रकार से वृत्ति चलानेवाला और उनको मर्यादा में स्थापन करनेवाला हूँ ॥ २२ ॥ इसकारण पुरातन कर्मों के साक्षी परमात्मा जिस के ऊपर प्रसन्न होते हैं उस ब्रह्मज्ञानी पुरुष को, जिन लोकों का मिलना कहा है वह सबके मनोरथ पूर्ण करनेवाले लोक मुझको ' प्रजा का पालन करने पर प्राप्तहों

तूर्पदार्थं स्वार्थमेवानसूयवः ॥ कुरुताधोक्षजधियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ॥२४॥ यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयोमलाः ॥ कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम् ॥ २५ ॥ अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषांचिदर्हसत्तमाः ॥ इहामुत्र च लक्ष्यते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्भुवः ॥ २६ ॥ मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः ॥ प्रियव्रतस्य राजर्षेरङ्गस्यास्मत्पितुः पितुः ॥ २७ ॥ ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च ॥ प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥ २८ ॥ दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान्धर्मविमोहितान् ॥ वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥ २९ ॥ यत्पादसेवाऽभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः ॥

॥ २३ ॥जो राजाओं को धर्म की शिक्षा न देकर केवल उनसे करही लेता रहता है उसको प्रजाओं का पाप भोगना पड़ता है और वह अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट होजाता है ॥ २४ ॥तिस से हे प्रजा के पुरुषों ! तुम्हारी रक्षा करनेवाला जो मैं तिस मेरा परलोक में हित होने के निमित्त तुम अन्तःकरण को निर्दोष करके ईश्वरार्पण बुद्धि से अपने धर्म का आचरण करते रहो, ऐसा करने से मानो तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करते रहोगे ॥ २५ ॥ हे देवता-ऋषि और पितरों ! यह मेरा वाक्य यदि उत्तम होयतो, इस को अपने निर्मल चित्त से अनुमोदन करो, जिस से कि-इस के ऊपर सब का विश्वास हो, क्योंकि-चाहेजो कर्म हो उस का जो परलोक में फल मिलता है वह कर्म करनेवाले को; शिक्षा देनेवाले को और अनुमोदन करनेवाले को एकसमान मिलता है ॥ २६ ॥ हे पूजनीय पुरुषो ! किसी एक दुराग्रही पुरुषका मत न हो परन्तु कितने ही पुरुषोंके मत में तो यज्ञपति(शुभअशुभ कर्म का फल देनेवाले) परमेश्वर हैं, और यही स्वीकार करनापड़ता है, क्योंकि-इसलोक में और परलोक में भी जो विशेष तेजस्वी (सुखकारी) भोगके स्थान और शरीर देखने में आते हैं, उन में भी जिस वस्तु से जिसको विशेष सुख होता है, उस ही वस्तुसे उस को कालान्तर में दुःख होता है वा एक ही वस्तु एकसमय में एक को अति सुखकारी और दूसरे को अतिदुःखदायी होती है ऐसी संसार की विचित्रता है, यह विचित्रता सकल कर्मों का फल देनेवाले भगवान् की सत्ता के विना नहीं होसक्ती ॥ २७ ॥ राजा मनु, उत्तानपाद, ध्रुव, राजर्षि प्रियव्रत, हमारे पिता (वेन) के पिता राजा अङ्ग तथा इन की समान धर्मपरायण और विचारवान् दूसरे राजे, ब्रह्मा, महादेव, प्रह्लाद और बलि इन सब का परमेश्वर से कर्त्तव्य है अर्थात्-कर्मों का फल देनेवाला ईश्वर होनाही चाहिये, ऐसा इन सबोंका मत है ॥ २८ ॥ २९ ॥ अधिक तो क्या परन्तु धर्म को जानने में मूढ़ और जिन के निमित्त सत्पुरुष-'इन का कल्याण कैसे होगा ?' इसप्रकार का शोक करते हैं, ऐसे वेन आदि राजाओं के सिवाय शेष सबका मत,'कर्म का फल देनेवाला ईश्वर ही है' इसी

सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदांगुष्ठविनिःसृता सरित् ॥ ३० ॥ विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमानसंगविज्ञानविशेषवीर्यवान् ॥ यदंघ्रिमूले कृतकेतनः पुनर्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥ ३१ ॥ तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ॥ अमायिनः कामदुघांघ्रिपंकजं यथाऽधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥ ३२ ॥ असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ॥ संपद्यतेऽर्थाशयलिंगनामभिर्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥ ३३ ॥ प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनां । क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते यथाऽनलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥ ३४ ॥ अहो ममामी वितरंत्यनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञभुजामधीश्वरम् ॥ स्वधर्मयोगेन यजंति मामका निरन्तरं क्षोणितले

प्रकार का है और बहुधा धर्म, अर्थ, काम, स्वर्ग और मोक्ष का अधिकारी के अनुसारफल देने में, सर्वव्यापक एक ईश्वर ही कारण होनाही चाहिये, अर्थात् कर्मजड़ है अतः वह फल देही नहींसक्ता, देवताओं कोभी अन्तर्यामीसत्ता के सिवाय स्वाधीनता नहीं है फिर कित नेही अवसर में एक समान कर्म करनेपरभी फल भिन्न २ प्रकार के ही मिलते हैं और कहीं २ मिलतेभी नहीं, इसकारण स्वतन्त्रता से चाहें जो कुछ करने को,होनहारके न करने को,अथवा होनहार से विपरीत करने को समर्थ परमेश्वर है ऐसा मानना ही पड़ता है ॥ ३० ॥ जैसे परमेश्वर के चरण के अँगूठे से निकलीहुई गङ्गा, आगे२ को वृद्धि पाकर लोकों के पापों का नाश करती है तैसेही तिन भगवान् के चरणों की सेवा का प्रेम प्रतिदिन बढ़ताहुआ संसारताप से तपेहुए पुरुषों की बुद्धि के, अनेकों जन्म में बढ़ेहुए मलका तत्काल नाश करदेता है ॥ ३१ ॥ तदनन्तर जिस के मन के सकल मल नष्ट होगए हैं ऐसा पुरुष, वैराग्य के प्रभाव से प्राप्तहुए भगवत्स्वरूप के साक्षात्काररूप बलसे युक्त होकर भगवान् के चरणका आश्रय लेकर रहताहुआ फिर इस क्लेशदायक संसारको नहीं प्राप्त होताहै ३२ इस कारण हे पुरुषो ! जिनका चरणकमल सबके मनोरथों को परिपूर्ण करनेवाला है उन भगवान् की ही तुम, ' अधिकार के अनुसार हमें फल प्राप्त होगा ऐसा निश्चय कर के,निष्कपटभाव से, शिक्षा देना आदि वृत्तियों से, मन, वाणी और शरीर के द्वारा ध्यान, स्तुति और पूजारूप अपने धर्म का आचरण करके आराधना करते रहो ॥ ३२ ॥ यह भगवान् ही स्वरूप से अतिशुद्ध—ज्ञानघन होने के कारण निर्गुण होकरभी इस कर्ममार्ग में—तण्डुल, घृत, दही आदि द्रव्य, शुक्ल आदि गुण, कूटना आदि क्रिया, मन्त्र, प्रयाज अनुयाज आदि अङ्गों से करी हुई पूर्णता, सङ्कल्प, पदों की अर्थ को जतानेवाली शक्ति, ज्योतिष्टोम वाजपेय आदि नाम ऐसे अनेकों गुणों से यज्ञरूप बनते हैं ॥ ३४ ॥ यही व्यापक भगवान्, प्रकृति,काल,वासना और पापपुण्यरूप जीवों का अदृष्ट इन सबके सङ्ग्रह के कारण जन्मको

दृढव्रताः ॥ ३५ ॥ मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभिस्तितिक्षया तपसा विद्यया च ॥ देदीप्यमानेऽजितदेवतानां कुले स्वयं राजकुलाद्द्विजानाम् ॥ ३६ ॥ ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवन्दनात् ॥ अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥ ३७ ॥ यत्सेवयाऽशेषगुहाशयः स्वराड् विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ॥ तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥ ३८ ॥ पुमांल्लभेतानतिवेलमात्मनः प्रसीदतोऽत्यन्तशमं स्वतः स्वयं ॥ यन्नित्यसम्बन्धनिषेवया ततः परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजां ॥ ३९ ॥ अश्नात्यनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः ॥ न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्यपर्यगुः ॥ ४० ॥ यद्ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धातपोमङ्गलमौनसंयमैः ॥

प्राप्त हुए शरीर में चेतना को पाकर ' जैसे एकही अग्नि काठ में उसकाठ के लम्बेपन तिरछेपन आदि गुणों से युक्त होकर लम्बा तिरछा इत्यादि रूपका प्रतीत होताहै तैसे ही-यज्ञ आदि के फलरूप से नाना प्रकार का प्रतीत होता है ॥ ३५ ॥ अहो ! इस भूतल पर यह दृढ़ निश्चय वाले मेरी प्रजा के पुरुष, अपने धर्म के द्वारा यज्ञ में हवि का भाग ग्रहण करने वाले, दवताओं के अधिपति, जो जगद्गुरु श्रीहरि तिन की निरन्तर आराधना करते हैं, सो मेरे ऊपर बड़ाभारी अनुग्रह करते हैं ॥ ३६ ॥ बड़ी २ समृद्धियों से जो उत्कट (असह्य) होरहा है ऐसा राजाओं के कुल से निकलाहुआ तेज, जिन के इष्ट देवता विष्णुभगवान् हैं ऐसे विष्णुभक्तों के कुल में और सहनशीलता-तप तथा विद्या के द्वारा स्वयं ही देदीप्यमान ब्राह्मणों के कुल में अपना प्रभाव, कदापि नहीं चलावे ॥ ३७ ॥ क्योंकि-ब्रह्मादिकों के भी परमपूजनीय, ब्राह्मणों के हितकारी, पुराणपुरुष साक्षात् विष्णुभगवान् ने भी, निरन्तर जिन ब्राह्मणों के चरणों को वन्दना करके अखण्ड लक्ष्मी और जगत् को पवित्र करनेवाला यश पाया है ॥ ३८ ॥ और जिन ब्राह्मणों की सेवा से वह सर्वान्तर्यामी, स्वप्रकाश ब्राह्मणों के प्रिय ईश्वर सन्तुष्ट होते हैं इस कारण भगवद्धर्म में तत्पर तुम भी, नम्रता पूर्वक शरीर, वाणी और मन से ब्राह्मणों के कुल की सेवा करो ॥ ३९ ॥ जिन ब्राह्मणोंकी निष्कपटभाव से नित्य उत्तम सेवा करनेपर पुरुष, ज्ञान का अभ्यास करे विना अपने आपही शीघ्र शुद्ध चित्त होकर मोक्ष पाता है तिन ब्राह्मणो के सिवाय जगत् में देवताओं का दूसरा कौनसा मुख है ? अर्थात् और कोई नहीं है तात्पर्य यह कि-ब्राह्मणों की सेवा से ही सकल फलों की प्राप्ति होती है ॥ ४० ॥ सकल उपनिषदों में जिनको ज्ञानधन कहा है ऐसे अनन्त भगवान्, इन्द्रआदि की तृप्ति होने के निमित्त ब्राह्मणों के मुख में तत्वज्ञानी पुरुषों के श्रद्धा से हवन करनेपर (भक्ति के साथ ब्राह्मणों को भोजन करानेपर) वह जैसे मन से भक्षण

समाधिना बिभ्रति हार्थदृष्टये यत्रेदमादर्श इवावभासते ॥ ४१ ॥ तेषामहं पा-
दसरोजरेणुमार्या वहेयाधिकिरीटमायुः ॥ यं नित्यदा बिभ्रत आशु पापं नश्य-
त्यमुं सर्वगुणा भजन्ति ॥ ४२ ॥ गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृण-
तेऽनु संपदः ॥ प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्यं ॥ ४३ ॥
मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधु-
वादेन साधवः ॥ ४४ ॥ पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः ॥ ब्रह्मद-
ण्डहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥ ४५ ॥ हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निन्दया
तमः ॥ विविक्षुरत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ॥ ४६ ॥ वीरवर्य पितः पृथ्व्याः
समाः सञ्जीव शाश्वतीः ॥ यस्येदृश्यच्युते भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ॥ ४७ ॥
अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः ॥ यं उत्तमश्लोकतमस्य
विष्णोर्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥ ४८ ॥ नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्या-

करते हैं (उनको जितना प्रिय लगता है) तैसे चेतनाशक्तिरहित अग्नि में हवन करने पर वह भक्षण नहीं करते हैं (उन को प्रिय नहीं लगता है) ॥ ४१ ॥ दर्पण में दीखनेवाले मुखकी समान, जिस वेदमें यह विश्व भासमान होताहै, तिस शुद्ध, सनातन वेद को जो ब्राह्मण, श्रद्धा, तपस्या, शुद्ध आचरण, मिथ्याभाषण का त्याग, इन्द्रियों को वश में करना और चित्तकी एकाग्रता रखकर नित्य धारण करते हैं उन के चरणकमल की धूलि को मैं अपने मुकुट के ऊपर जीवनभर धारण करूँगा; क्योंकि—जिस धूलिको निरन्तर धा-रण करनेवाले पुरुष का पातक तत्काल नष्ट होजाता है और सबही गुण उस पुरुषका आश्रय करते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तदनन्तर सकलगुणों के आश्रय, सुन्दर स्वभाव के धनी, दूस-रोंके करेहुए उपकारको जाननेवाले और वृद्धजनोंके सेवक तिस पुरुषको सकल सम्पदा आप ही आकर वरलेती हैं इसकारण मेरी यह इच्छा है कि—ब्राह्मणों का कुल, गौओंका समूह और भक्तमण्डली सहित विष्णुभगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४४ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! इसप्रकार राजा पृथु के कहनेपर तिस उत्तम भाषण से सन्तुष्टचित्तहुए और सदाचारनिष्ठ होने के कारण शुद्धचित्त वह पितर, देवता और ब्राह्मण उन की स्तुति करनेलगे ॥ ४५ ॥ वह कहनेलगे कि—पुत्र से पिता को उत्तमलोक प्राप्त होते हैं, ऐसी जो श्रुति है सो सर्वथा सत्य ही है क्योंकि—ब्राह्मणों के शाप से नष्टहुआ पापी वेन राजा भी पृथु नामक पुत्र को प्राप्त होकर नरक को तरगया ॥ ४६ ॥ तैसे ही हिरण्यकशिपु भी भ-गवान्‌की निन्दा से नरक में पड़ता था परन्तु प्रह्लाद नामक पुत्र के भगवद्भजन के प्रभाव से तरगया ॥ ४७ ॥ हे वीरों में श्रेष्ठ ! हे भूमिपति राजन् ! सकल लोकों के मुख्य रक्षक अ-च्युतभगवान् के विषें जो तेरी ऐसी अपूर्व भक्ति है इसकारण तू अनन्तवर्षोंपर्यन्त जीवित रहो ॥ ४८ ॥ हे पवित्रकीर्त्ते राजन् ! तुम जो पुण्यकीर्त्ति पुरुषों में परमश्रेष्ठ और ब्रा-

नुशासनम् ॥ प्रजानुरागो महतां प्रकृतिः करुणात्मनाम् ॥ ४९ ॥ अद्य नस्त-मसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो ॥ भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ॥ ॥ ५० ॥ नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे ॥ यो ब्रह्म क्षत्रमाविश्य बिभ-र्तीदं स्वतेजसा ॥ ५१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकविंशो-ऽध्यायः ॥ २१ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्र-मम् ॥ तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥ १ ॥ तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा ॥ लोकानपापान्कुर्वत्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥ २ ॥ तद्दर्शनोद्गतप्राणान्प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः ॥ ससदस्यानुगो वैन्य इन्द्रियेशो गुणा-निव ॥ ३ ॥ गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकन्धरः ॥ विधिवत्पूजयाञ्चक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥ ४ ॥ तत्पादशौचसलिलैर्मार्जितालकबन्धनः ॥ तत्र

ह्मणों के हितकारी विष्णुभगवान् की कथा का वर्णन करते हो, सो तुमसा नाथ मिलने के कारण ही आज हम, मुकुन्दभगवान् जिन के नाथ हैं ऐसे हुए हैं ॥ ४९ ॥ हे नाथ ! तु-म्हारा सेवकों को शिक्षा करना यह कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि—प्रजा के पुरुषों के ऊपर प्रेम करना, दयालु अन्तःकरणवाले सत्पुरुषों का स्वभाव ही है ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! प्रारब्ध कर्म से नष्ट होरही है विवेकदृष्टि जिन की ऐसे संसार में भ्रमनेवाले हम को आज तुम, भ-गवत्तत्त्व का उपदेश करके अज्ञानरूप अन्धकार का पार दिखानेवाले हो ॥ ५१ ॥ इस कारण जो ब्रह्मकुल में प्रवेश करके क्षत्रियकुल की रक्षा करता है और क्षत्रियकुल में प्रवेश करके ब्रह्मकुलकी रक्षा करता है तथा दोनों कुलों में प्रवेश करके इस जगत् की रक्षा करता है उस सत्वगुण की वृद्धि करनेवाले परमपूजनीय पुरुष को मेरा नमस्कार हो ॥ ५२ ॥ इति चतुर्थस्कन्ध में एकविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ मैत्रेय जी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! इस प्रकार प्रजा के पुरुष, तिन महापराक्रमी राजा पृथु की स्तुति कर रहे थे, इतने ही में सूर्य की समान तेजस्वी सनत्कुमार आदि चार मुनि तहां आपहुँचे ॥ १ ॥ तव सेवकों सहित तिस राजा ने, लोकों को निष्पाप करनेवाले, का-न्ति से ही यह सनकादि हैं ऐसा जाने हुए और आकाश से नीचे को उतरनेवाले सिद्धे-श्वरों को देखा ॥ २ ॥ और जैसे जीव, सुगन्ध आदि विषयों की उत्सुकता से सन्मुख जाता है तैसे ही तिन मुनियों के दर्शन से निकल कर जाते हुए अपने प्राणों को लौटा कर ग्रहण करने की इच्छा से ही मानो वह राजा सभासद और सेवकों सहित उठकर खड़ा हुआ ॥ ३ ॥ तदनन्तर मुनियों के गौरव से उनके वश में हुए और नम्रता से अ-पनी ग्रीवा नीचे को करनेवाले तिस सभ्य राजा ने, आसन और अर्घ्य को स्वीकार करने वाले उन मुनियों की विधिपूर्वक पूजा करी ॥ ४ ॥ और उन मुनियों के चरण धोने के

शीलव्रतां वृत्तमाचरन्मानयन्निव ॥ ५ ॥ हाटकासन आसीनान्स्वधिष्ण्येष्विव पावकान् ॥ श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥ ६ ॥ पृथुरुवाच ॥ अहो आचरितं किं मे मंगलं मङ्गलायनाः ॥ यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥७॥ किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च ॥ यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥ ८ ॥ नैव लक्ष्यते लोको लोकान्पर्यटतोपि यान् ॥ यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः ॥ ९ ॥ अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः ॥ यद्गृहा ह्यर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरावराः ॥ १० ॥ व्यालालयद्रुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसंपदः ॥ यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥ ११ ॥ स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद्व्रतानि मुमुक्षवः ॥ चरंति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहन्ति च ॥ १२ ॥ कच्चिन्नः कुशलं नाथा

जल से जिस के केशों का जूड़ा धुला है ऐसे उस राजाने उस सभा में सदाचारवान् पुरुषों का आचारही बहुत उत्तम है, इसप्रकार उस सदाचार का बहुत सन्मान करके अपने आप भी तैसाही आचरण करा ॥ ५ ॥ तदनन्तर श्रद्धावान् और इन्द्रियों को वश में रखने वाला राजा, सन्तुष्ट होता हुआ ' अपने स्थानमें विद्यमान तीन अग्नियों की समान ' सुवर्ण के आसनपर बैठे हुए, शिवजी के भी बड़े भ्राता तिन सनत्कुमार आदिसे कहने लगे।६। पृथु ने कहा—हे मुनियो ! आप का आगमन परम मङ्गलरूप हुआ है, योगिजनों को भी जिनका दर्शन होना कठिन है ऐसे आपका जो मुझे दर्शन हुआ सो अवश्यही पहिले मैंने कोई पुण्यकर्म करे होंगे ॥ ७ ॥ निःसन्देह आज मैं कृतार्थ हुआ हूँ, क्योंकि—जिस के ऊपर तुम से ब्राह्मण तथा भक्तों सहित शिवजी और विष्णुभगवान् प्रसन्न होतहैं उस पुरुष को इस लोक मेंवा परलोक में कौन पदार्थ दुर्लभ है ? ॥८॥ हे ब्रह्मज्ञानियों ! इस जगत् के कारणरूप महत्तत्त्व आदि देवता जैसे सर्वसाक्षी परमात्मा को नहीं जानते हैं तैसे ही सब के ऊपर उपकार करने के निमित्त लोकों में विचरनेवाले आपको यह जनसमूह, 'यह ऐसे शक्तिमान् हैं' ऐसा नहीं जानते हैं ॥ ९ ॥ अहो ! जिन के घरों में आप की समान पूजन करने योग्य जनों के स्वीकार करने योग्य जल, तृणों के आसन, भूमि, घरके स्वामी, और सेवक होते हैं वह सदाचारवान् गृहस्थी पुरुष निर्धन हों तवभी धन्य हैं ॥ १० ॥ और जो घर भगवद्भक्तों के चरणरूप तीर्थों से रहित हैं वह यदि सकल सम्पदाओंसे पूर्ण हों तवभी सर्पों के रहने के स्थान ऐसे वृक्षों की समान हैं ॥ ११ ॥ हे द्विजवरों ! आपका आगमन हुआ, यह बहुत ही उत्तम हुआ, तुम बालक अवस्थासे ही मोक्ष की इच्छा करनेवाले, इन्द्रियों को वश में करनेवाले और श्रद्धा के साथ बड़े २ व्रतों को धारण करने वाले हो ॥ १२ ॥ तुम हमारे स्वामी हो, सो दुःख के क्षेत्र इस संसार में अपने कर्मों के

इंद्रियार्थार्थवेदिनां ॥ व्यसनावाप एतस्मिन्पतितानां स्वकर्मभिः ॥ १३ ॥ भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ॥ कुशलाकुशला यत्र न संन्ति मतिवृत्तयः ॥ १४ ॥ तदहं कृतविश्रंभः सुहृदो वस्तपस्विनां ॥ संपृच्छे भव एतस्मिन्क्षेमः केनाञ्जसा भवेत् ॥ १५ ॥ व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः ॥ स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥१६॥ मैत्रेय उवाच ॥ पृथोस्तत्सूक्तमाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु ॥ स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना ॥ भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥ १८ ॥ संगमः खलु साधूनामुभयेषां च संमतः ॥ यत्संभाषणसंप्रश्नः सर्वेषां वितनोति शं ॥ १९ ॥ अस्त्येव राजन्भवतो मधुद्विषः पादारविंदस्य गुणानुवादने ॥ रतिर्दुरापा वि-

वश पड़ेहुए और इन्द्रियों के भोग में आनेवाले जो विषय उन को ही पुरुषार्थ माननेवाले हमारा कल्याण किसी उपाय से है क्या ? ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मज्ञानियो ! आत्मस्वरूप में निमग्न रहनेवाले तुम्हारा कुशलप्रश्न करना योग्य नहीं है क्योंकि—कल्याणरूप और अकल्याणरूप बुद्धि की वृत्ति आपके विषें है ही नहीं ॥ १४ ॥ इसकारण आपके कथन पर विश्वास रखनेवाला मैं त्रिविधताप से सन्तप्तहुए लोकों का इस संसार में अनायास ही कल्याण कौन से उपाय से होगा ? यह आप से प्रश्न करता हूँ क्योंकि—आप संसारी पुरुषों के हितचिन्तक हैं ॥ १५ ॥ अहो ! आत्मज्ञानी पुरुषोंको अत्यन्तप्रिय भगवान् श्रीनारायण ही सिद्धों के स्वरूप से अपने भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त इस पृथ्वीपर विचरते हैं,इसमें किसीप्रकारका सन्देह नहीं है,क्योंकि—तुम स्वयं जन्म आदि विकाररहित और भक्तों को अपने स्वरूप का प्रकाश करदेनेवाले हो ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! राजा पृथु के, न्याय के अनुकूल, गम्भीर अभिप्राय से भरेहुए थोड़े और कर्णों को प्रिय लगनेवाले उत्तम कथन को सुनकर, हँसतेहुए से प्रसन्नमुख वह सनत्कुमार मुनि, आनन्द के साथ तिस राजा से कहनेलगे ॥ १७ ॥ सनत्कुमार ने कहा—हे महाराज ! सकल प्राणियों का हित करने की इच्छा करनेवाले और उस हितको जाननेवाले भी तुमने, बड़ा उत्तम प्रश्न करा, ठीकही है, सत्पुरुषों की बुद्धि ऐसी ही होती है ॥ १८ ॥ साधुओं का समागम, वक्ता और श्रोता दोनो को ही माननीय होता है इसमें सन्देह नहींहै,क्योंकि—वक्ता और श्रोताओंके सम्भाषणके साथ निकलाहुआ,उत्तम प्रश्न तहां विद्यमान सकल लोकोंका कल्याण करता है ॥१९॥ हेराजन् ! मधुसूदनभगवान् के चरणकमल का जो पराक्रम उसके सुननेमें तुम्हारी निश्चल प्रीति है जो प्रीति भक्तिहीन पुरुषों को दुर्लभ है और वस्त्रपर लगेहुए गेरू आदि धातुके चिन्ह (धब्बे) की समान,और

धुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमन्तरात्मनः ॥ २० ॥ शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः ॥ असंग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥२१॥ सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाध्यात्मिकयोगनिष्ठया ॥ योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवःकथया पुण्यया च ॥२२॥ अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया तत्संमतानामपरिग्रहेण ॥ विविक्तरुच्या परितोष आत्मन्विना हरेर्गुणपीयूषपानात् ॥२३॥ अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना ॥ यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ २४ ॥ हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन विजृम्भमाणया ॥ भक्त्या ह्यसङ्गः सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रतिः ॥२५॥ यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ॥ दहत्यवीर्यं

उपायों से न जानेवाले अन्तःकरण के वासनारूप मल कोभी नष्ट करडालती है ॥२०॥ हे राजन् ! आत्मा से भिन्न देह गेह आदि के विषैं वैराग्य और निर्गुण ब्रह्मरूप आत्मा के विषैं दृढ़ प्रेम, इतना ही उत्तम विचारों से पूर्ण शास्त्रों में मनुष्यों के मोक्षरूप कल्याण का साधन निश्चय करा है ॥ २१ ॥ गुरु और शास्त्रों के वचनों पर विश्वास रखना, भगवत्सम्बन्धी धर्मों का आचरण करना, भजन आदि की रीति जानने की इच्छा करना, यम नियम आदि योगाभ्यास में तत्पर होना, योगेश्वर परमात्मा की उपासना करना, नित्य पवित्रकीर्त्ति भगवान् के पवित्र चरित्रोंको सुनना, धन की प्राप्ति करने में व इन्द्रियों की तृप्ति करने में मग्न रहनेवाले तमोगुणी और रजोगुणी स्वभाववाले पुरुषों की सङ्गति को त्याग देना, तिन तमोगुणी और रजोगुणी पुरुषों को प्रियलगनेवाले अर्थ कामों में आसक्ति न करना, एकान्त वैठने में प्रेम रखना, आत्मस्वरूप में सन्तोष मानना परन्तु श्रीहरि की कथारूप अमृत का पान करने को मिले तो एकान्त में वैठने में प्रीति और आत्मस्वरूप में सन्तोष न मानना किन्तु भक्तसमाज में जा मन लगाकर श्रीहरि की कथा ही सुनना, हिंसा न करना, अनायास में मिलेहुए अन्न आदि करके ही निर्वाह करना, अपने हित का ध्यान रखना, मोक्षदाता श्रीहरिकी लीलारूप उत्तम अमृत का स्मरण करना, किसी प्रकार की इच्छा न रखकर, अहिंसा, सत्य, स्नान, सन्ध्या आदि यम नियमों का सेवन करना, अन्य मार्गकी वा अन्य देवता की निन्दा न करना, शरीर के निर्वाह के निमित्त किसीप्रकार का व्यापार न करना, शीत, उष्ण, क्षुधा तृषा आदि द्वन्द्वों को सहना और भगवद्भक्तों के कर्णोंको शोभा देनेवाले आभूषणरूप श्रीहरिके गुणानुवाद का उच्चारणकरना, इन साधनों से बढ़ी हुई भक्ति के प्रभाव से स्थूल सूक्ष्मरूप, आत्मा से भिन्न, प्रपञ्च के विषैं वैराग्य और निर्गुण ब्रह्मस्वरूप आत्मा के विषैं वह दृढ़प्रेम अनायास में ही प्राप्त होजाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे राजन् ! जब ब्रह्म में निश्चल प्रीति होजाती है

हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥ २६ ॥ दग्धाशयो मुक्त-समस्ततद्गुणो नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे ॥ परात्मनो यद्व्यवधानं पुरस्तात् स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥२७॥ आत्मानमिन्द्रियार्थं च परं यदुभयोरपि । सत्याशय उपाधौ वै पुमान्पश्यति नान्यदा ॥ २८ ॥ निमित्ते सति, सर्वत्र जलादावपि पूरुषः ॥ आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥२९॥ इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ॥ चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥ ३० ॥ भ्रश्यत्यनु स्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ॥ तद्रोधं कवयः

तब पुरुष, ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ गुरु का आश्रय लेकर ज्ञान और वैराग्यके वेग से जैसे प्रज्वलित हुआ अग्नि अपने उत्पन्न होने के स्थान काठ को जलाकर भस्म करदेता है तैसे ही, जीव को आवरण करनेवाले (जीवके स्वरूप को ढकनेवाले) पञ्चमहाभूतरूप वा अविद्या-स्मित–राग–द्वेष और अभिनिवेश इस पांच प्रकार के अपने अन्तःकरण को "जिस से कि–वह फिर अंकुरित न हो इसप्रकार" भस्म करडालता है ॥ २६ ॥ तदनन्तर जैसे जागाहुआ पुरुष, स्वप्न में देखे हुए 'मै राजा हूँ, मेरे आगे बहुतसी सेना खड़ी हुईहै' इत्यादि द्रष्टा (देखनेवाला) और दृश्य (देखनेवाले पदार्थ) को नहीं देखताहै तैसे ही जिसकी अन्तःकरणरूप उपाधि भस्म होगई है और जिस ने उस अन्तःकरण रूप उपाधि के कर्त्तापने का अभिमान आदि धर्म छोड़ दिये हैं वह पुरुष, पहिले घट पटादि दृश्य पदार्थों का और उनको देखनेवाले आत्मा का भेद प्रतीत होने के कारणरूप अन्तःकरण का नाश होते ही, देह के बाहर के घटादि पदार्थों को और भीतर के सुख दुःखादि पदार्थों को देखताही नहीं है ॥ २७ ॥ क्योंकि–पुरुष, आत्मा (द्रष्टा) को और इन्द्रियों के विषयों (दृश्य पदार्थों) को तथा दोनों के सम्बन्ध के कारण रहनेवाले अहङ्कार को, अन्तःकरण रूप उपाधि होती है तबही देखता है नहीं तो समाधि सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में नहीं देखता है ॥ २८ ॥ भेद प्रतीत होने के कारणरूप जल वा दर्पण आदि के होने परही यह पुरुष, सब स्थानो मे बिम्बरूप अपना और प्रतिबिम्बरूप दूसरे का भेद देखता है और समय (उपाधि के न होनेपर) नहीं देखता है ॥ २९ ॥ जैसे सरोवर के तटपर उगे हुए कुश आदि के झुण्ड, अपनी जड़ों से इस प्रकार धीरे २ जलको खैंचते हैं कि–किसी को भी प्रतीत नहीं होता है, तैसे ही सुने हुए वा अनुभव करे हुए विषयों का चिन्तवन करनेवाले पुरुष का मन, विषयों में आसक्त हुई इन्द्रियों से विषयों की ओर को खिचने पर उसकी बुद्धि की चेतना (विचार शक्ति) को ऐसे खैंचलेता है कि–किसी को प्रतीत नहीं होता ॥ ३० ॥ विचारशक्ति के नष्ट होनेपर पूर्वापर का ध्यान देना रूप स्मृति नष्ट [illegible] नोतेही स्वरूप के ज्ञान का नाश

प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥ ३१ ॥ नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ॥ यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥ ३२ ॥ अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ॥ भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥ ॥ ३३ ॥ न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यंतविघातकम् ॥ ३४ ॥ तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यंतिकतयेष्यते ॥ त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतांतभयसंयुतः ॥ ३५ ॥ परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु ॥ न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥ ३६ ॥ तत्त्वं नरेंद्र जगतामथ तस्थुषां च देहेंद्रियासुधिषणात्मभिरावृतानाम् ॥ यः क्षेत्रवित्तपतया हृदि विष्वगाविः प्रत्यक् चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ॥ ३७ ॥ यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विभाति माया विवेकविधुति स्रजि वाऽहिबुद्धिः ॥

होजाता है, इस प्रकार ज्ञान की रुकावट को ही विद्वान् पुरुष, ' अपने आप ही आत्माका नाश करलेना ' कहते हैं ॥ ३१ ॥ जिसके निमित्त अन्य सकल विषय परमप्रिय होतेहैं उस आत्मा को आपही जो छुपा रखना (भूलजाना) उस से जो स्वार्थ का नाश है, तिस से अधिक प्राणी का कौनसा नाश (हानि) है ? अर्थात् यही सर्वस्व का नाशहै ॥ ३२ ॥ धन का और इन्द्रियोंकी तृप्ति का जो निरन्तर चिन्तवन करना, यही मनुष्य के सकल पुरुषार्थों का नाश है, क्योंकि–जिन धन आदिकी चिन्ता से सुनेहुए और अनुभव करेहुए इन दोनों प्रकार के ही ज्ञान से भ्रष्ट हुआ पुरुष, वृक्ष आदि की योनियों में जाकर उत्पन्न होताहै॥ ३३ ॥ इसकारण भयङ्कर संसारसे तरनेकी इच्छा करनेवाला पुरुष, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अत्यन्त नाश करनेवाली वस्तुमें कदापि आसक्त न होय॥ ३४ ॥ तिसमें भी मोक्षरूप पुरुषार्थ ही कदापि नष्ट न होनेवाला होनेके कारण सबसे उत्तमहै, क्योंकि–धर्म अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग रूप पुरुषार्थ तो सदा काल के भय से युक्त है ॥ ३५ सृष्टि के आरम्भ में तीनों गुणों में क्षोभ होने के अनन्तर उत्पन्न हुए जो ब्रह्मादिक देवता उच्चश्रेणी के प्राणी और उन के अनन्तर उत्पन्न हुए जो हमसमान नीच प्राणी यह यदि अधिकारी हों तौभी इन का सुख से रहना बन नहीं सक्ता, क्योंकि–उन के त्रिविध पुरुषार्थको सर्वसमर्थ काल नाश करनेवाला है ॥ ३६ ॥ इसकारण हेराजन्! विषयों में आसक्ति करना अनर्थ का कारण है इसकारण तुम उसको छोड़दो, और देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि तथा अहङ्कार से लिपटेहुए स्थावर जङ्गमरूप जगत् के हृदय में जो भगवान् , जीवों के अन्तर्यामीरूप से, अन्तर्मुखत्वरूप से और व्यापकत्वरूप से प्रत्यक्ष प्रकाशित होते हैं, वही मैं हूँ , ऐसा जान ॥ ३७ ॥ पुष्पोंकी माला में जैसे सर्पबुद्धि भासती है तैसे ही जिस में इस विश्व का भ्रमभी जिस के तत्त्वका विचार करने से नष्ट होजाता है, तिन नित्यमुक्त, अत्यन्त शुद्ध केवल ज्ञानस्वरूप, तथा जिसने कर्म

तंनित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्त्वप्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ॥ ३८ ॥ यत्पा-
दपंकजपलाशविलासभक्त्या कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति संतः ॥ तद्वन्न रिक्त-
मतयो यतयोऽपि रुद्धस्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥ ३९ ॥ कृच्छ्रो-
महानिह भवार्णवमप्लवेशां षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीर्षति ॥ तत्त्वं हरेर्भग-
वतो भजनीयमङ्घ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥४०॥ मैत्रेय उवाच॥
स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा ॥ दर्शितात्मगतिः सम्यक्प्रशस्योवाच तं
नृपः ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणार्तानुकंपिना ॥ तमापाद-
यितुं ब्रह्मन् भगवन् यूयमागताः ॥ ४२ ॥ निष्पादितं च कार्त्स्न्येन भगवद्भि-
र्घृणालुभिः ॥ साधूच्छिष्टं हि सर्वं मे आत्मना सह किं ददे ॥ ४३ ॥ प्रा-
णा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ॥ राज्यं बलं मही कोश इति

के द्वारा मलिनहुई प्रकृति का निराश करा है तिस परमेश्वर की मैं शरणहूँ, ऐसी भावनाकर ॥ ३८ ॥ जिन के चरणकमल की अंगुलि की कान्ति का स्मरणरूप भक्ति करके, भक्तजन जैसे कर्मयोग के द्वारा गुँथीहुई अपनी अहङ्काररूप हृदय की ग्रन्थि को सर्वथा नष्ट करडालते हैं तैसे, जिनकी बुद्धि विषय वासनासे रहित होगई है और जिन्हो ने अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुख करलिया है वह यत्न करनेवाले ज्ञानमार्गावलम्बी संन्यासी भी अपने हृदय की ग्रन्थि का भेदन करने को समर्थ नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और मन इस षड्वर्गरूप नाकों से युक्त संसारसमुद्र को जो पुरुष, केवल योग आदि साधनों से तरने की इच्छा करते हैं तिन, ईश्वररूप कर्णधार (मल्लाह) का आश्रय न करनेवाले पुरुषों को उस संसार समुद्रको तरना बड़ा कठिन होजाता है, इसकारण तू, भगवान् श्रीहरिके पूजनीय चरणरूप नौका का आश्रय करके इस दुःखरूप दुस्तर संसार समुद्रको तरकर पार होजा ॥ ४० ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी! इस प्रकार ब्रह्माजी के पुत्र आत्मज्ञानी सनत्कुमार ने राजा पृथुको आत्मतत्त्व का उत्तम प्रकारसे उपदेश करा, तबवह राजा उन सनत्कुमारकी उत्तमप्रकारसे प्रशंसा करके कहने लगा ॥ ४१ ॥ राजाने कहा हे ब्रह्मज्ञानी-सर्वज्ञ-मुने! दीनोंपर दया करनेवाले श्रीहरि ने पहिले ही मेरेऊपर अनुग्रह कराथा, उसको ही पूर्ण करनेके निमित्त आप यहां पधारेहैं ॥ ४२ ॥ और उस अनुग्रह को दयालुस्वभाववाले आपने पूर्णरूप से सिद्ध करदिया; इसकारण आप को गुरुदक्षिणारूप से मुझे कुछ तो समर्पण करना ही चाहिये, परन्तु क्या समर्पण करूँ ? क्योंकि–मेरे शरीरसहित जो कुछ सकल राज्य आदि है सो सब साधुओं का उच्छिष्ट है अर्थात् साधुओंने अपना प्रसादरूप दियाहै, पिता के दियेहुए मोदक आदि को खाकर उस को फिर अपने पिता आदिको दानरूपसे नहीं दियाजाताहै ४३ परन्तु निवेदन करना बनसक्ता है इसकारण हे ब्रह्मज्ञानी सनत्कुमारजी! जैसे राजाके सेवक, उन के ही दियेहुए धन के

सर्वं निवेदितम् ॥४४॥ सैनोपत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ॥ सर्वलो-
काधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ४५ ॥ स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं
ददाति च ॥ तस्यैवानुग्रहेणान्नम्भुंजते क्षत्रियादयः ॥४६॥ यैरीदृशी भगवतो
गतिरात्मवादे एकांततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ॥ तुष्यंत्वदभ्रकरुणाः
स्वकृतेन नित्यं को नाम तत्प्रतिकरोति विनोदपात्रम् ॥ ४७ ॥ ते आत्मयो-
गमतय आदिराजेन पूजिताः ॥ शीलं तदीयं शंसंतः खेऽभूवन्मिषतां नृणां
॥ ४८ ॥ वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याऽध्यात्मशिक्षया ॥ आप्तकाममिवात्मा-
नं मेने आत्मन्यवस्थितः ॥ ४९ ॥ कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलं
यथोचितं यथावित्तमकरोद्ब्रह्मसात्कृतम् ॥ ५० ॥ फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्वि-

ताम्बूल आदि लेकर सेवारूप से उन को समर्पण करते हैं, तैसे ही मैंने—अपने प्राण, स्त्री, पुत्र, सामग्रियों से भरेहुए स्थान, राज्य, सेना, पृथ्वी और द्रव्यका भण्डार यह सब आपको समर्पण करा है ॥ ४४ ॥ सेनापति का कार्य, राज्य, दण्डनेतृत्व (पुरुषों को शिक्षा देने का वा न्याय करने का काम) और सब पुरुषोंके ऊपर अधिकार चलाना, यह सब करने को वेद-शास्त्रका जाननेवाला ब्राह्मण ही योग्य है ॥ ४५ ॥ ब्रह्मज्ञानी पुरुष, अपने ही पदार्थ भक्षण करता है, अपने ही वस्त्रों को पहिनता है, और अपनी ही वस्तु अन्य पुरुषों को देता है शेष क्षत्रियादि वर्ण, उन ब्राह्मणों के अनुग्रह से ही अन्न वस्त्र आदि भोग के पदार्थोंका सेवन मात्र करते हैं, उनको अधिक अधिकार नहीं है ॥ ४६ ॥ हे ऋषियो! वेद को जाननेवाले तुमने जो मेरे अर्थ—आत्मविचार के निश्चयवाली भगवान् की गति कही, सो निरन्तर परम दयालु तुम, अपने करे हुए दीन के उद्धाररूप कर्म से आपही सन्तुष्ट हूजिये, क्योंकि—आपके करेहुए उपकारके परिवर्त्तन (बदले) में केवल हाथ जोड़ देने के सिवाय दूसरा उपकार कौन करसकेगा? अर्थात् कोई नहीं करसकेगा यदि कोई करने की इच्छा करेगा तो लोको में केवल उसका हास्य ही होगा ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हेविदुरजी! तदनन्तर आत्मज्ञान का उपदेश करने में समर्थ उन सनत्कुमार आदि ऋषियों की राजा पृथु ने पूजाकरी, फिर वहराजा के सुन्दर स्वभाव की प्रशंसा करतेहुए, तहां विद्यमान सकल पुरुषों के देखतेहुए, आकाशमार्ग में को चलेगए ॥ ४८ ॥ उससमय महात्माओं में अग्रणी वह वेन के पुत्र राजा पृथु, सनत्कुमार के करेहुए आत्मतत्त्व के उपदेश से, आत्मा में मनको एकाग्र करके, तिस से परमात्मा के विषैं एकभाव से स्थित होतेहुए अपने को कृतार्थ हुआसा माननेलगे ॥ ४९ ॥ और फिर वहराजा, लोकव्यवहार के निमित्त काल, देश, बल और मनकी योग्यता के अनुसार सकलकर्म यथोचितरीति से ब्रह्मार्पण बुद्धि करके करनेलगा ॥ ५० ॥ वहराजा कर्मों का फल ब्रह्म के विषैं समर्पण करके

यर्पणः समाहितः ॥ कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥ ५१ ॥ गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियान्वितः ॥ नासज्जतेन्द्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥ ५२ ॥ एवमध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन् ॥ पुत्रानुत्पादयामास पंचार्चिष्यात्मसंमतान् ॥ ५३ ॥ विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् ॥ सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥ ५४ ॥ गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः ॥ मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरञ्जयन्प्रजाः ॥ ॥ ५५ ॥ राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः ॥ सूर्यवद्विसृजन् गृह्णन्प्रतप-

'अर्थात्—इस कर्म से कर्मके प्रवर्त्तक भगवान् सन्तुष्ट हों, इस के अतिरिक्त मुझे और किसी प्रकार के फल की इच्छा नहीं है ऐसा सङ्कल्प करके, मैं कर्म करता हूँ, इसप्रकार आसक्ति से रहित और सावधान होकर, प्रकृति से पर आत्मा ही सकल कर्मों का साक्षी है, ऐसा मानताथा ॥ ५१ ॥ इसकारण चक्रवर्त्तीराज्य की लक्ष्मीवाला और ग्रह में वास करनेवाला भी वह राजा पृथु, निरभिमान होकर 'जैसे सर्वत्र विचरनेवाला सूर्य कहीं आसक्त नहीं होता है तैसे वह किसीभी इन्द्रिय के भोग्य विषय में आसक्त नहींहोता था ॥ ५२ ॥ इसप्रकार तिसराजा पृथुने, आत्मज्ञान पूर्वक सकल कर्म भगवान् को समर्पण करतेहुए, अर्चिनामक अपनी स्त्री के विषैं अपनी समान गुणी पांच पुत्र उत्पन्न करे ॥ ५३ ॥ उन के नाम—विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण, और वृक यहथे, राजापृथु ने अपने एकही शरीर में जगत् की सृष्टि की रक्षा करने के निमित्त तिस २ योग्य समय में सब लोकपालोंके भिन्न २ धर्म धारण करे थे; क्योंकि—वह विष्णुरूप ही था, उस ने अपने मन की हितचिन्तन आदि वृत्तियों से और वाणी की सत्य प्रियभाषण आदि वृत्तियों से तथा शरीर के मनोहर सुन्दरस्वभाव आदि गुणों से सकल प्रजाओं को आनन्दित करके, मानों यह दूसरा सोमराज (चन्द्रमा) ही है, इसप्रकार 'राजा' +इस सार्थक नाम को धारण करा, सूर्य जिसप्रकार सर्वत्र एकसमान तपताहुआ, आठ मासपर्यन्त पृथ्वी से जलको खैंचकर, उसजल की वर्षा ऋतु मे वृष्टि करता है, तैसेही—यहराजा सकल प्रजाओं में निष्पक्षपातरूप से शिक्षारूप ताप देताहुआ, लेने के समय प्रजाओं से कररूपधन लेताथा और दुर्भिक्ष आदि के समय में उन को देताभी था, इसकारण सूर्य की समान

+ " यथा प्रल्हादनाच्चन्द्रो राजा प्रकृतिरञ्जनात्" चन्द्रमा का नाम 'चन्द्र' इसकारण हैकि—वह जगत् को अपनी शीतल किरणों से आनन्दित करता है, यही अर्थ चन्द्र शब्द का है क्योंकि—'चदि आल्हादे धातु से चन्दयति आल्हादयति इति चन्द्रः, अर्थात् जो आनन्दित करे वह चन्द्र इसप्रकार यह सार्थक नाम है इसीप्रकार राजा शब्दभी 'रञ्जयति प्रजा इति राजा, अर्थात् जो प्रजा को आनन्दित रक्खे वह राजा है, इसप्रकार प्रजाको आनन्दित रखने वाले भूपाल के लिये ही राजा शब्द सार्थक है ॥

श्रीं भुवो वसु ॥ ५६ ॥ दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः ॥ तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणां ॥ ५७ ॥ वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् ॥ समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥ ५८ ॥ धर्मराडिव शिक्षायामाश्चर्ये हिमवानिव ॥ कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा ॥५९॥ मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा ॥ अविषह्यतया देवो भगवान् भूतराडिव ॥ ६० ॥ कन्दर्प इव सौंदर्ये मनस्वी मृगराडिव ॥ वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः ॥ ६१ ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मतत्त्वे स्वयं हरिः ॥ भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ॥ ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे ॥ ६२ ॥ कीर्त्योर्ध्वगीतया पुंभिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह ॥ प्रविष्टः कर्णरंध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥ ६३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते द्वात्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ दृष्ट्वात्मानं प्रवयसमेकदा

प्रतीत होता था ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ यह राजा अग्नि की समान असह्य तेजवाला, इन्द्रकी समान जीतने में न आनेवाला, पृथ्वी की समान दूसरों का अपराध सहनेवाला, और स्वर्ग की समान मनुष्यों का मनोरथ पूर्ण करनेवालाथा ॥ ५७ ॥ वह मेघ की समान उचित समयपर प्रजाकी तृप्ति के निमित्त द्रव्य की यथेष्ट वर्षा करनेवालाथा, वह गम्भीरता में समुद्र की समान अथाह और मेरु पर्वत की समान धैर्यवान्था ॥ ५८ ॥ दुर्जनों को शिक्षा देने में यमराज की समान और आश्चर्यकारी वस्तुओं के संग्रह के विषय में हिमालय*की समानथा,कुबेर की समान बहुत से द्रव्यों का भण्डारथा और वरुण की समान उसका द्रव्य गुप्त तथा रक्षित रहताथा ॥ ५९ ॥वह राजा,शरीर के बल, इन्द्रियों की पटुता (फुर्ती) और मनकी धीरतासे वायु की समान सबका नियन्ताथा और भगवान् रुद्रकी समान युद्ध में शत्रुओं को उस का जीतना अशक्यथा ६० वह सुन्दरता में कामदेव की समान, निर्भयपने में सिंह की समान, वत्सलता में मनु की समान और मनुष्यों के स्वामीपने में ब्रह्माजी की समानथा ॥६१॥ ब्रह्मका विचार करने में बृहस्पति की समान और देह इन्द्रिय आदि को स्वाधीन रखने में स्वयं विष्णुभगवान् की समान था; गौ, गुरु, ब्राह्मण, और भगवद्भक्तों में भक्ति, लोकलज्जा, नम्रता और सुन्दरस्वभाव वाला तथा परोपकार करने में अपनी समानही अर्थात् निरुपम था ६२ ॥ जैसे दशरथकुमार रामचन्द्रजी अपनी कीर्त्ति से सत्पुरुषों के कर्णों के छिद्रोंमें प्रवेश करते थे तैसे ही यह राजा त्रिलोकी में स्थान२पर पुरुषोंके उच्चस्वर से गान,करी हुई कीर्त्ति से सब स्त्रियोंके कर्णोंके छिद्रोंमें प्रविष्ट होरहे थे॥६३॥इति च०स्क०द्वाविंश अ०समाप्त॥*॥

* हिमालय पर ऐसी एक आश्चर्यकारक वस्तु है, उसके थोड़ीसी भक्षण करलेने से छः२ महीने पर्यन्त क्षुधा या तृषा बिलकुल नहीं लगती है और शक्ति क्षीण नहीं होती है,किसी से बल बढ़ताहै, किसी का अंजन लगाने से दिव्यदृष्टि होती है ॥

वैन्य आत्मवान् ॥ आत्मना वर्द्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥ १ ॥ जगतस्त-स्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत्सतां ॥ निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान् ॥ २ ॥ आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद्रुदतीमिव ॥ प्रजासु विमनास्स्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥ ३ ॥ तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानससुसंमते ॥ आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥ ४ ॥ कन्दमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् ॥ अब्भक्षः कतिचित्पक्षान्वायुभक्षस्ततः परम् ॥ ५ ॥ ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः ॥ आकण्ठमग्नः शिशिरउदके स्थण्डिलेशयः ॥६॥ तितिक्षुर्यतवाग्दांत ऊर्ध्वरेता जितानिलः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उ-

---

मैत्रेय जी कहते हैं कि—हे विदुर जी ! जिसने अपने आप करी हुई अन्न आदि की उत्पत्ति और नगर ग्राम आदि की सकल रचना को बढ़ाया है और जिसके निमित्त इस भूतलपर आप उत्पन्न हुआ था वह प्रजापालन आदि रूप ईश्वर की आज्ञा जिसने उत्तम प्रकार से पूर्ण करी है ऐसे स्थावर जङ्गम प्राणियों की जीविका को चलानेवाले प्रजापालक, साधुओं के धर्मकी रक्षा करनेवाले और इन्द्रियों को वश में करनेवाले तिस वेनके पुत्र राजा पृथु ने एक समय अपनी वृद्ध अवस्था आई हुई देखकर तपस्या करने को वन में जानेका निश्चय करा ॥ १ ॥ २ ॥ तब अपने विरह से मानो रुदन करतीहुई, कन्या करके मानी हुई पृथ्वी अपने पुत्रों को सौंप कर उस समय सकल प्रजा के खिन्न होतेहुए वह राजा इकला ही स्त्री सहित तपोवन में को चलागया॥३॥वह राजा पहिले नगर में रहते समय अपने भूमण्डल को जीतने के कार्य में जैसे बड़ा उद्योग करता रहताथा तैसे ही वन में भी, जिसके नियम विघ्नों से कभी खण्डित नहीं होते हैं ऐसा होकर वानप्रस्थ आश्रम के पुरुषों करके उत्तम माने हुए, इन्द्रियों को सुखाने वाले तप के करने में प्रवृत्त हुआ ॥४॥ वह राजा कितने ही दिनों पर्यन्त कन्द, मूल और फल का आहार करके रहा, तदनन्तर कुछ दिनों सूखे पत्ते खाकर रहा, फिर थोड़े से पक्षपर्यन्त केवल जलपान मात्र करके ही रहा, तदनन्तर वह अपने आसन परही बैठकर वायुका भक्षण करके रहा॥ ५ ॥ तिस प्रभावशाली राजा ने, ग्रीष्म ऋतु (गरमी के दिनों) में चारों दिशा में चार स्थानपर अग्नि बाल कर और मस्तकपर सूर्य का ताप लेकर इस प्रकार पञ्चाग्नि को तपा; वर्षा ऋतु में शरीर के ऊपर वर्षा की धारा सहना, शिशिर ऋतु में कण्ठपर्यन्त जल में बैठकर रहना और प्रतिदिन भूमि पर शयन करना इस प्रकार तपस्या करी ॥ ६ ॥ भूँख प्यास आदि दुःखों को सहनेवाले, मौनव्रतको धारण करनेवाले, इन्द्रियोंको जीतनेवाले, समीप में स्त्री के होने हुए भी मैथुन कर्म को त्यागनेवाले और प्राण वायु को जीतनेवाले राजा पृथुने, परमात्मा कृष्ण की आराधना हो, केवल इतनी ही इच्छा रखकर उत्तम

तमम् ॥ ७ ॥ तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्मामलाशयः ॥ प्राणायामैः सन्निरु-
द्धषड्वर्गश्छिन्नबन्धनः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारो भगवान्यदाहाध्यात्मिकं परम् ॥
योगं तेनैव पुरुषमभजत्पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥ भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया
यततः सदा ॥ भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाऽभवत् ॥ १० ॥ तस्यानया
भगवतः परिकर्मशुद्धसत्वात्मनस्तदनुसंस्मरणानुपूर्त्या ॥ ज्ञानं विरक्तिमद्भून्नि-
शितेन येन चिच्छेद संशयपदं निजजीवकोशम् ॥ ११ ॥ छिन्नान्यधीरधिग-
तात्मगतिर्निरीहस्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ॥ तावन्न योगगतिभिर्य-
तिरप्रमत्तो यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥ एवं स वीरप्रवरः
संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥ १३ ॥
संपीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयन् शनैः ॥ नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृ-

---

तपस्या करी ॥ ७ ॥ क्रम से परिपक्व हुए तिस तप के प्रभाव से जिसके कर्म नष्ट होकर अन्तःकरण निर्मल होगया है और जिस ने प्राणायाम करके पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और मन इस षड्वर्ग को रोककर वशमें करलियाहै इसकारणही जिसका वासनारूप बन्धन टूटगया है ऐसे तिस पुरुषों में श्रेष्ठ राजा पृथु से, भगवान् सनत्कुमार ने आत्मप्राप्तिका साधनरूप जो भक्तियोग कहाथा उसके द्वारा पुरुषोत्तम भगवान् का आराधन करा ॥८॥९॥ भगवान् को सकल कर्म समर्पण करके आराधना करने में तत्पर, शुद्धचित्त और विश्वासके साथ निरन्तर भगवान् की सेवा करनेवाले तिस राजा पृथु की ब्रह्मरूप भगवान्के विषें एकनिष्ठ भक्ति उत्पन्न हुई ॥ १०॥ तदनन्तर भगवान् की उपासना से जिसका अन्तःकरण शुद्ध सत्वगुणी होगया है ऐसे तिस राजा पृथु को निरन्तर भगवान् का स्मरण करने से बढ़ीहुई भक्ति करके वैराग्यसहित ज्ञान उत्पन्न हुआ;जिस तीक्ष्ण ज्ञानके प्रभावसे असम्भावना--विपरीतभावना आदि संशय की आश्रय, जीव के स्वरूप को ढकनेवाली हृदय की ग्रन्थि का उसने छेदन करडाला ॥ ११ ॥ फिर जिस की भेदबुद्धि दूर होगईहै और जिसने आत्मतत्त्व को जानलिया है ऐसे अणिमा आदि सिद्धियों की भी इच्छा न करने वाले तिस राजा पृथु ने, जिस ज्ञान के द्वारा हृयदकी ग्रन्थिका छेदन कराथा तिस ज्ञान को भी (उसके निमित्त उद्योग करना भी) त्याग दिया. सो यही योग्यथा, क्योंकि–आत्मप्राप्ति के निमित्त यत्न करनेवाला पुरुष, जबतक श्रीकृष्णभगवान् की कथा में प्रीति नहीं करता है तबतक ही वह अणिमा आदि योगसिद्धियों के द्वारा विषयों में आसक्त रहता है ॥ १२ ॥ इसप्रकार वीरों में श्रेष्ठ तिस राजा पृथु ने अपना मन परमात्मा के विषें स्थिर करके पूर्ण ब्रह्मता की प्राप्ति होनेपर देह के त्यागने के योग्यकाल में अपने शरीर को त्यागदिया ॥ १३॥ अपने चरण की एड़ी से गुदाके द्वारको दाबकर मूलाधार

दुरःकण्ठशीर्षणि ॥ ४१ ॥ उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निस्पृहः ॥ वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥ १५ ॥ खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः ॥ क्षितिमम्भसि तत्तेजस्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥ १६ ॥ इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् ॥ भूतादिनाऽमून्युत्क्षिप्य महत्यात्मनि संदधे ॥ १७ ॥ तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् ॥ तं चानुशयमात्मस्थमसावनुशयी पुमान् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात्प्रभुः ॥ १८ ॥ अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनं ॥ सुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥ १९ ॥ अतीव भर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया शुश्रूषया चार्षदेहयात्रया ॥ नावि-

से प्राणवायु को धीरे२ ऊपर को चढ़ातेहुए नाभि देश में, तहांसे क्रमशः हृदय, उर, कण्ठ और भ्रूमध्य स्थान में स्थापित करा ॥ १४ ॥ फिर उस वायु को ऊपर चढ़ाकर ब्रह्मरन्ध्र में स्थापन करा, और संसार के विषय भोगों की इच्छा से रहित होकर तिस राजा पृथु ने, उस वायु को महाभूतरूप वायु के विषें एकतारूप से लीन करके शरीर में के कठिन अंश का पृथ्वी में और शरीर में के तेज का तेज में लय किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर इन्द्रियों के छिद्रों में के आकाश का महाकाश में लय करके शरीर में के रुधिर आदि द्रव (वहनेवाले) अंशों का जल में लय किया; इस प्रकार देहका लय करके अद्वितीय आत्मस्वरूप की प्राप्ति होने के निमित्त महाभूतों का भी लय किया,—पृथिवी का जल में, उसका तेज में, तेज का वायु में और वायु का आकाश में लय करके ॥ १६ ॥ इन्द्रियों में देवता सहित मन का लय किया, तदनन्तर कर्णेन्द्रिय का आकाश के सूक्ष्मभूत शब्द में त्वचा का स्पर्श में इत्यादि उत्पत्तिके क्रम से लय करके अहङ्कार के द्वारा उन को खैंचकर अर्थात् शेष रहे हुए आकाश का भी तिन सूक्ष्मभूतरूप इन्द्रियों के साथ अहङ्कार में लय करके तिस अहङ्कार का महत्तत्त्व में लय किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर जिस में सकल गुणों की और उन गुणों के कार्य्यों की स्थिति है तिस महत्तत्त्व का प्रकृति के कार्यरूप जीवोपाधिक लिङ्गशरीर में लय किया; तदनन्तर ज्ञान और वैराग्य के प्रभाव से आत्मस्वरूप में स्थिर हुए तिस परम समर्थ राजा पृथु ने, अपने में का वह मायारूप उपाधि भी त्यागदिया अर्थात् पहिले उपाधि होने के कारण जो पृथु नामक जीवथा, वह अब ब्रह्मरूप होगया ॥ १८ तिस राजा पृथु की स्त्री जो अर्चि नामवाली महारानी थी, वह पति के साथ वन को गई थी, वह इतनी सुकुमार थी कि—कभी चरणों से भूमि के स्पर्श करने को भी नहीं सहसक्ती थी ॥ १९ ॥ वह, पति के जो भूतल पर शयन करना आदि व्रत और भगवत्सेवन आदि धर्म में अपनी स्थिति रखकर पति की सेवा से और कन्द मूलफल आदि के द्वारा ऋषियों की समान शरीर के निर्वाह से अति दुर्बल होगई तब

दंतार्ति परिकर्शिताऽपि सा श्रेयस्करस्पर्शनमाननिर्वृतिः॥२०॥देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः॥ आलक्ष्य किंचिच्च विलप्य सा सती चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥२१॥ विधाय कृत्यं ह्रदिनीजलाप्लुता दत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः ॥ नत्वा दिविस्थांस्त्रिदशांस्त्रिः परीत्य विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥ २२ ॥ विलोक्यानुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् । तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥ २३ ॥ कुर्वत्यः कुसुमासारं तस्मिन्मंदरसानुनि ॥ नदत्स्वमरतूर्येषु गृणंति स्म परस्परम् ॥ २४ ॥ देव्य ऊचुः ॥ अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजां पतिं ॥ सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥ २५ ॥ सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती ॥ पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥ २६ ॥ तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां

भी उस ने कुछ दुःख नहीं माना , क्योंकि—वह अपने प्रिय पति के हाथ का स्पर्श होने में ही अपने को सम्मानित और आनन्दित मानतीथी ॥ २० ॥ तिस अर्चि ने, पृथ्वी का पालन करनेवाले और अपने पति राजा पृथु के शरीर में के चेतना आदि सकल धर्मों को नष्ट हुआ देखकर उनके वियोग के दुःख से कुछ देरी पर्यन्त विलाप किया और फिर तिस पतिव्रता ने, पति के साथ गमन करने के निमित्त पर्वत में एक स्थान पर काष्ठों की चिता वनाई और उसके ऊपर पति के शरीरको स्थापन करा॥ २१ ॥तदनन्तर उसने नदीके जलमें स्नान करके उस समय सौभाग्य धारण आदि उचित कार्य करके,पृथिवी को दुहना आदि और भगवान्‌की आराधना आदि उदार कर्म करनेवाले अपने पति(पृथु)को जलकी अंजुलि दी और अन्तरिक्ष में रहनेवाले देवताओंको वन्दना करके तथा चिता में लगाई हुई अग्नि की तीन प्रदक्षिणाकरके अपने पतिके चरणोंका ध्यान करतीहुई अग्निमे प्रवेश करगई॥२२॥तववीरों में श्रेष्ठ पृथुनामक अपने पति के साथ मरण को प्राप्त होनेवाली उस सती को देखकर, वरदान देने की शक्तिवाली सहस्रों देवाङ्गना देवताओं के साथ उस की प्रशंसा करनेलगीं ॥ २३ ॥ उन दोनों स्त्रीपुरुषों के वैकुण्ठ को पधारने के समय मङ्गल के निमित्त देवताओं के बाजे वजनेलगे, तव उस मन्दराचल के भाग में पुष्पों की वर्षा करनेवाली देवाङ्गना परस्पर कहनेलगीं ॥ २४ ॥ देवाङ्गनाओं ने कहा—अरी देखोतो ! यह स्त्री (अर्चि) परम धन्य है, क्योंकि—जैसे लक्ष्मी वधू यज्ञपति विष्णुभगवान् की आराधना करती है तैसे इसने अपने राजाधिराज पति की सेवाकरी है ॥ २५ ॥ यह वह अर्चि नामक पतिव्रता अपने दुष्कर कर्मों के प्रभाव से हम को नीचे करके अपने पृथुनामक पति के साथ उच्चपदको जारही है, इस में कुछ सन्देह नहीं है देखलो ॥ २६ ॥ क्षणभङ्गुर आयुवालेभी

भगवत्पदम् ॥ भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत ॥ २७ ॥ स वं-चितो वतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि ॥ लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु वि-षज्जते ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्तुवतीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः ॥ यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताश्रयः ॥ २९ ॥ इत्थंभूतानुभावोसौ पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ कीर्तितं तस्य चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥ ३० ॥ य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयाऽवहितः पठेत् ॥ श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमि-यात् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ॥ वैश्यः पठन्वि-ट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥ ३२ ॥ त्रिःकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवादृता ॥ अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥ ३३ ॥ अस्प-ष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥ इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममङ्गल्यनि-वारणम् ॥ ३४ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ॥ धर्मार्थकाम-मोक्षाणां सम्यक्सिद्धिमभीप्सुभिः ॥ श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परम् ॥

जो पुरुष, इस भूतलपर भगवान् की भी प्राप्ति करादेनेवाले ज्ञान को प्राप्त करते हैं उन पुरुषों को दूसरा कौन पदार्थ दुर्लभहै ! ॥ २७ ॥ इसकारण जन्मान्तर में करेहुए तपस्या आदि कष्टसे, इसजन्ममें भूतलपर मोक्षका साधन मनुष्यजन्म प्राप्त होनेपर जो प्राणी विषयोंमें आसक्तहोता है निःसन्देह उस आत्मद्रोहीको भगवान्की मायाने फँसारक्खाहै ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! इसप्रकार देवाङ्गनाओंके स्तुति करतेहुए भगवान् का आश्रय करनेवाला और ज्ञानियों में श्रेष्ठ राजा पृथु जिस लोक को प्राप्तहुआ, उस पति के लोक को ही उस की स्त्री अर्चिभी गई ॥ २९ ॥ हे विदुरजी ! ऐसा यह भगवद्भक्तों में मुख्य राजा पृथु इसप्रकारका पराक्रमी था, तिस परमपुण्य कीर्त्तिवाले राजाका चरित्र मैंने तुमसे कहा ३० जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस परमपुण्यकारी आख्यान को श्रद्धा के साथ पढ़ेगा दूसरों को सुनावेगा वा आप सुनेगा वह पृथुकी पदवी (वैकुण्ठ) को प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ इस को पढ़नेवाला ब्राह्मण होगा तो वह ब्रह्मतेजस्वी होगा, राजा पृथ्वीपति होगा, वैश्य अपनी जाति में श्रेष्ठ होगा और शूद्र सुनेगा तो बड़ी योग्यता पावेगा ॥ ३२ ॥ पुरुष हो वा स्त्री हो जो आदर के साथ इस आख्यान को तीनवार सुनेगा वह पुत्रहीन होगा तो सत्पुत्र पावेगा और निर्धनी होगा तो महाधनी होजायगा ॥ ३३ ॥ अप्रकट कीर्त्तिवाला होगा तो उसका बड़ायश फैलेगा, मूर्ख पण्डित होगा, यह आख्यान श्रवण आदि करनेवाले पुरुषोंका कल्याण कारी और दुःखदायक पातकों को दूर करनेवाला है ॥ ३४ ॥ तथा धनकी प्राप्ति करानेवाला, यश को बढ़ानेवाला, आयुको बढ़ानेवाला, स्वर्ग देनेवाला, और कलियुग के पापों का नाश क-रनेवाला है, इसकारण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की उत्तमप्रकार से सिद्धि होने की चाहना करनेवाले मनुष्य श्रद्धा के साथ इसको सुनें, यहही धर्म आदि चारप्रकार के पुरुषार्थों की

॥ ३५ ॥ विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदनुयाति यान् ॥ बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥ ३६ ॥ मुक्तान्यसंगो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् ॥ वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥ ३७॥ वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकम् ॥ अस्मिन्कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ अ-अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्पृथुचरितं प्रथयन्विमुक्तसंगः॥ भगवति भवसिंधुपोतपादे स च निपुणां लभते गतिं मनुष्यः ॥३९॥ इति श्री भा०म० चतुर्थस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३ ॥छ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विजिताश्वोऽधिराजासीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः ॥ यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः॥१॥ हर्यक्षायादिशं प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणां ॥ प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ॥२॥ अंतर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वांऽतर्धानसंज्ञितः ॥ अपत्यत्रयमाधत्त शिखण्डिन्यां सुसंमतम्

सिद्धि का परमकारण है ॥ ३५ ॥ विजयपानेके निमित्त जाताहुआ राजा, इस आख्यानको सुनकर जिस देशपर चढ़ाई करेगा, उस देश के राजे 'जैसे पहिले राजा पृथु को कर देते थे तैसेही' कर देंगे ॥ ३६ ॥ यद्यपि इस चरित्र का श्रवण आदि करनेवाले पुरुषों को बहुतसे फल मिलते हैं तथापि वह सब फल तुच्छ हैं, ऐसा समझ, उन सकल कर्मों के फलों की इच्छा को त्यागकर भगवान् की निष्काम भक्ति करनेवाला पुरुप, पृथु राजा के इस पवित्र चरित्रको कहनेवाला मिले तो उससे सुने,श्रोता मिले तो उसको सुनावे और यदि दोनों न मिलें तो आपही पढ़े॥३७॥हे विदुरजी ! भगवान् के माहात्म्य को सूचित करनेवाला यह राजा पृथु का चरित्र मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णन करा, श्रवण आदि करके इस का चिन्तवन करनेवाला पुरुप, पृथु की वैकुण्ठप्राप्तिरूप गति को पावेगा ॥ ३८ ॥ जो फल की इच्छा न करनेवाला मनुष्य, इस पृथु राजा के चरित्र का प्रतिदिन श्रवण वा कीर्त्तन करेगा वह मनुष्य, जिन का चरण संसारसमुद्र को तरने का साधन नौकारूप है तिन भगवान् के विषें संसार को दूर करने में चतुर प्रीति को पाता है ॥ ३९ ॥ इति चतुर्थस्कन्ध में त्रयोविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि–हे विदुरजी ! पृथु राजा के अनन्तर उन का पुत्र विजिताश्व नामक महायशस्वी सार्वभौम राजा हुआ, वह भ्राताओं के ऊपर प्रेम करताथा, उसने अपने छोटे चारों भ्राताओं को चारों दिशाओं का राज्य देदिया ॥ १ ॥ तिस समर्थ राजा ने उन में से हर्यक्ष नामक भ्राता को पूर्व दिशा का राज्य दिया, धूम्रकेश को दक्षिणादिशा का राज्य दिया, वृक नामक भ्राताको पश्चिम दिशा का, और द्रविणस् नामक भ्राताको चौथी उत्तरादिशा का राज्यदिया ॥ २ ॥ उसने राजा पृथु के अश्वमेध में इन्द्रसे घोड़े को जीताथा इसकारण उसका 'विजिताश्व' नाम हुआथा, तथा उस ने उस अश्वविजय के समय भयभीत हुए इन्द्र का वध नहीं किया इसकारण उसको प्रसन्न

॥ ३ ॥ पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा ॥ वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ॥ ४ ॥ अन्तर्धानो नभस्वत्यां हविर्धानमविन्दत ॥ य इन्द्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥ ५ ॥ राज्ञां वृत्तिं करादानदण्डशुल्कादि दारुणाम् ॥ मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥ ६ ॥ तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् ॥ यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥ ७ ॥ हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट् सुतान् ॥ बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतम् ॥ ८ ॥ बर्हिषत्सु महाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः ॥ क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरूद्वह ॥ ९ ॥ यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः ॥ प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलं ॥ १० ॥ सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिं ॥ यां वीक्ष्य चारुसर्वांगीं

हुए अन्तर्धान गतिरूप (गुप्त होने की शक्ति) वरदान पाया इसकारण अन्तर्धान नाम से प्रसिद्ध हुआ, उस अन्तर्धान के सिखण्डिनी नामक स्त्री के विषैं सबको प्रिय लगनेवाले तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ वह पावक, पवमान और शुचि नामवाले थे, वह तीनों पुत्र पूर्व के अग्नि (दक्षिणाग्नि–गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि) थे और वशिष्ठजी के शाप से मनुष्यों में उत्पन्न हुए थे तथा फिर योगमार्ग के प्रभाव से शाप से छूटकर अपने पूर्व के अग्निरूप को प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ तदनन्तर जिसने अश्व को हरनेवाला यह इन्द्र है, ऐसा जानकर भी वध नहीं किया उसही अन्तर्धान राजा के (विजिताश्वके) दूसरी नभस्वती नामक स्त्री के विषैं हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ उस ने, प्रजाओं से करलेना, दण्ड का धन लेना, इत्यादि राजाओं का वर्त्ताव दूसरों को पीड़ा देने वाला है, ऐसा जानकर, बहुत दिनों में पूर्ण होनेवाले यज्ञ करने के निमित्त से उस वर्त्ताव को त्याग दिया ॥ ६ ॥ और उस सत्र में भी द्रव्य, देश, काल, कर्म, देवता आदि में परमात्म दृष्टि रखकर शुद्ध पूर्ण परमात्माका पूजन करते हुए पुण्यकारक समाधि के द्वारा भगवान्के वैकुण्ठलोकको प्राप्त हुआ ७ तिस हविर्धानके हविर्धानी नामकस्त्रीके विषैं बर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत यह छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ हे विदुरजी ! उनमें हविर्धान का पहिला पुत्र जो बर्हिषद् वह प्रजाओंका पालन करने वाला, यज्ञ आदि अनुष्ठान रूप कर्मकाण्डमें और प्राणायाम आदि योगाभ्यास में पारङ्गत और परमपुण्यात्मा था ॥ ९ ॥ तिस बर्हिषद् राजा ने, ' जहां एक यज्ञ किया उसके समीप में ही दूसरा यज्ञ किया फिर उसके समीप मे ही तीसरा यज्ञ किया, इस प्रकार ' यज्ञ करने का क्रम चलाया, उस समय उसके पूर्व को अग्रभाग करके फैलाए हुए कुशों से ढका हुआ यह सकल ही भूमण्डल यज्ञ मण्डप होगया इस कारण उन का नाम प्राचीनबर्हि प्रसिद्ध हुआ है ॥ १० ॥ उसने देवाधिदेव (ब्रह्माजी) के कहने से समुद्र की शतद्रुति नामक कन्या के साथ विवाह करा,

किशोरीं सुष्द्वलंकृताम् ॥ परिक्रमंतीमुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव ॥ ११ ॥ विबुधासुरगंधर्वमुनिसिद्धनरोरगाः ॥ त्रिजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयंत्यैव नूपुरैः ॥ १२ ॥ प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन् ॥ तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥ १३ ॥ पित्रादिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् ॥ दशवर्षसहस्राणि तपसार्चंस्तपस्पतिं ॥ १४ ॥ यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता ॥ तद्ध्यायंतो जपंतश्च पूजयंतश्च संयताः ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ प्रचेतसां गिरित्रेण यथासीत्पथि सङ्गमः ॥ यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन्व-

उस विवाह के समय वह शतद्रुति किशोर अवस्थावाली (ग्यारह वा बारह वर्ष की) थी और उसके सकल अङ्ग सुन्दर थे तथा उन अङ्गों पर वह उत्तम आभूषण पहिने हुए थी वह विवाह के समय अग्नि की प्रदक्षिणा करने लगी तब उसको देखकर अग्नि ने भी कामातुर होकर 'जैसे पहिले शुकी * (सप्तर्षियों की स्त्री) की इच्छा करी थी तैसे ही' इसकी भी इच्छा करी ॥ ११ ॥ तथा तिस विवाहिता शतद्रुति ने चरणों से चलते समय में चरणों में के नूपुरों की मञ्जुल ध्वनि से ही सकल दिशाओं में के देवता, असुर, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध, मनुष्य और सर्प इन सकल प्राणियों को जीतलिया (मोहित करलिया) ॥ १२ ॥ तिस शतद्रुति स्त्री के विषैं प्राचीनवर्हि राजा के प्रचेतस् नामवाले दश पुत्र उत्पन्न हुए, उन दशों के नाम उनके आचार के अनुसार थे और वह सब ही भगवान् की आराधना रूप धर्म में पारगामी थे ॥ १३ ॥ फिर पिता के (प्राचीनवर्हि राजा के) प्रजा की सृष्टि करने के निमित्त आज्ञा करे हुए वह प्रचेतस् पुत्र, भगवान् के अनुग्रह के विना उत्तम सन्तान नहीं होगी ऐसा समझकर भगवान् की प्रसन्नता के निमित्त तप करने को समुद्र में (अपनी कमर प्रमाण जलमें) घुसे, और तहां उन्होंने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त तप करके तप का फल देनेवाले भगवान् की आराधना करी ॥ १४ ॥ जाते समय मार्ग में दीखेहुए और प्रसन्नहुए श्रीमहादेवजी ने, उन के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त जो भगवान् की आराधना का साधन कहा था, उस के द्वारा भगवान् का ध्यान, मन्त्रजप और पूजन आदि करनेवाले उन जितेन्द्रिय प्रचेताओं ने श्रीनारायणकी आराधना करी ॥ १५ ॥ विदुरजी कहते हैं—हे ब्रह्मज्ञानी मैत्रेय ऋषे ! प्रचेताओं का शि

* पूर्व कालमें सप्त ऋषियों के यज्ञ में उनकी भार्याओं को देखनेको अग्नि की कामवासना हुई, यह जानकर अग्नि की स्वाहा नामक भार्या ने आपही ऋषियों की पत्नी का स्वरूप धारकर अग्नि के साथ क्रीड़ा करी, इस प्रकार पत्नियों को अन्तर्निवास में न जाने दिया तदनन्तर उसने शुकी (तोती) का रूप धारकर वह अग्नि का वीर्य एक कुण्ड के ऊपर में स्थापित किया और आप अपने स्वाहाकार में अग्नि के समीप आई, ऐसी कथा है. उसने सप्तर्षियों की भार्या और शुकी का रूप धारा था अतः यह स्वाहा ही शुकी थी ।

दार्थवत् ॥ १६ ॥ संगमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणां ॥ दुर्लभो मुनयो दध्युरसंगाद्यमभीप्सितं ॥ १७ ॥ आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे ॥ शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान् भवः ॥१८॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसादाय साधवः ॥ दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्यादृतचेतसः॥१९॥समुद्रमुप विस्तीर्णमपश्यन्सुमहत्सरः ॥ महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ॥ २० ॥ नीलरक्तोत्पलांभोजकल्हारेंदीवराकरम् ॥ हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजितम् ॥ २१ ॥ मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलताऽङ्घ्रिपम् ॥ पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ॥ २२ ॥ तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् ॥ विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदङ्गपणवाद्यनु ॥ २३ ॥ तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रामन्तं सहानुगम् ॥ उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥ २४ ॥

वजीके साथ समागम किसप्रकार हुआ था ? वह और उन के ऊपर प्रसन्नहुए शिवजी ने उन से भगवान् की आराधना का, तत्त्वविचार से भराहुआ जो साधन कहाथा वह मुझ से कहिये ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मर्षि सकल सङ्गों को त्यागकर एकान्त में वास करनेवाले, मुनि जिन प्रिय शिवजीकाही केवल ध्यान करते थे, उन शिवजी के साथ समागम होना इस जगत् में वास्तव में प्राणियों को दुर्लभ है ॥ १७ ॥ हेभगवन् ! जो रुद्रभगवान् आत्मस्वरूप में रमण करतेहुएभी लोकरचना की रक्षा करने के निमित्त अपनी तमोगुणमयी भयङ्करशक्ति से युक्त होकर लोकों में विचरते हैं ॥ १८ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हेविदुरजी ! तिन सदाचारसे रहनेवाले प्रचेताओं ने पिता का वाक्य बहुत सन्मान के साथ स्वीकार करा और उसको सिद्ध करने के निमित्त,भगवदाराधन करने को सदाचार चित्त होकर पश्चिमदिशा की ओरको चलेगए॥ १९ ॥ चलते चलते, समुद्र के समीप समुद्रसे कुछएक छोटे एक सरोवर को उन्होंने देखा, उसका जल सत्पुरुषों के अन्तःकरण की समान निर्मल था और उसजलमें रहनेवाले मत्स्य कच्छप आदि प्राणी शान्त थे ॥ २० ॥ तथा नीलकमल, लालकमल, चन्द्रमा के उदय में खिलनेवाले कमल, सूर्य के उदय में खिलनेवाले कमल और सन्ध्या के समय खिलनेवाले कमलों का उत्पत्तिस्थान था, तथा-हंस सारस, चकवे आदि पक्षियों के शब्द से गुञ्जार रहाथा ॥ २१ ॥ तथा मतवाले भ्रमरों के सुरीले गान से मानों रोमाञ्चित हुए कलियों से भरे लता वृक्ष तिस में थे और कमलों के मध्यभाग के पराग को दशोंदिशाओं में लेजाने वाले वायु से तहां एक प्रकार का उत्सव सा प्रतीत होता था॥२२॥तहां मृदङ्ग और झांझन आदि बाजोंकी तालके अनुसार दिव्यरीति से होतेहुए गन्धर्वोंके मनोहर गानको सुनकर वह राजपुत्र विस्मय में होगए॥२३॥सो इतने हीमें, उस सरोवरमेंसे बाहरको निकलनेवाले नन्दीश्वर आदि सेवकोंसे युक्त, जिन के यश

तप्तहेमनिकायाभं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् ॥ प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥ २५ ॥ स तान्प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः ॥ धर्मज्ञान् शीलसंपन्नान्प्रीतः प्रीतानुवाचह ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् ॥ अनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम् ॥ २७ ॥ यः परं रंहसः साक्षात्त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात् ॥ भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ॥ २८ ॥ स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्विरिंचतामेति ततः परं हि माम् ॥ अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं पदं यथाऽहं विबुधाः कलात्यये ॥२९॥ अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान् यथा ॥ न मद्भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥ ३० ॥ इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परं ॥ निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यनुक्रोशहृ-

को गन्धर्व गा रहेहैं, जिन के शरीरकी कान्ति तपाएहुए सुवर्ण की समान है ऐसे नील कण्ठ, त्रिनेत्र, भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करने को उद्यत उन देवाधिदेव शिवजी को देखकर जिन को कौतुक प्रतीत होरहा है ऐसे उन राजपुत्रोंने उनको वन्दना करी ॥२४॥२५॥ शरणागतों की पीड़ा दूर करनेवाले, धर्म प्रेमी वह भगवान् शिवजी, सन्तुष्ट होकर; उन धर्मज्ञ, शीलवान् अपने दर्शन से आनन्दित हुए प्रचेताओं से कहनेलगे ॥ २६ ॥ श्री-रुद्र ने कहा—तुम प्राचीनवर्हि राजाके पुत्र हो यह मुझे विदितहै और तुम्हारे मनमें भगवान् की आराधना करने की इच्छा है, सो भी मैं जानता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त ही मैंने तुम्हें दर्शन दिया है ॥ २७ ॥ क्योंकि—जोप्राणी सूक्ष्म और त्रिगुणात्मक प्रधान से और जीवसंज्ञक पुरुष से पर साक्षात् वासुदेव भगवान् की शरण में गया है वह मुझे प्रिय है ॥ २८ ॥ क्योंकि—अपने धर्म का उत्तमप्रकार से आचरण करनेवाला पुरुष, सौ जन्मों में ब्रह्माजी के स्वरूप में लीन होता है, उससे भी अधिक पुण्यवान् होय तो मेरे स्वरूप में मिलजाता है और जैसे मैं (रुद्र) तथा अन्य देवता भी अपना २ अधिकार समाप्त होनेपर लिङ्गशरीर का भङ्ग होते ही भगवत्स्वरूपमें मिलजाते हैं तैसे ही भगवान् के भक्त पुरुष, देह के अन्त में सनातन विष्णुभगवान् के पद को प्राप्त होते हैं ॥ २९॥ सो जैसे भगवान् मुझे प्रिय हैं वैसे ही भगवद्भक्त होनेके कारण तुमभी मुझे प्रिय हो, भगवान के भक्तों को भी मुझ से दूसरा कोई कभी प्रिय नहीं होता है ॥ ३० ॥ इसकारण जप करने के योग्य, पवित्र, मङ्गलकारी, श्रेष्ठ और भगवत्स्वरूप की प्राप्ति करादेनेवाले इस स्तोत्र को जो कि—मैं तुम से कहता हूँ सुनो और एकान्त स्थल में उसका जप करो ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! इसप्रकार जिन का अन्तः

दयो भगवानीह तान् शिवः ॥ बद्धाञ्जलीन् राजपुत्रान्नारायणपरो वचः ॥ ३२ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ जितं ते आत्मविद्धुर्यस्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे ॥ भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥ ३३ ॥ नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने ॥ वासुदेवाय शांताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥ ३४ ॥ सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायांतकाय च ॥ नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायांतरात्मने ॥ ३५ ॥ नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेंद्रियात्मने ॥ नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥ ॥ ३६ ॥ स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः ॥ नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥ ३७ ॥ नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ॥ तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥ ३८ ॥ सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय

कारण दयालु है, और श्रीनारायणही जिनके मुख्य देवता हैं ऐसे वह भगवान् शिवजी, हाथ जोड़कर अतिनम्रता से खड़ेहुए उन राजपुत्रों से कहने लगे ॥ ३२ ॥ श्रीरुद्र भगवान् ने कहा कि—हे देव ! आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ जो भगवद्भक्त, उनको परमानन्दकी प्राप्ति होने के निमित्त ही तुमने अपना उत्कर्ष प्रकट करा है, इसकारण मुझे भी निजानन्द की प्राप्ति हो; तुम नित्य परमानन्दरूप से ही स्थित हो, इसकारण सर्वरूप तुम परमात्मा को नमस्कार हो ॥ ३३ ॥ तथा जो तुम कमलनाभ भगवान्, आकाश आदि पञ्चमहाभूत, उनके शब्दादि सूक्ष्मरूप और इन्द्रियों के आत्मा, शान्त, निर्विकार तथा स्वयम्प्रकाश हो, तिन चित्त के अधिष्ठाता वासुदेव भगवान् को नमस्कार हो ॥ ३४ ॥ सूक्ष्म (देखने में न आनेवाला), अविनाशी और विश्व का संहार करनेवाले, अहङ्कार के अधिष्ठाता तुम सङ्कर्षण को नमस्कार हो, जिनसे विश्व को बोध होता है ऐसे बुद्धि के अधिष्ठाता तुम प्रद्युम्न को नमस्कार हो ॥ ३५ ॥ विषयों को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंके राजा, और मन के अधिष्ठाता तुम अनिरुद्ध को वारम्वार नमस्कार हो, अपने तेज से जगत् को व्याप्त करनेवाले, वृद्धिक्षय रहित सूर्यरूप आपको नमस्कार हो ॥ ३६ ॥ तथा स्वर्ग और मोक्ष के द्वार निरन्तर पवित्र अन्तःकरण में रहनेवाले, कर्म का विस्तार करनेवाले होने के कारण, होता अध्वर्यु आदि चार ऋत्विजों से सिद्ध होनेवाले कर्म के साधन और सुवर्णरूप वीर्य से युक्त ऐसे अग्निरूप आप को नमस्कार हो ॥ ३७ ॥ तथा पितर और देवताओं के अन्नरूप एवं सोमस्वरूप आप को नमस्कार हो, इस प्रकार सूर्य अग्नि और सोमरूपसे तीनों वेदों के अधिपति आप श्रीहरि को नमस्कार हो, सकल जीवों को तृप्ति देनेवाले सर्वरसरूप (जलस्वरूप) तुम को नमस्कार हो ॥ ३८ ॥ सकल प्राणियों के देहरूप, पृथिवीरूप और विराट्रूप आप को नमस्कार हो, मन की शक्ति, इन्द्रियों की शक्ति और देह की शक्ति जिसके धर्म हैं ऐसे त्रिलोकी का पालन करनेवाले वायुरूप

स्थवीयसे ॥ नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलात्मने ॥ ३९ ॥ अर्थलिंगाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने ॥ नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ ॥ ४० ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ॥ नमो धर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥ ४१ ॥ नमस्ते आशिषामीश मनवे कारकात्मने ॥ नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥ ४२ ॥ शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने ॥ चेतआकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥ ॥ ४३ ॥ दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ॥ रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणांजनम् ॥ ४४ ॥ स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौंदर्यसंग्रहम् ॥ चार्वायतचतुर्बाहु सुजातरुचिराननम् ॥ ४५ ॥ पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रुवनासिकम् ॥ सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥ ४६ ॥ प्रीतिप्रहसितापांगमलकैरुपशोभितम् ॥ लसत्पंकजकिंजल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥ ४७ ॥ स्फुर-

आप को नमस्कार हो ॥ ३९ ॥ शब्द गुण के द्वारा लोकों में के सकल पदार्थोंका ज्ञान करानेवाले, स्थान देनेवाले होने के कारण सबके भीतर और बाहरका व्यवहार करनेवाले आकाशरूप आप भगवान् को नमस्कार हो; पुण्य के द्वारा प्राप्त होनेवाले और प्रकाशमय स्वर्ग-वैकुण्ठ आदि लोकरूप आप को नमस्कार हो ॥ ४० ॥ पितृलोक को पहुँचाने वाले प्रवृत्त कर्मरूप; देवलोक को पहुँचानेवाले निवृत्त कर्मरूप और अधर्मका फल देने-वाले दुःखदायक मृत्युरूप आप को नमस्कार हो ॥ ४१ ॥ हे ईश्वर ! इच्छित फलों के देनेवाले, सर्वज्ञ, पुराणपुरुष, सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र के अधिपति; अकुण्ठित बुद्धि वाले, परमधर्मरूप आप कृष्ण को नमस्कार हो ॥ ४२ ॥ कर्त्ता, करण और कर्म इन तीन शक्तियों से युक्त, अहङ्काररूप आप रुद्र को नमस्कार हो और जिस से वाणी की 'परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन रूपों से' अनेक प्रकार की उत्पत्ति होती है और जो ज्ञान क्रिया शक्तिरूप हैं ऐसे ब्रह्मस्वरूप आप को नमस्कार हो ॥ ४३ ॥ हेभगवन् ! तुम्हारे दर्शन की इच्छा करनेवाले हम को तुम अपना भक्तों का सत्कार करा हुआ दर्शन दो अर्थात् भक्तों का अति प्यारा अपना स्वरूप हमें दिखाइये, वह तुम्हारा स्वरूप सकल इन्द्रियों को तृप्त करनेवाला अलौकिक विषयरूप है, और वर्षाऋतुके घन मेघमंडलकी समान श्यामवर्णहै और जिसमे सकल सुन्दरताओंका संग्रहहै, जिसमें चारमनोहर लम्बी२ भुजाहैं, जिसमें यथायोग्य सकल अवयवोंसे युक्त मुखहै, जिसमें कमलकी कली में के पत्र की समान कुछएक लालरेखाओंवाले नेत्र हैं, जिस में सुन्दर भ्रुकुटि है, जिस में उत्तम नासिकाहै, जिसमें परमशोभायमान दाँतहैं, जिसमेंसुन्दर कपोलोंवालामुखहै, जिसकेकर्ण समान और रूपकी सुन्दरताको बढ़ानेवालेहैं, जिसके कटाक्षोंमें सन्तोषको सूचित करनेवाला कुछएक हास्य है, जो घुँघुराले केशों से शोभायमान है, जिस में कमल मेंके केसर की समान तेजस्वी दो

त्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ॥ शंखचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥ ४८ ॥ सिंहस्कंधत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभं ॥ श्रियाऽनपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥ ४९ ॥ पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरं ॥ प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्यावर्तगभीरया ॥ ५० ॥ श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् ॥ समचार्वंघ्रिजंघोरुनिम्नजानुसुदर्शनं ॥ ५१ ॥ पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ॥ प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषां ॥ ५२ ॥ एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सता ॥ यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठतां ॥ ५३ ॥ भवान्भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनां ॥ स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकांतेनात्मविद्गतिः ॥ ५४ ॥ तं दुराराध्यमाराध्य सता-

पीताम्बरहै,जिसके कर्णोंमें दमकतेहुए कुण्डलहैं,जिसमें देदीप्यमान किरीट, कड़े,तोड़े रत्नों के हार, नूपुर और कमरकी मेखला आदि भूषण हैं, जो शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और आभूषणों पर जड़ेहुए रत्नों की उत्तम शोभा से युक्त हैं, जो सिंह के कन्धे की समान स्थूल कन्धेपर कुण्डल हार आदि की कान्ति को धारण करेहुएहैं, जिससे कण्ठ शोभायमान दीखता है ऐसी कौस्तुभमणि जिसमें है, कदापि पृथक् न होनेवाली लक्ष्मी से (लक्ष्मी की रेखारूप चिन्हसे) जिसने सुवर्ण की कसौटी के पत्थर की शोभा को नीचाकरदिया है ऐसे वक्षःस्थल से जो शोभायमानहै, जिसमें श्वासके आने जानेसे हिलनेवाला त्रिवलीसे मनोहर पीपलके पत्तेकी समान उदर दीखरहा है—जो भँवरवाली और गहरी नाभि से, जिस में से जगत् बाहर को निकला उस ही द्वार से मानों फिर भीतरको खैंचरहेहैं ऐसा प्रतीत होरहा है, जिस में श्यामवर्ण कटिभाग के और अधिक झलकनेवाले पीताम्बरके ऊपर सुवर्ण की मेखला धारण करीहै, जिसमें चरण,जंघा और ऊरु यह दो२ अङ्ग एकसमान होनेके कारण सुन्दर प्रतीत होरहे हैं जिस में घुटने नीचे होने से देखने में परमसुन्दरता आरही है; हे प्रभो! शरदृतु के कमल के पत्ते की समान कान्तिमान् नखों की प्रभा से हमारे अन्तःकरणमें का अज्ञान दूरकरने वालाहै चरण जिसका और भक्तों के संसारभय को दूर करनेवाले अपने स्वरूपका तुम हमें दर्शन कराओ; क्योंकि—हे गुरो! हम अज्ञानियों को मार्ग दिखानेवाले तुम गुरुही हो ॥-४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे देव! तुह्मारे स्वरूप का ध्यान, सेवा, स्तुति और नमस्कार आदिरूप भक्ति योग करनेपर अपनेधर्म का आचरण करनेवाले भक्तों के जन्म मरण आदिरूप संसार के भयको वह भक्ति योग दूर करता है, वह आप का स्वरूप, अन्तःकरण की शुद्धि चाहनेवाले पुरुषों के ध्यान करनेयोग्य है, प्रत्यक्ष प्राप्त होनेवाला नहीं है ॥५३॥ यद्यपि तुम विषयासक्त सकल प्राणियों को दुर्लभ हो तथापि भक्ति करनेवाले पुरुषों को सुलभ हो, क्योंकि—तुम स्वर्ग का राज्य करने वाले इन्द्र के भी पूजनीयरूपसे मान्यहो और जो केवल आत्मज्ञानी पुरुषहै उसको भी प्राप्त

मपि दुरापया ॥ एकांतभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥ ५५ ॥ यत्र निर्विष्टमरणं कृतांतो नाभिमन्यते ॥ विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ५६ । क्षणार्द्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवं ॥ भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ५७ ॥ अथानघांघ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिःस्नानविधूतपाप्मनां ॥ भूतेष्वनुक्रोशसुसत्वशीलिनां स्यात्संगमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥ ५८ ॥ न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ॥ यद्भक्तियोगानुगृहीतमंजसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिं ॥ ५९ ॥ यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्व-

होतेहो ॥ ५४ ॥ इस कारण, जिनकी आराधना करना कठिन है ऐसे तुमको, जो सदाचारी पुरुषों को भी दुर्लभ है ऐसी एकान्त भक्ति से प्रसन्न करके, कौन विचारवान् पुरुष, तुम्हारे चरणतल के सिवाय दूसरे विषयसुख की इच्छा करेगा ? ॥ ५५ ॥ शूरता और उत्साह से फड़कनेवाली अपनी भ्रुकुटि से सकल विश्व का विध्वंस करनेवाला भी काल, जब तुम्हारे चरण की शरण में गए हुए पुरुष को, अपने वश में समझने का अभिमान नहीं करता है, फिर उस चरण के सिवाय दूसरा निर्भय स्थान कौनसा है ? ॥ ५६ ॥ तुम्हारे भक्तों की सङ्गति करना सकल पुरुषार्थों में श्रेष्ठ है, क्योंकि—तुम्हारे भक्तों की सङ्गति के आधे क्षणभर समय के साथ हम स्वर्ग की वा मोक्ष की भी तुलना नहीं करतेहैं, फिर मनुष्योंकी क्षणभङ्गुर सम्पदाओं की उसके साथ तुलना कैसे होगी ? अर्थात् भगवान् के भक्त की आधे क्षणभर को भी सङ्गति होजाने पर जो भजनानन्द प्राप्त होता है उस के संस्कार से बढ़ी हुई प्रीति के साथ निरन्तर भजन करनेवाले पुरुष को जैसा भगवान् के अखण्डानन्दस्वरूप के अनुभव का आनन्द प्राप्त होता है, वैसा किसी दूसरे साधन से नहीं होता है ॥ ५७ ॥ इस कारण जिनका चरण पापों का नाश करनेवाला है ऐसे तुम्हारी कीर्ति और गङ्गातीर्थ में भीतर और बाहर से स्नान करके जिन के पाप सर्वथा दूर होगए हैं और इसीकारण प्राणियों पर दया करना, काम क्रोध आदि से रहित होना और सुन्दर स्वभाव यह गुण जिन के शरीर में विद्यमान हैं उन सत्पुरुषों का समागम हमें प्राप्त हो, यही अपना अनुग्रह हमारे ऊपर करिये ॥ ५८ ॥ जब तुम्हारे भक्तों के समागम से उत्पन्न हुई भक्ति के द्वारा साधक पुरुष के चित्त पर अनुग्रह होकर वह शुद्ध होजाता है अर्थात् रजोगुणी स्वभाववाला होकर विषयों में आसक्त नहीं होता है और तमोगुणरूप गुफा में (अज्ञानरूप सुषुप्ति अवस्था में) लीन नहीं होता है, तबही वह मनन करने के स्वभाववाला पुरुष अनायासमें तुम्हारे तत्त्व (वास्तविक स्वरूप) को देखता है, नहीं तो नहीं देखता है ॥ ५९ ॥ हे देव ! जिस में यह जगत् प्रकाशित होता है, जो जगत् में सच्चिदानन्द स्वरूप से भासता है, जो आकाश की समान व्यापक है और जो सब से

स्मिन्नेव भाति यत् ॥ तत्त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६० ॥ यो माययेदं पुरुरूपयाऽसृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ॥ यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि ॥ ६१ ॥ क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ॥ भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥६२॥ त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ॥ महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥६३॥ सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ॥ अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ॥६४॥ स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ॥ भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाऽविषह्यः

अधिक प्रकाश करनेवाला है वह तुम्हारा ब्रह्मतत्त्व ही है ॥ ६० ॥ हे भगवन् ! जिसके कारण तुम से भिन्न वस्तुओं में आत्मबुद्धि उत्पन्न होती है, अर्थात् यह जगत तुम से भिन्न है ऐसा प्रतीत होता है और जो, आत्मस्वरूप तुम्हारे विषें अपना मोह आदि कार्य करनेको समर्थ नहीं होतीहै उस त्रिगुणमयी मायाके द्वारा, विकाररहित भी तुम, इसजगत् को ब्रह्मादि रूप धारकर उत्पन्न करतेहो, विष्णु आदिरूप धारकर पालन करतेहो और रुद्र आदि रूप धारकर संहार करते हो, हेभगवन ! ऐसे आपको मैं स्वतन्त्र जानताहूँ॥६१॥ हे देव ! जो कर्मयोगधारी पुरुष, विश्वासयुक्त होकर कर्म की सिद्धि होनेके निमित्त, 'जिन का ज्ञान–पृथिवी आदि पञ्चमहाभूत, इन्द्रियें और अन्तःकरण के द्वारा, प्रवर्त्तकरूप से होता है ऐसे ' इस तुम्हारे स्वरूपका ही, ध्यान सेवा आदिके द्वारा उत्तम प्रकारसे पूजन करते हैं वही वेद में कहे और शास्त्रों मे कहे कर्म में प्रवीण हैं ॥ ६२ ॥ हे भगवन् सृष्टि से पहिले जिसकी मायाशक्ति शयन कररही है, ऐसे आदि पुरुष एक तुमहीहो, तदनन्तर सृष्टिके प्रारम्भमें उठी हुई उस तुम्हारी माया शक्तिके द्वारा सत्व, रज और तम यह भिन्न भिन्न तीन शक्तियें होती हैं, फिर उनसे महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, देवता, ऋषि, और भूत, इस विश्व की उत्पत्ति होती है ॥ ६३ ॥ इस प्रकार अपनी मायाशक्ति से जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज यह चारप्रकारका उत्पन्न कराहुआ, जो यह शरीररूप नगर तिसमें तुम अपने जीव और अन्तर्यामी इन दोप्रकार के अंशों से प्रविष्ट होरहे हो इसकारण शरीर के भीतर रहनेवाले दो प्रकार के तुम को, 'पुरुष' कहते हैं; उनमें जो मधुमक्षिकाओं (शहत की मक्खियों के) रचे हुए शहत की समान तुच्छ विषयसुख को इन्द्रियों से सेवन करता है वह जीव है और तथा जो अभोक्ता होकर सबको जानता है वह अन्तर्यामी भगवान् हैं ॥ ६४ ॥ इसप्रकार जगत्को उत्पन्न करके उसमें प्रविष्ट हुए तुमही, मेघमण्डलियों को जिधर तिधर को चलायमान

॥६५॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः॥६६॥ कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ॥ विशङ्कयाऽस्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥६७॥ अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्परमात्मन्विपश्चिताम् ॥ विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः ॥ ६८ ॥ इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ॥ स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥ ६९ ॥ तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥ ७० ॥ योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः ॥ समाहितधियः सर्व एतदभ्यसतादृताः ॥ ॥ ७१ ॥ इदमाह पुराऽस्माकं भगवान्विश्वसृक्पतिः । भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥ ७२ ॥ ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः ॥

करनेवाले वायुकी समान, भूतों के द्वारा ही स्थावर जङ्गमरूप सकलप्राणियोंका उपसंहार करते हो, क्योंकि–तुम्हारा वेग अतिप्रचण्ड है और तुम्हारे स्वरूप का ज्ञान भी केवल अनुमान से ही होता है ॥ ६५ ॥ हे ईश्वर ! क्षुधा से जीभ को चट २ करनेवाला सर्प जैसे मूषक (चूहे) को निगलजाता है तैसे ही विषयों में लम्पट और विषय प्राप्त होने पर भी अतिलोभी होने के कारण ' यह कार्य ऐसाही करना चाहिये, ऐसी चिन्ता से ' अत्यन्त असावधान हुए इस प्राणी को, सावधान हुए कालरूपी तुम एकसाथ ग्रास कर-जाते हो ॥ ६६ ॥ इसकारण काल से नाश होगा, ऐसे भय से हमारे गुरु ब्रह्माजी और स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओं ने दृढ़ विश्वास के साथ जिस तुम्हारे चरण कमलका पूजन करा है, उस तुम्हारे चरणकमल को, तुम पुरुषोत्तम का अनादर करने के कारण जिसका शरीर काल के भय से कम्पायमान होरहा है ऐसा कौन विद्वान् पुरुष त्यागेगा ? ॥६७॥ इस सकल जगत् को,काल रुद्र आदि के भय ने ग्रस रक्खा है इसकारण हे ब्रह्मरूप पर-मात्मन् ! तुम्हारी शरण में जानाही काल आदि के भयको दूर करनेवाला है ऐसा जानने वाले हम को तुम सर्वथा भयरहित गति दो ॥ ६८ ॥ हे राजपुत्रों ! तुम शुद्धचित्त और अपने धर्म का आचरण करते हुए अपना अन्तःकरण भगवान् को समर्पण करके मेरेकहे हुए इस स्तोत्र का जप करते रहो, तुम्हारा कल्याण (मोक्षकी प्राप्ति) होगा ॥ ६९ ॥ अपने में और सकल प्राणियों में रहनेवाले उनही परमात्मारूप श्रीहरिका तुम ध्यान और स्तुति करतेहुए पूजन करते रहो ॥ ७० ॥ तथा योगादेश नामक इस स्तोत्र को मुझसे पाकर मन से धारण करके मौनव्रतधारी और सावधानचित्त तुम सब आदर पूर्वक इसका जप करते रहो ॥ ७१ ॥ पहिले सृष्टि को रचने की इच्छा करनेवाले और मरीचिआदि ऋषियों के अधिपति भगवान् ब्रह्माजी ने, प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छा करनेवाले हम भृगु आदि पुत्रों को यह स्तोत्र कहाथा ॥ ७२ ॥ प्रजाकी उत्पत्ति करने के निमित्त

अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ॥ ७३ ॥ अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान् ॥ अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥ ७४ ॥ श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् ॥ सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥ ७५ ॥ य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् ॥ अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ ॥ ७६ ॥ विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरम् ॥ मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ॥ ७७ ॥ इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ॥ ७८ ॥ गीतं मयेदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवं ॥ जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम् ॥ ७९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति संदिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः ॥ पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ॥ १ ॥ रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ॥ जपन्तस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणा-

---

ब्रह्माजी के प्रेरणा करेहुए तिन सब हम प्रजापतियों ने इस स्तोत्र के प्रभाव से विघ्नों को दूर करके अनेकों प्रकार की प्रजा उत्पन्न करीं ॥ ७३ ॥ सो अबभी जो उद्योग करनेवाला पुरुष, वासुदेवपरायण और एकाग्रचित्त होकर नित्य इस स्तोत्र का जप करता है वह शीघ्र ही, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से जिस की चाहनाकरे वही पाता है ॥ ७४ ॥ हेराजपुत्रों ! इस लोक में के सकल फलों में ज्ञान ही मोक्ष देनेवाला उत्तम फल है, क्योंकि-ज्ञानरूप नौका का आश्रय लेनेवाला पुरुष,दुस्तरभी संसार समुद्रको अनायास में तरजाता है ॥ ७५ ॥ मेरेकहेहुए इस भगवान् के स्तोत्र को जो पुरुष,श्रद्धाके साथ पढ़ताहै वह कठिनता से प्रसन्न होने योग्य भी श्रीहरि को सुख से प्रसन्न करलेताहै ॥७६॥ और मेरेकहेहुए स्तोत्र के द्वारा स्थिरता से स्तुति करेहुए इन श्रीहरि से पुरुष,जो २ फल चाहता है,वह२ प्राप्त होते हैं,क्योंकि-वह भगवान् सब फलों के एकही आश्रय हैं ॥७७॥ जो मनुष्य अतिप्रातःकाल के समय उठकर श्रद्धाके साथ हाथ जोड़कर इस स्तोत्रको सुनता है, वा पढ़ता है वही कर्मबन्धन से छूटता है ॥ ७८ ॥ हे राजपुत्रों ! मेरे गान करेहुए इस परमपुरुष परमात्मा के स्तोत्र का जप करतेहुए तुम बड़ाभारी तप करो तब तुम उस तप के प्रभाव से इच्छित फल पाओगे ॥ ७९ ॥ इति चतुर्थ स्कन्ध में चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि-हेविदुरजी ! इसप्रकार रुद्रभगवान् ने प्रचेताओंको भगवत्स्तोत्र का उपदेश दिया तब उन प्राचीन बर्हिराजाके पुत्रों ने उन रुद्रका पूजनकरा तदनन्तर उन राजपुत्रों के देखतेहुए वह रुद्रभगवान् तहांही अन्तर्धान होगए ॥ १ ॥ तदनन्तर रुद्रभगवान् के उपदेश करेहुए, भगवान् के स्तोत्र का जप करनेवाले उनसकल

मयुतं जले ॥ २ ॥ प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ॥ नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥ ३ ॥ श्रेयस्त्वं कतमद्राजन्कर्मणात्मन ईहसे ॥ दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः ॥ ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥ ५ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदारधनार्थधीः ॥ न परं विंदते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ भो भो प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाऽध्वरे ॥ संज्ञापितान् जीवसंघान् निर्घृणेन सहस्रशः ॥ ॥ ७ ॥ एते त्वां संप्रतीक्षंते स्मरन्तो वैशसं तव ॥ संपरेतमयःकूटैश्छिंदंत्युत्थितमन्यवः ॥ ८ ॥ अत्र ते कथयिष्येऽमुमितिहासं पुरातनम् ॥ पुरंजनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥ ९ ॥ आसीत्पुरंजनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्र-

प्रचेताओं ने समुद्रके जल में खड़े होकर दश सहस्र वर्षपर्यन्त जप किया ॥ २ ॥ हेविदुरजी ! इधर राजा प्राचीनबर्हि कर्म में आसक्तचित्त होरहा था सो उस को,आत्मतत्त्वको जाननेवाले दयालु नारदजी ने अध्यात्म तत्त्वका उपदेश किया ॥ ३ ॥ हे राजन् ! तू काम्यकर्मों का अनुष्ठान करके अपने को कौन से फल की इच्छा करता है ? अज्ञलोकों की दृष्टि से दुःख की हानि और सुख की प्राप्ति, यह दोनों प्रकार का फल यद्यपि दीखता है तथापि उस के नाशवान् होने के कारण इस कर्ममार्ग में विचारवान् पुरुष उन दोनोंकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ ४ ॥ प्राचीनबर्हि राजा ने कहा—हेमहाभाग ! नारदजी ! कर्म से मेरी बुद्धि विक्षिप्त होरही है इसकारण मैं मोक्ष रूप कल्याण को नहीं जानता हूँ , सो जिस के द्वारा मैं कर्म से उत्पन्न होनेवाले पुण्य पाप से छूटजाऊँ ऐसा निर्मल (अहङ्कार और ममता को दूर करनेवाला) ज्ञान मुझ से कहो ॥ ५ ॥ क्योंकि—कपट के धर्मों से भरेहुए, और जन्म मरणरूप संसार के मार्ग स्वरूप ग्रहस्थ में भ्रमनेवाला तथा पुत्र—स्त्री और धन कोही परम पुरुषार्थ माननेवाला यह मूढ़ पुरुष मोक्ष को कभी भी प्राप्त नहीं होता है ॥ ६ ॥ नारदजी ने कहा--हे प्रजाका पालन करनेवाले राजन् ! तुमने निर्दयी होकर यज्ञमें जो सहस्रों पशुओंका वध कराहै तथा और भी जो पक्षी आदि जीवों के समूहों का प्राणान्त कराहै वह सब आकाशमें दीखरहे हैं देखो ! (ऐसा कहकर नारदजीने योग्य शक्ति से राजाको सत्र मरेहुए पशु पक्षी आदि आकाश में दिखाए) ॥ ७ ॥ हेराजन् ! तेरी दीहुई पीड़ा को स्मरण करनेवाले अत: अतिक्रोध में भरेहुए यह पशु पक्षी आदि, 'यहराजा मरकर कब हमारे वश में होगा' ऐसी तुम्हारी बाट देख रहे हैं, सो तुम्हारा मरणहुआ कि—यह लोहेके भाले के समान तीखे अपने सींगों से बहुतही शीघ्र तुम्हें छिन्न भिन्न करडालेंगे ॥ ८ ॥ सो इस सङ्कट से तुझ को तारनेवाला, पुरञ्जन का चरित्ररूप यह पुरातन इतिहास मैं कहता हूँ , तू एकाग्रचित्त से श्र-

वाः ॥ तस्याविज्ञातनामासीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥ १० ॥ सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः ॥ नानुरूपं यदाऽविन्ददभूत्स विमना इव ॥११॥ न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः ॥ कामान्कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ॥ १२ ॥ स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु ॥ ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरं लक्षितलक्षणाम् ॥ १३ ॥ प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः॥ स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः संकुलां सर्वतो गृहैः ॥ १४ ॥ नीलस्फटिकवैदूर्यमुक्तामरकतारुणैः ॥ क्लृप्तहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः ॥ चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः। ॥ १६ ॥ पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले ॥ नदद्विहंगालिकुलकोलाहलजलाशये ॥ १७ ॥ हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना ॥ चलत्प्रवालविटपन-

वण कर ॥ ९ ॥ हेराजन्! पुरञ्जन * नामक एक बड़ा कीर्तिमान् राजाथा, उसका, जिस के कर्म किसी को विदित नहीं ऐसा एक अविज्ञात ! नामक मित्र था ॥ १० ॥ वहराजा अपने रहने को स्थान ‡ देखने के निमित्त पृथ्वी § पर भ्रमण करनेलगा, परन्तु उस को रहने के योग्य स्थान जब नहीं मिला तो मनमें खिन्न हुआ ॥ ११ ॥ विषयभोग की इच्छा करने वाले तिस पुरञ्जन राजा ने, तिस २ विषय को भोगने के निमित्त पृथ्वीपर जितने नगर + देखे थे वह सबही उस को योग्य नहीं प्रतीत हुए ॥ १२ ॥ तिस राजाने, एकसमय, हिमालयपर दक्षिण ÷ की ओर, नौ द्वार × से विषयभोग करने के योग्य एक सुन्दर लक्षणवाली नगरी देखी ॥ १३ ॥ जिसके चारों ओर तट, उपवन, और खाई थीं, जिस में अटारियें, झरोखे और शोभा के निमित्त बन्दनवारें बांधी हुई थीं, जो सुवर्ण और चांदी के बने शिखरोंवाले स्थानों से सर्वत्र ठसाठस भरी हुई थी ॥ १४ ॥ इन्द्रनीलमणि, स्फटिक, वैडूर्य, मोती, मरकत और लालों से जिसमें के स्थानों का स्थल (फरस) बना था,इसकारण जो प्रकाशयुक्त और नागों की भोगवती नगरी की समान शोभायमान थी ॥ १५ ॥ तथा बैठक, चौक, सड़कें, क्रीड़ा करने के स्थान, बाजार,विश्राम करने के स्थान, ध्वजाओंके ऊपर की पताका और मूँगों की बनाई हुई चौतरियों से युक्त थी ॥ १६ ॥ उस नगरी के बाहर एक बगीचा ¶ था, वह मनोहर वृक्ष और लताओं से भराहुआ और मधुर २ शब्द करनेवाले पक्षी तथा सुन्दर गुञ्जारनेवाले भ्रमरों की कलकलाहट जिनमें होरही है ऐसे सरोवरों से युक्तथी ॥ १७ ॥ शीतल जल को बहाने

* अपने कर्मोंसे शरीर को उत्पन्न करनेवाला जीव। ! जिसका नाम किसीको विदित नहीं ऐसा ईश्वर। ‡ शरीर § । ब्रह्माण्ड में । + शरीर । ÷ कर्मक्षेत्र भरतखण्ड में । × कानों के दो छिद्र, नासिका के दो छिद्र,नेत्रोंके दो गोलक,मुख का एक,शिश्न का एक और गुदाका एक ऐसे ग्यारह छिद्रोंसे युक्त थी। ¶ शब्द स्पर्श आदि विषयों का समूह ।

लिनीतटसंपदि ॥ १८ ॥ नानाऽरण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः ॥ आहूतं मन्यते पांथो यत्र कोकिलकूजितैः ॥ १९ ॥ यदृच्छयागतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् ॥ भृत्यैर्दशभिरायांतीमेकैकशतनायकैः ॥ २० ॥ पंचशीर्षाहिना गुप्तां प्रतीहारेण सर्वतः ॥ अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥ २१ ॥ सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननां ॥ समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियं ॥ २२ ॥ पिशंगनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलां ॥ पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलंतीं नूपुरैर्देवतामिव ॥ २३ ॥ ॥ स्तनौ व्यंजितकैशोरौ समवृत्तौ निरंतरौ। वस्त्रांतेन निगूहंतीं व्रीडया गजगामिनीं ॥ २४ तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनां ॥ स्निग्धेनापांगपुंखेन स्पृष्टः प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा ॥ २५ ॥ का त्वं

वाले झरनोंके कणों से युक्त वसन्त ऋतुके वायुसे जिनके अंकुर और शाखा हिलरही हैं ऐसे वृक्षों से जिसमें के सरोवरों के तटोंको सम्पदा प्राप्त होरही थी ॥ १८ ॥ अहिंसाव्रत को धारण करनेवाले अनेकों प्रकारके पशुओंके समूहों से जिस में किसी को भी पीड़ानहीं होतीथी और जिस वगीचे में कोकिल पक्षियों के मधुर शब्दों से मार्ग में जानेवाले पुरुष को, मुझे मानो यह वगीचा बुलारहा है ऐसा प्रतीत होता था ॥ १९ ॥ उस वगीचे में सहज मे ही प्राप्त होनेवाली एक अति उत्तम स्त्री * तिस पुरञ्जन राजाने देखी;वह,प्रत्येक पुरुष सैंकडों + पुरुषों का स्वामी ऐसे दश † सेवकों के साथ तहां आई थी ॥ २० ॥ पांच ‡ फनवाले द्वाररक्षकनाग से चारों ओर रक्षा करी हुई थी, वह अपनेको श्रेष्ठ पति के मिलने की खोज में थी, सोलहवर्ष की अवस्थावाली थी और नानाप्रकार के श्रृङ्गार को धारण करेहुए थी ॥२१॥ वह बहुतही सुकुमार थी,और उसकी नासिका,दांत,कपोल और मुख परमसुन्दर था, उस के दोनों कर्णों की रचना एकसमान थी और उन में वह कुंडलों की शोभाको धारण कररही थी ॥२२॥ वह कुछएक पीली साड़ी धारण करेहुए,सुन्दर कटिवाली,श्यामवर्ण,सुवर्णकी तागड़ी पहिनेहुए थी वह नूपुरों के कारण शब्दकरनेवाले चरणों से चलती हुई देवताके समान प्रतीत होती थी॥२३॥ वह गजगामिनी थी और तरुणाई के प्रारंभ को सूचित करनेवाले एकसमान—गोल तथा मध्यमें अन्तररहित अपने स्तनों को लज्जाके कारण वारंवार आंचल से ढकरही थी॥ २४ ॥ और वह लज्जा सहित हास्य से मनोहर प्रतीत होती थी ऐसी उस स्त्री को देखकर प्रेम से घूमनेवाली भ्रुकुटिरूप धनुपसे छूटाहुआ नेत्रों का प्रान्तभाग (पलक) ही जिसका पङ्ख है ऐसे उसके स्नेह युक्त कटाक्ष से विधा

* बुद्धि । + अनन्त वृत्तियों के । † पंच ज्ञानेंद्रिय और पंच कर्मेंद्रियों के साथ । ‡ प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्रकार केप्राण से ।

कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति ॥ इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥ २६ ॥ क एतेऽनुपथा ये ते एकादशमहाभटाः ॥ एता वा ललनाः सुभ्रूः कोऽयं तेऽहिः पुरःसरः ॥ २७ ॥ त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथ वाक् रमा पतिं विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ॥ त्वदंघ्रिकामाप्तसमस्तकामं क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥ २८ ॥ नासां वरोर्वन्यतमा भुवि स्पृक्पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ॥ अर्हस्यलंकर्तुमदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥ २९ ॥ यदेष तेऽपांगविखण्डितेन्द्रियं सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा ॥ त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥ ३० ॥ त्वदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं व्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम् ॥ उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं यद्व्रीड-

हुआ वह वीर पुरञ्जन * राजा उस से मनोहर भाषण करने लगा॥ २५ ॥ कि—हे कमलदलनयनी ! तू कौन जाति की है ?, किस की कन्या है ? हे सति ! तू यहां कहां से आई है ?, हे भीरु ! नगरी के समीप की इस भूमि को देखकर क्या करने की तेरी इच्छा है ? यह मुझ से कथन कर ॥२६॥ तथा जिस में ग्यारहवाँ महायोधा+ है ऐसे जो तेरे दश ‡ अनुचर हैं, यह कौन हैं ? हे सुभ्रु ! यह तेरे साथ की स्त्रियें ‡ कौन हैं ? यह तेरे आगे चलनेवाला सर्प ¶ कौन है ॥ २७ ॥ हे सुन्दरि ! ऋषियों की समान अपनी इन्द्रियों को वश में करके इस एकान्त वन में तेरे चरण की सेवा करकेही जिस के सकल मनोरथ पूर्ण हुए हैं ऐसे अपने धर्म नामक पति को खोजनेवाली तू भी लज्जा नामक उसकी स्त्री ही है क्या ? वा अपने पति (शिव) को खोजनेवाली भवानी है क्या ? अथवा ब्रह्माजी को खोजनेवाली सरस्वती है क्या ? अथवा विष्णु भगवान् को ढूँढनेवाली लक्ष्मी है क्या ? यदि लक्ष्मी है तो तू ने लीला के निमित्त धारण करी हुई कमल की कली हाथमें से कहां छोड़दी ? ॥२८॥ परन्तु हे रम्भोरु ! तू चरणों से पृथ्वी को स्पर्श करती है इस कारण इन देवताओं में से कोई नहीं है; सो विष्णुभगवान् के साथ लक्ष्मी जैसे वैकुण्ठ लोक को शोभित करतीहै तैसे, इस लोक में और परलोक में भोग प्राप्ति के निमित्त चतुर और महावीर जो मैं तिस के साथ इस नगरी को शोभित करना तुझे योग्य है ॥२९॥ हे सुन्दरि ! तेरे कटाक्षों के देखने से मोहितचित्तहुए मुझ को, तेरी लज्जा, प्रेम और हास्ययुक्त चलायमान भ्रुकुटि के प्रेरणा करेहुए भगवान् कामदेव, अतिपीड़ा देरहे हैं, सो तू मेरे ऊपर अनुग्रह कर ॥ ३० ॥ हे सुन्दरहास्यवाली ! जो तेरा मुख लज्जाके कारण मेरे सन्मुख नहीं होताहै जो सुन्दर भ्रुकुटियों से युक्त है, जिसमें उत्तम तारकाओं (पुतलियों) वाले नेत्र हैं, जो लम्बे२ भ्रमरसमान काले

* भोक्ता जीव । + मन । ‡ दश इन्द्रियें । ‡ इन्द्रियों की वृत्ति । ¶ प्राण ।

यां नाभिमुखं शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं पुरंजनं नारी याचमानमधीरवत् ॥ अभ्यनन्दत तं वीरं हसंती वीर मोहिता ॥ ३२ ॥ न विदाम वयं सम्यक् कर्त्तारं पुरुषर्षभ ॥ आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतं ॥ ३३ ॥ इहाद्य संतमात्मानं न विदाम ततः परं ॥ येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ॥ ३४ ॥ एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद ॥ सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन्पुरीम् ॥ ३५ ॥ दिष्ट्यागतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे ॥ उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबन्धुभिररिंदम ॥ ३६ ॥ इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो ॥ मयोपनीतान् गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥ ३७ ॥ कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम् ॥ असंपरायाभिमुखमश्वस्तनाविदं पशुम् ॥ ३८ ॥ धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानन्दोऽमृतं

घुँघराले केशों से घिराहुआ है और जिसमें सुन्दरभाषण है ऐसा अपना मुख तू ऊपर को उठाकर मुझे दिखा ॥ ३१ ॥ नारदजीने कहा—हे वीरों में श्रेष्ठ राजन् ! इस प्रकार कामदेव के वश में होकर वह राजा पुरञ्जन अधीर पुरुष की समान उस स्त्री से प्रार्थना करनेलगा तब उसके स्वरूप की सुन्दरता से मोहित होकर प्रेम के साथ हँसती हुई उस स्त्री ने अपने को विषय भोग देनेवाले तिस राजा को पतिरूप से स्वीकार किया और उस से कहने लगी ॥ ३२ ॥ कि—हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! तेरा और मेरा उत्पन्न करनेवाला कौन है सो मैं नहीं जानती तथा हम दोनोंके गोत्र और नाम जिसने कियेहैं उस को भी मैं नहीं जानती। ३३ । नगरी किसने रची है सो भी मुझे विदित नहीं, आज इस नगरी में मैं, तुम और यह मेरे मित्र आदि हैं, इतनाही मैं जानती हूँ, इस से और मुझे कुछ विदित नहीं ॥ ३४ ॥ हे प्रियवर ! यह ग्यारह पुरुष मेरे मित्र हैं और यह स्त्रियें मेरी सखी हैं, मैं शयन करती हूँ तो यह सर्प मेरी इस नगरी की रक्षा करता हुआ जागता रहता है ॥ ३५ ॥ हे शत्रुनाशक ! तुम्हारा कल्याण हो, मेरा भाग्य श्रेष्ठ है जो आज तुम यहां आये हो, और तुम विषय भोग की भी इच्छा करते हो, यह बड़े आनन्द की वार्त्ता है, जो इच्छा होगी वही विषय मैं तुम्हे अपने मित्रों और सखियों के साथ, दूँगी ॥ ३६ ॥ हे नाथ मेरे दिये हुए विषयों को भोगते हुए तुम सौ वर्ष पर्यन्त इस मेरी नौ द्वारवाली नगरी में वास करो ॥ ३७ ॥ हे प्राणप्रिय ! तुम्हें छोड़कर इस लोक में विषय सुख को न जानने वाले, और परलोक में सुख होने का साधन न करनेवाले तथा कल क्या होगा इस का विचार न करनेवाले किस पशु समान पुरुष से मैं रमण करूँगी ? ॥ ३८ ॥ अहो ! इस लोक में गृहस्थाश्रम के विषें यज्ञादि कर्म कर के, धर्म, अर्थ, काम, सन्तान उत्पन्न करने के निमित्त रतिसुख का आनन्द, पुत्र पौत्र आदि के लालन पालन का आनन्द और यश

यैश: ॥ लोका विशोका विरजा यान्न केवलिनो विदुः ॥ ३९ ॥ पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ॥ क्षेमं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः ॥ ॥ ४० ॥ का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् ॥ न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम् ॥ ४१ ॥ कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ॥ योऽनाथवर्गाधिमलं घृणोद्धतस्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम् ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ इति तौ दंपती तत्र समुद्य समयं मिथः ॥ तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ॥ ४३ ॥ उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः ॥ क्रीडन्परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ ॥ ४४ ॥ सप्तोपरि कृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः ॥ पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ॥ ४५ ॥ पञ्च द्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ॥ पश्चिमे द्वे अमूषां ते नौ-

मिलता है; तथा गृहस्थाश्रम का त्याग करनेवाले सन्न्यासी पुरुष, जिन को नहीं जानते ऐसे परलोक में प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि लोक भी इस गृहस्थ आश्रम में ही मिलतेहैं, अधिक क्या मोक्ष पर्यन्त की प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ सो इस संसार में यह गृहस्थाश्रम—पितर, देवता, ऋषि, मनुष्य, सकल प्राणी इन सब का तथा अपना भी निर्वाह करनेवाला आश्रय है ऐसा वेद को जाननेवाले कहते हैं ॥ ४० ॥ सो हे नाथ ! लोक में वीर नाम से प्रसिद्ध, उदारचित्त और अति सुन्दर, तुमसमान आप आये हुए पति को मुझसी कौन स्त्री नहीं वरेगी ? ॥ ४१ ॥ हे महापराक्रमयुक्त ! आप जो दया से बढ़े हुए मन्दहास्य सहित अवलोकन से ही, हमसमान दीनजनों के मनकी पीड़ा को समूल नष्ट करने के निमित्त यहां विचर रहे हो, सो तुम्हारी सर्प के शरीर की समान अतिकोमल भुजाओं में इस भूतलपर कौनसी स्त्री का मन आसक्त नहीं होगा ? ॥ ४२ ॥ नारदजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार उस बगीचे में वह दोनों स्त्री पुरुष (A) परस्पर वरने का सङ्केत करके नगरी (B) में चलेगए और उन दोनों नें तहां सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द भोगा ॥ ४३ ॥ वह राजा पुरञ्जन उस नगरी में जहां तहां (C) सूत मागधों (D) के स्तुति करते हुए स्त्रियों (E) से घिरकर क्रीड़ा करनेलगा तदनन्तर उष्णकालमें वह तापको शान्त करनेके निमित्त एक नदी (F) में घुसा ४४ तिस नगरी में रहनेवाले पुरञ्जन राजाके नगरी से बाहर भिन्न २ देशों (G) में जाने के निमित्त तिस नगरी के ऊपर के भाग में सात द्वार (H) करे हैं और उसके नीचे के भाग में दो (I) द्वार करे ॥ ४५ ॥ उन सात द्वारों में पांच द्वार पूर्व दिशा की ओर, एक दक्षिण की

A बुद्धि और जीव। B मनुष्य शरीर में। C जाग्रत् अवस्था में। D माला चन्दन आदि। E विषय वासनाओं। F सुषुप्ति अवस्था में ॥ G शब्दादि विषयों में। H कर्ण नासिका, नेत्र और मुख के छिद्र। I गुदा और शिश्न के छिद्र।

मानि नृप वर्णये ॥ ४६ ॥ खद्योताविर्मुखी च प्राक् द्वावेकत्र विनिर्मिते ॥ विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः॥४७॥नलिनी नालिनी च प्राक् द्वारावेकत्र निर्मिते॥ अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम्॥४८॥ मुख्यानाम पुरस्तोद्वास्तया पणवहूदनौ॥ विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः॥४९॥ पितृहूर्नृप पुर्यौद्वादक्षिणेन पुरञ्जनः॥ राष्ट्रं दक्षिणपञ्चालं याति श्रुतिधरान्वितः ॥५०॥ देवहूर्नाम पुर्या द्वा उत्तरेण पुरञ्जनः॥ राष्ट्रमुत्तरपंचालं याति श्रुतिधरान्वितः॥ ॥५१॥ आसुरीनाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः॥ ग्रामकन्नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः॥५२॥ निर्ऋतिर्नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरञ्जनः॥वैशसंनाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः॥ ५३ ॥अंधावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ॥ अक्षै-

ओर,एक उत्तर की ओर और दो पश्चिम की ओर हैं,हे राजन्! उनके नाम तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ ४६ ॥ खद्योता और आविर्मुखी इस नाम के दो द्वार पूर्व की ओर एकही स्थानपर करेहैं वह एकसाथ खुलनेवाले और बन्द होनेवालेहैं,उन द्वारों(A)से द्युमान(B) जिसका मित्र है ऐसा राजा पुरञ्जन विभ्राजित(C)नामक दिशा की ओर को गमन करता है ॥ ४७ ॥ तथा नलिनी और नालिनी नामक दो द्वार(D)पूर्वदिशा में ही एक स्थान में रचे हुए हैं और उन द्वारोंसे अवधूतनामक (E) मित्र के साथ वह पुरंजन राजा सौरभ नामक(F)देश को जाता है ॥ ४८ ॥ पूर्व दिशा का एक द्वार मुख्या (G) नामक है उस के द्वारा राजा पुरंजन रसज्ञ(H)और विपण(I) इन दो मित्रों के साथ बहूदन (J) और आपण (K) देश को जाता है (इस एक द्वारसे दो देशों को जाता है और ऊपर के दो२ द्वारों से एकही देश को जाता है यह आश्चर्य है) ॥ ४९ ॥ तथा नगर के दक्षिण की ओर के पितृहू (L) नामक द्वारसे पुरंजन राजा श्रुतधर (M) नामा मित्र के साथ दक्षिण पञ्चाल(N)नामक राज्य में गमन करता है ॥५०॥नगर की उत्तर की ओर देवहूनामक द्वार से पुरंजन राजा उसही श्रुतधर मित्र के साथ उत्तर पञ्चाल नामक राज्य में जाताहै ॥ ५१ ॥ पश्चिम की ओर के आसुरी(O)नामक द्वारसे पुरंजन राजा दुर्मद (P) मित्रके साथ ग्रामक (Q) नाम देश को जाता है ॥५२॥ तथा निर्ऋति(R)नामक पश्चिमके द्वारसे पुरंजन राजा लुब्धक (S) नामक मित्रके साथ वैशस(T)नामक देश को जाता है॥५३॥ इस नगरके निवासियोंमें निर्वाक् (U) और पेशस्कृत्यह(V) दो अन्ध(W)हैं उनके साथ इं-

A नेत्रों से। B चक्षु इन्द्रिय। C रूपविषय की ओर को। D नासिका के छिद्र। E घ्राण इन्द्रिय। F गन्ध विषय की ओर को। G मुख। H रसना इन्द्रिय। I वाक्इन्द्रिय। J भोजन। K भाषण। L कर्ण। M श्रोत्र इन्द्रिय। N शब्दविषय की ओरको। O लिङ्ग। P गुप्त इन्द्रिय। Q मैथुनविषय। R गुदा। S पायु इन्द्रिय। T मलत्याग। U चरण। V हाथ। W जिनके छिद्र नहीं॥

ण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ॥ ५४ ॥ स यर्ह्यंतःपुरंगतो विपूचीन-समन्वितः ॥ मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥ ५५ ॥ एवं कर्मसु संयुक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः ॥ महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥ ५६ ॥ क्वचित्पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः ॥ अश्नन्त्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षति ॥ ५७ । क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदन्त्यां रुदति क्वचित् ॥ क्वचि-द्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनुजल्पति ॥ ५८ ॥ क्वचिद्धावति धावन्त्यां तिष्ठ-न्त्यामनुतिष्ठति ॥ अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥ ५९ ॥ क्वचिच्छृ-णोति शृण्वन्त्यां पश्यन्त्यामनुपश्यति ॥ क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृ-शति क्वचित् ॥ ६० ॥ क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् ॥ अनु-हृष्यति हृष्यन्त्यां मुदितामनुमोदते ॥ ६१ ॥ विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्र-

द्रियों वाले इन पुरवासियों(A)का अधिपति राजा पुरंजन,जिधरको इच्छा हो उधर को ही चलाजाता है और सकल व्यवहार करता है,यह ही एक आश्चर्य है॥५४॥वह राजा, सकल सेवकोंके अधिपति विपूचीन(B)नामक मन्त्रीके साथ जब रणवास में जाताहै तब वह स्त्री(C) और पुत्र(D)से उत्पन्न होनेवाले मोह,प्रसन्नता और हर्ष इन विकारों को प्राप्तहोताहै॥५५॥ इसप्रकार कर्म में प्रवृत्त हुआ, विषयों में आसक्त, अज्ञानी और स्त्री के चाटुवाक्यों से ठगायाहुआ वह राजा पुरञ्जन,रानी जो २ कार्य करती थी वह वहही आपभी करताथा।५६। किसीसमय वह स्त्रीमद्य पीनेलगी तो वह पुरञ्जन भी मद्य पीकर मदसे उन्मत्त होजाता है कभी वह भोजन करने लगी तो वहभी भोजन करनेलगता है, कभी वह कोई पदार्थ खानेलगती है तो आप भी खाने लगता है ॥ ५७ ॥ वह कभी गानेलगती है तो स्वयंभी गानेलगता है, कभी वह रुदन करने लगती है तो आपभी रुदन करनेलगता है, कभी वह हँसनेलगती है तो आपभी हँसने लगता है, वह बोलने लगती है तो आपभी बोलने लगता है ॥ ५८ ॥ कभी वह दौडने लगती है तो आपभी दौड़ ने लगता है, उस के खड़ेहोतेही आपभी खड़ा होजाता है, उसने शयन कियाकि–आप भी सो-रहता है वह बैठीकि–आपभी बैठजाता है ॥ ५९ ॥ वह सुनने लगीकि–आप भी सुनने लगता है, वह देखनेलगी कि–आपभी देखने लगता है, वह सूँघनेलगी कि–आप भी सूँघनेलगता है, कभी वह किसी वस्तु को स्पर्श करनेलगीकि–आपभी स्पर्श करनेलगताहै ॥ ६० ॥ कभी प्रसङ्ग से वह स्त्री शोक करनेलगी तो यहभी दीन की समान उस के पीछे शोक करनेलगता है, वह हर्ष को प्राप्त हुई कि–आप भी हर्ष मानता है और वह आनन्दित हुईकि–उस के साथ आप भी आनन्द मनाने लगता है ॥ ६१ ॥ इसप्रकार जिस

A नासिका नेत्रआदि । B मन । C बुद्धि । D इन्द्रियों का परिणाम ॥

कृतिवञ्चितः ॥ नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥ ६२ ॥ इतिश्री भा० महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् ॥ द्वीषं द्विचक्र-मेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥ १ ॥ एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम् ॥ पञ्च-प्रहरणं सप्तवरूथं पञ्चविक्रमम् ॥ २ ॥ हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माक्षयेषुधिः ॥ एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थमगाद्वनम् ॥ ३ ॥ चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुका-र्मुकः ॥ विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥ ४ ॥ आसुरीं वृत्तिमा-श्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः ॥ न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥ ५ ॥ तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान्पशून्वने ॥ यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति

को स्त्रीने अपने वश में करलिया है और सकल मन्त्रियों ने जिस को धोखा दिया है ऐसा वह अज्ञानी पुरञ्जन राजा, अत्यन्त ही काम के वश में हो जाने के कारण, अपनी इच्छा न होनेपर भी, जैसे क्रीडा के निमित्त पालन कराहुआ श्वान, वानर वा और कोईसाभी पशु स्वामी के पीछे २ फिरता है, तैसेही स्त्री जो २ करती है तैसा २ ही वहभी करता है ६२ इति चतुर्थ स्कन्ध में पञ्चविंश अध्याय समाप्त ॥*॥ नारदजी कहते हैं कि–हे प्राचीन बर्हि राजन्! एकसमय ग्यारहवें सेनापति(A)को साथलेकर,सुवर्णका कवच, जिसमेंके बाण कभी कम नहीं ऐसा तर्कस और बड़ाधनुष धारण करनेवाला वह राजापुरञ्जन पाँचघोड़े(B)दोदाँडी (C),दोपहिये,एक(D)धुरी(E),तीनबाँस,पाँच(F)बन्धन(G)एकबागडोर(H)एकसारथी (I) एक बैठनेका स्थान(J),दो जुए(K)पांच शस्त्र(L)सातपरदे(M)पांचप्रकारकी गति(N)और सुवर्ण के आभूषणों से युक्त अपने शीघ्र चलनेवाले रथ(O)के ऊपर बैठकर मृगया(शिकार खेलने) के निमित्त पञ्चप्रस्थ(P)नामक वन में गया ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ और तहां मृ-गया करने की उत्कट इच्छा करनेवाला और हाथ में धनुषबाण धारण करे वह घमण्डी राजा पुरंजन, त्याग करने के अयोग्य भी अपनी स्त्री(Q)को त्यागकर मृगया करने लगा (शिकार खेलने लगा) ॥ ४ ॥ निर्दयी और भयङ्कर रूप तिस राजा ने आसुरी वृत्ति को स्वीकार करके उस वन में के बहुत से पशुओं को तीखे बाणों से हिंसा करी ॥ ५ ॥ राजन! तू कहेगा कि–राजाको मृगया के निमित्त शास्त्र में आज्ञा है, उसकी तुम निन्दा क्यों करते हो? सो हे तात! सकल राजे अपने आपही यथेष्ट मृगया करते थे,उसका शास्त्र ने नियम किया है अर्थात् यदि पुरुष मांसभक्षण का अतिलोभी होय

A मन को B ज्ञानेन्द्रियें C अहन्ता और ममता D पुण्य और पाप E प्रकृति F सत्व, रज और तम G पांच प्राण H वासनात्मक मन I बुद्धि ! J हृदय. K शोक और मोह. L इन्द्रियोंका विषयों के ऊपर जाना. M सात धातु. N कर्मेन्द्रिय O स्थूलका शरीर. P शब्द स्पर्श आदि पांच विषयरूप. Q विवेकयुक्त बुद्धि का.

नियम्यते ॥ ६ ॥ य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः ॥ कर्मणा तेन राजेंद्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥ ७ ॥ अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते ॥ गुणप्रवाहे पतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥ ८ ॥ तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः विप्लवोभूद्दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनां ॥ ९ ॥ शशान्वराहान्महिषान्गवयान् रुरुशल्यकान् ॥ मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममध्यगात् ॥ १० ॥ ततः क्षुत्तृट्परिश्रांतो निवृत्तो गृहमेयिवान् ॥ कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥ ११ ॥ आत्मानमर्हयाञ्चक्रे धूपलेपस्रगादिभिः ॥ साध्वलंकृतसर्वांगो महिष्यामादधे मनः ॥ १२ ॥ तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कंदर्पाकृष्टमानसः ॥ न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीं ॥ १३ ॥ अन्तः-

---

तो वह राजाही, श्राद्ध आदि के समय में ही, वह श्राद्ध आदि यदि साम्वत्सर आदि होय तब ही, पवित्र पशुओं की ही, वन में ही, जितने से कार्यसिद्धि होजाय उतनी ही हिंसा करे, इसके अतिरिक्त न करे ऐसा नियम है, अर्थात् जीव जो विषयों को भोगें तो जिसमें देह का निर्वाह होजाय उतना ही भोगें ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! जो विद्वान् पुरुष, इस नियम से कर्म करता है वह उस कर्म से ज्ञानी होकर मुक्त होता है, कर्मबन्धन से लिप्त नहीं होता है ७ ॥ और जो पुरुष इस शास्त्रके नियम को लांघकर ' मैं ही कर्त्ता हूँ ' ऐसे अभिमान के साथ कर्म करता है वह उन कर्मों से बँधता है और संसार में पड़कर फिर निषिद्ध कर्मों के आचरणसे ज्ञानभ्रष्ट होकर नरकमें पड़ता है॥८॥इधर उस वन में पुरंजन राजाके चित्रविचित्र पंखवाले बाणोंसे छिन्न भिन्न हुएहैं अङ्ग जिनके ऐसे दुःखित हुए मृगोंका,दयालु पुरुषोंको असह्य होने वाला नाश हुआ॥९॥तिस वनमें खरगोश,शूकर,भैंसे,वनगौ,मृग और सेई इन मेध्य पशु तथा और भी अनेकों प्रकारके पशुओंको वध करता हुआ वह राजा पुरंजन श्रम *को प्राप्त हुआ ॥१०॥ तदनन्तर क्षुधा और प्यास से व्याकुल होने के कारण वनमें से लौटकर घर + आया और स्नान तथा उचित भोजन करके कुछ समयपर्यन्त शय्याका आश्रय लेकर श्रम रहित हुआ११तदनन्तर उस ने सुगन्धि के पदार्थ,चन्दन का उबटना और पुष्पों की माला आदि से अपने को भूषित कर के सकल अङ्गों में यथा योग्य आभूषण धारण करे तथा रानी के समागम की इच्छा करी ॥ १२ ॥ उस समय तरुणाई के मद से उन्मत्त, भोजन आदि से तृप्त, आनन्दयुक्त और कामदेव से व्याकुलचित्त हुए तिस राजा पुरञ्जन ने जिधर तिधर स्त्री को ढूँढा, परन्तु गृहस्थधर्म का कार्य चलानेवाली अपनी सुन्दर स्त्री को उसने कहीं भी नहीं देखा ॥ १३ ॥ हे प्राचीनबर्हि राजन् ! तब वह मन में खिन्न सा होकर रणवास की

---

* स्वप्न में अनेक प्रकार के विषय प्राप्त करके श्रमको प्राप्त हुआ.+ जागृत हुआ.

पुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् ॥ अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ॥ न तथैतर्हि रोचन्ते गृहेषु गृहसंपदः ॥ १४ ॥ यदि न स्या-द्गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ॥ व्यङ्गे रथ इव प्राज्ञः को नामासीत दीन-वत् ॥ १५ ॥ क्व वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसनार्णवे ॥ या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥ १६ ॥ रामा ऊचुः ॥ नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया य-द्व्यवस्यति ॥ भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१७॥ नारद उवाच ॥ पुरंजनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ॥ तत्संगोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥ १८ ॥ सांत्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता ॥ प्रेयस्याः स्ने-हसंरम्भलिंगमात्मनि नाभ्यगात् ॥ १९ ॥ अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोवि-दः ॥ पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्संगलालिताम् ॥ २० ॥ पुरंजन उवाच ॥ नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ॥ कृतागःस्वात्मसात्कृत्वा शि-

स्त्रियों ×से (रानी की सखियों) से बूझने लगा कि—अरी स्त्रियों ! तुम सब अपनी स्वामिनी के साथ पहिले जैसी कुशल थीं, वैसे ही कुशल से तो हो ? क्योंकि—मृगया (शिकार) को जाने से पहिले जैसे घर की सम्पदा घर में शोभित होती थी, तैसी अब शोभित नहीं होती है, इस कारण मैं सन्देह में पड़रहा हूँ ॥ १४ ॥ घर में बहुत सी सम्पदा होनेपरभी यदि माता वा पतिव्रता स्त्री नहीं होय तो, जिस के पहिये आदि अङ्ग टूट गए हैं ऐसे रथ की समान, दुःखदायक घर में कौन चतुर पुरुष दीन की समान वास करेगा ? ॥ १५ ॥ इस कारण तुम मुझ से कहो कि—मेरे दुःख समुद्र में मग्न होनेपर जो पद २ पर मेरी ज्ञान शक्ति को चेतन कर के उस दुःख समुद्र में से मेरा उद्धार करती थी वह मेरी प्रिया स्त्री इस समय कहां है ? ॥ १६ ॥ स्त्रियों ने कहा—हे शत्रु नाशक भूपाल ! तुम्हारी प्रिया ने आज मन में क्या विचारा है सो हम नहीं जानती हैं, क्योंकि—यह देखो—वह यहां विना आस्तरण (विस्तर) की भूमिपर रुष्ट होकर पड़ी हुई है ॥ १७ ॥ नारदजी कहते हैं कि—तब राजा पुरञ्जन ने पृथ्वी पर अस्तव्यस्त पड़ी हुई तिस अपनी स्त्री को देखकर, उस के सङ्ग से जिसका ज्ञान भ्रष्ट होगया है ऐसा वह राजा अत्यन्त व्याकुल हुआ ॥ १८ ॥ खिन्न है मन जिस का ऐसा वह राजा, मधुर वाणी से उस रानी को समझानेलगा परन्तु उसने यह नहीं जाना कि-मेरे ऊपर प्रिया के प्रणय कोप करनेका क्या कारणहै । १९। उसको वशमें करनेमें वह वीर चतुर था, सो उसने उस को धीरे २ समझाया; प्रथम उसने उसके चरणोंपर अपना मस्तक रखकर फिर उसको अपनी जङ्घा के ऊपर बैठाया और लाड़ के साथ उससे कहनेलगा।२०। पुरञ्जनने कहा कि—हेसुन्दरि ! सेवकों को अपराध के अनुसार दण्डदेना, यह स्वामीके

× इन्द्रियों की वृत्तियों से.

क्षौदण्डं न युञ्जते ॥२१॥ परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणाऽर्पितः ॥ बालो न वेद तत्तन्वि बंधुकृत्यममर्षणः ॥ २२ ॥ सा त्वं मुखं सुदति सुभ्र्वनुरागभारव्रीडाविलंबविलसद्धसितावलोकम् ॥ नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥२३॥ तस्मिन्दधे दममहं तव वीरपत्नि योऽन्यत्र भूसुरकुलात्कृतकिल्बिषस्तम् ॥ पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥२४॥ वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं संरंभभीममविमृष्टमपेतरागम् ॥ पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ बिम्बाधरं विगतकुंकुमपङ्करागम् ॥२५॥ तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ॥ का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेगविस्रस्तपौंस्नमुशती न

करने का कार्य है, फिरभी अपराध करनेवाले सेवकों को, स्वामी 'यह हमारा है, ऐसा मानकर' शिक्षा वा दण्ड नहीं देयतो वास्तव में वह सेवक मन्दभाग्य हैं ॥ २१ ॥ हेकृशोदरि ! अपराध करनेवाले सेवकों के ऊपर स्वामी का दण्ड करना उन सेवकों के ऊपर केवल अनुग्रह करने की समान है, परन्तु दण्ड करने से जो सेवक क्रोध मे भरजाता है वह मूर्ख, स्वामी के करेहुए हित को नहीं जानता है, इस कारण यदि मुझ से कोई अपराध बनगया होय तो तू मुझे दण्ड दे, जिससे फिर मैं तेरे उस अपराध को न करूँ ॥ २२ ॥ हेसुन्दर दन्तपङ्क्ति वाली ! हेसुन्दर भ्रुकुटिवाली, हेनिष्कपट मनवाली ! तू हमारी स्वामिनी है; इसकारण जिस में अतिप्रेम और लज्जा होने के कारण उत्पन्नहुए विलम्ब के साथ हास्य पूर्वक अवलोकन शोभा पारहा है, जो नीलवर्ण केशरूप भ्रमरों से भूषित है, जिस के ऊपर सूधी और ऊँची नासिका दीखरही है और जिस में से मधुरभाषण निकलरहा है ऐसा अपना मुख तू, मुझ अपनी कृपा के पात्र को दिखा ॥ २३ ॥ हे वीरपत्नि ! ब्राह्मणभक्त और विष्णुभगवान् के दासों को छोड़ दूसरा जो कोई भी तेरा अपराध करने वाला हो, उसको बता, उस को अभी मैं दण्ड दूँ; क्योंकि-मेरा अपराध करके निर्भय और आनन्द के साथ रहनेवाला पुरुष, त्रिलोकीके भीतर तो क्या बाहरभी मेरी दृष्टि के सामने नहीं पड़ेगा ॥ २४ ॥ हे प्रिये ! आजपर्यंत तेरा मुख, कुमकुम से रहित मलिन, हर्षहीन, कोप के आवेश से भयङ्कर, कान्तिहीन और स्नेहशून्य मैंने कभी नहीं देखा; तथा तेरे सुन्दर स्तनभी शोक के अश्रुओं से भीजेहुए नहीं देखे और जिसपर से केसर की कीच की समान लाल२ ताम्बूल का रङ्ग दूर होगया है ऐसा पकीहुई कँदूरी के समान तेरा अधरभी कभी नहीं देखा; आजही, यह ऐसा क्यों हुआ ? ॥ २५ ॥ इसकारण तेरे क्रोधसे मैं अतिदुःखित होरहा हूँ, सो व्यसन से आतुर हो, तेरी विना आज्ञा के आपही मृगया करनेको वन में गयेहुए और तेरा अपराध करनेवाले परन्तु अपने कोमल मन को तुझ में ही

भजेत कृत्ये ॥ २६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥छ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं पुरञ्जनं सध्र्यग्वशमानीय विभ्रमैः ॥ पुरञ्जनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥ १ ॥ स राजमहिषीं राजन्सुस्नातां रुचिराननां ॥ कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनंददुपागताम् ॥ २ ॥ तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः ॥ न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥३॥ शयान उन्नद्धमदो महामना महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ॥ तामेव वीरो मनुते परं यतस्तमोभिभूतो न निजं परं च यत् ॥ ॥ ४ ॥ तयैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः ॥ क्षणार्धमिव राजेंद्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥ ५ ॥ तस्यामजनयत्पुत्रान्पुरञ्जन्यां पुरञ्जनः ॥ शतान्येकादश वि-

लगानेवाले मेरे ऊपर तू प्रसन्न हो, और प्रसन्न होना तुझे योग्यही है, क्योंकि—कामदेव के वेग से धैर्यहीन और अपने अनुकूल रहकर रतिसुख देनेवाले अपने पति को योग्य कार्य में कौनसी कामिनी स्त्री स्वीकार नहीं करेगी ? ॥ इति चतुर्थस्कन्धमें षड्विंश अध्याय समाप्त ॥ नारदजी कहते हैं कि—हे प्राचीन बर्हिराजन् ! इस प्रकार वह पुरञ्जन राजा की स्त्री, विलासों के द्वारा, अपने पुरञ्जन नामक पति को पूर्णरूप से वश में करके रमण कराती हुई आप भी उस के साथ रमण करनेलगी ॥ १ ॥ और उस राजा पुरञ्जन ने भी, जिस ने उत्तम स्नान करा है, जिसका मुख मनोहर है, जिस ने कुमकुम आदि मङ्गलकारी अलङ्कार धारण करे हैं और जो अन्न आदि का सेवन करके तृप्त हुई है ऐसी उस अपनी रानी को हर्ष के साथ स्वीकार किया ॥ २ ॥ तदनन्तर उसके दृढ़ आलिङ्गन देनेपर जिस ने उस के कन्धे का आलिङ्गन किया है और एकान्त में उसके अनुकूल गुह्य वार्त्तालाप से जिस का विवेक नष्ट होगया है इस कारण ही ज्ञान के साधन आदिकों का कुछ भी आश्रय न करके जिसने केवल उस स्त्री का ही आश्रय करा है ऐसे उस पुरञ्जन राजा ने, जिसका दूर करना कठिन है ऐसे दिन रात्रि रूप काल के वेग को (आयु के नाश होने को) नहीं जाना ॥ ३ ॥ जिसको अज्ञान ने घेर लिया है, जिस का मद अत्यन्त बढ़गया है, जिस के अन्तःकरण में नाना प्रकार के संङ्कल्प विकल्प उठरहे हैं और जो रानी के हाथ का तकिया लगाकर उत्तम शय्या पर शयन कररहा है ऐसे उस पुरञ्जन ने तिस रानी को ही परम पुरुषार्थ माना; अपने स्वरूपभूत परब्रह्म को किंचिन्मात्र भी नहीं जाना ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार काम से मोहित चित्त होकर स्त्री के साथ क्रीड़ा करनेवाले तिस राजा की तरुण अवस्था आधे क्षणभर की समान वीतगई ॥ ५ ॥ हे प्रजा का पालन करनेवाले राजन् ! तिस पुरञ्जन ने अपनी स्त्री के विषैं ग्यारह सौ पुत्र * उत्पन्न करे और माता पिता का यश बढ़ानेवाली, उदारता

* इन्द्रियों के परिणाम ही पुत्र हुए।

रोडायुषो ऽर्धमर्थात्यगात् ॥ ६ ॥ दुहितॄर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः ॥ शीलौदार्यगुणोपेताः पौरञ्जन्यः प्रजापते ॥ ७ ॥ स पंचालपतिः पुत्रान् पितृवंशविवर्द्धनान् ॥ दारैः संयोजयामास दुहितॄः सदृशैर्वरैः ॥ ८ ॥ पुत्राणां चाभवन्पुत्रा एकैकस्य शतं शतं ॥ यैर्वै पौरंजनो वंशः पंचालेषु समेधितः ॥ ॥ ९ ॥ तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु ॥ निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वनुवध्यत ॥१०॥ ईजे च क्रतुभिर्घोरै दीक्षितः पशुमारकैः॥ देवान् पितॄन् भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान्॥११॥ युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः॥आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥१२॥ चण्डवेग इति ख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप॥ गंधर्वास्तस्य वलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥१३॥ गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः ॥ परिवृत्त्या विलुंपति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥१४॥ ते च-

आदि गुणवालीं, एक सौ दश कन्या + उत्पन्न करीं, उन को पौरञ्जनी कहते हैं, इतने ही उसकी आधी आयु × वीतगई ॥ ६ ॥ ७ ॥ तदनन्तर उस पञ्चालपति राजा पुरञ्जन ने पिता के वंश को बढ़ानेवाले अपने पुत्रों का योग्य स्त्रियों † के साथ और कन्याओं का योग्य वरों ‡ के साथ विवाह करादिया ॥ ८ ॥ उन पुत्रों में से भी प्रत्येक के सौ २ पुत्र * हुए, जिन से पुरंजन राजा का वंश पञ्चाल देशों ¶ में फैला ॥ ९ ॥ वह राजा पुरञ्जन, अपने पुत्र, पौत्र, घर, द्रव्यभण्डार, सेवक और देशों में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई ममता से बँधगया ॥ १० ॥ और अनेकों प्रकारके विषय भोगोंकी इच्छा रखकर उसने हे राजन् ! तेरी समान यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करी और जिन पशुओं की हिंसा होतीहै ऐसे घोर यज्ञों के द्वारा देवता, पितर और भूत पतियों की आराधना करी ॥ ११ ॥ इसप्रकार आत्महितकारी योग्य कर्म्मों में ध्यान न देकर कुटुम्ब में ही आसक्तहुए तिस राजा पुरंजन को, जिन को स्त्रियें ही प्रिय हैं ऐसे पुरुषों को प्रिय न लगनेवाला वृद्धावस्था का समय आकर प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! चण्डवेग ⁂ नामक एक गन्धर्वों का राजा है, उसके अधिकार में तीन सौ साठ बलवान् गन्धर्व ÷ हैं ॥ १३ ॥ और उन गन्धर्वों में प्रत्येक की एक २ शुक्ल और कृष्ण इसप्रकार तीन सौ साठ गन्धर्वी § स्त्रियें हैं; उन गन्धर्वोंसे मिलीहुई स्त्रियें विचरतीं २ सकल, भोगके विषयों के साथ रचीहुई पुरंजन राजा की नगरी को लूटरही हैं ॥ १४ ॥ वह चण्डवेग के

+ बुद्धि की वृत्ति, ' पुत्रों की संख्या अधिक और कन्याओं की संख्या कम कहने का कारण, गृहस्थाश्रम की सुन्दरता दीखनाऔर कथा की सुन्दरता है. × आधी आयु वीतगई, यह भी कथा की सुन्दरता के निमित्त कहा है । † हित अहित चिन्तनरूप कन्याओं से ‡ विषय भोगरूप जामाताओं के साथ । * कर्म । ¶ शब्द स्पर्श आदि विषयों में. ⁂ सम्वत्सर. ÷ दिन. § रात्रि.

ड्वेगानुचराः पुरंजनपुरं यदा ॥ हंतुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत्प्रजागरः ॥ १५ ॥ स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतं समाः ॥ पुरंजनपुराध्यक्षो गन्धर्वैर्युयुधे बली ॥ १६ ॥ क्षीयमाणे स्वसंबंधे एकस्मिन्बहुभिर्युधा ॥ चिंतां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबांधवः ॥ १७ ॥ स एव पुर्यां मधुभुक्पंचालेषु स्वपार्षदैः ॥ उपनीतं बलिं गृह्णन् स्त्रीजितो नाविदद्भयम् ॥ १८ ॥ कालस्य दुहिता काचित्रिलोकीं वरमिच्छती ॥ पर्यटंती न बर्हिष्मन्प्रत्यनन्दत कश्चन ॥ १९ ॥ दौर्भाग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा ॥ या तुष्टा राजर्षये तु वृताऽदात्पूरवे वरम् ॥ २० ॥ कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् ॥ वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ॥ २१ ॥ मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहं ॥

सेवक, जब पुरंजन राजा के नगर को लूटकर लेजानेलगे तब उस नगर में के प्रजागर नामक * पांच फनवाले नागने उनको रोका ॥ १५ ॥ हे राजन् ! पुरंजन के नगर की रक्षा करनेवाले उस बलवान् एकही नाग ने, उन सात सौ वीस × के साथ सौ वर्षपर्यन्त युद्धकिया ॥ १६॥ सात सौ वीस के साथ बहुत काल पर्यन्त युद्ध करके अपना संवन्धी वह इकला ही नाग थकगया है ऐसा जानकर राज्य (नगर वाहर के देश) और नगर का हितकारी स्वमी वह राजा पुरंजन घबड़ाकर बड़ी चिन्ता में पड़गया ॥ १७॥गन्धर्वों के साथ नाग युद्ध करता रहा तबतक राजाको विदित क्यों नहीं हुआ, यदि ऐसा कहो तो–वह राजा उस नगरीमें और बाहरके पञ्चाल देशोंमें मद्य की समान असावधान करने वाले विषयों को भोगताथा, अपने दूतों के लाकर दिये हुए करके द्रव्य को स्वीकार करताथा और स्त्रीको उसने अत्यन्त ही वशमें करलियाथा इसकारण उसने आतेहुए भयको जानानहीं॥१८॥इसप्रकार वह बड़ी चिन्तामें पड़ाथा कि–तभी उसको एक और दूसरा भय आकर प्राप्त हुआ कि–हे प्राचीन बर्हिराजन् ! पहिले कालकी एककन्या + अपने को वर मिलनेकी इच्छासे त्रिलोकी भरमें फिरी परन्तु उसको किसी ने स्वीकार नहीं किया१९ क्योंकि–वह आपही, भाग्यहीन होने के कारण 'दुर्भगा' नाम से प्रसिद्ध थी, पहिले केवल राजा पुरुने ही उस को कुछ समय पर्यन्त वराथा, इसकारण उस ने प्रसन्न होकर राजा को राज्य की प्राप्तिरूप वर दियां था ॥ २० ॥ इस प्रकार वर देखने के निमित्त सर्वत्र फिरतीहुई तिस कन्याने एकसमय ब्रह्मलोक से पृथ्वीपर आयेहुए मुझको (नारद)को, मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भी काम मोहित होकर, तुम मेरे पति बनो ऐसा कहनेलगी॥२१॥ तब मेरे निषेध करने पर उसने मेरे ऊपर क्रोध करके मुझ को बड़भारी शाप दिया कि–

* पांच प्रकारका प्राण। × प्रत्येक वर्ष के ३६० दिन ३६० रात्रि सब ७२० होते हैं. + जरा (वृद्धावस्था)।

स्थातुमर्हसि ॥ नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ॥ २२ ॥ ततो विहतसंकल्पा कन्यका यवनेश्वरम् ॥ मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥ २३ ॥ ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिं ॥ संकल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥ २४ ॥ द्वाविमावनुशोचन्ति बालावसदवग्रहौ ॥ यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥ २५ ॥ अथो भजस्व मां भद्र भजन्तीं मे दयां कुरु ॥ एतावान्पौरुषो धर्मो यदार्तीननुकम्पते ॥ २६ ॥ कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वरः ॥ चिकीर्षुर्देवगुह्यं ससस्मितं तामभाषत ॥ २७ ॥ मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना ॥ नाभिनन्दति लोकोऽयं त्वामभद्रामसंमतां ॥ ॥ २८ ॥ त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् ॥ याहि मे पृतनायुक्ता

अरे! नारदमुने मैने तुमसे याचना करी तब भी तुम मुझे स्वीकार नहीं करतेहो,इसकारण तुम बहुत समय पर्यन्त एक स्थानपर नहीं रहसकोगे॥२२॥मैंने, उसका तिरस्कार करा, इसकारण मुझे वरने का उसका सङ्कल्प टलगया, तदनन्तर उस कन्याने मेरे कहेहुए भय नामक ‡ यवनाधिपति § के समीप जाकर उस को वरने की उस से प्रार्थना करी॥२३॥ हे वीर! तुम यवनों के राजाको वरनेकी मेरी इच्छा है,सो मैं तुझे पति वरतीहूँ, क्योंकि-तेरे विषय में प्राणीमात्र का कराहुआ सङ्कल्पभी निरर्थक नहीं होताहै ॥२४॥ हेनाथ! जो कोई लौकिक व्यवहार से अथवा शास्त्र के अनुसार जो दान करनेके योग्य हो उस का दान नहीं करता है और जोकुछ लोक--शास्त्र--व्यवहार के अनुसार उस के स्वीकार करनेयोग्य हो उस को स्वीकार नहीं करता है इनदोनोही दुराग्रही अज्ञानी पुरुषोंकी लोक निन्दा करते हैं ॥ २५ ॥ इसकारण तेरी सेवा के निमित्त प्राप्तहुई मुझको तू स्वीकार कर और मेरे ऊपर दयाकर, दुःखी प्राणियों के ऊपर दयाकरनाही पुरुषों का मुख्य धर्म है ॥ २६ ॥ हे राजन्! इसप्रकार कालकन्या के कथन को सुनकर वह यवनाधिपति, देवताओं का कुछ गुप्तकार्य † कहने की इच्छा मन में रखकर उस से कहने लगा कि-२७ हे कालकन्ये! मैंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे तेरे निमित्त एक पतिका विचार कराहै, तू लोकोंका अनिष्ट करनेवाली है इसकारण लोकोंको प्रिय नहीं लगती है अतएव यह लोक तुझे स्वीकार नहीं करता है ॥ २८ ॥ सो तू कहां से कहां फिरती है, यह किसी के भी ध्यानमें नहीं आवेगा, इसप्रकार वर्त्ताव करके कर्म के द्वारा रचेहुए सब ही लोकों का तू बलात्कार से उपभोग कर, तेरे प्रारब्ध सेही सब ही पुरुष तेरे पति होनेवाले हैं, यदि कहेकि मैं सब के प्रतिकूल होऊँगी तो सकल लोक मिलकर मेरे ऊपर प्रहार करैंगे सो तू मेरी सेना *

‡ अति भयंकर होने के कारण मृत्यु को ही भय कहा है § आधि व्याधिरूप यवनों का राजामृत्यु † मरण * रोग आदि के समूह को ।

प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥ २९ ॥ प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ॥ चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः ॥ ३० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः प्रज्वार॥ कालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमां ॥ १ ॥ त एकदा तु रभसा पुरञ्जनपुरीं नृप ॥ रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥२॥ कालकन्यापि बुभुजे पुरंजनपुरं बलात् ॥ ययाऽभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसारतामियात् ॥ ३ ॥ तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतो दिशम् ॥ द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन्सकलां पुरीं ॥ ४ ॥ तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरंजनः ॥ अवापोरुविधांस्तापान्कुटुंबी ममताकुलः ॥५ ॥ कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ॥ नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वयवनैर्बलात् ॥ ६ ॥ विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् ॥ पुत्रान्पौत्रानुगामात्यान् जायां च गतसौहृदां ॥ ७॥ आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पंचालानरिदूषितान् ॥ दुरंतचिंतामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रि-

---

को साथ लेकर जा सो तू ही सब लोकों का नाश करेगी ॥ २९ ॥ यह प्रज्वार नामक मेरा भ्राता है और तू मेरी भगिनी हो, सोमैं तुम दोनों के साथ किसी के देखने में न आता हुआ, यवन आदि कों की भयङ्कर सेना को साथ लेकर इसलोक में विचरूँगा ३० इति चतुर्थ स्कन्ध में सप्तविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ नारदजी कहते हैं कि–हेप्राचीन बर्हिराजन् ! भयनामक यवनेश्वर के जो आज्ञाकारी सेनापति थे वह प्रज्वार और कालकन्या के साथ इस पृथ्वीपर विचरते थे ॥ १ ॥ हे राजन् ! एक समय उन्होने, वृद्ध सर्प की रक्षा करी हुई और भूतल पर सकल भोग की सामग्रियों से तिस पुरञ्जन राजा की नगरी को बलात्कार से घेरलिया ॥ २ ॥ और जिसका व्याप्त कराहुआ पुरुष तत्काल वीर्य हीन होजाता है वह काल कन्या भी बलात्कार से पुरञ्जन राजा के नगर को भोगने लगी ॥ ३ ॥ उस की उपभोग करीहुई उस सकल नगरी में यवन, चारों दिशाओं के चारों द्वारों में घुसकर उसका विध्वंस करनेलगे ॥ ४ ॥ इसप्रकार उस नगरी के अत्यन्त पीड़ित होनेपर उसका अभिमान रखनेवाले और उसकी ममता से व्याकुलहुए राजा पुरञ्जन को नानाप्रकार के ताप होनेलगे ॥ ५ ॥ तदनन्तर कालकन्या के दृढ़ आलिङ्गन करने से निस्तेज हुआ और गन्धर्व तथा यवनो ने बलात्कार से जिसका ऐश्वर्य हरलिया है और जिसका चित्त विषयभोग में गुँथाहुआहै, बुद्धि नष्ट होरही है ऐसा दीनरूप वह राजा, पुरञ्जन- मेरी नगरीका विध्वंस होगया, पुत्र, पौत्र सेवक और मन्त्री प्रतिकूल होकर मेरा अनादर करने लगे, मेरी स्त्री अब मेरे ऊपर प्रेम नहीं करतीहै, मेरीकन्याको कालकन्या ने ग्रसलिया और मेरे पञ्चालदेशको शत्रुओंने नष्टभ्रष्ट करडाला, ऐसादेखकर अपार चिन्तामेंपड़ा उससमय उसको,

यौम् ॥ ८ ॥ कामानभिलषन्दीनो यातयामांश्च कन्यया ॥ विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥ ९ ॥ गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम् ॥ हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥ १० ॥ भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः ॥ ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥ ११ ॥ तस्यां संदह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः ॥ कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः ॥ १२ ॥ यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥ १३ ॥ न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः ॥ गन्तुमैच्छत्ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥ १४ ॥ शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः ॥ यवनैररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह ॥ १५ ॥ दुहितॄः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् ॥ स्वत्वावशिष्टं यत्किंचिद्गृहकोशपरिच्छदम् ॥ १६ ॥ अहं ममेति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही ॥ दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उ-

प्राप्तहुए सङ्कटको दूरकरनेके निमित्त कोई उपाय नहीं सूझा॥६।७।८॥तदनन्तर कालकन्याके उपभोग करनेके कारण सारहीनहुएभी विषयोंकी अभिलाषा करनेवाला, और परलोककी गति तथा इस लोकके पुत्रस्नेह आदि यह दोनों ही जिसके नष्टहोगएहैं तथापुत्रोंका और स्त्री का लाड़ करनेवाले तिस राजाने,गन्धर्व और यवनोंकी घेरीहुई तथा कालकन्याकी नष्टभ्रष्ट करीहुई अपनी नगरी को इच्छा न होनेपर भी परमकष्ट से, मन में छोड़जाने का विचार किया ॥ ९ ॥ १० ॥ सो इतने ही में भयनामक यवनेश्वर का बड़ा भ्राता प्रज्वार तहां आ पहुँचा, उस ने अपने भ्राता का प्रिय करने के निमित्त तिस सारी नगरी में आग लगादी ॥ ११ ॥ सो जब वह नगरी जलनेलगी तब नगरनिवासी, सेवक, स्त्री और पुत्रादि सन्तानके साथ तहां, संसारयात्रा करनेवाले तिस राजा पुरञ्जन को अत्यन्त ताप होनेलगा ॥ १२ ॥ उससमय कालकन्या की ग्रसीहुई उस नगरी में, जिस के रहने के सब स्थानों में यवनों ने प्रवेश करलिया है और जिस में प्रज्वार ने परम उपद्रव करा है ऐसी नगरी की रक्षा करने वाला वह पांच फनवाला नाग परमभयभीत हुआ ॥ १३ ॥ अति कष्ट प्राप्त होने के कारण थरथर कांपनेवाला वह नाग जब उस नगरी की रक्षा करनेको समर्थ नहीं हुआ,तब 'जैसे अग्नि से जलतेहुए वृक्ष की खोकल में से सर्प निकलकर जाने की इच्छा करताहै तैसेही, उस ने उस नगरी में से निकलकर जानेकी इच्छा करी ॥ १४ ॥ तब जिसकी शक्ति को गन्धर्वों ने हरलियाहै, जिसके अवयव शिथिल होगये हैं ऐसा वह नागनगर में से निकलकर जाने लगा, उसी समय शत्रु रूप यवनों ने उस को तहां ही रोकदिया सो वह रुदन करनेलगा ॥ १५ ॥ इस समय, स्त्री आदि सब से वियोग होगा ऐसा समय आगया, यह देखकर गृह में अत्यन्त आसक्त वह गृहस्थाश्रमी राजा पुरञ्जन, घर आदि पदार्थों में 'मैं और मेरा' ऐसी

परस्थिते ॥ १७ ॥ लोकांतरं गतवति मय्यनाथा कुटुंबिनी ॥ वर्तिष्यते कथं त्वेषा बालकाननुशोचती॥१८॥न मय्यनाशिते भुंक्ते नास्नाते स्नाति मत्परा॥ मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात् ॥ १९ ॥ प्रबोधयति मामज्ञं व्युषिते शोककर्शिता ॥ वर्त्मैतद्गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥ २० ॥ कथं नु दारका दीना दारकीर्वा परायणाः ॥ वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥ २१ ॥ एवं कृपणया बुद्ध्या शोचंतमतदर्हणम् ॥ ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाभ्यपद्यत ॥ २२ ॥ पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयं ॥ अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥ २३ ॥ पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजंगमः ॥ यदा तमेवानु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥ २४ ॥ विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा ॥

बुद्धि रखकर दीन होता हुआ, मेरे पुत्री, पुत्र, पौत्र, पुत्र वधू, जामाता, सेवक और अपने माने हुए जो कुछ घर, द्रव्यभण्डार और संसार का कार्य सिद्ध करनेवाले पात्र आदि पदार्थ थे उन की चिन्ता करने लगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ मेरे परलोकगामी होनेपर अनाथ और पुत्र आदि कुटुम्बवाली यह मेरी स्त्री बालकों का शोक करती हुई कैसे निर्वाह करेगी ? ॥ १८ ॥ जो मेरी सेवा में तत्पर रहती है, मेरे भोजन विना करे आप भोजन नहीं करती है, मेरे स्नान विना करे आप स्नान नहीं करती है, मेरे क्रोध करने पर भयभीत होती है, मेरे ललकारने पर भय से मौन होकर बैठजाती है, उत्तर नहीं देती है ॥ १९ ॥ किसी समय व्यवहार में मुझे कुछ विस्मरण होजाय तो तत्काल स्मरण दिलादेती है, मेरे देशान्तर को चलेजानेपर विरह के शोक से दुर्बल होजाती है, फिर क्या यह मेरे पीछे गृहस्थाश्रम का मार्ग चलावेगी ? या मेरे वियोग से मरण को प्राप्त होजायगी ? ॥२० ॥ मेरे परलोकगामी होनेपर जिन का दूसरा कोई आश्रय नहीं है ऐसे यह मेरे पुत्र और कन्या कैसे निर्वाह करेंगे ? जैसे समुद्र में नौका फटजाने पर पुरुषों की दुर्दशा होजाती है वैसी ही दशा कहीं इनकी भी तो नहीं होगी ? ॥ २१ ॥ इसप्रकार मोहित हुई बुद्धि से शोक करनेवाले परन्तु वास्तव में शोक करने के अयोग्य इस पुरञ्जन को लेकर जाने की इच्छा करनेवाला भयनामक * यवनेश्वर तहां आया ॥ २२ ॥ वह यवन + उस को पशु की समान पाशों से बांधकर जब अपने घर ‡ को लेचले तब उसके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले जो नाग § आदि सेवक थे वह भी अत्यन्त व्याकुल होकर शोक करते हुए उसके साथ चलदिये ॥ २३ ॥ जब यवनों का पकड़ा हुआ वह नाग परम सङ्कट से नगरी को छोड़ कर बाहर को निकलगया, सो उसी समय वह नगरी ⩧ अस्तव्यस्त होकर अपने वास्तविक स्वरूप ÷ में जामिली ॥ २४ ॥ इस प्रकार प्रबल यवन के बला-

* मृत्यु. + यमदूत. ‡ यमलोक में. § प्राण और इन्द्रियें आदि. ⩧ शरीर. ÷ पञ्चमहाभूत में.

नाविन्दत्तमसाविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥ २५ ॥ तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना ॥ कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् ॥ २६ ॥ अनन्तपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः ॥ शाश्वतीरनुभूयार्ति प्रमदासंगदूषितः ॥ २७ ॥ तामेव मनसा गृह्णन्बभूव प्रमदोत्तमा ॥ अनन्तरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥ २८ ॥ उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः ॥ युधि निर्जित्य राजन्यान्पाण्ड्यः परपुरंजयः ॥ २९ ॥ तस्यां स जनयांचक्रे आत्मजामसितेक्षणाम् ॥ यवीयसः सप्त सुतान्सप्तद्रविडभूभृतः ॥ ३० ॥ एकैकस्याभवत्तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् ॥ भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वन्तरं परं ॥ ३१ ॥ अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् ॥ यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्म-

त्कार से खैंचने पर, उस समय भी अज्ञान से व्याप्त हुए तिस राजा पुरञ्जन ने अपने पूर्व कालके हितकारी मित्र का ÷ स्मरण नहीं किया यदि स्मरण करता तो उस ने उसी समय उस को यवन से छुटा दिया होता ॥ २५ ॥ तदनन्तर इस निर्दयी राजा ने पहिले जो यज्ञ में पशुओं का वध कराथा, वह उसकी दी हुई पीड़ा को स्मरण कर के क्रोध में होते हुए, नाना प्रकार के भयंकर वेश धारकर कुठारों से उसको काटने लगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर जिसकी स्मृति नष्ट होगई है और जो स्त्री के सङ्ग से दूषित हुआ है ऐसा वह राजा पुरञ्जन अपार अन्धकार -।- में डूबकर तहां अनन्त वर्षों पर्यन्त दुःखका अनुभव करके २७ तहांसे छूटते ही वह अपनी स्त्री का ही मन से चिन्तवन करता हुआ विदर्भनामा* उत्तम राजा के घरमें उत्तम ÷ स्त्रीरूपसे उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस वैदर्भी के विवाह के योग्य होनेपर, उसके स्वयम्वर के निमित्त पिता ने ऐसा प्रण कियाथा कि--जो कोई क्षत्रिय बलवान् हो, वह अपना पराक्रम दिखाकर इसको वरे ' उसीप्रकार शत्रुओं के नगरों को जीतकर वश में करलेनेवाले मलयध्वज × नामक पाण्ड्य राजा ने युद्ध में क्षत्रियों को जीतकर उसको वरा ॥ २९ ॥ उसके तिस विदर्भ कन्या के विषैं सुन्दर स्वरूपवाली कृष्णेक्षण ऽ नामवाली एक कन्या और उससे छोटे सातपुत्र ¶ उत्पन्नहुए जो आगे को सात द्रविड़देशों के राजे हुए ॥ ३० ॥ हे राजन् तिस एक २ पुत्र के दश २ करोड़ ! पुत्र हुए, जिसके वंश के पुरुष ‡ आगे मन्वन्तर पर्यन्त तथा उसके अनन्तर भी कितने ही समय पर्यन्त पृथ्वी का पालन करेंगे ॥ ३१ ॥ पहिले कहेहुए मलयध्वज

÷ ईश्वर का. -।- नरक में. । * पवित्र देश में. ÷ पतिव्रता स्त्री का निरन्तर ध्यान लगाने के कारण और पूर्वपुण्य के प्रभावसे वह धर्मात्मा के समागम को प्राप्त होकर शुद्धचित्त हुआ. × भगवद्भक्त. ऽ कृष्ण सेवा की रुचि. ¶ श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरण सेवा, अर्चन, वन्दन, और दास्यभाव यह सात प्रकार की भक्ति और सख्य तथा आत्मनिवेदन इन दोनोंका आगे साक्षात् भगवान् उपदेश करेंगे अतः यहां सात प्रकार की ही भक्ति कही है. ! भक्ति के अनेकों प्रकार. ‡ भक्ति के सम्प्रदाय. -

जो मुनिः ॥ ३२ ॥ विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥ ३३ ॥ हित्वा गृहान्सुतान्भोगान्वैदर्भी मदिरेक्षणा ॥ अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ॥ ३४ ॥ तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका ॥ तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन् ३५॥ कंदाष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः ॥ वर्तमानः शनैर्गात्रकर्षणं तप आस्थितः ॥ ३६ ॥ शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये ॥ सुखदुःखे इति द्वंद्वान्यजयत्समदर्शनः ॥ ३७ ॥ तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः ॥ युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥ ३८ ॥ आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः ॥ वासुदेवे भगवति नान्यद्वेदोद्वहन् रतिं ॥ ३९ ॥ स व्याप-

राजाकी शम दम आदि व्रतों को धारण करनेवाली कृष्णेक्षणा नामक कन्या के साथ अगस्त्य ऋषि × ने विवाह करलिया,उसके विषैं उनका दृढ़च्युत नामक ÷ मुनि पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र इध्मवाह ÷ हुआ ॥ ३२ ॥ इधर उस मलयध्वज राजर्षि ने, पुत्रोंको पृथ्वी का विभाग करके देदिया और मन में कृष्णके आराधन की इच्छा करके कुलपवर्त के ऊपर चलेगये ॥ ३३ ॥ उस समय, जैसे चन्द्रमा की प्रभा चन्द्रमा के पीछे २ जाती है तैसेही दूसरों को मोहित करनेवाले कटाक्षों वाली वह विदर्भराजकुमारी अपने घरके विषयभोगों को और पुत्रों को त्यागकर अपने पति पाण्ड्यराजा मलयध्वजके पीछे २ वनमें को चली गई ॥ ३४ ॥ तहां चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी और वटोदका यह नदियें थीं, उनके पवित्र जलसे वह मलयध्वज राजा अपने भीतर और बाहरके मलको धोकर; कन्द, बीज, मूल, फल, फूल, पत्ते, तृण और जलके द्वारा शरीर का निर्वाह करता हुआ धीरे २ शरीर को सुखानेवाला तप करनेलगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाले तिस मलयध्वज राजा ने, शीत–उष्ण, वायु–वर्षा, भूँख–प्यास, प्रिय–अप्रिय, सुख–दुःख, यह द्वन्द्व, चित्त को विक्षेप न करें, इसप्रकार वश में करलिये ॥ ३७ ॥ तपस्या, उपासना, अहिंसा आदि यम और जप आदि नियमों के द्वारा जिसकी कामवासनादि भस्म होगई हैं और जिसने इन्द्रिय, प्राण तथा चित्तको जीतलिया है ऐसा वह राजा, ब्रह्म और जीव की एकता की भावना करने लगा ॥ ३८ ॥ इसप्रकार भावना करते २ देवताओं के सौ वर्ष पर्यन्त वृक्षके ठुण्ट की समान वह एक स्थान पर निश्चल रहा; वासुदेव भगवान् के विषैं प्रीति करनेवाले तिस राजा ने, आत्मस्वरूप को छोड़ देह आदि कुछ नहीं जाना ३९ हे राजन! इसप्रकार भगवान् के विषैं तत्पर हुआ वह राजा मलयध्वज, जैसे प्राणी

× मनने. ÷ वैराग्य. ÷ गुरुकी शरणमेंजाना।

कृतयात्मानं व्यतिरिक्ततयात्मनि॥ विद्वान्स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराम ह ॥ ४०॥ साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप ॥ विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥ ४१ ॥ परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथात्मनि ॥ वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥ ४२॥ पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् ॥ प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान्सा पतिदेवता ॥ ४३ ॥ चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा ॥ बभावुपपतिं शान्ता शिखा शान्तमिवानलम् ॥ ४४ ॥ अजानती प्रियतमं यदोपरतमङ्गना ॥ सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरत् ॥ ४५ ॥ यदा नोपालभेताङ्घ्रावूष्माणं पत्युरर्चती ॥ आसीत्संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा ॥ ४६ ॥ आत्मानं शोचती दीनमबन्धुं विक्लवाऽश्रुभिः। स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥ ४७ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलाम् ॥ दस्युभ्यः

को स्वप्न में ' मैं शरीर से भिन्न हूँ ' ऐसा ज्ञान होता है तैसेही , साक्षात् भगवान् श्रीहरिरूप गुरु ने जिसका,अन्तःकरण में प्रकाश करा है ऐसे सब ओर से प्रकाशवान्, विशुद्ध ज्ञानदीपक से अपने में,अन्तःकरण की वृत्तियों के साक्षी आत्मा को 'मैं देह आदि उपाधियों से पृथक् व्यापक ब्रह्मरूप हूँ ' ऐसा जानता हुआ विराम को प्राप्त अर्थात् परब्रह्म में आत्मा को और आत्मा में परब्रह्म को अभेद बुद्धि से देखते २ उस देखने के अनुसन्धान को भी त्यागकर देह आदि के बन्धन से मुक्त होगया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ इधर वह पतिव्रता विदर्भराजकी कन्या,विषयभोगों को त्यागकर परमधर्मज्ञानी उस अपने मलयध्वज नामक पति की वन में प्रेमपूर्वक सेवा करती रही ॥ ४३ ॥ वह वल्कल पहिरनेवाली, व्रत करके दुर्बल हुई, चोटी आदि न होने के कारण केशों की जटारूप एक वेणी को धारण करनेवाली वह वैदर्भी, जैसे शान्त हुए अग्नि के समीपउस की धूमरहित ज्वाला शोभित होती है तैसेही शोभित हुई ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! वह मलयध्वज राजा, देह को त्यागकर चलागया परन्तु उसका आसन वैसे ही स्थिर रहा, इस कारण जबतक तिस वैदर्भी को, मेरा प्रियतमपति, देह को त्यागकर चलागया. यह वृत्तान्त मालूम नहींहुआ तबतक वह उसके समीप जाकर पहिले की समान शुश्रूषा करती रही४५एससमय वह पतिके चरणोंकी सेवा करने लगी तब उसको उन चरणोंमें उष्णता प्रतीत नहीं हुई तब जैसे हरिणों के समूह में से बिछुड़ीहुई हरिणी वन में व्याकुल होती है तैसे व्याकुल हुई॥ ४६ ॥और पतिके विना दीनहुई अपना शोक करनेवाली तथा विह्वल हुई वह वैदर्भी तिस वनमें दुःखके अश्रुओंसे अपने स्तनोंको सींचती हुई ऊँचे स्वरसे रुदन करने लगी ॥४७॥ वह कहनेलगी कि—हे राजर्षे ! उठ,उठ, चोरोंसे और अधार्मिक राजाओंसे भयभीत हुई इस समुद्र पर्यन्त की पृथ्वी की रक्षा कर॥ ४८॥ हे प्राचीनबर्हिराजन् ! पतिके

क्षत्रबन्धुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥ ४८ ॥ एवं विलपती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् ॥ पतिता पादयोर्भर्तू रुदन्त्यश्रूण्यवर्तयत् ॥ ४९ ॥ चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् ॥ आदीप्य चानुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥ ॥ ५० ॥ तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान् ॥ सान्त्वयन्वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि ॥ जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥ ५२ ॥ अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे ॥ हित्वा मां पदमन्विच्छन्भौमभोगरतो गतः ॥ ५३ ॥ हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ ॥ अभूतामन्तरावौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ ५४ ॥ स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् ॥ विचरन्पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ॥ ५५ ॥ पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् ॥ षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्रीधवम् ॥ ५६ ॥ पञ्चेन्द्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ॥ तेजोऽबन्नानि

पीछे पीछे वनमें गई हुई वह कोमलाङ्गी स्त्री इसप्रकार विलाप करते करते पतिके चरणोंपर गिरकर नेत्रों में से अश्रुधारा वहानेलगी ॥ ४९ ॥ अन्त में रोते २ उस ने काष्ठों की चिता बनाकर उसके ऊपर पति का शरीर रख अग्नि लगादी और पति के साथ सहगमन करने का निश्चय करा ॥५०॥ हे प्रभो राजन् ! इतने ही में तहां अति प्राचीन काल का उसका + मित्र × कोई एक आत्मज्ञानी ब्राह्मण आकर हृदय में बिंधनेवाले प्रिय वचनों से, उस रुदन करनेवाली वैदर्भी का सान्त्वन करता हुआ कहने लगा ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि– अरी तू कौन है ? किस की है ? और जिस का शोक कर रहा है वह यहां सोनेवाला तेरा कौन है ? जिसके साथ तू पहिले विचरती थी तिस मुझ मित्र को अब पहिचानती है क्या ? ॥ ५२ ॥ और हे मित्र ! तुम्हारा अविज्ञात नामवाला एक मित्र था, यह तुम्हें स्मरण है क्या ?. अरे ! तुझे पृथ्वी पर के भोगों को भोगने की इच्छा हुई इस कारण तू तिस इच्छा के योग्य स्थान को खोजता हुआ मुझ मित्र को छोड़कर चला गया, इस कारण तुझे यह अनर्थ प्राप्त हुआ ॥ ५३ ॥ हे श्रेष्ठ ! तू और मैं दोनो ही मानस (अन्तःकरण) सरोवर में रहनेवाले हंस हैं; पहिले ÷ हम सहस्र वर्ष पर्यन्त (महाप्रलय के समाप्त होने पर्यन्त) घर के विना ही रहते थे ॥ ५४ ॥ हे मित्र ! वही तुम मुझे त्यागकर ग्राम्य सुखों को भोगने की इच्छा से पृथ्वीपर गये और तहां फिरते २ किसी एक स्त्री के रचे हुए नगर को देखा ॥ ५५ ॥ उस नगर के चारों ओर पाँच बगीचे थे, उसके नौ द्वार थे, एक रक्षक था, तीन कोट थे, उनमें इच्छित पदार्थ देनेवाले छः वैश्य थे, पाँच बाजारथे, उनके पांच उत्पत्तिस्थानथे, उसकी स्वामिनी एक स्त्री थी॥५६॥ हे राजन् !

+ पुरातन का । × ईश्वर । ÷ प्रलयकाल के समय ।

कोष्ठानि कुलमिंद्रियसंग्रहः ॥ ५७ ॥ विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया ॥ शक्त्यधीशः पुमांस्त्वत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ॥ ५८ ॥ तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ॥ तत्संगादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥ ५९ ॥ न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव ॥ न पतिस्त्वं पुरंजन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥ ६० ॥ माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीं ॥ मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ॥ ६१ ॥ अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भो ॥ न नौ पश्यंति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥ ६२ ॥ यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ॥ द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवांतरमावयोः ॥ ६३ ॥ एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ॥

इनका अर्थ यहहै कि—शब्द आदि पाँच विषयही बगीचे थे, नौ इन्द्रियोंके छिद्र ही द्वार थे, तेज जल और पृथ्वी यह तीन कोट थे, पाँच ज्ञानेन्द्रियें और एक मन यह छः वैश्य(व्यापारी) थे॥५७॥कर्म करनेमें जिनकी शक्तिहै ऐसी यह पाँच कर्मेन्द्रियें तहाँका बाजारथा, पञ्चमहाभूत उसका व्ययरहित उत्पत्ति का स्थान था, बुद्धि जिसकी शक्ति(स्वामिनी)है वह पुरुष इस देहरूप नगरी में प्रवेश करनेपर उस बुद्धि के वश में होकर ऐसा होजाता है मानो अपने स्वरूप को पहिचानता ही नहीं ॥ ५८ ॥ हे प्रभो मित्र ! तूने उस नगरी में प्रवेश किया था कि—उसी समय तहाँ एक स्त्री ने तुझे मोहित करलिया, फिर उस के साथ रमण करता हुआ तू अपने ब्रह्मरूप को विसरकर उस की सङ्गतिसे तू ऐसी इस दुःखदायक दशा को प्राप्त हुआ ॥५९॥ हेमित्र ! तू विदर्भराजकी कन्या नहीं है यह वीर मलयध्वज तेरा पति नहीं है, तथा जिसने तुझे नौ द्वार की नगरी में रोका था उस पुरञ्जन का भी तू पतिनहीं है ॥ ६० ॥ अरे सखा ! पूर्वजन्म में पुरुष था और इससमय पतिव्रता स्त्री हूँ ऐसा जोतू जानता है यह सब मेरी रचीहुई माया है, तू वह दोनों नहीं है, हम दोनो ही हंस हैं, हमारी जो वास्तविक दशा है, वह तुमसे कहताहूँ, उस को सुनो ॥ ६१ ॥ हे मित्र ! मैंही (ब्रह्मही) तू है, तू मुझ से भिन्न नहीं है, और तूही मैं हूँ, यह ध्यान में ला क्योंकि विवेकी पुरुष, हम दोनो में कभी थोड़ासाभी भेद नहीं मानते हैं ॥ ६२ ॥ जैसे पुरुष अपने एक ही शरीर को दर्पण में स्थिर, मोटा, तथा निर्मल और दूसरोंके नेत्रों में चञ्चल, छोटा और मलिन ऐसे दो प्रकारका देखता है तैसेही हम दोनों में भी भेद भासता है अर्थात् विद्या और अविद्या इनदो उपाधियों के कारण हम में, सर्वज्ञत्व आदि और अज्ञता आदि धर्म भासते हैं वास्तवमें हम में कोई भेद नहीं है ॥ ६३ ॥ इसप्रकार हंस ने (ईश्वर ने) तिस मानसरोवर में के हंसको (जीवको) सावधान करा तब वह अपने स्वरूप में स्थित होकर अपने मित्र के वियोग के कारण विसरीहुई स्मृति उस को फिर प्राप्त

स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामपि पुनः स्मृतिम् ॥ ६४ ॥ बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ॥ यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः ॥ ६५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ७ ॥ प्राचीनबर्हिरुवाच ॥ भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ॥ कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पुरुषं पुरञ्जनं विद्याद्यद्व्यनक्त्यात्मनः पुरम् ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥ २ ॥ योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः ॥ यन्न विज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥ ३ ॥ यदा जिघृक्षुः पुरुषः कार्त्स्न्येन प्रकृतेर्गुणान् ॥ नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साध्विति ॥ ४ ॥ बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् ॥ यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन्पुमान्भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान् ॥

हुई (उस को मैं ही ब्रह्म हूँ ऐसा ज्ञान हुआ) ॥ ६४ ॥ हे प्राचीनबर्हि राजन् ! यह अध्यात्मज्ञान मैंने तुझे राजा के शरीर के ऊपर घटाकर दिखाया है, क्योंकि—सृष्टिकर्ता भगवान् प्रभुको अप्रकटरूप का वर्णन ही प्रिय होता है ॥ ६५ ॥ इति चतुर्थ स्कन्ध में अष्टाविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ प्राचीन बर्हिराजा ने कहाकि—हेभगवन् नारदजी ! तुम्हारे कहनेका गूढ़ अर्थ अच्छी प्रकारसे मेरी समझमें नहीं आया, आत्मतत्वको जाननेवाले पुरुष ही उसका अर्थ समझते हैं, कर्म से मोहित होने के कारण हम नहीं समझसक्ते हैं सो हमारी समझ में आजाय, ऐसी सरल रीति से स्पष्ट करके कहिये ॥ १ ॥ नारदजी ने कहा—हे राजन् ! पुरंजनशब्द से पुरुष (जीव)समझना; क्योंकि—वह अपने रहने के निमित्त पुर (शरीर) को उत्पन्न करता है; वह शरीर—एक, दो, तीन वा चार चरणों वाला अथवा बहुतसे चरणों वाला तथा जिसके एकभी चरण नहीं ऐसा उस पुरुष के कर्म्मोंके अनुसार प्राप्त होता है ॥ २ ॥ उस पुरंजन का जो अविज्ञात नामक मित्र पहिले कहा है वह ईश्वर ही है; क्योंकि—अन्तर्यामी आदि नामों से, शुभाशुभ कर्म्मों में जीवों की प्रेरणा करना इत्यादि कर्म्मों से अथवा सर्वज्ञता आदि गुणों से पुरुष उस को जानते हैं ॥ ३ ॥ जिससमय जीव, पूर्ण रीति से प्रकृति के गुणों को (शब्दादि विषयों को) ग्रहण करने की इच्छा करता है उससमय, पहिले कहे हुए उन एकपाद आदि शरीरों में—नौ इन्द्रियों के छिद्र, दो हाथ दो चरणों से युक्त मनुष्य शरीरही ' सकल विषयों को भोगने में उपयोगी होने के कारण, उत्तम है ऐसा मानता हूँ ॥ ४ ॥ जिसके कारण देह और इन्द्रियादिकों में अहङ्कार और ममता यह दोनों उत्पन्न होते हैं, तथा जिसके आश्रय करके इस शरीर में यह जीव इन्द्रियों के द्वारा रूपरस आदि विषयों को भोगता है,

॥ ५ ॥ सखाय इंद्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् ॥ सख्यस्तद्वृत्तयः प्राणः पंचवृत्तिर्यथोरगः॥६॥बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेंद्रियनायकम् ॥पंचालाः पंचविषया यन्मध्ये नवखं पुरं ॥७॥ अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति ॥ द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिंद्रियसंयुतः॥८॥ अक्षिणी नासिके आस्यमिति पञ्च पुरः कृताः॥ दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥९॥ पश्चिमे इत्यधो द्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते ॥ खद्योताविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ॥ रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥ १० ॥ नलिनी नालिनी नासे गंधः सौरभ उच्यते ॥ घ्राणोऽवधूतो मुख्यास्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥ ११ ॥ आपणो व्य-

---

उस बुद्धि को ही स्त्री समझे ॥ ५ ॥ तथा जिन से श्रवण आदि पाँच प्रकार का ज्ञान और भाषण आदि पाँच प्रकार का कर्म होता है वह श्रोत्र आदि इन्द्रियों के समूह उसके मित्र थे और उन दोनों प्रकारकी इन्द्रियों की वृत्तियें सखी थीं,प्राण अपानआदि पाँच प्रकार का प्राण ही वह पाँच फनवाला नगरका रक्षक सर्प था ॥ ६ ॥ उन दोनोंप्रकार की इन्द्रियों का स्वामी (प्रेरक) मन ही बृहद्बल नामवाला ग्यारहवां योधाथा, तथा जिस में से इन्द्रियरूप नौद्वारवाला शरीर उत्पन्न हुआ है, वह शब्द स्पर्श आदि पांच विषयही पञ्चाल देश थे ॥ ७ ॥ उस नगर केएक २ स्थान पर दो २ द्वार रचेहुए थे ऐसा जो कहा सो-दो नेत्र, दो नासिका के छिद्र, और दो कान यह छः थे; तथा मुख, शिश्न और गुदा यह तीन द्वार पृथक् २ स्थान पर बने हुए थे, उस प्रत्येक स्थानमें रहनेवाले इन्द्रियरूप मित्रों को साथ में लेकर तिस २ द्वारसे जीव बाहर विषयों की ओर को जाता है ॥ ८ ॥ दो नेत्र, दो नासिका के पुट और मुख यह पाँच द्वार शरीर के आगे के भाग में रचे हुए हैं, दाहिने कान को दक्षिण द्वार और वाम कान को उत्तर का द्वार समझना ॥९॥ तथा पश्चिम की ओर जो दो द्वार कहे हैं वह इस शरीर के नीचेके भागमें के गुदा और शिश्न हैं. खद्योता और आविर्मुखी, यह जो एक स्थानपर रचे हुए दो द्वार कहे हैं उन को इस शरीर के नेत्र समझना; विभ्राजित नामक जो देश कहा वह रूप विषय है. द्युमान् नामवाला जो मित्र कहा, सो चक्षु इन्द्रिय है. उस का मित्र जीव है,वह उस चक्षु इन्द्रिय से युक्त होकर नेत्र के द्वारा रूप विषय को देखता है ॥ १० ॥ तथा नलिनी और नालिनी यह जो दो द्वार एक स्थान पर कहे सो नासिका के दोनों छिद्र हैं, जो सौरभ देश कहा सो गन्ध (विषय) है, अवधूत नामक जो मित्र कहा सो घ्राण इन्द्रिय है, मुख्या नामक जो द्वार कहा सो मुख है, विपण नामक जो मित्र कहा सो वाक् इन्द्रिय है, रसज्ञ नामक जो मित्र कहा सो रसना इंद्रिय है॥ ११ ॥आपण नामक जो देश कहा सो यहां वाणी का व्यवहार (भाषण) है, बहूदन नामक जो देश कहा सो नाना प्रकार का अन्न

वैहारोत्र चित्रमंधो वहूदनम् ॥ पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥१२॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पंचालसंज्ञितम् ॥ पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत् ॥ १३ ॥ आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः ॥ उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो नि-र्ऋतिर्गुद उच्यते ॥ १४ ॥ वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौ तु मे शृणु ॥ हस्तपादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च ॥ १५ ॥ अन्तः-पुरं च हृदयं विषूचीर्मन उच्यते ॥ तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥ १६ ॥ यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ॥ तथा तथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥ १७ ॥ देहो रथस्त्विंद्रियाश्वः सम्वत्सररयो गतिः ॥ द्वि-कर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पंचासुबन्धुरः ॥ १८ ॥ मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वन्द्व-

---

है, पितृहू नामक जो दक्षिण द्वार कहा सो दाहिना कर्ण है, देवहू नामक जो उत्तर द्वार कहा वह वाम कर्ण है ॥ १२ ॥ दक्षिण पञ्चाल नामक जो देश कहा वह कर्मकाण्ड-नामक प्रवृत्तशास्त्र है, उत्तरपञ्चालनामक जो देश कहा सो उत्तरकाण्ड नामक निवृत्तशास्त्र है, श्रुतधर नामक मित्र कहा सो श्रोत्र इन्द्रिय है, तिस इन्द्रिय से जीव प्रवृत्तशास्त्रको सुनकर और उस में कहीहुई उपासनाका अनुष्ठान करके देवयाननामक मार्ग से देवलोक को जाता है ॥ १३ ॥ आसुरी नामक जो पश्चिम द्वार कहा है सो शिश्न है, ग्रामक नामक जो देश कहा है सो यहाँ विषयी पुरुषों की क्रीड़ा (स्त्री सम्भोग) है; दुर्मद-नामक जो मित्र कहा है सो उपस्थ इन्द्रिय है, निर्ऋतिनामक जो कहा सो गुदाद्वार है॥ १४ ॥ वैशसनामक जो कहा सो नरकका स्थानहै, लुब्धक नामक जो कहासो पायु इन्द्रिय जानना, अन्ध नामवाले जो दो कहे सो उनका अर्थ कहता हूँ,सुन—वह हाथ और चरणहैं,उनसे युक्त हुआ यह जीव कर्म करताहै और गमन करताहै। १५।अन्तःपुर जो कहा सोहृदयहै,विषूचीन नामक जो कहा सो मन है, यह जीव उस मनसे युक्त होता है तब तम, सत्त्व और रज इन गुणों करके तिस मन को, मोह, विषाद और हर्ष यह विकार प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ जैसे २ बुद्धि स्वप्न में स्वयं विकार को प्राप्त होती है, वा जाग्रत् अवस्था में इन्द्रियों को विकार प्राप्त कराती है, तैसे २ ही उन गुणों से लिप्तहुआ आत्मा, वास्तव में उस बुद्धि का व्यापार देखनेवाला होकर भी, बलात्कार से उस बुद्धि के द्वाराही देखना, स्पर्शकरना आदि उस बुद्धि की वृत्तियों (कर्मों को) अपने कियेहुए मानता है ॥ १७ ॥ हेराजन् स्वप्न में का शरीर ही रथनाम से कहा है, इन्द्रियें उस के घोड़े हैं, वर्षोंका वारम्वार आकर वीतजाना ही उस की गतिहै,पुण्य और पाप यह दो उसके पहियेहैं, तीन गुण उसकी ध्वजा हैं, पाँच प्राण उस के बन्धन हैं ॥ १८ ॥ मन उसको थामने की डोरी है,बुद्धि उस के उ-

कूबरः ॥ पंचेंद्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥ १९ ॥ आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति ॥ एकादशेंद्रियचमूः पंचसूनाविनोदकृत् ॥ संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥ २० ॥ तस्याहानीह गन्धर्वा गंधर्व्यो रात्रयः स्मृताः ॥ हरंत्यायुः परिक्रांत्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ २१ ॥ कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति ॥ स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥२२॥ आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः ॥ भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो द्विविधो ज्वरः ॥ २३ ॥ एवं वहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसम्भवैः ॥ क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥ २४ ॥ प्राणेंद्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ॥ शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥२५॥ यदात्मानमविज्ञाय भगवंतं

पर का सारथी है, हृदय उस के ऊपर रथी के वैठने का स्थान है, सुखदुःख आदि द्वन्द्व उसमें जुआ बाँधने का स्थान है, पाँच इन्द्रियों का विषयों की ओर को जाना, यह उस में के शस्त्र हैं, और त्वचाआदि सात धातु ही उस के परदे हैं ॥ १९ ॥ कर्मेन्द्रियें उसके वाहर फिरने की गति हैं, उस स्वप्न के शरीररूप रथके ऊपर वैठकर यह जीवरूप रथी, मृगतृष्णा की समान मिथ्या विषयों की ओरको दौड़ता है, ग्यारह इन्द्रियेंही उसकी सेना है वह अन्यायसे मृगों की हिंसा करनेकी समान पांच इन्द्रियोंसे अनीतिके साथ विषयों का सेवन करता है ॥ २०॥ चण्डवेग नामक जो कहा सो–जिसके द्वारा आयु के समय की गणना होती है वह सम्वत्सर नामक काल है, उसके अधिकारके गन्धर्व जो कहे सो दिन हैं, गन्धर्वी जो कहीं सो रात्रि हैं, वह वर्ष के तीन सौ साठ दिन क्रम से विचरकर प्राणियों की आयु को हरते हैं ॥ २१ ॥ काल कन्या जो कही वह जरा है, कोई भी पुरुष उस को जान बूझकर स्वीकार नहीं करता है, यवनेश्वर जो कहा वह सकल रोगों का राजा मृत्युहै, उस ने लोकोंका नाश करने के निमित्त उस जरा को वहिन मानकर स्वीकार किया ॥ २२ ॥ उस मृत्यु के आज्ञाकारी जो यवन कहे वह मन की व्यथा और शरीर की पीड़ाको उत्पन्न करनेवाले रोग हैं, प्रज्वार जो कहा सो प्राणियों की शीघ्रही मृत्यु आवेगी, ऐसी पीड़ा देनेवाला शीत और उष्ण यह दो प्रकारका ज्वर है ॥२३॥ इसप्रकार गुप्तरूप से कहेहुए शब्दों का अर्थ कहकर अब सब कथा का तात्पर्य कहते हैं–हेप्राचीनवर्हि राजन्! इसप्रकार जीवात्मा वास्तव में निर्गुण होकर भी अज्ञान से व्याप्त हो क्षुधा और तृषा आदि प्राणधर्मों का, अन्धता आदि इन्द्रियों के धर्मोंका तथा काम आदि मनके धर्मों का अपने में आरोप करके देह आदि के विषें 'मैं और मेरा' ऐसा अभिमान धारकर, विषयसुखों का लेश मुझे प्राप्तहो इस इच्छा से अनेकोंप्रकार के कर्म करते २, नानाप्रकार के आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों से क्लेश पाताहुआ सौ वर्षपर्यंत इस शरीर में रहता है। २४।२५।

परं गुरुं ॥ पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥२६॥ गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः ॥ शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथाकर्माभिजायते ॥ २७ ॥ शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठान् लोकानाप्नोति कर्हिचित् ॥ दुःखोदर्कान् क्रियायासां-स्तमःशोकोत्कटान् क्वचित् ॥ २८ ॥ क्वचित्पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः ॥ देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः ॥ २९ ॥ क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ॥ चरन्विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ॥३०॥ तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् ॥ उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियं ॥ ३१ ॥ दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु ॥ जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥ ३२ ॥ यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गरुमुद्वहन् ॥ तं

हे राजन् ! यह पुरुष, वास्तवमें स्वप्रकाश होकर भी जब अपने स्वरूप को न जानकर और श्रेष्ठ गुरु भगवान् परमात्मा को भी न जानकर प्रकृति के गुण कार्यरूप विषयों में आसक्त होता है तब देह इन्द्रियादिकों में अभिमान रखनेवाला वह पुरुष, परतन्त्र होकर सतोगुणी (पुण्यकारी), तमोगुणी (पापकारी) वा रजोगुणी (मिलेहुए) ऐसे तीन प्रकार के कर्म्मों को करता है और जैसे कर्म हों उन के अनुसार देव-मनुष्य आदि योनियों में जन्म पाता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसकारण वह प्राणी, कभी तो सतोगुणी कर्मों के प्रभावसे अधिक प्रकाशवाले देवलोक आदि में जन्म पाता है, कभी २ रजोगुणी कर्म्मों के प्रभाव से उस मनुष्यलोक में जन्म पाता है, कि अन्त में जिससे दुःखही मिलता है और जिसमें कर्मों का परिश्रम उठाना पड़ता है और कभी तमोगुणी कर्मों के प्रभावसे अज्ञान और शोक से भरी हुई तिर्यक् (पक्षी आदि की) योनियों में जन्म पाता है ॥ २८ ॥ जिस की ज्ञानशक्ति अज्ञान से नष्ट होगई है ऐसा यह जीव कभी पुरुष, कभी स्त्री, कभी नपुंसक,कभी देवता,कभी मनुष्य अथवा पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंमें उत्पन्न होता है,एकसमय उसने जो कर्म वा गुण सम्पादन करे होंगे उनके अनुसार उसको देव-मनुष्य आदि का जन्म मिलता है ॥ २९ ॥ जैसे क्षुधा से व्याकुल हुआ दीनश्वान,घर२फिरने पर अपने प्रारब्ध के अनुसार कहीं दण्डे से ताड़ना पाता है और कहीं भात खाता है, तैसे ही जिसका अन्तःकरण विषयवासनाओं से गुथगया है ऐसा यह जीव, विधिनिषेधरूप मार्ग से देवलोक, नरकलोक और मनुष्यलोक में भ्रमताहुआ अपनी प्रारब्ध के अनुसार सुख वा दुःख पाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यदि कहो कि—उन २ दुःखों को दूर करने का उपाय करनेपर उसको सुख प्राप्त होजायगा, तहां कहते हैं कि—आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक इन तीन प्रकारके दुःखों में से किसी न किसी एक दुःखसे जीव का कभी छुटकारा नहीं होता है कोई तो दुःख रहेगा ही ॥ ३२ ॥ जैसे शिरपर भारी

स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥ ३३ ॥ नैकांततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् ॥ द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ॥ ३४ ॥ अर्थे-ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । मनसा लिंगरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ३५॥ अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोनर्थपरंपरा ॥ संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ॥३६॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः ॥ सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥ ३७ ॥ सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥ ३८ ॥ यत्र भागवता राजन्साधवो विशदाशयाः ॥ भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरि-

बोझा उठानेवाला पुरुष, जब मस्तक में पीड़ा होने लगती है तो क्लेशित होकर उस बोझे को कन्धेपर रखलेता है, ऐसे ही सुख की आशा से दुःखको दूर करने के निमित्त जो २ उपाय कियेजायँ वह सबही दुःखदायक होते हैं ॥ ३३ ॥ हे पवित्र राजन् ! जैसे स्वप्न से प्राप्त हुए दुःखों को दूर करने के निमित्त स्वप्न में ही किया हुआ उपाय, जागृत् अवस्था हुए विना पूर्णरूप से दुःख को दूर करनेवाला नहीं होता है,तैसे ही संसार का कारणरूप भक्तिज्ञानरहित कर्म, दुःख के कारणभूत सकल पापों को दूरनहीं कारसक्ता है क्योंकि दुःख के कारणभूत जो पाप कर्म और उसको दूर करनेवाले जो पुण्य कर्म, यह दोनो ही अज्ञान से भरे हैं अतः ज्ञान के विना उनकी पूर्णरूपसे निवृत्ति नहीं होती है ॥३४॥ जैसे आत्मा माने हुए मन के साथ विचरनेवाले पुरुष को स्वप्न में दृष्टि पड़े हुए, परन्तु वास्तव में मिथ्या व्याघ्र-सर्प-चोर आदिकों से प्राप्त हुआ भय, जागेविना, दूसरे किसी भी उपाय से दूर नहीं होता है इसी प्रकार जाग्रत् अवस्था में भी यह प्रपञ्चरूप संसार आत्मा में वस्तुतः न होकर भी, जबतक ज्ञान के द्वारा इस जीव का अज्ञान दूर नहीं होता है तब तक दूसरे किसी भी उपाय से, इसका जन्म मरण रूप संसार दूर नहीं होता है ॥३५॥ इस कारण सकल पुरुषार्थ स्वरूप इस जीवात्मा को जिस अज्ञान के कारण जन्म–मरण आदि दुःख परम्परा रूप संसार प्राप्त होताहै, उस अज्ञान का नाश,ज्ञान का प्रकाश करने वाले गुरु की उत्तम भक्ति करने से होता है ॥ ३६ ॥ किसी प्रकार के फल की इच्छा न करके वासुदेव भगवान् की भक्ति करना उत्तम प्रकार के वैराग्य और ज्ञान को उत्पन्न करता है ॥ ३७ ॥ हे राजर्षि ! भगवान् की कथा के आश्रय से रहनेवाली भक्ति, निरन्तर श्रद्धा के साथ भगवान् की कथा सुननेवाले और पढ़नेवाले पुरुष को शीघ्र ही प्राप्त होती है ॥ ३८ ॥ हे राजन ! जहां सदाचारवान् शुद्ध अन्तःकरणवाले और वारंवार भगवान् के गुणों के कहने तथा सुनने में जिनका चित्त गुथा है ऐसे भगवद्भक्त रहते हैं ॥ ३९ ॥ तहां उन भगवद्भक्तों के समूहमें,उनका वर्णनकरा हुआ मधुसूदन भगवान् का

त्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ॥ तां ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णैस्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥ ४० ॥ एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः ॥ न करोति हरेर्नूनं कथाऽमृतनिधौ रतिम् ॥ ४१ ॥ प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान् गिरिशो मनुः ॥ दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥ ४२ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः ॥ ४३ ॥ अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः ॥ पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥ शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे ॥ मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम् ॥ ४५ ॥ यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ॥ स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥ ४६ ॥ तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु ॥ मार्थदृष्टिं कृथाः

चरित्ररूप अमृत ही जिन में शेष रहता है अर्थात् जिन मे अमृत के सिवाय और कुछ असार अंश है ही नहीं ऐसी कथारूप नदियें चारों ओर वहती हैं उनको जो पुरुष, अतृप्त होकर एकाग्र हुई श्रोत्र इन्द्रियों से सुनते हैं उन को, क्षुधा, तृषा, भय, शोक और मोह कभी भी बाधा नहीं करते हैं ॥ ४० ॥ अतः अनेकों जन्मों की परम्परा से स्वाभाविक ही प्राप्त हुए इन क्षुधा–पिपासा–काम और क्रोध आदि उपद्रवों से निरन्तर पीड़ित हुआ यह जीवों का समूह, भगवद्भक्तों की सङ्गति के विना, निःसन्देह श्रीहरि की कथारूप अमृत के समुद्र में प्रेम नहीं करता है ॥ ४१ ॥ अधिक तो क्या परन्तु भगवान् के अनुग्रह के विना ब्रह्मादिकों को भी ज्ञान होना दुर्लभ है औरों की तो कथा ही कौन ? इस अभिप्राय से कहते हैं कि–प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्मा जी, साक्षात् भगवान् शिव जी, मनु दक्ष आदि प्रजापति, सनक सनन्दनादि से नैष्ठिक ब्रह्मचारी ॥ ४२ ॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, और मैं नारद, यह सब वेद को जाननेवाले होकर भी और अनेकों प्रकार की युक्तियों के भाषणों से दूसरों को समझाने में प्रवीण होकर भी,तथा तप,विद्या और समाधिके द्वारा भगवान्के दर्शनका प्रयत्न करते हुएभी आज पर्यन्त सर्वसाक्षी परमेश्वरको नहीं देखतेहैं तथा अर्थ विचार करनेपर अन्तशून्य,और ग्रन्थ देखनेपर अति विस्तारवाले वेदब्रह्म का बड़े श्रमके साथ अर्थविचार करनेवाले भी कितने ही पुरुष,मन्त्रों में वर्णन करे हुए इन्द्रादि देवताओं के स्वरूप से भिन्न भिन्न प्रतीत होनेवाले परमेश्वरकी सेवा करते हुएभी उसके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानतेहैं॥४३॥४४॥४५॥ अन्तःकरण में ध्यान करेहुए भगवान् ही जब पुरुष के ऊपर अनुग्रह करते हैं तबही वह पुरुष, लौकिक व्यवहार में और वैदिक कर्मों में आसक्त हुई अपनी बुद्धिको त्याग देता है ॥ ४६ ॥ इसकारण हे प्राचीनबर्हिराजन् ! फल सुनने ही कर्णमात्र को प्रियलगनेवाले

श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥ ४७ ॥ स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः ॥ आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥४८॥ आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कार्त्स्न्येन क्षितिमण्डलम् ॥ स्तब्धो वृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ॥ तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥४९॥ हरिर्देहभृमात्मा स्वयंप्रकृतिरीश्वरः ॥ तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥५०॥ स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ॥ इति वेद स वै विद्वान् यो विद्वान् स गुरुर्हरिः ॥५१॥ नारद उवाच ॥ प्रश्न एवं हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ ॥ अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितं ॥५२॥ क्षुद्रंचरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडंघ्रिगणसामसुलुब्धकर्णं ॥ अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यांतं पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥५३॥

परन्तु वास्तव में परमात्मा को स्पर्श न करनेवाले और अज्ञानके कारण परमार्थरूप प्रतीत होनेवाले कर्मों में 'इन से ही मुझे मोक्ष प्राप्त होगी' ऐसा विचार तू कदापि मनमें न करना ॥ ४७ ॥ जो कोई वेदको, स्वर्गादि सुखों के साधनभूत कर्मों का बोधक है ऐसा कहते हैं वह पुरुष,वेद का रहस्य नहीं जानते हैं और उनकी बुद्धि मलिन होरही है ऐसा समझे, क्योंकि–जिस वेद में ज्ञानदाता भगवान् , सकल देवतारूप से क्रीड़ा करते हैं उस वेद के तात्पर्यरूप आत्मतत्त्वको वह पुरुष नहीं जानतेहैं॥४८॥हेराजन् ! पूर्वको अग्रभाग करेहुए कुशोंसे सकल भूमण्डलको ढककर अनेकों पशुओंके वधसे,मैंही यज्ञ करनेवाला हूँ,ऐसा अभिमानी और उद्धत तूतो बड़ा अज्ञानीहै,क्योंकि–तू ,'कर्मका तत्त्व क्याहै और आत्मविद्या का स्वरूप क्याहै,यह कुछभी नहीं जानताहै,इसकारण मेरे कथनको सुन कि–जिससे श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं वही कर्म है और जिससे श्रीहरि की ओर बुद्धि लगतीहै वही विद्याहै॥४९॥ हेराजन्!श्रीहरि सकल प्राणियोंके आत्मा,शुभअशुभ कर्मोंका फल देनेवाले और स्वमन्त्रता से सब के मूलकारण हैं इसकारण जिन का आश्रय करने से सर्व प्रकार कल्याण होता है वह उनके चरणकमल ही इस संसार में मनुष्यों के परम आश्रय हैं ॥ ५० ॥ जिस से अणुमात्र भी भय नहीं होता है वही अति प्रिय आत्मा हैं,ऐसा जो जानता है वही विद्वान् है, वही गुरु है और वही साक्षात् श्रीहरि है ॥ ५१ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजन् ! इसप्रकार तेरे प्रश्न का उत्तर मैंने कहा, अब अपने उद्धार के निमित्त तुझे क्या करना चाहिये इस के विषय में बड़ों २ का निश्चय कराहुआ और गुप्त एक उपाय मैं तुझसे कहता हूँ उस मेरे कथन को तू सुन ॥ ५२ ॥ हेराजन् ! थोड़ा २ भोजन करनेवाला एक हरिण पुष्पों की वाटिका में परस्पर अपनी स्त्री के समागम में आसक्त हुआ और जिस के कान भ्रमरों के गान में अतिलोभी होगए हैं, औरों का जीव लेकर अपने प्राणोंकी तृप्ति करनेवाले भेड़िये जिसके आगे चलरहेहैं परन्तु उनको कुछ न गिनकर वह आगे२चलरहा है, पीछे से व्याधेका बाण लगकर जिसका शरीर छिन्न भिन्न होरहाहै ऐसे हरिणकी तू खोज कर५३।

सुमनःसमधर्माणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्पमधुगन्धवत्क्षुद्रतमं काम्यकर्मवि-
पाकजं कामसुखलवं जैह्व्योपस्थादि विचिन्वन्तं मिथुनीभूय तदभिनिवेशित-
मनसं षडंघ्रिगणसामगीतवदतिमनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभि-
तकर्णमग्रे वृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान्काललवविशेषानविगणय्य
गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽन्तः शरेण यमिह
पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन् भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥ ५४ ॥
स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽन्तश्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ॥
जह्यंगनाश्रममसत्तमयूथगाथं प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ॥ ५५ ॥ रा-
जोवाच ॥ श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत ॥ नैतज्जानन्त्युपाध्यायाः
किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥ ५६ ॥ संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो म-

इसप्रकार हरिण के रूपक से कहीहुई वार्त्ता राजाने नहीं समझी यह जान नारदजी आप ही उसको स्पष्टरूप से कहते हैं कि—हे राजन्! पुष्पोंकी समान, परिणाम को प्राप्तहोना विरस होना आदि जिसके धर्म हैं ऐसी स्त्रियों के साथ गृहस्थाश्रम में, जैसे पुष्पों में कुछ एक मद और गन्ध होता है तैसे ही अतितुच्छ और सकाम कर्म के फलरूप, जिव्हा और शिश्न आदि इन्द्रियों के विषयसुखके लेशमात्र की खोज करनेवाला, स्त्रियों के साथ समागम करके उन में आसक्तचित्त हुआ, भ्रमरों के सुन्दरगान की समान अतिमनोहर, स्त्री पुत्र आदि के भाषणों में जिसके कर्ण अत्यन्तही मोहित होरहे हैं आगे चलते हुए भेड़ियों के समूह की समान, अपनी आयु को हरनेवाले, दिन रात्रि, घटी, पल, आदि काल अंशों को कुछ न गिनकर घरमें रमाहुआ और किसी को विदित न हो इसप्रकार पीछे२ आता हुआ मृत्युरूप व्याधा जिसके हृदयमें छुपकर वेधने की इच्छा करता है, वह मृगरूप मैं ही, भिन्नहृदय (मृतक समान) होरहा हूँ, ऐसी दृष्टि रखना तुझे योग्य है ॥ ५४ ॥ हे राजन्! तू कहेहुए मृग के वृत्तान्त से अपने को मृतकसमान देखकर अपने हृदय में चित्तको (विषयों से हटाकर) स्थापन कर, नदी के प्रवाह की समान विषयों की ओर को दौड़ती हुई सकल इन्द्रियों की वृत्तियों को उस चित्तमें रोककर स्थापन कर, जहां असज्जन शिरोमणियों के समूहों की अनेकों वार्त्ता चलती हैं ऐसे स्त्री के आश्रमरूप अपने घरको त्यागकर और शुद्धचित्त जीवोंके आश्रय भगवान् को प्रसन्न कर, इस क्रमसे तू संसार के दुःखों से निवृत्त हो ॥ ५५ ॥ राजाने कहा—हे ज्ञानी नारदजी! आपने जो कहा उसको मैंने सुना, और उसका विचार भी करा, यह आपका कहा हुआ आत्मतत्त्व मुझे कर्म का उपदेश करनेवाले गुरुओं को, विदित नहीं था, यदि उनको विदित होता तो क्या वह मुझ से कहते नहीं? कहतेही ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मण! उन उपाध्यायों ने वेद

हीन् ॥ ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ॥ ५७ ॥ कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय तम् ॥ अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥ ५८ ॥ इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह ॥ कर्म यत् क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥ ५९ ॥ नारद उवाच ॥ येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् ॥ भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिंगेन मनसा स्वयम् ॥ ६० ॥ शयानमिममुत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषो यथा ॥ कर्मात्मन्याहितं भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ॥ ६१ ॥ ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन् ॥ गृह्णीयात्तत्पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥ ६२ ॥

वाक्यों का विरोध दिखाकर ' वेद कर्ममार्गपर है वा निवृत्तिमार्गपर है इस विषय में ' मेरे चित्त में जो बड़ाभारी संशय उत्पन्न करदिया था उसको आपने दूर करदिया, परन्तु जिसमें इन्द्रियों की पहुँच न होने के कारण बड़े २ ऋषि भी मोहित होजाते हैं ऐसी एक वार्त्ता में मुझे सन्देह है ॥ ५७ ॥ वह यह है कि—जीवात्मा जिस देह के द्वारा इसलोक में कर्म करता है उस देह को इसलोक में ही छोड़कर स्वर्ग—नरक आदि परलोकों में कर्मवश प्राप्तहुए दूसरे शरीर से, इसलोक में करेहुए कर्म्मों के सुख दुःखादि फलों को भोगता है, ऐसा वेदवेत्ताओं का सिद्धान्त अनेकों शास्त्रों में प्रसिद्धरूपसे सुनने मे आता है,सो कैसे होता है ? अर्थात् कर्म करनेवाले स्थूलशरीर का नाश होजाने के कारण और सूक्ष्मशरीर का कर्मो का कर्त्तापन दूर होजाने के कारण जीवको लोकांतर में कर्मफलका भोगना कैसे बनेगा? दूसरा प्रश्न यह है कि—सबलोक वेदों में कहेहुए जो यज्ञादि कर्म करते हैं वह करने से अगले क्षण में ही नष्ट होजाते हैं, वह लोकान्तरमें प्रकाशित ही नहीं होते, फिर नष्ट हुए उन कर्म्मों का लोकान्तर में भोगना कैसे बनेगा ? ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ नारदजी ने कहा कि—हे राजन् ! पुरुष, मन है प्रधान जिस में ऐसे जिस—लिङ्गशरीर के द्वारा इसलोक में कर्म करता है उस ही व्यवधानरहित (चिकटेहुए) लिङ्गशरीर के द्वारा परलोक में वह आप ही उन कर्मो के फलको भोगता है अर्थात् यदि स्थूलशरीर का नाश होजाय तबभी लिङ्गशरीर का नाश न होने के कारण इसलोक में किये हुए कर्म्मों का फल परलोक में भोगना कुछ असम्भव नहीं है ॥ ६० ॥ जैसे—सोता हुआ पुरुष, इस जीवित शरीर का अभिमान त्यागकर स्वप्न में उस की समान ही दूसरे शरीर से अथवा दूसरे पशु आदि शरीर से मन में संस्काररूप से फुरते हुए कर्मफल को भोगता है तैसे ही परलोक में भी वह कर्मफलों को भोगता है ॥ ६१ ॥ इस दृष्टान्त से यद्यपि लिङ्गशरीर को भोक्तापन सिद्ध हुआ तथापि दान और प्रतिग्रह आदि के विषैं स्थूल शरीर का कर्त्तापन दीखता है? तहां कहते हैं कि—हेराजन्! पुत्रादि मेरे हैं और यह मैं हूँ ' ऐसा कहनेवाला पुरुष मन से जिस २ शरीर को अपना करके मानता है, उस उस शरीर से उत्पन्न होनेवाले पुण्य पाप आदि कर्म को भी वह ग्रहण करता है अर्थात् मैंने यह कर्म अपने सुख के निमित्त ही करे हैं, ऐसा

यथाऽनुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः ॥ एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥ ६३ ॥ नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम् ॥ कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥ ६४ ॥ तेनास्य तादृशं राजन् लिंगिनो देहसम्भवम् ॥ श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥ ६५ ॥ मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ॥ भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥ ६६ ॥ अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते ॥ यथा तथाऽनुमन्तव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥ ॥ ६७ ॥ सर्वे क्रमानुरोधेन मनसीन्द्रियगोचराः ॥ आयान्ति वर्गशो यान्ति सर्वे समनसो जनाः ॥ ६८ ॥ सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ॥ तमश्चन्द्रम-

मानता है तिस से फिर जन्म पाता है ॥ ६२ ॥ यह जो तेरा प्रश्न है कि—नष्टहुए कर्मों का परलोक में भोगना कैसे बनता है? यह प्रश्न भी ठीक नहीं है क्योंकि—जैसे ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की प्रवृत्तिसे उनके प्रेरक चित्त का अनुमान होता है,तैसे ही अनेकोंप्रकार की चित्तकी वृत्तियोंसे पूर्व शरीरसे होनेवाले पुण्यपापरूप कर्मोंका अनुमान होताहै॥ ६३॥ इस विद्यमान शरीर से जिसका कभीभी अनुभव नहीं करा अथवा जिसको कभीभी नहीं देखा या नहीं सुना ऐसा कोई विलक्षण प्रकार का स्वरूप, जो स्वप्न में वा मन के विचार में स्फुरित होता है इस से हेराजन्! इसवासनाके आश्रयरूप जीव को ही वह उस प्रकार का अनुभव पूर्वदेह से हुआ है, ऐसा तू निश्चय समझ, क्योंकि—जिस वस्तु का पहिले कभी अनुभव नहीं हुआ वह वस्तु आगे से कभी भी मन में नहीं आवेगी ऐसा सिद्धान्त है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हेराजन्! तेरा कल्याण हो, मैं कहता हूँ, इधर ध्यान दे, मनुष्य पहिले कौन २ से जन्म में गयाथा आगे को कौन २ से जन्म में जानेवालाहै, यह सब वार्त्ता उस का मन ही कहता है अर्थात् मनके उदारता कृपणता आदि धर्मों से, यह पहिले अमुक था, आगे अमुक योनिमें जायगा, यह सब विदित होजाता है॥ ६६ ॥ अब कभी२ पर्वतपर समुद्र, दिन में तारे, अथवा आपही अपना शिरकाटना इत्यादि दीखने के अयोग्य भी विषय स्वप्न में दीखते हैं सो कैसे! तहाँ कहते हैं कि—हेराजन्! देशकाल और कर्म के आश्रय से रहनेवाला कभी भी न देखा और कभी भी न सुनाहुआ जो कुछ कभी मन में स्फुरित होता है वहभी निद्रा आदि के दोष से ही तैसा २ प्रतीत होता है. ऐसा अनुमान करना चाहिये ॥६७॥ यदि इसपर कहोकि—किसी दरिद्री पुरुष को 'मैंराजा हूँ' ऐसा स्वप्न दीखता है, वा राजा को, 'मैं एकसाधारण रङ्क होगया' ऐसा स्वप्न दीखताहै इसका क्या उत्तर होगा? सो हेराजन्! सब प्राणियों के मन एक समान हैं अतः उन मनों में सब प्रकार के इन्द्रियोंके विषय क्रम से इकट्ठे हो २ कर प्राप्त होते हैं और उन में से निकल भी जाते हैं अर्थात् उन का विस्मरण भी होजाता है, अतः जब सबके मनमें सब विषय प्राप्त होते हैं तो राजा को रङ्कपना प्रतीत होना वा रङ्क को राजापना प्रतीत होना कुछ असम्भव नहीं है ६८

संविदेर्मुपरंज्यात्रभांसते ॥ ६९ ॥ नाहं ममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते॥ यावद्बुद्धिमनोक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥ ७० ॥ सुप्तिमूर्छोपतापेषु प्राणायेन-विघातनः॥ नेहते ऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥७१॥ गर्भे बाल्येऽप्य-पौष्कल्यादेकादशविधं यदा ॥ लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥ ॥७२॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते॥ध्यायतो विषयानस्य स्व-प्नेनर्थागमो यथा ॥ ७३ ॥ एवं पंचविधं लिंगं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम् ॥ एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥ ७४ ॥ अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमु-ञ्चति ॥ हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥ ७५ ॥ यथा तृणजलूके-

हे राजन्! जैसे न दीखनेवाला भी राहु, चन्द्रमा में (ग्रहण के समय) देखने में आता है तैसे ही सतोगुण से युक्त और भगवान् के ध्यान में परायण हुए योगियों के मन में यह सकल जगत्, संयोग को प्राप्त हुआ सा एक साथ प्रकाशित होताहै, ऐसा प्रसिद्ध है।६९। हे राजन्! अनादिकाल से चलताहुआ–बुद्धि, मन, इन्द्रियें और शब्दस्पर्श आदि विषय इसप्रकार का यह गुणों का कार्यरूप लिङ्गशरीर, जबतक है तबतक 'मैं और मेरा' यह जीव में का अध्यासरूप धर्म नष्ट नहीं होगा ॥ ७० ॥ यदि कहो कि-सुषुप्ति मरणकाल आदि में अहम्भाव नष्ट होजाता है, इस कारण उस समय जीव को स्थूलशरीर का वियोग और मुक्ति की प्राप्ति होजायगी ? तिसका उत्तर कहता हूँ सुन सुषुप्ति, मूर्छा, इष्टवियोग आदि दुःख, मृत्यु और घोर ज्वर, इन अवस्थाओं में सकल इन्द्रियों के व्याकुल होजाने से 'यह मैं हूँ' ऐसा ज्ञान सूक्ष्म रीति से होनेपर भी स्पष्टरूप से प्रकाशित नहीं होता है ७१।तथा गर्भावस्था और बाल्यावस्थाओंमें भी इन्द्रियोंके सूक्ष्मरूपमें होनेके कारण अहङ्कार का स्वरूप,जैसे अमावस्यामें होनेवाले भी चन्द्रमाका स्वरूप नहीं दीखताहै तैसेही–स्पष्टरूप से नहीं दीखताहै तथापि युवा पुरुष में 'मैं देखता हूँ, मैं सुनता हूँ' इत्यादि प्रकार का ग्यारह इन्द्रियोंसे स्पष्ट प्रतीत होनेवाले तिस अहङ्कारका स्वरूप दीखताहै,इससे सुषुप्ति आदि अवस्था में सूक्ष्मरूप से रहनेवाले अहङ्कारके दूर हुए विना जीवको मुक्ति नहीं मिलती है॥७२॥ जैसे स्वप्न में देखने में आनेवाला 'मेरा मस्तक कटगया' इत्यादि अनर्थों का अनुभव, वास्तव में सत्य नहीं है तथापि जागृत् अवस्था के विना दूर नहीं होता है, तैसे ही–रूप रस आदि विषयों का ध्यान करनेवाले पुरुष का संसार वास्तव में सत्य नहीं है तथापि आ-त्मज्ञान आदि साधनों के विना दूर नहीं होता है ॥ ७३ ॥ इसप्रकार पञ्चमहाभूतरूप और सोलहप्रकार से विस्तार को प्राप्तहुआ यह त्रिगुणमय लिङ्गशरीर ही चेतना से युक्त होकर 'जीव' इस नाम से कहाजाता है ॥ ७४ ॥ इस ही लिङ्गशरीर से युक्त हुआ जीव, देवता, तिर्यक् (पक्षी आदि) मनुष्य आदि स्थूल शरीरोंको स्वीकार करता है और त्याग देता है तथा इससे युक्त होकर ही वह जीव सुख, दुःख, हर्ष, शोक और भय पाता है॥७५

यं नाप्नोत्यपयाति च ॥ न त्यजेन्म्रियमाणोपि प्राग्देहाभिमतिं जनः ॥ ॥ ७६ ॥ यावदन्यं न विंदेत व्यवधानेन कर्मणां ॥ मन एव मनुष्येंद्र भूतानां भवभावनम् ॥ ७७ ॥ यदाऽक्षैश्चरितान् ध्यायन्कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् ॥ सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः ॥७८॥ अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् ॥ पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ॥ ७९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम् ॥ प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत्।८०। प्राचीनवर्ही राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे ॥ आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ॥८१॥ तत्रैकाग्रमना वीरो गोविंदचरणांबुजम् ॥ विमुक्तसंगोऽनुभजन् भक्त्या तत्साम्यतामगात् ॥ ८२ ॥ एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणाऽ

जैसे यह प्रसिद्ध तृणोंपर रहनेवाली जलौका (जोंक नामक एक कीड़ा)आगेके चरणों से दूसरे तृण को दृढ़ता के साथ विनापकड़े,पिछले चरण को हटाकर नहीं चलती है किन्तु आगे के चरणों से दूसरे तृण को पकड़लेती है तब पिछले२ चरण को हटाती हुई चलती है तैसेही मरण को प्राप्त होताहुआ भी प्राणी,पूर्वदेह को उत्पन्न करनेवाले कर्म की समाप्ति होकर दूसरे देह को उत्पन्न करनेवाले कर्म के सम्बन्ध से दूसरे देह को स्वीकारकरे तबतक पहिले देहमेंके 'मैं और मेरा' इसप्रकारके अभिमानको नहीं त्यागताहै;सो हेराजन् ! मनही सकल प्राणियोंके जन्म मरणरूप संसारका कारणहै॥७६॥७७॥देह आदिकों में अभिमान-रूप अज्ञान होनेपर,अपने स्वरूपको भूले हुए इस प्राणीके हाथसे भले और बुरे कर्म बनतेहैं, वह बने कि—उनके अनुसार विषयभोग प्राप्त होताहै तदनन्तर वह पुरुष,इन्द्रियों के उप-भोग करेहुए विषयों का चिन्तवन करके, वारम्वार विषयों की प्राप्ति होनेके निमित्त कर्म करता है तिससे उसको वारम्वार संसारबन्धन प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ इसकारण उससे छुटकारा पाने के निमित्त, यह सकल विश्व भगवत्स्वरूपही है, ऐसा समझकर तू एकाग्र-चित्त से श्रीहरि की सेवा कर क्योंकि—वह इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं ॥ ७९ ॥ मैत्रेय जी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! इसप्रकार भगद्भक्तों में श्रेष्ठ भगवान् नारदजी, प्राचीनबर्हि राजासे जीव और ईश्वर का भेद कहकर तदनन्तर तिस राजा से बूझकर तहां से सिद्धलोक को चलेगए ॥ ८० ॥ तदनन्तर वह प्राचीन-बर्हि राजा भी, प्रजाओं का पालन करने के विषय में पुत्रों से मन्त्रियों के सन्मुख ही कह कर आप तपस्या करने के निमित्त कपिलाश्रम को (गङ्गा और समुद्र के सङ्गमस्थान को) चले गये ॥ ८१ ॥ तहां विषयों से इन्द्रियों को अन्तर्मुख कर के एकाग्रचित्त हुआ वह राजा, भगवान् के चरणकमल की सेवा करता हुआ उनकी साम्यता को प्राप्त हुआ (मु-क्त हुआ) ॥ ८२ ॥ हे निष्पाप विदुरजी ! देवर्षि नारद जी के परोक्ष रीति से वर्णन करे

नये ॥ यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिंगेन विमुच्यते ॥ ८३ ॥ एतन्मुकुंदयशसा भुवनं पुनानं देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम् ॥ यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥ ८४ ॥ अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् ॥ एवं स्त्रियाः श्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ८५॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विदुरमैत्रेयसम्वादे प्राचीनबर्हिर्नारदसंवादो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥७॥ विदुर उवाच ॥ ये त्वयाऽभिहिता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः॥ ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम्॥१॥ किं बार्हस्पत्येह परत्र वाथ कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः ॥ आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया प्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः ॥ २ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः ॥ जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनमतोषयन् ॥ ३ ॥ दशवर्ष

हुए इस आख्यान को जो पुरुष पढ़ता है वा सुनता है वह संसार के कारणभूत इस लिंग शरीर से मुक्त होजाता है ॥ ८३ ॥ श्रीनारदजी के मुख से निकले हुए, मन की शुद्धि करनेवाले, सर्वोत्तम फलदेनेवाले और मुक्तिदाता भगवान् के, संसार से उद्धार करनेवाले प्रसिद्ध महात्म्य से युक्त तथा जगत् को पवित्र करनेवाले इस आख्यान का वर्णन होनेपर जो पुरुष, सुनकर उस को हृदय में धारण करता है वह भी सकल बन्धनों से मुक्त होकर इस संसार में नहीं भ्रमता है किन्तु मुक्त ही होता है ॥ ८४ ॥ हे विदुरजी ! राजा परीक्षित के वर्णन करे हुए इस अध्यात्मविषयक कथानक को मैंने गुरु से निश्चय रूप से सुना था; वही तुम से कहा है, ऐसी बुद्धिवाले पुरुष का अहङ्कार (संसार के भ्रमण का क्लेश) और तैसे ही इस को परलोक में कर्म फल का भोग किस प्रकार प्राप्त होता है, इस के विषय में सन्देह दूर होगया ॥८५॥ इति चतुर्थस्कन्ध में एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त॥ विदुर जी कहते हैं कि–हे ब्रह्मनिष्ठ मैत्रेय जी ! तुम ने जो पहिले मुझ से प्राचीनबर्हि राजा के पुत्र प्रचेता कहे थे, वह रुद्र भगवान् के वर्णन करे हुए योगोपदेश नामक स्तोत्र के द्वारा श्रीहरि को प्रसन्न करके किस गति को प्राप्त हुए ? ॥१॥ हे बृहस्पति जी के शिष्य मैत्रेय जी ! तिन प्रचेताओं को किसी सुन्दर प्रारब्ध से शिवजी का दर्शन होनेपर उन शिवजी ने जिन के ऊपर अनुग्रह करा है ऐसे उन प्रचेताओं को मोक्ष तो निःसन्देह प्राप्त हुआ ही होगा ? परन्तु मोक्ष मिलने से पहिले इस लोक में वा परलोक में उन को कौनसा फल प्राप्त हुआ था ? ॥ २ मैत्रेय जी कहते हैं कि–हे विदुर जी ! पिता की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले प्रचेताओं ने, रुद्र गीत का जपरूप यज्ञ करके और अहङ्कार को दूर करना इत्यादि तप करके भगवान् को प्रसन्न करने का उद्योग करा ॥३॥ इस प्रकार

सहस्रांते पुरुषस्तु सनातनः ॥ तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शांतेन शमयन् रुचा ॥ ४ ॥ सुपर्णस्कन्धमारूढो मेरुशृङ्गमिवांबुदः ॥ पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्वितिमिरा दिशः ॥ ५ ॥ काशिष्णुना कनकवर्णविभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ॥ अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेंद्रैरासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥ ॥ ६ ॥ पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या स्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाद्यः वर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान्प्रपन्नान्पर्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनन्दनाः ॥ सौहार्देनापृथग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥ ८ ॥ योऽनुस्मरति संध्यायां युष्मानुदिनं नरः ॥ तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदम् ॥ ९ ॥ ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः ॥ स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनां ॥ १० ॥ यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदान्विताः ॥ अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननुभ-

दश सहस्र वर्ष बीत जानेपर पुराण पुरुष भगवान् शुद्ध सतोगुणी मूर्त्ति धारण करके अपनी कान्ति से उन के तप के क्लेश को दूर करते हुए उन के समीप प्रकट हुए ॥ ४ ॥ वह मेरु पर्वत के शिखरपर चढ़े हुए मेघ की समान गरुड़ जी के कन्धे पर विराजमान थे, वह पीला पीताम्बर धारण करनेवाले और अपनी कान्ति से दशों दिशाओं को प्रकाशवान् कर रहे ॥ ५ ॥ जिन के कपोल और मुख देदीप्यमान सुवर्ण के वर्णवाले आभूषणों से शोभायमान दीखते थे, उन के मस्तकपर किरीट शोभा देरहा था, जिनके आठ भुजा थीं और उन में से प्रत्येक में एक २ आयुध धारण करे हुए थे, पार्षद, मुनि और बड़े २ देवता उन की सेवा कर रहेथे, गरुडरूप किन्नर अपने पंखों के शब्दों से जिनकी कीर्त्ति का गान कररहे थे. पुष्ट और लम्बी २ आठ भुजाओं के बीच में वक्षःस्थलपर की लक्ष्मी से जिस की शोभा के साथ स्पर्धा चलरही है ऐसी वनमाला को पहिने और कृपा कटाक्ष से देखते हुए वह आदि पुरुष भगवान्, मेघ की समान गम्भीरनाद वाली वाणी से अपनी शरण में आये हुए उन प्राचीनबर्हि राजा के पुत्रों से कहने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–हे राजपुत्रों ! तुम जो परस्पर प्रेम से भगवान् की आराधनारूप एक ही धर्म में तत्पर हो, इस कारण तुम्हारे सखाभाव से मैं सन्तुष्ट हुआ हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, तुम मुझ से वर मांगलो ॥ ८ ॥ जो मनुष्य सन्ध्या के समय प्रतिदिन तुम्हारा स्मरण करेगा उस का भ्राताओं में तथा सकल प्राणियों में तुम्हारी समान प्रेम उत्पन्न होगा ॥ ९ ॥ और जो पुरुष एकाग्रचित्त होकर सायंकाल और प्रातःकाल के समय इस रुद्र गीत से मेरी स्तुति करेगा उस को भी मैं सन्तुष्ट होकर इच्छित विषयभोग और उदार होने की बुद्धि दूँगा, फिर तुम्हें दूँगा इसमें तो सन्देह ही क्या ? ॥ १० ॥

विष्यति ॥ ११ ॥ भविता विश्रुतः पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः ॥ यँ एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥ १२ ॥ कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना ॥ तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहा नृपनन्दनाः ॥ १३ ॥ क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीं ॥ देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयाऽन्वितः ॥ १४ ॥ प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा मामनुवर्तता ॥ तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत मा चिरम् ॥ १५ ॥ अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा ॥ अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥ १६ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः ॥ भौमान् भोक्ष्यथ भोगांन्वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥ १७ ॥ अथ मय्य-

तुमने आनन्द के साथ पिता की, प्रजा की वृद्धि करने के विषय की आज्ञा को स्वीकार करा अतः लोकों में तुम्हारी उत्तम कीर्ति फैलेगी ॥ ११ ॥ हेराजपुत्रो ! सत्कीर्ति आदि गुणों में ब्रह्माजी से भी कुछ कम नहीं और लोकों में प्रसिद्ध एकपुत्र तुम्हारे होगा, और वह अपनी सन्तान के द्वारा इस त्रिलोकी को भरदेगा ॥ १२ ॥ हे राजपुत्रो ! पहिले तपमे भङ्ग करने के निमित्त इन्द्रकी भेजीहुई प्रम्लोचा नामक अप्सरा के साथ कण्डुनामक ऋषि ने, बहुत काल पर्यन्त क्रीड़ा करी तदनन्तर स्वर्ग को जानेवाली वह अप्सरा, कण्डु ऋषि से उत्पन्नहुई अपनी कन्या वृक्षों के झुण्ड में रखकर चलीगई, तव उसकी त्यागीहुई तिस कमलसमान नेत्रवाली कन्या को वृक्षों ने स्वीकार किया अर्थात् वृक्षों के ही फल आदि भक्षण करके वह उस झाड़ी मेंही रहती रही ॥ १३ ॥ एकसमय वह कन्या क्षुधा से पीड़ित होकर रोदन करनेलगी तव सकल वनस्पतियों का राजा जो सोम उसने दयायुक्त होकर अमृत टपकानेवाली अपनी तर्जनी (हाथ की अंगुली) उस के मुख में दी, इस कारण अप्सरा से उत्पन्न हुई वह कन्या अमृतपान करनेवाली और अतिसुन्दरी थी, १४ और तुमतो, मेरा परमभक्त जो तुम्हारा पिता राजा प्राचीन वर्हि उस के, पुत्रादि की उत्पत्ति के निमित्त आज्ञा करेहुए हो, अतः उस सकल लावण्ययुक्त कन्या को शीघ्रही वरलो ॥ १५ ॥ वह एकही सव की भार्या कैसे होगी ? ऐसा कहो तो हे राजपुत्रो ! तुम सवका धर्म और स्वभाव एकसमान है, अतः तुम सर्वोंकीही स्त्री वह सुन्दरी हो, क्यों कि—उसका भी धर्म और स्वभाव पूर्णरूप से तुम्हारे साथ मिलता है और उस ने अपना अन्तःकरण तुम्हें समर्पण कराहै, सो सवप्रकार तुम्हारे साथ उसकी समता होने से और प्रत्यक्ष मैं ही तुमसे कहरहा हूँ. इसकारण तुम्हारे इस विवाह में इसलोक वा परलोक में कोई विरोध नहीं आवेगा ॥ १६ ॥ अव तुम मेरे अनुग्रह से देवताओं के सहस्र वर्ष सहस्रवार वीतजायं तवतक अकुण्ठित वलवाले होकर भूमिपर के और स्वर्ग में के भोगों को भोगो ॥ १७ ॥ तदनन्तर मेरी एकान्त भक्ति करने से तुम्हारे अन्तःकरण में के

नपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः ॥ उपर्यास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः ॥१८॥ गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणां ॥ मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥१९॥ नव्यवद्धृदये यज्ज्ञो ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः ॥ न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतो गताः ॥२०॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं जनार्दनं प्रांजलयः प्रचेतसः ॥ तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला गिराऽगृणन्गद्गदया सुहृत्तमं ॥ २१ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ नमोनमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय ॥ मनोवचोवेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥२२॥ शुद्धाय शांताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ॥ नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥२३॥ नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे ॥ वासुदेवाय कृष्णाय

काम आदि सकल मल जलकर भस्म होजायंगे और तुम इसलोक तथा परलोक के नरक समान भोगों से विरक्त होकर मेरे धाम को पाओगे ॥ १८ ॥ क्योंकि—जिनका काल मेरी कथा में ही वीतताहै और जिन के कर्म मुझेही समर्पण होते हैं वह पुरुष यदि गृहस्थाश्रमी हों तव भी उनका वह गृहस्थाश्रम उन के बन्धन का कारण नहीं होता है ॥ १९ ॥ क्योंकि—गृहस्थाश्रमी पुरुषोंको साधुओं का समागम होता है फिर उन साधुओंकी कहीहुई कथा को सुनकर उन श्रोताओं के हृदय में मैं सर्वज्ञ ईश्वर, पद २ में नवीन२सा प्रवेश करताहूँ अर्थात् उनको ब्रह्मसाक्षात्कार होताहै,क्योंकि—मैंही ब्रह्महूँ इस कारण मेरी शरणमें आनेवाले पुरुषोंको मोह,शोक हर्ष किञ्चिन्मात्रभी नहीं होता है॥२॥ मैत्रेयजी ने कहा कि—हे विदुरजी ! इसप्रकार पुरुषार्थ देनेवाले जनार्दन भगवान् के कहने से, उनके दर्शन से जिनका तमोगुणी और रजोगुणी मल दूर होगया है ऐसे वह प्रचेता, हाथ जोड़कर तिन परम हितकर्त्ता भगवान् की गद्गदवाणी से स्तुति करनेलगे ॥ २१ ॥ प्रचेताओं ने कहा—हे देव ! भक्तों का क्लेश दूर करनेवाले आपको नमस्कार हो, जिन आप के भक्तवात्सल्य आदि गुण और नाम, वेदों ने, सकल पुरुषार्थों का साधन कहकर वर्णन करे हैं, जिन आप का वेग, मन और वाणी के वेग से परहै और जिन आपका मार्ग सकल इन्द्रियों के मार्ग से नहीं जानाजाता है ऐसे आप को नमस्कारहो ॥२२॥ जो तुम, शुद्धस्वरूप होने के कारण शान्त हो और मन के निमित्त होनेके कारण जिन तुम्हारे विषैं वास्तव में मिथ्यारूप यह द्वैत (एक को दण्ड देना और एक के ऊपर अनुग्रह करना इत्यादि) स्फुरित होता है, ऐसे आप को नमस्कारहो, जगत् का पालन—प्रलय और उत्पत्ति के विषय में तुमने मायाके सत्त्वादिगुणों के द्वारा विष्णु,रुद्र और ब्रह्माजीकेस्वरूप को धारण करा है ऐसे आपको नमस्कारहो ॥ २३ ॥ तुम विशुद्ध सत्वमूर्त्ति और भक्तों का दुःख दूर करनेवाले हो, तुम्हारा ज्ञान संसारबन्धन को दूर करनेवाला है, तुम सकल

प्रभवे सर्वसात्वतां ॥ २४ ॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥ २५ ॥ नमः कमलकिंजल्कपिशंगामलवाससे। सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुंक्ष्महि साक्षिणे ॥ २६ ॥ रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयं ॥ आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ॥ २७ ॥ एतावदेव प्रभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ॥ यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याऽभद्ररंधन ॥२८॥ येनोपशांतिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ॥ अंतर्हितोऽतर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ॥ २९ ॥ असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पते ॥ प्रसन्नो भगवान्येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥ ३० ॥ वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् । न ह्यंतस्त्वद्विभूतीनां सोऽनंत इति गीयसे ॥ ३१ ॥ पारिजातोऽजसा ल-

---

यादवों के पालक हो और वसुदेवजी के पुत्र प्रसिद्ध हो ऐसे कृष्णरूप आपको नमस्कार हो ॥ २४ ॥ जिन तुम्हारी नाभि से ब्रह्माण्डरूप कमल उत्पन्न हुआ ऐसे तुम्हें नमस्कार हो, जिन तुमने अपने कण्ठ में कमलों की माला धारण करी है ऐसे तम्हें नमस्कारहो, जिन तुम्हारे चरण, कमल की समान कोमल हैं ऐसे तुम्हें नमस्कारहो, जिन तुम्हारे नेत्र कमल की समान हैं हे देव ! ऐसे तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥ तुम्हारा पीताम्बर कमलके केशरकी समान पीला और स्वच्छ है तुम्हें नमस्कार हो, तुम सकल भूतों के निवासस्थान और सबके साक्षी हो ऐसे आप को हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! तुमने अज्ञान आदि क्लेशों से भरेहुए जो हम, तिन हमारे सकल क्लेशों का नाश करनेवाला यह रूप प्रकट करा है, इससे दूसरी हमारे ऊपर करने योग्य कौनसी कृपा है ? ॥ २७ ॥ हे अमङ्गलनाशक ! योग्यसमय में ' यह हमारे हैं ' ऐसा दयालु बुद्धि से जो दीनों का स्मरण करना, इतना ही दीनवत्सल समर्थ पुरुषों का करने योग्य कार्य है, तुमने तो उसकर्म करने के सिवाय हमें दर्शन भी दियाहै इसकारण तुम्हारा हमारे ऊपर अत्यन्त ही अनुग्रह है २८ क्योंकि—समर्थ पुरुष जिन का स्मरण करते हैं वह प्राणी यदि अतितुच्छ हों तो भी उन के सकलक्लेश दूर होकर परमानन्दकी प्राप्ति होती है, हेदेव ! हमारे मनोरथ को तो तुम जानते ही हो क्योंकि तुच्छ प्राणियों के भी हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे रहनेवाले तुम उनके मनोरथों को जानतेहो फिर तुम्हारी उपासना करनेवाले हमारे मनोरथ को तुम क्यों नहीं जानोगे? २९ और हमारे ही मुखसे सुनना हो तो हे जगत् के पालक ! मोक्ष का मार्ग दिखानेवाले और स्वयं पुरुषार्थरूप तुम भगवान् जो हमारे ऊपर प्रसन्न हुए हो यही हमारा इच्छित वरदान है अर्थात् भगवान् की प्रसन्नता ही हमें वर चाहिये था ॥ ३० ॥ तथापि हे ईश्वर ! प्रकृतिरूप कारण से भी पर जो आप तिन से हम एक वरदान मांगते हैं, हे देव ! तुम्हारी विभूतियों का अन्त नहीं है इसकारण लोक तुम्हें अनन्त कहते हैं, इस से हे ईश्वर ! तुम चाहें जो कुछ देने को समर्थ हो और माँगने योग्य सम्पत्तियें भी बहुत हैं तथापि—॥ ३१ ॥

ऽन्ये सारंगोऽन्यन्न सेवते ॥ त्वदंघ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि ॥ ॥ ३२ ॥ यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः ॥ तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे ॥ ३३ ॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥३४॥ यत्रेड्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः ॥ निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥ ३५ ॥ यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ॥ संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसंगैः पुनः पुनः ॥ ३६ ॥ तेषां विचरतः पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ॥ भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः॥३७॥ वयं तु साक्षाद्भगवन् भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसंगमेन ॥ सुदुश्चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्योर्भिषक्तमं त्वाऽद्य गतिं गताः स्म ॥३८॥ यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या ॥ आर्या

भ्रमरको अनायास में पारिजातक वृक्ष (कल्पवृक्ष) प्राप्त होजाय तो वह जैसे दूसरे वृक्ष का आश्रय नहीं करता है तैसेही तुम्हारी कृपासे हमको तुम्हारे चरणो की समीपता मिलने-पर हम दूसरा कौन कौन सा वर माँगें ? अर्थात् कुछ माँगने को शेष नहीं रहा ॥ ३२ ॥ तिससे हमारी इतनी ही प्रार्थना है, कि–तुम्हारी माया से मोहित हुए हम अपने कर्मोंके द्वारा इससंसार में जबतक भ्रमणकरते हैं तबतक प्रत्येक जन्म में हमें तुम्हारे भक्तों की सङ्गति मिले ॥ ३३ ॥ राज्यभोग, स्वर्ग वा मोक्ष को त्यागकर तुम किसनिमित्त यह प्रार्थना करते हो, ऐसा कहो तो हे भगवन् ! तुम्हारेमें तत्परहुए साधुओं के समागमके एक क्षणके साथ भी हम स्वर्गकी वा मोक्ष की भी तुलना नहीं करते हैं फिर उस के सामने मनुष्योंके राजभोगादि सुखों का तो कहनाही क्या ? ॥ ३४ ॥ जिन भगवद्भक्तों के समाज में विषयभोगकी तृष्णाको शांत करनेवाली शुद्ध भगवत्कथाका वर्णन होतारहताहै,जहाँ प्राणी मात्र में किञ्चिन्मात्र भी वैरभाव नहीं रहताहै, जहाँ किसी भी प्रकार का भय नहीं है ॥३५॥ जहां कुछ अपेक्षा न रखनेवाले भगवद्भक्त, सुन्दर कथाओं में, संन्यासियों के भी परमगति-रूप साक्षात् भगवान् नारायण की वारम्वार स्तुति करते हैं और जो गंगा आदितीर्थों को भी पवित्र करने की इच्छा करके अपने चरणों से भूमिपर विचरते हैं उन तुम्हारे भक्तों का समागम संसार से भयभीत हुए पुरुष को कैसे प्रिय नहीं लगेगा ? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे भगवन् !आपके प्यारे सखा जो शिवजी उनका क्षणभरको समागम होजानेसे,जो बड़ाभारी प्रयत्न करने से दूर न होसके ऐसे जन्म मरणरूप रोग को दूर करने में उत्तम वैद्यरूप प्रत्यक्ष आपकी शरण में आज हम आये हैं ॥ ३८ ॥ हे ईश्वर ! पहिले हमने, जो कुछ उत्तमप्रकार से पढ़ा होगा, तथा–गुरु, ब्राह्मण और वृद्धों को नित्य सेवा करके प्रसन्न किया होगा अथवा श्रेष्ठ पुरुषों को, मित्रों को, बन्धुजनों को और सकल प्राणीमात्र को, दोषबुद्धि त्यागकर शुद्ध

नताः सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ॥ ३९ ॥ यन्नः सुतप्तं तप
एतदीश निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ॥ सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते
परितोषणाय ॥४०॥ मनुः स्वयंभूर्भगवान् भवश्च येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः॥
अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवन्त्यथो त्वात्मसमं गृणीमः॥४१॥ नमः समाय
शुद्धाय पुरुषाय पराय च ॥ वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥ मैत्रेय-
उवाच ॥ इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ॥ अनि-
च्छतां यानमतृप्तचक्षुषां ययौ स्वधामानपवर्गवीर्यः ॥ ४३ ॥ अथ निर्याय स-
लिलात्प्रचेतस उदन्वतः ॥ वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः
॥ ४४ ॥ ततोऽग्निमारुतौ राजन्नमुञ्चन्मुखतो रुषा ॥ महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक
इवात्यये ॥ ४५ ॥ भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान्वीक्ष्य पितामहः ॥ आगतः
शमयामास पुत्रान्बर्हिष्मतो नयैः ॥ ४६ ॥ तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहि-

भावसे वन्दना की होगी ॥ ३९ ॥ तथा अव अन्नपर्यन्त को त्यागकर वहुतसे वर्षोंतक
जलमें खडे होकर जो यह तप किया है,वह हमारे सकल कर्म,सर्वान्तियामी और व्यापकरूप
आप के सन्तोष के निमित्त हों, यह भी एक वर हम तुमसे मांगते हैं४०स्वायम्भुव मनु, ब्रह्मा
जी, परपसमर्थ शिवजी तथा तप और ज्ञानके प्रभावसे जिनका अन्तःकरण शुद्ध हुआहै ऐसे
दूसरेकितनेहीपुरुष,तुम्हारी महिमाका अन्त न जानकरभी जो अपनीवुद्धिके अनुसार तुम्हारी
स्तुति करतेहैं इससे हमभी अपनी वुद्धिकी गति पर्यन्त तुम्हारी स्तुतिकरते हैं।४१।हेभगवन्!
तुम, सर्वत्र शत्रु–मित्र आदिका भेद न रखनेवाले,निर्दोष,सर्वान्तर्यामी और सर्वोत्तमहो इस
कारण हे शुद्धसत्वरूप वासुदेव ! तुम्हें वारंवार नमस्कार हो॥४२॥मैत्रेयजी कहतेहैं कि–
हेविदुरजी ! इसप्रकार प्रचेताओं ने जिनकी स्तुति करी है ऐसे शरणागतवत्सल और अ-
कुंठितशक्ति उन भगवान् श्रीहरि ने सन्तुष्ट होकर तथास्तु (तुमने जो माँगाहै वह तुमको
प्राप्त हो चले)ऐसा कहा और उनका दर्शन करनेसे जिनके नेत्र तृप्तनहीं हुएथे ऐसे वह प्रचेता
उन के जाने की इच्छा नहीं करते थे तथापि वह अपने भक्तों के हृदयरूप स्थान को चलेगए
॥ ४३ ॥ तदनन्तर वह प्रचेता समुद्र के जल में से वाहर निकले, सो वह मानो अपने वि-
स्तारसे स्वर्ग को रोकरहे हों ऐसे मर्यादा से अधिक ऊँचे बढेहुए वृक्षों से छाईहुई पृथ्वी को दे-
खकर उन वृक्षोंके ऊपर कोपायमानहुए ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उन प्रचेताओं ने
प्रलयकाल के कालाग्नि रुद्रकी समान पृथ्वीपर के सकल वृक्ष लताओं को नष्ट करडाल ने के
निमित्त अपने मुखमें से अग्नि और वायु को छोड़ा ॥ ४५ ॥ तव उन से जलकर भस्म होते
हुए उन वृक्षों को देखकर ब्रह्माजी तहाँ आये और उन्होंने अनेकों युक्तियों से प्राचीनवर्हि
राजाके पुत्रोंको समझाया ॥ ४६ ॥ उससमय तहां जो वृक्ष शेप रहे थे उन को भी भयहुआ

तरं तदा ॥ उज्जहुस्ते प्रचेतोभ्यं उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥ ४७ ॥ ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे ॥ यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥ ४८ ॥ चाक्षुषे त्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते ॥ यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥४९॥ यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा ॥ स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥ ५० ॥ तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च ॥ युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥५१॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ॥ स्मरन्त आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् ॥ १ ॥ दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा॥ प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥ २ ॥ तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो जितासनान् शां-

---

ही इस कारण उन्हों ने ब्रह्मा जी की आज्ञा से अपनी कन्या उन प्रचेताओं को समर्पण करी ॥ ४७ ॥ उन प्रचेताओंने भी ब्रह्मा जी की आज्ञा से वृक्षों की दी हुई उस मारिषा नामक कन्या के साथ विवाह करलिया, फिर उस के गर्भ से दक्ष का जन्म हुआ अर्थात् जो पहिले ब्रह्मा जी का पुत्र दक्ष प्रजापति था, उस के महादेव जी के अपराध से वकरे का मख लगा था, उस ही दक्ष ने अपने निन्दनीय शरीरको त्याग कर प्रचेताओं की मारिषा नामक स्त्री के उदर में दूसरा जन्म धारण करा ॥ ४८ ॥ चाक्षुष मन्वन्तर आनेपर, जिस का पूर्व शरीर काल गति से नष्ट होगया वह प्रसिद्ध दक्ष यही है, जिस ने परमेश्वर की प्रेरणा से अपनी इच्छानुसार वहुत सी प्रजा उत्पन्न करी थीं ॥ ४९ ॥ जव उत्पन्न हुआ उसी समय अपनी कान्ति से सकल तेजस्वी पुरुषों का तेज फीका करादिया और वह अपने कर्म्मों में निरन्तर दक्ष (चतुर) था इस कारण उस को सव लोक दक्ष कहने लगे ॥ ५० ॥ उनको, ब्रह्मा जी ने अभिषेक करके, प्रजाओं की सृष्टि और रक्षा करने के कार्य में लगाया, फिर उस ही दक्ष ने, दूसरे सकल मरीचि आदि प्रजापतियों को अपने २ कार्य पर नियुक्त करा ॥५१॥ इति चतुर्थस्कन्ध में त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मैत्रेयजी कहते हैं कि–हेविदुरजी ! तदनन्तर दश सहस्र दिव्य वर्षवीतजानेपर जिनको विवेकज्ञानहुआहै ऐसे उन प्रचेताओंने, 'तुम इस लोक और परलोकमें विरक्त होकर मेरे स्वरूप को पाओगे ऐसे' अधोक्षज भगवान् के कथन को स्मरण करके तत्काल अपनी भार्या (मारिषा) को पुत्र के (दक्षके) अधीन करके घर को त्यागदिया ॥ १ ॥ उन्हो ने पश्चिम दिशा में समुद्र के तटपर जाकर, जहां जाजलिनामक ऋषि को मुक्ति प्राप्त हुई थी तहां, जिस से सकल प्राणियों में 'यह आत्मा ही है, ऐसा ज्ञान होता है ऐसे ब्रह्मसत्र की दीक्षा ग्रहण करी अर्थात् आत्मविचार करने का सङ्कल्प किया ॥ २ ॥ फिर–प्राण,मन

तसमानविग्रहान् ॥ परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ॥ ३ ॥ तमागतं उत्थाय प्रणिपत्याभिनन्द्य च ॥ पूजयित्वा यथादेशं सुखासीनमथाब्रुवन् ॥ ४ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ स्वागतं ते सुरर्षेऽद्य दिष्ट्या नो दर्शनं गतः ॥ तव चंक्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ॥ ५ ॥ यदादिष्टं भगवता शिवेनाधोक्षजेन च ॥ तद्गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥ ६ ॥ तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम् ॥ येनाञ्जसा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः ॥ भगवत्युत्तमश्लोक आविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान् ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ॥ नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥ किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्रसावित्रयाज्ञिकैः ॥ कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोपि विबुधायुषा ॥ १० ॥ श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृ-

वाणी और दृष्टि को वश में करनेवाले, आसनों को जीतनेवाले, मूलाधार चक्रसे मस्तक पर्यन्त अपने सकल अङ्गों को शान्त तथा निश्चल रखनेवाले और शुद्ध ब्रह्म में अपने मन को लगानेवाले उन प्रचेताओं को, देवता और दैत्य जिन की स्तुति करें ऐसे नारदजी ने देखा ॥ ३ ॥ नारदमुनि आते हैं ऐसा देखते ही उन्होंने उन को उत्थान देकर वन्दना करी और आगमन की कृपा से अपना आनन्द दिखाकर, शास्त्र में कही विधि के अनुसार उनका पूजन करा,फिर नारदजीके स्वस्थ होकर बैठने पर वह प्रचेता कहनेलगे।४।प्रचेताओं ने कहा हे देवर्षे ! तुम्हारा आगमन हमारे कल्याण के निमित्त हुआ है, इसकारण हमारे प्रारब्ध के उदयसे ही हमें तुम्हारा दर्शन हुआ है, क्योंकि—हेब्रह्मन् ! जैसेसूर्यका दर्शन, अन्धकार को दूर करनेवाला होनेसे, लोकों के भयको दूर करने का कारण होता है ऐसे ही आप का विचरना, अज्ञान को दूरकरनेवाला होने के कारण संसारभय को दूर करने का कारण है ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! भगवान् महादेवजी ने और विष्णुभगवान् ने जो पहिले हमसे तत्त्वज्ञान कहा था वह घर में (संसार) में आसक्त हुए हमें प्रायः विस्मरण सा होगया है वह भगवान् के स्वरूप को प्रकाशित करनेवाला आत्मज्ञान हम से तुम फिर कहो, तव उस के प्रभाव से हम इस दुस्तर संसारसागरको तरजायँगे ॥६॥७॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि—हे विदुरजी ! इसप्रकार प्रचेताओं के प्रश्न करनेपर वह भगवान् नारद ऋषि उत्तम श्लोक भगवान् के विषें अपना चित्त लगाकर उन प्रचेता राजाओं से कहने लगे ॥८॥ नारदजीने कहा—हेराजाओं ! इस संसार में जिसके द्वारा विश्वव्यापी श्रीहरि की सेवा होती है वही जन्म, वही मन, वही भाषण, और वही कर्म्म श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ नहीं तो, जिसके द्वारा श्रीहरि प्रसन्न होकर भक्तों को आत्मस्वरूप का लाभ नहीं देते हैं उस, शुद्ध माता पिता से उत्पन्न होना, यज्ञोपवीत संस्कार होना और यज्ञ की दीक्षा

त्रिभिः ॥ बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा ॥ ११ ॥ किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि ॥ किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः ॥ १२ ॥ श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मात्मदः प्रियः ॥ १३ ॥ यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ॥ प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥ १४ ॥ यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः पुनश्च तस्मिन्प्रविशन्ति काले ॥ भूतानि भूमौ स्थिरजंगमानि तथा हरावेव गुणप्रवाहः ॥ १५ ॥ एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ॥ यथाऽसवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्य-

लेना, इन ' तीन प्रकार के जन्मों से, वा वेद में कहे हुए कर्म्मों से अथवा देवताओं की समान बड़ी भारी आयु होजाने से कौन फल है ? कोई फल नहीं है, अथवा बहुत सा पढ़ना, व्रत उपवास आदि तपस्या, कहने की चतुराई अनेकों वार्त्ताओं का स्मरण रखने की शक्ति, उत्तम बुद्धि, शरीर का बल,इन्द्रियों की चतुराई,प्राणायाम आदि योगसाधन सांख्य (आत्मा देह आदि से भिन्न है ऐसा ज्ञान),संन्यास, वेदोंका पढ़ना और अनेकों प्रकार के दान–तीर्थयात्रा आदि करने के साधन हैं, उनसे कौन लाभ है ? अर्थात् कोई लाभ नहीं ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ क्योंकि–विचार करके देखने पर, अपने निमित्त ही औरोंका प्रियपनाहै,इसकारण सब प्रकार के ही कल्याणकारी फलोंकी अवधि आत्मा ही है, तैसेही–सकल प्राणियों के अन्तर्यामी और सकल प्राणियों की अविद्या दूर करके उनको आत्मप्राप्ति करानेवाले और परमानन्दरूप होने के कारण सबके अत्यन्त प्रिय वह आत्मा श्रीहरि ही हैं॥१३॥ जैसे वृक्षकी मूल (जड़) में जल देनेसे बड़े २ गुद्दे और उनकी छोटी २ शाखा तथा उनकी और भी छोटी २ टहनी तथा उसके भी अग्रभागमें के पत्र पुष्प आदि यह सबही तृप्तहोते हैं,यह केवल उनके ऊपर जल सींचनेसे नहीं होते हैं वा जैसे भोजन करने पर उस भोजनसे, भिन्न २ सकल इन्द्रियों की ही तृप्ति होती है सो कुछ उन इन्द्रियों के ऊपर अन्नका लेप करने से नहीं होती है, तैसेही अच्युत भगवान् की आराधनाकरने पर मानो सकल देवताओं का आराधन होजाता है॥ १४ ॥ क्योंकि–जैसे सूर्य से वर्षाकाल में जल उत्पन्न होता है और वह ग्रीष्मऋतु में फिर उसमें ही प्रवेश करताहै अथवा जैसे स्थावर जङ्गमरूप प्राणी पृथ्वी से उत्पन्न होकर अन्त में फिर पृथ्वी में ही समाजाते हैं तैसे ही चेतनाचेतनात्मक प्रपञ्च सृष्टिकालमें जिन श्रीहरि से उत्पन्न होता है प्रलय कालमें उन श्रीहरि के विषै ही लयको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ यह जगत्, सृष्टिकाल में यद्यपि गन्धर्वनगर की समान स्फुरित होता है तथापि भगवान् का निरुपाधिक स्वरूपही है, उससे पृथक् नहीं है, जैसे सूर्य से उत्पन्नहुई प्रभा पृथक् प्रतीत होती है तथापि वह वास्तव में उससे पृथक् नहीं है, अथवा जैसे इन्द्रियें जाग्रत् अवस्था

क्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥ १६ ॥ यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा भवन्ति भूपा न भवन्त्यनुक्रमात् ॥ एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमूरजस्तमः सत्त्वमिति प्रवाहः ॥ १७ ॥ तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ॥ स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहमात्मैकभावेन भजध्वमद्धा ॥ १८ ॥ दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येन केन वा ॥ सर्वेन्द्रियोपशांत्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥ १९ ॥ अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः ॥ निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥ २० ॥ न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ॥ श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिंचनेषु सत्सु ॥ २१ ॥ श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपदपतीन्विबुधांश्च

में भिन्न२प्रतीत होतीहैं तथापि उनका लय सुपुप्तिमें आत्ममें ही होताहै,तैसेही,पञ्चमहाभूत, शब्दादि विपय,ग्यारह इन्द्रियें और उनके देवता तथा उनका भेदरूप भ्रम,यह सब सृष्टिकालमें भिन्न २ प्रतीत होतेहैं परन्तु तौभी उनका लय भगवान् के विपैं ही होताहै ॥१६॥ हे राजाओं ! जैसे आकाश में मेघ, अन्धकार और प्रकाश यह सब क्रम से उत्पन्न होते हैं और फिर लीन होजाते हैं परन्तु उस से आकाश लिप्त नहीं होता है, तैसे ही-परब्रह्म में रज, तम और सत्व यह शक्तियें, कभी २ उत्पन्न होती हैं और कभी २ लीन होजाती हैं इस प्रकार यह जगत् का प्रवाह चलता है तथापि उस से भगवान् लिप्त नहीं हैं ॥१७॥ इस कारण सकल प्राणीमात्र के आत्मा, जगत् के निमित्तकारण, उपादानकारण, कर्त्ता, ब्रह्मादिकों के भी नियन्ता और अपनी चित् शक्तिसे गुण प्रवाहरूप प्रपञ्च का तिरस्कार करनेवाले उन एक परमेश्वर का ही तुम अपने अन्तर्यामी स्फुरण को प्राप्त होनेवाले चैतन्य रूप आत्मा से कुछ भेदभाव न रखकर अभेद बुद्धि से सेवन करो ॥ १८ ॥ सकल प्राणियों के ऊपर दया करना, प्रारब्धानुकूल जो कुछ मिलजाय उतने से ही सन्तोष मानना और सकल इन्द्रियों को वश में रखना, इस वर्त्ताव से संसार को दूर करनेवाले भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ जिस से सकल कामना दूर होगई हैं ऐसे शुद्ध हुए साधुओं के मन में निरन्तर बढ़नेवाली भक्ति के साथ स्थापन करे हुए अविनाशी भगवान् 'मैं भक्तों के वश में हूँ' ऐसा जानते हुए उन साधुओं के हृदय में से हृदयाकाश की समान निकल कर नहीं जाते हैं ॥ २० ॥ लोकों को निर्धन दीखनेवाले परन्तु वास्तव में स्वरूप के अनुभवरूप धनवाले भक्तजन जिनको प्रिय हैं,जो भक्तों की प्रेमरूप भक्ति के सुख को जानते हैं वह श्रीहरि, विद्या, धन, कुल, और कर्म के मद से रहित, सज्जनों का तिरस्कार करनेवाले दुष्ट कुबुद्धि पुरुषों की पूजा को भी स्वीकार नहीं करते हैं॥ २१ ॥ तथा जो निरन्तर सेवा करनेवाली लक्ष्मी को वा उसकी इच्छा करनेवाले राजाओं को अथवा

यत्स्वपूर्णः ॥ न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः कथममुमुद्विसृजेत्पुमान् कृतज्ञः ॥ ॥ २२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः ॥ श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायंभुवो मुनिः ॥ २३ ॥ तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् ॥ हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायंतस्तद्गतिं ययुः ॥ २४ ॥ एतत्ते ऽभिहितं क्षत्तर्यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः ॥ वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥ यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् ॥ भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥ २७ ॥ इमां तु कौषारविणोपवर्णितां क्षत्ता निशम्याजितवादसत्कथाम् ॥ प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुनेर्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥ २८ ॥ विदुर उवाच ॥ सोऽयमद्य महायोगिन्भवता करुणा-

देवताओं के अनुगामी न होकर, अपने स्वरूपानन्द से परिपूर्ण होने के कारण अपने एकान्त भक्तों की इच्छानुसार वर्त्ताव करते हैं ऐसे परमेश्वर को कौन कृतज्ञ पुरुष क्षणमात्र को भी विसारेगा ॥ २२ ॥ मैत्रेय जी कहते हैं कि—हे विदुर जी ! इस प्रकार कही हुई कथा और दूसरी भी (ध्रुव चरित्र आदि) कितनी ही भगवत्कथा उन प्रचेताओं को सुनाकर वह ब्रह्मपुत्र नारद जी, ब्रह्मलोक को चलेगए ॥ २३ ॥ तदनन्तर वह प्रचेता भी, उन नारद जी के मुख से निकले हुए, लोकों के पाप का नाश करनेवाले श्रीहरि के यश को सुनकर तिन श्रीहरि के चरणों का ध्यान करते हुए वैकुण्ठ लोक को चलेगए ॥ २४ ॥ हे विदुर जी ! तुमने जो, मुझ से बूझाथा वह यह श्रीहरि की कथाओं से युक्त प्रचेताओं का और नारद जी का सम्वाद रूप आख्यान मैंने तुम से कहा है ॥ २५ ॥ शुकदेव जी कहते हैं कि—हे राजन् ! परीक्षित ! स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद यह दो पुत्र थे, उन में से उत्तानपाद राजा का यह वंश तुम से मैंने कहा अब प्रियव्रत राजा का भी वंश कहता हूँ , सुनो ॥ २६ ॥ जिस प्रियव्रत ने पहिले नारदजी से आत्मविद्या पाकर फिर पृथ्वी को भोगा, तदनन्तर पुत्रों को पृथ्वी के विभाग करके देकर, आप ईश्वर के स्वरूप में अनायास ही जामिला ॥ २७ ॥ हेराजन् ! मैत्रेय ऋषिकी वर्णन करीहुई इस, भगवान्के महात्म्यसे युक्त कथाको सुनकर जिनको भगवान्की प्रेमरूप भक्ति प्राप्तहुई है और आनन्द की अश्रुधारासे व्याकुल होतेहुए वह विदुर जीने मनमें श्रीहरि के चरण को धारण करा और मस्तकपर मैत्रेय ऋषिका चरण धारण करा अर्थात् अपना मस्तक उन के चरणों पर रक्खा और कहनेलगे ॥ २८ ॥ विदुरजीने कहा—हेपरम समर्थ मैत्रेय ऋषे ! दयालु अन्तःकरणवाले तुमने निष्किञ्चन भगवद्भक्तों को

त्मना ॥ दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिंचनगो हरिः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच॥ इत्यानम्य तमामन्त्र्य विदुरो गजसाह्वयम् ॥ स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥ ३० ॥ एतद्यः शृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनां ॥ आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्राचेतसोपाख्यानं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ३१

प्राप्त होनेवाले श्रीहरि जिस से मिलते हैं ऐसा यह अज्ञान का परला पार मुझे दिखाया है अर्थात् मुझे कृतार्थ किया है ॥ २९ ॥ शुकदेवजी कहते हैंकि–हेराजन् परीक्षित! इस प्रकार कहकर सन्तुष्टचित्त हुए वह विदुरजी उन मैत्रेयऋषि को वन्दना करके तथा उन की आज्ञा लेकर अपने धृतराष्ट्र आदि बन्धुजनों को देखने की इच्छा से तहां से हस्तिनापुर को चलेगए ॥०३॥ हेराजन्! श्रीहरि के विषैं अपना चित्त लगानेवाले प्रचेतस् राजाओं के इस चरित्र को जो पुरुष सुनेगा उस की आयु बढेगी, धन, यश, कल्याण, सद्गति और ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी ॥ ३१ ॥ इति चतुर्थ स्कन्ध में एकत्रिंश अध्याय समाप्त *

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि–मुरादाबादप्रवासिभारद्वाजगोत्र–गौड़वंश्य–श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान–विद्यालये प्रधानाध्यापक–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोपनामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषानुवादेन च सहितः चतुर्थस्कन्धःसमाप्तः ॥

समाप्तोयं चतुर्थःस्कन्धः

अथ पञ्चमस्कन्धप्रारम्भः

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ॥ गृहेरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥ १ ॥ न नूनं मुक्तसंगानां तादृशानां द्विजर्षभ ॥ गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ॥ २ ॥ महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः ॥ छायानिर्वृतचित्तानां न कुटुंबे स्पृहा मतिः ॥ ३ ॥ संशयोऽयं महान् ब्रह्मन् दारागारसुतादिषु ॥ सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविंदमकरंदरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किंचिदंतरायविहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥ ५ ॥ यर्हि वाव ह राजन्स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयांऽजसाऽ-

---

प्रियव्रत राजाके आश्चर्यकारी संक्षिप्त चरित्र को सुनकर राजाने कहा—हे मुने ! आत्मस्वरूप में मग्न रहनेवाला, भगवद्भक्त राजा प्रियव्रत घर में (संसार में) कैसे आसक्त हुआ ? क्योंकि—घरके कारण तो आत्मा को कर्मों के द्वारा बन्धन और आत्मस्वरूप का विस्मरण होता है ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणों ! वास्तवमें सकल सङ्गों को त्यागनेवाले उन प्रियव्रत राजाकी समान पुरुषोंको तो' अज्ञानी पुरुषोंको जिसका होना प्रसिद्धहै ऐसा यह ' गृह आदि के विषैं अभिमान प्राप्त होना योग्य नहीं ॥ २ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! पवित्र है कीर्त्ति जिनकी ऐसे भगवान् के. चरणों की छाया से जिनका चित्त प्रसन्न है ऐसे सत्पुरुषों की, स्त्री पुत्र आदि कुटुम्ब में अभिलाषा की बुद्धि नहीं होती है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ ऐसा होनेपर भी राजा प्रियव्रत, घर में कैसे असक्त हुआ ? हे ब्रह्मन् ! स्त्री, घर पुत्र आदिकों में आसक्त हुए तिस राजा प्रियव्रत को फिर मोक्षप्राप्ति और श्रीकृष्णभगवान् के विषैं अचल बुद्धि कैसे हुई ? इस विषय में मुझे बड़ाभारी संदेह होरहा है उसको दूर करिये ॥४॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन् ! तुमने जो कहा सो ठीक है, क्योंकि—पवित्रकीर्त्ति भगवान् के सुन्दरतासेभरे चरणकमल के मकरन्द को सेवन करने में जिनका अन्तःकरण आसक्त होरहा है, वह पुरुष किसी २ विघ्न से खण्डित होकर भी अपने, परमहंस भगवद्भक्तों के प्रिय, वासुदेवभगवान् की कथारूप, कल्याणकारी मार्ग को प्रायः छोड़ते नहीं है॥५॥हे राजन् ! वह स्वायम्भुव मनु का पुत्र प्रियव्रत, भगवान् का बड़ा भक्त था, नारदऋषि के चरणों की सेवा करने से अनायासमें ही उस ने आत्माके वास्त

वगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसंत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रव-रगुणगणैकांतभाजनतया स्वपित्रोपामंत्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानस-माधियोगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनंदद्यद्यपि तदप्रत्या-म्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः॥ ६ ॥ अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसक-लजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार। ॥७॥ स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभि-पूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥ ८ ॥ तत्र ह वा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवंतं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्रा-भ्यामवहितांजलिरुपतस्थे ॥ ९ ॥ भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवा-

विक स्वरूप को जानलियाथा; फिर जिस समय उसने वासुदेव भगवान् के ही विषैं अपनी सकल इन्द्रियों के व्यापारों को समर्पण करके, निरन्तर आत्मविचार करते हुए बैठने का, मन में सङ्कल्प किया; उस समय राजा में जो २ होने योग्य गुण शास्त्रमें लिखेहैं, वह सकल गुण इस प्रियव्रत के अङ्गों में वसरहे हैं, ऐसा देखकर उन को, पिता ने (मनु ने) भूमण्डलकी रक्षा क-रने की आज्ञा दी, सो यद्यपि वह पिता की आज्ञा, टालने के योग्य नहीं थी, तथापि उस को स्वीकार करके राज्य को चलानेपर, उसमें 'मिथ्याभूत, प्रपञ्च से आत्मस्वरूप ढक जायगा, इस प्रकार मन में विचार करनेवाले तिस राजा प्रियव्रत ने पिता की आज्ञा को मन से स्वीकार नहीं किया ।६॥ सो इतने ही में, इस त्रिगुणमयी सृष्टि की वृद्धि कैसे होगी, ऐसे विचार में निरन्तर मग्न और सकल जगत् के अभिप्राय को जानने वाले, भगवान् स्वयम्भू ब्रह्माजी, मूर्तिमान् सकल वेदों करके और अपने मरीचि आदि ऋषि रूप गणों से घिरे हुए होकर सत्यलोक से नीचे को उतरे ॥ ७ ॥ तब वह आकाश में चन्द्रमा की समान दिशाओं को प्रकाशयुक्त करते और प्रत्येक मार्ग में विमानों की पंक्तियोंसे युक्त इन्द्रादि श्रेष्ठ देवताओं से पूजित होते तथा मार्ग २ में समूह के समूह इकट्ठे होकर, सिद्ध, गन्धर्व, साध्य, चारण और ऋषिगण जिन के गुणों का गान कर रहे हैं ऐसे गन्धमादन की गुफा को प्रकाशित करते हुए ब्रह्मा जी, जहां नारद जी ने राजा प्रियव्रत को आत्मविद्या का उपदेश किया था और स्वायम्भुव मनु राज्याभिषेक करने के निमित्त उन को घर लेजाने को आये थे तिस स्थानपर आपहुँचे ॥ ८ ॥ तहां 'हंस पर बैठकर आनेवाले यह हमारे पिता भगवान् ब्रह्मा जी हैं, ऐसा पहिचानकर नारद ऋषि, एक साथ उठकर खड़े होगए; और मनु तथा प्रियव्रत, इन पिता पुत्रों के साथ हाथ जोड़कर पूजन कर स्तुति करी ॥९॥ हे भरतकुल में उत्पन्न हुए राजन्! नारदजी ने जिन को पूजा समर्पण

केनातितरांमुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि माऽसूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ॥ वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥११॥ न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वा ॥ नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा कृतं विहन्तुं तनुभृद्विभूयात् ॥ १२ ॥ भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय ॥ सुखाय दुःखाय च देहयोगमव्यक्तदिष्टं जनताऽङ्ग धत्ते ॥ १३ ॥ यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ॥ सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥ १४ ॥ ईशाभिसृष्टं ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग दुःखं सुखं वा गुणकर्मसंगात् ॥ आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथश्चक्षुष्मताऽन्धा इव नीयमानाः ॥ १५ ॥

करी है और मधुर वचन से अधिकता के साथ जिन के गुण, अवतार और सर्वोत्कर्ष का वर्णन करा है ऐसे, हास्य के साथ कृपादृष्टि से देखनेवाले वह भगवान् ब्रह्मा जी, उस प्रियव्रत राजा से इस प्रकार कहनेलगे ॥ १० ॥ ब्रह्माजी ने कहा हे बेटा प्रियव्रत ! इस मेरे कथन को सुन, मैं तुझ से ठीक २ कहता हूँ, मेरे मुखसे ईश्वर हरि ही तुझे आज्ञा करते हैं, ऐसा समझ, जिस का देश वा काल से प्रमाण नहीं किया जासक्ता, उस देव को दोषदृष्टि से देखना तुझे योग्य नहीं है; शिवजी, तेरे पिता (स्वायम्भुव मनु), यह तेरे गुरु देवर्षि नारदजी और मैं, यह सब ही हम, श्रीहरि के वश में होकर उनकी आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं ॥ ११ ॥ देह धारण करनेवाला कोई भी प्राणी, तप, ज्ञान वा योगबल तथा अर्थ और धर्म के द्वारा, स्वयं वा दूसरे की सहायता से उन भगवान की कर्त्तव्यता के लौटने को समर्थ नहीं होगा ॥ १२ ॥ हे प्रियव्रत ! यह जीवों का समूह, जन्म, मरण, कर्मकरना, शोक, मोह, भय, सुख और दुःख मिलने के निमित्त ईश्वर जिस २ शरीर का सम्बन्ध जुटादेता है उस २ शरीर को नित्य धारण करता है ॥ १३ ॥ हे बेटा ! सब ही हम, जिन भगवान् की वेदवाणीरूप रस्से में सत्त्वादि गुण और कर्मोके द्वारा बटीहुई, ब्राह्मण आदि नामरूप परमदृढ़ डोरियोंसे दृढ़ता के साथ बँधेहुए 'जैसे नासिका में नाथ डालेहुए वृषभ आदि पशु, मनुष्य की (अपने स्वामी की) सेवा करते हैं तैसेही' ईश्वर की पूजाआदि सेवा करते हैं अर्थात् उन की इच्छा के अनुसार अपने २ अधिकार के, प्राप्त हुए कर्मों को करते हैं ॥ १४ ॥ हे प्रियव्रत ! जैसे अन्धे पुरुष, अपने को नेत्रवाला पुरुष, छाया में वा धूप में जिधर २ को लेजाय उधर २ को जाते हैं तैसे ही हम, प्रभुने, गुण और कर्मों के सम्बन्धसे जिस २ देव मनुष्य आदि रूप शरीर की योजना करी है उस २ को स्वीकार करके उन ईश्वरके दिये हुए सुख वा दुःख को स्वीकार करते हैं ॥ १५ ॥ अधिक तो क्या, परन्तु जैसे

मुक्तोपि तावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ॥ यथाऽनुभूतं प्रतियात-
निद्रः किंत्वन्यदेहाय गुणान्न वृंक्ते ॥ १६ ॥ भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः
स आस्ते सहषट्सपत्नः ॥ जितेंद्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करो-
त्यवद्यम् ॥ १७॥ यः षट्सपत्नान् विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ।
अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन् क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥ १८॥ त्वं त्व-
ब्जनाभांघ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ॥ भुंक्ष्वेह भोगान्पुरुषा-
तिदिष्टान्विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति समभिहितो
महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयाऽवनतशिरोधरो-
बाढमिति सबहुमानमुवाह ॥ २० ॥ भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पिताप-

साधारण पुरुष स्वप्न में अनुभव करी हुई वार्त्ता का जागने के अनन्तरभी अभिमान शून्य होकर स्मरण करता है तैसे ही, जीवन्मुक्त हुआ भी पुरुष, जबतक प्रारब्ध कर्म है तब तक उस प्रारब्ध को भोगता हुआ अभिमान शून्य होकर अपने शरीर को धारण करता है परन्तु वह दूसरे शरीर को उत्पन्न करनेवाले कर्मों को वा वासनाओं को स्वीकार नहीं करता है ॥ १६ ॥ जिसकी इन्द्रियें स्वाधीन नहीं हैं वह पुरुष, वन में जाकर सङ्गके भय से यद्यपि इस वन से उस वन में फिरता रहा तथापि उसको तहां संसार का भय प्राप्त होताही है, क्योंकि—वह तहां काम क्रोधादि छः शत्रुओं के साथ और विषयासक्त हुए मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के साथ रहता है और इन्द्रियों को जीतकर आत्मस्वरूपमें रमण करनेवाले ज्ञानी पुरुष की गृहस्थाश्रम में भी क्या हानि होसक्ती है ? ॥१७ ॥इसकारण हे प्रियव्रत ! जैसे राजा किले का आश्रय करके ही प्रबल शत्रुओं को जीतता है और श-त्रुओं का नाश होते ही फिर तहां यथेष्ट विचरताहै तैसेही जो पुरुष काम आदि छ शत्रुओं को जीतने की इच्छा करता हो वह पहिले गृहस्थ आश्रम को स्वीकार करके, तहां एक साथ विषयों को न त्याग, धीरे २ अपने कामादि शत्रुओं को जीतने का यत्न करे और उन शत्रुओं के क्षीण होनेपर वह विद्वान् पुरुष, इच्छानुकूल विचरे ॥ १८॥ तूने तो,पद्म-नाभ भगवान्के चरणकमलकी कलीरूप किले के आधार से रहकर,काम आदि छःशत्रुओं को यद्यपि जीतलियाहै तथापि ईश्वर के दिये हुए विषयभोगों को प्रथम राज्याधिकारपर रहकर कुछ समय पर्यन्त भोग और फिर सकल सङ्गों को त्यागकर आत्मनिष्ठ हो॥ १९॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन् ! इसप्रकार कहे हुए तिस परमभगवद्भक्त राजाप्रियव्रत ने, छोटा होने के कारण, अपनी ग्रीवा को नमाकर '' ठीक है, ऐसाही करूँगा ऐसा कहकर' त्रिलोकी के गुरु उन ब्रह्माजी की आज्ञा को परम सन्मान के साथ स्वीकार किया ॥ २०.॥ तदनन्तर सन्तोप को प्राप्त हुए मनुने, शास्त्रमें कही हुई विधि के अनुसार

चितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ॥ २१ ॥ मनुरपि परेणैवं प्रतिसंधितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तये आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥ २२ ॥ इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाऽधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनपरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरंधितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ॥ २३ ॥ अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यामु ह वाव आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्योदारान्दश भावयांबभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥ २४ ॥ आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामानः ॥ २५ ॥ एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रय आसन्नूर्ध्वरेतसस्ते आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्र-

---

जिन की पूजा करी है ऐसे वह ब्रह्माजी, प्रियव्रत और नारदजी इन दोनों के वक्रतारहित शांत दृष्टि से देखतेहुए, अपने आश्रय, वाणी और मन के अगोचर तथा सकल व्यवहार शून्य ब्रह्म का चिन्तवन करते हुए सत्यलोक को चलेगए ॥ २१ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी ने जिस का मनोरथ पूर्ण करा है ऐसा वह मनु भी, देवर्षियों में श्रेष्ठ जो नारद जी उन की सम्मति से तिस प्रियव्रत पुत्र को सकल भूमण्डल की मर्यादा का पालन करने के निमित्त राजसिंहासन के ऊपर बैठाकर, आप अति दुस्तर जो विषयरूप विष का स्थान, उसको भोगने की इच्छा से रहित हुआ ॥ २२ ॥ इस प्रकार ईश्वर की इच्छा से कर्म के अधिकार को प्राप्त हुआ वह प्रियव्रत राजा, जिनकी अलौकिक शक्ति सकल जगत् के बन्धन का नाश करनेवाली है ऐसे आदिपुरुष भगवान् के दोनों चरणों का निरन्तर ध्यान करने से जिस के रागद्वेष आदि मल भस्म होगए हैं ऐसे चित्त वाला, शुद्ध और बड़ों के मान को बढ़ानेवाला होकर भूमण्डल की रक्षा करनेलगा ॥२३॥ फिर उस ने विश्वकर्मा नामक प्रजापति की बर्हिष्मती नामक कन्या से विवाह करलिया, फिर उस के विषें उस के दश पुत्र और उन सब से छोटी ऊर्जस्वती नामक एक कन्या, सब ग्यारह सन्तान हुईं, वह पुत्र, प्रियव्रत की समान ही सुशील, सद्गुणी, चतुर, सुरूप, पराक्रमी और उदार थे ॥ २४ ॥ वह सब पुत्र, क्रम से—आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि ऐसे अग्नि के नामवाले थे ॥ २५ उन में से कवि, महावीर और सवन, इन तीनों ने, बालक अवस्था से ही आत्मविद्या का अभ्यास कर के नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को धारण करा और परमहंस

ममभजन् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीवनिका-
यावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविंदाविरत-
स्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वे-
षां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥२७॥
अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन्नुत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वंतराधि-
पतयः ॥ २८ ॥ एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येका-
दश परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसंभृतदोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वी-
गुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौपि-
ण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानवबुध्य-
मान इव महामना बुभुजे ॥२९॥ यावदवभासयति सुरगिरिमनुपरिक्रमन् भगवा-
नादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि भगवदुपास-

---

मुनियों के आश्रम को स्वीकार किया ॥ २६ ॥ फिर तिस आश्रम में ही शान्तस्वभाव वाले वह तीनों महर्षि, सकल जीवों के निवासस्थान और संसार से भयभीत हुए जीवों की रक्षा करनेवाले वासुदेव भगवान् के सुन्दर चरणकमल का निरन्तर स्मरण करने से उत्पन्न हुआ जो अखण्डित सर्वोत्तम भक्तियोग, तिस के प्रभाव से शुद्ध हुए अन्तःकरण के विषैं अनुभवमें आये हुए, सकल भूतों के आत्मा और निजस्वरूपभूत तिन भगवान्के विषैं, देह आदि उपाधियों को दूर कर के आत्मस्वरूप से तादात्म्य को प्राप्तहुए ॥२७॥ दूसरी स्त्री के विषैं भी, राजा प्रियव्रत के, उत्तम, तामस और रैवत यह तीन पुत्र हुए, वह आगे को मन्वन्तरों के अधिपति हुए ॥ २८ ॥ इस प्रकार उन कवि आदि अपने तीनों पुत्रों के शान्ति का आश्रय कर के रहनेपर तिस राजा प्रियव्रत ने ग्यारह करोड़ वर्ष पर्यन्त पृथ्वी का राज्य किया; वह राजा, जिस से सकल अकुण्ठित पराक्रम उत्पन्न होते थे ऐसे बल से पूर्ण अपने दोनों भुजदण्डों से खैंची हुई धनुष की डोरी के टङ्कार शब्द से ही (युद्ध के विना ही) धर्म के शत्रुओं को दबानेवाला और बर्हिष्मती नामक रानी के प्रतिदिन बढ़नेवाली जो, 'पति आगये, ऐसा देखकर हर्ष के साथ उठकर खड़ा होना आदि' लीलाएं, उन से प्रकट दीखनेवाले जो स्त्रीस्वभाव आदि शृङ्गार आदि विलास, लज्जा, संकोच से हास्य के साथ देखना और मनोहर विनोद के वार्त्तालाप आदि से आगे २ को कम होती हुई विवेक शक्तिवालासा और विषयासक्ति से आत्मस्वरूप को न जाननेवालासा लोकों को दीखता था परन्तु वास्तव में बड़ा ज्ञानी था ॥ २९ ॥ हे राजन्! उस के पराक्रम का क्या कहना! अरे! मेरु पर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा करनेवाले भगवान् सूर्य, लोकालोक पर्वत पर्यन्त सकल भूमण्डल को प्रकाशित करते हैं ठीक

नोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन्समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामत् द्वितीय इव पतङ्गः ॥३०॥ ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्तसिन्धव आसन्यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः ॥ ३१ ॥ जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौंचशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथासंख्यं द्विगुणमानेन बहिः समंतत उपक्लृप्ताः ॥ ३२ ॥ क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्तजलधयः सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यंतरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथोपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक् परित उपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान्यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥ ३३ ॥ दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानी नाम काव्यसुता ॥ ३४ ॥ नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ॥ चित्रं विदूरविगतः-

है, परन्तु वह इस भूमण्डल में आधे भागको प्रकाशित करते हैं और आधे भाग को अन्धकार से ढका रखते हैं, यह उत्तम नहीं है ऐसा माननेवाले और जिसका प्रभाव भगवान् की उपासना करने से वृद्धि को प्राप्त हुआ है ऐसे तिस प्रियव्रतराजा ने, 'मैं रात्रि कोभी दिन करूँगा' ऐसा मन में विचारकर सूर्य के रथ की समान वेगवान् और प्रकाशमय रथ में बैठकर, मानों जैसे दूसरा सूर्य ही हो, इसप्रकार सूर्य के पीछे २ सात प्रदक्षिणा करीं ॥ ३० ॥ उस समय उस के रथ के पहिये की धार से जो सात गढ़हे होगए थे वही आगे सात समुद्र हुए, उन के कारण ही पृथ्वी के, जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच शाक और पुष्कर यह सात द्वीप हुए हैं, उन द्वीपों की लम्बाई चौड़ाई का प्रमाण, पहिले की अपेक्षा दूसरेका दुगुणा, दूसरे की अपेक्षा तीसरे का दुगुणा इसप्रकार ही सबका उत्तरोत्तर दुगुणा अधिक है, वह समुद्रों के बाहर चारों ओर रचेहुए हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ खारी जलका समुद्र, इक्षु (गन्ना) के रसका समुद्र, मद्य का समुद्र, घृत का समुद्र, दूधका समुद्र, दहीका समुद्र, और मधुरजल का समुद्र, यह सात समुद्र, सातों द्वीपों की खाईकी समान और उन के भीतर के द्वीप उतने ही प्रमाण वाले थे, एक २ करके उन सातों में से प्रत्येक के बाहर, उन जम्बू आदि सात द्वीपों में प्रियव्रत राजा ने अपने आज्ञाकारी आग्नीध्र आदि एक २ को क्रमसे एक २ द्वीप में का राज्य देकर तहांही स्थापन करा ॥ ३३ ॥ और उन्होंने अपनी ऊर्जस्वती नामक कन्या शुक्राचार्य को समर्पणकरी उस से ही आगे को देवयानी नामक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! भगवान् की चरणरज ने, पाँच ज्ञानेन्द्रियें और मन इन छः इन्द्रियों को अथवा क्षुधा, पिपासा,

सकृदाददीत यन्नामधेयमधुना स जहाति बंधम् ॥ ३५ ॥ स एवमपरिमितब-
लपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवा-
त्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥ ३६ ॥ अहो असाध्वनुष्ठितं यदभि-
निवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयांधकूपे तदलमलममुष्या वनिताया
विनोदमृगं मां धिग्धिगिति गर्हयांचकार ॥ ३७ ॥ परदेवतायाः प्रसादा-
धिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां
च महिषीं मृतकमिव सहमहाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहृ-
रिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥ ३८ ॥ तस्य
ह वा एते श्लोकाः ॥ प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् ॥ यो नेमिनि-

शोक, मोह, जरा और मृत्यु इन छः लहरियों को जीतनेवाले भगवद्भक्तों में ऐसी साम-र्थ्य होना, कुछ आश्चर्य की वार्त्ता नहीं है, क्योंकि—जाति का चण्डाल होकरभी जो भगवान् के नाम का एकवार भी उच्चारण करता है वहभी अपने संसारबन्धन को त्याग देता है फिर निरन्तर भगवत्सेवा करनेवाले पुरुषों को तो दुर्लभ ही क्या है? ॥ ३५ ॥ इसप्रकार जिस के बलका और पराक्रम का परिमाण नहीं है ऐसा वह राजा प्रियव्रत, एक समय नारद ऋषि के चरणों की शरण में जाकर विद्या की प्राप्ति होनेपर पीछे से शरीरपर आकर पड़ेहुए राज्य आदि प्रपञ्च के संसर्ग से अपने को सुख रहित मानता हुआ अन्तःकरण में वैराग्ययुक्त होकर अपने से ही इसप्रकार कहने लगा कि— ॥ ३६ ॥ अहो! मैंने बड़ा खोटा आचरण करा, क्योंकि—विषयोंमें लम्पट हुई इन्द्रियोंने मुझे अज्ञान के रचेहुए इस दुस्तर विषयरूप अन्धकार से भरे कूप में (जिस में बाहर को निकलना कठिन है ऐसे अज्ञान युक्त गृहस्थाश्रम में) ढकेल दिया है, सो, अब इस विषयभोग से मैं पूरा २ तृप्त होगया; इस स्त्री के खेलने के वानर की समान मुझको वारम्वार धिक्कार है, इसप्रकार उसने अपनी निन्दा करी ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर हृदय में वैराग्य को धारण करनेवाले और भगवान् के चरित्रोंको चिन्तवन करके सकल सङ्गोंको त्यागनेकी सामर्थ्य वाले तिस राजा प्रियव्रत ने, अपनी आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले पुत्रों को विभाग के अनुसार यह पृथ्वी देदी, और भोगी हुई रानीको भी चक्रवर्त्ती राज्यकी सम्पत्ति के साथ मृतक शरीर की समान त्यागकर भगवान् के अनुग्रह से प्राप्त हुए आत्मज्ञानके द्वारा वह राजा, परमभगवद्भक्त नारदजीके उपदेश करेहुए मार्गको ही फिर वर्त्तावमें लाया (शालग्राम क्षेत्र में जाकर तहां भगवान् की आराधना से मुक्ति को प्राप्तहुआ) ॥ ३८॥ हे राजन्! उसकी महिमा के विषय में पूर्वकाल से ही प्रसिद्ध यह श्लोक हैं—प्रियव्रत राजा के करेहुए कर्म को, एक ईश्वर को छोड़ दूसरा कौन करसक्ता है? जिसने पृथ्वीपर के अन्ध-

नरकरोच्छायां ध्वन्सस्स वारिधीन् ॥ ३९ ॥ भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवि-
नादिभिः ॥ सीमा च भूतनिर्वृत्त्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥ ४० ॥ भौ-
मं दिव्यं मानुषं महित्वं कर्मयोगजम् ॥ यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजन-
प्रियः ॥ ४१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशे प्रियव्रत-
विजये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पितरि संप्रवृत्ते त-
दनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जंबूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्य-
गोपायत् ॥ १ ॥ स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां
भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्वी आराध-
यांबभूव ॥ २ ॥ तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं ना-
माप्सरसमभियापयामास ॥ ३ ॥ सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनि-
बिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहङ्गममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुति-

कारको नष्ट करने के निमित्त रथके ऊपर बैठकर,सूर्य के पीछे२ फिरकर रथके पहियेकी धारसे खाई करके सात समुद्र रचे ॥ ३९ ॥ जिसने प्राणीयों को सुख होने के निमित्त ही पृथ्वी पर भिन्न २ द्वीपों की रचना करी और प्रत्येक द्वीप में—नदी, पर्वत वन आदि के द्वारा मर्यादा ठीक करी है ॥ ४० ॥ और भगवद्भक्तों से प्रीति करनेवाले जिसने, कर्मयोग से प्राप्त होनेवाले पातालमें के स्वर्ग में के तथा मृत्युलोक में के सकल ऐश्वर्य नरककी समानमाने हैं, यह उसका कितना प्रभाव है ! ॥ ४१ ॥इति पञ्चमस्कन्ध में प्रथम अध्याय समाप्त॥*॥
श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—इसप्रकार राजा प्रियव्रत, नारदजीके उपदेश से जब भगवद्भजन में तत्पर हुआ तब उनकी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करनेवाला राजा आग्नीध्र, धर्मपर दृष्टि रखकर जम्बूद्वीपमें रहनेवाली सकल प्रजाओंकी औरस पुत्रोंकी समान+रक्षा करनेलगा॥ १॥ एकसमय, अपने सत्पुत्र होने की इच्छा करनेवाला वह राजा, देवाङ्गनाओं के क्रीड़ा करने के स्थान मन्दर पर्वत की पहाड़ी में जा,उत्तम प्रकार से पूजा की समाग्री इकट्ठी करके,स्नान, स्वल्प भोजन, आसन और प्राणायाम आदि तपस्याके नियमों को स्वीकार करता हुआ चित्त की एकाग्रता से विश्वस्रष्टाओं के अधिपति भगवान् ब्रह्माजी की आराधना करनेलगा॥ २ ॥ यह जानकर भगवान् ब्रह्माजी ने अपनी सभा में गान करनेवाली पूर्वचित्ति नामक अप्सरा को लुभाने के निमित्त तिस आग्नीध्र राजा के समीप भेजा ॥३॥ वह अप्सरा उस राजा के आश्रम के समीप बगीचे में इधर उधर फिरनेलगी, वह बगीचा नानाप्रकार के घने वृक्षों के झाड़ों के विस्तार से अत्यन्त ही सटीहुई सुवर्णलताओं के ऊपर बैठे हुए मयूर आदि स्थलपर रहनेवाले पक्षियों के जोड़ों के उच्चारण करे हुए षड्ज मध्यम आदि स्वरों से

+ अपने सगे पुत्रों की समान ।

भिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामल-
जलाशयकमलाकरमुपबभ्राम ॥ ४॥ तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिवि-
लासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः
समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ॥ ५ ॥ ता-
मेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रतीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्ग-
तिविहारविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं
विवरम् ॥ ६ ॥ निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकर-
निकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं
तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति
होवाच ॥ ७ ॥ का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले मायाऽसि काऽपि

जागे हुए—जलमुरग, कारण्डव, कलहंस आदि पक्षियों के अपनी २ जाति के अनुसार भिन्न २ शब्दों से गुञ्जारते हुए निर्मल सरोवरों में उत्पन्न होनेवाले कमलों की खानिरूप अति रमणीय था ॥४॥ अति मनोहर गमन में जो चरण रखना तिस से जिस के गमन में विलास प्रकट होरहा है ऐसी तिस अप्सरा के चरण चरणपर छम छम बजनेवाली चरणों में की पायलों की झनकार को सुनकर तिस राजपुत्र आग्नीध्र ने, समाधि के कारण कुछएक मुँदी हुई नेत्ररूप कमलों की दो कलियों को कुछ एक उघाड़कर देखा॥५॥अपने समीप में भ्रमरी की समान पुष्पों की सुगन्ध को लेती हुई फिरनेवाली देवता और मनुष्यों के मन को तथा नेत्रों को आनन्द से भरनेवाली—गति,विहार,लज्जा,विनय के साथ, भाषण देखना, सुन्दर स्वर से भाषण करना और नेत्र आदि अङ्गों से पुरुषों के मन में कामदेव का प्रचार करनेवाली, अपने मुख में से निकले हुए अमृत की समान मधुर और मद्य की समान मदकारी भाषण में के श्वास के सुगन्धसे मदान्ध हुए भ्रमरोंकी पीड़ा होगी, इस भय से शीघ्र शीघ्र चरण रखने के कारण जिस के कुचकलश, केशों का जूड़ा और कमर की तागड़ी यह कुछ २ हलरहे हैं ऐसी तिस अप्सरा के देखने से, मन में प्रवेश करने का समय पाए-हुए भगवान् कामदेव के अत्यन्त वश में होकर वह राजा तिस अप्सरा को अपने वश में करने के निमित्त जड़ पुरुष की समान इस प्रकार कहनेलगा कि—॥ ६ ॥ हे प्रिये ! तू कौन है? तेरे मन में इस पर्वत पर क्या करने की इच्छाहै? हे ऋषिश्रेष्ठ ! तू वास्तव में भगवान् परमेश्वर की अत्यन्त मोहिनी माया ही है, उसकी भ्रुकुटि को देखकर कहा—हे मित्र ! गुण (रोदा) रहित यह दोनों धनुष, तू ने अपने किस कार्य के लिये धारण करे हैं ? वा इस संसाररूप वन में विषयासक्त मृग की समान हमको वश में करने के निमित्त ही इन धनुषों को धारणकराहै?॥७॥कटाक्षों को देखकर कहा—हेभगवन् ! तुम्हारे दो बाण, नेत्रकमल

भगवत्परदेवतायाः ॥ विज्ये विभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥ ८ ॥ बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शान्तावपुङ्खरुचिरावतितिग्मदन्तौ ॥ कस्मै युयुंक्षसि वने विचरन्न विद्मः क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥ ९ ॥ शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति गायन्ति साम सरहस्यमजस्रमीशम् ॥ युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखा ॥ १० ॥ वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृणवाम तुभ्यम् ॥ लब्धा कदम्बरुचिरं कविटङ्कविम्बे यस्यामलातपरिधिः क्व च वल्कलं ते ॥ ११ ॥ किं संभृतं रुचिरयोर्द्विज शृङ्गयोस्ते मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे ॥ पङ्कोऽरुणः सुरभिरात्मविषाण ईदृक् येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥ १२ ॥ लोकं प्रदर्शय सु-

रूप फल (छुरी) वाले, विलासपूर्वक धीरे से छूटने वाले, पीछे दण्ड न होनेपर भी सुन्दर दीखनेवाले और अति तीखे अग्रभागवाले हैं, सो इस वन में विचरनेवाला तू यह वाण किस के ऊपर छोड़ने को रोपेहुए है सो हम नहीं जानते; इसकारण हम भय से इतनी ही तेरी प्रार्थना करते हैं कि–तेरा पराक्रम हम मन्दबुद्धियों के कल्याण के निमित्त हो॥ ८ ॥ ९ ॥ उस के शरीर की सुगन्ध के लोभी भ्रमर उसके पीछे जारहे हैं, ऐसा देखकर कहा; कि–हे भगवन्! यह शिष्य आप के चारों ओर अध्ययन कररहे हैं, और नित्य भगवान्के स्वरूप समन्वक साम का गान कररहे हैं, जैसे ऋषि वेदों की शाखाओंका सेवन करते हैं तैसे ही यह सब तुम्हारी शिखा में से नीचे गिरेहुए पुष्पों की वृष्टिका सेवन करते हैं ॥१०॥ उस की पायलों की झनकारको सुनकर कहा–हेब्रह्मन्! कहनेवाले के न दीखनेपर भी स्पष्ट सुनने में आनेवाले, तुम्हारे चरणों के पिंजरे में की तीतिरियों के (नूपुरों में के रत्नों के) शब्द को ही केवल सुनरहा हूँ परन्तु वह बोलनेवाली तित्तिरी कहीं नहीं दीखती है. तदनन्तर उस के धारण करेहुए पीतवस्त्र को, यह नितम्ब की (कमर के पीछे के भाग की) शोभा ही है ऐसा जानकर कहा– तेरे नितम्बमण्डलपर विराजमान यह कदम्ब के पुष्पों की कान्ति तू ने कहांसे पाई है फिर उसकी तागड़ी को देखकर कहा–इस कान्ति के ऊपर, लपेटाहुआ जलतीहुई लकड़ी के चक्राकार अग्नि की समान यह वेष्टन है, अरे! तेरा वल्कल (वस्त्र) कहाँ है? ॥ ११ ॥ उस के स्तन देखकर कहा–हे द्विज! तेरे इन सुन्दर दोनों सींगों में क्या भररहा है? मुझे तो यह बड़े ही मनोहर दीखरहे हैं, मध्यभागमें कृश होने परभी तुम उन सींगों को बड़ेकष्ट से धारण कररहे हो; इन सींगों में गुथीहुई मेरी दृष्टि दूसरे स्थान को नहीं जातीहै; स्तनों पर लगेहुए केसर को देखकर कहा–हे सुन्दर! तू ने, अपने सींगों पर यह लाल २ सुगन्धित कीचड़ सा क्या लगाया है? जिससे कि–मेरे आश्रम को सुगन्धित कररहे हो

वृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थमुरसाऽवयवावपूर्वौ ॥ अस्मद्विधस्य मन उन्नयनौ बिभर्ति बह्वद्भुतं सरसरासमुधादि वक्त्रे ॥ १३ ॥ का वात्मवृत्तिरदनाद्धविरङ्ग वाति विष्णोः कलास्यनिमिपोन्मकरौ च कर्णौ ॥ उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचिरासन्नभृङ्गनिकरं सर इन्मुखं ते ॥ १४ ॥ योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ॥ मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥ १५ ॥ रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ॥ चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्र मह्यं किंवा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥ १६ ॥ न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन्मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ॥ मां चारुशृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः

॥ १२ ॥ हे मित्रवर ! जहां रहनेवाला मनुष्य, हम समान पुरुषों के मन को चलायमान करनेवाले ऐसे (इन सींगों की समान) अङ्गों को अपने वक्षःस्थल पर धारण करता और मुखमें अति आश्चर्यकारी मधुरभाषण, मन्दहास्यादि विलास तथा अधरामृत को धारण करता है, वह तेरे रहने का कौनसा लोक है ? सो मुझे दिखला ॥ १३ ॥ ताम्बूल की सुगन्धि आने से कहता है—हे मित्र ! तुम क्या भोजन करते हो ? जिसके भक्षण करनेसे हवन की सामग्री की सी सुगन्ध आरही है; मुझे तो ऐसा प्रतीत होताहै कि-तू निःसन्देह विष्णुभगवान् का ही अवतार है, क्योंकि—तुम्हारे कान, रत्नजटित, पलक न लगाने वाले मकरोंके आकारवाले उत्तम कुण्डलों को धारण करेहुएहैं, और तुम्हारा मुख निःसंदेह सरोवर की समान है क्योंकि—भय से चञ्चल हुए नेत्ररूप दो मत्स्यों से युक्त है और दंत रूप हंसपक्षियों की पंक्ति से शोभायमान तथा समीप आयेहुए केशपाशरूप भ्रमरों के समूहोंसे युक्तहै॥ १४॥ इस गेंद को जो तू अपने करकमलसे उछालरहाहै यह दशोंदिशाओंमें ज्यों २ उछलती फिरती है त्यों २ भ्रम में पड़े हुए मेरे, नेत्रों को चञ्चल कर डालती है; यह तेरा घुँघराला जटाओं का जूड़ा खुल रहा है, इस को सम्हालने का क्या तुझ को अभी तक ध्यान नहीं है ? अरे ! यह तुझे स्पर्श करने को लम्पट हुआ धूर्त वायु तेरी नीवी (साड़ी) को उड़ाये लियेजाता है इस का तुझे भान नहीं है क्या ? ॥ १५ ॥ हे तपोधन ! तपस्या करनेवाले पुरुषों के तप को नाश करनेवाले इस स्वरूप को तू ने कौन से तप की शक्ति से पाया है ? ; हे मेरे मित्र ! अव आगे को तुम्हें मेरे साथ तप करना उचित है अथवा उन, सृष्टि की वृद्धि करनेवाले ब्रह्माजी ने मेरे ऊपर प्रसन्न होकर तुझे ही मेरी पत्नी वनाया है क्या ? ॥ १६ ॥ तुम्हारे में लगे हुए—मेरा मन और दृष्टि यह दोनों दूसरे स्थान को क्षणभर के निमित्त भी नहीं जाते हैं, इस कारण ब्रह्माजी के दिये हुए तुम मित्र

सच्चिव्यैः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ललनाऽनुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयामास ॥ १८ ॥ सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयःश्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जंबूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान् बुभुजे ॥ १९ ॥ तस्यामु ह वा आत्मजान् राजवर आग्नीध्रो नाभिकिंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजनयत् ॥ सा सूत्वाऽथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥ २० ॥ आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननबलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जंबूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥ २१ ॥ आग्नीध्रो राजाऽतृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुंध यत्र पितरो मादयन्ते ॥ २२ ॥ संपरेते पितरि भ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां

को मैं अब कभी भी नहीं छोडूँगा. हे सुन्दर सींगवाली (मनोहर स्तनवाली) स्त्री ! अब तेरा चित्त जिधर जाने की इच्छा करता हो उधर को तू मुझ अपने वशीभूत को भी लेजा तेरी सखियें भी मेरे अनुकूल होकर वर्त्ताव करें ॥ १७ ॥ श्री शुकदेव जी ने कहा—इस प्रकार स्त्रियों को वश में करने के कार्य में चतुर और देवताओं की समान बुद्धिमान् तिस आग्नीध्र राजा ने, ग्राम्य विषय की चतुरतावाले भाषण के द्वारा तिस देवाङ्गना को गौरव करके अपने सन्मुख किया ॥ १८ ॥ तिस अप्सरा ने भी, वीरों के समूह के स्वामी तिस राजा की—बुद्धि, सुन्दर स्वभाव, रूप, अवस्था, सम्पत्ति और उदारता से मोहित होकर उस जम्बूद्वीप के राजा के साथ पृथ्वीपर के और स्वर्गलोक में के विषयों को भोगा ॥ १९ ॥ उस श्रेष्ठ राजा आग्नीध्र के तिस अप्सरा के विषें—नाभि किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरू, भद्राश्व और केतुमाल इन नामोंवाले नौ पुत्र हुए इस प्रकार वह पूर्वचित्ति अप्सरा. प्रतिवर्ष में एक २ करके नौ पुत्रों को उत्पन्न कर और उन को राजा के घर ही छोड़कर फिर ब्रह्माजी के समीप चली गई और उन की सेवा करने लगी ॥ २० ॥ वह आग्नीध्र राजा के पुत्र, माता की कृपा से स्वाभाविक गुणों करके ही दृढ़ शरीर और बलवान् होते हुए, पिता ने विभाग करके जो भिन्न २ भूमि का भाग देकर राज्य पर स्थापन किया था उस २ अपने २ नामवाले जम्बूद्वीप के खण्ड का राज्य करने लगे ॥ २१ ॥ राजा आग्नीध्र, विषयों के भोग से तृप्त न होकर .निरन्तर तिस अप्सरा कोही परम पुरुषार्थ मानकर वेद में कहे हुए कर्म के द्वारा उस अप्सरा के लोक को प्राप्त हुआ, जिस लोक में कि—पितर आनन्द पाते हैं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार पिता के परलोकवासी होनेपर उन नाभि आदि नौ भ्राताओं ने, मेरु की नौ कन्याओं से अपना

श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमिति संज्ञा नवोदवहन् ॥२३॥ इतिश्री भा० पञ्च० आग्नीध्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवंतं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत ॥ १ ॥ तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमंत्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयंगमं मनोनयनानंदनावयवाभिराममाविश्चकार ॥ २ ॥ अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयांवरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाऽच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितम् ॥ ३ ॥ स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुंडलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यंगभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नम इत्येतावं-

---

विवाह करलिया; उन कन्याओं के नाम-मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति यह थे ॥२३॥ इति पञ्चमस्कन्ध में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हेराजन्! पुत्र की इच्छा करनेवाले राजा नाभि ने, सन्तानहीन अपनी मेरुदेवी नामवाली स्त्री के साथ, एकाग्रचित्त होकर यज्ञपुरुष भगवान् का पूजनकरा ॥ १ ॥ श्रद्धा के साथ अतिशुद्ध अन्तःकरण से यज्ञ करनेवाले उस राजा के यज्ञ में के प्रवर्ग्य नामवाले कर्मों का प्रारम्भ होनेपर द्रव्य, देश, काल, मन्त्र, ऋत्विक् दक्षिणा, और विधि इन उपायों की सम्पदाओं से भी जिन का मिलना कठिन है और अपने भक्तों को यथेष्ट वरदेनेकी इच्छा से जिन का मन बँधाहुआ है ऐसे उन भगवानने, अपने भक्तों के ऊपर कृपालु होने के कारण, सुन्दर अङ्गोंवाले, कहीं भी पराजित न होनेवाले और स्वतन्त्र अपने को, सब के मन और नेत्रों को आनन्द देनेवाले अङ्गों से रमणीय तथा सुखकारी रूप से प्रकट किया ॥ २ ॥ इसप्रकार भगवान् के प्रकट होनेपर, जैसे दरिद्री पुरुष कोई निधि (धनभण्डार) मिलजाय तो उसका बड़ा सन्मान करते हैं तैसेही, ऋत्विज्, सदस्य और यजमान (राजा नाभि) इन्होंने उन पुरुषरूप भगवान् को देख अपने मस्तक नमाकर पूजा करी और तदनन्तर स्तुति करनेलगे-वह भगवान् ऐसे थे कि-उन्हो ने चार भुजा प्रकट करीं जिन में कि उत्तम शंख, कमल, चक्र और गदा यह आयुध थे और कण्ठ में वनमाला कौस्तुभ माणि आदि आभूषण थे, तथा शरीर के योग्य स्थानों पर जिन की किरणें पड़रही हैं ऐसे-मुकुट, कुण्डल कड़े, तागड़ी, हार, बाजूबन्द और नूपुरआदि भूषण धारण करने के कारण अति सुन्दर प्रतीत होते थे ॥३॥४॥ ऋत्विज् कहने लगे कि-हेपूजने योग्यों में श्रेष्ठ ! यद्यपि तुम अत्यन्त

त्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान् प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥ ५ ॥ सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ॥ ६ ॥ परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि संभृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥ ७ ॥ अथानयाऽपि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥ ८ ॥ आत्मन एवानुसवनमञ्जसा वोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किंतु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ॥ ९ ॥ तत्रथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां परम परमपुरुषप्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन् स्वयं नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः ॥ १० ॥ अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि

परिपूर्ण होने के कारण सवप्रकार की इच्छाओं से रहित हो तथापि तुम्हे अपने सेवकरूप हमारी करीहुई पूजा को वारम्वार स्वीकार करना योग्य है.हेदेव!हमको तुम्हारी स्तुति करने की शक्ति नहीं है, तथापि तुम्हें वारम्वार नमस्कार करे, इतनाही हमें साधुओं ने सिखायाहै क्योंकि–प्रकृति के गुणों के मिश्रण (मेलन) रूप इस प्रपञ्च में जिस की बुद्धि मग्न होरही है इसकारण ही स्तुति करने को असमर्थ ऐसा कौनसा पुरुष है? जो तुम्हारे स्वरूप को स्पर्श न करनेवाले (प्रपञ्च में के) नाम, रूप और आकृति के द्वारा,प्रकृति और पुरुष से पर ईश्वररूप आप के स्वरूप का वर्णन करने को समर्थ होय ? ऐसा कोई नहीं है ॥ ५ ॥ वह कदाचित् तुम्हारे, सकल समूह के पातकों को दूर करनेवाले,अतिमङ्गलकारी उत्तम गुणोंके एक अंशका वर्णन करेगा परन्तु इस से अधिक वह कुछ वर्णन नहीं करसकेगा ॥ ६ ॥ यद्यपि ऐसा है तथापि हे परमेश्वर ! भक्तों के प्रेम के साथ समर्पण करे हुए, गद्गदवाणी की स्तुति, जल, शुद्ध पत्ते, तुलसी और दूर्वादलसे भी करी हुई पूजाके द्वारा तुम सन्तुष्ट होजाते हो, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ नहीं तो बहुतसी सामग्रियों से युक्त (सर्वाङ्ग सम्पन्न) इस यज्ञ के द्वारा भी, ' निजस्वरूप से ही सवकालमें साक्षात् समन्वय करके अतिशय प्राप्त होनेवाले जो सकल पुरुषार्थ वह परमानन्दरूप तुम्हारा स्वरूपही है ऐसे आपको ' इस यज्ञ में प्रकट होने का कोई विशेष प्रयोजन हो ऐसा हमें तो प्रतीत होता नहीं तथापि हे प्रभो ! विषयभोगोंकी इच्छा करनेवाले हमसमान प्राणियोंको ऐसी आराधना करना ही योग्य है ॥ ८ ॥ ९ ॥ जिससे हे उत्तमोत्तम पुरुष ! हमारी हानि किस में है और हमारा उत्तम कल्याण किसप्रकार होगा यह न जाननेवाले हम मूढ़ पुरुषों को,दया करके तुम, मोक्ष नामक अपना महान् स्थान देते हुए वास्तव में पूजा की इच्छा न होने परभी पूजा की इच्छा करनेवाले से इस यज्ञ में हमको दर्शन दे रहे हो ॥ १० ॥

राजर्षेर्वरर्द्षभो भगवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥ ११ ॥ असंगनिशित-ज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरि-गुणितगुणगणपरममंगलायनगुणगणकथनोऽसि ॥ १२ ॥ अथ कथंचित्स्खलन-क्षुत्पतनजृंभणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥ १३ ॥ किंचायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्ग-योरपि भगवंतमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥ ॥ १४ ॥ को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽना-वृतमतिर्विषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥ १५ ॥ यदु ह वाव

इसकारण हे परम पूजनीय भगवन्! वर देनेवालों में श्रेष्ठ आपने जो अपने भक्तजनोंको अपना दर्शन दिया सो यही हमने वर पालिया ॥ ११ ॥ हे भगवन्! आप का दर्शन बड़ा दुर्लभ है, क्योंकि–वैराग्य से तीक्ष्णहुए ज्ञानरूप अग्नि के द्वारा जिन्होने अपने अंतःकरणमें के रागलोभ आदि सकल मलों को दूर कर दिया हैं ऐसे तुमसमान स्वभाववाले आत्मस्वरूप में मग्न रहनेवाले ऋषियों को भी तुम्हारे गुणों के समूह का वर्णन करनाही परम आनन्द देनेवाला है अर्थात् उन को भी तुम्हारा दर्शन नहीं होता है इसकारण वह निरन्तर अभ्यास करके तुम्हारे गुणों के समूहों का वर्णन करते हैं ॥ १२ ॥ सो–हे भगवन्! यद्यपि हम तुम्हारे दर्शन से ही कृतार्थहैं तथापि एक वरदान आपसे मांगते हैं कि–स्खलन, भूँख, गिरना, जंभा लेना, और सङ्कट का समय इनमें तथा ज्वर, मरण आदि अवस्थाओं में भी तुम्हारा स्मरण करने की शक्ति हीन हुए हमारे मुख में से, सकल पातकों का नाश करनेवाले तुम्हारे–भगवान्, भक्तवत्सल, दीनबन्धु आदि गुणों के करे हुए नाम उच्चारण करनेमें आवें ॥ १३ ॥ और दूसरीभी हमारी यह प्रार्थनाहै कि–यह राजर्षि पुत्र की इच्छा करनेवाला है और पुत्र में ही पुरुषार्थ है ऐसा विश्वास रखनेवाला तथा वह पुत्रभी तुम्हारी समानहो ऐसी इच्छा करनेवालाहै इस कारण इसलोकके विषयभोग, स्वर्ग और मोक्ष भी देनेवाले आप की, जैसे धनहीन पुरुष भूसी वा कुछ धान्य के कण मिलनेकी आशा से धनी पुरुष की आराधना करता है तैसेही, आराधना करता है ॥ १४ ॥ यह कोई बड़े आश्चर्य की वार्त्ता नहीं है, क्योंकि–इस संसार में महात्मा पुरुषों की सेवा न करनेवाला ऐसा कौन पुरुष हैं कि–जिस के मार्ग का (यह कहां से आई इस का) निश्चय नहीं है एवं जिस का पराजय कोई नहीं करसक्ता है ऐसी आप की माया ने जिस का तिरस्कार तथा बुद्धि का नाश नहीं किया है तथा विषयरूप विष के वेग ने जिस के स्वभाव को नहीं ढक लियाहै ? ॥ १५ ॥ हे अनेकों कार्य करनेवाले देवदेव! आप को जो

तद्व पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्देवहेलनं देवदे-
वार्हसि साम्येन सर्वान्प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥ १६ ॥ इति निगदेनाभिष्टूयमा-
नो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह १७।
श्रीभगवानुवाच ॥ अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियो-
चितो यदमुष्य आत्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्या-
दथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मुखं यद्द्विजदेवकुलं ॥
॥ १८ ॥ तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयाऽवतरिष्याम्यात्मतुल्यमनुपलभमानः ॥
॥ १९ ॥ इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥ २० ॥
बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान्परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकी
र्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणाना-
मृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवाऽवततार ॥ २१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे
पञ्चमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ हमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्य-

---

हमने यहां पुत्र की प्राप्तिरूप छोटासा कार्य करने के निमित्त बुलाया है तिस में अपने कार्य की इच्छा करनेवाले, अज्ञानी और मन्द ऐसे हम से जो कुछ अनुचित वर्त्ताव बना हो वह, ज्ञानी और अज्ञानी सब को एक समान बुद्धि से माननेवाले आपको सहन करना उचितहै ॥ १६ ॥ शुकदेव जी ने कहा कि–हे राजन्! इस प्रकार गद्यरूप स्तोत्र से स्तुति करे हुए वह देवताओं में श्रेष्ठ भगवान्, राजा नाभि के वन्दना करे हुए ऋत्विजों ने जिन के चरणों को वन्दना करी है ऐसे होते हुए दयालु अन्तःकरण से कहनेलगे ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–हे ऋषियों! क्या कहूँ? सत्य भाषण करनेवाले तुमने मुझ से, इस राजा के मेरी समान पुत्र होने का दुर्लभ वरदान मांगा है और यदि देखाजाय तो मेरी समान मैं ही हूँ, दूसरा कोई नहीं है तथापि ब्राह्मणों का वचन मिथ्या होने योग्य नहीं है; क्योंकि–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों द्विजाति वर्ण में श्रेष्ठ ब्राह्मणों का कुल ही मेरा मुख है ॥ १८ ॥ सो ऐश्वर्य आदि में मेरी समान दूसरा पुरुष कहीं भी देखने में नहीं आवेगा इस कारण मैं ही इस नाभि राजा के उदर में अंशावतार धारण करूँगा ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेव जी ने कहा इस प्रकार मरुदेवी रानी के देखते हुए उस के पति (राजा नाभि) से कहकर भगवान् तहां ही अन्तर्धान होगए ॥ २० ॥ हे राजन् परीक्षित! इस प्रकार नाभि राजाके उस यज्ञ में ऋत्विजोंके प्रसन्न करे हुए जिन भगवान् ने दिगम्बर, तपस्वी, ज्ञानी और नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के धर्म को आचरण कर के प्रसिद्ध करनेके निमित्त और राजा नाभि का मनोरथ पूर्ण करने के निमित्त उस के रणवास में मेरुदेवी के विषैं शुद्ध सतोगुणी मूर्त्तिसे अवतार धारण करा ॥ २१ ॥ इति पञ्चमस्कन्धमें तृतीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥

मानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्र-
कृतयः प्रजा ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥ १ ॥ तस्य ह वा
इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन च ओजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां
च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥ २ ॥ तस्य हीन्द्रः स्पर्द्धमानो भगवा-
न्वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्व-
वर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ॥ ३ ॥ नाभिस्तु यथाऽभिलषितं सुप्रजस्त्वमवरु-
ध्यातिप्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवन्तं
पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन्परां निर्वृ-
तिमुपगतः ॥ ४ ॥ विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदो राजा नाभिरात्मजं स-
मयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्न-
निपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः का-

---

श्रीशुकदेवजी ने कहा-हेराजन् ! अवतार होनेपर, उत्पन्न होतेही जिस के चरणतल में वज्र, अंकुश आदि भगवान् के चिन्ह प्रकट दीखरहे हैं और समता, शान्ति, वैराग्य, ऐश्वर्य तथा सकल सम्पत्तियों से प्रतिदिन बढ़तेहुए प्रभाववाले तिस अपने पुत्र को देखकर, मन्त्री प्रजा, ब्राह्मण, और देवता इन सबों को--यह बालक ही पृथ्वी की रक्षा करे, ऐसी अत्यन्त ही इच्छा हुई ॥ १ ॥ इस प्रकार बड़े शरीर, कान्ति, तेज, बल, सम्पत्ति, यश, प्रभाव और सुन्दरतायुक्त उस पुत्र का, पिता (नाभि) ने, ऋषभ (श्रेष्ठ) यह नाम रक्खा ॥२॥ उस पुत्र के ऐश्वर्य आदि को देखकर स्पर्धा करनेवाले भगवान् इन्द्रने, उसके खण्ड में (राज्य में) जलकी वर्षा किञ्चिन्मात्र भी नहीं करी, यहजानकर योगेश्वर भगवान् ऋषभदेवजी मुसकुराये और अपनी योगमाया के प्रभाव से 'अजनाभ' नामवाले अपने खण्ड में (राज्यमें) वर्षा करली ॥ ३ ॥ नाभिराजा तो इच्छा के अनुसार उत्तम पुत्र को पाकर अतिप्रेम के कारण विव्हल होताहुआ गद्गदवाणी से, जिन्होंने अपनी इच्छा से मनुष्यरूप धारण करा है ऐसे भगवान् पुराणपुरुष को, हेवत्स हे तात ! इसप्रकार प्रेमभाव से पुकारकर, माया के प्रभाव से ' यह मेरा पुत्र है, ऐसी बुद्धि रखनेवाला वह राजा, उस को लाड़ करता हुआ परम सन्तोप को प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ तदनन्तर नगरनिवासियों की सम्मति के अनुसार वर्त्ताव करनेवाला वह नाभिराजा, नगरनिवासियों से मन्त्रियोंपर्यंत सकल लोक मेरे पुत्र के ऊपर प्रेम करते हैं ऐसा जानकर, समय के अनुसार धर्म की मर्यादा की रक्षा करनेके निमित्त तिस ऋपभनामक पुत्र का राजसिंहासन पर अभिपेक कर और उसको ब्राह्मणों के स्वाधीन करके स्वयं अपनी मेरुदेवी नामक स्त्री के साथ बदरिकाश्रम में जाकर दूसरों को दुःख न देनेवाला तीव्र तप करके, एकाग्रमन के समाधि योग से नरनारायण नामक भगवान् वासुदेव की आराधना करके कुछही काल में उन की

लेनतन्महिमानमवाप ॥५॥ यस्य ह पांडवेय श्लोकावुदाहरन्ति॥ को नु तत्कर्म रा-जर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान् ॥ अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥ ६ ॥ ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मंगलपूजिताः ॥ यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥ ७ ॥ अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयंत्यामिंद्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्म समाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥ ८ ॥ येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत् येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशंति ॥ ९ ॥ तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इंद्रस्पृक् विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥ १० ॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः। ११॥ इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सु-

---

महिमा को प्राप्त हुआ अर्थात् जीवन्मुक्त हुआ ॥ ५ ॥ हे पाण्डवकुल में उत्पन्न होनेवाले राजन्! उस का, यह पुरातन काल के दो श्लोक वर्णन करते हैं—जिसके भक्ति के साथ करेहुए यज्ञरूप कर्म से श्रीहरिभी पुत्र बने, उस नाभि राजा के प्रसिद्ध कर्म को, उस के पीछे दूसरा कौन पुरुष करसकेगा ? ॥ ६ ॥ जिस के यज्ञमें यथेष्ट दक्षिणा देकर पूजनकरेहुए ब्राह्मणोंने अपने प्रभावसे यज्ञके अधिपति भगवान् को भी प्रत्यक्ष दिखादिया उस नाभि राजा को छोड़ दूसरा कौन उस की समान ब्राह्मणोंका भक्त है ॥ ७ ॥ इधर राजा नाभि के अनन्तर राज्य करनेवाले तिन भगवान् ऋषभदेव जी ने, हमारा अजनाभ नामक खण्ड ही स्वर्ग वा मोक्ष को देनेवाले कर्म्मों के करने का साधन है, ऐसा जानकर, गृहस्थियों को धर्म के आचरण की शिक्षा देने के निमित्त, स्वयं गुरु के घर निवास करके वेदों को पढ़ा तदनन्तर जिनको इच्छा के अनुसार दक्षिणा मिली है ऐसे गुरुओं के गृहस्थाश्रम स्वीकार करने को आज्ञा देनेपर उन्हों ने गृहस्थाश्रम को स्वीकार कर के शास्त्र में कहे हुए वैदिक (वेद के अनुसार) और स्मार्त्त (स्मृतियों के अनुसार) दोनों प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हुए, इन्द्र की दी हुई जयन्ती नामवाली कन्या के विषें (अपनी स्त्री के विषे) गुण आदि में अपनी समान सौ पुत्र उत्पन्न करे ॥ ८ ॥ उन में बड़ा पुत्र भरत, श्रेष्ठ गुणों से युक्त और महायोगी था, जिस भरत के उत्तम गुणों के कारण, उस के इस खण्ड को भी लोक ' भरतखण्ड ' कहते हैं ॥९॥ उस से छोटे—कुशावर्त्त, इलावर्त्त, ब्रह्मावर्त्त-मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट यह नौ पुत्र, नब्बे (९०) पुत्रों की अपेक्षा बड़े थे ॥ १० ॥ और उन नब्बे में, कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन यह नौ पुत्र भगवत् सम्बन्धी धर्म का उपदेश

चरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसम्वादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥ १२ ॥ यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥ १३ ॥ भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरंपरः केवलानंदानुभवः ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशांतो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशःप्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥ १४ ॥ यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥ १५ ॥ यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥ १६ ॥ द्रव्यदेशकालवयःश्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥ १७ ॥ भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न कश्चन पुरु-

---

करनेवाले थे, उन का वंश आगे को नहीं चला, वह जन्म से ही भगवान् की एकान्त भक्ति करनेवाले थे;उनका भगवान् के माहात्म्य से भराहुआ और केवल शान्ति का ही भण्डार, उत्तम चरित्र वसुदेवजी और नारदजी के सम्वादरूप से आगे (एकादशस्कन्ध में) कहेंगे॥ १२ ॥ इन के छोटे भ्राता इक्यासी (८१) जयन्ती के पुत्र, पिता की आज्ञा को मानने के निमित्त वारम्वार यज्ञ करनेवाले, अतिनम्र और कर्मों के आचरण से अतिशुद्ध परमवैदिक ब्राह्मण थे ॥ १३ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी भी, ईश्वर, स्वतन्त्र, और केवल आनन्दानुभावरूप होने के कारण सकल प्राणियों में समान दृष्टि रखनेवाले थे कि जिस दृष्टि के होने से नित्य सकल अनर्थों की परम्परा दूर रहती हैं,और राग लोभ आदि दोषों से रहित, सब का हित करने में उद्योग करनेवाले तथा सब के ऊपर दया करनेवाले थे तथापि उन्हो ने असमर्थ प्राणियों की समान कर्म करते हुए कालवश उच्छिन्न हुए धर्म का स्वयं आचरण कर के धर्माचरण न जाननेवाले लोकों को शिक्षा देते २ धर्म, अर्थ, श्रेष्ठ कीर्त्ति पुत्र आदि सन्तान और विषयभोग से प्राप्त होनेवाले आनन्द का सङ्ग्रह (ग्रहण) करके सकल लोकों को, यथेष्ट आचरण से हटाकर शास्त्र में कहे हुए आचरण में लगाया ॥ १४ ॥ क्योंकि—श्रेष्ठ पुरुष, अच्छा वा बुरा जो कर्म करें उस को ही और लोक भी करते हैं ॥ १५ ॥ सकल धर्म्मों से युक्त वेद के कहे हुए धर्म के रहस्य को यद्यपि ऋषभदेव जी स्वयं ही जानते थे तथापि उन्हों ने वह ब्राह्मणों से बूझकर उन के कहे हुए मार्ग से ही साम दान आदि उपायों के द्वारा सकल लोकों को शिक्षा दी।१६। और उन्होंने—द्रव्य (व्रीहि आदि), देश (पवित्र भूमि), काल (वसन्त आदि) अवस्था (तरुण आदि), श्रद्धा, ऋत्विज् और नानाप्रकारके देवताओं का उद्देश इनके द्वारा समृद्धि को प्राप्तहुए सवप्रकार के यज्ञों से यज्ञेश्वर भगवान् का शास्त्र में कही हुई विधि के अनुसार सौवार यजन (पूजन) किया ॥ १७ ॥ तिन भगवान् ऋषभदेवजी

यो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भ-
र्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥ १८ ॥ स कदाचिदटमानो भगवा-
नृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानव-
हितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥ १९ ॥
इति भा०म० पञ्च० ऋषभदेवानुचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ॥७॥ ऋषभ-
उवाच ॥ नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये ॥
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥ १ ॥
महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ॥ महान्तस्ते समचित्ताः
प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥ २ ॥ ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था
जनेषु देहम्भरवार्तिकेषु ॥ गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्था-

---

के रक्षा करेहुए इस भरतखण्ड में अन्त्यज (चण्डाल) आदि नीच योनियों में उत्पन्न हुआ भी कोई पुरुष, कदापि न होनेवाले आकाश के पुष्प आदि वस्तुओं की समान,सब का पोषण करनेवाले ऋषभदेवजी के विषैं प्रतिक्षण बढ़ेहुए स्नेह की अधिकता को छोड़ दूसरी कोई भी वस्तु कभी भी किसी कारण से भी दूसरे से मुझे मिले, ऐसी इच्छा नहीं करता था ॥ १८ ॥ वह भगवान् ऋषभदेवजी,एकसमय भूमिपर विचरते हुए ब्रह्मावर्त्त क्षेत्र में जाकर तहां अतिश्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों की सभा में सकल प्रजाओं के सुनते हुए, अन्तःकरण को वश में करनेवाले तथा नम्रता और प्रेम की अधिकता से उत्तम वर्त्ताव करने वाले भी अपने पुत्रोंसे,सकल प्रजाओं के समझने के निमित्त उपदेश करतेहुए इसप्रकार कहने लगे॥१९॥इति पञ्चमस्कन्ध में चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ऋषभदेवजी ने कहा हे पुत्रो ! इस मनुष्यलोक में प्राणियोंके विषैं प्राप्त हुआ इस मनुष्य शरीर को, विष्ठा भक्षण करनेवाले श्वान सूकर आदिकों को भी जो प्राप्त होजायँ ऐसे विषयभोगों को सेवन करना योग्य नहीं है किन्तु जिसके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होता है और जिस अन्तःकरण के शुद्ध होने पर अखण्ड ब्रह्मसुख की प्राप्ति होतीहै वह स्वधर्माचरणरूप उत्तम तपही करना योग्य है ॥ १ ॥ हे पुत्रो ! बड़े २ विचारवान् पुरुष, साधुओं की सेवा करना ही मुक्ति का द्वार है, ऐसा कहते हैं, और स्त्रीलम्पट पुरुषों की सङ्गति करनाही नरक का द्वारहै, ऐसा कहते हैं, उन विचारवान् पुरुषों के यह लक्षण हैं—जो अत्यन्त शान्त,क्रोध रहित, सकल प्राणियों में एक समान बुद्धि रखनेवाले और सदाचारी होते हैं वही महात्मा साधु हैं ॥ २ ॥ अथवा मुझ ईश्वर के विषैं निरन्तर किया हुआ प्रेम ही जिन का पुरुषार्थ है, शरीर के निर्वाह से अधिक पदार्थ की जिन्हें इच्छा नहीं है और जो पेट भरनेके सम्बन्ध

ष्वं लोके ॥ ३ ॥ नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ॥ न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥ ४ ॥ पराभवस्ता-वद्बोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ॥ यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥ ५ ॥ एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्यया-त्मन्युपधीयमाने ॥ प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन ता-वत् ॥६॥ यदा न पश्यत्ययथागुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ॥ गतस्मृति-र्विन्दति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥७॥ पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयो-र्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ॥ अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहम् ममेति

से ही वार्त्ता करते हैं ऐसे लोकों में तथा स्त्री, पुत्र, धन आदि से युक्त घरों में जिन की प्रीति नहीं होती है वही महात्मा हैं ॥ ३ ॥ हे पुत्रों ! जब यह पुरुष, दुष्टों के सङ्गमें अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने के निमित्त अनेकों व्यापार करता है तब वास्तवमें उन्मत्त हुआसा (क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये इसप्रकार के विचार से हीन)होकर पापकर्म करता है, उस को मैं अच्छा नहीं मानता हूँ; क्योंकि—उन पाहिले पापकर्मों के कारण ही यश, शरीर वास्तव में मिथ्याभूत होकर भी क्लेश दायक होरहा है ॥ ४ ॥ जबतक प्राणी, अपने सत्य सच्चिदानन्दस्वरूप के विचार की इच्छा करके उसका साक्षात्कार नहीं करलेता है तबतक ही उस को, अज्ञान से होनेवाला अपने स्वरूप का विस्मरणरूप तिरस्कार प्राप्त होता है अर्थात् जबतक अज्ञान से देह का अभिमान रहता है तबतक नित्य नैमित्तिक आदि कर्म नहीं छूटते हैं और जबतक वह कर्म रहते हैं तबतक यह मन,प्रवृत्ति के स्वभाव से ही युक्त रहता है जिस से कि—संसारबन्धन प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ इसप्रकार देह आदि की अध्याससे आत्मा के आच्छादित होजानेपर पाहिले के करेहुए कर्मही पुरुष के मन को अपने वश में करलेते हैं अर्थात् उस पुरुष से वारम्वार कर्म ही कराते हैं इसकारण जबतक पुरुष की मुझ वासुदेव के विषैं प्रीति उत्पन्न नहीं होती है तबतक वह पुरुष देह के सम्बन्ध से नहीं छूटता है ॥६॥ जबतक अपने हितकारी कार्य के करने में असावधान और मैंही विद्वान् हूँ ऐसा अभिमान करनेवाला पुरुष, स्त्रियों के संगी पुरुषों के सहवास होने से 'इन्द्रियों की विषयों में आसक्त होनारूप चेष्टा मिथ्या है' ऐसा नहीं देखता है अर्थात् विषयों में आसक्त होता है तबतक वह अज्ञानी पुरुष, एकसाथ अपने स्वरूप की स्थिति को भूलकर 'जिस में मैथुन का सुखही मुख्य है ऐसे' घरका आश्रय करके तहाँ नानाप्रकार के दुःख पाता है ॥ ७ ॥ पुरुष और स्त्री इन दोनों का परस्पर का जो 'यह मेरी स्त्री है यह मेरा पति है इसप्रकार का' अभिमान है सो उनकी दूसरी बड़ी भारी दुर्भेद्य हृदय की ग्रन्थिहै क्योंकि—प्रत्येक प्राणी को हृदय की ग्रन्थि के कारण देह इन्द्रियादि के विषैं ही 'मैं और मेरा' इसप्र-

॥८॥ यदा मनोहृदयग्रंथिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ॥ तदा जनः संपरिवर्ततेऽस्मान्मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम्॥९॥ हंसे गुरौ मयि भक्त्यानुवृत्त्या वितृष्णया द्वंद्वातितिक्षया च ॥ सर्वत्र जंतोर्व्यसनावगत्या जिज्ञासया तपसेहानिवृत्त्या ॥ ॥ १० ॥ मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं मद्देवसङ्गाद्गुणकीर्तनान्मे ॥ निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥ ११ ॥ अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राणेंद्रियात्माभिजयेन सध्र्यक् ॥ सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वदसंप्रमादेन यमेन वाचाम् ॥ १२ ॥ सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ॥ योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो लिंगं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥१३॥ कर्माशयं हृदयग्रंथिबन्धमविद्ययासादितमप्रमत्तः ॥ अनेन योगेन यथोपदेशं

कारका अभिमान होता है और इस दम्पतीभाव से भी प्राणीको घर, क्षेत्र, पुत्र, सम्बन्धी और धन आदि में 'यह मेरे हैं' इस प्रकार का बड़ाभारी मोह होता है ॥ ८ ॥ तैसे ही जब इस प्राणी की कर्मों से बँधीहुई यह मनरूप दृढ़, हृदय की ग्रन्थि (गाँठ) शिथिल होजाती है तबही यह प्राणी इस मिथुनीभाव (स्त्रीपुरुष का परस्पर का अभिमान) आदिरूप संसार से मुक्त होकर,अनर्थ के कारण अहङ्कार को त्याग संसार से मुक्त होताहुआ परमपद को प्राप्त होता है ॥९॥ अब अहङ्कार के दूरहोने के साधन कहते हैं—हे पुत्रों सत् असत् के विचारवान् गुरुरूप मेरे विषैं भक्ति करना,मेरी सेवा करना, मेरी सेवा में तत्परता रहना, भोग की इच्छा को त्यागदेना, तपस्या करना, काम्यकर्म करना छोड़देना, सकल कर्मोंको मेरी प्रीति के निमित्त ही करतेरहना, नित्य मेरी कथा वर्णन करना, जो पुरुष मुझे अपना इष्टदेव मानते हैं उनका समागम करना, मेरे गुणों का गान करना, किसी से भी वैर न करना, समदृष्टि रखना, शान्ति धारण करना, शरीर और घर के विषैं अहङ्कार एवं ममता को त्यागने की इच्छा करना, अध्यात्मशास्त्र का अभ्यास करते रहना, एकान्त स्थान में वास करना, प्राण-इन्द्रियें और मन को पूर्णरीति से वश में रखना, गुरु और वेदान्त के वाक्यों पर पूरा पूरा विश्वास रखना, निरन्तर ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना, करनेयोग्य कर्म के करने से कदापि असावधान न होना, व्यर्थ वार्त्तालाप को त्यागना; सर्वत्र परमेश्वर व्याप्त हैं ऐसे बोध कराने में प्रवीण जो अनुभव पर्यन्त ज्ञान उस को प्राप्त करना और समाधि योग का अभ्यास करना, इन आचरणों से धीरता, प्रयत्न और विवेकवाला प्रवीण पुरुष, संसार के कारण अहङ्काररूप लिङ्गशरीर से छूटेगा ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसकारण सावधान पुरुष, अज्ञान से प्राप्तहुए और कर्मों के निवासस्थान अपने हृदय की ग्रन्थिरूप बन्धन को, इस के ऊपर कहेहुए उपायों का शास्त्र में कहे अनुसार आचरण करके, वासना के सहित दूर करे उस के अनन्तर मुक्ति की साधना का यत्न करना

सम्यग्व्यपोह्योपरमेत योगात् ॥ १४ ॥ पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ॥ इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ॥ कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥ १५ ॥ लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेत निकामकामः ॥ अन्योऽन्यवैरः सुखलेशहेतोरनन्तदुःखं च न वेद मूढः १६ ॥ कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिद्विद्यायामन्तरे वर्तमानम् ॥ दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेदुत्पथगं यथान्धम् ॥ १७ ॥ गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ॥ दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ ॥ १८ ॥ इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ॥ पृष्ठे

छोड़देय ॥ १४ ॥ मेरे लोक को पाने की इच्छा करनेवाला, और मेरे अनुग्रह को परम पुरुषार्थ माननेवाला, पिता, गुरु वा राजा, पुत्रों को, शिष्यों को वा प्रजाओं को क्रोधरहित होकर शिक्षा देय, पुरुषार्थ (मोक्ष आदि) प्राप्ति के साधन को न जाननेवाले कर्ममूढ़ पुरुषों को, फिर काम्य कर्मों में ही मग्न होने की शिक्षा नहीं देय, क्योंकि अन्धे पुरुष को औरभी गढ़हे में गिराने की समान, अज्ञानी कर्मान्ध पुरुष को फिर उस संसार में भ्रमाकर दुःख देनेवाले अश्वमेधादि काम्य कर्मों में प्रवृत्त करके संसाररूप कूप में डालनेवाला पुरुष, कौनसा उत्तम फल पावेगा ? अर्थात् कोई उत्तमफल नहीं पावेगा ॥ १५ ॥ यह लोकव्यवहार में का प्राणी, अपना कल्याण करने के ज्ञान से शून्य होता है, क्योंकि— अत्यन्त भोग की इच्छा करनेवाला है इसकारण परस्पर वैरभाव से दूसरों के साथ द्रोहभाव रखकर भोगने योग्य विषयोंकी इच्छा करताहै सो अज्ञानसे मोहित होता हुआ थोड़े से सुखके निमित्त, दूसरों से द्रोह करने के कारण उत्पन्नहुए नरक में पड़ना आदि असंख्य दुःखों को नहीं जानता है ॥ १६ ॥ उस अविद्या में निमग्न हुए कुबुद्धि पुरुषको देख कर, इसको तुच्छ विषयसुखके निमित्त अनन्त दुःख भोगना पड़ता है, ऐसा जाननेवाला कौन दयावान् विवेकी पुरुष, इसको फिर उस ही मार्ग में जैसे गढ़ों के मार्ग से जाते हुए अन्धे को—तू इसही मार्ग से जा, इसप्रकार कहना, तैसे जाने की प्रेरणा करेगा ? ॥ १७॥ इसकारण भक्तिमार्ग का उपदेश करके, संसाररूप मृत्यु के वशमें पड़े हुए पुरुष को जो नहीं छुटाता है वह गुरु नहीं है, वह स्वजन नहीं है, वह पिता नहीं है, वह माता नहीं है, वह देव नहीं है, और वह पति भी नहीं है अथवा संसाररूप मृत्यु के ग्रसेहुए पुरुष को छुटाने में जो समर्थ नहीं है वह उसका गुरु न बने, स्वजन न बने, पुत्र को उत्पन्नकरने का यत्न भी नहीं करे, माता न होय, किसी की पूजा ग्रहण न करे, और किसी स्त्री के साथ पाणिग्रहण भी नहीं करे ॥ १८ ॥ इसप्रकार मोक्षधर्म का उपदेश करके अब अपने

कृतो मे यदधर्म आरादतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥ १९ ॥ तस्माद्भवन्तो हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ॥ अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानां ।२०। भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥ २१ ॥ देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषां ॥ भवः परः सोऽथ विरिंचवीर्यः स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥२२ ॥ न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ॥ यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाऽहमश्नामि कामं न तथाऽग्निहोत्रे ॥ २३ ॥ धृता तनूरुशती मे पुराणी येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम् ॥ शमो

पुत्रों की परस्पर की स्पर्धा (डाह) दूर होने के निमित्त ऋषभदेवजी अपने जन्म की कथा कहकर उनको भ्राता की सेवा करने का उपदेश करते हैं कि—हे पुत्रों ! यह मनुष्य के आकार का अपना शरीर मैंने अपनी इच्छा से ग्रहण करा है इसकारण अतर्क्य है अर्थात् इसमें किसी की तर्कना नहीं चलती, जिसमें धर्म रहता है ऐसा शुद्ध सतोगुणरूपी मेरा हृदय है और मैंने जो अपने पीठपीछे अधर्म को दूरसे ही त्यागदिया है इसकारण मुझे वृद्धजन ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं॥ १९॥ और तुम मेरे शुद्ध सतोगुणी हृदयसे उत्पन्न हुए हो अतः तुम सब,गुणों करके श्रेष्ठ इस अपने बन्धुरूप भरतकी,निष्कपट बुद्धि से सेवा करो यही मेरी सेवा करना है और प्रजाओंका पालन होगा अर्थात् भरतके अनुगामी होकर ही प्रजाओं का पालन करो, स्वतन्त्रता से न करो ॥२०॥ हे पुत्रों ! चेतन और जड़ इन दो प्रकारके प्राणियोंमें मृत्तिका पाषाण आदि स्थावरोंकी अपेक्षा वृक्ष आदि स्थावर श्रेष्ठहैं उन की अपेक्षा जङ्गम प्राणी श्रेष्ठ हैं, उन में भी जिन को जानने की शक्ति है वह पशुआदि श्रेष्ठ हैं उन से मनुष्य श्रेष्ठ हैं, उन से भी प्रथम, भूत प्रेत आदि,देवयोनि होने के कारण श्रेष्ठ हैं, उन से गन्धर्व, उन से सिद्ध, उन से भी देवताओं के सेवक जो किन्नर आदि वह श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ उन की अपेक्षा असुर श्रेष्ठ हैं, उन से देवता श्रेष्ठ हैं, उन में इन्द्र श्रेष्ठ हैं, उन से दक्ष आदि ब्रह्माजी के पुत्र श्रेष्ठ हैं, उन से शिवजी श्रेष्ठ हैं, वह ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए हैं इसकारण उन से ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं, उन ब्रह्माजी का मैं पूजनीय हूँ इसकारण उन से मैं श्रेष्ठ हूँ और द्विजों में देवता समान जो ब्राह्मण सो मेरे भी पूजनीय हैं इसकारण वह मुझ से भी श्रेष्ठ हैं ॥ २२॥ हे ब्राह्मणों ! मैं ब्राह्मणोंके साथ दूसरे किसी भी प्राणी की तुलना नहीं करता हूँ, क्यों कि—उन की योग्यता का दूसरा कोई भी प्राणी मुझे नहीं दीखता, फिर उन से अधिक तो दीखेगा ही कहां से ? जिन ब्राह्मणोंके मुखमें श्रद्धा के साथ लोकों के हवन करे हुए (समर्पण करे हुए) अन्न आदि को मैं जैसे इच्छानुकूल भक्षण करताहूँ तैसे अग्निहोत्र में अग्निके मुखमें हवन करे हुए होमके द्रव्योंको भक्षण नहीं करताहूँ॥२३॥

दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षाऽनुभवश्च यत्र ॥ २४ ॥ मत्तोऽप्यनंतात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किंचित् ॥ येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिंचनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥ २५ ॥ सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ॥ संभावितव्यानि पदे पदे वो विविक्तदृग्भिस्तदु हार्हणं मे ॥ २६ ॥ मनोवचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ॥ विना पुमान्येन महाविमोहात्कृतांतपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरि-

जिन्हों ने इस लोक में सुन्दर और प्राचीन मेरी वदरूप मूर्त्ति को अध्ययन करना आदि रूप से धारण करा है और जिन में परम पवित्र सत्वगुण, शान्ति. दम, सत्य, अनुग्रह, तप, सहनशीलता और अनुभव यह आठ गुण रहते हैं ॥ २४ ॥ और जिनको, ब्रह्मादिकों से भी श्रेष्ठ, स्वर्ग और मोक्ष के स्वामी तथा अनन्त शक्तिवाले मुझ से भी कुछ मांगने की इच्छा नहीं होती है ऐसे मेरी भक्ति करनेवाले, भोग की सम्पत्तियों से रहित भी ब्राह्मणों को दूसरी राज्य आदि सम्पत्तियों से कौन प्रयोजन है ? ॥२५॥ इस प्रकार ब्राह्मणों का सन्मान करे, ऐसा कहकर अव सकल प्राणियों के सन्मान करने का उपदेश करते हैं हे पुत्रों ! तुम और सकल सभा के पुरुष, स्थावर जङ्गमरूप सकल ही प्राणी मेरे स्थान हैं ऐसा समझकर क्षण २ में मत्सरता आदि रहित दृष्टि से उन का सन्मान करो, इस प्रकार करनाही मेरा पूजन करने की समान होगा ॥ २६ ॥ मन,वाणी, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियों के भी व्यापार का प्रत्यक्ष फल मेरी आराधना करना, इतनाही कहा है, क्योंकि—मेरी आराधना के विना यह पुरुष, प्रचण्ड मोहरूप कालपाश से अपने को नहीं छुटासक्ता है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेव जी ने कहा कि—हे राजन् ! इस प्रकार महापराक्रमी और सकल प्राणियों का हितचिन्तन करनेवाले वह भगवान् ऋषभदेवजी लोकों को हित का उपदेश करने के निमित्त, स्वयं ही सुन्दर शिक्षा पाये हुए भी अपने पुत्रों को (पूर्वोक्त) उपदेश कर के तदनन्तर, जिनका स्वभाव अत्यन्त शान्त है और जिनको किसी प्रकार का कर्म करने की आवश्यकता नहीं है ऐसे वड़े २ मुनियों को भक्ति, ज्ञान वैराग्यरूप परमहंसों के धर्म का उपदेश करने के निमित्त अपने सौ पुत्रों में से वड़े परम भगवद्भक्त और भगवद्भक्तों को ही अपना मुख्य आश्रय माननेवाले भरत नामक पुत्र को, पृथिवी की रक्षा करने के निमित्त राज्याभिषेक करके घर में ही सकल वस्तुओं का त्याग करने के कारण

ग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥ २८ ॥ जडान्धमूकवधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव ॥ २९ ॥ तत्र तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वटशिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजःप्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन्देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥ ३० ॥ अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयवविन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरतारारुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकण्ठनासो

संग्रह में केवल शरीर ही जिनका शेष रहा है ऐसे वह ऋषभदेवजी, केशों को अस्तव्यस्त बखेरे विक्षिप्त (पागल) की समान दिगम्बर बन कर अपने में ही आहवनीय अग्नि का समारोप कर के ब्रह्मावर्त्त से बाहर चलेगए ॥ २८ ॥ वह अवधूतकी समान(मट्टी आदि से सनेहुए) वेष धारकर लोकों में जड़,अन्ध, गूँगे,बहिरे वा पिशाचग्रस्त मनुष्य की समान फिरतेहुए,मनुष्यों के अनेकों प्रकारके प्रश्न करने पर भी मौनव्रत धारकर रहते थे ॥ २९ ॥ वह,—नगर, ग्राम, खान, किसानों के खेड़े, बगीची,पर्वतोंपर के ग्राम, सेनाओं के पड़ाव,गौओं के गोठ,ग्वालों के ग्राम, यात्रियों के समूह, पर्वत,वन और ऋषियों के आश्रमों में विचरनेलगे; मार्ग में जहां तहां अधम मनुष्य उनको—ललकारना, मारना, उनके ऊपर मूत्र करना,थूकना,पत्थर मारना,विष्ठा डालना और धूलि डालना,अपानवायु छोड़ना वा दुर्वचन कहना इत्यादि अनेकों कष्ट देते थे परन्तु तथापि जैसे वनके डांसोंकी पीड़ा को वनका हस्ती कुछ नहीं गिनता है तैसे ही उस पीड़ा को कुछ न गिनकर,जिस की रचना मिथ्या है परन्तु तौ भी जिसको ' सत् ' नाम मिला है ऐसे मनुष्याकार इस शरीर में सत् और असत् अथवा चैतन्य और जड़ इन दोनों के अनुभवरूप से अपनी ही महिमा में विराजमान होने के कारण जिन को ' मैं और मेरा ' इसप्रकार का अभिमान नाममात्र को भी नहीं है इसकारण ही जिनका मन आत्मानन्दसे कभी भी विचलित नहीं होता है ऐसे वह ऋषभदेवजी इकले ही पृथ्वीपर विचरनेलगे ॥ ३० ॥ उनके अति कोमल हाथ, पैर, हृदय,लम्बी भुजा, कन्धा, कण्ठ और मुख आदि अङ्गों की गठन अति उत्तम थी. उनका स्वाभाविक सुन्दरमुख स्वाभाविक हास्यसे और भी शोभायमान प्रतीत होताथा, वह नवीन कमल के पत्तों की समान और तापहारी कनीनिका (पुतली)जिन के भीतर हैं ऐसे लालवर्ण और विशाल नेत्रों से सुन्दर दीखते थे, उनके—कपोल, कान,

विगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनांसि कुसुमशरासनमुपदधानः परा-
गवलंबमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत
इवादृश्यत ॥ ३१ ॥ यर्हि वाव स भगवाल्लोकमिमं योगस्याद्धा प्रतीपमिवा-
चक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवा-
श्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः
॥ ३२ ॥ तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समंतात्सु-
रभिं चकार ॥ ३३ ॥ एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः का-
कगोमृगचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म ॥ ३४ ॥ इति नानायोगचर्याच-
रणो भगवान्कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानंदानुभव आत्मनि सर्वेषां भूता-
नामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानादन्तरोदरभावेन सिद्धसम-

---

कण्ठ और नासिका यह अङ्ग समानभाव से शरीर को शोभा देनेवाले और सुन्दर थे,वह गम्भीर हास्यवाले अपने मुख के विलास से नगर की स्त्रियों के मन में कामदेव को उद्दीपन करते थे, ऐसे भी वह ऋषभदेवजी, आगे को लटकनेवाले, लम्बे, घुँघुराले, जटारूप बने, कुछएक पीले केशों का बड़ाभारी भार धारण करने के कारण अवधूत की समान मलिन हुए अपने शरीर से, पुरुषों को ऐसे दीखते थे कि मानों इनको पिशाच की बाधा होरही है ॥ ३१ ॥फिर जब, उन भगवान् ऋषभदेवजी को यह सब लोक,भगवत्ध्यान रूप योगसाधन के प्रत्यक्ष नाशकारीहैं ऐसा दीखनेलगे,और उनको दूर करनेका प्रबन्ध करना निन्दनीय कर्म प्रतीत हुआ तब उन्होने आजगरव्रत (एक स्थानपर ही रहकर प्रारब्ध कर्म भोगना)धारण करा, तदनन्तर वह लेटे हुएही प्रारब्धवश प्राप्तहुए अन्नादि का भोजन करते थे,जल पीते थे, फल आदि भक्षण करते थे, मूत्र—और विष्टा करते थे और अपने ही विष्टा में लोटनें के कारण उनके अङ्ग सनजाते थे ॥ ३२ ॥ हे राजन्! उन ऋषभदेव जी की विष्टा के गन्ध से सुगन्धित हुआ वायु उस देश को चारों ओर से दश योजन तक सुगन्धित करता था ॥ ३३ ॥ इस आजगर व्रत की समान ही गौ, मृग और काकों की समान वृत्ति धारण कर के वह ऋषभदेव जी गौ, मृग और कौओं के वर्त्ताव की समान चलते में,खड़े हुए, बैठकर वा लोटकर पीना, खाना, मूत्रोत्सर्ग करना आदि व्यवहारों को करते थे ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार नानाप्रकार के योगियों के आचरण को करनेवाले वह भगवान् मोक्ष के स्वामी ऋषभदेवजी, श्रुति में मनुष्य गन्धर्व आदिकों को उत्तरोत्तर सौ गुणा कहे हुए आनन्द के अनुभव स्वरूप होकर,सकल प्राणीमात्र के आत्मारूप, परमात्मा भगवान् वासुदेवजी के विषैं अपने अभेदभाव से, ईश्वर के विषैं अपने में के देह आदि उपाधियों को दूर करने के कारण वह स्वयं सिद्ध सकल पुरु-

स्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ न नूनं भगव आत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छयोपगतानि ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ सत्यमुक्तं किन्त्विह वा एके न मनसोऽद्धा विश्रम्भमनवस्थानस्य शठकिरात इव सङ्गच्छन्ते ॥ २ ॥ तथा चोक्तम् ॥ न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ॥ यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥ ३ ॥ नित्यं ददाति कामस्य च्छिद्रं तमनु येऽरयः ॥ योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥ ४ ॥ कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ॥ कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद्बुधः ॥ ५ ॥ अथैवमखिललोकपालललामो विलक्षणैर्जडवदवधूतवे-

पार्थों से परिपूर्ण थे; उन्हों ने मन में सङ्कल्प करे विनाही प्रत्यक्ष प्राप्त हुई–आकाश में फिरना, मन के वेग की समान शरीर की गति होना, गुप्त होना, दूसरे के शरीर में प्रवेश करना, दूर की वस्तु को पालेना और देखलेना इत्यादि योग सिद्धियों को मन से भी स्वीकार नहीं किया ॥ ३५ ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ राजा ने कहा–हे भगवन् ! योगरूप वायु से प्रदीप्त हुए ज्ञानाग्नि के द्वारा जिन्हों ने राग आदि कर्म बीजों को दग्ध करडाला है ऐसे आत्मस्वरूप में रमण करनेवाले योगियों को अपने आप प्राप्त हुए ऐश्वर्य फिर निःसन्देह दुःखदायक नहीं होते हैं, ऐसा होनेपर भी अपने आप प्राप्त हुई योगसिद्धियों को ऋषभदेवजी ने स्वीकार क्यों नहीं किया ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा–हे राजन् ! हां तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु जैसे हरिण, अपने जाल में फँस जाय तब भी धूर्त व्याधा उस का विश्वास नहीं करता है, न जाने वह कब धोखा देकर भाग जायगा, ऐसा मानता है तैसे ही इस लोक में कितने ही बुद्धिमान् पुरुष, चञ्चल स्वभाववाले मन का विश्वास नहीं करते हैं ॥ २ ॥ इस मन के विषय में ऐसा कहा है कि–जिस के विश्वास से शिवजी का भी बहुत काल का सञ्चय कराहुआ तप, मोहिनी का स्वरूप देखते ही डिग-गया, तैसे ही सौभरि आदि ऋषियों का भी तप व्यर्थ हुआ, इसकारण स्थिर न रहनेवाले मन से कदापि मित्रता न करे ॥ ३ ॥ जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जार पुरुषों को आश्रय देकर उन से, अपने ऊपर विश्वास रखनेवाले पति का प्राणनाश कराती है तैसे ही विश्वास रखने वाले योगी का मन नित्य काम को अवकाश देकर उस के अनुसार रहनेवाले क्रोध आदि शत्रुओं को भी देह में प्रवेश करने का अवसर देदेता है ॥ ४ ॥ इसकारण जो काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह भय आदि शत्रु और कर्मबन्धन, इन सब का मूलकारण है वह मन मेरे वश में है, ऐसा कौन बुद्धिमान् मानसकता है ? ॥ ५ ॥

प्रभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां सांपरायविधिमनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थांतरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम॥६॥तस्य ह वा एवं मुक्तलिंगस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन चंक्रममाणः ॥ ७ ॥ कोंकवेंककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान्यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजो संवीत एव विचचार ।८। अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनमालेलिहानः सह तेन ददाह॥९॥यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोंकवेंककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाषंडमसमंजसं निजमनीषया मंदः प्रवर्तयिष्यते ॥ १० ॥ येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देवमायामोहिताः स्व-

---

इसप्रकार इन्द्रादि सकल लोकपालों के भूषणरूप, अनेकों प्रकार के अलौकिक, जड़ पुरुषों के से, अवधूत वेष, भाषण और आचरण के कारण जिन में भगवान् की सामर्थ्य नहीं दीखती है ऐसे वह ऋषभ देवजी, योगियों को शरीर के त्यागने की रीति सिखावें, इस कारण अपने देह को त्याग ने की इच्छा करके 'मेराजीवात्मा, परमात्मा भगवान् के विषैं अणुमात्र भी भेदभाव न रखकर अभेदरूप से एकता को प्राप्त होगया है, ऐसा वारम्वार देखतेहुए देहाभिमान दूर होने से संसार को त्याग गये ॥ ६ ॥ इसप्रकार लिङ्गशरीर के अभिमान से रहित उन भगवान् ऋषभदेवजी का शरीर,योगमाया की वासनारूप संस्कारों के कारण,अभिमान के आभास,§से इस पृथ्वीपर विचरनेलगा ।७। वह स्वाभाविक कोङ्क वङ्क और कुटक इन नामवाले दक्षिण कर्णाटक देशों में जाकर तहां कुटकपर्वत के वगीचे में मुख में पत्थर का ग्रासलेकर उन्मत्त पुरुष की समान केशखोले और सकल शरीर नग्न किये फिरतेरहे ॥ ८ ॥ एकसमय वायु के वेग से कम्पायमान होतेहुए वाँसो के झुण्ड परस्पर घिसने से उत्पन्नहुई प्रचण्ड दावानल, उस वन को चारोओर से ग्रसनेलगी सो उस ने ऋषभ देवजी के शरीर सहित उस वन को भस्म करडाला ॥ ९ ॥ हेराजन् ! तदनन्तर कलियुग में अधर्म की अधिकता होनेपर भवितव्यता से अत्यन्त मोहित हुआ, कोङ्क, वेङ्क, और कुटक इन देशों का 'अर्हन्' नामवाला मन्दबुद्धि राजा, जिन ऋषभ देवजी के आश्रमातीत धर्म (परमहंस धर्म) के आचारण को, उस देश के पुरुषों से सुनकर और आप उस को सीखकर अपने निर्भय स्वधर्म के मार्ग का त्याग करेगा और अपनी बुद्धि से ही कुमार्गरूप पाखण्डमत को चलावेगा ॥ १० ॥ उस चलाएहुए पाखण्ड

---

§ जैसे एकवार घुमाया हुआ कुम्हार का चक्र, संस्कारवश वहुत देरी पर्यन्त घूमता है तैसेही अभिमान रहित हुए पुरुष का शरीर पहिले अभिमान के संस्कारवश कितने ही दिनों पर्यन्त भ्रमता रहता है उस को ही अभिमान का आभास कहते हैं ।

विधिनियोगशौचचारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निजेच्छया गृह्णाना अस्नानानाचमनाशौचकेशोल्लुंचनादीनि कलिनाऽधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥ ११ ॥ ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयाऽन्धपरंपरया श्वस्तास्तमस्यंधे स्वयमेव प्रपतिष्यंति॥१२॥ अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः ॥ तस्यानुगुणान् श्लोकान् गायन्ति ॥ १३ ॥ अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ॥ गायंति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवंति ॥ १४ ॥ अहो नु वंशो यशसाऽवदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः ॥ कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥ १५ ॥ कोन्वस्य काष्ठामपरोनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य-

---

मत के अनुसार ही कलियुग में नीच पुरुष, देवमाया से मोहित होकर अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार शास्त्र में कहेहुए पवित्र आचरण को त्यागकर, देवताओं का अपमान करना, स्नान न करना, आचमन न करना, पवित्रता न रखना, केश मुँडवाकर मुख का ढोंग बनाना इत्यादि निन्दनीय नियमरूप व्रत अपनी २ इच्छा के अनुसार धारण करते हुए, जिस में अधर्म की ही अधिकताहै ऐसे कलियुग के प्रभाव से बुद्धिभ्रष्ट होकर वेद, ब्राह्मण, विष्णुभगवान् और सत्पुरुषों की निन्दा करनेवाले होंगे ॥ ११ ॥ वह पाखंडी पुरुष, वेद की आज्ञा के आधार से रहित, अपनी इच्छानुसार पाखण्डियों के चलायेहुए नवीन मतपर विश्वास करके, 'जैसे मुझे मार्ग दीखता है ऐसा कहनेवाले एक अन्धेके धोखे में आकर और अन्धे उसके पीछे२ जाकर अन्धकूप में जाकर गिरते हैं तैसेही' जिसको तरने का उपाय नहीं है ऐसे अन्धतम नरक में अपने आप ही जाकर गिरेंगे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! यह ऋषभदेवजी का अवतार, रजोगुणसे भरेहुए लोकों को मोक्षमार्ग की शिक्षा देने के निमित्त भगवान् ने धारण कराथा, उसके योग्य यह श्लोक पूर्वकाल से लोग गाते हैं ॥ १३ ॥ अहो ! क्या आश्चर्य कहाजाय ! सात समुद्रवाली पृथ्वीपर जितने द्वीप और जितने खण्ड हैं, उनमें यह भरतखण्ड ही अधिक पवित्र स्थान है, क्योंकि–जिस भरतखण्ड में के पुरुष, ऋषभदेवरूप भगवान् के अवतारके कर्मों को गाते हैं ॥ १४ ॥ अहो ! प्रियव्रत राजा का वंश, सत्कीर्त्ति के कारण अतिशुद्ध है, क्योंकि–सबके अन्तर्यामी और सबके कारण, अनादि पुरुषोत्तम भगवान् ने जिस वंश में ऋषभदेव अवतार धारण करके मोक्षप्राप्ति के साधनभूत धर्म का आचरण करा ॥ १५ ॥अधिक तो क्या परन्तु इन अजन्मा ऋषभदेवजी की दिशा में को मनसे भी जाने की शक्ति रखनेवाला दूसरा कौन योगी होगा ?, क्योंकि–और जो योगी हैं, वह ऋषभदेवजी की निन्दित मानकर त्यागीहुई सिद्धियों की इच्छा करते हैं और उनको पाने के लिये बड़े २ यत्न करते हैं,

योगी ॥ यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥ १६ ॥
इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य वि-
शुद्धाचरितेरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणम् ॥ परममहामंगलायनमिदमनु-
श्रद्धयोपचितयाऽनुशृणोत्याश्रावयति वाऽवहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव ए-
कांततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ॥ १७ ॥ यस्यामेव कवय आत्मानमवि-
रतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयंतस्तयैव परया नि-
र्वृत्या ह्यपवर्गमात्यंतिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भ-
गवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥ १८ ॥ राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः ॥ अस्त्वेवमंग भगवान् भजतां मु-
कुंदो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥ १९ ॥ नित्यानुभूतनिज-
लाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ॥ लोकस्य यः करुणयाभ-

---

अतः उनको ऋषभदेवजी की समान निरीहपना और ब्रह्मसाक्षात्कार प्राप्त होना अत्यन्त ही दुर्लभ है ॥ १६ ॥ जो पुरुष, इसप्रकार सकल वेद, लोक, देवता, ब्राह्मण और गौ, इनके परमगुरु ऋषभदेव नामक भगवान् के, जिसको मैंने तुम से कहा है ऐसे, पुरुषों के सकल पातकों को दूर करनेवाले और परम मङ्गलों के आश्रयस्थान इस अत्यन्त शुद्ध चरित्रको, बड़ीहुई श्रद्धा के साथ मनकी एकाग्रता से सुनता है अथवा वर्णन करता है उन दोनों को ही उन वासुदेव भगवान् के विषें अटल भक्ति प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ उस भक्ति रूप नदी में ही विवेकी पुरुष, अनेकों प्रकार के पापों के कारण संसार ताप से तप्त होनेवाले आत्मा को क्षण २ में निरन्तर स्नान करातेहुए, उस परमानन्द से ही तृप्त होकर अपने आप प्राप्त हुए वा भगवान के स्वयं ही दिये हुए भी जन्म मरण आदि दोष रहित पुरुषार्थरूप मोक्ष का आदर नहीं करते हैं, क्योंकि—उन विवेकी पुरुषों को भगवान् अपना मानकर स्वीकार करलेते हैं इस कारण उन को सकल पुरुषार्थ प्राप्त होजाते हैं ॥ १८ ॥ हे राजन्! मुक्तिदाता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी, तुम पाण्डवों की और यादवों की रक्षा करनेवाले, धर्म का उपदेश देनेवाले, उपासना करने योग्य देवता, मित्रों में मुख्य अधिक क्या, किसी समय दूत बनने का अवसर आनेपर आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले हुए, यह तुम असीम भक्तों की वार्त्ता कुछ अद्भुत ही प्रकार की है, दूसरे भक्तों के विषय में कहो तो उन को भगवान् किसी समय मुक्ति देदेते हैं परन्तु प्रेमयुक्त भक्तियोग नहीं देते हैं ॥ १९ ॥ हे राजन्! निरन्तर अनुभव करे हुए आत्मस्वरूप के लाभ से जिनकी भोग की इच्छा दूर होगई है ऐसे जिन्हों ने, देह आदिकों में मनोरथों की परम्पराओं के कारण चिरकाल से सोई हुई बुद्धिवाले पुरुषों के ऊपर करुणा कर के निर्भय

यमार्त्तलोकमारूयान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥ २० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवताऽवनितलपरिपालनाय संचिंतितस्तदनुशासनपरः पंचजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥१॥ तस्यामु ह वा आत्मजान्कार्त्स्न्येनानुरूपानात्मनः पंच जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि ॥ २ ॥ सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति ॥ अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥ ३ ॥ स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥ ४ ॥ ईजे च भगवन्तं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ॥ ५ ॥ संप्रचरत्सु नानायागेषु विरचितांगक्रियेष्वपूर्वं यत्तत्क्रियाफलं

आत्मस्वरूप का वर्णन करा है उन भगवान् ऋषभदेवजी को नमस्कार हो॥ २० ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हेराजन् ! परम भगवद्भक्त भरत को तो जब, भगवान् ऋषभ देवजी ने भूतल की रक्षा करने के निमित्त सङ्कल्पमात्र से ही अभिषेक किया तबऋषभ देवजी की आज्ञा में तत्पर रहनेवाले उन भरतजी ने (राज्य करते में) पञ्चजनी नामक विश्वरूपकी कन्या के साथ विवाह किया ॥ १ ॥ तदनन्तर उस स्त्री के विषें उन्होंने, सब प्रकारसे अपनी समान बुद्धिकी निपुणता आदि गुणोंवाले पाँच योग्य पुत्रोंको जैसे तामस अहङ्कार, शब्द स्पर्श रूप-रस गन्ध- को उत्पन्न करता है, तैसे उत्पन्न करा ॥ २ ॥ उन के नाम–सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु यह थे;पूर्वकाल में अजनाभ नाम से प्रसिद्ध होने परभी इसखण्ड को भरत के श्रेष्ठ वर्त्तावके कारण ही सबलोक भरतखण्ड कह ते हैं ३ ॥ वह सब शास्त्रों के तत्त्व को जाननेवाला और अपने धर्म के अनुकूल वर्त्तावकर ने वाला राजा भरत, अपने २ अधिकार के अनुसार वर्त्ताव करनेवाली प्रजाओं का बड़ी कृपालुता के साथ अपने पिता और पितामह की समान रक्षा करनेलगा ॥ ४ ॥ और उस ने यज्ञक्रतुरूप * भगवान् का योग्य २ समयपर अपने अधिकार के अनुसार अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोमयाग इन की प्रकृति विकृति ÷ के द्वारा छोटेबड़े यज्ञोंके द्वारा श्रद्धा के साथ होता अध्वर्यु आदि चार ऋत्विज जिन को करावें ऐसे अनुष्ठानों से आराधन करा ॥ ५ ॥ अनुष्ठान के द्वारा पूर्ण करे हैं पूर्व उत्तर अङ्ग जिन के ऐसे उन भरत के

* जिनमें पशु के बांधनेका खम्भा होता है उसको यज्ञ और जिनमें वह खम्भा नहीं उसको क्रतु कहते हैं। ÷ जिन में सकल अंग कहे हैं वह प्रकृति और जिन में नहीं होते हैं वह विकृति कहाती है।

धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिंगानां मंत्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकषायो हविष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवांस्तान्पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥ ६ ॥ एवं कर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्त्वस्यांतर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरयाऽजायत ॥ ७ ॥ एवं वर्षायुतसहस्रपर्यंतावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसंपन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रमं प्रवव्राज यत्र ह वाव भगवान्हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥ ८ ॥ यत्राश्रमपदान्युभयतोनाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सं-

नानाप्रकार के यज्ञ होने के समय और देवताओं को समर्पण करने के निमित्त अध्वर्युओं के घृत आदि होम के पदार्थ हाथ में लेनेपर, वह यजमान राजा भरत, यज्ञ से उत्पन्न होनेवाला जो धर्मनामक अपूर्व कर्मफल उसका, सकल देवताओं के प्रकाशक जो मन्त्रों के इन्द्र आदि देवता उन के अन्तर्यामी, मुख्यकर्त्ता, परमदेवतारूप, यज्ञपुरुष और परब्रह्मरूप भगवान् वासुदेव के विषैं चिन्तवन करताहुआ, अपनी कुशलता से रागादि मलों का क्षय कर के यज्ञ, के भोक्ता उनसूर्य आदि देवताओं को भी वासुदेवभगवान् के नेत्र आदि अवयवों में एकत्व रूप से चिन्तवन करने लगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार कर्मकी पूर्णतासे शुद्धचित्तहुए उस भरत को, अपने अन्तःकरण में प्रकट होनेवाले, व्यापक, महापुरुषरूप, 'श्रीवत्सलाञ्छन' कौस्तुभमणि, वनमाला, चक्र शंख और गदा से शोभायमान दीखनेवाले तथा नारदादि अपने भक्तों के हृदय में चित्र की समान निश्चल रहनेवाले पुरुषरूप से प्रकाशित होनेवाले भगवान् वासुदेव के विषैं, प्रतिदिन जिस का वेग बढ़ता रहता है ऐसी बड़ीभारी भक्ति उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ इस प्रकार भक्तियोग में अनेकों सहस्रवर्ष पर्यन्त का समय बीतजाने पर, अब राज्यभोगरूप कर्म का अन्त शीघ्र ही होनेवाला है ऐसा निश्चय करनेवाले उस राजा भरत ने, पूर्व पुरुषाओं से चला आता हुआ और अपने आप भोगा हुआ राज्य, विभाग कर के अपने पुत्रों को भाग के अनुसार दे दिया और आप सकल सम्पत्तियों के स्थान अपने घर को त्यागकर पुलह ऋषि के आश्रम (हरिक्षेत्र) में चलेगए जिस क्षेत्र के विषैं विद्याधर कुण्ड में भक्तों के ऊपर दया करने के वशीभूत होकर भगवान् श्रीहरि अब भी तहां रहनेवाले अपने भक्तों को इच्छा के अनुसार स्वरूप से समीप में विराजमान रहते हैं ॥ ८ ॥ और जिस क्षेत्रमें गण्डकी नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ नदी, जिनमें नीचे और ऊपर नाभिकीसमान

वेतः पवित्रीकरोति ॥ ९ ॥ तस्मिन्वाव किल स एकलः पुलहा-
श्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकाऽम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीह-
मानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां
निर्वृतिमवाप ॥ १० ॥ तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमाना-
नुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कं-
ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविंदानुध्या-
नपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगंभीरहृदयह्रदावगाढधिषणस्तामपि
क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥ ११ ॥ इत्थं धृतभगवद्व्रत ऐणेयाजि-
नवाससाऽनुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा
भगवंतं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच ॥ १२ ॥
परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ॥ सुरेतसादः पुनरावि-

आकार है ऐसे शालग्राम की शिलाओं के चक्रोंसे ऋषियों के आश्रम के स्थानोंको चारों ओर से पवित्र करती है ॥ ९ ॥ उस क्षेत्र में, पुलहाश्रम की पुष्पवाटिका के विषैं एकान्त स्थान पर इकले ही रहनेवाले, जिन की विषयवासना दूर होगई हैं और जिन्हों ने अन्तःकरण को वश में करा है ऐसे वह राजा भरत, निश्चय से अनेक प्रकार के पुष्प, पत्र, तुलसीदल, जल और कन्द, मूल, फल के नैवेद्य आदि सामग्रियों से भगवान् की आराधना करते हुए परम आनन्द को प्राप्त हुए ॥ १० ॥ इस प्रकार निरन्तर करी हुई भगवान् की आराधना के प्रभाव से बढ़ेहुए भगवत्प्रेम की अधिकता से द्रवीभूत हुए जिन के हृदय में उस आराधन करने के निमित्त भी उदासीनता प्रतीत होनेलगी है और परमहर्ष के वेग से जिन के शरीर पर रोमाञ्च खड़े रहते हैं तथा उत्कण्ठा के कारण बहते हुए आनन्दाश्रुओं के प्रवाह से जिन के नेत्रों की देखने की शक्ति बन्द होगई है ऐसे वह राजा भरत, अपने को प्रीति देने वाले भगवान् के कुछ एक लालवर्ण चरणकमल का ध्यान करने से बढ़ीहुई भक्ति के द्वारा परमानन्द से पूर्ण भरे हुए गम्भीर हृदयरूप सरोवर में अपनी बुद्धि को निमग्न करते हुए, उस प्रतिदिन नियम से होनेवाली भगवान् की पूजा को भी भूलने लगे अर्थात् उनकी समाधि लगनेलगी ॥ ११ ॥ इस प्रकार भगवान् की आराधना का नियम धारण करनेवाले वह राजा भरत, मृगचर्मरूप वस्त्र से और त्रिकाल स्नान करने से भीगे हुए, पीत वर्ण, घुँघराले जटाजूट से शोभायमान होते हुए सूर्य की ऋचाओं करके अर्थात् " ध्येयःसवितृमण्डलमध्यवर्ती " इत्यादि ऋचाओं करके वर्णन करे हुए सुवर्णमय पुरुषरूप भगवान् का. सूर्य मण्डल का उदय होनेपर उपस्थान करते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ १२ ॥ प्रकृति से पर, शुद्ध सत्वरूप, और कर्मों का फल देनेवाले सूर्य भगवान् के तेज की हम शरणागत

इये चष्टे हंसं गृणींणं नृपेंद्रिगिरामिमः ॥ १३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतचरिते भगवत्परिचर्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकांत उपविवेश ॥ १ ॥ तत्र तदा राजन्हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥ २ ॥ तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयङ्कर उदपतत् ॥ ३ ॥ तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात्सहसैवोच्चक्राम ॥ ४ ॥ तस्या उत्पतंत्या अंतर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतो गर्भः स्रोतसि निपपात ॥ ५ ॥ तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्यांचिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपात अथ च ममार ॥ ६ ॥ तं त्वेणकुणकं कृपणं स्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्या-

हैं, जो तेज सङ्कल्पमात्र से इस जगत् को उत्पन्न करता है तथा उत्पन्न करे हुए इस जगत् में अन्तर्यामीरूप से प्रवेश कर के सुख की इच्छा करनेवाले जीव की, अपनी चैतन्य शक्ति से रक्षा करता है और प्राणियों के विषें उपाधिरूप से रहनेवाली बुद्धि को गति देता है ॥ १३ ॥ इति पञ्चम स्कन्ध में सप्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! एक समय वह राजा भरत, मलमूत्र त्याग आदि आवश्यक विधि से निवटनेपर तिस गण्डकी नदी में स्नान संध्यादि नित्यनैमित्तिक कर्म कर के ओंकार का जप करते हुए तीन मुहूर्त्त तक नदी के तटपर बैठे रहे ॥ १ ॥ हे राजन् उस समय तहां नदी के समीप में जल पीने की इच्छा से अपने यूथ में से बिछुड़ी हुई एक हरिणी इकलीही आई ॥२॥ तिस हरिणी ने, अत्यन्त तृषा से जल पीना प्रारम्भ किया, इतने ही में समीप में ही गर्जना करनेवाले एक सिंह का, लोकों को भय देनेवाला बड़ा भारी शब्द हुआ ।३। यह सुनतेही वह हरिणी,प्रथमसे स्वाभाविक डरपोक होने के कारण घबड़ाई हुईसी होकर देखती थी, तिसपर भी सिंह के भय से मन में अत्यन्त ही घबड़ा कर,नेत्रों से इधरउधर को देखती हुई प्यास दूर होने से पहिले ही एकसाथ नदी के परलीपार को कूदी॥ ४ ॥ उससमय छलांग मारती हुई तिस हरिणी का गर्भ, बड़ेभारी भय के कारण गर्भाशय में से चलायमान होकर योनि के द्वारा बाहर निकलकर नदी के प्रवाह में गिरपड़ा ॥ ५ ॥ उस गर्भ का गिरना, छलाँग मारना और सिंह का भय इन कारणों से उत्पन्न हुए खेद करके पीड़ितहुई और अपने यूथ में से छुटीहुई वह कृष्णहरिण की स्त्री (हरिणी),पर्वत की एक गुफा में जाकर गिरपड़ी और उसी समय मरण को प्राप्त होगई ॥ ६ ॥ इधर उन राजर्षि भरत ने, प्रवाह में वहकर जाते हुए और माताके त्यागे हुए उस हरिणके

परिवृद्धं बन्धुरिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥ ॥ ७ ॥ तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन् कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाः सहयमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ॥ ८ ॥ अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कंचन वेद मय्यतिविस्रब्धश्च अत एव मया मत्परायणस्य पोषणपालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षादोषविदुषा ॥ ॥ ९ ॥ नूनं ह्यार्याः साधव उपशमशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षन्ते ॥ १० ॥ इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥ ११ ॥ कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलो-

बच्चे को एक बान्धव की समान परमकृपा से प्रवाह में से बाहर को निकाल लिया और अरे ! यह अनाथ है क्योंकि—इसकी माता का देहान्त होगया है, ऐसा जान उसकोउठा कर अपने आश्रम में ले आये ॥ ७ ॥ फिर उस हरिण के बच्चे में ' यह मेरा है 'ऐसा अभिमान करके प्रतिदिन खाने के लिये उसको तृण आदि डालना, भेड़िये आदि पशुओं से उसकी रक्षा करना, उसको पुचकारना, उसके शरीर को खुजलाना इत्यादि व्यवहारों से उसके ऊपर जमी हुई आसक्ति के कारण उन राजा भरत के—अहिंसा सत्य आदि यम और स्नान, सन्ध्या, भगवत्पूजन आदि नियम आगे २ को एक २ करके कम होकर कुछ दिनों में सबही उच्छिन्न होगए ॥ ८ ॥ अहो क्या कहा जाय ! घूमनेवाले कालचक्र के वेग ने ही इस दीन हुए हरिण के बच्चे को अपने यूथ, मित्र और बान्धवों से छुटाकरमेरी शरण में पहुँचाया है, यह मुझे ही माता, पिता, भ्राता, ज्ञाति और यूथ के हरिण मान कर मेरे समीप आया है, यह मुझे छोड़ दूसरे किसी को भी नहीं जानता है, मेरे ऊपरही इसका पूर्ण विश्वास है इसकारणही ' शरण आये हुए की उपेक्षा करने में दोष है ' ऐसा जाननेवाले मुझ को, इसके निमित्त स्वार्थ की हानि होजाय तो भी उसका मन में विचार न करके इस अपना आश्रय लेनेवाले का पोषण, पालन, प्रीणन और लालन करना चाहिये ॥ ९ ॥ क्योंकि—शान्तस्वभाव और दीनों का हित करनेवाले जो श्रेष्ठ सत्पुरुष हैं वह ऐसे अवसर में अपने बड़ेभारी गौरव के कार्यों को भी छोड़ देते हैं ॥ १० ॥ इसप्रकार उस मृग के बच्चे के ऊपर जिन की परम आसक्ति है ऐसे वह राजा भरत, बैठना, सोना, फिरना, खड़ा रहना, भोजन करना, इत्यादि सब कार्यों को उस हरिण के बच्चे के साथ उसके ऊपर आसक्तचित्त होकर ही करते थे ॥ ११ ॥

दकान्याहरिष्यमाणो वृकशालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ॥ १२ ॥ यदा पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात् स्कन्धेनोद्वहति एवमुत्सङ्गे उरसि चाधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ॥ १३ ॥ क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेऽप्युत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद्वत्स ते सर्वत इति ॥ १४ ॥ अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुणमतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसंतापस्तमेवानुशोचन्किल कश्मलं महदभिरम्भित इति होवाच ॥ १५ ॥ अपि बत स वै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुत अहो ममानार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतविस्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन् सुजन इवागमिष्यति किम् ॥ १६ ॥ अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥ १७ ॥ अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर ए-

---

कुशा, पुष्प. समिधा, पान, फल, मूल और जल लाने को वह वन में जाते थे तब भेड़िये कुत्ते आदिकों से उस को भय प्राप्त होगा इसप्रकार का सन्देह मन में करके उस हरिण के बच्चे को साथ ही लेजाते थे ॥ १२ ॥ तब मार्ग में भोलेस्वभाववाला होने के कारण जहाँ तहां वह मृग का बच्चा तृण आदि खाने में आसक्त होकर जब खड़ा रहजाता था तब उन राजा का हृदय अतिप्रेम से भर आताथा और वह स्नेह के वश में होकर उस को कन्धेपर रखकर चलते थे;इसप्रकार जङ्घा और वक्षःस्थलपर बैठाकर उसको लाड़ करते हुए राजा को परम आनन्द प्राप्त होता था ॥ १३ ॥ देवपूजा करतेहुए मध्य में ही वारंवार उठकर वह राजा भरत, इधर उधर गएहुए बालक को मन लगाकर देखतेथे तब ही अपने स्वस्थ अन्तःकरण से'हेवत्स ! तेरा सर्वत्र कल्याण हो इसप्रकार के आशीर्वाद उस को देते थे ॥ १४ ॥ एक समय जब वह मृगशावक बहुत ही देरी पर्यन्त राजा की दृष्टि के सामने नहीं पड़ा तब, जिसका धन खोयागया हो ऐसे कृपण पुरुष की समान उन का मन बहुत ही व्याकुल होगया तब अति उत्कण्ठा के कारण वह राजा, उस मृगशावक के विरह से हृदय में दुःखित होकर अतिदीनता से तिस मृगशावक का शोक करतेहुए बड़े मोहजाल में फँसकर इसप्रकार कहनेलगे कि— ॥ १५ ॥ अहो क्या कहूँ! देखो ! मरण को प्राप्त हुई हरिणी का पुत्र वह दीन हरिणशावक, धोखा देनेवाले व्याधे की समान बुद्धिवाले मुझ नीच भाग्यहीन के उस धोखा देना आदि अपराध को मन में न लाकर अपने चित्त के अनुसारही 'मेरा (भरत का) मन शुद्ध है' ऐसा समझकर सज्जन की समान मेरे समीप आवेगा क्या ? ॥ १६ ॥ क्या, चतुरता से इस आश्रम के उपवन में कोमल दूर्वा खानेवाले और देवके रक्षा करेहुए उस को मैं देखूँगा ? ॥ १७ ॥ क्या,

कचरो वा भक्षयति ॥ १८ ॥ निम्लोचति ह भगवान् सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माऽद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥ १९ ॥ अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसंतोषं स्वानामपनुदन् ॥ २० ॥ क्ष्वेलिकायां मां मृषा समाधिनाऽऽमीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥ २१ ॥ आसादितहविषि बर्हिषि दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥ २२ ॥ किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्याऽनया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमाखरखुरपदपंक्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं क-

भेड़िया, कुत्ता, वा अपने परिवार को साथ लेकर विचरनेवाला शूकर अथवा इकला ही विचरनेवाला वाघ आदि तो उस को मार कर भक्षण नहीं करगया ? ॥ १८ ॥ अरे ! सकल जगत् के कल्याण के निमित्त उदय होनेवाले यह वेदत्रयीरूप भगवान् सूर्य,अस्त होने को हैं, परन्तु मेरे पास हरिणी की रखीहुई धरोहड़ की समान मृगबालक अवतक भी नहीं आया मैं क्या करूँ ? ॥ १९ ॥ अहो ! अनेकों प्रकार के रमणीय और देखनेयोग्य, अपने (मृगबालक के) योग्य विनोदों से मेरे खेदको दूर करताहुआ वह हरिणरूप राजपुत्र, यहाँ आकर क्या मुझ पुण्यहीन को सुख देगा ? ॥ २० ॥ अहो ! उस के साथ क्रीड़ा करते में, बनावटी समाधि से नेत्र मूँदकर बैठे हुए मुझ को, जो भयभीत होता हुआ आकर प्रेम के कोप से, जल की बिन्दुसमान कोमल अपने सींगों के अग्रभाग से खुजलाता था ॥ २१ ॥ और किसी समय, ऊपर हवन की सामग्री रख कर फैलाए हुए कुशोंको,अपने चपल स्वभाव के अनुसार दांतों से खैंचकर दूषित करने पर मेरे ललकारने से अत्यन्त भयभीत सा होकर तत्काल अपनी क्रीड़ा को छोड़ देता था और किसी ऋषि के पुत्र की समान अपनी सकल इन्द्रियों को वश में करके निश्चलभाव से बैठजाता था ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार नानाप्रकार के विलाप कर के वह भरत उठकर बाहरगये और उस हरिण के खुरों से खुदी हुई भूमि को देखकर उनका हृदय भ्रांतियुक्त हुआ और कहनेलगे कि—अरे ! इस भाग्यवती पृथ्वीने न जाने कौनसा तप किया होगा ? क्योंकि—यह भूमि, नम्र हरिणशावक के छोटे २ सुन्दर, मङ्गलकारी खुर जहां दीख रहे हैं ऐसे स्थान २ पर उभरे हुए चरणों के चिन्हों से, मृगरूप द्रव्य से हीन होने के कारण दुःखित हुए मुझ दीन को, द्रव्य प्राप्ति का (हरिण को पाने का) मार्ग दिखा रही है और उन चिन्हों से चारों ओर भूषित हुए अपने शरीर को भी, स्वर्ग और मोक्ष

रोति ॥ २३ ॥ अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकंपया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥ २४ ॥ किंवात्मजविश्लेपज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशांतानुरागगुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥ २५ ॥ एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारंभणतो विभ्रंशितः स योगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यंतर एणकुणक आसंगः साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमन्तरायविहतयोगारंभणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषंगेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥२६॥ तदानीमपि पार्श्ववर्तिन-

की इच्छा करनेवाले ब्राह्मणों के यज्ञ करने का स्थान बनारही है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इतने ही में चन्द्रमा का उदय होनेपर उस चन्द्रबिम्ब में हरिण के चिन्ह को देखकर 'यह मेरा ही हरिण है' ऐसी कल्पना से राजा कहनेलगा कि--अहो ! सिंह के भय से जिस की माता मरण को प्राप्त होगई ऐसा यह हरिण का बालक अपने आश्रम को भूलकर चला गया है इस कारण दीनजनोंपर प्रेम करनेवाले यह भगवान् नक्षत्रपति चन्द्रमा, उस की दयावश रक्षा कररहे हैं क्या ? ॥ २४ ॥ इतने ही में चन्द्रमा की किरणें राजा के शरीर पर पड़ीं तब सुख पाकर राजा ने कहा--अहो ! पुत्र की समान पाले हुए हरिण के वियोग से उत्पन्न हुए तापरूप बड़वानल की ज्वालाओं से जिस का हृदयरूप स्थलकमलनी मुरझागई है परन्तु अकस्मात् पीछे से आनेवाला हरिण बालक जिस को मिला है ऐसे मुझ को यह चन्द्रमा, शीतल, सुखकारी और मेरे ऊपर प्रेम के कारण वारम्वार टपकनेवाले अपने मुख में के जलरूप अमृतमय किरणों से शान्त करेगा क्या ? ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार, जो न होसकें ऐसे मनोरथों से जिसका हृदय व्याकुल होरहा है ऐसे उन योगी तपस्वी भरत को हरिण बालक के रूप से भासनेवाले उन के प्रारब्ध कर्म ने ही योगमार्ग से और भगवान् की आराधना रूप कर्म से भ्रष्ट किया, ऐसा ही कहना चाहिये, ऐसा न कहो तो साक्षात् मोक्षके शत्रु और जिनको त्यागना कठिन है ऐसे अपने पेट के पुत्रों को भी जिसने पहिले त्याग दिया था उन भरत को दूसरी जाति के बालक हरिण में आसक्ति क्यों होती ?, इस प्रकार के विघ्न से जिन का योगमार्ग भ्रष्ट हुआ है और जिन्हों ने हरिण के बालक का पोषण, पालन, प्रीणन और लालन करने में अपना कुछ भी विचार नहीं किया है ऐसे राजा भरत का, भयङ्कर वेगवाला तथा जिस को टालना कठिन है ऐसा मृत्यु काल, जैसे मूषक के बिल (भट्ट) में कोई सर्प आ पहुँचे तैसें, आ पहुँचा ॥ २६ ॥

मात्मजमिवानुशोचंतमभिवीक्ष्यमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ।२७। तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥२८॥ अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्तसंगस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसंकीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगेनाशून्यसकलयामेन समावेशितं समाहितं कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसुस्राव ॥२९॥ इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीमातरं पुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालंजरात्प्रत्याजगाम ॥ ३० ॥ तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः संगाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधा वर्तमानो

उस मरणसमय में भी अपने समीप पुत्र की समान शोक में निमग्न बैठेहुए, उस हरिण बालक को देखनेवाले और उस मृगमें ही आसक्तचित्तहुए तिस राजा भरत ने उस हरिण के साथ अपने शरीर को त्यागा, उससमय उनका शरीर मरण को प्राप्त हुआ परन्तु उसके साथ, भगवान् की आराधना के प्रभाव से उनकी पूर्वजन्म की स्मृति (याद) नष्ट नहीं हुई ' मरणकाल में मन में जो भाव होता है वह आगे को प्राप्त होता है, इस नियम के अनुसार ' उन राजा को भी अगले जन्म में हरिण की योनि प्राप्त हुई ॥ २७ ॥ तिस योनि में भी उन्होने, ' मुझे हरिण की योनि प्राप्त होने का कारण क्या है ? ' यह पहिले करेहुए भगवदाराधनके प्रभाव से स्मरण करके बहुतही पश्चात्ताप किया और अपने से ही कहा—कि—॥ २८ ॥ अहो ! बड़ी बुरी वार्त्ता हुई, विवेकी पुरुषों के मार्गसे मैं भ्रष्ट होगया, क्योंकि—मेरा अधिकार बड़ाथा, मैंने पहिले सकल सङ्गोंका त्याग कियाथा, एकांत में वास करने के निमित्त पवित्र वनका आश्रय किया, आत्मज्ञान प्राप्त करा, भगवान् की कथाओंका वारम्वार श्रवण करना, मनन करना, कीर्त्तन करना, आराधन करना, और स्मरण करना, इनकी आसक्तिसे जिसके सब पहर सफल हुएहैं ऐसे कालके द्वारा मेरामन, सकल जीवों के आत्मा भगवान् वासुदेव के विषैं स्थित और निश्चल भी होगया था परन्तु उसी मुझ मूर्खका मन, फिर पूर्णरूप भगवत्स्वरूप को दूर छोड़कर हरिणी के बालकमें आसक्त होगया ! २९ हेराजन्! इसप्रकार जिसके हृदय में वैराग्य का उदय हुआ है ऐसा वह हरिण, उस जन्म मेंही अपनी माता हरिणीको छोड़कर जहां उत्पन्न हुआथा उसकालञ्जर पर्वतपरसे फिर शांतरूप, मुनिजनों के प्रिय, भगवान्‌के निवासस्थान, और शालके वृक्षोंसे युक्त ग्रामरूप उस पुलस्त्य पुलह ऋषि के आश्रम में आपहुँचा ॥३०॥ तहां वह हरिण मृत्युकालकी बाट देखतारहा और किसी के भी साथ समागम करने को परम दुःखदायक विघ्नरूप मानकर

मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन् मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥ ३१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतचरिते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कस्यचिद्द्विजवरस्याङ्गिरःप्रवरस्य शमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसंतोषतितिक्षाप्रश्रयविद्याऽनसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायां ॥ १ ॥ यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः ॥ २ ॥ तत्रापि स्वजनसंगाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविंदयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशंकमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडांधबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥ ३ ॥ तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारा-

इकला ही विचरता रहा, सूखेहुए, पत्ते, लता और तृणके भक्षण से निर्वाह करके, अपने को हरिण का जन्म प्राप्त होने के कारणरूप कर्म की समाप्ति कब होगी ? ऐसी वाट देखता हुआ, अब आगे मेरा मरणकाल आया ऐसा जानकर गण्डकी नदी के जलमें स्नान करेहुए अपने शरीरको त्यागा ॥ ३१ ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में अष्टम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हेराजन् ! भरत के मृग के शरीर को त्यागने के अनन्तर, आङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न हुए और शम, दम, तप, अपनी शाखा के वेद का पढ़ना, सत्पात्रों को अन्न आदि देना, सन्तोष, क्षमा, नम्रता, अपने योग्य विद्या, दूसरों के गुणों में दोषदृष्टि न करना, आत्मज्ञान और धर्मसम्पदाओं से उत्पन्न हुए आनन्द से युक्त ऐसे एक श्रेष्ठ ब्राह्मण की,पहिली स्त्रीके विषैं-उसके समान ही वेदपढ़नेका स्वभाववाले,सदाचारवान्,रूप तथा उदारता आदि गुणोंसे युक्त नौ सहोदर पुत्र हुए और दूसरी स्त्रीके विषैं एकपुत्र और एक कन्या इस प्रकार दो सन्तानहुईं ॥१॥ उनदोनों में जो पुत्र था वह, मृग के शरीर को त्यागकर अन्तिमशरीर से ब्राह्मणत्व को प्राप्तहुआ राजर्षियों में श्रेष्ठ भरत ही था, ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥ उस ब्राह्मणकुल में ही वह भरत, 'कुटुम्बियों के सङ्ग से मुझे फिर जन्मान्तर प्राप्त होगा' ऐसा सन्देह करके अत्यन्त उद्विग्न होतेहुए,जिनका श्रवण, स्मरण और गुण कीर्त्तन कर्मबन्धन का नाश करने वाला है उन भगवान् के चरणारविन्द युगल को मन में विशेषरूप से धारण करतेहुए, भगवान् के अनुग्रह से ही जिन्होंने अपने पूर्वजन्मों के वृतान्त को स्मरण करा है ऐसे वह भरत, लोकों को, अपना स्वरूप, उन्मत्त, जड़, अन्धे और बहिरेकी समान दिखातेहुए विचरनेलगे ॥ ३ ॥ उस उन्मत्त आदि रूप से वर्त्ताव करनेवाले भी पुत्र का,संतानके स्नेहमें जिस का मन आसक्त है ऐसे तिस ब्राह्मण ने,

न्यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥४॥ स चापि तदु हे पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिव स्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास ॥५॥ एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त उपसंहृतः ॥ ६ ॥ अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥ ७ ॥ पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां

समावर्त्तन पर्यन्त संस्कार, शास्त्र में कही विधि के अनुसार करने का मन में विचार कर के उपनयन (यज्ञोपवीत) किया और उस उपनयन करेहुए अपने पुत्र को, शौच आचमन आदि कर्म्मों की अपेक्षा न होनेपर भी वह उस को, 'पुत्र पिता से शिक्षा ग्रहण करे' ऐसी शास्त्र की आज्ञा होने के कारण सिखाये ॥४॥ तब वह भरत, आत्मनिष्ठ होने के कारण ' मुझे शिक्षा देने के विषय का पिता का आग्रह दूर हो ' इस निमित्त, उन पिता के समीप में रहकर ही, उन की शिक्षा का उलटासा वर्त्ताव करके दिखाते थे; वह ब्राह्मण भी आगे को श्रावण आदि मासों में उन का उपाकरण (वेद का व्रत) आदि होनेपर उन को वेद पढ़ाने का मन में विचार करके, उस (उपकारण) से पहिले ही चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ इन चार मासों में व्याहृति, प्रणव और शिर के सहित त्रिपदा गायत्री का एक समान बराबर अध्ययन उन को कराते हुए भी उतने काल में उस पुत्रको वह मन्त्र स्वर आदि के साथ नहीं सिखासके॥ ५ ॥ इस प्रकार आत्मा की समान उस पुत्र में प्रेम रखनेवाला वह पिता, उन भरत के अनादर करे हुए भी शौचाचार, अध्ययन, व्रत का नियम, गुरु और अग्नि की सेवा इत्यादि ब्रह्मचर्य के आवश्यक नियम ' पुत्र को उत्तम प्रकार से सिखावे ' इस प्रकार दुराग्रह से सिखाकर भी, पुत्र की पण्डिताई देखने का जिस का मनोरथ पूरा नहीं हुआ है ऐसा, केवल घर के कार्यों में ही लिप्त होकर भगवान् की आराधना का कुछ ध्यान न कर नियमित समयपर प्राप्त होनेवाले काल के द्वारा मरण को प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ उस समय उस ब्राह्मण की छोटी स्त्री ने अपने पेट से उत्पन्न हुए पुत्र और कन्या दोनों सन्तान अपनी सपत्नी (सौत) को सौंप दीं और आप पति के साथ प्राण त्यागकर पतिलोक को चलीगई ॥ ७ ॥ इस प्रकार पिता का परलोकवास होने पर, उन भरत जी के जो नौ भ्राता थे, वह अपनी बुद्धि से कर्मकाण्ड को ही सब से उत्तम

जडमतिरिति भ्रातुरनुशासननिर्बन्धान्न्यवृत्सन्त ॥ ८ ॥ स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि स च कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याञ्चया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मिष्टं कदन्नं वाऽभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तम् ॥ नित्यनिवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसंभावितदेहाभिमानः ॥ ९ ॥ शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबन्धुरिति संज्ञया अतज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥ १० ॥ यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि नि-

समझते थे आत्मविद्या की ओर उन का ध्यान नहीं था इस कारण उन्हों ने, उस अपने भ्राता (भरत)के स्वरूप को नहीं जाना;तो उनको जड़बुद्धि जानकर आगेको पढ़ानेका आग्रह छोड़ दिया ॥ ८ ॥ और वह जड़ भरतजी भी, जिन को दो पैरवाले पशु कहना भी अनुचित नहीं है ऐसे नीच पुरुष, जब अरे उन्मत्त ! अरे जड़ ! ऐसा कहकर पुकारते थे तब उन को उस ही प्रकार का (उन्मत्त आदि की समान) उत्तर देते थे, लोक उन से कुछ कर्म कराते थे तो वह उन की इच्छा के अनुसार कर देते थे, कभी बेगार में, कभी मँजूरी पर, किसी समय भिक्षा मांगकर और कभी विना उद्योग करे ही जो कुछ थोडा बहुत भला बुरा अन्न मिलजाता था उस को वह केवल निर्वाह करने के निमित्त ही भक्षण करते थे, इन्द्रियों की तृप्ति के लिये भक्षण नहीं करते थे, क्योंकि–जिस को उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं ऐसा स्वयंसिद्ध केवल अनुभव स्वरूप,आनन्दरूप आत्मा मैं ही हूँ, इस प्रकार का आत्मज्ञान उन को होगया था और सन्मान, अपमान, जय, पराजय आदि द्वन्द्वों से उत्पन्न होनेवाले सुख दुःख के विषय में वह देहाभिमान को वर्त्ताव में नहीं लाते थे ॥ ९ ॥ वह जडभरतजी, शीत, गर्म्मी, वायु और वरसात में वृषभ की समान सदा नग्न रहते थे, वह पुष्ट और दृढ़ अङ्गोंवाले थे, जैसे धूलि में छुपे हुए हीरे का तेज प्रकट नहीं होता है तैसे ही–भूमिपर शयन करना, शरीर को तेल आदि न लगाना और स्नान न करना इन कारणों से शरीर पर धूलि जमजानेपर उनका ब्रह्मतेज किसी को प्रकट नहीं दीखा,उनकी कमरमें एक मलिन वस्त्र लिपटा हुआथा और अति मलिन हुए यज्ञोपवीतसे यह जाति मात्रके ब्राह्मणहैं वा अधम ब्राह्मणहैं ऐसा समझकर उनके सत्यस्वरूप को न जाननेवाले पुरुषों ने उन का अपमान करा तब भी वह इस पर कुछ ध्यान न देकर तैसेही विचरते रहे ॥ १० ॥ वह जड़भरत जब, अन्य पुरुषों के कार्य की मजूरी करके भोजन पाने की चेष्टा करने

रूपितस्तदपि करोति किंतु न समविषमन्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति ॥ ११ ॥ अथ कदाचित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥ १२ ॥ तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि निशीथसमये तमसावृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान् वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरःप्रवरसुतमपश्यन् ॥ १३ ॥ अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥ १४ ॥ अथ पणयस्तं स्वविधिनाऽभिषिच्याहतवाससाच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण

लगे तब, लोकलज्जा से उन के भ्राताओं ने, धानों के खेत में क्यारी इकसार करने के कार्य में उन को लगाया तब वह उस कार्य को तो करते थे परन्तु तहाँ मट्टी डालने से खेत इकसार होगा, तहाँ मिट्टी हटादेने से नीचा होगा,तथा यहाँ मेंड बनाने से खेत कम होगा और यहाँ मेंड बाँधने से अधिक होगा,इत्यादि कार्य में वह किसीप्रकार का ध्यान नहीं देते थे और भ्राताओं के दियेहुए तण्डुलों के कणों को, खल को, भूसी को, घुनेहुए उड़द और पात्र में लगीहुई अन्नकी जलन को भी वह अमृत की समान खाते थे ॥ ११ ॥ एकसमय, कोई चोर शूद्रों का राजा, अपने सन्तान होने की इच्छा से भद्रकाली देवी को पुरुष पशुका बलि समर्पण करने को उद्यत हुआ, ॥ १२ ॥ उस ने एक पशु (पुरुष) पकड़वाकर मँगवाया था, वह दैवयोग से मरण के भय के कारण उस के हाथ में से निकल कर भागगया, उस को खोजने के निमित्त उस चोरों के राजा के दूत जिधर तिधर को दौड़तेहुए गए परन्तु वह समय अँधियारी आधीरात्रि का था इसकारण उन को वह पुरुषपशु नहीं मिला, सो अकस्मात् दैवयोग से एक ठाँड पर खड़े होकर मृग शूकर आदि से खेतों की रखवाली करनेवाले जड़भरत को, उन्हो ने देखा ॥ १३ ॥ तदनन्तर यह 'पुरुषपशु उत्तम लक्षणोंवाला है' ऐसा जानकर और इस को लेजाने से हमारे स्वामी का कार्य सिद्ध होजायगा, ऐसा मन में विचारकर हर्ष से प्रसन्नमुख होतेहुए उस को डोरी से बाँधकर–चण्डिका देवी के मन्दिर में को लेगए ॥ १४ ॥ फिर तिन चोरों ने इन जड़भरतजी को अपनी विधि से स्नान कराकर कोरे वस्त्र पहिनाए, फिर उन को आभूषण, चन्दनादि का लेप, पुष्प माला और तिलक आदि से शोभायमान करके भोजन कराया और धूप, दीप पुष्प, खीलें, आम के पत्ते,दूर्वा,फल और नैवेद्य इसप्रकार की सामग्री को इकट्ठी कर नरबलि की ठीकठाक करके गान,स्तुति,मृदङ्ग और मँजीरोंका बड़ाभारी शब्द

च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥ १५ ॥ अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकराल-निशितमुपाददे ॥ १६ ॥ इति तेषां वृषलानां रजस्तमःप्रकृतीनां धनमद-रजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसा अतिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥ १७ ॥ भृशममर्षरोषावेशरभसाविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानक-वदना हन्तुकामेवेदं महाट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशीर्ष्णां गलात्स्रवन्तमसृगासवमत्युष्णं सह ग-णेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार

करतेहुए तिस पुरुषपशु को भद्रकाली देवी के आगे लेजाकर बैठाया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन चोरों के राजा के पुरोहित ने, उस पुरुषपशु के रुधिररूप मद्य से भद्रकाली देवी की तृप्ति करने के लिये देवी के मंत्रों से अभिमन्त्रित करेहुए अतिभयङ्कर तीखे खड्ग को उठाया ॥ १६ ॥ हेराजन् ! जिन के स्वभाव तमोगुण और रजोगुण से व्याप्त होरहे हैं, जिन के मन, द्रव्यमदरूप रजोगुण की अधिकता के कारण मर्यादा को छोड़कर कुमार्ग में चलरहेहैं, जो, भगवान् के अंशासे युक्त जो ब्राह्मणकुल उस कोभी तुच्छ मानकर कुमार्ग में यथेच्छ विच रते हैं और जिन के चित्तका उत्साह हिंसाकी ओर है ऐसे उन चोरों के हाथसे; आपत्तिकाल में कहीहुई हिंसा में भी निषिद्ध, साक्षात् ब्रह्मरूप निर्वैर ब्रह्मर्षि पुत्र का अतिभयङ्कर वध रूप कर्म होनेवाला है, ऐसा देखकर अति दुःसह ब्रह्मतेज से सन्तप्त हुए शरीर वाली वही भद्रकाली एकसाथ अपनी मूर्ति को छोड़कर वाहर निकली ॥ १७ ॥ उससमय अत्यन्त अपराध को न सहना, और शरीर का दाह होना इन दोनों आवेशों के वेगसे चढ़ीहुई जो चौडी भ्रुकुटि, टेढ़ीडाढ़ और लाल२ नेत्रोंके चलायमान होनेसे जिसका मुख अति भयङ्कर दीखनेलगा है और मानो इस जगत् का नाश हीं करने को उद्यतहुई है ऐसी क्रोध के कारण बड़ीभारी गर्जना करनेवाली उस भद्रकाली देवी ने, उस स्थानसे एक साथ उछलकर, जड़भरतका प्राणान्त करनेके निमित्त पहिलेसे अभिमन्त्रण कराहुआ वही खड्ग उस पुरोहित के हाथ में से छीनकर उससे ही उन पापी दुष्टों के शिर काट डाले और उनके कण्ठ में से बहनेवाले गरम २ रुधिररूप मद्यको अपने गणोंके साथ पिया और उसके पीने से उत्पन्नहुए मद से उन्मत्त हुई वह देवी, अपने पार्षदों के साथ ऊँचे

च शिरःकन्दुकलीलया ॥ १८ ॥ एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कार्त्स्न्येनात्मने फलति ॥ १९ ॥ न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवता अनिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम्॥२०॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे जडभरतचरितं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ॥ ९ ॥ छ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथसिंधुसौवीरपतेरहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स ह महानुभावः॥१॥यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेन समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां शिबिकां र-

स्वरसे गातीहुई और नाचती हुई मस्तकरूप गेंदों से क्रीड़ा करनेलगी ॥ १८॥ हेराजन् ! इसप्रकार ही सत्पुरुषों के प्राणान्त करने का अपराध, सबप्रकार से,अपराध करनेवाले को ही फल देता है ॥ १९ ॥ हे परीक्षित ! जिन्होंने, शरीर आदि को आत्मा मानना, इस हृदयकी दृढ़गांठ को दूर करदिया है, जो सकल प्राणियों के मित्र और आत्मारूप होरहे हैं, जो किसी से भी वैरभाव नहीं करते हैं, जिनकी साक्षात् भगवान् ने,अपने सदा सावधान कालचक्ररूप उत्तम शस्त्र के द्वारा उस२ अन्तर्यामीरूपसे प्रेरणा करेहुए, भद्रकाली आदि रूपों से रक्षा करी है और जो भगवान् के निर्भय चरणकमलकी शरण में गये हैं ऐसे भगवद्भक्त परमहंसों को,अपना सिर कटनेका समय आनेपरभी जो व्याकुलता नहींहोती है यह कुछ बड़े आश्चर्य की वार्त्ता नहीं है ॥ २० ॥ इति पञ्चम स्कन्धमें नवम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा–हे राजन् ! इसके अनन्तर एकसमय सिंधुसौवीर देशोंका राजा रहूगण,तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे कपिल मुनिके आश्रमको जारहाथा सो, इक्षुमती नदीके तटपर, पालकी उठानेवालोंके स्वामी को एक पालकी उठानेवालेकी आवश्यकता पड़ी तब दैववश तहां आकर पहुँचे हुए यह ब्राह्मणश्रेष्ठ जड़ भरतजी उसको दीखगए;सो उसने विचारा कि–यह पुरुष पुष्ट, तरुण और गठीले अङ्गोंवालाहै अतःबैल की समान वा गर्दभकी समान भार(पालकीका बांस) उठानेके योग्यहै,ऐसा विचार कर उसने पहिले बलात्कारसे(जबरदस्ती)बेगारमें पकड़ेहुए पुरुषोंके साथ इनको भी पकड़लिया:यह काम इनके योग्य नहीं तथापि वह महासमर्थ जड़भरतजी राजाकी पालकी उठाने लगे ॥ १ ॥ पालकी उठाकर चलते में हिंसा न होजाय, इसकारण वह श्रेष्ठ ब्राह्मण,बाणभर आगे की पृथ्वी को देखकर, जहां कीड़ा चींटी आदि नहींहै,ऐसा निश्चय होजानेपर चरण

हूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥ २ ॥ अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छङ्कितमनसस्तं विज्ञापयांबभूवुः ॥ ३ ॥ न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ॥ ४ ॥ सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरवि पष्टब्रह्म तेजसं जातवेदसमिव रजसावृतमतिराह ॥ ५ ॥ अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरु परिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान्सुचिरं नातिपीवा न संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो भवान्सखे नो एवापर एते संघट्टिन इति बहु विप्रलब्धोऽप्यविद्य-

---

बढ़ाकर चलते थे, इसकारण इनकी गति के साथ जब दूसरे पालकी उठानेवालों की गति (चाल) एकसमान नहीं हुई और पालकी टेढ़ी होनेलगी तब यह दशा देखकर, उन पालकी उठानेवाले पुरुषों से राजा रहूगण ने कहा कि—अरे पालकी उठानेवालो ! तुम पालकी को अच्छे प्रकार से लेचलो, क्या कारण है कि—तुम पालकी को टेढ़ी करके ले जारहे हो ? ॥ २ ॥ ऐसा स्वामी का निन्दायुक्त वचन सुनकर वह उठानेवाले 'हमें राजा दण्ड देगा ' मन में ऐसी शङ्का करके उनसे कारण कहने लगे कि—॥ ३ ॥ हे महाराज ! हम उन्मत्तों की समान नहीं चल रहे हैं किन्तु आप की आज्ञा के अनुसार ठीक रीति से पालकी को उठारहे हैं परन्तु यह अवही लगाया हुआ नया वाहक विना थके ही धीरे २ चलरहा है शीघ्रतासे नहीं चलता, इसके साथ पालकी उठाकर ले चलने को हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४ ॥ इसप्रकार उन दीन वाहकों का कथन सुनकर ' संसर्ग से एक का ही दोष उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले सबही पुरुषों को दोषदायक होताहै ' ऐसा निश्चय करके वह राजा रहूगण, यद्यपि वृद्धों की सेवा करने के प्रभावसे शान्तस्वभावथा तथापि इस विषय में, अपने क्षत्रिय स्वभाव के बलात्कार से बुद्धिके स्वाधीन न रहनेपर रजोगुणसे व्याप्त होजाने के कारण कुछएक क्रोध में भरकर, भस्म से ढके हुए अग्नि की समान जिनका ब्रह्म-तेज स्पष्ट नहीं दीखता है ऐसे उन ब्राह्मण जडभरतजी से कहनेलगा कि—॥ ५ ॥ अरे भाई ! बडे दुःख की बात है कि वास्तव में तू बहुत थकगया है ! बहुत देरी तक इकलाही तू बहुतसे मार्गपर्यन्त इस पालकी को उठाकर लायाहै ! अरे तू बहुत पुष्ट नहींहै और तेरे अङ्ग भी दृढ़ (मजबूत) नहीं है और बुढ़ापेसे भी तू बड़ा पीडित होरहाहै ! अरे मित्र ! तेरे इन दूसरे साथियों ने, पालकी मेरी समक्ष में उठाई ही नहीं होगी ! इस प्रकार व्यङ्ग्य वचनों से राजाने उनका बहुत हास्यकरा तथापि जिसमें पञ्चमहाभूत, इन्द्रियें, पुण्यपापरूप कर्म और

या विहितद्रव्यगुणकर्माशयैस्त्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थानविशेषेऽहं मम मेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्मभूतस्तूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह ॥ ६ ॥ अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किमिदं मरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥ ७ ॥ एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसाऽनुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पंडितमानिनं स भगवान्ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायामतिव्युत्पन्नमतिः स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ॥८॥ ब्राह्मण उवाच ॥ त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ॥ गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥

अन्तःकरण की रचना यह अविद्या के रचेहुए हैं ऐसे अपने हाथ पैर आदि आकारों से रचेहुए मिथ्या भूत अन्तिम शरीरपर 'यह मैं और यह मेरा' इसप्रकार का अभिमान जिन को है ही नहीं ऐसे वह ब्रह्मरूप जडभरत जी, मौन होकर पहिले की समान पालकी को उठाने लगे॥६॥तदनन्तर फिर पालकीके डगमगाने पर अति क्रोधमें भरा राजा रहूगण कह ने लगाकि-अरेक्या है ! क्या तू जीवित होकर ही मृतक समानहै!अरे तू मेरा अनादर करके मुझ स्वामीकी आज्ञाका उल्लंघन करताहै क्या ? अरे उन्मत्त ! जैसे यमराज,सकल प्राणियोंको शासन करतेहै तैसे ही अब मै तुझे दण्ड देकर शिक्षा देता हूँ,तब तू ठीक होगा ७ हे राजन् ! इस प्रकार बहुत कुछ अयोग्य भाषण करनेवाले, मैं राजा हूँ ऐसे अभिमानी, होने के कारण तथा अत्यन्त बढ़े हुए मद के कारण भगवान् के सब से प्रिय स्थान का (भक्तों का) तिरस्कार करनेवाले, अपने को ही पण्डित माननेवाले और भगवान् के भक्तों की दशा जानने के विषय में जिस की बुद्धि ने अभ्यास किया ही नहीं है ऐसे उस रहूगण राजा से,सकल प्राणियों के मित्र, आत्मा, ब्रह्मरूप में एकभाव को प्राप्त हुए और गर्व रहित वह भगवान् ब्राह्मण (जडभरतजी) कुछएक मुसकुराते हुए से कहनेलगे ॥ ८ ॥ ब्राह्मण ने कहा—हे वीर राजन् ! तूने मुझ से ' बडा थकगया है, इत्यादि जो कहा है सो यह प्रतीत होता हुआ सा मिथ्या नहीं है किन्तु ठीक ही है, क्योंकि—हे वीर ! यदि भार नामक कोई पदार्थ होता और वह उठानेवाले शरीर को लगता होता तथा यदि मुझे प्राप्त हुआ होता अर्थात् उस भार को उठानेवाले शरीर का यदि मुझ से कुछ सम्बन्ध होता तो तेरा यह व्यङ्ग्यभाषण मेरे ऊपर लगता, परन्तु भार और शरीर यह दोनों कहने योग्य नहीं हैं और उन का सम्बन्ध मुझ से कुछ नहीं है तैसे ही चलनेवालेको अमुक स्थान पर पहुँचाना और मार्ग यह दोनों यदि सत्य होते और उन का मुझ से सम्बन्ध होता तो तेरा यह कपटभाषण मुझे दुःखदायक होता, क्योंकि—वह कहना, पञ्चमहाभूत के समूहरूप

॥ ९ ॥ स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षुत्तृड्भयं कलिरिच्छा जरा च ॥ निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥ १० ॥ जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्नाद्यन्तवद्विकृतस्य दृष्टं ॥ स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥ ११ ॥ विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च पश्यामि यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ॥ क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथापि राजन्करवाम किं ते ॥ १२ ॥ उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ॥ अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन् राजयानमपि

शरीर को ही लेकर है आत्मा से उस का कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ ९ ॥ मोटापन, दुबलापन, रोग, मन की पीडा, क्षुधा, पिपासा, भय, कलह, इच्छा, वृद्धावस्था, निद्रा, ग्लानि, क्रोध, अहङ्कार, गर्व और शोक यह सब धर्म, देहाभिमान के साथ उत्पन्न होनेवाले पुरुष केही हैं,मुझ निरभिमानीसे उन धर्म्मोंका कोई सम्बन्ध् नहीं है॥१०॥हेराजन्!जन्म और मरण यह धर्म केवल मुझ को ही नहीं है किन्तु जितने परिणाम को प्राप्त होनेवाले पदार्थ हैं उन सब में ही यह धर्म नियम से देखने में आते हैं, क्योंकि-वह विकारी पदार्थ प्रतिक्षण में उत्पत्ति और नाश से युक्त रहते हैं, और यह जो कहा कि-मुझ स्वामी की आज्ञा को उल्लंघन करता है,सो हेस्तुति करने योग्य राजन् ! जहां सेव्यसेवकभाव नियम से निश्चित हो तहां ही स्वामी की आज्ञा और सेवक का काम करना, यह व्यवहार होसक्ता है नहीं तो नहीं होसक्ता; यदि तू कदाचित् राज्यभ्रष्ट होजाय और मुझे राज्य मिलजाय तो यह उलटा होजायगा या नहीं ? इस कारण थोडे से समय को सेव्य सेवकभाव मानना भ्रम ही है ॥११॥ यह राजा है और यह सेवक है इत्यादि बुद्धि का अवकाश व्यवहार के सिवाय और कहीं भी देखने में नहीं आता, तिस से यदि इस प्रकार की व्यवहारदृष्टि छोडकर वास्तविक विचार किया जाय तो उस में न कोई राजा है न कोई सेवक है, तथापि तुझे यदि राजापने का अभिमान होतो कहो मैं तुम्हारी कौनसी सेवा करूँ ? ॥ १२ ॥ हे वीर ! उन्मत्त, मत्त वा जडकी समान बाहिरी दृष्टि से वर्त्ताव करके भी वास्तव में ब्रह्मरूप को प्राप्त होनेवाले मुझे तू दण्ड देगा वा शिक्षा देगा तो उस से कौन लाभ है? औरयदि तेरे ही कहनेके अनुसार मैं मुक्त नहींहूँ और उन्मत्त वा जड हूँ तो भी तुम्हारा शिक्षा देना केवल पिसेहुए को पीसने की समान निरर्थक ही है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! जिन का, शरीर को आत्मा मानने का कारण (अविद्या) नष्ट होगया है और जिनका स्वभाव शान्त है ऐसे वह ऋषियों में श्रेष्ठ जडभरतजी, इसप्रकार रहूगण

तथोवाह ॥ १४ ॥ स चापि पांडवेय सिंधुसौवीरपतिस्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धयाऽधिकृताधिकारस्तद् हृदयग्रन्थिमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहुयोगग्रंथसंमतं त्वरयाऽवरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन् विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥ ॥ १५ ॥ कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः ॥ कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात् क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥ १६ ॥ नाहं विशङ्के सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दंडात् ॥ नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥ १७ ॥ तद्ब्रूह्यसंगो जडवन्निगूढविज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमन्ते मनसाऽपि भेत्तुम् ॥ १८ ॥ अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्वविदां मुनीनां परमं गुरुं वै ॥ प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत्साक्षाद्धरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥ १९ ॥ स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थमव्यक्तलिंगो विचरत्यपिस्वित् ॥ योगेश्वराणां गतिमंध-

को अनुवादरूप भाषण से उत्तर देकर, प्रारब्धकर्मों का भोग से ही क्षय करने के निमित्त राजाकी पालकी पहिले की समान उठानेलगे ॥ १४ ॥ हे परीक्षित ! सिन्धु सौवीरदेशों का राजा वह रहूगण भी,उत्तमश्रद्धा के कारण तत्त्व को जानने का अधिकारी था,वह हृदय की ग्रन्थि को दूर करनेवाला और अनेकों योग के ग्रन्थों का माननीय, जड़भरतजी का कथन सुनते ही अपने बड़े राजापने के अभिमान को त्यागकर शीघ्रता के साथ पालकी में से नीचे उतरपड़ा और उन ब्राह्मणके चरणोंमें शीस रख नमस्कार करके क्षमा मांगता हुआ कहने लगा ॥ १५ ॥ कि–हे भगवन् ! आप का वर्ण वा आश्रम कौन है सो समझने में नहीं आता, गुप्तरूपसे विचरनेवाले तुम कौन हो ? तुम यज्ञोपवीत धारण कररहे हो, सो क्या–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों में से कोई हो ? अथवा दत्तात्रेय आदिकों में के कोई अवधूत हो ? तुम कौनसे देश में रहनेवाले हो ? किसके कौन हो ? यहाँ किस कारण से आये हो ? यदि हमारा कल्याण करने ही को तुम यहां आये हो तो तुम शुद्ध सत्वमूर्त्ति महामुनि कपिलजी ही तो नहीं हो ? ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! मुझे इन्द्रकेवज्र का, रुद्र के शूलका, यमराज के दण्ड का तथा अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और कुबेर इन के शस्त्रोंका भी कुछ भय नहीं है.परन्तु ब्रह्मकुलके अपमान से मैं बहुतही डरताहूँ॥ १७॥ इसकारण कहिये तो सही–अपने अपरोक्ष ज्ञानरूप प्रभाव को छुपाकर अनन्त महिमा वाले, प्राणियों के सङ्गसे बचकर जड़की समान विचरनेवाले तुम कौन हो ! ॥ १८ ॥ 'मैं तो' शरण लेने योग्य वस्तु कौन है. यह बूझने के निमित्त, आत्मज्ञान को जाननेवाले मुनियोंके भी परम गुरु,ज्ञानकला का अवतार धारनेवाले साक्षात् श्रीहरि भगवान् कपिल मुनिजी के आश्रम को जाता हूं ॥ १९ ॥ क्या वह कपिल महामुनिजी तुम लोक की दशा देखने

बुद्धिः कथं विचक्षीत गृहोनुबंधः ॥ २० ॥ दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो मे भ-
र्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये ॥ यथाऽसतोदानयनाद्यभावात्समूल इष्टो व्यवहारमार्गः
॥२१॥ स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरंधिः॥ देहेंद्रियास्वा-
शयसान्निकर्षात्तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥२२॥ शास्ताऽभिगोप्ता नृपतिः प्र-
जानां यः किंकरो वै न पिनष्टि पिष्टम् ॥ स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य यदीहमानो
निजहात्यघौघम्॥२३॥ तन्मे भवान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य॥ कृपीष्ट

के निमित्त अपना रूप गुप्त करके विचररहे हो ? घरमें आसक्त होनेके कारण विवेकहीन हुआ पुरुष, योगेश्वरों की गति को कैसे जान सक्ता है ? ॥ २० ॥ ऐसा प्रश्न करके वह राजा रहूगण, उनके कहेहुए उत्तर में शङ्का करता है कि–मुझे श्रम नहीं होता है, ऐसा जो तुमने कहा सो मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि–जैसे मुझे युद्ध आदि कर्म से परिश्रम प्रतीत होनेलगता है तैसे ही भार उठानेवाले को और चलानेवाले तुम को भी श्रम होता होगा ऐसा अनुमान करना चाहिये; और यह केवल व्यवहारमात्र है इस में सत्य कुछ नहीं है ऐसा जो तुमने कहा सो यह व्यवहार का मार्ग (प्रपञ्च) मूलकारण सहित सत्य ही दीखता है, क्योंकि–असत् वस्तु से व्यवहार नहीं चलसक्ता, यदि घटको असत्(खोटा) मानाजाय तो उससे जललाना आदि कार्य कैसे होगा?अर्थात् कदापि नहीं होगा ॥२१॥ जैसे चूल्हेपर बटलोई रखकर उस के नीचे अग्नि जलानेपर, उस अग्नि से, पहिले वह बट लोई तप्त (गरम) होती है फिर उस में का जल तपता है तदनन्तर तण्डुल बाहर से और भीतर से सीजते हैं तैसे ही, देह, इन्द्रियें, प्राण, और मन के सम्बन्ध से क्रम २ से उपाधि के धर्म पुरुप के ऊपर आकर पहुँचते हैं उस से पुरुप को संसार प्राप्त होता है अर्थात् उष्णता से शरीर को ताप पहुँचते ही इन्द्रियें तप्त होती हैं तदनन्तर प्राणों को ताप पहुँ-चता है फिर मन को ताप होता है और अन्त में परमात्मा के अंशभूत इस जीव को भी ताप पहुँचता है ॥२२॥ और तुम्हारे कहने के अनुसार यदि सेव्यसेवकभाव को अशा-श्वत (थोड़े ही काल में नाश होनेवाला) मान लें तब भी, जिस समय जो राजा होता है उस समय वह प्रजाओं को शिक्षा देनेवाला और रक्षा करनेवाला होता ही है, उन्मत्त को शिक्षा देना यदि पिष्टपेषण (निरर्थक) ही हो तो जो भगवान् का दास होगा वह कदापि पिष्टपेषण की समान निरर्थक कार्य करेगा ही नहीं, क्योंकि–वह उन्मत्त आदिकों को शिक्षा देय और यदि उस से उन्मत्त आदिकों का उन्मत्तपना नहीं जाय तब भी वह शिक्षा देनारूप स्वधर्म से भगवान् की आराधना करनेवाले उस पुरुप के सकल पाप नष्ट होजाते हैं ॥ २३ ॥ इस कारण हे दुःखितों के हितकर्त्ता ! यद्यपि आप का कहना मुझे उलटा प्रतीत होता है तथापि राजापने के अभिमान से उन्मत्त होकर तुम समान साधुओं

मैत्रीदृशार्तबन्धो यथा तरे सदवध्यानमंह ॥२४॥ न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ॥ महद्विमानात्स्वकृताद्धि मादृङ्नङ्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥२५॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥ छ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अकोविदः कोविदवादवादान् वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ॥ न सूरयो हि व्यवहारमेतं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥ १ ॥ तथैव राजन्नुरुगार्हमेधवितानविद्योरुविजृम्भितेषु ॥ न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ॥ २ ॥ न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाचः समासन् ॥ स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥ ३ ॥ यावन्मनो रजसा पूरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वाऽनुरुद्धम् ॥ चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरङ्कुशं कुशलं चेतरं वा ॥ ४ ॥ स वासनो-

के अपमान करने का दोष मेरे ऊपर आता है, इस कारण तुम मेरे ऊपर कृपादृष्टि करो, जिस से कि—मैं सत्पुरुषों के अपराधरूप दोष से छूटूँ ॥२४॥ जगत् के हितकारी, मित्र तथा सब में समानभाव रखने के कारण किसी प्रकार का भी अभिमान न रखनेवाले तुम में यद्यपि सुखदुःखादि विकार नहीं हैं तथापि अपने करे हुए सत्पुरुषों के अपमान से मुझ सा मनुष्य तो क्या प्रत्यक्ष त्रिशूलधारी शिव जी सा समर्थ पुरुष भी तत्क्षण नष्ट होजायगा इस में कुछ सन्देह नहीं है ॥२५॥ इति पञ्चमस्कन्ध में दशम अध्याय समाप्त॥*॥ ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! रहूगण ! तू ज्ञानमार्ग का तत्त्व न जानकर भी, ज्ञानमार्ग का तत्त्व जाननेवाले पुरुष की समान वार्त्ता करता है, इस से तू बड़े विद्वानों की मण्डली में श्रेष्ठ नहीं माना जायगा, क्योंकि—जो पण्डित हैं वह—तुम्हारे सत्यरूप से कहे हुए इस लौकिक व्यवहार का, तत्वविचार की बराबरी से कभी उच्चारण भी नहीं करते हैं किन्तु इस व्यवहार को अज्ञानकल्पित कहते हैं इस कारण यह सत्य नहीं है ॥१॥ हे राजन् ! ऐसे ही वैदिक कर्म का व्यवहार भी सत्य नहीं है क्योंकि—गृहस्थाश्रम सम्बन्धी यज्ञ का फैलावरूप विद्या में पूर्ण रीति से भरे हुए वेदवादों में भी प्रायः शुद्ध (हिंसारहित) और निष्काम तत्त्ववाद यथार्थरूप से प्रकाशित नहीं होता है ॥२॥ यदि कहो कि—वेदान्त शास्त्र को सुननेवाले पुरुष की भी व्यवहारिक कर्मों में प्रवृत्ति होती है फिर उस व्यवहारको मिथ्या कैसे कहाजाय? तो उसपर कहते हैं कि—गृहस्थाश्रम में करेहुए कर्मों से प्राप्त होनेवाला सुख, स्वप्न के सुख की समान त्यागने योग्य है, जो ऐसा अनुमान अपने आप न करसके उस पुरुष को उत्तम प्रकार से तत्त्वबोध कराने को अतिश्रेष्ठ उपनिषद्वाक्य भी समर्थ नहीं होंगे ॥३॥ जबतक मनुष्य का मन, रजोगुण सत्वगुण और और तमोगुण के वशमें रहता है तबतक वह मन, स्वतन्त्रता से किसी को कुछ न गिनताहुआ ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की सहायता करके पुरुष से भले और बुरे कर्मों का विस्तार करवाता है ॥ ४ ॥ फिर वास-

त्मा विषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ॥ बिभ्रत्पृथङ्नामभि रूपभेदमन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥ ५ ॥ दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ॥ आलिंग्य मायारचितान्तरात्मा स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥ ६ ॥ तावानयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः॥ तस्मान्मनो लिंगमदो वदन्ति गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥ ७ ॥ गुणानुरक्तं व्यसनाय जंतोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ॥ यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ॥ पदं तथा गुणकर्मानुबद्धं वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ॥ ८ ॥ एकादशासन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पंच धियोऽभिमानः ॥ मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति हैकादश वीर भूमीः॥ ॥ ९ ॥ गन्धाकृतिः स्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ॥ एकादशं

नाओं के साथ आत्मरूप, विषयों में आसक्त, गुणों से चलताहुआ, काम आदिरूप से परिणाम को प्राप्त होनेवाला, भूत इन्द्रियरूप सोलह कलाओं में मुख्य और भिन्न २ नामों के साथ देव मनुष्य आदि रूपों को धारण करनेवाला वह मन, उन देवता तिर्यक् आदि के शरीरों से जीव की उत्तमता और अधमता को बढ़ाताहै ॥ ५ ॥ तदनन्तर संसारचक्र में छलने वाला और माया का रचाहुआ वह अन्तःकरण, अपने में रहनेवाले जीवात्माको मलिन करके, दुःख, सुख वा तीसरे ही किसी (मोहरूप) कालवश होनेवाले फल को उत्पन्न करता है ॥ ६ ॥ जबतक मन का यह क्रम (सिलसिला) चलतारहता है तबतक प्रकाश मान होनेवाला यह जागते में का स्वप्नरूप व्यवहार, निरन्तर क्षेत्रज्ञ (जीव) को दीखता है, इसकारण इस मन को ही त्रिगुणमय अधम संसार का और त्रिगुणातीत उत्तम मोक्ष का कारण कहते हैं ॥ ७ ॥ मन विषयों में आसक्त होनेपर जीव को संसार प्राप्त होने का कारण होता है और वही मन, निर्गुण होयतो जीव को मोक्ष प्राप्त होने का कारण होता है; जैसे घृत की भीगीहुई बत्ती को भक्षण करनेवाला दीपक, जबतक घृत से युक्त रहता है तबतक काजलयुक्त ज्वाला को धारण करता है और घृत का क्षय होते ही अपने शुद्ध भास्वरस्वरूप को अथवा महाभूतरूप तेजोरूप में जा मिलता है, तैसे ही मन, विषयों में और विषय प्राप्ति के अनुकूल कर्मों में आसक्त होनेपर ही अनेकों प्रकार की वृत्तियों को स्वीकार करता है और निर्गुण होते ही महतत्त्व में जा मिलता है ॥ ८ ॥ हे वीर ! रहूगण ! पाँच कर्मेन्द्रियें पाँच ज्ञानेन्द्रियें और एक अभिमान, यह ग्यारह मन की वृत्ति हैं, उन वृत्तियों के आधाररूप पाँच सूक्ष्मभूत पाँच कर्म और एक शरीर, यह ग्यारह विषय हैं ऐसा कहतेहैं॥९॥ उनके नाम—गन्ध-रूप-स्पर्श-रस और शब्द यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषयहैं मल त्याग, सम्भोग, गमन, भाषण और कुशलता (देनालेना) यह पाँच कर्मेन्द्रियोंके

स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥ १० ॥ द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैरेकादशामी मनसो विकाराः ॥ सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥ ११ ॥ क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीर्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः ॥ आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः ॥ नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमाययात्मन्यवधीयमानः ॥ १३ ॥ यथाऽनिलः स्थावरजंगमानामात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ॥ एवं परो भगवान्वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥ १४ ॥ न यावदेतां तनुभृन्नरेंद्र विधूय मायां वयुनोदयेन ॥ विमुक्तसंगो जितषट्सपत्नो वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥ १५ ॥

विषयहै; तैसे ही 'यह मेरा भोगस्थानहै' इस बुद्धिसे जिसको स्वीकार कियाजाताहै वह शरीर, ग्यारहवें अभिमान का विषयहै ऐसा कहते हैं, परन्तु कोई पुरुष, अहङ्कार, मनकी बारहवीं वृत्ति है ऐसा मानकर, शरीर ही शय्यानामक उसका बारहवां विषयहै ऐसा कहते हैं, क्योंकि—उसशरीर में अहङ्कार सहित जीव शयन करता है, अतएव उस को पुरुष कहतेहैं॥ १०॥ मनकी यह ग्यारह वृत्तियें, विषय. स्वभाव, सत्कार, कर्म और काल से परिणामको प्राप्त होकर पहिले सैंकड़ों प्रकार की, फिर सहस्रों प्रकार की और तदनन्तर करोड़ों प्रकारकी होती हैं, यह सब क्षेत्रज्ञ आत्मा की सत्ता से ही सत्ता पाती हैं, वह अपने आप वा परस्पर के आश्रय से असत् नहीं हैं ॥ ११ ॥ मन निर्गुण होय तो तत्त्व में जाकर मिलजाताहै ऐसा जो कहा सो तत्त्व यह है कि—मायारचित जीवका उपाधिभूत और संसारबन्धन का कारण अशुद्धकर्म करनेवाला जो मन उसके प्रवाहरूप से निरन्तर रहनेवाली भी यह वृत्तियें जागृति और स्वप्न इन दो अवस्थाओं में प्रकट होती हैं और सुषुप्ति अवस्था में लीन होजाती हैं, इन तीनों अवस्थाओं का साक्षी यह क्षेत्रज्ञ आत्मा (त्वं पदार्थ जीव) देखता रहता है वहही तत्त्व है ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ दो प्रकारका है-एक त्वं पदार्थजीव और दूसरा तत्पदार्थ ईश्वर है, इन में से त्वं पदार्थ का वर्णन करचुके अब तत्पदार्थ का वर्णन करते हैं—हे राजन्! वह क्षेत्रज्ञ, व्यापक, जगत् का कारण, पूर्ण, प्रत्यक्ष, स्वप्रकाश, जन्म रहित, ब्रह्मादिकों का नियन्ता, और अपने वशीभूत माया से जीवका नियन्ता होकर रहने वाला, नारायण, भगवान् वासुदेव रूप है ॥ १३ ॥ जैसे वायु, बाहर रहकर भी सकल ही स्थावर जङ्गम प्राणियों के शरीरों में प्राणरूपसे प्रवेश करके उनको वश में करता है तैसे ही प्रपञ्चातीत, अन्तर्यामी, परमात्मा, भगवान् वासुदेव, इस जगत् में प्रविष्ट होकर उसको वश में करते हैं ॥ १४ ॥ हे राजन्! देहधारी प्राणी, जबतक ज्ञानकी उत्पत्ति से इस माया को दूर झाड़कर, सकल सङ्गों को त्यागकर और काम आदि छःशत्रुओं को जीतकर आत्मतत्त्व को नहीं जानता है तबतक इस संसार में भ्रमता रहता है ॥ १५ ॥ तथा जबतक

न यावदेतन्मन आत्मलिंगं संसारतापावपनं जनस्य॥ यच्छोकमोहामयरागलो-
भवैरानुवन्धं ममतां विधत्ते ॥ १६ ॥ भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्ये-
धितमप्रमत्तः ॥ गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम्॥१७॥
इतिश्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे रहूगणसम्वादे एकादशोऽध्यायः॥११॥
रहूगण उवाच ॥ नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ॥ नमो-
ऽवधूतद्विजवंधुलिंगनिगूढनित्यानुभवाय तुभ्यं ॥ १ ॥ ज्वरामयार्तस्य यथागदं
सन्निदाघदग्धस्य यथा हिमांभः ॥ कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं
मे ॥२॥ तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ॥ अध्यात्म-
योगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥ ३ ॥ यदाह योगेश्वर दृश्य-
मानं क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ॥ न ह्यंजसा तत्त्वविमर्शनाय भवानमुष्मिन्

यह जीव, अपने उपाधिरूप मन को ' यह संसाररूप तापके वोने का खेतहै ऐसा' नहींजानता है तवतक ही संसार में भ्रमता रहता है और वह मन, तवतक ही उसको शोक. मोह, रोग, प्रीति, लोभ और वैर आदि का सम्बन्ध तथा ममता प्राप्त कराता है ॥ १६ ॥ इस कारण हे राजन् ! तू सावधान होकर, गुरुरूप श्री हरिके चरणों की उपासनारूप शस्त्र को धारण करके ' वास्तव में मिथ्या होनेपरभी उपेक्षा करने से बढ़कर आत्मस्वरूपको चुरानेवाले इस अपने 'महावली मनरूप शत्रुका वधकर अर्थात् गुरुरूप श्रीहरि की सेवाकरके अपने मनको जीत ॥ १७ ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में एकादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ रहूगण ने कहा--हे अवधूत ! तुम साक्षात् ईश्वर हो,और लोकोंकी रक्षा करने के लिये यह शरीर धारण करा है, तुम अपने स्वरूपभूत परमानन्द के प्रकाश से अपने शरीर को तुच्छ मान रहे हो, तुम्हें मैं वार २ नमस्कार करता हूँ, अधम ब्राह्मण का वेष धारकर अपना नित्य अनुभव गुप्त रखनेवाले आप को नमस्कारहो ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे ज्वररोग से पीड़ितहुए पुरुप को स्वादु औपध मिलजाय, अथवा जैसे ग्रीष्म ऋतु में गरमी से तप्तहुए प्राणी को शीतल गङ्गाजल मिलजाय तैसे ही, जिस की विवेक दृष्टि को निन्दित शरीर में रहनेवाले अभिमानरूप सर्प ने डसलिया है ऐसे मुझको, यह आप का भाषण अमृत की समान औपधि रूप मिलगया है ॥२॥ इसकारण मैं अपने मन में के संशयरूप अर्थ (प्रयोजन) को पीछे कहूँगा, परन्तु अव पहिले तुम्हारे अध्यात्मतत्त्व से गुथेहुए प्रथम के भाषण-को मैं जिसप्रकार समझजाऊँ तैसे स्पष्ट रीति से सरल कर के कहिये,इस को सुन ने के लिये मेरे चित्त को वड़ी उत्कठा होरही है ॥ ३ ॥ हे योगेश्वर ! भारउठाने आदि कर्म का प्रत्यक्ष दीखनेवाला श्रम आदिफल, चलतेहुए सत्य व्यवहार का कारण हो-करभी वह सत्य नहीं है किन्तु वह केवल व्यवहारका आधारमात्र है वह प्रत्यक्ष तत्त्व विचार

भ्रमते मनो मे ॥ ४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अयं जनो नाम चलन्पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ॥ तस्यापि चांघ्र्योरधि गुल्फजङ्घाजानूरुम-ध्योरशिरोधरांसाः ॥ ५ ॥ अंसेऽधि दार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्य-पदेश आस्ते ॥ यस्मिन्भवान् रूढनिजाभिमानो राजाऽस्मि सिंधुष्विति दु-र्मदान्धः ॥ ६ ॥ शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्विष्ट्यो निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ॥ जनस्य गोप्ताऽस्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥ ७ ॥ यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ॥ तन्नामतोऽन्यद्व्यवहार-मूलं निरूप्यतां सत्क्रिययानुमेयम् ॥ ८ ॥ एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तमसन्निधा-नात्परमाणवो ये ॥ अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो वि-

करने को समर्थ नहीं है,ऐसा जो तुमने कहा सो उस में मेरामन भ्रमता है ॥४॥ ब्राह्मण (जड़ भरत) ने कहा—हेराजन् ! जो पृथ्वी का विकार शरीर है वही किसी कारण से पृथ्वीपर विचरने लगता है तब उस को ही भार उठानेवाला मनुष्य इत्यादि नाम प्राप्त होते हैं और जो फिरता नहीं है उस को पाषाण आदि नाम प्राप्त होते हैं, इतना ही भेद है परन्तु वह देहभी है जड़ इसकारण उसको भी पत्थरकी समान वा भार का परिश्रम कुछभी नहीं होताहै और उस पृथ्वी के विकाररूप देह के भी चरणों पर गुल्फ, उनपर सांतल, उनपर घुटने, उनपर जङ्घा और जंघाओंपर कमर, उसपर वक्षःस्थल, उसपर ग्रीवा और ग्रीवापर कन्धे बनेहुए है ॥ ५ ॥ और कन्धोंपर काष्ठ की बनीहुई पालकी है और उस पालकी में सौवीर देश का राजा रहूगण इस नामका मट्टी का पुतला बैठा है उस पुतले को तू 'यह मेरा शरीर है, ऐसा अभिमान करता है, मैं सिन्धु देश का राजा हूँ, ऐसे दुष्ट मद से अन्ध होरहा है ॥ ६ ॥ अरे ! जिन के विषय में शोक होता है, ऐसे इन अति कष्ट भोगकर दीनहुए पालकी उठानेवालों को बेगार में पकड़कर कष्ट देनेवाला तू, निर्दयी और उद्धत है, इस कारण 'मैं लोकों की रक्षा करनेवाला हूँ' ऐसी अपनी प्रशंसा करनेवाला तू, वृद्धजनों (सत्पुरुषों) की सभा में शोभा नहीं पावेगा ॥ ७ ॥ जो हम इस स्थावर जङ्गमरूप जगत् की उत्पत्ति और प्रलय पृथ्वीपर होती हैं' ऐसा जानते हैं तो नाममात्र दूसरे व्यवहार के कारणसे, 'कार्य होताहै' इसकारण वह सत्यहै, क्या ऐसा अनुमान करना ठीकहै ? सो कहो, श्रुति ने भी ऐसा ही वर्णन करा है॥८॥यदि ऐसा समझो कि—पृथिवी सत्य होगी, सो भी नहीं पृथिवी शब्दसे जो पदार्थ कहाजाता है वह भी, इसी प्रकार मिथ्या ही कहा है; क्योंकि न दीखनेवाले परमाणुओं में पृथ्वी का लय होता है, और जिन परमाणुओं के समूह से पृथ्वीरूप यह विशेष आकार बना है, वह परमाणु भी सत्य नहीं हैं किन्तु वह भी वादी पुरुषों के अज्ञान से मन में कल्पित हैं अर्थात् पृथ्वीरूप कार्य को सिद्ध करने के

शेषः ॥ ९ ॥ एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ॥ द्रव्यस्वभावाशयकालकर्मनाम्नाऽजयावेहि कृतं द्वितीयम् ॥ १० ॥ ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥ ११ ॥ रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ॥ नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥ १२ ॥ यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ॥ निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥ १३ ॥ अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ॥ आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥ ॥ १४ ॥ सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ॥ अथो

निमित्त वादविवाद करनेवालों की मण्डली ने उन परमाणुओं की कल्पना करली है परन्तु उस का मूल अज्ञान ही है, क्योंकि-यह प्रपञ्च जब भगवान् की माया का खेल है तब परमाणुओं की कल्पना कैसे सत्य होसक्ती है? ॥ ९ ॥ इस प्रकार दूसरे भी जो कुछ दुर्बल, मोटे, छोटे, बडे, कारण, कार्य, चेतन, जड़, ऐसे प्रतीत हों वह सब भी, विषय, स्वभाव, संस्कार, काल और कर्म इन नामों से प्रतीत होनेवाली भगवान् की माया के ही रचे हुए हैं, ऐसा जानो ॥ १० यदि कहो कि-सत्य क्या है तो सुनो-परमार्थरूप ज्ञान ही सत्य है, वह ज्ञान अति शुद्ध, एक, भीतरी बाहिरी भेद से रहित, परिपूर्ण, अन्तर्मुख और निर्विकार है, उसका ही भगवान् नाम है और विद्वान् उस को ही वासुदेव कहते हैं।११। हे राजन् रहूगण ! यह ज्ञान, परम समर्थ साधुओं के चरणों की धूलि में स्नान करे विना न तप से मिलता है, यज्ञ से-अन्न के दान से वा गृहस्थाश्रम में रहकर बहुत से परोपकार करने से भी नहीं मिलता है, वेद का अभ्यास करने से अथवा जल की अग्नि की वा सूर्य की उपासना करने से भी प्राप्त नहीं होता है किन्तु वह केवल परम समर्थ साधुओं की चरणधूलि में स्नान करने से ही अर्थात् उन की कृपा प्राप्त करने से ही प्राप्त होता है, दूसरे किसी भी साधन से प्राप्त नहीं होता है ॥ १२ ॥ क्योंकि-जिन सत्पुरुषों में-विषयसुखकी कथाओं को दूरकरनेवाला, उत्तमकीर्त्ति भगवान् का गुणानुवाद निरन्तर वर्णन कियाजाता है, वह, श्रवण करनेपर मुमुक्षु पुरुष की बुद्धि को निर्मल करके वासुदेव भगवान् की ओर को लगाता है ॥ १३ ॥ विषयों में आसक्ति करनेवाला मनुष्य, योगमार्ग से भ्रष्ट होजाता है, इस वार्त्ता का वर्णन करते हुए 'गुप्तरूप से तुम कौन विचार रहे हो, इस राजाके प्रश्न का उत्तर कहते हैं कि-हे राजन् ! मैं पहिले भरतनामक राजा था और देखीहुई तथा सुनीहुई वस्तुओंपर की आसक्ति के बन्धन को तोडकर भगवान् की आराधना में लगारहता था, एक हरिण का संग होजाने से मेरे साधन में हानिहोकर मैं दूसरे जन्म में हरिण हुआ ॥ १४ ॥ परन्तु हे वीर ! उस भरत जन्म में श्रीकृष्णजी का पूजन करने

अहं जनसंगादसङ्गो विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥ १५ ॥ तस्मान्नरोसंगसुसंगजातज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ॥ हरिं तदीहाकथनश्रुतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ॥ १६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगणसम्वादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजस्तमःसत्वविभक्तकर्मदृक् ॥ स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन् भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥ यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ॥ गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥ २ ॥ प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ॥ क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥ ३ ॥ निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अटव्यां ॥ क्वचिच्च वात्योत्थि-

के कारण भगवान् की कृपा से प्राप्त हुई स्मरण शक्ति ने, हरिण के जन्म में भी मुझे नहीं त्यागा: इस कारण अब मैं प्राणियों के सङ्ग से भय मानता हुआ, अपने स्वरूप को प्रकट न करके लोक में विचरता रहता हूँ ॥ १५ ॥ ऐसी मेरी दशा है, इस कारण मनुष्य, सकल सङ्गों को छुटानेवाले साधुओं के समागम से प्राप्त हुए ज्ञानरूप खड्ग से इस जन्म में ही मोहरूप बन्धन को काटकर, भगवान् की लीलाओं का वर्णन और कीर्त्तन करे तब आत्मा साक्षात्काररूप स्मृति मिलनेपर वह मनुष्य संसारमार्ग के परलेपाररूप श्रीहरि को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में द्वादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि—हे राजन् रहूगण ! जिस को माया ने, दुस्तर प्रवृति मार्ग में पहुँचादिया है, जो रज,तम और सत्व इन तीन गुणों के विभाग करेहुए कर्मों को ही अपना कर्त्तव्य देखनेवाला और धन मिलने के कामों में तत्पर है ऐसा यह जीव समूहरूप व्यापारियों का टांडा फिरते फिरते, जैसे वैश्यों का टांडा धन पाने की इच्छा से फिरते में भूलकर किसी भयङ्कर वन में जापड़ता है तैसे ही यह, संसाररूप वन में पड़ाहुआ है, तिस वन में इस को सुख नहीं मिलता है ॥ १ ॥ हे राजन् ! जिस संसारवन में यह छः इन्द्रियेंरूप चोर, जिस का स्वामी (बुद्धि) खोटा है ऐसे टांडे को लूटलेते हैं अर्थात् उन के धर्म में लगने योग्य धन को उपभोग के मिष से हर लेते हैं; जहां गीदड़ (स्त्री पुत्र आदि) उन असावधान व्यापारियों के समीप जाकर, जैसे भेड़िये भेड़ को घेरकर इधर उधर को लेजाते हैं तैसे ही उन को खैंचते हैं ॥ २ ॥ किसी समय बहुतसी लता, तृण और झाड़ों के कारण (काम्यकर्मों के कारण) दुर्गमस्थान (गृहस्थाश्रम) में, तीक्ष्ण डांस और मच्छरों से पीड़ा पाता है; कभी कभी गन्धर्व नगर (शरीर) देखता है और कभी कभी वह अति चञ्चल चिनगारी की समान पिशाच को (सुवर्ण को) देखता है ॥३॥ हे राजन् ! किसी समय

तर्पांसुधूम्रा दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः ॥ ४ ॥ अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितांतरात्मा ॥ अपुण्यवृक्षाञ्छ्रयते क्षुधाऽर्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥ ५ ॥ क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चालषते निरंधः ॥ आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ॥६॥ शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः शोचन्विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ॥ क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्त्तं ॥ ७ ॥ चलन् क्वचित्कंटकशर्कराङ्घ्रिर्नगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते ॥ पदे पदेऽभ्यंतरवह्निनाऽर्दितः कौटुंबिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥ ८ ॥ क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो नावैति किंचिद्विपिनेऽपविद्धः ॥ दष्टः स्म शेते क्व च दंदशूकैरन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ॥

इस की बुद्धि स्वयं ही घर, जल और धन की ओर को जाती है तब वह उस संसारवन में जिधर तिधर को दौड़ता फिरता है, कभी उस के नेत्र, धूलि से (स्त्री के शब्द से) भर जाते हैं, तब वह, आंधी के कारण उड़ी हुई धूलि से अन्धकारमय हुई दिशाओं को (कर्म के साक्षी दिग्देवताओं को) नहीं जानता है ॥४॥ कभी न दीखनेवाले झींगरों के कठोर शब्दों से (लोकनिन्दा से) उस के कानों को बड़ी पीड़ा होती है. कभी उलूकों के शब्दों से (शत्रुओं की दीहुई धमकियों से) उस के मन को दुःख होता है, कभी पापी वृक्षों का (अधर्म्मी पुरुषों का) आश्रय करता है, कभी २ मृगतृष्णा के जल की ओर को (निष्फल विषयों की ओर को) दौड़ता है ॥ ५ ॥ कभी सूखी हुई नदी में (इस लोक और परलोक में दुःख देनेवाले पाखण्डमार्ग में) घुसता है, और ठोकर लगकर गिर पड़ता है, तथा कभी अन्न न मिलने के कारण अपने बान्धवों से अन्न मांगता है, कभी वड़वानल (घर) में पड़कर अग्नि से (शोक से) सन्ताप पाता है, कभी राक्षस (राजे) उस के प्राण (धन) निकालते हैं तब खिन्न होता है ॥ ६ ॥ किसी समय शूर पुरुष (प्रतिवादी) उस का द्रव्य हरते हैं तो खिन्नचित्त होकर शोकाकुल और मोहित होता हुआ अन्त में मूर्छित होजाता है; कभी गन्धर्वनगर में (अपने पिता पुत्रादि की मण्डली में) प्रवेश करते ही मुहूर्त्तमात्र को सुखी सा होकर आनन्द में गोता लगाता है ॥ ७ ॥ कभी चलते में उस के चरणों में कांटे और कंकड़ी (विघ्न) लगते हैं कभी पर्वतपर चढ़ने की (यज्ञादि बडेभारी कर्म को करने की) इच्छा होनेपर, वह पूरी नहीं होती है तब खिन्नसा होकर रहजाता है तथा कुटुम्ब का पोषण करनेवाला वह पुरुष क्षण२ में जठराग्नि से पीडित होता हुआ कुटुम्बियों को दु ख देता है ॥ ८ ॥ कभी अजगर सर्प (निद्रा) का ग्रास कराहुआ वह प्राणी कुछभी नहीं जानता है, कभी लोक इसको प्रेततुल्य समझ कर वनमें छोड़देते हैं तब तहां सर्पों का (घातक दुर्जनोंका) काटा हुआ(पीडितकराहुआ)

॥ ९ ॥ कर्हि स्म चित्क्षुद्ररसान्विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः ॥ तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलभ्यमानो बलाद्विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ॥ १० ॥ क्वचिच्च शीतातपवातवर्षप्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते ॥ क्वचिन्मिथो विपणन्यच्च किंचिद्विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥ ११ ॥ क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन् शय्यासनस्थानविहारहीनः ॥ याचन्परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥ १२ ॥ अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्धवैरानुबन्धो विवहन्मिथश्च ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन्विपन्नः ॥ १३ ॥ तांस्तान्विपन्नान्स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ॥ आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥ १४ ॥ मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ॥ मृधे

वह अन्ध (ज्ञानहीन) होकर अन्धेरे कुएमें (मोहमें) पड़ता है ॥ ९ ॥ कभी क्षुद्र रसों को (परस्त्री आदि को) खोजने लगता है तब तहाँ की मधुमक्खियों से (उनके पतियों से) पीड़ा पाने पर दुःखित होता है; यदि कदाचित् तहाँ अतिक्लेश से उसको वह (स्त्री आदि) मिलजाएँ तो भी दूसरे ही आकर उसको बलात्कार से छीनकर ले जाते हैं और यदि उन छीननेवालों को भी जीत लेता है तो और तीसरेही आकर छीन लेजाते हैं ॥ १० ॥ किसी समय, वह शीत, उष्णता, वायु और वर्षा से अपनी रक्षा नहीं करसक्ता है, कभी २ परस्पर थोड़ा बहुत व्यापार करने लगताहै तो धनके व्यवहार में लोकों को धोखा देने लगता है. फिरतो उन लोकों से द्वेष होही जाता है ॥ ११ ॥ कभी २ तो वह उस संसारवन में धनहीन होजाता है तो उसको सोने को शय्या, बैठनेको आसन और रहने को घरभी नहीं रहने पर अन्यलोकों से मांगनेलगता है तबभी वह नहीं मिलते हैं तो लोकों की वस्तुओं के मिलजाने की अभिलाषा करने लगता है सो उन से अपमान पाता है ॥ १२ ॥ इसप्रकार परस्पर व्यवहार का सम्बन्ध होने से जिसका वैरभाव बढ़गया है ऐसा भी वह जनसमूह, परस्पर विवाह करके इस संसारवन में के मार्ग में विहार करनेपर अनेकों सङ्कट, धनका नाश और क्लेश आदि विघ्नों से मृतकसमान हो जाता है ॥ १३ ॥ इसप्रकार का भी वह व्यापारियों का टांडा उन२ मरण को प्राप्तहुए पुरुषों को तहाँ ही छोड़कर, नवीन २ होनेवालों को साथ में लेकर गया है सो आजतक लौटकर नहीं आता है; हे वीर ! उनमें का कोई एक समर्थ पुरुष भी, इस मार्ग से आगेजो मुक्तरूप योगमार्ग है उसमें जाकर नहीं पहुँचता है ॥ १४ ॥ जिन्होंने बड़े २ दिग्गजों को जीता है ऐसे शूर पुरुष भी, पृथ्वी के विषय में ' यह मेरी है, यह मेरी है' इसप्रकार का अभिमान करके परस्पर शस्त्रों का प्रहार करते २ युद्ध में मरण को प्राप्त होकर गिर पड़ते हैं, परन्तु वैरभावरहित संन्यासी जिस स्थान को जाते हैं उस स्थान पर जाकर वह

श्येयीरन्न तु तद्व्रजन्ति यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभियाति ॥१५॥ प्रसज्जति क्वापि लतोभुजाश्रयस्तदा श्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः ॥ क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्सख्यं विधत्ते बककङ्कगृध्रैः ॥ १६ ॥ तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविशन्नरोचयञ्छीलमुपैति वानरान् ॥ तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेन्द्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥ १७ ॥ द्रुमेषु रंस्यन्सुतदारवत्सलो व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने ॥ क्वचित्प्रमादाद्गिरिकन्दरे पतन्वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥ १८ ॥ अतः कथञ्चित्स विमुक्त आपदः पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिंदम ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो भ्रमज्जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥१९॥ रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ॥ असज्जितात्मा हरिसेवया शितज्ञानासि-

नहीं पहुँचते हैं ॥ १५ ॥ फिर सिंहावलोकनन्याय से अर्थात्–जैसे सिंह आगे को जाते हुए, मध्य में ही पीछेको फिरकर देखता जाता है तैसे ही संसारवन का वर्णन करते हैं यह जीवसमूह, कभी २ लताओं की छोटी २ डालियों का (स्त्रियों की भुजाओंका) आश्रय करके तिस लता का आश्रय करके रहनेवाले मधुर मधुर बोलनेवाले पक्षियों में (बालबच्चों में) अभिलाषा रखकर आसक्त होता है, कदाचित् किसीसमय सिंहों के समूह से (कालचक्र से) भयभीत होकर उस भयको दूरकरने के लिये बगुला, कङ्क और गिज्जनामक पक्षियोंके साथ (पाखण्डी पुरुषोंके साथ) मित्रता करता है ॥ १६ ॥ फिर उन के धोखा देनेपर, उनमें रहकर कोई फल नहीं है, ऐसा जानकर हंसों के (ब्राह्मणों के) कुल में प्रवेश करने की युक्ति करता हुआ उस कुल को भी (आचार कठिन होने के कारण) अप्रिय समझकर वानरों में (भ्रष्ट शूद्रों में) जाता है, उन की जाति के योग्य यथेष्ट मैथुन आदि क्रीड़ा करने से इन्द्रियों को अत्यन्त सुख देकर परस्पर का मुख देखने से आयु की अवधि को (मृत्युकाल को) भूलजाता है ॥ १७ ॥ वृक्षों पर (घरों में) क्रीड़ा करने की इच्छा से स्त्रीपुत्रादिकों में आसक्त और मैथुन की इच्छा से दीन होता हुआ अपने बन्धनों के तोड़ने को असमर्थ होता है; किसी २ समय असावधान होने के कारण पर्वत की गुफा में (रोगादि दुःख में) पड़ने पर उस गुफा में के हाथी से (मृत्यु से) डरकर ऊपर ही लता को पकड़कर (पुरातन कर्मों के आश्रय से) रहता है १८ हे शत्रुदमन रहूगण ! इस सङ्कट से कदाचित् वह दैवयोग से छूटभी जायतो फिर उन व्यापारियों के टाँडे में प्रवेश करके पहिलेकी समान रमजाता है, सार यह है कि–इसमार्ग में माया जिस को पहुँचा देती है वह भ्रमताहुआ कोई भी प्राणी हो अपने परम पुरुषार्थ को नहीं जानता है ॥ १९ ॥ हेरहूगण ! तूभी इसीमार्ग में पड़ाहुआ है इसकारण ऐसा करकि–प्राणियों को शिक्षा करने का कार्य छोडकर सब से मित्रता कर, और मन को

मादाय तेरातिपारम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ॥ न यद्धृषीकेशयशःकृतात्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥ २१ ॥ न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ॥ मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥ २२ ॥ नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आवटुभ्यः ॥ ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षिसुतः सिन्धुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणीमिमां विचचार ॥ २४ ॥ सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याऽध्यारोपितां देहात्ममतिं विससर्ज

कहीं भी आसक्त न होने दे तथा भगवान् की सेवा करने से तीक्ष्णहुए ज्ञानरूपी खड्ग को लेकर कामादि शत्रुओं को जीत इस संसारमार्ग को तरकर परली पार निकलना २० राजा ने कहा–अहो ! यह मनुष्य जन्म ही सब जन्मों में कल्याणकारी है, स्वर्ग आदि लोकों में भी देवता आदि जन्मों से कौन फल है ? क्योंकि–उन जन्मों में, भगवान् की कीर्ति से जिन्हों ने अपने अन्तःकरण शुद्ध करलिये हैं ऐसे तुमसमान सत्पुरुषोंका बहुत सा समागम नहीं होता है ॥ २१ ॥ निरन्तर सेवा करेहुए तुम्हारे चरणकमल की रज से निष्पाप हुए पुरुष को निःसन्देह भगवान् की निर्मल भक्ति प्राप्त होगी;क्योंकि-दोघड़ी को भी तुम्हारा समागम होजाने से, कुतर्कों के द्वारा दृढ़ता से जमाहुआ मेरा अज्ञान नष्ट होगया ॥ २२ ॥ ब्रह्मज्ञानी किस स्वरूप में विचरते हैं सो विदित नहीं होता है उन सब को नमस्कार करके सब के कल्याण की प्रार्थना करते हैं कि–वृद्ध पुरुषों को नमस्कार हो, छोटे बालकोंको नमस्कारहो,तरुण पुरुषोंको नमस्कार हो,बटु आदि सकल स्वरूप धारणकरनेवाले सत्पुरुषों को नमस्कार हो,जो ब्रह्मज्ञानी पुरुष अवधूतों का स्वरूप धारकर पृथ्वीपर विचरते हैं उन से राजाओं का कल्याण हो ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हेउत्तरा के पुत्र इस प्रकार परमप्रभावशाली उन ब्रह्मर्षि ने (जडभरतजी ने) अपना अपमान करने वाले भी, सिन्धुदेश के स्वामी राजा रहूगण को परम दयालुता से आत्मतत्त्व का उपदेश करके, उस राजा के सदय अन्तःकरण से चरणों में प्रणाम करनेपर, भरेहुए समुद्र की समान आनन्द से परिपूर्ण वह जडभरतजी, मन की इन्द्रियोंरूप तरङ्गों को शान्त करके पृथ्वीपर विचरते हुए चलेगए ॥ २४ ॥ उस राजा रहूगण ने भी, सज्जन के समागम से परमात्मा का तत्त्व जानकर उसीसमय, अपने में अविद्या की रचीहुई ' देह ही आत्मा है ' इस प्रकार की बुद्धि त्यागदी; हे राजन् भगवान् का आश्रय करनेवाले जडभरतजी

एवं हि नृप भगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाऽभिहितः पारोक्ष्येण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः अथ तद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥ २६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रयोऽदशोऽध्यायः ॥१३॥ छ ॥ स होवाच ॥ य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे ॥ यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥ १ ॥ तद्यथा पुरुषस्य धनं य-

का समागम करनेवाले उस राजा रहूगण को तत्काल शरीर के अहङ्कार को त्यागने की शक्ति प्राप्त होगई ॥ २५ ॥ राजा ने कहा–हे परमभगवद्भक्त शुकदेवजी ! परम ज्ञानी ! आपने व्यापारियों के टांडे का रूपक बांधकर, बुद्धिमानों के समझने योग्य जो यह जीवों के समूह का संसारमार्ग कहा है इस को साधारण पुरुष नहीं समझसक्ते, इस कारण इन कठिन वचनों का स्पष्ट तात्पर्य कह सुनाइये, यह मेरी प्रार्थना है ॥ २६ ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ राजा परीक्षित ने जिन से प्रश्न किया है ऐसे श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! देह को ही आत्मा माननेवाले जीव के सत्वादि गुणों से रचेहुए भले, बुरे और मिश्रित कर्मों से बनेहुए नानाप्रकार के शरीरों का परस्पर वियोग तथा संयोग आदिरूप जो अनादिकाल से चलताहुआ संसार का अनुभव है, उस के साधन–श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिव्हा, घ्राण और मन इन छः इन्द्रियों के द्वारा वन में के कठिन मार्ग की समान जिस में चलना कठिन है ऐसे संसार मार्ग में, जैसे धनप्राप्ति के निमित्त बाहर गया हुआ व्यापारियों का टांडा, मार्ग भूलकर भयङ्कर वन में जापड़ता है तैसे ही, सब के ईश्वर विष्णुभगवान् के वश में रहनेवाली माया के वश में पड़ा हुआ यह जीवों का समूह, अपने शरीर से आचरण करेहुए कर्मों का अनुभव करता हुआ, श्मशान की समान अति अपवित्र, संसाररूप गहन वन में जापहुँचता है तब उस के व्यापार निष्फल और अनेकों विघ्नों से अस्तव्यस्त होजाते हैं तथापि अबतक भी उस संसारताप का नाश करनेवाले श्रीहरिरूप गुरु के चरणकमलोंपर के भ्रमरों का (साधुओं का) अनुगामी नहीं होताहै; इस संसाररूप वनमें, यह पूर्वोक्त छः इन्द्रिय नामक, कर्म के द्वारा ही चोर होते हैं ॥ १ ॥

तर्किंचित्साक्षाद्धर्मौपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणोऽसौ धर्मस्तं तु सांपरायं उदाहरन्ति ॥ तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसंकल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुम्पन्ति ॥ २ ॥ अथ च यत्र कौटुंबिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एव अनिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुंबिन उरणकवत्सं रक्ष्यमाणं मिषतोऽपहरन्ति ॥ ३ ॥ यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवति एवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्नहि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयं कामकरण्ड एष आवसथः ॥ ४ ॥ तत्र गतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानो बहिःप्राणः क्वचित्परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभि-

परम सङ्कट से मिलाहुआ धर्म में लगाने योग्य पुरुष का जो कुछ धन अर्थात् ईश्वर का पूजन करना इत्यादिरूप जो धर्म है, वह परलोक में सहायक है, ऐसा कहते हैं उस धर्म में अनुकूल होनेवाले धनको इन्द्रियनामक चोर लूटते हैं अर्थात् उस पुरुष की–सुन्दर स्वरूपको देखना,स्त्रियोंका समागम करना,गान आदि सुनना,पक्वान्न का भोजनकरना,सुगन्धित पदार्थोंको सूँघना,विषयों का विचार करना, निश्चयकरना इत्यादि घरके क्षुद्र भोगों से बुद्धिभ्रष्टहोकर वह विषयोंमें आसक्त होजाताहै तब,जैसे दुर्व्यसनी पुरुष किसी धनवान् को दुर्व्यसनो में डालकर उसके विवश होते ही पूर्णरूपसे सब धन लूट लेते हैं, तैसेही लूटलेते हैं ॥ २ ॥ तथा उस संसार में कुटुम्बके पुरुष, नाममात्र को ही स्त्री पुत्र आदि होते हैं परन्तु यदि उनका कर्म देखाजाय तो उनको भेडिये वा गीदड ही समझना उचित है, क्योंकि–जैसे गँडरिये की रक्षा करीहुई भी भेडों को भेडिये उसके देखते हुए ही उठाकर लेजाते हैं तैसेही अतिलोभी कुटुम्बी के रक्षा करेहुए धनको उसकी इच्छा न होने परभी देखते हुएही स्त्री पुत्र आदि हरलेते हैं ॥३॥ हे राजन् ! जिस खेत में प्रतिवर्ष हल चलाया जाय और उसका बीज दग्ध न होय तो वह खेत फिर अन्न बोने के समय तृण, लता और दूर्वा से पर्वत की गुफा की समान दुर्गम होजाता है तैसे ही, यह गृहस्थाश्रम भी, कर्मोंका क्षेत्र है और इसमें के कर्मों का नाश कभी भी नहीं होता है, क्योंकि–यह गृहस्थाश्रम विषयों की पिटारी है अर्थात् जैसे कपूर की पिटारी में से कपूर निकाल लिया जाय तब भी उस में से कपूर का गन्ध नहीं जाता है तैसेही गृहस्थाश्रम में विषय न मिलें तब भी उनकी वासना तो शेष रहती ही है ॥ ४ ॥ जीवके उस गृहस्थाश्रम में पहुँचने पर, मच्छर और डाँसों की समान नीच पुरुषों से और टीड़ी, पक्षी, चोर और चूहे आदिकों से उनके द्रव्यको विघ्न प्राप्तहोतेहैं तथापि इस संसारमार्ग में ही कहीं फिरनेवाला और खोटी दृष्टिवाला

रुपरक्तमनसाऽनुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥५॥ क्वचिदातपोदकनिभान्विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥६॥ क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥ ७ ॥ अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥ ८ ॥ क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयारोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूत इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोऽपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति॥९॥क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥ १० ॥ क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥ ११ ॥ स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुंडाद्यपुण्यद्रु-

यह जीव, अविद्या, काम और कर्मों से भरेहुए मनसे, गन्धर्वनगर की समान मिथ्याभूत इस मनुष्यलोक को सत्यरूप से देखताहै।५।उसमें भी कहीं २ जलपान, भोजन और मैथुन आदि व्यसनोंमें लवलीन होकर मृगतृष्णाके जलकी समान जो विषय उनकी ओरको दौडताहै॥६॥ जैसे वन में शीत से दुःखित हुआ व्यापारियों का समूह, अपने को अग्नि मिलने की इच्छा से जलतीहुई लकड़ी की समान प्रतीत होनेवाले पिशाच को पकडने की इच्छा करता है तैसे ही, लालवर्ण के रजोगुण से जिस की बुद्धि सुवर्ण की ओर ललचा रही है ऐसा यह जीवों का समूह, सकल दोषों के रहने के स्थान (अग्निके) विष्टारूप सुवर्ण को ग्रहण करने की इच्छा करता है॥ ७॥ कभी २ घर, जल, द्रव्य आदि अपने जीवन के अनेकों साधनों का अभिमान करनेवाला यह जीवों का समूह, इस संसाररूप वन में जिधर तिधर को दौडता फिरता है ॥ ८ ॥ कभी २ आँधी की समान मोहित करनेवाली स्त्री के अपनी जंघापर बैठालेनेपर तत्काल उत्पन्नहुई प्रेमरूप धूलि से जिस की बुद्धि अत्यन्त मलिन होरही है और जिसने मर्यादा को छोडदिया है ऐसा यह जीवों का समूह मानो नेत्रों में धूलि पडगई हो ऐसा होकर रात्रि में फिरनेवाले पिशाचों की समान दिशाओं में के साक्षीभूत देवताओं को नहीं जानता है ॥ ९ ॥ कभी तो स्वयं ही जिस को एकवार विषयों का मिथ्यापन प्रतीत हुआ है, परन्तु देहाभिमान के कारण जिसकी स्मरणशक्ति नष्ट होगई ऐसा यह जीवों का समूह उस नष्ट हुई स्मरणशक्ति के कारण ही बहुधा मृगतृष्णा के जल की समान विषयों की ओर को दौडता है ॥ १० ॥ कभी शत्रुओं के वा राजाओं के आश्रित पुरुषों के, उलूक और झींगर के शब्द की समान अति कठोर शब्दों में क्रोध के साथ सन्मुख वा पीछे भला बुरा कहनेपर उस से, उस जीवसमूह के हृदय को परम दुःख होता है ॥ ११ ॥ वह जीवों का समूह जब पूर्वजन्म के पुण्य को भोग चुकता

मलतावित्रिषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान्जीवन्मृतान् स्वयं जीवन् म्रियमाण उपधावति ॥ १२ ॥ एकदाऽसत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखंडमभियाति ॥ १३ ॥ यदा तु परबाधयाऽन्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान्वा स खलु भक्षयति ॥ १४ ॥ क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥ १५ ॥ क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसाऽपहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥ १६ ॥ कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥ १७ ॥ क्वचिद्गृहाश्रमकर्मचोदनाऽतिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्षितमनाः कंटकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥ १८ ॥ क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुंबाय क्रुध्यति ॥ १९ ॥ स एव पुनर्निद्राऽजगरगृहीतोऽन्धे तमसि मग्नः

हे तब कारस्कर और काकतुण्डी आदि पापवृक्ष,पापलता और विषभरे कुओं की समान किसी के काममें न आनेवाले तथा इस लोक और परलोकके कार्यमें जिनका धन नहीं लगता है ऐसे जीतेहुए भी मृतककी समान जो धनी पुरुष उनके पीछे आपभी जीवित होकर भी मृतककी समान हो दौडता है॥१२॥ किसी समय दुष्टों की सङ्गति से, जिसकी बुद्धि धोखे में पडी है ऐसा होकर,जिसमें जल है ही नहीं ऐसी नदीमें ठोकर खाकर गिराहुआसा,इसलोकमें और परलोकमें भी दुःख देनेवाले पाखण्डमार्गमें जा मिलताहै॥१३॥जब इसको शत्रुओं की दीहुई पीडा के कारण अन्न नहीं मिलता है तब यह अपने पिताको वा पुत्रोंको अथवा पिता की वा पुत्रोंकी कुशा का तृणभी (थोडी सी वस्तु भी) जिनके पास देखताहै उसको ऐसी पीडा देता है मानों भक्षणही करजायगा ॥१४॥ किसी समय यह,प्रिय वार्त्ताओं से रहित और दुःख ही जिसका अन्तिम फल है ऐसे दावानलसमान घरों में जाकर शोकरूप अग्नि से इसके सकल अङ्ग जलने लगते हैं तब विरक्त होता है ॥१५॥ किसी समय तो जब,कालगति से प्रतिकूल हुए राजकुलरूप राक्षस, इस के धनरूप अति प्यारे प्राण को हरलेते हैं तब इस के हर्ष आदि जीवितपने के लक्षण दूर होकर मृतकसमान होजाता है ॥ १६ ॥ कभी मनोरथों से प्राप्तहुए मिथ्याभूत पिता-पितामह आदिकों को सत्य मानताहै और स्वप्न की समान क्षणभर में नष्ट होनेवाले उन के सम्बन्ध के सुख को भोगता है ॥ १७ ॥ कभी कभी यह गृहस्थाश्रम में के कर्मों के विस्ताररूप पर्वतपर चढने की इच्छा करता है तब लोकों के दुःखों से इस का मन अत्यन्त खिन्न होता है उस समय यह कांटे और कङ्कड़ों से भरेहुए खेत में प्रवेश करता हुआ सा दुःखित होता है ॥ १८ ॥ कभी २ दुःसह पेट की ज्वाला से जब इस का धीरज टूटजाता है तो यह अपने कुटुम्बी पुरुषों के ऊपर क्रोध करता है ॥ १९ ॥ वही फिर निद्रारूप अजगर के निगल लेनेपर अज्ञानरूप

शून्यारण्यइव शेते नान्यत्किंचन वेद शव इवापविद्धः ॥ २० ॥ कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽधकूपेऽन्धवत्पतति ॥ २१ ॥ कर्हिस्मचित्काममधुलवान्विचिन्वन्यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥२२॥ अथ च तस्मादुभयथाऽपि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥ २३ ॥ मुक्तस्ततो यदि बंधाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥ २४ ॥ क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणे अकल्पो दुरंतचिंतया विषण्ण आस्ते ॥ २५ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किंचिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमप्यपहरन्यत्किंचिद्वा विद्वेषमेति वित्तशाठ्यात् ॥ २६ ॥ अध्वन्यमुष्मिन्निमे उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्याऽवमानक्षुत्पिपासा-

गाढ़ अन्धकार में निमग्न होकर, निर्जन वन में डाले हुए प्रेत की समान सोता है उस समय इस को और कुछ भी ज्ञान नहीं होता है ॥२० ॥ किसी समय दुर्जनरूप सर्पों के इस के गर्वरूप दांत को तोड़ देनेपर इस को एक क्षणभर भी निद्रा नहीं आती है और अन्तःकरण में व्यथा होने के कारण धीरे २ ज्ञानहीन होकर अन्त में, अन्धकूप में गिरने वाले अन्धे की समान मोह में पड़ता है ॥ २१ ॥ कभी विषयरूप लवमात्र मधु (सहद) को खोजते २ यह परस्त्री और पराये धन को हरने लगता है और यदि स्त्री का वा धन का स्वामी इस को मारडाले तो अपार नरक में जाकर गिरता है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! यह दशा होने के कारण ही ऐसा कहते हैं कि–प्रवृत्तिमार्ग में करेहुए कर्म ही जीव को इस लोक में और परलोक मे जन्म प्राप्त होने के कारण हैं ॥ २३ ॥ कभी यह पुरुष, उन राजा आदिकों के वन्धन से छूट भी जाय तो, जिस वस्तु के लिये यह वन्धन में था उस वस्तु को कोई दूसरा ही इस से छीन लेता है अर्थात् यह उस को भोग नहीं सक्ता और उस दूसरे से भी कोई तीसरा छीन लेता है, इस प्रकार की दशा होती है ॥ २४ ॥ कभी २ शीत वायु आदि अनेकों आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक दुःखदायक दशाओं को दूर करने की शक्ति रखनेवाला यह प्राणी अपार चिन्ता से खिन्न होता रहता है २५ ॥ किसी समय परस्पर द्रव्य आदि लेनादेना आदि व्यवहार करता हुआ कुछ एक (दमड़ी छदाम मात्र) वा इस से भी कम धन,द्रव्य के लोभी से हरने लगे तो धन के विषय में धोखा देने के कारण वहुत से पुरुषों से वैरभाव होजाता है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! इस संसारमार्ग में यह सव पहिले जो कहे सो विघ्न हैं तैसे ही–सुख, दुःख, प्रीति, द्वेष, भय, अभिमान, पिशाच का झपटा, शोक, मोह, लोभ, मत्सरता, इर्ष्या, अपमान, भूँख,

विध्याधिजन्मजरामरणादयः ॥ २७ ॥ क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ॥ २८ ॥ कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्द्धापवर्गोपलक्षणात् परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखंडदेवताः कङ्कगृध्रवककवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः सांकेत्येनाभिधत्ते ॥ २९ ॥ यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरुरुवञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्य आराधनमेव तदरोचयञ्छूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावः कुटुंबभरणं यथा वानरजातेः ॥ ३० ॥ तत्रापि निरवरोधः

प्यास, आधि, व्याधि, जन्म, जरा और मृत्यु यह भी बहुत से विघ्न हैं ॥ २७ ॥ किसी समय, देवमायारूप स्त्री जब इस का अपनी बाहुलताओं से आलिङ्गन देती है तब इस का विवेक ज्ञान नष्ट होकर, उस स्त्री की क्रीड़ाके निमित्त घरका क्रम बांधने की खटपटमें लगता है तब इस का मन अत्यन्त गुँथ जाताहै; फिर उस के आश्रय से प्राप्तहुए पुत्र और कन्या तथा उस स्त्री को देखने से जिस का हृदय खिंचता है ऐसा अस्वाधीन मनवाला यह जीवसमूह, अपने को अपार अन्धतम नरक में डालता है ॥ २८ ॥ कभी कभी षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न भगवान विष्णु के दो परमाणुसे लेकर दो परार्द्ध पर्यन्त कहे हुए, अपनी शीघ्रगति करके बालकपन तरुणाई आदि के स्वरूपमे क्षणमात्र में ब्रह्मानीसे लेकर तृण पर्यन्त सकल प्राणियों का देखते २ संहार करनेवाले, कालरूप चक्रसे हृदयमें भयमानकर, कालचक्र ही जिनका शस्त्र है ऐसे प्रत्यक्ष भगवान्, यज्ञपुरुषरूप परमेश्वर का अनादर करके संकेतमात्रसे मानेहुए परन्तु वास्तवमें प्रमाणहीन पाखण्डमार्गमें जाकर सनातन आर्यधर्म में जिन का नामभी नहीं ऐसे कङ्क, गिद्ध, बगुले और उल्लूकी समान पाखण्ड देवताओं का ही मुख्यरूप से आश्रय करता है ॥ २९ ॥ तदनन्तर जब अपने धोखादिये हुए उन पाखण्डियों से अपने धोखा देने मे अधिक धोखा पाता है तब उस सङ्गति में से भी निकलकर यह ब्राह्मणों के समूह में रहने लगता है परन्तु उन ब्राह्मणों का, उपनयन संस्कार करके वेद में कहे और स्मृतियों में कहे कर्मानुष्ठान के द्वारा भगवान् यज्ञ पुरुष के ही आराधन करने का स्वभाव इसको अच्छा नहीं लगता है तो फिर उसको छोड़कर, वेद में कहेहुए कर्मों में अधिकारी न होने के कारण वानर आदि की समान केवल कुटुम्बका पोषण और स्त्रीसमागम रूपही व्यापार करनेवाले शूद्रकुलमें बसता है ॥ ३० ॥ उन शूद्रजातियों में भी बिना रोकटोक यथेष्ट क्रीड़ा करते हुए इसकी बुद्धि

स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योऽन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥ ३१ ॥ क्वचिद्द्रुमवदैहिकार्थेषु रमयन् यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥ ३२ ॥ एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥ ३३ ॥ क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणे अकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते ॥ ३४ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किंचिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ॥ ३५ ॥ क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादभिलभते ॥ ३६ ॥ एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमु-

विषयोंपर आसक्त होकर अतिकृपण होजाता है और परस्पर का मुख देखना इत्यादि हेतुओं से मैथुन में गुँथकर अपने मरणकाल को भी भूल जाता है ॥ ३१ ॥ कभी २, वृक्षों की समान इसलोक में उपयोगी होनेवाले खाना पीना आदि विषयों से भरेहुए घर में आनन्द माननेवाला यह जीवों का समूह वानरों की समान मैथुन आदि विषयों में उत्सुकता रखकर अपने स्त्री पुत्रादिकों के ऊपर प्रीति करनेलगता है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार इस संसारमार्ग में सुख दुःखों का अनुभव करनेवाला यह जीवों का समूह, किसी पर्वतकी गुफा की समान भयङ्कर रोग आदि सङ्कटों में पड़कर मृत्युरूप हाथीके भयसे डरताहै ॥ ३३ ॥ कभी, शीत वायु आदिकों से उत्पन्नहुए अनेकों प्रकार के आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों को दूर करने में असमर्थ होकर परम चिन्तासे व्याकुल होता रहताहै ॥ ३४ ॥ किसीसमय परस्पर व्यवहार करते २ दूसरे को धोखा देकर थोड़ासाधन पाता है ॥ ३५ ॥ कभी, पासका सकल धन समाप्त होजाने पर जब शय्या, आसन और भोजन आदिका भोगभी इसको नहीं मिलता है और याचना करने से भी मनकी इच्छित वस्तु नहीं मिलती हैं तब अन्याय से (चोरी आदि करके) उस वस्तु को पाने के निमित्त अपनी बुद्धि से निश्चय करके तदनुसार वर्त्ताव करनेलगता है तब लोकों से अपमान, निंदा और ताड़ना पाता है ॥ ३६ ॥ इसप्रकारही परस्पर द्रव्य के सम्बन्ध के कारण उसका वैरभाव बढ़ता चलाजाता है तबभी वह फिर प्रारब्ध कर्मों के वशीभूत हुआ विवाह आदि सम्बन्ध करता है और फिर वैरभाव बढ़ने लगता है तो उन सम्बन्धी पुरुषों को त्याग भी देता है ॥ ३७ ॥ सो इस संसारमार्ग में अनेकों प्रकार के क्लेशों से तथा उपद्रवों से पीड़ित होकर जहां जो कोई सङ्कटमें पड़े वा मरणको प्राप्त हो उसको उसका दूसरासंबंधी तहाँ ही छोड़कर नवीन २ उत्पन्नहुए पुत्रादिकों को लेकर शोक करता हुआ और मोहित

पादाय शोचन्मुह्यन्विभ्यद् विवदन् क्रन्दन्संहृष्यन् गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नै-
वावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति
॥ ३८ ॥ यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनय उप-
शमशीला उपरतात्मनः समवगच्छन्ति ॥ ३९ ॥ यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो
ये वै राजर्षयः किंतु परं मृधे शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबं-
धायां विसृज्य स्वयमुपसंहृताः कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथञ्चिन्नरका-
द्विमुक्तः ॥ पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुप-
रिगतोऽपि ॥ ४० ॥ तस्येदमुपगायन्ति आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसाऽपि महा-
त्मनः ॥ नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥ ४१ ॥ यो दुस्त्यजान्दा

होता हुआ, भय पाताहुआ, विवाद करता हुआ, निन्दा करता हुआ, हर्षित होता हुआ, और गाताहुआ भगवान् की माया में बँधकर, एक भगवद्भक्त को छोड़ दूसरा कोई भी जीव, इस, मनुष्यलोक के उत्पन्न होने के स्थान तथा संसार भर के समाप्तिस्थान परमेश्वर के समीप को अभीतक लौटकर नहीं आता है ॥ ३८ ॥ क्योंकि–जिन्हों ने प्राणियों से द्रोह करना छोड़दिया है, जिन का स्वभाव शान्त है और जिन के मन विषयों से हटेहुए हैं ऐसे मुनियों को जो प्रसिद्ध भक्तियोग अनायास में प्राप्त होता है उस को संसारमार्ग में भटकनेवाले जीव नहीं पाते हैं ॥ ३९ ॥ हेराजन् ! जो दिग्गजों को जीतनेवाले और यज्ञ याग आदि अनुष्ठान करनेवाले राजर्षि हैं उन को भी वह भक्तियोग नहीं मिलता है, किन्तु वहभी इस भूमि के निमित्त, 'यह मेरी है, यह तेरी नहीं है,' ऐसा कहकर परस्पर वैरभाव बढ़ातेहुए अन्त को युद्ध में परस्पर शस्त्रों का प्रहार करके मरकर गिरपड़ते हैं कदाचित् इस जीवसमूह ने पहिले कुछ अच्छे कर्म करे होते हैं तो उस पुण्यलता का आश्रय करके उन रोगादि दुःखों से वा नरक से किसीप्रकार छूट भी जाय तो फिर भी इसीप्रकार प्रवृत्तिमार्ग में घूमताहुआ मनुष्य लोक के मेले में ही जाकर मिलजाता है, संसार से छूटने का उद्योग नहीं करता है; इसप्रकार देवलोक में पहुँचजाय तबभी तहाँ से लौटकर आकर मनुष्यलोक काही अनुगामी होता है ॥ ४० ॥ इसप्रकार भरतजी की कहीहुई भवाटवी का वर्णन करके अब उनका संक्षिप्त चरित्र कहने के निमित्त शुकदेवजी कहते हैं कि–हेराजन् ! पूर्वकाल के बड़े २ शिष्ट पुरुष भी उन भरतजी के चारित्र का इसप्रकार गान करते हैं कि–जैसे मक्खी गरुड़जी के मार्ग से उड़ने को समर्थ नहीं होती है तैसेही महात्मा राजर्षि ऋषभपुत्र (भरत) के मन का अनुकरण करने को भी इसलोक में कोई राजा समर्थ नहीं होगा ॥ ४१ ॥ क्योंकि–पुण्य कीर्ति भगवान् के निमें प्रेमकरने वाले उन ऋषभपुत्र भरतजी ने, तरुण

रसुतान्सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ॥ जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥ ४२ ॥ यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ॥ नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्सेवाऽनुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥ ४३ ॥ यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ॥ नारायणाय हरये नम इत्युदारं हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥ ४४ ॥ इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वाऽनुशृणोत्याख्यास्यति अभिनंदति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न कांश्चन परत इति ॥ ४५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भरतोपाख्याने ब्राह्मणरहूगणसम्वादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥*॥ श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभि-जितो यमुह वाव केचित्पाखंडिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया

अवस्था में ही मनोहर और जिनका त्याग करना कठिन है ऐसे अपने पुत्र, स्त्री, मित्र, और राज्य को विष्ठा की समान त्यागदिया ॥ ४२ ॥ जिन राजा भरत ने, जिस का त्यागना कठिन है ऐसी पृथ्वी, पुत्र, स्वजन ,द्रव्य, स्त्री और देवता भी जिस की प्रार्थना करें तथा अपने ऊपर भरतजी की कृपा होने की वाट देखनेवाली लक्ष्मी की भी कुछ इच्छा नहीं करी, यह सब उन के योग्य ही था, क्योंकि—मधुसूदन भगवान् की सेवा करने में जिन के अन्तःकरण आसक्त हैं उन महात्मा पुरुषों को मोक्ष भी तुच्छ प्रतीत होती है फिर अन्य पदार्थों की तो बात ही क्या ? ॥ ४३ ॥ हेराजन् ! जिन भरत ने, अपने हरिण शरीर का त्याग करतेहुए भी, यज्ञरूप धर्म का फल देनेवाले, कर्मानुष्ठान में निपुणता युक्त, अष्टाङ्ग योग से प्राप्त होनेवाले, सांख्य शास्त्र में वर्णन करेहुए, माया के नियन्ता और सकल जीवों के स्वामी श्रीहरि को नमस्कार हो, ऐसा स्पष्टरूप से ऊँचे स्वरसे कहा ऐसे भरतजी के मार्ग का आचरण करने को दूसरा कौन समर्थ होगा ? ॥ ४४ ॥ हेराजन् ! जिन के पवित्र गुण और चरित्रों का भगवद्भक्तों ने आदर के साथ वर्णन करा है उन राजर्षि भरत के, कल्याणकारी, आयु को बढ़ानेवाले, धनदाता, कीर्तिकर्त्ता और स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त करानेवाले चरित्र को जो मनुष्य वारंवार सुनता है, कहता है वा अनुमोदन करता है उस के सकल मनोरथों को भगवान् पूर्ण करते हैं वह दूसरे से कुछभी पाने की इच्छा नहीं करता है ॥ ४५ ॥ इति पञ्चम स्कन्ध में चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! राजा भरत का सुमति नामक पुत्रथा, ऐसा वर्णन है, वह ऋषभदेवजी के मार्ग के अनुसार (जीवन्मुक्त दशा का) वर्त्ताव करता है, ऐसा सुनकर कितने ही पाखण्डी दुर्जन पुरुषों ने, अपनी पापाचरण में तत्पर, कलियुगी बुद्धि से

पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यंति ॥१॥ तस्माद्वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥ २ ॥ अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥ ३ ॥ य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम् ॥ ४ ॥ भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथः सुतः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद्द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलात्मवत्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥ ५ ॥ स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेन च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मन्यर्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयापादितभग-

उस सुमति नामक भरतजी के पुत्रको, यह साक्षात् बुद्धका ही अवतार है ऐसा मानकर, वेद में न कहा हुआ यह हमारा देवता है, ऐसी कल्पना करैंगे ॥ १ ॥ उस सुमति से वृद्धसेना नामक स्त्री के विषैं देवताजित् नामक पुत्र हुआ ॥ २ ॥ तथा उस सुमति से दूसरी आसुरी नामक स्त्री के विषैं देवद्युम्न नामक पुत्र हुआ, उस देवद्युम्न का धेनुमति के उदर में परमेष्ठी नामक पुत्र हुआ, सुवर्चलाके विषैं प्रतीह पुत्र हुआ ॥ ३ ॥वह प्रतीह बहुतसे पुरुषों को आत्मज्ञान का उपदेश करके और उससे ही आप परमशुद्ध होकर अपरोक्षभाव से महापुरुष भगवान् का अनुभव करनेलगा तदनन्तर उस प्रतीह से सुवर्चला के उदर में प्रतिहर्त्ता, प्रस्तोता और उद्गाता, यह यज्ञादि कर्मों में प्रवीण तीन पुत्र हुए; प्रतिहर्त्ता से स्तुति के विषैं अज और भूमा, यह दो पुत्र हुए ॥ ४ ॥ भूमासे ऋषिकुल्या के विषैं उद्गीथ, उद्गीथ से देवकुल्या के विषैं प्रस्ताव, प्रस्ताव से नियुत्सा के विषैं विभु नामक पुत्र हुआ, विभु से रतिके विषैं पृथुषेण, उस पृथुषेण का आकृति के विषैं नक्त नामक पुत्र हुआ, नक्त का द्रुतिनामक स्त्री के विषैं गय नामवाला पुत्र अत्युत्तम कीर्त्तिमान् श्रेष्ठ राजर्षि हुआ; वह जगत् की रक्षा करने की इच्छा से सत्वगुणधारी प्रत्यक्ष विष्णुभगवान् का अंश होने के कारण, ज्ञानीपना आदि उत्तम लक्षणों करके सकल जनों में श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ प्रजाओं का पालन, पोषण, प्रीति युक्त करना, लाड करना और योग्य शिक्षा देना इन लक्षणों से युक्त तथा ब्रह्माजी आदिकों से भी श्रेष्ठ, भगवान् महापुरुष परब्रह्म के विषैं सर्वात्मभाव से यज्ञ आदि का समर्पण करनेपर, परम पुरुषार्थ के साधनरूप अपने स्वधर्म के द्वारा तथा ब्रह्मज्ञानी पुरुषों की निरन्तर चरणसेवा करके पाईहुई भगवद्भक्ति के प्रभाव से जिसकी बुद्धि संस्कारयुक्त और शुद्ध होगई है और इसी कारण जिसका देह आदि के विषय

वद्धजनेज्यादिभक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्ये आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभावोऽपि निरभिमान एवावनिमजू-गुपत् तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद उपगायन्ति ॥ ६ ॥ गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभिर्यज्वाऽभिमानी वहुविद्धर्मगोप्ता ॥ समागतश्रीः सदसः पतिः सतां सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥ ७ ॥ यमभ्यषिञ्चन्परया मुदा सतीः सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ॥ यस्य प्रजानां दुदुहे धराशिषो निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥ ८ ॥ छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान् दुदूहुराजेहुरथो वलिं नृपाः ॥ प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥ ९ ॥ यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ॥ श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोगसमर्पितेज्याफलमाजहार ॥ १० ॥ यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवति-

का अहम्भाव दूर होगया है ऐसे अन्तःकरण में आपही जिस को ब्रह्मानुभव मिलरहा है और जिस का अभिमान दूर होगया है ऐसा भी वह राजा गय, लोकमर्यादा के निमित्त पृथ्वी की रक्षा करने लगा हे पाण्डुकुल के राजन् परीक्षित ! पूर्वकाल के सज्जन, तिस राजा गय के माहात्म्य को प्रकट करनेवाली इस कथा को गाते हैं ॥ ६ ॥ अहो ! दूसरा कौनसा राजा, कर्मों से राजा गय का अनुकरण (वरावरी) करसक्ता है ? क्योंकि-विधिपूर्वक यज्ञ आदि कर्म करनेवाला, सव प्रकार से सम्मान का स्थान, परमज्ञानी, धर्म की रक्षा करनेवाला, सम्पत्तिमान्, साधुमण्डली का स्वामी और सज्जनों की सेवा करनेवाला, एक भगवान् के अंशरूप गय राजा को छोडकर दूसरा कौन है ?॥७॥ जिस राजा गय का, सत्य आशीर्वाद वालीं श्रद्धा, मैत्री और दया आदि पतिव्रता दक्ष कन्याओं ने, वडे आनन्द के साथ गङ्गा आदि नदियों के जलों से अभिषेक करा, वह किसीप्रकार की इच्छा नहीं रखता था तथापि उस के गुणरूप वत्स के कारण जिस के ऐनमें से दूध टपकरहा है ऐसी गोरूपा पृथ्वी ने, जिस की प्रजाओं के सकल मनोरथ पूर्ण करे ॥ ८ ॥ निष्काम होनेपरभी, जिनकी कामनाओं को वेदोंने और वेदोक्त कर्मों ने पूर्णकरा और युद्ध में वाण से प्रतिपूजन करेहुए राजाओं ने भेटलाकर समर्पण करी, उस के अनुसार ही जिसने रक्षा करके और दक्षिणा आदि देकर ब्राह्मणों की पूजा करीं तव उन ब्राह्मणादि प्रजाके पुरुषों ने, परलोक में प्राप्त होनेवाले धर्म के फल का छठाभाग उन को समर्पण करा ॥ ९ ॥ वहुत से सोमपानवाले जिस के यज्ञ में इन्द्र के मदान्ध होनेपर यज्ञरूप भगवान् ने, श्रद्धा से तथा विशुद्ध और निश्चल भक्तियोग से समर्पण करेहुए यज्ञका फल, पूजा को ग्रहण करने की समान प्रत्यक्ष स्वीकार किया॥ १० ॥उन भगवान् के सन्तुष्ट होने से, ब्रह्माजी से लेकर पशु, पक्षी, मनुष्य, लता और तृणभी तृप्त होता है, वह जगत् के जीव भगवान् तृप्त

यज्ञानुर्य्यन्नीरुत्तृणमाविरिंच्यात् ॥ प्रीयेत यद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥ ११ ॥ गयाद्गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥ १२ ॥ तत उत्कलायां मरीचि मरी-चेर्विन्दुमत्यां विंदुमानुदपद्यत तस्मात्सरघायां मधुनामाऽभवन्मधोः सुमनसि वीरव्रतस्ततो भोजायां मन्थुप्रमन्थू जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनस्ततो दूषणायां त्वष्टोऽजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायां विरजो विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥ १३ ॥ तत्रायं श्लोकः ॥ प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः ॥ अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥ १४ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥ राजोवाच ॥ उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥ १ ॥ तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिंधव उपक्लृप्ता यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचित एतदेवाखिल-

---

होतेहुए उस गय राजाके यज्ञमें सन्तुष्ट हुए फिर उस गय राजाकी समता कौन करसक्ता है ? ॥ १३ ॥ फिर राजा गय के, गयन्ती के विषैं चित्ररथ, सुगति और अवरोधन, यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए, चित्ररथ से ऊर्णा के उदर में सम्राट् नामक एकपुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ उस सम्राट् का उत्कला के विषैं मरीचि उत्पन्न हुआ, मरीचि से विन्दुमति के उदर में विन्दुमान् हुआ, उस से सरघा के विषैं मधुनामक पुत्रहुआ, मधु से सुमनाके विषैं वीरव्रत हुआ, उस से भोजा के विषैं मन्थु और प्रमन्थु यह दो पुत्र हुए, मन्थु का सत्या के विषैं भौवन हुआ, उस से दूषणा के उदर में त्वष्टा हुआ, त्वष्टा का विरोचना के उदर में विरज हुआ और विरज के विषूची के विषैं शतजित् है मुख्य जिन में ऐसे सौपुत्र और एक कन्या इतनी सन्तान हुई ॥१५॥ उस के विषय में—इस अर्थ का श्लोक है कि—जैसे विष्णु भगवान् देवताओं को शोभा देते हैं तैसे ही राजा प्रियव्रत के वंश में अन्त में उत्पन्न होनेवाले राजाविरज ने अपनी कीर्तिसे उस वंश को अत्यन्त शोभित किया ॥ १६ ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ राजा ने कहा कि—हेमुने ! जहांतक सूर्य प्रकाश करता है और जहां तारागणों सहित चन्द्रमा दीखता है तहांतक के पृथ्वी मण्डल का लम्बाव और चौड़ाव विशेषरूप से तुम ने मुझ से वर्णन किया है ॥ १ ॥ हेभगवन् ! उस मेंभी प्रियव्रत राजा के रथ के पहियों से बनीहुई खाड़ियों से, सातसमुद्र होकर उन के द्वारा इस पृथ्वी के सात द्वीपविशेषों की रचना हुई है, ऐसा जो तुम ने निश्चय करके सामान्यरूप से सूचित करा है, इस सब को मैं, लम्बाई चौड़ाईके प्रमाण

महं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ॥ २ ॥ भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाऽधिगन्तुमलं विबुधायुषाऽपि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥ ४ ॥ यो वाऽयं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥ यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥ ६ ॥ एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य । ॥ ७ ॥ मूर्द्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावताऽन्तर्भूम्यां प्रविष्टः उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकु-

---

और लक्षणों के साथ जानने की इच्छा करता हूँ ॥ २ ॥ क्योंकि—भगवान् के सगुण विराट् स्वरूप में स्थिर कराहुआ मन, निर्गुण, अतिसूक्ष्म, स्वप्रकाश और परब्रह्म वासुदेव के विषें स्थिर करने के योग्य होता है, इसकारण हे गुरो ! भगवान् के इस ब्रह्माण्डरूप स्थूल स्वरूप का मुझ से वर्णन करो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे महाराज ! यह पुरुष, देवताओं की समान आयु मिलने पर भी भगवान् की माया के गुणों के विस्तार का अन्त, अपने मन से जानने को और वाणी से वर्णन करने को समर्थ नहीं होता है, इस कारण मुख्य २ नाम, रूप, लम्बाई और चौड़ाई का प्रमाण और लक्षण कहकर भूगोल की रचना का व्याख्यान करता हूँ ॥ ४ ॥ हेराजन् ! हम जहां इससमय हैं, यह द्वीप, भूमण्डलरूप कमल की पखरियों के घेरे में का कोश रूप (जिस में पखरियें लगी होती हैं) है इसका क्षेत्रफल (लम्बाई चौड़ाई) लाख योजन (चारलाखकोस) है और यह कमल के पत्ते की समान समवर्तुल (समानगोल) है ॥ ५ ॥ तिस में नौ नौ सहस्र योजन विस्तारवाले नौ खण्ड हैं वह बीच में पड़ेहुए आठ मर्यादापर्वतों के कारण एक एक से अलग होरहे हैं ॥ ६ ॥ इन नौ खण्डो में इलावृत नामक खण्ड सब के बीच में है, उस में कुलपर्वतों का राजा मेरुपर्वत है, वह भूमण्डलरूप कमल का कर्णिका रूपहै और जम्बूद्वीप की समान (एकलाखयोजन) ऊँचा तथा जड़से शिखरपर्यन्त सब सुवर्णमय है ॥ ७ ॥ वह मस्तकपर बत्तीस सहस्र योजन विस्तारवाला है, और उस की जड़ में सोलह सहस्र योजन का विस्तार है तथा उतना ही (सोलह सहस्र योजन) भूमि में घुसाहुआ है इसप्रकार भूमि में सोलह सहस्र योजन और भूमिपर चौरासी सहस्र योजन, सब मिलकर

रूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तरउत्तरो दशांशाधिकांशेनदैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥८॥ एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादय अयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासंख्यम् ॥ ९ ॥ तथैवेलावृत-तमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथुः ॥ केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥ १० ॥ मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इति अयुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः ॥ ११ ॥ चतुर्ष्वेतेषु चूतजंबूकदंबन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः॥१२॥ ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ

एक लाख योजन ऊँचा है इलावृत खण्ड के उत्तर में नील, श्वेत और शृङ्गवान् यह तीन पर्वत हैं, और वह क्रमसे रम्यक, हिरण्मय और कुरु इनखण्डों की मर्यादा के पर्वत हैं तथा वह पूर्व और पश्चिम को लम्बे २ होकर दोनोओर खारेजल के समुद्रमें मिलेहुए हैं, उन की मोटाई दो २ सहस्र योजन की है और वह एक२ पहिले की अपेक्षा आगे २का दशमभाग से कुछएक अधिक लम्बाई में ही कम हैं ऊँचाई और चौड़ाई सबकी समान ही है ॥ ८ ॥ जैसे इलावृत के उत्तर की ओर नीलादिक पर्वत हैं तैसे ही दक्षिण की ओर निषध, हेमकूट और हिमालय यह तीन पर्वत दश, २ सहस्र योजन ऊँचाईवाले और दो दो सहस्र योजन मोटे तथा पूर्व और पश्चिम के समुद्र पर्यन्त लम्बे हैं और हरिवर्ष, किम्पुरुष तथा भरत इन खण्डों की मर्यादा को दिखानेवाले हैं ॥ ९ ॥ तथा इलावृत के पश्चिम की ओर और पूर्व मे माल्यवान् तथा गन्धमादन यह दो पर्वत हैं, उत्तर की ओर नीलपर्वत पर्यन्त तथा दक्षिण की ओर निषधपर्वत पर्यन्त लम्बे, दोसहस्र योजन मोटे और दशसहस्र योजन ऊँचे हैं तथा क्रमसे केतुमाल और भद्राश्व इन खण्डों की मर्यादा को दिखारहे हैं ॥ १० ॥ तथा मेरु पर्वत की पूर्व आदि चारो दिशाओं में मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद यह चार मेरु पर्वत के आधारभूत (टेकन) सुवर्ण के पर्वत दश दश सहस्र योजन विस्तार वाले और ऊँचे परमेश्वर ने रचे हैं ॥ ११ ॥ इन चार पर्वतों पर क्रम से एक पर एक इस प्रकार आम, जामुन, कदम्ब और बड़ के प्रचण्ड वृक्ष, मानो पर्वतों की ध्वजा हैं, ऐसे प्रतीत होते हैं, ग्यारह सौ योजन ऊँचे और ग्यारह सौ योजन शाखाओं के विस्तार वाले हैं उनके शरीर का घेर सौ सौ योजन विस्तार का है ॥ १२ ॥ तथा इन चार पर्वतों में क्रम से दूध, सहत, ईख का रस और स्वच्छ जल के भरे हुए चार तालाब हैं उनमें स्नान आदि का सेवन करनेवाले सिद्ध किन्नर आदि

धारयन्ति ॥ १३ ॥ देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥ १४ ॥ येष्वमरपरिवृढाः सहसुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥ १५ ॥ मन्दरोत्संग एकादशशतयोजनोत्तुंगदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥ १६ ॥ तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगंधिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतंती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥ १७ ॥ यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगंधवातो दशयोजनं समंतादनुवासयति ॥ १८ ॥ एवं जंबूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जंबू नाम नदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यंदयति ॥ १९ ॥ तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदाऽमरलोकाभरणं जांबूनदं नाम सुवर्णं भवति ॥ २० ॥ यदु ह वाव विबु-

उपदेवताओं के गण, योग में परिश्रम करे विना ही प्राप्त हुई अणिमा आदि सिद्धियों को भोगते हैं ॥ १३ ॥ और उन चार पर्वतों के ऊपर क्रम से नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र यह चार देवताओं के बगीचे हैं ॥ १४ ॥ उन बगीचों में सुन्दर देवाङ्गनाओं के समूहों के पति श्रेष्ठ देवता, उन स्त्रियों के साथ यथेष्ट क्रीड़ा करते हैं और उपदेवता (गन्धर्व आदि) उस समय उन की महिमा को गाते हैं ॥ १५ ॥ मन्दर पर्वत पर के ग्यारह सौ योजन ऊँचे आम के वृक्ष के मस्तकपर से पर्वत के शिखर की समान मोटे और अमृत की समान मीठे आम गिरते हैं ॥ १६ ॥ उन अति ऊँचे पर से गिर कर टूटनेवाले आमों का अति मधुर, सुन्दर सुगन्धवाला, लाल २ और बहुत सा जो रस, उस ही जलसे उत्पन्न हुई अरुणोद नामवाली नदी, मन्दर पर्वतके शिखरपर से नीचे गिरती हुई इलावृत खण्ड के पूर्वभाग को भिगो डालती है ॥ १७ ॥ जिस रस के पीने से, भवानी देवी की सेवा करनेवालीं यक्षों की स्त्रियों के अङ्ग का स्पर्श होने से सुगन्ध युक्त हुआ वायु, आस पास के स्थानों को दश योजन पर्यन्त सुगन्धित करता है ॥ १८ ॥ इस प्रकार हाथी के शरीर की समान और अति छोटे बीजों से युक्त बहुत ही ऊँचे से गिरने के कारण फूटे हुए जामुन के फल के रस से उत्पन्न हुई जम्बू नाम की नदी, दश सहस्र योजन ऊँचे मेरुमन्दर नामक पर्वत के शिखर पर से भूतलपर गिरती हुई अपने दक्षिण की ओर के सकल इलावृत खण्ड में फैल कर बहरही है ॥ १९ ॥ उस नदी के दोनों ही तटोंपर की मृत्तिका उस के रस से भीजती है और वह सब ही वायु और सूर्य की किरणों के संयोग से सूखनेपर सदा देवलोक का भूषणरूप जाम्बूनद नामक सुवर्ण बनती

धादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥ २१ ॥ यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्वशिखरात्पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति॥ २२ ॥ या ह्युपयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥ २३ ॥ एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यंबरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥ ॥ २४ ॥ यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेददौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवंति यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥ २५ ॥ कुरंगकुररकुसुंभवैकंकत्रिकूटशिशिरपतंगरुचकनिषधशिनीवासकपिलशंखवैदूर्यजारुधिहंसर्षभनागकालंजरनारदादयो विंशति गिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृ-

है ॥ २० ॥ उस सुवर्ण को देवता गन्धर्व आदि, अपनी तरुणी स्त्रियों के साथ मुकुट, कड़े और तागड़ी आदि बनाकर धारण करते हैं इस में कुछ सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ सुपार्श्व पर्वतपर उगाहुआ जो बडाभारी कदम्ब का वृक्ष है उस की खोकलों में से, पांच कौलियाभर मोटी पांच मधु की धारा बाहर को निकलती हैं, वह सुपार्श्व पर्वत के शिखर पर से नीचे गिरकर अपने पश्चिम की ओर सकल इलावृत खण्ड को शोभित करती हैं ॥ २२ ॥ उन मधु धाराओं का सेवन करनेवाले प्राणियों के मुख में से निकला हुआ वायु आसपास की भूमि को सौ योजन पर्यन्त सुगन्धित करता है ॥ २३ ॥ इसी प्रकार कुमुद पर्वतपर उगाहुआ जो शतवल्श नामवाला बड़ का वृक्षहै उसके स्कन्धों में से नीचे को मुख कर के दूध,दही,मधु घृत,गुड़,अन्न, वस्त्र,शय्या, आसन और अलङ्कार आदि का प्रवाहरूप बहुत बड़ा नद निकलताहै वह सकलही कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होकर कुमुद पर्वत के शिखर पर से नीचे गिरता हुआ अपने उत्तर के इलावृत खण्ड में बहता है ॥२४॥ जिस नद में के दुग्ध आदि पदार्थों को भोगनेवाले प्रजा के पुरुषों को कभी भी शरीर पर मुकड़न पड़ना, केश स्वेत होना, ग्लानि, पसीना, दुर्गन्धि, वृद्धावस्था, रोग, अकालमरण, शीतता, उष्णता और शरीर का वर्ण बुरा होजाना आदि विघ्नरूप अनेकों प्रकार के ताप नहीं प्राप्त होते हैं. जन्मभर परमसुख ही मिलता है ॥ २५ ॥ हेराजन् ! कुरङ्ग, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शङ्ख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नारद आदि यह वीस पर्वत, जैसे कमल की कर्णिका के चारों ओर केसर होता है तैसे ही यह मेरुपर्वत के मूल में चारोंओर ईश्वर ने

स्राः ॥ २६ ॥ जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुंगौ भवतः एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरतस्त्रिशृंगमकरावष्टभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति कांचनगिरिः ॥ २७ ॥ मेरोर्मूर्द्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥ २८ ॥ तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयभागेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः॥२९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः१६ श्रीशुक उवाच ॥ तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिंगस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वांडकटाहविवरेणांतः प्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपंक-

---

रचे हैं ॥ २६ ॥ मेरु पर्वत के पूर्व में दक्षिण उत्तर का अठारह सहस्र योजन लम्बे और दो २ सहस्र योजन मोटे और इतने ही ऊँचे जठर और देवकूट नामक दो पर्वत हैं, इस प्रकार मेरु के पश्चिम में दक्षिणोत्तर लम्बे पवन और पारियात्र इस नाम के दो पर्वत हैं; दक्षिण में पश्चिम से पूर्व को लम्बे कैलास और करवीर तथा उत्तर की ओर पश्चिम से पूर्व को लम्बे त्रिशृङ्ग और मकर यह दो २ पर्वत हैं इन पर्वतों से, चारों ओर परिक्रमा करे हुए अग्निकी समान मेरुपर्वत शोभायमान है ॥ २७ ॥ मेरु पर्वत के माथे पर मध्यभाग में रचीहुई दश सहस्र योजन लम्बी और मोटी, समान, चौकोर, भगवान् ब्रह्मा जी की सुवर्णमय नगरी है, ऐसा कहते हैं ॥ २८ ॥ उस ब्रह्मपुरी के चारोंओर पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्र आदि आठ लोकपालों की आठ नगरी, उन लोकपालों के वर्ण के अनुसार, ब्रह्मा जी की नगरीसे चौथाई (ढाई२सहस्र योजन)में बनी हुई हैं; (ब्रह्मा जी, इन्द्र निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और ईशान इन नौ दिक्पालों की नगरियों के नाम क्रम से मनोवती, अमरावती, तेजोवती, संयमिनी, कृष्णाङ्गना, श्रद्धावती, गन्धवती महोदया और यशोवती यह पुराणों में कहे हैं) ॥२९॥ इति पञ्चमस्कन्ध में षोडश अध्याय समाप्त॥*॥ श्रीशुकदेव जी ने कहा कि–हेराजन् ! जब राजा बलि के यज्ञमें त्रिविक्रमरूप धारण करनेवाले साक्षात् श्रीविष्णुभगवान् ने, अपने दाहिने चरण से सकल भूमण्डल को घेरकर वाम चरणसे ऊपरके सब लोक व्याप्त करदिये तब उस वाम चरण के नखसे ब्रह्माण्डकटाह की ऊपर की तै को फोड़कर उस विवर से ब्रह्माण्डके बाहर की आवरणोदक की जो भीतर प्रविष्ट हुई धारा वह, उन भगवान् के चरणकमल की धुलीहुई होने के कारण उस चरणकमल पर के केशररूप केसर से लाल २ होकर केवल अपने स्पर्शमात्र से ही सकल जगत् के पापरूप मल को हरनेवाली परन्तु स्वयं उस पाप के सम्पर्क से रहित होतीहुई, उससमय जान्हवी, भागीरथी आदि अन्य नामों से रहित होकर साक्षात्

जावनेजनारुणकिंजल्कोपरंजिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनाऽमला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽतिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्द्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥ १ ॥ यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविंदोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानांतर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाऽभिव्यज्यमानरोमपुलककोऽधुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥ २ ॥ तत ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपस आत्यंतिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहंति ॥३॥ ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरंतीन्दुमण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥ ४ ॥ तत्र चतुर्द्धा भिद्यमाना

'भगवत्पदी' इस नाम से ही उच्चारण करी जानेवाली वह जल की धारा, सहस्र युगों में वीतने वाले बड़ेभारी समय में स्वर्ग के मस्तक पर उतरी, स्वर्ग का मस्तक वही है कि–जिस को विष्णुपद कहते हैं ॥ १ ॥ उस विष्णुपद में दृढ़ सङ्कल्प, परमभगवद्भक्त, राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव रहते हैं; वह उस विष्णुपदी को देखकर, यह हमारे कुलदेवतारूप श्रीहरि के चरणों का जल है, ऐसा निश्चय रखकर प्रतिक्षण में बढ़नेवाली भक्ति से हृदय में अत्यन्त द्रवीभूत होकर, उत्कंठा के कारण परवश होने से कुछएक मुँदेहुए दोनों नेत्ररूप कमल की कलियों में से गिरनेवाली निर्मल अश्रुधारा के साथ शरीरपर रोमाञ्च खड़े होजानेपर, अब भी उस गङ्गा को परम आदर के साथ अपने शीसपर धारण करते हैं ॥ २ ॥ तदनन्तर उस ध्रुवपद के नीचे रहनेवाले और उस गङ्गा के प्रभाव को जाननेवाले सप्तऋषि भी, 'हमारे तप की सब से उत्तम सिद्धि इतनी ही (भगवान् के चरणोदक का प्राप्त होनारूप ही) है, इस से अधिक और कोई नहीं है, ऐसा निश्चय करके, सब के आत्मारूप भगवान् वासुदेव के विषें निश्चल भक्तियोग का लाभ होजाने के कारण, धर्म आदि अन्य पुरुषार्थों को तथा आत्मज्ञान को भी कुछ न समझकर, जैसे मोक्ष की इच्छा करनेवाले प्राणी अपने आप प्राप्त हुई मुक्ति को बड़े सन्मानके साथ स्वीकार करते हैं तैसे ही, उस प्राप्त हुई गङ्गा को अबभी अपने जटाजूटों में बड़े मानकेसाथ धारण करते हैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर उन सप्तऋषियों के स्थानसे अनेकों सहस्र करोड़ विमानोंके समूहोंसे भरेहुए आकाशमार्गमेंसे नीचे उतरनेवाली वह गङ्गा, चन्द्रमण्डल को भिगोकर मेरु पर्वत के शिखरपर की ब्रह्मनगरी में गिरती है ॥ ४ ॥ तहां चार प्रवाहोंमें

चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पंदंती नदनदीपतिमेवाभिनिविशंति ॥ ५ ॥ सीता-ऽलकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ॥ सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्यो ऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गंधमादनमूर्द्धसु पतित्वा अंतरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥६॥ एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥ भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद् गिरिशिखरमतिहाय शृंगवतः शृंगादवस्पन्द-माना उत्तरांस्तु कुरूनभितं उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशंति ॥ ८ ॥ तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैम-कूटान्यातिरभसतररंहसा लुठयन्ती भारतमभि वर्षं दक्षिणस्यां दिशि ज-लधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराज-सूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥९॥ अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे संन्ति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः ॥ १० ॥ तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्य-

भिन्न२ होकर सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा इन नामोंसे प्रसिद्ध वहगङ्गा, पूर्व आदि चारों दिशाओं की ओर जाकर, नद और नदियोंके पति—समुद्र में जाकर मिलजातीहै ॥ ५ ॥ उन में से सीता तो ब्रह्मसदन से, मेरुपर्वत के चारों ओर केसर की सम न दीखने वाले कोई पर्वत हैं उन के तथा उन के आगे के दूसरे पर्वतों के शिखरों पर से नीचे वहती हुई जाते जाते, गन्धमादन पर्वत के शिखरोंपर गिरकर भद्राश्व खण्ड के वीच में होकर पूर्व दिशा की ओर जाकर खारे जल के समुद्र में मिलजाती है ॥ ६ ॥ इस प्रकार माल्य वान् पर्वत के शिखर से केतुमाल खण्ड में नीचे उतरनेवाली चक्षु नामक गङ्गा, वड़ी वेग वती होकर पश्चिम दिशा के समुद्र में जाकर मिलजाती है ॥ ७ ॥ ऐसे ही मेरुपर्वत के शिखर पर से उत्तर की ओर गिरनेवाली भद्रा नामक गङ्गा, कुमुद्र पर्वत के शिखरपर से नील पर्वत के शिखरपर उतरती है, तहां से श्वेत पर्वत के शिखरपर गिरकर फिर उस को भी पीछे छोडकर शृङ्गवान् पर्वतके शिखरसे नीचे उत्तरकुरुनामक खण्डमें को जाकर उत्तर दिशा की ओर समुद्रमें जामिलतीहै ॥ ८ ॥ तैसे ही अलकनन्दानामक गङ्गा, ब्रह्मपुरी से दक्षिण की ओर गिरनेपर केसराचल, कैलास, निषध आदि पर्वतों के शिखरों को उल्लंघन कर के हेमकूट पर्वतपर जाकर तहां से कहीं न रुकनेवाले तीव्रवेगसे हिमालय के शिखरोंकोघेरकर तहांसे भरतखण्डमें जाकर दक्षिण दिशाके समुद्रमें जामिलतीहै, उसमें स्नान करनेके निमित्त जानेवाले पुरुष को पदपदपर अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञों का फल दुर्लभ नहीं है किन्तु सहज ही में मिलजाता है ॥ ९ ॥ तथा प्रत्येक खण्ड में औरभी वहुत से नद तथा मेरु आदि पर्वतों से उत्पन्न हुई नदियें सैंकडों हैं ॥ १० ॥ तिन में भी भरतखण्ड ही कर्मों

ष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥ ११ ॥ एषु पुरुषाणामयुतं पुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुतप्राणानां वज्रसंहननवलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ॥ १२ ॥ यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तवकफलकिसलयश्रिया नम्यमानविटपलताविटपिभिरुपशुंभमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिलविलासहासलीलाऽवलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥ १३ ॥ नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां

का आचरण करने के योग्य स्थान हैं तथा और जो आठ खण्ड हैं वह, स्वर्गवासी पुरुषों के शेषरहे पुण्यों का फल भोगने के स्थान हैं इसकारण उन को भूतल पर का स्वर्गस्थान कहते हैं ॥ ११ ॥ इन आठ खण्डों में देवताओं की समान नीरोग और तेजस्वी रहने वाले पुरुषों को मनुष्यों की गणनासे दश सहस्र वर्ष की आयु होतीहै तथा दश सहस्र हस्तियों की समान बलहोताहै और उनके वज्रकीसमान दृढ़ शरीरोंमें जो शक्ति,तरुणाई अवस्था और आनन्दित स्वभाव तिनके द्वारा हर्षयुक्त हुए तहांके स्त्री पुरुषोंकी सुखक्रीडा वहुतकाल पर्यन्त होतीरहती हैं अन्त में उन पुरुषों की आयु का एकवर्ष शेष रहनेपर उन की स्त्रियें एक वार गर्भ धारण करती हैं; तहां निरन्तर त्रेतायुगकी समान समय रहता है ॥ १२ ॥ उन आठों खण्डों में रहनेवाले देवताओं के स्वामी, अपने अपने सेवकों में से मुख्य २ पुरुषों के उत्तम उत्तम पूजा की सामग्री समर्पण करनेपर, सकल ऋतुओं में के पुष्पों के गुच्छे, फल और नवीन कोंपचों की शोभा से, जिन के गुद्दे और उन गुद्दों पर की शाखा नवरही हैं ऐसे वृक्षों से जहां सुन्दर वगीचा शोभायमान है ऐसे आश्रमों के स्थानों में और खण्ड की मर्यादा दिखाने वाले पर्वतों की गुफाओं में; तथा खिले हुए नानाप्रकार के नवीन कमलों की सुगन्ध से आनन्द पानेवाले राजहंस, जलमुरग, कारण्डव, सारस, और चक्रवाक आदि पक्षियों से तथा भिन्न २ जाति के भ्रमरों के समूह जहां गुञ्जार रहे हैं ऐसे निर्मल सरोवरों में, अति सुन्दर देवाङ्गनाओं के, कामदेव के उत्पन्न करेहुए विलास, हास्य और लीला के कटाक्षों ने जिन के मन और दृष्टि को खैंच लिया है ऐसे होकर, जल क्रीड़ा आदि विचित्र विनोदों से अपनी इच्छा के अनुसार क्रीड़ा करते हैं ॥ १३ ॥ नवों खण्डों में भगवान्, महापुरुष, नारायण, तहां रहनेवाले पुरुषों के ऊपर आगे कहा हुआ अनुग्रह करने के निमित्त अपनी मूर्त्तियों के समूह के द्वारा अपना स्वरूप अब भी

तदनुग्रहायात्मनश्चतुर्व्यूहेनात्मनाऽद्यापि सन्निधीयते ॥ १४ ॥ इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान्न ह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥ १५ ॥ भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥ ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥ १७ ॥ भजे भजन्यारणपादपङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ॥ भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥ ॥ १८ ॥ न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ॥ ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥ १९ ॥ असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ॥ न नागवध्वो-

प्रकट करते हैं ॥ १४ ॥ इलावृत खण्ड में तो एक भगवान् शिवजी ही पुरुष रहते हैं, क्योंकि–तहां पार्वती के शाप के कारण को जानने वाला कोई भी दूसरी ओर का पुरुष, प्रवेश नहीं करता है; उस खण्ड में प्रवेश करनेवाले पुरुष को स्त्री का स्वरूप प्राप्त होता है, उस का कारण पार्वती का शाप भी आगे नवमस्कन्ध में मैं तुम से कहूँगा ॥ १५ ॥ उस इलावृत खण्ड में, जिन की स्वामिनी पार्वती हैं ऐसे दश करोड़ सहस्र स्त्रियों के समूह जिन की सेवा करते हैं ऐसे शिवजी, अपनी कारणरूप चतुर्व्यूह मूर्त्ति (वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षण यह) धारण करनेवाले भगवान् महापुरुष की सङ्कर्षण नामक चौथी तामसी मूर्त्तिका, समाधि के द्वारा मन में चिन्तवन कर के आगे कहे हुए मन्त्र का जप करते हुए उस मन्त्र की स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् महादेव जी कहते हैं कि–जो स्वयं अव्यक्त हैं और जिन से सकल गुण प्रकट होते हैं उन महापुरुष अविनाशी भगवान् को ओंकार पूर्वक वारम्वार नमस्कार हो ॥ १७ ॥ हे भजन करने योग्य परमेश्वर ! जिन के चरणकमल भक्तों को शरण देनेवाले हैं ऐसे तुम, षड्गुण ऐश्वर्य के परम स्थान हो, तुमने भक्तों के विषैं अपना स्वरूप अत्यन्त प्रकट किया है, तुम भक्तों को संसार के पार करनेवाले हो और अभक्तों को संसार में डालनेवाले हो, ऐसे तुम्हारी मैं उपासना करता हूँ ॥ १८ ॥ हे भगवन् ! हम क्रोध का वेग न जीतनेवालों की दृष्टि, जैसे विषयों से लिप्त होती है तैसे जगत् को शिक्षा देने के निमित्त उस की ओर को देखते हुए भी तुम्हारी दृष्टि, माया सम्बन्धी विषय वासनाओंवाली चित्त की वृत्तियों से किञ्चिन्मात्र भी लिप्त नहीं होतीहै, फिर कौन इन्द्रियों को वश में करने की इच्छा करनेवाला पुरुष तुम्हारा आदर नहीं करेगा ? ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! तुम पापदृष्टि पुरुष को, अपनी माया से

हेणं ईशिरे ह्रियो यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः २० ॥ यमाहुरस्य स्थिति-
जन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ॥ न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं
भूमण्डलं मूर्द्धसहस्रधामसु ॥२१॥ यस्याद्य आसीद्गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो
भगवानजः किल ॥ यत्संभवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं
सृजे ॥२२॥ एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः॥
महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम्॥२३॥ यन्निर्मितां कर्ह्यपि
कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ॥ न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा तस्मै
नमस्ते विलयोदयात्मने॥२४॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तदशो
ऽध्यायः ॥१७॥ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुत-
स्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनूं धर्ममयीं

मस्त हुए से और सुरा एवं ताल आदि का आसव सेवन करने से लाल २ नेत्रवाले से प्रतीत होते हो और तुम्हारे चरणों की पूजा के समय उन चरणों के स्पर्श से जिन के मन कामदेव ने मोहित करलिये हैं ऐसी नागपत्नियें, लज्जित होकर आगे भुजा आदि का पूजन करने को समर्थ नहीं हुई ऐसे आपका कौन आदर नहीं करेगा ? ॥ २० ॥ हे ईश्वर ! तुम जगत् की उत्पत्ति, पालन और नाश के कारण हो और तीनों गुणों से रहित होने के कारण अनन्त हो, ऐसा वेदमन्त्र कहते हैं, अपने सहस्र मस्तकरूप स्थानों मे से कौन से स्थान में यह भूमण्डल सरसों की समान स्थित है सो नहीं जानते हो ऐसे अनन्तरूप आप को नमस्कार हो ॥ २१ ॥ जिन तुम्हारा गुणों के कारण जो पहिला अवतार है उसका नाम महत्तत्व है, सत्वगुण का आश्रय होने के कारण वही चित्तरूप से वासुदेवरूप और ब्रह्मारूप है, उन ब्रह्माजी से उत्पन्न हुआ मैं अपने त्रिगुणरूप तेजसे (अहङ्कार से) सात्विक, तामस और राजस देवताओं के, महाभूतों के और इन्द्रियों के समूहों को रचता हूँ ॥ २२ ॥ और यह महत्तत्त्व, अहङ्कार तथा सत्व-तम-रजोगुणरूप देवताओं के समूह यह सबही हम, डोरी में बाँधकर वश में करेहुए पक्षियों की समान, तुम महात्मा के वश में रहतेहुए तुह्मारे ही अनुग्रह से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं ॥२३॥ सत्व आदि गुणोंकी सृष्टि से मोहित हुआ यह प्राणी, जिसकी रचीहुई और कर्मों की गाँठ पर गांठ लगानेवाली स्त्री पुत्रादिरूप मायाको ही अनायासमें जानता है परन्तु उस को तरने का उपाय कभी भी नहीं जानता है ऐसे संहार और उत्पत्तिस्वरूप तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ २४ ॥ इति पञ्चम स्कन्ध में सप्तदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्री शुकदेवजी ने कहाकि—हेराजन् ! तैसे ही भद्राश्व खण्ड में उस खण्ड का अधिपति धर्म का पुत्र भद्रश्रवा और उस के मुख्य सेवक पुरुष रहते हैं, वह प्रत्यक्ष भगवान् वासुदेव

हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना सन्निधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥ १ ॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥ ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ २ ॥ अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ॥ ध्यायन्न-सद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः ॥ ३ ॥ वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ॥ तथाऽपि मुह्यन्ति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ ४ ॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ ५ ॥ वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः ॥ प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥ ६ ॥ हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तर-त्राभिधास्ये तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकु-

की हयग्रीव नामक धर्ममय प्रिय मूर्ति का उत्तम समाधि के द्वारा चिन्तवन करके आगे कहेहुए मन्त्र का जप करतेहुए उन की स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ भद्रश्रवा और उस के सेवक कहते हैं कि–हेभगवन्! अन्तःकरण को शुद्ध करनेवाले धर्मरूप आप को ओंकार के साथ नमस्कार हो ॥ २ ॥ अहो! तुच्छ विषय सुख को भोगने के निमित्त पापों का चिन्तवन करनेवाला यह प्राणी मरेहुए पुत्र को वा पिता को जलाकर छोड़कर उनके धन से अपना निर्वाह कर जीवित रहने की इच्छा करता है, परन्तु अपने को भी मारनेवाला काल अकस्मात् आवेगा, ऐसा देखताहुआ भी नहीं देखता है इसकारण यह भगवान् की लीला बड़ी आश्चर्य कारिणी है ॥३॥ अहो! यह सम्पूर्ण जगत् नाशवान् है, ऐसा विवेकी पुरुष, शास्त्र और अनुभव से जानते हैं, तैसे ही अध्यात्मज्ञानी समाधि में प्रत्यक्ष देखते हैं, तथापि हे जन्मरहित परमेश्वर! वही पुरुष तुम्हारी मायासे मोहित होतेहैं यह तुम्हारी लीला अति आश्चर्य कारिणीहै अतः मैं शास्त्र आदिकों के परिश्रम को त्यागकर केवल जन्म आदि विकारों से रहित आप को नमस्कार करताहूँ॥४॥हेपरमेश्वर! अकर्त्ता और आवरणरहित आपके, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप कर्म, वेदने माने हैं, सो योग्य ही है, आश्चर्य कारक नहीं है, क्योंकि–तुम माया के कारण सब के आत्मा, सब कार्य उत्पन्न करनेवाले और वास्तव में उपाधि रहित हो ॥ ५ ॥ हेदेव ! मनुष्य और अश्व की समान शरीर (हयग्रीव अवतार) धारण करनेवाले तुमने, प्रलय काल में ब्रह्माजी के मुख में से निद्रारूप दोष के कारण गिरेहुए (अथवा दैत्य के चुराएहुए) वेद पाताल में से आकर याचना करनेवाले ब्रह्माजी को समर्पण करे थे, ऐसे सत्यसङ्कल्प आप परमेश्वर को नमस्कार हो ॥ ६ ॥ हरिवर्ष खण्ड में भी भगवान्, नृसिंहरूप से रहते हैं, उस रूप को ग्रहण करने का कारण

लैतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषै-रुपास्ते इदं चोदाहरति ॥ ७ ॥ ॥ ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्ते-जसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रंधय रंधय तमो ग्रस ॐस्वा-हा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐक्ष्रौं ॥ ८ ॥ स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायंतु भूतानि शिवं मिथो धिया ॥ मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥ माऽगारदारात्मजवित्तबन्धुषु संगो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ॥ यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान् सिद्ध्यत्यदूरा-न्न तथेंद्रियप्रियः ॥ १० ॥ यत्संगलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुःसंस्पृशतां हि मानसम् ॥ हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽगजं को वै न सेवेत मुकुंद-विक्रमम् ॥११॥ यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः॥

आगे (सप्तम स्कन्ध में) मैं तुम से कहूँगा, परमेश्वर के गुणों के पात्र, परमभगवद्भक्त और दैत्य दानवों के कुल को पवित्र करनेवाले, सुन्दर स्वभाव तथा आचरणवाले प्रह्लाद जी, उस खण्ड में के पुरुषों के साथ उन भगवान् के प्रिय स्वरूप की अनन्यभक्ति से उपासना करते हैं और इस मन्त्र तथा स्तोत्र का जप करते हैं ॥ ७ ॥ हे भगवन् नर-सिंह ! तुम अन्धकार का नाश करनेवाले अग्नि आदि तेजों को भी प्रकाशित करनेवाले हो आप को ॐकारपूर्वक वारम्वार नमस्कार हो, आप प्रकट हों प्रकट हों, हेवज्रनख । हे वज्र की समान दाढ़वाले ! तुम हमारी कर्मवासनाओं को भस्म करडालो और 'ॐ स्वाहा' ऐसा कहकर हमारे अज्ञानरूप अन्धकार का ग्रास करजाओ, तथा 'ॐ क्ष्रौम्' ऐसा कहकर इस जीव को जैसे वार वार अभय प्राप्त हो तैसा करो ॥ ८॥ हे प्रभो ! सकल जगत् का कल्याण हो, दुष्ट पुरुष क्रूरता को छोड़कर शान्ति धारण करें, सकल प्राणीमात्र अपनी बुद्धि के द्वारा परस्पर के कल्याण का विचार करें, उनका मन शान्ति का सेवन करे, हमारी और सकल प्राणियों की बुद्धियें निष्काम होकर अधोक्षज भगवान् में लगें ॥ ९ ॥ घर, स्त्रियें, पुत्र, धन और बान्धवों में हमारी आसक्ति न हो, यदि कदाचित् आसक्ति हो तो भगवान् के भक्तों में ही हो, क्योंकि—जो पुरुष, भगवान् के भक्तों की सङ्गति से विषयों में आसक्त न होकर प्राणों के निर्वाह भर को भोजन आदि मिलने से सन्तुष्ट और जितेन्द्रिय होता है उस को शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है और घर आदि में आसक्त रहनेवाले पुरुष को नहीं प्राप्त होती है ॥ १० ॥ जिन भगवद्भक्तों की सङ्गति से प्राप्तहुए और अत्युत्तम पराक्रमी भगवान् के चरित्रों को श्रवण आदि करके सेवन करनेवाले पुरुषों के मन में प्राप्त-हुए जन्मरहित भगवान्, मन में की पापवासनारूप मलों का नाश करते हैं और गङ्गा आदि तीर्थ तो वारंवार सेवन करनेवाले पुरुष के केवल शरीर के ही मल को दूर करते हैं, इसकारण उन सत्पुरुषों की कौन सेवा नहीं करेगा ? ॥ ११ ॥ जिस पुरुष की भगवान् के

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥ १२ ॥ हरिर्हि साक्षाद्भगवाञ्छरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥ हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥ १३ ॥ तस्माद्रजोरागवि-पादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति ॥ १४ ॥ केतुमालेऽपि भगवान्कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितृणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाऽहोरात्रपरिसं-ख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥ १५ ॥ अतीवसुललितगतिविलासविलसितरु-चिरहासलेशावलोकलीलया किंचिदुत्तंभितसुन्दरभ्रूमण्डलसुभगवदनारविंद-

विषैं निष्काम भक्ति होती है उस के ऊपर ईश्वर का अनुग्रह होता है और उसके समीपमें सकल देवता, धर्म ज्ञान आदि सम्पूर्ण गुणों के साथ नित्य निवास करते हैं, जो मनुष्य भगवान् की भक्ति नहीं करता है निःसन्देह मन के राज्यसे, बाहर के मिथ्याभूत विषयों की ओर को दौड़नेवाले उस पुरुष को महात्मा पुरुषोंके ज्ञान वैराग्य आदि गुण कहां से प्राप्त होंगे, ॥ १२ ॥ जैसे मीन का जीवन जल के अवलम्बन से ही होता है इसकारण वह जल उस का आत्मा है तैसे ही साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही देहधारी जीवों के आत्मा हैं इसकारण उनको छोड़कर यदि कोई परम प्रसिद्ध पुरुषभी घरमें आसक्त होय तो उस का महत्त्व (बड़प्पन), स्त्रीपुरुषरूप दम्पतियों में के पुरुष के महत्त्व की समान केवल अवस्था का ही महत्त्व होता है परन्तु ज्ञान आदि गुणों का महत्त्व नहीं होता है ॥ १३ ॥ इस कारण हे दैत्यों ! तुम, तृष्णा, प्रीति, खेद क्रोध, अहङ्कार, काम, भय, दीनता और चिन्ता इन सब के मूल कारण तथा जन्ममरणरूप संसार के बारम्बार घूमनेवाले चक्ररूप घर को त्यागकर नृसिंह भगवान् के निर्भय चरण की सेवा करो ॥ १४ ॥ केतुमाल खण्ड में भी, लक्ष्मी का और सम्वत्सररूप देव की कन्या और पुत्रों का प्रिय करने की इच्छा से भगवान् कामदेव के स्वरूप में रहते हैं; वह कन्या और पुत्र उस खण्ड के अधिपति होकर पुरुष की आयु के प्रमाण से सौ वर्ष की दिन रात्रि और उन रात्रियों के अभिमानी देवता ३६००० कन्या तथा दिनों के अभिमानी देवता ३६००० पुत्र हैं; प्रति वर्ष के अन्त में विष्णुभगवान् के चक्र के तेज से उन कन्याओं के मन में भय उत्पन्न होकर उन के गर्भ गर्भाशयों में से चलायमान हो मरकर गिरपड़ते हैं ॥ १५ ॥ तहां रहनेवाले वह कामदेव, अपनीं अत्यन्त सुन्दर गति के विलास से शोभित, सुन्दर मन्दहास्यवाले अवलोकन की लीला से कुछएक ऊपर को उठे हुए सुन्दर भ्रुकुटिमण्डल से अति रमणीय दीखनेवाले मुखकमल की शोभा से लक्ष्मी को आनन्दित करते हुए अपनी इन्द्रियों को

श्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥ १६ ॥ तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमा देवी सम्वत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेता ऽहस्सु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इदं चोदाहरति॥१७॥ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ओं नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलायच्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे वलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ १८ ॥ स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषीकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ॥ तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥ १९ ॥ स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ॥ स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥ २० ॥ या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत्साऽखिलकामलम्पटा॥ तदेव रासीप्सितमीप्सितो-

तृप्त करते हैं ॥ १६ ॥ उन भगवान् के मायामय स्वरूप की उपासना, लक्ष्मीदेवी, रात्रि के समय सम्वत्सररूप प्रजापति की कन्याओं को साथ लेकर और दिन के समय उन कन्याओं के पतियों को साथ लेकर करती है और आगे लिखे मन्त्र का जप कर के स्तुति करती है ॥ १७ ॥ हे भगवन् कामदेव ! इन्द्रियों के नियन्ता, सब प्रकार की उत्तम वस्तुओं के द्वारा जिन का स्वरूप प्रतीत होता है ऐसे, क्रियाशक्ति–ज्ञानशक्ति--अन्तःकरण में के सङ्कल्प निश्चय, आदि धर्म और उन के विषयों के स्वामी, ग्यारह इन्द्रियें और पांच विषय इन सोलह अंशों से युक्त, वेद में कहे कर्मों से प्राप्त होनेवाले, अन्नरूप, अमृतरूप, सर्वरूप, मनकी शक्तिरूप, इन्द्रियों की शक्तिरूप, देह की शक्तिरूप, और सुन्दर काम रूप हो,' ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ' इस वीज के उच्चारण पूर्वक मन से और देह से वा इस लोक और परलोक में वार २ नमस्कार हो ॥ १८ ॥ हे भगवन् ! जो स्त्रियें इस लोक में अपनी इन्द्रियों के नियन्ता तुम पति की नानाप्रकार के व्रतो से आराधना करके तुम्हारे समीप अन्य पति प्राप्त होने की प्रार्थना करती हैं, उन को और पति मिलते हैं परन्तु वहपति, परतन्त्र होने के कारण उन स्त्रियों की प्यारी सन्तान, धन और आयु की रक्षा करने को समर्थ नहीं होते हैं ॥ १९ ॥ जो काल आदि किसी से भी भय न मानकर, काल आदि के भय से व्याकुल हुए प्राणियों की सब प्रकार से रक्षा करता है वही पति है, ऐसे पति एक तुमही हो, क्योंकि–पूर्ण आनन्द की प्राप्ति से अधिक तुम किसी को भी नहीं मान ते हो, अन्य अज्ञानी विषयाभिलाषी दीनजनोंको स्वतन्त्रता न होने के कारण काल आदि से वा राजा आदि से परस्पर भय प्राप्त होता है ॥ २० ॥ हेभगवन् ! जो स्त्री केवल तुम्हारे चरणकमल का पूजन करना ही चाहती है, फल की इच्छा नहीं करती है, उस के

ऽर्चितो यदीश्वरयाच्ञा भगवन्प्रतप्यते ॥ २१ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुराद-
यस्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रिये धियः ॥ ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विन्दन्त्यहं
त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ २२ ॥ स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं कराम्बुजं यत्त्वद-
धायि सात्वतां ॥ बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं वि-
भुरिति ॥ २३ ॥ रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरु-
षस्य मनोः प्राक् प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं
चोदाहरति ॥ २४ ॥ ॐनमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे
सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥ २५ ॥ अन्तर्बहिश्चाखिललोकपा-
लकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ॥ स ईश्वरस्त्वं य इदं वशे नयन्नाम्ना यथा

सकल ही मनोरथ पूर्ण होजाते हैं, और यदि वह किसी प्रकार के फल की इच्छा रखकर तुम्हारा पूजन करती है तो तुम उस को वही एक फल देते हो, जिस फल की भोगकर समाप्ति होने पर, याचना वृथा जाने के कारण वह फिर दुःख पाती है ॥ २१ ॥ हे अजित ! मुझे पाने के निमित्त, विषय सुख की इच्छा रखनेवाले ब्रह्माजी, शिव, देवता और दैत्य आदिलोक, उग्रतप करते हैं परन्तु तुम्हारे चरणकमलके, सब से उत्तम आश्रय के विना मेरी अर्थात् मेरे कटाक्षों से होनेवाली सम्पत्तियों की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि—मेरा हृदय तुम में है अर्थात् मैं तुम्हारे अधीन होकर वर्त्ताव करती हूँ इस कारण तुम्हारी सेवा करनेवालेकी ओर को ही देखती हूँ दूसरे की ओर को नहीं देखतीहूँ॥२२॥ हे अजित ! जिन के भजन के विना कोई भी पुरुषार्थ नहीं है ऐसे तुमने, सकल मनोरथों को पूर्ण करनेवाला और भक्तों का स्तुति कराहुआ जो अपना करकमल, कृपा करके भक्तों के मस्तकपर स्थापन करा है उसको मेरे मस्तकपरभी स्थापन करो; हे सब से श्रेष्ठ! तुमने अपने वक्षःस्थलपर मुझे चिन्हरूपसे धारण करा है इस से मेरे ऊपर तुम्हारा आदर है ऐसा सिद्ध होता है परन्तु मेरा केवल आदर करना और भक्तों के ऊपर बडीभारी दया-करना, यह आश्चर्य है; वास्तव में कर्त्तुं अकर्त्तुं अन्यथाकर्त्तुं समर्थ तुम्हारे चरित्रों में तर्क करने की किसकी शक्ति है ? किसीकी नहीं॥२३॥रम्यक खण्डमें भी उस खण्डके अधिपति मनु को, भगवान् ने जो अपना अत्यन्त प्रिय मत्स्यावताररूप पहिले दिखायाथा, उस रूपकी वह मनु, अबतक परमभक्ति के साथ आराधना करता है और इस आगे कहेहुए मन्त्र का जप करता है ॥ २४ ॥ सबों में मुख्य, सत्वगुण प्रधान, सूत्रात्मा, इन्द्रियशक्तिरूप अंतःकरणशक्तिरूप और देहशक्तिरूप जो महामत्स्यरूप भगवान उनको मेरा ॐकार पूर्वक वार वार नमस्कारहो ॥ २५ ॥ और जैसे कोई पुरुष काठकी पुतलीको डोरी में बाँधकर अपने वशमें करलेता है तैसे ही वेदरूप महान् शब्द करनेवाले तुमने विधि-

दारुमयीं नरः स्त्रियं ॥ २६ ॥ यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ॥ पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥ २७ ॥ भवान्युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ॥ मया सहोरु क्रमतेज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥ २८ ॥ हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति ॥ मन्त्रमिमं चानुजपति ॥ २९ ॥ ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥ ३० ॥ यद्रूपमेतन्निजमाययार्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ॥ संख्या न यस्यास्त्ययथ-

---

निषेध के आश्रय ब्राह्मण आदि नामों से उन कर्मों में लगाकर इस जगत् को अपने वश में करलिया है, वह ही ईश्वर तुम, सकल लोकों के पालक ब्रह्मादिकों को भी अपना स्वरूप न दिखातेहुए सकल प्राणियों के भीतर प्राणरूप से बाहर वायुरूप से विचरते हो ॥ २६ ॥ हे भगवन्! दूसरे की उन्नति को न सहना इस मत्सरतारूप ज्वर से युक्त इन्द्रादि लोकपाल, भिन्न २ रहकर वा सब इकट्ठे होकर भी, जिन प्राणरूप तुम्हें त्यागकर द्विपद (मनुष्य आदि), चतुष्पद (गौ महिष आदि), जङ्गम और स्थावर जो कुछ प्राणी यहां दीखरहे हैं उनमें से थोड़े सों की भी रक्षा करने को समर्थ नहीं हुए वह(प्राण रूप से रक्षा करनेवाले) तुम ही ईश्वर हो ॥२७॥ हे भगवन्! जन्मरहित तुम, औषधि और लताओं की आश्रय इस पृथ्वी को मेरे (मनु के) सहित धारण कर के शक्ति से बड़ी २ तरङ्गोंवाले प्रलयकाल के समुद्र में बहुत काल पर्यन्त विचरे, तिन जगत् के प्राणों के समूहों को वश में रखनेवाले तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ २८ ॥ हिरण्मय खण्ड में भी, कूर्मरूप धारण करनेवाले भगवान् निवास करते हैं; उन की, उस अपनेको अति प्रिय लगनेवाली मूर्त्ति की उपासना, तहां रहनेवाला पितृगणों का स्वामी अर्यमा, उस खण्ड के पुरुषों के साथ करता है और इस आगे के मन्त्र का जप करता है ॥ २९ ॥ जो पूर्ण सत्वगुण प्रधान हैं, जिन के रहने के स्थान का (जल में विचरते रहने के कारण) पता नहीं लगताहै, जो कालके प्रमाणसे बाहर हैं, ऐसे सर्वव्यापक और सर्वाधार कूर्मरूप तुम भगवान् को ॐकारपूर्वक वारम्वार नमस्कार हो ॥३०॥ हे भगवन्! बहुत से रूपों से निरूपण कराहुआ और आप की माया का प्रकाशित कराहुआ यह दीखनेवाला आदि जगत् तुम्हारा ही स्वरूप है और जैसे मृगतृष्णाके जल की गिनती (इतने मन वा इतने भाग में है) नहीं होसक्ती तैसे ही जगत्स्वरूप,तुम्हारी मिथ्यारूपसे अनुभव होनेके कारण गिनती नहीं होसक्ती ऐसे अनिर्वचनीय प्रपञ्च के आकाररूप तुम भगवान् को

थोपलंभनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ ३१ ॥ जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम्॥ द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥ ३२ ॥ यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयं ॥ संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ॥ ३३ ॥ उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी हैषां भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषदमावर्त्तयति ॥ ३४ ॥ ॐनमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिंगाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥ ३५ ॥ यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ॥ मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ३६ ॥ द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभि-

---

नमस्कार हो ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! गर्भाशय में से जन्म लेनेवाले (मनुष्य आदि), पसीने से उत्पन्न होनेवाले (जूँ, खटमल आदि), अण्डे में से निकलनेवाले (पक्षी आदि), भूमि को फोड़कर उत्पन्न होनेवाले (वृक्ष आदि), स्थावर, जङ्गम, देवता, ऋषि, पितर पञ्चमहाभूत, इन्द्रियें, स्वर्ग 'अन्तरिक्षलोक, भूमि, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र इस प्रकार भिन्न २ नामों से कहने में आनेवाले तुम एक ही हो ॥ ३२ ॥ असंख्य भेदोंवाले नाम, रूप और आकारों से युक्त तुम्हारे विषैं, कपिल आदि मुनियों ने जो यह चौवीस तत्त्वों की संख्या (स्पष्ट करने के निमित्त) कल्पना करी है वह तत्त्वज्ञान से दूर होती है, ऐसे सांख्य के सिद्धान्तरूप तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ ३३ ॥ उत्तरकुरु नामक खण्ड में भी, वराह अवतार धारण करनेवाले भगवान् यज्ञपुरुष रहते हैं, तहां दिव्य रूप धारण करनेवाली यह भूमि, कुरुखण्ड में रहनेवाले पुरुषों के साथ उन वराह रूप भगवान् की उपासना करती है और इस मन्त्ररूप सब से उत्तम उपनिषद् का जप करती है ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! मन्त्रों से जिन का यथार्थ ज्ञान होता है, यज्ञ और क्रतु जिन के स्वरूप हैं, बड़े २ याग जिन के अङ्ग हैं, कर्मों कर के जो शुद्ध हैं, और तीनों युगों में जो प्रसिद्ध होते हैं ऐसे वराहरूप महापुरुष आप को ॐकारपूर्वक वारम्वार नमस्कार हो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! अनेकों प्रकार के कर्म और उन के फलों से प्रकाशित न होनेवाले तुम्हारे स्वरूप को देखने की इच्छा करनेवाले विद्वान् और चतुर पुरुष, जैसे अग्निहोत्री अरणि नामक काठ में मथने के दण्डे से अग्नि को मथते हैं तैसे ही अपने शरीर इन्द्रिय आदिकों में मनरूप ज्ञान के साधन की सहायता से तुम्हारा विचार करते हैं और ऐसा करनेपर जिन तुम्हारा स्वरूप प्रकट होता है ऐसे तुम्हें मेरा नमस्कार हो ॥ ३६ ॥ यम नियम आदि साधनों से जिन की बुद्धि आत्मा का स्वरूप जानने को समर्थ हुई है

मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयाऽङ्गातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥ ३७ ॥ करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ॥ माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ३८ ॥ प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ॥ कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणताऽस्मि तं विभुमिति ॥ ॥ ३९ ॥ इति० भा० म० पं० भुवनकोशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ किंपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताऽभिरामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान्सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥ १ ॥ आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तु-

ऐसे पुरुष, विचार कर के, और विषय, इन्द्रियों के व्यापार, देवता, देह, काल तथा अहङ्कार इन माया के कार्य रूप लक्षणों से, ' शाखाचन्द्रन्याय कर के ' × जिन के स्वरूप को वास्तवरूप से जानते हैं, उन माया के कारण उत्पन्न होनेवाले आकार से रहित तुम परमेश्वर को वारंवार नमस्कार हो ॥ ३७ ॥ जैसे चुम्बक का आश्रय करनेवाला लोहे का टुकडा, उस चुम्बक के समीप होनेमात्र से ही घूमता है तैसे ही तुम्हारे अवलोकन करनेमात्र से माया, अपने सत्व, रज, तमरूप गुणों के द्वारा ' तुम्हारे अपने निमित्त नहीं किन्तु जीवों के निमित्त इच्छा करे हुए ' जगत का स्थिति–संहार और उत्पत्तिरूप कार्य करती है, ऐसे गुणों के साक्षी तुम्हें नमस्कार हो ॥ ३८ ॥ जगत् के कारणभूत वराह रूप तुम भगवान्, मुझे दाढ़ की नोकपर रखकर, रसातल में से निकलकर प्रलयकाल के समुद्र में से हाथी की समान बाहर होनेवाले और तदनन्तर प्रतिगज (एक हाथी से युद्ध करने को आनेवाले दूसरे हाथी) की समान आये हुए हिरण्याक्ष दैत्य को मारकर क्रीड़ा सी करते रहे ऐसे तुम समर्थ भगवान् को मैं नित्य नमस्कार करती हूं ॥ ३९ ॥ इति पञ्चम स्कन्ध में अष्टादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि–हे राजन् ! किम्पुरुष नामक खण्ड में, लक्ष्मण जी के ज्येष्ठ भ्राता भगवान् आदिपुरुष सीतापति रामचन्द्र जी की, सेवा करने में तत्पर, परमभगवद्भक्त हनुमान् जी, किन्नरों के साथ अनन्यभक्ति से उपासना करते हैं ॥ १ ॥ और गंधर्वों की वारंवार गान करी हुई, अपने स्वामी भगवान् रामचन्द्र जी की, परमकल्याणकारिणी कथा को, किम्पुरुषों के मुख्य आर्ष्टिषेण के साथ एकाग्रचित्त से सुनते हैं और स्वयं यह

× 'शाखाचन्द्रन्याय' का अभिप्राय यह है कि–जैसे किसी पुरुषको चन्द्रमादिखाना हो तो कहतेहैं कि–देखो वह वृक्षकी शाखा के ऊपर दीखरहाहै तो वह चन्द्रमा शाखा के ऊपर नहीं होताहै तथापि शाखा के द्वारा उसका ज्ञान होता है, इसीप्रकार यहां जानना ।

भगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥ २ ॥ ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥ ३ ॥ यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥ ४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ॥ कुतोऽन्यथा स्यू रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ ५ ॥ न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ॥ न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न ल-

गाते हैं कि—॥ २ ॥ जिन की कीर्त्ति पवित्र है, जिन के लक्षण स्वभाव और आचार श्रेष्ठ हैं, जिन्हों ने अपने मन को वश में करलिया है, जो लोकमार्ग के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले हैं, जो साधुपने की कसौटी ही (परमस्थान) हैं और जो वास्तव में परमेश्वर होकर भी लोकों को शिक्षा देने के निमित्त ब्राह्मणों के भक्त हैं, तिन महापुरुषरूप, राजाधिराज, भगवान् रामचन्द्र जी को मेरा वारंवार ॐकारपूर्वक नमस्कार हो ॥ ३ ॥ वेद में जो-एक परमशुद्ध, अनुभवरूप, अपने प्रकाश से अनेकों प्रकार की जाग्रत् आदि अवस्थाओं का तिरस्कार करनेवाला, अन्तर्यामी, शान्तरूप, सुन्दरबुद्धिवाले पुरुषों करके ब्रह्मरूप से जानाहुआ नामरूप से पर और अहङ्कार से रहित (रामरूप) तत्त्व प्रसिद्ध है उसकी मैं शरण जाता हूँ ॥ ४ ॥ प्रभु का इस भूतलपर जो (राम) अवतार हुआ है वह केवल रावण के वध के निमित्त ही नहीं हुआ है, किन्तु इस संसार में स्त्रीसङ्ग आदि से होनेवाले दुःख दुर्निवार हैं, ऐसी मनुष्यों को शिक्षा देने के निमित्त भी हुआ है, यदि ऐसा न मानाजाय तो निजस्वरूप में मग्न रहनेवाले जगत् के आत्मस्वरूप ईश्वर को (श्रीरामचन्द्र जी को) सीता जी के विरह से दुःख होना कैसे बनसक्ता है ? ॥ ५ ॥ क्योंकि वह भगवान् वासुदेव (श्रीरामचन्द्र जी) धीर पुरुषों के आत्मा और परमहितकारी होने के कारण त्रिलोकी में कहीं भी आसक्त नहीं होते, वह सीता के वियोग से होनेवाले मोह (दुःख) को नहीं प्राप्त होते और वह लक्ष्मण जी का भी त्याग + करने को योग्य

+ यह कथा रामायण में इसप्रकार लिखी है कि-एकसमय देवताओं के दूत ने अयोध्या में आकर श्रीरामचन्द्रजी के साथ कुछ गुप्त वार्त्तालाप करने के निमित्त श्रीरामचन्द्रजी से यह प्रार्थना करी कि-हम दोनों के वार्त्तालाप करते समय यदि यहां कोई तीसरा मनुष्य आजाय तो तुम उसका वध करो, इस को श्रीरामचन्द्रजी ने स्वीकार करके द्वारपर लक्ष्मणजी को बैठादिया और उसके साथ गुप्तभाषण करा इतने ही में आयेहुए दुर्वासा ऋषि का वृत्तान्त श्रीरामचन्द्रजी से कहने के निमित्त तहां लक्ष्मणजी ने प्रवेश किया तब रामचन्द्रजी उनका वध करने को उद्यत हुए और आयेहुए वसिष्ठजी के कहने से वधके स्थान में उनको त्यागदिया ॥

क्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ ६ ॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ॥ तैर्य—द्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये वत लक्ष्मणाग्रजः ॥७॥ सुरोऽसुरो वाऽप्यथवा नरोनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ॥ भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥ ८ ॥ भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य आकल्पांतमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलंभनमनुग्रहायात्मवतामनुकंपया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥ ९ ॥ तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृणाति ॥ १० ॥ ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय पर-

न होते; इस से सिद्ध होता है कि—उन के कार्य केवल लोकों को शिक्षा देने के निमित्त ही थे ॥ ६ ॥ श्रेष्ठ कुल में जन्म, सुन्दरता, कथन की उत्तमशक्ति, बुद्धि वा आकार उन महात्मा रामचन्द्र जी के सन्तोष का कारण नहीं है, क्योंकि उन लक्ष्मण जी के ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्र जी ने, उन कुलीनता-सुन्दरता आदि गुणों से रहित होने पर भी हम वनचारी वानरों को मित्र मानकर स्वीकार किया है ॥ ७ ॥ तिस से देवता हो, दैत्य हो, मनुष्य हो, वा पशु पक्षी आदि कोई भी हो, जो सर्वात्मभाव से उत्तम सुकृत के जाननेवाले (थोड़ा भजन करने पर भी बहुत माननेवाले) मनुष्य अवतारधारी रामरूप श्रीहरि की सेवा करेगा वही, उन को प्रिय होगा, श्रीरामचन्द्र जी ऐसे दयालु हैं कि—वह अयोध्यावासी सकल प्राणियों को अपने साथ विमान पर बैठाकर स्वर्गलोक को लेगए ॥ ८ ॥ इस भरतखण्ड में भी जिन का स्वरूप स्पष्टरूप से लोकों के जानने में नहीं आता है ऐसे भगवान्, नर-नारायण नामक दो मूर्त्ति धारण करके बदरिकाश्रम में कृपावश धैर्यवान् पुरुषों के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त,कल्प की समाप्तिपर्यन्त वृद्धि को प्राप्तहुए—धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शान्ति और विषयों के त्याग के द्वारा जिस से आत्मा का अनुभव प्राप्त होता है ऐसे तप को करते रहते हैं ॥ ९ ॥ उन भगवान् की, भगवान् के कहेहुए सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र सहित, 'जिस में भगवान् के पराक्रम का वर्णन है ऐसे' पञ्चरात्र आगम का सावर्णि मनु को उपदेश करनेवाले भगवान् नारद जी, वर्णाश्रम धर्म का आचरण करनेवाली भरतखण्ड की प्रजाओं के साथ उपासना करते हैं और इस अर्थ के मन्त्र का जप करते हैं कि—॥ १० ॥ इन्द्रियों को वश में रखना ही जिनका स्वभाव है, जो अहङ्कार से रहितहैं,भगवान् के भक्त ही जिनका द्रव्यहै, जो ऋषियों में श्रेष्ठ हैं, परमहंसों के भी जो परमगुरु हैं और आत्मस्वरूप में निमग्न रहनेवाले

महंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥ ॥ ११ ॥ गायति चेदं ॥ कर्त्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ॥ द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥ ॥ १२ ॥ इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगाद यत् ॥ यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः॥ १३॥ यथैहिकामुष्मिककामलंपटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिंतयन् ॥ शंकेत विद्वान्कुक-लेवरात्ययाद्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥ १४ ॥ तन्नः प्रभो त्वं कुक-लेवरार्पितां त्वन्माययाऽहंममतामधोक्षज ॥ भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावजमिति ॥ १५ ॥ भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरि-च्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्ल-कः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेंद्रो वारिधारो विंध्यः शु-

पुरुषों के जो अधिपति हैं उन भगवान् नरनारायण को मेरा वारंवार ओंकारपूर्वक नमस्कार हो ॥ ११ ॥ इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने के विषय में कर्त्ता होकर भी जो 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा अभिमान नहीं करते हैं, देह में होतेहुए भी जो देहके भूख प्यास आदि धर्मों के वशीभूत नहीं होते हैं और देखनेवाले होकर भी, देखनेयोग्य वस्तुओं से जिनकी दृष्टि में विकार उत्पन्न नहीं होता है ऐसे निःसङ्ग, परममित्र और सर्वसाक्षी परमेश्वर को नमस्कार हो ॥ १२ ॥ हे योगेश्वर ! भगवान् ब्रह्माजी ने, जो योगमार्ग की चातुरी कही है सो यही है कि–पुरुष, देहभिमान को छोड़कर, जन्म से करीहुई भक्तिके द्वारा अन्तकाल में, तुम निर्गुण परमात्मा के विषैं अपने मनको लगावे ॥ १३ ॥ हे भगवन्‌ जैसे मूढ़ पुरुष, इसलोक और परलोक के विषयों में आसक्त होकर पुत्र, स्त्री और धन के विषय में 'मेरामरण होनेपर इन का प्रबन्ध कैसे होगा ?' ऐसी चिन्ता करताहुआ, विष्ठा आदि मलों से पूर्ण और अनेकों प्रकार के दुःखों के स्थान अपने शरीरके नाश से भय मानता है तैसे ही यदि विद्वान् पुरुष भी, भय माननेलगे तो उसका शास्त्र आदि के ज्ञान के पाने में कराहुआ यत्न केवल परिश्रम ही है ॥ १४ ॥ तिस से हे प्रभो ! हे अधोक्षज ! तुमरी कृपा करके हमे अपने में स्वाभाविक प्रेमरूप भक्तियोग प्राप्त करदो, जिस से कि–हम तुम्हारी माया करके इस निन्दित शरीरमें स्थापन करीहुई, जिसका और उपायोंसे दूर होना कठिन है ऐसी अहन्ता ममता का शीघ्र ही त्याग करदें ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इस भरतखण्ड में नदी और पर्वत भी बहुत से हैं; उन में–मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान् , ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील

क्रियमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्द्धनो रैवतकः कुकुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसंख्याताः ॥ १६ ॥ एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥ १७ ॥ चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्त्ता तुंगभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुः अन्धः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृती ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः॥१८॥ अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥ १९ ॥ योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियो-

गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि यह पर्वत मुख्य हैं और अन्यभी सैंकड़ों सहस्रों पर्वत हैं और उन के तटोंपर से उत्पन्नहुए नद और नदियें भी असंख्य हैं ॥ १६ ॥ यह नदियें--नाम का उच्चारणमात्र करने से ही पवित्र करनेवाली हैं और इन के जल का, भरतखण्ड की सकल प्रजा, स्नान पान आदि के द्वारा उपभोग करती है, तब यह उन को पवित्र करेंगी इस का कहना ही क्या ? ॥ १७ ॥ उन नदियों में--चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्त्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विंध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धु, 'अन्ध और शोण यह दो नद' महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा यह ४४ महानदियें हैं ॥ १८ ॥ इस ही खण्ड में जन्म लेनेवाले पुरुष, अपने करेहुए सात्विक, राजस और तामस कर्मों के प्रभाव से उनकर्मों के अनुसार देवलोक, मनुष्यलोक और नरकलोक में अनेकों प्रकार की गतियें अपने को प्राप्त करते हैं, क्योंकि--कर्मों के अनुसार ही सब प्रकारकी गतियें सब को ही मिलती हैं और जिस ब्राह्मणादि वर्ण के निमित्त जो संन्यासग्रहण आदि मोक्षप्राप्ति का साधन कहा है उस के क्रमसे इस ही खण्ड में मनुष्यों को मोक्ष भी मिलती है ॥ १९ ॥ हेराजन् ! सकल भूतों के आत्मा, राग आदि दोष रहित, वाणी के अगोचर, आधाररहित, सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी भगवान्

गंलक्षणो नानागतिनिमित्ताऽविद्याग्रंथिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसंगः ॥ २० ॥ एतदेव हि देवा गायंति । अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ॥ यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २१ ॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ॥ न यत्र नारायणपादपंकजस्मृतिः प्रमुष्टाऽतिशयेंद्रियोत्सवात् ॥ २२ ॥ कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ॥ क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयांत्यभयं पदं हरेः ॥ २३ ॥ न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ॥ न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥ २४ ॥ प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जंतवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ॥ न वै यतेरन्नपुनर्भवाय

वासुदेव के विषैं सकल प्रकार की कामनाओं को त्यागकर भक्ति करना ही मोक्ष का स्वरूप है, जव चिरकाल पर्यन्त भगवद्भक्तों का समागम होता रहता है तव नानाप्रकार की गति प्राप्त होने की कारण जो अविद्या रूप हृदय की गाँठ उस के दूर होजाने से वह मोक्ष प्राप्त होती है ॥ २० ॥ यह भरतखण्ड मोक्षप्राप्ति का साधन है इसकारण इस में प्राप्त हुए मनुष्यजन्म का देवता भी गान करते हैं, अहो ! हम देवताओं को भी जहां उत्पन्न होने की केवल इच्छा ही होती है उस, मुक्तिदाता भगवान् की सेवा में उपयोगी होनेवाले भरतखण्ड के विषैं मनुष्यों में जन्म, जिन प्राणियों ने पाया है, जाने उन्हों ने पूर्वके जन्मों मे कौन से आश्चर्यकारी पुण्यकर्म करे होंगे ? अथवा किसी साधनके विना करे हुए ही इन के ऊपर श्रीहरि प्रसन्न होगए हैं क्या ? ॥२१॥ जिन के करने में परम कठिनता पड़तीहै ऐसे—यज्ञ, तप, व्रत और दान आदि से हम को प्राप्त हुए इस तुच्छ स्वर्ग सेभी कौन फल मिला ? क्योंकि—यहां नारायण के चरणकमल का स्मरण नहीं यदि कदाचित् हो भी तो अत्यन्त विषयभोग से लुप्त होजाता है ॥ २२ ॥ स्वर्गलोक की वार्ता तो अलग रहे परन्तु कल्पभर की आयुवाले लोकों को भी, जहां से एकवार लौटना ही होगा ऐसे ब्रह्मलोक की अपेक्षा भी, थोड़ी आयुवाले मनुष्यों को, भरतखण्ड भूमिरूप स्थान की प्राप्ति होना श्रेष्ठ है, क्योंकि—विचारवान् पुरुष, तहां के क्षणभंगुर शरीर से क्षणभर में सकल कर्म भगवान् को समर्पण करके श्रीहरि के ऐसे अभय स्थान में जापहुँचते हैं कि—जहां से फिर लौटकर संसार में नहीं आना पड़ता है ॥ २३ ॥ सो जहां भगवान् की कथारूप अमृत की नदी नहीं हैं और जहां भगवान् की कथा को वर्णन करनेवाले भगवद्भक्त नहीं हैं तथा जहां नृत्य गीत आदि वडे उत्साहों के साथ भगवान् की पूजा के प्रकार नहीं हैं वह यदि ब्रह्मलोक भी हो तो सत्पुरुष उस का आश्रय नहीं करते हैं ॥ २४ ॥ ज्ञानेन्द्रियें, कर्मेंद्रियें, पञ्चमहाभूत, इन की कुशलता से परिपूर्ण इस

ते भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥ २५ ॥ यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ॥ एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥ २६ ॥ सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ॥ स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २७ ॥ यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ॥ तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जंबूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैके उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ २९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पांचजन्यः सिंहलो लंकेति ॥ ३० ॥

मनुष्य जन्म को जिन्हो ने इस भरतखण्ड में पाया है वह यदि, फिर मृत्यु से भेंट न होने के निमित्त उद्योग नहीं करते हैं तो वह, 'जैसे वनके पक्षी व्याधे के हाथ से एकवार छूटजानेपर भी फल के लोभ से फिर उस ही वृक्षपर असावधानी से विचरनेलगें तो बन्ध को प्राप्त होते हैं तैसे ही' फिर बन्धन को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥ देखो ! भरतखण्ड के पुरुषों का कैसा अहोभाग्य है, जिन भरतखण्ड के मनुष्यों के यज्ञमें श्रद्धाके साथ भिन्न भिन्न इन्द्र, अग्नि आदि नामों से बुलाये हुए, सकल ऐश्वर्यों के देनेवाले, एक, वास्तव में परिपूर्ण श्रीहरि आनन्द के साथ तहां आकर मन्त्र और द्रव्यों के द्वारा, देवताओं के उद्देश्यसे दियेहुए और 'यह इन्द्रको' 'यह अग्नि को' इत्यादि देवताओंको भिन्न२ निर्वाप करे हुए चरु पुरोडाश आदि द्रव्यों को 'यह मेरा है' इस बुद्धि से स्वीकार करते हैं ॥ २६ ॥ सकाम भक्तोंको भी, प्रार्थना करेहुए श्रीहरि, उनका याचना कराहुआ फल देते हैं, यह सत्य है परन्तु वह उन को परम पदार्थ नहीं देतेहैं, क्योंकि—दियेहुए फल का भोग होजाने पर उन को फिर फल मांगने की इच्छा होती है और इच्छा न करनेवाले भक्तों को तो वह भगवान्, सकल इच्छाओं को दूरकरनेवाला अपना चरणपल्लव आप ही देदेतेहैं ॥ २७ ॥ सो यदि अब इससमय हमारे उत्तम पूजनके, उत्तम अध्ययन के अथवा और दूसरे किसी उत्तम कर्म के भोगेहुए स्वर्गसुख से शेष कुछ पुण्य रहा होतो उस करके हमें भरतखण्ड में, 'श्रीहरि ही सेवा करनेयोग्यहैं' ऐसे स्मरणवाला मनुष्यजन्म प्राप्त हो; क्योंकि—तहाँ श्रीहरि, भक्तों को अपना अनुभवरूप सुख देते हैं ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! पहिले सगर राजा के पुत्रों ने, घोड़े को खोजतेहुए इस पृथ्वी को चारोंओर खोदा, उससमय जम्बूद्वीप के और आठभाग हुए, उन को ही जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीप कहते हैं ॥ २९ ॥ उनके नाम—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्त्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लङ्का यह हैं ॥ ३० ॥ हेभरतकुलश्रेष्ठ ! इसप्रकार तुम से ज-

एवं तव भारतोत्तमजंबूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥ ३१ ॥ इति-श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे जंबूद्वीपवर्णनो नाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अत परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥ १ ॥ जंबूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखा बाह्योपवनेन प्लक्षो जंबूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्त वर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥ २ ॥ शिवं यवयसं सुभद्रं शांतं क्षेममगमृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥ ३ ॥ मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान्सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः अरुणा नृम्णांगिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतंभरा सत्यंभरा

म्बूद्वीप के खण्डों का विभाग, जैसा मुझे विदित था उस के अनुसार वर्णन करा है ॥ ३१ ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ * ॥ ॥ * ॥ ॥ श्रीशुकदेव जी ने कहा कि–हे राजन् ! अब आगे प्रमाण, लक्षण और रचना के द्वारा प्लक्ष आदि द्वीपों के खण्डों का विभाग कहता हूँ ॥ १ ॥ जैसे मेरुपर्वत, जम्बूद्वीप से घिरा हुआ है तैसे ही यह जम्बूद्वीप भी, क्षार समुद्र से लिपटा हुआ है और इस द्वीप का जितना (लाख योजन) विस्तार है उतनाही विस्तार क्षार समुद्र का भी है तथा जैसे खारी बाहर के बगीचे से घिरी हुई होती है तैसे ही क्षार (खारी) समुद्र भी, उस से दुगने विस्तारवाले प्लक्ष नामक द्वीप करके चारों ओर से लिपटा हुआ है; इस द्वीप में प्लक्ष (पिलखन)नाम वाला सुवर्णका वृक्ष, द्वीपका नाम डालनेवाला,जम्बूद्वीप में के जामुन के वृक्ष की समान ग्यारह सौ योजन ऊँचा, ग्यारह से योजन के फैलाववाला और मूल में सौ योजन घेरे वाला है, तहां सप्त जिव्ह नामवाला अग्नि रहता है; उस द्वीप का अधिपति प्रियव्रतका पुत्र इध्मजिव्ह नामक ,हुआ उसने उसद्वीपके सातखण्ड करके वह उन खण्डों के ही नामवाले अपने सात पुत्रों को देदिये और अपने आप आत्मयोग की साधना से उपराम को प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ शिव, यवयस,सुभद्र,शान्त,क्षेम, अमृत और अभय यह उन खण्डों के तथा पुत्रों के नाम हैं, इन में भी सात सात नदी और पर्वत प्रसिद्धहैं ॥३॥ मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल यह उन खंडों का विभाग करनेवाले सात पर्वत हैं, तथा प्रत्येक खण्ड में एक २ इसप्रकार अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा यह सात महानादियें हैं

इति महानद्यः ॥ यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसंदर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवंतं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥ ४ ॥ प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यस्य ऋतस्य ब्रह्मणोऽमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥ ५ ॥ प्लक्षादिषु पंचसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥ ६ ॥ प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृङ्क्ते ॥ ७ ॥ यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्त्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥ ८ ॥ तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमा-

और इन नदियोंमें स्नान पान आदि करनेसे जिनका रजोगुण और तमोगुण दूर होगयाहै, जिन की सहस्र वर्ष की आयु है और जिन का रूप तथा सन्तान की उत्पत्ति देवताओं की समान सुन्दरहै, ऐसे हंस,पतङ्ग,ऊर्ध्वायन और सत्याङ्ग नामवाले चारवर्ण,वेदत्रयी नामक विद्या के द्वारा, स्वर्ग के द्वाररूप, तीनों वेदों में वर्णन करे हुए, सर्वान्तर्यामी सूर्य भगवान् का पूजन करते हैं ॥ ४ जो सत्य (प्रचार में आते हुए धर्म) के, ऋत (प्रचार में लाये जानेवाले धर्म) के, वेद के, शुभफल (मोक्ष) के, और अशुभ फल (वारंवार जन्म मरण आदिरूप संसार) के नियन्ता होकर पुराणपुरुष विष्णुभगवान् के स्वरूप हैं तिन सूर्य नारायण की हम शरण जाते हैं ॥ ५ ॥ प्लक्ष आदि पांचों द्वीपों में के सकल पुरुषों की आयु, इन्द्रियें, इन्द्रियों की शक्ति, कान्ति, सहनशीलता, बल, बुद्धि और पराक्रम की स्वाभाविक सिद्धि, एक समान ही होती है ॥६॥ जैसे प्लक्ष द्वीप अपनी समान दो लाख योजन विस्तारवाले इक्षु के रस के समुद्र से घिरा हुआ है तैसे ही उस से द्विगुण चारलाख योजन विस्तारवाला शाल्मल द्वीप भी अपनी समान विस्तारवाले सुरा के समुद्र से घिरा हुआ होकर चारों ओर से शोभायमान है ॥ ७ ॥ उस द्वीप में ऊपर कहे हुए प्लक्ष के वृक्ष की समान अर्थात् ग्यारह सौ योजन ऊँचा और ग्यारह से योजन के फैलाववाला तथा मूल में सौ योजन घेरेवाला शाल्मलि (सैंमल) का वृक्ष है, उस के ऊपर अपने अङ्गरूप वेदों से (परों से) ईश्वर की स्तुति करनेवाले गरुड़ जी का स्थान (घोंसला) है वह वृक्ष ही उस द्वीप का शाल्मल द्वीप नाम पड़ने का कारण हुआ है ॥८॥ उस द्वीप का अधिपति प्रियव्रतका पुत्र यज्ञबाहुहै, उसने अपने सात पुत्रोंको,उनके नामके अनुसार ही द्वीप के सात खण्ड करके बांटदिये; उनके नाम-सुरोचन, सौमनस्य, रमणक,

प्यायनमविज्ञातमिति ॥ ९ ॥ तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृंगो वामदेवः कुंदो मुकुंदः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥ १० ॥ तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुंधरेषंधरसंज्ञा भगवंतं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥ ११ ॥ स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ॥ प्रजानां सर्वासां राजाऽन्धः सोमो न आस्त्विति ॥ १२ ॥ एवं सुरोदाद्बहिस्तद्द्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथा पूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन्कुशस्तंबो देवकृतस्तद्द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥ १३ ॥ तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजा हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः ॥ १४ ॥ तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्तसप्त चक्रश्चतुःशृंगः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा देवग-

देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात यह हैं ॥ ९ ॥ उन खण्डों में खण्डों की मर्यादा बाँधनेवाले पर्वत और नदियें भी सात २ ही प्रसिद्ध हैं, स्वरस, शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ण और सहस्रश्रुति यह सात पर्वत तथा अनुमती, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका यह सात नदियें हैं ॥ १० ॥ उन खण्डों में के रहनेवाले पुरुष, श्रुतधर, वीर्यधर वसुन्धर और इषन्धर इन चार नामवाले वर्णों के हैं तथा वह वेदमय-आत्मरूप भगवान् चन्द्रमा की वेदमन्त्रों के द्वारा आराधना करते हैं ॥ ११ ॥ जो कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष में पितरों को, देवताओं को तथा सकल प्रजाओं को अन्न का विभाग करके देते हैं, वह सोम हमारे राजा (पालन करनेवाले) हों ॥ १२ ॥ इसप्रकार सुरा के समुद्र के बाहर आठलाख योजन विस्तारवाला कुशद्वीप है, वह पहिले द्वीप की समान आठलाख योजन विस्तारवाले घृत के समुद्र से घिराहुआ है; तहां उस द्वीप का नाम डालनेवाला, दूसरे अग्नि की समान प्रकाशवान्, परमेश्वर का रचाहुआ एक कुशस्तम्ब (कुश का झुण्ड) है, वह अपनी कोमल शिखाओं की कान्ति से सब दिशाओं को प्रकाशित करता है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उस द्वीप का अधिपति प्रियव्रत का पुत्र हिरण्यरेता नामवाला हुआ उसने अपने वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव इन नामोंवाले सात पुत्रों को, अपने द्वीप के यथायोग्य सात भाग करके देदिये और आप तप किया ॥ १४ ॥ उनके खण्डों में भी मर्यादापर्वत और नदियें सात २ ही प्रसिद्ध हैं; चक्र, चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण यह सात पर्वत तथा—रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, वेदगर्भा, घृ-

भी घृतच्युता मंत्रमाले—ति ॥१५॥ यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदा-भियुक्तकुलकसंज्ञा भगवंतं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥ १६ ॥ प-रस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ॥ देवानां पुरुषांगानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥ १७ ॥ तथा बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वी-पनामनिर्वर्तक आस्ते ॥ १८ ॥ योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितंबकुंजोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥ १९ ॥ तस्मि-न्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्र-नामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याणय-शस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविंदमुपजगाम ॥ २० ॥ आमो मधुरुहो मेघपृष्ठो सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्द्धमानो भोजन उपबर्हिणो नन्दो न-न्दनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती प-

---

तच्युता और मन्त्रमाला यह सात नदियें हैं ॥ १५ ॥ इनके जल से शुद्धहुए कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक इन नामोंवाले चारवर्ण, अग्निस्वरूप भगवान् का, यज्ञ आदि कर्मों की कुशलता से पूजन करते हैं ॥ १६ ॥ हे अग्ने! तुम साक्षात् परब्रह्मरूप भगवान् को हवि का भाग पहुँचानेवाले हो, इसकारण पुरुषरूप भगवान् के अङ्गरूप दे-वताओं के यज्ञ करके (उनको अर्पण करेहुए हविर्भाग करके) उन पुरुषरूप भगवान् का ही यजन करो ॥ १७ ॥ जैसे कुशद्वीप घृत के समुद्र से घिराहुआ है तैसे ही उस घृतके समुद्रके बाहर सोलहलाख योजन विस्तारवाला क्रौञ्चद्वीप सोलह लाख योजन वि-स्तारवाले क्षीरसमुद्र से चारोंओर से घिराहुआ है, उस द्वीप में क्रौञ्चनामक एक महापर्वत उसद्वीप का नाम डालनेवाला है ॥ १८ ॥ जो पहिले स्वामिकार्तिकेय के शक्तिनामक शस्त्र से कटिस्थान में फूटगया और उसके ऊपर का लतामण्डप अस्तव्यस्त होगया तब क्षीरसमुद्रके अपने भीतर स्थान दे सींचनेसे और वरुणके रक्षाकरने से जो निर्भयहुआ वही यह क्रौञ्चपर्वत है १९ उस क्रौञ्चद्वीप में भी उसका अधिपति प्रियव्रतकापुत्र घृतपृष्ठ नामकहुआ वह, अपने पुत्रों के समान नामवाले सात खण्ड करके उन में उन अपने सात पुत्रों को प्रजा का पालन करने के निमित्त स्थापन करके आप ज्ञानवान् होताहुआ कल्याणकारिणी कीर्त्तिवाले, भक्तदुःखहारी, सर्वान्तर्यामी भगवान् के चरणारविंद की शरण में गया ॥ २० ॥ आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति यह घृतपृष्ठ के पुत्र हुए; उन के सात मर्यादापर्वत और सात ही नदियें भी प्रसिद्ध हैं, शुक्ल, वर्द्धमान, भोजन,

वित्रवती शुक्लेति ॥ २१ ॥ यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्र-
विणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनांजलिना यजन्ते ॥ २२ ॥
आपः पुरुषवीर्याः स्थः पुनंतीर्भूर्भुवःसुवः । ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामा-
त्मना भुव इति ॥ २३ ॥ एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परितं उपवेशितः शाकद्वीपो
द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतो यस्मिन् शाको नाम
महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति ॥२४॥
तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि
पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान्पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपवि
श्वधारसंज्ञान्निधार्य्याधिपतीन् स्वयं भगवत्यनंते आवेशितमतिस्तपोवनं प्रवि-
वेश ॥ २५ ॥ एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृङ्गो
बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघायुर्दा उभयस्पृ-
ष्टिरपराजिता पंचपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥ २६ ॥ तद्वर्षे पुरुषा ऋत-

उपबर्हिण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र यह सात पर्वत हैं तथा—अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और शुक्ला यह सात नदियें हैं ॥ २१ ॥ उन के निर्मल और पवित्र जल का सेवन करनेवाले पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक इन नामोंवाले उन खण्डों में के चारवर्ण के पुरुष, जलमय देवता की, जल से भरीहुई अञ्जलि समर्पण करके आराधना करते हैं ॥ २२ ॥ हे जलो ! तुम को ईश्वर से सामर्थ्य प्राप्तहुई है, सो तुम, भूलोक, अन्तरिक्षलोक और स्वर्गलोक को पवित्र करनेवाले तथा स्वरूप से ही पापों का नाश करनेवाले हो, तुम अपने शरीर से, तुम्हारा स्नान पान करनेवाले हमारे शरीरों को पवित्र करो ॥२३॥ इसीप्रकार आगे क्षीर समुद्र के बाहर चारोंओर शाक द्वीप है, वह बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला है और उतने ही विस्तारवाले दही के मठे के समुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है. तहां ही द्वीप का नाम डालनेवाला, जिस के पत्ते भीतर की ओर से खरखरे और बाहर की ओर से चिकने हैं ऐसा एक शाक नामवाला वृक्ष है, उस की महान् सुगन्धि से युक्त हुआ वायु उस द्वीप को सुगन्ध युक्त करता है ॥ २४ ॥ उस द्वीप का राजा भी प्रियव्रत का पुत्र मेधातिथि नामक हुआ, वह भी उस द्वीप के अपने सात पुत्रों के नाम से प्रसिद्ध सात खण्ड कर के उन में—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधार इन नामों वाले अपने पुत्रों को अधि-पति बनाकर आप अनन्त भगवान् में अपना मन लगाकर तपोवन को चलागया ॥२५॥ इस खण्ड में भी—ईशान, उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस यह सात मर्यादा पर्वत तथा—अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रस्रुति और निजधृति यह नदियें भी सात ही हैं ॥ २६ ॥ उन खण्डों में के—ऋतव्रत,

सत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवंतं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ति ॥ २७ ॥ अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥ २८ ॥ एवमेव दधिमंडोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समंतत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥ २९ ॥ तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिंद्रादीनां यदुपरिष्टात्सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः सम्वत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥ ३० ॥ एतद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील ईत्यास्ते ॥ ३१ ॥ तद्वर्षपुरुषा भगवंतं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन कर्मणा राधयंति इदं चो-

सत्यव्रत, दानव्रत, और अनुव्रत इन नामों वाले चार वर्ण के पुरुष, प्राणायाम के द्वारा अपने रजोगुण और तमोगुण को दूर करतेहुए परमसमाधि से वायुरूप भगवान् की आराधना करते हैं ॥ २७ ॥ जो भीतर प्रवेश करके स्थावर जङ्गमरूप प्राणियों की प्राण आदि वृत्तियों के द्वारा रक्षा करते हैं और यह सकल जगत् जिनके वश में है, वह साक्षात् अन्तर्यामी ईश्वर हमारी रक्षा करें ॥ २८ ॥ इसी प्रकार दही के मठे के समुद्र के बाहर चारोंओर चौसठलाख योजन विस्तारवाला पुष्करद्वीप है वह उतने ही विस्तारवाले मधुरजल के समुद्र से बाहर घिराहुआ है उस में अग्नि की लपटों की समान निर्मल और करोड़ों सुवर्ण के पत्रों से युक्त भगवान् ब्रह्मा जी का आसनरूप एक बड़ा पुष्कर (कमल) बनाहुआ है, उसके कारण इस द्वीप का पुष्कर नाम पड़ा है ॥ २९ ॥ उस द्वीप में मानसोत्तर नामवाला दशसहस्र योजन ऊँचा और इतने ही विस्तारवाला द्वीपकी समान मण्डलाकार पूर्व-उत्तर खण्डका एकही मर्यादापर्वत है उस के ऊपर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चारों दिशाओं में इन्द्र आदि चार लोकपालों की चार नगरी हैं, तथा तिस पर्वत के ऊपर मेरु के चारोंओर फिरनेवाले सूर्य के रथ का सम्वत्सर नामक चक्र, देवताओं के दिन रात्रियों करके (उत्तरायण और दक्षिणायन के द्वारा) फिरता रहता है ॥ ३० ॥ उस द्वीपका स्वामी भी प्रियव्रत का पुत्र वीतिहोत्र नामवाला हुआ, वह भी रमणक और धातकि इन नामोंवाले अपने दो पुत्रों को खण्डों का अधिपति बनाकर आप, अपने बड़े भ्राताओं की समान ईश्वर की आराधना करने में तत्पर होकर रहा ॥ ३१ ॥ उस खण्डमें के पुरुष, ब्रह्मसालोक्य आदि के साधनभूत कर्म करके

दाहरंति ॥ ३२ ॥ यत्तत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंगं जनोऽर्चयेत् ॥ एकांतमद्वयं शांतं तस्मै भगवते नमः इति ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ततः परस्ताल्लोकालोकनामाऽचलो लोकालोकयोरंतराले परित उपक्षिप्तः ॥ ३४ ॥ यावन्मानसोत्तरमेर्वोरंतरं तावती भूमिः काचिन्यन्यादर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृतासीत् ॥ ३५ ॥ लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यांतर्वर्तिनाऽवस्थाप्यते ॥ ३६ ॥ स लोकत्रयांते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रीन् लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहंते तावदुन्नहनायामः ॥ ३७ ॥ एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिंतितः कविभिः स तु पंचाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभा-

ब्रह्माजीरूप भगवान् की आराधना करतेहैं और ऐसी स्तुति करतेहैं कि-॥ ३२ ॥ कर्म के फलरूप ब्रह्म की प्राप्ति करानेवाले, ब्रह्म के विषैं ही निष्ठा रखनेवाले जिस अद्वितीय और शान्तस्वरूप का लोक पूजन करते हैं उन भगवान् को हमारा नमस्कार हो॥ ३३॥ श्रीशुकदेवजी कहतेहैं कि-हेराजन् परीक्षित ! उस मधुरजलवाले समुद्रके परलीपार चारों ओर सूर्य के प्रकाश से युक्त और सूर्यके प्रकाशसे रहित ऐसे दोनों प्रदेशोंका विभाग करने के निमित्त उन दोनों प्रदेशोंमें लोकालोक नामवाला पर्वत ईश्वरने स्थापन कराहै ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! मानसोत्तर पर्वत और मेरुपर्वत इन के मध्य में जितना अन्तर है (एक करोड़ सत्तावन लाख पचास सहस्र योजन) उतनी ही भूमि, शुद्ध जलवाले समुद्र की परलीपार है, उस के ऊपर प्राणी रहते हैं परन्तु उस से परलीओर लोकालोक पर्वत के समीप, और दूसरी आठ करोड़ उनतालीस लाख योजन दर्पण की समान चिकनी और चमकनेवाली भूमि है उस के ऊपर गिरा हुआ पदार्थ फिर कभी भी नहीं मिलता है, क्योंकि—तहां देवताओं को छोड़ अन्य प्राणियों को प्रवेश करना कठिन है ॥ ३५ ॥ लोकमय (प्रकाशयुक्त) और अलोकमय (अन्धकारमय) इन दोनों प्रदेशों का जहां मेलन हुआ है तहां यह पर्वत है इसकारण इस का लोकालोक नाम पड़ा है ॥ ३६ वह पर्वत त्रिलोकी के बाहर चारों ओर परमेश्वर ने स्थापित करा है, उस की ऊँचाई और विस्तार इतना है कि सूर्य से ध्रुवपर्यन्त सकल ज्योतिर्गणों की तिस पर्वत के इधर त्रिलोकी को प्रकाशित करनेवाली किरणें, कभी भी उस पर्वत के परलीओर जाने को समर्थ नहीं होती हैं ॥ ३७ ॥ इसप्रकार परिमाण, लक्षण और रचना के साथ व्यास आदि कवियों का विचार के साथ निश्चय कराहुआ लोक का विस्तार इतना ही है अर्थात् वह २ लोकविस्तार पचास करोड़ योजन है; इस गिनेहुए भूगोल का चौथा भाग अर्थात् साढ़े बारह करोड़ योजन यह लो-

गोऽयं लोकालोकाचलः ॥ ३८ ॥ तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाऽखिलजगद्गुरुणाऽधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ॥ ३९ ॥ तेषां स्वविभूतीनां विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान्परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैः संधारयमाणस्तस्मिन् गिरिवरे समन्तात्सकललोकस्वस्तय आस्ते ॥ ४० ॥ आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीथायेति ॥ ४१ ॥ योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात् ॥ ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥ ४२ ॥ अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्यो-र्यदन्तरम् ॥ सूर्याऽण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥ ४३ ॥ मृ-

---

कालोक पर्वत है ॥ ३८ ॥ तिस पर्वत पर चारों दिशाओं में सकल जगत् के गुरु ब्रह्माजी ने ऋषभ, पुष्कर, वामन और अपराजित यह चार गजराज स्थापन करे हैं, वह सब लोकों की स्थिरता के साथ स्थिति के कारण हैं ॥ ३९ । उन दिग्गजों की और अपने अंशभूत इन्द्रादि लोकपालों की अनेकों प्रकार की शक्ति बढ़ाने के निमित्त और सब लोकों के कल्याण के निमित्त, सुदर्शन चक्र आदि अपने श्रेष्ठ शस्त्रों से शोभित भुजदण्डोंवाले, परम ऐश्वर्य के अधिपति, विष्वक्सेन आदि अपने मुख्य २ पार्षदों से घिरेहुए और धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य तथा अणिमा आदि आठ सिद्धि इन लक्षणों से युक्त अपने शुद्ध सतोगुणी स्वरूप को धारण करनेवाले, महापुरुषरूप,सर्वान्तर्यामी भगवान् ,उस लोकालोक पर्वतपर निरन्तर चारों ओर फिरते रहतेहैं ॥ ४० ॥ हे राजन् ! चारों ओर फिरते रहते हैं, इस का अभिप्राय इतना ही है कि—अपनी योगमाया की रची हुई नानाप्रकार की लोकयात्रा की रक्षा करने के निमित्त ही इन भगवान् ने, इस प्रकार का एक वेष कल्प की समाप्ति पर्यन्त स्वीकार किया है॥ ४१ ॥यह जो लोकालोक पर्वत के भीतर की भूमि का मेरुपर्वत पर्यन्त एक ओर का साढ़े वारह करोड योजन विस्तारवाला कहा है, इस से ही लोकालोक पर्वत के वाहर ब्रह्मकटाह पर्यन्त के अलोक भाग का प्रमाण भी कहा हुआसा ही है; तिस के परलीओर केवल शुद्ध योगीश्वरों की ही गति है ऐसा कहते हैं; वह गति, ब्राह्मण का मरण को प्राप्त हुआ पुत्र लौटाकर लाते समय श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को दिखाईथी।४२। स्वर्ग और भूमि इन दोनों का जो मध्यभाग है वही ब्रह्माण्ड का मध्यभाग है, तहां सूर्य रहता है; सूर्य और ब्रह्माण्डगोलक के मध्य में सब ओर से ब्रह्माण्ड पचीस २ करोड़ योजन है ॥ ४३ ॥ वह सूर्य इस मृत (अचेतन—जड़) अण्ड में हुआ है इस कारण

तेऽद्दै ऐष एतस्मिन् यदभूत्ततो मार्तंड इति व्यपदेशः ॥ हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्यांडसमुद्भवः॥४४॥सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः।४५।देवातिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधां ॥ सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥ ४६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपवर्षसन्निवेशपरिमाणलक्षणो विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥ १ ॥ एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसंधितम् ॥ ॥ २ ॥ तन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा ॥ स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥ यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पं-

उस का मार्त्तण्ड नाम पड़ा है; तथा उसको परम प्रकाशवान् ब्रह्माण्ड से उत्पन्न होने के कारण हिरण्यगर्भ भी कहते हैं ॥४४॥ दिशा, आकाश, द्युलोक, पृथ्वी, और भी अनेकों भाग,, स्वर्ग, मोक्ष, नरक तथा पाताल में के स्थान यह सब सूर्य के ही विभाग करेहुए हैं ॥ ४५ ॥ इस कारण सूर्य—देवता, तिर्यक्योनि, मनुष्य, सर्प, ओषधि, और सकल जीवों के समूह इन सब का आत्मा है और चक्षु इन्द्रिय का अधिष्ठात्री देवताभी वही है॥४६॥ इति पञ्चम स्कन्ध में विंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इस भूमण्डल की, विस्तार में पचास करोड़ योजन,और ऊँचाई में पचीस करोड़ योजन, इतनी ही प्रमाण और लक्षणों के साथ रचना कही है ॥ १ ॥ इस पचास करोड़ योजन रूप प्रमाण से स्वर्गलोक के मण्डल का प्रमाण, प्रमाण के जाननेवाले पुरुष, जैसे मटर आदिके दोदलों मेंसे एकका प्रमाण कहनेपर दूसरेका प्रमाण कहा हुआसाही होजाता है तैसे ही, उपदेश करते हैं, भूगोल और खगोल के मध्य में उनदोनों से लगाहुआ आकाश है।२ उस आकाश में के ज्योतिर्गणों के अधिपति भगवान् सूर्य हैं, वह अपने तापसे त्रिलोकी को तपातेहैं और अपने प्रकाशसे प्रकाशित करतेहैं; वही यह सूर्य उत्तरायण,दक्षिणायन और वैषुवत इन नामोंवाली मन्द, शीघ्र और मध्यम इन गतियों के द्वारा, चढ़ाव, उतार और समान इन स्थानों में यथोचित समयपर गमन करते हुए मकर आदि राशियों में विचरने पर, दिन रात्रियों को बड़ी, छोटी और समान करते हैं ॥ ३ ॥ जब मेष और तुल राशि पर सूर्य होता है तब दिन और रात समान होते हैं और जब वृषभ आदि

चसु च राशिषु चरति तदाऽहान्येव वर्द्धते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥ ४ ॥ यदा वृश्चिकादिषु पंचसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवंति ॥ ५ ॥ यावद्दक्षिणायनमहानि वर्द्धते यावदुदगयनं रात्रयः॥६॥ एवं नव कोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥ तत्रत्यानां दिवसमध्यं गत एव सदादित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥ ८ ॥ यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यंदेनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वा-

पांच राशियों पर संचार करता है तव दिन ही वढ़ते हैं और रात्रियों में प्रत्येक मास में एक २ घड़ी कम होती चली जाती है ॥ ४ ॥ जव वृश्चिक आदि पांच राशियों पर सूर्य होता है तव रात्रियें बड़ी २ होकर दिन छोटे २ होजाते हैं ॥ ५ ॥ दक्षिणायन प्राप्त होने पर्यन्त (उत्तरायण में) दिन वढ़ते हैं और उत्तरायण पर्यन्त (दक्षिणायन में) रात्रि वढ़ती हैं ॥ ६ ॥ इसप्रकार मेरुपर्वत के चारोंओर मानसोत्तर पर्वतपर सूर्य की प्रदक्षिणा होने की लम्बाई नौकरोड़ इक्यावनलाख योजन है, ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं, उस मानसोत्तर पर्वतपर मेरु के पूर्व में इन्द्रकी देवधानी नामक नगरी है, दक्षिण में यमकी संयमनी नामक नगरी है, पश्चिम में वरुण की निम्लोचनी नामक नगरी है और उत्तर में सोमकी विभावरी नामक नगरी है,उन चारों नगरियों में कालविशेष करके प्राणी मात्र की कर्म आदि में प्रवृत्ति और प्रवृत्ति होने के कारण सूर्य के उदय,मध्यान्ह,अस्त मान और मध्यरात्र यह मेरु की चारों * दिशाओं की ओर होते हैं ॥ ७ ॥ मेरुपर्वत पर के लोकों को सूर्य, निरन्तर दिन के मध्यभाग में ही रहकर प्रकाशित करता है और वह अश्विनी आदि नक्षत्रों के सन्मुख चलने के कारण मेरु को वाम करके जाताहै परन्तु प्रदक्षिणाके आकार से फिरनेवाले प्रवह नामक वायुके फिराएहुए ज्योतिश्चक्रके द्वारा प्रति दिन मेरु को प्रदक्षिणा करता है ऐसा दीखता है ॥ ८ ॥ जहां सूर्य का उदय होता है उसके सन्मुख शंकु की सरल रेखा में सूत्र धरनेपर वह जिस दिशा के प्रदेश में पड़े तहां वह अस्त को प्राप्त होता है और जहां वह लोकों को, पसीना उत्पन्न करके ताप देता है अर्थात् मध्यान्ह में होता है, उसके सन्मुख सरल रेखा की दिशा में उसके जाते

* इसकारण मेरुके दक्षिण में रहनेवाले पुरुष, मेरु के पूर्व की इन्द्र की नगरी से पूर्व आदि दिशा वा उदयादि समझें, मेरुके पश्चिमकी यमपुरी से उत्तर में रहनेवाले वरुण नगरी से और पूर्व में रहनेवाले सोमनगरी से पूर्व आदि दिशा और उदय आदि को समझें, यह सिद्ध होता है।

पयाति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥ ९ ॥ यदा चैन्द्र्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्द्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥ १० ॥ एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं च पुनस्तथाऽन्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥ ११ ॥ एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥ १२ ॥ यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्द्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥ १३ ॥ तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन संमितस्तैलयन्त्राक्षवत् ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥ १४ ॥ रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः

ही वह लोकों को निद्राके वशीभूत करता है अर्थात् मध्यरात्रि करता है,क्योंकि-जिन्होंने पहिले उदय अस्त आदि अवस्थाओं में सूर्य को देखा होता है वही पुरुष उस(मध्यरात्रि) स्थल में होनेवाले सूर्य को नहीं देखते हैं॥९॥ जब सूर्य इन्द्र की नगरी से यमपुरी की ओर को जाने लगता है तब पन्द्रह घड़ी में सवा दो करोड़ और साढ़ेबारहलाखसे कुछ अधिक योजन जाता है।१०। इसीप्रकार फिर वरुणपुरी की ओर तहांसे सोमपुरी की ओर और तहां से इन्द्रपुरी की ओर उतनी ही घड़ी में उतनी ही योजन जाता है, तैसे ही चन्द्र आदि और ग्रहभी ज्योतिश्चक्र में नक्षत्रों के साथ उदय और अस्त को प्राप्त होते हैं ॥११॥ इसप्रकार एक मुहूर्त्त में चौबीस-लाख और आठ सौ से कुछ अधिक योजन, सूर्य का यह वेदमय रथ, चारों नगरियों में भ्रमण करता है ॥ १२ ॥ उस रथ का सम्वत्सररूप जो एक चक्र है वह मासरूप बारह आरोंसे ऋतुरूप छः धाराओंसे और चातुर्मास्यरूप तीन नाभि(आवनों) से युक्त है, ऐसा वर्णन करते हैं, उस रथ की धुरी का एक सिरा मेरुपर्वत के मस्तकपर धरा हुआ है और दूसरा सिरा मानसोत्तर पर्वतके ऊपर वायुवद्ध भूमिपर धराहुआ है जिस धुरी में पिरोयाहुआ सूर्य के रथ का चक्र (पहिया) तेल के यन्त्र (कोल्हू) की समान मेरु के चारोंओर फिरताहुआ मानसोत्तर पर्वत पर फिरता है ॥ १३ ॥ उस ही धुरी के ऊपर छिद्र करके एक सिरा बैठायाहुआ दूसरा और एक धुरा है, वह एक करोड़ सत्तावन लाख पचास सहस्र योजन में के तिस पहिले धुरे के चतुर्थांश की समान अर्थात् उनतालीस लाख सैंतीस सहस्र पांच सौ योजन है और उसका दूसरा सिरा वायु की फांसी से ध्रुवमण्डल पर बँधाहुआ है ॥ १४ ॥ सूर्य के रथके भीतर बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा, नौलाख योजन चौड़ा और उस सूर्य के रथ का जुआ भी नौ लाख

संज्ञारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥ १५ ॥ पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥ १६ ॥ तथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवंति ॥ १७ ॥ तथान्ये च ऋषयो गंधर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवंतं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानानामानः पृथक्कर्मभिर्द्वंद्वश उपासते।१८।लक्षोत्तरं सार्द्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुंक्ते ॥१९॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमण्डलवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ छ ॥ राजोवाच ॥ यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं च प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥ १ ॥ स होवाच ॥ यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वात् एवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं

योजन लम्बा है, उस में अरुण नामक सारथि के जोड़ेहुए गायत्री आदि छन्द नामवाले सात घोड़े हैं वह सूर्यदेव को इधर उधर पहुँचाते हैं ॥ १५ ॥ सारथि के काम में नियत कराहुआ वह अरुण, पूर्व को मुख करके बैठेहुए सूर्य के आगे पश्चिम को मुख करके अर्थात् सूर्य की ओर को मुख करके बैठता है ॥ १६ ॥ तैसे ही सूर्य के आगे स्तुति करने के निमित्त ईश्वर के नियत करेहुए अँगूठे के पोरुए की समान साठ सहस्र वालखिल्य ऋषि उन सूर्यनारायण की स्तुति करते रहते हैं ॥ १७ ॥ तैसे ही और भी ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता यह एक२ चौदह और दो २मिलकर सात२गण, प्रत्येक मास में भिन्न २ नाम धारण करतेहुए भिन्न २ कर्मों से प्रत्येक मास में भिन्न २ नाम धारण करनेवाले सूर्यनारायण की दो २ मिलकर उपासना करते हैं ॥ १८ ॥ मानसोत्तर पर्वत पर जो भूमण्डल के चारोंओर के घेरे का मान नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन है, तिन में से दो सहस्र योजन और दो कोस वह सूर्यनारायण एकक्षण में चलते हैं ॥ १९॥ इति पञ्चमस्कन्ध में एकविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ राजा ने कहा कि–हे शुकदेवजी ! मेरु पर्वत और ध्रुव को प्रदक्षिणा करतेहुए फिरनेवाले सूर्यभगवान् का, मेष आदि राशियों के सन्मुख अप्रदक्षिण गमन होता है; ऐसा जो आपने कहा सो विरुद्ध सा प्रतीत होता है उस को हम ठीक कैसे समझें ? ॥१॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि हे राजन् ! जैसे फिरतेहुए कुम्हार के चाक से फिरनेवाली, परन्तु चाक की गति से उलटी गति करके चलने वाली पिपीलिका (चींटी) आदिकों की गति उलटी ही होती है, क्योंकि–वह पिपी-

मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रांतरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥ २ ॥ स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिषु ऋतुषु यथोपजोषमृतुगुणान्विदधाति ॥ ३ ॥ तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥ ४ ॥ अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादश मासान् भुङ्क्ते ॥ राशिसंज्ञान्संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥ ५ ॥ अथ च यावताऽर्द्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमय-

---

लिका आदि भिन्न २ काल में भिन्न २ स्थलपर प्रतीत होती हैं तैसे ही ध्रुव को और मेरु को प्रदक्षिणा करतेहुए भराभर फिरनेवाले नक्षत्र राशियुक्त कालचक्र के साथ फिरने वाले परन्तु ध्रुव के और मेरु के अप्रदक्षणिक क्रम से विद्यमान नक्षत्र और राशियों के सन्मुख चलनेवाले सूर्य आदिकों की गति उलटी ही होती है, क्योंकि—भिन्न २ काल में भिन्न २ नक्षत्र और राशियों में वह सूर्यादि ग्रह दीखते हैं ॥ २ ॥ वेद और ज्ञानी पुरुष, जिनको जानने के निमित्त तर्कना करते हैं ऐसे यह भगवान् आदि पुरुष साक्षात् सूर्यनारायण, लोकों का कल्याण करने के निमित्त, तीनों वेदोंमें वर्णन करे हुए और कर्म की शुद्धि होने के हेतु. कालस्वरूप अपने स्वरूप के बारह भाग करके वसन्त आदि छः ऋतुओं में कर्म भोग के योग्य शीत उष्ण आदि धर्मों को उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥ इस मनुष्यलोक में वर्ण आश्रम और आचार के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले पुरुष, उन सूर्यभगवान् की तीनों वेदों में कहे हुए सन्ध्या अग्निहोत्र आदि कर्मों के द्वारा इन्द्र आदि देवरूप से और ध्यान आदि योगमार्ग से, अन्तर्यामी रूप कर के श्रद्धापूर्वक आराधना करते हुए अनायास में ही कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ वह यह लोकों के आत्मा सूर्य, स्वर्ग और भूमि इन दोनों के मध्य में आकाश मण्डल के विषें फिरते हुए कालचक्र के ऊपर रहकर संवत्सर के अवयवरूप, मेष आदि राशि नामक बारह मासों को भोगते हैं वह एक २ मास चन्द्रमान से शुक्ल और कृष्ण इन दो पक्षों का, पितरों के मान से एक दिन रात्रि का और सौरमान से सवादो नक्षत्रों का होता है, ऐसा कहते हैं; वह सूर्य जितने काल में सम्वत्सर के छठे भाग को भोगते हैं उस काल को ऋतु कहते हैं, यह भी सम्वत्सर का एक अवयव ही है ॥ ५ ॥ उन सूर्य को आधे आकाश के मार्ग में

नेमाचक्षते ॥ ६ ॥ अथ च यावन्नभोमण्डलं सह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां का-
र्त्स्न्येन सह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्स-
रमिति भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ॥ ७ ॥ एवं चन्द्रमा अर्कग-
भस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्तिं पक्षाभ्यां
मासभुक्तिं सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥
॥ ८ ॥ अथवा पूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पि-
तॄणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्च
एकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तेन भुङ्क्ते ॥ ९ ॥ य एष षोडशकलः पुरुषो भ-
गवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्रा-
णाप्यायनशीलत्वात् सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥ १० ॥ तत उपरिष्टात्त्रिलक्ष-

---

चलने में जितना समय लगता है उस काल को अयन कहते हैं ॥ ६ ॥ तैसे ही मन्द, शीघ्र और समान इन तीन गतियों से, भूमि और स्वर्ग के मण्डलोंसहित आकाशमण्डल का पूर्णरूप से उल्लंघन करने में सूर्य को जो काल लगता है, उसके सम्वत्सर, परिवत्सर, इड़ावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर यह पांच नाम कहे हैं अर्थात् जिस वर्ष के विषें शुक्ल प्रतिपदा में संक्रान्ति आजाती है तब सौर और चान्द्र इन दोनों मासों का आरम्भ होता है उस वर्ष को सम्वत्सर कहते हैं, तदनन्तर सौर मान से प्रत्येक वर्ष में छः छः दिन बढ़ते हैं और चान्द्रमान से प्रत्येक वर्ष में छः छः दिन घटते हैं, इस प्रकार अन्तर पड़ते पड़ते पांच वर्ष वीतनेपर छठे वर्ष में फिर शुक्लप्रतिपदा में संक्रान्ति आकर सम्वत्सर होता है, इन दोनों सम्वत्सरों के मध्य में के चार वर्षों के क्रम से परिवत्सर आदि नाम हैं ॥ ७ ॥ इस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य की किरणों से ऊपर लाख योजन के अन्तर पर प्रतीत होता है और वह सब के आगे तथा अतिशीघ्र चलनेवाला होने के कारण, सूर्य का वर्ष भर में होनेवाला राशिभोग एक मास में और महीने में होनेवाला राशि भोग सवा दो नक्षत्र में और पन्द्रह दिन में होने वाला भोग एक ही दिन में भोगता है ॥ ८ ॥ और शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में वृद्धि को प्राप्त होनेवाली तथा क्षीण होनेवाली अपनी कलाओं से देवताओं के और पितरों के दिनरात करताहुआ, अन्नमय होने के कारण सकल जीवोंके समूह का प्राणरूप और जीवन का हेतु होनेसे सब का जीवरूप होताहुआ तीस २ मुहूर्त्त में एक २ नक्षत्र का उपभोग करता है ॥ ९ ॥ जो यह दश इन्द्रियें, पञ्चमहाभूत और एक मन इन सोलहकलाओंसे युक्त मनोमय, अन्नमय और अमृतमय ऐसे पुरुषरूप भगवान् चन्द्रमा कहे हैं, इन चन्द्रमा का, देव, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सूर्य और लताओं की प्राणरक्षा करना और वृद्धि करने का स्वभाव होने के कारण इनको ही सर्वमय कहते हैं ॥ १० ॥ चन्द्रमण्डल से तीनलाख योजन

योजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैवं कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताऽष्टाविंशतिः ॥ ११ ॥ तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वाऽर्कस्य शैघ्र्यमांद्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति लोकानां नित्यदाऽनुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते स वृष्टिविष्टंभग्रहोपशमनः ॥ ॥ १२ ॥ उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदाऽर्काद्व्यतिरिच्येत तदाऽतिवाताऽभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते॥१३॥अत ऊर्ध्वमंगारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन् द्वादशानुभुंक्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥ १४ ॥ तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनांतरगतो भगवान् बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं चरति ॥ यदि न वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥ १५ ॥ तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान्विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशांतिकरः ॥ १६ ॥ तत उत्तर-

---

ऊपर अभिजित् नामक नक्षत्र के साथ अट्ठाईस नक्षत्र कालचक्र में ईश्वरने योजित करे हैं, वह मेरु के दक्षिण को फिरते हैं ॥ ११॥ उसके ऊपर दोलाख योजन ऊँचेपर शुक्र है, वह शीघ्र, मन्द और सम इन तीन प्रकार की गतियों से सूर्य के आगे, पीछे वा साथ सूर्य की समान ही विचरता है, यह वृष्टि करनेवालाहोने के कारण बहुधा लोकों के अनुकूल ही है, यह कभी २ क्रमसे आगे आएहुए नक्षत्रों को उल्लङ्घन करके वृष्टि को रोकनेवाले ग्रहको शान्त करता है, ऐसा अनुमान होता है ॥ १२ ॥ शुक्र की गतिकी समान ही बुधकी भी गति है परन्तु वह सोमका पुत्र बुध, शुक्र के ऊपर दोलाख योजन ऊँचेपर है और बहुधा लोकों का शुभकारी है और किसीसमय जब वह सूर्य का उल्लङ्घन करके आगे दूर जाता है तबही अत्यन्तवायु (आंधी), अभ्रप्राय मेघ और अनावृष्टि के भय को सूचित करता है ॥ १३ ॥ उस बुध के ऊपर मङ्गल भी दोलाख योजन ऊँचा है वह यदि वक्रगति से नहीं चले तो तीन २ पक्ष में एक २ इस क्रमसे बाहर राशियों को भोगता है वह बहुधा अशुभग्रह है और दुःख का सूचक है ॥ १४ ॥ उस मङ्गल के ऊपर दोलाख योजन ऊँचे में भगवान् बृहस्पति रहते हैं वह यदि वक्र नहीं होंतो प्रत्येक राशि में वर्ष २ भर चलते हैं, वह प्रायः ब्राह्मणकुलके अनुकूल रहते हैं ॥ १५ ॥ उनके ऊपर दोलाख योजन ऊँचे में शनैश्चर प्रतीत होता है वह मन्दगति होनेके कारण प्रत्येक राशि में तीस २ महीने चलता है और उतनेही (तीस) वर्षों में सबही (बारह)राशियों को भोगलेता है वह प्रायः सबको ही अशुभकारी है ॥ १६ ॥ उसके ऊपर ग्यारहलाख

स्मादर्पय एकादशलक्षयोजनांतर उपलभ्यंते ॥ यं एवं लोकानां शमनुभावयं-
तो भगवतो विष्णो—र्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमंति ॥ १७ ॥ इतिश्रीभा०
महापुराणे पंचमस्कन्धे ज्योतिश्चक्रवर्णने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ७ ॥ ७ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनांतरतो यत्तद्विष्णोः परमं
पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेंद्रेण प्रजापतिना
कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानी-
मपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥ १ ॥ स हि
सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन
भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टंभ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥ २ ॥
यथा मेढीस्तंभ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्ड-
लानि चरन्ति एवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नंतर्वहियोगेन कालचक्र आयो-
जिता ध्रुवमेवावलंब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पांतं परिचंक्रमंति नभसि यथा
मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथय परिवर्तंते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृ-

योजन के अन्तरपर कश्यप आदि सप्त ऋषि मिलते हैं, वह निरन्तर लोकों के कल्याण का
चिन्तवन करते हुए विष्णुभगवान् के श्रेष्ठपद (अटलपद) की प्रदक्षिणा करते हैं ॥१७॥
इति पञ्चम स्कन्ध में द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-
हे राजन् ! उन सप्त ऋषियों के मण्डल से आगे तेरह लाख योजन के अन्तर पर जिस
को विष्णु का उत्तमपद कहते हैं वह स्थान है, जहां परम भगवद्भक्त, उत्तानपाद राजा
के पुत्र ध्रुवजी अब भी रहते हैं, वह ध्रुवजी, अपने साथ ही नक्षत्ररूप से तहां योजित
करे हुए अग्नि, इन्द्र, प्रजापति और कश्यप जी से बहुत सन्मान के साथ प्रदक्षिणा किये
जाते हैं और कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले तथा भूलोक से महर्लोक पर्यन्त रहनेवाले लोकों
के जीवन के आश्रय हैं, उन ध्रुवजी का इस मनुष्यलोक में का पराक्रम पहिले चतुर्थ स्कन्ध
में, मैं तुम से वर्णन करचुका हूँ ॥ १ ॥ वह ध्रुव ही, निरन्तर चलते रहनेवाले और जिस
का वेग किसी के जानने में नहीं आता है ऐसे भगवत्स्वरूप कालचक्र से, घरघर फिरने
वाले ग्रह, नक्षत्र आदि सकल तेजगोलकों के समूहों का ईश्वर का स्थापन कराहुआ आधार
रूप स्तम्भ सा निरन्तर प्रकाशमान रहता है ॥ २ ॥ जैसे किसान के धान्य निकालने के
निमित्त बांधने के खम्भे के चारों ओर-डोरी में बांधे हुए खूँदनेवाले वृषभ, प्रातःकाल,
मध्यान्ह और सायङ्काल के समय अपनी अपनी क्रम की स्थिति को न छोड़कर उस खंभे
के चारों ओर फिरते रहते हैं, तैसे ही इस कालचक्र में त्रिलोकी के भीतर और बाहर
ईश्वर के नियुक्त करे हुए सूर्य आदि ग्रह और अश्विनी आदि नक्षत्रों के गण कालचक्र

तिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति॥३॥केचनैतज्ज्योति रनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयंति॥४॥ यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितः तस्य लांगूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुंडलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयो रुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवंति पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगंगा चोदरतः ॥५॥ पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववंक्रिषु युंजीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववंक्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुंजीत शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिण-

के आधार से फिरते हैं और भूमिपर नहीं गिरते हैं ॥ ३ ॥ कितने ही पुरुष, ऐसा वर्णन करते हैं यह ज्योतिश्चक्र, भगवान् वासुदेवकी योगधारणा में उपयोगी होनेवाले शिशुमार (मच्छी के आकार) स्वरूप चक्र में रहता है, ॥ ४ ॥ यह भगवान् का शिशुमार नामक दक्षिणावर्त्त कुण्डलाकार शरीर, नीचे को मुख और ऊपर को पूँछ कर के लम्बा २ फैला हुआ है, उस की पूँछ के अग्रभाग में ध्रुव की कल्पना करी है, पूँछ के अग्रभाग के नीचे के भाग में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म हैं; पूँछ की मूल में धाता और विधाता हैं, कमर में सप्त ऋषि हैं, जैसे कुण्डलाकर से स्थित मगर के दाहिने और बायें ओर समान गिनती के अवयव होते हैं, तैसे ही उस दक्षिणावर्त्त कुण्डलाकार शरीर शिशुमार के दाहिने बाजूपर अभिजित् से पुनर्वसु पर्यन्त चौदह उत्तरायण नक्षत्र कल्पना करे हैं तैसे ही बायें बाजूपर भी पुष्य से लेकर उत्तराषाढ़ पर्यन्त चौदह दक्षिणायन नक्षत्र कल्पना करे हैं, उसकी पीठपर अजवीथी है और पेट की ओर आकाशगङ्गा है ॥५॥ हे राजन्! पुनर्वसु और पुष्य यह दो नक्षत्र क्रम से शिशुमार के दाहिने और बायें कमर के भाग में, आर्द्रा और आश्लेषा दाहिने और बायें चरणों के पृष्ठभागपर, अभिजित् और उत्तराषाढ़ दाहिने और बायें नासिका के पुड़ों में श्रवण और पूर्वाषाढ़ा दाहिने और बायें नेत्र में, धनिष्ठा और मूल दाहिने और बायें कानों में, और मघा आदि आठ दक्षिणायन नक्षत्र वाम ओर की अस्थियो (पसलियों) में कल्पना करे हैं, तैसे ही मृगशीर्षा से प्रथम के उत्तराभाद्रपदा पर्यन्त आठ उत्तरायण नक्षत्र दाहिनी ओर की पसलियों में उलटी गणना से कल्पना करे; शततारका और ज्येष्ठा यह उत्तर दक्षिणायन में के नक्षत्र दाहिने और

वामयोन्येसत् ॥ ६ ॥ उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गारकः श-नैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशनाःस्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥ ७ ॥ एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः सन्ध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्योतिर्लोकाय का-लायनायानिमिषां पतये महापुरुषाय धीमहीति ॥८॥ ग्रहर्क्षतारामयमाधि-दैविकं पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ॥ नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापं ॥ ९ ॥ इति० भा० म० पु० पं० स्कन्धे शिशुमारसंस्थानं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अधस्तात्स-वितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं वाऽलभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हः तस्य तात जन्म क-र्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ १ ॥ यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योज-

वायें कन्धों में कल्पना करे हैं ॥ ६ ॥ उस शिशुमार के ऊपर की ठोड़ीपर अगस्ति, नीचे की ठोड़ी पर नक्षत्र रूप यम, मुख में मङ्गल, उपस्थ में शनि, गले के पीछे की ऊँचाई पर बृहस्पति, वक्षःस्थल पर सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों पर अश्विनीकुमार, प्राण और अपान पर बुध, गले में राहु, सकल अङ्गों में केतु, और सकल रोमों पर सब तारागण हैं ॥७॥ हेराजन्! मनुष्य पवित्र होकर और मौनव्रत धारण करके विष्णुभगवान् के इस सर्वदेवतामय स्वरूप का प्रतिदिन सन्ध्याके समय दर्शन करे और उसके ज्योतिर्गणोंके आश्रय, काल रूपचक्र तथा देवताओं के अधिपति महापुरुष का हम नमस्कार पूर्वक ध्यान करते हैं इस अर्थवाले मन्त्र से स्तुति करे ॥ ८ ॥ हे राजन्! ग्रह—नक्षत्र—तारामय, यह देवताओं के अधिपति विष्णुभगवान् का स्वरूप, पूर्वोक्त मन्त्र का त्रिकाल जप करनेवाले पुरुषोंके पाप का नाश करता है अतः जो पुरुष,इसको त्रिकाल नमस्कार करताहै अथवा इसका स्मरण करता है उसके प्रातःकाल आदि तीनों कालमें उत्पन्न होनेवाले पातक तत्काल नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में त्रयोविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! सूर्यमण्डल से दश सहस्र योजन नीचे राहु है और वह नक्षत्रों की समान संचार करता है, ऐसा कोई २ कहते हैं, जो यह राहु, भगवान् की कृपासे ग्रह-पने को और अमरपने को प्राप्त हुआ; परन्तु वह सिंहिकाका पुत्र स्वयं दैत्यों में अधम होने के कारण उन दोनों दशाओं को पाने के योग्य नहीं था, उसका जन्म और कर्म मैं तुमसे आगे (छटे और आठवें स्कन्ध में) कहूँगा ॥ १ ॥ हे राजन्! अत्यन्त ताप देने

नायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबन्धः सूर्यचन्द्रमसावभिधावति ॥ २ ॥ तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति लोकाः ॥ ३ ॥ ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥ ४ ॥ ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षःपिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते ॥ ५ ॥ ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतत्रिप्रवरा उत्पतन्तीति ॥ ६ ॥ उपवर्णितं भूमेर्यथासंनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्सप्त भूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ताः अतलं वितलं सुतलं

वाले सूर्य का जो यह मण्डल है सो दश सहस्र योजन विस्तारवाला है, चन्द्रमा का मण्डल बारह सहस्र योजन है और राहु का तेरह सहस्र योजन है, ऐसा कहते हैं, उस राहु ने पहिले अमृत को पीते समय सूर्य और चन्द्रमा के बीच में घुसकर उनका व्यवधान करा था इसकारण उन दोनों ने वह वार्त्ता विष्णुभगवान् से कहदी, इस वैरको मन में रखकर वह राहु, अबभी अमावास्या वा पूर्णिमा के दिन सूर्य और चन्द्रमा का तिरस्कार करने के निमित्त उनके ऊपर को दौड़ता है ॥ २ ॥ यह जानकर भगवान् ने, सूर्य और चन्द्रमा की रक्षाके निमित्त, अपने सुदर्शन नामक प्रिय अस्त्रको नियुक्त कर रक्खा है, यह सहन करने को अशक्त होकर वारम्वार चन्द्रमा और सूर्य के चारों ओर फिरतारहताहै; उसचक्रको देखकरचन्द्रमा और सूर्यके सन्मुख थोड़े समय पर्यन्त खड़ारहने वाला वह राहु, उसचक्र के तेज से भयभीत होकर हृदय में चकित होता है और दूरसे ही हटजाता है, उन चन्द्रमा और सूर्य की आड़ में राहुके आजाने को ही पुरुष ग्रहण कहतेहैं, उसमें ही उस राहुकी सरल वा तिरछी स्थिति होनेपर सर्वग्रास अर्द्धग्रास कहतेहैं, परन्तु वास्तव में राहुके दूर होने के कारण ग्रास किंचिन्मात्र भी नहीं होता है ॥ ३ ॥ उस राहुके नीचे दश सहस्र योजन पर सिद्ध, चारण और विद्याधरों के स्थान हैं ॥ ४ ॥ उसके नीचे यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतगणों के क्रीड़ा करने का आंगनरूप आकाश है, उसकी मर्यादा जहांतक वायु चलता है और जहांतक मेघ मिलतेहैं तहांतक ही है ॥ ५ ॥ उसके नीचे सौ योजन के अन्तरपर यह पृथ्वी है, वह जहांतक हंस, भास, सिकरा, और गरुड़ आदि बड़े२ पक्षी उड़तेहैं तहांतक है ॥ ६ ॥ हे राजन्! भूमि की रचना मैंने तुमसे पहिले ही कही है, भूमि के नीचे भी सात भूविवर(भट्टे)हैं, वहएकके नीचे एक इसप्रकार दश२सहस्र योजनके अन्तरपरहैं; उनका विस्तार ब्रह्मकटाह के विस्तारकी

तलातलं महातलं रसातलं पातालमिति ॥७॥ एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति ॥ ८ ॥ येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलंकृताश्चकासति ॥ ९ ॥ उद्यानानि चातितरां मनइंद्रियानंदिभिः कुसुमफलस्तबकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लतांऽगालिंगितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहंगमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झषकुलोल्लंघनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरिंद्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥ १० ॥ यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभा-

समानहै,उनकेनाम—अतल,वितल,सुतल,तलातल,महातल,रसातल और पाताल यहहैं॥७॥ हेराजन्! स्वर्ग से भी अधिक कामभोग, ऐश्वर्य का आनन्द और सम्पत्तियों के द्वारा जहाँ के मन्दिर उपवन और विहार के स्थान भरेहुए हैं ऐसे उन विलों के स्वर्गों के विषैं, जिन की स्त्रियें, सन्तान, बान्धव, मित्र और सेवक नित्य आनन्दी और प्रेम करनेवाले हैं और जिन की इच्छा ईश्वरसे भी भग्न नहीं होती है ऐसे माया के द्वारा विहार करनेवाले दैत्य दानव और सर्प यह घरों के स्वामी वसते हैं ॥ ८ ॥ हे महाराज! जिन विलस्वर्गों के विषैं मायावी मयासुर की रचीहुई नगरियें, नानाप्रकार के श्रेष्ठ रत्नों से जड़ेहुए चित्र विचित्रस्थान,कोट,नगरद्वार,सभा,आँगन,देवालय और मन्दिर आदिकों से तथा नाग, असुर और कपोतों के जोड़े, तोते और सारिकाओं से गुञ्जारतेहुए वगीचोंमें कीं वनाईहुई भूमियों करके तथा विवरों (भट्टों) के अधिपतियों के उत्तम स्थानोंसे भूषित होतीहुई शोभापाती हैं ॥ ९ ॥ और तहां के वगीचे भी, मन को और इन्द्रियों को अत्यन्त आनन्द देनेवाले पुष्प और फलों के गुच्छों से तथा सुन्दर पल्लवों से जिन की मनोहर डालियें झुकीहुई हैं और जिन को लताओंने अपने अवयवों से आलिङ्गन करा है ऐसी वृक्षोंकी शोभाओं से, तैसे ही स्वच्छ जल से हुए और जिन में चक्रवाक आदि अनेकों प्रकार के पक्षियों के जोड़े वास करते हैं ऐसे सरोवरों की शोभाओं से और मच्छियों के समूहों के फिरने से खलवलाएहुए जल में के कमल, कुमुद, कुवलय, कल्हार, नीलोत्पल, और सैंकड़ों दलवाले लालकमलों के समूहों में इकट्ठे होकर रहनेवाले पक्षियोंके निरन्तर क्रीड़ा करने के कारण एकसाथ उठेहुए नानाप्रकार के मधुर शब्दों से जो इन्द्रियों को सन्तोष, उस के द्वारा वह वगीचे, देवलोक शोभासे भी अधिक शोभायमान रहते हैं॥ १० ॥ तहां सूर्य आदि ग्रह न

गैरुपलक्ष्यते ॥ ११ ॥ यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥
॥ १२ ॥ न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधे-
यो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति व-
योवस्थाश्च भवन्ति ॥ १३ ॥ न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना
भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥ १४ ॥ यस्मिन्प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवना-
नि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति ॥ १५ ॥ अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति
येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति
यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः
पुंश्चल्य इति या वै विलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साध-
यित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल

होने के कारण दिन, रात्रि, वर्ष आदि काल के विभाग से उत्पन्न होनेवाला भय किञ्चि न्मात्र भी देखने में नहीं आता है ॥ ११ ॥ तहाँ श्रेष्ठ २ बड़े २ भुजङ्गों के मस्तकों पर मणियें सकल अन्धकार का नाश करती रहती हैं ॥ १२ ॥ इन बिलस्वर्गों के विषैं वास करनेवाले पुरुष, दिव्य औषधियों के रस और रसायनों का ही अन्न पान—और स्नान आदि करते हैं, इसकारण उन को चिन्ता, व्याधि, शरीर में झुरी पड़ना, केश पकजाना, बुढ़ापन, शरीर कान्ति हीन होना, दुर्गन्धि, पसीना, परिश्रम और ग्लानि आदि अवस्थाओं के कारणकी दशाएँ नहीं प्राप्त होतीहैं॥ १३॥उन पुण्यवानोंको भगवान् के चक्रनामक तेजको छोड़ दूसरे किसीसे भी मृत्यु नहीं प्राप्त होतीहै १४ उस भगवान्के चक्ररूप तेजके तहाँ प्रवेश करनेपर उन असुरों की स्त्रियों के गर्भ भयसे स्रव जातेहैं ×वा उनका पात होजाताहै॥ १५॥ अतल नामवाले बिलस्वर्ग में मयासुर का पुत्र बल नामक दैत्य रहता है, उस ने पहिले इस लोक में छियानवे प्रकार की माया रची थीं, उन में की कुछएक माया (कपट विद्या) अब भी कोई कोई मायावी दैत्य जानते हैं; एक समय उस मायासुर ने जँभाई ली, उस समय उस के मुख में से स्वैरिणी (अपने वर्ण के प्राणियों से व्यभिचार करनेवाली), कामिनी (अन्य वर्णों से व्यभिचार करनेवाली) और पुंश्चली (अति चञ्चल स्वभाव वाली) इन तीन प्रकार की स्त्रियों के गण उत्पन्न करे; वह स्त्रियें उस बिल के स्थान में प्रवेश करनेवाले पुरुष को, तहां हाटक नामवाला एक प्रकार का जो रस है वह पिलाकर सम्भोग करने में समर्थ करलेती हैं, और अपने विलास युक्त कटाक्ष, प्रेमयुक्त हास्य, गुप्त भाषण और आलिङ्गन आदि के द्वारा उस के साथ आप यथेष्टरूप से रमण कर उन को भी रमाती हैं; उस हाटक रस की ऐसी शक्ति है कि—उस का सेवन करते ही पुरुष, अपने में

× गर्भिणी स्त्रीका चार मास के भीतर गर्भ गिरता है उस को गर्भस्राव कहते हैं और पाँचवें वा छटे मास में गर्भ गिरे तो उस को गर्भपात कहते हैं ॥

रमयन्ति यस्मिन्नुपर्युक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमिति अयुतमहा-
गजबलमात्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥ १६ ॥ ततोऽधस्ताद्वि-
तले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षद्भूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय
भवो भवान्या सह पिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम
भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्यमान ओजसा पिबति
तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धा-
रयन्ति ॥ १७ ॥ ततोऽधस्तात्सुतल उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोच-
नात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा व-
टुवामनरूपेण पराक्षिप्तस्वलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्व-
विद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाऽभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमारा-
धनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि ॥ १८ ॥ नो एवैतत्साक्षात्कारो भू-
मिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासु-
देवे तीर्थतमे सर्वजीवनियन्तर्यात्मारामे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादर-

बड़े २ दश सहस्र हाथियों की शक्ति मानताहुआ मदान्ध सा होकर 'मैं ईश्वर हूँ' 'मैं सिद्ध हूँ' ऐसा मानकर अपनी प्रशंसा करने लगता है ॥ १६ ॥ उस के नीचे वितल नामक विवर में सकल दुःखों को हरनेवाले हाटकेश्वर नामक भगवान् महादेवजी, अपने पार्षद् नामक भूतगणों को साथ लेकर ब्रह्माजी की सृष्टि की वृद्धि करने के निमित्त भवानी के साथ विहार करते हैं उन शिवपार्वती के वीर्य से हाटकी नामवाली एक बड़ीभारी नदी उत्पन्न हुई है, तहां वायु से प्रज्वलित हुआ अग्नि अपने वल से उस वीर्य को पान करता है, उस के पान करके थूके हुए उस वीर्य का हाटक नामवाला सुवर्ण होता है, उस सुवर्ण को दैत्यराजों के रणवास की स्त्रियें और पुरुष आभूषण वनाकर धारण करते हैं ॥१७॥ उस वितल के नीचे सुतल में पहिले, इन्द्र का प्रिय करने की इच्छा करनेवाले भगवान् ने अदिति से अवतार धारकर, वटु वामन (ब्रह्मचारी जिसकी त्रिलोकी हरली हैं परन्तु फिर भगवान् की कृपा ने ही जिस का उस सुतल में प्रवेश कराया है ऐसा वह उदार कीर्त्ति, पुण्यश्लोक, विरोचन का पुत्र राजा वलि, इन्द्रादि लोकपालों को भी प्राप्त न हुई अत्यन्त वड़ी हुई सम्पत्ति से युक्त होता हुआ, निज धर्म से आराधन करने योग्य उन ही भगवान् की आराधना करता हुआ अव भी निर्भय होकर रहता है ॥ १८ ॥ हेराजन् ! राजवलि को जो सुतल का राज्य प्राप्तहुआ है, यह उस के करेहुए भूमिदान का फल है यदि ऐसा कोई कहे तो—एक भूमि के विल (भट्ट) के स्थान का ऐश्वर्य प्राप्त होना, भूमिदानका फल नहीं होसक्ता, क्योंकि—सकल जीवों के समूहों के जीवभूत और

समाहितमनसा संप्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्भिलनिर्लयैश्वर्यम् ॥ ॥ १९ ॥ यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन्पुरुषः कर्मबन्धनमंजसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥ २० ॥ तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥ २१ ॥ न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥ २२ ॥ यत्तद्भगवताऽनधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च संप्रतिमुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥ २३ ॥ नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मंत्राय वृत एकांततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचत आत्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगंभीरवयसः कालस्य मन्वंतरपरिवृत्तं

आत्मरूप जो अति पवित्र परमात्मा वासुदेव, उन के पात्र (दान लेनेवाला) होनेपर, परम श्रद्धा के साथ अत्यन्त आनन्द पूर्वक, सावधान अन्तःकरण से इच्छानुसार अर्पण करे हुए साक्षात् मोक्ष का द्वार भी भूमि दान का फल कैसे होसक्ता है ? ॥ १९ ॥ क्योंकि–छींक आना, गिरना, वा ठोकर खाना इत्यादि सङ्कटों में विवश हो एकबारभी जिन का नाम उच्चारण करनेवाला पुरुष, उस कर्म को सहज में ही त्यागदेता है कि–जिस कर्मबन्धन से छूटने के निमित्त मुमुक्षु पुरुष, सांख्य योग आदि साधनों के अनेकों क्लेश भोगते हैं; उन सकल भक्तों को आत्मस्वरूप देनेवाले और ज्ञानियों को ज्ञान देने वाले भगवान्के विषैं आत्मरूप से समर्पण करेहुए भूमिदान का वह फल नही होसक्ता ॥ २० ॥ २१ ॥ और भगवान्ने तो जो इस बलि को फिर ईश्वरके स्मरण का नाश करनेवाले मायामय भोगों का ऐश्वर्य दिया, यह कुछ उसके ऊपर उत्तम अनुग्रह करा, ऐसा नहीं कहा जासक्ता ॥ २२ ॥ देखो ! उस बलि की कैसी एकनिष्ठ भक्ति है कि–दूसरा उपाय न मिलने पर भगवान् ने, याचना के बहाने से उस बलि का शरीरमात्र शेष छोड़कर और सकल त्रिलोकी को हरलियां, जिस को मन्त्ररूप वरुणकी पाशों ने बांधलियां है और जिस को पर्वत की गुफा में रोककर रक्खा है ऐसे भी उस बलि का यह सर्वत्र प्रसिद्ध कथन है कि–॥ २३ ॥ अहो ! जिसने साक्षात् बृहस्पतिजी को सम्मति करने के निमित्त परमभक्तिसे अत्यन्त वश में करलिया है वह यह इन्द्र, लोकदृष्टि में विद्वान् होकर भी, ईश्वर की प्राप्तिरूप स्वार्थ के विषय में वास्तव में चतुर नहीं है; क्योंकि–उसने ईश्वर प्राप्तिरूप अपने स्वार्थ को छोड़कर, प्रसन्न हुए विष्णुभगवान् के द्वारा, मुझ से त्रिलोकी के विषयभोग को ही मांगलिया, उन भगवान् से, उनका दास होना नहीं मांगा; यहअत्यंत ही अनुचित किया, क्योंकि–जिस का वेग अति गम्भीर है ऐसे कालचक्रका एकमन्वन्तर

कियल्लोकत्रयमिदम् ॥ २४ ॥ यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥ २५ ॥ तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वाऽस्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥ २६ ॥ अथ तस्यानुचरितमुत्तरस्माद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकंपितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥ २७ ॥ ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥ २८ ॥ ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पत-

होते ही अस्तव्यस्त होजानेवाली इस त्रिलोकीकी भगवान् के दासभाव के सामने कौन गणना है ॥ २४ ॥ हमारा राजा (प्रह्लाद) तो स्वार्थ के विषय में वडा प्रवीण था, उस ने अपने पिता (हिरण्यकशिपु) के मरण को प्राप्त होनेपर, प्रत्यक्ष भगवान् के, पिता का राज्यपद अपने को देनेपर भी उस को, भगवान् से भिन्न (उन की सेवा में विघ्न डालने वाला) समझकर स्वीकार नहीं किया, किन्तु निरन्तर भगवान् का दासभाव ही मांगलिया ॥ २५ ॥ उन परमसमर्थ प्रह्लादजी के मार्ग को, जिसके रागद्वेष आदि नहीं धुले हैं और जिसके ऊपर भगवान् का अनुग्रह नहीं हुआ है वह हमसमान कौनसा पुरुष, वर्त्ताव में लाने की (उन के समान वर्त्ताव करने की) इच्छा करेगा ? ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! जिनका अन्तःकरण अपने भक्तों के विषय में दयावान् है और जिन्होंने दिग्विजय के निमित्त निकलेहुए रावण को, बलि के द्वार में प्रवेश करनेपर, अपने चरणके अँगूठे से दशकरोड़ योजन दूरीपर फैंकदिया वह सकल जगत् के गुरु, भगवान् प्रत्यक्ष नारायण, हाथ में गदा लेकर जिसके द्वारपर खड़े रहते हैं, उस राजा बलि का चरित्र मैं तुमसे आगे अष्टम स्कन्ध में विस्तार के साथ कहूँगा ॥ २७ ॥ उस सुतल के नीचे तलातल में त्रिलोकी का कल्याण करने की इच्छा करनेवाले भगवान् शिवजी ने, जिसके तीनों पुरों को भस्म करडाला है, परन्तु फिर उन महादेवजी के ही अनुग्रह से जिसकी चारों ओर से रक्षा हुई है इसी कारण सुदर्शनचक्र से भी जिसको कुछभी भय नहीं है ऐसा मायावी पुरुषों का परमगुरु, मयासुर नामक दैत्यराज तहांके पुरुषों से पूजित होताहुआ निवास करता है ॥ २८ ॥ उसके नीचे महातल में कश्यपजी की कद्रूनामवाली स्त्री से उत्पन्न हुए अनेकों फणवाले सर्पों का क्रोधवश नामक एक गण रहता है, उस में के–

त्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमाना: स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुंबसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति ॥ २९ ॥ ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मंत्रवर्णाभिरिन्द्राद्बिभ्यति ॥ ३० ॥ ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशंखश्वेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकंबलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसंति तेषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥ ३१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे राह्वादिस्थितिबिलस्वर्गमर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रांतर आस्ते या वै कला भगवतस्ता-

---

कुहक, तक्षक, कालेय आदि बड़े दीर्घ और स्थूल शरीरवाले सर्प, श्रीहरिके वाहन जो पक्षिराजाधिपति गरुड़जी उनसे निरन्तर भय मानते रहते हैं; कभी २ अपने पुत्र, स्त्री, सुहृत् और कुटुम्बियों के साथ उन्मत्त होकर क्रीड़ा करते हैं ॥ २९ ॥ उसके नीचे रसातल में, दैत्य और दानव, पणि नामवाले निवातकवच, हिरण्यपुरवासी और कालेय यह निवास करते हैं; यह सब उत्पन्न होने के समयसे ही महापराक्रमी और परमसाहसी कर्म करनेवाले तथा देवताओं के शत्रु हैं; ऐसा जिनका पराक्रम लोकों में प्रसिद्ध है सो श्रीहरि के तेज (सुदर्शनचक्र) से ही जिनकी वीरता का मद नष्ट हुआ है ऐसे होकर सर्पों की समान छुपे छुपे रहते हैं, तथा सरमा नामवाली इन्द्र की दूती ने, उनके साथ सन्धि (सुलह) करने की इच्छा न दिखाते हुए इन्द्र की स्तुति करके 'तुम इन्द्र के हाथसे मरण को प्राप्त होओगे' ऐसे अर्थवाली मन्त्ररूप वाणी से शाप दिया इसकारण वह इन्द्रसे भय मानते रहते हैं ॥ ३० ॥ उसके नीचे पाताल में, जिनमें वासुकि आदि बड़े २ देहधारी और जिनको बड़ा क्रोध है ऐसे—शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय धृतराष्ट्र, शंखचूड़, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त आदि नागलोक के अधिपति निवास करते हैं, उन पांच, सात, दश, सौ वा सहस्र फणवाले सर्पों के फणों पर स्थापन करेहुए तेजके पुञ्जरूप महामणि, पाताल में के महान् अन्धकार को दूर करते हैं ॥ ३१ ॥ इति पंचमस्कन्ध में चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! तिस पाताल लोककी मूल में तीस सहस्र योजन के अन्तरपर अनन्त नामसे प्रसिद्ध भगवान् की तामसी मूर्त्तिहै, भक्तिशास्त्र में निष्ठा रखनेवाले भक्तजन, चतुर्व्यूहोपासनामें जिसका,

मसौ समाख्याताऽनन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणमहमित्यभि-मानलक्षणं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥ यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनंतमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥ २ ॥ यस्य ह वा इदं कालेनोपसंजिहीर्षतेऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवो-रंतरेण सांकर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तंभयन्नुदतिष्ठत् ॥ ३ ॥ यस्यांघ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिखण्डमण्डलेष्वहिपतयः सह सात्वतर्षभैरेकांतभक्तियोगेनावनमंतः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलमण्डि-तगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयंति ॥ ४ ॥ यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चारुगवलयविलसितविशदविपुलधव-लसुभगरुचिरभुजरजतस्तंभेष्वगुरुचन्दनकुंकुमपंकानुलेपेनावलिंपमानास्तदभि-मर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदवि-घूर्णितारुणकरुणाऽवलोकनयनवदनारविंदं सव्रीडं किल विलोकयन्ति ॥ ५ ॥ स एव भगवाननंतोऽनंतगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां

'मैं हूँ' ऐसा अभिमानरूप लक्षणहै और जिसके द्वारा देखनेवाला तथा देखने योग्यवस्तु इन दोनों की एकता होती है उसको सङ्कर्षण कहते हैं॥ १॥जिन सहस्र मस्तकवाले अनन्तमूर्ति भगवान्के एकही मस्तकपर धारणकराहुआ यह भूमण्डल सरसों की समान दीखतारहताहै प्रलयकाल में इस जगत् का अन्त करने की इच्छा करनेवाले, जिन की, क्रोध से तिरछी करी हुई सुन्दर और घूमनेवाली दोनों भ्रुकुटियों के मध्य में से, ग्यारह प्रकार की मूर्त्ति वाले और तीन नेत्र वाले सङ्कर्षण नामक रुद्र, अपने तीन अग्रभागवाले शूल को उठाकर बाहर निकलते हैं ॥ ३ ॥ जिन के दोनों चरणकमलों में के कुछएक लाल वर्ण और निर्मल नखरूप रत्नों के समूहों के मण्डल में श्रेष्ठ भक्तों के साथ अनन्य भक्ति के द्वारा प्रणाम करनेवाले सर्पों के स्वामी, प्रसन्नचित्त होकर, चारों ओर झलकनेवाली कुण्डलों की कान्ति से भूषित कपोलोंवाले अपने सुन्दर मुख को देखते हैं ॥ ४ ॥ विषयभोगों की इच्छा करनेवालीं नाग कन्याएँ तो, जिन के सुन्दर शरीरमण्डलपर शोभापानेवाले निर्मल, बड़े २, स्वेतवर्ण, सुन्दर और मनोहर भुजारूप चांदी के खम्भों में, काली अगर, चन्दन और केसर की कीचरूप अनुलेपन का उवटन लगाते समय, उन भुजाओं के स्पर्श से उन्मथित हुए हृदय में कामदेव का प्रवेश होने के कारण मनोहर और विलासयुक्त मन्दहास्य करती हुई, उन के, प्रेम और मद से आनन्दित तथा जिस में मद के कारण घूमते हुए कुछएक लाल एवं कृपाकटाक्षोंवाले नेत्र हैं ऐसे मुखकमल को लज्जा के साथ देखती हैं ॥ ५ ॥ वही यह अनन्त गुणों के समुद्र, आदिदेव भगवान् अनन्त नामवाले शेषजी, दूसरों की उन्नति को न सहना और क्रोध इन दोनों के वेग को अपने में रोक

स्वस्तेय आस्ते ॥ ६ ॥ ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणै-
रनवरतमदमुदितविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्याययमानः स्वपार्षद-
विबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातम-
धुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृत-
सुभगसुन्दरभुजो भगवान्महेन्द्रो वारणेन्द्र इव कांचनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति
॥ ७ ॥ य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथि-
तमविद्यामयं हृदयग्रंथिं सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति त-
स्यानुभावान् भगवान्स्वायंभुवो नारदः सह तुंबुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लो-
कयामास ॥ ८ ॥ उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्वाद्याः प्रकृतिगुणा
यदीक्षयासन् ॥ यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म
॥ ९ ॥ मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ॥

कर लोकों के कल्याण के निमित्त तहां रहते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! जिन का ध्यान, देवता, दैत्य, सर्प, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और मुनियों के समूह करते हैं, जो निरन्तर मद से प्रसन्न रहते हैं और जिन के नेत्र विव्हल रहते हैं, जो अपने मधुरभाषणरूप अमृत से अपने पार्षदों और देवताओं के समूहों के अधिपतियों को हर्षयुक्त करते रहते हैं, जिन के वस्त्र नीलवर्ण हैं, जिन के एक ही कुण्डल है, जिन्हों ने अपनी मनोहर और सुन्दर बाहुको हलके कूबरपर रक्खा है और जिन की लीला उदार हैं ऐसे वह भगवान् शेष जी, जैसे इन्द्र का ऐरावत हाथी गले में सुवर्ण की जञ्जीर को धारण करता है तैसे, जिस की कान्ति कुम्हलाती नहीं है और जो नवीन तुलसी के स्वादयुक्त मधुररस से उन्मत्त हुए भ्रमरोंके समूहोंके मधुर गान से शोभायमान है ऐसी अपनी वैजयन्ती नामवाली वनमाला को धारण करते हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! जो यह अनन्त भगवान्, अपना ध्यान करनेवाले और अपने माहात्म्य को सुननेवाले, मोक्ष की इच्छा करनेवाले पुरुषों के हृदय में प्रविष्ट होकर, उन की अति पुरातनकाल की कर्मवासनाओं से गुथीहुई सत्व, रज, तमोगुणात्मक अविद्यारूप हृदय की ग्रन्थि का तत्काल छेदन करते हैं, उन का प्रताप, भगवान् ब्रह्मा जीके पुत्र नारदजीने तुम्बुरु ऋषिके साथ ब्रह्माजीकी सभामें वर्णनकरा, वह इसप्रकार है कि ८ इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार के कारण सत्व आदि माया के गुण, जिसके दृष्टिपात से अपना २ कार्य करने को समर्थहुए और जिसने इकले ही अपने स्वरूप में, अनेकों प्रकारके कार्यों से परिपूर्ण इस प्रपञ्च को धारण कराहै वह अनादि और अनन्त ब्रह्म जिसका स्वरूप है उन ब्रह्मरूप शेषभगवान् के तत्त्व को यह लोक कैसे जानसक्ता है? ॥ ९ ॥ जिनके विषैं यह स्थूल और सूक्ष्मरूप जगत् प्रकाश पाता है और जिनके चरित्र

यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥ १० ॥ यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ॥ हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ११ ॥ मूर्द्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्वं ॥ आनंत्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥ १२ ॥ एवंप्रभावो भगवाननन्तो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ॥ मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥ १३ ॥ एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथाकर्मविनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान्कामयमानैः ॥ १४ ॥ एतावतीर्हि राजन्पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमं-

---

लोकों को तारनेवाले हैं उन भगवान् ने हमारे ऊपर परम दया करके अपनी शुद्ध सतोगुणी मूर्त्ति धारण करी है और जिनकी, अपने भक्तजनों के मन अपनी ओर लगाने के निमित्त करीहुई निर्दोष लीला (चरित्रों को) को सिंह ने ग्रहण करा है अर्थात् भगवान् का अनंत पराक्रम देखकर, इन में का कोई एक पराक्रम मेरे शरीर में आजाय ऐसा मन में विचारकर सिंह ने उन में की एक शूरता को सीखा है ॥ १० ॥ दूसरे से सुनाहुआ भी नाम, अकस्मात् वा दुःखित होने के कारण, दुःख दूर होने के निमित्त अथवा हास्य से महापातकी पुरुष भी यदि उच्चारण करे तो वह शुद्ध होगा, यह तो क्या कहें ? क्योंकि—यह परमपवित्र भगवान् ही अपने नाम से, मनुष्य के सकल पापों को तत्काल नष्ट करदेते हैं इसकारण उन शेषभगवान् को छोड़ दूसरे किस का मुमुक्षु पुरुष आश्रय करे ? ॥ ११ ॥ हे सभासदों ! जिन सहस्र मस्तकवाले शेषजी के एक ही मस्तकपर अपनी इच्छा से स्थापन कराहुआ यह पर्वत, नदी, समुद्र और प्राणियों सहित भूगोल, अणुरूप रेणु की समान रहता है, उन अपरिमित पराक्रमवाले व्यापक अनन्त के पराक्रम की, सहस्र जिह्वावाला भी कौन पुरुष गणना करसकेगा ? कोई भी नहीं करसकेगा ॥ १२ ॥ जिनका प्रभाव अचिन्त्य है, जिनका पराक्रम और गुण अपरिमित हैं और जो जगत् की रक्षा के निमित्त अनायास में भूमि को धारण करते हैं वह स्वतन्त्र अनन्तभगवान् इस भूमि के मूल में स्थित हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इस प्रवृत्तिमार्ग में विषयों की इच्छा करनेवाले पुरुषों के जानेयोग्य, भरतखण्ड में करेहुए कर्म्मों के अनुसार रचीहुई जो गति हैं वह यही हैं, यह सब मैंने जैसा गुरु के मुख से सुना था वैसा ही तुम से कहा है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! प्रवृत्तिरूप धर्म के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले पुरुष को उस धर्म की फलरूप उत्तम, मध्यम और अधम जो गति प्राप्त होती हैं, वह तुम्हारे प्रश्न करने के अनुसार मैंने कही हैं, अब और क्या

न्यत्कथयाम इति ॥ १९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भूविवर-
विध्युपवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ महर्ष
एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्र-
द्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥ २ ॥ अ-
थेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया वैसादृश्यात्कर्मफलं विस-
दृशं भवति ॥ याह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सह-
स्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ नरका नाम
भगवन्किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥ ४ ॥
ऋषिरुवाच ॥ अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरि-
ष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण
समाधिना सत्या एवाशिषं आशासाना निवसन्ति ॥ ५ ॥ यत्र ह वाव भगवा-

---

वर्णनकरूँ? उसके विषयमें तुम प्रश्नकरो १९ इति पञ्चमस्कन्ध में पञ्चविंश अध्याय समाप्त. राजा परीक्षित ने कहा कि—हे महर्षे ! जीवलोक को उत्तम, मध्यम और अधम यहतीन प्रकार की गतियें प्राप्त होती हैं, यह जो भोगों की विचित्रता तुमने मुझ से कही सो कैसे होती है?॥१॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! सकल प्राणियों के कर्म यदि कहीं एकसमान हों तबभी कर्त्ता के सात्विक, राजस और तामस होने के कारण उसकी श्रद्धा भिन्न २ प्रकार की होती है, इसकारण सात्विक श्रद्धा से कर्त्ता को सुखप्राप्त होता है, राजस श्रद्धासे सुख और दुःख प्राप्त होते हैं तथा तामस श्रद्धासे दुःख और मूढ़पना प्राप्त होता है, इसप्रकार भिन्न २ प्रकार के सकल ही कर्मों की गति न्यूनाधिकरूप से सबको प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥ अब जिस धर्म का श्रुति स्मृतियों ने निषेध किया है उस धर्म को ही जो पुरुष मुख्य मानकर आचरण करता है उसकी श्रद्धा विचित्र होने के कारण उसके कर्मों का फल विचित्र होता है, इसकारण पुरुषों को अनादि अविद्या के द्वारा, इच्छाकरे हुए अधर्म का फलरूप जो सहस्रों नरक प्राप्त होते हैं उन में से मुख्य २ अब मैं तुम से कहता हूँ ॥ ३ ॥ राजा परीक्षित ने कहा—हे भगवन् मुने ! तुमने जो नरक नामवाले स्थान कहे वह कहीं पृथ्वी परके कोई देश हैं वा भूमिको छोड़कर कहीं अन्तरिक्ष में हैं अथवा ब्रह्माण्ड के बाहर हैं ? ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! त्रिलोकी के भीतर ही दक्षिणदिशा की ओर भूमि (पाताल) के नीचे और गर्भजलके ऊपर के प्रदेशों में हैं, उस दक्षिण दिशा में ही अग्निष्वात्ता आदि पितृगण, अपने गोत्र के प्राणियों को विषयभोग मिलें ऐसा चिन्तवन करते हुए पूर्ण एकाग्रत सा भगवान् का आराधन करते हैं ॥ ५ ॥ उस दिशा में ही भगवान् की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले पितरों के राजा

न्पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जंतुषु संपरेतेषु यथाकर्मावद्यं दोष-मेवानुल्लंघितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति॥६॥ तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽधतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुंभीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमंधकूपः कृमिभोजनः संदंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकंटकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति ॥ किंच क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दंदशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशति नरका विविधयातनाभूमयः॥७॥तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥ ८ ॥ एवमेवांधतामिस्रे यस्तु वंचयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुंक्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादंधतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥

भगवान् सूर्यपुत्र यम, अपने सेवकों के साथ निवास करते हैं, वह अपने दूतोंके द्वारा अपने देश में लाएहुए मृतहुए प्राणियों को उनके कर्मदोषके अनुसार यथायोग्य दण्ड देते हैं॥६॥ तहाँ कोई पुरुष, इक्कीस नरक हैं, ऐसी गणना करते हैं; उन नरकों को,नाम,रूप और लक्षणों सहित मैं तुम से क्रमसे कहता हूँ–१ तामिस्र, २ अन्धतामिस्र, ३ रौरव, ४ महारौरव, ५ कुम्भीपाक, ६ कालसूत्र, ७ असिपत्रवन, ८ सूकरमुख, ९ अन्धकूप, १० कृमिभोजन, ११ सन्दंश, १२ तप्तसूर्मि, १३ वज्रकण्टकशाल्मली, १४ वैतरणी, १५ पूयोद, १६ प्राणरोध,१७ विशसन, १८ लालाभक्ष,१९ सारमेयादन, २०अवीचि, २१ अयःपान, यह इक्कीस और मतान्तरसे १ क्षारकर्दम, २ रक्षोगणभोजन, ३शूलप्रोत, ४ दन्दशूक, ५ अवटनिरोधन, ६ पर्यावर्त्तन और ७ सूचीमुख यह सात, सब मिलकर अट्ठाईस नरक हैं और वह प्राणियों को नानाप्रकारकी पीड़ाएं भोगनेके स्थानहैं॥७॥ उन में जो पुरुष, दूसरों के धन, पुत्र और स्त्री को हरता है, उस को अति भयानक यम के दूत, कालफांसी से बांधकर बलात्कार से तामिस्र नरक में डालदेते हैं और अन्न न देना, जल न देना, दण्डे से पीटना, डर दिखाना इत्यादि पीड़ा देते हैं तब अनेकों दुःखों को प्राप्त हुआ वह प्राणी उस ही समय तिस अन्धकारमय नरक में मूर्च्छा पाता है ॥८॥ इस प्रकार ही जो पुरुष, किसी पुरुष को धोखा देकर उस की स्त्री धन आदि को भोगता है वह अन्धतामिस्र नरक में जाकर पड़ता है, जहां पडाहुआ और पीड़ाओं को भोगता हुआ वह प्राणी जड़ में काटा हुआ वृक्ष जैसे अचेतन होकर गिरपड़ता है तिसी प्रकार पीड़ाओं कर के वह पुरुष, नष्टबुद्धि और नष्टदृष्टि होजाता है इस कारण उस नरक को

॥ ९ ॥ यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमे-
वानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥
॥ १० ॥ ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जंतवः परत्र यमयातनामुपगतं
त एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद्रौरवमित्याहुः रुरुरिति सर्पा
दतिक्रूरसत्वापदेशः ॥ ११ ॥ एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्या-
दा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहंभरः ॥ १२ ॥ यस्त्विह
वा उग्रः पशून्पक्षिणो वा प्राणत उपरंधयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हित
ममुत्र यमानुचराः कुंभीपाके तप्ततैले उपरंधयन्ति ॥ १३ ॥ यस्त्विह पितृविप्र-
ब्रह्मध्रुक्स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यध-
स्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानांत-
र्बहिः शरीर आस्ते शेते चेष्टते अवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरो-

---

अन्धतामिस्र कहते हैं ॥ ९ ॥ और जो पुरुष, इस लोक में, 'यह शरीर मैं हूँ और यह धन आदि मेरे हैं' ऐसा मानकर और प्राणियों से द्रोह कर के प्रतिदिन अपने कुटुम्ब का पोषण करता है वह उस कुटुम्ब को इस लोक में ही त्यागकर अपने उस पाप के द्वारा रौरव नरक में पड़ता है ॥ १० ॥ हे राजन्! इस लोक में कुटुम्ब का पोषण करने के निमित्त यह पुरुष, जिस प्राणी को जिस प्रकार से मारता है, वही प्राणी, उस पुरुष को परलोक में यमलोक की पीडाएँ प्राप्त होते ही रुरु नामक प्राणी बनकर जैसे उन्होने अपने को पीड़ा दी थी तैसे ही वह उस को पीड़ा देते हैं, इस कारण ही इस नरक का रौरव नाम रक्खा है और 'रुरु' सर्प से भी अधिक क्रूर एक प्रकार के प्राणियों का नाम है ॥ ११ ॥ इस प्रकार ही महारौरव नामवाला नरक है उस में, जो प्राणी, दूसरे प्राणियों से द्रोह कर के अपने शरीर का पोषण करता है वह जाकर पड़ता है, तहां पड़े हुए उस पुरुष को,कच्चामांस खानेवाले रुरु नामवाले प्राणी मांस के निमित्त उस का शरीर नोचते हैं ॥ १२ ॥ जो क्रूर स्वभाववाला मनुष्य, इस लोक में पशुओं को वा पक्षियों को जीवित ही रांधता है, उस राक्षसों से भी निन्दित निर्दयी पुरुष को, परलोक में, कुंभी-पाक नामक नरक के विषैं यम के दूत तपेहुए तेल में रांधते हैं ॥ १३ ॥ तैसे ही जो पुरुष इस लोक में पिता, ब्राह्मण और वेद से द्रोह करता है उस को यम के दूत, उस कालसूत्र नामक नरक में डालते हैं—जिस का घेर दश सहस्र योजन है, जो तांबे का है और तपतेहुए समान स्थान (मैदान) वाला है तथा जो नीचे अग्नि के और ऊपर सूर्य के ताप से अत्यन्त ही तपाहुआ रहता है, तहां भूख प्यास से उस प्राणी के शरीर के भीतर और बाहर दाह होता रहता है, उस के मारे हुए पशु के शरीरपर जितने रोम होते

माणि तावद्वर्षसहस्राणि १४॥ यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते ॥ ॥१५॥ यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेह—क्षुखण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥ १६ ॥ यस्त्विह वै भूतानामीश्वरकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगप-

हैं उतने सहस्र वर्षों पर्यन्त उस का शरीर भस्म सा होकर,उस को तिस नरक के विषैं वैठतेमें,शयन करतेमें,लोटतेमें,खड़े रहते में और दौडते में अनेकों पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं ॥ १४ ॥ जो पुरुष इसलोक में किसीप्रकार की विपत्ति न होनेपर अपने वेदमार्ग से भ्रष्ट होकर पाखण्डमार्ग को स्वीकार करता है,उसको यमदूत असिपत्रनामक वनमें ढकेल कर कोड़े से मारते हैं; तहाँ वह जिधर तिधर को दौड़ता हुआ, दोनों ओर धार वाले तालके वन के तरवार की समान पत्तोंसे सकल शरीर छिन्न भिन्न होनेपर ' मरा रे मरा ' इसप्रकार डकराता है और पद २ पर अत्यन्त वेदनाके कारण मूर्छित होकर गिर पड़ता है, इसप्रकार अपने धर्म के मार्ग को त्यागनेवाला वह पुरुष, पाखण्डमार्गको स्वीकार करने का फल भोगता है ॥१५॥ तैसेही जो मनुष्य,इसलोक में राजा वा राजआश्रित होकर दण्ड देने के अयोग्य पुरुष को दण्ड देता है अथवा ब्राह्मण को देहदण्ड देताहै वह पापी पुरुष, यमलोक के विषैं सूकरमुख नामक नरक में पड़ता है; तहां अतिबली यम के दूतों के अपने अङ्गों को कुचलनेपर, जैसे यहां कोल्हू में दिया हुआ ईख का गन्ना कोल्हू के चलते समय पिचने पर चर २ शब्द करताहै तैसे ही वह, करुणायुक्त स्वरसे डकराने लगता है और इसलोकमें जैसे उसके दण्ड दियेहुए निरपराधी पुरुषको मूर्च्छा होती है तैसे ही वह तहां कभी २ मूर्च्छित होकर परम सङ्कट में निमग्न होता है ॥ १६ ॥ तैसे ही स्वयं ब्राह्मण आदि भाव से विधिनिषेध पूर्वक आचरण करेहुए कर्मों के द्वारा अपनी जीविका चलानेवाला और विवेक से दूसरों के दुःख को जानताहुआ जो पुरुष इसलोक में, ईश्वर ने जिनकी मनुष्यों के रुधिर को पीना आदि वृत्ति बनाई है तथा जिनको दूसरों के दुःख का ज्ञान नहीं होता है ऐसे खटमल आदि प्राणियों को मारता है वह परलोक के विषैं अन्धकूप नामक नरक में पड़ता है और तहां—इसने इसलोक में जिनका वध करा

क्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये के चाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतो-
ऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुश-
शरीरे जीवः ॥ १७ ॥ यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किंचनोपनतमनि-
र्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र श-
तसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो
यावत्तदप्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥ १८ ॥ यस्त्विह वै स्तेयेन
बलाद्वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वाऽपहरत्यन्यस्य वाऽनापदि पुरुषस्तम-
मुत्र राजन्यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिंडैः सन्दंशैस्त्वचि निष्कुषंति ॥ १९ ॥
यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया
ताडयंतस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिंगयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया
सूर्म्या ॥ २० ॥ यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकंटक-

होता है वही–पशु, मृग, पक्षी, सर्प, डांस, जूँ, खटमल और मच्छर आदि प्राणी, उससे सब प्रकार से द्रोह करने लगते हैं इसकारण वह, जैसे जीव अनेकों रोगों से ग्रस्तहुए शरीर में दुःख भोगता है तैसे ही घने अन्धकार में निद्रा के सुखसे रहित और एकस्थान पर न रहता हुआ जिधर तिधर को घूमता फिरता है ॥ १७ ॥ जो पुरुष, इसलोक में पंचमहायज्ञ न करके और जो कुछ अन्न आदि मिले उसको, अतिथि, बालक और वृद्धों को यथायोग्य विभाग से न देकर आपही भक्षण करलेता है वह शास्त्र में काकों की समान मानागया है और दान दिये बिना तथा अग्नि में हवन करेविना ही भक्षण करने वाला पुरुष, परलोकमें कृमिभोजन नामक अधम नरकमें पड़ता है और तहां लाखयोजन विस्तारवाले कीडों के कुण्ड में स्वयं कीडा बनता है, तहां और कीडे उसको खानेलगते हैं और वह आपभी उन कीडों को खाता है; इसप्रकार जबतक उसके पातक रहते हैं तबतक वह अपने प्रायश्चित्त रहित आत्मा को पीडा देता है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष, इस लोक में चोरी से वा बलात्कार से, आपत्तिकाल न होनेपर भी ब्राह्मण का वा दूसरे किसी का सुवर्ण रत्न आदि द्रव्य हरता है उस पुरुष को परलोक में यम के दूत, त्वचापर लोहे के तपाएहुए गोलों से दागते हैं और सड़ाँसों से उस की त्वचा को नोचते हैं ॥१९॥ जो पुरुष इस लोक में गमन करनेके अयोग्य स्त्री से गमन करता है वा जो स्त्री अगम्य पुरुष से व्यभिचार करती है; इन दोनों को परलोक में यम के दूत कोड़ों से ताड़ना करतेहुए तपाई हुई लोहे की स्त्री की समान पुतली से पुरुष को आलि-ङ्गन कराते हैं और पुरुष की समान, तपाएहुए लोहे के पुतले से स्त्री को आलिङ्गन कराते हैं ॥२०॥ जो पुरुष, इस लोक में पशु आदिकों से भी गमन करता है उसको परलोक के

शाल्मलीमारोप्य निष्कर्षंति ॥ २१ ॥ ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून् भिंदन्ति ते संपरेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमाना: स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्त उपतप्यंतो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥ २२ ॥ ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जा: पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलापूर्णार्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥ ॥ २३ ॥ ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि संपरेताँल्लक्ष्यभूतान्यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥ २४ ॥ ये त्विह वै दांभिका दंभयज्ञेषु पशून्विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति ॥ २५ ॥ यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेत: पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेत:कुल्यायां पातयित्वा

विषैं नरक में जानेपर, वज्र की समान कठोर कांटों से भरेहुए शाल्मली के वृक्षपर चढ़ाकर खचेड़ते हैं ॥ २१ ॥ जो राजे वा राजाओं के अधिकारी पुरुष, धर्ममार्ग को नष्टभ्रष्ट करडालते हैं वह धर्ममर्यादा को नष्ट करनेवाले पुरुष, मरण को प्राप्त होने के अनन्तर वैतरणी नामक नरक में पड़ते हैं, उस नरक के चारों ओर खाई की समान बनीहुई नदी में जलजन्तुओं के समूह, उन को स्थान २ पर खाते हैं और अपने पातक के कारण विष्टा, मूत्र, पीव, रक्त, केश, नख, हाड़, चरवी, मांस और वमाओं को बहानेवाली उस नदी में वह पापी बहतेहुए भी देह का और प्राणों का वियोग न होनेपर अपने पापकर्मों के वेग से दहतेहुए और वारम्वार कर्मफल का स्मरण करतेहुए पश्चात्ताप को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ जो पुरुष. इस लोक में शुद्धता और आचार के नियम को छोड़कर निर्लज्जता से शूद्रों की स्त्रियों के साथ गमन करते हैं तथा पशुओं की समान यथेष्ट वर्त्ताव करते हैं वह भी मरण के अनन्तर पीव, विष्टा, मूत्र, कफ और मल से भरेहुए पूयोद नामवाले नरक में पडते हैं और तहां के उन ही अति घिनौने पदार्थों को भक्षण करते हैं ॥ २३ ॥ तैसेही इसलोकमें जो ब्राह्मण आदि लोक, कुत्ते, गधे आदिको पालनेवाले और मृगया (शिकार) करनेवाले होते हैं तथा विहित कर्म को छोड़कर अन्य अवसरपर पशुओं की हिंसा करते हैं उन को भी परलोक में यमदूत लक्ष्य (निशाना) बनाकर बाणों से वेधते हैं ॥ २४ ॥ जो पाखण्डी पुरुष, इसलोक में मांसखाने के निमित्त पाखण्ड के यज्ञ में पशुओं का वध करते हैं वह परलोक के विषैं वैशस नामक नरक में पड़ते हैं तव यमदूत उन को अनेकों प्रकार की पीड़ा देकर मारते हैं ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण इस लोक में काममोहित होकर अपने वर्ण की दूसरी स्त्री को जारपने से भोगता है वा बलात्कार से मुखमैथुन करके स्त्री को

रेतः संपाययन्ति ॥ २६ ॥ ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान्सार्थान्वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटास्तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥ २७ ॥ यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथंचित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥ २८ ॥ यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां निरयभीतानामुरसि पदाक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥ २९ ॥ अथ च यस्त्विह वा आत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना

वीर्य पिलाता है उस पापी पुरुष को परलोक में यमदूत वीर्य के प्रवाह में डालकर वही वीर्य-पिलाते हैं ॥ २६ ॥ इस लोक में जो राजे वा राजाओं के आश्रित अधिकारी पुरुष चोरी करते हैं, आग लगाते हैं, विष देते हैं वा व्यापारियों के टांडों को लूटते हैं उन को भी मरण होने के अनन्तर परलोक में वज्र की समान दाढ़ वाले सात सौ वीस श्वानरूप यमदूत, बड़े आवेश के साथ तोड़ २ कर खाते हैं ॥ २७ ॥ जो पुरुष, इसलोक में साक्षी (गवाही) देते में, धन के दैन लैन के व्यवहार में, वा दान देते में किसीप्रकार भी झूठ बोलता है वह मरण को प्राप्त होनेपर परलोक में यम के दूतों से, निराधार तरङ्गों से रहित अवीचिमत् नामक नरक में सौ योजन ऊँचे पर्वत के शिखरपर से नीचे को मुख और ऊपर को चरण करके गिरायाजाता है, तहाँ की भूमि पत्थर की है और जलमयी सी दीखती है, इसकारण उस नरक को 'अवीचिमत्' कहते हैं तहाँ गिरकर उस के शरीर के तिलकी समान टुकड़े २ होजाते हैं तब भी वह मरण को नहीं प्राप्त होता है तत्काल जैसा का तैसा होजाता है, इसीप्रकार उस को फिर पर्वतपर चढ़ाकर नीचे गिराते हैं ॥ २८ ॥ इस लोक में जो कोई ब्राह्मण, उस की स्त्री वा दूसरा कोई व्रतधारी पुरुष, मोह से सुरा पीता है और इसीप्रकार जो क्षत्रिय अथवा वैश्य मोह से सोम पीता है, इन को नरक में लेजानेपर यम के दूत इन की छातीपर चरण रखकर मुख में अग्नि से तपाकर रसरूप करेहुए फौलाद को डालते हैं ॥ २९ ॥ तैसे ही इसलोक में जो स्वयं अधम होकर भी 'मैं ही बड़ा प्रतिष्ठित हूँ' ऐसा अभिमान करके, जन्म, तप, विद्या आचार, वर्ण और आश्रम के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषों का बहुत सन्मान नहीं करता है वह जीताहुआ ही मृतक की समान पुरुष, प्राणान्त होनेपर क्षारकर्दम नामक नरक में नीचेको मुख और ऊपर को चरण करके गिरायाजाता है तब तहाँ अति असह्य पीड़ाओं

ह्यश्नुते ॥३०॥ ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजंते याश्च स्त्रियो नृपशून्खा-
दंति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयंतो रक्षोगणाः सौनिका इव
स्वधितिनाऽवदायासृक् पिबन्ति नृत्यंति च गायंति च हृष्यमाणा यथेह पुरु-
षादाः ॥ ३१ ॥ ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रंभिकैरुपसृतानुप-
विश्रंभय्य जिजीविषून्शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयंति तेऽपि
च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां चाऽभिहताः कंक-
वटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुंडैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरंति ॥ ३२ ॥ ये त्वि-
ह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दंदशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके
दंदशूकाख्ये निपतंति यत्र नृप दंदशूकाः पंचमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति
यथा बिलेशयान् ॥ ३३ ॥ ये त्विह वा अन्धावटकुसूलगुहादिषु भूतानि नि-
रुंधन्ति तथाऽमुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ३४ ये त्विह

को भोगता है ॥ ३० ॥ तैसे ही इस लोक में जो पुरुष, मनुष्यरूप पशु का बलि देकर भैरव आदि की आराधना करते हैं और जो स्त्रियें मनुष्य का मांस भक्षण करती हैं उन सब को यम के स्थान में पहुँचते ही, उन्होंने यहाँ पशुओं की समान जिन मनुष्यों को मारा होता है वही राक्षस बनकर पीड़ा देतेहुए व्याधों की समान टुकड़े २ करके उनका रुधिर पीते हैं, नाचते हैं, और हर्ष से गान करते हैं, जैसे इसलोक में उन मनुष्यभक्षकों ने नरमांस भक्षण करके आनन्द से नृत्य आदि किया है तैसेही वह मारेहुए मनुष्य आदि क भी परलोक में वैसाही करते हैं ॥ ३१ ॥ तैसे ही इस लोक में जो पुरुष, वन में वा. ग्रामों में निरपराधी प्राणियों को, पहिले विश्वास के उपायों से (भोजन आदि देकर) विश्वास दिखाकर उन को, अपने समीप में भोजन आदिके लोभ से आपहुँचनेपर पकड़कर काँटे वा सूत्र आदि मे पिरोकर 'यह हमारे खेलने की वस्तु है, ऐसा समझकर उन को दुःखदेतेहैं वह पुरुष भी मरण को प्राप्त होते ही यमयातना के विषैं यम के दूतों से काँटे आदि में पिरोए जाते हैं तब भूख और प्याससे अति पीडित तथा तीखी चोंचवाले कंक गिज्ज आदि करके जिधर तिधर नोंचेहुए वह पुरुष अपने पापों को स्मरण करते हैं ॥३२॥ हे राजन् ! तैसे ही इस लोक में जो सर्प की समान क्रूर स्वभाववाले पुरुष, प्राणियों को निष्कारण दुःख देते हैं वह भी मरण को प्राप्त होकर दन्दशूक नामक नरक में पड़ते हैं तहां कितने ही पांच मुखवाले और कोई सात मुखवाले सर्प हैं वह उन को समीप में आकर चूहों की समान निगलजाते हैं ॥ ३३ ॥ जो पुरुष, इस लोक में प्राणियों को अन्धकारमय भट्टों में, धान्य की कोठरियों में वा गुफा आदिकों में रोककर रखते हैं वह पुरुष, परलोक में जाते हैं तब उन को, यमदूत, वैसे ही स्थानों में बैठाकर, इसप्रकार रोकते हैं कि—जैसे वह विषयुक्त अग्नि के धुएँ से घुटकर मरजायँ ॥ ३४ ॥ जो गृहस्थाश्रमी

वा अतिथीनभ्यागतान्वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चाऽपि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुंडा गृध्राः कंककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयंति ॥ ३५ ॥ यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहंकृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशंकी अर्थव्ययनाशचिंतया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृत्तिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मपुरुषा वायका इव सर्वतोऽगेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥ ३६ ॥ एवंविधा नरका यमालये संति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥ ३७ ॥ निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः एतावानेवांडकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते य-

---

पुरुष, इस लोक में वारम्वार क्रोधयुक्त होकर अपने घर में आयेहुए अतिथियों को वा अभ्यागतों को अपने पापयुक्त नेत्र से भस्म करता हुआ सा देखता है, वह पापदृष्टि पुरुष, मरण के अनन्तर नरक में पड़ता है तव तहां वज्र की समान चोंचोंवाले गिज्ज, कंक, काक और वट आदि पक्षी, उस के नेत्रों को बलात्कार करके अपनी वडी शक्ति से उखाड़कर बाहर निकाल लेते हैं ॥ ३५ ॥ जो पुरुष, इस लोक में ' मैं ही श्रीमान् हूँ ' ऐसे अभिमानवाला, अहङ्कारी, वक्रदृष्टि और गुरु आदिकों से भी ' कहीं यह धन न चुरालें ' ऐसी शङ्का रखनेवाला, धन का नाश होने की चिन्ता से मलिनहुए हृदय और मुखवाला और इसकारण ही कभी भी सुख न पानेवाला होता है और ब्रह्मराक्षस की समान इस लोक में धन की रक्षा करता है और धन मिलने के निमित्त, मिलेहुए को वढ़ाने के निमित्त और उस की रक्षा करने के निमित्त पातकों का संग्रह करताहै वह मरण को प्राप्त होनेपर सूचीमुख नामक नरक में पडता है;तहां यमदूत,पिशाचों की समान द्रव्य की रख वाली करनेवाले उस पापी पुरुष के सकल अङ्गों को, कन्था सीनेवाले दरजी की समान डोरेडालकर सीते हैं॥ ३६॥ हेराजन्! ऐसे यमालय में सैंकडो और सहस्रों नरक हैं, उन सव नरकों में, जो कुछ पापी मैंने तुमसे इस समय कहेहैं वा नहीं कहेहैं तथा इन को छोडकर जो अधर्म का वर्त्ताव करनेवाले पुरुष हैं वह सव ही अपने २ पातक के न्यूनाधिकभाव के अनुसार प्रवेश करते हैं और तैसे ही धर्म के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले पुरुष स्वर्गादि लोकों में प्रवेश करतेहैं और वह फिर जन्म धारण करने के कारणरूप अपने धर्म अधर्म के शेष रहेहुए अंशों के प्रभाव से इस मनुष्य लोक में ही प्रवेश करते हैं ॥ ३७ ॥ निवृत्तिमार्ग तो मैंने तुम से पहिले ही (द्वितीय स्कन्ध में) कहा है, हे राजन् ! पुराणों में चौदह लोकों का वर्णन करा है वह ब्रह्माण्ड-

तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुव-
र्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि
श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥ ३८ ॥ श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपे भगवतो
यतिः ॥ स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥ ३९ ॥ भू-
द्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ॥ गीता मया तव
नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥ ४० ॥ इतिश्रीभाग-
वते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे नरकानुवर्णनं नाम षड्विं-
शतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ छ ॥ पञ्चमस्कन्धः समाप्तः ॥ छ ॥

कोश इतना ही है; यह साक्षात् महापुरुष, भगवान् नारायण का, अपनी माया के गुणों से रचाहुआ स्थूलरूप मैंने तुम से कहा है, जो पुरुष आदर के साथ भगवान् के इस ब्रह्माण्ड स्वरूप का श्रवण करता है, पढ़ता है वा लोकों को सुनाता है वह पुरुष, श्रद्धा और भक्ति के साथ शुद्धबुद्धि होकर उन परमात्मा भगवान् के उपनिषदों में वर्णन करेहुए, जिस का जानना परम कठिन है एसे स्वरूप को भी जानलेता है ॥ ३८ ॥ हेराजन्! योगीपुरुष भगवान् के स्थूल और सूक्ष्म इन दोनों स्वरूपों का श्रवण करके, प्रथम अपने मन को भगवान् के स्थूल स्वरूप में लगावे और तहाँ उस के स्थिर होजाने पर धीरे २ बुद्धि के द्वारा सूक्ष्म स्वरूप में लेजाकर लगावे ॥ ३९ ॥ हेराजन्! मैंने तुम से भूमि, द्वीप, खण्ड, नदी पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक और नक्षत्रों के समूहों से युक्त लोकरचना का वर्णन करा है; यह लोकरचना ही, सकल जीवसमूहों का आश्रयस्थान और ईश्वर का आश्चर्यकारी स्थूल स्वरूप है ॥ ४० ॥ इति पञ्चमस्कन्ध में षड्विंश अध्याय समाप्त ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि–मुरादाबादप्रवासिभार-
द्वाजगोत्र–गौड़वंश्य–श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान–
विद्यालये प्रधानाध्यापक–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदाया-
चार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोप–
नामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषा-
नुवादेन च सहितः पञ्चमस्कन्धःसमाप्तः ॥

समाप्तोयं पञ्चमस्कन्धः

अथ षष्ठस्कन्धप्रारम्भः

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा ॥ क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥ १ ॥ प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने ॥ योऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥ २ ॥ अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः ॥ मन्वंतरश्च व्याख्यात आद्यः स्वायंभुवो यतः ॥ ३ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च ॥ द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥ ४॥ धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः ॥ ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥ ५ ॥ अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ॥ नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ न चेदिहैवापचितिं यथांऽहसः कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ॥ ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति ये की-

॥ श्रीः ॥ राजा परीक्षित् ने कहा कि—हे भगवन् ! जिसके द्वारा, क्रम २ से अर्चिः आदि मार्गों करके प्राप्तहुए ब्रह्माजी के साथ साधक पुरुषों को मोक्ष प्राप्त होती है वह निवृत्तिमार्ग तुमने, पहिले (दूसरे स्कन्ध में) मुझ से कहा है ॥ १ ॥ तैसेही हे मुने! स्वर्ग आदि सुखही जिसका फल है और मायासे बँधेहुए पुरुष को, जिसके कारण वारम्वार जन्म मरण प्राप्त होते हैं वह प्रवृत्तिमार्ग भी तुमने (तृतीयस्कन्ध में) मुझ से वर्णन करा है ॥ २ ॥ तिसीप्रकार अधर्म के लक्षणरूप नानाप्रकारके नरकभी मेरे अर्थ वर्णन करे हैं और जिस में प्रथम स्वायम्भुव मनु हुआ उस से पहिले मन्वन्तर का भी (चतुर्थ स्कन्धके प्रारम्भ में) विस्तार के साथ वर्णन करा है ॥ ३ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद का वंश एवं उनके चरित्र वर्णन करके, द्वीप, खण्ड, समुद्र, पर्वत, नदी, वाग और वनस्पति, विभाग, लक्षण और प्रमाणके साथ मुझ से वर्णन करे तथा भूमण्डलके ज्योतिर्गणोंकी और सातों पातालों की रचना प्रभुने जिसप्रकार करी वह भी तुमने मेरे अर्थवर्णन करी ॥ ४ ॥ ५ ॥ अव हे महाभाग ! नानाप्रकार की भयङ्कर यातनाओं से भरे हुए नरकों में, जिस उपायके करने से पुरुष न जाय वही उपाय, इस प्रसङ्ग में मुझसे वर्णन करना आप को योग्य है ॥ ६ ॥ ऐसा राजा का कथन सुनकर मनु आदिकों के कहेहुए प्रायश्चित्तों के विना करेही नरकों से छुटकारा होना कठिन है ऐसा कहने के अभिप्राय से श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस जन्म में पुरुष, शरीर, वाणी और मन से करेहुए पापों का इसही जन्म में, मनु आदि के कहेहुए धर्मशास्त्र के अनुसार यदि प्रायश्चित्त नहीं करेगा तो वह पापी मरनेपर, मैंने जो तुम से भयङ्कर यातनाओंवाले नरक कहे

तितां मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥ ७ ॥ तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ
यतेत मृत्योरविपद्यतात्मना ॥ दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत
रुजां निदानवित् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनो-
ऽहितम् ॥ करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥ ९ ॥ क्वचिन्निवर्ततेऽ-
भद्रात् क्वचिच्चरति तत्पुनः ॥ प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥ १० ॥
श्रीशुक उवाच ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो नह्यात्यंतिक इष्यते ॥ अविद्वदधिकारि-
त्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥ ११ ॥ नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति
हि ॥ एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥ १२ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण
शमेन च दमेन च ॥ त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥ १३ ॥
देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः ॥ क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगु-

हैं उन नरकों में निःसन्देह जायगा ॥ ७ ॥ तिसकारण रोगका निदान जाननेवाला वैद्य जैसे दोषों का न्यून अधिकपना देखकर औषध की योजना करता है तैसेही, मरणसे पहिले इसजन्म में ही, तिसमें भी रोग आदि से शरीर पीडित न हो तबतक ही मनको वशमें करके और पापों की न्यूनता तथा अधिकता को जानकर उनका प्रायश्चित्त करने के निमित्त पुरुष शीघ्रता से यत्न करे ॥ ८ ॥ राजाने कहा—हे मुने ! दीखनेवाले दुःख (राजदण्ड आदि) और सुनने में आनेवाले दुःख (नरकमें पडना आदि) के द्वारा पापको अपना शत्रु जानता हुआ भी यह जीव फिर (प्रायश्चित्त के अनन्तर) यदि दुसराकर पाप की वासनाओं के वश में होकर पातक करे तो प्रायश्चित्त करने का लाभही क्या ?॥ ९ ॥ और उस से भी कभी २ यह जीव पाप से छूटजाता है परन्तु कभी कभी फिर भी उस ही पाप का आचरण करता है, इस कारण जैसे हाथी को स्नान करानेपर वह फिर धूलि से अपने शरीर को मलिन करलेता है तैसे ही प्रायश्चित्त मुझे सर्वथा व्यर्थ प्रतीत होता है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्तों के द्वारा पाप का समूल नाश नहीं होता है, क्योंकि प्रायश्चित्त का अधिकारी अज्ञानी पुरुष है, इस कारण अज्ञान का नाश न होने से, यदि करेहुए प्रायश्चित्त से पाप नष्ट होजाय तब भी पहिले पाप के संस्कार से फिर दूसरे पाप की उत्पत्ति होजाती है, इस कारण ज्ञान की प्राप्ति होना ही पाप का मुख्य प्रायश्चित्त है ॥ ११ ॥ और हे राजन् ! जैसे पथ्य अन्न का ही भोजन करनेवाले पुरुष को रोग पीड़ा नहीं देता है तैसे ही नियम से वर्त्ताव करने वाला पुरुष धीरे धीरे तत्त्वज्ञान को प्राप्त होजाता है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! जैसे बांसों के झुण्डों में परस्पर रगड़ लगने से उत्पन्न हुआ अग्नि उन के सब झुण्डों को भस्म करदेता है तैसे ही तप, ब्रह्मचर्य, मन को वश में करना, बाहर की इन्द्रियों को विषयों से हटाना,

लमिवानलः ॥ १४ ॥ केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ॥ अघं धु-न्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥ १५ ॥ न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः ॥ यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥ १६ ॥ सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ॥ सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ॥ १७ ॥ प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ॥ न निःपुनन्ति राजेंद्र सुराकुंभमिवापगाः ॥ १८ ॥ सकृन्मनः कृष्णपदारविंदयोर्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ॥ न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान् स्वप्नेऽपि पश्यंति हि चीर्णनिष्कृताः ॥ १९ ॥ अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ॥ २० ॥ कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥ २१ ॥ बंद्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः ॥ बिभ्रत्कुटुंबमशुचिर्यातयामास देहिनः ॥ २२ ॥ एवं निवसं-

दान, सत्य, शौच, अहिंसा आदि यम (जप आदि) और नियमों के द्वारा, श्रद्धावान् धर्मात्मा विवेकी पुरुष, शरीर, वाणी और मन से करेहुए बड़े २ पापों का नाश करते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ परन्तु ऐसा होना अतिकठिन है अतः जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करता है तैसे कितने ही वासुदेव के भक्त पुरुष, केवल भक्ति के द्वारा ही पापों का समूल नाश करदेते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जैसे कृष्ण को प्राण भी समर्पण करनेवाला पापी पुरुष, भगवद्भक्तों की निरन्तर सेवा करने से शुद्ध होजाता है तैसे तपस्या आदि से शुद्ध नहीं होता है ॥ १६ ॥ क्योंकि—जहां दयालु और निष्काम ईश्वरपरायण पुरुष हैं तथा जो सब प्रकार से निर्भय होने के कारण कल्याणकारी है ऐसा यह भक्तिमार्ग ही इसलोक में अति उत्तम है ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! जैसे मद्य के घड़े को नदी पवित्र नहीं करती हैं तैसे ही नारायण से विमुख पुरुष को. उस के करेहुए प्रायश्चित्त पवित्र नहीं करते हैं ॥ १८ ॥ परन्तु इस संसार में जिन्हों ने, श्रीकृष्ण के गुणों में प्रीति करनेवाला अपना मन, उन श्रीकृष्ण के चरणकमलों में एकवार भी लगाया है और इतने से ही जिन के पाप का प्रायश्चित्त होगया है ऐसे पुरुष, यम को और पाश धारणकरनेवाले यम के दूतों को स्वप्न में भी नहीं देखते हैं ॥ १९ ॥ इस विषय में यह एक पुरातन इतिहास पूर्व के ज्ञाता कहते हैं, वह इतिहास विष्णु और यम के दूतों का सम्वाद है, सो तुम मुझ से सुनो ॥ २० ॥ कान्यकुब्ज नामक नगर में अजामिल नामवाला एक दासीपति ब्राह्मण रहता था, वह पहिले सदाचारसंपन्न था फिर उस दासी के संसर्ग से दूषित होने के कारण उस का सदाचार नष्ट होगया था ॥ २१ ॥ बटोही पुरुषों को लूटना, जुआ खेलना, धोखा देना और चोरी करना, इन निन्दनीय वृत्तियों का आश्रय करके वह अपवित्र अजामिल कुटुम्ब का पोषण करने के निमित्त प्राणियों को पीड़ा देता था ॥ २२ ॥

नस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् ॥ कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥ २३ ॥ तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः ॥ बाला नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥ २४ ॥ स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि ॥ निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥ २५ ॥ भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालकंस्नेहयंत्रितः ॥ भोजयन्पाययन्मूढो न वेदागतमंतकम् ॥ २६ ॥ स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते ॥ मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥ २७ ॥ स पाशहस्तांस्त्रीन् दृष्ट्वा पुरुषान् भृशदारुणान् ॥ वक्रतुंडानूर्ध्वरोमानात्मानं नेतुमागतान् ॥ २८ ॥ दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ॥ प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेंद्रियः ॥ २९ ॥ निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ॥ भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽपतन् ॥ ३० ॥ विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् ॥ यमप्रेष्यान्विष्णुदू-

हेराजन्! ऐसे दुराचारके साथ वर्त्ताव करनेवाले और उस दासी के पुत्रों को लाड़ करनेवाले तिस अजामिल की आयु का अस्सी वर्ष का बहुतसा समय बीतगया॥ २३॥ उस वृद्ध के दासी के विषैं दश पुत्र उत्पन्न हुए, उन में नारायण नामवाला छोटा पुत्र बहुत ही बालक था और इसकारण वह माता पिता का अत्यन्त प्यारा था, ॥ २४ ॥ इसकारण अस्पष्ट (पूरे २ उच्चारण न होनेवाले) और मधुर भाषण करनेवाले उस बालक के विषैं उस बूढ़े अजामिल ने अपने अन्तःकरण को अत्यन्त ही बाँध रक्खा था, और उस की लीलाओं को देखरकर वह बड़ा आनन्द मानता था॥२५॥बालक के ऊपर प्रेमके कारण वह इतना बँधगया था,कि-स्वयं भोजन,पान वा और कुछ भक्षण करने को होताथा तो पहिले उस बालक को भोजन-पान करादेता था,परन्तु उस मूढ़ ने इस झञ्झटमें समीप आयेहुए भी अपने मृत्यु को नहीं जाना ॥ २६ ॥ इसप्रकार वर्त्ताव करनेवाले उस अज्ञानी अजामिल ने अपनी बुद्धि, मृत्युकाल प्राप्त होनेपर भी उस बालक अपने नारायण नामक पुत्रपर ही लगायी ॥ २७ ॥ इतने ही में, जो हाथ में पाश धारण करेहुए हैं, जो अत्यन्त भयङ्कर हैं, जिन के मुख तिरछे हैं और जिन के रोम ऊपर को उठेहुए हैं ऐसे अपने लेने को आये हुए तीन पुरुषों को उसने देखा और इन्द्रियों के अत्यन्त व्याकुल होनेपर दूर खेल में लगेहुए उस अपने नारायण नामवाले पुत्र को दीर्घ और ऊँचे स्वर से उस ने पुकारा २८ ॥ २९ ॥ हेमहाराज! मरणोन्मुख हुआ वह अजामिल हरिकीर्त्तन कररहा है ऐसा सुनकर विष्णुभगवान् के पार्षद एकायकी तहाँ आगए,क्योंकि-उसने जो नारायण! नारायण! कहकर अपने पुत्र को पुकाराथा, वही उन के स्वामी का नाम था और इसी को उन्होंने हरिकीर्त्तन समझा॥३०॥ तहाँ आनेपर उन विष्णुदूतों ने हृदयमें से उस दासीपति अजामिल

तां वारयामासुरोजसा ॥ ३१ ॥ ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरःसराः ॥ के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥ ३२ ॥ कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ ॥ किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥ ३३ ॥ सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुंडलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥ ३४ ॥ सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥ धनुर्निषंगासिगदा शंखचक्रांबुजश्रियः ॥ ३५ ॥ दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वतः स्वेन रोचिषा ॥ किमर्थं धर्मपालस्य किंकरान्नो निषेधथ ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः ॥ तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ ३७ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः ॥ ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥ ३८ ॥ कथंस्विद्ध्रियते दंडः किं वास्य स्थानमीप्सितम् ॥ दण्ड्याः किं कारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ॥ ३९ ॥ यमदूता ऊचुः ॥ वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ वेदो

को खैंचतेहुए यम दूतोंको अपनी शक्ति से हटाया ॥३१॥ इसप्रकार जब विष्णुदूतों ने यमदूतों को निषेध करा तब वह उन से कहने लगे कि–धर्मराज की आज्ञा का निषेध करनेवाले तुम कौन हो? ॥ ३२ ॥ किस के हो? और कहाँ से आये हो? तथा किस कारण तुम इस को नहीं लेजाने देते हो; सो तुम देव, उपदेव वा कोई उत्तम सिद्ध हो क्या? ॥ ३३ ॥ अहो! जिन सबों के नेत्र कमल की समान हैं, जिन्हों ने रेशमी पीताम्बर धारण करे हैं, जिन्होंने किरीट, कुण्डल और देदीप्यमान कमलों की मालाओं को धारण करा है, जिनासबों की ही अवस्था तरुण है, जिन सबों की सुन्दर चार चार भुजा हैं, जो धनुष, तर्कस, खड्ग, गदा, शंख, चक्र और कमल से शोभा पारहे हैं और जो अपनी कान्ति से अन्धकार को तथा अन्य प्रकाश से रहित दिशाओं को प्रकाशयुक्त कररहे हैं ऐसे तुम हम धर्मपाल के दासों को निषेध क्यों करते हो? ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन्! परीक्षित! इसप्रकार उन यमदूतों के भाषण करने पर वासुदेव भगवान् की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले विष्णुदूत, कुछ हँसकर मेघ की समान गम्भीरध्वनिवाली अपनी वाणी करके उन से ऐसा कहनेलगे–॥ ३७ ॥ विष्णु दूतबोले कि–अहो! यदि तुम वास्तव में धर्मराज की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले हो तो धर्म का तत्त्व और धर्म के जो लक्षण हों वह हमसे कहो ॥ ३८ ॥ और किस प्रकार से किसको कैसा दण्ड देय, दण्ड के योग्य पात्र कौन होता है? या सबही कर्म करनेवाले प्राणी दण्ड के योग्य हैं? अथवा केवल मनुष्यही हैं और उन में भी कुछथोड़े से ही हैं क्या? सो तुम हम से कहो ॥ ३९ ॥ यमदूतों ने कहा कि–हे विष्णुदूतों! धर्म

नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुम ॥ ४० ॥ येन स्वधाम्न्यमी भावा रजःसत्त्वतमोमयाः ॥ गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निः खं मरुद्देवः सोमः संध्याऽहनी दिशः ॥ कं कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः ॥ ४२ ॥ एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते ॥ सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥४३॥ संभवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ॥ कारिणां गुणसंगोऽस्ति देहवान्नह्यकर्मकृत् ॥ ४४ ॥ येन यावान् यथा धर्मोऽधर्मो वेह समीहितः ॥ स एव तत्फलं भुंक्ते तथा तावदमुत्र वै ॥ ४५ ॥ यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते ॥ भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथाऽन्यत्रानुमीयते ॥ ४६ ॥ वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ॥ एवं जन्मा-

वेदविहित है और अधर्म उसके विपरीत है अर्थात् वेद में निषिद्ध है और वेद साक्षात् नारायणके श्वास से उत्पन्न हुआ है इसकारण साक्षात् नारायणरूपही है ऐसा हमनेसुना है ॥ ४० ॥ यदि कहो कि—वह नारायण कौन हैं तो हे विष्णुदूतों! जिनके द्वारा, निज स्वरूप के विषैं रज, सत्व और तमोगुणसे बनेहुए यह प्राणी गुण, नाम, कर्म और रूपों करके यथायोग्य रीति से भिन्न २ समझे जाते हैं, वह ही नारायण हैं ॥ ४१ ॥ परन्तु तो भी, अमुक मनुष्यने अधर्म किया है यह कैसे जानाजाता है? यदि ऐसा कहो तो सुनो—सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियों के अभिमानी देवता, चन्द्रमा, सन्ध्या, अहोरात्र, दिशा, जल, पृथ्वी, काल और धर्म यह जीवके साक्षी हैं ॥ ४२ ॥ इनके द्वारा अधर्म जानाजाता है तब उसको दण्ड का पात्र मानाजाता है और कर्म करनेवाले सबही प्राणी अपने २ कर्म के अनुसार दण्ड के पात्र होते हैं ॥ ४३ ॥ हे निष्पापदूतों! कर्म करनेवाले प्राणियों को गुणों का सङ्ग होने के कारण उनसे शुभ अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का होना सम्भव है; यदि कोई कर्म का करनेवाला नहीं होय तो उसके हाथों से दुष्कर्म नहीं बनै, क्योंकि—कर्म न करनेवाला कोई भी शरीरधारी प्राणी नहीं है, तिस से कर्म करनेवाले सबही प्राणी, अवश्य पापकर्म करनेवाले होनेके कारण दण्डके पात्रहोते हैं ॥४४॥ मनुष्यलोक में जिसने जैसा और जितना धर्म वा अधर्म किया होता है, उसको परलोक में वैसा और उतनाही उसका फल निःसन्देह भोगना पड़ता है ॥ ४५ ॥ हे देवताओं में श्रेष्ठों! गुण तीनप्रकार के होने के कारण इसजन्म में जैसे प्राणियों में शान्तपना, घोरपना, और मूढ़पना अथवा सुख, दुःख और मिश्र (एकसाथ सुख दुःख दोनों) इनके द्वारा सात्विक, राजस और तामस यह तीनप्रकार पायेजाते हैं तैसेही जन्मान्तरमें भी उनके होने का अनुमान होता है ॥ ४६ ॥ वर्त्तमान काल (वसन्त आदि) जैसे पीछे बीतेहुए और आगे को आनेवाले वसन्त आदि दो कालों का गुण दिखाता है तैसेही

न्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥ ४७ ॥ मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति ॥
अनुमीमांसतेपूर्वं मनसा भगवानजः ॥ ४८ ॥ यथाऽज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते
व्यक्तमेव हि ॥ न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥ ४९ ॥ पंचभिः कुरुते
स्वार्थान्पंच वेदार्थ पंचभिः ॥ एकस्तु षोडशेन त्रीन्स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥ ५० ॥
तदेतत् षोडशकलं लिंगं शक्तित्रयं महत् ॥ धत्तेऽनुसंसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥ ५१ ॥ देह्यज्ञो जितषड्वर्गो नेच्छन्कर्माणि कार्यते ॥ कोशकार
इवात्मानं कर्मणाच्छाद्य मुह्यति ॥ ५२ ॥ न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्य-

यह जन्म भी, पिछले और अगले दोनों जन्म के धर्म और अधर्म को दिखानेवाला होता है ॥ ४७ ॥ यह धर्म अधर्म को जानने की रीति औरों के निमित्त है, धर्मराजतो केवल मनसे ही यह सब जानलेते हैं, ऐसा कहते हैं–अन्तर्यामीरूपसे शरीरों में रहनेवाले यह यमदेव, जीवके पूर्वरूप को विशेष करके मनसेही देखलेते हैं और तदनन्तर मनसेही वह अपूर्वरूपका विचारकरतेहैं.क्योंकि वह षड्गुण ऐश्वर्यवान् और जन्मादिविकार रहितहैं ४८ परन्तु यह जीव तो ईश्वर के दियेहुए विद्यमान शरीर को ही जानता है और पिछले तथा आगे के इन दोनों शरीरों को नहीं जानता है, इस आशय से कहते हैं कि–निद्रा को प्राप्त हुआ पुरुष, जैसे स्वप्न में मिलेहुए शरीर में ही ' यही मैं हूँ ' ऐसा अभिमान करता है, जाग्रत् अवस्था में के देह आदि का उस को भान नहीं होता है, तैसे ही यह अज्ञानी जीव, पूर्व कर्मों के द्वारा प्राप्त हुए इस शरीर को ही ' यह मैं हूँ ' ऐसा जानता है, पहिले वा आगे के शरीर को नहीं जानता है, इस जन्म कर के उस की और जन्मों में की स्मृति नष्ट होजाती है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार के जीव का संसार पांच श्लोकों में दिखाते हैं कि, यह जीव पांच कर्मेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करना और त्याग करना इत्यादि कर्मों को करता है, पांच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्दादि पांच विषयों को जानता है, पांच प्राणों के द्वारा देह की वृत्ति को चलाता है और सोलहवें मन के साथ सत्रहवां आप स्वयं एक ही होकर ज्ञानेन्द्रियें, कर्मेन्द्रियें तथा मन के विषयों को भोगता है ॥ ५० ॥ सो यह षोड़श कला वाला, त्रिगुण से उत्पन्न हुआ और अनादि लिङ्गशरीर, अपने में बँधे हुए जीव को, हर्ष, शोक, भय और पीड़ा देनेवाले संसार में वारंवार भ्रमाता है ॥ ५१ ॥ इस कारण यह लिङ्गशरीर ही, जिसने काम क्रोध आदि छः शत्रुओं को नहीं जीता है ऐसे इस शरीरधारी अज्ञानी जीव से, इस की इच्छा न होनेपर भी कर्म कराता है; तदनन्तर वह जीव जैसे मकरी अपने जाला पूरने रूप कर्म से अपने को बांधकर उस में से बाहर को निकलने का उपाय नहीं जानती है तैसे ही कर्म से अपने को अच्छादित करके मुक्त होने का मार्ग नहीं जानता है ॥५२॥ कोई भी जीव क्षणमात्र को भी कर्म करेविना कदापि

कर्मकृत् ॥ कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥ ५३ ॥ लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ॥ यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥ ५४ ॥ एष प्रकृतिसंगेन पुरुषस्य विपर्ययः ॥ आसीत्स एव न चिरादीशसंगाद्विलीयते ॥ ५५ ॥ अयं हि श्रुतसंपन्नः शीलवृत्तगुणालयः धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मंत्रविच्छुचिः ॥ ५६ ॥ गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूषुर्निरहंकृतः ॥ सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥ ५७ ॥ एकदाऽसौ वनं यातः पितृसंदेशकृद्द्विजः ॥ आदाय तत आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥ ५८ ॥ ददर्श कामिनं कंचिच्छूद्रं सह भुजिष्यया ॥ पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥ ५९ ॥ मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् ॥ क्रीडंतमनुगायंतं हसंतमनयांऽतिके ॥ ६० ॥ दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरंभिताम् ॥ जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥ ६१ ॥ स्तंभयन्नात्मनात्मानं यावत्सत्वं यथाश्रुतम् ।

नहीं रहता है, क्योंकि-पहिले कर्म के संस्कार से होनेवालीं गुणकार्यरूप वासना आदिकों करके ही, परवशहुए उस जीव मे बलात्कार करके कर्म कराए जाते हैं ॥ ५३॥ अदृष्ट रूप निमित्त को पाकर उस के अनुसार जीव को स्थूल वा सूक्ष्म शरीर प्राप्त होता है; वह बलवती कर्मवासना के कारण माता के वा पिता के स्वभाव के अनुसार होता है ॥ ५४ ॥ प्रकृति के सङ्ग से पुरुष को जो विपरीतभाव प्राप्त होता है वह परमेश्वर के भजन से थोड़े समय में नष्ट होजाता है ॥ ५५ ॥ यह अजामिल विद्यावान्, सुन्दर स्वभाववाला, सदाचार और क्षमादि गुणों का ही निवासस्थान, पूजन आदि का नियम धारण करनेवाला सौम्य, इन्द्रियों को वश में रखनेवाला, सत्यवादी, मन्त्रवेत्ता, पवित्र, गुरु-अग्नि-अतिथि और वृद्धों की सेवा करनेवाला, निरभिमानी, सकल प्राणियों का मित्र, साधु, थोड़ा भाषण करनेवाला, और डाहरहित था ॥ ५७ ॥ परन्तु एक समय पिता की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाला यह ब्राह्मण वन में गया और फल, फूल, समिधा तथा कुशा लेकर तहां से घर आने को लौटकर चलदिया ॥ ५८ ॥ आतेहुए उसने अपने समीप मार्गके विषें पिट्ठी की बनाई हुई सुराका पान करने के कारण मदसे जिसके नेत्र घूम रहे हैं और मत्त होने के कारण जिसकी साड़ी की गांठ अत्यन्त शिथिल होगई है ऐसी एक वेश्याके साथ क्रीडा, गान और हास्य करनेवाला, अपने आचार से भ्रष्टहुआ, निर्लज्ज और कामी एक शूद्र देखा ॥ ५९ ॥ ६० ॥ तदनन्तर कामोद्दीपन करनेवाले हरिद्रा आदि अङ्गरागसे लिप्तहुए अपने बाहुओं से वह शूद्र वेश्याको आलिङ्गन कररहा है ऐसा देखकर यह अजामिल एकसाथ अत्यन्त मोहित होकर काम के वश में होगया ॥ ६१ ॥ और जितना धीरज तथा ज्ञान था उसके बलसे वह अपने मन को

न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ॥ ६२ ॥ तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः ॥ तामेव मनसा ध्यायन् स्वधर्माद्विरराम ह ॥ ६३ ॥ तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता ॥ ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा॥६४॥ विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लम्भिताम् ॥ विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्याऽपांगविद्धधीः ॥ ६५ ॥ यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् ॥ बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधीरयम् ॥ ६६ ॥ यदसौ शास्त्रमुल्लंघ्य स्वैरचार्यतिगर्हितः ॥ अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥ ६७ ॥ तत एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ॥ नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुद्ध्यति ॥ ६८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितं ॥ उपधार्याथ तान् राजन् प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥ १ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभां ॥ यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो र्ध्रियते वृथा

रोकनेलगा परन्तु कामदेव के कारण कम्पायमान हुए अपने मनको वशमें न करसका ॥ ६२ ॥ जब इसप्रकार स्त्री के देखने से उत्पन्न हुए कामदेवरूप ग्रहने उस अजामिल को ग्रसलिया तब उसकी स्मरणशक्ति नष्ट होगई और सर्वदा मन में उसका ही चिन्तवन करता हुआ अपने धर्म से भ्रष्ट होगया ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मनोहर ग्राम्य विषयों से जिसप्रकार वह प्रसन्न हो उसीप्रकार अपने पिताके सकल धन से उसने उस वेश्या को सन्तुष्ट करा ॥ ६४ ॥ और उस व्यभिचारिणी स्त्री के नेत्रकटाक्षों से विद्ध होनेकेकारण उस पातकी अजामिलने, प्रतिष्ठित कुलकी अपनी विवाहिता और तरुणी ब्राह्मणी स्त्री का शीघ्रही त्याग करदिया ॥ ६५ ॥ फिर पिता का मिलाहुआ धन समाप्त होने पर यह मन्दमति अजामिल, न्याय से अथवा अन्याय से कहीं न कहीं से धन लाकर उस कुटुम्बिनी वेश्याके कुटुम्ब का पोषण करनेलगा ॥ ६६ ॥ इसप्रकार शास्त्र का उल्लङ्घन करके यथेष्ट वर्त्ताव करने के कारण सज्जनों के निन्दा करेहुए वेश्या के अन्नरूप मलको भक्षण करनेवाला, अपवित्र और पापरूप आयुवाला यह अजामिल, चिरकालसे जो ऐसा ही वर्त्ताव कर रहा है ॥६७॥ और पातक करके भी इसने प्रायश्चित्त नहीं करा इसकारण इसको हम यमराजके समीप लियेजाते हैं अर्थात् तहां यह दण्ड पाकर शुद्ध होगा ॥६८॥ इति षष्ठ स्कन्ध में प्रथम अध्याय समाप्त॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हेराजन् परीक्षित! उनन्याय में प्रवीण विष्णुदूतोंने, इसप्रकार यमदूतोंका कहाहुआ भाषण सुनकर उनको उत्तर दिया ॥१॥ विष्णु दूतबोले कि—हरे! हरे! धर्मज्ञानी पुरुषों की सभा को अधर्म स्पर्श कररहा है यह बडे दुःख की वार्त्ता है, क्योंकि—जिस सभा में धर्मज्ञानी पुरुष, दण्ड के अयो-

॥ २ ॥ प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः ॥ यदि स्यात्तेषु वै-
षम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥ ३ ॥ यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ४ ॥ यस्यांके शिर आधाय लोकः
स्वपिति निर्वृतः ॥ स्वयं धर्ममधर्मं वा नहि वेद यथा पशुः ॥५॥ स कथं न्य-
र्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ॥ विश्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥
॥ ६ ॥ अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि ॥ यद्व्याजहार विवशो नाम
स्वस्त्ययनं हरेः ॥ ७ ॥ एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ॥ यदा ना-
रायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥ ८ ॥ स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरु-
तल्पगः ॥ स्त्रीराजपितृगोहंता ये च पातकिनोऽपरे ॥ ९ ॥ सर्वेषामप्यघवता-
मिदमेव सुनिष्कृतं ॥ नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥ न

न्य निष्पाप पुरुषों को वृथा दण्ड देते हैं ॥ २ ॥ अरे! जो समदृष्टि साधु पुरुष, प्रजाओं का माता पिता की समान पालन करके उन को शिक्षा देते हैं, उन में ही यदि ऐसा विपरीतपना होनेलगा तो प्रजा अव किस की शरण जायँ ॥ ३ ॥ अहो! इन के करेहुए अधर्म को और भी करने लगेंगे इसकारण यह वड़े दुष्ट हैं, क्योंकि- श्रेष्ठ पुरुष जो २ कर्म करता है, वह २ कर्म ही और पुरुष भी करते हैं तथा वह श्रेष्ठ पुरुष, जिस शास्त्र को प्रमाण मानता है उस शास्त्र के अनुसार ही लोक भी वर्त्ताव करते हैं अर्थात् उस को प्रमाण मानते हैं ॥ ४ ॥ अरे! जैसे पशु, स्वामी मेरी रक्षा करेगा वा मेरा वध करेगा यह कुछ भी न जानताहुआ आनन्द से शयन करता है तैसे ही यह लोक, स्वयं धर्म वा अधर्म को कुछ न जानकर निश्चिन्तरूप से उस की गोदी में शिर रखकर शयन करता है ॥ ५ ॥ प्राणीमात्र के विश्वासका स्थान वह पुरुष ही यदि वास्तवमें दयालु होय तो जिसने विश्वास से अपने आत्मा को अर्पण कराहै और अपनेसे मित्रता करी है ऐसे अज्ञान पुरुष के साथ कैसे द्रोह करने को योग्य होगा? ॥६॥ हेयमदूतों! इसने विवश होकर मोक्ष के साधन श्रीहरिके नाम का उच्चारण कराहै इसकारण इसने करोड़ों जन्मों के पापों का प्रायश्चित्त करलियाहै।७॥ हे यमदूतों! 'नारायण! इधर आ' इस प्रकार पुत्र को पुकारने की बुद्धि से जो इस ने आभासमात्र चार अक्षर के नाम का उच्चारण करा, इतने से ही इस पापी के पापों का प्रायश्चित्त होगया ॥ ८ ॥ हे यमदूतों! चोर, मदिरा पीनेवाला, मित्रद्रोही, ब्रह्महत्यारा, गुरुस्त्रीगामी और तैसे ही स्त्री, राजा, माता, पिता तथा गौ की हत्या करनेवाला यह सव तथा और भी जो पापी हैं, भगवान् के नामका उच्चारण करना ही उन सव पापियोंका श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है; क्योंकि—नाम का उच्चारण करनेवाले पुरुष के विषय में 'यह मेरा है, मुझे इस की सव प्रकार से रक्षा करना चाहिये' ऐसी विष्णु भगवान् की बुद्धि होती है ॥ ९ ॥ १० ॥ वास्तव में श्रीहरि के नाम के पदों का उच्चारण करनेपर पातकी पुरुष

निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ॥ यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥ ११ ॥ नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ॥ तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥ १२ ॥ अथैनं माऽपनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ॥ यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥ १३ ॥ साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ॥ वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ १४ ॥ पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः ॥ हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाः ॥ १५ ॥ गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च ॥ प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥ १६ ॥ तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः ॥ नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥ १७ ॥ अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ॥ संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो

जैसा शुद्ध होता है वैसा मनु आदि वेदवेत्ताओं के कहे हुए प्रायश्चित्तों से शुद्ध नहीं होता है और दूसरी यह वार्त्ता है कि–कृच्छ्र चान्द्रायण आदि प्रायश्चित्त जैसे केवल पातक को दूर करने से ही क्षीण होजाते हैं तैसे भगवान् के नाम के पद का उच्चारण क्षीण न होकर उत्तम कीर्त्ति भगवान् के गुणों का ज्ञान करादेता है ॥ ११ ॥ जिस के करनेपर भी यदि मन फिरकर पापमार्ग की ओर दौड़नेलगा तो वह प्रायश्चित्त अत्यन्त शुद्ध करनेवाला नहीं है; इस कारण पापों का समूल नाश करने की इच्छा करनेवाले पुरुषों का वारंवार श्रीहरि के गुण वर्णन करना ही प्रायश्चित्त है; क्योंकि–यह भगवान् के गुणों का वर्णन करना ही वास्तव में चित्त को शुद्ध करनेवाला है ॥ १२ ॥ इस कारण इसने जो मरते मरते भगवान् के नाम का पूरा पूरा उच्चारण कर के सकल पातकों का प्रायश्चित्त करा है तिस से तुम इस को कुमार्ग से (यमलोक को) न लेजाओ ॥ १३ ॥ हे यमदूतों ! पुत्र आदि के विषें सङ्केत से रक्खाहुआ, हास्य से अथवा गान के सम्बन्ध में आलाप को पूरा करने के निमित्त लिया हुआ अथवा 'विष्णुभगवान् से कौन लाभ है ?' इस प्रकार निन्दा के साथ किया हुआ विष्णुभगवान् के नाम का उच्चारण सकल पातकों का नाश करनेवाला है, ऐसा वेदवेत्ता जानते हैं ॥ १४ ॥ घवड़ाकर गिराहुआ, मार्ग में ठोकर खाकर गिराहुआ अङ्गभङ्ग हुआ, सर्प आदि का डसा हुआ, ज्वर आदि से संताप को प्राप्त हुआ और दण्ड आदि से ताड़ना कराहुआ पराधीन दशा में भी जो पुरुष 'हरि' ऐसा कहता है वह यातनाओं को नहीं भोगता है ॥ १५ ॥ हे यमदूतों ! छोटे और बड़े पातकों के छोटे और बड़े प्रायश्चित्त न्यूनाधिकभाव को जानकर मनु आदि महर्षियों ने कहे हैं ॥ १६ ॥ इस कारण तप, दान और जप आदि तिन तिन प्रायश्चित्तों से वह वह पातक नष्ट होते हैं परन्तु अधर्म के आचरण से मलिन हुआ उस पातकी का अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता है और ईश्वर की चरणसेवा करने से तो वह भी शुद्ध होजाता है ॥ १७ ॥

यथाऽनलः ॥ १८ ॥ यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ॥ अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ते एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ॥ तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ॥ २० ॥ इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके ॥ यमराज्ञे यथा सर्वमाचचक्षुररिंदम ॥ २१ ॥ द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ॥ ववन्दे शिरसा विष्णोः किंकरान् दर्शनोत्सवः ॥ २२ ॥ तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिंकराः ॥ सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥ २३ ॥ अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥ २४ ॥ भक्तिमान् भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ॥ अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥ २५ ॥ अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः ॥ येन विप्लावितं ब्रह्म वृष-

तथापि यह पाप का प्रायश्चित्त है ऐसा जानकर कुछ उसने भगवान् के नामका उच्चारण नहीं करा था, यदि ऐसा कहो तो हे यमदूतों ! सुनो—जैसे जानकर वा विनाजाने ही डाला हुआ अग्नि काष्ठोंको भस्म करदेता है तैसे ही जानकर वा विनाजाने ही उच्चारण करा हुआ, पवित्रकीर्त्ति परमेश्वर का नाम पुरुषों के पापों को भस्म करदेता है ॥ १८ ॥ परन्तु ब्राह्मणों की सभासे जिसको भगवन्नामका उपदेश नहीं मिला और श्रद्धा के साथ उसका उच्चारण भी नहीं हुआ फिर यह प्रायश्चित्त कैसे होसक्ताहै, यदि ऐसा कहो तो हेयमदूतों ! सुनो—जैसे अत्यन्त वीर्यवान् औषध अपनी इच्छानुसार भक्षण करनेपर, अपना गुण न जाननेवाले रोगी के ऊपरभी अपना गुण करती है तैसेही उच्चारण कराहुआ भगवन्नाम रूप मन्त्र भी निःसन्देह अपना गुण करेगा ही ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इसप्रकार उन विष्णुदूतों ने भागवत धर्म का उत्तम निर्णय करके उसब्राह्मण को यम के पाशों से छुटाकर मृत्यु से भी छुटाया ॥ २० ॥ हे शत्रुदमन ! इसप्रकार विष्णुदूतों के तिरस्कार करेहुए उन यमदूतों ने यमराज के समीप जाकर उन से वह सब वृत्तान्त जैसा हुआ था वैसाही कहसुनाया ॥ २१ ॥ इधर यमपाशों से छूटने के कारण निर्भय हुआ वह ब्राह्मण, सावधान हुआ और विष्णुदूतोंके दर्शन से आनन्द युक्तहोकर उसने मस्तक नवाकर उनको प्रणाम किया ॥ २२ ॥ और हे निष्पाप राजन् ! वह अजामिल कुछ कहने को है, ऐसा जानकर, उसके देखते हुए ही विष्णुदूत तहां से एक साथ अन्तर्धान होगए ॥ २३ ॥ इधर वह अजामिल, यमदूतों के मुखसे तीनों वेदों में वर्णन करेहुए गुणोंके आश्रयरूप धर्म को सुनकर तथा विष्णुदूतों के मुखसे भगवान् के रचेहुए निर्गुण धर्म को सुनकर, श्रीहरि के माहात्म्य का श्रवण करने के कारण तत्काल भगवान् के विषै भक्तिभावको प्राप्तहुआ और अपने पातकों का स्मरण हो आनेके कारण उसको पश्चात्ताप हुआ और कहनेलगा कि—॥ २४ ॥ २५ ॥ अहो ! इन्द्रियों को वश

त्यां जायंतात्मना ॥ २६ ॥ धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ॥
हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥ २७ ॥ वृद्धावनाथौ पितरौ
नान्यबंधू तपस्विनौ ॥ अहो मयाधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥ २८ ॥
सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ॥ धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विंदंति
यमयातनाः ॥ २९ ॥ किमिदं स्वप्न आहोस्वित्साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ क्व
याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन्पाशपाणयः ॥ ३० ॥ अथ ते क्व गताः
सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ॥ व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥ ३१ ॥
अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ॥ भवितव्यं मंगलेन येनात्मा मे प्रसी-
दति ॥ ३२ ॥ अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ॥ वैकुंठनामग्रहणं जि-
ह्वा वक्तुमिहार्हति ॥ ३३ ॥ क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ॥
क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मंगलम् ॥ ३४ ॥ सोऽहं तथा यतिष्यामि-

में न करनेवाले मेरी यह बड़ी हानि हुई, क्योंकि–शूद्री के विषें पुत्ररूपसे उत्पन्न होने वाले मैंने आप ही अपना ब्राह्मणत्व नष्ट करलिया ॥२६॥ अरे ! अपनी पतिव्रता तरुणी स्त्री को त्यागकर जिसने मदिरापान करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री से गमन करा ऐसे सज्जनों के निन्दा करेहुए, कुलके कलङ्करूप मुझ पापाचारीको धिक्कारहै॥२७॥अहो!जिन का मुझे छोड़कर कोईभी अपना नहीं था और जो वृद्ध तथा अनाथ थे एवं जो संसारके तापसे और मेरे क्रोधसे संतापको प्राप्तहुए ऐसे अपने माता पिताको, वेदका अध्ययन करनेवालेभी मुझकृतघ्नी ने, नीच पुरुषकी समान तत्काल त्याग करदियाहै।२८।तिससे धर्मको डुबोनेवाले कामीपुरुषों को जहां यमकी यातना प्राप्त होतीहैं ऐसे अतिभयानक नरक में, निःसन्देह मैं पड़ूँगा।२९। अहो ! क्या यह आश्चर्य मैंने स्वप्न में देखा है ? अथवा इस जाग्रत् अवस्था में ही प्रत्यक्ष देखा है ?, अरे ! जो पुरुष हाथ में पाश (फाँसी) लेकर मुझे खैंचरहे थे अब वह कहाँगए ? ॥३०॥ और मुझे पाशों में बाँधकर भूमि के नीचे को (नरकमें) लेचले तब जिन्हों ने छुड़ाया था वह देखनेमें सुन्दर चार सिद्ध पुरुष अब कहाँ गए ? ॥३१॥ यद्यपि मैं इसजन्म में पातकी हूँ तथापि जन्मान्तरमें मैंने उन सुर श्रेष्ठों के दर्शन के कारणभूत कुछ पुण्यकर्म अवश्य किये होंगे, जिस पुण्यके प्रभाव से मेरा मन प्रसन्न होरहाहै३२क्योंकि पूर्वपुण्य के विना, मरणोन्मुख हुए, अपवित्र शूद्र स्त्री के पति मेरी जिव्हा, इसजन्ममें भगवान् को भी वशमें करनेवाले भगवन्नाम का उच्चारण करनेको समर्थ नहीं होती ॥३३॥ अहो, कपटी, पापी, ब्रह्महत्यारा और निर्लज्ज मैं कहाँ ? तथा 'नारायण' यह मङ्गलकारी भगवन्नाम कहाँ ? ॥३४॥ तिस से ऐसा महापातकी भी मैं, अब जिसरीति से फिर अपने को अन्धतम नरक में न डालूँगा, उस रीति से ही चित्त, दश इन्द्रिये और प्राणवायु को वश में करके साधना करने का प्रयत्न

यतचित्तेंद्रियानिलः ॥ यथा न भूय आत्मानमंधे तमसि मज्जये ॥ ३५ ॥ वि-
मुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ॥ सर्वभूतसुहृच्छांतो मैत्रः करुण आ-
त्मवान् ॥ ३६ ॥ मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्यात्ममायया ॥ विक्री-
डितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥ ३७ ॥ ममाहमिति देहादौ हित्वा-
ऽमिथ्यार्थधीर्मतिम् ॥ धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादि भिः ॥
॥ ३८ ॥ इति जातसुनिर्वेदः क्षणसंगेन साधुषु ॥ गंगाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वा-
नुबंधनः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमा-
श्रितः ॥ प्रत्याहृतेंद्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥ ४० ॥ ततो गुणेभ्य आ-
त्मानं वियुज्यात्मसमाधिना ॥ युयोज भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥ ४१ ॥
यर्ह्युपरतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः ॥ उपलभ्योपलब्धान्प्राग्ववन्दे शिरसा
द्विजः ॥४२॥ हित्वा कलेवरं तीर्थे गंगायां दर्शनादनु॥ सद्यः स्वरूपं जगृहे भ-
गवत्पार्श्ववर्त्तिनाम् ॥ ४३ ॥ साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिंकरैः ॥ हैमं वि-

करूँगा ॥ ३५ ॥ और अज्ञान, काम तथा कर्म से उत्पन्न हुए इस संसारबन्धन को दूर करके मैं सकल प्राणियों का मित्र, उनका हित करनेवाला, शान्त, दयालु और इन्द्रियों को वश में करनेवाला होऊँगा ॥ ३६ ॥ और जिस ने मुझ अधम को वानर की समान खिलाया है तिस स्त्रीरूप ईश्वर की माया से ग्रसेहुए अपने को मैं छुटाऊँगा ॥ ३७ ॥ परमार्थ वस्तु के विषैं बुद्धि लगानेवाला मैं 'यह मैं और यह मेरा' ऐसे शरीर आदि में के अभिमान को त्यागकर, भगवान् के कीर्त्तन आदि से शुद्ध हुए अपने मन को भगवान् के विषैं लगाऊँगा ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहतेहैं कि—हेराजन् ! इस प्रकार साधुपुरुषों में एक क्षणमात्र को भी सङ्गति होजाने से अत्यन्त वैराग्य को प्राप्त हुआ वह अजामिल पुत्रादि में के सकल स्नेह को त्यागकर उस दासी के घरसे निकलकर हरिद्वारको चलागया॥ ३९॥ वह ब्राह्मण, देवताओं के स्थानरूप उस क्षेत्र में योगमार्ग का अवलम्बन करके आसन पर बैठा और सकल इन्द्रियों को विषयों से हटाकर उसने अपना मन आत्मा में लगाया ॥ ४० ॥ तदनन्तर देह और इन्द्रिय आदि गुणों के कार्य्यों से अपने आत्मा को पृथक् करके चित्त की एकाग्रता से उस को, अनुभवरूप, भगवत्स्वरूप ब्रह्म के विषैं लगाया ४१ तदनन्तर जब उस की बुद्धि भगवत्स्वरूप में निश्चल हुई तब उसने अपने सामने विष्णु दूतों को देखा और यह पुरुष, मेरे पहिले देखेहुए हैं ऐसा जानकर उस ने उन को साष्टाङ्ग प्रणाम करा ॥ ४२ ॥ और उन के दर्शन के अनन्तर तत्काल उसने गङ्गारूप तीर्थपर अपने शरीर का त्याग करके भगवान् के पार्षदों का रूप धारण करा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर वह अजामिल ब्राह्मण, विष्णुदूतों के साथ सुवर्ण के विमान में बैठकर जहाँ

मानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥ ४४ ॥ एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ॥ निपात्यमानो निरये हतव्रतः सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५ ॥ नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ॥ न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥ ४६ ॥ य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहं ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत् ॥ ४७ ॥ न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिंकरैः ॥ यद्यप्यमंगलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥ ४८ ॥ म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितं ॥ अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥ ४९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान् प्रति धर्मराजः॥

लक्ष्मीपति विष्णु रहते हैं उस वैकुण्ठ लोक में अकाशमार्ग से चलागया ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! जिस ने दासी का पति वनकर सब धर्म डुबोदियाथा, जो निन्दित कर्म करने के कारण पतित होगयाथा, जो व्रत से भ्रष्ट होगयाथा और जिस को यमदूत नरक में डालेदेते थे ऐसा भी वह अजामिल,इस प्रकार अन्तकाल में भगवान् के नाम का उच्चारण करके तत्काल यमपाश से मुक्त होगया ॥ ४५ ॥तिस से जिन के चरण में तीर्थ हैं उन भगवान् के कीर्त्तनको छोड़ मुमुक्षु पुरुषों की पापवासनाओं को छेदन करनेवाला दूसरा, कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है; क्योंकि–भगवान् के कीर्त्तन के विना दूसरे प्रायश्चित्त करने पर भी मन रजोगुण और तमोगुण से मलिन ही रहता है और भगवान् के नाम का कीर्त्तन करने से वह मन फिर कभी कर्म में आसक्त नहीं होता है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार इस पाप नाशक परमगुप्त इतिहास को जो पुरुष,श्रद्धा के साथ सुनता है अथवा भक्ति से कहता है वह पुरुष, निःसन्देह नरक में नहीं जाता है, यमदूत उस की ओर को देखते भी नहीं हैं और यदि वह पातकी हो तो भी विष्णुलोक में विराजमान होता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! अजामिल की समान पातकी भी मरते मरते पुत्र के वहाने से हरिनाम का उच्चारण करके यदि श्रीहरि के स्थान को गया है तो श्रद्धा के साथ हरिनाम का उच्चारण करनेवाले पुरुष को उस स्थान के प्राप्त होने में कौन सन्देह है ? ॥ ४९ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥ विष्णुदूतों ने जो शास्त्रार्थ का निर्णय करा उस की यम के मुख से दृढ़ता कराने के निमित्त इस तीसरे अध्याय का प्रारम्भ है, तहां का सब वृत्तान्त, यमदूतों ने जाकर यमराज से निवेदन करा फिर तहां क्या हुआ यह जानने के निमित्त राजा प्रश्न करता है कि–हे मुने ! इसप्रकार जिन की आज्ञा का भंग हुआ है और यह सब लोक जिन के वश में हैं ऐसे वह देव धर्मराज ने, अपने दूतों के

एवं हताज्ञो विहतान्मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयं ॥ १ ॥ यमस्य देवस्य न दण्डभंगः कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ॥ एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं न हि त्वदन्यो इति मे विनिश्चितम् ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवत्पुरुषै राजन्याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ॥ पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमिनीपतिम् ॥ ३ ॥ यमदूता ऊचुः ॥ कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ॥ त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥ ४ ॥ यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ॥ कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥ ५ ॥ किन्तु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् ॥ शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मण्डलवर्ति-

---

वर्णन करेहुए वृत्तान्त को सुनकर विष्णुदूतों ने ताड़ना करके जिन को लौटादिया है ऐसे अपने दूतों से क्या कहा? ॥ १ ॥ कैसा आश्चर्य है! हे ऋषे! यमराज की आज्ञा का भङ्ग, पहिले कभी भी किसी से भी हुआ हो ऐसा हमने नहीं सुना, और अब तो यह उन के दूतों का भी तिरस्कार हुआ, इस कारण सब ही लोकों के चित्त में का यह संशय; तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई भी दूर करनेवाला नहीं है, ऐसा मुझे निश्चय है इसकारण इस का उत्तर तुम ही मुझ से कहो ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन्! विष्णुदूतों ने जिन के उद्योग को नष्ट करदिया है ऐसे उन यमदूतों ने, संयमिनी नगरी का पालन करनेवाले अपने प्रभु के समीप जाकर इस प्रकार निवेदन करा ॥ ३ ॥ यमदूतों ने कहा कि—हे प्रभो! पुण्य पाप और मिश्र, इन तीन प्रकार के कर्म करने वाले जीवलोक को कर्मफल देनेवाले शासनकर्त्ता निश्चितरूप से इस त्रिलोकी में कितने हैं।४। हे प्रभो! लोक में यदि दण्ड धारण करनेवाले अनेकों शासक हुए तो, सुख और दुःख किस को होगा? और किसको नहीं होगा? अर्थात् उन शासन करनेवालों में यदि परस्पर विरोध हुआ तो, एकतो प्राणी को दुःख देने की इच्छा करेगा और दूसरा सुख देने की इच्छा करेगा इससे परस्पर का विरोध होने के कारण सुख और दुःख इनदोनों के होने में ही गड़बड़ी होगी तब वह दोनो ही किसी को भी प्राप्त नहीं होसकेंगे और यदि कदाचित् वह शासक एकमत होकर वर्त्ताव करनेवाले हुए तो एक दूसरे के कार्यकी सराहना करेगा तब सुख और दुःख दोनों की प्राप्ति होनेपर वह दोनों किसी को भी प्राप्त नहीं होंगे, अभिप्राय यह कि-बहुनायकपना होने से पापियों को ही दुःख हो और धर्मात्माओं को ही सुख हो यह मर्यादा नष्ट भ्रष्ट होजायगी ॥ ५ ॥ हे प्रभो! अनेकों कर्म करनेवाले पुरुषों के अनेक शासनकर्त्ता होना सम्भव होसक्ता है परन्तु सार्वभौम (चक्रवर्त्ती)राजाके विषैं मुख्य शासकपना होता है और माण्डलिक (उसके अधीन) राजाओं में जैसे केवल नाममात्र का ही शासकपना होता है तैसे ही इस जीवलोक का जो मुख्य शासन को करनेवाला होगा उस में मुख्य शासकपना रहकर औरों में केवल नाममात्र

नाम् ॥ ६ ॥ अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ॥ शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥ ७ ॥ तस्य ते विहितो दण्डो न लोके वर्तते ऽधुना । चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥ ८ ॥ नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ॥ व्यमोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान् प्रसह्य ते ॥ ९ ॥ तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ॥ नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ॥ प्रीतः स्वदूतान् प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरेः ॥ ११ ॥ यम उवाच ॥ परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ॥ यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥ १२ ॥ यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः ॥ यस्मै बलिं त इमे नामकर्मनि-

ही रहेगा ॥ ६ ॥ सो बहुनायकपना नहीं होसक्ता इसकारण हमारे मत में तो देवताओं सहित सकल प्राणियोंके अधिपति एक तुमहीहो और सकल मनुष्यों के पुण्य पापोंका निर्णय करनेवाले, शासन करनेवाले तथा दण्ड धारण करनेवाले भी तुम ही हो ॥ ७ ॥ परन्तु ऐसे तुम्हारा कराहुआ दण्ड इससमय लोकमें नहीं चलता है, क्योंकि-चार अद्भुत सिद्धोंने तुम्हारी आज्ञा को अत्यन्त उल्लंघन करा है ॥ ८ ॥ हेप्रभो ! हम तुम्हारी आज्ञा के अनुसार पातकी अजामिल को यातनास्थान में को लियेजाते थे सो चार सिद्धोंने आकर बलात्कार से हमारे पाशों को तोडडाला और उसको छुटालिया ॥ ९ ॥ इसकारण तुमसे हमारा हित हो तथा कार्य की व्यवस्था होकर अपना भी कल्याण हो, ऐसा यदि तुम मानते होतो इस पातकी अजामिल के ' नारायण ' ऐसा कहते ही ' भय न कर ' ऐसा कहते २ उसके समीप में जो शीघ्रतासे आये वह महाप्रभावशाली कौनथे ? उनको तुमसे जानने की हमे इच्छा है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेव जी ने कहा कि-हे राजन् ! प्रजा को वश में रखनेवाले उन यमदेव से इसप्रकार दूतों के प्रश्न करनेपर, वह यमदेव प्रसन्न हुए और श्रीहरि के चरण कमल का स्मरण करतेहुए अपने दूतों से कहनेलगे कि-॥ ११ ॥ यम ने कहा कि-हे दूतो ! सीधे और आड़े तन्तुओं में बुनेहुए वस्त्र की समान जिस में यह विश्व ओत प्रोत होरहा है, जिस के अंशों से (विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र इन से) इस विश्व की पालन, उत्पत्ति और लय होते हैं और नाथ डालेहुए वृषभ की समान यह जीवलोक जिस के वश में है ऐसे वह स्थावर जङ्गमों के अधिपति मुझ से भिन्न ही हैं ॥ १२ ॥ अहो ! जैसे किसान लोक, एक रस्से में डोरियों करके वृषभों को बाँधते है तैसेही जो अपनी वेदवाणीरूप रस्से के विषैं ब्राह्मण आदि नामों से, पुरुषों को बाँधते हैं और नामकर्म रूप बन्धन के साधनों से बद्ध होकर भयभीत हुए यह जीव, जिन के वश में होकर अपने २

बन्धवद्धाश्चकितो वहन्ति ॥ १३ ॥ अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिंचिः ॥ आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥ १४ ॥ अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ॥ यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोन्ये ॥ १५ ॥ यं वै न गोभिर्मनसाऽसुभिर्वा हृदा गिरा वाऽसुभृतो विचक्षते ॥ आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥ १६ ॥ तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाऽधिपतेर्महात्मनः ॥ प्रायेण दूता इह वै मनोहराश्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥ १७ ॥ भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शलिंगानि महाद्भुतानि ॥ रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥ १८ ॥ धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ॥ न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥ १९ ॥ स्वयंभू-

कर्मों को करते हैं ॥ १३ ॥ औरों की तो वार्त्ता ही क्या? परन्तु, मैं यम, महेन्द्र, निर्ऋति, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि, शिव, वायु, सूर्य, ब्रह्माजी, वारह आदित्य, विश्वेदेवा, आठ वसु, साध्य, मरुद्गण, सिद्धों सहित रुद्रगण तथा और जो मरीचि आदि जगत् की सृष्टि करनेवाले हैं वह, वृहस्पति आदि सुरेश्वर एवं रजोगुण तथा तमोगुण का स्पर्श मात्रभी न होने के कारण केवल सत्वगुण ही जिन में मुख्य है ऐसे भृगु आदि ऋषि भी माया से मोहित होने के कारण जिनकी लीला को नहीं जानते हैं ॥ १४ ॥१५॥ और जैसे लाल काले आदि रङ्गोंवाले रूपवान् पदार्थ, अपने को देखनेवाले और अपने से भिन्न नेत्र आदि को नहीं देखते हैं तिसी प्रकार सव ही प्राणी, अपने हृदय में के तिस अपने द्रष्टा को, इन्द्रिये, मन,प्राण,चित्त अथवा वाणी कर के नहीं जानते हैं ऐसे वह परमेश्वर मुझसे भिन्न ही हैं।१६। ऐसे परमेश्वर तुम से भिन्न हों परन्तु हम को ललकारकर जिन्हों ने उस पातकी की रक्षा करी वह कौन थे? ऐसा वूझो तो हे दूतों! सुनो-स्वतन्त्र, सर्वोत्तम, सर्वेश्वर, मायापति और महात्मा श्रीहरि के दूत, प्रायः इस त्रिलोकी में विचरते हैं और वह देखने में परम मनोहर तथा श्रीहरि की समान ही रूप-गुण एवं स्वभाववाले हैं ॥ १७ ॥ और जो देवताओं के भी पूजनीय हैं, जिन के रूपों को देखना भी कठिन है और जो परम अद्भुत हैं ऐसे वह विष्णुदूत, विष्णुभगवान् की भक्ति करनेवाले मनुष्यों की मुझ से, शत्रुओं से और अग्निं आदि से सर्वत्र रक्षा करते हैं ॥ १८ ॥ यदि वह विष्णुभक्त थे तो उन्हों ने अधर्मी अजामिल का पक्षपात क्यों करा? यदि ऐसा कहो तो हे दूतों! सुनो-साक्षात् भगवान् के कहेहुए इस धर्म को तो ऋषि, देवता, सिद्धों में मुख्य, असुर और मनुष्य यह कोई भी नहीं जानते हैं फिर विद्याधर और चारणआदि कहां से जानेंगे? ॥१९॥ यदि कोई भी नहीं जानता

नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ॥ प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ २० ॥ द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ॥ गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ २१ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः ॥ भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥ २२ ॥ नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ॥ अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ २३ ॥ एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ॥ विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥ २४ ॥ प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम् ॥

तो उस धर्म के होने में ही क्या प्रमाण है ? यदि ऐसा कहो तो हे दूतो ! सुनो—ब्रह्मा जी, नारद, शिवजी, सनत्कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुक और मैं (यम) यह बारह हम, गुप्त, अत्यन्त शुद्ध और जिसका जानना कठिन है ऐसे भगवान् के कहेहुए धर्म को जानते हैं; उस धर्म का ऐसा प्रभाव है कि—जिस को जानते ही मोक्ष की प्राप्ति होती है फिर उस का आचरण करने से मोक्ष की प्राप्ति होगी इस में कौन आश्चर्य ? ॥ २० ॥ २१ ॥ अहो ! भगवान् के नामोच्चारण आदि करके उन की भक्ति करना, इतना ही पुरुषों का इस मनुष्यलोक में श्रेष्ठ धर्म कहा है ॥ २२ ॥ हे पुत्रो ! जिस, पुत्र के रखेहुए नाम का केवल एकवार उच्चारण करने से अजामिल भी मृत्यु के पाश से छूटगया ऐसा यह, हरिनामके उच्चारण का माहात्म्य देखो कैसा अद्भुत है ! ॥ २३ ॥ यदि कहो कि—नाम के आभासमात्र से अर्थात् साक्षात् श्रद्धाभक्ति के साथ नाम न लेकर किसी बहाने से नाम लेनेपर सकल पातक कैसे दूर होंगे ? सो हे दूतो ! सुनो—भगवान् के गुणों का कर्मों का और नामों का उत्तम प्रकार से कीर्तन करना, ऐसे बड़े साधन की केवल पुरुषों के पाप का नाश करने के निमित्त ही कार्य में लाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि—महापातकी अजामिल मरण के दुःख से विवश होने के कारण अस्वस्थचित्त होतेहुए ' नारायण ! ' इस प्रकार पुत्र के निमित्त पुकार कर भी मुक्ति को प्राप्त होगया ॥ २४ ॥ तो क्या मनु आदिकों ने द्वादशाब्दिक (बारह वर्ष में पूर्ण होने वाले) आदि प्रायश्चित्त वृथा ही कहे हैं ? यदि ऐसा विचार हो तो हे दूतो ! सुनो—यह मनु आदि बड़े बड़े पुरुष, प्रायः ऐसे इस हरिनाम के माहात्म्य को नहीं जानते हैं इस कारण ही वह पाप का नाश करनेके निमित्त द्वादशाब्दिक आदि प्रायश्चित्तोंको कहते हैं और मायादेवी ने उन की बुद्धिको अत्यन्त मोहित करलियाहै इस कारण सुननेमें मीठेलगें ऐसी रीति करके पुष्पस्थानभूत अर्थवादोंसे मनोहर तीनों वेदोंमें उनकी मतिका अभिनिवेश होताहै और इसी कारण विस्तारवाले बड़े बड़े कर्मों में ही वह श्रद्धा के साथ प्रवृत्त होकर

त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः॥ २५ ॥ एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ॥ ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥ ॥ २६ ॥ ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ॥ तान्नोपसीदत हरेर्गदयाऽभिगुप्तान्नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥ ॥ २७ ॥ तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादारविंदमकरन्दरसादजस्रम् ॥ निष्किंचनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥ २८ ॥ जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविंदम् ॥ कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥२९॥ तत्क्षम्यतां स भगवान्पुरुषः पुराणो नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ॥ स्वानामहो न विदुषां रचितांजलीनां क्षांतिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने॥३०॥

हरिनाम का उच्चारण जैसे, छोटे से प्रायश्चित्तरूप कर्म में वह प्रवृत्त नहीं होते हैं ॥ २५ ॥ ऐसा विचारकर जो ज्ञानवान् पुरुष, वास्तव में एकाग्र मन से अविनाशी भगवान् की भक्ति करते हैं, उन को मुझ से दण्ड मिलना योग्य नहीं है, क्योंकि–उन में पाप नहीं होता है और यदि कदाचित् हुआ भी तो उसका, उन ही महाकीर्त्तिमान् परमेश्वर का नामकीर्त्तन नाश करदेता है ॥ २६ ॥ इसप्रकार धर्म के तत्त्व का निर्णय करके सेवकों को यमराज आज्ञा करते हैं कि–जो समदृष्टि और साधुपुरुष भगवान् के शरणागत होते हैं उनकी पवित्र कथाओं का देवता और सिद्धपुरुष वर्णन करतेहैं,इसकारण श्रीहरिकी गदासे चारों ओर रक्षा करेहुए उन के समीप भी तुम कभी मत जाओ; क्योंकि- उन को दण्ड देनेकी हमारी और साक्षात् कालकी भी शक्ति नहींहै।२७।तो फिर यहाँ दण्ड देनेके निमित्त हम किनको लावें?यदि ऐसा सन्देह हो तो हे दूतों! सुनो–सकल सङ्गोंको त्यागनेवालेरसज्ञ परमहंसों के निरन्तर सेवा करेहुए मुकुन्द भगवान् के चरणकमल में के मकरन्दरूप रस से विमुख और नरकके द्वारसमान, निज धर्मशून्य घरों में जिनकी आशा लगरही है ऐसे दुष्ट पुरुषों को तुम यहां लाओ ॥ २८ ॥ और जिनकी जिह्वा एकवार भी भगवान् के गुणयुक्त नाम का उच्चारण नहीं करती है, जिनका मन कभी भी भगवान् के चरणारविंद का स्मरण नहीं करता है और जिनका मस्तक एकवार भी श्रीकृष्णजी को नहीं नमता है ऐसे भगवान् की सेवा न करनेवाले जो दुष्ट पुरुष हों उनको तुम यहां लाओ ॥२९॥ हमारे पुरुषोंने जो अन्याय से वर्त्ताव कराहै उसको वह भगवान् पुराणपुरुष नारायण अपने होकर सहन करें, क्योंकि हाथ जोड़नेवाले हम अज्ञानी निजभक्तों के ऊपर क्षमा करना ही उन सर्वोत्तम भगवान् को योग्यहै, उन सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी परमेश्वर को नमस्कार हो ॥ ३० ॥ तिससे हे कुरुकुलोत्पन्न राजन्! जगन्मङ्गलरूप विष्णुभगवान् का नामकीर्त्तन

तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मंगलमंहसाम् ॥ महतामपि कौरव्य विद्ध्येकान्तिकनिष्कृतम् ॥ ३१ ॥ शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ॥ यथा सुजातया भक्त्या शुद्ध्येन्नात्मा व्रतादिभिः ॥ ३२ ॥ कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिण्न पुनर्विसृष्टमायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ॥ अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुमीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥ ३३ ॥ इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिंकरास्ते ॥ नैवाच्युताश्रयजनं प्रति शंकमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥ ३४ ॥ इतिहासमिमं गुह्यं भगवान् कुंभसम्भवः ॥ कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभा० महापुराणे षष्ठस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ॥ सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायंभुवेऽन्तरे ॥ १ ॥ तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन्यथा ॥ अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान्परः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ इति संप्रश्नमाकर्ण्य राजर्षे-

ही, बड़े २ पापों का भी सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है ॥ ३१ ॥ क्योंकि—श्रीहरि के अमर्याद पराक्रमों को वारम्वार सुननेवाले और पढ़नेवाले पुरुषों का अन्तःकरण अनायास में ही उत्पन्न हुए भक्तियोगसे जैसा शुद्ध होता है वैसा व्रत आदि करने से शुद्ध नहीं होताहै ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्ण के चरण कमल में के मकरन्दका स्वादलेनेवाला पुरुष, पहिले अतितुच्छ मानकर छोड़े हुए, दुःखदायक विषयों में फिर कभी भी आसक्त नहीं होताहै और उस मकरन्द का स्वाद न लेनेवाला तथा विषयों में घिराहुआ जो अन्य पुरुष है वह तो अपने पापों को धोने के निमित्त फिर प्रायश्चित्तरूप कर्म ही करता है और उस कर्म से फिरभी पातक ही उत्पन्न होता है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार अपने प्रभुके कहेहुए भगवन्माहात्म्य को स्मरण करके उन यमदूतों के मनको विस्मय नहीं हुआ ' यह कहा हुआ सब सत्य ही है ' ऐसा ही माननेलगे और तबसे ' यह हमाराही नाश करेगा ' ऐसी शङ्का करते हुए वह यमदूत विष्णुके आश्रय से रहनेवाले पुरुष को देखने में भी भय माननेलगे ॥३४॥ हे राजन् ! यह गुप्त इतिहास पहिले एकाग्रचित्तसे मलयपर्वत पर वैठकर श्रीहरि का पूजन करते हुए भगवान् अगस्त्यजीने मुझ से वर्णन कराथा ॥ ३५ ॥ इति षष्ठस्कन्ध में तृतीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥ राजा ने कहा कि—हेभगवन् ! देवता, असुर, मनुष्य, नाग, मृग और पक्षियोंकी जो स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सृष्टि हुई वह तृतीय स्कन्ध में संक्षेप से तुमने मेरे अर्थ वर्णन करी, इसको तुम्हारे मुखसे विस्तारपूर्वक सुनने की मुझे इच्छा है और मायातीत भगवान् ने जिस शक्ति से तथा जिसप्रकार दक्षसे आगे सृष्टि उत्पन्न करी उस शक्ति को और उसप्रकार को जानने की भी मेरी इच्छा है॥ १ ॥ ॥ २ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे श्रेष्ठ मुनियो ! इसप्रकार राजा परीक्षित के करेहुए उत्तम

बादरायणिः ॥ प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ॥ अन्तःसमुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ॥ ४ ॥ द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ॥ मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥ ५ ॥ ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह ॥ राजोवाच महान् सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥ ६ ॥ मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ॥ विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥ ७ ॥ अहो प्रजापतिपतिर्भगवान् हरिरव्ययः ॥ वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥ ८ ॥ अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम् ॥ अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥ ९ ॥ यूयं च पित्रान्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ॥ प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान्निर्दग्धुमर्हथ ॥ १० ॥ आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ॥ पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥ ११ ॥ तोकानां

प्रश्नको सुनकर महायोगी ऋषियों में श्रेष्ठ श्रीशुकदेवजी, उनकी प्रशंसा करके कहनेलगे ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! जब प्राचीनबर्हि राजाके प्रचेता नामक दश पुत्रों ने समुद्रसे बाहर निकलकर वृक्षों से भरीहुई पृथ्वी को देखा ॥ ४॥ तवसंताप के कारण वह कोप को प्राप्त होकर वृक्षोंके ऊपर क्रुद्धहुए और उनको दग्ध करनेकी इच्छा से अपने मुखसे वायु तथा अग्निको उत्पन्न करा ॥ ५ ॥ तदनन्तर हे कुरुश्रेष्ठ ! उस वायु और अग्निसे भस्म होतेहुए उन वृक्षोंको देखकर उनके सोम नामक महाराजा तिन प्रचेताओं का कोपशान्त करते हुए कहनेलगे ॥ ६ ॥ हे महाभाग प्रचेताओं ! तुम सब प्रजाओं के अधिपति होने के कारण विशेष करके उन प्रजाओं की वृद्धि करने की इच्छा करनेवाले हो, इसकारण इन दीन वृक्षों से द्रोह करना तुम्हे योग्य नहीं है ॥ ७ ॥अहो! प्रजाओं के अधिपति अविनाशी भगवान् प्रभु श्रीहरि ने, वनस्पतिरूपसे भक्ष्य और ओषधिरूपसे अन्नको उत्पन्न करा है ॥ ८ ॥ तैसे ही परों से उड़नेवाले पक्षियों का अचल पुष्पफल आदि अन्न, पादचारी गौ आदि पशुओं का चरणरहित तृण आदि अन्न, हाथों वाले व्याघ्र आदिकों का हाथरहित मृगपशुरूप अन्न और दो चरणवाले मनुष्योंका चतुष्पाद आदिरूप अन्न, श्रीहरिने उत्पन्न करा है ॥ ९ ॥ तिससे हे निष्पापों ! पिता के (राजा प्राचीनबर्हि के) और देवाधिदेव भगवान् के प्रजा उत्पन्न करनेके निमित्त आज्ञा करेहुए तुम,वृक्षों को भस्म करने को कैसे योग्य होसक्तेहो ? ॥ १० ॥ इसकारण अपने पिता के, पितामह के तथा प्रपितामह के भी सेवन करेहुए सन्मार्ग का तुम आश्रय करो और बढ़ेहुए इस अपने क्रोध को शान्त करो ॥ ११ ॥ हे प्रचेताओं बालकों की रक्षा करनेवाले जैसे माता पिताही हैं, नेत्रों की रक्षा करनेवाले जैसे पलक ही हैं, स्त्री की रक्षा

पितरौ बंधुर्दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः ॥ पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत् ॥ १२ ॥ अन्तर्देहेषु भूतानामात्मास्ते हरिरीश्वरः ॥ सर्वं तद्धिष्ण्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥ १३ ॥ यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ॥ आत्मजिज्ञासया यच्छेत्स गुणानतिवर्तते ॥ १४ ॥ अलं दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ॥ वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥ १५ ॥ इत्यामंत्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ॥ सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥ १६ ॥ तेभ्यस्तस्यां समभवद्दक्षः प्राचेतसः किल ॥ यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥ १७ ॥ यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥ १८ ॥ मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः ॥ देवासुरमनुष्यादीन्नभस्थलजलौकसः ॥ १९ ॥ तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ॥ विंध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद्दुष्करं तपः

करनेवाला और पोषक जैसे पति ही है, भिक्षुओं का निर्वाह करनेवाला जैसे गृहस्थही है और अज्ञानियों का मित्र जैसे ज्ञानोपदेश करनेवाला ही है तैसेही प्रजाओं की रक्षा करनेवाला केवल राजाही है॥१२॥प्राणियों के शरीरों में अन्तर्यामी रूपसे प्रभुश्रीहरिनिवास करते हैं इस कारण सकल चराचर विश्व उन का ही स्थान है ऐसा देखो, ऐसा करने से तुम उन श्रीहरि को सन्तुष्ट करोगे ॥ १३॥ हे प्रचेताओं ! देह में हृदयाकाश से अकस्मात् उत्पन्नहुए भयंकर क्रोध को आत्मविचार से जो रोकता है वही तीनों गुणों को लाँघकर भगवत्स्वरूप को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ तिस से दीन वृक्षों का भस्म करना अव समाप्त करो, शेष रहेहुए वृक्षों का और तुम्हारा कल्याण हो तथा वृक्षों की पालन करीहुई और वरनेयोग्य इस कन्या को तुम पत्नीरूप से स्वीकार करो ॥ १५ ॥ हे राजन् परीक्षित ! इस प्रकार प्रचेताओं को शान्त करके और सर्वोत्तम नितम्बस्थानवाली उस निम्लोचा नामवाली अप्सरा की कन्या उन्हे समर्पण कर के सोमराज तहां से चलेगए और उन्हो ने भी धर्मविधि के अनुसार उस कन्या के साथ विवाह करलिया ॥ १६ ॥ फिर उन से उस मारिषा के विषैं प्राचेतस नाम से प्रसिद्ध दक्ष उत्पन्न हुआ और उस के ही प्रजा उत्पन्न करने से यह त्रिलोकी भरगई है ॥ १७ ॥ अपनी कन्या में प्रेम करनेवाले उस दक्ष ने, वीर्य के द्वारा और मन के द्वारा प्राणी जिस प्रकार उत्पन्न करे सो तुम सावधान होकर मुझ से सुनो ॥ १८ ॥ हे राजन् ! आकाश, भूमि और जल इन में रहनेवालीं इन देवता असुर और मनुष्य आदि प्रजाओं को दक्ष प्रजापति ने पहिले मन से ही उत्पन्न करा ॥ १९ ॥ परन्तु वह प्रजाओं की सृष्टि वृद्धि को प्राप्त नहीं हुई ऐसा देखकर उन दक्ष प्रजापति ने विन्ध्याचल के समीप के पर्वतपर जाकर दुष्कर तपस्या

॥२०॥ तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् ॥ उपस्पृश्यानुसवनं तपसाऽतोषयद्धरिम् ॥ २१ ॥ अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवंतमधोक्षजम् ॥ तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद्यतो हरिः॥२२॥प्रजापतिरुवाच॥नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभाससनिमित्तबन्धवे ॥ अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयंभुवे॥२३॥ न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन्संवसतः पुरेऽस्मिन् ॥ गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥ २४ ॥ देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ॥ सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनंतमीडे ॥ २५ ॥ यदोपरामो मनसो नामरूपरूपस्य दृष्टस्मृतिसंप्रमोषात् ॥ य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥ २६ ॥ मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ॥

करी ॥ २० ॥ तहां पापों का नाश करनेवाला एक अघमर्षण नामक सर्वोत्तम तीर्थ है, उस में दक्ष ने त्रिकाल स्नान कर के तपस्या के द्वारा श्रीहरि को प्रसन्न करा ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जिस हंसगुह्यक नामवाले स्तोत्र से दक्ष प्रजापति ने अधोक्षज भगवान् की स्तुति करी और जिस कर के श्रीहरि उन के ऊपर प्रसन्न हुए वह स्तोत्र मैं, तुम से कहता हूँ॥२२॥दक्ष प्रजापति ने कहा कि—जिस की चित् शक्ति सफल होने के कारण जीव, माया का नियन्ता है; प्रत्यक्ष आदि प्रमाण जिस से पीछे को हट आये हैं इस कारण विषयों को ही परमार्थ समझनेवाले जीव जिस के स्वरूप को नहीं देखसक्ते और जो स्वयम्प्रकाश है उस सर्वोत्तम परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ जैसे रूप आदि विषय अपने को प्रकाशित करनेवाले इन्द्रिय आदि के प्रकाशकत्व को नहीं जानते हैं तैसे ही इस शरीर में वास करनेवाला अन्तर्यामी सखा-जीव, तहां वास करतेहुए जिस प्रपञ्च के साक्षी सखा ईश्वर के, अन्तःकरण को प्रेरणा करना इत्यादि सखाभाव को नहीं जानते है, तिस महेश्वर को हमारा नमस्कार हो ॥ २४ ॥ देह, प्राण, इन्द्रियें,अन्तःकरण, महाभूत और उनके सूक्ष्मरूप, यह अपने स्वरूप को, अन्य इन्द्रियों के समूहको औरइन दोनों से भिन्न देवताओं के समूह को नहीं जानते हैं और जीवतो इन सब तीनों ही को जानता है और इनके कारणभूत गुणों को भी जानता है परन्तु वहभी जिस सर्वज्ञ को नहीं जानता है अर्थात् वह जीव, देश आदि परिच्छिन्नहोने के कारण अपरिच्छिन्न आत्मा के जानने को समर्थ नहीं होताहै तिस अनन्त की मैं स्तुति करता हूँ ॥ २५ ॥ दर्शन और स्मरण का नाश होने के कारण जिस समय नामरूप के बोधक मनकी समाधि लगती है उससमय केवल अपने स्वरूप के ज्ञान से ही जो जाना जाता है और शुद्ध मनहीं जिसके जानने का स्थान है तिस शुद्धस्वरूप परमात्मा को नमस्कारहो ॥ २६ ॥ सामिधेनी नामक पन्द्रह मन्त्रों से प्रकाशवान् होनेवाले, काष्ठके विषें

वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं मनीषया निष्कर्षति गूढम् ॥ २७ ॥ स वै ममा- शेषविशेषमायानिषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ २८ ॥ यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं धियाऽक्ष- भिर्वा मनसा वोत यस्य ॥ माभूत्स्वरूपं गुणरूपं हि तत् स वै गुणापायविसर्ग- लक्षणः ॥ २९ ॥ यस्मिन्यतो येन च यस्य यस्मै यद्यो यथा कुरुते कार्यते च ॥ परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं तद्ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकं ॥ ३० ॥ यच्छ-

स्थित अलौकिक अग्नि को जैसे यज्ञ करनेवाले लोक मथकर अलग निकाललेते हैं तैसेही हृदयमें निश्चल करेहुए और सत्ताईस तत्त्वरूप अपनी शक्तिभूत उपाधियों करके प्रकाशवान् न होनेवाले जिस अट्ठाईसवें का अपनी बुद्धि से विवेचन करके विवेकी पुरुष ध्यान करते हैं और सकल भेदों से भरीहुई माया का त्याग करने के कारण प्राप्तहुए मुक्तिसुख में जिस का अनुभव होता है, जिस के सकल नाम और सकलरूप हैं और जिस के स्वरूप में मायारूप अचिन्त्य शक्ति है वह परमात्मा मेरे ऊपर प्रसन्नहो ॥ २७ ॥ २८ ॥ केवल स्वरूपज्ञान से ही यदि ईश्वर जानाजाता है तो वह वाणी आदि इन्द्रियों का अगोचर होने के कारण सर्वनाम और विश्वरूप नहीं होसक्ता, ऐसी शङ्का होकर, उसका स्वरूप यद्यपि सकलनामों के द्वारा वाच्य और प्रत्यक्ष आदि के द्वारा दृश्य, नहीं होसक्ता तथापि माया से सबकुछ होसक्ता है, यह वर्णन करने के अभिप्रायसे तीन श्लोकों करके नमस्कार करते हैं—जो जो वाणी से कहाहुआ, बुद्धिसे निश्चय कराहुआ, इन्द्रियों से ग्रहण कराहुआ अथवा मन से सङ्कल्प कराहुआ है वह स्वप्रकाश परमात्मा का स्वरूप नहीं है क्योंकि—वह सब गुणोंकाही रूप है और सचेतन अधिष्ठान हुए विना गुणों का लय और उत्पत्ति होना सम्भव नहीं है; इसकारण गुणोंके लय और उत्पत्तिके द्वारा जिसका अनुभव होता है वह परमेश्वर गुणों से पृथक् है ॥ २९ ॥ इसप्रकार वास्तव में ईश्वर का गुणस्वरूप नहीं है, ऐसा स्वीकार करके उस में मायारूप अचिन्त्यशक्ति है ऐसा पहिले कहने से द्योतितहुए, माया के द्वारा सर्ववाच्यत्व करके विश्वरूप का ही वर्णन करते हैं कि, अधिकरण (सप्तमी), अपादान (पञ्चमी), कारण (तृतीया), सम्बन्ध (पष्ठी), सम्प्रदान (चतुर्थी), कर्म (द्वितीया), कर्त्ता और प्रयोजक कर्त्ता (प्रथमा) यह सात विभक्तियों के अर्थ और भावकर्म आदि अर्थ में होनेवाले प्रत्ययों के अर्थ, यह सब ब्रह्मही है, क्योंकि इन सबों से पहिले वह प्रसिद्ध था इस कारण इन सब का कारण है, और ब्रह्मादि उत्तम तथा अस्मदादि निकृष्ट कारणों का वह मुख्य कारण है और सजातीय विजातीय भेदशून्य होने के कारण वह निरपेक्ष ही है ॥ ३० ॥ अब इस प्रकार ब्रह्म यदि विश्वास का कारण होय तो इस विषय में मीमांसक क्यों विवाद करते हैं?

कयो वदतां वादिनां वै विवादसंवादभुवो भवन्ति ॥ कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥ ३१ ॥ अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोरेकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः ॥ अवेक्षितं किंचन योगसांख्ययोः समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥ ३२ ॥ योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननंतः ॥ नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥ ३३ ॥ यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति ॥ यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्तुतः

और दूसरे स्वभाववादी पुरुष उन के सहमत क्यों होते हैं ? तथा वह दोनों, तत्त्वज्ञानियों के बोधकराने परभी बार २ मोहित क्यों होते हैं इस शङ्काको दूर करने के अभिप्राय से कहते हैं कि–जिसकी माया और अविद्या आदि शक्तियें, वाद करनेवाले वादीजनों के विवादोंकी और कभी कभी सम्वादों की स्थान होती हैं तथा इन वादी पुरुषों के मन को कभी कभी मोहित करती हैं, उन सर्वव्यापी अनन्तगुण परमात्मा को नमस्कार हो ॥ ३१ ॥ जिस की शक्ति विवाद आदि की स्थान होती हैं वह ब्रह्म कौनसा है ? यह वर्णन करने के आशय से कहते हैं कि–उपासना शास्त्र में, पाताल भगवान् का चरणतल है, यहां से लेकर भगवान् के शिरःस्थान में सत्यलोक है यहां पर्यन्त विराट्रूप से कहीहुई उपासना में ईश्वर है और ज्ञान शास्त्र में ब्रह्म के चरण आदि अङ्ग नहीं है ऐसा कहा है इसकारण ईश्वर अङ्गवाला नहीं है, इसप्रकार के भिन्न२ परस्पर विरुद्ध धर्म जिस में प्रतिपादन करे हैं उस एक ही वस्तुका आश्रय करके रहनेवाले तथा एक ही वस्तु का प्रतिपादन करनेवाले जोउपासना और ज्ञान यह दो शास्त्रहैं इनमें विवादके विषयसे अलग और विवाद के अनुकूल जोकुछ समानरूप से जाननेमें आताहै वह सर्वव्यापी ब्रह्महै उस को नमस्कार हो॥३२॥ उदासीन और सर्वत्र समभाव रखनेवाले परमेश्वर को नमस्कार करने से कौन लाभ है इस शङ्का को दूर करने के अभिप्राय से कहते हैं कि-प्राकृत (संसारी पुरुषों की समान) नामरूप रहित होतेहुए भी जिस अचिन्तनीय ऐश्वर्यवाले अनन्त परमात्मा ने, अपने चरणतल की सेवा करनेवाले प्राणियों के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त अवतारों के द्वारा रूप और कर्मों करके नाम धारण करे हैं वह परमात्मा मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ अब, तुमसमान सकाम पुरुष गणेश आदिकों की प्रार्थना करते हैं, परन्तु तुम उनको छोड़कर किस कारण भगवान् की ही प्रार्थना करते हो, इस प्रश्न का उत्तर देने के निमित्त फिर भी दक्षप्रजापति कहते हैं कि–जैसे वायु चम्पा आदि अनेकों सुगन्धित पुष्पों का आश्रय करके नानाप्रकार की सुगन्धोंसे युक्त होताहुआसा प्रतीत होता है तैसे ही जो अन्तर्यामी ईश्वर प्राकृत ज्ञानमार्गों से प्राणियों की इच्छा के अनुसार अनेकों देवताओं के रूपों से प्रतीत होते हैं वह मेरे मनोरथ को सत्यकरें ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे

संस्तुवतः सँ तस्मिन्नघमर्षणे ॥ आविरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान् भक्तवत्सलः ॥
॥ ३५ ॥ कृतपादः सुपर्णांसे प्रलंबाष्टमहाभुजः ॥ चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुःपाश-
गदाधरः ॥ ३६ ॥ पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ वनमालानिवी-
तांगो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥ ३७ ॥ महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥
काञ्च्यंगुलीयवलयनूपुरांगदभूषितः ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत्त्रिभुव-
नेश्वरः ॥ वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥ स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सि-
द्धगन्धर्वचारणैः ॥ ३९ ॥ रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ॥ ननाम दण्डवद्भूमौ
प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ॥ ४० ॥ न किंचनोच्चारयितुमशकत्तीव्रया मुदा ॥ आपूरि-
तमनोद्वारैर्ह्रदिन्य इव निर्झरैः ॥ ४१ ॥ तं तथाऽवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजा-
पतिं ॥ चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ॥ यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं

कुरुओं में श्रेष्ठ राजन् ! उस अघमर्षण तीर्थपर इसप्रकार स्तुति करेहुए भक्तवत्सल भग-
वान्, उत्तम स्तुति करनेवाले उस दक्ष के सन्मुख प्रकट हुए ॥ ३५ ॥ हेराजन् ! वह
अपना चरण गरुड़जी के कन्धेपर रक्खेहुए थे, वह लम्बी २ आठ भुजाओं से युक्त थे,
और उन भुजाओं में—चक्र, शङ्ख, खड्ग, ढाल, वाण, धनुष, पाश, और गदा इन आठ
शस्त्रों को धारण करेहुए थे, ॥ ३६ ॥ वह पीताम्बरधारी, मेघ की समान श्यामवर्ण
प्रसन्न मुख और नेत्र वाले थे, उनका शरीर वनमाला करके कण्ठ से लेकर चरण-
पर्यन्त ढकाहुआ था, उनके श्रीवत्सलाञ्छन और कौस्तुभमणि झलक रहेथे ॥ ३७ ॥
उन्होंने मस्तकपर बड़ा किरीट धारण कराथा, हाथों में बड़े बड़े कड़े और तोड़े धारण
करे थे, उन्होंने झलकतेहुए मकराकृतकुण्डल कर्णों में धारण करे थे, तागड़ी, अँगूठी, जं-
जीर और तोड़ा इन से वह भूपित थे, ॥ ३८ ॥ उन त्रिलोकीपति भगवान् ने वह श्री
पुरुषोत्तमनामकरूप धारण कराथा, वह इन्द्रादि लोकपालों से नारद और नन्द आदि पार्ष
दों से चारों ओर से घिरेहुए थे और उन के पीछे २ सिद्ध, चारण और गन्धर्व स्तुति कर-
रहे थे ॥ ३९ ॥ उस अत्यन्तआश्चर्यकारी रूप को देखकर दक्ष प्रजापति के मन को परम
आनन्दहुआ और इसकारण अत्यन्त घबड़ाकर उन्होंने भूमिपर दण्डवत् प्रणामकिया ॥ ४० ॥
तदनन्तर जैसे झरनोंसे नदियें भरजाती हैं तैसे ही तीव्रआनन्द से इन्द्रियों के अत्यन्त भरजाने
के कारण वह दक्ष प्रजापति, कुछ, भी कहने को समर्थ नहींहुए ॥ ४१ ॥ तथापि सकल प्राणियों
के हृदय के अभिप्राय को जाननेवाले भगवान् जनार्दन, इस प्रकार नम्र हुए, प्रजा उत्पन्न
करने की इच्छा करनेवाले उस दक्ष प्रजापति नामक भक्त से इसप्रकार कहनेलगे ॥ ४२ ॥
श्रीभगवान् ने कहा कि—हे महाभाग प्रचेतसपुत्र ! तू तप करके उत्तम सिद्ध होगया है,

परं गतः ॥ ४३ ॥ प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्ते ऽस्योद्बृंहणं तपः ॥ ममैष कामो भूतानां यद्भूयासुर्विभूतयः ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वराः ॥ विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥ ४५ ॥ तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाकृतिः ॥ अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्माऽसवः सुराः ॥ ४६ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्किंचान्तरं बहिः ॥ संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥ ४७ ॥ मय्यनंतगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः ॥ यदासीत्तत एवाद्यः स्वयंभूः समभूदजः ॥ ४८ ॥ स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ॥ मेने खिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥ ४९ ॥ अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणं ॥ नव विश्वसृजो युष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥ ५० ॥ एषा पञ्चजनस्यांग दुहिता वै प्रजापतेः ॥ असिक्नी नाम पत्नीत्वे

क्योंकि–मेरे में श्रद्धा करने से तुझे मेरी उत्तम भक्ति प्राप्त होगई है ॥ ४३ ॥ तिस से हे प्रजानाथ ! तेरा तप इस विश्व की वृद्धि करनेवाला है इसकारण मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ यदि कहे कि–मैंने तो प्रजा की वृद्धि के निमित्त तप करा था तुम्हारे प्रसन्न होने का कौन कारण है ? सो हे प्रजापते ! मेरी यही इच्छा है कि–प्रजाओं की वृद्धि हो और वह इच्छा तेरे तप से पूरी होगी इसकारण मैं प्रसन्न हुआ हूँ ॥ ४४ ॥ और लोकविभूति को बढ़ाने का तेरा प्रयत्न उचित ही है, क्योंकि–ब्रह्मा, रुद्र, तुम (प्रजापति), मनु और इन्द्रादि सुरेश्वर, यह सब मेरी ही विभूति हैं और प्राणियों की उत्पत्ति के कारण हैं ॥ ४५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तप मेरा हृदय है, विद्या मेरी देह है, क्रिया मेरा आकार है, उत्तम प्रकार से सिद्ध करेहुए क्रतु मेरे अङ्ग हैं, धर्म मेरा मन है और देवता मेरे प्राण हैं ॥ ४६ ॥ अब, सन्तान की वृद्धि करनेवाला तप ही है, यह दिखाने के निमित्त दूसरे और तीसरे स्कन्ध में कहेहुए इतिहास को चार श्लोकों में कहते हैं–सृष्टि से पहिले केवल मैं इकलाही था, ग्रहण करनेवाला और ग्रहण करने योग्य अन्य कोई भी वस्तु नहीं थी केवल एक चैतन्य मात्र ही था और वह भी व्यक्त (प्रकट) न होने के कारण सर्वत्र स्वस्थ और निद्रा को प्राप्त सा था ॥ ४७ ॥ फिर अनन्त गुणवाले मुझ अनन्त के विषें जब माया के द्वारा गुणमय ब्रह्माण्डरूप शरीर उत्पन्न हुआ तब अयोनिसम्भव, आदि ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ तदनन्तर मेरी शक्ति से युक्त होकर सृष्टि रचने के निमित्त उद्यत हुए वह देवश्रेष्ठ ब्रह्माजी अपने को जब असमर्थ सा माननेलगे तब 'तप कर' ऐसा कहकर मैंने उन को उपदेश करा तब उन समर्थ ब्रह्माजी ने उग्र तप करके उस के प्रभाव से प्रथम जगत् की सृष्टि करनेवाले तुम नौ भ्राताओं को उत्पन्न करा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ऐसा वर्णन कर के अब सन्तान की वृद्धि का उपाय कहते हैं कि–हे प्रजापते दक्ष ! पञ्चजन

प्रजेश प्रतिगृह्यतां ॥ ५१ ॥ मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः ॥ मिथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥ ५२ ॥ त्वत्तोऽधस्तात्प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया ॥ मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान्विश्वभावनः ॥ स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ ५४ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ७ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ तस्यां स पांचजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः हर्यश्वसंज्ञानयुतंपुत्रानजनयद्विभुः ॥ १ ॥ अपृथक्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप ॥ पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥ २ ॥ तत्र नारायणसरस्तीर्थं सिंधुसमुद्रयोः ॥ सङ्गमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ ३ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥ ४ ॥ तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेशेन यन्त्रिताः ॥ प्रजाविवृद्धये यत्तान्देवर्षिस्तान्ददर्श ह ॥ ५ ॥ उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ।

नामक प्रजापति की इस असिक्नी नामवाली कन्या को तू निःसन्देह स्त्री के नाते से स्वीकार कर ॥ ५१ ॥ तब स्त्री पुरुष के सम्बन्ध से रतिरूप धर्म से युक्त हुआ तू, उस प्रकार के ही धर्मवाली उस स्त्री के विषैं फिर बहुत प्रकार से इस (होनेवाली) प्रजाओं की सृष्टि को उत्पन्न करेगा ॥ ५२ फिर तुझ से आगे सकल प्रजा मेरी माया के द्वारा स्त्री से संयुक्त होकर पुत्रादिरूप से उत्पन्न होंगी और मेरा पूजन करेंगी ॥५३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् परीक्षित ! विश्व की वृद्धि करनेवाले भगवान् श्रीहरि, इसप्रकार कहकर उस दक्ष प्रजापति के सन्मुख, स्वप्न में देखीहुई वस्तु की समान तहां ही अन्तर्धान होगए ॥ ५४ ॥ इति षष्ठस्कन्ध में चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! वास्तव में विष्णुभगवान् की मायाशक्ति से वृद्धि को प्राप्तहुए उस समर्थ दक्षने,पञ्चजननामक प्रजापति की उस कन्या के विषैं हर्यश्वनामवाले दश सहस्र पुत्र उत्पन्न करे ॥ १ ॥ हे राजन् ! उस दक्षके सकल पुत्रों का आचार और स्वभाव एक समानथा और जब पिताने उनको प्रजाकी सृष्टि करने के निमित्तआज्ञा करी तब वह भगवान् की आराधना करने के निमित्त पश्चिम दिशा को चलेगए ॥ २ ॥ उस पश्चिम दिशामें जहाँ सिन्धुनदी और समुद्रका सङ्गम हुआ है तहाँ मुनि और सिद्धों के सेवन करेहुए अतिविस्तारवाले नारायणसरोवर नामकतीर्थ पर गए ॥ ३ ॥ और उस तीर्थ में स्नानमात्र करकेही उन हर्यश्वों के अन्तःकरण का राग आदि मल सर्वथा नष्ट होगया और उनकी बुद्धि परमहंसों के धर्म में लगी ॥ ४ ॥ परन्तु पिता की आज्ञा के वशीभूतहुए उन हर्यश्वों ने, उग्रतप ही किया तब प्रजाकी वृद्धि के निमित्त उद्योग करनेवाले उन हर्यश्वों को देवर्षि नारदजी ने देखा ॥५॥ और आकर कहा कि–हे हर्यश्वों !

अदृष्ट्वां तं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः ॥ ६ ॥ तथैकपुरुषं राष्ट्रं बिलं चादृष्टनिर्गमम् ॥ बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥ ७ ॥ नदीमुभयतो वाहां पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहं ॥ क्वचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयंभ्रमि ॥ ८ ॥ कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः ॥ अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ॥ वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥ १० ॥ भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबन्धनम् ॥ अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ ११ ॥ एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान् स्वाश्रयः परः ॥ तमदृष्ट्वाऽभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १२ ॥ पुमान्नैवैति यद्गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा ॥ प्रत्यग्धामाऽविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १३ ॥ नानारूपा-

---

जिसमें एक ही पुरुष है ऐसे राज्य और भूमि का अन्त विना देखे तुम प्रजापालक होकर भी अज्ञानी होने के कारण प्रजाओं को कैसे उत्पन्न करोगे ? ॥ ६ ॥ और तैसे ही तुम, जहां बाहर को निकलने का मार्ग नहीं दीखता ऐसा बिल, बहुरूपिणी स्त्री, जारिणी स्त्री का पति पुरुष, दोनों ओर को बहनेवाली नदी, पच्चीस पदार्थों का अद्भुत घर, विचित्र कथाओं वाला एक हंस और छुरे तथा वज्रों की बनीहुई अति तीखी और दृढ़ एक घूमने वाली स्वतन्त्र वस्तु इन सब को न जाननेवाले और अपने सर्वज्ञ पिता की अपने योग्य आज्ञा को न जाननेवाले तुम सृष्टि को कैसे उत्पन्न करोगे ? ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेव जी ने कहा कि—हे राजन् परीक्षित ! हर्यश्वों ने इस कथन को सुनने के अनन्तर स्वाभाविक विचारशक्तिवाली बुद्धि से देवर्षि के कूटभाषणों का आपही विचारकरा ॥ १० ॥ अब, नारदजी के कहेहुए दशवाक्यों का अर्थ उन हर्यश्वों ने विचार करके जो निश्चय किया उसका ही क्रमसे दश श्लोकों में वर्णन करतेहैं—हे राजन् ! भू कहिये अपने अनादिबंधन का कारणभूत जो लिङ्गशरीर उसके नाश का उपाय विना देखे बन्धन के हेतुभूत कर्म के करने से कर्म का कौन लाभ होना है ? ॥ ११ ॥ तैसे ही षड्गुणऐश्वर्यवान्, अपने ही आधार से रहनेवाला और सर्वसाक्षी मायातीत ईश्वर एकही है, तिससे उस नित्यमुक्त परमात्मा का दर्शन विनाकरे, ईश्वर को समर्पण न करेहुए कर्मों को करने से पुरुष को कौन लाभ होना है ? ॥ १२ ॥ तैसेही जिसकी प्राप्ति होनेपर पाताल में गएहुए की समान पुरुष तहांसे कभी भी लौटकर नहीं आता है ऐसे ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मको नजानने वाले पुरुष को, किसी न किसी समय अवश्य ही नाश को प्राप्त होनेवाले स्वर्ग आदि के साधनरूप कर्मों से इस जगत् में कौन लाभ होना है ? ॥ १३ ॥ तैसे ही

त्मनो बुद्धिः स्वैरिणीवै गुणान्विता ॥ तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १४ ॥ तत्संगभ्रंशितैश्वर्यं संसरंतं कुभार्यवत् ॥ तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १५ ॥ सृष्ट्यप्ययकरीं मायां वेलाकूलांतवेगितां ॥ मत्तस्य तामविज्ञस्यकिमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १६ ॥ पंचविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणं ॥ अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १७ ॥ ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बंधमोक्षानुदर्शनं ॥ विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १८ ॥ कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् ॥ स्वतंत्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १९ ॥ शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकं ॥ कथं तदनुरूपाय गुणविश्रंभ्युपक्रमेत् ॥ २० ॥ इति व्यवसिता राजन् हर्यश्वा एकचेतसः ॥ प्रयं-

जारिणी स्त्री की समान अपने को मोहित करनेवाले रज आदि गुणों से युक्त और अनकों रूप धारण करनेवाली अपनी बुद्धि का नाश (विवेक) जिसको नहीं प्राप्त हुआ उस पुरुष को अशान्त कर्म्मों करके इसलोक में कौन लाभ होना है ? ॥ १४ ॥ तैसेही उस बुद्धि के सङ्गसे स्वाधीनता नष्ट होकर ' दुष्ट स्त्री के पति की समान ' अपनी सुख दुःख रूप गतियों का अनुभव करनेवाले जीवको न जाना तो पुरुष को इसलोक में विवेकरहित कर्मों के करने से कौन लाभ होना है ॥ १५ ॥ तैसे ही सृष्टि और लय करनेवाली और संसाररूप प्रवाह में पड़ेहुए प्राणियों का जो तप विद्या आदि निर्गमस्थान उस के समीप में उस को रोकने के निमित्त क्रोध अहङ्कार आदि के द्वारा वेगवाली जो माया उस के वेग से विवश होकर उस के स्वरूप का विचार न करनेवाले पुरुष को मायारचित कर्मों के करने से कौन लाभ होनाहै ?॥१६। तैसेही जो पचीस तत्त्वोंका अन्तर्यामी,आश्चर्यकारी आश्रयहै तिस अध्यात्मरूप ईश्वर को (देहआदि कार्य और महत्तत्त्व आदि कारण इनके समूहों के अधिष्ठाताको) न जाननेवाले पुरुष को,मिथ्या स्वतन्त्रताके अभिमान से इसलोकमें करेहुए कर्म्मों करके कौन लाभ होनाहै॥१७॥ तैसेही चेतन और जड़रूप वस्तुका जिसने विचार कियाहै और जो बन्ध तथा मोक्ष का दिखानेवालाहै तिसईश्वरका प्रतिपादन करनेवालेशास्त्र का अभ्यास न करने के कारण, तिस विषयके अज्ञानी पुरुष को बहिर्मुख कर्मों के करने से कौन लाभ है ? ॥ १८ ॥ तैसेही तीक्ष्ण और सकल जगत् को खैंचनेवाले घूमते हुए स्वतन्त्र कालचक्र को न जाननेवाले पुरुष को दुष्ट कर्मों के करनेसे इसलोक में कौनलाभ है ? ॥ १९ ॥ और शास्त्ररूप पिताकी निवृत्तिमार्ग की उपयोगी निवृत्तिकारक आज्ञा को जो पुरुष नहीं जानता है वह गुणमय प्रवृत्तिमार्ग में विश्वासयुक्त होकर सृष्टि आदि कर्म्मों के विषय में कैसे प्रवृत्त होगा ? ॥२०॥ हे राजन् ! एक विचारवाले उन हर्यश्वों

गुरुं तं परिक्रम्य पंथानमनिर्वर्तनं ॥ २१ ॥ स्वरब्रह्मणि निर्भातहृषीकेशपदांबुजे ॥ अखंडं चित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥२२॥ नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनां ॥ अन्वतप्यत कः शोचन्सुप्रजस्त्वं शुचां पदं ॥ २३ ॥ स भूयः पांचजन्यायामजेन परिसांत्वितः ॥ पुत्रानजनयद्दक्षः सवलाश्वान्सहस्रशः ॥ २४ ॥ तेऽपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः ॥ नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥ २५ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ जपंतो ब्रह्म परमं तेपुस्तत्र महत्तपः ॥ २६ ॥ अब्भक्षाः कतिचिन्मासान्कतिचिद्वायुभोजनाः ॥ आराधयन्मन्त्रमिममभ्यस्यंत इडस्पतिम् ॥ २७ ॥ ओं नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ॥ विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥ २८ ॥ इति तानपि राजेंद्र प्रतिसर्गधियो मुनिः ॥ उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥ २९ ॥ दाक्षायणाः संशृणुत गदतो निगमं मम ॥ अ-

---

ने इसप्रकार नारदजी के वाक्य का निश्चय करके नारदजी की प्रदक्षिणा करी और वह मोक्षमार्ग को चलेगए ॥ २१ ॥ इधर वह नारदजी भी स्वरब्रह्म में साक्षात्कार हुए हृषीकेश भगवान् के चरणकमल में अपना चित्त एकाग्ररूप से स्थापन करके विचरते हुए लोकान्तर को चलेगए ॥ २२ ॥ तदनन्तर सुन्दरस्वभावसे शोभापानेवाले अपने पुत्र, नारदजी के द्वारा धर्म भ्रष्ट होगए, ऐसा सुनकर दक्ष प्रजापति शोक करते हुए अत्यन्त सन्ताप को प्राप्त हुए, क्योंकि-सत्पुत्र होना एक शोक का ही स्थान है ॥ २३ ॥ फिर ब्रह्माजी के समझाने पर उन दक्ष प्रजापति ने अपनी असिक्नी नामवाली स्त्री के विषैं फिरभी शबलाश्व नामक सहस्रों पुत्र उत्पन्न किए ॥ २४ ॥ तदनन्तर जब उन पुत्रों को भी प्रजा उत्पन्न करने के निमित्त पिताने आज्ञा करी तब वह भी अपने पहिले भ्राता जहां सिद्धहुए थे तिस नारायणनामक सरोवर के समीप, व्रत को ग्रहण कर के तपस्या करने के निमित्त चलेगए ॥ २५ ॥ तिस सरोवर में स्नानमात्र करते ही उन के अन्तःकरण में का राग आदि मल सर्वथा दूर होगया और परब्रह्मरूप मन्त्र का जप करते करते उन्होने बड़ी तपस्या करी ॥ २६ ॥ पहिले कई मासपर्यन्त जलपान करके और फिर कई मासपर्यन्त वायु भक्षण करके उन्होंने आगे कहेहुए अर्थवाले मन्त्र का जप करते २ मन्त्राधिपति भगवान् की आराधना करी ॥ २७ ॥ उसमंत्र का अर्थ यह है कि-विशुद्धचित्त का आश्रय करके रहनेवाले सर्वान्तर्यामी और सर्वव्यापी परमहंस नारायण का हम ओंकारपूर्वक नमस्कार करके ध्यान करते हैं ॥ २८ ॥ हेराजेन्द्र ! इसप्रकार सृष्टि की वृद्धि की इच्छा करनेवाले उन शबलाश्वों कोभी नारदमुनि ने आकर पहिले की समान वाणीरूप कूट कहकर और भी इसप्रकार कहाकि- ॥ २९ ॥ हेपुत्रों ! तुम मुझ उपदेश

न्विच्छतानुपदवीं भ्रातृणां भ्रातृवत्सलाः ॥ ३० ॥ भ्रातॄणां प्रायणं भ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित् ॥ स पुण्यबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥ ३१ ॥ एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः ॥ तेऽपि चान्वगमन्मार्गं भ्रातृणामेव मारिष ॥ ३२ ॥ सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः ॥ नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्काल उत्पातान् बहून्पश्यन्प्रजापतिः ॥ पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाशृणोत् ॥ ३४ ॥ चुक्रोध नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्छितः ॥ देवर्षिमुपलभ्याह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥ ३५ ॥ दक्ष उवाच ॥ अहो असाधो साधूनां साधुलिंगेन नस्त्वया ॥ असाध्वकार्यर्भकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ॥ ३६ ॥ ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणां ॥ विघातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयोः कृतः ॥ ३७ ॥ एवं त्वं

करनेवाले मेरे कथन को एकाग्रचित्त से सुनो,कि–तुम अपने बड़े भ्राताका मार्ग देखो।३०। क्योंकि–जो धर्मज्ञानी भ्राताओं के श्रेष्ठ मार्ग के अनुसार वर्त्ताव करता है वह पुण्यवान् पुरुष, भ्रातृवत्सल मरुद्गणनामवाले देवताओं के स्वर्ग में आनन्द पाता है ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार वह यथार्थ ज्ञानी नारदजी उन को उपदेश करके तहां से चलेगए और वह शबलाश्व भी अपने ज्येष्ठ भ्राता के समान ही मार्ग के अनुगामी हुए ॥ ३२ ॥ और बीतीहुई रात्रियें जैसे लौटकर फिर नहीं आती हैं तैसे ही अन्तर्मुख वृत्ति से प्राप्त होनेवाले परमेश्वर के उत्तम मार्ग को गएहुए वह अब भी लौटकर नहीं आते हैं ॥ ३३ ॥ इधर इस समय होतेहुए बहुत से उत्पातों को देखनेवाले दक्ष प्रजापति ने, मेरे पुत्रोंको नारदजीने पहिले की समान धर्म से भ्रष्ट करदिया ऐसा वृत्तान्त सुना । ३४ ॥ और पुत्रशोक से अत्यन्त मोहित हुआ दक्ष प्रजापति नारदजी के ऊपर क्रुद्ध हुआ, तब अपने पुत्रों की परमहंस मार्ग में हुई निष्ठा को सुनकर, दक्षभी प्रायः विरक्त होगा अतः उसके ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त नारदजी उसके पास गए तब उन देवर्षि नारदजीको देखकर वह दक्ष क्रोध के कारण अपने नीचे के ओठ को कँपाताहुआ उन नारदजीसे कहनेलगा ३५ दक्षने कहा कि–हे असाधो ! साधु का वेष धारण करनेवाले तुमने, मेरे बालकोंका अकल्याण करा है क्योंकि–तुमने अपने धर्म में प्रवृत्तहुए उनको संन्यास का मार्ग दिखाया है ॥ ३६ ॥ मोक्षका कारण होने से संन्यासका मार्ग उत्तमहीहै, यह ठीकहै परन्तु तीनों ऋणों को दूर करे बिना संन्यासको धारण करना बड़ाभारी अनर्थ ही होताहै इस कारण अरे पाप ! (नारद) ब्रह्मचर्य व्रत, पुत्र उत्पन्न करना और यज्ञ करना इनकेद्वारा ऋषि, पितर और देवताओं के ऋण से जो छूटे नहीं हैं और जिन्होंने कर्म का विचार नहीं किया है ऐसे मेरे पुत्रों के इस लोक के और परलोक के कल्याणों का तैने नाश किया है ॥ ३७ ॥ और बा-

निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः ॥ पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥
॥ ३८ ॥ ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः ॥ ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरंकर-
मवैरिणाम् ॥ ३९ ॥ नेत्थं पुंसां विरागः स्यात्त्वया केवलिना मृषा ॥ मन्यसे
यद्युपशमं स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥ ४० ॥ नानुभूय न जानाति पुमान्विषयती-
क्ष्णताम् ॥ निर्विद्यते स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥ ४१ ॥ यन्नस्त्वं
कर्मसंधानां साधूनां गृहमेधिनाम् ॥ कृतवानसि दुर्मर्षं विप्रियं तव मर्षितम्
॥ ४२ ॥ तन्तुकृन्तन यन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः ॥ तस्माल्लोकेषु ते मूढ न
भवेद्भ्रमतः पदं ॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रतिजग्राह तद्बाढं नारदः साधु-
संमतः ॥ एतावान्साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयं ॥ ४४ ॥ इतिश्रीभा-

लकों की कोमलबुद्धि का नाश करनेवाला निर्दयी तू, श्रीहरि के यश का नाश करनेवाला होकर उन के पार्षदों में निर्लज्जता के साथ कैसे विचरताहै ? ॥ ३८ ॥ अरे ! वास्तव में वैरभाव रहित प्राणियोंसे वैरभाव करके उन के मित्रभाव का नाश करनेवाले तुझको छोड़कर और सकल भगवद्भक्त, प्राणियों के ऊपर अनुग्रह करने में अत्यन्त ही तत्पर रहते हैं और तुझे प्राणियों का अप्रिय (हानिकारी कार्य) करने में लज्जा क्यों नहीं आती है ! ॥ ३९ ॥ अब वैराग्य से शान्ति प्राप्त होती है और शान्ति से प्राणियों का स्नेहपाश टूटजाता है इसकारण जिसदिन वैराग्य हो उसीदिन संन्यास ग्रहण करलेय इत्यादि श्रुतियों के वाक्य होने के कारण विरक्त पुरुष को तीनों ऋणों को दूर करना आवश्यक नहीं है इस से वैराग्य का उपदेश करके मैंने तेरे पुत्रों के ऊपर अनुग्रह ही करा है यदि ऐसा कहे तो हे नारद ! सुन—यद्यपि तुझे ऐसा प्रतीत होता है तथापि ज्ञान के विना केवल अवधूत वेष का धारण करनेवाले तेरे इसप्रकार बुद्धि को फिरादेने से पुरुषों को वैराग्य कभी भी नहीं होगा और वैराग्य के विना ज्ञान नहीं होगा तथा ज्ञान के विना स्नेहपाश नहीं टूटेगा ॥ ४० ॥ क्यों कि-पुरुष को विना अनुभव के यह समझ में नहीं आसक्ता कि—विषय दुःख का कारण है, इसकारण अनुभव से उस वार्त्ता को जानकर पुरुष को अपने आप ही जैसा वैराग्य उत्पन्न होता है तैसा औरों के बुद्धि को फेरनें से नहीं होता है ॥ ४१ ॥ सो इसप्रकार कर्म की मर्यादा से वर्त्ताव करनेवाले हम सदाचारी गृहस्थों का जो तूने असह्य अप्रिय करा है वह तेरा अपराध हमने सहनही करलिया ॥ ४२ ॥ तथापि हे सन्ताननाशक ! तू ने जो हमारा अकल्याण करा है अर्थात् हमारे पुत्रों को स्थान से भ्रष्ट करा है इसकारण रे मूढ़ ! लोकों में भ्रमनेवाले तुझको कहीं भी एक स्थानपर निवास करने को नहीं मिलेगा ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् परीक्षित् ! लोकों में साधु मानेहुए उन नारद मुनि ने उस दक्षके शाप को ' तथास्तु—ऐसा ही हो ' यह कहकर स्वी-

गवते महापुराणे षष्ठस्कंधे दक्षनारदशापो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥७॥ ७॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयंभुवा ॥ षष्टिं संजनयांमास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥ १ ॥ दश धर्माय कायेन्दो द्विषट् त्रिणव दत्तवान् ॥ भूतांगिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे तार्क्ष्याय चापराः ॥ २ ॥ नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु ॥ यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥ ३ ॥ भानुर्लंबा ककुज्जामिर्विश्वा साध्या मरुत्वती ॥ वसुर्मुहूर्ता संकल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्छृणु ॥ ४ ॥ भानोस्तु देवऋषभ इंद्रसेनस्ततो नृप ॥ विद्योत आसील्लंबायास्ततश्च स्तनयित्नवः ॥ ५ ॥ ककुभः संकटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः ॥ भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नन्दिस्ततोऽभवत् ॥ ६ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान्प्रचक्षते ॥ साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥ ७ ॥ मरुत्वांश्च जयंतश्च मरुत्वत्यां बभूवतुः ॥ जयन्तो वासुदेवांश उपेंद्र इति यं विदुः ॥ ८ ॥ मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे ॥ ये वै फलं प्रयच्छन्ति भू-

कार करलिया; क्योंकि—आप उसके परिवर्त्तन में (बदले में) शाप देने को समर्थहोकर भी सहन करलेना यहही साधु शब्द का अर्थ है ॥ ४४ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध में पंचम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! तदनन्तर जब ब्रह्माजी ने उस दक्ष नामक प्रचेतस् के पुत्रको समझाया तब उसने अपनी असिक्नी नामक स्त्री के विषैं साठ कन्या उत्पन्न करीं; वह कन्या, प्रजा की वृद्धिरूप पिता का सङ्कल्प पूराकरने वालीं हुईं ॥ १ उन में से धर्म को दश, कश्यप को तेरह, चन्द्रमा को सत्ताईस; भूत, अङ्गिरा और कृशाश्व इन तीनों में से प्रत्येकको दो २, और शेष रहीहुई चारकन्या तार्क्ष्य-नाम धारण करनेवाले कश्यप को समर्पण करीं ॥ २ ॥ हे राजन्! जिन कन्याओं के पुत्रपौत्रादिकों से यह त्रिलोकी भरगई है, तिन सन्तानों सहित दक्ष प्रजापति के नाम तुम मुझ से सुनो ॥ ३ ॥ हे राजन्! १ भानु, २ लम्बा, ३ ककुभ्, ४ जामि, ५ विश्वा, ६ साध्या ७ मरुत्वती, ८ वसु, ९ मुहूर्त्ता, और १० सङ्कल्पा यह दश धर्म की स्त्री थीं, अवउन के पुत्र सुनो ॥ ४ ॥ हे राजन्! भानुसे देवऋषभ हुआ और उस देवऋषभ से इन्द्रसेन हुआ, लम्बासे विद्योतक नामवाला पुत्र हुआ, और उस विद्योतक से स्तनयित्नु नामवाला पुत्र हुआ ॥ ५ ॥ ककुभ्से सङ्कट, तिससे कीकट नामक पुत्र और उसकीकट से पृथ्वी परके दुर्गाभिमानी देवता उत्पन्नहुए, जामि से स्वर्ग और स्वर्गसे नन्दिनामकपुत्र उत्पन्नहुआ ॥ ६ ॥ विश्वा से विश्वेदेवा नामक पुत्र हुए, उनकी आगे को सन्तान नहीं हुई ऐसा कहते हैं, तथा साध्या से साध्य नामक गण और उनसे अर्थसिद्धि नामक पुत्र उत्पन्नहुआ ॥ ७ ॥ मरुत्वती के विषैं मरुत्वान् और जयन्त यह दो पुत्र उत्पन्नहुए, उनमें से जो जयन्त था वह वासुदेव भगवान् का अंश था अतःउस को उपेन्द्र कहतेहैं॥८॥तैसेही मुहूर्त्ता से मुहूर्त्त के

तानां स्वस्वकालजम् ॥ ९ ॥ संकल्पायाश्च संकल्पः कामः संकल्पजः स्मृतः ॥ वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥ १० ॥ द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः ॥ द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥ ॥ ११ ॥ प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ॥ ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥ १२ ॥ अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः ॥ अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥ १३ ॥ स्कन्दश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः ॥ दोषस्य शर्वरी पुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥ १४ ॥ वसोरांगिरसी पुत्रो विश्वकर्मा कृतीपतिः ॥ ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूद्विश्वे साध्या मनोः सुताः ॥ १५ ॥ विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् ॥ पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥ १६ ॥ सरूपासूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च को-

अभिमानी देवता उत्पन्न हुए और वह ही प्राणियों को अपने २ मुहूर्त्तमात्र काल से उत्पन्न हुए फल देते हैं ॥ ९ ॥ सङ्कल्पा से सङ्कल्प नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ, तिस से काम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ऐसा कहा है, अब वसु से जो अष्ट वसु नामक आठ पुत्र उत्पन्न हुए उन के नाम तुम मुझ से सुनो ॥ १० ॥ हेराजन्! १ द्रोण, २ प्राण, ३ ध्रुव, ४ अर्क, ५ अग्नि, ६ दोष, ७ वसु और ८ विभावसु यह उन के नाम हैं और उन में द्रोण की अभिमति नामक स्त्री से हर्ष, शोक और भय इत्यादि पुत्र उत्पन्नहुए ॥११॥ प्राण की ऊर्जस्वती नामक स्त्री से सह, आयु और पुरोजव यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए, ध्रुव की धराणि नामवाली स्त्री के नानाप्रकार के नगराभिमानी देवता हुए ॥ १२ ॥ तैसे ही अर्क की वासना नामक स्त्री के तर्ष आदि पुत्र हुए, अग्नि की स्त्री वसोर्धारा थी उस के विषैं द्रविणक आदि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ तैसे ही स्कन्द अग्नि से कृतिका का पुत्र हुआ तिस स्कन्द से विशाखा आदिक पुत्र उत्पन्न हुए, दोष की स्त्री सर्वरी थी उस के विषैं श्री हरि का अंश शिशुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ तैसेही आंगिरसी वसु की भार्या हुई उस के विषैं शिल्पविद्या का आचार्य विश्वकर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, तिस विश्वकर्मासे चाक्षुष मनु नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ, मनु से विश्वेदेव और साध्यगण पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ विभावसु की उषा नामक स्त्री थी उस के विषैं व्युष्ट, रोचिष और आतप यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए, उन में से आतप से जिस के द्वारा कि-सकल प्राणी कर्म करने में प्रवृत होते हैं ऐसा पञ्चयाम (पांच पहरवाला दिन) उत्पन्न हुआ, इसकारण ही रात्रिको त्रियामा कहते हैं, क्योंकि-सायङ्काल की ५ घड़ी (प्रदोष) और प्रातःकाल की ५ घड़ी (उषःकाल) इन को दिन का ही भाग माना है, ॥१६॥ तैसे ही भूत नामक ऋषि की सरूपा नामवाली स्त्री के विषैं करोड़ों रुद्र उत्पन्न हुए और १ रैवत २ अज, ३ भव, ४ भीम, ५ वाम, ६ उग्र, ७ वृषाकपि, ८ अजैकपाद, ९ अहिर्बुध्न्य,

दिशः ॥ रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥ १७ ॥ अजैकपाद-
हिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ॥ रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूतविनायकाः
॥ १८ ॥ प्रजापतेरंगिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ ॥ अथर्वांगिरसं वेदं पुत्रत्वे
चाकरोत्सती ॥ १९ ॥ कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् ॥ धिष-
णायां वेदशिरा देवलं वयुनं मनुम् ॥ २० ॥ तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी
यामिनी इति ॥ पतंग्यसूत पतगान्यामिनी शलभानथ ॥ २१ ॥ सुपर्णाऽसूत
गरुडं साक्षाद्यज्ञेशवाहनम् ॥ सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥ २२ ॥ कृत्ति-
कादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत ॥ दक्षशापात्सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्र-
हार्दितः ॥ पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षयेदिताः ॥ २३ ॥ शृणु
नामानि लोकानां मातॄणां शङ्कराणि च ॥ अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं
जगत् ॥ २४ ॥ अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥ मुनिः क्रोध-

---

१० बहुरूप और ११ महान् ऐसे ग्यारह रूपोंवाले रुद्र के जो भूत, प्रेत, विनायक आदि भयङ्कर पार्षद वह तिन भूत ऋषि की दूसरी भूतानामवाली स्त्री के विषैं उत्पन्न हुए १७ ॥१८॥ तैसे ही अङ्गिरानामक प्रजापतिकी एक स्वधा नामकस्त्रीने पितरोंको तथा दूसरीसती नामवालीस्त्रीने अथर्वाङ्गिरस नामक वेदको पुत्र के नातेसे स्वीकार किया ॥१९॥ कृशाश्व ऋषि ने अपनी एक अर्चिनामवालीस्त्रीके विषैं धूम्रकेश नामक पुत्र को तथा दूसरी धिषणा नामक स्त्री के विषैं वेदशिरस्, देवल वयुन और मनु इन चार पुत्रों को उत्पन्नकरा ॥२०॥ तैसे ही तार्क्ष्य नामवाले कश्यपकी विनता, कद्रू, पतङ्गी और यामिनी यह चार स्त्री थीं. उन मे से पतङ्गी के विषैं पक्षी, यामिनी के विषैं शलभ, सुपर्णा के विषैं (विनताके विषैं) साक्षात् यज्ञाधिपति विष्णुभगवान् के वाहन गरुड़जी और सूर्य के सारथि अरुण तथा कद्रूके विषैं अनेकों नाग उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे भरतकुलोत्पन्न राजन् परीक्षित! कृत्तिका आदि सत्ताईसनक्षत्र इस चन्द्रमाकी स्त्री थीं परन्तु रोहिणी के विषैं चन्द्रमा का अत्यन्त प्रेम होनेके कारण वह औरों की उपेक्षा करते थे इसकारण दक्षने क्रुद्ध होकर चन्द्रमाको शाप दिया अतः वह क्षयरोगसे ग्रसित होगया तव उन के विषैं उस की कोई सन्तान नहीं हुई उस चन्द्रमाने यद्यपि दक्षको फिर प्रसन्न करलिया था तथापि कृष्णपक्ष में क्षयको प्राप्त होनेवालीं तथा शुक्लपक्ष में वृद्धिको प्राप्त होनेवालीं केवल सोलह कला ही उस को मिलीं,सन्तान नहीं मिलीं, ।२३। अव हे राजन्! जिनकी सन्तान से यह सकल जगत् भरगया है उन लोकमाता, कश्यपजीकी स्त्रियों के कल्याणकारी नाम तुम सुनो, ॥ २४ ॥ हे राजन्! १ अदिति, २ दिति, ३ दनु, ४ काष्ठा, ५ अरिष्टा, ६ सुरसा, ७ इला ॥ ८ मुनि, ९ क्रोधवशा, १० ताम्रा, ११ सुरभि, १२

वेशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ॥ २५ ॥ तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥ सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ॥ २६ ॥ ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥ दन्दशूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः ॥ २७ ॥ इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ॥ अरिष्टायाश्च गंधर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ॥ २८ ॥ सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकान् शृणु ॥ द्विमूर्धा शंबरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः ॥ २९ ॥ अयोमुखः शंकुशिराः स्वर्भानुः कपिलोऽरुणः ॥ पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ॥ ॥ ३० धूम्रकेशो विरूपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ॥ स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यामुवाह नमुचिः किल ॥ वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥ ३१ ॥ वैश्वानरसुतायाश्च चतस्रश्चारुदर्शनाः ॥ उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा ॥३२॥ उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरां नृप ॥ पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः ॥ उपयेमेऽथ भगवान्कश्यपो ब्रह्मचोदितः ॥ ३३ ॥ पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः ॥ तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते

सरमा, और १३ तिमि यह उन के तेरह नाम हैं; ॥ २५ ॥ उन में से तिमि के विषैं जलचर और सरमा के विषैं व्याघ्र आदि वनचर प्राणी उत्पन्न हुए हे राजन् ! सुरभि से भैंस, गौ तथा और भी चरणोंमें दो नखवाले मेंढे बकरे आदि उत्पन्नहुए ॥ २६ ॥ और तैसे ही ताम्रा से बाज तथा गिज्ज आदि क्रूर पक्षी उत्पन्न हुए और मुनि से अप्सराओं के समूह उत्पन्न हुए हैं हे राजन् ! दन्दशूक आदि सर्प क्रोधवशा के पुत्र हुए ॥२७॥ सकल वृक्ष इला के पुत्र हुए और यातुधान नामवाले राक्षसगण सुरसा के पुत्रहुए तैसे ही अरिष्ट के गन्धर्व और काष्ठा के एक खुरवाले अश्व आदि पुत्र हुए ॥ २८ ॥ और दनु के इकसठ पुत्र थे उन में से मुख्य मुख्यों को तुम श्रवण करो हे राजन् ! द्विमूर्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शंकुशिरा, स्वभानु, कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति और दुर्जय यह अठारह पुत्र मुख्य हुए उन में स्वर्भानु की स्वप्रभा नामवाली कन्या से नमुचि ने और वृषपर्वा की शर्मिष्ठा नामक कन्या से महाबली, नहुप के पुत्र राजा ययाति ने विवाह किया ॥२९॥३०॥३१॥ तथा दनु का वैश्वानर नामवाला एक पुत्र था, उस की - उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालका यह जो सुन्दर रूपवती चार कन्या थीं उन में से हे राजन् ! हिरण्याक्ष ने उपदानवी से, क्रतु ने हयशिरा से और भगवान् कश्यपनामक प्रजापति ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार पुलोमा और कालका इन दो वैश्वानर की कन्याओं से विवाह करलिया; कश्यप की वरीहुई उस कन्या के विषैं पौलोम और कालकेय यह निवातकवच

पितुः पिता ॥ जघान स्वर्गतो राजन्नेक इन्द्रप्रियंकरः ॥ ३४ ॥ विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत् ॥ राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागताः ॥ ३५ ॥ अथातः श्रूयतां वंशो योऽदितेरनुपूर्वशः ॥ यत्र नारायणो देवः स्वांशेनावतरद्विभुः ॥ ३६ ॥ विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाऽथ सविता भगः ॥ धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः ॥ ३७ ॥ विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञासूयत वै मनुम् ॥ मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ॥ सा वै भूत्वाऽथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥ ३८ ॥ छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णिं च मनुं ततः ॥ कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥ ३९ ॥ अर्यम्णो मातृका पत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः ॥ यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥ ४० ॥ पूषाऽनपत्यः पिष्टादो भग्नदन्तो-

---

नामक साठ सहस्र युद्ध का स्वभाव वाले दानव उत्पन्न हुए, हे राजन् ! तुम्हारे पितामह अर्जुन स्वर्ग को गए थे तब इन्द्र का प्रिय करने के निमित्त उन्होंने इकले ही उन यज्ञनाशक साठ सहस्र निवातकवचों का वध करा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तैसेही विप्रचित्ति नामक दानव ने सिंहिका के विषैं १०१ पुत्र उत्पन्न करे, उनमें जिस को ग्रहपना प्राप्त हुआ, वह राहु बड़ा पुत्र था और शेष केतु नामवाले सौ पुत्र उस से छोटे थे ॥ ३५ ॥ हे राजन् अब आगे, जिसमें प्रभु नारायण देव अपने अंशसे अवतीर्ण हुए ऐसा अदिति का वंश तुम मुझ से क्रमसे सुनो ॥ ३६ ॥ १ विवस्वान्, २ अर्यमा, ३ पूषा, ४ त्वष्टा, ५ सविता, ६ भग, ७ धाता, ८ विधाता, ९ वरुण, १० मित्र ११ शक्र और १२ उरुक्रम यह बारह आदित्य हुए ॥ ३७ ॥ इनमें से विवस्वान्‌की महाभाग्यवती संज्ञा नामवाली स्त्रीके श्राद्धदेव नामक मनु और यमदेव तथा यमुना यह दो भी सन्तान उत्पन्न हुईं, वही संज्ञा स्त्री घोड़ी का रूप धारण करके पृथ्वीपर गई तब उस के अश्विनीकुमार नामवाले दो पुत्र हुए ॥ ३८ ॥ तथा विवस्वान् की छाया नामवाली दूसरी स्त्री के शनैश्चर और सावर्णि मनु यह दो पुत्र तथा जिसने सम्वरण नामक ऋषि को पति मानकर वरा वह तपती नामवाली कन्या यह तीन सन्तान हुईं ॥ ३९ ॥ तिसी प्रकार अर्यमा नामक आदित्य की मातृका नामक पत्नी थी, उन दोनों स्त्री पुरुषों के बहुतसे पुत्र उत्पन्न हुए-जो कृत अकृत का ज्ञान रखते थे और उन पुत्रों की सृष्टि हुई उस में अपने पूर्वापर का विचार रखने का ज्ञान होनेके कारण उसकी ब्रह्माजी ने मनुष्य जाति कल्पना करी । ४० ॥ तैसेही पूषा नामक आदित्य, दक्ष प्रजापतिके ऊपर क्रुद्ध हुए महेश्वर के सामने दांत निकालकर हँसने के कारण दांत टूटजानेपर पिष्ट (हलुआ आदि) भक्षण करनेवाला हुआ, ऐसा मैंने पहिले चतुर्थ स्कन्ध में तुम से कहा ही है; उस पूषाके

ऽभवत्पुरा ॥ योऽसौ दक्षार्थे कुपितं जहास विहृतद्विजः ॥ ४१ ॥ तथैवदैत्या-
नुजा भार्या रचना नाम कन्यका ॥ संनिवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान्
॥ ४२ ॥ तं वव्रिरे सुरगणा दौहित्रं द्विषतामपि ॥ विमतेन परित्यक्ता
गुरुणांगिरसेन यत् ॥ ४३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽ-
ध्यायः ॥ ६ ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणा-
त्मनः सुराः ॥ एतदाचक्ष्व भगवन् शिष्याणामक्रमं गुरौ ॥ १ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ इंद्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लंघितसत्पथः ॥ मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभु-
भिर्नृप ॥ २ ॥ विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ॥ सिद्धचारण-
गंधर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३ । विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः ॥
निषेव्यमाणो मघवान् स्तूयमानश्च भारत ॥ ४ ॥ उपगीयमानो ललितमास्था-
नाध्यासनाश्रितः ॥ पांडुरेणातपत्रेण चंद्रमंडलचारुणा ॥ ५ ॥ युक्तश्चान्यैः
पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ॥ विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम्
॥ ६ ॥ स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ॥ नाभ्यनंदत संप्राप्तं प्रत्यु-

कोई सन्तान नहीं हुई ॥ ४१ ॥ तैसेही दैत्यों की छोटी बहिन रचना नामवाली कन्या त्वष्टा की स्त्री हुई और उन दोनों स्त्री पुरुषों के संनिवेश तथा महापराक्रमी विश्वरूप यह दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४२ ॥ जब देवताओं के तिरस्कार करे हुए गुरु बृहस्पतिजी ने उन देवताओं का त्याग करदिया तब शत्रुओं की कन्या का पुत्र होनेपर भी उस विश्व रूपको देवताओं ने अपना गुरु मानकर वरलिया ॥ ४३ ॥ इति षष्ठस्कन्धमें षष्ठअध्याय समाप्त ॥ * ॥ राजा परीक्षित् ने कहा कि–हे भगवन्! आचार्य बृहस्पतिजीने अपने शिष्य देवताओं का त्याग क्यों करा ? क्योंकि–अपराध के विना ऐसा होना सम्भव नहीं है, इससे शिष्योंने गुरुका कौन अपराध करा ? सो तुम मुझसे कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे भरतकुलोत्पन्न राजन्! त्रिलोकी की सम्पदा के मदसे जिसने सन्मार्ग का उल्लंघन करा है, मरुद्गण, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, ऋभुगण, विश्वेदेवा, साध्य और अश्विनीकुमार यह जिस के चारों ओर हैं; सिद्ध, चारण गन्धर्व, ब्रह्मज्ञानी मुनि, विद्याधर, अप्सराओं के गण, किन्नर, पक्षी और नाग यह जिस की सेवा तथा गुणों का गानपूर्वक स्तुति कररहे हैं, सभा में जो सिंहासन पर बैठा है, चन्द्रमण्डलकी समान मनोहर स्वेत छत्र तथा और भी चँमर, व्यजन आदि चक्रवर्त्ती के चिन्हों से जो युक्त है और आसन के आधे भागपर स्थित इन्द्राणी के साथ जो अत्यन्त ही शोभा को प्राप्त होरहा है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तिस इन्द्र ने, देवदैत्यों से पूजित, मुनियों में श्रेष्ठ अपने तथा देवताओं के गुरु और सभा में आयेहुए बृहस्पति जी को देखतेहुएभी जब प्रत्युत्थान और आसन आदि से उन का आदर नहीं करा और जब

र्थानासनादिभिः ॥ ७ ॥ वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ नोच्चचा-
लासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥८॥ ततो निर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः ॥
आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वाञ्छ्रीमदविक्रियाम् ॥ ९ ॥ तर्ह्येव प्रतिबुद्ध्येन्द्रो गुरु-
हेलनमात्मनः ॥ गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥ १० ॥ अहो बत
ममासाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना ॥ यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥
॥ ११ ॥ को गृध्येत्पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ॥ ययाऽहमासुरं भावं
नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥ १२ ॥ ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन्न कंचन ॥ प्र-
त्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ॥ १३ ॥ तेषां कुपथदेष्टॄणां प-
ततां तमसि ह्यधः ॥ ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ॥ १४ ॥
अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् ॥ प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृ-
शन् ॥ १५ ॥ एवं चिंतयतस्तस्य मघोनो भगवान् गृहात् ॥ बृहस्पतिर्गतो
ऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥ १६ ॥ गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन्भगवान्

आसन पर वैठाहुआ कुछ एक हला भी नहीं तब ऐश्वर्य के मद से उत्पन्न हुए विकार को जाननेवाले वह अङ्गिरा ऋषि के पुत्र, ज्ञानी, प्रभु, बृहस्पति जी एक साथ तहाँ से निकल कर मौनभाव धारण करे अपने घर को लौटकर चलेगए ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ उससमय इधर इन्द्र, मुझ से गुरु का तिरस्कार हुआ है ऐसा जानकर सभा में स्वयंआप ही अपनी निन्दा कर ने लगा ॥ १० ॥ कि--अरे! मेरा कराहुआ कर्म बड़ा अयोग्य हुआ, क्योंकि--मुझ, मन्द-मति ने ऐश्वर्य से मत्त होकर सभा में गुरु का तिरस्कार करा है ॥ ११ ॥ और सत्वगुणी देवताओं का राजा होतेहुए भी मुझे जो अहङ्कार प्राप्त हुआ ऐसे स्वर्गपति की लक्ष्मी को कौन ज्ञानी पुरुष इच्छा करेगा? ॥ १२ ॥ हेदेवताओं! सार्वभौम राजा सिंहासनपर वैठा हुआ किसी कोभी अभ्युत्थान आदि न करे ऐसा जो कोई कहते हैं वह उत्तम धर्म को नहीं जानते हैं क्योंकि--कुलीन ब्राह्मण अथवा सर्वव्यापी विष्णु का भक्त आता होयतो उस को देख कर, जो आसनपर से नहीं उठता है वह दुःखों से पीड़ित होताहै ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है अतः कुमार्ग का उपदेश करके नीचे नरक में पड़नेवाले उन लोकों के वचन पर जो विश्वास करते हैं वह पत्थर की नौका में वैठेहुए पुरुषों की समान डूबजाते हैं ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ इसकारण गम्भीर बुद्धिवाले उन देवगुरु ब्राह्मणके चरणों में मस्तकरखकर मैं उनको निष्कपटभाव से प्रसन्न करलूँगा ॥ १५ ॥ इसप्रकार उस इन्द्रके विचार करने पर भगवान् बृहस्पति अपनी सर्वोत्तम मायाके द्वारा अपने घरमें से भी अन्तर्धान होगए १६ तदनन्तर अपने गुरु कहाँ हैं, इस की खोज करतेहुए भी जब उन भगवान् देवराज इन्द्र

स्वराट् ॥ ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वैवा-सुराः सर्वे आश्रित्यौशनसं मतं ॥ देवान्प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥ १८ ॥ तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नांगोरुबाहवः ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेंद्रा नतकंधराः ॥ १९ ॥ तांस्तथाऽभ्यर्दितान्वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः ॥ कृपया परया देव उवाच परिसांत्वयन् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहो वत सुर-श्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ॥ ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनंदत ॥ २१ ॥ तस्यायमनयस्यासीत्परेभ्यो वः पराभवः ॥ प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत्सुराः ॥ २२ ॥ मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुर्वतिक्रमात् ॥ संप्रत्यु-पचितान्भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ॥ आददीरन्निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥ २३ ॥ त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यभेद्यमंत्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ॥ न वि-प्रगोविंदगवीश्वराणां भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणां ॥ २४ ॥ तद्विश्वरूपं भजे-ताशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवंतं ॥ सभाजितोऽर्थान्स विधास्यते वो

को बृहस्पति जी का पता नहीं लगा तव वह इन्द्र, असुरों से हमारी रक्षा कैसे होगी ? इसका देवताओं के साथ बुद्धि लगाकर विचार करतेहुए भी मन की स्वस्थता को नहीं प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ इतने-ही में यह वृत्तान्त सुनते ही सकल दुर्मद असुर शुक्राचार्य की सम्मति लेकर और शस्त्र धारण करके देवताओं के साथ युद्ध करने को उद्यत हुए १८ तदनन्तर उनके छोड़े हुए तीखे वाणों से जिन के मस्तक, जङ्घा और वाहु कटगई हैं ऐसे वह देवता इन्द्रके साथ नीचे को ग्रीवा करेहुए ब्रह्माजी की शरण में गए ॥ १९ ॥ उस समय स्वयं उत्पन्न होनेवाले भगवान् ब्रह्माजी, उन देवताओं को ऐसा पीड़ितहुआ देख कर वड़ी कृपा पूर्वक उनको धीरज वँधाते हुए कहने लगे ॥ २० ॥ ब्रह्माजी ने कहा कि—अरे श्रेष्ठ देवताओं ! तुमने ऐश्वर्य के मदसे जितेन्द्रिय, ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण का अनादर करा है, यह तुमने वहुत ही बुरा करा ॥ २१ ॥ तिससे हे देवताओं ! सम्पत्तिमान् होकर भी जो क्षीणवल शत्रुओं से तुम्हारा तिरस्कार हुआ है यह तुम्हारे उस अन्याय कर्म का ही फल है ॥ २२ ॥ हे इन्द्र ! गुरु का तिरस्कार करने के कारण अत्यन्त क्षीण हुए और इससमय उन शुक्राचार्य की ही भक्तिपूर्वक सेवा करके वढ़े हुए इन शत्रुओं की ओर को तुम देखो ! अरे ! अधिक तो क्या परन्तु अपने गुरु शुक्राचार्यजी को देवता की समान माननेवाले यह असुर आज मेरे भी स्थान को ग्रहण करेंगे ॥ २३ ॥ अभेद्य मन्त्र वाले वह शुक्राचार्यजी के शिष्य (असुर) इससमय क्या स्वर्ग को कुछ गिनते हैं ? परन्तु ब्राह्मण, गोविन्द और गौ जिनके ऊपर अनुग्रह करते हैं उन श्रेष्ठ पुरुषों का ही अकल्याण नहीं होता है ॥ २४ ॥ इसकारण हे देवताओं ! जितेन्द्रिय, तपस्वी और आत्मज्ञानी जो त्वष्टा का पुत्र ब्राह्मण विश्वरूप है, उसके समीप अव तुम शीघ्रही जाओ

यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ते एवमुदिता राजन्ब्रह्मणा विगतज्वराः ॥ ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥ २६ ॥ देवा ऊचुः ॥ वयन्तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ॥ कामः संपाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥ २७ ॥ पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ॥ अपि पुत्रवतां ब्रह्मन्किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥ २८ ॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ॥ भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात्क्षितेस्तनुः ॥ २९ ॥ दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयं ॥ अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥ ३० ॥ तस्मात्पितॄणामार्तानामार्तिं परपराभवम् ॥ तपसापनयंस्तात सन्देशं कर्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥ वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ॥ यथाऽञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥ ३२ ॥ न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्र्यभिवादनम् ॥ छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन्वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणं ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः ॥ स वि-

और उसका सत्कार करके उसको गुरु करलो,तब तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा ! परन्तु यदि तुम उसके असुरों के पक्षपातरूप कर्म को सहोगे तो ऐसा होसकेगा ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हेराजन् !ब्रह्माजी के आज्ञा करेहुए वह देवता, चिन्तारहित होकर उन विश्वरूप ऋषि के समीप गए और उनको हृदयसे लगाकर कहनेलगे ॥ २६ ॥देवताओं ने कहा कि-हे विश्वरूपजी ! तुम्हारा कल्याण हो,हम तुम्हारे आश्रम में अतिथि बनकर आये हैं इसकारण तुम हम पितरों के योग्य मनोरथ को इससमय पूर्ण करो २७ हे ब्रह्मन् ! जो सत्पुत्र हैं वह यदि पुत्रवान्हों तो भी पितरों की शुश्रूषा करना ही उनका परम धर्म है, फिर तुम समान ब्रह्मचारी पुत्रों का यही धर्म है इसमें तो सन्देह ही क्या ? ॥ २८ ॥ आचार्य वेद की मूर्त्ति हैं, पिता ब्रह्माजी की मूर्त्ति है, भ्राता इन्द्र की मूर्त्ति है, माता साक्षात् पृथ्वी की मूर्त्ति है, भगिनी दया की मूर्त्ति है, अतिथि साक्षात् धर्म की मूर्त्ति है, अभ्यागत अग्निकी मूर्त्ति है और सकल प्राणी ईश्वर की मूर्त्ति हैं ॥ २९॥३०॥ तिससे हे तात-विश्वरूप ! पीडितहुए हम पितरों की,शत्रुओं से प्राप्तहोनेवाली तिरस्काररूप पीडा को तुम्हें अपने तपसे दूरकरनेके निमित्त हमारी आज्ञाको अङ्गीकार करना योग्यहै॥ ३१॥ हेविश्वरूप! तुम ब्रह्मज्ञानी और ब्राह्मण हो इसकारण हम तुम्हें गुरु के स्थानमें उपाध्याय बनाते हैं तब तुम्हारे तेजसे हम अनायासमें ही अपने शत्रुओं को जीतलेंगे ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन् ! प्रयोजनके निमित्त बडेभी,छोटोंके चरणोंमें अभिवन्दन करें तो वह निन्दितहै ऐसा वृद्धपुरुष नहीं मानते हैं और तिसमें भी मन्त्रोंसे अन्यत्र, अवस्थाही ज्येष्ठत्व (बडेपन) का कारण है, मन्त्र के विषय में नहीं हैं, इसकारण वेद को जाननेवाले होने से तुम हमारे बडे हो ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि इसप्रकार देवताओं ने, उपाध्याय बनने के निमित्त उन महा

श्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥ ३४ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्च उपव्ययं ॥ कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् ॥ प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥ ३५ ॥ अकिंचनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ॥ कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥ ३६ ॥ तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् ॥ भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः ॥ पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥ ३८ ॥ सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनसस्यापि विद्यया ॥ आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥ ३९ ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ॥ तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥ ४० ॥ इ०

तपस्वी विश्वरूप की प्रार्थना करी तब वह प्रसन्न हुए और मधुरवाणी में उन से कहनेलगे कि- ॥ ३४ ॥ हेनाथ ! उपाध्यायपना बड़ेहुए ब्रह्मतेज का व्यय (खर्च) करनेवाला है इसकारण धर्मात्मा पुरुषों ने इस को निन्दित माना है, परन्तु आपसमान लोकनाथों के उसके निमित्त प्रार्थना करनेपर मुझसमान तुम्हाराशिष्य कैसे निषेधकरेगा ! क्योंकि तुमसमान पुरुषों के वचन को न टालना, ही शिष्य का पुरुषार्थ है ऐसा शास्त्रज्ञानी कहते हैं ३५ हेदेवताओं ! शिलोञ्छन * ही द्रव्यहीन तपस्वियों का धनहै, उस द्रव्य से उस गृहस्थाश्रम में साधुओं के सत्कर्मों का आचरण करनेवाला मैं तो,जिससे कि–दुर्बुद्धि पुरुष अनन्द मानते हैं उस निन्दित उपाध्यायकर्म को (मन से) कैसे स्वीकार करूँगा ? ॥ ३६ ॥ यद्यपि ऐसा है तथापि तुम्हारे कहने को मैं नहीं टालता हूँ, क्योंकि–मेरे गुरुजन होकर तुमने माँगा ही कितना है इसकारण तुम्हारी इस प्रार्थना को तो मैं अर्थ और प्राण लगाकर पूर्ण करूँगा ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हेराजन् परीक्षित ! उन महातपस्वी विश्व रूप ने इसप्रकार वचन दिया तब उन्होंने उन को वरलिया तदनन्तर विश्वरूप ने बड़े प्रयत्न से उन के उपाध्यायपने का कार्यकरा ॥ ३८ ॥ उन प्रभु विश्वरूप जी ने, शुक्राचार्य की विद्या से रक्षा करीहुई जो देवताओं के द्वेषी असुरों की सम्पत्ति थी वह नारायण कवचरूप वैष्णवविद्या के द्वारा बलात्कार से उन से छीनली और इन्द्र को देदी ॥ ३९ ॥ जिस के द्वारा उत्तमरूप से रक्षित होकर इन्द्र ने दैत्यों की सेना का तिरस्कार करा वहनारायणकवचरूप वैष्णवी विद्या इन्द्र से उन उदारबुद्धि विश्वरूप ने कही ॥ ४० ॥

* खेत में स्वामी के उपेक्षा करके छोड़े हुए धान्यों का बीन लेना ' शिल ' और बाजार आदि में पड़ेहुए कणों को बीनलेने का नाम ' उञ्छ ' है

भा० म० ष० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ॥ क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥ भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ॥ यथाततायिनः शत्रून्येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ॥ नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ॥ कृतस्वांगकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥ ४ ॥ नारायणमयं वर्म संनह्येद्भय आगते ॥ पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥ ५ ॥ मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोंकारादीनि विन्यसेत् ॥ ओं नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥ ६ ॥ करन्यासं ततः कुर्याद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ प्रणवादि यकारांतमंगुल्यंगुष्ठपर्वसु ॥ ७ ॥ न्यसेद्धृदयमोंकारं विकारमनुमू-

---

इति षष्ठ स्कन्ध में सप्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ राजाने कहा कि - हेभगवन् ! जिस के द्वारा उत्तम प्रकार से रक्षा करेहुए इन्द्र ने वाहनों सहित शत्रुओं के सेनापतिओं का खेलते हुए जैसे सहज में ही तिरस्कार करके त्रिलोकी के ऐश्वर्य को भोगा, वह नारायणरूप कवच मुझ से कहो और जिन दूसरे सहायकरूप सेनापतियों के रक्षा करेहुए इन्द्र ने युद्ध में शस्त्रपाणि (हाथ में हथियार धारण करनेवाले) शत्रुओं का तिरस्कार करा और वह जिसप्रकार किया सो सब भी मुझसे कहो ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! पुरोहित मानकर वरेहुए उन त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप ने, प्रश्न करनेवाले इन्द्र से जोनारायण नामक कवच कहाहै वह तुम अब एकाग्र मन करके मुझ से सुनो ॥ ३ ॥ विश्वरूप ने कहा कि–हेमहेन्द्र ! किसी पुरुष को भी भयप्राप्त होयतो वह हाथ पैर धोकर आचमन करके, हाथ में पवित्री धारण कर उत्तर की ओर को मुख करके बैठे और विष्णु भगवान् के आठ अक्षर वाले तथा बारह अक्षरवाले मन्त्रों से अङ्गन्यास और करन्यास करके मौनभावधारण करेहुए पवित्र होय तदनन्तर अपने शरीर में नारायणमय कवच बाँधे 'ओंनमो नारायणाय'इस अष्टाक्षर मन्त्र में के ॐकार से संपुट करेहुए ओंकार आदि एकएक अक्षर का क्रम से चरण, घुटने,जंघा,उदर, हृदय,उर, मुख और मस्तक में न्यास करे अथवा यकार आदि एक २ अक्षर का मस्तक से चरणपर्यन्त उलटे क्रम से न्यासकरे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनन्तर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस बारह अक्षर वाले मन्त्र से अंगुलि अंगूठे के पोरुओं में, ॐकार से लेकर यकारपर्यंत बारह अक्षरों से करन्यास करे अर्थात् ॐकार से सम्पुट करेहुए ॐकार आदि एक एक अक्षर का क्रम से दाहिनी तर्जनी से वाम तर्जनी पर्यंत अंगुलियों में न्यास करके शेष रहे चार अक्षरों का अंगूठे के पहिले और अन्त के पोरुए में न्यास करे ॥ ७ ॥ तदनन्तर 'ॐ विष्णवे नमः' इस मन्त्र में के ॐकार का

ध्र्नि ॥ षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया दिशेत् ॥ ८ ॥ वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसंधिषु ॥ मकारमस्त्रमुद्दिश्य मंत्रमूर्तिर्भवेद्बुधः ॥ ९ ॥ सविसर्गं फडंतं तत्सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥ ॐ विष्णवे नमः इति ॥ १० ॥ आत्मानं परमं ध्यायेद्ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ॥ विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मंत्रमुदाहरेत् ॥ ११ ॥ ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्तांघ्रिपद्मः पतगेंद्रपृष्ठे ॥ दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥ १२ ॥ जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ॥ स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात्त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥ १३ ॥ दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ॥ विमुंचतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥ १४ ॥ रक्षत्वसौ माऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ॥ रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद्भरताग्रजोऽस्मान् ॥ १५ ॥ मामुग्रधर्मादखिलात्प्रमा-

हृदय में, तदनन्तर विकार का मस्तक में, षकार का दोनों भौं के मध्य में, णकार का शिखा में, वेकार का नेत्रों में, नकार का सकल सन्धियों में और फडन्त विसर्गों सहित मकार का सकल दिशाओं में निर्देश करे अर्थात् 'ॐ नमः अस्त्राय फट् इति दिग्बन्धः' ऐसा कह कर दिग्बन्धन करे तब वह ज्ञानी मन्त्रमूर्त्ति होता है. वह मन्त्र 'ॐ विष्णवे नमः' ऐसा है ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर विद्या, तेज और तप जिसकी मूर्त्ति है और जो ऐश्वर्य आदि छः शक्तियों से युक्त है तिस ईश्वररूप परमात्मा का ध्यान करे, तदनन्तर इस आगे कहेहुए नारायणकवच नामक मन्त्रका पाठ करे कि– ॥ ११ ॥ जिन्होंने गरुड़जी की पीठपर अपना चरण स्थापन करा है, जिनकी आठ भुजा हैं, जो शङ्ख, चक्र, ढाल, तरवार, गदा, वाण, धनुष और पाश को धारण करनेवाले हैं और जो अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों से युक्त हैं वह श्रीहरि सर्वत्र और सर्वकाल में मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ तिस में जल के विषैं जलजन्तुओं के समूहरूप वरुण के पाश से मत्स्य अवतार धारण करनेवाले भगवान् मेरी रक्षा करें; स्थल में अपनी इच्छा से वटु वामनरूप धारण करनेवाले श्रीहरि मेरी रक्षा करें और आकाश में विश्वरूप त्रिविक्रम मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥ तैसे ही जिन के महान् अट्टहास करनेपर दशों दिशा गूँज उठीं और असुरों की स्त्रियों के गर्भपात होगए वह हिरण्यकशिपु के शत्रु प्रभु नृसिंहभगवान् वन और समरभूमि आदि सङ्कट के स्थानों में मेरी रक्षा करें ॥ १४ ॥ तैसे ही जिन्होंने अपनी दाढ़ से पृथ्वी का उद्धार करा है और जिनके अङ्गों से यज्ञ का निरूपण करते हैं वह वराहरूप परमात्मा मार्ग में मेरी रक्षा करें, पर्वतों के शिखरोंपर परशुराम मेरी रक्षा करें और देशान्तरों में लक्ष्मणजी के साथ रहनेवाले भरतजी के बड़े भ्राता दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी मेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥ इसी

दान्नारायणः पातु नरश्च हासात् ॥ दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद्गुणेशः कपिलः कर्मबंधात् ॥ १६ ॥ सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्धयशीर्षो मा पथि देवहेलनात् ॥ देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनांतरात्कूर्मो हरिर्मा निरयादशेषात् ॥ १७ ॥ धन्वंतरिर्भगवान्पात्वपथ्याद्द्वंद्वाद्भयादृषभो निर्जितात्मा ॥ यज्ञश्च लोकादवतांज्जनांताद्बलो गणात्क्रोधवशादहींद्रः ॥ १८ ॥ द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्बुद्धस्तु पाखंडगणात्प्रमादात् ॥ कल्किः कलेः कालमलात्प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥ १९ ॥ मां केशवो गदया प्रातरव्याद्गोविंद आसंगवमात्तवेणुः ॥ नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्तिर्मध्यंदिने विष्णुररींद्रपाणिः ॥ २० ॥ देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा सायं त्रिधामाऽवतु माधवो मां ॥ दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥ २१ ॥ श्रीवत्सधामाऽपररात्र ईशः

प्रकार अभिचार आदिरूप भयङ्कर धर्म और सकल प्रमादों से श्रीनारायण मेरी रक्षाकरें, गर्व से नररूप भगवान् मेरी रक्षा करें,योग के नाश से योगनाथ दत्तात्रेयजी मेरी रक्षा करें और कर्मबन्धन से सकल गुणोंके अधिपति महामुनि कपिलजी मेरी रक्षाकरें॥१६॥ तथा कामदेव से सनत्कुमार, मार्ग में वनीहुई देवताओंकी (उनको नमस्कार न करके आगेको चलाजाना आदि) अवज्ञा (तिरस्कार से) हयग्रीव, देवपूजा के अपराधसे देवर्षियों में श्रेष्ठ नारदजी और सकल नरकोंसे कूर्मरूप धारणकरने वाले श्रीहरि मेरी रक्षा करें ॥ १७ ॥ अपथ्य से भगवान् धन्वन्तरि, शीत उष्णआदि भयों से इन्द्रियोंका दमन करनेवाले योगी ऋषभदेवजी, लोकनिंदासे यज्ञमूर्त्ति परमात्मा, लोकों से होनेवाले नाश से बलराम और क्रोध के वशीभूत सर्पगणों से शेषजी मेरी रक्षा करें ॥ १८ ॥ अज्ञान से भगवान् वेदव्यासजी, पाखण्डसमूह और प्रमाद से बुद्ध तथा काल के मलरूप कलियुग से धर्म की रक्षाके निमित्त जिन्होंने बडा अवतार धारण करा है वह भगवान् कल्कि मेरी रक्षाकरें ॥ १९ ॥ तैसे ही प्रातःकाल के समय पांच घडी दिन चढ़े पर्यंत गदाके द्वारा केशवभगवान्, फिर दश घडी दिन पर्यंत हाथमें मुरली धारण करनेवाले गोविंद, फिर पन्द्रह घडी दिन पर्यंत शक्ति धारण करनेवाले नारायण फिर मध्यान्हकाल में वीस घडी दिन पर्यंत हाथमें चक्र धारण करनेवाले विष्णुभगवान् ॥ २० ॥ फिर अपरान्ह काल में पचीस घडी दिनपर्यंत भयङ्कर शार्ङ्गनामक धनुष धारण करनेवाले देव मधुसूदन,तिस के अनन्तर सायङ्काल के समय तीस घड़ी दिन पर्यंत ब्रह्मादि तीन मूर्त्ति धारण करने वाले माधव मेरी रक्षाकरें, प्रदोषकाल में तीन घडी रात्रिपर्यंत हृषीकेश, तदनन्तर चौदह घडी रात्रि पर्यंत और अर्धरात्रि के समय अर्थात् सोलह घडी रात्रि पर्यंत एक पद्मनाभ ही मेरी रक्षा करें ॥ २१ ॥ तदनन्तर पिछली रात्रि के समय अर्थात् छब्बीस घड़ी रात्रि

प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ॥ दामोदरोऽव्यादनुसंध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्त्तिः ॥२२॥ चक्रं युगांतानलतिग्मनेमि भ्रमत्समंताद्भगवत्प्रयुक्तं ॥दंदग्धि दंदग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसखो हुताशः॥२३॥ गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिंगे निष्पिंढि निष्पिंढ्यजितप्रियाऽसि ॥ कूष्मांडवैनायकयक्षरक्षोभूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥ २४ ॥ त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृपिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ॥ दरेंद्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरे हृदयानि कंपयन् ॥ २५ ॥ त्वं तिग्मधाराऽसिवरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिंधि छिंधि ॥ चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषां ॥ २६ ॥ यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ॥ सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यस्तथा अंहोभ्य एव वा ।२७। सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ॥ प्रयांतु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः।२८।

पर्यंत जिन के वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह है वह ईश्वर, तिसके अनन्तर अरुणोदय के समय अट्ठाईस घड़ी रात्रिपर्यंत खड्ग धारण करनेवाले जनार्दन, तिस के अनन्तर प्रभातकाल में अर्थात् सूर्योदय पर्यन्त श्रीदामोदर और दिनकी तथा रात्रि की सन्धि (दोनों समय मिलने) के समय (सवेरे और साँझ को) विश्वेश्वर भगवान् काल मूर्ति मेरी रक्षा करे ॥ २२ ॥ हेसुदर्शनचक्र! तेरीधार प्रलयकाल की अग्नि की समान तीखी है, भगवान् का प्रेरणा कराहुआ तू हमारे चारोंओर घूमताहुआ जैसे वायु की सहायता से युक्त हुआ अग्नि सूखे हुए घास फूँस को शीघ्र ही भस्म करडालता है तैसे ही तू हमारे शत्रुओं की सेना को शीघ्र ही भस्म करडाल भस्म करडाल ॥ २३ ॥ हे गदे! तेरी चिनगारियों का स्पर्श वज्र की समान असह्य है और तू अच्युत भगवान् की प्रिय है और मैं भी अच्युतभगवान् का दास हूँ इसकारण तू मेरे कूष्माण्ड, वैनायक, यक्ष, राक्षस, भूत और ग्रहरूप शत्रुओं का अति शीघ्र चूर्णकर चूर्णकर ॥ २४॥ हे पाञ्चजन्यनामक शङ्ख! कृष्णभगवान् के अपने मुख की वायु से तुझे पूर्ण करनेपर, तू भयङ्कर शब्द करके हमारे शत्रुओं के हृदयों को कँपाताहुआ यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृगण, पिशाच, ब्रह्मराक्षस तथा औरभी जो कोई घोर दृष्टिवाले हों उन सब को विदीर्ण करडाल ॥ २५ ॥ हेतीखीधारावाले श्रेष्ठ खड्ग! ईश्वर का प्रेरणा कराहुआ तू, मेरे शत्रुओं की सेना का छेदन कर, छेदनकर; अरी ढाल! चन्द्राकार सैंकड़ों मण्डलों से युक्त तू, मेरे पापी शत्रुओं के नेत्रों को ढक और उग्रदृष्टि पुरुषों के नेत्रों को हरले ॥२६॥ हे भगवन्! जिन सूर्य आदि ग्रहों से, उल्कापात आदि केतुओं से, दुष्ट पुरुषों से, सांप बीछू आदिकों से, तीखी डाढ़ोंवाले व्याघ्र सिंह आदि वन के हिंसक पशुओं से, भूत प्रेत आदिकों से और पातकों से हमें जो २ भय प्राप्त हुए हैं वह सब भय और जो हमारे इच्छित कार्य सिद्ध होने में विघ्न डालनेवाले यक्षराक्षस आदि हों वह सबही तुम्हारे नामों

गरुडो भगवान् स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः ॥ रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥ २९ ॥ सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ॥ बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः ॥ ३० ॥ यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ॥ सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥ ३१ ॥ यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ॥ भूषणायुधलिंगाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥ ३२ ॥ तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ॥ पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥ ३३ ॥ विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ॥ प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥ ३४ ॥ मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ॥ विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥ ॥ ३५ ॥ एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ॥ पदा वा संस्पृशेत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्यते ॥३६॥ न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ॥

के, रूपों के और अस्त्रों के कीर्त्तन से शीघ्र नाश को प्राप्त हों॥ २७ ॥ २८ ॥ तैसे ही स्तोत्रों से (बृहत्‌रथन्तर आदि सामों से) स्तुति करेहुए वेदमूर्त्ति प्रभु भगवान् गरुड़जी मेरी सकल सङ्कटों से रक्षा करें ॥ २९ ॥ तैसे ही श्रीहरि के नामरूप वाहन और आयुध हमारी बुद्धि इन्द्रियें, मन और प्राणों की सकल सङ्कटों से रक्षा करें तथा भगवान् के मुख्य पार्षदभी हमारी रक्षा करें ॥ ३० ॥ तैसे स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणरूप सकल जगत् वास्तव में भगवान् का रूप ही है, यदि यह यथार्थ रीति से सत्य होय तो इस सत्य के द्वारा हमारे सकल उपद्रव नाश को प्राप्त हों ॥३१॥ जैसे सर्वत्र एकरूप आत्मस्वरूप का वारंवार चिन्तवन करनेवाले ज्ञानी पुरुषों को ईश्वर, स्वयं भेदरहित होनेपरभी अपनी माया के द्वारा भूषण आयुध, मूर्ति और नाम इन शक्तियों को धारण करेहुए से प्रतीत होते हैं यह यदि यथार्थ होतो उस ही सत्यरूप प्रमाण से सर्वज्ञ और सर्वगत भगवान् श्रीहरि, अपने सकल स्वरूपों से हमारी सर्वदा सर्वत्र रक्षा करें ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ और जिन्होंने अपने प्रभाव से सब के तेज का ग्रास करलिया है और जो अपने अट्टहास से, लोकों से हांनेवाले भय को दूर करते हैं वह भगवान् नारसिंह दिशा, विदिशा, ऊर्ध्वदेश, अधोदेश, चारों ओर का भाग भीतर और बाहर सर्वत्र हमारी रक्षा करें ॥३४॥ हे इन्द्र ! मैने तुझ से यह नारायण कवच कहा है अब इस के द्वारा तू रक्षित होकर अनायास में ही दैत्यों के सेनापतियों का पराजय करेगा ॥ ३५ ॥ इस कवच को धारण करनेवाला पुरुष, जिस जिस को नेत्र से देखता है वा अपने चरण से स्पर्श करता है वह २ प्राणी भी भय से तत्काल छूटजाता है ॥ ३६ ॥ और उस (नारायणकवच नामक) विद्या को धारण करनेवाले पुरुष

राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥ ३७ ॥ इमां विद्यां पुरा कश्चित्कौशिको धारयन् द्विजः ॥ योगधारणया स्वांगं जहौ स मरुधन्वनि ॥ ३८ ॥ तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ॥ ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥ ३९ ॥ गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ॥ स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ॥ प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः ॥ तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ४१ ॥ एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥ ॥ ४२ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे ष० नारायणवर्मनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ॥ सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥ १ ॥ स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः ॥

को तो राजे, चोर तथा ग्रह आदिकों से और व्याघ्र आदिकों से कहीं भी और कभी भी भय प्राप्त होता ही नहीं है ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! पहिले कौशिक नामवाला एक ब्राह्मण इस कवच को धारण करता था उस ने योगबल से निर्जल देश में अपने शरीर का त्याग किया ॥ ३८ ॥ फिर एक समय जहां उस ब्राह्मण ने शरीर त्यागा था तिस स्थान के ऊपर आकाश के विषैं विमान में बैठकर स्त्रियों से घिरेहुए गन्धर्वों के अधिपति चित्ररथ के जानेपर, वह विमान सहित नीचे को मुख होकर आकाश में से तत्काल नीचे गिरपड़ा, तदनन्तर वालखिल्य ऋषियोंके इस उपदेशसे कि-'तू उस ब्राह्मणकी अस्थियों को सरस्वती में डालेगा तो यहां से अपने गन्धर्वलोक को जा सकेगा नहीं तो नहीं जासकेगा' उसने उस ब्राह्मण की अस्थियें लेकर पूर्ववाहिनी सरस्वती नदी में डालीं और तहां स्नानकरके वह कौशिक ब्राह्मण के प्रभाव के विषय में विस्मय मानता हुआ अपने विमानमें बैठकर फिर अपने गन्धर्वलोक को चलागया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! परीक्षित ! जो पुरुष योग्यकालमें आदरपूर्वक इस नारायणात्मक कवचको सुनता है, और जो धारण करता है उसको सकल प्राणी पूजनीय मानते हैं और वह सकलभयों से छूटजाता है ॥ ४१ ॥ इन्द्र ने विश्वरूप से यह विद्या पाकर इसके द्वारा युद्धमें दैत्यों को जीता और त्रिलोकी में ऐश्वर्य का उपभोग किया ॥ ४२ ॥ इति षष्ठ स्कन्धमेंअष्टम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! उन विश्वरूपके सोमपीथ (सोम पान करने का एक), सुरापीथ (सुरापान करने का दूसरा)और अन्नाद (अन्न भक्षण करने का तीसरा) इसप्रकार तीन शिरथे ऐसा हमने सुना है॥ १॥ हे राजन् ! वह विश्वरूप, यज्ञ में प्रत्यक्ष में तो नम्रताके साथ देवताओं को (यह इन्द्र

अवदद्यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥ २ ॥ स एव हि ददौ भागं परोक्षम-सुरान्प्रति ॥ यजमानोऽवहद्भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥ ३ ॥ तद्देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः ॥ आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद्रुषा ॥ ४ ॥ सोमपीथं तु यत्तस्य शिर आसीत्कपिञ्जलः ॥ कलविङ्कः सुरापीथमन्नादं यत्स तित्तिरिः ॥ ५ ॥ ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः ॥ संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये ॥ भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥ ६ ॥ भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै ॥ ईरिणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥ ७ ॥ तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः ॥ तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥ ८ ॥ शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः ॥ रजोरूपेण ता-

को और यह अग्नि को इसप्रकार) ऊँचेस्वरसे उच्चारण करके हविका भाग देताथा, क्योंकि-देवता उसके पितरथे ॥ २ ॥ और वही विश्वरूप, अपनी माता असुरकन्या होने के कारण माताके पक्षपातसे असुरोंके अनुकूलथा इसकारण देवताओं के निमित्तयज्ञ करते हुए असुरों को गुप्तरीति से (किसी न किसी उपाय से) हविर्भाग पहुँचाताथा ॥३॥ इन्द्र ने, विश्वरूप के करेहुए उस देवताओं के अपराध और धर्ममें के कपटको जानकर ' यह इसप्रकार असुरों को वढ़ाकर हमारा नाश करदेगा' ऐसा मन में विचार भयमाना और क्रोधके वेग से उसके तीनों शिर काटडाले ॥४॥ उससमय उसका जो सोमपीथ नाम वाला शिरथा उसका कपिञ्जल पक्षी (चातक) सुरापी नामक मस्तक का कलविङ्क पक्षी (चिड़िया) और अन्नाद नामक मस्तक का तीतर नामक पक्षी हुआ, इसप्रकार तीन जाति के पक्षी उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ फिर यद्यपि इन्द्र उस ब्रह्महत्या के दूर करने को समर्थथा तथापि उसने उसको अञ्जलि से स्वीकार करलिया और एक वर्ष पर्यन्त वैसेही रहकर सम्वत्सर के अन्त में ' जब यह ब्रह्महत्यारा है ऐसा कहकर सकल प्राणी निंदित नामसे उसको पुकारनेलगे तब' उसलोक निन्दा को दूर करने के निमित्त उसने, वह ब्रह्म हत्या भूमि, जल, वृक्ष और स्त्रियों को चार भाग करके बांटदी ॥ ६॥ उससमय ' यदि मेरे ऊपर खोदाहुआ गढ़हा आप ही भरजायगा तो मैं ब्रह्महत्या का चतुर्थभाग ग्रहण करूँगी' ऐसा कहकर उस वरदान के साथ भूमिने चतुर्थ भाग ग्रहण किया,उस ब्रह्महत्या का स्वरूप भूमि के विषैं खारी मृत्तिका में ऊखररूप से दीखता है तहां अध्ययन आदि करने का निषेध है ॥ ७ ॥ तथा ' काटनेपर फिर अंकुर उत्पन्न हो ऐसा वरदान मांग कर वृक्षों ने ब्रह्महत्या का दूसरा भाग ग्रहण किया वह ब्रह्महत्या का स्वरूप उन वृक्षों में गोंदरूपसे दीखता है इसकारण वृक्षों के निर्यास (गोंद) को न खाना चाहियें॥८॥ तैसेही ' गर्भ को पीड़ा न हो और प्रसूतिकाल में पुरुष से निरन्तर सम्भोग हो ' यह

स्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥९॥ द्रव्यभूयावरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ॥ तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥ १० ॥ हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेंद्राय शत्रवे ॥ इंद्रशत्रो विवर्धस्व मा चिरं जहि विद्विषम् ॥ ११ ॥ अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः ॥ कृतांत इव लोकानां युगांतसमये यथा ॥ १२ ॥ विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने ॥ दग्धशैलप्रतीकाशं संध्याभ्रानीकवर्चसम् ॥ १३ ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥ १४ ॥ देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी ॥ नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥ १५ ॥ दरीगंभीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् ॥ लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥ १६ । महता रौद्रदंष्ट्रेण जृंभमाणं मुहुर्मुहुः ॥ वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥ १७ ॥ येनावृता इमे लोका-

---

वरदान मांगकर स्त्रियोंने ब्रह्महत्याका चौथाभाग ग्रहण किया,वह पातक स्त्रियों में प्रत्येक मासमें रजोरूपसे दीखता है इसकारणही उससमय उनका सङ्ग आदि न करे ॥ ९ ॥ तथा 'दूध आदि में अपने को मिलाने पर उन पदार्थों की वृद्धि हो, ऐसा वर मांगकर जल ने पातक का चौथा भाग ग्रहण करा, वह पातक बुलबुले और झागरूप से जल में दीखताहै इसकारण बुलबुले और झाग आदिको जलसे बाहर निकालकर उस जल में स्नान आदि कर्म करे तो वह जल पापों का नाश करता है ॥ १० ॥ तदनन्तर जिस के पुत्र का वध हुआ तिस त्वष्टा ने, 'इन्द्रशत्रो !' विलम्ब न करके वृद्धि को प्राप्त हो और इस शत्रुका वधकर' ऐसा उच्चारण करके इन्द्र के वध के निमित्त शत्रु उत्पन्न करने को अग्नि में हवन करा ॥ ११ ॥ तदनन्तर उसीसमय, जैसे प्रलयकाल में सकललोकों का संहार करने के निमित्त काल प्रकट होता है तैसे दक्षिणाग्नि से भयङ्कररूप धारण करने वाला वह वृत्रासुर प्रकटहुआ ॥ १२। हे राजन् ! वह वृत्रासुर प्रतिदिन अपने चारोंओर बाण छोड़ने के स्थानकी तुल्य बढ़ताथा और अग्निके जलाएहुए पर्वत की समान ऊँचाथा, उस का तेज,सन्ध्याकालके मेघमण्डलकी समान कालाथा,उसकी चोटी और दाढ़ी मूँछें तपाएहुए ताँबे की समान लाल लालथीं, उसकेनेत्र मध्यान्हकालके सूर्यकी समान उग्रथे ॥ १३॥ १४॥ वह पृथ्वी और आकाश इन दोनों को मानों अपने त्रिशूलके ऊपर रखकर ही गर्जना कररहा है और चरणसे पृथ्वीको कम्पायमान करताहुआ नृत्य कररहाहै ऐसा प्रतीत होताथा ॥ १५॥ वह मानों आकाश को पियेही जाता है, जिव्हा से तारागणों को चाटेही जाता है क्या ! और त्रिलोकी को निगलेही जाता है क्या ! ऐसी अपनी बड़ी २ भयंकर दाढ़ों से युक्त तथा पर्वत की गुफा की समान खोकलवाले मुख से वारंवार जंभाई लेरहाथा, उस को देखकर सकल लोक भयभीत हुए और दशों दिशाओं में को भागनेलगे ॥ १६ ॥ १७ ॥

स्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ॥ स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥ १८ ॥ तं निर्जघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः ॥ स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत्तानि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः ॥ प्रत्यञ्चमादिपुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ॥ हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ बिभेति यस्मादरणं ततोऽस्तु नः ॥ २१ ॥ अविस्मितं तम्परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ॥ विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलांगुलेनातितितर्ति सिंधुम् ॥ २२ ॥ यस्योरुशृंगे जगतीं स्वनावं मनुर्यथाबद्ध्य ततार दुर्गं ॥ स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद्दुरंतात्त्राताश्रितान्वारिचरोऽपि नूनं ॥ २३ ॥ पुरा स्वयंभूरपि संयमांभस्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले ॥

हेराजन्! जिस त्वष्टा के पुत्ररूप तमोगुणी असुर ने इस सकल त्रिलोकी को व्याप्त करडाला इसकारण उस अतिभयङ्कर पापी असुरका वृत्रासुर नाम पड़ा ॥१८॥ उस समय अपने गणों सहित श्रेष्ठ देवताओं ने उस के शरीर के ऊपर धावा करके अपने अपने दिव्य शस्त्र अस्त्रों के समूहों से उस के ऊपर प्रहार करा परन्तु उस नें वह सवशस्त्र और अस्त्र निगललिये ॥१९॥ तदनन्तर ग्रस्तहुआ है तेज जिन का ऐसे और वृत्रासुर के त्रिलोकीभर को व्याप्त करलेने के कारण जिन को कहीं जाने की भी ठीक नहींहै ऐसे वह देवता विस्मित और खिन्न होकर तहां ही एकाग्र अन्तःकरण से अन्तर्यामी आदिपुरुष की स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ देवताओं ने कहा-अहो! वायु, आकाश, अग्नि जल और पृथ्वी यह पञ्चमहाभूत, उन पञ्चमहाभूतों की रचीहुई त्रिलोकी, तिस त्रिलोकी के अधिपति ब्रह्मादिक तथा उन सभी उरली ओर जो हम, सो हम सब जिन काल से भयभीत होकर उन की पूजा करते हैं अर्थात् तिस २ समय केहहुए कर्मों को नियम से करते हैं वह काल भी जिन से भय मानता है उन परमेश्वर से ही हमारी रक्षा हो ॥ २१ ॥ क्योंकि-सब स्थानपर समान, अपने लाभ से परिपूर्णमनोरथ, राग आदि रहित और अहङ्कार आदि शून्य उस परमेश्वर को छोड़ दूसरे की ओर को जो अज्ञानी पुरुष अपनी रक्षा के निमित्त जाता है वह श्वान की पूँछ से समुद्र को तरने की इच्छा करता है अर्थात् जैसे श्वान की पूँछ का आश्रय करके समुद्र नहीं तराजासक्ता तैसे ही ईश्वर को छोड़ औरों के आश्रय से दुःखों के समूहों से पार होना नहीं बनसक्ता ॥२२॥ जिस के बड़े भ.री सींग में पृथ्वीरूप अपनी नौका को बांधकर सत्यव्रत मनु अनायास में ही सङ्कट के पार हो गया वही मत्स्यमूर्त्ति भगवान्, शरण में आयेहुए हमारी इस दुस्तर वृत्रासुर के भय से निःसन्देह रक्षा करें ॥ २३ ॥ अहो! पहिले बड़े वेग से चलतेहुए वायु के कारण उत्पन्न हुई तरङ्गों

एकोऽरविंदात्पतितस्ततार तस्माद्भयाद्येन स नोऽस्तु पारः ॥ २४ ॥ य एक ईशो निजमायया नः ससर्ज येनानुसृजाम विश्वं ॥ वयं न यस्यापि पुरः समीहतः पश्याम लिंगं पृथगीशमानिनः ॥२५॥ यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ॥ कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया कृत्वात्मसात्पाति युगे युगे च ॥ २६ ॥ तमेव देवं वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यं ॥ व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठतां ॥ प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शंखचक्रगदाधरः ॥ २८ ॥ आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ॥ पर्युपासितमुन्निद्रशरदंबुरुहेक्षणं ॥२९॥ दृष्ट्वा तमवनौ सर्वे ईक्षणाह्लादविक्लवाः॥ दंडवत्पतिता राजन् शनैरुत्थाय तुष्टुवुः॥३०॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ॥ नमस्ते ह्यस्तचक्राय

के शब्द से भयङ्कर हुए प्रलयकाल के जल में नाभिकमल में से गिरेहुए इकले ही ब्रह्माजी जिन के प्रभाव से उस भय के पार हुए वही भगवान् हमें पार लगावें ॥ २४ ॥ जिन अद्वितीय ईश्वर ने अपनी माया से हमें उत्पन्न करा है, जिनके अनुग्रह करनेपर हम विश्व को उत्पन्न करते हैं और 'स्वतन्त्र ईश्वर हैं' ऐसा अभिमान रखनेवाले हम अपने से पहिलेही अन्तर्यामीरूप करके तिन २ कर्मों के विषैं प्रेरणा करनेवाले जिन ईश्वर के स्वरूप को हम नहीं जानते हैं ॥ २५ ॥ जो वास्तव में निर्विकार हैं और देवता, ऋषि, पशु आदि ज्ञानहीन जाति और मनुष्यों के विषैं अपनी माया के द्वारा उपेन्द्र, परशुराम, मत्स्य और राम आदि रूपों से अवतार धारण करके शत्रुओं से अत्यन्त पीड़ित हुए हमें अपना समझकर प्रत्येक युग में रक्षा करते हैं ॥ २६ ॥ जो विश्व से भिन्न होकर भी विश्वरूप हैं जो प्रकृतिरूप और पुरुषरूप होने के कारण विश्व का कारणहैं, जो सबका आत्मा होकर परम देवता है और जो शरण लेने योग्य हैं उनही देवकी हम सब शरणागत हैं और वही महात्मा, अपने भक्तरूप हमारा कल्याण करेंगे ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे महाराज! इसप्रकार उन देवताओं के स्तुति करनेपर शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् पहिले उन देवताओं के हृदय में प्रकट हुए और फिर सामने आकर दृष्टिगोचर हुए ॥ २८ ॥ तब हे राजन्! श्रीवत्सलाञ्छन और कौस्तुभमणि को छोड़ भगवान् की समान ही सकल लक्षणों से युक्त सोलह पार्षदों करके चारों ओर से सेवा करेहुए और खिलेहुए शरदऋतु के कमल की समान जिनके नेत्र हैं ऐसे उन भगवान् को देखकर, उनके दर्शन से प्राप्तहुए आनन्द से विवश होकर सब देवताओं ने उनको भूमिपर साष्टाङ्ग नमस्कार करा और कुछ देरी में उठकर वह देवता उन की फिर भी स्तुति करने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ देवताओं ने कहा—हे देव! स्वर्ग

नमः सुपुरुहूतये ॥ ३१ ॥ यत्ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदं ॥ नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥ ३२ ॥ ओं नमस्तेऽस्तु भगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंस परिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहंस्यधर्मेणोद्घाटिततमःकपाटद्वारे चित्तेऽपावृतआत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥ ॥ ३३ ॥ दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥ ॥ ३४ ॥ अथ तत्र भवान्किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतन्त्र्येण स्वकृतकुशलाऽकुशलं फलमुपाददात्याहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन

आदि फल उत्पन्न करनेके निमित्त यज्ञरूप समार्थ्य से युक्त, उन फलों के देनेवाले काल रूप और उस यज्ञका नाश करनेवाले दैत्योंके विषैं अपना चक्र फैकनेवाले तथा पराक्रमों से युक्त बहुतसे नामोंवाले तुम्हें नमस्कार हो ॥ ३१ ॥ हे विधातः ! सात्विक आदि तीनों गतियों का परमस्थानरूप जो तीनों गुणों के नियन्ता तुम्हारा निर्गुण स्वरूप उस के जानने को इधर की सृष्टि का कोई भी प्राणी समर्थ नहीं होगा, इसकारण ऐसे तुम्हें केवल नमस्कार ही है ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! हे नारायण ! हे वासुदेव ! हे आदिपुरुष ! हे महापुरुष ! हे महानुभाव ! हे शुद्धधर्म ! हे परमकल्याण ! हे परमदयालो ! हे केवल ! हे जगदाधार ! हे संसार के एक नाथ ! हे सर्वेश्वर ! हे लक्ष्मीनाथ और हे परमहंस ! संन्यासों के द्वारा,अष्ट ङ्गयोगों के द्वारा चित्त की एकाग्रता करके अभ्यास करेहुए भगवद्भजनरूप परमहंस धर्म के प्रभाव से जिसका अज्ञानरूप किवाड़ खुलगयाहै अर्थात्जिस में का अज्ञान नष्ट होगया है ऐसे चित्त में प्रकटहुए अन्तर्यामी रूप के विषैं स्वयं ही जिस के आनन्द रूपका अनुभव होता है वही तुमहो ॥ ३३ ॥ हे परमेश्वर ! वास्तव में तुम्हारी इस क्रीड़ा करने की रीति को जानना कठिन है, क्योंकि-तुम निराश्रय, शरीररहित, हमारी सहायता की अपेक्षा न करनेवाले और निर्गुण होकर अपने निर्विकारस्वरूप से ही इस सगुण विश्व को उत्पन्न करते हो, रक्षा करते हो और इस का संहार भी करते हो ॥ ३४ ॥ हे परमेश्वर ! जैसे कोई पुरुष, इस लोक में घर आदि बनाकर उस में, पराधीनता के कारण अपने करेहुए पुण्य पाप के फलको भोगता है तैसे ही ब्रह्मस्वरूप तुम, जीवरूप से सत्वादि गुणों के कार्यरूप शरीर में प्रवेश करके पराधीनता से पुण्य पाप का फल भोगते हो अथवा अपने स्वरूप में निमग्न, शान्तस्वभाव तथा कभीभी लुप्त न होनेवाली चैतन्यशक्ति से युक्त होतेहुए उदासीन भाव से रहते हो

उपास्त इति ह वाव न विद्मः ॥ ३५ ॥ नहि विरोध उभयं भगवत्यप-
रिगणितगुणगण ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणा-
भासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानवसर उपरत-
समस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय को न्वर्थो दुर्घट इव भवति
स्वरूपद्वयाभावात् ॥ ३६ ॥ समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः
सर्पादिधियाम् ॥ ३७ ॥ स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः
सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव
पर्यवशेषितः ॥३८॥ अथ ह वाव तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवली-

यह ठकि २ हमारी समझ में नहीं आता ॥३५॥ तुम्हारे छः प्रकार के ऐश्वर्यवाले स्वरूप में यह कहीहुई दोनों वार्त्ता विरुद्ध नहीं हैं, क्योंकि–तुम अनगिनत गुणों के समूहों के भण्डार और स्वतन्त्र ईश्वर हो इस कारण तुम्हारी महिमा अचिन्तनीय है और वास्तविक स्वरूप को स्पर्श भी न करनेवाले जो इश्वर के विकल्प (ऐसा करे वा ऐसा करे इसप्रकार के वितर्क (क्या यह यहां योग्य है, इसप्रकार) विचार (ऐसाही करना चाहिये इसप्रकार निश्चितरूप) और कुतर्कों से युक्त शास्त्रों करके व्याकुल हुआ अन्तःकरण ही जिस दुराग्रह का आश्रय है, उस के द्वारा वाद करनेवाले पुरुषों के विवाद को तुम्हारा स्वरूप गोचर (प्रतीत) नहीं होता है और यह सकल मायामय संसार जहाँ शान्त हुआ है ऐसे तुम्हारे केवल अपने स्वरूप में अपनी माया को स्थापन करनेपर कर्त्तापन आदि कौनसा व्यवहार नहीं होसक्ता है ? और तिस में भी कर्त्तापन आदि धर्म यदि वास्तव में तुम्हारे विषैं सत्य हों तो विरोध आवेगा परन्तु वह धर्म तुम्हारे विषैं किसीप्रकार भी सत्य नहीं हैं क्योंकि–तुम दोनों हीं स्वरूपों से निराले हो ॥ ३६ ॥ हे परमात्मन् ! जैसे डोरी का टुकड़ा, उस के यथार्थ ज्ञानवाले पुरुषों को डोरी के रूप से भासमान होताहुआ भी, सर्प आदि की बुद्धिवाले पुरुषों को सर्प आदि भयङ्कररूप से प्रतीत होता है तैसे ही यथार्थ बुद्धिवाले पुरुषों को तुम केवल निर्गुण स्वरूप से प्रतीत होतेहुए भी भ्रान्तबुद्धि पुरुषों को कर्त्ता आदिरूप से प्रतीत होते हो, अभिप्राय यह कि- तुम्हारी माया के प्रभाव से तुम्हारे विषैं प्राणियों की जैसी जैसी मति होती है तैसे तैसे ही तुम उन के ऊपर अनुग्रह करनेवाले वा दण्ड करनेवाले प्रतीत होते हो ॥ ३७ ॥ विचार करके देखनेपर नानाप्रकार के रूपों से प्रतीत होनेवाले तुम ही सत्‌रूप से सकल वस्तुओं में स्थित हो, सकल जगत् के कारणरूप महत्तत्त्व आदि के कारण सर्वेश्वर भी तुम ही हो, सकल जीवों में अन्तर्यामीरूप से रहने के कारण सब विषयों के प्रकाश से तुम्हारा अनुमान होता है और तुम्हारे विना अन्य वस्तुओं का निषेध करनेवाली सकल श्रुतियों ने भी सत्यरूप से एक तुम्हारा ही वर्णन करा है ॥ ३८ ॥ हे मधुसूदन ! एकवार जिस का स्वाद लिया है

दया स्वमनसि निष्पंदमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः परमभागवता एकांतिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला: स्वात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजंति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥ ३९ ॥ त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवन् जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥ ४० ॥ अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिंगविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकंपाऽनुरञ्जितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलितमधुरमुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥ ४१ ॥

ऐसे तुम्हारे माहात्म्यरूप अमृत के रस के समुद्र में के बिन्दु से अपने मन में निरन्तर अत्यन्त टपकनेवाले निरन्तर सुख से देखेहुए और सुनेहुए सुख के लेश के आभासों का जिन को विस्मरण होगया है इसकारण ही सब के आत्मा होने से सकल प्राणियों के प्यारे और हितकारी आप के विषैं जिनका मन अत्यन्त और निरन्तर सुखसे तृप्त रहता है, जो रागद्वेष आदि रहित हैं, जो अपने पुरुषार्थ में प्रवीण हैं और जिनके तुमही प्यारे मित्र हो ऐसे अनन्य परमभगवद्भक्त, जिसके करने से फिर इस संसारमें भकटने को नहीं आते हैं ऐसी तुम्हारे चरण कमलों की निरन्तर सेवा को कैसे छोड़ देंगे ? अर्थात् कभीभी नहीं छोड़ेंगे॥३९॥ हे त्रिविक्रम ! हे त्रिलोकीनाथ ! तुमही त्रिलोकीके आत्मा और उत्पत्ति स्थान हो, तुम्हारी लीला त्रिलोकी में मनोहर है और दैत्य दानव आदि सब तुम्हारी ही विभूति हैं, इसकारण हे भगवन् ! यह उन दैत्य दानवों की उन्नत्ति का समय नहींहै ऐसा समझकर जैसे पहिले देवता, मनुष्य, पशु और मिश्र तथा जलचर जातियों के रूप अपनी मायासे धारण करके उन दैत्यों को अपराध के अनुसार दण्ड दिया है तैसे ही अवभी हे दण्ड धारण करनेवाले ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इस त्वष्टाके पुत्र का (वृत्रासुर)वध करो ॥ ४० ॥ परन्तु पहिले हे पितः ! हे पितामह ! हे निष्पाप ! तुम्हारे चरणकमलों के ध्यान से ही तुमने हमारे हृदय में प्रेम की शृङ्खला बांधदी है और अपनी मूर्त्तिको प्रकट करके जिनको तुमने अपना मानकर स्वीकार करा है ऐसे, तुम्हें नवनेवाले और तुम्हारे भक्त जो हम तिन हमारे अन्तःकरण में के तापको, तुम अपने दयालु, निर्मल, मनोर और शीतल हास्य सहित कटाक्षपात से तथा कृपावश ही बाहर निकली हुई प्रियवाणीरूप अमृत की कला से शान्त करने के योग्य हो ॥ ४१ ॥

अथ हे भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामंतर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलंभकतयाऽनुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद्विस्फुलिंगादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥ ४२ ॥ अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥ ४३ ॥ अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसंतं भुवनत्रयम् ॥ ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥ ४४ ॥ हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ॥ सत्संग्रहाय भवपांथनिजाश्रमाप्तावंते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैवमीडितो राजन् सादरं त्रिदशैर्हरिः ॥ स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह तानभिनंदितः ॥ ४६ ॥

हे भगवन् ! जैसे अग्नि की अंशरूप चिनगारियों से उस मुख्य अग्नि को प्रकाशित नहीं कियाजाता है तैसे ही हम भी अपने कार्य के विषय में तुम से क्या कहें ? क्योंकि—तुम सकल जगत् की उत्पत्ति, पालन और प्रलय की कारणरूप रहनेवाली दिव्य माया के द्वारा अपनी क्रीड़ा करनेवाले, सकल जीव समूहों के हृदयों में ब्रह्मस्वरूप से और अन्तर्यामी रूप से तथा बाहर प्रकृतिरूप से देश, काल, शरीर और विशेष अवस्थाओं का उल्लंघन न करके उपादान कारणरूप से और प्रकाशकरूप से उन का अनुभव करनेवाले, सब की बुद्धियों के साक्षी, आकाश की समान निर्लेप शरीरवाले और शुद्ध सतोगुण मूर्ति साक्षात् परब्रह्म हो ॥ ४२ ॥ इस कारण ही अचिन्तनीय ऐश्वर्यवान् और सब के परमगुरु तुम्हारी शरण में प्राप्तहुए भक्तों को, नानाप्रकार के दुःखों के साथ प्राप्त होनेवाले संसार के परिश्रम को दूर करनेवाली तुम्हारे चरणकमल की छाया में हम जिस कार्य की इच्छा से आये हैं वह हमारा कार्य तुम आप ही पूर्ण करोहो ।४३। हेसदानन्दरूप परमेश्वर ! जिस ने हमारे तेज, अस्त्र और आयुधों को निगललिया है तिस त्रिलोकी का ग्रास करडालनेवाले वृत्रासुर का तुम शीघ्र ही वध करो ॥४४॥ हृदयाकाश जिन का स्थान है, जो सबकी बुद्धियों के साक्षी हैं, जो सदानन्दरूप, अनादि और शुद्ध हैं, जिनका यश रुचिकारक है, सज्जन पुरुष सकल संगों को त्यागकर जिन को स्वीकार करते हैं, संसाररूप मार्ग में के पुरुष को जिनका आश्रय मिलने पर अन्त में अत्यन्त सुख प्राप्त होता है ऐसे तुम श्रीहरि को नमस्कार हो ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा—हेराजन् ! आदर के साथ स्तुति करके देवताओं के प्रसन्न करेहुए वह श्रीहरि, अपने स्तोत्र

श्रीभगवानुवाच ॥ प्रीतोहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया ॥ आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥ ४७ ॥ किं दुरापं मयि प्रीते तथाऽपि विबुधर्षभाः ॥ मय्येकांतमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित् ॥ ४८ ॥ न वेद कृपणः श्रेयं आत्मनो गुणवस्तुदृक् ॥ तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः ॥ ४९ ॥ स्वयं निःश्रेयसं विद्वान्न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ॥ न राति रोगिणोऽपथ्यं वांछतो हि भिषक्तमः ॥ ५० ॥ मघवन्यात भद्रं वो दध्यंचमृषिसत्तमम् ॥ विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥ ५१ ॥ स वा अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् ॥ यद्वा अश्वशिरो नाम तयोरम-

को सुनकर उन से कहनेलगे ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि–हेश्रेष्ठ देवताओं ! मेरी स्तुतियुक्त जो यह तुम्हारा ज्ञानहै इससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूँ क्योंकि–जिस ज्ञानके प्रभाव से पुरुषों को मेरे विषैं 'मैंपरमात्मा संसार रहित हूँ इसप्रकार की' स्मृति और भक्ति प्राप्त होतीहै ॥४७॥ हे देवताओं ! मेरे प्रसन्न होनेपर पुरुष को कौन पदार्थ दुर्लभ है ? अर्थात् कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है तथापि जिसकी मेरेविषैं मति एक निष्ठ (जटित) होगई है वह तत्वज्ञानी पुरुष, मेरी सेवा को छोड़ दूसरे किसी पदार्थ की भी इच्छा नहीं करता है ॥ ४८ ॥ विषयों को ही अपनी बुद्धि से तत्त्व समझनेवाला कृपण पुरुष, अपने कल्याण को नहीं जानता है और उस विषय की इच्छा करनेवाले अज्ञानी पुरुष को, यदि कोई विषय दियाजायतो वहभी उस की समान ही अज्ञानी होजाता है ॥ ४९ ॥ जैसे अपथ्य पदार्थ की इच्छा करनेवाले रोगी को, उत्तम वैद्य वही पदार्थ नहीं देता है तैसेही स्वयं कल्याण को जाननेवाला ज्ञानी पुरुष, अज्ञानी पुरुष को, उस प्रवृत्तिमार्ग का ही उपदेश नहीं करता है ॥ ५० ॥ हेइन्द्र ! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम दधीचि नामक ऋषि के समीपजाओ और विद्या, व्रत तथा तपस्या के द्वारा दृढ़हुए उन के शरीर की, उन से याचना करो, इसकार्य के करने में विलम्ब न करो ॥५१॥ हेइन्द्र ! अश्वशिरस् × नाम से प्रसिद्ध

× इस विषय में ऐसी कथा है कि-दधीचि ऋषि को प्रवर्ग्य का (यज्ञ में के महावीर नामक एक कर्म का) और ब्रह्मविद्या का उत्तम ज्ञान है ऐसा समझकर अश्विनीकुमार एकसमय उन के समीप आये और कहनेलगे कि-हे दधीचि ऋषे ! तुम हमें उन दोनों विद्याओं का उपदेश करो तब उन्होंने कहा कि–इससमय मैंने अपने नित्यकर्म का प्रारम्भ करा है सो तुम इससमय जाओ और फिर किसी समय आओ तब मैं तुम्हें उस विद्या का उपदेश करूँगा. यह सुनकर अश्विनीकुमारों के चलेजाने पर उन ऋषि के समीप आकर इन्द्र ने कहा कि–हे मुने ! अश्विनीकुमार वैद्य हैं इसकारण तुम उनको ब्रह्मविद्या का उपदेश मत करो, इस मेरे कहने को न मानकर यदि तुम उनको ब्रह्मविद्या का उपदेश करोगे तो मैं तुम्हारा शिर काटलूंगा. ऐसे कहकर इन्द्र तहां से चलागया तब फिर अश्विनीकुमारों ने आकर कहा कि–हे ऋषे ! अब हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश करो तब उन ऋषि ने इन्द्र का कहाहुआ

रतां व्यधात् ॥५२॥ दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यं मदात्मकम् ॥ विश्वरूपाय यत्प्रा-
दात्त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥५३॥ युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति ॥
ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ॥५४॥ येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेजउपबृंहितः ॥
तस्मिन् विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुधसंपदः ॥ भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति
च मत्परान् ॥५५॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥ ७॥
श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रमेवं समादिश्य भगवान्विश्वभावनः ॥ पश्यतामनिमे-
षाणां तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ १ ॥ तथाऽभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् ॥

शुद्ध ब्रह्मको दधीचि ऋषि जानते हैं; उसका उन्हों ने अश्विनीकुमारों को उपदेश दियाथा सो उन को उसके प्रभाव से जीवन्मुक्ति दशा प्राप्त हुई ॥ ५२ ॥ और तिसीप्रकार वह अथर्वणवेदी दधीचि ऋषि मेरे स्वरूप (-नारायण नामक) अभेद्य कवच को भी जानते हैं, क्योंकि—उन्होंने वह त्वष्टाको दिया, त्वष्टाने अपने विश्वरूप नामक पुत्रको समर्पण करा, वही उस विश्वरूप से तुमने धारण करा है, सो इसप्रकार की विद्याके प्रभाव से दृढ़ हुए उनके शरीर की तुम जाकर उन से याचना करलो ॥ ५३ ॥ हे देवेन्द्र ! वह धर्मज्ञ होने के कारण याचना करनेपर तुम्हें और विशेष करके अश्विनीकुमारोंको अपनी अस्थि देही देंगे, फिर उन अस्थियों का विश्वकर्मा का रचाहुआ एक वज्रनामवाला श्रेष्ठ शस्त्र प्रस्तुत (तयार) होगा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर मेरे तेजसे बढ़ाहुआ तू उस वज्रसे वृत्रासुर का शिर काटेगा तब उसका वध होगा, उसी समय फिर तुम्हें तेज, अस्त्र, शस्त्र और सकल सम्पत्तियें प्राप्त होजायँगी, इसकारण हे देवताओं ! बड़ेभारी शरीरवाला वह त्रिलोकी का भक्षक वृत्रासुरही हमारा वध करेगा, ऐसा तुम मन में सन्देह न करो, क्योंकि-मेरे विषैं लवलीन पुरुषों की हिंसा कोई भी नहीं करसक्ता, इसकारण तुम्हारा कल्याण होयगा ॥ ५५ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध में नवम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा-कि - हे राजन् परीक्षित ! इसप्रकार इन्द्रसे कहकर विश्वव्यापक भगवान् श्रीहरि, सकल देवताओं के देखतेहुए तहां ही अन्तर्धान होगए ॥ १ ॥ हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! इधर भगवान् के कहेहुए देवताओं ने उन अथर्वणवेदी महर्षि दधीचि के समीप जाकर याचना

सब वृत्तान्त कह सुनाया, उस को सुनकर वह कहनेलगे कि-हम पहिले ही तुम्हारे मस्तक को काटकर तुम्हारे धड़पर दूसरा घोड़े का मस्तक लगाकर तुम्हें जीवित करते हैं फिर उस शिर के द्वारा तुम हम से ब्रह्मविद्या कहो. यदि इन्द्र तुम्हारे (घोड़े के) शिर को काटडालेगा तो हम फिर तुम्हारा ही मस्तक तुम्हारे धड़ से जोड़कर जीवित करदेंगे और गुरुदक्षिणा देकर चलेजायँगे, यह सुनकर असत्य से भय माननेवाले उन ऋषि ने तिस रीति से (घोड़े के शिर से) ही उन अश्विनीकुमारों को प्रवर्ग्य और ब्रह्मविद्या का उपदेश करा इसकारण उस ब्रह्मविद्या का 'अश्वशिरस्' नाम पड़ा है ॥

मोदमान उवाचेदं महसन्निवं भारत ॥ २ ॥ अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणां ॥ संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥ ३ ॥ जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ ईहेप्सितः ॥ क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ किं नु तद्दुस्त्यजं ब्रह्मन्पुंसां भूतानुकंपिनां ॥ भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणां ॥ ५ ॥ ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसंकटं ॥ यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥ ६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः ॥ एष वः प्रियमात्मानं त्यजंतं संत्यजाम्यहं ॥ ७ ॥ योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ॥

करी तब वह आनन्दित हुए और उन देवताओं के मुखसे धर्म सुनने की इच्छा से, मानो उनकी याचना को टालते हैं ऐसा भाव दिखाते हुए कहने लगे कि-॥ २ ॥हेदेवताओं! तुम सतोगुणी हो इसकारण, इन्द्रियों के देवता होते हुए भी शरीर धारण करनेवाले प्राणियों को अन्तकाल में मूर्छा उत्पन्न करनेवाले असह्य दुःख प्राप्त होतेहैं उन को क्या तुम नहीं जानते हो ? ॥ ३ ॥ अब यदि कहो कि-उस दुःख को तो हम जानते हैं परन्तु हमारे द्वारा श्रीविष्णुभगवान् ही याचना कररहे हैं, तो हे देवताओं ! सुनो-जीवित रहने की इच्छा करनेवाले जीवों को इसलोक में जो शरीर अत्यन्त प्यारा है, यदि उसकीविष्णु भगवान् भी याचना करें तो कौन देने का उत्साह करसक्ता है ? कोई नहीं करसक्ता॥४॥ देवताओं ने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! जिन के कर्म सत्कीर्त्तिवाले पुरुषों के भी वर्णन करने योग्य हैं ऐसे, तुमसमान, प्राणीमात्रों के ऊपर दया करनेवाले महापुरुषों को त्याग करने को अशक्य कौन वस्तु है ? अर्थात् जिस वस्तु का चाहें त्याग करसक्ते हैं ॥ ५ ॥हेऋषे! केवल स्वार्थ में तत्पर रहनेवाले पुरुषों को दूसरों का सङ्कट ठीक२समझ में नहीं आता है यदि याचना करनेवाला समझेगा तो वह याचना ही नहीं करेगा और जिस से याचना करीजाय वह यदि दूसरे के सङ्कट को समझेगा और याचना करेहुए पदार्थ के देने को समर्थ होगा तो निषेध कदापि नहीं करेगा; इसकारण जिस प्रकार हम स्वार्थ में तत्पर होने के कारण तुम्हारे सङ्कट को नहीं जानते हैं तैसेही हमारी याचना को अमान्य करने वाले तुम भी हमारे सङ्कट को नहीं जानते हो ॥ ६ ॥ ऋषि ने कहा कि-हेदेवताओं ! तुम्हारे मुख से धर्म सुनने की इच्छा करके ही वास्तव में तुमसे निषेध किया है तिस से अब मैं, किसी न किसी समय मुझे छोड़कर जानेवाले, प्यारे भी शरीर का तुम्हारे निमित्त त्याग करता हूँ ॥ ७ ॥ हेनाथ ! जो पुरुष, प्राणियों के ऊपर दया करके, अपने अनित्य शरीर के द्वारा धर्म वा कीर्ति इन में से कुछ भी प्राप्त

ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥ ८ ॥ एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ॥ यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥ ९ ॥ अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः ॥ यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् ॥ परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयन् जहौ ॥ ११ ॥ यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग् ध्वस्तबंधनः ॥ आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतं ॥ १२ ॥ अथेंद्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ मुनेः शक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसाऽन्वितः ॥ १३ ॥ वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेंद्रोपर्यशोभत ॥ स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥ १४ ॥ वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथपैः ॥ पर्यस्तमोजसा राजन् क्रुद्धो रुद्र इवांतकं ॥ १५ ॥ ततः सुराणामसुरै रणः परमदारुणः ॥ त्रेतामुखे नर्मदायामभवत्प्रथमे युगे ॥ १६ ॥

करने की इच्छा नहीं करता है उसका वृक्ष आदिस्थावर भी खेद करते हैं अर्थात् वह उन स्थावरों की अपेक्षा भी जड़ है ॥ ८ ॥ इसकारण प्राणियों को दुःख प्राप्त होनेपर जिस को आप भी दुःख होता है और प्राणियों को हर्ष होनेपर जिस को हर्ष होता है उस पुरुष का धर्म ही अक्षय धर्म है, क्योंकि—सत्कीर्तिवाले पुरुषों ने उसही धर्म का सेवन करा है ॥ ९ ॥ अरे ! जो तिलमात्र भी अपने कार्य में नहीं आते, जिन को काक श्वान खाडालेंगे और जिन का एकक्षण को भी भरोसा नहीं है ऐसे धन, पुत्रादिक बान्धव और शरीर के द्वारा यदि मरणधर्मा प्राणी किसी का भी उपकार न करे तो बड़ी दीनता और दुःख की वार्त्ता है ! ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इसप्रकार निश्चय करनेवाले अथर्वणवेदी दधीचि ऋषिने, परब्रह्म भगवान् के विषें अपने जीव को मिलाकर शरीर को त्यागदिया ॥ ११ ॥ जिन्हों ने, इन्द्रियें, प्राण, मन और बुद्धि को वश में करा है और जिन के बन्धन टूटगए हैं ऐसे उन तत्त्वदर्शी मुनि ने, उत्तम समाधि लगाई, उससमय उन्होंने यह भी नहीं जाना कि—मेरा शरीरपात होगया ॥ १२ ॥ तदनन्तर भगवान् के तेज से युक्त होने के कारण जो महाबली हुए हैं, जिन के चारोंओर सकल देवगण हैं और मुनिगण जिनकी स्तुति कररहे हैं ऐसे वह इन्द्र, विश्वकर्मा के दधीचि ऋषि की अस्थियों करके रचेहुए वज्र को धारण करके त्रिलोकी को हर्षित करतेहुए ऐरावत हस्ती के ऊपर चढ़कर शोभा को प्राप्तहुए ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ और हे राजन् ! जैसे प्रलयकाल में क्रुद्धहुए रुद्र यम का वध करने के निमित्त उस के ऊपर को झपटते हैं तैसे ही असुर सेनापतियों से घिरेहुए वृत्रासुरका वध करने के निमित्त वह इन्द्र वेग से उसके ऊपर को दौड़े ॥ १५ ॥ तदनन्तर वैवस्वत मन्वन्तरके प्रारम्भ में पहिले ही प्रारम्भ के चार युगों में से त्रेता युग के प्रारम्भ में नर्मदाके तटपर

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः ॥ मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वमायया ॥ नामृष्यन्नसुरा राजन्मृधे वृत्रपुरःसराः ॥ १८ ॥ नमुचिः शंबरोऽनर्वा द्विमूर्धा ऋषभोऽम्बरः ॥ हयग्रीवः शंकुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥ पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः ॥ दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥ २० ॥ सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः ॥ प्रतिषिध्येन्द्रसेनाग्रं मृत्योरपि दुरासदम् ॥ ॥ २१ ॥ अभ्यर्दयन्नसंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः ॥ गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥ २२ ॥ शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः ॥ सर्वतोऽवाकिरञ्छस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥ २३ ॥ न तेऽदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः ॥ पुङ्खानुपुङ्खपतितैर्ज्योतींषीव नभोघनैः ॥ २४ ॥ न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान् ॥ छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥ २५ ॥ अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृंगद्रुमोपलैः ॥ अभ्यवर्षन्सुरबलं चिच्छि-

देवताओं का असुरों के साथ अतिभयानक संग्राम हुआ ॥ १६ ॥ इसमें हे राजन्! ग्यारह रुद्र, आठ वसु, वारह आदित्य, अश्विनीकुमार, अर्यमा आदि पितर, अग्नि, मरुत्गण, ऋभुनामवाले और साध्य नामवाले देवता, तथा विश्वेदेवा इन सबों से और अपनी मायासे शोभायमान, वज्रधारी देवराज इन्द्रको युद्धमें देखकर वृत्रासुर आदि दैत्यों से उनकी उन्नति सही नहीं गई ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसकारण नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋषभ, अम्बर, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख, पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति और उत्कल आदि सहस्रों दैत्य, दानव, यक्ष और राक्षस, तथा सुमाली और माली जिन में मुख्य हैं तथा जो सुवर्ण के आभूषण पहिनरहे हैं ऐसा वृत्रासुरके दुर्मद और निर्भय दैत्य, प्रत्यक्ष मृत्यु को भी असह्य ऐसे इन्द्रकी सेना के अग्रगामियों को सिंहकी समान गर्जना से हटाकर उनको पीड़ा देने लगे और गदा, परिघ, वाण, प्रास, मुद्गर, तोमर, शूल, परशु, खड्ग, शतघ्नी और भुशुण्डी आदि शास्त्रों से वह असुर श्रेष्ठ देवताओं के चारों ओर वर्षा करनेलगे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे राजन्! एक वाणके मूलसे दूसरे का मूल (जड़) मिलाकर छोड़ेहुए वाणों के जालों से चारों ओर से ढकेहुए वह देवता आकाश में मेघमण्डलों से ढकेहुए तारागण की समान दीखे नहीं २४ हे राजन्! उन शस्त्र और अस्त्रों की वर्षा के समूहों को, शीघ्र अस्त्र छोड़नेवाले देवताओं ने अन्तरिक्ष में ही सहस्रों स्थानमें खण्ड२करदिया इसकारण आकर देवताओं के योधाओं के शरीरों में नहीं लगे ॥ २५ ॥ तदनन्तर जिनके सकल शास्त्रों के समूह नष्ट होगए हैं ऐसे वह असुर देवसेना के ऊपर पर्वत के शिखर, वृक्ष और पत्थरों की वर्षा करने लगे

दुस्तांश्च पूर्ववत् ॥ २६ ॥ तानक्षतान् स्वस्तिमतो निशाम्य शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः ॥ द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृंगैरविक्षतांस्तत्रसुरेंद्रसैनिकान् ॥ २७ ॥ सर्वे प्रयासा अभवन्विमोघाः कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः ॥ कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रूक्षवाचः ॥ २८ ॥ ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हरावभक्ता हतयुद्धदर्पाः ॥ पलायनायाजिमुखे विसृज्य पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः ॥ २९ ॥ वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान्मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् ॥ पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥ ३० ॥ कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विनामुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः ॥ हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्मयानर्वन् शंबर मे शृणुध्वम् ॥ ३१ ॥ जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता ॥ लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं मृत्युं वरं को न वृणीत युक्तम् ॥ ३२ ॥ द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ यद्ब्रह्मसंधा-

परन्तु उन पर्वतोंके शिखर आदिकों के भी पहिले की समानही देवताओं ने टुकड़े २कर दिये ॥ २६ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर वृत्रासुर जिनका स्वामी है ऐसे वह असुर, अपने शस्त्र अस्त्रों के समूहों करके इन्द्र की सेना में के पुरुषों के कोई घाव पर्यन्त नहीं हुआ और वह आनन्द हैं तथा वृक्ष,पत्थर एवं अनेकों प्रकार के पर्वतों के शिखरों से भी देवताओं की कुछ हानि नहीं हुई ऐसा देखकर भयभीत हुए ॥ २७ ॥ जैसे कृष्णभगवान् जिन के अनुकूल हैं ऐसे सत्पुरुषों में दुर्जनों के कहेहुए निन्दा के कठोरवाक्य व्यर्थ होते हैं तैसेही कृष्ण परमात्मा जिनके अनुकूलहैं ऐसे देवगणों के विषैं दैत्यों के वारम्वार उन के नाश के विषय में करेहुए सकल उद्योग व्यर्थ हुए ॥ २८ ॥तदनन्तर श्रीहरिकेभक्त न होनेके कारण जिनके धीरजको शत्रुओंने हरलियाहै और युद्ध करनेके विषयका जिनका गर्व नष्ट होगया है ऐसे उन जगत्प्रसिद्ध असुरों ने, अपने उद्योगों को व्यर्थ होताहुआ देखकर युद्ध के प्रारम्भ में अपने अधिपतियों को त्यागकर भागने का मन में विचार किया और फिर भागनेलगे ॥ २९ ॥ उससमय भागतेहुए अपने अनुयायी असुरों को और भयसे भागतीहुई तथा अस्तव्यस्तहुई उस सेनाको देखकर वह पुरुषश्रेष्ठ महापराक्रमी धैर्यवान् वृत्रासुर हँसकर धैर्यवान् पुरुषों को मनोहर प्रतीत होनेवाला इसप्रकार समय के योग्य यह कहनेलगा, हेविप्रचित्ते ! हेनमुचे ! हेपुलोमन् ! हेमय ! हेअर्नवन् ! और हेशम्बर तुम मेरे कहने को सुनो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अरे शूरों ! जो पुरुष उत्पन्न हुआ है उस को सब स्थान में ही निःसन्देह मृत्यु आवेगी ही, क्योंकि- इस संसार में ईश्वर ने मृत्यु को दूर करने का कोई उपाय रचाही नहीं है इसकारण यदि इस शरीर से अनायास में ही इस लोक में यश और परलोक में स्वर्ग मिलसके तो ऐसी प्राप्तहुई योग्य मृत्यु को कौन सा पुरुष स्वीकार नहीं करेगा ? सब ही स्वीकार करैं गे ॥ ॥ ३२ क्योंकि—योगमार्ग में प्रवृत्त

रणेया जितासुः ॥ कलेवरं योगरतो विजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽभिवृत्तः ॥ ३३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः ॥ नैवागृह्णन् भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥ विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः ॥ कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥ दृष्ट्वाऽतप्यत संक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः ॥ तान्निवार्यौजसा राजन्निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥ किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ॥ नहि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥ ४ ॥ यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ॥ अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद्ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥ ५ ॥ एवं सुरगणान् क्रुद्धो भीषयन्वपुषा रिपून् ॥ व्यनदत्सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥ ६ ॥ तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन

होकर और इन्द्रियों को वश में करके ब्रह्म का चिन्तवन करतेहुए शरीर का त्याग करना और रणभूमि में अग्रणी बनकर पीछे को न हटकर शरीर त्यागना, यह दोप्रकार की मृत्यु इसलोक में शास्त्र ने श्रेष्ठ मानी है और वास्तव में यह दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध में दशम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हेराजन् ! इसप्रकार उस दैत्यराज वृत्रासुर के धर्म का वर्णन करते हुए भी, भयभीत होने के कारण अन्तःकरण व्याकुल होकर भागिहुए उन दैत्यों ने अपने स्वामी का कथन नहीं सुना ॥ १ ॥ हे राजन् ! समय के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले देवताओं की भगाई वह दैत्यों की सेना अनाथ की समान अस्तव्यस्त होरही है ऐसा देखकर देवताओं के पराक्रम को न सहनेवाला वह इन्द्र का शत्रु, असुरों में श्रेष्ठ वृत्रासुर अत्यन्त क्रुद्ध होकर सन्ताप को प्राप्त हुआ और बलात्कार से उन देवताओं को हटाकर ललकारता हुआ इसप्रकार कहनेलगा कि– ॥ २ ॥ ३ ॥ अहो माता के उदर में से विष्ठा की समान बाहर निकले हुए और संग्राम में से भागेहुए दैत्यों के पीछे भागकर ताडना करनेवाले तुम्हें कौनसा फल मिलसक्ता है ? यश वा धर्म इन दोनों में से तुम्हें एकभी नहीं मिलेगा, क्योंकि–अपनेको शूर माननेवाले पुरुषों को, भयभीत हुए पुरुषों का वध करना इसलोकमें प्रशंसाके योग्य नही होता है और परलोकमें स्वर्ग की प्राप्ति भी नहीं कराता है ॥ ४ ॥ इसकारण अरे क्षुद्रों! यदि तुम्हें संग्राम की इच्छा हो वा तुम्हारे हृदयमें धीरज हो औ विषय सुख की इच्छा न हो तो एक क्षणभर को मेरे आगे आकर खडे होजाओ ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कहकर शरीर से अपने शत्रु देवताओं को भयभीत करनेवाले उस महाबली वृत्रासुर ने बडी भारी गर्जना करी उस समय सब प्राणी निश्चेष्ट (बेहोश से) होगए ॥ ६ ॥ और उस वृत्रासुर की गर्जना से तथा उसके दण्ड ठोकने के शब्द से सकल

वै ॥ निपेतुर्मूर्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥ ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं निमीलिताक्षं रणरंगदुर्मदः ॥ गां कंपयन्नुद्यतशूल ओजसा नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥ ८ ॥ विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदां ॥ चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥९॥ स इंद्रशत्रुः कुपितो भृशं तया महेंद्रवाहं गदयोग्रविक्रमः ॥ जघान कुंभस्थल उन्नदन्मृधे तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नृप ॥ १० ॥ ऐरावतो वृत्रगदाऽभिमृष्टो विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ॥ अपासरद्भिन्नमुखः सहेंद्रो वमन्नसृक्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥ ११ ॥ न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुंक्त भूयः स गदां महात्मा ॥ इन्द्रोऽमृतस्यंदिकराभिमर्शवीतव्यथः क्षतवाहोऽवतस्थे ॥ १२ ॥ स तं नृपेंद्राहवकाम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ॥ स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः शोकेन मोहेन हसन् जगाद ॥ १३ ॥ वृत्र उवाच ॥ दिष्ट्या भ-

देवता, वज्र से ताड़ना करेहुए से मूर्छित होकर भूमिपर गिरपड़े ॥ ७ ॥ उससमय जैसे मदोन्मत्त हाथी नलों के वन को कुचलता है तैसे ही रणभूमि में मदोन्मत्तहुआ वृत्रासुर हाथ में त्रिशूल धारण करके अपनी शक्ति से पृथ्वी को कम्पायमान करताहुआ, भयभीत हुई, नेत्र मूँदकर पड़ीहुई देवसेना को चरणों से कुचलनेलगा ॥ ८ ॥ तदनन्तर देवसेना के कुचलने को न सहनेवाले इन्द्र ने उस वृत्रासुर को देखकर सन्मुख आतेहुए उस अपने शत्रु के ऊपर एक बड़ीभारी गदा फेंकी, वह अति दुःसह गदा मेरे ऊपर को आरही है ऐसा जानकर उस वृत्रासुर ने वामहाथ से सहज में ही पकड़ली ॥ ९ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर अत्यन्त क्रुद्धहुए उस महापराक्रमी इन्द्रशत्रु वृत्रासुर ने, युद्ध में गर्जना करतेहुए उस गदा से ही इन्द्र के वाहन ऐरावत के गण्डस्थलपर प्रहार किया, उस के इस कार्य की सबों ने प्रशंसा करी ॥ १० ॥ इसप्रकार वृत्रासुर की गदा से ताड़ित हुआ ऐरावत, वज्र से ताड़ित हुए पर्वत की समान, अपने सकल अङ्ग चूर्ण २ होजानेपर चक्कर खाकर मुख में से रुधिर की वमन करताहुआ अत्यन्त पीड़ित होकर इन्द्र को लियेहुए उससमय अट्ठाईस हाथ पीछे को हटगया ॥ ११ ॥ उससमय वाहन के मूर्छित होजाने के कारण खिन्नहुए इन्द्र के ऊपर उस महात्मा वृत्रासुर ने फिर गदा का प्रहार नहीं करा और उससमय अमृत टपकानेवाले अपने हाथ के स्पर्श से घायल हुए ऐरावत वाहन की पीड़ा को दूर करके इन्द्र फिर युद्ध करने को खड़ाहुआ ॥ १२ ॥ हे राजेन्द्र ! वज्र धारण करके युद्ध की इच्छा से खड़ेहुए उस भ्राता का वध करनेवाले (विश्वरूप को मारनेवाले) शत्रु को देखकर और भ्राता का मारनारूप उस के क्रूरकर्म को स्मरण करके शोक से सन्तप्तहुआ वह वृत्रासुर, मोह से व्याप्त होकर हँसताहुआ इन्द्र से कहनेलगा ॥ १३ ॥

द्यान्मे समवस्थितो रिपुर्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ॥ दिष्ट्याऽनृणोऽद्याहमसत्तम त्वया मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाचिरात् ॥ १४ ॥ यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजातेर्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ॥ विश्रभ्य खड्गेन शिरांस्यवृश्चत्पशोरिवाऽकरुणः स्वर्गकामः ॥ १५ ॥ ह्रीश्रीदयाकीर्त्तिभिरुज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्ह्यम् ॥ कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेहमस्पृष्टवह्निं समदन्ति गृध्राः ॥ ॥ १६ ॥ अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा यदुद्यतास्त्राः प्रहरन्ति मह्यम् ॥ तैर्भूतनाथान्सगणान्निशातत्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥ १७ ॥ अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह ॥ तत्रानृणो भूतबलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥ १८ ॥ सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ॥ मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रं स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥ १९ ॥ नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ॥ ते-

वृत्रासुर ने कहा कि—अरे अतिदुष्ट ! तू जो ब्रह्महत्यारा, गुरुहत्यारा और मेरे भ्राता का मारनेवाला शत्रु, आज मेरे सामने आकर खड़ाहुआ है यह बड़े आनन्द की वार्त्ता है और आज मैं अपने त्रिशूल से तेरे पाषाणसमान हृदय को विदीर्ण करके तत्काल अपने भ्राताके ऋण से छूटूँगा, यहभी आनन्द की वार्त्ता है ॥ १४ ॥ अरे ! स्वर्गपाने की इच्छा करनेवाला निर्दयी याज्ञिक (यज्ञ करनेवाला) पुरुष,जैसे पशुका शिरकाटता है तैसेही तैने आत्मज्ञानी, ब्राह्मण, अपने गुरु, निष्पाप और यथार्थ दीक्षा धारण करनेवाले मेरे बड़े भ्राता का विश्वासघात करके शिर काटा है इसकारण लज्जा, सम्पदा, दया और कीर्त्ति करके त्यागेहुए तथा अपने उस कर्म के कारण पुरुषभक्षक राक्षसों करके भी निन्दा करेहुए तेरा शरीर मेरे त्रिशूलसे विदीर्ण होगा और उसके दुःख से मरण को प्राप्त होकर तुझे अग्निका भी स्पर्श नहीं मिलेगा और तुझे गिज्ज पक्षी यथेष्ट भक्षणकरेंगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ अरे दुष्ट ! तुझ घातकी की आज्ञानुसार वर्त्ताव करनेवाले जो कोई और अज्ञानी देवता, यहां अस्त्र धारण करके मेरे ऊपर प्रहार करेंगे, उनकी ग्रीवा को अपने तीखी धारवाले त्रिशूल से तोड़कर उनके द्वारा गणों सहित भैरव आदि भूतनाथों का यजन (पूजन) करूँगा ॥ १७ ॥ अथवा हे वीर इन्द्र !इस संग्राम में मेरी सेनाका नाश करके कदाचित् तूही यदि अपने वज्रसे मेरा शिर काटलेगा तो मैं कर्मबन्धन से छूटकर और शरीरके द्वारा भूतबलि समर्पण करके धैर्यवान् सत्पुरुषों के पदको प्राप्त होऊँगा ॥ १८ ॥ हे सुरेश्वर ! मैं तेरा शत्रु तेरे सन्मुख खड़ाहुआ हूँ फिर तू अपने अमोघ (खाली न जानेवाले) वज्रको मेरे ऊपर क्यों नहीं छोड़ता है ? अरे ! जैसे कृपणपुरुष से करीहुई कार्य होने की याचना व्यर्थ होती है तैसे ही और पहिले व्यर्थ हुई गदा की समान अब वज्रभी निष्फल होयगा ऐसा तू मनमें सन्देह न कर॥ १९ ॥हे इन्द्र!वास्तव

नैवं शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो यतो हरिर्विजयः श्रीगुणास्ततः ॥ २० ॥ अहं समाधाय मनो यथाह संकर्षणस्तच्चरणारविंदे ॥ त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥ २१ ॥ पुंसां किलैकांतधियां स्वकानां याः संपदो दिवि भूमौ रसायां ॥ न राति यद्द्वेष उद्वेग आधिर्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः ॥ २२ ॥ त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ॥ ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिंचनगोचरोऽन्यैः ॥ २३ ॥ अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः ॥ मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥ २४ न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाऽधिपत्यं ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समंजस त्वा विरहय्य कांक्षे ॥ २५ ॥ अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः

में यह तेरा वज्र श्रीहरि के तेज और दधीचि ऋषि के तपसे तेजित (तीक्ष्ण) होरहा है, इसकारण विष्णुभगवान् का प्रेरणा कराहुआ तू, उस ही वज्र से मुझ शत्रु का वध कर, तू अपनी विजय होने में सन्देह न कर, क्योंकि–जिधर श्रीहरि होते हैं उधर ही विजय उधर ही लक्ष्मी और उधर ही दया आदि सब गुण होते हैं ॥ २० ॥ वधकरने से मुझे पीड़ा होगी, ऐसा संशय भी तू मन में न कर,क्योंकि–मैं अपने स्वामी शङ्कर्षण भगवान् के कथन के अनुसार उन के चरण कमल में अपना मन स्थिर करके तेरे वज्र से विषयभोगरूप फाँसी के कटजाने पर शरीर को त्यागकर योगियों को प्राप्त होनेवाली मोक्षरूप गति को प्राप्त होऊँगा ॥ २१ ॥ अपने में जिनकी बुद्धि निश्चितहुई है ऐसे अपने भक्त जनों को परमेश्वर स्वर्ग में, भूतलपर और पाताल में जो सम्पत्तियें हैं वह निःसन्देह नहीं देते हैं, क्योंकि–उन से वैर, घवराहट, मन को दुःख और श्रम उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥ हे-इन्द्र ! हमारे स्वामी शङ्कर्षण, अपने भक्तों के धर्म, अर्थ और काम के विषय में होनेवाली कठिनाइयों का नाश करते हैं; उन कठिनाइयों का नाश होने से ही अनन्यभक्त को प्राप्त होनेवाले तथा अन्य पुरुषों को दुर्लभ भगवान् का प्रसाद का अनुमान कियाजाता है,और धर्म, अर्थ तथा काम के विषय में तुम्हारा प्रयत्न दूर नहींहुआ है इसकारण तुम्हारे ऊपर भगवान् का प्रसाद (अनुग्रह) नहींहुआहै इसकारण स्वर्ग आदि सम्पत्तियें तुम्हे प्राप्त होंगी ॥२३॥ इसप्रकार इन्द्र से अपना अभिप्राय कहकर वृत्रासुर भगवान् की प्रार्थना करता है कि- हेहरे ! तुम्हारा चरण जिनका मुख्य आश्रयहै मैं फिरभी उन दासोंका भी दास होनेकी इच्छा करता हूँ , मेरा मन तुम प्राणनाथ के गुणों का स्मरण करे,मेरी वाणीभी तुम्हाराही कीर्त्तनकरे और मेरा शरीरभी तुम्हारीही सेवारूप कर्मकरे।२४। दासभावसे तुझे कौन लाभहोगा? मैं तुझे बड़े२ फल देताहूँ ऐसा कहो तो हे सर्वसौभाग्यनिधे ! मैं तुम्हें छोड़कर ध्रुवपद, ब्रह्मपद,सार्वभौमपद, पाताल का आधिपत्य, योगसिद्धि और मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता हूँ ॥ २५ ॥

क्षुधार्ताः ॥ प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वां ॥ २६ ॥ ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ॥ त्वन्मायात्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ २७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः ॥ शूलं प्रगृह्याभ्यपतत्सुरेन्द्रं यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥ १ ॥ ततो युगान्ताग्निकठोरजिह्वमाविध्य शूलं तरसासुरेन्द्रः ॥ क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरो हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥ २ ॥ ख आपतत्तद्विचलद्ग्रहोल्कवन्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविक्लवः ॥ वज्रेण वज्री शतपर्वणाऽच्छिनद्भुजं च तस्योरगराजभोगम् ॥ ३ ॥ छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रं ॥ हनौ तताडेन्द्रमथामरेभं वज्रं च हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥ ४ ॥ वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत्सुरासुराश्चा-

हे कमलनयन ! जैसे विना पंख के पक्षियों के बच्चे, उलूक आदि पक्षियों से पीड़ित होने पर अपनी माताको देखने की इच्छा करते हैं वा डोरी से बांधेहुए छोटे २ बछड़े जैसे स्तन पीने की इच्छा करते हैं अथवा कामदेव से खिन्नहुई स्त्री जैसे दूरदेश में गएहुएपति को देखनेकी इच्छा करती है तैसे ही तीनप्रकारके तापों से पीड़ित हुआ,कर्मों से बँधाहुआ और काम आदि से खिन्नहुआ मेरा मन तुम्हे देखने की इच्छा करता है ॥ २६ ॥ हेनाथ ! अपने कर्मों के द्वारा संसार चक्र में भ्रमनेवाले मेरी, तुम श्रेष्ठ कीर्ति भगवान् के भक्तों के विषैं मित्रता हो; और तुम्हारी मायासे पुत्र, स्त्री और घर आदि के विषैं मैं आसक्त चित्त हूँ ही इसकारण अब फिर उन में मेरी आसक्ति नहो ॥२७॥ इतिषष्ठस्कन्ध में एकादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन् परीक्षित ! इस प्रकार विजयसे मृत्युही श्रेष्ठ है ऐसा माननेवाला और युद्ध में शरीर त्यागने की इच्छा करनेवाला वह वृत्रासुर,जैसे कैटभनामवाला दैत्य,प्रलय के जलमें अग्नि की समानकठोर नोकोंवाले त्रिशूल को वेग से घर २घुमाकर इन्द्र को मारनेके निमित्त फेंका और गर्जकर ' यह पापी मरा ' ऐसा उस वीर ने क्रोध में भरकर कहा ॥ २ ॥ उससमय ग्रह और उल्काओं की समान जिस को देखना कठिन था ऐसा वह त्रिशूल घूमता हुआ आकाशमें जारहा है ऐसा देखकर तिस निर्भय वज्रधारी इन्द्रने, सैंकड़ों पर्ववाले उस त्रिशूल का और उस वृत्रासुर के वासुकि सर्प की समान भुजदण्ड का छेदन करा ॥३॥ तदनन्तर जिस की एक भुजा कटगई है ऐसे क्रोध में भरेहुए वृत्रासुर ने वज्रधारण करनेवाले इन्द्रके समीप जाकर अपना परिघ नामवाला शस्त्र इन्द्रकी ठोडी में और ऐरावत हाथी के मारा, उस प्रहार के साथ ही इन्द्रके हाथ में से वज्र नीचे गिरपड़ा ॥ ४ ॥ उससमय देवता,

रणसिद्धसङ्घाः ॥ अपूजयंस्तत्पुरुहूतसङ्कटं निरीक्ष्य हाहेति विचुक्रुशुर्भृशं ॥ ५ ॥ इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जितश्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ॥ तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥ ६ ॥ युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां जयः सदैकत्र न वै परात्मनां ॥ विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥ ७ ॥ लोकाः सपाला यस्येमे श्वसंति विवशा वशे ॥ द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणं ॥ ८ ॥ ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च ॥ तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडं ॥ ९ ॥ यथा दारुमयी नारी यथा यंत्रमयो मृगः ॥ एवं भूतानि मघवन्नीशतंत्राणि विद्धि भोः ॥ १० ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेंद्रियाशयाः ॥ शक्नुवंत्यस्य सर्गादौ न विना यदनुग्रहात् ॥ ११ ॥ अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरं ॥ भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः

असुर और सिद्ध चारणों के समूह, उस वृत्रासुर के परम अद्भुत कार्य की प्रशंसा करने लगे और इन्द्रके उस सङ्कट को देखकर हाहाकार करते हुए बड़ा विलाप करनेलगे ॥ ५ ॥ तदनन्तर शत्रुके समीप में अपने हाथ में से गिराहुआ वज्र जब इन्द्रने लज्जित होकर उठाया नहीं तब फिरभी वृत्रासुर उनसे कहने लगा कि—हे इन्द्र ! यह समय खेद करने का नहीं है, अब तू वज्रको धारण करके अपने शत्रुका (मुझ वृत्रासुर का) वधकर ६ क्योंकि—उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का अधिपति जो सर्वज्ञ, अनादि, नित्य और अन्तर्यामी परमात्मा को छोडकर, युद्धकी इच्छा से शस्त्र धारण करनेवाले और शरीरको ही आत्मा माननेवाले पुरुषों को सदाजय कभी भी प्राप्त नहीं होती है परन्तु कहीं जय प्राप्त होती है और कहीं नहीं, ऐसा होता है ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर जीव को पराधीनताकैसे है यह वर्णन करने के अभिप्राय से कहते हैं कि जैसे जालमें बँधेहुए पक्षी वशीभूत होते हैं तैसेही लोकपालोंसहित यह चौदहलोक जिसके वशमेंहोनेके कारण स्वयं विवश होतेहुए चेष्टा करते हैं, वही सबको चलानेवाले भगवान् जय विजय आदि में मुख्य कारण हैं ८ हे इन्द्र ! इन्द्रियों की शक्ति, मनकी शक्ति, शरीर की शक्ति, प्राण, जीवन और मरणके रूपसे स्थित वह भगवान् ही सबों के कारण हैं, यह न जानकर लोक मोहवश जडशरीर को ही कारण समझते हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! जैसे काठ की स्त्री और यन्त्र का हरिण यह पराधीन होते हैं तैसे ही सकल प्राणियों को ईश्वर के अधीन समझ ॥ १० ॥ परन्तु अहो ! अपनी उत्पत्ति के कारणरूप प्रधानपुरुष आदिकों के वश में प्राणी है ऐसा कहना योग्य प्रतीत होता है, इस शङ्का के उत्तर में कहते हैं कि—हेइन्द्र ! पुरुष, प्रकृति महत्तत्त्व, अहङ्कार पञ्चमहाभूत, इन्द्रियें और मन ईश्वर के अनुग्रह के विना इस विश्व की उत्पत्ति करने को समर्थ नहीं होते हैं ॥ ११ ॥ हेइन्द्र ! ऊपर कहे अनुसार ईश्वर ही

स्वयं ॥ १२ ॥ आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः ॥ भवन्त्येव हि तत्काले यथोऽनिच्छोर्विपर्ययाः ॥ १३ ॥ तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि ॥ समः स्यात्सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥ १४ ॥ सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बद्ध्यते ॥ १५ ॥ पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे ॥ घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥१६॥ प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः ॥ अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत् ॥ गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥ १८ ॥ अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ॥ भक्तः सर्वात्मना-

स्वतंत्र और सब का नियन्ता है, यह न जाननेवाला पुरुष, पराधीनजीव कोही स्वतन्त्र मानता है; हेइन्द्र ! स्वयं ईश्वर ही प्राणियों के द्वारा प्राणियों को उत्पन्न करता है और प्राणियों के द्वारा ही प्राणियों का संहार करता है ॥ १२ ॥ हेइन्द्र ! पराजय के समय पुरुष की इच्छा न होनेपर भी जैसे उस को अकीर्ति,ऐश्वर्य की हानि और अलक्ष्मी आदि प्राप्त होती हैं तैसे ही विजय के समय आयु, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य तथा और भी सम्पत्ति यें उन सब ही पुरुषों को प्राप्त होती हैं ॥ १३ ॥ सो इसप्रकार सब ईश्वर के ही अधीन है, तिससे पुरुष अपकीर्ति अथवा यश, जय वा पराजय, सुख वा दुःख और तैसे ही मरण वा जीवन के विषय में हर्ष वा विषाद न मानकर समदृष्टि रहे ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! समदृष्टि होने का उपाय यह हैकि--सत्व,रज और तम यह प्रकृति के गुण हैं आत्माके नहीं हैं, इसकारण इन गुणों के कार्यरूप देह आदि के विषें मैं साक्षीमात्र हूँ ऐसा जो जानता है वह हर्ष आदि से लिप्तनहीं होता है ॥ १५ ॥ हेइन्द्र मेरे शस्त्र और भुजा का छेदन होजाने के कारण यद्यपि तूने मेरा पराजय करा है तथापि तेरे प्राणों को हरने की इच्छा से देखले ! मैं युद्ध में यथाशक्ति उद्योग करही रहा हूँ ॥ १६ ॥ इस संग्रामरूप जुएमें प्राण ही पण (दाँव लगाने की वस्तु) है, वाण ही फाँसे हैं और वाहन ही इधर उधर को फिराने की गुट्ट हैं तथा इस रणरूप द्यूत में वाणरूप फाँसे फैंकने से पहिले अमुक की जय होगी वा अमुक की पराजय होगी यह समझ में नहीं आता है ॥ १७॥ श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि -हेराजन् ! परीक्षित ! इसप्रकार वृत्रासुर का निष्कपट भाषण सुनकर इन्द्र ने उस की प्रशंसा करी और हाथ में वज्रलेकर, विस्मयरहित होताहुआ हँसता हँसता उस वृत्रासुर से कहनेलगा ॥ १८ ॥ इन्द्र ने कहा।कि--अरे ! दानव ! तू जन्म से अधम होकर भी कृतार्थ है; यह बड़े आश्चर्य की वार्त्ता है और ऐसे सङ्कटके समय में भी जो तेरी इसप्रकार की बुद्धि है इस कारण पहिले तूने अनन्यभाव से अत्यन्त ही मन को लगाकर जगत्

स्मानं सुहृदं जगदीश्वरं ॥ १९ ॥ भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ॥ यद्विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥ २० ॥ खल्विदं महदाश्चर्यं यद्रजःप्रकृतेस्तव ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥ २१ ॥ यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ॥ विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणावन्योऽन्यं धर्मजिज्ञासया नृप ॥ युयुधाते महावीर्याविन्द्रवृत्रौ युधां पती ॥ २३ ॥ आविध्य परिघं वृत्रः कार्ष्णायसमरिंदमः ॥ इन्द्राय प्राहिणोद् घोरं वामहस्तेन मारिष ॥ २४ ॥ स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् ॥ चिच्छेद युगपद्देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥ २५ ॥ दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः ॥ छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खात् भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥ २६ ॥ कृत्वाऽधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् ॥ नभोगम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥ २७ ॥ दंष्ट्राभिः-

---

के मित्र, जगत् के ईश्वर परमात्मा की सेवा करी है ॥ १९ ॥ और तैसे ही तू जो अपने असुरभाव को त्यागकर सत्पुरुषों के स्वभाव को प्राप्तहुआ है सो वास्तव में जनमोहिनी विष्णुभगवान् की माया के पार होगया है ॥ २० ॥ अहा हा ! अरे वृत्रासुर ! स्वभाव से रजोगुणी होकर भी सतोगुणी वासुदेवभगवान् के विषैं तेरी बुद्धि जमी है यह वास्तव में आश्चर्य है ॥ २१ ॥ और इसकारण ही स्वर्ग आदि सुखों की तुझे इच्छा नहीं है, यह सबप्रकार योग्य ही है, क्योंकि–तेरी मोक्षपति भगवान् श्रीहरि के विषैं भक्ति हुई है, उस आनन्दरूप अमृत के समुद्र में क्रीड़ा करनेवाले तुझे, गढ़हे में के जल की समान अतिक्षुद्र स्वर्ग आदि से क्या करना है ? कुछ नहीं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् परीक्षित ! इसप्रकार धर्म को जानने की इच्छा से परस्पर वार्त्तालाप करनेवाले, संग्राम में मुख्य और परम पराक्रमी वह इन्द्र और वृत्रासुर एक दूसरे से परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ २३ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! शत्रु का दमन करनेवाले वृत्रासुर ने, अपने अतिभयङ्कर लोहे के परिघ को बाएँ हाथ से घुमाकर इन्द्र के ऊपर फेंका ॥ २४ ॥ उससमय देवराज ने, वह वृत्रासुर का परिघ और वह शेषरहाहुआ हाथी की सूँड की समान हाथ, एकसाथ अपने सैंकड़ों पर्ववाले वज्र से तोड़डाला ॥ २५ ॥ हे राजन् ! उससमय इन्द्र ने, वज्र से ताड़ना करने के कारण पंख कटकर आकाश में से नीचे गिरेहुए पर्वत की समान जड़ से काटकर डालेहुए भुजा की जल में से निकलनेवाले रुधिर के प्रवाह से युक्त वह वृत्रासुर शोभायमान हुआ ॥ २६ ॥ तदनन्तर नीचे का ओठ जिसने भूमि को लगाकर ऊपर का ओठ स्वर्ग को लगाया है,जो अपने आकाश की समान गम्भीर मुख से, सर्प की समान भयङ्कर जिव्हा से और मृत्यु की समान उग्र दाढ़ों से

कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् ॥ अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥ २८ ॥ गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन्महीम् ॥ जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम् ॥ २९ ॥ महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् । वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ॥ हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥ ३० ॥ निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः ॥ महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥ ३१ ॥ भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद्विभुः ॥ उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृंगमिवौजसा ॥ ३२ ॥ वज्रस्तु तत्कंधरमाशुवेगः कृन्तन् समंतात्परिवर्तमानः ॥ न्यपातयत्तावदहर्गणेन यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ॥ ३३ ॥ तदा च खे दुन्दुभयो विनेदुर्गन्धर्वसिद्धाः समहर्षिसंघाः ॥ वार्त्रघ्नलिंगैस्तमभिष्टुवाना मंत्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ॥ ३४ ॥ वृत्रस्य देहान्निष्क्रांतमात्मज्योतिररिंदम ॥ पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समप-

मानों त्रिलोकी को निगले ही जाता है क्या ? ऐसा प्रतीत होरहा है, जिसने वहुत वडे शरीर को धारण कराहै जो वेगसे पर्वतों को अपने स्थानसे हिलाए देताहै और जो चरणों से पृथ्वी का चूर्ण करे डालता है ऐसे, साक्षात् चरणों से चलनेवाले पर्वतराज की समान वृत्रासुर ने इन्द्रके समीप आकर ऐरावत नामक हाथी सहित उसको निगल लिया ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे राजन् ! महावली और महापराक्रमी अजगर जैसे हाथी को निगलजाता है तैसे वृत्रासुर के निगलेहुए उस इन्द्र को देखकर प्रजापति और महर्षियों सहित सकल देवता घवडाकर 'अरे ! वडाबुराहुआ' ऐसा कहकर हाय हाय मचाने लगे ॥ ३० ॥ ऐसे उस दानवों में श्रेष्ठ वृत्रासुर ने, यद्यपि इन्द्र को निगललियाथा तथापि पेटमें गयाहुआ वह इन्द्र, नारायणकवच को धारण करने के प्रभाव से, योगवल से और मायावल से युक्त होने के कारण मरण को नहीं प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ तदनन्तर वज्रसे उसके पेटको फाड़कर वह प्रभु इन्द्र वाहर निकले और पर्वत के शिखर की समान उस शत्रु का शिर अपने वलसे काटडाला ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! वृत्रासुर को मारनेके निमित्त उसकी ग्रीवा को काटते हुए चारोंओर घूमनेवाले उस अति वेगवान् वज्र ने सूर्य आदि की दक्षिणायन और उत्तरायण गति रूप सम्वत्सर के पूर्ण होने में जितने दिन लगते हैं उतने (३६०) दिनों के अनन्तर वृत्रासुर के वधका योग्यकाल प्राप्त होनेपर उसका मस्तक काटकर नीचे गिरादिया ॥३३॥ उस समय स्वर्ग में दुन्दुभि वजनेलगीं, और महर्षियों के साथ सिद्ध तथा गन्धर्वों ने,इन्द्र की वीरता को प्रकाशित करनेवाले मन्त्रोंके द्वारा उस इन्द्र की स्तुति करके आनन्द में भरकर उसके ऊपर पुष्पोंकी वर्षाकरी ।३४। हेशत्रुदमन राजन् ! उससमय वृत्रासुरके शरीरमेंसे निकला हुआ जीवनामकतेज सवके देखतेहुए लोका-

घत ॥ ३९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे वृत्रवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ॥ सपाला ह्यभवन्सद्यो विज्वरा निर्वृतेंद्रियाः ॥ १ ॥ देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयं ॥ प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेंद्रादयस्ततः ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ इंद्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ॥ येनासन्सुखिनो देवा हरेर्दुःखं कुतोऽभवत् ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ॥ तद्वधायार्थयन्निंद्रं नैच्छद्भीतो बृहद्वधात् ॥ ४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ॥ विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व मार्ज्म्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेंद्रमिदमब्रुवन् ॥ याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥ ६ ॥ हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ॥ इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥ ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्यहाऽघवान् ॥ श्वादः पुल्कसको

तीत भगवान् के स्वरूप में जामिला ॥३९॥ इति षष्ठस्कन्ध में द्वादश अध्याय समाप्त ॥*॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे बहुत दान देनेवाले राजन्! वृत्रासुर का वध होते ही एक इन्द्र को छोड़कर तीनों लोक, लोकपालों सहित सन्ताप रहित होकर मन में आनन्दित हुए ॥ १ ॥ उस युद्ध भूमि से देवता, ऋषि, पितर, और प्राणी, देवताओं के अनुगामी गन्धर्व आदि, दैत्य और ब्रह्माजी, महादेवजी तथा अन्य भी लोकपाल, इन्द्रसे आज्ञाविना मांगे ही अपने २ स्थान को आपही चलेगये ॥ २ ॥ राजाने कहा कि–हे मुने! जिस वृत्रासुर के वध से सकल देवताओं को सुख प्राप्तहुआ उससेही इन्द्रको दुःख क्योंहुआ? उस इन्द्रके दुःख के कारण को सुनने की मेरी इच्छा है ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन्! वृत्रासुर के पराक्रमसे ऋषियों सहित घवड़ाएहुए सकल देवताओं ने, उस का वध करने को इन्द्रसे प्रार्थना करी तव ब्राह्मण के वध से भयभीत हुए इन्द्र ने उसके वधका मनमें विचार न करके देवताओं को उत्तर दिया ॥ ४ ॥ इन्द्र ने कहा कि–हेदेवताओं! स्त्री, भूमि, जल और वृक्षों ने मेरे ऊपर अनुग्रह करके विश्वरूपके वध से उत्पन्न हुए मेरे पातक को बांट लिया इसकारण मैं उस पातक से छूटगया हूँ अब मैं वृत्रासुरकी हत्या किसको देकर अपने पातक से छूटूँगा? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन्! इस भाषण को सुनकर महेंद्र से ऋषियों ने कहा कि-हे इन्द्र! हम तुमसे अश्वमेध यज्ञ के द्वारा श्रीहरि का यजन करावेंगे उससे तुम्हारा कल्याण होगा, तुम भय न मानो ॥ ६ ॥ अरे! ब्रह्महत्या के पातक की तो वातही क्या? परन्तु परिपूर्ण परमात्मा और समर्थ देवाधिदेव श्रीनारायण का, अश्वमेधसे तुम पूजन करके जगत् भरके वध से भी मुक्त होजाओगे ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, पिता, गौ, माता और गुरु का वध करनेवाला

वोऽपि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥ ८ ॥ तमश्वमेधेन महामखेन श्रद्धाऽन्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ॥ हत्वाऽपि सब्रह्म चराचरं त्वं न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संचोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् ॥ ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥ १० ॥ तयेंद्रः स्मासहत्तापं निर्वृतिर्नामुमाविशत् ॥ ह्रीमंतं वाच्यतां प्राप्तं सुखयंत्यपि नो गुणाः ॥ ११ ॥ तां ददर्शानुधावंतीं चांडालीमिव रूपिणीम् ॥ जरया वेपमानांगीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटां ॥ १२ ॥ विकीर्य पलितान् केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीं ॥ मीनगंध्यसुगंधेन कुर्वतीं मार्गदूषणं ॥ १३ ॥ नभो गतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशांपते ॥ प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसं ॥ १४ ॥ स आवसत्पुष्करनालतंतूनलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ॥ वर्षाणि साहस्रमलक्षि-

पातकी पुरुष, तैसे ही श्वानभक्षक और चाण्डाल भी, जिनका नाम उच्चारण करने से शुद्ध होजाताहै उन परमात्मा के हमारे अनुष्ठान करेहुए अश्वमेध नामक महाक्रतुसे तुम्हारे श्रद्धा के साथ यजन करनेपर, ब्रह्माजी सहित इस चराचर विश्वका वध कराहो तवभी उस पातक से लिप्त नहीं होओगे, फिर इस दुष्ट के वध से तो तुम्हें होना ही क्या है ? ॥ ८ ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! इसप्रकार ब्राह्मणों के प्रेरणा करने पर इन्द्र ने शत्रुका वध करा परन्तु उसका वध होते ही मूर्त्ति धारण करेहुए ब्रह्महत्या उस इन्द्रके पास आई ॥ १० ॥ देवताओं की कराईहुई उस ब्रह्महत्यासे इन्द्रको तापही सहनापड़ा, उससे उन्हे सुख नहीं प्राप्तहुआ, हे राजन् ! लज्जावान् पुरुष यदि लोक में निन्दा पावे तो उसको धीरता आदि गुणभी सुख नहीं देते हैं ॥ ११ ॥ हे प्रजाओं के स्वामी राजन् परीक्षित ! जो चाण्डाल की स्त्री की समान रूप धारण करनेवाली है, वृद्ध अवस्थाके कारण जिसका शरीर कांपरहा है, जो अत्यन्त ही क्षयरोग से व्याप्त होरही है, जिसके वस्त्र रुधिर से भरेहुए हैं, जो मस्तकपर अपने स्वेत केशोंको वखेरकर 'खड़ा रह, खड़ा रह' इसप्रकार इन्द्रसे कहरही है और जिस की मछली की समान दुर्गन्धि वाली श्वास की वायु की दुर्गन्ध से मार्ग दूषित होरहा है ऐसी वह ब्रह्महत्या, मेरे पीछे २ भागती चली आरहीहै ऐसा देखकर इन्द्र, पहिले आकाश में गया; परन्तु तहां भी वह आरही है ऐसा देखकर तदनन्तर वह सकल दिशाओं में को भागनेलगा, तथापि जहां जाय तहां ही वह पहुँचती है ऐसा देखकर हेराजन् ! ईशान कोण में जाकर वह शीघ्रता से मानसरोवर में घुसगया ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ तहां कमल की दण्डी के तन्तु में किसी को न दीखै इसप्रकार 'ब्रह्महत्या से मेरा छुटकारा कैसे होगा ?' यह चिन्ता करता हुआ सहस्र सम्वत्सर पर्यन्त वह इन्द्र तहां रहा, उस समय उस को भोग की प्राप्ति

तोऽतः संचिंतयन् ब्रह्मवधाद्विमोक्षं ॥ १५ ॥ तावत्त्रिणाकं नहुषः शशास विद्यातपोयोगबलानुभावः ॥ स संपदैश्वर्यमदांधबुद्धिर्नीतस्तिरश्चां गतिमिंद्रपत्न्या ॥१६॥ ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत ऋतंभरध्याननिवारिताघः ॥ पापस्तु दिग्देवतया हतौजास्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥ १७ ॥ तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ॥ यथावद्दीक्षयांचक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥ १८ ॥ अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ॥ अश्वमेधे महेंद्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥ १९ ॥ स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप ॥ नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥ २० ॥ स वाजिमेधेन यथोदितेन वितायमानेन मरीचि-

किञ्चिन्मात्र भी नहीं हुई, क्योंकि–उस ने जल में वास कियाथा इसकारण उस के निमित्त हविरूप भाग लेजाकर देनेवाले अग्निरूप दूत का तहां (जल में) प्रवेश नहींहुआ १५ जिस समय पर्यन्त इन्द्र तहाँ गुप्त होकर रहा तबतक विद्या, तप, विचार, सामर्थ्य और शरीर के बल से स्वर्ग का पालन करने में समर्थ राजा नहुष ने स्वर्ग का राज्य किया, परन्तु सम्पदा और ऐश्वर्य से उत्पन्न होनेवाले मद के कारण उस की बुद्धि विवेक शून्य होगई तब इन्द्रपत्नी शची ने कुछ उपाय करके उस को सर्पकी योनि में पहुँचादिया* १६ तदनन्तर ब्राह्मण के वचन से बुलाएहुए वह इन्द्र स्वर्गलोक को गए, वह पहिले ही सत्य लोक के पालक श्रीहरि के ध्यान से निष्पाप होगए थे और ईशानदिशा में रहनेवाले रुद्र देवता से निर्बल कराहुआ उनका वह ब्रह्महत्यारूप पाप, मानसरोवर में रहनेवाली लक्ष्मी के रक्षा करेहुए उस इन्द्र का तिरस्कार करने को समर्थ नहींहुआ ॥ १७ ॥ हेभरतकुलोत्पन्न राजन् ! तदनन्तर ब्रह्मर्षियों ने उन के समीप आकर उन को, जिस में श्रीहरि की आराधना है ऐसे अश्वमेध यज्ञ की यथाविधि दीक्षा दी ॥१८॥ तदनन्तर हेराजन् ! वेद को जाननेवाले ऋषियों के अनुष्ठान करेहुए उस अश्वमेध यज्ञ में इन्द्र ने, जिन के शरीर में सकल देवता हैं ऐसे सर्वान्तर्यामी भगवान् का पूजन करा तब जैसे सूर्य से कुहर नष्ट होता है तैसे वह वृत्रासुर का वधरूप बड़ा पापसमूह भी उन परमात्मा ने निःसन्देह नष्ट करदिया ॥१९॥ ॥२०॥ इसप्रकार वह इन्द्र, मरीचि आदि ऋषियों के विधिपूर्वक

* इस विषय में यह कथा है कि-एकसमय राजा नहुष ने इन्द्राणी से कहा कि-अब मैं ही इन्द्र हूँ इसकारण तू मेरी सेवाकर, उस ने यह वृत्तान्त बृहस्पतिजी को सुनाया तब उन्होंने कहा कि-तू उस से यह कह कि-तुम ब्राह्मणों की उठाई हुई पालकी में बैठकर आओगे तो मैं तुम्हारा सेवन करूँगी, सो वह ब्राह्मण के शाप से भ्रष्ट होजायगा; फिर इन्द्राणी के ऐसा ही करनेपर, नहुष अगस्त्य आदि ऋषियों को पालकी का उठानेवाला बनाकर आप भीतर बैठा और 'शीघ्र चल, शीघ्र चल' ऐसा कहकर उस ने अगस्त्य ऋषि को चरण से स्पर्श करा तब क्रुद्ध हुए उन अगस्त्य ऋषि ने 'तू सर्प हो' यह शापदिया तब वह अजगर सर्प होकर स्वर्ग से नीचे गिरपड़ा ॥

मिश्रैः ॥ इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराणमिंद्रो महानास विधूतपापः ॥ २१ ॥ इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनं ॥ भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं महेंद्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥ २२ ॥ पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणींद्रियम् ॥ धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुंजयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषम् ॥ २३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे इन्द्रविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ॥ नारायणे भगवति कथमासीदृढा मतिः ॥ १ ॥ देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनां ॥ भक्तिर्मुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥ २ ॥ रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जंतवः ॥ तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः ॥ ३ ॥ प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तमाः ॥ मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिद्ध्यति ॥ ॥ ४ ॥ मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ॥ सुदुर्लभः प्रशांतात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥ ५ ॥ वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ॥ इत्थं दृढ-

---

अनुष्ठान करेहुए अश्वमेध के प्रभाव से यज्ञपति पुराणपुरुष का पूजन करके पापरहित हुआ और पहिले की समान सब का पूजनीय हुआ ॥ २१ ॥ जो सकल पातकों को धो देता है, जिस में पवित्रचरण श्रीहरि का कीर्त्तन है, भक्ति की वृद्धि, भक्तजनों का वर्णन, ब्रह्महत्या से महेन्द्र का छूटना और विशेष करके इन्द्र की विजय वर्णन करी है और जो धन का देनेवाला, यशका करनेवाला,सकल पापोंको दूर करनेवाला, शत्रुनाशक,कल्याणकारी और आयु का बढ़ानेवाला है, ऐसे इस इन्द्र के महाख्यान को ज्ञानी पुरुष सदा पढ़े और प्रत्येक पर्वमें तो अवश्यही सुने॥२२॥२३॥ इति षष्ठस्कन्ध में त्रयोदश अध्याय समाप्त॥ * ॥ राजा परीक्षित् ने कहा कि-हेब्रह्मन् ! रजोगुणी और तमोगुणी स्वभाववाले उस पापी वृत्रासुर को भगवान् नारायण के विषैं दृढ़ बुद्धि कैसे प्राप्त हुई !॥ १॥ क्योंकि-शुद्धसत्वगुणरूपी देवताओं को और निर्मलचित्तवाले ऋषियों को भी प्रायः मुकुन्दभगवान् के चरणों में भक्ति नहीं प्राप्त होती है ॥ २ ॥ इस भूमण्डलपर जितने पृथ्वी के परमाणु हैं उतने ही अगणित प्राणीहैं परन्तु उन में कोई जो मनुष्य आदि प्राणी हैं केवल वह ही धर्मका आचरण करते हैं॥३॥ उन में भी कोई श्रेष्ठब्राह्मणही प्रायः मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छाकरनेवाले) होते हैं और सहस्रों मुमक्षुओं में भी गृह आदि के सङ्गसेछूटकर तत्व को कोई ही जानता है ॥ ४ ॥ और हे महर्षे ! करोड़ों मुक्त और तत्त्वज्ञानी पुरुषों में भी जिसका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध है और श्रीनारायणही जिसका मुख्य आश्रय है ऐसा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ५ ॥ सकल लोकों को अत्यन्त ताप देनेवाला वह पापी वृत्रासुर भयानक संग्राम

मतिः कृष्ण आसीत्संग्राम उल्बणे ॥ ६ ॥ अत्र नः संशयो भूयान् श्रोतुं कौतूहलं प्रभो ॥ यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान्बादरायणिः ॥ निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ॥ श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ॥ ९ ॥ आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप ॥ चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत्कामधुङ्मही ॥ १० ॥ तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ॥ सांतानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु संततिम् ॥ ११ रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः संपन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिंता वंध्यापतेरभूत् ॥ १२ ॥ न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ॥ सार्वभौमस्य भूश्चेयमभवन्प्रीतिहेतवः ॥ १३ ॥ तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः ॥ लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥ १४ ॥ तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ॥ कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ॥

में भी सदानंदरूप परमात्मा के विषैं ऐसा दृढ़भक्तिमान् कैसे हुआ ? ॥ ६ ॥ अब, वह इन्द्रके भयसे ही सदानन्दरूप परमात्मा की शरणमें गया ऐसा कहना नहीं बनता, क्योंकि उसने अपने पराक्रमसे संग्राम में इंद्रको प्रसन्न करा, इसकारण हे प्रभो ! उस वृत्रासुरकी भक्ति आदि के विषयमें हमें बडा संशय होरहा है इसकारण उसके हेतुको जानने की हमें उत्कण्ठा है ॥ ७ ॥ सूतजी कहते हैं कि - हे शौनक ! उस श्रद्धावान् राजा परीक्षित के उत्तम प्रश्नको सुनकर भगवान् व्यासपुत्र शुकदेवजी ने उसकी प्रशंसा करके कहा॥८॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि - हे राजन् ! नारदजी से, देवल ऋषि से और व्यासजी के मुख से भी सुना हुआ यह इतिहास तू अन्तःकरणको स्वस्थ करके उत्तम प्रकार से सुन॥९॥ हे राजन् ! शूरसेन नामक देशोंमें चित्रकेतु नामसे प्रसिद्ध एक सार्वभौम राजाथा, उसके सकल मनोरथों को पृथ्वी पूर्ण करतीथी ॥ १० ॥ उसके एक करोड स्त्रियें थीं, वह आप पुत्रको उत्पन्न करने में समर्थ होकरभी दैवयोग से उन सब वन्ध्या स्त्रियों के मिलने के कारण उनके विषैं राजा को कोई सन्तान प्राप्त नहीं हुई ॥ ११ ॥ इसकारण रूप, उदारता, अवस्था, जन्म, विद्या, ऐश्वर्य और सम्पत्ति आदि सकल गुणों से युक्त होकर भी उस वन्ध्या के पति राजा चित्रकेतु को बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई ॥ १२ ॥ इसकारण सकल सम्पत्तियें, सुन्दर नेत्रोंवालीं रानियें और इच्छित पदार्थ देनेवाली पृथ्वी इन से उस सार्वभौम राजा को आनन्द नहीं हुआ ॥ १३ ॥ तदनन्तर एकदिन भगवान् अङ्गिरा ऋषि, इस त्रिलोकी में विचरते विचरते भगवान् की प्रेरणा से उस के घर आपहुँचे ॥ १४ ॥ उससमय राजा चित्रकेतु ने प्रत्युत्थान और पूजा की सामग्री आदि उपचारों से विधिपूर्वक उनका पूजन करा और भोजन करके स्वस्थ होकर आसनपर बैठे तब

॥ १५ ॥ महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ ॥ प्रतिपूज्य महाराज समाभा-ष्येदमब्रवीत् ॥ १६ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथात्मनः ॥ यथाप्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः ॥ १७ ॥ आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् ॥ राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥ १८ ॥ अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योथ मन्त्रिणः ॥ पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥ १९ ॥ यस्यात्माऽनुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्वशगा इमे ॥ लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः ॥ २० ॥ आत्मना प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ॥ लक्षयेलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखं ॥ २१ ॥ एवं विकल्पितो राजन्विदुषा मुनिनापि सः ॥ प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिं ॥ २२ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ भगवन्किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः ॥ योगिनां ध्वस्तपा-

राजा नम्रता के साथ उन के समीप बैठा ॥ १५ ॥ उससमय हे महाराज परीक्षित ! विनय से नम्र होकर अपने समीप भूमि में बैठेहुए राजा का उन महर्षि ने सत्कार करा और उनको उत्तम रीति से सम्बोधन करके इसप्रकार कहा ॥ १६ ॥ अङ्गिरा ऋषि ने कहा कि-हे राजन् ! जैसे महत्तत्त्व और अहङ्कार आदि सात प्रकृतियों से जीव नित्य उत्तमता से रक्षित रहता है और उन के बिना वह क्षणभर भी नहीं रहसक्ता है तैसे ही राजा भी गुरु, मंत्री देश, किला, धनका भण्डार, दण्ड और मित्र इन सात प्रकृतियोंसे नित्य सुरक्षितरहता है अर्थात् राज्यसुखका अनुभव लेताहै इसकारण तेरा अपना तथा प्रकृतियों का स्वस्ति क्षेम तो है ? ॥ १७ ॥ हे राजन् ! सात मन्त्रियों के ऊपर अपना सकल भार रखकर जैसे राजा उन मन्त्रियों की सहायतासे राज्य सुख को भोगता है तैसेही मंत्रीभी अपने सकल अधिकारोंकी मुख्य प्रभुता राजाके ऊपर रखकर राजाके ही धनोंसे सम्पत्तिमान् होतेहैं १८ तिससे स्त्री, प्रजा, अमात्य, सेवक, व्यापारी पुरुष मंत्री, नगरवासी, माण्डलिक राजे(जिमीदार) और पुत्र यह तेरीआज्ञा में तो हैं? १९ और तिसीप्रकार तेरा मनभी स्वाधीनतो है ? क्योंकि जिसकामन स्वाधीनहो उसकीही आज्ञा में यह सबस्त्री आदि रहते हैं और सकल लोक भी लोकपालों सहित आलस्य न करके उस को कर देते हैं ॥ २० ॥ परन्तु हेराजन् तू अपने मन में मुझे सन्तुष्ट नहीं प्रतीत होता है इस का क्या कारण है ! क्योंकि-तेरामुख अतीव चिन्ता से घिराहुआ सा प्रतीत होता है, इस से तेरा कोई मनोरथ अपने से वा किसी दूसरे से पूर्ण नहीं हुआ है ऐसा प्रतीत होता है ॥ २१ ॥ हेराजन् ! इसप्रकार स्वयं सर्वज्ञ होकर भी उन मुनिने राजा चित्रकेतुसे नानाप्रकारके प्रश्न करेतब विनय से नम्र हुआ वह सन्तान की इच्छा करनेवाला राजा उन मुनिसे कहनेलगा। २२। राजाचित्रकेतुने कहाकि-हेभगवन् ! तप ! ज्ञान और समाधि से जिन के पातक नष्ट होगए हैं ऐसे तुम योगिजनों को हमसमान देहधारी

पानां बहिरंतः शरीरिषु ॥ २३ ॥ अथापि पृच्छतो ब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिंतितं ॥ भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥ २४ ॥ लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसंपदः ॥ न नंदयंत्यप्रजं मां क्षुत्तृट्काममिवापरे ॥ २५ ॥ ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सह गतं तमः ॥ यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद्विधेहि नः ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यर्थितः स भगवान्कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ॥ श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्विभुः ॥ २७ ॥ ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत ॥ नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद्द्विजः ॥२८॥ अथाह नृपतिं राजन्भवितैकस्तवात्मजः ॥ हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥२९॥ सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् ॥ गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाग्नेरिवात्मजं ॥ ३० ॥ तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ॥ ववृधे शूरसेनेशतेजसा शनकैर्नृप ॥ ३१ ॥ अथ काले उपावृत्ते कुमारः समजायत ॥

प्राणियों के भीतर (मन में) और बाहर जो कुछ है वह क्या विदित नहीं है ? किन्तु सब ही विदित है ॥ २३ ॥ तथापि हे ब्रह्मन् ! तुम जानते हुए भी जो मुझे प्रेरणा करके मेरे मन में की चिन्ता को बूझ रहे हो सो तुम्हारी आज्ञा से ही मैं अब तुम से कहता हूँ ॥ २४ ॥ हे भगवन् ! भूँख और प्यास से व्याकुल होकर अन्न, जलकी इच्छा करनेवाले पुरुष को जैसे दूसरे चन्दन आदि पदार्थ सुख नहीं देते हैं तैसे ही लोकपालों के भी इच्छा करनेयोग्य यह सार्वभौम ऐश्वर्य की सम्पत्तियें मुझ पुत्रहीन को सुख नहीं देती हैं ॥ २५ ॥ तिससे हे महाभाग मुने ! पुत्रहीनपने से तुम मेरी रक्षा करो, जिस से कि हम पूर्वपुरुषाओं सहित, प्राप्त होनेवाले दुस्तर नरक से सन्तान के द्वारा जैसे तरजायँ तैसा कोई उपाय हमें बताइये ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् परीक्षित ! जब राजा चित्रकेतुने इसप्रकार दयालु, भगवान् ब्रह्मपुत्र की प्रार्थना करीं तब उन समर्थ ब्राह्मण ने राजा को पुत्रकी प्राप्ति होने के निमित्त त्वष्टा नामवाले आदित्य को अर्पण करने के उद्देश से चरु सिद्ध करके उससे त्वष्टा का यजन करा ॥ २७ ॥ और हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! उन अङ्गिरा नामवाले ब्राह्मण ने, राजाकी रानियों में ज्येष्ठ और सकल गुणों से श्रेष्ठ कृतद्युति नामवाली रानी को यज्ञ में शेष रहाहुआ चरु देकर राजासे कहा कि हे राजन् ! तुम्हें हर्ष और शोक देनेवाला तुम्हारे एक पुत्र होगा, ऐसा कहकर वह ब्रह्मपुत्र चलेगए ॥ २८ ॥ २९ ॥ तदनन्तर जैसे कृत्तिका देवी ने अग्नि से स्कन्दरूप पुत्र को धारण कराथा तैसे उस वंध्या कृतद्युति ने भी वह हविका शेपभाग भक्षण करने के कारणही चित्रकेतु से गर्भ धारण करा ॥ ३० ॥ हे राजन् ! शूरसेन देशों के अधिपति उस चित्रकेतु राजा के वीर्य से उत्पन्न हुआ वह उस का गर्भ प्रतिदिन शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की समान धीरे २ बढ़ने लगा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर प्रसूतिकाल आनेपर शूरसेन नामक देशों में रहनेवाले प्राणियों

जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदं ॥ ३२ ॥ हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रैः कारयामास जातकं ॥ ३३ ॥ तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च ॥ ग्रामान्हयान्गजान्प्रादाद्धेनूनामर्बुदानि षट् ॥ ३४ ॥ ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिनां ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥ ३५ ॥ कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ॥ यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥ ३६ ॥ मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ॥ कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥ ३७ ॥ चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ॥ न तथाऽन्येषु संजज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥ ३८ ॥ ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया ॥ आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरेणेन च ॥ ३९ ॥ धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसंमताम् ॥ सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृतां ॥ ४० ॥ दासीनां को नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया ॥ अभीक्ष्णं लब्धमानानां

को अत्यन्त आनन्द उत्पन्नकरताहुआ पुत्र उत्पन्नहुआ ॥३२॥ इधर यह वृतान्त सुनने के क्षण में ही आनन्दित हुए उस राजा ने स्नान करके पवित्र होकर आभूषण धारण करे और ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन के द्वारा आशीर्वाद ग्रहण करके पुत्र का जातकर्म कराया ॥ ३३ ॥ और उन ब्राह्मणों को तिस उदारचित्त राजा चित्रकेतु ने उससमय सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, आभूषण, ग्राम, घोड़े, हाथी और साठ करोड़ गौएँ समर्पण करके ' इससमय लोकों के मनोरथ पूर्ण करनेपर मेरे पुत्र को यश और सम्पदा प्राप्त होकर आयु की भी वृद्धि होगी ' इस अभिप्राय से उस राजाने, और प्राणियों के भी मनोरथ, जैसे मेघवृष्टि करके लोकों के मनोरथ पूर्ण करता है तैसे पूर्ण करे ॥३४॥३५॥ तदनन्तर जैसे निर्धन पुरुष को सङ्कट से धन प्राप्त होनेपर उस धन में उसकी प्रीति बढ़ती चलीजाती है तैसे परम सङ्कट से प्राप्तहुए पुत्र के विषैं उस राजर्षि पिताका प्रेम प्रतिदिन अधिक २ बढ़नेलगा॥ ३६ ॥तैसेही कृतद्युति माताका उसपुत्र के ऊपर अत्यन्त मोहकारक प्रेम बढ़ने लगा और उसकी सब सपत्नियों (सौतों) को ताप करनेलगा॥३७॥ इधर प्रतिदिन बालकका लाड करने के कारण राजा चित्रकेतु की जैसी उस पुत्रवती स्त्री में अत्यंत प्रीति हुई तैसी अन्य स्त्रियों में न हुई ॥ ३८ ॥ इस कारण वह सब सपत्नियें, अपने पेट की संतान न होने से होनेवाले दुःख और इसीकारण राजा से होने वाले अनादर के कारण अत्यन्त सन्तप्त होकर पुत्रवाली सपत्नी के विषैं डाहवाली बुद्धि से अपनी ही निन्दा करनेलगीं ॥ ३९ ॥ अरे ! उत्तम सन्तानवाली सपत्नी, जिसका दासी की समान तिरस्कार करती हैं और घर में पति भी जिसका बहुत सन्मान नहीं करता है उस पापिनी निपूती स्त्री को धिक्कार है ॥ ४० ॥ अहो ! स्वामी की सेवा के कारण

दास्या दासीव दुर्भगाः ॥ ४१ ॥ एवं संदह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसंपदा ॥ राज्ञोऽसंमतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥ ४२ ॥ विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ॥ गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥ ४३ ॥ कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत् ॥ सुप्त एवेति सञ्चिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरद्गृहे ॥ ४४ ॥ शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ॥ पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥ ४५ ॥ सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वाचोत्तारलोचनं ॥ प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हतास्मीत्यपतद्भुवि ॥ ४६ ॥ तस्यास्तदाकर्ण्य भृशातुरं स्वरं घ्नन्त्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ॥ प्रविश्य राज्ञी त्वरयात्मजान्तिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतं ॥ ४७ ॥ पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहांबरा ॥ ४८ ॥ ततो नृपांतःपुरवर्तिनो जना नराश्च नार्यश्च निशम्य

जिनको वारम्वार सन्मान मिलता है उन दासियों को भी वास्तव में कौन दुःख है ? अर्थात् कोई दुःख नहीं है क्योंकि—उन के हाथ से सेवा होने के कारण उन को मान तो मिलता है और हम तो वन्ध्या होने के कारण केवल-अनादर की ही पात्र हैं; तिस से दासी की भी दासी समान हम निःसन्देह भाग्यहीन हैं ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार सपत्नी की पुत्रसम्पत्ति से अतिसन्ताप को प्राप्तहुई और जिनका जीवन भी राजा को अच्छा नहीं लगता है ऐसी उन सकल स्त्रियों को कृतद्युति के विषय में अतिबलवान् द्वेष उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ तवतो द्वेष के कारण उन स्त्रियों की बुद्धि अत्यन्त नष्ट होकर उन का मन भी अतिक्रूर होगया और राजा के पुत्र के ऊपर प्रेम करने को वह सहन नहीं करसकीं इसकारण उन्होंने पुत्र को विष देदिया ॥ ४३ ॥ इधर सपत्नियों के इस महापातकरूप कर्म को न जानने के कारण मेरा वालक सोरहा है ऐसा जानकर कृतद्युति उस को दूरसे ही देखकर घरमें फिरनेलगी ॥ ४४ ॥ परन्तु फिर, मेरा वालक बहुत देरी से सोरहा है ऐसा समझकर उस चतुर रानी ने धाई से कहा कि—अरी भद्रे ! मेरे पुत्र को लेआ ॥ ४५ ॥ तव वह दासी सोतेहुए वालक के समीप गई और उस के नेत्रों के डले वाहर को आरहे हैं तथा प्राण, इन्द्रियें और आत्माने उस का त्याग करदिया है ऐसा समझकर 'अरे ! मेरा सर्वस्व नष्ट होगया' इसप्रकार वड़े ऊँचे स्वर से डकरानेलगी और पृथ्वीपर गिरपड़ी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर हाथों से छाती को कूटने वाली उस दासी का वह अतिविलाप युक्त उच्चस्वर सुनकर, रानी वड़ी शीघ्रता से पुत्र के समीप आई और देखने लगी तो वह वालक ही अपना पुत्र एकाएकी मरण को प्राप्त हुआ उसकी दृष्टिपड़ा ।४७। और अत्यन्त वढ़ेहुए शोक के कारण वह अत्यन्त ही मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़ी तव उस के केश और वस्त्र अत्यन्त अस्तव्यस्त होगये ॥ ४८ ॥ तदनन्तर राजा के

रोदनम् ॥ आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखितास्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन् पथि ॥ स्नेहानुबन्धैधितया शुचा भृशं विमूर्छितोऽनुप्रकृति द्विजैर्वृतः ॥ ५०॥ पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः ॥ दीर्घं श्वसन् बाष्पकलोपरोधतो निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुं ॥ ५१ ॥ पतिं निरीक्ष्योरुशुचार्पितं तदा मृतं च बालं सुतमेकसन्ततिं ॥ जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं सती दधाना विललाप चित्रधा ॥ ५२ ॥ स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्धमण्डितं निषिञ्चती साञ्जनबाष्पबिन्दुभिः ॥ विकीर्य केशान् विगलत्स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरं ॥ ५३ ॥ अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ॥ परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृतिर्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥ ५४ ॥

रणवास में के पुरुप और स्त्रियें आदि सकलजन, उस राजपत्नी के रुदन को सुनकर तहां आये और वैसे ही दुःखित होतेहुए रुदन करनेलगे तब अपराध करनेवालीं वह सपत्निर्ये भी अत्यन्त दुःखित होकर मिथ्या ही रोदन करनेलगीं ॥ ४९ ॥ तदनन्तर किसी कारण के विनाही पुत्र का मरण होगया, यह समाचार सुनकर जिसके नेत्रों के आगे वारम्वार अन्धेरी आरही है, जिसके पीछे २ मन्त्रीमण्डल दौड़रहा है और जो स्नेह के कारण बढ़ेहुए शोकसे मार्ग में ही वारम्वार ठोकर खाता, गिरता और मूर्छित होता है ऐसा वह राजा चित्रकेतु, चारों ओर ब्राह्मणों से घिरकर मरण को प्राप्तहुए तिस बालक के चरणों के समीप आकर गिरपड़ा, उससमय उसके केश और वस्त्र अत्यन्त अस्तव्यस्त होगए थे, वह लम्बे २ श्वास लेरहाथा, उसके नेत्र अश्रुधारा से भरगएथे और कण्ठभी रुकगयाथा इसकारण वह कुछभी न कहसका (गुम्म होगया) ॥ ५०॥५१॥ उससमय कृतद्युति रानी, शोक से अति व्याकुल हुए उस अपने पति को और एकही सन्तान होकर मरण को प्राप्त हुए बालक पुत्र को देखकर रणवासके पुरुष और अमात्य आदि प्रधानमण्डली को शोकयुक्त करतीहुई नानाप्रकारसे विलाप करनेलगी ॥ ५२ ॥ तब केसर और चन्दनसे भूषित अपने दोनों स्तनोंपर कज्जलयुक्त अश्रुओं की विन्दुओं को टपकाने वाली वह कृतद्युति, जिनमें से पुष्पमाला गिरपड़ी हैं ऐसे अपने केशों को बखेरकर ऊँचे और विचित्र स्वरवाले कुररपक्षी की समान रोदन करती हुई पुत्र का इस प्रकार शोक करने लगी कि-॥ ५३ ॥ हे विधातः ! वृद्धोंके जीतेहुए बालकों का मरण होता है यह तू अपनी सृष्टि के विरुद्ध वर्त्ताव करता है क्योंकि जीतेहुए वृद्धों को तो सन्तान उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं और इस दशा में बालकों का भी मरण होगया तो तेरी सृष्टि नष्ट होजायगी, इस कारण तू अत्यन्त ही मूर्ख है; और यदि कहे कि इस समय में सृष्टि के विरुद्धही हुआ हूँ तो हे ब्रह्मा ! यदि तू विपरीत है तो प्राणियों को-

न हि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः शरीरिणामस्तु तदात्मकर्मभिः ॥ यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥ ५५ ॥ त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ॥ अञ्जस्तरेम भवताऽप्रजदुस्तरं यद्ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥ ५६ ॥ उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्यास्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ॥ सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान् परीतो भुङ्क्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥ ॥ ५७ ॥ नाहं तनूज ददृशे हतमङ्गला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ॥ किं वा गतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥ ५८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलपन्त्यां मृतं पुत्रमिति चित्र-

दुःख देने के कारण सदा उनका शत्रुही है, इस दशा में तू दयालु कैसे कहासक्ता है ५४ यदि कहे कि-जीव के कर्मों के अनुसार उसकी उत्पत्ति आदि करनेवाले मेरा इसमें कौन अपराध है तो अरे विधातः! पुत्र के जीवित होतेहुए ही पिता का मरण होता है वा पिता के जीवित होतेहुए ही पुत्र उत्पन्न होता है यदि 'जीवोंके कर्माधीन होने के कारण 'जीव लोक में जन्म मरणका ऐसा नियम न होय तो वह जन्ममरण प्राणियों को अपने कर्मोंके अनुसार प्राप्त हों परन्तु फिर इस विषय में तुम्हारी क्या आवश्यकताहै? अर्थात् कुछभी आवश्यकता नहीं है, यदि कहो कि 'मुझ ईश्वर के विना यह जड़कर्म ही इस जगत्की उत्पत्ति आदि करने को कैसे समर्थहोंगे?' और यह तुम्हरा कहना वास्तवमें यथार्थ हो,तो भी अपनी सृष्टि की वृद्धि करने के निमित्त तुमने जो स्नेहकीफांसी रचरक्खीहै उसकोतुम आप ही काटे डालते हो, सो इसप्रकार का तुम्हारा दुःखदायक कर्म देखकर कोईभी पुत्र आदि के ऊपर प्रेम नहीं करेगा ॥ ५५ ॥ इसप्रकार विधना की निन्दा करके अब रानी पुत्र को उद्देश करके कहती है कि—अरे बेटा! मुझ दीन अनाथा को त्यागना तुझे योग्य नहीं है, अरे! तेरे शोक में सन्तप्तहुए अपने पिता की ओर को देख, हे बेटा! पुत्रहीनों को दुस्तर, घोर नरकदुःख से हम तेरे द्वारा अनायास में तरजायं इससे तू निर्दयी यम के साथ दूर न जा ॥ ५६ ॥ अरे बेटा! अब उठ, अरे! तुझे सोयेहुए बहुत देरी होगई, अरे राजकुमार! वह तेरे साथ के खेलनेवाले यह छोटे २ बालक तुझे खेलने को बुलारहे हैं; अरे! तुझे बड़ी भूँख लगरही होगी, सो तू भोजन करले और मेरा दूध पी. और अरे बेटा! हम स्वजनों के दुःख को दूरकर ॥ ५७ ॥ अरे बेटा! पहिले मैंने तेरे समीप आकर भी हतभाग्य होने के कारण तेरा, मनोहर हास्य और आनंदयुक्त दृष्टिसहित मुखकमल नहीं देखा और अब भी तेरी तोतली मधुरवाणी को मैं नहीं सुनती हूँ तिस से उस निर्दयी यमराज के लिवाजाने के कारण क्या तू जहाँ से फिर लौटकर आना नहीं होता ऐसे परलोक को चलागया? ॥ ५८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् परीक्षित! इस

विलापनैः ॥ चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकण्ठो रुरोद सः ॥ ५९ ॥ तयोर्विलपतोः सर्वे दंपत्योस्तदनुव्रताः ॥ रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥ ६० ॥ एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ॥ ज्ञात्वाऽङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥ ६१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥ १ ॥ कोऽयं स्यात्तव राजेन्द्र भवान् यमनुशोचति ॥ त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥ २ ॥ यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः ॥ संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥ ३ ॥ यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ॥ एवं भूतेषु भूतानि चोदि-

प्रकार नानाप्रकार के विलाप के वाक्यों से उस राजरानी के शोक करनेपर राजा चित्रकेतु अत्यन्त सन्तप्त होकर कण्ठ को खोलकर ऊँचे स्वर से रोदन करनेलगा ॥ ५९ ॥ इसप्रकार वह दोनों स्त्री पुरुष विलाप करनेलगे. तब उन के अनुयायी मन्त्री आदि सकल पुरुष और स्त्रियें भी रुदन करनेलगीं ऐसा होते २ नगर में के सकल पुरुष निश्चेष्ट (मूर्छित) होगए ॥ ६० ॥ इसप्रकार सकल लोक मोहित होकर निश्चेष्ट होगए हैं और उन को समझानेवाला कोई नहीं है ऐसा जानकर अङ्गिरा ऋषि नारदजी के साथ तहां आये ॥ ६१ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध में चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् परीक्षित ! उससमय शोक में भरकर पुत्र के मृतशरीर के समीप पड़ेहुए उस राजा चित्रकेतु को उत्तम वाक्यों से समझाने के निमित्त नारदजी और अङ्गिरा ऋषि कहनेलगे ॥ १ ॥ कि–हे राजेन्द्र ! जिस के निमित्त तुम शोक कररहे हो वह, इस प्रजारूप सृष्टि में वीतेहुए, वर्त्तमान और होनहार जन्मों में तुम्हारा कौनहै ? और तुम इस के वान्धवों में कौन हो ? इससमय 'यह मेरा पुत्र है और मैं इसका पिता हूँ, ऐसा समझता होयतो–हेराजन् ! पूर्वजन्म में पिता आदि रूप से जो मिले थे वही मरण के अनन्तर वियोग को प्राप्त होकर इस जन्म में कदाचित् उस के ही अथवा दूसरे के पुत्र आदि होते हैं तथा फिरभी जन्मान्तर में वह उस के अथवा दूसरे के स्त्री आदि वा शत्रुमित्र आदि होते हैं, तिस से 'जो जिसका पुत्र है वह जन्मान्तर में उस का पुत्र ही होगा और जो जिसकापिताहै वह उसका पिताही होगा' यह नियम किसी प्रकारभी नहींहै ॥ २ ॥ जैसे नदी के प्रवाह के वेगसे रेणुका (वालू) वियुक्त और संयुक्त होतीहै तैसे ही जीवभी कालके वेग से संयुक्त और वियुक्त होतेहैं ॥ ३ ॥ तथापि इतनेकाल पर्यन्त मेरे पुत्र नहींहुआ और वृद्धावस्था में उत्पन्न होकर मरण को प्राप्त होगया इसकारण मुझे दुःख होताहै ऐसा कहेतो हेराजन् ! जैसे बीजों में कभी २ बीज उत्पन्न होतेहैं और किन्ही २ में उत्पन्नहोते ही नहीं अथवा उत्पन्न होकर भी नाश को प्राप्त होजातेहैं तैसेही ईश्वर की माया के प्रेरणा करेहुए

तानीशमायया ॥ ४ ॥ वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ॥ जन्ममृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ् नैवमद्युनाऽपि भोः ॥ ५ ॥ भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥ ६ ॥ देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते ॥ बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥ ७ ॥ देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥ जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ॥ ९ ॥

पुत्र आदि प्राणी पिता आदि प्राणियों के विषैं उत्पन्न होते हैं और किसी २ के विषैं कभी २ उत्पन्न होते ही नहीं अथवा होकर भी नाश को प्राप्त होजाते हैं; तिन बीजों में जन्यजनकभाव होनेपरभी जैसे पिता पुत्र आदिभाव नहीं होताहै इसकारणही उनमें शोक आदि भी नहीं होता है तैसे ही प्राणियों की दशा है इसकारण उन में भी शोक करना योग्य नहीं है क्योंकि-ईश्वर की मायाके प्रेरणा करेहुए प्राणियों की भी उत्पत्ति होती है और नहीं होती है यह दोनों वार्त्ता वास्तव में सत्य नहीं हैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इससमय होनेवाले हम, तुम और यह दूसरे भी स्थावरजङ्गम प्राणी जैसे जन्म से पहिले नहीं थे और मरणके अनन्तर नहीं होंगे तैसेही इससमय भी किन्ही को नहीं हैं ऐसा समझना चाहिये क्योंकि जो वार्त्ता स्वप्न की समान आदि और अन्त में नहीं होती है वह मध्य में भी नहीं होती हैं ॥५॥ हे राजन् ! भूतों के अधिपति और जन्म आदि विकाररहित जो ईश्वर वह, स्वयं उत्पन्न करेहुए और परतन्त्र प्राणियों के द्वारा प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हैं, इसकारण ईश्वर ने मायाके द्वारा प्राणी उत्पन्न करे हैं अतः अब हम हैं और पहिले नहीं थे ऐसी प्रतीति होती है और मैं इसका उत्पन्न करनेवाला हूँ इत्यादि अभिमान भी निमित्तमात्र ही होता है, हे राजन् ! जैसे बालक वास्तव में कोई अपेक्षा न होने पर भी खेलने की लीला करता है तैसे ही ईश्वर भी वास्तव में किसीप्रकार की अपेक्षा न होनेपरभी सृष्टि पालन आदि के द्वारा लीला करताहै ॥६॥ हेराजन् ! जैसे बीज से बीज उत्पन्न होता है तैसे ही पिता के शरीर के द्वारा माता के शरीर से पुत्र का शरीर उत्पन्न होता है तथापि जैसे पृथ्वीरूप अर्थ निर्विकार है तैसे ही शरीरधारी जीवात्मा, देह के सम्बन्धी जन्म आदि विकारोंसे निर्लेपहोनेके कारण सबकाल में एक रूपही है ॥७॥ हेराजन् ! जैसे घटत्व पटत्व आदि जातियों का और उन की घड़ा सकोरा, धोतर, पीताम्बर आदि व्यक्तियों का भिन्न २ पना वस्तुमात्रपर कल्पित है तैसे ही देह और देही (जीव) इनका परस्पर के सम्बन्ध से होनेवाला यह विभाग अनादि है और अज्ञान से कल्पित है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि- हेराजन् परीक्षित ! इसप्रकार नारद और अङ्गिरा ऋषि के वाक्यों से चित्त की स्वस्थता को प्राप्तहुआ वह राजा चित्रकेतु

राजोवाच ॥ कौ युवां ज्ञानसंपन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ॥ अवधूतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ॥ १० ॥ चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ॥ मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिंगिनः ॥ ११ ॥ कुमारो नारद ऋभुरंगिरा देवलोऽसितः ॥ अपान्तरतमो व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः ॥ १२ ॥ वसिष्ठो भगवान् रामः कपिलो बादरायणः ॥ दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथा-ऽऽरुणिः ॥ १३ ॥ रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतंजलिः ॥ ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पंचशिरास्तथा ॥ १४ ॥ हिरण्यनाभः कौशल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ॥ एते परे च सिद्धेशाश्चरंति ज्ञानहेतवः ॥ १५ ॥ तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू ॥ अंधे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यतां ॥१६॥ अंगिरा उवाच ॥ अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यंगिरा नृप ॥ एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥ १७ ॥ इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे ॥ अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरं ॥ १८ ॥ अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो ॥ ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥ १९ ॥ तदैव ते परं ज्ञानं

मन के दुःख से मलिनहुए अपने मुख को हाथ से पौंछकर उन ऋषियों से कहनेलगा ।९। राजा चित्रकेतु ने कहा कि—अवधूतका वेषधारणकरके गुप्तरीति से विचरनेवाले, पूजनीयों में भी अतिपूजनीय और ज्ञानवान् तुम दोनों यहां कौन आये हो ? ॥ १० ॥ क्योंकि—अवधूत का वेष धारण करनेवाले भगवद्भक्त, ब्राह्मण, विषयों में जड़ीहुई बुद्धि रखनेवाले मुझ समान पुरुषों को बोध देने के निमित्त अपनी इच्छानुसार पृथ्वीपर विचरते रहते हैं ॥११॥ हे ऋषे ! सनत्कुमार, नारद ऋभु, अङ्गिरा, देवल, असित, अपान्तरतम, व्यास, मार्कण्डेय, गौतम, वसिष्ठ, भगवान् परशुराम, कपिल, शुकदेवजी, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, उद्दालक, रोमश, च्यवन, दत्त, पतञ्जलि सहित आसुरि, वेदशिरा ऋषि, बोध्य, पञ्चशिरा मुनि, हिरण्यनाभ, कौसल्य, श्रुतदेव और ऋतध्वज यह तथा और भी सिद्धपति, लोकों को ज्ञान का उपदेश देने के निमित्त पृथ्वीपर विचरते रहते हैं ॥१२॥१३॥१४॥१५॥ तिस से ग्राम के पशुओं की समान विषयों में लवलीन होने के कारण मूढ़बुद्धि और महामोहरूप अन्धकार में डूबेहुए मेरा उद्धार करने को तुम समर्थ हो इसकारण मुझे ज्ञान रूप दीपक दिखाओ ॥ १६ ॥ अङ्गिरा ऋषि ने कहा कि-हे राजन् ! तुझ पुत्रकी इच्छा करनेवाले को पुत्र देनेवाला मैं वही अङ्गिरा ऋषि हूँ और यह साक्षात् ब्रह्माजी के पुत्र भगवान् नारदजी हैं ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! पुत्र के शोक से इसप्रकार तू दुस्तर दुःख में निमग्न हुआ परन्तु भगवद्भक्त होने के कारण तू ऐसे दुःख को भोगने के योग्य नहीं है ऐसा जानकर तेरे ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त हम यहां आपहुँचे हैं क्योंकि—ब्रह्मण्य भगवद्भक्त खिन्न होने के योग्य नहीं हैं । १८॥१९ ॥ हे राजन् ! जब पहिले मैं तेरे घर

ददामि गृहमागतः ॥ ज्ञात्वाऽन्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहं ॥ २० ॥ अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते ॥ एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्य-संपदः ॥ २१ ॥ शब्दादयश्च विषयाश्चला राजविभूतयः ॥ मही राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥ २२ ॥ सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोह-भयार्तिदाः ॥ गंधर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥२३॥ दृश्यमाना विना-ऽर्थेन न दृश्यंते मनोभवाः ॥ कर्मभिर्ध्यायतो नानाकर्माणि मनसोऽभवन् ॥ २४ ॥ अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ देहिनो विविधक्ले-शसंतापकृदुदाहृतः ॥ २५ ॥ तस्मात्स्वच्छेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ॥ द्वैते ध्रुवार्थविश्रंभं त्यजोपशममाविश ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ एतां मंत्रोप-निषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ॥ यां धारयन् सप्तरात्राद्द्रष्टा संकर्षणं प्रभुं ॥२७॥

आयाथा तवही तुझे उत्तम ज्ञान का उपदेश करने को था; परन्तु, ' तुझे पुत्र प्राप्ति की बड़ीभारी इच्छा है ' ऐसा जानकर मैंने तुझे उस समय पुत्र ही दिया था ॥२०॥ अब, पुत्रवान् पुरुषों को क्या दुःख होता है इस का तुझे अनुभव होही रहा है, हे राजन् शूरसेन ! केवल पुत्र ही दुःखका कारण नहीं है किन्तु इसीप्रकार स्त्री, घर, धन, अनेकों प्रकार की ऐश्वर्य की सम्पदा और शब्दआदि विषय, राज्य के ऐश्वर्य, भूमि, राज्य, सेना, धन का भण्डार, सेवक, मन्त्री और मित्रजन यह सब ही शोक, मोह, भय और पीड़ा देनेवाले तथा अनित्य हैं और गन्धर्वनगर की समान कुछकालको भासमान होकर लीन होजाते हैं तथा स्वप्न, माया और मनोरथों की समान मिथ्या हैं ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ क्योंकि-वास्तव में सत्यता के विना ही दीखनेवाले होने के कारण दूसरे ही क्षण में नहीं दीखते हैं इसकारण केवल मन से ही कल्पना करेहुए हैं, यदि कहो कि-मीमांसा शास्त्रवाले तो पाप पुण्यों से कहते हैं तुम ने मन से कल्पित कैसे कहा? तहां कहते हैं कि-हे राजन् ! कर्म की वासनाओं के द्वारा विषयों का चिन्तवन करने वाले पुरुषों के मन से ही कर्म उत्पन्न हुए हैं इसकारण पापपुण्यरूप कर्म ही यदि मनसे होते हैं तो उन कर्मों के द्वारा सिद्ध होनेवाले अर्थ भी मन से कल्पित ही हैं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! पञ्चमहाभूतरूप द्रव्य, ज्ञानेन्द्रियें और कर्मेन्द्रियों के समूहों से रचाहुआ यह शरीर ही, देहाभिमानी जीव को नाना प्रकार के क्लेश और संताप देता है, ऐसा कहा है ॥ २५ ॥ इसकारण सावधान मन से आत्मतत्त्व का विचार करके, यह विषय नित्य हैं इसप्रकारके द्वैत प्रपञ्च के विश्वास का त्यागकर और शांति का आश्रय कर ॥ २६ ॥ हे राजन् ! तू पवित्र होकर इस मन्त्ररूप उपनिषद् को मुझ से ग्रहण कर, इस को जप रूप से धारण करनेपर सात रात्रि में ही तू सङ्कर्षण प्रभु का दर्शन करेगा ॥ २७ ॥

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ॥ सद्यस्तदी- यमतुलानधिकं महित्वं प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥ २८ इतिश्री- भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥ ७॥ श्रीशुक उवाच॥अथ दे- वऋषी राजन् संपरेतं नृपात्मजं ॥ दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचतां ॥१॥ नारद उवाच ॥ जीवात्मन् पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते ॥ सुहृदो बां- धवांस्तप्तान् शुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥ २ ॥ कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सु- हृद्वृतः ॥ भुंक्ष्व भोगान् पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥ ३ ॥ जीव उवाच ॥ कस्मिन् जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवति- र्यङ्नृयोनिषु ॥ ४ ॥ बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः ॥ सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥ ५ ॥ यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि तत- स्ततः ॥ पर्यटन्ति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥ ६ ॥ नित्यस्यार्थस्य सं- बंधो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु ॥ यावद्यस्य हि संबन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥

क्योंकि—हे राजन् ! उन सङ्कर्षण के चरणों के समीप में प्राप्त होकर पूर्वकाल में रुद्र आदि देवता इस द्वैतभ्रम को त्यागकर समानाधिकभावशून्य उनकी सर्वोत्तम महिमाको तत्काल प्राप्त हुए हैं तैसे तू भी शीघ्र ही प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध में पंचदश अध्याय समाप्त ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् परीक्षित ! तदनंतर देवर्षि नारद जीने, मरण को प्राप्तहुए उस राजपुत्र को योगशक्ति से उठाकर शोक करनेवाले उस के ज्ञाति के पुरुषों को दिखाकर ऐसा कहा ॥ १ ॥ नारदजी ने कहा—अरे जीवात्मन् ! तेरा कल्याण हो, तेरे कारण उत्पन्नहुए शोक कर के सन्ताप पानेवाले इन सुहृदों को बान्धवों को, माता को और पिता को तू देख ॥ २ ॥ अरे ! अकालमृत्यु से मरण को प्राप्त होने के कारण अभी तेरी आयु शेष रही है, अतः अपने देह में प्रवेश करके पिता के दियेहुए भोगों को तू मित्रगणों के साथ भोग और राजसिंहासन पर स्थित हो ॥ ३ ॥ इसप्रकार नारद ऋषि के कहने को सुनकर तत्काल ही शरीर में प्रविष्ट हुआ जीव उस पुत्र के मुख से कहनेलगा कि—हे नारदजी ! कर्म के द्वारा देवता, पशु, पक्षी और मनुष्य योनि में भ्रमण करनेवाले मेरे कौन से जन्म में यह माता पिता हुए थे ? ॥ ४ ॥ अब मेरे मरण को प्राप्त होने के कारण पुत्र मानकर यदि मेरे निमित्त शोक करते हों तो शत्रु मानकर मेरे मरण से इन को हर्ष क्यों नहीं होता है ? क्योंकि—सबही प्राणी क्रम क्रम से सब के परस्पर बान्धव, सपिण्ड, शत्रु, मध्यस्थ, मित्र, उदासीन और द्वेषी होतेहैं ।५। अहो ! जिस प्रकार खरीदने बेचने योग्य सुवर्ण आदि वस्तु, व्यवहार करनेवाले पुरुषों में जिधर तिधर फिरती हैं तैसे ही जीव भी जनकों के (माता पिताओं में) फिरते हैं ॥ ६ ॥ सुवर्ण आदि नित्य वस्तुओं का भी सम्बन्ध पुरुषों में अनित्य ही दीखता है क्यों

॥ ७ ॥ एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः ॥ यावद्यत्रोपलभ्येत ताव-
त्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥ ८ ॥ एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्व-
दृक् ॥ आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजते प्रभुः ॥ ९ ॥ न ह्यस्यातिप्रियः क-
श्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तृणां गुणदो-
षयोः ॥ १० ॥ नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम् ॥ उदासी-
नवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीर्य गतो
जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा ॥ विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वात्मस्नेहशृंख-
लाम् ॥ १२ ॥ निर्हृत्य ज्ञातयो देहं तथा कृत्वोचिताः क्रियाः ॥ तत्यजुर्दु-
स्त्यजं स्नेहं शोकमोहभयार्तिदम् ॥ १३ ॥ बालघ्न्यो व्रीडितास्तत्र बालहत्या-

---

कि–जवतक जिस वस्तु का जिस पुरुष से सम्बन्ध होता है तवतक ही उस वस्तु में उस पुरुष की ममता होती है, वही वस्तु विकना वा अर्पण होना आदि कारणों से दूसरे के पास पहुँचजाय तो उस के ऊपरसे उस की ममता दूर होजाती है ॥ ७ ॥ इसीप्रकार पिता आदि के सम्बन्ध को प्राप्तहुआ नित्य और वास्तव में अहङ्कार रहित भी वह जीव जिस पिता आदि के यहां जवतक विद्यमान रहता है तवतक ही उसका उस पिता आदि में स्वत्व (अपनापन) होता है ॥ ८ ॥ यह जीव नित्य है, क्योंकि–यह अविनाशी और जन्म रहित है, यही स्वप्रकाश होने के कारण जन्म आदि से युक्त होनेवाले शरीर आदिकों का आश्रय है, यह समर्थ होने के कारण अपनीमाया के गुणों करके अपने को ही विश्वरूप से उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥ इसजीव को अतिप्रिय वा अप्रिय अथवा अपना वा पराया कोई भी नहीं है, क्योंकि–हित और अहित करनेवाले मित्र आदिकों की सकल विचित्र बुद्धियों का साक्षी होने के कारण यह असंग है, इसकारण 'मित्रों से युक्त हो और शोक से सन्तप्तहुए सुहृदों को तथा वान्धवों को देख'ऐसा तुम्हारा कहना ठीकनहीं है ॥ १० ॥ यहजीवात्मा स्वतन्त्र, कारण और कार्य का साक्षी तथा उदासीन की समान सर्वत्र स्थित होने के कारण सुखदुःख और राज्य आदि के कर्मफल को स्वीकार नहीं करता है, अतः इसप्रकार के मेरा और तुम्हारा कुछ सम्बन्ध न होने के कारण तुम मेरे विषय में शोक न करो ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि-हेराजन् परीक्षित ! इसप्रकार कहकर जव वह जीव निकलगया तव वह चित्रकेतु आदि वालक के वान्धव और ज्ञाति के पुरुष विस्मय में होगए और उन्हों ने अपनी स्नेहरूप शृङ्खला (वन्धन) को तोड़कर शोक का त्याग करा ॥ १२ ॥ तदनन्तर सपिण्ड पुरुषों ने उस वालक के शरीर का दाह कर के उस के योग्य श्राद्ध तर्पण आदि क्रियाकरीं और शोक, मोह, भय और दीनता को उत्पन्न करनेवाले तथा जिस का त्यागना कठिन है ऐसे स्नेह को भी उन्होंने

हतप्रभाः ॥ बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ॥ यमुनायां महाराज स्मरंत्यो द्विजभाषितम् ॥ १४ ॥ स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ गृहांधकूपान्निष्क्रांतः सरःपङ्कादिव द्विपः ॥ १५ ॥ कालिंद्यां विधिवत्स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः ॥ मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववंदत ॥ १६ ॥ अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने ॥ भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥ ॥ १७ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ १८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये ॥ आत्मारामाय शांताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥ १९ ॥ आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ॥ हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥ २० ॥ वचस्युपरते प्राप्य य एको मनसा सह ॥ अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥ २१ ॥ यस्मि-

त्याग दिया ॥ १३ ॥ हे महाराज ! उस समय बालहत्या के कारण निस्तेज होकर लज्जितहुई और ' पुत्रादि यह सब दुःख के कारण हैं ' इस अङ्गिरा ऋषि के कथन का स्मरण करनेवालीं उन बालहत्यारी राजरानियों ने पुत्र की कामना से रहित और मत्सरता (डाह) शून्य होकर ब्राह्मणों के कहने के अनुसार यमुनाजी के तटपर जाकर बालहत्या का प्रायश्चित्त किया ॥ १४ ॥ इस प्रकार अङ्गिरा ऋषि और नारदजी के उपदेश से आत्मज्ञान को प्राप्त हुआ वह राजा चित्रकेतु, सरोवर की कीच में से बाहर निकलनेवाले हाथीकीसमान घररूप अन्धकारमयकूपमें से बाहर निकला ॥ १५ ॥ फिर उसने यमुना में विधिपूर्वक स्नान करके और पापनाशक पितृतर्पण आदि जलक्रिया करने पर मौनधार, इन्द्रियों को वश में करके उन ब्रह्मपुत्रों को प्रणाम किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर जिसने इन्द्रियों को वश में करा है और जो शरण आया है ऐसे उस भगवद्भक्त राजा चित्रकेतु के ऊपर प्रसन्न होकर नारदमुनिने, इस आगे कहीहुई विद्या का उपदेश किया ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! (चित्त, बुद्धि, मन और अहङ्कार इनके विषैं क्रमसे) वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षणरूपसे विराजमान आप को मैं मन से नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥ हे विज्ञानमय परमात्मन् ! द्वैतदृष्टि तुमसे दूर रहती है, तुम निजस्वरूप में ही रमण करते हो, अतः परमानन्दरूप हो इसकारण ही शान्तस्वरूप आप को नमस्कार हो ॥ १९ ॥ हे ईश्वर ! तुमने, निजानन्दके अनुभवसे ही, मायाकी रचीहुई रागद्वेष आदि तरङ्गों का तिरस्कार करा है और तुम अन्तर्यामीरूप से इन्द्रियों के प्रेरक तथा व्यापक हो तथा जगत् रूप हो ऐसे तुम परमेश्वर को नमस्कार हो ॥ २० ॥ हे परमात्मन् ! मन सहित सकल इन्द्रियों के तुम्हारे स्वरूप को न प्राप्त होकर उपराम को प्राप्त होनेपर, प्रकृति आदि कारणोंके और देह आदि कार्यो के मूलकारण तथा नामरूप रहित एक तुमही चैतन्यरूप से प्रकाशित होते हो; ऐसे तुम हमारी रक्षा करो ॥ २१ ॥ हे ईश्वर ! यह

न्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ॥ मृन्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥ २२ ॥ यं न स्पृशंति न विदुर्मनोबुद्धींद्रियासवः ॥ अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥ देहेंद्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ॥ नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तत् द्रष्ट्रपदेशमेति ॥ २४ ॥ ओं नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविंदयुगलपरमपरमेष्ठिन्नमस्ते ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः ॥ ययावङ्गिरसा साकं धाम स्वायंभुवं प्रभो ॥ २६ ॥ चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् ॥ धारयामास सप्ताहमब्भक्षः सुसमाहितः ॥ २७ ॥

कार्य-कारणरूप जगत् जिसमें है, जिसमें लय को प्राप्त होताहै और जिससे उत्पन्न होता है और मृत्तिका के घट आदि पदार्थों में जैसे मृत्तिका होती है तैसेही जो सर्वत्र व्याप्त है तिन ब्रह्मस्वरूप आप को नमस्कार हो ॥ २२ ॥ हे ईश्वर ! सकल प्राणीमात्रके भीतर और बाहर आकाश की समान व्याप्त रहनेवाले जिन को कर्मेन्द्रियें स्पर्श नहीं करती हैं और मन, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियें नहीं जानती हैं तिन तुम ब्रह्मस्वरूपको मैं नमता हूँ २३ देह, इन्द्रियें, प्राण, मन, और बुद्धि यह सब ब्रह्मके चैतन्य अंश से युक्त होते हैं तबही जाग्रत् और स्वप्न अवस्था में अपने २ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं नहीं तो अग्नि में न तपाया हुआ लोहे का गोला जैसे दाह नहीं करता है तैसेही सुषुप्ति और मूर्च्छा आदि अवस्थाओं में वह देह आदि, कर्मों में प्रवृत्त नहीं होते हैं अर्थात् जैसे लोहे का गोला अग्निकीशक्ति से ही दाह करता है अग्नि के विना दाह नहीं करसक्ता है तैसे ही ब्रह्ममें की ज्ञान क्रिया आदि शक्तियों के द्वारा ही प्रवृत्त होनेवाले देह आदि, उस ब्रह्मको स्पर्श नहीं करते हैं और जानते भी नहीं हैं, यह जीव तीनों अवस्थाओं का साक्षी होने के कारण उस ब्रह्मको जानता होगा ? ऐसा कहो तो इसका यह उत्तर है कि-जाग्रत् आदि अवस्थाओं का साक्षी यह संज्ञाभी उस ब्रह्मकोही प्राप्त होती है, उस से भिन्न न कोई जीव है और न कोई द्रष्टा है ॥ २४ ॥ हेसर्वोत्तम सर्वेश्वर ! सबसे श्रेष्ठ भक्तोंके समूहों के करकमलों की कलियों से जिन के दोनों चरणकमलों की सेवा होती है और जो महापुरुष महापराक्रमी और बड़े २ ऐश्वर्यों के स्वामी हैं तिनभगवान् को नमस्कार हो ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हेसमर्थ राजन् परीक्षित ! इसप्रकार नारदजी उस शरणागत आयेहुए भगवद्भक्त राजा चित्रकेतु को इसविद्या का उपदेश करके तदनन्तर अङ्गिरा ऋषि के साथ ब्रह्मलोक को चलेगए ॥ २६ ॥ तदनन्तर केवल जल का सेवन करके एकाग्र अन्तःकरण से उस राजा चित्रकेतु ने, नारदजी की उपदेश करीहुई उस विद्या का सातदिन

ततश्च सप्तरात्रान्ते विद्यया धार्यमाणया ॥ विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृप ॥ २८ ॥ ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगतिः ॥ जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् ॥ २९ ॥ मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्किरीटकेयूरकटित्रकंकणम् ॥ प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं तं ददर्श सिद्धेश्वरमंडलैः प्रभुम् ॥ ॥ ३० ॥ तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः स्वच्छामलांतःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ॥ प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः प्रहृष्टरोमाऽनमदादिपूरुषम् ॥ ३१ ॥ स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ॥ प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैवांशकत्तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥ ३२ ॥ ततः समाधाय मनो मनीषया बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ॥ नियम्य सर्वेंद्रियबाह्यवर्तनं जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम् ॥ ३३ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ अजित जितः सममतिभिः साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ॥ विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनां य आत्मदोऽति-

पर्यन्त उन के कहने के अनुसार विधि के साथ जप करा ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उस जप करीहुई विद्या के प्रभाव से राजा चित्रकेतु, अकुण्ठित (आनुषङ्गिक) विद्याधरों के अधिपतिपने को प्राप्त हुआ ॥२८॥ तदनन्तर कुछदिनों में विद्या से दीपितहुए मन से गमन करनेवाला वह राजा चित्रकेतु,देवाधिदेव शेषजी के चरणों के समीप गया ।२९। और उस ने, कमल के कन्द की समान गौरवर्ण,नीलवस्त्र धारणकरे, देदीप्यमान किरीट वाजूबन्द, तागड़ी, कड़े और तोड़े रूप आभूषण पहिने, प्रसन्नमुख, कुछएक लाल २ नेत्रवाले और सनत्कुमार आदि सिद्धपतियों के समूहों से घिरेहुए उन प्रभु का दर्शन करा ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उन के दर्शन से जिस के सकल पाप नष्ट होगए हैं, जिस का अन्तःकरण स्वच्छ और निर्मल है, जिसने मौन धारण करा है, जिस के नेत्रों में प्रेम के कारण आनन्द के अश्रु आरहे हैं और जिस के शरीरपर रोमाञ्च खड़े होगए हैं ऐसे उस राजा चित्रकेतु ने तिन आदिपुरुष सङ्कर्षण को अत्यन्त भक्ति के साथ शरण जाकर प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ परन्तु, प्रेम के अश्रुओं की बिन्दुओं से, श्रेष्ठकीर्त्ति परमेश्वर के चरणकमलों के आसन को वारंवार सींचताहुआ वह राजा चित्रकेतु, प्रेम से कण्ठरुक जाने के कारण सकल ही वर्णों का उच्चारण बन्द होगया इसकारण बहुत देरी पर्यन्त प्रभु की स्तुति करने को समर्थ नहीं हुआ ॥ ३२ ॥ तदनन्तर बुद्धि पूर्वक मन को वश में कर के और सकल इन्द्रियों की बाहरी वृत्तियों को रोककर भाषण करने को समर्थ हुए राजा चित्रकेतु ने, भक्ति का वर्णन करनेवाले पञ्चरात्र आदि शास्त्रके कथनानुसार उन जगत् के गुरु परमेश्वर की इस प्रकार स्तुति करी ॥ ३३ ॥ चित्रकेतु ने कहा कि–हे अजित ! तुम्हें देवताभी नहीं जीतसक्ते तथापि अतिदयालु होने के कारण, जितेन्द्रिय समदृष्टि भक्तों ने तुम्हें अत्यन्त वश में करलिया है और तुमने भी उन को

करुणः ॥ ३४ ॥ तव विभवः खलु भगवन् जगदुदयस्थितिलयादीनि ॥ वि-
श्वसृजस्तेऽशांशास्तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथगभिमत्या ॥ ३५ ॥ परमाणुपरममहतो-
स्त्वमाद्यंतांतरवर्ती त्रयविधुरः ॥ आदावंतेऽपि च सत्वानां यद्ध्रुवं तदेवा-
न्तरालेऽपि ॥ ३६ ॥ क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैरंडको-
शः ॥ यत्र पतत्यणुकल्पः सहांडकोटिकोटिभिस्तदनंतः ॥ ३७ ॥ विषयतृषो
नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ॥ तेषामाशिष ईश तदनु विनश्यंति
यथा राजकुलम् ॥ ३८ ॥ कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा क-
रंभबीजानि ॥ ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि ॥ ३९ ॥ जि-
तमजित तदा भवता यदाह भागवतं धर्ममनवद्यम् ॥ निष्किंचना ये मुनय

वास्तव में अत्यन्तही वश में कररक्खा है; क्योंकि-निष्काम सेवा करनेवाले भक्तों को तुम अपनास्वरूप देते हो ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, यह सब वास्तव में तुम्हारी ही लीला है, और यह ब्रह्माआदि जगत् की रचना करने वाले स्वयं ईश्वर न होकर तुम पुरुषरूप अंश के अंश हैं और वास्तव में यह दशा होने पर भी ' हम ईश्वर से भिन्न स्वतन्त्र ईश्वर हैं ' ऐसे अभिमान से वह व्यर्थ स्पर्धा करते हैं ॥ ३५ ॥ परमाणुरूप अत्यन्तसूक्ष्म कारण और ब्रह्माण्डरूप अन्त का अति विस्तार वाला कार्य, इन दोनों के आदि, अन्त और मध्य में होने के कारण तुम्हारा आदि, अन्त और मध्य है ही नहीं इस से तुम नित्य ही हो और वह परमाणु आदि तुमसे ही उत्पन्न होने के कारण अनित्य हैं; क्योंकि सत्यरूप से प्रतीत होनेवाले कार्यों की आदि और अन्त में जो नाशरहित होता है वही मध्य में भी नित्य होता है ॥ ३६ ॥ पहिले २ की अपेक्षा उत्तरोत्तर दश २ गुणे अधिक पृथ्वी आदि सात आवरणों से लिपटाहुआ यह ब्रह्माण्ड,और करोडों ब्रह्माण्डों के साथ तुम्हारे विषैं परमाणु की समान घूमता है इस से तुम वास्तवमें अनन्त हो ॥३७॥ हे ईश ! जो विषयों की लालसा करनेवाले पुरुष,तुम सर्वोत्तमका भजन न कर के तुम्हारी विभूतियों की (इन्द्रादिकों की)उपासना करते हैं वह वास्तव में मनुष्य के आकार के पशु हैं,क्योंकि–जैसे राजकुल का नाश होते ही सेवकों के भोग भी नष्ट होजाते हैं तैसे ही उपास्य देवता का नाश होनेपर उपासकों के भोग भी नष्ट होजाते हैं ॥ ३८ ॥ हे परमेश्वर ! जैसे भुनेहुए बीज अंकुर उत्पन्न होने के कारण नहीं होते हैं तैसे ही ज्ञानस्वरूप निर्गुण तुम्हारे विषैं करीहुई विषयवासनाभी अन्य देहों की उत्पत्ति का कारण नहीं होती हैं, क्योंकि–इसजीवके ही गुणों के समूहों से, संसार के कारण अहन्ताममता आदि द्वन्द्वों के समूह उत्पन्न होते हैं इसकारण कामनाओं से भी निर्गुण परमेश्वरकी सेवा करनेपर धीरे २ निर्गुणता प्राप्त होती है ॥ ३९ ॥ हे अपराजित ! जिससमय तुमने निर्दोष भागवतधर्म का वर्णन करा उससमय वास्तव में सब को जीतलिया है, क्योंकि–

आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥ ४० ॥ विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ॥ विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥ ४१ ॥ कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ॥ स्वद्रोहात्तव कोपः परसंपीडया च तथाऽधर्मः ॥ ४२ ॥ न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ॥ स्थिरचरसत्त्वकदम्बेष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥ ४३ ॥ नहि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ॥ यन्नाम सकृच्छ्रवणात्पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥ ४४ ॥ अथ भगवन्वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ॥ सुरऋषिणा यदुदितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥ ४५ ॥ विदितमनन्त समस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ॥ विज्ञाप्यं परमगुरोः कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥ ४६ ॥

लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा से रहित तथा आत्मस्वरूप में रमण करनेवाले सनत्कुमार आदि मुनि भी मोक्षके निमित्त अवभी उस भगवत् धर्म का सेवन करते हैं ॥ ४० ॥ हेपरमेश्वर! जैसे कामनायुक्त और धर्मों में 'तू और मैं मेरा और तेरा' इसप्रकार विषमबुद्धि उत्पन्न होती है तैसे भागवत धर्म में पुरुषों की विषमबुद्धि नहीं होती है, हे भगवन् शत्रुका मारण आदि कामनासे कहा हुआ काम्य धर्म रागद्वेष आदि से युक्त होनेकेकारण अत्यन्त अशुद्ध है, उसका फल नाशवान् होने के कारण वह विनाशी है और हिंसाआदि अधिक होने के कारण वह अधर्मों से भराहुआ है ॥ ४१ ॥ अपने को और दूसरे को जिस में पीड़ा होती है ऐसे धर्म से अपना वा दूसरे को कौन कल्याण वा कौन फल प्राप्त होसक्ता है ? अर्थात् कोई फल प्राप्त नहीं होसक्ता, क्योंकि-अति क्लेश भोगकर जीवको पीड़ा देनेपर तुझे पीड़ा होती है और दूसरे को पीड़ा देने पर अधर्म होता है और तुझे भी पीड़ा होती है ॥४२॥ हेपरमेश्वर ! जिस से तुमने भागवत् धर्म कहा है वह तुम्हारी दृष्टि कभी भी परमार्थ को छोड़कर नहीं रहती है, क्योंकि-स्थावर जङ्गमरूप प्राणियों के समूहों में समान बुद्धि रखनेवाले श्रेष्ठ भगवद्भक्तही उस भागवतधर्म का सेवन करते हैं ॥ ४३ ॥ तिस से हेभगवन् ! तुम्हारे दर्शन से पुरुष के सकल पातक नष्ट होते हैं यह कुछ अघटित वार्त्ता नहीं है, क्योंकि-एकवार तुम्हारे नाम को सुनकर अधम जातिका चाण्डाल भी संसार से छूटजाता है ॥ ४४ ॥ इसकारण हेभगवन् ! तुम्हारे दर्शन से ही हमारे अन्तःकरणों में के सकल दोष आज नष्ट होगए और हम कृतार्थ होगए सो ऐसा होना योग्य ही है क्योंकि--तुम्हारे परमभक्त देवर्षि नारदजी ने जो कुछ कहा वह कैसे अन्यथा होसक्ताहै अर्थात् अन्यथा नहीं होसक्ता॥४५॥हेअनन्त! संसारमें लोक जो कुछ आचरण करतेहैं वह सब तुम परमात्मा को विदितही है इसकारण जैसे पटवीजने सूर्य को प्रकाशित नहीं करसक्ते तैसे ही तुम परमगुरु को विशेष करके जताने

नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ॥ दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥ ४७ ॥ यं वै श्वसंतमनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकन्ति ॥ भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तुतो भगवानेवमनन्तस्तमभाषत ॥ विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यन्नारदाङ्गिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनं ॥ संसिद्धोसि तया राजन्विद्यया दर्शनाच्च मे ॥ ५० ॥ अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ॥ शब्दब्रह्म परंब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥ ५१ ॥ लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि सन्ततम् ॥ उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ॥ ॥ ५२ ॥ यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि ॥ आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥ ५३ ॥ एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चा-

योग्य क्या है ? अर्थात् तुम्हें कुछ अविदित नहीं है ॥ ४६ ॥ तिस से हेभगवन् ! जो सकल जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने को समर्थ हैं, भेददृष्टि रखनेवाले कुयोगियों की समझ में जिन का आत्मतत्त्व नहीं आता है तिन अत्यन्त शुद्ध तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ ४७ ॥ जिन के चेष्टा करनेपर ब्रह्मा आदि जगत् की रचना करनेवाले अपने २ व्यापार करनेलगते हैं जिन के देखनेपर ज्ञानेन्द्रियें अपने २ विषय को देखनेलगती हैं, जिन के मस्तकपर यह भूमण्डल केवल सरसों की समान प्रतीत होता है और जो सहस्रों मस्तकवाले हैं ऐसे तुमभगवान् को नमस्कार हो ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हेकुरुद्वह राजन् परीक्षित ! ऐसे उत्तम प्रकार से अनन्त भगवान् की स्तुति करनेपर वह प्रसन्न होकर विद्याधरों के अधिपति चित्रकेतु से कहनेलगे ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि–हे राजन् ! नारद और अंगिराने जो मेरे विषय में तुम्हें उपदेश दिया है उसके द्वारा तैसेही नारदजीकी कही हुई उस विद्या के द्वारा और मेरे दर्शनसे तुम उत्तम प्रकार से कृतार्थ होगए हो ॥ ५० ॥ हे राजन् ! भूतों का प्रकाशक और कारण मैं ही हूँ इसी कारण सकल भूत और उनका आत्मा मैं ही हूँ, हे राजन् ! शब्दब्रह्म और परब्रह्म यह दोनों भी मेरे ही नित्यस्वरूप हैं ॥ ५१ ॥ इसकारण मेरे ही भोग्य प्रपञ्च में भोक्तारूप से आत्मा अनुगत है और वह प्रपञ्च आत्मा में भोग्यरूप से व्याप्त है और उन दोनों को भी मैंने कारणरूप से व्याप्त करा है और वह दोनों ही मेरे विषैं कल्पित हैं ऐसा तुम देखो ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! जैसे सोयाहुआ पुरुष स्वप्न में दूसरे देश के पर्वत वन आदि रूप जगत् को अपने में देखता है अर्थात् स्वप्न में ही सुषुप्ति और स्वप्न का अनुभव करता है और उस स्वप्न में ही उठकर 'मैं शय्यापर बैठा हूँ' ऐसा मानता है

त्मनः ॥ मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥ ५४ ॥ येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा ॥ सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥ ५५ ॥ उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः ॥ अन्वेति व्यतिरिच्येत तज्ज्ञानं ब्रह्म तत्परम् ॥ ५६ ॥ यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः ॥ ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः ॥ ५७ ॥ लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम् ॥ आत्मानं यो न बुद्ध्येत न क्वचित्क्षेममाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ स्मृत्वेहायां परिक्लेशं ततः फलविपर्ययम् ॥ अभयं चाप्यनीहायां संकल्पाद्विरमेत्कविः ॥ ५९ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दंपती क्रियाः ॥ ततोनिवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च

अर्थात् स्वप्न में ही जाग्रत् अवस्थाका अनुभव करताहै तैसे ही प्रत्यक्ष जागना आदि, इसजीव की उपाधिभूत बुद्धिकीही अवस्थाहैं और आत्मामें वह केवल मायासे कल्पितहैं, ऐसाजानकर आत्मा उन का द्रष्टा और उन अवस्थाओं से रहितहै ऐसा समझे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! सोयाहुआ पुरुष जिस स्वरूप से उस सुषुप्ति अवस्था में अपनी गाढ़ निद्रा को और अतीन्द्रिय सुख को जानता है वह आत्मस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ ऐसा जान; और यदि कहो कि-सुषुप्ति अवस्था में द्रष्टा नहीं होता है ? तो गाढ़ निद्रा और उस में होनेवाले सुख का ज्ञान नहीं होगा और ऐसा होनेपर ' मैं सुख से सोया ' ऐसा स्मरण होना भी सम्भव नहीं है परन्तु यह स्मरण तो सबको होता ही है इसकारण जाग्रत् आदि अवस्थाओं का साक्षी कोई अवश्य है ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! निद्रा और जागना इन दोनों अवस्थाओं का अनुसन्धान रखनेवाले पुरुष की उन दोनों अवस्थाओं में जो ज्ञान के प्रकाशकरूप से स्थित होता है और जो उन अवस्थाओं से भिन्न होता है वह ज्ञान ही परब्रह्म है, परब्रह्म कोई उस ज्ञान से भिन्न नहीं है इसकारण जैसे युवाअवस्था में बाल्य-अवस्था की देखीहुई वस्तुका स्मरण होता है तैसे ही जाग्रत् अवस्था में निद्रा का और उस में होनेवाले आनन्दकाजीव को स्मरण होता है अतः वह ब्रह्मरूपही है ऐसा तुम जानो ॥ ५६ ॥ मेरे कहेहुए इस मेरे स्वरूप ब्रह्मका पुरुष को विस्मरण होनेपर पुरुष का स्वरूप आत्म-स्वरूप से भिन्न होताहै और इस से उस पुरुष को जन्म के अनन्तर जन्म और मरण के अनन्तर मरण इसप्रकार का संसार प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! इस भरतखण्ड में, जिस में शास्त्रका कहा हुआ ज्ञान और अपरोक्षज्ञान होना सम्भव है ऐसी मनुष्य योनि के प्राप्त होनेपर जो उस योनि में आत्मा को नहीं जानता है उस को किसी योनि में भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होसक्ती ॥ ५८ ॥ तिस से प्रवृत्तिमार्ग में अति क्लेश होकर फल का विपरीतभाव होता है और निवृत्तिमार्ग में मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा जानकर विवेकी पुरुष, फल की इच्छा का त्याग करे ॥ ५९ ॥ स्त्री और पुरुष यह दोनों सुखकी प्राप्ति और दुःख दूर होने के निमित्त नानाप्रकार के कर्म करते हैं; परन्तु उन कर्मों से उनको

सुखस्य च ॥ ६० ॥ एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनाम् ॥ आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥ ६१ ॥ दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ॥ ज्ञानविज्ञानसंतुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥ ६२ ॥ एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः ॥ स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनं ॥ ६३ ॥ त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः॥ पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥ ६५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच॥ यतश्चान्तर्हितोऽनंतस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ॥ विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥ १ ॥ स लक्षं वर्षलक्षाणामव्याहतबलेंद्रियः ॥ स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥ कुलाचलेंद्रद्रोणीषु नानासंकल्पसिद्धिषु ॥ रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन् हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥ एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता ॥

न सुख ही प्राप्त होता है और न दुःख ही दूर होता है ॥ ६० ॥ इसप्रकार, उद्योग करने में हम चतुर हैं, ऐसा अभिमान करनेवाले पुरुषों को फल की प्राप्ति नहीं होती है, ऐसा जानकर और जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं से भिन्न चौथा आत्मा का सूक्ष्मस्वरूप है, ऐसा जानकर पुरुष, विवेकबल से, इस लोक के और परलोक के विषयों से छूटे और शास्त्र का कहाहुआ ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान के द्वारा सन्तुष्ट होकर मेरी सेवा में तत्पर रहे ॥ ६१॥६२ ॥ हे राजन् ! योगमार्ग में चतुर पुरुष, परमात्मा सब स्थान में एक ही है, इसप्रकार देखना ही परम पुरुषार्थ है ऐसा जाने ॥६३॥ तिस से हे राजन् ! सावधानचित्त होकर श्रद्धाके साथ मेरे उपदेशरूप भाषण को धारणकर,तब ज्ञान विज्ञान से युक्त होकर शीघ्र ही मेरे स्वरूप को प्राप्त होजायगा ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् परीक्षित ! इसप्रकार राजा चित्रकेतु को धीरज बँधाकर उस के देखते हुए ही वह जगत् के गुरु विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान होगए ॥ ६५ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध में षोडश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! परीक्षित ! जिस दिशा में अनन्तभगवान् अन्तर्धान हुए थे उस दिशा को नमस्कार करके वह चित्रकेतु विद्याधर, आकाशमार्ग में विचरनेलगा ॥ १ ॥ अनन्त लाख वर्षों पर्यन्त जिस का बल और इन्द्रियों की शक्ति कुण्ठित नहीं हुए हैं और जिस की स्तुति मुनि, सिद्ध तथा चारण करते हैं ऐसा वह महायोगी राजा चित्रकेतु, भक्तों का दुःख दूर करनेवाले ईश्वर का गान करता हुआ, जिस में सङ्कल्पमात्र से ही नानाप्रकार की सिद्धि प्राप्त होती हैं ऐसी मेरुपर्वत की गुफा में विद्याधरों की स्त्रियों के साथ विहार करता रहा ॥ २ ॥ ३ ॥एक दिन विष्णुभगवान् के दियेहुए दिव्य विमान में बैठकर विचरते समय

गिरिशं ददृशे गच्छन्परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥ आलिङ्ग्यांकीकृतां देवीं बा-
हुना मुनिसंसदि ॥ उवाच देव्याः शृण्वन्त्या जहासोच्चैस्तदंतिके ॥ ५ ॥
चित्रकेतुरुवाच ॥ एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ॥ आस्ते मुख्यः
सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ ६ ॥ जटाधरस्तीव्रतपो ब्रह्मवादी सभाप-
तिः ॥ अंकीकृत्य स्त्रियं चास्ते गतह्रीः प्राकृतो यथा ॥ ७ ॥ प्रायशः प्राकृ-
ताश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति ॥ अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥
॥ ८ ॥ भगवानपि तच्छ्रुत्वा महस्यागाधधीर्नृपं ॥ तूष्णीं बभूव सदसि सभ्या-
श्च तदनुव्रताः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशो-
भनम् ॥ रुषाह देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥ १० ॥ पार्वत्युवाच ॥
अयं किमधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः ॥ अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्ल-
ज्जानां च विप्रकृत् ॥ ११ ॥ न वेद धर्मं किल पद्मयोनिर्न ब्रह्मपुत्रा न तु
नारदाद्याः ॥ न वै कुमारः कपिलो मनुश्च ये नो निषेधन्त्यतिवर्तिनं

उस ने, सिद्ध चारणों से घिरेहुए और ऋषियो की सभा में पार्वतीजी को जङ्घापर वैठा भुजाओं से आलिङ्गन करके वैठेहुए महादेवजी को देखा और उन पार्वती देवी के सुनते हुए उन के समीप ऊँचे स्वर से हँसकर इसप्रकार कहा ॥ ४ ॥ ५ ॥ चित्रकेतु ने कहा कि-अहो ! साक्षात् सकल लोकों के गुरु और देहधारियोंमें मुख्य यह शिवजी, सवको धर्मोपदेश करनेवाले होकर आप इस भरी सभा में ही स्त्री को साथ में लिये हुए वैठे हैं ॥ ६ ॥ अहो ! यह जटा धारण करके तीव्र तपस्या करनेवाले, ब्रह्म-वादी और सभापति होकर किसी साधारण विषयी पुरुष की समान अत्यन्त निर्लज्ज हो कर स्त्री को जङ्घापर लिये वैठे हैं ॥ ७ ॥ अहो ! क्याकहूँ ! अतिनीच पुरुष भी प्रायः एकान्त में ही स्त्री को गोदी में वैठाते हैं, और यह तो वडे व्रतधारी होकर प्रत्यक्ष सभा में ही स्त्री को गोदी में वैठाये हुए हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन् ! चित्रकेतु के इस कथन को सुनकर गम्भीरमति भगवान् महादेवजी और उनके अनुगामी सकल सभासद सभा में मौन धारण करे वैठेरहे ॥ ९ ॥ इसप्रकार महादेवजी का प्रभाव न जानकर उसके अत्यन्तही अयोग्य भाषण करनेपर ' मैं जितेन्द्रिय हूँ-' ऐसा अभिमान रखनेवाले उस उद्धत राजा चित्रकेतु से देवी क्रोध में होकर कहनेलगी॥१०॥ पार्वती ने कहा कि-अहो ! इससमय इसलोक में समर्थ दण्डधारी और हमसमाननिर्लज्ज दुष्टों को अत्यन्त निषेध करनेवाला क्या यही शासनकर्त्ता है ? ॥ ११ ॥ अहो! कमल-योनि ब्रह्माजी तथा भृगु और नारद आदि ब्रह्मपुत्र,सनत्कुमार, कपिल और मनु यह सव शास्त्रको अतिक्रमण करके वर्त्ताव करनेवाले महादेवजी को निषेध नहीं करते हैं तोक्या

हरेम् ॥ १२ ॥ एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मंगलमंगलं स्वयम् ॥ यः क्ष-
त्रबन्धुः परिभूय सूरीन्प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दण्ड्यः ॥ १३ ॥ नायमर्हति
वैकुंठपादमूलोपसर्पणम् ॥ संभावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम्॥१४॥
अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ॥ यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र
किल्बिषम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः ॥
प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥ १६ ॥ चित्रकेतुरुवाच॥प्रतिगृह्णामि
ते शापमात्मनोऽञ्जलिनाम्बिके ॥ देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य
तत् ॥ १७ ॥ संसारचक्र एतस्मिन् जंतुरज्ञानमोहितः ॥ भ्राम्यन्सुखं च दुःखं
च भुंक्ते सर्वत्र सर्वदा ॥ १८ ॥ नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात्सुखदुः-
खयोः ॥ कर्तारं मन्यतेप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥ १९ ॥ गुणप्रवाह एतस्मि-
न्कः शापः को न्वनुग्रहः ॥ कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव

वह धर्म को नहीं जानते हैं ?॥ १२ ॥ तिसकारण जिनके चरणकमल इन ब्रह्मादिकों के भी ध्यान करनेयोग्य हैं और जो धर्म की परम मूर्त्ति हैं ऐसे इन जगद्गुरु महादेवजी को जो, यह नीच क्षत्रिय, उन ब्रह्मादिकों को अज्ञानी जानकर निःशङ्क होकर शासन कर रहा है इससे इसको दण्ड दियाजाय यही योग्य है ॥ १३ ॥हे सभासदों ! यह साधुओं करके सेवा करेहुए श्रीविष्णुभगवान् के चरणों के समीप प्राप्त होने को योग्य नहीं है, क्योंकि–'मैं श्रेष्ठ हूँ' ऐसा समझने के कारण यह उद्धत है ॥ १४ ॥तिससे हेदुर्बुद्धे! तू महापातकी असुरयोनि में जा, तब हे पुत्र ! तू फिर इसलोक में महान् पुरुषोंका अपमान नहीं करेगा ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे भरतकुलोत्पन्न राजन् परीक्षित् ! जब इसप्रकार पार्वती ने चित्रकेतु को शाप दिया तब वह विमानसे नीचे उतरा और मस्तक झुकाकर सती को प्रसन्न करने लगा ॥ १६ ॥ चित्रकेतु ने कहा कि–हे अम्बिके ! मैं अपनी अञ्जलि से तुम्हारे शाप को ग्रहण करता हूँ, क्योंकि-देवता,मर्त्यजन को जो कुछ (सुख वा दुःख) कहते हैं वह उनको पूर्वजन्मों से ही प्राप्त होता है।१७। और यह तो संसारचक्र का स्वभाव ही है इसकारण इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि अज्ञान से मोहित हुआ प्राणी इस संसारचक्र में घूमता हुआ सब स्थान में और सब काल में सुख दुःखों को भोगता ही है ॥ १८ ॥इसकारण मैंने अयोग्य भाषण करा और तुमने मुझे शाप दिया, इसमें मेरा और तुम्हारा कुछभी दोष नहीं है, क्योंकि–इस संसार में सुखकर्त्ता स्वयं आप और दुःख देनेवाला कोई और हो, ऐसा किसीप्रकार भी नहीं; किन्तु जो पुरुष अतिमूर्ख होता है वही अपने को और दूसरे को क्रम से सुखका और दुःख का कर्त्ता मानता है ॥ १९ ॥ हे अम्बिके ! इस गुणों के प्रवाहरूप संसार में पड़ेहुए जीवको प्राप्त होनेवाला शाप, वरदान, स्वर्ग, नरक, सुख और

वा ॥ २० ॥ एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया ॥ एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥ २१ ॥ न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः ॥ समस्य सर्वत्र निरंजनस्य सुखे न रागः कुत एव रोषः ॥ २२ ॥ तथापि तच्छक्तिविसर्ग एषां सुखाय दुःखाय हिताहिताय ॥ बन्धाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनोः शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥ २३ ॥ अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि ॥ यन्मन्यसे ह्यसाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिंदम ॥ जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः ॥ २५ ॥ ततस्तु भगवान् रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् ॥ देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वतां ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निस्पृहाणां महात्मनां ॥ २७ नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ॥ स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥ २८ ॥ देहिनां देहसंयोगाद्द्वन्द्वानीश्वर-

दुःख यह सब क्या है ? अर्थात् कुछ नहीं हैं ॥ २० ॥ हे देवि ! स्वयं बन्धन आदि से रहित एक भगवान् परमेश्वर ही अपनी निमित्तभूत माया के द्वारा प्राणियों को रचते हैं और उन को बन्धन, मोक्ष, सुख तथा दुःख देते हैं ॥ २१ ॥ हे मातः ! उन ईश्वर को प्रिय, अप्रिय, ज्ञाति, बन्धु, अपना और पराया कोई नहीं है इसकारण सर्वत्र समान और निःसङ्ग तिनभगवान् को सङ्ग से होनेवाले सुख में प्रीति ही नहीं है फिर प्रीति से उत्पन्न होनेवाला क्रोध कहां से होगा ? ॥ २२ ॥ यद्यपि ऐसा है तथापि उन की माया से उत्पन्न-हुए, पुण्यपापरूप कर्म ही प्राणियों के सुख दुःख के, हित अहित, के बन्धन मोक्षके, जन्म मरण के और संसार के कारण होते हैं ॥ २३ ॥ तिस से हे भामिनि ! हे पतिव्रते ! शाप से छूटने के निमित्त तुम्हारी प्रार्थना न करके मैं 'मेरे कथन को योग्यहोनेपर भी जो तुम ने अयोग्य की समान माना है उसकी ही तुम क्षमा करो, केवल इतने प्रयोजन से ही तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे शत्रुदमन राजन् ! इसप्रकार शिवपार्वती को प्रसन्न करके राजा चित्रकेतु, उन दोनों को विस्मित करताहुआ उन के सन्मुख ही अपने विमान में बैठकर चलागया ॥ २५ ॥ तदनन्तर देवता, ऋषि, दैत्य, सिद्ध और सकल पार्षदगणों के सुनतेहुए रुद्रभगवान् पार्वती से इसप्रकार कहनेलगे ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र ने कहा कि—हे सुन्दरि ! अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीहरि के महात्मा, निस्पृह, दासानुदासों का माहात्म्य तू ने देखा ? ॥ २७ ॥ क्योंकि—स्वर्ग, मोक्ष और नरक इन में समान ही हैं ऐसा मानने का जिनका स्वभाव ही पड़गया है वह नारायण के परमभक्त, सर्वत्र किसी स्थान में भी भय नहीं मानते हैं ॥ २८ ॥ हे पार्वति ! ईश्वरकी माया से ही

लीलया ॥ सुखं दुःखं स्मृतिर्जन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥ २९ ॥ अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि ॥ गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजि वत्कृतः ॥ ३० ॥ वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणां॥ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद्व्यपाश्रयः ॥३१॥नाहं विरिंचो न कुमारनारदौ न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः ॥ विदाम यस्येहितमंशकांशका न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥ ३२ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः ॥ ॥३३॥ तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः ॥सर्वत्र समदृक् शांतो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः॥३४॥तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु ॥ महापुरुषभक्तेषु शांतेषु समदर्शिषु॥३५॥श्रीशुक उवाच ॥ इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाऽभिभाषितम् ॥ बभूव शान्तधी राजन् देवी विगतविस्मया ॥ ३६ ॥ इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलंतमः ॥ मूर्ध्ना सजगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥

जीवों को देहका संयोग होकर उस से सुख दुःख, जन्म मरण और शाप तथा अनुग्रह यह द्वन्द्व प्राप्त होते हैं और उन में, जैसे पुरुष को स्वप्न में अपने विषैं ही 'मैं राजा हूँ' वा रङ्क हूँ ऐसी बुद्धिसे सुख दुःख का भेद भासता है अथवा जैसे जाग्रत् अवस्था में अज्ञान के कारण मालामें सर्पकी प्रतीति होती है तैसे ही अविवेक से गुणदोषों का भेद उत्पन्न होता है ॥२९॥३०॥ इसकारण ज्ञान और वैराग्य के बल से युक्त होकर जो भगवान् वासुदेव के विषैं भक्ति करते हैं, उन पुरुषों को इस संसार में 'यह अच्छा है' ऐसीबुद्धिसे आश्रय करने योग्य कोई भी पदार्थ नहीं है ॥ ३१ ॥ मैं, ब्रह्माजी, सनत्कुमार, नारद, ब्रह्मपुत्र, मुनि और इन्द्रादिक सकल देवता, जिन के अभिप्राय अथवा लीलाके जानने को समर्थ नहीं होते हैं फिर उन के अंश के भी अंश होकर 'हम स्वतन्त्र ईश्वर हैं' ऐसा अभिमान करनेवाले पुरुष तो उन के स्वरूप को निःसन्देह नहीं जानते हैं ॥ ३२ ॥ और उन को प्रिय, अप्रिय वा पराया कोई नहीं है तथापि सकल प्राणियोंके आत्मा होने के कारण वह श्रीहरि ही सकल प्राणियों के प्रिय हैं ॥ ३३ ॥ हेपार्वति ! सर्वत्र समदृष्टि और शान्त यह महाभाग राजा चित्रकेतु, उन के अनुसार वर्त्ताव करनेवाला होने के कारण उन को प्रिय है और मै भी उन अच्युत भगवान् को प्रिय हूँ, इसकारण ही इस चित्रकेतु के ऊपर मैंने क्रोध नहीं किया ॥ ३४ ॥ तिस से शान्त, समदृष्टि और विष्णुभक्त महात्मा पुरुषों में तू कुछ आश्चर्य न मान ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हेराजन् ! परीक्षित इसप्रकार भगवान् शिव के भाषण को सुनकर उमादेवी का विस्मय दूर होकर मनभी शान्त हुआ ॥ ३६ ॥ इसकारण उलटा शाप देनेमें समर्थ होकरभी उस भगवद्भक्त चित्रकेतु,ने उन देवी के शापको शिरसे धारण

॥ ३७ ॥ जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः ॥ वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥ ३९ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः ॥ माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धाद्विमुच्यते ॥ ४० ॥ य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् ॥ इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥ ४१ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम् ॥ अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥ १ ॥ सिद्धिर्भगस्य भार्याऽङ्ग महिमानं विभुं प्रभुम् ॥ आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥ धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा ॥ सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥ अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनन्तरः ॥ ३ ॥ चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल ॥ ४ ॥ अ-

करा, क्योंकि-दूसरों के अपकार करनेपरभी उलटकर आप उसका अपकार न करना यही साधुओं का लक्षण है ॥ ३७ ॥ फिर वह चित्रकेतु असुरयोनि को प्राप्त होकर शास्त्र में कहेहुए और अपरोक्ष ज्ञान के साथही त्वष्टा की दक्षिणाग्नि में उत्पन्न होकर वृत्रासुर नाम से प्रसिद्धहुआ ॥ ३८ ॥ हेराजन्! वृत्रासुर की असुरभाव से उत्पत्ति होने का कारण और उस की भगवान् के विषैं भक्ति होने का कारण जो तुमने बूझाथा सो सब मैंने तुमसे वर्णनकरा॥३९॥हेराजन्! ऐसे महातमा चित्रकेतु के पुण्यकारी इतिहास को और विष्णुभगवान् के माहात्म्य को सुनने पर प्राणी बन्धनसे छूटताहै ॥४०॥ और प्रातःकाल को उठकर श्रीहरि का स्मरण करके व्यवहार के विषय का कुछ भी भाषण न करके जो पुरुष, नियमसे इसइतिहास को पढ़ेगा उसको उत्तमगति प्राप्तहोगी ॥४१॥इति षष्ठस्कन्धमें सप्तदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हेराजन्! सविता नामवाले पाँचवें आदित्य की पृश्नि नामवाली स्त्री के सावित्री, व्याहृति, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य, और पञ्चमहायज्ञ यह सन्तानहुईं ॥ १ ॥ हेराजन्! भगनामवाले छठे आदित्य की सिद्धिनामवाली स्त्री के महिमाविभु, प्रभु और सुन्दरी तथा उत्तम व्रत धारण करनेवाली आशीनामवाली एक कन्या यह सन्तान हुई ॥२॥ धाता नामवाले सातवें आदित्य की कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति इन चार स्त्रियों के क्रमसे सायङ्काल, दर्श, प्रातःकाल और पूर्णमास यह पुत्रहुए तैसेही धाता नामक आदित्य के अनन्तर के विधाता नामक आठवें आदित्य ने, अपनी क्रिया नामवाली स्त्री के विषैं पुरीष्य नामवाले पञ्चचित अग्नि उत्पन्नकरे, ॥३॥ और वरुण नामवाले नवें आदित्य की चर्षणी नामवाली स्त्री थी, उसके

गस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी ॥ रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम् ॥ ५ ॥ रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥ पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन्पुत्रानिति नः श्रुतं । जयन्तमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥७॥ उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ॥ कीर्तौ पत्न्यां बृहत्श्लोकस्तस्यासन् सौभगादयः ॥८॥ तत्कर्मगुणवीर्याणि कश्यपस्य महात्मनः ॥ पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथैवावततार ह ॥९॥ अथ कश्यपदायादान् दैतेयान्कीर्तयामि ते ॥ यत्र भागवतः श्रीमान् प्रह्लादो बलिरेव च ॥ १० ॥ दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी ॥ जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥१२॥ संह्रादं प्रागनुह्रादं ह्रादं प्रह्रादमेव च ॥ तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥ १३ ॥ शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतं ॥ संह्रादस्य कृतिर्भार्याऽसूत

विषैं जो पहिले ब्रह्माजी के पुत्र थे वह भृगुऋषि फिर उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ पहिले वँवई से उत्पन्नहुए जो महायोगी वाल्मीकि वह भी वरुण के ही पुत्रहुए, अगस्त्य और वसिष्ठ यह दो ऋषि मित्र और वरुण इन दोके पुत्र हुए, क्योंकि--उर्वशी के समीप में गिरेहुए वीर्य को उन दोनोंने घड़े में सींचा तब उस से वह उत्पन्नहुएथे, मित्र ने अपनी रेवती नामवालीस्त्री के विषैं और उत्सर्ग,अरिष्ट तथा पिप्पल यह तीन पुत्र उत्पन्न करे॥ ५।६ ॥ हे राजन् परीक्षित ! इन्द्र नामवाले ग्यारहवें समर्थ आदित्य ने, अपनी पौलोमी नामवाली स्त्री के विषैं जयन्त, ऋषभ और तीसरा मीढुष यह तीन पुत्र उत्पन्न करे ऐसा हमने सुना है ॥ ७ ॥ मायासे वामनरूप धारण करनेवाले भगवान् का अवताररूप उरुक्रम नाम वाले बारहवें आदित्य की कीर्त्ति नामवाली स्त्री के विषैं बृहत्श्लोक नामवाला पुत्रहुआ और उस बृहत्श्लोक के भी सौभग आदि पुत्रहुए ॥ ८ ॥ तिन महात्मा वामन ने, अदिति के विषैं कैसा अवतार धारण करा सो और उन के कर्म, गुण तथा प्रभाव यह कैसेथे सो सब मैं तुम से आगे (आठवें स्कन्ध में) कहूँगा ॥ ९ ॥ हे राजन् ! अब जिस में, श्रीमान् भगवद्भक्त प्रल्हाद और बलि हुए ऐसे दिति से होनेवाले कश्यपजी के पुत्र मैं तुम से कहता हूँ ॥ १० ॥ दिति के प्रथम तो दैत्य और दानवों के पूजनीय हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष यह दो पुत्र उत्पन्न हुए. यह वृत्तान्त मैं तुम से तीसरे स्कन्ध में कहचुकाहूँ ॥११॥ कयाधु नामवाली दानवी जो जम्भासुर की कन्या थी, वह जम्भासुर के देदेनेपर हिरण्यकशिपु की स्त्री हुई और उस के चारपुत्र हुए ॥ १२ ॥ उन के नाम–संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रल्हाद यह थे, उन की सिंहिका नामवाली एक बहिन थी; उस के विप्रचित नामवाले दैत्य से राहु नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ, अमृत पीते समय श्रीहरिने चक्र से उसका मस्तक काटलिया, संह्लाद की कृति नामवाली स्त्री के पंच

पञ्चजनं ततः ॥ १४ ॥ ह्रादस्य धमनिर्भार्याऽसूत वातापिमिल्वलम् ॥ योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलम् ॥ १५ ॥ अनुह्रादस्य सूर्म्यायां वाष्कलो महिषस्तथा ॥ विरोचनस्तु प्राह्रादिर्देव्यांस्तस्याभवद्बलिः ॥ १६ ॥ वाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ॥ तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥ १७ ॥ वाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यतां ॥ यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥ १८ ॥ मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ॥ त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मतां ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथन्त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो ॥ इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधुकृतं हि तैः ॥ २० ॥ इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह ॥ परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ तद्विष्णुरातस्य स बादरायणिर्वचो निशम्यादृतमल्पमर्थवत् ॥ सभाजयन् संनिभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हतपुत्रा दितिः श-

---

जन नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ह्रादकी धमनी नामवाली स्त्री के 'अतिथिरूप से आये हुए अगस्त्य ऋषि को मारने के निमित्त, मेढ का रूप धारण करनेवाले' वातापी को जिसने पकाया था वह इल्वल और जिस को पकायाथा वह वातापी यह दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ अनुह्राद की सूर्म्या नामवाली स्त्री के विषैं वाष्कल और महिष यह दो पुत्र उत्पन्न हुए; विरोचन प्रल्हाद का पुत्र हुआ और उसकी देवी नामवाली स्त्री के विषैं वलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ तिस वलि से अशना नामवाली स्त्री के विषैं, जिन में वाण वडा है ऐसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए. हे राजन् ! पुण्यकारी कीर्त्ति के योग्य तिस राजा वलि का प्रभाव मैं तुम से आगे अष्टम स्कन्ध में कहूँगा ॥ १७ ॥ वाणासुर ने कैलासनाथ महादेव जी की आराधना करके उन के गणों में प्रधानता पाई और अब भी भगवान् शिवजी उस के समीप रहते हैं और उस के नगर की रक्षा करते हैं ॥ १८ ॥ तैसे ही दिति के मरुत्नामवाले उनञ्चास पुत्रहुए, वह सब सन्तानहीन थे और इन्द्र ने, उन को अपनी समान देवता बनालिया था ॥ १९ ॥ राजापरीक्षित ने कहा—हे गुरो ! स्वाभाविक असुरपने का त्याग करवाकर इन्द्र ने उन को देवपना कैसे दिया ? और उन्हों ने भी इन्द्र के ऊपर क्या उपकार कियाथा, यह जानने को, यह ऋषि भी मेरे साथ इच्छा कररहे हैं तिस से हे ब्रह्मन् ! हे भगवन् ! यह तुम हमसे कहो ॥ २० ॥ २१ ॥ सूतजी कहते हैं कि—हे शौनक ! आदर के साथ थोड़े और अर्थ से भरेहुए, राजा परीक्षित के इस कथन को सुनकर उन सर्वज्ञ व्यास जी के पुत्र ने, आनन्दपूर्ण अन्तःकरण से उन का सत्कार करते हुए उत्तरदिया २२

क्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना ॥ मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलंती पर्यचिंतयत् ॥ २३ ॥ कदा नु भ्रातृहन्तारमिंद्रियाराममुल्बणं ॥ अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखं ॥ २४ ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञासीद्यस्येशाभिहितस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ २५ ॥ आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ॥ मदशोषक इन्द्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥ २६ ॥ इति भावेन सा भर्तुराचचारासकृत् प्रियम् ॥ शुश्रूषयाऽनुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥ २७ ॥ भक्त्या परमया राजन् मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः ॥ मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापांगवीक्षणैः ॥ २८ ॥ एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया ॥ बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥ २९ ॥ विलोक्यैकांतभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ॥ स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥३०॥ एवं शुश्रूषित-

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन् परीक्षित ! इन्द्रके पीछे रहकर सहायता करनेवाले विष्णुभगवान् ने जब दिति के पुत्र मारडाले तब शोक से प्रदीप्त हुए क्रोधके कारणसंतप्त होकर वह दिति इसप्रकार चिन्ता करने लगी कि-॥ २३ ॥ अहो ! विषयासक्त, क्रूर स्वभाववाले, कठोरचित्त और भ्राताकी हत्या करनेवाले इस पापी इन्द्रका प्राणान्त करके मैं कब सुखी होऊंगी ? ॥ २४ ॥ अहो ! पूर्वकाल के राजाओं के शरीरोंके विषय का विचार किया जाय तो ऐसा देखने में आता है कि–जिस को पहिले प्रभु कहते थे वही शरीर मरण के अनन्तर दो तीन दिन रहने से कीड़े,श्वान आदिके भक्षण करलेनेपर विष्टा और दाह होनेपर भस्म नामको प्राप्त होता है, तिससे इस देह के निमित्त जो प्राणियों से द्रोह करता है वह क्या अपने स्वार्थ को जानता है ? नहीं जानता;क्योंकि–प्राणियों से द्रोह करनेपर नरककी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ तिससे यह शरीर आदि नित्य हैं ऐसा माननेके कारण जिसका चित्त नियमहीन हुआहै उस इन्द्रके मदको नष्टकरनेवाला पुत्र मेरे किस उपायसे उत्पन्न होगा ? वास्तव में इसप्रकार पुत्र उत्पन्न होने में भर्त्ता का प्रिय करने को छोड़कर दूसरा साधन नहींहै ॥२६॥ मन में ऐसा विचार करके वह दिति,सेवा, प्रेम, विनय और इन्द्रियों को वश में करना इन साधनों से निरन्तर भर्त्ता का प्रिय करने लगी ॥ २७ ॥ और हे राजन् ! ऐसा होते २ पति का अभिप्राय जाननेवाली उस दिति ने उत्तम भक्ति, मनोहर और मधुर वचन तथा सुन्दरहास्ययुक्त कटाक्षोंके द्वारा कश्यप जी का मन वश में करलिया ॥ २८ ॥ इसप्रकार सेवा आदि से उस चतुर स्त्री ने ज्ञानी कश्यपजी को भी मोहित करलिया तब उन्होंने स्त्री के अधीन होकर ' अच्छा मैं तेरा मनोरथ पूर्ण करूँगा ' ऐसा कहा,ऐसा होना कुछ उस स्त्री के विषैं आश्चर्य नहींहै॥२९॥ क्योंकि–सृष्टिके प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने, सकल प्राणियों को निःसङ्ग देखकर, मैथुनधर्म से सृष्टि बढ़ाने के निमित्त अपने आधे शरीर की ही उन्हो ने स्त्री रची और उसने पुरुष की

स्तातं भगवान्कश्यपः स्त्रियाः ॥ प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनन्द्य च ॥ ॥ ३१ ॥ कश्यप उवाच ॥ वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिन्दिते ॥ स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥ ३२ ॥ पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ॥ मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥ ३३ ॥ स एव देवतालिङ्गैर्नामरूपविकल्पितैः ॥ इज्यते भगवान्पुम्भिः स्त्रीभिश्च पतिरूपधृक् ३४॥ तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ॥ यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ॥ ३५ ॥ सोऽहं त्वयार्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः ॥ तं ते सम्पादये काममसतीनां सुदुर्लभं ॥ ३६ ॥ दितिरुवाच ॥ वरदो यदि मे ब्रह्मन्पुत्रमिन्द्रहणं वृणे ॥ अमृत्युं मृतपुत्राऽहं येन मे घातितौ सुतौ ॥ ३७ ॥ निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ॥ अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥ ३८ ॥ अहो अर्थेन्द्रियारामो योषिन्मय्येह मायया ॥ गृहीतचेताः कृप-

---

बुद्धि को हरलिया ॥ ३० ॥ हे राजन् परीक्षित ! इसप्रकार जब स्त्री ने भगवान्कश्यपजी की प्रार्थना करी तब वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और हँसतेहुए दिति की प्रशंसा करके इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३१ ॥ कश्यपजी ने कहा कि–अरी निर्दोष सुन्दरि ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ अतः तू वरमांग, क्योंकि–भर्त्ता के प्रसन्न होनेपर इसलोक का वा परलोक का कौनसा मनोरथ स्त्री को दुर्लभ है ? अर्थात् कोई दुर्लभ नहीं है ॥ ३२ ॥ परमेश्वर के प्रसन्न होनेपर सकल मनोरथ प्राप्त होते हैं, ऐसा प्रसिद्ध है तथापि हे शोभने ! स्त्रियोंका परम देवता पति ही है, परन्तु मन में विद्यमान श्रीपति वासुदेवही सकल प्राणियों के परम दैवत हैं ऐसा प्रसिद्ध है सो सत्यही है ॥ ३३ ॥ क्योंकि–नामरूपों के द्वारा नानाप्रकार से कल्पना करेहुए देवरूपों से पुरुष, उन भगवान् का ही पूजन करते हैं और स्त्रियें भी उनही पतिरूपधारी भगवान् का पूजन करती हैं ॥ ३४॥ तिससे हे सुमध्यमे! अपना कल्याण होने की इच्छा करनेवाली पतिव्रता स्त्रियें, अनन्यभाव से पतिरूपसर्वात्मा ईश्वर का पूजन करती हैं ॥ ३५ ॥ तैसेही हे भद्रे ! तूने ऐसे भावसे भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करी है अतः असती स्त्रियों को अतिदुर्लभ भी तेरा मनोरथ मैं पूर्ण करूँगा ३६ दितिने कहा कि–हे ब्रह्मन् ! यदि आप मुझे वर देते हैं तो, जिसने विष्णुभगवान् की सहायतासे मेरे दोनों पुत्रों का प्राणान्त करके मुझे मृतपुत्रा (पुत्रहीन) करा है, उस इन्द्रका वध करनेवाला एक मृत्युरहित पुत्र मैं मांगती हूँ ॥ ३७ ॥ हे राजन् यह वचन सुनते ही वह ब्राह्मण कश्यपजी, मनमें खिन्न होकर सन्तप्तहुए और अपने मनमें ही कहनेलगे कि–बहुतही बड़ा यह अधर्म आज मुझे प्राप्तहुआ है ॥ ३८ ॥अरे ! यह कौन आश्चर्य है ! विषयासक्त होने के कारण मेरा विवेक आदि नष्ट होकर, स्त्रीरूप माया ने इससमय

णः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥ ३९ ॥ कोऽतिक्रमोऽनुवर्तंत्याः स्वभावमिह योषितः ॥ धिङ्मां वताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ॥ ४० ॥ शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥ ४१ ॥ नहि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम् ॥ पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयंति च ॥ ४२ ॥ प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ॥ वधं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥ ४३ ॥ इति संचिंत्य भगवान्मारीचः कुरुनंदन ॥ उवाच किंचित्कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥ ४४ ॥ कश्यप उवाच ॥ पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबांधवः ॥ संवत्सरं व्रतमिदं यद्यंजो धारयिष्यसि ॥ ४५ ॥ दितिरुवाच ॥ धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन् ब्रूहि कार्याणि

मेरा मन अत्यन्त ही वश में करलिया है,इसकारण आज मैं निःसन्देह नरकमें पड़ूँगा ३९ अहो ! वास्तव में देखा जाय तो अपने स्वभाव के अनुसार वर्त्ताव करनेवाली स्त्रीका इस में कौन अपराध है ? मैं हीं इन्द्रियों के अधीन होकर अपने हानिलाभ के विषय में मूढ़ हुआ हूँ इसकारण मुझेही धिक्कार हो ॥ ४० ॥ अरे ! स्त्रियों का मुख देखो तो साक्षात् शरदृतु के कमल की समान खिला होता है, वार्त्तालाप सुनो तो अमृत की समानकर्णों को मधुर लगनेवाला होता है परन्तु हृदय का यदि विचार किया जाय तो केवल वह ही छुरेकी धारकी समान तीखा होता है इसकारण स्त्रियों का कृत्य कौन जानता होगा? ४१ अहो ! अपने प्रिय कार्य की कामना से जो साक्षात् आत्माकी समान प्रिय प्रतीत होती हैं ऐसी स्त्रियों को वास्तवमें कोई भी प्यारा नहीं है,क्योंकि—अपने प्रयोजनके निमित्त पति का, पुत्र का अथवा भ्राता का वह आप ही वध करती हैं और दूसरोंसे भी प्राणान्त करवा देती हैं ॥ ४२ ॥ वरदेता हूँ, ऐसी जो मैंने प्रतिज्ञा करी है, वह मेरा कथन असत्य नहो और यह इन्द्र देवताओंके राजा होने के कारण वधके योग्य नहीं हैं अतः इनका वधभी नहो.इन दोनों वार्त्ताओं की सिद्धि होने के निमित्त मैं इस दिति को वैष्णव व्रतका उपदेश करूँ, तब उस व्रत के करने से इसका चित्त शुद्ध होनेपर इन्द्रके ऊपर जो इसको क्रोध आरहाहै वह भी शान्त होजायगा और इसको मृत्युरहित पुत्रभी प्राप्त होजायगा तथा उस व्रत को करने में बहुतसा समयलगने के कारण कुछतो उसकी विधि में विघ्न होकर वैगुण्य होगाही तब इन्द्रका भी वध नहींहोगा, तिससे इस विषय में ऐसा करनाही योग्य है॥ ४३॥हे कुरुनन्दन ! मरीचिपुत्रभगवान् कश्यपजी ने ऐसा विचार करा और कुछ क्रोध में होकर अपनी निन्दा करतेहुए उसको यह कहा ॥४४॥ कश्यपजी ने कहा कि—हे भद्रे ! मैं जो व्रत बताता हूँ उसव्रतको यदि तू एकवर्ष पर्यन्त सर्वथा मेरे कहने के अनुसार ही धारण करेगी तो तेरे इन्द्रका मारने वाला पुत्र होगा और यदि उस व्रत में कुछभी अन्तर पड़ातो वह पुत्र देवताओं का बन्धु (इन्द्रका पक्षपाती) होजायगा ॥४५॥

यानि मे ॥ यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥ ४६ ॥ कश्यप उवाच ॥ न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् ॥ नच्छिंद्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमंगलम् ॥ ४७ ॥ नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न संभाषेत दुर्जनैः ॥ न वसीताधौतवासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥ ४८ ॥ नोच्छिष्टं चंडिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतं ॥ भुंजीतोदक्यया दृष्टं पिबेदंजलिना त्वपः ॥४९॥ नोच्छिष्टास्पृष्टसलिला संध्यायां मुक्तमूर्धजा ॥ अनर्चिताऽसंयतवाक्संवीता बहिश्चरेत् ॥ ५० ॥ नाधौतपादाऽप्रयता नार्द्रपान्नोउदक्शिराः ॥ शयीत नापराङ्नान्यैर्न नग्ना न च संध्ययोः ॥ ५१ ॥ धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमंगलसंयुता ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्राञ्श्रियमच्युतं ॥ ५२ ॥ स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ॥ पतिं चार्च्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ॥

दिति कहनेलगीकि—हेब्रह्मन् ! मैं व्रतको धारण करूँगी इसकारण इसव्रत के विषय में आवश्यक कृत्य कौन २ से हैं, निषिद्ध कृत्य कौन से हैं और व्रतका विघात न करनेवाले, आवश्यक न होनेवाले तथा निषिद्ध भी नहीं ऐसे विहित कृत्य कौन से हैं ? वह सब आप मुझसे कहिये ॥ ४६ ॥ कश्यपजी ने कहाकि—हेकल्याणि ! प्राणियों के समूहों में से किसीकी भी हिंसा न करे, किसीको भी शाप न देय, मिथ्या भाषण न करे, नख और केशों को न कटवावे और अमङ्गल पदार्थों का स्पर्श न करे ॥ ४७ ॥ तैसे ही जल में घुसकर स्नान न करे, किसी के ऊपर कोप न करे, दुर्जनों से सम्भाषण न करे, विना धुले वस्त्र धारण न करे और पहिले धारण कराहुई पुष्पमाला कोभी कभी धारण न करे ४८ तैसे जूठा, भद्रकाली देवीका अर्पण कराहुआ वा पिपीलिकाओं का (चींटियों का)दूषित कराहुआ मांस से युक्त, शूद्रका लायाहुआ, और रजस्वला का देखाहुआ अन्नभोजन न करे, तथा अञ्जलि से जल नहीं पिये ॥ ४९ ॥ तथा जूठा मुख होने पर, हाथ पैर, धुले न होनेपर, सन्ध्याकाल के समय,केश खुलेहुए होनेपर, आभूषण धारण न करेहुए होनेपर मौनव्रत विनाधारण करे और शरीरपर कोई वस्त्र विना ओढ़े कदापि घरसे वाहर न जाय ॥ ५० ॥ तैसे ही हाथ पैर विना धोये, असावधान होनेपर, पैरगीलेहोनेपर, उत्तर की ओर को शिर करके, पश्चिम को शिर करके, दूसरों से शरीर लगाकर, नग्न होकर और सन्ध्याकाल के समय कदापि शयन न करे ॥ ५१ ॥ इसप्रकार कहेहुए निषेध का पालन करे और धुलाहुआ वस्त्र पहिनकर पवित्र होकर तथा सौभाग्य आदि सकल मङ्गलों से युक्त होकर प्रथम भोजन करने के पहिले गौ, ब्राह्मण, लक्ष्मी और श्रीनारायण का पूजन करे ॥ ५२ ॥ तैसे ही—माला, गन्ध, नैवेद्य, और आभूषण आदि सामग्रियों से सौभाग्य वती स्त्रियों का पूजन करे तथा तिसीप्रकार पति का पूजन करके उस की सेवा में तत्पर

॥ ५३ ॥ सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् ॥ धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥ ५४ ॥ बाढमित्यभिप्रेत्याथ दिती राजन्महामनाः ॥ काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ॥ ५५ ॥ मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद ॥ शुश्रूषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥ ५६ ॥ नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् ॥ पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥ ५७ ॥ एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप ॥ प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥ ५८ ॥ नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ॥ चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥ ५९ ॥ एकदा सा तु सन्ध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता ॥ अस्पृष्टवार्यधौताङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥ ६० ॥ लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्राऽपहृतचेतसः ॥ दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥ ६१ ॥ चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ॥ रुदन्तं

रहे और मेरी कोख में हैं ऐसा विचार करती रहे ॥ ९३ ॥ इस पुत्रोत्पत्ति करनेवाले सम्वत्सरभर के व्रत को यदि तू निरन्तर धारण करेगी तो तेरे इन्द्र का वध करनेवाला पुत्र होगा ॥ ९४ ॥ हेराजन्! तदनन्तर उस दिति ने, 'ठीक है' मैं इसप्रकारही व्रत को धारण करूँगी, ऐसाकहा और अब मेरे इन्द्रका मारनेवाला पुत्र होगा, ऐसे अभिमान से अपने मन में प्रसन्न होकर उस ने कश्यपजी के गर्भ को धारण करा और व्रत भी सबप्रकार, कहीहुई रीति के अनुसार ही धारण करा ॥ ९५ ॥ हेमानप्रद राजन्! इधर ज्ञानवान् इन्द्र, उस अपनी माता की बहिन (मौसी) का अभिप्राय जानकर, आश्रम में व्रतधारण करके रहनेवाली उस दिति की सेवकवृत्ति से शुश्रूषा करनेलगा ॥ ९६ ॥ पुष्प, फल, मूल, समिधा, कुश, पत्र, दूर्वा के अंकुर, मृत्तिका और जल, यह सब पदार्थ वह नित्य समय २ पर वन से लाकर उस को देता था ॥ ९७ ॥ हेराजन्! जैसे व्याधा मृगों को फँसाने के निमित्त मृगका वेष धारण करता है उस व्रतधारिणी दिति के व्रत में कोई एक छिद्र पानेकी इच्छा करनेवाला वह इन्द्र कपट से साधुका वेष धारण करके इस प्रकार उस की सेवाकरने लगा ॥ ९८ ॥ परन्तु हेराजन्! छिद्र ढूँढने में तत्पर रहतेहुए भी उस इन्द्र ने जब व्रत में कोई छिद्र (विघ्न करने का अवसर) नहीं पाया तबतो 'इस विषय में किसप्रकार मेरा कल्याण होगा' ऐसी चिन्ता करनेलगा ॥ ९९ ॥ ऐसा होते २ एकसमय व्रत करने के श्रम के कारण दुर्बल होकर प्रारब्ध से मोहितहुई वह दिति, उच्छिष्ट होकर मुख और चरण विना धोये ही सन्ध्याकाल में सोरही ॥ ६० ॥ इतने ही में इस अवसर को पाकर, जिस के चित्त को निद्रा ने हरलिया है ऐसी उस दिति के पेट में योगाधिपति इन्द्र ने अपनी योगमाया के बल से प्रवेश किया ॥ ६१ ॥ और उस इन्द्र ने, तहाँ सुवर्ण की समान कान्तिवाले गर्भ के वज्र से सात टुकडे़ करे ऐसा करनेपर भी जब वह गर्भ रुदन

सप्तधैकैकं मारोदीरिति तान्पुनः ॥ ६२ ॥ ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्रांजलयो नृप ॥ नो जिघांससि किं इन्द्र भ्रातरो मरुतस्तवं ॥ ६३ ॥ मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः ॥ अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥ ६४ ॥ न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकंपया ॥ बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥ ६५ ॥ सकृदिष्ट्वादिपुरुषं पुरुषो याति साम्यतां ॥ संवत्सरं किंचिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥ ६६ ॥ सजूरिन्द्रेण पंचाशद्देवास्ते मरुतोभवन् ॥ व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥ ६७ ॥ दितिरुत्थाय ददृशे कुमारानलप्रभान् ॥ इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यदनिंदिता ॥ ६८ ॥ अथेंद्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम् ॥ अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥ ६९ ॥ एकः संकल्पितः पुत्रः सप्त सप्ताभवन्कथं ॥ यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥ ७० ॥ इन्द्र उवाच ॥

करनेलगा तब इन्द्र ने 'तू रुदन न कर' ऐसेभाषण से उसका लाड़ सा करके उन टुकड़ों में से एक एक के फिर सात सात टुकड़े करे ॥ ६२ ॥ हेराजन्! इसप्रकार जब वह इन्द्र, उन को वज्र से चीरनेलगा तब वह सब हाथ जोड़कर उस से कहनेलगे कि--हेइन्द्र! हम मरुद्गण नामक तेरेभ्राता हैं फिर तू हमे मारने की इच्छा क्यों करता है? ॥ ६३ ॥ इसप्रकार उन के कहनेपर इन्द्र ने यह सर्वथा अनन्यभावसे मेरी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले मरुद्गण हैं ऐसा निश्चय करके उन से कहा कि--हेमरुद्गणों! अब भय न करो, तुम मेरेभ्राता हो ॥ ६४ ॥ हेराजन्! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से भस्म होताहुआ भी तू जैसे मरण को नहीं प्राप्त हुआ तैसेही इन्द्रके वज्र से अनेकों प्रकार छिन्न भिन्न हुआ वह दिति का गर्भ भी भगवान् की कृपा से मरण को नहीं प्राप्तहुआ ॥ ६५ ॥ हेराजन् आदिपुरुष भगवान् का एकवार पूजन करके भी पुरुष को उनकी साम्यता (मुक्ति) प्राप्त होती है फिर कुछ एक कम एकवर्ष पर्यन्त दिति ने श्रीहरि का आराधन करा इसकारण उस का गर्भ मरण को नहीं प्राप्त हुआ इस में कोई आश्चर्य की वार्त्ता नहीं है किन्तु उस गर्भ के टुकड़ो से मरुद्गण नामवाले इन्द्र के सहित गिनने में पचास देवता उत्पन्नहुए और उन में का दैत्यपना रूप माता का दोष दूर करके इन्द्र ने उन को यज्ञ में सोमपान का अधिकारी किया ॥ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इधर दिति ने उठकर इन्द्र के साथ उन अग्नि की समान तेजस्वी कुमारों को देखा और इन्द्रके ऊपर मनमें क्रोध न लाकर वह दिति सन्तुष्टही हुई ॥ ६८ ॥ तदनन्तर उसने इन्द्रसे कहा कि--हेबेटा इन्द्र! देवताओंको भय देनेवाला पुत्र प्राप्तहो इस इच्छासे मैंने इस अतिदुष्कर व्रत का आचरण कराया ॥ ६९ ॥ हेपुत्र! मैंने एकही पुत्रका सङ्कल्प कियाथा और यह उनञ्चास कैसे हुए? यदि तुझे विदितहो तो मुझसे सत्य कह झूठनहीं कह।

अत्र तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽतिकम् ॥ लब्धांतरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥ ७१ ॥ कृत्तो मे सप्तधा गर्भ आसन्सप्त कुमारकाः ॥ तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मम्रिरे ॥ ७२ ॥ ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया ॥ महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यानुषंगिणी ॥ ७३ ॥ आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ॥ ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥ ७४ ॥ आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ॥ को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥ ७५ ॥ तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि ॥ क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥ ७६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तयाऽभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ॥ मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥ ७७ ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ मंगलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥ ७८ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ व्रतं पुं-

।७०। इन्द्रने कहा कि—हेमातः ! मैंतेरे मनके निश्चयको जानकर धर्म की ओर ध्यान न देकर केवल स्वार्थबुद्धिसे ही तेरे समीप आकर रहाथा, सो मैंने अवसर पाकर तेरे गर्भ का छेदन करा है ॥ ७१ ॥ पहिले मैंने तेरे गर्भ के सात टुकड़े करे तब वह तत्काल सात पुत्र हुए तदनन्तर उन सातों में से भी एक २ के सात २ इसप्रकार उनञ्चास टुकड़े करे वह भी मरण को नहीं प्राप्तहुए किन्तु पुत्र ही हुए तब इस परम आश्चर्य को देखकर, ' यह भगवानकी पूजाकी कोई आनुषाङ्गिक फलरूप अवर्णनीय सिद्धि है ' ऐसा मैंने निश्चय करा ७२।७३ इसकारण जो निष्काम बुद्धिसे भगवान्‌की आराधना करतेहैं और मोक्ष की भी इच्छा नहीं करते हैं वह पुरुष ही अपने हानिलाभ को समझने में प्रवीण हैं ऐसा शास्त्र में कहा है ७४ इसकारण अपने आत्मा और अध्यात्मज्ञान देनेवाले जगन्नाथ देव की आराधना करके,कौन सा ज्ञानी पुरुष, विषय भोग की इच्छा करेगा ? अर्थात् कोई भी नहीं करेगा, क्योंकि—विषय भोग तो नरक में भी होते ही हैं ॥ ७५ ॥ तिस से हे परमपूज्य मातः ! तुझे, मुझमूढ़ का यह अपराध क्षमा करना उचित है, क्योंकि- तेरा यह गर्भ मरण को प्राप्त होकर भी ईश्वर की कृपा से बचगया यह बड़ा अच्छा हुआ ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—इसप्रकार इन्द्र ने अपना शुद्धभाव दिखाया तब इस भाव से सन्तुष्ट हुई तिस दिति ने इन्द्र को स्वर्ग को चलेजाने की आज्ञा दी तब वह प्रभु इन्द्र, मरुद्गणों के साथ उस को नमस्कार करके स्वर्ग को चलागया ॥ ७७ ॥ हे राजन् ! तुमने, मरुद्गणों के मङ्गलकारी जन्म के विषय में जो मुझ से प्रश्न कराथा वह यह सब आख्यान मैंने तुम्हें कह सुनाया, अब मैं तुम से दूसरा कौन विषय कहूँ ? सो प्रश्न करो ॥ ७८ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध में अष्टादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! जिस

सर्वं नः ब्रह्मन् भवता यदुदीरितम् ॥ तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसी-
दति ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया ॥ आर-
भेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥ निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणान-
नुमन्त्र्य च ॥ स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालंकृताम्बरे ॥ पूजयेत्प्रातराशा-
त्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥ ३ ॥ अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोस्तु ते ॥
महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥ यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा म-
हिम्नौजसा ॥ जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोसि भगवान् प्रभुः । ५ ॥ विष्णुपत्नि
महामाये महापुरुषलक्षणे ॥ प्रीयतां मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥
॥ ६ ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महा-
विभूतिभिर्बलिमुपहाराणीति अनेनाहरहर्मन्त्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्प-
र्शनस्नानवासउपवीतविभूषणगन्धपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहिता उ-

से विष्णुभगवान् प्रसन्न होते हैं ऐसा जो पुंसवन नामवाला (पुत्र की उत्पत्ति करने
वाला) व्रत तुमने कहा है उस को विस्तार के साथ जानने की मेरी इच्छा है ॥ १ ॥
श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! परीक्षित मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्लपक्ष
में भर्त्ता की आज्ञा लेकर स्त्री, प्रतिपदा के दिन इस सकल मनोरथों को पूर्ण करनेवाले
व्रत का प्रारम्भ करे ॥ २ ॥ पहिले मरुद्गणों के जन्म की कथा को सुनकर व्रत करने के
निमित्त ब्राह्मणों से बूझे और दन्तधावन, स्नान तथा स्वेत वस्त्र धारण करके आभूषण
पहिने और प्रथम भोजन से पहिले लक्ष्मीसहित भगवान् श्रीनारायण का पूजन करे।३।
तिस पूजन में पहिले नमस्कार का मन्त्र कहते हैं–हे पूर्ण मनोरथ परमेश्वर ! तुम्हारे
विषैं सकल वस्तुएं परिपूर्ण हैं क्योंकि–तुमनिरपेक्ष और लक्ष्मीपति हो और तुम्हारे विषैं
सकल अणिमा आदि सिद्धियें हैं ऐसे हे भगवन् ! आपको वारंवार नमस्कारहो ॥ ४ ॥
हे ईश्वर ! तुम जो कृपा, श्री, ऐश्वर्य, महिमा, वीर्य और सत्यसङ्कल्प आदि अन्य भी सकल
गुणों से परिपूर्ण हो इसकारण तुम भगवान् और सर्व समर्थ हो ॥ ५ ॥ हे विष्णुपत्नि !
हे महामाये ! हे परमेश्वर लक्षणयुक्ते ! हे महाभागे ! और हे लोकमातः ! तू मेरे ऊपर
प्रसन्न हो इस निमित्त मैं तुझे नमस्कार करती हूँ, इस मन्त्र से नमस्कार करे ॥ ६ ॥
अव पूजन का मन्त्र कहते हैं कि–हे राजन् ! षड्गुण ऐश्वर्यसम्पन्न, पुरुषोत्तम, महाप्र-
भावशाली, लक्ष्मीपति और बडी २ विभूतियों से युक्त तुम भगवान् को ॐकारपूर्वक
नमस्कार करके मैं पूजा की सामग्रियें समर्पण करती हूँ इस अर्थवाले मूल में लिखेहुए
मन्त्र से, स्वस्थ अन्तःकरणपूर्वक प्रतिदिन आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र,
यज्ञोपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि उपचार श्रीविष्णुभगवान् को

पहरेत् ॥ ७ ॥ हविःशेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥ ८ ॥ श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ ॥ भक्त्या संपूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसंपदः ॥ ९ ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ दशवारं जपेन्मन्त्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ १० ॥ युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ॥ इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया ॥ ११ ॥ तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः ॥ त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग् भवान् ॥ १२ ॥ गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग्भवान् ॥ त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया ॥ नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥ १३ ॥ यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ॥ तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः ॥ १४ ॥ इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह ॥ तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाचमनमर्चयेत् ॥ १५ ॥ ततः स्तुवीत

समर्पण करे ॥ ७ ॥ और जो नैवेद्य में से शेष रहे, उस की वारह आहुति अग्नि में, षड्गुण ऐश्वर्यसम्पन्न, पुरुषोत्तम और लक्ष्मीपति तुम परमेश्वर को ' ॐनमः स्वाहा ' (ॐकार पूर्वक और नमस्कार पूर्वक यह हविर्भाग समर्पण हो) इस अर्थवाले मूल में लिखे मन्त्र से हवन करे ॥ ८ ॥ इसप्रकार, जिस को सकल सम्पत्तियों की इच्छा हो वह, जिन से सकल लोकों की उत्पत्ति होती है और जो सकल मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं उन दोनों लक्ष्मीनारायण का नित्य भक्ति के साथ पूजन करे ॥ ९ ॥ और तदनन्तर भक्ति से नमेहुए अन्तःकरण के द्वारा भूमिपर साष्टाङ्ग नमस्कार करके तदनन्तर पूर्वोक्त मन्त्रका दशवार जप करे और इस स्तोत्र का पाठ करे कि– ॥ १० ॥ हेलक्ष्मी नारायण ! तुम सकल जगत् के मुख्य कारण और प्रभु हो, हेप्रभो ! यह तुम्हारी स्त्री लक्ष्मी तो सूक्ष्म, दुर्ज्ञेय, माया और शक्ति इन नामोंवाली साक्षात् प्रकृति ही है ॥ ११ ॥ और उसका नियन्ता जो परमपुरुष सो तुम ही हो, हेपरमेश्वर ! तुम सर्वज्ञ यज्ञरूप हो, यह इज्या है, तथा तुम फल भोगनेवाले हो और यह लौकिक क्रिया है ॥ १२ ॥ तुम सत्वादिगुणों को प्रकट करनेवाले और उपभोग करनेवाले काल हो और यह देवी सत्वादि गुणों की साम्यावस्था है, तुम सकल शरीरमें रहनेवाले अन्तरात्मा हो और यह लक्ष्मी शरीर और इन्द्रियों का आश्रयभूत है, तुम नामरूपों के आधार और प्रकाशक हो तथा यह भगवती लक्ष्मी नामरूप स्वरूपिणी है, इसप्रकार तुम दोनों का सम्बन्ध है ॥ १३ ॥ तुम दोनों जो त्रिलोकी को वरदेनेवाले और परमेश्वर हो सो हेश्रेष्ठ कीर्त्तिवाले देव ! मेरा बड़ा भारी मनोरथ भी तुम से परिपूर्ण हो ॥ १४ ॥ हेराजन् ! इसप्रकार वरदायक नारायण की लक्ष्मी के साथ स्तुति करके उस नैवेद्य को एकत्रकरे और आचमन देकर फिर पूजन

स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥ १६ ॥
पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ॥ प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं
पतिः ॥ बिभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥ १७ ॥ कृतमेकतरेणापि
दंपत्योरुभयोरपि ॥ पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥ १८ ॥ विष्णो-
र्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात्कथंचन ॥ विप्रान् स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गंधबलिमं-
डनैः ॥ अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥ १९ ॥ उद्वास्य देवं स्वे
धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ॥ अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥ २० ॥
एतेन पूजाविधिना मासान् द्वादश हायनम् ॥ नीत्वाऽथोपचरेत्साध्वी कार्तिके
चरमेऽहनि ॥ २१ ॥ श्वोभूतेऽपे उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ पयःशृ-
तेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ॥ पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥
॥ २२ ॥ आशिषः शिरसादाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः ॥ प्रणम्य शिरसा
भक्त्या भुंजीत तदनुज्ञया ॥ २३ ॥ आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह ब-

करे ॥ १५ ॥ तदनन्तर अन्तःकरण को भक्ति से नम्र करके, (पूर्वोक्त) स्तोत्र के द्वारा स्तुतिकरे, यज्ञपुरुष भगवान् के उच्छिष्ट को सूँघकर फिर भी श्रीहरिका पूजनकरे तैसेही ईश्वरबुद्धि से परमभक्ति के साथ, जो जो पदार्थ पति को प्रिय हों तिन तिन पदार्थों से पति की सेवा करे और पतिभी प्रेम के साथ स्वयं ही स्त्री के छोटे बड़े सकल कार्यों को सिद्धकरे ॥ १६ ॥ १७ ॥ स्त्रीपुरुष दोनों में से एककाभी कराहुआ कर्म दोनों को फल देता है इसकारण यदि स्त्री (रजस्वल धर्म आदि के कारण) पूजन करने के अयोग्य हो तो पति ही स्वस्थ अन्तःकरण से यह सब कार्य करे ॥ १८ ॥ क्योंकि—चाहें कैसा ही अवसर आपड़े तोभी विष्णुभगवान् के व्रत को धारण करनेवाला व्रतभङ्ग न करे, नियम के साथ इस व्रत को धारण करनेवाला देवपूजन करने के अनन्तर माला, गन्ध, नैवेद्य और आभूषण आदि सामग्रियों से प्रतिदिन ब्राह्मण और सौभाग्यवती स्त्रियों का पूजन करे १९ तदनन्तर भगवान् की मूर्ति को देवस्थान में स्थापन करके देहकी शुद्धि और सकल मनोरथ पूर्ण होने के निमित्त भगवान् को निवेदन कराहुआ प्रसाद प्रथम यथोचित विभाग करके औरों को बाँटकर फिर आप भक्षण करे ॥ २० ॥ इस पूजन की रीति से बारहमास के * एकवर्ष पर्यन्त पूजन करके कार्तिक मास के अन्त के दिन वह पतिव्रता स्त्री उपवास करे ॥ २१ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर स्नान करके पहिले की समान विष्णुभगवान् का पूजन करे और दूध में पकायेहुए घृतयुक्त चरु से पार्वणस्थालीपाककी विधि करके पति, बारह आहुतियों का हवन करे ॥ २२ ॥ तदनन्तर सुप्रसन्न ब्राह्मणों के दिये हुए आशीर्वादों को शिर से ग्रहण कर के उन ब्राह्मणों को मस्तक नमाकर प्रणाम करे

* इस से जिस वर्ष में अधिकमास सहित तेरह मास हों उस वर्ष में इस व्रत को धारण न करे, ऐसा सिद्ध होता है ।

न्धुभिः ॥ दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजस्त्वं सुसौभगम् ॥ २४ ॥ एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभोरभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ॥ स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहं ॥२५॥ कन्या च विंदेत समग्रलक्षणं वरं त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ॥ मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूप-मग्र्यम् ॥ २६ ॥ विंदेद्विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयावींद्रियकल्पदेहम् ॥ एतत्पठन्नाभ्युदये च कर्मण्यनंततृप्तिः पितृदेवतानां ॥ २७ ॥ तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्होमावसाने हुतभुक् श्रीहरिश्च ॥ राजन्महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥ २८ ॥ इतिश्रीभागवते महा-पुराणे षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रतकथनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ७ ॥

और उन की आज्ञा से आचार्य को आगे भोजन के निमित्त बैठाकर फिर आपभी मौन होकर वन्धुवर्गों सहित भोजन करे तदनन्तर सत्पुत्र देनेवाला और सौभाग्यकारी शेषवचा चरु स्त्री को समर्पण करे ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे राजन् ! विधिपूर्वक इस व्रत के करनेपर पुरुष को भगवान् से इस लोक में ही इच्छित पदार्थ की प्राप्ति होती है; स्त्री को भी इस व्रत का आचरण करनेपर सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, दीर्घायुवाला पति, यश और घर की प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ तैसे ही कन्या को इस व्रत का आचरण करनेपर सर्व लक्षणयुक्त पति प्राप्त होता है, विधवा करे तो पापों से छूटकर उत्तम गति पातीहै, जिस की सन्तान जीती न हो वह स्त्री इस व्रत के करनेपर चिरजीवी पुत्र पाती है, धनवती होकर भी भाग्यहीन स्त्री इस व्रत के करनेपर सौभाग्यवती होती है, कुरूपा स्त्री करे तो उत्तम रूप पाती हैं, रोगी इस व्रत को करे तो अपने रोग से छूटकर इन्द्रियों सहित दृढ़ शरीरवाला होता है और यज्ञ आदि कर्मों में पुरुष इस को पढ़े तो उस के पितर और देवता अत्यन्त तृप्त होते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ और वह सन्तुष्ट होकर सकल मनोरथों को पूर्ण करते हैं तैसे ही अग्नि के द्वारा हवि का भाग ग्रहण करनेवाले श्रीहरि और लक्ष्मी यह दोनों हवन समाप्त होनेपर सन्तुष्ट होकर व्रत करनेवाले के सकल मनोरथ पूर्ण करते हैं, हेराजन् ! मरुद्गणों का महान् पुण्यकारी जन्म और दिति का महान् व्रत यह सब मैंने तुम से कहा ॥ २८ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध में एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥ * ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि–मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र–गौड़वंश्य–श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान–विद्यालये प्रधानाध्यापक–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदाया-चार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोप–नामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषा-नुवादेन च सहितः षष्ठस्कन्धः समाप्तः ॥

समाप्तोयं षष्ठस्कन्धः

अथ सप्तमस्कन्धप्रारम्भः

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान्स्वयं ॥ इंद्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥ १ ॥ नह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः ॥ नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥२॥ इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान्प्रति ॥ संशयः सुमहान् जातस्तद्भवांश्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् ॥ यत्र भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनं ॥ ४ ॥ गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः ॥ नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथां ॥ ५ ॥ निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान्प्रकृतेः परः ॥ स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥ ६ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ न तेषां युगपद्राजन् ह्रास-

॥ श्रीः ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! सकल प्राणियों का हित करनेवाले, उन को प्रिय लगनेवाले और उन में समदृष्टि रखनेवाले भगवान् ने, इन्द्र के पक्षपात से शत्रु की समान दैत्यों का वध स्वयं कैसे करा ? ॥ १ ॥ क्योंकि-साक्षात् परमानन्द-स्वरूप इन विष्णुभगवान् का देवताओं से कोई प्रयोजननहीं इसकारण देवताओं के ऊपर उन की प्रीति नहीं होसक्ती और असुरों से उन को कोई भय नहीं था इसकारण उन असुरों से उन का द्वेष होना भी सम्भव नहीं ॥ २ ॥ ऐसा होनेपरभी हे महाभाग ! देवताओं के ऊपर अनुग्रह और दैत्यों का निग्रह भगवान् ने करा इस से श्रीनारायण के गुणों के विषय में हमें बड़ाभारी सन्देह होगया है उस को आप दूर करिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हेमहाराज ! जिसमें अति पुण्यकारी और भगवान् की भक्ति की वृद्धि करनेवाले भगवद्भक्त प्रल्हादजी का माहात्म्य नारदादि ऋषियों ने गान करा है उस अद्भुत हरिचरित्र के विषय में तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न करा है; इस कारण व्यास मुनि को नमस्कार करके मैं अब हरिकथा कहने का प्रारम्भ करता हूँ ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे राजन् ! मायातीत,निर्गुण, जन्म आदि विकारशून्य और देह इन्द्रियादि रहित भी भगवान्, अपनी मायाके सत्वादि गुणों में प्रवेश करके देव दैत्यों में परस्पर के बाध्यबाधक धर्म के कारणहुए हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! सत्व, रज और तम यह गुण प्रकृति के ही हैं, परमात्मा के नहीं हैं; यदि कहो कि-ईश्वरने अपनी इच्छासे गुणों में प्रवेश करा है इस कारण पक्षपातरूप विषमता उन में आवेगीही, ऐसी शङ्का आती है सो ठीक नहीं क्योंकि-गुणों में ईश्वर का प्रवेश कालवश होता है ऐसा कहते हैं कि-हे राजन् ! उन

उल्लास एव वा ॥ ७ ॥ जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् ॥ तम-
सो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥ ८ ॥ ज्योतिरादिरिवाभाति संघा-
तान्न विविच्यते ॥ विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः ॥ ९ ॥ यदा
सिसृक्षुः पुर आत्मनः परो रजः सृजत्येष पृथक् स्वमायया ॥ सत्त्वं विचित्रासु
रिरंसुरीश्वरः शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥ १० ॥ कालं चरन्तं सृजतीश आ-
श्रयं प्रधानपुंभ्यां नरदेव सत्यकृत् ॥ य एष राजन्नपि काल ईशिता सत्त्वं सु-

सत्वादि गुणों की न्यूनता वा वृद्धि एकसाथ नहीं होती है ॥ ७ ॥ सत्वगुण की जय के समय परमात्मा उसकाल के अनुकूल होकर देवता और ऋषियों के शरीरों में प्रवेश कर उन को बढ़ाते हैं; तैसे ही रजोगुण की जय के समय असुरों के शरीरों में प्रवेश कर के उन को बढ़ाते हैं और तमोगुण की जय के समय में यक्ष और राक्षसों के शरीरों में प्रविष्ट होकर उन को बढाते हैं ॥ ८ ॥ जैसे अग्नि, जल और आकाश आदि पदार्थ, काष्ठ,जल के पात्र और घट आदिमें उन काष्ठ आदिकी समानही अनेकों रूपवाले प्रतीत होते हैं तैसे ही भगवान् भी देवता आदिकों में प्रतीत होतेहैं परन्तु जैसे अग्नि आदि काष्ठ आदिकों में भिन्नरूप से प्रतीत होते हैं, केवल वैसेही प्रतीत नहीं होते हैं परन्तु इस से वह नहीं हैं ऐसा नहीं कहाजासक्ता; क्योंकि–सूर्यकान्त में अग्नि प्रत्यक्ष नहीं दीखता है तथापि दाहक (जलानेवाली) शक्ति के अनुभव से जैसे तहां उस के होने का अनुमान किया जाता है अथवा वायु के दृष्टि से न दीखनेपर भी गन्ध का अनुभव होनेपर जैसे उस वायु का ज्ञान होता है तैसे ही सृष्टि आदि कार्यों का अनुभव होनेपर प्रवीण पुरुष,विचार कर के और स्वभाव, काल तथा कर्म आदि वादों का निषेध कर के अपनेमें विद्यमान परमात्माको जानतेहैं॥९॥इस प्रकार मायाके गुणोंसे ही ईश्वर के विषैं यह विषमता प्रतीत होतीहै,वह स्वाभाविक नहींहै,ऐसा वर्णन करा,अब गुणों के अधीन होनेके कारण ईश्वर में अनीश्वरपना आवेगा ? इस शङ्का के विषयमें कहतेहैं कि–जब जीव के भोग के निमित्त परमेश्वर को शरीर उत्पन्न करने की इच्छा होती है तब वह साम्यावस्था में के रजोगुण को अपनी माया के द्वारा अलग करके उस की वृद्धि करते हैं, तैसेही जब उन को चित्र विचित्र शरीरों में क्रीड़ा करने की इच्छा होती है तब सत्वगुण को पृथक् करके उस की वृद्धि करते हैं और जब उन को क्रीड़ा का उपसंहार (समाप्ति) करने की इच्छा होती है तब वह विश्व का संहार करने के निमित्त तमोगुण को पृथक् करके उस की वृद्धि करते हैं ॥ १० ॥ जब और तब इन कालबोधक शब्दों से ईश्वर काल के अधीन है ऐसा प्रतीत होता है, इस का निवारण करतेहुए, ईश्वर प्रकृति के और पुरुष के अधीन नहीं है ऐसा कहते हैं–हे नरेन्द्र ! निमित्तरूप प्रकृति और पुरुष के द्वारा सृष्टि आदि सकल व्यापारों के करनेवाले यह ईश्वर, प्रकृति और पुरुष के सहायक होने के कारण उन

रानीकमि-ऋर्धयत्यतः। तत्प्रत्ययैनीकानसुरान्सुरप्रियो रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥ ११ ॥ अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा ॥ प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छतेऽजातशत्रवे ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ ॥ वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥ १३ ॥ तत्रासीनं सुरऋषिं राजा पांडुसुतः क्रतौ ॥ पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अहो अत्यद्भुतं ह्येतद् दुर्लभैकांतिनामपि ॥ वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥ १५ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने ॥ भगवन्निंदया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥ १६ ॥ दमघोषसुतः पाप आरभ्य क-

---

के आश्रयभूत काल को स्वयं आप ही उत्पन्न करते हैं, वह काल ईश्वर की चेष्टारूप है इस कारण, ईश्वर को काल के अधीन होना नहीं कहाजासक्ता परन्तु यह कहने का इस वर्तमान विषय में क्या सम्बन्ध है ? इस शङ्का का उत्तर कहते हैं कि-हे राजन् ! यह काल जब सत्वगुणकी वृद्धिकरताहै-इसकारण उसके नियन्ता यह महाकीर्त्तिमान् देवताओं के प्रिय ईश्वर भी, सत्वगुण जिन में प्रधान है ऐसे देवताओं के समूहों की वृद्धिकरते हैं और रजोगुण तथा तमोगुण जिनमें प्रधान है ऐसे देवताओं के शत्रु असुरों का वध करते हैं. सारांश यह है कि-कालशक्ति से क्षुभित हुए गुणों में की विषमता, उनके अधिष्ठाता ईश्वरके विषैं समीपता के कारण भासमान होती है ॥ ११ ॥ इसप्रकार,भगवान् के गुणों में जो राजा को शङ्का हुई थी उसको दूर करके अब, ईश्वर ने जो उससमय हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का वध करा सो देवताओं के पक्षपात से नहीं किया किन्तु ब्रह्मशाप से दैत्ययोनि को प्राप्त हुए उन अपने द्वारपालों के ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त ही उन का वध करा, यह कहने के आशय से इतिहास कहते हैं कि-हे राजन् ! 'ईश्वरने द्वेष आदि से रहित होकर भी दैत्यों का वध करा' इस विषय के ऊपर राजसूय नामक महाक्रतु में पूर्वकाल में राजा युधिष्ठिर ने प्रश्न किया था तब देवर्षि नारदजी ने प्रीति के साथ उन से इतिहास कहा था वह यह है कि-॥ १२ ॥ राजसूय नामक महाक्रतु में भगवान् वासुदेव के-विषैं शिशुपाल को प्राप्तहुई अति आश्चर्य करनेवाली सायुज्य नामवाली मुक्ति को देखकर पाण्डुपुत्र धर्मराजके चित्त को आश्चर्य प्रतीतहुआ तब सकल मुनियों के सुनते हुए यज्ञ में उन धर्मराज ने तहाँ बैठेहुए देवर्षि नारदजी से यह प्रश्न करा॥ १३ ॥ १४ ॥ राजायुधिष्ठिर ने कहा कि-हे नारदमुने ! यह शिशुपाल तो श्रीकृष्णभगवान् से द्वेष करताथा इस को मायातीत वासुदेवरूप तत्त्व में जो अनन्यभक्तों को भी दुर्लभ है ऐसी सायुज्यमुक्ति प्राप्तहुई यह बड़े आश्चर्य की वार्त्ता है ? ॥ १५ ॥ तिस से हे मुने ! हम सबों को इसके जानने की इच्छा है, क्योंकि-भगवान् की निन्दाके कारण राजावेनको ब्राह्मणों ने नरक में डाला तैसे ही इसको भी नरकगति प्राप्त होना उचित थी ॥ १६ ॥ क्योंकि दमघोष

लभार्षणात् ॥ समत्यमर्षी गोविंदे दंतवक्त्रश्च दुर्मतिः ॥ १७ ॥ शपतोरसकृद्विष्णुं यद्ब्रह्म परमव्ययम् ॥ श्वित्रो न जातो जिह्वायां नांधं विविशतुस्तमः॥१८॥ कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राह्यधामनि ॥ पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरंजसा ॥ १९ ॥ एतद्भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना ॥ ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः ॥ तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वंत्यास्तत्सदः कथाः ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ निंदनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम् । प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितं ॥ २२ ॥ हिंसा तदभिमानेन दंडपारुष्ययोर्यथा ॥ वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥ २३ ॥ यन्निबद्धोऽभिमानोयं तद्वधात्प्राणिनां वधः ॥ तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः ॥ परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥ २४ ॥ तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा ॥ स्नेहात्का-

---

का पुत्र पापी शिशुपाल तथा उसका छोटाभ्राता दुर्बुद्धि दन्तवक्र यह दोनो ही अत्यन्त बालक अवस्था में जवसे कोमल (तोतले) शब्द उचारण करनेलगे तव सेही इससमय पर्यन्त गोविन्द भगवान् से मत्सरबुद्धि (डाह) रखकर गालियें देतेरहे हैं ॥ १७ ॥ इसकारण अविनाशी, परब्रह्मस्वरूप, विष्णुभगवान् की निन्दा करनेवाले इन दोनो की जिव्हापर कुष्ठ न होकर और वह स्वयं घोर नरक में न पड़कर सब लोकों के देखतेहुए दुर्लभस्वरूप भगवान् के विषैं अनायास में ही कैसे लीनहोगये ? यह देखकर मेरी बुद्धि, वायुसे चलायमान होनेवाले दीपक की ज्वाला (लोह) की समान चक्कर खारही है, क्योंकि-यह अत्यन्त आश्चर्य की वात है ! अतः इस में क्या हेतु है सो कहिये, क्योंकि--आप सर्वज्ञ हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि--हेराजन् ! परीक्षित ! धर्मराज का यह कथन सुनकर भगवान् नारदजी सन्तुष्ट हुए और सकल सभा के सुनते हुए धर्मराज से 'सुनिये ऐसा कहकर' कहनेलगे ॥ २१ ॥ हेराजन् ! निन्दा, स्तुति, सत्कार औरतिरस्कार इन का ज्ञान होनेके निमित्त प्रकृति पुरुष के अविवेक से शरीर की रचना हुई है ॥ २२ ॥ हेराजन् ! उस शरीर के अभिमान से प्राणियों को जैसे उस शरीर में अहन्ता ममतारूप विषमता उत्पन्न होती है और उस विषमता करके ताड़ना और निन्दा अर्थात् ताड़ना से हिंसा और निन्दा से पीड़ा होती है और जिस शरीर में यह अभिमान अत्यन्त दृढहुआ है उस शरीर का वध होते ही प्राणियों को वधकरने का पाप लगताहै,तैसे ईश्वर को नहीं लगताहै,क्योंकि--वह सबोंका आत्मा अद्वितीय होने के कारण उस को प्राणियों की समान अभिमान नहीं है और वह परमात्मा दैत्यों के हित करने निमित्तही उन को दण्ड देता है,फिर उस को हिंसाका दोष कैसे लगसक्ताहै ? ॥२३॥२४॥

मेनं वा युंज्यात्कथञ्चिन्नेक्षते पृथक् ॥ २५ ॥ यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्त-
न्मयतामियात् ॥ न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥ २६ ॥
कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन् ॥ संरंभभययोगेन विंदते तत्स्व-
रूपताम् ॥ २७ ॥ एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे ॥ वैरेण पूतपाप्मान-
स्तमीयुरनुचिंतया ॥ २८ ॥ कामाद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः ॥
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥ २९ ॥ गोप्यः कामाद्भ-
यात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ॥ सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या
वयं विभो ॥ ३० ॥ कतमोऽपि न वेनः स्यात्पंचानां पुरुषं प्रति ॥
तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥ ३१ ॥ मातृष्वस्रेयो वश्चैद्यो
दंतवक्रश्च पाण्डव ॥ पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात्पदाच्च्युतौ ॥ ३२ ॥ यु-
धिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः ॥ अश्रद्धेय इवा-

---

नारदजी ने कहा कि–हेराजन् ! वैरभाव, निर्वैरभक्तियोग, भय, स्नेह अथवा काम इन में से चाहें जिस उपाय से ईश्वरके विषैं चित्त लगावे, क्योंकि–इन उपायों से मन लगानेपर पुरुष को मानो ईश्वरसे भिन्न कोई वस्तु दीखती ही नहीं है ऐसी दशा होजाती है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! जैसे मनुष्य, वैरभाव के द्वारा तन्मय होजाता है तैसे भक्तियोग से नहीं होता है ऐसा मेरी बुद्धिको निश्चय है ॥ २६ ॥ क्योंकि–जैसे भीतपर स्थान बनाकर भ्रमरका रोकाहुआ कीड़ा, द्वेष और भय से निरन्तर उसका स्मरण करने के कारण उस के ही स्वरूपका होजाता है तैसे ही माया से मनुष्य का रूप धारण करनेवाले सदानन्दरूप भगवान् ईश्वर के विषैं वैरभाव करके उनका वारम्वार चिन्तवन करनेवाले कितने ही प्राणी निष्पाप होकर उन के स्वरूपको प्राप्त होगए हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ हेराजन् ! काम, द्वेष, भय, स्नेह अथवा भक्ति, इन साधनों से ईश्वर में मन लगाकर और उस काम आदि के निमित्त से होनेवाले पाप को दूर करके बहुत से पुरुष उन की सायुज्यगतिको प्राप्तहुए हैं ॥ २९ ॥ काम से गोपी, भय से कंस, द्वेष से शिशुपाल आदि राजे, सम्बन्ध से यादव, स्नेह से तुम और हे धर्मराज ! भक्ति से हम उन के स्वरूप को प्राप्तहुए हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! भय आदि से श्रीहरि का चिन्तवन करनेवाले ऊपर कहेहुए पांचों में से राजा वेन कोई भी नहीं था, इसकारण उस को वह गति प्राप्त नहीं हुई. इसकारण किसी उपाय से भी हो कृष्ण के विषैं मन लगावे ॥ ३१ ॥ हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ! शिशुपाल और दन्तवक्र यह दोनों, तुम पाण्डवों के मौसेरे भ्राता, विष्णुभगवान् के प्रधान पार्षद थे और ब्राह्मणों के शाप से वैकुण्ठ से च्युत होगए थे ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिर ने कहा कि–हे मुने ! श्रीहरि के दासों का भी तिरस्कार करनेवाला किस का और कैसा हुआ ? अहो!

भाति हरेरेकांतिनां भवः ॥ ३३ ॥ देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ॥
देहसंबंधसंबद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ एकदा ब्रह्मणः
पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ॥ सनन्दनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयं ॥ ३५ ॥
पञ्चषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ दिग्वाससः शिशून्मत्वा द्वास्थौ ता-
न्प्रत्यषेधतां ॥ ३६ ॥ अशपन्कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः ॥ रजस्त-
मोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ॥ पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमा-
श्वतः ॥ ३७ ॥ एवं शप्तौ स्वभवनात्पतन्तौ तैः कृपालुभिः ॥ प्रोक्तौ पुनर्ज-
न्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पतां ॥ ३८ ॥ जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदा-
नववंदितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ ३९ ॥ हतो हिर-
ण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा ॥ हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥
॥ ४० ॥ हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम् ॥ जिघांसुरकरोन्नानायात-

---

यह शाप तो मुझे विश्वास करने योग्य नहीं प्रतीत होता ! क्योंकि–श्रीहरि के अनन्य भक्तों को जन्म प्राप्त होना तो असम्भवहै ॥३३॥ उन के तो जन्म के हेतु प्राकृत शरीर इन्द्रियें और प्राण हैं ही नहीं, उन का शरीर तो शुद्ध सत्वगुणी है और वैकुण्ठपुरी में निवास करतेहुए भी उन को प्राकृत शरीर का सम्बन्ध प्राप्त होने का वृत्तान्त जिस में है वह कथा आप मेरे अर्थ वर्णन करिये ? ॥ ३४ ॥ नारदजी ने कहा कि–हे राजन् ! एक समय ब्रह्माजी के चार पुत्र सनत्कुमार, सनक, सनन्दन और सनातन त्रिलोकी में विचरते विचरते भगवान् की इच्छा से वैकुण्ठ में गए ॥ ३५ ॥ मरीचि आदि पूर्वजोंसे भी प्रथम उत्पन्न हुए वह मुनि, नग्न रहते थे और पाँच छःवर्ष के बालकों की समान दीखते थे इसकारण दो द्वारपालों ने उन को बालक समझकर भीतर जाने से रोकदिया ॥ ३६ ॥ तव उन्हों ने क्रोध में भरकर तिन द्वारपालों को यह शाप दिया कि–तुम रजोगुण और तमोगुण से रहित मधुसूदन भगवान् के चरणों के समीप वास करने को किसी प्रकार योग्य नहीं हो, फिर उन की सेवा करने के योग्य कैसे होसक्ते हो ! इसकारण अरे मूढ़ो ! तुम शीघ्रही पापिष्ठ असुरयोनि में चले जाओ ॥३७॥ ऐसा शाप देते ही जब वह अपने स्थान से भ्रष्ट होनेलगे तब उन दयालु मुनियों ने फिर उन से यह कहाकि–जब तुम्हारे तीन जन्म बीतजायँगे तब यह शाप पूर्ण होकर तुम्हें फिर अपना स्थान मिलेगा ॥३८॥ तदनन्तर वह दोनों द्वारपाल, दैत्य और दानवों के पूजनीय दिति के पुत्र हुए, उन में हिरण्यकशिपु बड़ा और हिरण्याक्ष छोटाहुआ ॥ ३९ ॥ श्रीहरिने नृसिंहरूप धारकर हिरण्यकशिपु का वध करा और पृथ्वी का उद्धार करने के निमित्त वाराहरूप धारण करने वाले उन ही श्रीहरिने हिरण्याक्ष का भी वध करा ॥ ४० ॥ हेराजन् ! हिरण्यकशिपु ने, केशव भगवान् के प्यारे अपने प्रल्हाद नामक पुत्र का वध करने की इच्छा करके,

ना मृत्युहेतवे ॥ ४१ ॥ सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशांतं समदर्शनम् ॥ भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धंतुमुद्यमैः ॥ ४२ ॥ ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवः-सुतौ ॥ रावणः कुंभकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥ ४३ ॥ तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये ॥ रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कंडेयमुखात्प्रभो ॥ ४४ ॥ तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव ॥ अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥ ४५ ॥ वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् ॥ नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ॥ ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ॥ ४७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ७ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना ॥ हिरण्यकशिपू राजन्पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ १ ॥ आह ''चेदं रुषा घूर्णः संदष्टदशनच्छदः ॥

उस का मरण होने के निमित्त नानाप्रकार की पीड़ा दीं ॥ ४१ ॥ परन्तु प्रल्हाद जी, सर्वत्र बाहर और भीतर ब्रह्महो है ऐसा देखनेवाले, सकल प्राणियों के आत्मस्वरूप, द्वेष आदि शून्य और ईश्वर के तेजसे व्याप्त थे, इस कारण शस्त्र अस्त्रों के प्रहार आदिकों से भी उनका वध करने को हिरण्यकशिपु समर्थ नहीं हुआ ॥ ४२ ॥ तदनन्तर दूसरेजन्म में वह दोनों विश्रवा नामक ऋषि के पुत्र केशिनीनामवाली स्त्री के विषैं रावण और कुम्भ कर्ण इन नामों से प्रसिद्ध सकल लोकों को पीड़ा देनेवाले राक्षस हुए ॥ ४३ ॥ तबभी भगवान् ने उन को ब्राह्मणों के शाप से छुटाने के निमित्त रघुवंश में रामावतार धारण करके उन का वधकरा. हेप्रभो ! उन भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का पराक्रम तुम मार्कण्डेय ऋषि के मुख से सुनोगे, अतः मैं तुमसे यहां नहीं कहता हूँ ॥ ४४ ॥ फिरवही रावण कुम्भकर्ण तीसरे जन्म में क्षत्रिय होकर तुम्हारे भ्राता शिशुपाल और दन्तवक्र हुए तथा श्रीकृष्ण के चक्र से निष्पाप होकर अब ही ब्रह्मशाप से छूटे हैं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार वह विष्णुभगवान् के पार्षद वैरभाव से करेहुए तीव्रध्यान के प्रभाव से अच्युत स्वरूप होकर पहिले की समान श्रीहरि के समीप चलेगये ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिर ने कहा कि-हेभगवन् ! महात्मा प्यारे पुत्र से हिरण्यकशुपु के अत्यन्त द्वेष करने में और उन प्रल्हाद जी के अच्युतभगवान् के विषैं चित्त लगाने में कौनकारण हुआ सो आप मुझ से कहिये ? ॥ ४७ ॥ इति सप्तम स्कन्ध के प्रथम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ नारदजी ने कहाकि-हेराजन् ! इसप्रकार देवताओं के पक्षपात से वराहरूप धारण करनेवाले श्रीहरि ने, जब भ्राता (हिरण्याक्ष) का वध करडाला तब हिरण्यकशुपु क्रोध और शोक से अत्यन्त सन्ताप को प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ क्रोध के मारे जिसका शरीर काँपरहा है,

कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन्धूम्रमम्बरम् ॥ २ ॥ करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दु-
ष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः ॥ शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ भो भो
दानवदैतेया द्विमूर्द्धन् त्र्यक्ष शंबर ॥ शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल॥४॥
विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनादयः ॥ शृणुतानन्तरं सर्वे क्रियतामाशु मा
चिरम् ॥ ५ ॥ सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत् ॥ पार्ष्णिग्राहेण ह-
रिणा समेनाप्युपधावनैः ॥ ६ ॥ तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः ॥
भजन्तं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मनः ॥ ७॥ मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा
रुधिरेण वै ॥ रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः॥ ८॥ तस्मिन्कूटे-
हिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ ॥ विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः॥९॥
तावद्यात भुवं यूयं ब्रह्मक्षत्रसमेधिताम् ॥ सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानि-
नः ॥ १० ॥ विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान् ॥ देवर्षिपितृभूतानां

जो नीचे के ओठको चबारहा है, जो कोपके कारण अत्यन्त प्रज्वलित हुए नेत्रों करके कोपरूप अग्नि के धुएँ से ही धुमैलेहुए आकाश को देखरहा है और भयानक दाढ़ों से युक्त उग्रदृष्टि के कारण जिस के भ्रुकुटियुक्त मुख को देखना भी कठिन है ऐसा वह हिरण्यकशिपु, सभा में दानवों से इसप्रकार कहनेलगा कि– ॥ २ । ३ ॥ हेशकुनि आदि दैत्य दानवो ! हेद्विमूर्धन् ! हेत्र्यक्ष ! हेशम्बर ! हेशतबाहो ! हेहयग्रीव ! हेनमुचे ! हेपाक ! हेइल्वल ! हेविप्रचित्ते ! हेपुलोमन् ! तुम सब मेरे वचन को सुनो और विलम्ब न करके शीघ्रही उस के अनुसार वर्त्ताव करो ॥ ४ ॥ ५ ॥ अहो ! समदृष्टि होकरभी भजन करने के कारण सहायक हुए श्रीहरि से इन हमारे क्षुद्र शत्रुओं ने (देवताओं ने) मेरे परमप्यारे भ्राता का वध करवाया है ॥ ६ ॥ उन, स्वयं शुद्ध तेजोमय होकर जो २ अपनी भक्ति करे उस उस के अनुकूल होनेवाले, माया से वाराहरूप धारण करनेवाले बालक की समान चञ्चलचित्त और अपने समतारूप स्वभाव को त्यागनेवाले श्रीहरि का कण्ठ,मैं अपने शूलसे छिन्न भिन्न करके उस में के बहुत से रुधिर से जब अपने, रुधिर को प्यारा माननेवाले भ्राता का तर्पण करूँगा तब मेरे अन्तःकरण में की व्यथा दूर होगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे दानवो ! जैसे वृक्ष की जड़ काटनेपर शाखा अपने आप सूखजाती हैं तैसे ही उस कपटी शत्रु के नष्ट होजानेपर देवता आपही नष्ट होजायँगे, क्योंकि–विष्णु ही उन का प्राण है ॥ ९ ॥ इसकारण, इसीक्षण में तुम ब्राह्मण और क्षत्रियों से बढ़ेहुए भूतलपर जाओ और तहाँ जो जो तप, यज्ञ, वेद का पठन, व्रत और दान करनेवाले हों उन का वध करो ॥ १० ॥ हे दैत्यो ! यह पुरुषोत्तम विष्णु यज्ञरूप होकर धर्ममय हैं इसकारण ब्राह्मणों का अनुष्ठान ही इन का मूल है और देवता, ऋषि, पितर, भूत तथा धर्म का मुख्य आश्रय भी वही हैं, इसकारण तप आदि करनेवाले वह सकल द्विज, मेरा अ-

धर्मस्य च परायणं ॥ ११ ॥ यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः ॥ तं तं जनपदं यात संदीपयत वृश्चत ॥१२॥ इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसादृताः ॥ तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥ १३ ॥ पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् ॥ खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च ॥ १४ ॥ केचित्खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान् ॥ आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान्केचित्परशुपाणयः ॥ प्रादहञ्छरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥ १५ ॥ एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्रानुचरैर्मुहुः ॥ दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥१६॥ हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः ॥ कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसान्त्वयत् ॥ १७ ॥ शकुनिं शम्बरं धृष्टं भूतसंतापनं वृकं ॥ कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचं ॥ १८ ॥ तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा ॥ श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वर ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ अम्बाम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं मार्हथ शोचितुं ॥ रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः

नादर करके उन का आश्रय लेरहे हैं इसकारण वह हमारे वध्य (मारनेयोग्य) हैं ॥ ॥ ११ ॥ इसकारण यह मेरी सम्मति सुनो, और जहां २ ब्राह्मण, गौ, वेद, वर्णाश्रम और वर्णाश्रम के अनुसार कर्म हों, उन २ देशों में जाकर तुम अग्नि लगाओ और जीवि का चलानेवाले वृक्षों को काटडालो ॥ १२ ॥ ऐसी अपने स्वामी की करीहुई आज्ञाको आदर के साथ शिरपर धारकर वह हिंसा को प्रिय माननेवाले,दानव,उसीप्रकार प्रजाओं की हिंसा करनेलगे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! नगर, ग्राम, गोठ, बाग, खेत,वाटिका,ऋषियों के आश्रम,खान,किसानों के स्थान, पर्वतों की तलैटी के ग्राम, गोपों के झोंपड़े और नगरों को उन दानवों ने भस्म करडाला ॥ १४ ॥ किन्हीं ने कुदाल लेकर पुल, परकोटे और नगर के द्वारों को खोदडाला,किन्ही ने हाथमें कुल्हाड़ी लेकर जीविका के करानेवाले वृक्षों को काटडाला और किन्हीने जलतीहुई लकड़ियोंसे लोकों के घर जलादिये ॥ १५ ॥ इसप्रकार दैत्यराज हिरण्यकशिपु के आज्ञाकारी वह दैत्य बारंवार लोकों को पीड़ा देनेलगे तब 'यज्ञ में का हविर्भाग नष्ट होने के कारण' देवता स्वर्ग को छोड़कर गुप्तरूप से भूमि पर विचरनेलगे ॥ १६ ॥ हे धर्मराज ! भ्राता के मरण के कारण दुःखित हुए हिरण्यकशिपु ने, अपनेभ्राता हिरण्याक्ष को तिलाञ्जलि आदि देकर उस के पुत्रों को समझाया ॥ १७ ॥ हेलोकनाथ धर्मराज ! देश और काल को जाननेवाला वह हिरण्यकशिपु मधुरवाणी से-- शकुनि, शम्बर, धृष्ट, भूतसन्तापन, वृक,कालनाभ,महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच इनसे और इन की रुषाभानु नामवाली माता से तथा अपनी दिति माता से इसप्रकार कहनेलगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपु ने कहा हेजननि ! हेमातः ! हेबहिनो ! हेपुत्रो ! वीर हिरण्याक्ष के निमित्त शोक करना तुम्हें योग्य नहीं है, क्योंकि--शत्रु के सन्मुख वध होना

॥ २० ॥ भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते ॥ दैवेनैकत्र नीतानामुन्नी-
तानां स्वकर्मभिः॥२१॥नित्य आत्माऽव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः ॥ धत्तेऽ-
सावात्मनो लिंगं मायया विसृजन् गुणान् ॥ २२ ॥ यथाऽम्भसा प्रचलता
तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥ २३ ॥
एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः पुमान् ॥ याति तत्साम्यतां भद्रे ह्यलिंगो
लिंगवानिव ॥ २४ ॥ एष आत्मविपर्यासो ह्यलिंगे लिंगभावना ॥ एष प्रि-
याप्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥ २५ ॥ संभवश्च विनाशश्च शोकश्च वि-
विधः स्मृतः ॥ अविवेकश्च चिंता च विवेकास्मृतिरेव च ॥ २६ ॥ अत्रा-
प्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत

प्रशंसा के योग्य है इसकारण शूरों का इष्ट है ॥ २० ॥ हेसुव्रते मातः! पानीकी शाला (पौ) में जैसे क्षणमात्र को प्राणियों का समागम होता है तैसे ही इस मृत्युलोक में माता और पुत्र आदि कों का समागम क्षणमात्र को होता है, क्योंकि–दैवयोग से प्राणी एक स्थानपर इकट्ठे होते हैं और फिरभी अपने अपने कर्म के अनुसार विछुड़जाते हैं॥ २१ ॥ हेमातः ! आत्मा, मृत्यु रहित, अव्यय, निर्मल, सर्वगत और सर्वज्ञ है क्योंकि–वह देह आदि से भिन्न है इसकारण उस को मरण को प्राप्त, दुर्बल, मलिन, विछुडाहुआ और अज्ञानी समझकर शोक करना योग्य नहीं है, हेमातः ! यह आत्मा अपनी माया से मोहित होकर सुख दुःख आदि को विशेष करके स्वीकार करता है इसकारण शरीरों को धारण करता हैं, शारांश यह है कि–उस को जो लिङ्गशरीररूप उपाधि प्राप्तहुई है वही संसार है ॥ २२ ॥ हेमातः ! जैसे उपाधि के धर्म, उपाधिवाली वस्तु में भासमान होते हैं अथवा ग्रहण करनेवाली वस्तु के धर्म जैसे ग्रहण करनेयोग्य वस्तु में भासमान होते हैं अर्थात् जैसे जलके हलने के कारण उस में प्रतिबिम्बित हुए वृक्षभी हलतेहुए से दीखते हैं अथवा जैसे नेत्रों में भ्रम होने के कारण पृथ्वी चलतीहुई सी दीखती है तैसे ही हेभद्रे ! गुणों से मन के भ्रम में पड़ने पर वास्तव में परिपूर्ण भी आत्मा मनकी समता पाता है और वास्तव में देह आदिके सम्बन्ध से रहित भी वह आत्मा देहधारीसा दीखता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस कारण वास्तव में देह आदिका सम्बन्ध न होने पर उस में देहका अभिमान होना, प्रिय वस्तुसे वियोग, अप्रिय वस्तुसे संयोग, कर्म, अनेकों योनियोंमें प्रवेश,तदनन्तर उत्पत्ति, विनाश नाना प्रकार का शोक, अविवेक, चिन्ता और विवेकका स्मरण नहोना इत्यादि सकल धर्म आत्म स्वरूपसे भिन्न हैं इसकारणआत्मस्वरूपमेंउनका होना किसीप्रकारसम्भव नहीं है ।२५।२६। शोकका कारण नहोनेपरभी तुम यह व्यर्थशोक करते हो, इस विषयमें ही किसी एक मरण को प्राप्त होनेवाले पुरुष के स्त्रीपुत्रादि सम्बन्धियों का और यमराज का सम्वादरूप

॥ २७ ॥ उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः ॥ सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥ २८ ॥ विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजं ॥ शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम् ॥ २९ ॥ प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम् ॥ रजःकुण्ठमुखाम्भोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥ ३० ॥ उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ॥ हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं घ्नन्त्यो मुहुस्तत्पदयोरुपाऽपतन् ॥ ३१ ॥ रुदन्त्य उच्चैर्दयिताङ्घ्रिपंकजं सिंचन्त्य अस्रैः कुचकुंकुमारुणैः ॥ विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥ ३२ ॥ अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो भवान्प्रणीतो दृगगोचरां दशां ॥ उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥ ३३ ॥ त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ॥ तत्रानुयानं तव वीर पादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥ ३४ ॥ एवं विपलतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिं ॥ अनिच्छतीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत

पुरातन इतिहास लोक कहते हैं सो तुम सुनो ॥ २७ ॥ अहो ! उशीनर देश में 'सुयज्ञ' नामसे प्रसिद्ध एक राजा था, उस का युद्ध में शत्रुओं ने वध करा तव उस के सकल नातेदार उस के चारोंओर वैठेहुए शोक कररहे थे ॥ २८ ॥ हेमातः ! उसके रत्नजटित कवचके टुकड़े २ होगए थे, शरीरपर के आभूषण और माला यह सव उतरपड़ेथे, हृदय वाणों से विदीर्ण होरहाथा, और सकलशरीर रुधिर में लथड़ाहुआ वह भूमिपरपड़ाथा, उसके केश अस्तव्यस्त होरहेथे, नेत्र फूटेहुएथे, आवेशकेकारण अपने ओठ को चावरहाथा, उसका मुख कमल धूलि से अटाहुआथा और उसके शस्त्र तथा भुजा युद्धमें छिन्नभिन्न होगएथे ॥ २९ ॥ ३० ॥ इसप्रकार प्रारब्ध कर्मवश इसदशा को प्राप्तहुए अपने पति उशीनर देशोंके राजा को देखकर रानियें दुःखित हुईं और 'हे नाथ! हमारा सर्वस्व नष्ट होगया' ऐसा कहकर वारम्वार हाथोंसे छाती को कूटकर शोक करती हुईं उसके चरणोंके समीप गिरपड़ीं ॥ ३१ ॥ तदनन्तर ऊँचे स्वरसे रुदन करते २ स्तनोंपरके केशरसे कुछ एक लालहुए अश्रुओं करके तिस अपने प्यारे पति के चरणकमलको सींचती हुईं, केशों को खोलकर, आभूपणों को उतारकर लोकोंको शोक उत्पन्न करतीहुईं डकराकर विलाप करनेलगीं ॥ ३२ ॥ हे प्राणप्रिय प्रभो ! जिस विधाताने, हमारी, दृष्टि से भी दूर होजाने की दशा तुम्हें प्राप्तकरीहै वह वास्तव में निर्दयी है, क्योंकि—तुम पहिले उशीनर देश के लोकों की आजीविका चलानेवाले राजा थे और इससमय उस विधाता ने तुम्हें उन प्रजाओं के शोक को वढ़ानेवाला करदिया है ॥ ३३ ॥ हे भूपते ! कृतज्ञ और सव से उत्तम सुहृद् ऐसे तुम्हारे विना हम कैसे रहैं ? इसकारण हे वीर ! तुम जहां को गये हो, तहां तुम्हारे चरणकमलों की सेवा करनेवालीं हमें भी अपने पीछे २ आने की आज्ञादो ॥ ३४ ॥ इसप्रकार अपने मृतपति को आलिङ्गनकरके

॥ ३५ ॥ तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रुत्य परिदेवितं ॥ आह तान्बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ३६ ॥ यम उवाच ॥ अहो अमीषां वयसाऽधिकानां विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ॥ यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थं ॥ ३७ ॥ अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः ॥ अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥ ॥ ३८ ॥ य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः ॥ तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितुश्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः ॥ ३९ ॥ पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ॥ जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥ ४० ॥ भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभिर्भवन्ति काले न भवन्ति सर्वशः ॥ न तत्र हात्मा प्रकृतावपि स्थित-

---

दाह करने के निमित्त उसको लेजाने की इच्छा न करके वह स्त्रियें इसप्रकार विलाप करती हुई बैठीरहीं और सूर्य अस्त होगया ॥ ३५ ॥ इधर यमराजने अपनी पुरी में विराजमान होकर ही उस मृतपुरुषके बान्धवों का रोदन सुना,और बालकका रूप धारण करके स्वयं तहां आये और उन से कहा ॥ ३६ ॥ यमने कहा कि-अहो ! कैसा आश्चर्य है ! मेरी अपेक्षा अवस्था में बड़े होकर लोकों के जन्म मरण आदि की दशा को देखकर भी इनको ऐसा मोह होरहा है, आप भी मरणधर्म से युक्त है और जिस अव्यक्तरूप से यह प्राणी जन्म में आया है तहांही चलेजानेपर यह व्यर्थ शोक करते हैं ॥ ३७॥अहो! इस संसार में जिनको माता पिता छोड़गये हैं ऐसे हम दुर्बल होकर भी जिसके रक्षाकरने से भेड़िये आदि से भक्षण नहीं करेगए तथा जिसने गर्भ में रक्षाकरी वही सर्वत्र हमारी रक्षा करेंगे, ऐसा समझकर अपनी रक्षा की भी हम चिन्ता नहीं करते हैं इसकारण हम सबसे धन्य हैं ॥ ३८ ॥ हे अबलाओं ! जो ईश्वर आप नाशरहित होकर अपनी इच्छा से इस विश्वको उत्पन्न करते हैं इसकी रक्षा करते हैं और इसका संहार भी करते हैं उन ईश्वर का यह चराचर विश्व क्रीड़ा करने का साधन है ऐसा कहते हैं, इसकारण ही वह इसका पालन और संहार करने को समर्थ हैं ॥ ३९ ॥ मार्गमें पड़ीहुई वस्तुभीईश्वर के रक्षा करनेपर तैसी ही रहती है उसको कोई नहीं लेता है और ईश्वर जिस वस्तु की उपेक्षा करे वह घरमें होय तबभी नष्ट होजाती है, तैसेही कोई पुरुष अनाथ होय तबभी उसके ऊपर ईश्वर की कृपादृष्टि होनेपर वह वनमें भी जीवित ही रहता है और ईश्वर जिस की उपेक्षा करे वह घर में रक्षा करनेपर भी जीवित नहीं रहता है ॥ ४० ॥ हे अबलाओं ! सकल शरीर, अपने कारण लिङ्गशरीर से उत्पन्नहुए नानाप्रकार के कर्मो करके तिस २ समय में उत्पन्न होते हैं और नाशको भी प्राप्त होते हैं परन्तु आत्मा उस

स्तस्था गुणैरन्यतमो निर्बध्यते ॥ ४१ ॥ इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथग्भौतिकमीयते गृहम् ॥ यथौदकैः पार्थिवतैजसैर्जनैः कालेन जातो विकृतो विनश्यति ॥ ४२ ॥ यथानलो दारुषु भिन्न ईयते यथाऽनिलो देहगतः पृथक् स्थितः ॥ यथा नभः सर्वगतं न सज्जते तथा पुमान्सर्वगुणाश्रयः परः ॥ ४३ ॥ सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ ॥ यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥ ४४ ॥ न श्रोता नानुवक्ताऽयं मुख्योऽप्यत्र महानसुः ॥ यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः ॥ ४५ ॥ भूतेन्द्रियमनोलिंगा-

समय शरीर में होकर भी उस से अत्यन्त भिन्न होने के कारण उस के जन्म आदि धर्मों से बँधता नहीं है ॥ ४१ ॥ हे स्त्रियों ! जैसे अत्यन्त अज्ञानी पुरुष, अपने करके मानेहुए घर आदि से पृथक् दीखता है तैसे ही अज्ञान के कारण अपना प्रतीत होनेवाला यह पुरुष का शरीर भौतिक (पञ्चमहाभूत का रचाहुआ) होकर दृष्टिगोचर होने के कारण अभौतिक और द्रष्टा पुरुष से वास्तव में भिन्न ही है और जैसे जल से उत्पन्नहुए बुलबुले, पृथ्वी से उत्पन्नहुए घट आदि और तेज से उत्पन्नहुए कुण्डल आदि आभूषण नाश को प्राप्त होते हैं तैसे ही पृथिवी आदि तीनों भूतों के परमाणुओं से उत्पन्न हुआ यह शरीर भी कालवश विकारको प्राप्त होकर नाश को प्राप्त होता है, आत्मा का नाश नहीं होता है ॥ ४२ ॥ जैसे अग्नि काष्ठ में होनेपरभी प्रकाशकरूपसे और दाहकरूपसे भिन्नही अनुभव में आता है और जैसे देहमें विद्यमान भी वायु मुख और नासिका आदिस्थानों में निरालाही प्रतीत होता है तैसे ही आत्मा देह में विद्यमान होकर भी उससे भिन्न है, क्योंकि—आत्मा के देह में होने पर भी उसमें देह के धर्म कुछभी नहीं होते हैं, जैसे कि—आकाश सर्वत्र होकर भी कहीं लिप्त नहीं होता है तैसे ही आत्मा देह इन्द्रियादि सकल गुणों के आश्रय से रहकर भी उनसे निरालाही है ॥ ४३ ॥ और तिसपरभी अरे मूढ़ो ! तुम जिस के निमित्त शोक कररहे हो वह यह तुम्हारा भर्त्ता सुयज्ञ तो यहांही शयन कररहाहै फिर तुम व्यर्थ शोक क्यों कररही हो, इससमय पर्यन्त तो यह हमारे कथन को सुनते थे और उसका उत्तर देते थे और अब उनमें कुछभी नही दीखता सो यह मरण को प्राप्त होगए ऐसा समझकर शोककररहीहैं, यदि ऐसा कहो तो हेस्त्रियों ! पहिले भी तो वह तुम्हांरे देखने में नहीं आता था इसकारण उसके निमित्त तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये, ऐसा कहतेहैं कि-यहां जो सुनताथा और उत्तर देताथा वह सुयज्ञ कदापि देखने में नहीं आवेगा ॥ ४४ ॥ सकल इन्द्रियों की चेष्टाओं का कारण होने से यह प्राण यद्यपि बड़ा और मुख्य है तथा इस देहमें यह श्रोता और वक्ता नहीं है, हेस्त्रियों ! इन्द्रि के द्वारा उन के विषय को जाननेवाला आत्मा तो प्राण और शरीर इन दोनों जड़ पदार्थों से भिन्न सचेतन है ॥ ४५ ॥ हे स्त्रियों ! वह सर्वव्यापी

न्देहानुच्चावचान्विभुः ॥ भजेत्युत्सृजति ह्यन्यैस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥ ४६ ॥ यावल्लिंगान्वितो ह्यात्मा तावत्कर्मनिबन्धनम् ॥ ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगोऽनुवर्त्तते ॥ ४७ ॥ वितथाऽभिनिवेशोयं यद्गुणेष्वर्थदृग्वचः ॥ यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वमैन्द्रियकं मृषा ४८ ॥ अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचन्ति तद्विदः ॥ नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥ ४९ ॥ लुब्धको विपिने कश्चित्पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः ॥ वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥ ५० ॥ कुलिंगमिथुनं तत्र व्यचरत्समदृश्यत ॥ तयोः कुलिंगी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥ ॥ ५१ ॥ साऽसज्जत शिचस्तंत्र्यां महिषी कालयन्त्रिता ॥ कुलिंगस्तां तथापन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः ॥ स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥ ५२ ॥

आत्मा भूत, इन्द्रियें और मन के द्वारा प्रतीत होनेवाले भले बुरे शरीरों को स्वीकार करता है अर्थात् उन शरीरों को, मैं हीं हूँ ऐसा मानता है परन्तु वह उनसे निराला है, हे अवलाओं ! अपने विवेक के वल से उस स्वीकारको भी वह त्यागदेता है, यह प्रत्यक्ष अनुभव करा हुआ है ॥ ४६ ॥ जवतक आत्मा को लिङ्ग शरीर का अभिमान होता है तवतक ही वह कर्म उसके वन्धन का कारण होते हैं और उससे देह के धर्मों का भोक्तापन प्राप्त होकर क्लेश होते हैं लिङ्ग शरीरका अभिमान दूर होने पर यह दशा नहीं रहती है क्यों कि—यह देहधर्म भोक्तापनरूप विपर्यय मायासे होता है वास्तव में सत्य नहीं है ॥४७॥ हे स्त्रियों ! सुख दुःख आदि गुणों के कार्य सत्य हैं ऐसा मानना और कहना सर्वथा व्यर्थ अभिमान है, क्योंकि जाग्रत् अवस्था में मनोरथ से प्राप्त होनेवाले राज्य आदि सुख अथवा स्वप्न में प्राप्त होनेवाले स्त्रीसम्भोग आदि सुख जैसे वास्तव में सत्य नहीं हैं तैसेही सकल इन्द्रियों का सुखभी वास्तव में सच्चा नहीं है ॥ ४८ ॥ इसकारण आत्मा नित्य है और देह अनित्य है; ऐसा जाननेवाले पुरुष, इस संसार में आत्मा का वा देह का शोक नहीं करते हैं, हे स्त्रियों ! शोक करनेवालों के स्वभाव को हटाना कठिन है, अर्थात् दृढ़ ज्ञान विनाहुए उन का स्वभाव निवृत्त नहीं होसक्ता॥४९ हे स्त्रियों ! पक्षियोंका मारनेवाला एक व्याधा ईश्वरने वन में रचाथा, जहां २ पक्षी होते थे तहां २ वह (धान्यके कण आदिकों से) उनको लोभ उत्पन्न करता हुआ जाल फैला कर पकड़ताथा ॥ ५० ॥ एकसमय एक कुलिङ्ग नामक पक्षी का जोड़ा तहां विचरते में उस व्याधेको दीखा सो उन दोनोंमें से कुलिङ्गीको उसने विखरेहुए धान्य आदि दिखा कर एकाएकी मोहित करलिया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर काल की प्रेरणा करीहुई वह कुलिङ्ग पक्षी की भार्या जव जाल के डोरोंमें फँसगई तव उसप्रकारके सङ्कट में पड़करअत्यंत दीनहुई उसको देखकर वह कुलिङ्ग पक्षी अत्यन्त दुःखित हुआ और उसको छुड़ाने में असमर्थ होनेके कारण अत्यन्त दीन होकर प्रेमवश एक वृक्षकी शाखापर वैठकर विलाप

अहो अकरुणो देवः स्त्रियाऽऽकरुणया विभुः ॥ कृपणं मानुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥ ५३ ॥ कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे ॥ दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥ ५४ ॥ कथं त्वजातपक्षांस्तान्मातृहीनान्बिभर्म्यहम् ॥ मन्दभाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥ ५५ ॥ एवं कुलिङ्गं विलपन्तमाराात्प्रियावियोगातुरमश्रुकण्ठम् ॥ स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥ ५६ ॥ एवं यूयमपश्यन्त्य आत्मापायमबुद्धयः ॥ नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥ ५७ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः ॥ ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ॥ ५८ ॥ यम एतदुपाख्याय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्साम्परायिकम् ॥ ५९ ॥ ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च ॥ क आत्मा कः परो वाऽत्र स्वीयः पारक्य एव वा ॥ स्वपराभिनिवेशेन विनाज्ञानेन देहिनाम् ॥ ६० ॥ नारद उवाच ॥ इति दैत्यपतेर्वाक्यं दि-

करनेलगा कि-॥ ५२ ॥ अहो ! हा ! यह निर्दयी ब्रह्मा, सवप्रकार से दया करनेयोग्य और मुझ दीन के निमित्त शोक करनेवाली इस मेरी दीन स्त्री को लेजाकर क्या करेगा ? ॥ ५३ ॥ अरे ! स्त्री के विना इकले रहजाने के कारण दीन होकर दुःखके साथ जीवित रहनेवाले इस मेरे आधे शरीर से अव मेरा कौन प्रयोजन है?इसकारण अव वह ब्रह्माजी मुझे भी भलेही उठालें ॥ ५४ ॥ हे परमेश्वर ! जो मेरे हतभाग्य वच्चे (खाने के निमित्त) घोंसले में माताकी वाट देखरहे हैं, उन विना पंख के मातृहीन वालकों का कैसे पालन पोषण करूँगा ? ॥ ५५ ॥इसप्रकार प्रिया के वियोग में व्याकुल होने के कारणअश्रुओं से कण्ठ रुककर विलाप करतेहुए वैठनेवाले उस कुलिङ्ग पक्षी को काल के प्रेरणा करेहुए उसही पक्षियों के मारनेवाले व्याधे ने, छुपकर वैठ के दूर से ही वाण मारा ॥ ५६ ॥ हे मूढ़ स्त्रियों ! उन पक्षियों की समानही अपनी मृत्यु को न जानकर सैंकड़ों वर्ष पर्यन्त भी यदि तुम वैठीहुई शोक करती रहोगी तवभी यह पति तुम्हें नहीं मिलेगा ॥ ५७ ॥ हिरण्यकशिपुने कहा कि-हे मातः ! इसप्रकार वालकके कहनेपर उस सुयज्ञ राजाकेसकल नातेदार मनमें विस्मित हुए और यह सव जगत् अनित्य है तथा मिथ्यारूप से ही प्रकट हुआ है ऐसा माननेलगे ॥ ५८ ॥ धर्मराज यम यह आख्यान कहकर तहांही अन्तर्धान होगए और उन नातेदारों ने भी सुयज्ञ का परलोक प्राप्ति विषयक जो (दाह आदि) कर्म करना था सो किया ॥ ५९ ॥ तिससे अपने निमित्त वा दूसरे के निमित्त तुम कुछ शोक न करो, क्योंकि-यह अपना है, यह पराया है, इसप्रकार के अभिमानरूप अज्ञान के विना प्राणीमात्र का आत्मा कौनपर कौन तथा अपना और पराया कौन है ? अर्थात् कोई नहीं है, सव एकही है ॥६०॥ नारदजीने कहा कि-हे धर्मराज ! दैत्याधिपति हिर

तिराकर्ण्य सस्नुषा ॥ पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥ ६१ ॥
इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः
॥ २ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ॥ आत्मा-
नमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥ स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणं ॥
ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥ जटादीधितिभी रेजे संव-
र्तार्क इवांशुभिः ॥ तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥ ३ ॥ तस्य
मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोग्निस्तपोमयः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥
॥ ४ ॥ चुक्षुभुर्नद्युदन्वंतः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः ॥ निपेतुः सग्रहास्तारा जज्व-
लुश्च दिशो दश ॥ ५ ॥ तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ॥
धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥ ६ ॥ दैत्येंद्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं
न शक्नुमः ॥ तस्य वोपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे ॥ लोका न
यावन्नंक्ष्यन्ति बलिहारास्तवाभिभो ॥ ७ ॥ तस्यायं किल संकल्पश्च-
रतो दुश्चरं तपः ॥ श्रूयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितम् ॥ ८ ॥

ण्यकशिपु का भाषण, बहूसहित दितिने सुनकर एक क्षण में ही पुत्रका शोक त्यागदिया और अपना मन तत्त्वस्वरूप में लगाया ॥६१॥ इति सप्तमस्कन्ध में द्वितीय अध्यायसमाप्त॰

नारदजी कहते हैं कि—हेराजन्! एक समय हिरण्यकशिपु ने, मन में ऐसा विचार किया कि मैं अजेय (किसी के जीतने में न आनेवाला), अजर, अमर, और प्रतिपक्षीरहित अद्वितीय प्रभु बनूँ ॥ १ ॥ और उस ने मन्दर पर्वत की गुफा में बाहु ऊपर को करके आकाशकी ओर को दृष्टि लगाकर और एक पैर के अङ्गूठेसे खड़े होकर अतिभयङ्कर तप करा ॥ २ ॥ उससमय वह प्रलयकाल के सूर्य की समान शोभायमान जटाओं की कान्ति से शोभित होनेलगा, इसप्रकार जब वह तप करनेलगा तब, पहिले गुप्तरूप से भूमिपर विचरनेवाले देवता, फिर अपने अपने स्थानपर चलेगये ॥ ३ ॥ इस के अनन्तर उस के मस्तक में से धुएँ सहित निकलाहुआ तपोमय अग्नि सर्वत्र फैलकर नीचे के, ऊपर के, और मध्य के सबलोकों को सन्ताप देनेलगा ॥ ४ ॥ तब नदी और समुद्र क्षुभित होगए, द्वीप और पर्वतों सहित पृथ्वी काँपने लगी, ग्रहों सहित तारागण गिरनेलगे और दशों दिशा प्रज्वलित होनेलगीं ॥ ५ ॥ तदनन्तर उस अग्नि से सन्ताप को प्राप्त हुए देवता स्वर्ग को छोड़कर सत्य लोक को गए और ब्रह्माजी से कहनेलगे कि—हेजगत्पते देवाधिदेव! दैत्यों मे श्रेष्ठ हिरण्यकशिपु के तप से सन्ताप को प्राप्त होने के कारण स्वर्ग में रहने को हमारी शक्ति नहीं है; इसकारण हेमहात्मन् सर्वाधिपते! तुम्हारी पूजा करनेवाले लोकों का जबतक नाश न हो तबतक, यदि उचित समझो तो उस को तुम शान्त करो ॥ ६ ॥ ७ ॥ हेजगदीश! क्या तुम, उस दुष्कर तपस्या करनेवाले हिरण्यकशिपु के

सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ॥ अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्य परमेष्ठी निजासनं ॥ ९ ॥ तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ॥कालात्मनोर्श्च नित्य-त्वात्साधयिष्ये तथात्मनः ॥ १० ॥ अन्यथेदं विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा॥ किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥ ११ ॥ इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परमगास्थितः ॥ विधत्स्वानन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥ १२ ॥ तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते ॥ भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥ १३ ॥ इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप ॥ परीतो भृगुदक्षाद्यै-र्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥ १४ ॥ न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः ॥

सङ्कल्प को नहीं जानते हो ! अर्थात् निःसन्देह जानते ही हो तथापि हम निवेदन करते हैं सो सुनो ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! उसनें मन में ऐसा विचार करा है कि- तप और योगसमाधि से चराचर विश्व को रचकर ब्रह्माजी जैसे सब से श्रेष्ठ अपने सत्यलोकरूप स्थानपर बैठे हैं तैसे मैंभी तप और योग की दिन दिन बढ़नेवाली समाधि के प्रभाव से वह स्थान अपने को प्राप्त करलूँगा यदि कहो कि--बड़ी आयुवाले ब्रह्माजी ने तपस्या से पायेहुए स्थान को दूसरा कैसे पालेगा ? सो यह शङ्का आप कदापि न करना, क्योंकि--वह कहता है कि--थोड़ी आयु होने के कारण शरीर को यद्यपि वारंवार मृत्यु प्राप्त हुआ तथापि काल और आत्मा इन दोनों के नित्य होने से अनेक जन्मों में तपस्या करके मैं उस पद को पाही लूंगा ॥ ९ ॥ १० ॥ और तपोबल के प्रभाव से इस जगत् को मैं पहिले की अपेक्षा सबप्रकार से विपरीत (उलटपुलट) करदूँगा अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत आदि पुण्य कर्म करनेवालों को नरक आदि दुःख भुगवाऊँगा और विषयासक्त होकर पापकर्म करने वालों को स्वर्गसुखका भोगकराऊँगा तथा स्वर्ग को असुरों का स्थान और नरक को देवताओं का स्थान इसप्रकार विपरीत करके मैं अपने को सत्यलोक की प्राप्ति करलूँगा. क्यों कि--अवान्तर कल्प के अन्त में काल से नाश पानेवाले वैष्णव आदि अन्य स्थान मेरा-क्या करेंगे ? ॥ ११ ॥ हे त्रिलोकीनाथ ! इसप्रकार तुम्हारे स्थान को हरण करने (छीन लेने) के विषय में उसका निश्चय करना हमने सुना है, इसकारण ही यह बड़ा भारी तप कररहा है इसकारण इसविषयमें जो करना उचित हो सो तुम शीघ्रतासे आप ही करो । १२। तुम अपने स्थान से भ्रष्ट होजाओगे तो साधुओं की बड़ी हानि होगी इसकारण हमें तो बड़ा शोक है, क्योंकि--हे जगदीश ब्रह्माजी ! तुम्हारा अपने आसनपर बैठकर अधिकार चलाना, द्विज और गौओं की उत्पत्ति, सुख, ऐश्वर्य, क्षेम तथा उन्नति का कारण है १३ हे राजन् ! जब इसप्रकार देवताओं ने ब्रह्माजी की स्तुति करी तब, भृगु दक्ष आदि प्रजा पतियों से घिरेहुए वह ब्रह्माजी तिस दैत्यपति हिरण्यकशिपु के आश्रम की ओर को गये ॥ १४ ॥ तहां चींटियों ने, जिसके शरीर की मेद (चर्बी), त्वचा (खाल),

पिपीलिकाभिराचीर्णमेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥ १५ ॥ तपन्तं तपसा लोकान् यथाभ्रापिहितं रविं ॥ विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन् हंसवाहनः ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपःसिद्धोऽसि काश्यप ॥ वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥ १७ ॥ अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारं महदद्भुतम् ॥ दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ॥ १८ ॥ नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ॥ निरम्बुर्धारयेत्प्राणान् को वै दिव्यसमाः शतम् ॥ १९ ॥ व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनां ॥ तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनन्दनं ॥ २० ॥ ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुंगवं ॥ मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वादिभवो देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः ॥ कमण्डलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा ॥ २२ ॥ स तत्कीचकवल्मीकात्सहओजोबलान्वितः ॥ सर्वावयवसंपन्नो वज्रसंहननो

मांस और रुधिर चारों ओर से खालिया है और जो शरीर के ऊपर को बढ़े हुए बँवई तृण और बांसों से ढकाहुआ है ऐसा वह हिरण्यकशिपु पहिले तो ब्रह्माजी को दीखाही नहीं ॥ १५ ॥ तदनन्तर मेघों से ढकेहुए सूर्य की समान बँवई आदि से ढकेहुए और तपके प्रभाव से लोकों को त्रास देनेवाले उस हिरण्यकशिपु को देखकर ब्रह्माजी विस्मय में पड़कर हँसतेहुए कहनेलगे ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—अरे कश्यप के पुत्र हिरण्यकशिपु ! तेरा कल्याण हो, अब तू तपसे कृतार्थ होगया इसकारण अब उठ, उठ, मैं तुझे वरदेने को यहां आयाहूँ, सो तू मुझ से इच्छित वर मांगले ॥ १७॥ यह मैंनेतेरा बडा भारी अद्भुत धीरज देखा, क्योंकि—अरे ! वनकी मक्खियों के शरीर को भक्षण करलेने परभी तेरे प्राण केवल हड्डियों के ही आश्रय से रहे हैं ॥ १८ ॥ ऐसा तप पूर्वकाल के ऋषियों ने भी कभी नहीं करा और आगे को भी कोई नहीं करेगा, क्योंकि—जलका भी छोड़देनेवाला कौनसा पुरुष देवताओंके सौवर्ष पर्यन्त प्राणों को धारण करसकेगा?अर्थात् कोई धारण नहीं करसकेगा॥१९॥ हेदिति के पुत्र ! मनको वश में रखनेवाले पुरुषोंको भी जिसका करना कठिन है ऐसा निश्चय करके तपकरनेमें लगे हुए तूने मुझे जीतालियाहै२० इसकारण हे असुरों मे श्रेष्ठ ! तेरे सकल मनोरथों को मैं पूर्ण करता हूँ, क्योंकि तुझमरण धर्म्मी को मुझ अमर देवता का दर्शन होना निष्फल नहीं होगा ॥ २१ ॥ नारदजीकहते हैं कि—हे धर्मराज ! ऐसा कहकर ब्रह्माजी ने, अमोघशक्तिवाले अपने दिव्य कमण्डलु में का जल, चीटियों के भक्षण करे हुए हिरण्यकशिपुके उस शरीर पर छिड़का ॥ २२ ॥ उसके छिड़कते ही वह हिरण्यकशिपु, मनकी शक्ति, इन्द्रियों की शक्ति और शरीर की शक्ति से युक्त होकर, सकल अङ्गों से सम्पन्न, वज्रकी समान दृढ़ शरीरवाला औरतपाये

युवा ॥ उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥ २३ ॥ स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितं ॥ ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ २४ ॥ उत्थाय प्रांजलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुं ॥ हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयाऽगृणात् ॥ २५ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ कल्पांते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसाऽऽवृतम् ॥ अभिव्यनक् जगदिदं स्वयंज्योतिः स्वरोचिषा ॥ २६ ॥ आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुंपति ॥ रजःसत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥ २७ ॥ नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्त्तये ॥ प्राणेंद्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥ २८ ॥ त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानां ॥ चित्तस्य चित्तेर्मनइंद्रियाणां पतिर्महान् भूतगुणाशयेशः ॥ २९ ॥ त्वं सप्ततंतून्वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ॥ त्वमेक आत्माऽऽत्मवतामनादिरनंतपारः कविरंतरात्मा ॥ ३० ॥ त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः

हुए सुवर्ण की समान कान्ति से युक्त होता हुआ, जैसे काठमें से अग्नि प्रकट होताहै तैसे बांसों से घिरीहुई बँबई में से वह बाहर को निकला ॥ २३ ॥ और आकाशमें ब्रह्माजी को देखकर उनके दर्शन से आनन्दयुक्त हुआ और उसने ब्रह्माजी को भूमिपर साष्टाङ्ग नमस्कार करा ॥ २४ ॥ तदनन्तर उठकर जिस के नेत्रों में हर्ष के कारण आनन्द के अश्रुभरगए हैं और शरीरपर रोमाञ्च खड़े होगए हैं ऐसा वह हिरण्यकशिपु, हाथ जोड़ कर नम्रताके, साथ दृष्टि से ब्रह्माजी की ओर को देखता हुआ गद्गदवाणी से ब्रह्माजी की स्तुति करने लगा ॥ २५ ॥ हिरण्यकशिपु ने कहा कि—कल्प के अन्त में काल के रचे हुए प्रकृति के गुणरूप गाढ़ अन्धकार से व्याप्तहुआ यह जगत्, जिस स्वयम्प्रकाशईश्वर ने अपने प्रकाश से प्रकटकरा है और जो त्रिगुणमय अपने स्वरूपसे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हैं उन रज, सत्व और तम के आश्रयभूत महात्मा परमेश्वर को नमस्कारहो ॥ २६ ॥२७॥ जो आदि हैं, जो सबके कारण हैं, ज्ञान और विज्ञान जिन का स्वरूप है और जिनको प्राण, इन्द्रियें, मन तथा बुद्धि इन विकारोंके कार्योंका आकार प्राप्त होता है ऐसे आप को नमस्कार हो ॥ २८ ॥ हे विधातः ! तुमही सूत्रात्मारूपसे मुख्य प्राण के द्वारा स्थावर जङ्गमरूप विश्व को वश में रखने के कारण प्रजाओं के और उनके चित्त, चेतना, मन तथा इन्द्रियों के भी पति हो और तुमही महत्तत्वरूप होने के कारण आकाश आदि भूत, शब्द आदि विषय और उनकी वासनाओं को उत्पन्न करने वाले हो ॥ २९ ॥ जहां होता अध्वर्यु आदि चार ऋत्विज् होते हैं तिस यज्ञका प्रतिपादन करनेवाले तीनों वेदरूपसे तुमही अग्निष्टोम आदि सात यज्ञों का विस्तार करते हो और प्राणियों के आत्मा तथा अन्तर्यामी एवं काल और देशसे जिनका अन्त तथा पारनहीं है ऐसे अनादि, अखण्ड और सर्वज्ञ तुमही हो ॥ ३० ॥ निमेष रहित तुमही कालरूप

क्षिणोषि॥ कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा॥३१॥ त्वत्तःपरं नापरमप्यनेजदेजच्च किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति।विद्याःकलास्ते तनवश्च सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥३२॥ व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वं ॥ भुंक्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्य अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥ ३३ ॥ अनन्तोव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततं ॥ चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥ ३४ ॥ यदि दास्यस्यभिमतान्वरान्मे वरदोत्तम ॥ भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्माभून्मम प्रभो ॥ ३५ ॥ नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ॥ न भूमौ नांबरे मृत्युर्नरैर्नरैरपि मृगैरपि ॥३६॥ व्यसुभिर्वाऽसुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः ॥ अप्रतिद्वंद्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनां ॥ ३७ ॥ सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथात्मनः ॥ तपोयोगप्रभावाणां यन्न रिष्यति कर्हिचित् ॥ ३८ ॥ इतिश्रीभा०म०सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपोर्वरप्रदानं नाम

होकर उस काल के लव क्षण आदि अवयवों से प्राणियों की आयु को नष्ट करते हो परन्तु वास्तव में तुम ज्ञानरूप, अपरिच्छिन्न, परमेश्वर तथा जन्म रहित होने के कारण निर्विकार हो और जीवलोकही कर्म के वशीभूत होने के कारण जन्म आदि विकारों से युक्त होता है परन्तु तुमतो उस जीवलोक के नियन्ता होनेके कारण उन जीवोंके जीवन के कारण हो॥३१॥ हेदेव ! स्थावर वा जङ्गम कोई भी कारण वा कार्य तुमसे भिन्न नहीं है, हे विधातः ! विद्या और कला सब तुम्हारा ही शरीर हैं, क्योंकि—हिरण्यरूप ब्रह्माण्ड तुम्हारे गर्भ में है और तुम त्रिगुणमयी मायासे भिन्न ब्रह्मरूप हो ॥ ३२ ॥ हे सर्वव्यापक ! यह ब्रह्माण्ड, तुम्हारा स्थूल शरीर है और उसके द्वारा तुम, इन्द्रियें,प्राण तथा मन के विषयों का उपभोग करते हो, यह सत्य है; परन्तु अपने स्वरूप में स्थित होकर ही तुम उन विषयों का उपभोग करते हो इसकारण उपाधिरहित ब्रह्मरूप और पुराण पुरुष तुमही हो ॥ ३३ ॥ हे अनन्त ! जिन्होंने अपने अव्यक्त रूपसे इस सकल जगत् को व्याप्त करडाला है और जिनका ऐश्वर्य, विद्या तथा मायासे युक्त होने के कारण अचिन्तनीय है ऐसे तुम्हें नमस्कारहो ॥ ३४ ॥ हे वरदान देने वालों में श्रेष्ठ ! तुम यदि मुझे इच्छानुसार वरदेते हो तो हे प्रभो ! तुम्हारे उत्पन्नकरेहुए प्राणियोंसे मुझे मृत्यु प्राप्त नहो ॥ ३५ ॥ तैसेही घरके भीतर वा बाहर, दिन में वा रात्रि में,तुम्हारे उत्पन्न करेहुएअन्य प्राणियों से पृथ्वीपर वा आकाश में, मनुष्य, पशु, असुर, देवता, महानाग तथा और भी जो कोई सचेतन वा अचेतन वस्तुहों उनसे मेरी मृत्यु नहो; तथा जैसी तुम्हारी महिमा है ऐसी ही मेरी हो और युद्धमें कोई शत्रु मुझे जीत न सके; मैं इकलाही सकल प्राणियों का अधिपति रहूँ और तप तथा योग के द्वारा प्रभावशाली लोकों के जो अणिमा आदि ऐश्वर्य कभी नष्ट नहीं होते हैं वह मुझे प्राप्त हों; यह वरदान आप मुझे दीजिये ।३६॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ ॥ प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान्वृणीषे वरान्मम ॥ तथाऽपि वितराम्यंग वरान्यद्यपि दुर्लभान् ॥ २ ॥ ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विभुः ॥ पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३ ॥ एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः भगवत्यकरोद्द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४ ॥ स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन्महासुरः ॥ देवासुरमनुष्येंद्रान् गन्धर्वगरुडोरगान् ॥ ५ ॥ सिद्धचारणविद्याधानृषीन्पितृपतीन्मनून् ॥ यक्षरक्षःपिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ ॥ ६ ॥ सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशमानीय विश्वजित् ॥ जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥ ७ ॥ देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् ॥ महेंद्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत् ॥ ८ ॥ यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः ॥ यत्र स्फाटिककुड्यानि वैदूर्यस्तंभप-

॥ २७ ॥ २८ ॥ इति सप्तम स्कन्ध में तृतीय अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥
नारदजी ने कहाकि–हेधर्मराज ! इसप्रकार हिरण्यकशिपु के ब्रह्माजी से वर माँगलेनेपर, उस के तप से प्रसन्न हुए उन ब्रह्माजी ने अत्यन्त दुर्लभ भी वह वर उस को दिये ।१। ब्रह्माजी ने कहाकि–हेतात दैत्यराज ! तूने जो मुझ से वर माँगे हैं वह पुरुषों को प्राप्त होना कठिन हैं तथापि हेतात ! दुर्लभभी वह वर मैं तुझे देता हूँ ॥ २ ॥ ऐसा कहकर उन के वरदान देनेपर, जिनका अनुग्रह कभी भी निष्फल नहीं होता है ऐसे उन भगवान् ब्रह्माजी की असुर श्रेष्ठ हिरण्यकशिपुने पूजा करी और मरीचि आदिप्रजापतियों के उन की स्तुति करनेपर वह ब्रह्माजी अपने धाम को चलेगये ॥ ३ ॥ इसप्रकार वरदान पाया हुआ वह दैत्य सुवर्ण की समान तेज के पुञ्ज शरीर को धारण करके अपने भ्राता के वध को स्मरण करताहुआ भगवान् से द्वेष करनेलगा ॥ ४ ॥ उस जगत् को जीतनेवाले महा दैत्य ने, सकल दिशा, तीनों लोक, देवता, असुर, मनुष्य और उन के राजे, गन्धर्व, गरुड़ नाग, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृगणों के अधिपति, मनु, यक्ष, राक्षस और पिशाचों के अधिपति, प्रेत और भूतों के स्वामी, और सकल प्राणियों के अधिपति इन सबको जीतकर वश में करलिया और लोकपालों के तेज सहित स्थान हरलिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ तदनन्तर वह हिरण्यकशिपु देवताओं के क्रीड़ा वनों की शोभा से युक्त स्वर्ग लोक में दृढ़ता से स्थित होकर तहाँ विश्वकर्मा के रचेहुए, त्रिलोकी की लक्ष्मी के निवास-स्थान और सकल सम्पदाओं से युक्त इन्द्र के महल में निवास करनेलगा ॥ ८ ॥ हे धर्मराज ! जहाँ मूँगों के सोपान (सीढ़ी) वाली मरकत मणि की भूमियें (छत्त आदि) हैं,

क्र्यः ॥ ९ ॥ यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च ॥ पयःफेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ॥१०॥ कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयन्त्य इतस्ततः॥रत्नस्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम् ॥११॥ तस्मिन्महेन्द्रभवने महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट् ॥ रेमेऽभिवन्द्याङ्घ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः ॥ ॥ १२ ॥ तमङ्ग मत्तं मधुनोरुगन्धिना विवृत्तताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ॥ उपासतोपायनपाणिभिर्विना त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम् ॥ १३ ॥ जगुर्महेन्द्रासनमोजसा स्थितं विश्वावसुस्तुम्बुरुरस्मदादयः ॥ गन्धर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन्मुहुर्विद्याधराश्चाप्सरसश्च पाण्डव ॥ १४ ॥ स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत्स्वेन तेजसा ॥ १५ ॥ अकृष्टपच्या तस्यासीत्सप्तद्वीपवती मही ॥ तथा कामदुघा द्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः ॥ १६ ॥

स्फटिकमणि की भीत (दीवार) हैं और वैडूर्यमणि के खम्भों की पंक्ति हैं ॥ ९ ॥ जहाँ चित्र विचित्र चँदोवे तनेहुए हैं, पद्मराग मणि के आसन बिछेहुए हैं और जहाँ चारों ओर मोतियोंकी लड़े लटकीहुई तथा हाथीदाँतकी दूधके झागकी समान कोमल और स्वेतशय्या हैं ॥१०॥ जहाँ छम छम बजनेवाली पायलों से जहाँ तहां शब्द करतीहुई फिरनेवाली सुन्दर दन्तावली वाली देवाङ्गना, रत्नो से जड़ीभूमि में (प्रतिबिम्बित हुए) अपने सुन्दर मुख को देखती हैं ॥ ११ ॥ उस इन्द्र के मन्दिर में, इच्छित मनोरथ पूर्ण होने के कारण प्रसन्नचित्त रहनेवाला, महाबली, सकललोकों को जीतकर इकला ही त्रिलोकी का राज्य करनेवाला और अति कठोर आज्ञा करनेवाला होने के कारण अत्यन्त दुःखित करेहुए देवता आदिकों से दोनों चरणों के विषैं वन्दना कराहुआ वह दैत्यराज्य हिरण्यकशिपु रमण करनेलगा ॥ १२ ॥ हेराजन् ! तब जो उग्रगन्धवाली सुरा से मत्त हुआ है, जिस के नेत्र लाल २ होकर घूमरहे हैं और जो तेज, मन की शक्ति, शरीर की शक्ति तथा इन्द्रियों की शक्ति का आश्रय है ऐसे उस हिरण्यकशिपु की, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीन देवताओं के सिवाय अन्य सबलोकपालों ने हाथ से भेट समर्पण करके सेवा करी ॥ १३ ॥ हेपाण्डुपुत्र ! अपनी शक्ति से महेन्द्र के आसनपर बैठेहुए उस हिरण्यकशिपु के गुणों का विश्वावसु तुम्बुरु और मैं इत्यादि सबों ने गान करा तथा गन्धर्व, सिद्ध,ऋषि विद्याधर और अप्सराओं ने वारंवार उस की स्तुति करी ॥ १४ ॥ फिर वही हिरण्यकशिपु वर्ण आश्रम की मर्यादा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले लोकों से बहुत दक्षिणावाले यज्ञों करके पूजित होताहुआ अपने तेज से सब के हविर्भाग को ग्रहण करनेलगा ।१५। उस के राज्य करते समय सात द्वीपवाली पृथ्वी बिना हलजोते ही पकनेलगी, स्वर्गलोक उस के इच्छित मनोरथ पूर्ण करनेलगा और अन्तरिक्ष लोक नाना प्रकार की आश्चर्य

रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः ॥ क्षारसीधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥ १७ ॥ शैला द्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान्द्रुमाः ॥ दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥ १८ ॥ स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान्प्रियान् ॥ यथोपजोषं भुंजानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥ १९ ॥ एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्त्तिनः ॥ कालो महान्व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥ २० ॥ तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥ अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतं ॥ ॥ २१ ॥ तस्यै नमोस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः ॥ यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ २२ ॥ इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः ॥ उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥ २३ ॥ तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिःस्वना ॥ सन्नादयन्ती ककुभः साधूनामभयंकरी ॥ २४ ॥ मा-

---

कारी वस्तु उत्पन्न करने का स्थानहुआ ॥ १६ ॥ तिसीप्रकार उस को, खाराजल,सुरा, घृत, ईखका रस, दही, दूध और मीठाजल इन के सात समुद्र नदियों सहित तरङ्गों के द्वारा रत्नों के समूह लाकर देनेलगे ॥ १७ ॥ सकल पर्वत अपनी २ गुफाओं में क्रीड़ा करने का स्थान ठीक करके रखनेलगे, सकल ऋतुओं में वृक्ष पुष्प, फल आदि पदार्थ उस को देनेलगे. और वह इकलाही सवलोकपालों के भिन्न भिन्न प्रकार के (वर्षा करना जलाना सुखाना इत्यादि) गुण धारण करनेलगा ॥ १८ ॥ इसप्रकार वह दिग्विजयी और इकलाही राजा हुआ हिरण्यकशिपु, प्रिय विषयों को इच्छानुसार भोगता हुआ जितेन्द्रिय न होने के कारण तृप्त नहीं हुआ ॥ १९ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणों का (सनकादिकों का) शाप होने के कारण ऐश्वर्य से मत्त और घमण्ड में भरकर शास्त्र के विरुद्ध वर्त्ताव करनेवाले उस हिरण्यकशिपु का ७१ युगों से कुछ अधिक काल वीतगया ॥२०॥ इसप्रकार उस हिरण्यकशिपु के कठोर दण्ड से लोकपालों सहित अत्यन्त घवड़ाये हुए सकल लोक, दूसरा कोई रक्षक न होने के कारण अच्युत भगवान् की शरण गये ।२१। और कहनेलगे कि--शान्त और निर्मलचित्त संन्यासी लोग जिस स्थान को जाकर फिर लौटकर संसार में नहीं आते हैं और जिस स्थान में सकल दुःख हरनेवाले परमात्मा-ईश्वर रहते हैं उस स्थान को हमारानमस्कार हो ॥ २२ ॥ इसप्रकार नमस्कार करके जिन्हों ने वाहरी इन्द्रियें और मन को वश में करा है, जिन के अन्तःकरणों में के राग आदि मल दूर होगए हैं, जिन की बुद्धि एकाग्र होगईहै, जिन्होंने निद्राको भी त्यागदिया है और जो वायुभक्षण करके निर्वाह करते हैं ऐसे उन देवताओं के हृषीकेश भगवान् की स्तुति करनेपर,॥ २३ ॥ उन्होंने साधुओं को अभय देनेवाली और मेघकी समान गम्भीर शब्दवाली होने के कारण दशोंदिशाओ को गुञ्जारनेवाली, जिसका कोई कहनेवाला नहीं

भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः ॥ मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥ २५ ॥ ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च ॥ तस्य शांतिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत ॥ २६ ॥ यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ॥ धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥ २७ ॥ निर्वैराय प्रशांताय स्वसुताय महात्मने ॥ प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः ॥ न्यवर्तंत गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम् ॥ २९ ॥ तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः ॥ प्रह्रादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥ ३० ॥ ब्रह्मण्यः शीलसंपन्नः सत्यसंधो जितेंद्रियः ॥ आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥ ३१ ॥ दासवत्संनतार्यांघ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः ॥ भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः ॥ विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः ॥ ३२ ॥ नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु

है ऐसी आकाशवाणी सुनी । २४ । कि–हे श्रेष्ठ देवताओं! तुम भय न करो, तुम सर्वों का कल्याण हो; क्योंकि प्राणियों को मेरा श्रवण होनेपर, वह उन के सकल कल्याणों का कारण होता है ॥ २५ ॥ हे देवताओं ! इस अधम दैत्य की दुर्जनता मैंने जानली है और मैं उस का वध भी करूँगा परन्तु तुम कुछ समय की प्रतीक्षा करो अर्थात् अभी कुछ समय तक धीरज के साथ उससमय की बाट देखो ॥ २६ ॥ अहो ! देवता, वेद, गौ, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मैं इन सबों से जब पुरुष के चित्त में द्वेष उत्पन्न होता है तब वह पुरुष शीघ्रही नाश को प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओं ! कदाचित् देवताओं के साथ कियेहुएभी द्वेष को मैं सहलूँ परन्तु मेरे भक्तों के साथ करेहुए द्वेष को मैं नहीं सहसक्ता हूँ इसकारण वैररहित और अत्यन्त शान्त, महात्मा, अपने पुत्र प्रह्लाद से जब यह द्रोह करनेलगेगा तब, ब्रह्माजी के वरदान से प्रबल हुएभी इसका मैं वध करूँगा ॥२८॥ नारदजी कहतेहैं कि–हे धर्मराज ! इसप्रकार जगद्गुरु परमात्मा के आकाशवाणी के द्वारा कहनेपर, देवता उनको नमस्कार करके उस स्तुति से निवृत्त हुए और ईश्वर के वचनसे निर्भय होकर उन्होंने उस असुर का वध हुआ ही माना ॥ २९ ॥ हे धर्मराज ! उस दैत्योंके अधिपति हिरण्यकशिपु के परम प्रतापी चार पुत्र थे; उन में प्रह्लाद अवस्था में सब से छोटे थे और गुणों में सब से बड़े थे; क्योंकि–वह सत्पुरुषों की उपासना करनेवाले, ब्राह्मणों के भक्त, शीलस्वभाव, सत्यवादी, जितेंद्रिय अपनी समान सकल प्राणियों के एकही प्रिय और हित चाहनेवाले, श्रेष्ठ पुरुषों के चरणों में दासकी समान नमनेवाले, दीनजनों के ऊपर पिता की समान प्रेम करनेवाले, अपने बराबर वालों के ऊपर भ्राताकी समान प्रीति करनेवाले, गुरुजनों में ईश्वरबुद्धि से वर्त्ताव करनेवाले, विद्या, धन, सुन्दरता और जन्म पाकर भी मान और गर्व से रहित, सङ्कटका

निस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक् ॥ दांतेंद्रियप्राणशरीरधीः सदा प्रशांतकामो रहितासुरोऽसुरः ॥ ३३ ॥ यस्मान्महद्गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः ॥ न तेऽधुनाऽपि धीयन्ते यथा भगवतीश्वरे ॥ ३४ ॥ यं साधुगाथासदसि रिपवोऽपि सुरा नृप ॥ प्रतिमानं प्रकुर्वंति किमुतान्ये भवादृशाः ॥ ३५ ॥ गुणैरलमसङ्ख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते ॥ वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥ ३६ ॥ न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया ॥ कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥ ३७ ॥ आसीनः पर्यटन्नश्नञ्छयानः प्रपिबन्ब्रुवन् ॥ नानुसंधत्त एतानि गोविन्दपरिरंभितः ॥ ३८ ॥ क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः ॥ क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥ ३९ ॥ नदति क्वचिदुत्कंठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ॥ क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽ-

समय आनपरभी मनमें न घबड़ानेवाले,परमात्मा को छोड़ अन्य सब मिथ्याहै ऐसासमझने के कारण इसलोक और परलोक के विषयों में लालसा न रखनेवाले; इन्द्रियें प्राण, शरीर और बुद्धिको वश में रखनेवाले, मत्सरता (डाह) आदि असुरभावसे रहित और असुर होकर जिन की विषयवासना शान्त हैं ऐसे थे ॥३०॥३१॥३२॥ ३३॥ हे राजन् ! जैसे भगवान् ईश्वर के विषैं होनेवाले गुण कभी भी लुप्त नहीं होते हैं तैसे ही उन प्राह्लादजी के विषैं के बड़े २ गुणों को विवेकी पुरुष ग्रहण करते हैं वह अवभी अन्तर्धान नहीं होते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! तुमसा विष्णुभक्त उन प्रह्लादजी की प्रशंसा करेगा इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है, परन्तु उन असुरों के शत्रु देवताभी, भरी सभा में साधु पुरुषों की कथा छिड़ने पर उन प्रह्लादजी की उपमा देते हैं ॥ ३५ ॥ उन प्रह्लादजी के असंख्य गुणों से भूषित माहात्म्य मैं तुम से थोडे ही में दिग्दर्शनमात्र कहता हूँ--क्योंकि, उनको वासुदेव भगवान् के विषैं स्वाभाविक प्रीति प्राप्त हुई थी ॥ ३६ ॥ हे धर्मराज ! वह अति छोटे से बालक थे तव ही कृष्णरूप पिशाच ने उनके मनको घेरलियाथा इसकारण उनका चित्त, कृष्णमें ही इकसार लवलीन रहताथा इसकारण वह खेलने के खिलौनों को भी त्यागकर सदा कृष्णका ध्यान ही करते रहते थे, उन्होंने इस जगत् को, यह ऐसा (विषयासक्त) है सो जानाही नहीं, इसकारग उनकी दशा लोक में जडकी सी प्रतीत होतीथी॥ ३७ । बैठते में, फिरते में, भोजन करते में, शयन करते में, जल आदि पीते में, और भाषण करते में, उन प्रह्लादजी को आसन आदि पदार्थों के उपभोगके गुणदोषों का भी ध्यान नहीं रहताथा, क्योंकि--गोविन्दने उनको अपने में अत्यन्तही लवलीन करलिया था ॥ ३८ ॥ कभी तो भगवान् के चिन्तवन से उन का अन्तःकरण क्षुब्ध होनेपर वह रुदन करनेलगते थे, कभी भगवच्चिन्तवन से आनन्द प्राप्त होनेपर वह हँसनेलगते थे और कभी२ ऊँचे स्वर से भगवान् के गुणों का गान करनेलगते थे ॥ ३९ ॥ कभी२ वह बड़ी (हे हरे !,

नुचकार ह ॥ ४० ॥ क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ॥ अस्पंदप्रणयानंदसलिलामीलितेक्षणः ॥ ४१ ॥ स उत्तमश्लोकपदारविंदयोर्निषेवयाऽकिंचनसंगलब्धया ॥ तन्वन्परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःसंगदीनान्यमनःशमं व्यधात् ॥ ४२ ॥ तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे ॥ ४३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत ॥ यदात्मजाय शुद्धाय पिताऽदात्साधवे ह्यघं ॥ ४४ ॥ पुत्रान्विप्रतिकूलान्स्वान्पितरः पुत्रवत्सलाः ॥ उपालभंते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥ ४५ ॥ किमुतानुवशान्साधूंस्तादृशान्गुरुदेवतान् ॥ एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ॥ पितुः पुत्राय यद्द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥ ४६ ॥ इति

प्रभो ! इत्यादि) गर्जना करते थे, कभी निर्लज्ज होकर नृत्य करनेलगते थे और किसीसमय ईश्वरचिन्तवन में अत्यन्त लवलीन होनेपर तन्मय होकर अपने आप भी भगवान् की लीलाओं का अनुकरण करनेलगते थे ॥ ४० ॥ कभी२ भगवत्स्वरूप में लीन होजाने के कारण वह सुख में निमग्न होते थे, उन के शरीर पर रोमाञ्च खड़े होजाते थे और अचलप्रेम से उत्पन्नहुए आनन्द के अश्रुओं से युक्त होने के कारण उन के नेत्र कुछएक मुँदजाते थे तब वह कुछ भी न बोलकर स्वस्थ बैठेरहते थे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार वह निःसङ्ग साधुओं के समागम से प्राप्तहुई श्रेष्ठकीर्त्तिवाले परमेश्वर के चरणकमलों की निरन्तर सेवा करके वारम्वार अपने, परमानन्द सुख को बढ़ातेहुए. दुर्जनों के संग से दीनहुए अन्य पुरुषों के मन को भी शान्त करते थे ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! उन परमभगवद्भक्त, महात्मा, महाभाग अपने पुत्र प्रह्लादजी से हिरण्यकशिपु ने द्वेष करा ॥ ४३ ॥ इसप्रकार नारदजी के कथन को सुनकर अति आश्चर्य में होने के कारण पहिले प्रथम अध्याय के अन्त में बूझेहुए विषय का धर्मराज फिर प्रश्न करते हैं कि—हे सुव्रत देवर्षि नारदजी ! शुद्ध और साधु अपने पुत्र प्रह्लादजी से पिता ने द्रोह करा यह (आश्चर्य) हम तुम से विस्तार के साथ जानने की इच्छा करते हैं ॥ ४४ ॥ क्योंकि—अपना पुत्र अपने से प्रतिकूल होने पर भी पिता 'पुत्र के ऊपर प्रेम करनेवाले होने के कारण केवल शिक्षा के निमित्त ही भाषणमात्र से ही पुत्रों का तिरस्कार करते हैं परन्तु शत्रु की समान उन से द्रोह कदापि नहीं करते हैं ॥ ४५ ॥ फिर जिन का पिता ही देवता है और जो काम क्रोधरहित होकर जो अपने अनुकूल हैं ऐसे प्रह्लादजी की समान पुत्रों से पिता द्रोह नहीं करते इसको तो कहें ही क्या ! इसकारण हे प्रभो ! हे ब्रह्मनिष्ठ ! हिरण्यकशिपु पिता ने अपने पुत्र प्रह्लादजी के वध के निमित्त द्वेषकरा और उससे वह वध न होकर वह द्वेष उलटा उस हिरण्यकशिपु के ही मरण का कारण हुआ, यह बड़े आश्चर्य की वार्त्ता है इसकारण आप हमारे इस आश्चर्य को दूर करिये ॥ ४६ ॥

श्रीभा०म०स० प्रह्लादचरित्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ पौरोहित्याय भगवान्वृतः काव्यः किलासुरैः ॥ शंडामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहांतिके ॥ १ ॥ तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदं ॥ पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥ २ ॥ यत्तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनुपपाठच ॥ न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयं ॥ ३ ॥ एकदाऽसुरराट् पुत्रमंकमारोप्य पांडव ॥ पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ॥ ४ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ॥ हित्वात्मपातं गृहमंधकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः ॥ जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥ ६ ॥ सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः ॥ विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा ॥ ७ ॥ गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्यया-

इति श्री सप्तमस्कन्ध में चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ नारदजी कहते हैं कि–हे धर्मराज ! असुरों ने भगवान् शुक्राचार्यजी को अपना पुरोहित बनायाथा इसकारण उनके शंडामर्क नामवाले दो पुत्र दैत्यराज हिरण्यकशिपु के घरके समीप रहते थे ॥ १ ॥राजा ने अपने प्रह्लाद नामवाले बालकको, नीति शास्त्र में निपुण होने पर भी, अज्ञानी समझ कर उन शंडामर्कों के समीप भेजदिया तब उन्होंने पढ़ानेयोग्य राजनीति आदि विषय असुरों के बालकों के साथ प्रह्लादजीको पढ़ाये ॥२॥ उन गुरुके घर गुरुने जो दण्डनीतिशास्त्र कहे वह प्रह्लादजी ने सुने और पढ़े भी परन्तु 'यह मैं हूँ और यह दूसरा है' इसप्रकारका वृथा अभिमानही उस नीति शास्त्रका आश्रय होनेके कारण उसको उन्होंने मनसे अच्छा नहीं जाना ॥३॥ इसप्रकार पढ़ते रहनेपर हे पाण्डुपुत्र धर्मराज ! एक दिन दैत्यराज हिरण्य कशिपु ने अपने पुत्रको गोदी में बैठाकर 'हे बेटा ! तुम्हें क्या अच्छा लगताहै सोबताओ' ऐसा बूझा ॥ ४ ॥ तब प्रह्लादजी ने कहा कि–हे दैत्यों में श्रेष्ठ पिताजी ! 'मैं और मेरा' इस मिथ्या अभिमान के कारण सर्वदा अत्यन्त उद्विग्न बुद्धिवाले प्राणियों के अँधेरे कूए की समान मोहकारक और अपनी अधोगति के कारणरूप घरको त्याग दूँ और वनमें जाकर श्रीहरि का भजन करूँ यह मुझे अच्छा लगता है ॥ ५ ॥ नारदजी ने कहा कि– हे धर्मराज ! शत्रुरूप विष्णुभगवान् के विषें अत्यन्त निष्ठायुक्त उस पुत्र के कथन को सुनकर वह दैत्यराज हँसा और कहने लगा कि–अहो ! शत्रुके पक्षकी ओर जिन की बुद्धि है वह लोक, बालक की बुद्धि को उलटी करदेते हैं ॥ ६ ॥ अरे शंडामर्कों ! दूसरा वेष धारण करके गुप्तरीति से विचरनेवाले विष्णुके पक्षपाती ब्राह्मण जिसप्रकार इस की बुद्धि को उलट न दें ऐसे उपाय से तुम अपने घरमें इस बालक की रक्षारक्खो ॥ ७ ॥

जकाः ॥ प्रशंस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छंत सामभिः ॥ ८ ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा ॥ बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः ॥९॥ बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् ॥ भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनंदन ॥ १० ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः ॥ विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥११॥ स यदाऽनुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ॥ अन्य एष तथाऽन्योहमिति भेदगतासती ॥ १२ ॥ स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ॥ मुह्यंति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिं ॥ १३ ॥ यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ ॥ तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥ १४ ॥ एतावद्ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः ॥ तं निर्भर्त्स्याथ कुपितः स दीनो राजसेवकः ॥ १५ ॥ आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः ॥ कुलां-

---

तदनन्तर अपने घर में पहुँचायेहुए प्रल्हादजी को उन दैत्यों के पुरोहित शंडामर्कों ने पुकारकर उन की प्रशंसा करी और कोमल भाषण से शान्ति के साथ यह बूझा कि–।८। बेटा प्रल्हाद! तेरा कल्याण हो, हम तुझ से जो बूझते हैं सो तू सत्य २ बता मिथ्या न बोल, अरे! इन बालकों से निराला यह तेरी बुद्धि में उलटभेद कहाँ से होगया है? ॥ ९ ॥ अरे कुलनन्दन! क्या किसी दूसरे ने तेरी बुद्धि को पलटदिया है अथवा अपने आप ही यह दशा हुई है? यह तू हम सुनने की इच्छा करनेवाले गुरुओं से कथन कर ॥ १० ॥ यह भाषण सुनकर प्रल्हाद जी ने कहाकि–अहो मैं और दूसरा, ऐसा मिथ्या अभिमान जिसकी माया का रचाहुआ है, वास्तव में सच्चा नहीं है और वह मिथ्याभिमान, तिसकी माया से मोहित बुद्धिवाले तुमसमान पुरुषों में ही दीखता है ऐसे भगवान् को नमस्कार हो ॥ ११ ॥ वह भगवान् जब पुरुषों के अनुकूल होते हैं तब 'यह और है तथा मैं और हूँ' इसप्रकार की अविवेकी पशुसमान पुरुषों की बुद्धि भेदको प्राप्त होती है अर्थात् वह भेदरहित होकर आत्मज्ञानी होता है ॥ १२ ॥ ऐसे इस परमात्मा को ही अविवेकी पुरुष यह मैं हूँ और यह दूसरा है, इसप्रकार से निरूपण करते हैं और ऐसा होनाभी ठीकही है, क्योंकि–उन परमात्मा की लीला दुर्घटहै, उन को जानने के विषय में वेदवादी ब्रह्मादिक देवताभी मोहित होजाते हैं, वह परमात्मा ही मेरी बुद्धि को फेररहे हैं ॥ १३ ॥ हेब्रह्मन्! जैसे चुम्बक पत्थर के समीप में लोहा आपही घूमने लगता हैं तैसे ही चक्रपाणि श्रीहरिके समीप में मेरा चित्त किसी अकथनीय दैवयोग से विपरीतभाव को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ नारदजी ने कहाकि–हेधर्मराज! इतना ही उन ब्राह्मण से कहकर परमबुद्धिमान् प्रल्हाद जी चुप होगए तबतो अविवेकी राजसेवक ब्राह्मण क्रोध में भरकर और उस बालक को ललकारकर कहनेलगा कि– ॥ १५ ॥ अरे!

गारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः ॥ १६ ॥ दैतेयचंदनवने जातोऽयं कंटकद्रुमः ॥ यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥ १७ ॥ इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः ॥ प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनं ।१८। तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयं ॥ दैत्येंद्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलंकृतं ।१९। पादयोः पतितं बालं प्रतिनंद्याशिषाऽसुरः ॥ परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम् ॥ २० ॥ आरोप्यांकमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलांबुभिः ॥ आसिंचन्विकस द्वक्त्रमिदमाह युधिष्ठिर ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किंचिदुत्तमम् ॥ कालेनैतावताऽऽयुष्मन्यदशिक्षद्गुरोर्भवान् ॥ २२ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥ अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥ इति पुंसाऽर्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव-लक्षणा ॥ क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ २४ ॥ निशम्यैतत्सुत-

यह हमें अपयश देनेवाला है इसकारण हमारा बेंत लाओ; इस दुर्बुद्धि कुलाङ्गार को सामदाम आदि चारों उपायों में से चौथा उपाय दण्डही शास्त्रविहित है ॥ १६ ॥ अहो! क्या कहा-जाय! दैत्यरूप चन्दन के वृक्षों के वन में यह काँटों के वृक्ष की समान उत्पन्न हुआ है. अरे! यह तो दैत्यरूप चन्दन के वृक्षों की जड़ काटने को उद्यत विष्णुरूप कुल्हाड़ी का दण्डा ही हुआ है ॥ १७ ॥ इसप्रकार तर्जना अनेकों उपायों से उन प्रल्हाद जी को भय दिखाकर उस ब्राह्मण ने उन को धर्म, अर्थ, और काम का वर्णन करनेवाले शास्त्र ही पढ़ाये ॥ १८ ॥ तदनन्तर जानने योग्य सामदाम आदि चारों उपाय इस ने समझ लिये ऐसा जानकर गुरू ने, उन को माता से उवटना करवाकर स्नान करवाया और तिलक आदि से भूषित करके दैत्यराज हिरण्यकशिपु के समीप लेजाकर दिखाया॥ १९॥ तदनन्तर चरणों में गिरेहुए उस बालक को आशीर्वाद दे सराहना करके और बहुत देरी पर्यन्त भुजाओं से उठा छातीसे लगाकर उस हिरण्यकशिपु को परम आनन्द हुआ ॥ २० ॥ हे युधिष्ठिर! स्वाभाविक प्रसन्नमुख रहनेवाले उस पुत्र को हिरण्यकशिपु ने गोदी में बैठाकर उस के मस्तक को सूँघा और आँसुओं के बिन्दुओं से प्रल्हादजी को सींचतेहुए इसप्रकार कहा ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपु ने कहा—बेटा चिरञ्जीव प्रल्हाद! इससमयपर्यन्त जो कुछ तुमने गुरु से पढ़ा हो उस में से कुछ अच्छेप्रकार पढ़ाहुआ और उत्तम सा पाठ तुम मुझे सुनाओ ॥ २२ ॥ प्रल्हाद ने कहा—हेपिताजी! विष्णुभगवान् का श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरण सेवा, पूजन, वन्दन, कर्मोंका समर्पण करना, सखाभाव और अपने शरीर का समर्पण यह नौप्रकार की विष्णु भगवान् के विषैं समर्पण करीहुई भक्ति, जिससे साक्षात् उत्पन्न होती है वह उत्तम अध्ययन (पढ़ना) है, ऐसा मैं समझता हूँ, वैसा अध्ययन वा शिक्षा इन गुरु से मुझे प्राप्त ही नहीं हुए ॥ २३ ॥ २४ ॥

वचो हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥ २५ ॥ ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षं श्रयतासता ॥ असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥ २६ ॥ सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः ॥ तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र उवाच ॥ न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो ॥ नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्नियच्छ मन्युं कद-दाः स्म मा नः ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहा-सुरः सुतम् ॥ न चेद्गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्राऽसती मतिः ॥ २९ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ॥ अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥ ३० ॥ न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिनः ॥ अन्धा यथान्धैरुपनी-

इसप्रकार पुत्र के इस कथन को सुनकर क्रोध के मारे हिरण्यकशिपु का नीचे का ओठ काँपनेलगा और उससमय वह गुरुपुत्र से इसप्रकार कहनेलगा कि—॥२५॥ अरे अधम ब्राह्मण ! यह तू ने क्या करा है ! अरे दुर्बुद्धे ! मेरे शत्रुका आश्रय करनेवाले तुझ दुष्ट ने, मुझे कुछ न समझकर, जिस में कुछ लाभ नहीं ऐसा तूने इसबालक को सिखाया है ॥ २६ ॥ अरे ! मित्रता से वर्त्ताव करतेहुए भी तेरी करतूत हमारे विरुद्ध हुई है यह कोई बहुत असम्भव नहींहै,क्योंकि—जिन का मित्रभाव कपटयुक्त होता है ऐसे तुमसरीखे कपट वेष धारण करके विचरनेवाले दुष्ट पुरुष, इसलोक में हैं और जैसे पातकी पुरुषों को नरक भोगने के अनन्तरभी रोग की उत्पत्ति होती है तैसे ही ऊपर से सज्जनों की समान वर्त्ताव करनेवाले उन दुर्जनों का भीतरी भी द्वेष समय पाकर प्रकट होजाता है ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र ने कहा—हेइन्द्रशत्रो ! यह तुम्हारा पुत्र जो कुछ कह रहा है वह इस को मैंने नहीं पढ़ाया है और दूसरे किसी ने भी नहीं पढ़ाया है किन्तु यह इस की बुद्धि स्वभाव से ही है तिस से हेराजन् ! अपने क्रोध को रोको और हमारे ऊपर वृथा ही दोष भी न लगाओ ॥ २८ ॥ नारदजी कहते हैं कि—हेधर्मराज ! इसप्रकार गुरु के उत्तर देनेपर वह असुर हिरण्यकशिपु फिर अपने पुत्र से इसप्रकार कहनेलगा कि—अरे दुष्ट ! गुरु के उपदेश से यदि यह खोटी बुद्धि तुझे प्राप्त नहीं हुई तो कहाँ से आगई ? ॥ २९ ॥ प्रल्हाद जी ने कहाकि- जिस को सदाग्रहस्थी के सुख के विषय में ही चिन्ता रहती है उस विषयों से विश्राम न पानेवाले और इन्द्रियों के द्वारा संसार में प्रवेश करके वारम्वार विषयों का सेवन करनेवाले पुरुषों की बुद्धि, दूसरों से, अपने आप वा परस्पर से श्रीकृष्ण के विषें कदापि आसक्त नहीं होती है ॥ ३० ॥ जिन के अन्तःकरण विषयों में घुसेहुए हैं वह पुरुष, 'अपने में ही पुरुषार्थ है' ऐसा समझने वाले लोकों के जाननेयोग्य विष्णुभगवान् को नहीं जानते हैं, हेतात ! वाहरी विषयों में परमार्थ बुद्धि रखनेवालों को ही

यमाना वाचीशतंत्र्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥ ३१ ॥ नैषां मतिस्तावदुरुक्रमांघ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ॥ महीयसां पादरजोभिषेकं निष्किंचनानां न वृणीत यावत् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा ॥ अंधीकृतात्मा स्वोत्संगान्निरस्यत महीतले ॥ ३३ ॥ आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः ॥ वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैर्ऋताः ॥ ३४ ॥ अयं मे भ्रातृहा सोऽयं हित्वा स्वान्सुहृदोऽधमः ॥ पितृव्यहंतुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ३५॥ विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमंजसः ॥ सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद्यः पंचहायनः ॥ ३६ ॥ परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ॥ छिंद्यात्तदंगं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विव-

गुरु समझ ने का उन का स्वभाव होने के कारण, जैसे अन्धों के लेजाये हुए अन्धे, मार्ग को न जानकर खाई में गिरजाते हैं तिसी प्रकार वहभी ब्राह्मण आदि संज्ञारूप बहुतसी डोरियों से युक्त ईश्वर की वेदवाणीरूप रस्सी के विषैं काम्य-कर्मों के द्वारा बँधही जाते हैं ॥ ३१ ॥ हे तात ! जिन का विषयों में का अभिमान सर्वथा दूर होगयाहै ऐसे परमपूजनीय पुरुषों के चरणरजों करके जबतक वह शिर से स्नान नहीं करेंगे तबतक वेदवाक्यों से उत्पन्न हुई भी इन की बुद्धि भगवान् के चरणों में प्रेम करनेवाली नहीं होगी अर्थात् असम्भावना आदि दोषों से भ्रष्ट होजायगी क्यों कि-संसार का दूर होना ही उस बुद्धि का फल है इसकारण महात्माओं के अनुग्रह के विना गृह में आसक्त हुए पुरुषों को निःसन्देह तत्त्वज्ञान की और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ॥ ३२ ॥ इतना कहकर मौन बैठेहुए पुत्र को, विवेकहीन अन्तःकरणवाले हिरण्यकशिपुने क्रोध के कारण अपनी गोदी में से भूमि में पटकदिया ॥ ३३ ॥ और असहिष्णुता तथा क्रोध से व्याप्त होने के कारण जिस के नेत्र लाल २ होगए हैं ऐसा वह हिरण्यकशिपु कहनेलगा कि-अरे राक्षसो ! इस को यहां से शीघ्र ही बाहर निकालो और इसका वध करो, क्योंकि-यह वधही करने योग्य है ॥ ३४ ॥ हे राक्षसो ! अपने सुहृदों को छोडकर यह अधमपुत्र, जो पितृव्य (पिता के भ्राता) को मारनेवाले विष्णु के चरणों को दास की समान पूजता है इसकारण मेरे भ्राता का घात करनेवाला यही विष्णु है इसकारण वध करने के योग्य है ॥ ३५ ॥ अरे ! न जाने विष्णु ने इस दुष्ट को कैसे स्वीकार करलिया है ? अरे ! जिस ने पांच वर्ष का होतेहुए ही त्याग करने को अशक्य ऐसे माता पिता के स्नेह को भी त्यागदिया है ऐसा यह कृतघ्न न जाने विष्णु का कौनसा हित करेगा ? ॥ ३६ ॥ अरे राक्षसो ! जैसे औषध परिणाम में हितकारी होती है तैसेही कोई परपुरुषभी यदि अपना हितकारी होय तो उस को अपनी सन्तान ही समझना चाहिये और अपने पेट का पुत्र भी यदि अपना हितकारी न होय तो उस

जेनात् ॥ ३७ ॥ सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः संभोजशयनासनैः ॥ सुहृल्लिङ्गधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेन्द्रियं ॥ ३८ ॥ नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः ॥ तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥ ३९ ॥ नदन्तो भैरवान्नादांश्छिंधि भिंधीति वादिनः ॥ आसीनं चाहनञ्छूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥ ४० ॥ परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि ॥ युक्तात्मन्यफला आसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः ॥ ४१ ॥ प्रयासेऽपहते तस्मिन्दैत्येंद्रः परिशङ्कितः ॥ चकार तद्वधोपायान्निर्बंधेन युधिष्ठिर ॥ ४२ ॥ दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः ॥ मायाभिः सन्निरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥ ४३ ॥ हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि ॥ न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम् ॥ चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं

को रोग की समान अपना शत्रु समझना चाहिये, अधिक तो क्या प्रेम के स्थान सन्तान आदि की तो बात अलग रही परन्तु अपने शरीर का कोई अङ्गभी यदि अपना हितकारी न हो तो उस को काटडाले क्योंकि–उतने का त्याग करनेपर शेष शरीर सुख से जीवित रहता है ॥ ३७ ॥ इसकारण भोजन, शयन, और आसन आदि सकल उपायों से अर्थात् भोजन आदि में विष आदि देकर इसका वध करो, क्योंकि–जैसे विषयों में आसक्त हुई इन्द्रियें मुनि को शत्रुसमान होती हैं तैसे ही पुत्र का वेष धारण करने वाला यह मेरा शत्रु है ॥ ३८ ॥ तीखी दाढ़, भयङ्कर मुख और लाल २ दाढ़ीमूछ तथा केशवाले उन राक्षसों को, स्वामी हिरण्यकशिपु की ऐसी आज्ञा होनेपर उन्होंने हाथों में शूल धारण करे ॥३९और भयङ्कर गर्जना करनेवाले तथा 'तोड़ो, मारो' ऐसा कहने वाले उनराक्षसोंनेशूलोंके द्वारा,धैर्यके साथ वैठेहुए उनप्रल्हादजी के मर्मस्थानोंमें प्रहारकरा परन्तु जैसे प्रारब्धहीन पुरुप के बड़े २ उद्योग भी व्यर्थ होजाते हैं तैसे ही प्रल्हादजी के विषैं करेहुए राक्षस आदिकों के प्रहार निष्फल हुए, क्योंकि–प्रल्हादजी का मन निर्विकार, निर्विषय, परमैश्वर्यवान् और शस्त्रादिकों के भी नियन्ता परमेश्वर के विषैं लगाहुआ था ॥ ४१ ॥ हे युधिष्ठिर ! इसप्रकार उन प्रल्हादजी के विषैं दैत्यों का मारने का प्रयत्न निष्फल होनेपर दैत्यराज हिरण्यकशिपु को बड़ाभारी सन्देह हुआ और बड़े आग्रह के साथ उस ने प्रल्हादजी के वध के उपाय करे ॥ ४२ ॥ दिग्गजों के पैरों से कुचलवाना, बड़े २ सर्पों से डँसवाना, पुरश्चरण करवाकर मरवाना, पर्वत के शिखर आदि के ऊपर से नीचे को ढकेलदेना, नानाप्रकार की माया से वध करवाना, खाड़ियों में डालकर बन्द करदेना, विष दिलवाना, भोजन न देना, शीत में रखना, आँधी में बैठालना, अग्नि में डालना, जल में डुबोना और ऊपर पत्थर फेंकना इत्यादि अनेकोंवार करेहुए उपायों से जब वह असुर, अपने निष्पापपुत्र के मारने को समर्थ नहीं हुआ और जब उस का वध करने का अन्य कोई भी उपाय उस को नहीं सूझा तब वह अत्यन्त चिन्ता में पड़कर

नाभ्यपद्यत ॥ ४४ ॥ एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः ॥ तैस्तै-द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥ ४५ ॥ वर्तमानोऽविदूरे वै बालोप्य-जडधीरयम् ॥ न विस्मरति मेऽनार्यं शुनःशेप इव प्रभुः ॥ ४६ ॥ अप्रमे-यानुभावोयमकुतश्चिद्भयोऽमरः ॥ नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥ ॥ ४७ ॥ इति तं चिंतया किंचिन् म्लानश्रियमधोमुखम् ॥ शण्डामर्कावौश-नसौ विविक्त इति होचतुः ॥ ४८ ॥ जितं त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवोर्विजृंभ-णत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपं ॥ न तस्य चिंत्यं तव नाथ चक्ष्महे न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ॥ ४९ ॥ इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्ध्वा निधेहि भीतो न पलायते यथा ॥ बुद्धिश्च पुंसो वयसार्यसेवया यावद्गुरुर्भार्गव आगमिष्यति ॥ ५० ॥ तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् ॥ धर्मो ह्यस्योपदेष्टव्यो राज्ञां

मन में कहनेलगा कि—॥ ४३ ॥ ४४ ॥ अहो ! इस को मैंने बड़े २ दुर्वचन कहे, तथा नानाप्रकार के द्रोह और अभिचार निन्दित धर्मों से इस के वध के उपाय भी करे परन्तु उन से यह अपने प्रभाव से ही छूटगया ॥ ४५ ॥ तथा यह बालक होकर भी निरन्तर मेरे पास रहतेहुआ भी इस के चित्त को मेरा कुछ भी भय प्रतीत नहीं होता है इसकारण मेरे भी मारने को समर्थ यह बालक शुनःशेप की समान अर्थात् अजीगर्त के विचले पुत्र शुनःशेप को माता पिता ने राजा हरिश्चन्द्र के हाथ वेचदिया तब जैसे उस ने माता पिता का अपकार करना मन में विचारकर उन के शत्रु विश्वामित्रजी का आश्रय लेकर दूसरे गोत्र को प्राप्त हुआ तिसी प्रकार यह मेरे शत्रुभावको भूलेगा नहीं ॥ ४६ ॥ अहो ! क्या कहूँ ! इसका प्रभाव अपरिमित होने के कारण इस को किसी से भी भय नहीं है यह अमर है तिस से इसके ही विरोध के कारण निःसन्देह मेरी मृत्यु होयगी नहीं तो फिर मरण होगा ही नहीं ॥ ४७ ॥ इसप्रकार की चिन्ता से कुछएक निस्तेज होकर एकान्त में नीचे को गर्दनकर के बैठेहुए तिस हिरण्यकशिपु से शुक्राचार्य के पुत्र शंडा-मर्क इसप्रकार कहनेलगे कि—॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! भृकुटि के चलाने से ही जिस में के सकल लोकपाल भयभीत होजाते हैं ऐसी त्रिलोकी को तुमने इकलेने ही जीतलिया है इस कारण आप को चिन्ता होने की कोई बात हम तो देखते नहीं, अब प्रल्हाद का शत्रु का पक्षपात करना और प्रभाव देखकर मुझे चिन्ता होगई है, यदि ऐसा कहो तो हे राजन् ! बालकों की बातचीत में गुणदोष नहीं देखाजाता है ॥ ४९ ॥ तथापि हे असुरश्रेष्ठ ! शुक्राचार्यगुरु जबतक तपस्या पूरी करके आवें तबतक यह भयभीत होकर कहीं भाग न जाय इसप्रकार इस को वरुण की पाशों से बांधकर डालदो, क्योंकि—अवस्था की वृद्धि और महान् पुरुषोंकी सेवा करनेसे बालकों की बुद्धि उत्तम होतीहै ५० इसप्रकार गुरु पुत्रों के कहनेको 'ठीकहै' ऐसा स्वीकार करके हिरण्यकशिपु ने यह कहाकि

ये गृहमेधिनाम् ॥ ५१ ॥ धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः ॥ प्रह्लादायोचतू राजन्प्रश्रयोऽवनताय च ॥ ५२ ॥ यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् ॥ न साधु मेने तच्छिक्षां द्वंद्वारामोपवर्णिताम् ॥ ५३ ॥ यदाचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु ॥ वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥ ५४ ॥ अथ तान् श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः ॥ उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥ ते तु तद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः ॥ बाला न दूषितधियो द्वंद्वारामेरितेहितैः ॥ ५६ ॥ पर्युपासत राजेंद्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः ॥ तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ॥ ५७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ छ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान्भागवतानिह ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥ १ ॥ यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् ॥ यदेष सर्वभूतानां प्रियं आत्मे-

हेगुरुपुत्रो ! गृहस्थी राजा के जो धर्म हैं वही तुम इस को सिखाओ ॥ ५१ ॥ हेधर्मराज ! तदनन्तर उन शंडामर्कों ने विनययुक्त और नम्रप्रल्हाद जी को क्रम से निरन्तर धर्म, अर्थ और काम ही पढ़ाये ॥ ५२ ॥ परन्तु अपने को गुरुने पढ़ायेहुए उन धर्म, अर्थ और काम को प्रल्हादजी ने अच्छा नहीं माना, क्योंकि–वह शिक्षा राग द्वेष आदि द्वन्द्वों से विषयों में आनन्द मानने वाले पुरुषों ने ही उत्तम कही है सत्पुरुषों ने उसको अच्छा नहीं कहा है ॥ ५३ ॥ एक समय उन गुरु के पढ़ाने के स्थान से निवटकर घर के कामों में आसक्त होनेपर तहाँ खेलने का अवसर मिलनेपर समान उमरवाले बालकों ने प्रल्हाद जी को खेलने के निमित्त पुकारा ॥ ५४ ॥ तव उनकी जन्म मरणरूप दशा को जाननेवाले महाज्ञानी प्रल्हादजी ने, मधुर वाणी से उन को ही अपने समीप बुलाया और उन का हास्यसा करतेहुए कृपा करके उन से भाषण करा ॥ ५५ ॥ हे राजेंद्र युधिष्ठिर ! वह बालक थे इसकारण राग द्वेष आदि द्वन्द्वों से विषयों में आसक्तहुए पुरुषों के उपदेशों और आचरणों से उन की बुद्धि दूषित नहीं हुई थी इसकारण उन सब बालकों ने प्रल्हादजी के भाषण के गौरव से खेल के पदार्थों को त्यागकर और अपना अन्तःकरण तथा दृष्टि उन की ओर को लगाकर चारोंओर को बैठगए तब दयालु और हितकारी उन परम भगवद्भक्त प्रल्हाद असुर ने उन को उपदेश करा ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति सप्तम स्कन्ध में पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ प्रल्हादजी ने कहा कि–हे बालकों ! ज्ञानी पुरुष इस मनुष्य जन्म में ही और उस में भी कुमार अवस्था में ही भगवत् सम्बन्धी धर्म का आचरण करे, क्योंकि–यह मनुष्य जन्म दुर्लभ है और पुरुषार्थ का देनेवाला है परन्तु अशाश्वत है अर्थात् चिरकाल नहीं रहता है ॥ १ ॥ इस मनुष्यजन्म में विष्णुभगवान् के चरण की शरण लेना ही पुरुष को योग्य है, क्योंकि–यह विष्णु ही स

श्वरः सुहृत् ॥ २ ॥ सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ॥ सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः ॥ ३ ॥ तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ॥ न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४ ॥ ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः ॥ शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥ ५ ॥ पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः ॥ निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः ॥ ६ ॥ मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः ॥ जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥ ७ ॥ दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा ॥ शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥ ८ ॥ को गृहेषु पुमान्सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः ॥ स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥ ९ ॥ को न्वर्थतृष्णां विसृजेत्प्राणेभ्योऽपि य ईप्सितः ॥ यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ॥ १० ॥ कथं

कलभूतों के आत्मा, ईश्वर, प्रिय और हितकारी हैं ॥ २ ॥ हे दैत्यों ! जैसे प्राणियों को विना परिश्रम करे पूर्व जन्म के कर्मों करके ही दुःख प्राप्त होजाता है तैसेही देह से इन्द्रियों के सुख भी सकल योनियों में दैवयोग से ही प्राप्त होजाते हैं ॥ ३ ॥ इसकारण उस के निमित्त प्रयत्न न करो उस के प्रयत्नमें केवल आयुका नाश ही होताहै कुछ फल नहीं मिलताहै, जैसे मुकुन्द के चरणकमलकी सेवा करनेवाला पुरुष परमानन्दरूप कल्याण को प्राप्त होताहै तैसे विषयसुखके निमित्त प्रयत्न करनेवाला पुरुष कल्याणनहीं पाताहै किन्तु दुःख ही पाताहै॥४॥इससे संसार मे पड़ेहुए विवेकी पुरुष को,जबतक सकल अङ्गोंसे परिपूर्ण अपने शरीर का नाश नहीं हो तबतक ही शीघ्रतासे कल्याण के निमित्त प्रयत्न करना चाहिये॥५॥अहो ! मनुष्यकी आयु पहिले तो आपही सौ वर्ष की है,उसमें से आधी इन्द्रियों को वश में न रखनेवाले पुरुष की व्यर्थ जाती है, क्योंकि–वह पुरुष रात्रि में निद्रारूपी अज्ञान में डूबकर सोता रहता है ॥ ६ ॥ तथा बालक अवस्था में अज्ञानी होने के कारण दशवर्ष, कुमार अवस्था में खेल में आसक्त होने के कारण दशवर्ष इसप्रकार बीस वर्ष और वृद्धअवस्था में बुढापे से शरीर ग्रस्त होकर असमर्थ होजाने के कारण बीसवर्ष की आयु व्यर्थ ही बीतजाती है ॥ ७ ॥ और शेष आयु प्रबल मोह से तथा दुःखों से चारों ओर भरे हुए काम के द्वारा गृह में आसक्त हुए उस प्रमत्त पुरुष की व्यर्थ जाती है ॥ ८ ॥ हे दैत्यों ! इन्द्रियों को वश में न रखनेवाला कौनसा पुरुष, गृह में आसक्त हुए और स्नेहरूप दृढ़ पाशों से बँधेहुए स्वयं अपने को छुटाने में समर्थ होगा ? कोई नहीं होगा ॥ ९ ॥ तथा जिस द्रव्य को, चोर, सेवक और वैश्य, अति प्रिय अपने प्राणों से भी मोल लेते हैं अर्थात् प्राणों की हानि को भी स्वीकार करके पाने का प्रयत्न करते हैं उस प्राणों से भी प्रिय द्रव्य की इच्छा को कौनसा पुरुष छोड़ेगा ? कोई नहीं छोड़ेगा

प्रियाया अनुकंपितायाः संगं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान् ॥ सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥ ११ ॥ पुत्रान् स्मरंस्ता दुहितॄर्हृदय्या भ्रातॄन् स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ ॥ गृहान्मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च वृत्तीस्तु कुल्याः पशुभृत्यवर्गान् ॥ १२ ॥ त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ॥ औपस्थ्यजैह्वयं बहु मन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥ १३ ॥ कुटुंबपोषाय वियन्निजायुर्न बुद्ध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ॥ सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा निर्विद्यते न स्वकुटुंबरामः ॥ १४ ॥ वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्तुः ॥ प्रेत्येह चाथाप्यजितेंद्रियस्तदशान्तकामो

॥ १० ॥ जैसे कोशस्कर (वन्दा वनानेवाला) कीड़ा अपने हितकारी घर को काँटों से वनाताहुआ अन्त में उस में से अपने वाहर निकलने का मार्ग भी नहीं रखता है तैसे ही विषयों की इच्छा से तृप्त न होने के कारण लोभ से, अपने वन्धन का कारण होनेवाले कर्मों को करनेवाला जो पुरुष, स्त्री पुत्र आदि के विषै चित्त से अनुराग रखनेवाला होने के कारण उन के स्नेहरूप फाँसी से बँधकर रहता है वह पुरुष, दयायुक्त प्रिय भार्या का एकान्त में होने वाला संग, उस के साथ हुए मनोहर और हितकारी भाषण, मित्रगणों में हुई संगति, मधुरशब्द उच्चारण करनेवाले वालकों की सङ्गति, पुत्र, सुसराल में रहनेवाली वह मनोहर कन्या, भ्राता, भगिनी, वृद्ध अवस्था के कारण दीन हुए माता पिता, सुन्दर और वहुत सी सामग्रियों से युक्त स्थान, कुलपरम्परा से आईहुई जीविका, पशुओं के समूह और सेवकगण इन सवों को स्मरण करताहुआ, इन सवों का त्याग करने को कैसे समर्थ होगा ? हे दैत्यों ! जो मूत्रेन्द्रिय और जिव्हा इन्द्रिय से प्राप्त होनेवाले सुख को ही अधिक मानता है और जिसको वड़ाभारी मोह प्राप्त हुआ है वह भला कैसे विरक्त होयगा ? कदापि नहीं होयगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे असुरों के वालकों संसारी पुरुष प्रमत्त (भलेवुरे की सुध न रखने वाला) होता हुआ, कुटुम्ब का पोषण करने के निमित्त मेरी आयु का नाश होता है और मेरा पुरुषार्थ छूटाजाता है ऐसा नहीं जानता है और सव काल में तथा सव स्थान में तीन प्रकार के तापों से दुःख पाताहुआ भी कुटुम्ब मे रमण करने वाला होने के कारण उस को उस कुटुम्ब में दुःख नहीं प्रतीत होता है ॥ १४ ॥ अहो ! अधिक तो क्या ! परन्तु, जिस का चित्त द्रव्य के विषैही लगाहुआ है वह कुटुम्बी पुरुष, पराया धन हरनेवाले पुरुष को परलोक में नरकरूप और इस लोक में राजदण्ड आदि रूप दुःख भोगना पडता है, यह जानताहुआ भी जितेंद्रिय न होने के कारण और उस द्रव्य की अभिलाषा की शान्ति न होने के कारण वह उस

हरते कुटुम्बी ॥ १५ ॥ विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुंबं पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै ॥ यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥ १६ ॥ यतो न कश्चित्क्व च कुत्रचिद्वा दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ॥ विमोचितुं कामदृशां विहारक्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः ॥ १७ ॥ ततो विदूरात्परिहृत्य दैत्या दैत्येषु संगं विषयात्मकेषु ॥ उपेत नारायणमादिदेवं विमुक्तसंगैरिपितोऽपवर्गः ॥ १८ ॥ नह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः ॥ आत्मत्वात्सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥ १९ ॥ परावरेषु भूतेषु ब्रह्मांतस्थावरादिषु ॥ भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥ २० ॥ गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा ॥ एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ २१ ॥ प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयं ॥ व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्यो-

---

पराए धन को हरता ही है ॥ १५ ॥ इसप्रकार गृह आदि के विषैं आसक्तहुए पुरुष को वैराग्य आदि होना सम्भव नहीं, ऐसा जो सातश्लोकों में कहा उसका उपसंहार करते हैं कि–हे दानवो ! इसप्रकार कुटुम्ब का पोषण करनेवाला विद्वान् पुरुष भी, निःसन्देह आत्मज्ञान के पाने को समर्थ नहीं होता है किन्तु अतिमूढ़ पुरुष की समान वह विद्वान् भी गृह आदि में ही आसक्ति करने लगता है क्योंकि–'यह मेरा और यह दूसरे का' ऐसा भेदभाव उसमें वास करता है ॥ १६ ॥ हे दैत्यो ! जो विषयों में अत्यन्त लम्पट तथा जिस के नेत्रों के कटाक्षों में कामदेव है और जिस के सम्बन्ध से बेड़ियों की समान बन्धन की कारण पुत्र पौत्र आदि सन्तान प्राप्त होती है ऐसी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करने के निमित्त अति लम्पट हुआ कोई भी पुरुष, किसी स्थान में भी और किसी भी समय स्वयं अपना छुटकारा करने को समर्थ नहीं होता है तिससे तुम, विषयों में ही आसक्त रहने वाले दैत्यों का संग दूर से ही छोडकर आदिदेव नारायण की शरण जाओ, क्योंकि–सकल संगों को त्यागनेवाले विवेकी पुरुषों ने भी उनको ही मोक्षरूप से स्वीकार करा है ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! अच्युत भगवान् सकल प्राणियों के आत्मा और इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र सिद्ध होने के कारण, उन को प्रसन्न करनेवाले पुरुष को बड़ाभी परिश्रम नहीं पड़ता है ॥ १९ ॥ हे बालको ! वृक्ष पाषाण आदि से लेकर ब्रह्माजी पर्यन्त छोटे बडे जीवों में, पञ्चमहाभूत से उत्पन्नहुए घटपटादि जड़ पदार्थों में, आकाश आदि पञ्चमहाभूतों में, सत्वादि गुणों में, माया में और गुणों के विकार महत्तत्त्व आदि मे ब्रह्मरूप, सर्वान्तर्यामी, अचिन्तनीय ऐश्वर्यवान् और अपक्षय आदि विकाररहित एकही ईश्वरभासता है ॥ २० ॥ २१ ॥ हेमित्रो ! केवल अनुभवरूप, अनन्दस्वरूप ईश्वर स्वयं भेदरहित और निर्देश करनेको

ऽविकल्पितः ॥ २२ ॥ केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः ॥ माययाऽन्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥२३॥ तस्मात्सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदं ॥ आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥ २४ ॥ तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनंत आद्ये किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः ॥ धर्मादयः किमगुणेन च कांक्षितेन सारं जुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥ २५ ॥ धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग ईक्षा त्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता ॥ मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥ २६ ॥ ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह नारायणो नरसखः किल नारदाय ॥ ऐकांतिनां भगवतस्तदकिंचनानां पादारविंदरजसाप्लुतदेहिनां स्यात् ॥ २७ ॥ श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं

अशक्य होकरभी अन्तर्यामी द्रष्टा के स्वरूप से व्यापकत्व करके और भोग्य देह आदि के स्वरूप से व्याप्यत्व करके जाननेयोग्यहैं तथापि गुणमयी सृष्टि उत्पन्न करनेवाली माया से अपनेस्वरूपको आच्छादित करेहुएहैं इसकारण सर्वत्र होतेहुएभी उनकेसवस्थानमें सर्वज्ञत्व आदिगुणनहींपायेजातेहैं ।२२।२३। इसकारणतुम असुरभावको त्यागकर, जिस से अधोक्षज भगवान् प्रसन्न होतेहैं उस सकल भूतोंमें मित्रभाव और दयाभावको धारण करो ॥ २४॥ उन आदि पुरुष अनन्त भगवान् के सन्तुष्ट होनेपर कौन पदार्थ दुर्लभ है ? अर्थात् कुछ दुर्लभ नहीं है, इसकारण गुणों के परिणामरूप दैव करके ही अनायास में स्वयं प्राप्त होने वाले धर्म आदि पुरुषार्थों का आचरण करके उन से हमें क्या करना है ? और मोक्षकी इच्छा करके भी हमें क्या करना है ? क्योंकि—भगवान् के चरणों की समीपता से भगवान् का माहात्म्य गानेवाले हमको विना इच्छा करेही मोक्ष की प्राप्तिहोही जायगी और कदाचित् प्राप्त नहीं भी हुई तो न होय, भगवान् के चरण सम्बन्धी अमृत का सेवन करनेवाले हमें उसमोक्षकी इच्छा करके भी क्या करना है ? अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है ॥२५॥ हेअसुरों ! धर्म, अर्थ और कामरूप जो त्रिवर्ग कहा है और उस के निमित्त आत्मविद्या, कर्मविद्या, तर्कशास्त्र, दण्डनीति और नानाप्रकार की जीविका के जो साधन हैं वह सब वेद में कहे हैं, परन्तु वह यदि अन्तर्यामी परमपुरुष भगवान् को अपना आपा समर्पण करने के यदि साधन हों तो ही उन को मैं सत्यमानता हूँ नहीं तो असत्य ही हैं ॥ २६ ॥ हेदैत्यपुत्रों ! निर्मल और दुर्लभ यह ज्ञान पहिले जिन का सखा नर है ऐसे नारायण ने नारद जी से कहाथा इसमें कोई सन्देह नहीं है, सकल संगोंको त्यागनेवाले एकनिष्ठ भगवद्भक्तों के चरणकमलों की रज के कणों से जिन प्राणियों का स्नान हुआ है उन को ही वह ज्ञान प्राप्त होता है, उत्तम पुरुषों कोही प्राप्त हो ऐसानियम नहीं है ॥ २७ ॥ इसकारण ही मैंने भी,

विज्ञानसंयुतम् ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद्देवदर्शनात् ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्रा ऊचुः ॥ प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुम् ॥ एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ ॥ २९ ॥ बालस्यान्तःपुरस्थस्य महत्संगो दुरन्वयः ॥ छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद्विश्रम्भकारणम् ॥ ३० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः ॥ उवाच स्मयमानांस्तान् स्मरन्मदनुभाषितम् ॥ १ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मन्दराचलम् ॥ युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति ॥ २ ॥ पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः ॥ पापेन पापोऽभक्षीति वादिनो वासवादयः ॥ ३ ॥ तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः ॥ वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥ कलत्रपुत्रमित्राप्तान् गृहान्पशुपरिच्छदान् ॥ नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे

अनुभव होने पर्यन्त यह ज्ञान तथा शुद्ध भागवत धर्म भगवान् का दर्शन पानेवाले नारदजी से सुने हैं ॥ २८ ॥ ऐसा प्रल्हाद जी का कथन सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए दैत्यपुत्रों ने कहाकि–हेप्रल्हाद ! इन गुरुपुत्रों को छोड़ तुम्हे और हमें दूसरा गुरु किसीप्रकार ज्ञात (मालूम) है ही नहीं, यदि कहो कि–इन गुरुपुत्रों के समीप आने से पहिले ही मैं नारदजी के समीप गया था सो तुम बहुत छोटेसे थे तव से ही तुम्हारे यह गुरु हैं तव तुम यहाँ से अन्यत्र कहीं गये हो यह सम्भव नहीं ॥ २९ ॥ यदि कहो कि–नारद मुनि ही यहाँ आये थे सो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि–रणवासमें रहनेवाले बालक को महात्मा का समागम होना दुर्घट है इसकारण हे प्रियदर्शन प्रल्हाद ! तुम्हारे वचनपर हमारा विश्वास जमने का यदि कोई योग्य कारण होय तो उस को कहकर तुम हमारा संशय दूर करो ॥ ३० ॥ इति सप्तम स्कन्ध में षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ * ॥ नारदजी ने कहा कि–हे धर्मराज ! इसप्रकार परमभगवद्भक्त प्रल्हादजी से दैत्यपुत्रों के प्रश्नकरनेपर विस्मय में पडेहुए दैत्यपुत्रों को मेरे उपदेश का स्मरण करातेहुए प्रल्हादजी ने कहा ॥ १ ॥ प्रल्हादजी बोले कि–हे दैत्यपुत्रो! मेरे पिता हिरण्यकशिपु के तप करनेके निमित्त मन्दरपर्वत के विषैं चलेजानेपर जैसे चीटियें सर्प को भक्षण करती हैं तैसे लोकों को अतिताप देनेवाले इस पापी को, उस के पाप ने ही भक्षण करलिया यह बड़ा अच्छा हुआ, ऐसा हर्षपूर्वक भाषण करनेवाले इन्द्रादि देवताओं ने, दानवों के साथ युद्ध करने के निमित्त बड़े भारी उद्योग का प्रारम्भ किया ॥ २ ॥ ३ ॥ तव उन के उस अति पराक्रम के उद्योग को देखकर सकल ही असुरों के सेनापति भयभीत हुए और देवताओं से बाधापाते हुए अपने स्त्री, पुत्र; मित्र, सम्बन्धी, गृह, पशु और भोग के साधनभूत पदार्थों की ओर कुछ ध्यान न दे उन

प्राणपरीप्सवः ॥ ५ ॥ व्यलुंपन् राजशिबिरममरा जयकांक्षिणः ॥ इन्द्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥ ६ ॥ नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव ॥ यदृच्छयागतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥ ७ ॥ प्राह नैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम् ॥ मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ॥ आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् ॥ त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥ १० ॥ इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः ॥ अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११ ॥ ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् ॥ आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत्ते भर्तुरागमः ॥ १२ ॥ तथेत्यवात्सीद्देवर्षेरन्ति साऽप्यकुतोभया ॥ यावद्दैत्यपतिर्घोरात्तपसो न न्यवर्तत ॥ १३ ॥ ऋषिं पर्यचरत्तत्र भक्त्या परमया सती ॥

को छोडकर अपने प्राणों की रक्षा होने की इच्छा करतेहुए दशों दिशाओं में को भागने लगे ॥ ४ ॥५॥ उस समय विजय की इच्छा करनेवाले देवताओं ने राजमहल को लूट कर उस में के सकल पदार्थों को हरालिया और इन्द्र तो राजा की पटरानी मेरी माता कयाधु को पकड़कर लेचला ॥ ६ ॥ तब मार्ग में कुररी पक्षिणी की समान भय से घबडाकर रुदन करतीहुई उस को तहांही अकस्मात् आयेहुए नारदजी ने देखकर, उस को लिये जानेवाले इन्द्र से यह कहा कि–हे देवेन्द्र ! इस निरपराधिनी स्त्री को लेजाना तुझे योग्य नहीं है, हे महाभाग ! तू इस को छोड़ छोड़ क्योंकि–यह पतिव्रता और परस्त्री है ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब इन्द्र ने कहा कि–हे देवर्षे ! इस की कोख में देवताओं से द्वेष करनेवाले हिरण्यकशिपु का, जिस को सहना अतिकठिन है ऐसा वीर्य (गर्भरूप से बढ़ रहा) है, इसकारण इस को सन्तान की उत्पत्ति होने पर्यन्त रहने दो, तदनन्तर इस से उत्पन्न हुए पुत्र का वध करनेपर मैं इस को छोड़दूँगा ॥ ९ ॥ नारदजी ने कहा कि–हे इन्द्र ! यह इसका गर्भ, साक्षात् अनन्त भगवान् का सेवक, बलवान् , निर्दोष,अपने गुणों से ही बडा और परम भगवद्भक्त होने के कारण तुम्हारे हाथसे मरण को नहीं प्राप्त होगा ॥ १० ॥ इसप्रकार नारद जी के कहनेपर इन्द्र ने उस नारदजी के वचन को मानकर तिस कयाधु को छोड़दिया और उस के पेट में विद्यमान मुझ भगवद्भक्त की भक्ति से उस की प्रदक्षिणा कर के स्वर्ग को चलेगये ॥ ११ ॥ तदनन्तर वह देवर्षि मेरी माता को अपने आश्रम में लेगये और उस को धीरज बँधाकर ऐसा कहा कि–हे पुत्रि ! जबतक तेरा पति तपस्या करके लौटकर आवे तबतक तू इस आश्रम में आनन्द से रह ॥ १२ ॥ तब उस ने भी 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा और वह दैत्य पति हिरण्यकशिपु जबतक घोर तपस्या से निवटा नहीं तबतक वह कयाधु नारदजी के समीप में

अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥ १४ ॥ ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रा-दादुभयमीश्वरः ॥ धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥ १५ ॥ तत्तु कालस्य दीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे ॥ ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यज-हात्स्मृतिः ॥ १६ ॥ भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ॥ वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥ १७ ॥ जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः ॥ फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ १८ ॥ आत्मा नित्यो-ऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ॥ अविक्रियः स्वदृग्घेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यना-वृतः ॥ १९ ॥ एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः ॥ अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥ २० ॥ स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात्। क्षेत्रेषु देहेषु तथात्मयोगैरध्यात्मविद्ब्रह्मगतिं लभेत ॥ २१ ॥ अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय

निर्भय होकर रही ॥ १३ ॥ और उस गर्भिणी पतिव्रता ने अपनी इच्छा से (पति के घर आने के अनन्तर) सन्तति हो इस निमित्त और तबतक मेरे गर्भ की भली प्रकार रक्षा रहे इस निमित्त परमभक्ति से उस आश्रम में नारदऋषि की सेवा करी ॥ १४ ॥ तब उन दयालु समर्थ ऋषि ने, उस का शोक दूर होने के निमित्त और मेरे उद्देश से धर्मका भक्तिरूपतत्त्व और आत्मानात्म विवेकरूप निर्मल ज्ञानका उसको उपदेशकरा १५ यदि तुम मेरे कहनेपर विश्वास करोगे तो तुम्हें भी वह दोनों प्राप्त होंगे; क्योंकि-जैसे मुझे श्रद्धा से, देह आदि के विषैं के अहङ्कार को नाश करने में चतुरबुद्धि प्राप्तहुई है तैसे ही स्त्री और बालकों को भी प्राप्त होगी ॥ १७ ॥ हे मित्रों ! नानाप्रकार के विकार उत्पन्न करने में समर्थ काल के द्वारा, वृक्ष के होनेपर जैसे उस के फलों को ही उत्पन्न होना, बढ़ना, परिणाम पाना, सङ्कोचित होना और नाश को प्राप्त होना यह छः विकार देखने में आते हैं वह उन फलों के आधारभूत वृक्ष को देखने में नहीं आते हैं तैसे ही, आत्मा के होनेपर देह को ही जन्म आदि विकार देखने में आते हैं आत्मा को देखने में नहीं आते हैं ॥ १८ ॥ हे दैत्यपुत्रों ! आत्मा तो नित्य, अपक्षयशून्य, शुद्ध, अद्वितीय, शरीर आदिकों का ज्ञाता, सब का आश्रयभूत, क्रियाशून्य, स्वयंप्रकाश, सब का उत्पन्न करनेवाला, सर्वव्यापक, अलिप्त और अवेष्टित है ॥ १९ ॥ इस कारण विवेक को उत्पन्न करने में समर्थ इन आत्मा के बारह लक्षणों करके वह, देह से भिन्न है ऐसा जाननेवाला पुरुष, देह आदि के विषैं 'मैं और मेरा' इसप्रकार की मोहजनित बुद्धि का त्याग करे ॥ २० ॥ हे असुरबालकों ! सुवर्ण की खान में चमकतेहुए सुवर्ण के कणों से युक्त पत्थरों में, सुवर्ण निकालने के उपाय को जाननेवाला सुनार मट्टी आदि को दूर करके उन पाषाणों में से सुवर्ण को पा लेता है तैसे ही देहरूप क्षेत्र के विषैं अध्यात्मज्ञानी पुरुष, आत्मप्राप्ति के उपायों से ब्रह्मभाव को प्राप्त करलेता है ॥ २१ ॥

एवं हि तद्गुणाः ॥ विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥२२॥ देहस्तु सर्वसंघातो जगत्तस्थुरिति द्विधा ॥ अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत्त्यजन् ॥ २३ ॥ अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशतात्मना ॥ सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥ २४ ॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ॥ ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥ २५ ॥ एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः ॥ स्वरूपमात्मनो बुद्ध्येद्गन्धैर्वायुमिवान्वयात् ॥ २६ ॥ एतद्द्वारो हि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः ॥ अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते

मूलप्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह आठ प्रकृति हैं, सत्व, रज और तम यह तीन प्रकृति के ही गुण हैं, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिव्हा, नासिका, पायु, उपस्थ, हाथ, पैर, वाणी और मन यह ग्यारह इन्द्रियें तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पांच महाभूत मिलकर सोलह विकार हैं, इन सबों में साक्षीरूप से व्याप्त होकर रहनेवाला एक आत्मा है; ऐसा कपिल आदि आचार्यों ने कहा है ॥ २२ ॥ देह तो प्रकृति आदि सकलसमुदायरूप होकर स्थावर और जङ्गम ऐसे दो प्रकार का है; इस देह में ही 'नेति, नेति' आत्मा गन्धवान् नहीं होता है, रसवान् नहीं होता है, इस प्रकार से आत्मा से भिन्न जो पृथिवी आदि वस्तु उन का निषेध करके उन से निराला रहनेवाले आत्मा की खोज करलेय ॥ २३ ॥ जैसे मणियोंकी माला में डोरा सकलमणियों में पुरोयाहुआ होकर व्याप्त होकर रहता है तैसेही आत्मा का सर्वत्र व्याप्त होकर रहना 'अन्वय' तथा वह एकही सूत्र जैसे प्रत्येक मणि से निराला होताहै तैसेही आत्मा का सकल वस्तुओं से निरालापना 'व्यतिरेक' होता है; इन दोनों से होनेवाला जो विवेक उस के प्रभावसे शुद्धहुए मन के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का अनुसंधान करके एकाग्रपनेसे विचार करनेवाले पुरुषोंको उस परमात्माकी खोज करनेपर उसका ज्ञान होता है ॥ २४ ॥ हे दैत्यपुत्रों ! बुद्धि की, जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन वृत्तियें हैं, उनका जिसके द्वारा अनुभव होता है वह तीनों अवस्थाओं का साक्षी परमपुरुष है॥२५॥इसकारण पुष्प धर्मरूप सुगन्ध के द्वारा उस का आश्रयभूत वायु जैसे जानाजाताहै तिसी प्रकार,आत्मा के धर्म न होनेके कारण त्याग करेहुए,कर्मसे उत्पन्न हुए और त्रिगुणात्मक बुद्धि के जो जाग्रत् आदि परिणामरूप भेद उन से आत्मा के स्वरूप को जाने अर्थात् आत्मा वास्तव में बुद्धि की जाग्रत् आदि अवस्थाओं से निराला है और उन में व्याप्त होने के कारण तिन अवस्थाओं से युक्तसा भासता है ॥ २६ ॥ हे दैत्यपुत्रों ! यह संसार बुद्धि के गुणों से और कर्मों से बँधाहुआ होने के कारण बुद्धि के द्वारा ही पुरुष को प्राप्त होता है स्वयं प्राप्त नहीं होता है और अज्ञानमूलक होने के कारण व्यर्थ है तथा स्वप्न की समान मानाहुआ है, वायु से गन्धरूप द्रव्य का सम्बन्ध वास्तविक

॥ २७ ॥ तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥ २८ ॥ तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः ॥ यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ॥ २९ ॥ गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ॥ संगेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥ ३० ॥ श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ॥ तत्पादाम्बुरुहध्यानात्तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः ॥ इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥ ३२ ॥ एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे ॥ वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम् ॥ ३३ ॥ निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ॥ यदाऽतिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥ ३४ ॥ यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम् ॥

होने के कारण वह दृष्टान्त ठीक नहीं है किन्तु एकदेशी है ॥ २७ ॥ तिस से त्रिगुणात्मक कर्मों के बीज को (अज्ञानको) जलाडालनेवाले और बुद्धि की जाग्रत् आदि अवस्थारूप प्रवाह का नाश करनेवाले भक्तियोग को तुम करो ॥ २८ ॥ हे मित्रों ! देह आदि के विषै का अभ्यास दूर करने के निमित्त जो सहस्रों उपाय हैं उन में जिन विधिपूर्वक करेहुए धर्मों के द्वारा साक्षात् भगवान् ईश्वर के विषै प्रीति उत्पन्न होती है वह भक्तियोगही श्रेष्ठ उपाय है ऐसा भगवान् ने कहा है ॥ २९ ॥ वह भक्ति योग तो गुरु की शुश्रूषा, प्रेम, प्राप्तहुई सकल वस्तुओं का भगवान् को वा भगवान् के भक्तों को समर्पण करना, निष्कपट भक्तों का संग, ईश्वर की आराधना, भगवान् की कथा में श्रद्धा भगवान् के गुणकर्मों का कीर्त्तन, भगवान् के चरणकमल का ध्यान, भगवान् की मूर्त्ति का दर्शन और पूजन आदि करना तथा सकल प्राणियों में दुःखहर्त्ता भगवान् ईश्वर वास कररहे हैं ऐसा मन में लाकर उन के जो जो मनोरथ हों तिन को पूर्ण करके उन का यथोचित सन्मान करना, इन के द्वारा होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जिन्हों ने काम क्रोध आदि छः शत्रुओं को जीतलिया है वह पुरुष ईश्वर के विषै ऐसी भक्ति करते हैं कि जिस के द्वारा वासुदेव भगवान् के विषै पुरुष की प्रीति उत्पन्न होतीहै॥३३॥ हे दैत्यपुत्रों ! भगवान् के अन्यत्र कहीं न रहनेवाले जो भक्तवत्सलता आदि गुण हैं तैसे ही उन के अपनी इच्छा से धारण करीहुई रामकृष्ण आदि मूर्त्तियों के करेहुए जो लौकिक चेष्टारूप कर्म एवं रावणवध आदि पराक्रम हैं उन को सुनकर जब अतिहर्ष से शरीर के ऊपर रोमाञ्च खडे होकर नेत्रों में आनन्द के अश्रु आजाते हैं और गद्गदकण्ठ होकर पुरुष ऊँचे स्वर से गान करनेलगता है, रोदन करनेलगता है और नृत्य करने लगता है; तैसे ही जब पिशाच का झपटाहुआ सा होकर कभी कभी हँसने लगता है,

मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्मगतिर्गतत्रपः ॥ ३५ ॥ तदा पुमान्मुक्तसमस्तबंधनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ॥ निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥ ३६ ॥ अधोक्षजालंभमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ॥ तद्ब्रह्मनिर्वाणसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥ ३७ ॥ कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वे हृदि च्छिद्रवत्सतः । स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥ ३८ ॥ रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा मही कुंजरकोशभूतयः ॥ सर्वेऽर्थकामाः क्षणभंगुरायुषः कुर्वंति मर्त्यस्य कियत्प्रियं चलाः ॥ ३९ ॥ एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः ॥

विलाप करने लगता है, भगवान् का ध्यान करता है, लोकों की वन्दना करता है, और कभी कभी भगवान् के विषें बुद्धि लीन होजाने के कारण निर्लज्ज होकर वारंवार श्वास छोडताहुआ 'हेहरे!, हे जगत्पते! और हेनारायण!,ऐसाउच्चारणकरताहै ३४।३५ तव वह भक्तियोगनिष्ठपुरुष, अतिवेगवाले तिस उत्तम भक्तियोगके द्वारा जिस के, संसार के बीजरूप अज्ञान और वासना जलगये हैं, जिस के मन और शरीर यह दोनों भगवान् की लीलाओं के चिन्तवन से उनलीलाओं का अनुकरण (नकल) करनेलगे हैं और जिस के पुण्य पाप आदिरूप सकल वन्धन टूटगए हैं ऐसा होताहुआ भगवत्स्वरूप को प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ हेमित्रों ! मन से लगनेवाला अधोक्षज भगवान् का स्पर्श ही इसलोक में अशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष के संसारचक्र का नाश करनेवाला है और वही ब्रह्म के विषें मोक्षरूप सुख है ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं इसकारण तुम अपने हृदय में ही विद्यमान अन्तर्यामी ईश्वर का भजन करो ॥ ३७ ॥ हेअसुरबालकों ! अपने निज के सखा और आकाश की समान अपने हृदय में वास करने वाले उन श्री हरि की उपासना करने में कौनसा वड़ाभारी परिश्रम है ? और ऐसा होतेहुए भला विषयसुखों को प्राप्त करके क्या करना है ? क्योंकि—कूकर शूकर आदि सव ही प्राणी विषयों में उत्कण्ठा रखनेवाले होते हैं इसकारण हमभी विषयसुख में तत्पर हुए तो उनकी समान ही होजायँगे ॥ ३८ ॥ धन, स्त्री, पशु, पुत्रादि सम्वन्धी पुरुष, गृह, भूमि, गजशाला (हाथीखाना) भोग के साधनभूत पदार्थों की वृद्धि और सव प्रकार के अर्थ तथा काम नाशवान् है और उसपर भी जिन की आयु क्षणभङ्गुर है ऐसे मरणधर्मी प्राणियों का कितना सा प्रिय करेंगे ? अर्थात् कुछ नहीं करेंगे फिरउनका प्राप्तकरना निरर्थकही है।३९।इसी प्रकार यज्ञ योग आदिके द्वारा प्राप्तहुए स्वर्ग आदि लोकभी नाशवान् और पुण्य आदि के न्यूनाधिकभावकी विशेषतावाले होकर स्पर्धा आदियुक्त होने के कारण निर्मल

तस्माददृष्टश्रुतदूषणं परं भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये ॥ ४० ॥ यदर्थ-र्थेइह कर्माणि विद्वन्मान्यसकृन्नरः ॥ करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम् ॥ ४१ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय संकल्प इह कर्मिणः ॥ सदाप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥ ४२ ॥ कामान्कामयते काम्यैर्य-दर्थमिह पूरुषः ॥ स वै देहस्तु पारक्यो भङ्गुरो यात्युपैति च ॥ ४३ ॥ किमु व्यवहितापत्यदारागारधनादयः ॥ राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता मम-तास्पदाः ॥ ४४ ॥ किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः ॥ अनर्थैरर्थ-संकाशैर्नित्यानन्दमहोदधेः ॥ ४५ ॥ निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान् देहभृतोऽ-सुराः ॥ निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥ ४६ ॥ कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना ॥ कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥ ४७ ॥ तस्मादर्थाश्च

नहीं हैं तिस से, जिसमें देखेहुए अथवा सुनेहुए दोष सर्वथा हैं ही नहीं तिस सर्वोत्तम ई-श्वरकी ही तुम, आत्मप्राप्ति होने के निमित्त एकनिष्ठभक्ति से सेवा करो ॥ ४० ॥ और दूसरे यह कि—अपने को ही विद्वान् माननेवाला पुरुष जिस वस्तुके पाने का सङ्कल्प करके इसलोक में कर्म करता है उस को संकल्पित कर्मका फल अवश्य ही विपरीत मिलता है ॥ ४१ ॥ सुखमिले और दुःख दूर हो इस इच्छा से इसलोक में कर्म करनेवाले पुरुष का संकल्प होता है, परन्तु जो पहिले इच्छारहित होने के कारण सुख से युक्त होता है वही इच्छा करनेलगता है तो उस इच्छा के द्वारा सर्वदा दुःख पाता है ॥ ४२ ॥ और भी ऐसा है कि—इसलोक में कामना से करेहुए कर्मों के द्वारा जिस के निमित्त पुरुष भोगों की इच्छा करता है उस शरीर को देखाजाय तो कूकर शूकर आदि का भोजन तथा नाश-वान् है और वह भी कर्मवश प्राप्त होता है तथा नाश को प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ तिस से जब देह की ही ऐसी (दूसरोंका और नाशवान् इत्यादि) दशा हैं तब देह से निराले ममता के स्थान पुत्र, स्त्री, घर, धन आदि, राज्य, धन का भण्डार, हाथी, मन्त्री, सेवक और सम्बन्धियोंके पराया एवं नाशवान् होनेका कहनाही क्या ? ॥ ४४ ॥ तिस से नित्यानन्दके समुद्ररूप आत्मा को, वास्तव में अनर्थकारक होकर पुरुषार्थ की समान प्रतीत होनेवाले, देहके साथ नाश को प्राप्त होनेवाले और अतितुच्छ इन पुत्र आदिकों से कौन स्वार्थ होना है ? ॥ ४५ ॥ हे असुरों ! गर्भाधान आदि संस्काररूप दशाओं में पुरातन कर्मों के द्वारा क्लेश पानेवाले इस देहधारी प्राणी को इस लोक में कित-ना स्वार्थ है ! सो बताओ तो ? ॥ ४६ ॥ यह देही (जीव) अपने अनुकूल शरीर के द्वारा कर्म करता है और कर्मों के द्वारा शरीरको धारण करताहै और यह दोनों ही अज्ञान से करता है, वास्तविक नहीं हैं ॥ ४७ ॥ तिससे धर्म, अर्थ और काम यह जिस के स्वाधीन हैं उस

कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः ॥ भजतानीहयात्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥ ४८ ॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रियः ॥ भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥ ४९ ॥ देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च ॥ भजन्मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान्स्याद्यथा वयम् ॥ ५० ॥ नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वाऽसुरात्मजाः ॥ प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥ ५१ ॥ न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ॥ प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥ ५२ ॥ ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः ॥ आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥ ५३ ॥ दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः ॥ खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥ ५४ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ॥ एकांतभक्तिर्गोविंदे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ॥ ५५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ॥ जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥ १ ॥ अथाचार्यसुतस्ते-

---

निरपेक्ष, सर्वसमर्थ और दुःख हरनेवाले परमात्मा की तुम निष्कामबुद्धि से सेवा करो ॥ ४८ ॥ क्योंकि—वह श्रीहरि ही अपने रचेहुए पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न करेहुए सकल प्राणियों के आत्मा, प्रिय, नियन्ता और अन्तर्यामी हैं ॥ ४९ ॥ जैसे हम भगवान् का भजन करनेपर सुखीहुए हैं उसीप्रकार कोई भी देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष अथवा गन्धर्व हो वह मुकुन्दभगवान् के चरणों की सेवा करनेलगेगा तो सुखी होगा ॥ ५० ॥ हे असुरपुत्रों ! मुकुन्दभगवान् को सन्तुष्ट करने के निमित्त द्विजपना, देवतापना, ऋषिपना, सच्चरित्र, बहुज्ञता, दान, तप, याग, शुद्धता और व्रतही समर्थ नहीं हैं किन्तु वह श्रीहरि केवल निष्कामभक्ति से ही सन्तुष्ट होजाते हैं; भक्ति के विना और सब ही द्विजपना आदि साधन केवल लोगों को दिखाने के निमित्त नट के स्वांग की समान हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तिससे हे दानवों ! अपनी समान सबों को सुख और दुःख होता है ऐसी बुद्धि धारण करके सकल प्राणियों के आत्मा और ईश्वर भगवान श्रीहरि के विषैं भक्ति करो ॥ ५३ ॥ क्योंकि—दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियें, शूद्र, व्रजवासी गोपाल, पक्षी, मृग और अन्य भी पातकी जीव अच्युतभगवान् की भक्ति से निःसन्देह मोक्ष को प्राप्त होगए हैं ॥ ५४ ॥ गोविन्दभगवान् के विषैं एकनिष्ठ भक्ति और स्थावर जङ्गमरूप सकल प्राणियों में भगवान् हैं ऐसा देखना, यही इसलोक में पुरुष का उत्तम स्वार्थ (अपना हित कार्य करना) कहा है ॥ ५५ ॥ इति सप्तम स्कन्ध में सप्तम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ नारदजी ने कहा कि—हे धर्मराज ! इसप्रकार प्रह्लादजी के करेहुए भाषण को सुनकर, वह भाषण निर्दोष होने के कारण सकल दैत्यपुत्रों ने स्वीकार करलिया, गुरुपुत्र ने जो सिखाया था

यां बुद्धिमेकांतसंस्थिताम् ॥ आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद्यथा ॥ २॥ श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयं ॥ कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हंतुं मनो दधे ॥ ३ ॥ क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम् ॥ आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥ ४ ॥ प्रश्रयावनतं दांतं बद्धांजलिमवस्थितं ॥ सर्पः पदाहत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥ ५ ॥ हेदुर्विनीत मंदात्मन्कुलभेदकराधम ॥ स्तब्धं मच्छासनोद्धृतं नेष्ये त्वाऽद्य यमक्षयं ॥ ६ ॥ क्रुद्धस्य यस्य कंपंते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ॥ तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किंबलोऽत्यगाः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ न केवलं मे भवतश्च राजन्स वै बलं बलिनां चापरेषां ॥ परेऽवरेऽमी स्थिरजंगमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥ ८ ॥ स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसावोजः सहः सत्त्वबलेंद्रियात्मा ॥ स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः ॥ ९ ॥ जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः

उसपर उन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया ॥ १ ॥ तदनन्तर गुरुपुत्र ने, उन की बुद्धि को एकान्तनिष्ठ (भगवत्परायण) हुई देखकर भय माना और शीघ्रता से वह सब वृत्तान्त जैसा का तैसा राजा से जाकर निवेदन करा ॥ २ ॥ उस दु:सह और अप्रिय पुत्र के खोटे वर्त्ताव को सुनकर जिस का शरीर, कोप के आवेश से थर २ कांपने लगा है ऐसे उस हिरण्यकशिपु ने, पुत्र का वध करूँ ऐसा मन में ठाना ॥ ३ ॥ और जो विनयभाव के कारण नम्र हैं, जिन्हों ने इन्द्रियों का दमन करा है, जो हाथ जोडे आगे खडे हैं और जिनका तिरस्कार करना योग्य नहीं है ऐसे उन प्रल्हाद जी का कठोरवाणी से तिरस्कार करके, स्वभाव से ही क्रूर और चरण से ताड़ित सर्प की समान लम्बी २ फुङ्कार भरनेवाला वह हिरण्यकशिपु, क्रोध के साथ टेढ़ी दृष्टि से देखताहुआ इसप्रकार कहने लगा कि—॥ ४ ॥ ५ ॥ अरे उद्धत ! अरे मन्दबुद्धे ! अरे कुलनाशक ! अरे अधम ! अरे ! मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले तुझ उद्धत को मैं आज यम के मन्दिर में पहुँचाताहूँ ॥ ६ ॥ अरे मूर्ख ! जिस के क्रुद्ध होनेपर भय के मारे, लोकपालों सहित तीनों लोक कांपजाते हैं उस मेरी आज्ञा को तू निर्भय पुरुष की समान किस के बल का आश्रय करके उल्लंघन कररहा है ? ॥ ७ ॥ प्रल्हाद जी ने कहा—हे राजन् ! ब्रह्माजी को आदि लेकर छोटे बडे स्थावर जंगम सब ही प्राणी जिस ने अपने वश में कर रक्खे हैं वह भगवान् केवल मेराही बल नहीं हैं किन्तु तुम्हारा और अन्य सकल बलवानों का बल भी वही हैं ॥ ८ ॥ उन का सकल प्राणियों को वश में रखने का कारण यहहै कि—हे राजन् ! वह परमेश्वर विष्णुभगवान् ही कालरूपहैं, वही इन्द्रियों की शक्ति, मन की शक्ति, धीरज, शरीर की शक्ति और इन्द्रियों का स्वरूप हैं और वही तीनों गुणों के नियन्ता परमेश्वर अपनी शक्तियों के द्वारा इस जगत् की उत्पत्ति,

समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ॥ ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्तद्धि-ह्यनंतस्य महत्समर्हणं ॥ १० ॥ दस्यून्पुरा षण्ण विजित्य लुंपतो मन्यंत एके स्वजिता दिशो दश ॥ जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योतिमात्रं विकत्थसे ॥ मुमूर्षूणां हि मंदात्मन्ननु स्युर्विक्लवा गिरः ॥ १२ ॥ यस्त्वया मंदभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ॥ क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तंभे न दृश्यते ॥ १३ ॥ सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ॥ गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥ १४ ॥ एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन् रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः ॥ खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात् स्तम्भं तताडातिब-

स्थिति और संहार करते हैं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! तुम अपने शत्रु मित्रादि की कल्पनारूप इस असुरस्वभाव का त्याग करके-मन की वृत्ति को सर्वत्र एक समान रक्खो, क्योंकि-वश में न होने के कारण कुमार्ग में जानेवाले मन को छोड़कर दूसरा कोई भी शत्रु नहीं है और मन की वृत्ति को सर्वत्र एक समान रखना ही अनन्त भगवान् का उत्तम पूजन है ॥ १० ॥ हे दैत्याधिपते ! तुम्हारी समान कितने ही मन्दबुद्धि पुरुष, पहिले, सर्वस्व हरनेवाले इन्द्रियरूप छः शत्रुओं को न जीतकर ऐसा मानने लगते हैं कि-हमने दशों दिशा जीतलीं; परन्तु वास्तव में देखाजायतो जिस ने मन को वश में करलिया है, जो ज्ञानी है और जिस की सकल प्राणियों में समान दृष्टि है केवल उस साधु पुरुष के ही देहाभिमान से कल्पना करेहुए काम आदि मानसिक शत्रु भी नहीं हैं फिर बाहर के शत्रु तो होंगे ही कहां से ? ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपु ने कहा-अरे मन्दबुद्धे ! तू जो कहता है कि-मैं ही शत्रुओं का जीतनेवाला हूँ, तेरी समान नहीं हूँ, ऐसी मेरी निन्दा करके अपनी प्रशंसा कररहा है इस से तू वास्तव में मरने की इच्छा कररहाहै, क्योंकि-वास्तव में जो मरण को प्राप्त होनेवाले होतेहैं उन की बातें ऐसीही अट्टसट्ट होती हैं ॥१२॥ इस से अरे मन्दभाग ! मुझ से दूसरा जगत् का ईश्वर जो तू ने कहा वह कहां है ? प्रल्हाद जी ने कहा-वह सर्वत्र है; हिरण्यकशिपु ने कहा-तो फिर इस खंभे में भी है क्या ? तदनन्तर प्रल्हादजी ने उस खंभे की ओर को देखकर नमस्कार करके कहा-मुझे दीखता है ॥१३॥ उस समय तहां जब हिरण्यकशिपुको नहींदीखा तब वह कहनेलगाकि-अरे! अब भी तू उलटी बातें कररहाहै इसकारण मैं तेरा शिर अभी धड़से अलग करेदेताहूँ,जो हरि तुझे प्रिय लगनेवाला रक्षक है वह आज तेरी रक्षा करे ॥ १४ ॥ इसप्रकार क्रोध में भरकर कठोर भाषणों से अपने परमभगवद्भक्त प्रल्हाद पुत्र को बारंबार पीड़ा देनेवाले तिस अतिबली महादैत्य ने, हाथ में तरवार लेकर सिंहासन से नीचे उतर, अपनी मुट्ठी से,

लः स्वमुष्टिना ॥ १५ ॥ तदैव तस्मिन्निनदोऽतिभीषणो बभूव येनाण्डकटाहम-
स्फुटत् ॥ यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः श्रुत्वा स्वधामाप्ययमंग मेनिरे
॥ १६ ॥ स विक्रमन्पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्भुतं ॥ अन्तः-
सभायां न ददर्श तत्पदं वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥ १७ ॥ सत्यं विधातुं
निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ॥ अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्व-
हन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषं ॥ १८ ॥ स सत्त्वमेनं परितो विपश्यन्
स्तंभस्य मध्यादनुनिर्जिहानं ॥ नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमे-
तन्नृमृगेन्द्ररूपं ॥ १९ ॥ मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो नृसिंहरूपस्तदलं भया-
नकं ॥ प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृंभिताननं ॥ २० ॥ करा-
लदंष्ट्रं करवालचंचलक्षुरांतजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणं ॥ स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दरा-

प्रल्हाद जी के मस्तकपर हाथ जोड़कर देखतेहुए, खम्भे में ताड़ना करी ॥ १५ ॥ हेरा-
जन् ! उसी समय उस खम्भे में से ऐसा अति भयानक शब्द हुआ कि–जिस से मानो
ब्रह्मकटाह फूटगया ऐसा सबने माना और अपने२ स्थानों में आईहुई उस ध्वनि को
सुनकर, ब्रह्मादि देवताभी, क्या अब हमारे स्थानों का नाश होता है ऐसा मानने लगे
॥ १६ ॥ तब पुत्र का वधकरने की इच्छा करके उस के निमित्त अपने बल से उद्योग
करनेवाला वह हिरण्यकशिपु, जिस से दैत्यो के सेनापति अत्यन्त भयभीत होगए थे,
उस अपूर्व अद्भुत शब्द को सुनकर, सभा में वह शब्द किस से उत्पन्न हुआ है यह
जानने की इच्छा करता हुआ भी उसशब्द के उत्पत्तिस्थान को नहीं देखसका ॥ १७ ॥
इतने ही में सकल प्राणियों में होनेवाली अपनी व्याप्ति को सत्यकर के दिखाने के निमित्त
और अपने दासका कहाहुआ वचन सत्य करने के निमित्त न मनुष्यका आकार न मृग
(पशु) का आकार ऐसा अति अद्भुतरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरि सभा में
खम्भे में से प्रकट हुए ॥ १८ ॥ इसकारण वह हिरण्यकशिपु अद्भुत शब्द को सुनकर
वह शब्द जिसने कियाथा उस प्राणी को चारोंओर देखताहुआ भी खम्भे में से बाहर
निकलनेवाले मनुष्य के और सिंह के मिलेहुए रूप को देखकर, अहो ! यह पशु है न
मनुष्य है ऐसा यह विचित्र प्राणी क्या है? ॥ १९ ॥ तब हेराजन् ! जो अति भयानक
है, जिस के नेत्र तपेहुए सुवर्ण की समान दमकते हुए और उग्र हैं, जिसका मुख इधर
उधर को चलायमान होनेवाले जटा और कन्धे के केशों से भयङ्कर दीखरहा है, जिस की
दाढ़ें ऊँची हैं, जिसकी जिव्हा तरवार की समान चञ्चल और छुरे की धार की समान
तीखी है, जो भ्रुकुटि चढ़ेहुए मुख से उग्र दीखरहा है, जिस के कान ऊँचे होकर ऊपरको
खड़ेहुए हैं, जिसका मुख और नासिका के छिद्र पर्वत की गुफा की समान फैलेहुए हैं,

द्भुतव्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणं ॥ २१ ॥ दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवरग्रीवो-
रुवक्षःस्थलमल्पमध्यं ॥ चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वग् भुजानीकशतं नखा-
युधं २२ दुरासदं सर्वनिजेतरायुधप्रवेकविद्रावितदैत्यदानवं ॥ प्रायेण मेऽयं हरि-
णोरुमायिना वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किं ॥२३॥ एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो
नदन्नृसिंहं प्रति दैत्यकुंजरः ॥ अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतंगमो यथा नृसिंहौजसि
सोऽसुरस्तदा ॥२४॥ न तद्विचित्रं खलु सत्वधामनि स्वतेजसा यो नु पुरा-
पिबत्तमः ॥ ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥२५॥ तं
विक्रमन्तं सगदं गदाधरो महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाऽग्रहीत् ॥ स तस्य हस्तो-
त्कलितस्तदाऽसुरो विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥ २६ ॥ असाध्वमन्यन्त हृ-
तौकसोऽमरा वनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः ॥ तं मन्यमानो निजवीर्यशंकितं

जो जेवड़ा फटाहुआ होने के कारण भयानक दीखरहा है, जिसका शरीर स्वर्ग को स्पर्श कररहा है, जिसकी ग्रीवा छोटी और मोटी है, जिस का वक्षःस्थल चौड़ाहै, जिसका उदर दुर्बलहै, जो चन्द्रमाकी किरणोंकी समान गौरवर्ण केशोंसे व्याप्त होरहाहै, जिसमें चारों ओर फैलेहुए सैंकड़ों भुजाओं के समूह हैं, जो नखरूप शस्त्रों से युक्त है, जिस के समीप में जाना कठिन है और जिसने अपने चक्र आदिक तथा औरों के वज्र आदिक श्रेष्ठ आयुधों से सकल दैत्य दानवों को भगादियाहै ऐसे उसरूप के विषय में हिरण्यकशिपु विचार कर रहाथा कि–इतने में ही वह नृसिंहरूपी भगवान् उस के आगे आपहुँचे तब प्रायः माया से कार्य लेनेवाले श्रीहरि ने इसप्रकार मेरे मृत्यु का ढँग मन में विचारा है तथापि इस प्रकार उद्योग करनेवाले श्रीहरि के हाथों से मेरा क्या होसक्ता है ? इस प्रकार कहता हुआ और हाथ में गदा लेकर गर्जना करता हुआ वह दैत्य श्रेष्ठ, नृसिंहजी के सन्मुख वेग से दौड़ता हुआ गया और उस समय अग्नि में पड़ा हुआ पतङ्गा जैसे दीखता ही नहीं ऐसा होजाता है तैसे ही नृसिंह भगवान् के तेज में पड़ा हुआ वह दैत्य मानों दीखताही नहीं ऐसा होगया ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ अहो ! जिन श्री हरिने सृष्टि के आरम्भ में अपने तेज से प्रलयकाल के अन्धकार का भी नाश करदिया था उन सत्वप्रकाशस्वरूप श्रीहरि के विषैं जो उस तमोमय असुरका अदर्शन हुआ सो कुछ आश्चर्य नहीं हैं तिस महादैत्य ने, भगवान् के सन्मुख आकर, क्रोध करके अति वेग से घुमाईहुई अपनी गदा के द्वारा नृसिंह भगवान् के ऊपर प्रहार किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर स्थान २ पर प्रहार करनेवाले उस हिरण्यकशिपु को गदा सहित ' जैसे गरुड़ बड़े भारी सर्प को पकड़ता है तैसे ' नृसिंह भगवान् ने हाथ में पकड़लिया परन्तु उस समय ' जैसे गरुड़ से सर्प छूटजाता है तैसे ' उन नृसिंह भगवान् के हाथों में से वह असुर छूटगया ॥ २६ ॥ हे भरतकुलोत्पन्न धर्मराज ! तब, हिरण्यकशिपु ने जिन के

यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ॥ पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे ॥ २७ ॥ तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभिश्चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ॥ कृत्वाऽट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥ २८ ॥ विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ॥ द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया नखैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषम् ॥ २९ ॥ संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो व्यात्ताननान्तं विलिहन्स्वजिह्वया ॥ असृग्लवाक्तारुणकेसराननो यथाऽन्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥ ३० ॥ नखांकुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ॥ अहन्समन्तान्नखशस्त्रपार्ष्णिभिर्दो-

स्थान छीन लिये थे और जो उस के भय से मेघों की आड़ में रहते थे उन सब लोकपालों ने और देवताओं ने, नृसिंह भगवान् के हाथ में से दैत्य छूटगया यह देखते ही 'बहुत बुरा हुआ' ऐसा माना, वह महादैत्य, जिन के हाथ में से आप छूटगया था उन नृसिंह भगवान् को अपने बल से भयभीत हुआ मानकर, आप स्वयं युद्ध में श्रम रहित होता हुआ हाथ में ढाल और तरवार लेकर बडे वेग से फिर उन नृसिंह भगवान् के ऊपर को दौड़ा ॥ २७ ॥ हे राजन्! श्यान पक्षी की समान जिस का वेग है और ढाल तरवारों के मार्गों से दूसरे को प्रहार करने का अवकाश (मौका) मिले ही नहीं ऐसी रीति से जो नीचे और ऊपर विचररहा है ऐसे उस हिरण्यकशिपु को परम वेगवाले नृसिंह भगवान् ने, तीव्र और बडे शब्द के साथ भयङ्कर अट्टहास करके जैसे मूषक (चूहे) को सर्प पकड़ता है तैसे पकडलिया, उस समय तिस अट्टहास के भय से और श्रीहरि के तेज से उस हिरण्यकशिपु के नेत्र मुँदगये ॥ २८ ॥ तदनन्तर जैसे गरुड़, अतितीखे विषवाले भी सर्प को चीरडालता है तैसे, पकड़ते ही विह्वलहुए, हाथ में से छूटने के निमित्त सब ओर से सब अङ्गों को उछालतेहुए और पहिले इन्द्र के साथ युद्ध करते समय इन्द्र के छोडेहुए वज्र से भी जिस की त्वचा (खाल) छिली तक नहीं थी ऐसे उस हिरण्यकशिपु को नृसिंह भगवान् ने द्वार में (देहलपर) संध्याकालके समय अपनी जंघाओंकेऊपरडालकर सहज में ही नखोंसे चीरडाला ॥ २९ ॥ तदनन्तर जिनके नेत्र क्रोधके कारण देखने कठिन और भयङ्कर हैं जो, अपनी जिव्हा से फैलेहुए मुख के प्रान्तभाग को चाटरहे हैं, जिनकी ग्रीवापर के केश और मुख रुधिर की बिन्दुओं से लथड़ेहुए होने के कारण लाल २ दीखरहे हैं, जिन्हों ने अपने कण्ठ में आँतों की माला धारण करीहै, जो हाथी के वध से शोभा पानेवाले सिंहकी समान दीखरहे हैं; जो भुजदण्डों के समूहों से युक्त हैं ऐसे नृसिंहरूप श्रीहरिने नखों के अग्रभागों से जिसका हृदयकमल विदीर्णकराहै उस हिरण्यकशिपु को जङ्घाओंपरसे नीचे पटककर, जिन्हों ने आयुध उठाये हैं ऐसे उस के सेवकों को तथा उस के पीछे २ आनेवाले उस के पक्षपाती

दंष्ट्रयूथोऽनुपर्थान्सहस्रशः ॥ ३१ ॥ सटाऽवधूता जलदाः परापतन्ग्रहाश्च तद्दृ-
ष्टिविमुष्टरोचिषः ॥ अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभुर्निर्ह्रादभीता दिग्गिभा वि-
चुक्रुशुः ॥ ३२ ॥ द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसंकुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदाऽति-
पीडिता ॥ शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥
॥ ३३ ॥ ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे नृपासने संभृततेजसं विभुम् ॥ अलक्षि-
तद्वैरथमत्यमर्षणं प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥ ३४ ॥ निशम्य लोकत्रयमस्त-
कज्वरं तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः प्रसूनवर्षैर्व-
वृषुः सुरस्त्रियः ॥ ३५ ॥ तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं दिदृक्षतां संकुलमास
नाकिनां ॥ सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥
॥ ३६ ॥ तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः ॥ ऋषयः पितरः सिद्धा वि-
द्या[illegible]होरगाः ॥ ३७ ॥ मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः ॥ यक्षाः
किंपुरुषास्तात वेतालाः सिद्धकिन्नराः ॥ ३८ ॥ ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सु-

और भी सहस्रों दैत्यों को नखरूपशस्त्रों से पृष्ठभाग में ही मारडाला ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे-
राजन् उससमय उन नृसिंह भगवान् की ग्रीवा के केशों से कम्पायमान हुए मेघ बिखरगये,
आदित्य आदिग्रह उनकी दृष्टि से तेजोहीन होगये, उन के श्वास से ताड़ना करेहुए समुद्र
हिलोड़नेलगे, उन की गर्जना से भयभीतहुए दिग्गज ऊँचे स्वर से चिंघारनेलगे ॥ ३२ ॥
उन की ग्रीवापर के केशों से ढकेलेहुए विमानों से व्याप्तहुआ स्वर्गलोक और उन के चरणों
से अत्यन्त पीडित हुई पृथ्वी यह दोनों डगमगानेलगे, उन के वेगसे पर्वत ढैनेलगे और उन
के तेज से आकाश तथा दिशा निस्तेज होगईं ॥ ३३ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण तेज से युक्त जिन
के सन्मुख होकर युद्ध करनेवाला कोई नहीं दीखता है और जो अति भयङ्कर तथा उग्रमुख
युक्त हैं वह प्रभु नृसिंह, अपने दासके ऐश्वर्य को आश्चर्य की समान मानकर कौतुक से सभा
में राजा के उत्तम सिंहासन पर बैठे, उससमय कोई भी सेवक सेवा करने के निमित्त उन के
समीप नहीं गया ॥ ३४ ॥ मस्तक में के शूल की पीड़ा की समान त्रिलोकी को दुःसह
उस आदिदैत्य हिरण्यकशिपु का युद्ध में श्रीहरि ने वध करा यह देखकर अतिहर्ष के
वेग से जिनके मुख विकसित होरहे हैं ऐसी देवाङ्गना नृसिंहभगवान् के ऊपर पुष्पों की
वर्षा करनेलगीं ॥ ३५ ॥ उस समय नृसिंहभगवान् का दर्शन करने के निमित्त आये
हुए देवताओं के विमानों के समूह से आकाश भरगया, देवताओं ने अपने पटह बाजे
और दुन्दुभि बजाईं, अप्सरानृत्य करनेलगीं और श्रेष्ठ गन्धर्व गानकरनेलगे ॥ ३६ ॥
हे तातधर्मराज ! ब्रह्माजी, इन्द्र, शिवआदिदेवता, ऋषि, पितर, सिद्ध विद्याधर, महोरग,
मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वेताल, सिद्ध, किन्नर और सु-

नन्दकुमुदादयः ॥ मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम् ॥ ईडिरे नर-शार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्त-शक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ॥ विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वली-लया संदधतेऽव्ययात्मने ॥ ४० ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ कोपकालो युगांतस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ॥ तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ॥ कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिस्तेषां नहि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥ ४२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ॥ तद्विम-

---

नन्द तथा कुमुद आदि जो सकल विष्णुभगवान् के पार्षद, यह सबही तहाँ नृसिंहभगवान के कुछ एक समीप आकर बहुत दूर खड़े न होकर मस्तक में हाथ जोड़कर सिंहासनपर बैठेहुए परन्तु दुःसहतेज से युक्त तिन नृसिंहभगवान् की अलग अलग स्तुति करनेलगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी ने कहा–हे परमेश्वर ! जिनकी शक्ति अनन्त है, जिन का पराक्रम विचित्र है, जिन के कर्म सुननेमात्र से ही अन्तःकरण को शुद्ध करनेवाले हैं, जो अपनी सहज लीला से सत्वादि गुणों के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं ऐसा होनेपर भी जिन के स्वरूप का कभी नाश नहीं होता है ऐसे अनन्त स्वरूप तुम भगवान् को प्रसन्न करने के निमित्त मैं नम्र हूँ ।४०। तदनन्तर विष्णुभगवान् को कोप आनेका समय जाननेवाले श्रीरुद्रभगवान्, यह कोप का समय नहीं है ऐसा कहने के अभिप्राय से उन नृसिंह भगवान् की प्रार्थना करते हैं कि–हेभक्तवत्सल ! सहस्रयुगों का अन्त तुम्हारा कोप करने का समय होता है, इससमय तो यह अति छोटासा असुर तुमने मारा है इसकारण विनाकारण क्रोध न करके, तुम्हारी शरण में आयेहुए इस, तिस दैत्य के पुत्ररूप अपने भक्त की तुम रक्षा करो ॥ ४१ ॥ इन्द्र ने कहाकि–हेपरमेश्वर ! यज्ञ में अन्तर्यामिरूप से तुम ही भोक्ता हो इसकारण हमारी रक्षा करनेवाले तुमने, दैत्यों से अपनाभाग ही लौटाया है और आप का स्थानरूप जो हमारा हृदयकमल उस को भय के द्वारा हमारे स्मरणमार्ग में नित्य स्थित रहनेवाले इस दैत्यने रोकरक्खा था परन्तु आपने भय को दूरकरके उसको विकसित करादिया.यदि कहो कि-तुझे त्रिलोकी का ऐश्वर्य प्राप्त कराने के निमित्त मैंने यह उद्योग करा सो हे स्वामिन् ! यह काल के निगले हुए त्रिलोकी के ऐश्वर्य कौन पदार्थहैं ? क्योंकि–हेनृसिंह ! तुम्हारी सेवा करनेवाले भक्तजनों को जब मुक्ति की भी गौरव के साथ चाहना नहीं है तब उन को स्वर्ग आदि अन्य ऐश्वर्यों का क्या करना है ? ॥ ४२ ॥ ऋषियों ने कहा कि–हेआदिपुरुष ! आप में

लुप्तममुनाऽद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४३ ॥ पितर ऊचुः ॥ श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलाम्बु ॥ तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥ ४४ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहार्षीद्योगतपोबलेन ॥ नानादर्पं तन्नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥ ४५ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ॥ स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥ ४६ ॥ नागा ऊचुः ॥ येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ॥ तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥ ४७ ॥ मनव ऊचुः ॥ मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ॥ भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम

पहिले लीनहुए इस विश्व को तुम ने जिस तपके द्वारा फिर उत्पन्न करा है वह अपना प्रभावरूप सर्वोत्तम ध्यानलक्षण तप तुम ने हम ऋषियों को उपदेश कियाथा, उस तपको अब इस दैत्य के नष्ट करडालने पर हेशरणागत पालक ! भक्तों की रक्षा के निमित्त धारण करे हुए इस नृसिंहरूप से तुमने उस दैत्य का वध करके फिरभी 'तपकरो' ऐसी आज्ञा हमें दी है ऐसे तुम भगवान् को नमस्कार हो ॥ ४३ ॥ पितरों ने कहा कि–हेदेव! हमें पुत्रों के श्रद्धा पूर्वक दियेहुए पिण्डदान आदि को जो आपही बलात्कार से भक्षण करजाता था और तीर्थस्नान करते समय दियेहुए तिलोदक को भी जो पीजाता था उस दैत्य के उदर की वपा (चर्वी) को नखों से विदीर्ण करके उस से जिन्हों ने पिण्ड आदि छुटाये हैं ऐसे सकल धर्मों की रक्षा करनेवाले तुम नृसिंह को नमस्कार हो ॥ ४४ ॥ सिद्धों ने कहाकि-हेनृसिंह ! योग और तप के बल से जिस दुष्टने हमारी अणिमा आदि सिद्धिरूप योगसिद्ध गति को हरलियाथा, तिस अनेकों प्रकार के घमण्डों से युक्त दैत्य का जो तुमने नखों से विदारण करा है ऐसे आप को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥ विद्याधरों ने कहाकि–नानाप्रकार की धारणा से प्राप्तहुई हमारी गुप्त होना आदि की विद्या को, देह के बल और तिरस्कार करने की शक्ति से गर्व में भरेहुए जिस मूर्ख ने रोकदिया था, उस दैत्य का जिन्हों ने युद्धरूप यज्ञ मे पशु की समान वध करा है उन माया से नृसिंहरूप धारनेवाले आप को हम नित्य प्रणाम करते हैं ॥ ४६ ॥ नागों ने कहा कि–हे परमेश्वर ! जिस पापी ने हमारे फणों में के रत्न और हमारे स्त्रीरूप रत्न हरलिये थे उसके वक्षःस्थल का विदारण कर के जिन्हों ने इन (हमारी) स्त्रियों को आनन्द दिया है ऐसे आप को नमस्कार हो ॥४७॥ तदनन्तर नृसिंह भगवान् के अवलोकन करनेपर मस्तकपर हाथ जोड़कर खडे हुए मनु प्रार्थना करते हैं कि–हे देव ! हम तुम्हारी आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले मनु हैं, आज पर्यन्त दैत्य हिरण्यकशिपु

ते किमनुशाधि किङ्करान् ॥ ४८ प्रजापतय ऊचुः ॥ प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ॥ स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥ ४९ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसा कृताः ॥ स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥ ५० ॥ चारणा ऊचुः हरे तवांघ्रिपंकजं भवापवर्गमाश्रिताः ॥ यदेष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥ ५१ ॥ यक्षा ऊचुः ॥ वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञैस्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वं ॥ स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥ ५२ ॥ किंपुरुषा ऊचुः ॥ वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ॥ अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ ५३ ॥ वैतालिका ऊचुः ॥ स-

---

ने हमारे वर्णाश्रम के सकल धर्मों की मर्यादा को नष्ट करडाला था उस दुष्ट का तुम ने वध करा है इस कारण हे प्रभो ! अब हम आप की क्या शुश्रूषा करें ? उस के निमित्त हम दासों को आज्ञा करिये ॥४८॥ प्रजापतियों ने कहा कि—हे परमेश्वर ! हम तुम्हारे उत्पन्न करेहुए प्रजापतिहैं, जिस दैत्य के निषेध करनेके कारण ही हम इस समय प्रजा उत्पन्न नहीं करते हैं वह यह दैत्य, आप ने वक्षःस्थल में विदीर्ण करडाला इसकारण निःसन्देह मराहुआ पड़ा है, अब आगे को हम प्रजा उत्पन्न करें, हे सत्वमूर्ते ! तुम्हारा यह अवतार जगत् का कल्याण करनेवाला है ॥ ४९ ॥ गन्धर्वों ने कहा कि—हे प्रभो ! तुम्हारे सामने नृत्य करनेवाले और नृत्य में गान करनेवाले हमें शूरता और शक्ति से पराक्रमी हुए जिस दैत्य ने आज पर्यन्त अपने वश में कररक्खा था वह यह दैत्य, आप ने इस मरणदशा को पहुँचादिया है और ऐसा होना योग्यही है, क्योंकि—कुमार्ग से चलनेवाला पुरुष क्या, कल्याण पाने के योग्य होता है ? अर्थात् नहीं होता है ॥ ५० ॥ चारणों ने कहा कि—हे हरे ! जिस के कारण साधुओं के अन्तःकरण में भय उत्पन्न करने के सम्बन्ध से वसनेवाले इस असुर का तुमने वध करा है इस कारण तुम्हारे संसार को दूर करनेवाले चरणकमल का हमने आश्रय करा है ॥ ५१ ॥ यक्षों ने कहा कि—हे नरहरे ! मनोहर कर्मों के द्वारा तुम्हारे सेवकों में मुख्य जो हम तिन को इस दितिपुत्र हिरण्यकशिपु ने पालकी उठानेवाला बनालिया था परन्तु हे चौवीस तत्त्वों के नियन्ता पचीसवें प्रभो ! उस के दियेहुए लोकों के दुःख को जाननेवाले तुमने उस को मरणदशा को पहुँचाया है इस कारण अब आगे को हम आप की सेवा आदिक कर्म करेंगे ॥५२॥ किम्पुरुषों ने कहा कि—हे देव ! हम अतितुच्छ प्राणी हैं, तुम तो अद्भुत प्रभाव वाले सब के नियन्ता पुरुषोत्तम हो, हे भगवन् ! जब भगवद्भक्तों ने इस का तिरस्कार करा

भासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ॥ यस्तां व्यनै-
षीद्भृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथामयः ॥ ५४ ॥ किन्नरा ऊचुः ॥
वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ॥ भवता
हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥ ५५ ॥
विष्णुपार्षदा ऊचुः ॥ अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्व-
लोकशर्म ॥ सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय
विद्मः ॥ ५६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुच-
रिते दैत्यवधे नृसिंहस्तवो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ७ ॥ ७ ॥
नारद उवाच ॥ एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः ॥ नोपैतुमशकन्मन्युसं-
रम्भं सुदुरासदम् ॥ १ ॥ साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥ अ-
दृष्टाश्रुतपूर्वत्वात्सा नोपेयाय शंकिता ॥ २ ॥ प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्माऽवस्थित-

तब ही यह दुर्जन नष्ट होगया है ॥ ५३ ॥ वैतालिकों ने कहा कि—हे भगवन् ! सभा
और यज्ञों में आप के निर्मल यश का गान करके हमें बडी २ पूजा (इनाम) मिली
हैं परन्तु जिस ने उन सब को सर्वथा बन्द करदियाथा वह यह रोग की समान दुर्जन
दैत्य तुम ने मारडाला यह बडी श्रेष्ठ वार्त्ता हुई ॥५४॥ किन्नरों ने कहा कि—हे ईश्वर !
हम किन्नरगण आप के अनुयायी हैं और इस दितिपुत्र हिरण्यकशिपु ने हमें बेगार
(विना मजूरी दिये काम कराने) में लगालिया था इस कारण हे हरे ! उस पापी दैत्य
को तुमने मारडालाहै अबआगे को भी हेनाथ ! आपहमारी उन्नतिके कारण हूजिये॥५५॥
विष्णुभगवान् के पार्षदों ने कहा कि—हम भक्तजनों को आश्रय देनेवाले हे भगवन् ! स-
कल लोकों का मङ्गलकारी यह तुम्हारा अद्भुत नृसिंहरूप हम ने आज ही देखा है पहिले
कभी नहीं देखा था; हे ईश्वर ! वह यह हिरण्यकशिपु, वास्तव में आप का दास था और
ब्राह्मणों का शाप होने के कारण दैत्य होगया था अब उस का यह वध करना उस के
ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त ही हुआ है, ऐसा हम समझते हैं ॥ ५६ ॥ इति सप्तम
स्कन्ध में अष्टम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ नारदजी कहते हैं कि—हे धर्मराज ! इसप्रकार
दूर ही खडे रहकर स्तुति करतेहुए ब्रह्मा रुद्र आदि सकल देवता, क्रोध से जिन को आवेश
आरहा है, इसकारण जिन के समीपजाना अतिकठिन है ऐसे तिन नृसिंहजी के समीप
जाने को समर्थ नहीं हुए ॥ १ ॥ अधिक तो क्या परन्तु प्रत्यक्ष लक्ष्मी को, जब देव-
ताओं ने कोप शान्त करने के निमित्त भेजा तब वह भी पहिले कभी भी न देखेहुए और
न सुनेहुए उस भगवान् के अति अद्भुत नृसिंहरूप को देखकर भयभीत हुई और समीप
में जाने को समर्थ नहीं हुई ॥ २ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी ने अपने समीप खड़ेहुए प्रह्लाद

तमंतिके ॥ तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥ ३ ॥ तथेति शनकै राजन्महाभागवतोऽर्भकः ॥ उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृतांजलिः ॥ ४ ॥ स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ॥ उत्थाप्य तं-च्छीर्ष्ण्यदधात्करांबुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥ ५ ॥ स तत्करस्पर्श-धुताखिलाशुभः सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ॥ तत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥ ६ ॥ अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तन्न्यस्तहृदयेक्षणः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मादयः सु-रगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ॥ नाराधितुं पुरु-गुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥ ८ ॥ मन्ये धना-भिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ॥ नाराधनाय हि भ-

जी को प्रभु का क्रोध शान्त करने के निमित्त भेजा, कहा कि—हे तात प्रह्लाद ! तुम आगे जाओ और अपने पिता के ऊपर क्रुद्धहुए प्रभु को शान्त करो ॥ ३ ॥ हे राजन् ! तब 'ठीक है' ऐसा कहकर उस परमभगवद्भक्त बालक (प्रल्हादजी) ने धीरे २ भगवान् के समीप जाकर उन को, हाथ जोड़कर साष्टाङ्ग नमस्कार करा ॥ ४ ॥ उससमय अपने चरणतल में पड़ेहुए उस बालक को देखकर कृपा में भरेहुए उन श्रीनृसिंहदेव ने उठाकर, कालरूप सर्प से जिन की बुद्धि भयभीत होगई है ऐसे शरणागत जनों को जिस ने अभयदान दिया है ऐसा अपना करकमल उन के मस्तकपर रक्खा ॥ ५ ॥ उस समय उन नृसिंह जी के हाथ के स्पर्श से जिन के वासनारूप सकल पाप दूर होगये हैं और तत्काल जिन को भगवान् के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुआ है ऐसे वह प्रल्हादजी परमानन्द से पूर्ण, रोमाञ्च खड़ेहुए शरीर से युक्त और प्रेम से भीगेहुए हृदय से युक्त होकर जिन के नेत्रों में आनन्द के अश्रु आगये हैं ऐसे होतेहुए उन प्रल्हादजी ने अपने हृदय में तिन भगवान् के चरणकमल को परम पुरुषार्थ मानकर धारण करा ॥ ६ ॥ तदनन्तर शान्तचित्त उन प्रल्हादजी ने भगवान् के विषैं अपने हृदय और दृष्टि को लगा-कर एकाग्र अन्तःकरण से प्रेम करके गद्गदहुई वाणी के द्वारा श्रीहरिकी स्तुति करी ॥ ७ ॥ प्रल्हादजी बोलेकि—जिनकी सत्वगुण में एकाग्र बुद्धि है ऐसे ब्रह्मादिक देवगण, भगवान् का चिन्तवन करने में तत्पर ऋषि, और सनकादिक ज्ञानी भी बहुतकाल से आराधना करते हुए इससमय पर्यन्त भी अपने वचनों के प्रवाहों से और धन रूप आदिक गुणों की स्तुति आदिक करके जिनको पूर्णरूप से सन्तुष्ट करने को समर्थ नहीं हुए हैं वह श्रीहरि मुझ घोरजाति के असुर के ऊपर कैसे सन्तुष्ट होंगे ? ॥ ८ ॥ धन, श्रेष्ठ कुल में जन्म, सुन्दरता, तप, पण्डिताई, इन्द्रियसौष्ठव, कान्ति, प्रताप, शरीर की शक्ति, उद्योग, बुद्धि और अष्टाङ्ग योग यह बारहों गुण लोक में और शास्त्र में

वंति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ॥ ९ ॥ विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविंदनाभपादारविंदविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ॥ मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥ १० ॥ नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ॥ यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥ ११ ॥ तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ॥ नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥ १२ ॥ सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ॥ क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥ १३ ॥ तद्यच्छ म-

यद्यपि श्रेष्ठ मानकर प्रसिद्ध हैं तथापि वह परमपुरुष भगवान् को सन्तुष्ट करने को समर्थ नहीं होते हैं ऐसा मैं मानता हूँ; क्योंकि—केवल भक्ति से ही भगवान् गजेन्द्र के ऊपर सन्तुष्ट हुए थे ॥ ९ ॥ पहिले कहेहुए बारह गुणों से युक्त होकर भी पद्मनाभ भगवान् के चरणकमल से विमुख रहनेवाले ब्राह्मणों की अपेक्षा मैं, पद्मनाभ भगवान् के विषैं मन वचन, कर्म, द्रव्य और प्राण अर्पण करनेवाले चाण्डाल को भी श्रेष्ठ मानताहूँ, क्योंकि वह चाण्डाल अपने सकल कुल को पवित्र करता है और वह अति घमण्डी ब्राह्मण केवल अपने शरीर को भी पवित्र नहीं करसक्ता है फिर कुल की तो बातही क्या ? इस कारण भक्तिहीन मनुष्य के सकल ही गुण शुद्धि के कारण न होकर केवल गर्व की उत्पत्ति के कारण होते हैं इसकारण उस को भक्तिमान् पुरुष की अपेक्षा हीन समझना चाहिये ॥ १० ॥ ईश्वर निजलाभ से ही परिपूर्ण होने के कारण अपने निमित्त क्षुद्रपुरुषों से पूजा की इच्छा न करके कृपालु होने के कारण केवल भक्तों से ही पूजाकी इच्छा करते हैं; क्योंकि—मुखपर करीहुई तिलक आदि की शोभा जैसे दर्पण आदि के विषैं प्रतिबिम्ब में आजाती है तैसे ही जिन धन आदि के द्वारा यह जन भगवान् का पूजन आदि करता है वह सब ही उस को स्वयं ही प्राप्त होजातेहैं ॥ ११ ॥ इस कारण जब केवल भक्तिसे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं तब यदि मैं नीच हूँ तो भी अब निःसन्देह सकल यत्नों से यथाबुद्धि ईश्वर के माहात्म्य का वर्णन करता हूँ, क्योंकि—जिस माहात्म्य का वर्णन करके अविद्या करके संसार में पड़ाहुआ मनुष्य शुद्ध होजाता है ॥ १२ ॥ हेईश्वर ! यह भयभीत हुए सकल ब्रह्मादि देवता, हम असुरों की समान वैरभावसे भक्ति करने वाले नहीं हैं किन्तु श्रद्धा के साथ तुम सत्वमूर्ति भगवान् की आज्ञा में वर्त्ताव करनेवाले भक्त हैं और तुम भगवान् के मनोहर अवतारों के द्वारा होनेवाली नानाप्रकारकी लीला इस विश्वके कल्याण के निमित्त, ऐश्वर्यप्राप्ति के निमित्त और निजानन्द का लाभ होनेके निमित्त होती

न्युमसुरश्च हतस्त्वयोऽद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ॥ लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥ १४ ॥
नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकस्य जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ॥ अंत्रस्रजः क्षतजकेसरशंकुकर्णान्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥ १५ ॥
त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद्ग्रसतां प्रणीतः ॥ बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥ १६ ॥
यस्मात्प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्मशोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ॥ दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाऽहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगं १७॥

हैं, भय उत्पन्न करने के निमित्त नहीं होती हैं ॥ १३ ॥ हेभगवन् दूसरों को दुःखित करने वाले विच्छू सर्प आदि प्राणियों के, दूसरों के, द्वारा हुए वधसे, उन के कुयोनि से मुक्त होजाने के कारण उसका ही वह कल्याण हुआ ऐसा मानकर साधु पुरुष को भी आनन्दही होगा, दुःख नहीं होगा सुख को प्राप्तहुए वह लोक अव तुम्हारे क्रोध के दूर होने की वाट देखरहे हैं. हेनृसिंह ! भय दूर होनेके निमित्त सकल लोक इस नृहिंहस्वरूप का स्मरण करेंगे अर्थात् केवल इस स्वरूप का स्मरण करने से ही भय दूर होजायगा अतः अव क्रोध धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! जिस में अतिभयङ्कर मुख, जिह्वा, सूर्य की समान नेत्र, भ्रुकुटि का वेग और उग्र दाढ़ें हैं, जिन्होंने कण्ठ में आँतों की माला धारण करी है, जिन की ग्रीवापर के केश रुधिर में लथड़ेहुए हैं, जिन के कान शंकु की समान हैं जिन से उत्पन्न होनेवाले शब्दसे दिग्गज भयभीत होगए हैं जिन के नखों के अग्रभाग शत्रुओं का विदारण करनेवाले हैं ऐसे तुम्हारे भयङ्कर रूप से मुझे तो कुछभी भय नहीं है ॥ १५ ॥ हे दीनवत्सल ! मैं तो दुःसह और उग्र संसारचक्रमें के दुःख से अतिभय मानरहा हूँ, क्योंकि तहां हिंसक लोकों में मुझे, कर्मों ने बांधकर डालदिया है तव हे अतिसुन्दर परमात्मन् ! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर तुम, संसार के दुःख को दूर करनेवाले, आश्रयरूप अपने चरणकमल के के समीप मुझे कव बुलाओगे ? ॥१६॥ नानाप्रकार की योनियों में दुःख पानेवाले मुझे दासभाव करने का कुछ ज्ञान ही नहीं है तिस से तुम ही मुझे उस का उपदेश करो यह प्रार्थना करतेहुए प्रल्हाद जी ने कहा कि—हे विभो ! प्यारी वस्तुओं से वियोग, और अप्रिय वस्तुओं से संयोग होने के कारण उत्पन्न होनेवाले शोकाग्नि करके सकल योनियों में भस्म सा होरहा हूँ और दुःख को दूर करने के निमित्त औषधरूप जो पदार्थ है उनको प्राप्त करनेका प्रयत्न करना भी दुःखमयही है ऐसा जानकर देह आदि के विषै के अभिमान करके मैं मोहित होरहाहूँ इस कारण तुम मुझे अपने दासभाव के उपाय का उपदेश

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तव नृसिंह विरिंचगीताः ॥ अंजस्तितर्म्यनुगृणन् गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससंगः ॥ १८ ॥ बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः॥ तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहांजसेष्टस्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानां ॥ १९ ॥ यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ॥ भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः ॥ संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥ २० ॥ माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन नोदितगुणानुमतेन पुंसः ॥ छन्दोमयं यदजयाऽर्पितषोडशारं संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥ २१ ॥ स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना कालो वशीकृतविसृज्य-

करो ॥ १७ ॥ हे नृसिंह देव ! आप के अनुग्रह करने से तुम्हारे दासभाव में प्रवृत्तहुआ, तुम्हारे दोनों चरणों का आश्रय करनेवाले सत्पुरुषों का समागम करनेवाला मैं, विषयों से विशेषरूपसे छूटजाऊँगा, प्रिय, मित्र और श्रेष्ठ देवतारूप तुम्हारी, ब्रह्माजी की वर्णन करीहुई लीलाओं का गान करनेलगूँगा तब अनायासमें ही सकल दुःखोंको तरजाऊँगा॥ १८॥ हेनृसिंहदेव ! दुःखोंसे सन्तप्तहुए जनको इसलोकमें जो दुःखकी निवृत्ति का उपाय कहा है हे विभो ! वह तुम्हारे उपेक्षा करेहुए लोकों को क्षणमात्रको होताहै ठहरनेवाला नहीं होता है जैसे माता पिता इसबालकके रक्षक यद्यपि इसलोकमेंहैं तथापि वह सर्वथा रक्षक नहीं है, क्योंकि—उन के रक्षा करतेहुए भी बालकों को दुःख होताहुआ देखने में आताहै, ऐसे ही औषध को यदि रोगी का रक्षक कहा जाय सो भी ठीकनहीं क्योंकि—औषध देनेपर भी मृत्युआता है ऐसा हमारा अनुभव है. तैसेही नौकाभी समुद्र में डूबतेहुए प्राणी की रक्षकहै ऐसा कहना भी नहीं बनता, क्योंकि—कभी २ नौका के साथभी लोक, समुद्र में डूबते हुए दीखते हैं इसकारण वास्तविक रक्षक एक तुमही हो ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! सत्व आदि स्वभाव युक्त प्राचीन ब्रह्माजी आदि मुख्य कर्त्ता अथवा उनके प्रेरणा करेहुए अर्वचीन पिता-आदिककर्त्तायहां, जिसनिमित्तसे जिसकालमें-जिससाधन करके, जिस सम्बन्धसे, जिससेजिस के निमित्त, जिसप्रकार जो उत्पन्न करता है अथवा जिसके रूपको बदलता है वह सब तुम्हारा ही स्वरूप है ॥ २० ॥ हे जन्मादिविकाररहित परमेश्वर ! तुम्हारे अंशभूत पुरुष के अवलोकनरूप अनुग्रह से प्रेरितहुए काल करके, जिसके सत्व आदि गुणों का क्षोभ हुआ है वह माया, अविद्या के द्वारा जीवके भोगके निमित्त सोलह विकारों से युक्त, कठिनसे जीतने योग्य, अनन्तकर्मों की वासनावाले, और वेद में कहे कर्म जिसमें प्रधान हैं ऐसे मन (लिङ्गशरीर) को उत्पन्न करती है; उस संसारचक्ररूप मन को (जिसमें मन मुख्य है ऐसेलिंगशरीरको) तुम से अन्य अर्थात् तुम्हारी भक्ति न करनेवाला कौनसा पुरुष तरजायगा ? अर्थात् कोई नहीं तरसकेगा ॥ २१ ॥ हे समर्थ ईश्वर ! जिन तुमने अपनी

विसर्गशक्तिः चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥ २२ ॥ दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपानामायुः श्रियो विभव इच्छति यान् जनोऽयम् ॥ येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृंभितभ्रूविस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥ २३ ॥ तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिंच्यात् ॥ नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥ २४ ॥ कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपा क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ॥ निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥ २५ ॥ क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकंपा ॥ न ब्रह्मणो न तु भवस्य

चैतन्यशक्ति के द्वारा निरन्तर बुद्धिके गुणों को जीता है और जो तुम माया के नियन्ता होकर सकलकार्य्यों की और साधनों की शक्तियों को अपने वंश में रखनेवाले हो, सो तुम, अविद्या करके सोलह विकारवाले संसारचक्र में पड़ेहुए होने के कारण ईख के दण्डे (गन्ने) की समान अत्यन्तपीड़ित होनेवाले मुझ शरणागत को अपने समीप को खैंच लो ॥ २२ ॥ हे प्रभो! यह संसारीजन, स्वर्गलोकमें जिनको पाने की इच्छा करता है उन सब लोकपालोंके आयु, सम्पदा और आधिपत्यरूप अधिकार अति तुच्छ हैं ऐसा मैंने देखलिया है; क्योंकि मेरे पिता के कोपयुक्त हास्यसे फेरीहुई भ्रुकुटि के चलनेमात्र से ही उनका विध्वंस होगया था, फिर उन मेरे पिता का भी आप ने वध करडाला फिर उन राज्य आदि का महत्त्व क्यारहा? ॥ २३ ॥ इससे जीवों के यह भोग, आयु, सम्पदा और वैभवोंके परिणाम को जाननेवाला मैं, ब्रह्माजीके भोगोंपर्य्यन्त, इन्द्रियों के उपभोग करने योग्य विषयों की मुझे इच्छा नहीं है, क्योंकि—यह सबही सम्पत्तियें तुम कालरूप परमेश्वर के परम पराक्रम से विध्वस्तहुई हैं इसकारण मुझे तुम अपने सेवकों के समीप में लेजाकर पहुँचाइये ॥ २४ ॥ केवल सुनने में कानों को प्रियलगनेवाले परन्तु मृगतृष्णाके जलकी समान मिथ्या होनेवाली सकल सम्पत्तियें कहां? (कितना सा सुख देनेवाली हैं? अर्थात् कुछ सुख देनेवाली नहीं है) और सकल रोगों के उत्पन्न होने का स्थान यह शरीर कहां? (कितनासा उपभोग करनेवाला है?) परन्तु यद्यपि यह लोक ऐसे विषयोंके नाशवान्‌पनेको जाननेवाला है तथापि मधु (सहद) की समान दुःसाध्यभी सुखके लेशों से कामरूपअग्निकी शान्तिकरताहुआ होने के कारण विरक्त नहीं होता है अर्थात् कामाग्नि के शान्तकरनेमे लिपटेहुए प्राणीको विरक्तहोनेका अवकाश ही नहीं मिलता है २५ हे ईश्वर! जिसमें तमोगुण अधिक है और जो रजोगुण से ही उत्पन्न हुआ है ऐसे असुरकुल में उत्पन्नहुआ मैं कहाँ? और तुम्हारी कृपा कहाँ? क्योंकि—ब्रह्मा, रुद्र और लक्ष्मी के

न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥ २६ ॥ नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जंतोर्यथात्मसुहृदो जगतस्तथापि ॥ संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥ २७ ॥ एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसंगात् ॥ कृत्वात्मसात्सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥ २८ ॥ मत्प्राणरक्षणमनंत पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ॥ खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुस्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥ २९ ॥ एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वमाद्यंतयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ॥ सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं

मस्तकपर जो कभी भी नहीं रक्खा वह कमलकी समान सकल सन्तापों को दूर करने वाला पुरुषार्थरूप अपना हाथ तुमने मेरे मस्तकपर रक्खा है ॥ २६ । ऐसा होना आप के विषय में कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि यह ब्रह्मादिक देवता उत्तम हैं और यह असुर नीच है इसप्रकार उत्तम अधमभाव को धारण करनेवाली बुद्धि संसारी पुरुष की समान तुम में नहीं है, क्योंकि—तुम जगत् के आत्मा और सुहृद् हो, हे परमेश्वर ! सेवा करने से आप का प्रसाद होता है परन्तु जैसे कल्पवृक्ष सेवक की इच्छा के अनुसार ही फल देता है वह स्वयं भेदभाव कुछ नहीं रखता है तैसे ही, सेवा की न्यूनता अधिकता करके आप के प्रसाद से धर्म आदि की प्राप्ति होती है इसकारण तुम्हारे प्रसाद में उत्तमता और अधमता कारण नहीं है ॥२७॥ संसाररूप सर्प युक्त कूप में पड़ेहुए विषयाभिलाषी जनों के पीछे, उन के सहवास से उस कूप में पडनेवाले मेरे ऊपर जैसा इस समय यह तुम्हारा प्रसाद हुआ है तैसे ही पहिले देवर्षि नारदजी ने मुझे अपना समझकर मेरे ऊपर अनुग्रह कराया अर्थात् साधनसामग्री का उपदेश कराया वह मैं, ऐसे आप के सेवकों की सेवा का कैसे त्याग करूँगा ? अर्थात् कभी भी नहीं त्यागूँगा; अर्थात् नारदजी के अनुग्रहरूप से पहिले जो तुमने मेरे ऊपर बडी कृपाकरी थी उस को ही मैं आप का बड़ा अनुग्रह समझताहूँ और अब जो मेरी प्राणरक्षा आदिकरी यह कोई बड़ाभारी अनुग्रह नहीं है ॥ २८ ॥ और हे अनन्त ! जब मेरे पिता ने पुत्र का वधरूप अयोग्य कर्म करने की इच्छा से हाथ में तरवार लेकर, मुझ से भिन्न तेरा मानाहुआ यदि कोई ईश्वर है तो अब वह तेरी रक्षा करे, मैं तेरा शिर मस्तक से अलग करता हूँ, ऐसा कहा तब तुमने प्रकट होकर मेरे प्राणों की रक्षा और पिता का वधकरा, सो अपने सेवक नारद ऋषि का वचन सत्य करने के निमित्त करा है ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! यह सब जगत्रूप एक तुम ही हो, क्योंकि—तुम इस के आरम्भ में कारणरूप से और अन्त में अवधिरूप से तथा पृथक्रूप से वर्त्ताव करते हो और मध्य में भी तुम ही हो; हे जगत् के आत्मा !

निजमाययेदं नानेव तैरवसितस्तदनु प्रविष्टः ॥ ३० ॥ त्वं वा इदं सदस-
दीश भवांस्ततोऽन्यो माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ॥ यद्यस्य जन्म निधनं
स्थितिरीक्षणं च तद्वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥ ३१ ॥ न्यस्येदमात्मनि
जगद्विलयाम्बुमध्ये शेषेत्मना निजसुखानुभवो निरीहः । योगेन मीलितदृगात्मनि-
पीतनिद्रस्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे ।३२।तस्यैव ते वपुरिदं-निजका
लशक्त्या सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ॥ अम्भस्यनन्तशयनाद्विरमत्समा-
धेर्नाभेरभूत्स्वकणिकावटवन्महाब्जम्॥३३॥तत्संभवः कविरतोऽन्यदपश्यमान-
स्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य ॥ नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो

अपनी माया से इस गुणोंके परिणामरूप जगत् को उत्पन्न करके उस में प्रविष्ट हुए तुम, उन गुणों के द्वारा उत्पन्न करनेवाले, रक्षा करनेवाले तथा अन्त करनेवाले ऐसे अनेकों रूपों से युक्त हुए से प्रतीत होते हो ॥ ३० ॥ हे ईश्वर ! यह कार्य कारणरूप जगत् तुम ही हो, तुम से भिन्न नहीं है, तुम तो जगत् की आदि और अन्त में निराले रहने के कारण इस से भिन्न ही हो, इस कारण ' यह अपना तथा यह दूसरेका ' इस प्रकार की बुद्धि केवल व्यर्थ माया ही है; जैसे वीज (कारण) और वृक्ष (कार्य) में वृक्ष को पृथ्वीपना और वीज को भूतसूक्ष्म (गन्धगुण) पना है तैसे ही जिन मृत्तिका आदि पदार्थों से जिन घट आदिकों की उत्पत्ति, प्रकाश, लय और स्थिति होते हैं वह घट आदि तद्रूप (मृत्तिका आदिरूप) ही होते हैं अर्थात् यह सव ही कार्यकारणरूप जगत् परमकारणरूप आप का स्वरूप है ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! तुम प्रलयकाल के जल में अपने द्वारा ही अपने में इस जगत् को समेटकर आत्मसुख का अनुभव करतेहुए कर्मरहित होकर शयन करते हो, और अपने स्वरूप के अनुसन्धानरूप योग से नेत्रों को मूँदकर और अपने स्वरूप के प्रकाश से निद्रा को जीतकर तुम जो जाग्रत् आदि अवस्थाओं से निराले अपने तुरीय स्वरूप में रहते हो तिस से जीव की समान सुषुप्ति अवस्था में तुम तम को नहीं देखते हो और जाग्रत् तथा स्वप्न दशा में विषयों से सम्बद्ध भी नहीं होते हो ॥ ३२ ॥ जिन्हों ने अपनी कालशक्ति से प्रकृति के सत्वादि धर्मों को प्रेरणा करी है और जो तुम जल में शेषशय्या के ऊपर शयन करते हो ऐसे आप का स्वरूप यह जगत् है और इस में भी तुम ही हो, क्योंकि- शेषसय्या से तुम्हारी योगनिद्रारूप समाधि का जव विसर्जन होने लगता है तव, सूक्ष्म वट के वीज से उत्पन्न होनेवाले बड़े भारी वट (वड़) के वृक्षकी समान, तुम्हारे में लीन रूप से स्थित यह ब्रह्माण्डरूप महाकमल तुम्हारी नाभि से प्रलयकाल के जल के विषैं उत्पन्न हुआ है ॥ ३३ ॥ हेईश्वर ! उस कमल से उत्पन्न हुए सूक्ष्मद्रष्टा ब्रह्माजी भी, उस कमल को छोड़कर और कुछ न देखते हुए, अपने में व्याप्त बीजरूप आप को, अप-

जातेऽङ्कुरे कथमु होपलभेत बीजम् ॥ ३४ ॥ स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ॥ त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श ॥ ३५ ॥ एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरुनासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ॥ मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चिः ॥ ३६ ॥ तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च विभ्रद्वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ॥ हत्वाऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥ ३७ ॥ इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान्विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ॥ धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥ ३८ ॥ नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ संप्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ॥ कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं

ने से वाहर हैं ऐसा जानकर, खोजने के निमित्त जल में घुसकर सौ वर्ष पर्यन्त ढूँढतेरहे परन्तु तो भी उन्हें तुम्हारी प्राप्ति नहीं हुई, और यह योग्य ही है, क्योंकि–अहो ! अंकुर उत्पन्न होनेपर उस में व्याप्त कारणरूप वीज उस से निराले पुरुष को कैसे मिलसक्ता है, ? ॥ ३४ ॥ हेईश्वर ! उन ब्रह्माजी ने, सौवर्ष पर्यन्त जल में खोजते हुए भी जव तुम्हें नहीं देखा तव अति आश्चर्य में हो तुम्हारा खोजना छोड़दिया और नाभिकमल का आश्रय करके वहुतकाल पर्यन्त करेहुए तीव्र तप के प्रभाव से अन्तःकरण शुद्ध होजाने पर जैसे भूमि में सूक्ष्मरूप से गन्ध व्याप्त होता है तैसे भूत, इन्द्रियें और मन से वनेहुए अपने शरीर में अतिसूक्ष्मरूप से व्याप्त रहनेवाले आप को देखा ॥ ३५ ॥ इसप्रकार असंख्य, वदन चरण, मस्तक, हाथ, जंघा, नासिका, मुख, कर्ण, नेत्र, भूषण, और आयुधों से शोभायमान, चौदहभुवन के विस्ताररूप पाद आदि रचना से युक्त और मायामय विराट्पुरुषरूप से स्थित आप का दर्शन करके ब्रह्माजी को आनन्दहुआ॥३६॥ उससमय हयग्रीव मूर्ति धारण करनेवाले तुमने भी वेदद्रोही और अतिप्रवल रजोगुण और तमोगुण रूप मधु कैटभ नामक दैत्यों का वध करके उन ब्रह्माजी को सकल वेद समर्पण करे इसकारण सत्वगुण ही तुह्मारी अतिप्रिय मूर्ति है ऐसा कहते हैं ॥ ३७ ॥ हेमहापुरुष ! इसप्रकार तुम मनुष्य आदिकों में राम आदिक, तिर्यक्, योनियों में में वराह आदिक, ऋषियों में परशुराम आदिक, देवताओं में वामन आदिक और जलचरों में मत्स्यकूर्म आदि अवतार धारण करके लोकों का पालन करते हो, जगत् के प्रतिकूल जो हों उन का वध करते हो और युगके अनुसारी धर्मकी रक्षा करते हो परन्तु कलियुग में जो तुम गुप्त रहते हो अर्थात् अवतार आदि धारण करके पालन आदि नहीं करते हो तिससे तीन ही युगों में प्रकट होनेवाले आप का 'त्रियुग' नाम प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥ हे वैकुण्ठनाथ ! पातकों से दूषित, वहिर्मुख, कठिन से वश में करनेयोग्य, कामातुर और

तव गतिं विमृशामि दीनः ॥ ३९ ॥ जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति माऽवितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक्क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ ४० ॥ एवं जनं निपतितं भववैतरण्यामन्योऽन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ॥ पश्यन् जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हन्तेति पारचर पिपृहि मूढमद्य ॥ ४१ ॥ कोन्विह ते ऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भवसंभवलोपहेतोः ॥ मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥ ४२ ॥ नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः

हर्ष, शोक, भय, पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैपणा से दुःखित हुआ भी मेरा मन, तुम्हारी कथाओं में प्रीति नहीं करता है, ऐसे उस मन में, मैं दीन तुम्हारे तत्त्व का विचार कैसे करूँ ? ॥ ३९ ॥ तैसेही हे अच्युत ! जैसे अनेक सपत्नियें (सौतैं) अपने पति को अपने २ घर लेजाने के निमित्त खैंचकर त्रास देती हैं तैसे ही भलीप्रकार तृप्त न हुई जिह्वा मुझे मधुर आदि रसों की ओर को खैंचती है, शिश्न कामिनी की ओर को खैंचता है, त्वचा चन्दन आदि पदार्थों की ओर को खैंचती है, क्षुधा से तपाहुआ उदर आहार की ओर को लियेजाता है, श्रवण इन्द्रिय गीत आदि की ओर को लियेजाता है, घ्राण इन्द्रिय सुगन्धि की ओर को खैंचती है, चञ्चलदृष्टि रूप की ओर को झुकाती है और कर्मेन्द्रियें अपने २ विषयों की ओर को मुझे खैंचती हैं ॥ ४० ॥ हे नित्यमुक्त ! संसाररूप वैतरणी नदी में अपने कर्मों से पड़कर परस्पर से प्राप्त होनेवाले मरण, जन्म एवं भोजन से अत्यन्त भयभीत हुए और स्वजनों के शरीरों में मित्रभाव तथा औरों के शरीरों में वैरभाव धारण करनेवाले इन मूढ़जनों के समूह को तुम देखकर 'अरे ! इस को बड़ा दुःख होता है, ऐसी' दया करके इस को तत्काल वैतरणी नदी से बाहर निकालकर रक्षा करो ॥ ४१ ॥ हे जगद्गुरो ! भगवन् ! इस विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणरूप आप को सकल जनों का उद्धार करने के कार्य में कौन प्रयास है ? अर्थात् कुछ परिश्रम नहीं है, क्योंकि—क्या कहीं यह कार्य जगत् की उत्पत्ति आदि करने की अपेक्षा कठिन है ? अर्थात् उस से कठिन नहीं है और मूढ़जनों में ही तुम महात्मा का अनुग्रह होना योग्य है; और हे दीनबन्धो ! तुम्हारे भक्तों की सेवा करनेवाले हमारे उस संसार से उद्धार करने का कौन लाभ है ? अर्थात् कुछ उपयोग नहीं है, क्योंकि—भगवान् के भक्तों की सेवा करने के प्रभाव से हम आपही संसार से तरजांयगे ॥ ४२ ॥ हे सर्वोत्तम ! मुझे तो इस दुस्तर संसाररूप वैतरणी नदी का कुछ भी भय नहीं है, क्योंकि—तुम्हारे चरित्रों के गानरूप परम अमृत में मेरा मन अत्यन्त निमग्न होगया है, परन्तु उस परम अमृत से जिन का चित्त फिरा

शोचे ततो विमुखचेतस इंद्रियार्थमायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥ ४३ ॥ प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा मौनं चरंति विजने न परार्थनिष्ठाः ॥ नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥ ४४ ॥ यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं कंडूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ॥ तृप्यंति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥ ४५ ॥ मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्मव्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ॥ प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेंद्रियाणां वार्ता भवंत्युत न वाऽत्र तु दांभिकानां ॥ ४६ ॥ रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे बीजांकुराविव न चान्यदरूपकस्य ॥ युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥ ४७ ॥ त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदंबु मात्राः प्राणेंद्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ॥ सर्वं त्वमेव

हुआ है और इन्द्रियों के निमित्त माया के रचे विषयों का सुख पाने को कुटुम्बपोषण आदि का भार उठानेवाले अति मूढजनों का मुझे बडा शोकहै॥ ४३॥ हे देव ! प्रायः अपने को ही मुक्ति प्राप्त होनेके विषयमें इच्छा करनेवाले मुनि, एकान्तमें मौन धारण करके ध्यान आदि करतेहैं इसकारण परोपकार करनेमे वह तत्पर नहीं हैं; और इन दीनजनोंको छोड़कर मैं मुक्त होजाऊँ, सो मुझे इच्छा नहीं है. सो हे परमेश्वर! अनेकों योनियों में घूमनेवाले इन मूढजनों का उद्धार करनेवाला तुम्हें छोडकर दूसरा मुझे कोई नहीं दीखता है॥ ४४॥ हे परमात्मन् ! मैथुन आदि के द्वारा गृहस्थों को प्राप्त होनेवाला सुख अतितुच्छ है और जैसे हाथों से खुजलाने पर पहिले कुछ सुख होता है परन्तु पीछे से वह खुजलाना अधिक दुःख ही देता है तैसे ही यह गृहस्थाश्रम का सुख भी आगे२ को अधिक दुःखदायक ही है परन्तु काम के दुःसह होने के कारण कामीपुरुष नानाप्रकारके दुःख भोगतेहुए भी कभी भी गृह के सुखों से तृप्ति नहीं मानते हैं, तुम्हारा अनुग्रह होनेपर कोई धीर पुरुष ही खुजली की समान काम को भी सहता है ॥ ४५ ॥ हे अन्तर्यामी परमात्मन् ! मौन, व्रत, श्रवण, तप, वेद का पढ़ना, अपना धर्म, ग्रन्थों का व्याख्यान, एकान्त में वास, जप और समाधि यह जो मोक्ष के साधन दश धर्म प्रसिद्ध हैं सो भी बहुधा अजितेन्द्रिय लोकों को केवल जीविका के उपाय ही होजाते हैं, और दम्भी पुरुषों के तो कभी जीवन के उपाय होजाते हैं और कभी उन का दाम्भिकपना प्रकट होजानेपर जीवन के उपाय भी नहीं होतेहैं ॥ ४६ ॥ हे प्रभो ! प्राकृतरूप से रहित भी तुम्हारे, बीज और अंकुरकी समान प्रवाह से प्राप्त हुए यह कार्य कारणात्मक दो रूप, वेदने प्रकाशित करेहैं, इनको छोड़ आपका ज्ञानकरानेवाला चिन्ह 'जैसे देवदत्तआदि का गोरापन आदि होताहै तैसा' कोई भी नहींहै इस से जैसे अग्निहोत्री काठ में होनेवाले अग्नि को मथकर पा लेते हैं तैसे और उपायों से तुम्हारे तत्व का ज्ञान नहीं होता है ॥ ४७ ॥ हे सर्वव्यापिन् परमेश्वर ! वायु, अग्नि,

सगुणो विगुणश्च भूमन्नान्यत्त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥ ४८ ॥ नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनःप्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ॥ आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वामेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥ ४९ ॥ तत्तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ॥ संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ ५० ॥ नारद उवाच ॥ एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ॥ प्रह्रादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥ ५१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रह्राद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं ते सुरोत्तम ॥ वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणां ॥ ५२ ॥ मामप्रीणत आयुष्मन्दर्शनं दुर्लभं हि मे ॥ दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥ ५३ ॥ प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ॥ श्रेयस्कामा म-

पृथ्वी, आकाश, जल, शब्द आदि विषय, प्राण, इन्द्रियें, मन, चित्त, अहङ्कार और स्थूल सूक्ष्म यह सकल जगत् तुमही हो, अधिक तो क्या मन वाणी से प्रकाशित होने वाली कोई भी वस्तु तुम से भिन्न नहीं है ॥ ४८ ॥ हे उरुगाय ! भगवन् ! सत्वादिगुण, उन के अभिमानी देवता, देव और मनुष्यों सहित महत् आदि तत्व, मन, बुद्धि आदि के अभिमानी देवता, यह सब आदि और अन्तवाले होने के कारण आप को नहीं जानते हैं, इसकारण विद्वान् पुरुष ऐसा विचारकर अध्ययन आदि व्यपारों से उपराम पाते हैं अर्थात् समाधि के द्वारा तुम्हारी ही उपासना करतेहैं ॥ ४९ ॥ इसकारण हे अतिपूज्य परमात्मन् ! प्रणाम, स्तुति, सकल कर्म समर्पण करना, उपासना, चरणों का स्मरण और कथा का श्रवण इस श्रेष्ठ छः अङ्गोंवाली सेवा के सिवाय पुरुष को, परमहंसों को प्राप्त होने योग्य आप के विषैं भक्ति कैसेप्राप्तहोय? अर्थात् नहींहोसक्ती,इसकारण भक्ति के विनामोक्ष नहीं है और उत्तम सेवा के विना भक्ति नहीं है अतः पहिले प्रार्थना कराहुआ अपना दासभावरूप योग ही मुझे दीजिये ॥ ५० ॥ नारदजी ने कहा कि—हे धर्मराज ! इस प्रकार भक्त प्रल्हाद के भक्तिपूर्वक निर्गुण परमात्मा के गुणों का वर्णन करनेपर वह परमात्मा प्रसन्न हुए और कोप को रोककर उन नम्र प्रल्हादजी से कहनेलगे ॥५१॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे असुरों में श्रेष्ठ प्रल्हाद ! तेरा कल्याण हो, मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हुआ हूँ, तिससे हे कल्याणरूप ! तू इच्छित वर मांग, क्योंकि—मैं पुरुषों के मन की कामनाओं को पूर्ण करनेवाला हूँ ॥ ५२ ॥ हे आयुष्मन् ! मुझे प्रसन्न करनेवाले पुरुष को मेरा दर्शन होना निःसन्देह दुर्लभ है, परन्तु जिसको मेरा दर्शन हुआ वह प्राणी 'मेरी कामना पूर्ण नहीं हुई' ऐसा शोक करने के योग्य नहीं होता है ॥ ५३ ॥ इस कारण सदाचारवाले, महाभाग्यवान् और अपना कल्याण होने की इच्छा करनेवाले

हार्भागाः सर्वासामाशिषां पतिं ॥ ५४ ॥ एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ॥ एकांतित्वाद्भगवति नैच्छत्तानसुरोत्तमः ॥ ५५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ भक्तियोगस्य तत्सर्वमन्तरायतयाऽर्भकः ॥ मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥ १ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मा मां प्रलोभयोत्पत्त्या सक्तं कामेषु तैर्वरैः ॥ तत्संगभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ।२। भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ॥ भवान्संसारवीजेषु हृदयग्रंथिषु प्रभो ॥ ३ ॥ नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ॥ यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥ ४ ॥ आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ॥ न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन्यो राति चाशिषः ॥५॥ अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ॥ नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥ ६ ॥

विवेकी पुरुष परम भक्ति कर के सकल मनोरथ पूर्ण करनेवाले मुझ परमेश्वर को सन्तुष्ट करते हैं ॥ ५४ ॥ हे धर्मराज ! इसप्रकार प्राणियों को लोभ उत्पन्न करनेवाले वरोंके द्वारा, भगवान् के लोभ दिखानेपर भी असुरों में श्रेष्ठ प्रल्हादजी ने, भगवान् के विषैं एकान्तभक्त होने के कारण उन वरों की इच्छा नहीं करी ॥ ५५ ॥ इति सप्तमस्कन्ध में नवम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ नारदजी कहते हैं कि–हे धर्मराज ! वह 'वर माँग, इत्यादि, भगवान्के सकल कथन को भक्तियेग में विघ्नकारक माननेवाले वह बालक प्रल्हादजी, आश्चर्य करते२ हृषीकेशभगवान् से कहनेलगे ॥ १ ॥ प्रल्हादजी ने कहा कि–हे परमेश्वर ! स्वभाव से ही विषयों में आसक्तहुए मुझे उन विषयों के ही वरों से लुब्ध न करो, क्योंकि–उन के सङ्ग से भय मानकर उन से विरक्तहुआ मैं, मोक्ष प्राप्तहोनेकी इच्छासें आपकी शरणमें आयाहूँ ॥२॥ हेप्रभो ! हृदयकीगाँठकी समान बन्धन के कारण और संसार के बीजरूप विषयोंमें जो मुझ भक्त को आपने प्रेरणाकरी सो केवल सेवक का लक्षण अर्थात् यह अपने कर्त्तव्यपर दृढ़ है या नहीं ऐसा जाननें के निमित्त ही करी है ॥ ३ ॥ नहीं तो हे जगद्गुरो ! कृपा करनेवाले आप का, अनर्थ के साधनों में अपने भक्त को प्रवृत्त करना नहीं घटसक्ता हे ईश्वर ! जो सेवक आप से विषय पाने की इच्छा करता है वह सेवक नहीं है किन्तु वह केवल व्यापारी ही है ॥ ४ ॥ जो सेवक स्वामी से अपना मनोरथ पूर्ण होने की इच्छा करता है वह सेवक नही हैं और जो सेवक से अपना कार्य होने की इच्छा से उस को धन आदि देता है वह स्वामी भी नहीं है किन्तु इन दोनों को परस्पर का व्यापारी समझना चाहिये ॥ ५ ॥ आप का मेरे विषैं होनेवाला स्वामी सेवकभाव वास्तविक है क्योंकि–मैं तुम्हारा निष्काम भक्त हूँ और तुम भी मेरे निरपेक्ष स्वामीहो, इस कारण जैसा राजा और सेवक में स्वामी

यदि रासीश मे कामान्वरांस्त्वं वरदर्षभ ॥ कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥ ७ ॥ इंद्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ॥ ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥ ८ ॥ विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ॥ तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥ ९ ॥ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ॥ हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ॥ १० ॥ नृसिंह उवाच ॥ नैकांतिनो मे मयि जात्विहाशिषं आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ॥ अथाऽपि मन्वन्तरमेतदत्र दैत्येश्वराणामनुभुंक्ष्व भोगान् ॥ ११ ॥ कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्वमावेश्य मामात्मनि संतमेकम् ॥ सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥ १२ ॥ भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा ॥ कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां विताय मामेष्यसि मुक्तबंधः ॥ १३ ॥ य एतत्की—तयेन्मह्यं त्वया

सेवकभाव होता है वैसा हम दोनों का नहीं है ॥ ६ ॥ हे वरदान देनेवालों में श्रेष्ठ परमेश्वर ! यदि तुम मुझे इच्छित वरदान देते हो तो मेरे हृदय में कामवासनाओं का अंकुर उत्पन्न न होय, यह वरदान मैं आप से मांगता हूँ ॥ ७ ॥ हे कमलनयन ! काम के अंकुर की उत्पत्ति होने के कारण इन्द्रियें, मन, प्राण, शरीर, धर्म, धीरज, सार असार का विवेक, लज्जा, ऐश्वर्य,प्रताप, स्मृति और सत्य यहसव नष्ट होजातेहैं॥ ८॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! जव पुरुप, मन में की सकल कामनाओं का त्याग करता है तव वह तुम्हारी समान ऐश्वर्य पाने के योग्य होता है ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! हे महात्मन् ! हे पुराण पुरुप ! हे श्रीहरे ! और हे अद्भुत सिंहरूप धारण करनेवाले ब्रह्मस्वरूप परमात्मन् ! आप को नमस्कार हो ॥ १० ॥ नृसिंह भगवान् ने कहा कि-हे प्रल्हाद ! तेरी समान जो मेरे एक निष्ठ भक्त हैं वह कभी भी इस लोक के अथवा परलोक के विषय, मुझ से पाने की इच्छा नहीं करते हैं तथापि इस मन्वन्तर की समाप्ति पर्यन्त तू दैत्यों के अधिपतियों का राजा होकर इस भूलोक के विषय भोगों का उपभोग कर ॥ ११ ॥ हे प्रल्हाद ! मेरी, प्रिय कथाओं को श्रवण करता हुआ तू, सकल भूतों में रहनेवाले एक मुझ यज्ञ के अधिष्ठाता परमेश्वर को मन में धारण करके मेरी आराधनाकर मुझे समर्पणरूप से कर्मों का त्याग करके तू मेरी आराधना कर ॥ १२ ॥ तव सुख के अनुभव से पुण्य का, सदाचरण से पापका और काल के वेग से शरीर का त्याग करके तथा देवलोक में भी गान करनेयोग्य अतिपवित्र कीर्त्ति को इसलोक में प्रसिद्ध करके कर्मवन्धन से मुक्त होताहुआ तू मुझे प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ और अधिक तो क्या परन्तु,

गीतमिदं नरः ॥ त्वां च मां च स्मरन्लोके कर्मबन्धात्प्रमुच्यते ॥ १४ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ वरं वरय एतत्ते वरदेशान्महेश्वर ॥ यदनिंदत्पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम् ॥ १५ ॥ विद्धामर्षाशयः साक्षात्सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ॥ भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान् ॥ १६ ॥ तस्मात्पिता मे पूयेत दुरन्ताद्दुस्तरादघात् ॥ पूतस्तेऽपांगसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ॥ यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ १८ ॥ यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशांताः समदर्शिनः ॥ साधवः समुदाचारास्ते पूयंत्यपि कीकटाः ॥ १९ ॥ सर्वात्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किंचन ॥ उच्चावचेषु दैत्येंद्र मद्भावेन गतस्पृहाः ॥ २० ॥ भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ॥ भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥२१॥ कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य स-

तेरा, मेरा और इस चरित्र का स्मरण करनेवाला जो पुरुष, तेरे वर्णन करेहुए इस मेरे स्तोत्र का पाठ करेगा वह भी कर्मों के बन्धन से छूटेगा फिर तुझे कर्मबन्धन की शङ्का नहीं इस का क्याकहूँ? १४ प्रल्हाद बोले-हेमहेश्वर! वर देनेवाले ब्रह्मादिकों के अधिपति आप से मैं दूसरा एक यह वर मांगता हूँ कि-क्रोध से अन्तःकरण भरजाने के कारण ईश्वरीय तेज को न जाननेवाले मेरे पिता ने 'यह मेरे भ्राता का वध करनेवाला है ऐसी' असत्य दृष्टि से साक्षात् त्रिलोकीपति सकल लोकों के गुरु आप की जो निन्दा करी और तुम्हारे भक्त से अर्थात् मुझ से जो द्रोह करा तिस दुरन्त और दुस्तर पातक से वह मेरे पिता शुद्ध हों. हे दीनवत्सल ! आप ने कटाक्ष से अवलोकन करा तब ही वह पवित्र होगए हैं तथापि दीनता से मैं यह तुम से फिर भी प्रार्थना करता हूँ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हे निष्पाप ! तेरा पिता अपने इक्कीस * पूर्वजों सहित पवित्र होगया है, क्योंकि—हे साधो ! इस के घर कुल को पवित्र करनेवाला तू उत्पन्नहुआ है ॥ १८ ॥ हे प्रह्लाद ! जहाँ जहाँ अत्यन्त शान्त, समदर्शी, परोपकारी और सदाचारसम्पन्न मेरे भक्त रहते हैं वह कीकट देश समान अत्यन्त अपवित्र वंश भी पवित्र होजाते हैं १९ हे दैत्येन्द्र ! मेरी भक्ति से निरीह रहनेवाले पुरुष, यदि कदाचित् काम क्रोध आदि के कारण परतन्त्र होजायँ तब भी वह छोटे बड़े प्राणियों के समूहों में किसी की भी हिंसा नहीं करते हैं।२०॥ अधिक तो क्या परन्तु, इस लोक में जो पुरुष, तेरे अनुसार वर्त्ताव करेंगे वह भी मेरे भक्त होंगे और तू तो निःसन्देह मेरे सकल भक्तों में श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ हे प्रल्हाद ! मेरे

* यद्यपि हिरण्यकशिपु के ब्रह्माजी, मरीचि और कश्यप यह तीन ही पूर्वपुरुषा थे तथापि पूर्व कल्पों में के पितरों के अभिप्राय से यह कथन है ॥

वंशः ॥ मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकान् यास्यति सुप्रजाः ॥ २२ ॥ पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥ मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥ ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्सांपरायिकम् ॥ यथाह भगवान् राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥ २४ ॥ प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ॥ स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज ॥ दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसंतापनोऽसुरः ॥ २६ ॥ योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ॥ तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥ २७ ॥ दिष्ट्याऽस्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः ॥ त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥ २८ ॥ एतद्वपुस्ते भगवन्ध्यायतः प्रयतात्मनः ॥ सर्वतो गोप्तृ संत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥ २९ ॥ नृसिंह उवाच ॥ मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसंभव ॥

शरीर का स्पर्श होजाने के कारण सव प्रकार से पवित्र हुए अपने पिता की केवल शास्त्र की मर्यादा की रक्षा के निमित्त तू दाह आदि प्रेत क्रियाकर तुझ सत्पुत्र के कारण वह उत्तम लोकों को जायगा ॥ २२ ॥ और हे तात प्रल्हाद ! ब्रह्माजी के कहने के अनुसार तू पिता के स्थानपर स्थित हो और मुझ में मन लगाकर एवं मेरे विषैं तत्पर होकर सकल कर्म्मों का आचरण कर ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी ने कहा कि–हे धर्मराज ! इसप्रकार भगवान् के कहनेपर प्रल्हाद जी ने भी पिता की जो और्ध्वदैहिक क्रिया (प्रेतक्रिया) करनी थीं वह सव करीं ॥ २४ ॥ इधर देवताओं से घिरेहुए ब्रह्माजी ने, प्रसन्नता के कारण सौम्यमुख नृसिंहरूप श्रीहरि को देखकर और पवित्र वाक्यों से उन की स्तुति करके इसप्रकार कहा ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि–हेदेवाधिदेव ! हे सर्वान्तर्यामिन् परमात्मन्! तुम जगत् की रचना करनेवालों के भी पूर्वज हो, यह लोकों को त्रास देनेवाला पापी असुर आपने मारडाला यह बड़ी उत्तम वार्त्ता हुई ॥ २६ ॥ जो यह दैत्य मुझ से वरदान पाने के कारण मेरे उत्पन्न करेहुए देव मनुष्य आदिकों से मरण को प्राप्त होने को अशक्य था तथा तप और योग के वल से घमण्ड में भरकर इसने वेदविहित सकल धर्म्मों को नष्ट करडाला था उसका आपने वध करा, यह वड़ी सुन्दर वार्त्ता हुई ॥ २७ ॥ तैसे ही वालक होकर भी सदाचार सम्पन्न और परमभगवद्भक्त, इस के पुत्र प्रल्हाद को तुम ने मृत्यु से छुटाया, यह वड़ा श्रेष्ठ हुआ और इस समय तुम्हारी शरण आया यह भी वड़ा श्रेष्ठ हुआ ॥ २८ ॥ हेभगवन् ! तुम्हारा यह स्वरूप, मन को वश में करके तुम्हारा ध्यान करनेवाले पुरुष की तुम, सकल भयों से, अधिक तो क्या वध करने की इच्छा करनेवाले मृत्यु से भी रक्षा करनेवाले हो ॥ २९ ॥ श्रीनृसिंह भगवान् ने कहा कि–हे ब्रह्माजी ! आज से ऐसा वरदान, क्रूरस्वभाववाले असुरों को तुम कदापि नहीं

वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान् राजंस्तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥ ३१ ॥ ततः संपूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम् ॥ भवं प्रजापतीन् देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥ ३२ ॥ ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः ॥ दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत्पतिं ॥ ३३ ॥ प्रतिनंद्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः ॥ स्वधामानि ययू राजन् ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥ ३४ ॥ एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः ॥ हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥ ३५ ॥ पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ॥ कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥ ३६ ॥ शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः ॥ तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥ ३७ ॥ ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूपजौ ॥ हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥ ३८ ॥ एनः पूर्वकृतं यत्तद्राजानः कृष्णवैरिणः ॥ जहुस्त्वन्ते

देना; क्योंकि–सर्पों को दूध पिलानेपर वह जैसे सज्जनों को पीड़ा देनेवाले होते हैं तिसी प्रकार स्वभाव से ही भयङ्कर असुरों को दिया हुआ वरदान भी लोकों को पीडा देनेवाला होता है ॥ ३० ॥ नारदजी कहते हैं कि–हे धर्मराज ! इस प्रकार ब्रह्माजी से कहकर उन के पूजन करनेपर श्रीनृसिंह भगवान् तहांही अन्तर्धान होगए, और सकल प्राणियों को फिर तहां नहीं दीखे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर प्रल्हाद जी ने भगवान् के अंशरूप, ब्रह्मा जी, महादेवजी, कश्यपजी आदि प्रजापति तथा इन्द्रादि देवताओं की उत्तम प्रकार से पूजा करके मस्तक से प्रणाम किया ॥३२॥ तदनन्तर भृगु आदि मुनियों सहित ब्रह्माजी ने, प्रल्हादजी को, दैत्य और दानवों का आधिपत्य दिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! प्रल्हाद जी के पूजन करे हुए ब्रह्मादि देवता उन की प्रशंसा करके तथा उत्तम प्रकार के आशीर्वाद देकर अपने अपने स्थान को चलेगये ॥ ३४ ॥ हेधर्मराज ! इसप्रकार जो पाहिले जय विजय नाम वाले विष्णु भगवान् के पार्षद थे वह ब्राह्मणों के शाप के कारण दिति के पुत्र हुए तब, हृदय में विद्यमान श्रीहरि ने वैरभाव से उन का वध करा ॥ ३५ ॥ तदनन्तर फिरभी उसही ब्राह्मणों के शाप के कारण वह जब रावण और कुम्भकर्ण नामवाले दो राक्षस हुए तब रामचन्द्र जी के पराक्रमों से उन का वध हुआ ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रजी के बाणों से हृदय विदीर्ण होकर युद्ध भूमि में शयन करने वाले उन्होंने, पहिले जन्म की समान अपना चित्त श्रीरामचन्द्रजी की ओर को लगाकर शरीर का त्याग करा ॥ ३७ ॥ तदनन्तर वही फिर इस भूलोक में शिशु-पाल और दन्तवक्र रूप से उत्पन्न हुए और वैरभाव से हेधर्मराज ! तुम्हारे देखतेहुए ही श्रीहरि के विषें सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुए ॥ ३८ ॥ हेराजन् ! पेशस्कृत् (एकप्रकार

तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥ ३९ ॥ यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाऽभिदा ॥ नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिंतया ययुः ॥ ४० ॥ आख्यातं सर्वमेतत्ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषां ॥ ४१ ॥ एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ॥ अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ॥ ४२ ॥ प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च ॥ भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः ॥ ४३ ॥ सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् ॥ परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥ ४४ ॥ धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते ॥ आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥ ४५ ॥ य एतत्पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् ॥ कीर्त्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशाद्विमुच्यते ॥ ४६ ॥ एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेंद्रलीलां

का भौंरा) नामक कीड़े का वारंवार डसाहुआ कीड़ा जैसे निरन्तर उसका ध्यान करने से उस के ही स्वरूप का होजाता है तैसे ही कृष्ण से द्रोह करनेवाले राजाओं ने कृष्ण की निन्दा आदि के द्वारा जो पहिले पाप करे थे उन का श्रीकृष्ण के ध्यान से त्याग करके अन्त में वह श्रीकृष्ण के ही स्वरूप को प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ जो एकनिष्ठ भक्त हैं वह भेदभाव रहित सर्वोत्तम भगवद्भक्ति के द्वारा श्रीहरि का चिन्तवन करके जैसे २ पहिले उन के सारूप्य को प्राप्तहुए तैसेही शिशुपाल आदि राजे भी वैरभाव से श्रीहरि का चिन्तवन करके उन के सारूप्य को प्राप्त हुए हैं ॥ ४० ॥ हेराजन् ! दमघोष का पुत्र शिशुपाल आदि श्रीकृष्ण से द्वेष करतेहुए भी उन के सायुज्य को कैसे प्राप्तहुए, यह जो तुमने मुझ से बूझा था सो सब मैंने तुम्हें कहसुनाया ॥ ४१ ॥ इसप्रकार हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु इन आदि दैत्यों का जिस में वध है ऐसी यह, ब्राह्मणों में भक्ति रखनेवाले परमपूजनीय, महात्मा श्रीकृष्ण के नृसिंह अवतारकी पुण्यकारिणी कथा मैंने तुम से कही है ॥ ४२ ॥ तैसे ही इस आख्यान में परमभगवद्भक्त प्रह्लादजी का चरित्र अर्थात् उन की भक्ति, उन को प्राप्तहुआ भगवान् का तत्त्वज्ञान और वैराग्य यह सबकथन करे तथा उत्पत्ति, स्थिति और लय के अधिपति श्रीहरि का वास्तविक स्वरूप, उन के गुणकर्मों का प्रल्हादजी का कराहुआ वर्णन तथा देव दैत्य आदिकों के स्थानों का काल का कराहुआ बड़ाभारी लौटबदल और जिस से भगवान् की प्राप्ति होती है ऐसा भगवद्भक्तों का धर्म तथा आत्मानात्मविवेक करने के साधन यह सब ही इस व्याख्यानमें पूर्णरीति से वर्णन करे हैं॥ ४३॥ ४४॥ ४५॥ विष्णुभगवान् के पराक्रमका वर्णन होनेसे विस्तारको प्राप्त हुए इसपुण्यकारक आख्यान को जो पुरुष,श्रद्धाके साथ सुनेगा वा वर्णन करेगा वह पुण्यपापरूप कर्मोंकी फाँसीसे छूटजायगा॥ ४६ ॥ इस आदिपुरुष विष्णुभगवान्

दैत्येंद्रयूथपवधं प्रयतः पठेत ॥ दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं श्रुत्वाऽनुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥ ४७ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद्गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम् ॥ ४८ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥ ४९ ॥ न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥ ५० ॥ स एष भगवान् राजन् व्यतनोद्विहतं यशः ॥ पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानंतमायिना ॥ ५१ ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्कर्मणि देवस्य मयोऽहन् जगदीशितुः ॥ यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम् ॥ ५२ ॥ नारद उवाच ॥ निर्जिता असुरा

के नृसिंहरूप से करेहुए हिरण्यकशिपु के वधरूप औरसेनाधिपतियों के वधरूप लीलाओं का और भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ, दैत्यपुत्र, प्रल्हादजी के पुण्यकारी प्रभावों को जो पुरुष पवित्रता के साथ सुनकर पढ़ेगा वह निर्भय होकर वैकुण्ठ लोक को प्राप्तहोगा ४७ इस प्रकार नारदजी के कहेहुए आख्यान को सुनकर ' अहो ! कैसा प्रल्हादजी का भाग्य है ! जिन्होंने भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन करा ' हम तो भाग्यहीन हैं, ऐसा खेद माननेवाले धर्मराज से नारदजी कहते हैं कि–हे धर्मराज ! इस मनुष्य लोक में निःसन्देह तुम भाग्यशाली हो, क्योंकि–तुम्हारे घर मनुष्यरूप धारण करके गुप्तभाव से साक्षात् श्रीकृष्णनामक परब्रह्म वासकररहे हैं इस कारण ही तुम्हारे घर दर्शनमात्र से सकललोकों को पवित्र करनेवाले ऋषि चारों ओर से आते हैं ॥ ४८ ॥ हे धर्मराज ! परम विवेकी पुरुष जिन की इच्छाकरें ऐसा उपाधिरहित परमानन्द का अनुभवरूप वह ब्रह्मही तुम्हारे प्रिय, सुहृद्, मामा के पुत्र, आत्मा, आज्ञा में चलनेवाले, गुरु और तुम्हारे पूज्य श्रीकृष्ण हैं ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! शिव ब्रह्मादिकों ने अपनी बुद्धि लगाकर भी जिन का वास्तविकतत्त्व ' यह इस प्रकार के हैं ' इस रीति से साक्षात् वर्णन नहीं करा है, ऐसे इन भक्तपालक भगवान् का, मौन, भक्ति और इन्द्रियों को वश में करके हमने पूजन करा है सो हमारे ऊपर प्रसन्नहों; सारांश यह है कि–प्रल्हादजी के घर भगवान् वास नहीं करते हैं इस कारण तुमही उन की अपेक्षा और हमारी अपेक्षा भी भाग्यशालीहो ॥५०॥ हे राजन् ! पहिले परममायावी मयासुर करके नष्ट कराहुआ श्रीरुद्रदेव का यश इनही भगवान् ने फैलाया था ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिर ने कहा कि–हे देवर्षे ! कौनसे कर्म में जगदीश्वर महादेव की कीर्त्ति मयासुर ने नष्ट करीथी और वह इन श्रीकृष्णजी ने फिर किस प्रकार फैलाई थी सो मुझ से कहो ॥ ५२ ॥ नारदजी ने कहा कि–हे धर्मराज !

देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः ॥ मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः ॥ ५३ ॥ स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः ॥ दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥ ५४ ॥ ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन्सेश्वरान्नृप ॥ स्मरंतो नाशयांचक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥ ५५ ॥ ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो॥ त्राहि नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥ ५६ ॥ अथानुगृह्य भगवान्माभैष्टेति सुरान्विभुः ॥ शरं धनुषि सन्धाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुंचत ॥ ५७ ॥ ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् ॥ यथा मयूखसंदोहा नादृश्यंत पुरो यतः ॥ ५८ ॥ तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः ॥ तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥ ५९ ॥ सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः ॥ उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥ ६० ॥ विलोक्य भग्नसंकल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ॥ तदाऽयं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥

इन श्रीकृष्ण के बढ़ाएहुए देवताओं करके पराजित करेहुए असुर, मायावी पुरुषों के श्रेष्ठ आचार्य मयासुर की शरण में गये ॥ ५३ ॥ तब उस समर्थ मयासुर ने, एक सुवर्ण की, एक चांदीकी और एक लोहे की ऐसे तीन नगरी रचकर उन दैत्यों को दीं वह नगरी ऐसी थीं कि–उन का समीप में आना व दूर जाना किञ्चिन्मात्र भी ध्यान में नहीं आताथा और उन में युद्धके वाण तरवार आदि युद्ध की सामग्री कहां रक्खी हैं यहभी किसी को प्रतीत नहीं होता था ॥ ५४ ॥ हेराजन् ! उन विमानरूप नगरों के द्वारा असुरों के सेनापति गुप्त रहकर, पहिले वैर को स्मरण करके तीनोंलोकों का नाश करने को प्रवृत्त हुए ॥ ५५ ॥ तदनन्तर इन्द्र आदि लोकपालों सहित सकल लोक श्रीरुद्रभगवान् के समीप जाकर कहनेलगे कि–हे सर्वव्यापक देव ! जिन को तीन नगररूप स्थान मिले हैं उन असुरों करके नष्ट करेजातेहुए हम निजजनों की तुम रक्षा करो ॥ ५६ ॥ तदनन्तर उन देवताओं को प्रभु रुद्रभगवान् ने 'भय न करो' इसप्रकार धीरज बँधाकर पाशुपत मन्त्र से अभिमन्त्रित कराहुआ वाण धनुष पर चढ़ाकर उन पुरों के ऊपर छोड़ा ॥५७॥ तब, जैसे सूर्यमण्डल में से किरणों के समूह उत्पन्न होते हैं तैसे ही उन वाणों में से अग्नि की समान वाण उत्पन्न हुए और उन से वह पुर अदृश्य (न दीखतेहुए) से होगये ५८ तदनन्तर उन वाणों का स्पर्श होते ही पुरों में रहनेवाले सकल असुर प्राणहीन होकर गिरपड़े उससमय परममायावी मयासुरने प्राणहीन हुए उन असुरों को लाकर अपने वनायेहुए अमृत के कूप में डालदिया ॥ ५९ ॥ तव उस सिद्ध अमृत का स्पर्श होते ही असुर वज्र की समान दृढ़ शरीरवाले और महाबली होकर मेघों का विदारण करनेवाली विजलीरूप अग्नियों की समान एकसाथ खड़े होगये ॥ ६० ॥ उससमय भग्नसङ्कल्प हुए और मन में खिन्न हुए श्रीरुद्र भगवान् को देखकर इन विष्णु

॥ ६१ ॥ वत्स आसीत्तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरयं हि गौः ॥ प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामृतं पपौ ॥ ६२ ॥ तेऽसुरा ह्यपि पश्यन्तो न न्यषेधन्विमोहिताः ॥ तद्विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ ॥ ६३ ॥ स्वयं विशोकः शोकार्तान्स्मरन् दैवगतिं च ताम् ॥ देवोऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ॥ ६४ ॥ आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ॥ अथासौ शक्तिभिः स्वाभिः शम्भोः प्राधनिकं व्यधात् ॥ ६५ ॥ धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः ॥ रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्म शरादि यत् ॥ ६६ ॥ सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे ॥ शरं धनुषि संधाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ॥ ६७ ॥ ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः ॥ ६८ ॥ देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः ॥ अवाकिरन् जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६९ ॥ एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥

भगवान् ने उस सिद्ध अमृतरस का नाश करने के निमित्त उपाय विचारा ॥ ६१ उस समय ब्रह्माजी वछड़ा बने और यह विष्णुभगवान् स्वयं गौ बने और तथा मध्यान्हकाल के समय त्रिपुरासुरों के अमृतरस के कूप के समीप जाकर उस में के अमृत को पीलिया ॥ ६२ ॥ उससमय उस की रक्षा करनेवाले असुरों ने उस रस को पीताहुई गौको देखकर भी निषेध नहीं करा; क्योंकि—वह भगवान् की माया से मोहित होगये थे उस गौके अमृत का पान करलेने को जानकर, अचिन्तनीय कार्य करनेवाले भगवान् की महिमा का स्मरण कर अपने आप किसीप्रकार का शोक न करनेवाला वह मायावी मयासुर उन शोक करनेवाले रक्षक असुरों से कहनेलगा कि—अहो! देव, असुर, मनुष्य वा और कोई भी प्राणी यक्ष गन्धर्वादि होतो इस लोक में अपने को, दूसरे को, अथवा दोनों को जो प्राप्त होनेवाला हो उस को हटा नहीं सक्ता तदनन्तर इन विष्णुभगवान् ने, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, समृद्धि, तप, विद्या और कृपा आदि अपनी शक्तियों के द्वारा श्रीरुद्रभगवान् को—रथ, सारथि, ध्वजा, घोड़े, धनुष, कवच और वाण आदि सकल युद्ध की सामग्री रचकर देदी ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ तदनन्तर युद्ध के निमित्त उद्यतहुए भगवान् ईश्वर ने रथ के ऊपर चढ़कर हाथ में धनुष और वाण धारण करा और हे राजन् ! मध्यान्ह के समय धनुषपर वाण चढ़ाकर उस के द्वारा उन कठिन से वेधनेयोग्य तीनों पुरों को भस्म करडाला; उससमय स्वर्ग में दुन्दुभि बजनेलगीं, आकाश में ठसेहुए सैंकड़ों विमानों में बैठेहुए देवता, ऋषि, पितर और सिद्धों के अधिपति जय जयकार करके पुष्पों की वर्षा करनेलगे और अप्सराएँ आनन्दित होकर गान तथा नृत्य करनेलगीं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार भगवान् त्रिपुरारी ने, तीनों पुरों को

॥७०॥ एवंविधान्यस्य हरेः स्वमायया विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ॥ वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरोर्लोकान्पुनानान्यपरं वदामि किं ॥ ७१ इ० भा० म० स० युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ॥ युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदा युतः पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयंभुवः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ॥ वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान्विन्दते परम् ॥ २ ॥ भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः ॥ सुतानां संमतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः ॥ ३ ॥ नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः ॥ करुणाः साधवः शान्तास्त्वद्विधा न तथाऽपरे ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे ॥ वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ५ ॥ योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः ॥ लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो वदरिकाश्रमे ॥ ६ ॥ धर्ममूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो

भस्म करके, ब्रह्मादिकों के स्तुति करतेहुए अपने स्थान को गमन करा ॥ ७० ॥ हे धर्मराज ! इस प्रकार की अपनी माया से, अपने नरशरीरके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले इन जगत् के गुरु श्रीहरि के सकल लोकों को पवित्र करनेवाले चरित्र ऋषियों ने वर्णन करे हैं, अब मैं तुम्हारे अर्थ और क्या वर्णनकरूँ सो कहो ॥ ७१ ॥ इति सप्तमस्कन्ध में दशम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हेराजन् परीक्षित ! जिन का मन भगवान् के विषें है और जो अतिश्रेष्ठ लोकों में भी श्रेष्ठ हैं उन दैत्यराज प्रल्हाद के साधुओं की सभा में सत्कार करेहुए चरित्र को सुनकर आनन्द से युक्तहुए राजा युधिष्ठिर ने फिरभी उन ब्रह्मपुत्र नारदजी से प्रश्न करा ॥ १ ॥ युधिष्ठिर ने कहा कि—हे भगवन् ! पुरुष को धर्माचरण से ज्ञान और भक्ति की प्राप्तिहोती है इस कारण वर्ण और आश्रम के आचारोंसे युक्त मनुष्यों का सनातनधर्म सुनने की मेरी इच्छा है ॥ २ ॥ आप से यह प्रश्न करने का यह कारण है कि—हे ब्रह्मनिष्ठ ऋषे ! तुम साक्षात् प्रजापति ब्रह्माजी के पुत्र हो, और तप, योग तथा समाधि के द्वारा उन के पुत्रों में श्रेष्ठ मानेगये हो ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! जिन के श्रीनारायणही मुख्य देवता हैं ऐसे आप की समान दयालु, सदाचार और शान्तस्वभाववाले ब्राह्मण, जैसा सर्वोत्तम और गुप्त धर्म को जानते हैं तैसा और नहीं जानते हैं ॥ ४ ॥ श्रीनारदजीने कहा कि—हे धर्मराज ! सकल लोकों के धर्म के कारणभूत, जन्म आदि विकाररहित भगवान् नारायणको नमस्कार करके उन के मुख से सुनाहुआ सनातनधर्म मैं तुमसे कहताहूँ ॥५॥ लोकों के कल्याण के निमित्त जो नारायण अपने नर नामक अंश के साथ, धर्म से दक्ष-कन्या के विषें अवतार धारण करके अब भी बदरिकाश्रम में तप कररहे हैं ॥ ६ ॥ हे

हरिः ॥ स्मृतं च तद्विदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति ॥ ७ ॥ सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ॥ अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवं ॥ ८ ॥ सन्तोषः समदृक्सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ॥ नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥ ९ ॥ अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पांडव ॥ १० ॥ श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ॥ सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥ ११ ॥ नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ॥ त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥ १२ ॥ संस्कारा यत्राविच्छिन्नाः स द्विजोजगाद यम् ॥ इज्याऽध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनां ॥ जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥ १३ ॥ विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः ॥ राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद्वा करादिभिः ॥ १४ ॥ वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकु-

राजन् ! सकल वेदमय भगवान् श्रीहरि, वेद जाननेवालों की स्मृति और जिस से मन को सन्तोष होता है वह सदाचरण धर्मका मुख्य प्रमाण है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! पाण्डुपुत्र ! सत्य, दया, तप (एकादशीव्रत आदि), शुद्धता, सहनशीलता, युक्त अयुक्त का विचार मन का निग्रह, बाहरी इन्द्रियों का दमन, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, यथोचित मन्त्र का जप, सरलता, सन्तोष, सब में समान दृष्टि रखनेवाले महात्माओं की सेवा करना, प्रवृत्त कर्म से धीरे धीरे निवृत्त होना, मनुष्यों को कर्म का फल उलटा मिलता है यह देखना, वृथा भाषण से बचना, आत्मविचार करना, अन्न आदि का सकल प्राणियों को यथोचित भागदेना, उन सकल प्राणियों में और विशेषतः मनुष्यों में आत्मबुद्धि और देवताबुद्धि रखना, महात्माओं के आश्रयभूत इन श्रीकृष्णजी का कीर्त्तन, श्रवण, स्मरण, सेवा, पूजन, नमस्कार, दासभाव, सखाभाव और आत्मनिवेदन करना, यह तीस लक्षणों वाला सकल मनुष्यों का उत्तम साधारण धर्म है, ऋषियों ने उत्तम प्रकार से कहा है, क्योंकि—इस के द्वारा सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥८॥ ९ ॥ १० ॥११॥१२॥ हे राजन् ! जहां गर्भाधान आदि संस्कार मन्त्रों के साथ निरन्तरहुए हैं और ब्रह्माजीने जिस को संस्कार युक्त कहाहै वही द्विजहै, जन्म से और आचार से शुद्धहुए द्विजों को (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को) यज्ञ करना, पढ़ना, और दान यह कर्म कहे हैं तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के कर्म भी कहे है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान और प्रतिग्रह यह छः कर्म ब्राह्मण को विहित हैं; तिन में पढ़ाना, यज्ञ कराना और प्रतिग्रह जीविका के निमित्त हैं क्षत्रिय को आपत्तिकाल में प्रतिग्रह को छोडकर सकल कर्म विहित हैं प्रजा का पालन करनेवाला राजा, ब्राह्मणों को छोडकर औरों से कर आदि लेकर आजीविका करे ऐसा कहा है ॥ १४ ॥ तैसे ही

लानुगः ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥ १५ ॥ वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम् ॥ विप्रवृत्तिश्चतुर्द्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥ १६ ॥ जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः ॥ ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ॥ १७ ॥ ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ १८ ॥ ऋतमुंछशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितम् ॥ मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात्प्रमृतं कर्षणम् स्मृतम् ॥ १९ ॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम् ॥ वर्जयेत्तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सितां ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २० ॥ शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षांतिरार्जवम् ॥ ज्ञानं दयाऽच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥

वैश्य सदा ब्राह्मणकुल का अनुगामी होकर खेती का कार्य, व्यापार, गोरक्षा और व्याज से आजीविका करे. शूद्र द्विजों की शुश्रूपा करे और स्वामी की सेवा करना ही उस की आजीविका का साधन है ॥ १५ ॥ हे राजन्! खेती का काम आदि अनेकों प्रकार की आजीविका, विनेमाँगे मिलाहुआ, प्रतिदिन धान्य की याचना करना और शिलोञ्छन × यह चार प्रकार की वृत्ति ब्राह्मण को विहित है और उस में पहिले पहिले की अपेक्षा आगे आगे की वृत्ति क्रम से श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ हे राजन्! नीचे के वर्ण का पुरुप, आपत्तिकाल के विना ऊपर के वर्ण के निमित्त कहीहुई वृत्ति को स्वीकार न करे और आपत्तिकालमें तो क्षत्रिय के सिवाय सब को सब वृत्तियें विहित हैं परन्तु क्षत्रिय आपत्ति काल में भी प्रतिग्रह को छोड़कर अन्य वृत्तियों को स्वीकार करे ॥ १७ ॥ हे धर्मराज! मनुष्य, ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत और सत्यानृत, इन में से चाहें जौनसी वृत्ति से आजीविका करे परन्तु चाहें कैसा ही समय आपड़े तथापि श्वानवृत्ति से कदापि निर्वाह न करे।१८। हे राजन्! शिलोञ्छन का नाम ऋत कहा है, जो विना याचना करे मिले उसको अमृत कहते हैं, नित्य याचना करने का नाम मृत है, खेती के काम को प्रमृत कहते हैं, वाणिज्य (व्यापार) को सत्यानृत कहते हैं और नीच की सेवा करने का नाम श्वानवृत्ति है, निन्दित होने के कारण श्वानवृत्ति, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को सदा त्यागना चाहिये, क्योंकि–ब्राह्मण सर्ववेदमय है और राजा सकलदेवमय है ॥ ॥ १९ ॥ २० ॥ हे राजन्! मन को वशमें रखना, बाहरी इन्द्रियों को विपयों की ओर जाने से रोकना, तप, शुद्धता, सन्तोप, क्षमा, मन की सरलता, विवेक,

× किसान के खेत काटकर लेजानेपर उस में रहेहुए कणों को लेकर उन से जीविका करने को 'शिल' और बाजार आदि में पड़ेहुए धान्यों के कणों को बीनकर उन से आजीविका करने को 'उञ्छ' कहते हैं।

शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्यागं आत्मजयः क्षमा।२१।ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥ २२ ॥ देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ॥ आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम् ॥ २३ ॥ शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ॥ अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषाऽनुकूलता ॥ तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥ २५ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः ॥ स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥ २६ ॥ कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च ॥ वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिम् ॥ २७ ॥ संतुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ॥ अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥ २८ ॥ या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा ॥ हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥ २९ ॥ वृत्तिः संकरजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत् ॥ अचौ-

दया, भगवन्निष्ठ होना और सत्य यह ब्राह्मणों के लक्षण हैं ॥ २१ ॥ तैसे ही शूरता, प्रभाव, धीरज, तेज, उदारता, मन को वश में रखना, क्षमा, ब्राह्मणों में भक्ति रखना, अनुग्रह और प्रजा का पालन करना यह क्षत्रिय के धर्म हैं ॥ २२ ॥ देवता, गुरु और अच्युत भगवान् के विषैं भक्ति, धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग के द्वारा सन्तुष्ट होना, आस्तिकता, नित्य उद्योग और चतुरता यह वैश्य के लक्षण हैं ॥ २३ ॥ और नम्रता, स्नान आदि से शुद्धता, निष्कपट भाव से स्वामी की सेवा करना, वेद मन्त्रों से रहित यज्ञ, चोरी न करना, सत्य बोलना और गौ ब्राह्मणों की रक्षा करना यह शूद्रों का लक्षण है ॥ २४ ॥ हे राजन्! पति की सेवा करना, पति के अनुकूल रहना, पति के बान्धवों का हितकारी कार्य करना और पति का जो नियम होय उसकाही आप भी आचरण करना, यह पतिव्रता स्त्रियों का लक्षण है और यही धर्म भी है ॥ २५ ॥ तैसे ही पतिव्रतास्त्री घर को झाड़े बुहारे और उस में लीपे, आप भी सौभाग्य के अलङ्कारों से भूषित होय, घर में के पात्रों को स्वच्छ रक्खे, और छोटे बड़े पदार्थ, विनय, इन्द्रियनिग्रह, सत्य, प्रिय वाक्य और प्रेम के द्वारा यथायोग्य समय पर पति की सेवा करे २६ ॥ २७ ॥ और तैसेही प्रारब्धानुसार मिली हुई वस्तु से सन्तुष्ट, विषय भोगोंमें आसक्ति रहित, चतुर, धर्म को जाननेवाली, प्रिय और सत्यभाषण करनेवाली, सर्वदा सावधान, शुद्ध और प्रेमयुक्त स्त्री अपने महापातकरहित पति की सेवा करे॥२८॥ पति ही मुख्य देवता है ऐसा माननेवाली जो स्त्री, श्रीहरि की सेवा करने में तत्पर जो लक्ष्मी उस की समान श्रीहरि की भावना से पति की सेवा करती है वह स्त्री जैसे वैकुण्ठ में श्रीहरि के साथ लक्ष्मी आनन्द से क्रीडा करती है तैसे, श्रीहरि के स्वरूप को प्राप्त हुए अपने पति के साथ उस ही वैकुण्ठ लोक में आनन्द से क्रीड़ा करती है ॥ २९ ॥ अब हीनवर्ण के

रांणामपापानामन्त्यजांतेऽवसायिनां ॥ ३० ॥ प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे ॥ वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत् ॥ ३१ ॥ वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् ॥ हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ॥ ३२ ॥ उप्यमानं वहु क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात् ॥ न कल्पते पुनः सूत्या उप्तं वीजं च नश्यति ॥ ३३ ॥ एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया ॥ विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत्कामविंदुभिः ॥ ३४ ॥ यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यंजकम् ॥ यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचरणनिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ नारद उवाच ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम् ॥ आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृ-

पुरुष से उत्तम वर्ण की स्त्री के विषैं उत्पन्न हुए प्रतिलोमज और उत्तम वर्ण के पुरुष से हीनवर्ण की स्त्री के विषैं उत्पन्न हुए अनुलोमज इन वर्णसङ्कर जातियों की वृत्ति कहने के अभिप्राय से नारदजी कहते हैं कि–हेराजन् ! चोरी और पाप न करनेवाले रजक (धोबी) चर्मकार (चमार) आदि अन्त्यज और चाण्डाल पुल्कस आदि अन्तेवसायी पुरुषों की कुलपरम्परा से चलीआनेवाली जो वस्त्र धोना आदि वृत्ति हो वही है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! युग २ में सत्व आदि गुणों के स्वभाव के अनुसार जिन पुरुषों का जो धर्म विहित हो वही उनको प्रायःइसलोक में और परलोक में सुखदायक होता है ऐसा वेद के देखनेवाले मुनियों ने कहा है ॥ ३१ ॥ हेराजन् ! स्वाभाविक वृत्ति से अपने कर्म का आचरण करके वर्त्ताव करनेवाला पुरुष, आगे को धीरे २ उन स्वाभाविक कर्मों का त्याग करके निर्गुण अवस्था को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ हेराजन् ! प्रतिवर्ष बोयाजानेवाला खेत जैसे किसी समय में निःसत्व होकर धान्य उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता है और उस में बोयाहुआ बीज भी जैसे नष्ट होजाता है तैसे ही वासनारूप से जिस में विषय वास कररहे हैं ऐसा चित्त, जैसे प्रज्वलित हुआ अग्नि घृत की विन्दुओं से शान्त न होकर घृत की मोटी धारा से शान्त होता है तैसे ही, विषयों के अतिभोग से उन विषयों में विरक्त होता हैं ३३ ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! जिस पुरुष का जो वर्ण को प्रकट करनेवाला लक्षण कहा है, वह लक्षण अन्य वर्णों के पुरुषों में यदि देखने में आवे तो वह अन्य वर्ण का पुरुष भी उस लक्षण के निमित्त से (अर्थात् कर्म करके) उस वर्ण का है ऐसा समझे ॥ ३५ ॥ इति सप्तम स्कन्ध में एकादश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारदजी कहते हैं कि–हे धर्मराज ! गुरु के घर वास करनेवाला ब्रह्मचारी इन्द्रियों को वश में करके, मैं नीच हूँ ऐसा मानकर दास की समान गुरु का हित कारी कार्य करे और

ढसौहृदः ॥ १ सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् ॥ उभे संध्ये च यतवाग् जपन् ब्रह्म समाहितः ॥ २ ॥ छन्दांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत्सुयंत्रितः ॥ उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥ ३ ॥ मेखलाजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून्॥ बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम् ।.४॥ सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत् ॥ भुंजीत यद्यनुज्ञातो नो चेदुपवसेत्क्वचित् ॥ ५ ॥ सुशीलो मितभुग् दक्षः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥ यावदर्थं व्यवहरेत्स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥ ६ ॥ वर्जयेत्प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः ॥ इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥ ७ ॥ केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यंजनादिकम् ॥ गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनोयुवा ॥ ८ ॥ नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान् ॥ सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ॥ ९ ॥ कल्पयित्वात्मना यावदाभासमिदमीश्वरः ॥ द्वैतं तावन्न विरमेत्ततो ह्यस्य विपर्ययः ॥ १० ॥

गुरु में अत्यन्त दृढ़ प्रेम करे ॥ १ ॥ सायङ्काल और प्रातःकाल के समय गुरु, अग्नि, सूर्य और देवताओं में श्रेष्ठ विष्णुभगवान् का पूजन करे; अन्तःकरण को एकाग्र करके गायत्री का जप एवं त्रिकालसन्ध्या करे, उस में सायङ्काल और प्रातःकाल की सन्ध्या के समय मौन धारण करेरहै ॥ २ ॥ तथा गुरु यदि बुलावें तो सावधानी के साथ उन से वेद का अध्ययन करे और अध्ययन के आरम्भ में तथा अन्त में गुरु के चरणों को मस्तक से नमस्कार करे ॥ ३ ॥ हाथ में कुशा धारण करके मेखला, कृष्णमृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डलु और यज्ञोपवीत को शास्त्र में कहीहुई रीति के अनुसार धारण करे ॥ ४ ॥ तथा प्रातःकाल और सन्ध्याकाल के समय भिक्षा के निमित्त विचरकर वह भिक्षा गुरु को समर्पण करे और वह आज्ञा दें तो उस को भोजन करे और यदि कदाचित् आज्ञा न दें तो उपवास करे ॥ ५ ॥ तैसे ही सुशील, मित भोजन करनेवाला, श्रद्धायुक्त और जितेन्द्रिय होकर, स्त्री और स्त्रियों के वशीभूत पुरुषों के साथ अपना कार्य पूर्ण होनेयोग्य ही व्यवहार रक्खे ॥ ६ ॥ जो गृहस्थ नहीं है ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाला पुरुष स्त्रियों की वार्त्ता करना भी छोड़देय, क्योंकि—इन्द्रियें बड़ी बलवान् हैं वह जितेन्द्रिय पुरुषों के मन को भी बलात्कार से हरलेती हैं ॥ ७ ॥ तैसे ही तरुणपुरुष, अपने केश कढ़वाना, शरीर दबवाना और उबटना आदि कराना यह कदापि गुरु की स्त्री अथवा अन्य तरुण स्त्रियों से न करावे ॥ ८ ॥ क्योंकि—स्त्री निःसन्देह अग्निरूप है और पुरुष घृत का घड़ारूप है, तिससे एकान्त में प्रत्यक्ष अपनी कन्या के साथ भी सम्भाषण आदि व्यवहार न करे और एकान्त के सिवाय भी अपना कार्य पूर्ण होनेमात्रही उस के कथन को करे ॥ ९ ॥ हेधर्मराज ! स्वरूप साक्षात्कार के द्वारा, यह देह और इन्द्रियें आदि सब आभासमात्र है, ऐसा निश्चय करके जिससमय पर्यन्त यह जीव स्वतन्त्र नहीं होताहै तबतक

एतत्सर्वं गृहस्थस्य समाम्नातं यतेरपि ॥ गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥ ११॥अंजनाभ्यंजनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषं मधु ॥ स्रगन्धलेपालंकारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ॥ १२ ॥ उषित्वैवं गुरुकुले द्विजोऽधीत्यावबुध्य च ॥ त्रयीं सांगोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम् ॥ १३ ॥ दत्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः ॥ गृहं वनं वा प्रविशेत्प्रव्रजेत्तत्र वा वसेत् ॥ १४ ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् ॥ भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥१५॥एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ॥ चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १६ ॥ वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसंमतान् ॥ यानातिष्ठन्मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहांजसा ॥ १७ ॥ न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः॥

'यह पुरुष है और यह स्त्री है इत्यादि' भेदबुद्धि नष्ट नहीं होती है और उस भेदबुद्धि के द्वारा विषयों का चिन्तवन करने से जीवको उपभोग करने की बुद्धि उत्पन्न होती है, इसकारण त्याग ही करना चाहिये ॥ १० ॥ छठे श्लोक से लेकर कहेहुए यह सकल धर्म, गृहस्थ को और यति को भी विहित ही हैं परन्तु ऋतुकाल में (मासिक धर्म होनेपर) स्त्री के विषैं गमन करनेवाले और उस से उत्पन्नहुए पुत्र आदि की रक्षा करने में व्यग्र रहने वाले गृहस्थ कोही गुरु की जीविका चलाने का विकल्प है अर्थात् यदि समर्थ होयतो गुरुकी जीविका चलावे और असमर्थ होयतो न चलावे ॥ ११ ॥ तैसे ही जिन गृहस्थों ने व्रत धारण कराहो वह-शरीरपर तेल मलना, शिर में तेलडालना शरीर दबवाना, स्त्री का सेवन, स्त्रियों के चित्र (तसवीर) आदि बनाना, मांस और मद्यका सेवन करना, माला धारणकरना, चन्दनका लेप करना और शरीरपर आभूषण धारण करना, यह सब त्यागदेय ॥ १२ ॥ इसप्रकार द्विज गुरु के घर वास करके अपने अधिकारके अनुसार यथाशक्ति शिक्षा आदि अंग और उपनिषदों सहित तीनों वेदों का अध्ययन करके उन के अर्थ का विचार करे ॥ १३ ॥ और तदनन्तर यदि शक्ति होय तो गुरुको अभीष्टवर (गुरुदक्षिणा) देकर उन के आज्ञा देनेपर गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम अथवा संन्यास आश्रम को स्वीकार करे या नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर गुरुके घर में ही वासकरे ॥ १४ ॥ और अग्नि, गुरु, आत्मा एवं सकल प्राणियों में यदि वास्तव में अधोक्षज भगवान् प्रविष्ट नहीं हैं तथापि अपने आश्रय से रहनेवाले जीवों के साथ वह उन में प्रविष्ट हैं ऐसा देखे ॥ १५ ॥ हेराजन् ! इसप्रकार आचरण करनेवाला ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, यति अथवा गृहस्थ, अपरोक्ष ज्ञानयुक्त होकर परब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ अब ऋषियों के कहेहुए वानप्रस्थ के धर्म मैं कहता हूँ, जिन धर्मों का इसलोक में आचरण करनेवाला मुनि, अनायास ही महर्लोक में जाताहै ॥ १७॥ हे राजन् !

अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुताहरेत् ॥ १८ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशान्निर्वपेत्कालेनोदितान् ॥ लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥ १९ ॥ अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाऽद्रिकंदरां ॥ श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयं ॥ २० ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि जटिलो दधेत् ॥ कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥ २१ ॥ चरेद्वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः ॥ द्वावेकं वा यथा बुद्धिर्न विपद्येत कृच्छ्रतः ॥ २२ ॥ यदाऽकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाऽथवा ॥ आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकं ॥ २३ ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य संन्यस्याहंममात्मतां ॥ कारणेषु न्यसेत्सम्यक् संघातं तु यथार्हतः ॥ २४ ॥ खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् ॥ अप्स्वसृक् श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवं ॥ २५ ॥ वाचमग्नौ सवक्तव्या-

वानप्रस्थाश्रमी पुरुष, जोती हुई भूमि से उत्पन्नहुए (चावल आदि) भक्षण न करे, विना जुतीहुई भी भूमि में उत्पन्न होकर पकने के समयसे पहिले ही पकजानेवाले (फलमूलादि) भक्षण न करे तैसे ही अग्निपर पकायेहुए और कच्चे भक्षण न करे किन्तु केवल सूर्य की किरणों से पकेहुए फलादिक ही भक्षण करे ॥ १८ ॥ वह वनके नीवार आदि धान्यों के द्वारा नित्य जो चरु पुरोडाश आदि उनका निर्वाप करे तथा नवीन२ अन्न प्राप्त होनेपर पहिले इकट्ठे करके रक्खेहुए अन्नका त्याग करदेय ॥ १९ ॥ और केवल अग्निकी रक्षा करने के निमित्तही पर्णकुटी का अथवा पर्वतकी गुफाका आश्रय करे और आप तो शीत, वायु, अग्नि, मेघ और सूर्य के ताप का सहन करतारहे ॥ २० ॥ जटा धारण करनेवाला वह, केश, रोम, नख, डाढ़ी मूँछ, मल, कमण्डलु, कृष्णमृगछाला, दण्ड और वृक्षकी छाल को धारण करके अग्नि के निमित्त स्रुवा आदि पात्र धारण करे ॥ २१ ॥ और तपके क्लेश से बुद्धिका नाश न हो, ऐसी रीति से वह मुनि, बारह, आठ, चार दो अथवा एक सम्वत्सर (वर्ष) पर्यन्त वानप्रस्थधर्मों का आचरण करे ॥ २२ ॥ परन्तु वह वानप्रस्थाश्रमी पुरुष, व्याधि से अथवा वृद्ध अवस्था के कारण अपना कर्म करने में अथवा ज्ञानका अभ्यास करने में जब असमर्थ होय तब वह निरशन (अन्न त्याग) आदिव्रत को धारण करे ॥ २३ ॥ हेराजन् ! प्रथम अपने में अग्निका समारोप करके देह आदि के विषै के अहङ्कार और ममता बुद्धिका त्याग करे और अनन्तर अपने को कारणभूत आकाश आदि पञ्चमहाभूतों के विषैं यथोचित रीति से उत्तमताके साथ देहका लय करे २४ आकाश में शरीर के छिद्रों का, वायु में प्राणों का, तेज में उष्णता का, जल में रुधिर, श्लेष्मा (कफ) और पूय का तथा शेष रहेहुए अस्थि मांस आदि कठिन भागों का उत्पत्ति के अनुसार बुद्धिमान् पुरुष लय करे ॥ २५ ॥ हे धर्मराज ! भाषणसहित वाक् इंद्रिय

मिंद्रे शिल्पं करावपि ॥ पदानि गत्या वयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥ २६ ॥ मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत् ॥ दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचं ॥ २७ ॥ रूपाणि चक्षुषो राजन् ज्योतिष्यभिनिवेशयेत् ॥ अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत् ॥ २८ ॥ मनो मनोरथैश्चंद्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे ॥ कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममताक्रिया ॥ सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे ॥ २९ ॥ अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुं ॥ कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तत् ॥ ३० ॥ इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्रमवशेषितं ॥ ज्ञात्वाऽद्वयोऽथ विरमेद्दग्धयोनिरिवानलः ३१। इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ छ ॥ छ ॥ नारद उवाच ॥ कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ॥ ग्रामैकरात्रविधिना

का अग्नि के विषैं, ग्रहण करना आदि व्यापारों सहित हाथों का इन्द्र के विषैं गति सहित चरणों का विष्णुभगवान् में, रतिसहित उपस्थ इन्द्रिय का प्रजापति के विषैं, विष्ठा के त्यागरूप कर्मसहित गुदा इन्द्रिय का मृत्यु के विषैं, शब्दसहित श्रोत्र इन्द्रिय का दिशाओं के विषैं और स्पर्शसहित त्वचा इन्द्रिय का वायु के विषैं लय करे ॥ २६ ॥ २७ ॥ तैसे ही राजन् ! चक्षुइन्द्रियसहित रूपका सूर्य के विषैं, वरुणसहित रसना इन्द्रिय का रसरूपजल के विषैं और अश्विनीकुमारों सहित घ्राणइन्द्रिय का गन्धयुक्त पृथ्वी के विषैं लय करे ॥ २८ ॥ तैसे ही मनोरथों सहित मनका चन्द्रमा के विषैं, ज्ञानविषय सहित बुद्धिका ब्रह्माजी के विषैं, अहङ्कारसहित कर्मों का 'जिससे अहन्ता ममतारूप क्रिया होती है उन, रुद्रके विषैं, चेतना सहित चित्त का जीवके विषै और गुणों के कार्य्योंके कारण विकारको प्राप्त होनेवाले जीवका निर्विकार ब्रह्मके विषैंलय करे॥२९॥हे राजन् ! पृथ्वी का लय जलके विषैं,जल का तेज में, तेजका वायुमें,वायु का आकाशमें,तिस आकाश का अहङ्कारमें, तिसअहङ्कार का महत्तत्त्व में, तिस महत्तत्त्व का मायामें,और तिस माया का परमात्मा के विषैं लयकरे ॥३०॥ इसप्रकार सकल उपाधियों का लय होजाने से शेष रहाहुआ चिद्रूप आत्मा अविनाशीहै,ऐसा जानकर, 'जैसे अग्नि काठरूपउपाधिके भस्म होजानेपर दाह (जलाना) रूप व्यापारसे उपराम पाताहै'तैसे ही वानप्रस्थ अद्वैतरूप होकर सकल व्यापारों से विराम पावे ॥३१॥ इति सप्तम स्कन्ध में द्वादश अध्यायसमाप्त ॥*। नारदजी ने कहा कि–हे धर्मराम ! वानप्रस्थ धर्म का पालन करने में और आत्मविचार रूप विद्या का अभ्यास करने में जो असमर्थ हो वह पहिले कहे अनुसार अग्नि समारोप आदि की भावना करके निराहार आदि व्रत करना स्वीकार करे और जो समर्थ होय वह पहिले की अनुसार भावना करके देहमात्र को शेष रखकर अन्य सबों का विधि के साथ

निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥ १ ॥ बिभृयाद्यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दण्डलिंगादेरन्यत्किंचिदनापदि ॥ २ ॥ एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥ ३ ॥ पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये ॥ आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥ ॥ ४ ॥ सुप्तप्रबोधयोः संधावात्मनो गतिमात्मदृक् ॥ पश्यन्बंधं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥ ५ ॥ नाभिनन्देद् ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वाऽस्य जीवितम् ॥ कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम्॥६॥ नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकां ॥ वादवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कं च न संश्रयेत् ॥ ७ ॥ न शिष्याननुबध्नीत ग्रंथान्नैवाभ्यसेद्बहून् ॥ न व्याख्यामुपयुंजीत नारंभानारभेत्कंचित्

त्याग करे तथा किसी प्रकार की अपेक्षा न करके एक २ ग्राम में एक २ रात्रि रहता हुआ पृथ्वीपर विचरे ॥ १ ॥ यदि कदाचित् उस को वस्त्र धारण करना हो तो केवल गुह्यस्थान ढकने के निमित्त ही केवल कौपीन धारण करे और प्रैषोच्चारण से पहिले जो कुछ दण्ड आदि चिन्ह त्यागे हों उन को शीतज्वर आदि आपत्तियों के विना स्वीकार न करे ॥ २ ॥ और जिस का श्रीनारायण ही श्रेष्ठ आश्रय है, जो सकल प्राणियों का हितचिन्तन करता है और जो अपने स्वरूप में ही रमारहता है ऐसा भिक्षु किसी का भी आश्रय न करके भूमिपर इकलाही विचरता रहे ॥ ३ ॥ तैसे ही कार्य और कारण से पर अविनाशी आत्मा के विषैं यह विश्व कल्पना कराहुआ और कार्यकारणरूप प्रपञ्च में सर्वत्र परमात्मा है ऐसा देखै ॥ ४ ॥ हे राजन् ! सुषुप्ति अवस्था में आत्मतत्त्व तमोगुण से व्याप्त होता है, जाग्रत् और स्वप्न अवस्था में विक्षेपयुक्त होता है, केवल सन्धि के समय में ही तमोगुण और विक्षेप यह दोनों नहीं होतेहैं इसकारण निद्रा के आरम्भ में और जाग्रत् अवस्था के अन्त में आत्मस्वरूप की ओर ध्यान लगानेवाला यति, अपने तत्त्व को देखताहुआ, बन्ध और मोक्ष वास्तव में सत्य नहीं हैं किन्तु अविद्या के कल्पना करेहुए हैं ऐसा जानकर सर्वत्र परब्रह्म रूप आत्मा को देखे ॥ ५ ॥ तैसे ही देह के निःसन्देह होनेवाले मृत्यु और अनिश्चित जीवन की ओर को कुछ भी ध्यान न देताहुआ, जिस से जीवों की उत्पत्ति और लय होते हैं उस काल की ही केवल प्रतीक्षा करता रहै ॥६॥ तथा यति, आत्मवस्तु का वर्णन न करनेवाले शास्त्रों में आसक्त न होय, ज्योतिषविद्या आदि की वृत्तिसे आजीवका न करे, वितण्डा आदि वादों में समाप्त होनेवाले तर्कों का त्याग करे और दुराग्रह से वादी प्रतिवादियों में से किसी के भी पक्षका आश्रय न करे ॥ ७ ॥ तैसेही लोभ आदि दिखाकर आग्रह के साथ शिष्यमण्डली इकट्ठी न करे, बहुत से ग्रन्थों का अभ्यास न करे,

॥ ८ ॥ न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः ॥ शांतस्य समचित्तस्य बिभृ-
यादुत वा त्यजेत् ॥ ९ ॥ अव्यक्तलिंगो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् ॥ क-
विर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणां ॥ १० ॥ अत्राप्युदाहरंतीममितिहास
पुरातनम् ॥ प्रह्लादस्य च सम्वादं मुनेराजगरस्य च ॥ ११ ॥ तं शयानं
धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ॥ रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥ १२ ॥
ददर्श लोकान्विचरंल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ वृतोमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भग-
वत्प्रियः ॥ १३ ॥ कर्मणाकृतिभिर्वाचा लिंगैर्वर्णाश्रमादिभिः ॥ न विदन्ति
जना यं वै सोऽसाविति न वेति च ॥ १४ ॥ तं नत्वाऽभ्यर्च्य विधि-
वत्पादयोः शिरसा स्पृशन् ॥ विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥ १५॥
बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान्यथा ॥ वित्तं चैवोद्यमवतां भो-
गो वित्तवतामिह ॥ भोगिनां खलु देहोयं पीवा भवति नान्यथा ॥ १६॥

ग्रन्थों के ऊपर टीका न करे और कहीं भी मठ आदि बनाने की झञ्झट में न पड़े ।८। हेराजन्! शान्त और समानचित्त महात्मा यति का आश्रम प्रायः धर्म का आचरण करने के निमित्त नहीं होताहै तिससे वह दण्ड आदि आश्रम के चिन्हों को लोक संग्रहके निमित्त धारण करे चाहें त्याग देय ॥ ९ ॥ यति, मन में आत्मा के अनुसन्धान रूप स्वार्थ का प्रत्यक्ष करके, उस के सिवाय दूसरा कोई भी वर्ण आश्रम आदि का चिन्ह लोकों को स्वरूप से न दिखावे और अपने आप ज्ञानी तथा वक्ता होकर भी लोक दृष्टि से लोकों को अपना स्वरूप उन्मत्त (बावले) और गूँगे की समान दिखावे ॥१०॥ हे धर्मराज! इस विषय में भी प्रल्हादजी और अजगर की वृत्ति से वर्त्ताव करनेवाले एक मुनि का सम्वादरूप एक पुराना इतिहास दृष्टान्त रूप से ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि–॥ ११ ॥ एक समय भगवान् के प्रिय प्रल्हादजीने लोककी दशा जानने की इच्छा से कुछएक मंत्रियों के साथ लोकों में विचरतेहुए कावेरी नदी के तटपर सह्य पर्वत के समीप, धूलि से मलिनहुए अङ्गों करके जिनका निर्मल तेज सर्वथा ढकाहुआ है ऐसे भूमिपर सोयेहुए एक मुनि को देखा ॥ १२ ॥ १३ ॥ तदनन्तर कर्म, आकार, वाणी, और वर्ण आश्रमादि के चिन्हों के द्वारा जिसको लोक, 'यह सिद्ध पुरुष है या नहीं है, ऐसा' नहीं जान ते हैं ॥ १४ ॥ उन परमभगवद्भक्त असुर प्रल्हादजी ने तिनमुनि का विधिविधान से पूजन करके चरणों में मस्तक रखकर नमस्कार करा और तत्त्व जानने की इच्छा करके उन से प्रश्न करने लगे कि– ॥ १५ ॥ हेब्रह्मन्! उद्योगी और उत्तमभोग करनेवाले पुरुष की समान तुम अपना शरीर पुष्ट धारण कररहेहो इसका क्या कारण है? हेभगवन्! उद्योगी पुरुषों को ही द्रव्य प्राप्त होताहै,द्रव्यवानोंको ही भोग प्राप्त होतेहैं और भोगों का उपभोग करनेवालों का ही शरीर पुष्ट होता है, भोग के विना नहीं होता है ऐसा इसलोक में प्रसिद्ध है॥१६॥

न ते शयानस्य निरुद्यमस्य ब्रह्मन्नु हार्थो यत एव भोगः ॥ अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः पीवा यतस्तद्वद नः क्षमं चेत् ॥ १७ ॥ कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः ॥ लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षितापि वा ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः ॥ स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयन्त्रितः ॥ १९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान्नन्वार्यसंमतः ॥ ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥ २० ॥ यस्य नारायणो देवो भगवान्हृद्गतः सदा ॥ भक्त्या केवलयाऽज्ञानं धुनोति ध्वांतमर्कवत् ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन्यथाश्रुतं ॥ संभावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छतां ॥ २२ ॥ तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया ॥ कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः ॥ २३ ॥ यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥

इसकारण हे ब्रह्मन्! उद्योग विनाकरे शयन करने वाले तुम्हारे पास निःसन्देह द्रव्य नहीं है, कि—जिसद्रव्य से उत्तमभोग मिलकर शरीर पुष्ट हो, तिससे हे विप्र! भोगरहित होनेपर भी इस तुम्हारे देहके पुष्ट होनेका कौन कारण है? यह यदि हमसे कहने योग्य होयतो कहिये ॥ १७ ॥ हे भगवन्! तुम विद्वान्, दक्ष और चतुर हो, लोकोंका मन प्रसन्न करनेवाली चमत्कारिक कथाभी तुम्हारे समीप हैं तथापि लोकोंके कर्म करने पर उन सबको तुम जानते हुएभी उदासीन वृत्ति धारण करके शयन ही कररहे हो इसका क्या कारण है? ॥ १८ ॥ नारदजी ने कहाकि—हे धर्मराज! दैत्यपति प्रल्हादजी के इसप्रकार प्रश्न करनेपर उनके भाषणरूप अमृत से वश में हुए वहमुनि मुसकुराते हुए कहने लगे ॥ १९ ॥ ब्राह्मणने कहा कि—हे असुरों में श्रेष्ठ! तुम ज्ञानी पुरुषों के सन्मान करेहुए होनेके कारण पुरुषों की प्रवृत्ति निवृत्तिके फल क्या हैं सोतुम निःसन्देह अन्तर्दृष्टि से जानते हो ॥ २० ॥ क्यों कि—जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करता है तैसेही भगवान् नारायणदेव, जिनकी एकतान भक्ति से हृदय में सर्वदा वास करते हुए अज्ञान का नाश करते हैं ॥ २१ ॥ तथापि हे राजन्! तुम्हारे प्रश्नोंके मैंने जैसेसुने हैं वैसे उत्तर देताहूँ, क्यों कि—अन्तःकरण की शुद्धि होने की इच्छा करने वाले पुरुषों के तुम माननीय हो ॥ २२ ॥ हे राजन्! विषयोंके द्वाराभी जिस को यथायोग्य रीति से परिपूर्ण करना कठिन है ऐसी जन्मोंके प्रवाह को उत्पन्न करने वाली तृष्णा ने, मुझे पहिले कर्म करानेके निमित्त लाकर नानाप्रकारकी योनियों में डालदिया था ॥ २३ ॥ तदनन्तर उसही तृष्णाने कर्मोंके द्वारा नानाप्रकार की योनियों में फिरनेवाले मुझे भगवान् की इच्छासे, धर्मके द्वारा स्वर्गका द्वार, अधर्मके द्वारा शूकर कूकर आदि योनियोंका द्वार, मिलेहुये धर्माधर्मके द्वारा इस मनुष्यलोकका द्वार और सबकी निवृत्तिके

॥ २४ ॥ अत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये ॥ कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥ २५ ॥ सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः ॥ मनःसंस्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान् स्वप्स्यामि संविशन् ॥ २६ ॥ इत्येतदात्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान् ॥ विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम् ॥ २७ ॥ जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाऽज्ञो जलकाम्यया ॥ मृगतृष्णामुपाधावेद्यथाऽन्यत्रार्थदृक्स्वतः ॥ २८ ॥ देहादिभिर्दैवतन्त्रैरात्मनः सुखमीहतः ॥ दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः ॥ २९ ॥ आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित् ॥ मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥ ३० ॥ पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ॥ भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ॥ ३१ ॥ राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुप-

द्वारा मोक्षकी द्वार ऐसे इस मनुष्य शरीर में पहुँचाया है ॥ २४ ॥ परन्तु यहाँभी सुखकी प्राप्ति और दुःखदूर होनेके निमित्त कर्मकरनेवाले स्त्री पुरुषोंको दुःखकी प्राप्तिरूप विपरीत भाव देखकर मैं उनकर्मों से बचा हूँ ॥ २५ ॥ हे राजन् ! सुखही जीवका स्वरूप है और सकल कर्मोकी निवृत्ति होनेपर वह अपने आप प्रकाशित होता है इसकारण मनके सङ्कल्प से होनेवाले भोग अशाश्वत (सदानहीं रहकर नाशवान्) हैं ऐसा देखकर मैं प्रारब्ध कर्मों का उपभोग करताहुआ कुछ उद्योग नकरके यहांशयन कररहा हूँ ॥ २६ ॥ हेराजन् ! इस प्रकार अपने में ही विद्यमान अपने सुख रूप पुरुषार्थ को भूलकर पुरुष दुःखके हेतु-भूत प्रपञ्च में पड़कर जन्म मरण आदि करके भयङ्कर देवता तिर्यक् आदि संसार को प्राप्त होताहै२७जैसे अज्ञानीपुरुष,जलसेउत्पन्नहुए सिवार तृण आदिसे ढकेहुए जलकोत्यागकर जलकी इच्छासे मृगतृष्णाके जलकीओरको दौड़ताहै तैसेही आत्मस्वरूपसे अन्यत्रपुरुषार्थ है ऐसा जाननेवाला पुरुष आत्मस्वरूप को त्यागकर विषयों की ओरको दौड़ता है ॥ २८॥ हे राजन् । दैव के अधीन रहनेवाले देह आदि के द्वारा अपने को सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति होने की इच्छा करते रहनेवाले दैवहीन पुरुषों के वारंवार करेहुए कर्म निष्फल ही होते हैं ॥ २९ ॥ और यदि कदाचित् कर्मों का फल हुआ तब भी उन को फलों से कोई लाभ नहीं होता है, क्योंकि—आध्यात्मिक आदि दुःखों से कभी भी न छूटे हुए मरणधर्मी पुरुष को दुःख से इकट्ठे करेहुए धनों से और उन धनों से प्राप्त हुए विषयों से कितनासा सुख मिलेगा ? ॥ ३० ॥ और यदि दुःख के बिना धन प्राप्त होगया तबभी उस धन से ही दुःख होता है, क्योंकि—अजितेन्द्रिय, द्रव्य के लोभी, सब विषय में सन्देह करनेवाले और भय के कारण पूरी २ निद्राभी न लेनेवाले धनी पुरुषों को भी भय आदि दुःख प्राप्त होते हैं यह मैं देखता हूँ ॥ ३१ ॥ हे असुरश्रेष्ठ !

क्षितः ॥ अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ॥ ३२ ॥ शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः ॥ यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात्स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ॥ ३३ ॥ मधुकारमहासर्पौ लोकेस्मिन्नो गुरूत्तमौ ॥ वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥ ३४ ॥ विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् ॥ कृच्छ्राप्तं मधुवद्वित्तं हत्वाऽप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥ ३५ ॥ अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् ॥ नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्ववान् ॥३६॥ क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा ॥ क्वचिद्भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित् ॥ ३७ ॥ श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम् ॥ भुञ्जे भुक्त्वाऽथ कस्मिंश्चिद्दिवा नक्तं यदृच्छया ॥ ३८ ॥ क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा ॥ वसेऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहं ॥

जीवित रहने की और धन की इच्छा करनेवाले पुरुषों को नित्य, राजा, चोर, शत्रु, कुटुम्बी पशुपक्षी, याचक और काल से तथा अपने से भी ÷ भय रहता है ॥ ३२ ॥ इस से अनर्थ का हेतु होने के कारण प्राण और द्रव्य की इच्छा न करे ऐसा कहते हैं—हे दैत्याधिपते ! शोक, मोह, भय, क्रोध, प्रीति, क्लीवता और श्रम आदि दुःख जिस से पुरुषों को होते हैं ऐसे प्राणों की और द्रव्य की इच्छा विवेकी पुरुषों को त्याग देना चाहिये ॥ ३३ ॥ हे असुरश्रेष्ठ ! इस लोक में मधुमक्खी और अजगर यह हमारे श्रेष्ठ गुरु हैं, क्योंकि—इन की शिक्षा से वैराग्य और सन्तोष को मैंने पाया है ॥ ३४ ॥ हे दैत्याधिपते ! अतिकष्ट से इकट्ठे करेहुए मधु (शहद) को जैसे मधुमक्षिकाओं का घात करके दूसरा ही कोई लेजाता है तैसे ही परमकष्ट से भी मिलेहुए धन को धन के स्वामी का प्राणान्त करके दूसराही लेजाता है इस कारण सकल विषयों से विरक्त रहे यह मैंने मधुमक्खियों से सीखा है ॥ ३५ ॥ कुछ चेष्टा न करके जो कुछ दैववश मिल जाय उस से ही मैं अजगर की समान सन्तुष्ट रहताहूँ और यदि कुछ न मिले तो भी मैं उस अजगर की समानही धीरज धरकर चिरकाल तक वैसे ही सोता रहता हूँ ॥ ३६ ॥ हे प्रल्हादजी ! कभी थोड़ा, कभी बहुत, कभी स्वादवाला, कभी स्वादरहित, कभी अनेकों गुणयुक्त, कभी गुणहीन, कभी श्रद्धा के साथ समर्पण कराहुआ, कभी सन्मान रहित प्राप्तहुआ और कभी भोजन के अनन्तर भी मिला हुआ अन्न मैं भक्षण करता हूँ और उस में से भी कभी दिन में प्राप्त हो, कभी भगवान्‌की इच्छासे रात्रि में प्राप्त हो मैं वह भक्षण करता हूँ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तैसे ही सूती वस्त्र, रेशमी वस्त्र, मृगचर्म, वृक्ष की छाल अथवा और भी जैसा वस्त्र प्राप्त होजाय उसको मैं पहिरलेताहूँ, क्योंकि-मैं प्रारब्धकर्म

÷ कहीं दूसरे को देकर भूल न जाऊँ, मैं खर्च करलूंगा तो कमती होजायगा, इत्यादि कारणों से साक्षात् अपने शरीर से भी धनवान् को भय होता है।

॥ ३९ ॥ क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु ॥ क्वचित्प्रासादपर्यंके कशिपौ वा परेच्छया ॥ ४० ॥ क्वचित् स्नातोऽनुलिप्तांगः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ॥ रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद्विभो ॥ ४१ ॥ नाहं निंदे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् ॥ एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥ ४२ ॥ विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे ॥ मनो वैकारिके हुत्वा तन्मायायां जुहोत्यनु ॥ ४३ ॥ आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात्सत्यदृङ्मुनिः ॥ ततो निरीहो विरमेत्स्वानुभूत्यात्मनि स्थितः ॥ ४४ ॥ स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ॥ व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान्हि भगवत्प्रियः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वाऽसुरेश्वरः ॥ पूजयित्वा ततः प्रीत आमंत्र्य प्रययौ गृहम् ॥ ४६ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसम्वादे यतिधर्मे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ७ ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा ॥ यांति देव-

के फल को भोगनेवाला सन्तुष्टचित्त हूँ ॥३९॥ तैसे ही मैं कभी भूमिपर, कभी तृणोंपर, कभी पत्तोंपर, कभी पत्थरपर, कभी भस्म में और कभी दूसरे की इच्छा से राजमहलों के पलँग के ऊपरके गद्देपर भी शयन करताहूँ॥ ४० ॥तथा हे राजन्! दूसरेकी इच्छासे कभी स्नान करके, शरीर को उबटन लगाकर और उत्तम वस्त्र, माला तथा आभूषण धारण कर रथ, हाथी और घोड़े के ऊपर चढ़ विचरता हूँ और कभी कभी नग्न होकर पिशाच की समान घूमता हूँ ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! स्वभाव से ही विषमता (भेदभाव) रखनेवाले पुरुष की मैं निन्दा अथवा प्रशंसा कदापि नहीं करता हूँ परन्तु उलटी विष्णुभगवान् के विषैं उन को सायुज्यमुक्ति प्राप्त हो इसप्रकार उन के कल्याण की ही इच्छा करता हूँ ॥ ४२ ॥ हे दैत्यश्रेष्ठ ! सत्यदृष्टि रखनेवाला मुनि, पहिले मन की वृत्ति में जातिरूप आदि भेदों की एकता करे, तदनन्तर उस मनोवृत्तिका 'जिस में देहात्मबुद्धि आदि की भ्रान्ति भासती है तिस' मन में, उस मन का सात्विक अहङ्कार में, उस अहङ्कार का महत्तत्त्व के द्वारा माया में और उस माया का आत्मानुभव में लय करे; तदनन्तर अपने अनुभव के द्वारा अपने स्वरूप में स्थित होकर और सकल कर्मों का त्याग करके विराम पावे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे प्रह्लादजी ! इसप्रकार मन्ददृष्टि से देखनेपर लोक और शास्त्र के विरुद्ध प्रतीत होनेवाला, अत्यन्त गुप्त अपना वृत्तान्त मैंने तुम से कहा क्योंकि–तुम भगवान् के भक्त हो ॥ ४५ ॥ नारदजी ने कहा कि–हे धर्मराज ! इसप्रकार दैत्यपति प्रल्हादजी ने मुनि से परमहंस के धर्म सुनकर, उन की पूजा करके, उन की आज्ञा ली और आनन्दित होकर तहाँ से फिर अपने घर को लौटकर चलेगए ॥ ४६ ॥ इति सप्तम स्कन्ध में त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ राजा युधिष्ठिर ने कहा कि–हे देवर्षे ! जिस का

कृपे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ गृहेष्ववस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन्यथोचिताः ॥ वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥ २ ॥ शृण्वन् भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथाऽमृतम् ॥ श्रद्दधानो यथाकालमुपशांतजनावृतः ॥ ३ ॥ सत्संगाच्छनकैः संगमात्मजायात्मजादिषु ॥ विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥ ४ ॥ यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पंडितः ॥ विरक्तो रक्तवत्तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥ ५ ॥ ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे ॥ यद्वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥ ६ ॥ दिव्यं भौमं चांतरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् ॥ तत्सर्वमुपभुञ्जान एतत्कुर्यात्स्वतो बुधः ॥ ७ ॥ यावद्भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम् ॥ अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥८॥ मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ॥ आत्मनः

मन घर में ही आसक्त है ऐसा मुझसमान गृहस्थी पुरुष, जिसप्रकार अनायास में इस पदवी को प्राप्त हो वह रीति मुझ से कहिए ? ॥ १ ॥ नारदजी ने कहा कि हे धर्मराज ! गृहस्थाश्रमी पुरुष, गृहस्थ आश्रम के योग्य कर्म, साक्षात् वासुदेवभगवान् के विषैं समर्पित हों इसप्रकार करके महर्षियों की सेवा करे ॥ २ ॥ तैसे ही वह भगवद्भक्त पुरुषों का समागम करके अपने आवश्यक कर्म करने के समय के सिवाय शेषबचे समय में भगवान् के अवतारोंकी कथारूपअमृतका वारंवारश्रवणकरतारहे ॥ ३ ॥ और निद्रामेंसेउठा हुआ पुरुष, जैसे स्वप्न में देखेहुए पुत्र आदि के विषय में आसक्ति को छोड़देता है तैसेही सत्सङ्ग के द्वारा आपही छूटते हुए—शरीर स्त्री पुत्र आदि के विषैंकी आसक्ति को धीरेधीरे त्यागदेय ॥ ४ ॥ हेराजन् ! विवेकी पुरुष, कार्य पूर्णहोने के योग्यही शरीर और घरसे सम्बन्ध रक्खे और भीतरी दृष्टि से उनगृह आदिसे विरक्त होकर तथा बाहरी दृष्टि से मैं गृह आदि के विषैं आसक्त हूँ, ऐसा दिखाकर लोकमें अपना मनुष्यत्व (आदमियत) रक्खे ॥ ५ ॥ और जाति, मातापिता, पुत्र, भ्राता तथा अन्य मित्रगणजोजो भाषणकरें और जिस२ विषयमें इच्छाकरें उसउसमें, स्वयं किसी से ममता करके आग्रह न करताहुआ सम्मतिदेय ॥ ६ ॥ हेराजन् ! स्वर्ग सम्बन्धी वर्षा आदि से उत्पन्नहोनेवाले धान्यआदि, भूमि सम्बन्धी मिलनेवाले सुवर्ण आदि और अकस्मात् प्राप्त होनेवाले द्रव्यआदि इन तीनों में से जो पदार्थ प्रारब्धसे प्राप्तहोजायँ उनसबका उपभोगकरके ज्ञानवान् पुरुष, पहिले कहेहुए कर्मआदिकरे ॥७॥ हेधर्मराज! अपना पेटभरनेमें जितना अन्न आदिलगे उतने के ऊपरही शरीरधारी पुरुष का स्वत्त्व (हक) है उस से अधिकपर जो आसक्ति रखता है वह चोर और दण्ड पाने का पात्र होता है ॥ ८ ॥ इस कारणही अपने घर में अथवा खेत में जाकर यदि कोई कुछ भक्षण करे तो उस को निषेध न करे ऐसा वर्णन करते हैं कि—हेराजन्

पुत्रवत्पश्येत्तैरेषामन्तरं कियत् ॥९॥ त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि ॥
यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥ १० ॥ आश्वाघान्तेवसायिभ्यः
कामान्संविभजेद्यथा ॥ अप्येकामात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः
॥ ११ ॥ जह्याद्यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद्वा पितरं गुरुं ॥ तस्यां स्वत्वं स्त्रियां
जह्याद्यस्तेन ह्यजितो जितः ॥ १२ ॥ कृमिविड्भस्मनिष्ठांतं क्वेदं तुच्छं
कलेवरं ॥ क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः ॥ १३ ॥ सिद्धैर्यज्ञा-
वशिष्टार्थैः कल्पयेद्वृत्तिमात्मनः ॥ शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात्
॥१४॥ देवानृषीन्नृभूतानि पितॄनात्मानमन्वहम् ॥ स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं
पृथक् ॥ १५ ॥ यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसंपदः ॥ वैतानिकेन

मृग, ऊँट, गधा, वानर, चूहा, सर्प पक्षी और मक्खियों को अपने पुत्र की समान ! माने, क्योंकि–वास्तव में देखाजाय तो उन में और अपने पुत्रों में कितनासा अन्तर है ॥ ९ ॥ इसी प्रकार गृहस्थाश्रमी पुरुष भी अतिकष्ट से धन को इकट्ठा करके धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग का सेवन न करे किन्तु दैव से जितना मिलजाय उतने से ही देशकाल के अनुसार धर्म, अर्थ और काम का सेवन करे ॥ १० ॥ तैसे ही श्वान,पतित और चाण्डाल पर्यन्त सकल प्राणियों को अपने भोग की वस्तु यथायोग्य रीति से बांट कर देवे और जिस वस्तु के विषय में यह मेरी है ऐसा मनुष्यों को अभिमान होता है उस अपनी एक स्त्री को भी अतिथि की सेवा के कार्य में लगावे ॥ ११ ॥ हेराजन्! जिस के निमित्त प्राणी अपने प्राण देदेतेहैं, पिताका अथवा गुरु का घातकरने में पीछे आगे को नहींदेखतेहैं उस स्त्री में का अपनेपने का अभिमान जिसने त्याग दियाहै निःसन्देह उस ने,औरों से जीतने में न आनेवाले परमेश्वर को जीत लियाहै ऐसांकहना अनुचितनहींहै ॥१२॥ हेराजन्! जिसका अन्तमें कीड़ा,विष्टा वा भस्मरूप परिणाम होनेवालाहै ऐसा यह तुच्छ शरीर कहाँ ? और उस शरीर के निमित्त ही जिस के ऊपर प्रेम होता है ऐसी स्त्री कहाँ और अपनी महिमा से आकाश को भी ढकडालनेवाला यह परमात्मा कहाँ ! इस कारण देह स्त्री आदिका अभिमान छोड़कर आत्मप्राप्ति का प्रयत्न करे ॥ १३ ॥ दैव-योग से मिलेहुए और पञ्चमहायज्ञ होकर शेष रहे अन्न आदि से उदर को भरकर शेष रहेहुए अन्न के ऊपर अपनेपने के अभिमान त्यागनेवाला ज्ञानी पुरुष, निवृत्ति मार्ग को सत्पुरुषों की गति को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ पहिले कहेहुए यज्ञ कराना आदि वृत्ति से मिलेहुए धन के द्वारा गृहस्थी पुरुष, प्रतिदिन हेधर्मराज ! देवता, ऋषि, मनुष्य, भूत, और पितर इन पञ्चमहायज्ञ के देवताओं का और स्वयं अपना तथा अन्तर्यामी परमात्मा का आराधनकरे ॥१५॥ और जब अधिकार आदि यज्ञ की सकल

विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ॥ १६ ॥ नह्यग्निर्मुखतोऽयं वै भगवान्सर्वयज्ञभुक् ॥ इज्यते हविषा राजन् यथा विप्रमुखे हुतैः ॥ १७ ॥ तस्माद्ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः ॥ तैस्तैः कामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु ॥ ॥ १८ ॥ कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः ॥ श्राद्धं पित्रोर्यथावित्तं तद्बन्धूनां च वित्तवान् ॥ १९ ॥ अयने विषुवे कुर्याद्व्यतीपाते दिनक्षये ॥ चन्द्रादित्योपरागे च द्वादशीश्रवणेषु च ॥ २० ॥ तृतीयायां शुक्लपक्षे नवम्यामथ कार्तिके ॥ चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा ॥ २१ ॥ माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे ॥ राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि ॥ २२ ॥ द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्र उत्तराः ॥ तिसृष्वेकादशी वासु जन्मर्क्षश्रवणयोगयुक् ॥ २३ ॥ त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः ॥ कुर्यात्सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः ॥ २४ ॥ एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देव-

---

सम्पत्ति में अपने पास होतो यज्ञ का वर्णन करनेवाले ग्रन्थ की विधि से अग्निहोत्र आदि करके पुरुष की आराधना करे ॥ १६ ॥ परन्तु यज्ञ के निमित्त आग्रह न करे, हे राजन्! ब्राह्मण के मुख में अर्पण करेहुए अन्न आदि पदार्थों से जैसी इन सकल यज्ञों के भोक्ता भगवान् की पूजा होती है वैसी अग्निरूप मुख में समर्पण करीहुई होम की सामग्री से नहीं होती है ॥ १७ ॥ तिस से ब्राह्मण, पञ्चमहायज्ञ, देवता, मनुष्य और पशु आदिकों में तिन२ के चाहना करेहुए विषयों से इन अन्तर्यामी परमात्माका ही तुम यथाशक्ति पूजन करते रहो, और उन में भी ब्राह्मणों के अनन्तर औरों का पूजन करने का क्रम रक्खो ॥ १८ ॥ धनवान् द्विज, अपने धन के अनुसार भाद्रपद मास में माता पिता का और उन के बान्धवों का कृष्णपक्ष में महालय नामक श्राद्ध करे ॥ १९ ॥ तैसे ही अयन, विषुव, व्यतीपात, दिनक्षय, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, द्वादशी, श्रवण आदि तीन नक्षत्र, वैशाखशुक्ल तृतीया, कार्त्तिकशुक्ल नवमी, हेमन्तऋतु और शिशिर ऋतु में के चार अष्टक, माघशुक्ल सप्तमी, मघा और पूर्ण चन्द्रमा से युक्त पूर्णिमा का योग आने पर तथा मास का नाम डालनेवाले चित्रा, ज्येष्ठा एवं विशाखा आदि नक्षत्रों का और पूर्ण चन्द्रमा का अथवा न्यून चन्द्रमा से युक्त पूर्णिमा का योग आनेपर, अनुराधा, श्रवण, उत्तरा, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपदा इन में से किसी भी नक्षत्र के द्वादशी के दिन आनेपर और इनतीन नक्षत्रों का एकादशी के दिन योग आनेपर और जन्म नक्षत्र तथा श्रवण के दिन का योग आनेपर गृहस्थी पुरुष पिता आदि का श्राद्ध करे ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे धर्मराज ! यह कहेहुए सकल काल पुण्यकारी कर्मों का अनुष्ठान करने के योग्य हैं, क्योंकि—वह स्वयं कल्याण के बढ़ानेवाले हैं, इन में पुरुष सकल प्रयत्नों करके स्नानदान आदि पुण्य कर्म करे तो ही उस की सफलता होती

द्विजार्चनम् ॥ पितृभूतनृभूतेभ्यो यद्दत्तं तद्ध्यनश्वरम् ॥ २५ ॥ संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा ॥ प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप ॥ ॥ २६ ॥ अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेयआवहान् ॥ स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥ २७ ॥ बिंबं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम् ॥ यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपोविद्यादयान्वितम् ॥ २८ ॥ यत्र यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम् ॥ यत्र गंगादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥ २९ ॥ सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत ॥ कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः ॥ ॥ ३० ॥ नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली ॥ वाराणसी मधुपुरी पंपा बिंदुसरस्तथा ॥ ३१ ॥ नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः ॥ सर्वे कुलाचला राजन् महेंद्रमलयादयः ॥ ३२ ॥ एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये ॥ एतान्देशान्निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ॥ धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥ ३३ ॥ हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै च-

है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इन अवसरों में स्नान, जप, होम, व्रत और देव ब्राह्मणों का पूजन करनेपर अथवा पितर, देवता, मनुष्य और भूतों को कुछ समर्पण करनेपर वह कर्म अक्षयफल देनेवाला होता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! तैसे ही स्त्री के पुंसवन आदि संस्कारों का, सन्तान के जातकर्म आदि संस्कारों का तथा अपने यज्ञदीक्षा आदि संस्कारों का काल, दहन आदि प्रेतक्रिया, साम्वत्सरिक श्राद्ध और कल्याण के निमित्त करेहुए अन्य भी कर्म, इन में पुरुष, तिन २ कर्मों को उत्तम प्रकार से करके पुण्य प्राप्त करे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! अब तुम से धर्म आदि के विषय में कल्याणकारी देशों का वर्णन करूँगा–जिनके विषैं यह सम्पूर्ण चराचर विश्व रचाहुआहै उन भगवान् की केवल मूर्त्तिरूप सत्पात्रही जहां प्राप्त होय वह देश अतिपुण्यकारी होताहै तैसेही तप, विद्या औरदया से युक्त ब्राह्मणोंका कुल जहां वास करता होय उस देशको भी पुण्यकारी जाने।२७।२८। तथा जहां श्रीहरि की आराधना होती है वह देश पुण्यकर्म्मों का स्थान होता है, तैसे ही पुराणो में प्रसिद्ध गङ्गा आदि नदियें जहांहैं, पुष्कर आदि सरोवर, उत्तम पुरुषों के आश्रय करेहुए क्षेत्र, तथा कुरुक्षेत्र, गया प्रयाग, पुलहाश्रम, नैमिषारण्य, फाल्गुनक्षेत्र सेतु, प्रभास, द्वारका, वाराणसी, मथुरा, पम्पासर, विन्दुसरोवर, बदरिकाश्रम, नन्दा, सीता और श्रीरामचन्द्रजीके आश्रम आदि, महेन्द्र और मलय आदि सकल कुलपर्वत और जहाँ श्रीहरि की स्थिर मूर्तियें हैं वह देश, यह सब हेराजन् ! पुण्यकारी स्थान हैं, तिससे कल्याण की इच्छा करनेवाला पुरुष, वारंवार इन स्थानों का सेवन करे, क्योंकि–इन स्थानों में पुरुषों का कियाहुआ धर्म सहस्रगुणे से भी अधिक फल देनेवाला होता है ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अब पात्र का वर्णन करते हैं कि–हेभूपते ! पात्र

राचरम् ॥ पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ॥ ३४ ॥ देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु ॥ राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाच्युतः ॥ ३५ ॥ जीवराशिभिराकीर्ण अंडकोशांघ्रिपो महान् ॥ तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥ ३६ ॥ पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः ॥ शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥ ३७ ॥ तेष्वेषु भगवान् राजंस्तारतम्येन वर्तते ॥ तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप ॥ त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥ ३९ ॥ ततोऽर्चायां हरिं केचित्संश्रद्धाय सपर्यया ॥ उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥ ४० ॥ पुरुषेष्वपि राजेंद्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥ ४१ ॥ नन्वस्य ब्राह्मणा राजन् कृ-

जाननेवालों में श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषों ने एक श्रीहरिरूप पात्रही इस लोक में कहा है, क्योंकि यह सम्पूर्ण चराचर विश्व तन्मय है ॥ ३४ ॥ हेराजन्! देवता, ऋषि, सिद्ध और सनकादि ब्रह्मपुत्र आदिकों के होतेहुए भी तुम्हारे राजसूय यज्ञ में आगे पूजन करने के विषय में भगवान् अच्युतही सत्पात्र मानेगये थे ॥ ३५ ॥ क्योंकि—जीवों के समूहों से व्याप्त ब्रह्माण्डकोशरूप वृक्ष का मूलकारण अच्युत ही हैं इसकारण उन की पूजा करने पर मानों सकल जीवों की और आत्मा की तृप्ति होजाती है ॥ ३६ ॥ हेराजन्! मनुष्य पशु, पक्षी, ऋषि और देवता यह पुर (शरीर) इन्हों ने उत्पन्न करे हैं और इन सकल पुरों में अन्तर्यामीरूप से और प्रत्येक अंश करके यह स्वयं निवास करते हैं, इसकारण यह 'पुरुष' नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ३७ ॥ हेराजन् ऐसे इन मनुष्य आदि शरीरों में भगवान् न्यूनाधिकभाव से अर्थात् पशुपक्षी आदिकों के शरीरों की अपेक्षा पुरुष शरीरों में अधिक अंश से रहते हैं इसकारण पुरुष ही पात्र है और इस में भी जिसका जिस में जैसा २ तपस्या आदि ज्ञान का अंश अधिक २ अनुभव में आता है तैसा२वह २ पुरुष अधिक २ सत्पात्र है ऐसा समझे ॥ ३८ ॥ हेराजन्! त्रेता आदियुगों में उन मनुष्य आदिकों में एक से एक का अपमान करने की बुद्धि उत्पन्न हुई देखकर विद्वान् पुरुषों ने पूजा के निमित्त श्रीहरि की प्रतिमा कल्पना करी है ॥ ३९ ॥ तब से कितने ही पुरुष प्रतिमा के ऊपर पूर्ण श्रद्धा रखकर उत्तमप्रकार की पूजा की सामग्री से श्रीहरिकी पूजा करते हैं तथापि पुरुष द्वेषी लोकों के प्रतिमा की पूजा करनेपर भी उन को वह पुरुषार्थ देनेवाली नहीं होती है ॥ ४० ॥ अब पुरुषों में की जाति तप आदि करके विशेषता दिखाते हैं—हेराजेन्द्र! पुरुषों में भी जो तप, विद्या और सन्तोष के द्वारा श्रीहरि के वेदरूप शरीर को धारण करताहै वह ब्राह्मण ही सत्पात्र है ऐसा तत्त्वज्ञानी कहतेहैं ॥ ४१ ॥

णस्य जगदात्मनः ॥ पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥ ४२ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णये चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥
नारद उवाच ॥ कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठा नृपापरे ॥ स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥ १ ॥ ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता ॥ दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्यो यथाऽर्हतः ॥ २ ॥ द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरं ॥ ३ ॥ देशकालोचितश्रद्धाद्रव्यपात्रार्हणानि च ॥ सम्यग्भवंति नैतानि विस्तरात्स्वजनार्पणात् ॥ ४ ॥ देशे काले च संप्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् ॥ श्रद्धया विधिवत्पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयं ॥ ५ ॥ देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च ॥ अन्नं संविभजन्पश्येत्सर्वं तत्पुरुषात्मकम् ॥ ६ ॥ न दद्यादामिषं श्राद्धे

क्योंकि–हेराजन् ! अपने चरण के रज से त्रिलोकी को पवित्र करनेवाले ब्राह्मण निःसन्देह इन जगदात्मा श्रीकृष्ण के भी परमदेव हैं फिर हम समानों के देवता हैं इसका तो कहना ही क्या ! ॥४२॥ इति सप्तम स्कन्ध में चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥
श्रीनारदजी कहतेहैं कि–हे राजन् ! कितने ही ब्राह्मण कर्मनिष्ठ होतेहैं कोई तपोनिष्ठ होते हैं, कोई वेद पढ़ने में तत्पर होते हैं, कोई पढ़ाने में तत्पर होते हैं, कोई ज्ञान का अभ्यास करने में तत्पर होते हैं और कोई योगाभ्यास करने में तत्पर होते हैं ॥ १ ॥ उन में मोक्षरूप फल प्राप्त होने की इच्छा करनेवाला पुरुष, पितरों के उद्देश्य से देनेयोग्य जो कव्य अन्न और देवताओं के उद्देश्य से देनेयोग्य जो हव्य अन्न सो ज्ञानी ब्राह्मण को देय, ऐसा ब्राह्मण न मिले तो योग्यता देखकर औरों को भी देय ॥ २ ॥ तिस में देवकार्य में दो ब्राह्मण और पितृकार्य में तीन ब्राह्मण बैठाकर अथवा दोनों कार्यों में एक एक ब्राह्मण को ही बैठाकर भोजन करावै, अधिक ब्राह्मणों को भोजन कराने में यदि यजमान समर्थ होय तो भी वह श्राद्ध में ब्राह्मणों का विस्तार न करे ॥ ३ ॥ क्योंकि–हे राजन् ! जामाता को यदि निमन्त्रण दियाजायगा तो उस के पिता आदि को कैसे निषेध कियाजायगा ? इसप्रकार स्वजनों को निमन्त्रण करनेपर विस्तार होकर देश, काल, उस के अनुकूल श्रद्धा, अन्न आदि पदार्थ, पात्र और पूजन ठीक २ नहीं होसक्ता है इसकारण विस्तार न करे ॥ ४ ॥ किन्तु देश और काल प्राप्त होनेपर मुनियों के सेवन करनेयोग्य व्रीहि आदि अन्न श्रीहरि को समर्पण करके श्रद्धा के साथ विधिपूर्वक सत्पात्र ब्राह्मणों को अर्पण करनेपर वह मोक्षदायक और मनोरथों को पूर्ण करनेवाला होता है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! देवता, ऋषि, पितर, भूत और स्वयं अपने को तथा स्वजनों को उत्तमप्रकार से विभाग करके देय तथा उन सब देवादिकों को ईश्वरस्वरूप हैं ऐसा समझे ॥ ६ ॥ हे

न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् ॥ मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥ ७ ॥ नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ॥ न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥ ८ ॥ एके कर्ममयान्यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः ॥ आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति ॥ एष माकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृप् ध्रुवं ॥ १० ॥ तस्माद्दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ॥ संतुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥ ११ ॥ विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ॥ अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्त्यजेत् ॥ १२ ॥ धर्मबाधो विधर्मः स्यात्परधर्मोऽन्यचोदितः ॥ उपधर्मस्तु पाखण्डो दंभो वा शब्दभिच्छलः ॥ १३ ॥ यस्त्विच्छया कृतः पुं-

राजन् ! धर्म के तत्त्व को जाननेवाला पुरुष, श्राद्ध में मांस अर्पण न करे और आप भी भक्षण न करे, क्योंकि—मुनियों के सेवन करनेयोग्य व्रीहि आदि अन्नों से जैसे पितर उत्तम प्रकार से तृप्त होतेहैं तैसे पशुहिंसा से नहीं होतेहैं ॥७॥ हेराजन् ! श्रेष्ठधर्मकी इच्छाकरनेवाले पुरुष, शरीर, वाणी और मन से हानेवाली जीवहिंसा का यदि त्याग करदें तो इस की समान दूसरा कोई भी सर्वोत्तम धर्म नहीं है ॥ ८ ॥ इस कारण ही यज्ञ के जाननेवालों में श्रेष्ठ कितने ही निष्काम ज्ञानी पुरुष, आत्मज्ञान से प्रज्वलितहुई मनोनिग्रहरूप अग्नि में कर्ममय यज्ञ का हवन करते हैं अर्थात् मनोनिग्रह करके उस में विघ्नकारी होनेवाले बाह्यकर्मोंका त्याग करते हैं ॥ ९ ॥ क्योंकि—सबही प्राणी, पशुपुरोडास आदि द्रव्यों से यज्ञ करनेवाले पुरुष को देखकर, आत्मतत्त्व को न जाननेवाला, अपने प्राणों की तृप्ति करनेवाला और निर्दयी यह पुरुष, मेरा वध करेगा ऐसा मानकर भय खाते हैं ॥ १० ॥ तिस कारण प्रारब्ध करके प्राप्तहुए सात्त्विक अन्न करके ही, धर्म को जाननेवाला पुरुष, प्रतिदिन सन्तोष के साथ नित्य नैमित्तिक कर्म करे ॥ ११ ॥ तथा विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल इन पांच अधर्म की शाखाओं को, धर्म का जाननेवाला धार्मिक पुरुष अधर्म की समान त्यागदेय ॥ १२ ॥ धर्म बुद्धि से जिस का अनुष्ठान करनेपर अपने धर्म में वाधा आती है वह विधर्म कहाता है, एक वर्ण को कहेहुए धर्म को दूसरा वर्ण स्वीकार करे इस को परधर्म कहते हैं; वेदविरुद्ध पुस्तक में कहा हुआ जो पाखण्ड धर्म वा दम्भ है उस को उपधर्म अर्थात् उपमा कहते हैं; शब्द का, वक्ता के अभिप्राय को छोड अपने मनगठित अर्थ करने का नाम छल है और चारों आश्रमों से निराले अवधूत आदि का सा आचरण करनारूप जो अधर्म तिस को पुरुष अपनी इच्छा से स्वीकार करलें तो वह आभास होता है, इन पांच प्रकार के अधर्मों का त्याग करे, अपने धर्म का अनुष्ठान करने के अनन्तर धर्म की वृद्धि करने के निमित्त भी परधर्म का

भिराभासो ह्याश्रमात्पृथक् ॥ स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशांतये । ॥ १४ ॥ धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाऽधनो धनम् ॥ अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥ १५ ॥ संतुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत्सुखम् ॥ कुतस्तत्कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥ १६ ॥ सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ शर्कराकंटकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥ १७ ॥ संतुष्टः केन वा राजन्न वर्त्ततापि वारिणा ॥ औपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद्गृहपालायते जनः ॥ १८ ॥ असन्तुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः ॥ स्रवंतींद्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥ १९ ॥ कामस्यांतं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात् ॥ जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥ २० ॥ पंडिता बहवो राजन् बहुज्ञाः संशयच्छिदः ॥ सदसस्पतयोऽप्येके असंतोषात्पतंत्यधः

आचरण न करे, क्योंकि - उन से कोई लाभ नहीं ऐसे आशयसे नारदजी कहते हैं कि- हे धर्मराज ! ब्राह्मण आदि स्वभाव करके कहाहुआ जो वेदाध्ययन आदि धर्म, वह किस के दुःख को नाश करने में समर्थ नहीं होगा ? ॥ १३ ॥ १४ ॥ तैसे ही धनहीन पुरुष धर्मार्थ अथवा शरीर धारण के निमित्त भी धन की इच्छा न करे, क्योंकि—अजगर की समान कुछ उद्योग न करनेवाले पुरुष को उस का प्रारब्धही चलानेवाला होता है ॥ १५ । तिस से सन्तोषी, इच्छारहित और अपने स्वरूप में रमनेवाले पुरुष को जो सुख होताहै वह विषयके लोभके कारण धनकी इच्छासे दशों दिशाओंमें को दौडनेवाले को कहांसे मिलेगा ? ॥१६॥ जैसे चरणमें उपानह(जूता)पहिरेहुए पुरुषको कंकड़ और कांटे आदिसे दुःख न होकर सुख होता है तैसे ही सर्वदा चित्त में सन्तोष रखनेवाले पुरुषको सबदिशा सुखमय होती हैं॥ १७॥इस कारण हे राजन् ! जलमात्रसे भी मनुष्य सन्तुष्ट क्यों न रहे ! यह मेरी समझ में नहीं आता हेराजन् ! उपस्थ इन्द्रिय के और रसना इन्द्रिय के विषय में लम्पट पुरुष कूकरकी समान 'दूसरे की इच्छानुसार' कार्य करनेलगता है १८ तैसेही असन्तुष्ट रहनेवाले ब्राह्मण का तेज 'वेदाध्ययन आदिसे उत्पन्न होनेवाला प्रभाव, विद्या, 'शास्त्रसे उत्पन्न हुआ ज्ञान' तप, 'व्रतउपवास आदि से उत्पन्न हुआ पुण्य' और सत्कीर्ति यह सब इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होने के कारण क्षीण होजाते हैं और विवेक भी नष्ट सा होजाता है ॥ १९ ॥ पुरुष की अन्नजल विषयक इच्छा की शान्ति, भूँख और प्यास की निवृत्ति होने से होती है और क्रोध की भी शान्ति उस क्रोध का फल जो हिंसा आदि उस की प्राप्ति होनेपर होती है परन्तु लोभ की शान्ति, दिशाओं को जीतकर और पृथ्वी का भोग करके भी नहीं होती है ॥ २० ॥ हेराजन् ! लौकिक न्याय और वैदिक न्याय को जानने वाले, दूसरों के सन्देह दूर करने वाले और सभाओं के अधिपति ऐसेभी कितने ही पाण्डित, असन्तोष के कारण नरक में

॥ २१ ॥ असंकल्पाज्जयेत्कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ॥ अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥ २२ ॥ आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दंभं महदुपासया ॥ योगांतरायान्मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ॥ २३ ॥ कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात्समाधिना ॥ आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥ २४ ॥ रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च ॥ एतत्सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यंजसा जयेत् ॥ २५ ॥ यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ॥ मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् । २६ ॥ एष वै भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ योगेश्वरैर्विमृग्यांघ्रिर्लोको वै मन्यते नरम् ॥ २७॥ षड्वर्गसंयमैकांताः सर्वा नियमचोदनाः ॥ तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ॥ ॥ २८ ॥ यथा वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति ॥ अनर्थाय भवेयुस्ते

पड़ते हैं ॥ २१ हेराजन् ! सङ्कल्प का त्याग करके काम (इच्छा) को जीते, काम के त्याग से क्रोधको जीते, विषयों में अनर्थबुद्धि रखकर लोभ को जीते और तत्त्व का विचार करके संसार के भय को दूर करे ॥ २२ ॥ आत्मानात्म के विवेक से शोक और मोह का त्याग करे, महात्मा सतोगुणी पुरुषों की सेवा करके दम्भ का त्याग करे, मौन धारण करके सांसारिक वार्त्ता आदि योग के विघ्नों को टाले और देह आदिकी चेष्टा को रोककर हिंसाका त्याग करे ॥ २३ ॥ तैसे ही जिन प्राणियों से अपने को भय उत्पन्न होता है उनकाही हित करके उन से होनेवाले भय को नष्ट करे, प्रारब्धवश प्राप्तहुए व्यर्थ मन की पीड़ा आदि दुःख को मन की समाधि से दूर करे, प्राणायाम आदि योगबल से शरीर से उत्पन्न होनेवाले दुःखों को दूर करे और सात्विक आहार आदि का सेवन करके निद्राका त्याग करे ॥ २४ ॥ तैसे ही सत्वगुण को बढ़ाकर रजोगुण और तमोगुण को जीते, मन को वशमें करके सत्वगुण को जीते, गुरु के विषैं भक्ति करनेवाला पुरुष, इन कहेहुए काम आदि सबको अनायास में ही जीतने को समर्थ होगा ॥ २५ ॥ हेराजन् ! साक्षात् ज्ञानरूपी दीपक देनेवाले भगवान् गुरु के विषैं 'यह मनुष्य हैं' ऐसी जिस की दुर्बुद्धि हो उसका अध्ययन(पढ़ना)आदि सब हाथीके स्नानकी समान निरर्थक होताहै २६ हेराजन्! प्रकृति और पुरुषके नियन्ता, योगेश्वरोंकेभी ध्यान करनेयोग्य चरणकमलोंवाले जो साक्षात् भगवान् वही यह गुरुहैं इसकारण केवल भ्रमसेही पुरुष इनको मनुष्य मानतेहैं। २७। हेराजन् ! सकल ही नियमों की विधि, छःइन्द्रियों के समूह को वश में करने में ही पर्यवसान पानेवाली हैं अर्थात् छःइन्द्रियों को वशमें करलिया मानों सकल ही नियमों का विधि पूर्वक पालन करलिया; परन्तु, ऐसा होनेपरभी यदि इन से योगसिद्धि न होयतो वह सब ही विधि केवल परिश्रम ही देनेवाली हैं ॥ २८ ॥ अर्थात् जैसे खेती आदि कर्म और उस के फल मोक्ष के साधन न होकर उलटे संसार के कारण होते हैं तैसे ही बहिर्मुख पुरुषों के

पूर्तमिष्टं तथाऽसतः ॥ २९ ॥ यश्चित्तविजये यत्तः स्यान्निःसङ्गोऽपरिग्रहः ॥ एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥ ३० ॥ देशे शुचौ समे राजन्संस्थाप्यासनमात्मनः ॥ स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वंग ओमिति ॥ ॥ ३१ ॥ प्राणापानौ सन्निरुंध्यात्पूरकुंभकरेचकैः ॥ यावन्मनस्त्यजेत्कामान्स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ३२ ॥ यतो यतो निःसरति मनः कामहतं भ्रमत् ॥ ततस्ततं उपाहृत्य हृदि रुंध्याच्छनैर्बुधः ॥ ३३ ॥ एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः ॥ अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिंधनवह्निवत् ॥३४॥ कामादिभिरनाविद्धं प्रशांताखिलवृत्ति यत् ॥ चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥३५॥ यः प्रव्रज्य गृहात्पूर्वं त्रिवर्गावपनात्पुनः ॥ यदि सेवेत तान्भिक्षुः स वै वांताश्यपत्रपः ॥ ३६ ॥ यैः स्वदेहः स्मृतो नात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मतात् ॥ तं एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः ॥ ३७ ॥

इष्टापूर्त + आदि कर्म परमार्थ के साधन नहीं होते हैं ॥ २९ ॥ हेराजन ! जो पुरुष चित्त को वशमें करने के निमित्त उद्यत हो वह किसी भी वस्तुका संग्रह न करके सकल संगों को त्याग संन्यास को ग्रहण करे और भिक्षा से प्राप्तहुआ अन्न परिमित भक्षण करके, इकला ही एकान्तस्थलका आश्रय करकेरहे॥ ३०॥ हेराजन्! वहएकान्त में शुद्ध और सरलस्थानोंमें स्थिर और समान अपना आसन बिछाकर उस के ऊपर शरीर को तिरछा न करके सुख से ॐकार का उच्चारण करताहुआ बैठे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर वह अपनी नासिका के अग्रभागपर दृष्टि लगाकर, जबतक अपना मन विषयों के सम्बन्ध से रहित हो तबतक पूरक कुम्भक और रेचक के द्वारा प्राण वायु तथा अपान वायु का उत्तम प्रकार से निरोध करे ॥ ३२ ॥ और विषयों के अपनी ओर को खैंचने के कारण भ्रमता हुआ मन जिधर जिधर को जाय तहां तहां से उस को पीछे को लौटाकर ज्ञानी पुरुष धीरे धीरे हृदय में स्थापनकरे । ३३॥ इसप्रकार निरन्तर अभ्यास करतेहुए यति का चित्त थोड़े ही कालमें, जैसे काष्ठरहितहुआ अग्नि शान्त होजाताहै तैसे ही शान्तिको प्राप्तहोताहै ३४ तदनन्तर विषयों से क्षोभको प्राप्तहुआ और जिस की सकल वृत्तियें शान्त होगई हैं तथा ब्रह्मसुख को प्राप्तहुआ वह चित्त फिर कभी भी विषयों में आसक्त नहीं होता है ॥ ३५ ॥ हे धर्मराज ! धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों के उत्पन्न होने का क्षेत्र ऐसे इस गृहस्थ आश्रम का त्याग करके जो संन्यास को ग्रहण करताहै और फिरभी जो भिक्षु, उन धर्म आदिकों का सेवन करता है वह निःसन्देह वमन करेहुए अन्नका भक्षण करनेवाला निर्लज्ज है ॥ ३६ ॥ और ऐसा होना कुछ अघटित नहीं है, क्योंकि—अपना शरीर आत्मा नहीं है मरणधर्मी है और मरण के अनन्तर विष्ठारूप, कीड़ेरूप अथवा

+ आगे इसही अध्याय के ४८ । ४९ वें श्लोक में कहेहुए सकल कर्म ।

गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो वटोरपि ॥ तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिंद्रियलौल्यता ॥ ३८ ॥ आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडंबकाः ॥ देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेतानुकंपया ॥ ३९ ॥ आत्मानं चेद्विजानीयात्परं ज्ञानधुताशयः ॥ किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लंपटः ॥ ४० ॥ आहुः शरीरं रथमिंद्रियाणि हयानभीषून्मन इंद्रियेशम् ॥ वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहद्बन्धुरमीशसृष्टम् ॥ ४१ ॥ अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवं ॥ धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ॥ ॥ ४२ ॥ रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः ॥ मानोऽवमानोऽसूया च

भस्मरूप होता है, ऐसा पहिले जो मानते हैं वही मूर्ख पुरुष, फिरभी इस देह की 'यह आत्मारूप है' ऐसा समझकर प्रशंसा करने लगते हैं, ऐसा हमारे देखने में आता है ३७ हेराजन्! गृहस्थ का कर्मों को त्यागना, ब्रह्मचारियों का व्रत को त्यागना, तपस्वियों का ग्राम सेवन करना और संन्यासी का विषयों में आसक्त होना, ऐसा होनेपर चारों आश्रमवाले अत्यन्तनीच होजाते हैं, क्योंकि–यह निःसन्देह आश्रम की विडम्बना करते हैं इस कारण यह देवमाया से अत्यन्त मोहित होरहे हैं ऐसा समझकर दयाकरके उनकी उपेक्षा ही करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यदि कहोकि–आत्मतत्व को जाननेवाला संन्यासी विषयों में आसक्त होयतो क्या दोष है? तहाँ कहते हैं कि–हेराजन्! यह आत्मा परब्रह्मरूप है, ऐसा यदि संन्यासी जाने तो उस ज्ञान से जिसकी वासना नष्ट हुई हैं ऐसा वह, भला कौन से सुख की इच्छा करके अथवा कौन से हेतु से विषयों में आसक्त होकर देह का पोषण करेगा? अर्थात् किसी हेतुसे नहीं करेगा, सारांश यह है कि–ज्ञानी पुरुष की विषयों में आसक्ति होना सम्भवनहीं है ॥ ४० ॥ अब विषयासक्ति के कारण अज्ञानी पुरुष को अधोगति होती है इसकारण मुमुक्षु पुरुष, अत्यन्त सावधान रहकर सर्वदा तत्वज्ञान के विषय में उद्योग करता रहे, निष्कर्ष यह है कि–यह आत्मा रथी है, यह देहही रथ है, ऐसा जानना, इत्यादि श्रुति में कहेहुए रथके रूपक के द्वारा कहते हैं कि–हेराजन्! यह देहही रथ है, ऐसा तत्वज्ञानी पुरुष, कहते हैं, यह इन्द्रियें घोड़े हैं, इन्द्रियों का स्वामी मन उन घोड़ों को पकड़ रखने की डोरियें हैं, शब्द आदि विषय मार्ग हैं, निश्चय वाली बुद्धि सारथि है, और ईश्वर का रचाहुआ यह चित्तही देह को व्याप्त करके रहनेवाला बन्धन है, ऐसा कहतेहैं ॥ ४१ ॥ तैसेही दशप्रकारका प्राण धुरीहै, पाप और पुण्य दो पहियेहैं, यह अभिमानी जीवरथीहै, प्रणव(ओं)उसका धनुषहै, यहशुद्धजीव बाण, और परब्रह्मही लक्ष्य (निशाना)है ऐसा कहतेहैं अर्थात् जैसे धनुषसे बाण को लक्ष्यपर लगातेहैं तैसे ही ओंकार से जीव को ब्रह्म में योजित करे ॥ ४२ ॥ राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, असूया, वंचना, हिंसा, मत्सर, अभिनिवेश, प्रमाद, क्षुधा और निद्रा इत्यादि

माया हिंसा च मत्सरः ॥ ४३ ॥ रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादयः ॥ रजस्तमःप्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥ ४४॥ यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ॥ ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रुः स्वारा-ज्यतुष्ट उपशांत इदं विजह्यात् ॥ ४५ ॥ नो चेत्प्रमत्तमसदिंद्रियवाजिसूता नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु हि क्षिपंति ॥ ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोऽधे संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपंति ॥ ४६ ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ आवर्त्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥ ४७ ॥ हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशांतिदम् ॥ दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥४८॥

शत्रु हैं और समाधि लगानेवाले योगी को किसी समय रजोगुण और तमोगुण की अभिमान आदि वृत्तियें शत्रु होजाती हैं और परोपकार आदि सात्विक वृत्तियों को भी शत्रु ही समझना चाहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इस कारण पुरुष, जबतक इन्द्रिय आदि सकल सामग्रीयुक्त अपने वशीभूत इस मनुष्य शरीररूप रथ को धारण कर रहा है तबतक ही गुरु के चरण की सेवा से तेज करेहुए ज्ञानरूपी खड्ग को धारण करके अच्युत भगवान् के आश्रय से शत्रु का तिरस्कार करे और चित्त में शान्ति धारण करके निजानन्द से सन्तुष्ट रहे, तदनन्तर इन रथ आदिकों की उपेक्षा करदेय ॥४५॥ क्योंकि—अच्युत भगवान् का आश्रय यदि न हुआ तो अत्यन्त असावधान रहनेवाले इस रथ के स्वामी जीव को, बहिर्मुख (बेकाबू) इन्द्रियरूप घोड़े और बुद्धिरूप सारथी प्रवृत्ति मार्ग में को लेजाकर विषयरूप चोरों में डालदेते हैं, तदनन्तर वह चोर, घोड़े और सारथी सहित इस रथी को मृत्यु के परमभय से युक्त और अन्धकार से व्याप्त संसाररूप कुए में लेजा कर डालदेते हैं ॥ ४६ ॥ अब, वेद में कहेहुए इष्टापूर्त्त आदि कर्म करनेवाले पुरुष को ऐसे अनर्थ की प्राप्ति कैसे होयगी? यदि ऐसी शङ्का करो तो उस को दूर करने के निमित्त दो प्रकार का वेद में कहा हुआ कर्म दिखाकर उन के फलों का भेद कहते हैं—हे धर्मराज! प्रवृत्त और निवृत्त यह दो प्रकार का वेदविहित कर्म है उस में से प्रवृत्त कर्म के द्वारा पुरुष वारंवार संसार में पडता है और निवृत्त कर्म के द्वारा मोक्ष पाता है ।४७। हे राजन्! पशु आदि की हिंसायुक्त और व्रीहि आदि द्रव्यमय जो अग्निहोत्र आदि कर्म अर्थात्—अग्निहोत्र, दर्शयाग, पूर्णमासयाग, चातुर्मास्ययाग, पशुयाग, सोमयाग, वैश्वदेव ÷

÷ मनुस्मृति में हुत नाम पञ्चमहायज्ञ में के देवयज्ञ नामक होम का कहा है, तैत्तिरीय आराण्यक में के पञ्चमहायज्ञ का विचार करनेपर चरुपुरोडाश आदि द्रव्यों से अथवा तीनि मिली हुई समिधाओं कर के भी जो अग्नि में होम करना वह देवयज्ञ है ऐसा निश्चय करा है; परन्तु बोधायन गृह्यसूत्र से हुत कहिये विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन और विष्णुबलि यह समझे जाते हैं ।

एतदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च ॥ पूर्त्तं सुरालयारामकूपाजीव्यादि-लक्षणम् ॥ ४९ ॥ द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः ॥ अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः ॥ ५० ॥ अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनर्भवः ॥ एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥ ५१ ॥ निषेकादिश्मशानान्तैः संस्कारैः संस्कृतो द्विजः ॥ इंद्रियेषु क्रियायज्ञान् ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥ ५२ ॥ इंद्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचि वैकारिकं मनः । वाचं वर्णसमाम्नाये तमोंकारे स्वरे न्यसेत् । ओंकारं विंदौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम् ॥ ५३ ॥ अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् ॥ विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात्

और बलिदान इन को इष्ट कहते हैं और देवमन्दिर, विश्रामस्थान (धर्मशाला), कूप और पानी की पौ तथा अन्न के सदाव्रत आदि को पूर्त्त कहते हैं और यह दोनों प्रकार के कर्म कामना से तथा अत्यन्त आसक्ति से करनेपर प्रवृत्त नामवाले होते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अब प्रवृत्त कर्म करनेपर ऊर्ध्वगति और अधोगति के द्वारा पुरुष को संसार कैसे प्राप्त होता है सो दिखाते हैं कि—हे राजन् ! प्रवृत्त कर्म करनेवाला पुरुष, पाहिले चरुपुरोडाश आदि द्रव्य के, देह को उत्पन्न करनेवाले रूप को प्राप्त होकर तदनन्तर वह धूमाभिमानिनी देवता, रात्रिकी अभिमानिनी देवता, कृष्णपक्ष की अभिमानिनी देवता, दक्षिणायन की अभिमानिनी देवता और चन्द्रलोक को प्राप्त होकर उस चन्द्रलोकमें भोगोंका उपभोग करनेके अनन्तर अदृश्यरूप होकर दृष्टिके द्वारा औषधि, लता अन्न और वीर्यके रूपसे क्रम करके तहांसे नीचे आताहै, इसप्रकार यहप्रवृत्त कर्ममार्ग पुनर्जन्म का कारणहै और हे राजन् ! ऊपर कहेहुए क्रमसे प्रत्येक अवस्थाको प्राप्त होकर इसलोकमें वह पुरुष फिर उत्पन्न होता है॥ ५० ॥ ५१ ॥ अब इस प्रवृत्तकर्ममार्ग का अधिकारी कहते हैं हे राजन् ! गर्भाधान से लेकर श्मशानपर्य्यन्त संस्कारों से संस्कृत हुआ द्विज, इस मार्ग में अधिकारी होता है, अब पुरोडाश आदि द्रव्यों से सिद्ध होनेवाले यज्ञों के विषैं हिंसा अवश्य होने के कारण निवृत्त कर्म की अत्यन्त श्रेष्ठता दिखाते हैं कि—निवृत्त कर्म में निष्ठ पुरुष, ज्ञानेन्द्रियों में कर्मेन्द्रियों के व्यापार की एकता की भावना करते हैं ॥ ५२ ॥ तैसे ही दर्शन आदि सङ्कल्परूप मन के विषैं इन्द्रियों की, वाणी में विकारयुक्त मन की, वर्णों के समूह में वाणी की, अकार आदि तीन स्वररूप ॐकार के विषैं उस वर्णसमूह की, बिन्दु में ॐकार की, नाद में बिन्दु की, सूत्रात्मारूप प्राण में उस नाद की और ब्रह्म के विषैं उस प्राण की एकता की भावना करते हैं ॥ ५३ ॥ इसप्रकार मुमुक्षु के अनुसन्धान की रीति कहकर अब उन को अर्चिरादि मार्ग से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होना दिखाते हैं—हे राजन् ! वह निवृत्तकर्मनिष्ठ ज्ञानी, क्रम से अग्नि, सूर्य, दिन, सायङ्काल, शुक्लपक्ष, पूर्णमासी और उत्तरायण के अ-

॥ ५४ ॥ देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वाऽनुपूर्वशः ॥ आत्मयाज्युपशांतात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते ॥ ५५ ॥ य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते ॥ शास्त्रेण चक्षुपा वेद जनस्थोपि न मुह्यति ॥ ५६ ॥ आदावंते जनानां सद्बहिरंतः परावरं ॥ ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयं ॥ ५७ ॥ आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः ॥ दुर्घटत्वादैंद्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥ ५८ ॥ क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि ॥ न सं-

भिमानी देवताओं को प्राप्त होकर ब्रह्मलोक को जाता है, इसप्रकार ब्रह्मलोक में जाने पर भोग की समाप्ति होनेपर्यन्त वह प्रथम स्थूलोपाधि होता है, तदनन्तर सूक्ष्म में स्थूलोपाधि का लय करके तैजस नामक सूक्ष्मोपाधिरूप होता है तदनन्तर सूक्ष्मोपाधि का भी कारण में लय करके वह प्राज्ञनामक कारणोपाधि होता है, वह कारण, साक्षीरूप से तीन अवस्थाओं में अनुगत होने के कारण उस का साक्षीरूप में लय करके तुर्य (अवस्थात्रयातीत) होता है और तदनन्तर वह शुद्धात्मस्वरूप होकर मुक्त होता है ॥५४॥ इस को देवयान (निवृत्त कर्ममार्ग) कहते हैं और जिस का अन्तःकरण अत्यन्त शांत है ऐसा इस मार्ग से चलनेवाला आत्मोपासक पुरुष,क्रमसे अग्नि आदि के अभिमानिनी देवतारूप होकर आत्मनिष्ठ होनेपर प्रवृत्त कर्मनिष्ठ पुरुष की समान फिर संसार में लौटकर नहीं आता है ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष, इस वेद में वर्णन करेहुए प्रवृत्त और निवृत्त कर्ममार्ग को शास्त्रदृष्टि से जानता है वह देह में स्थित होकरभी मोहित नहीं होता है ॥ ५६ ॥ क्योंकि–देह के आरम्भ में कारण रूप से और अन्त में अवधिरूप से जो रहता है तथा भोग्यरूप से बाहर भोक्तारूप से अन्तर्गत, उच्च, नीच, ज्ञान, ज्ञेय, वचन वाच्य,तम और प्रकाशरूप जो कुछ वस्तुहैं वह सब यह ज्ञानीपुरुष,स्वयं ही होताहै सारांश यह है कि–उस को छोड़कर कोई भी वस्तु न होने के कारण उस को मोह नहीं होता है ॥ ५७ ॥ यदि कहोकि–ऐसा होनेपर ज्ञानी पुरुष को भी अपने से भिन्न वस्तु की प्रतीति कैसे होती है ? तहाँ कहते हैंकि–हेराजन् ! तर्क में विरोध आने के कारण सब प्रकार से बाधितहुआ भी प्रतिबिम्ब नामक आभास जैसे सत्यरूप से प्रतीत होता है परन्तु सत्य नहीं है तैसे ही सकल इन्द्रियों करके उपभोग करने के विषयों का समूहभी सत्यरूप से कल्पित है परन्तु वास्तव में सत्य नहीं है, क्योंकि - ऐसा होना दुर्घट है ॥ ५८॥ हे राजन् ! पञ्चमहाभूतों की एकता बुद्धि के आश्रयरूप देह आदिक, पञ्चभूतों का समूह, विकार और परिणाम इन में से कुछ नहीं हैं अर्थात् जैसे वन वृक्षों का समूह है तैसे देह पञ्चमहाभूतों का समूह नहीं कहाजासक्ता, क्योंकि–वन में के एक वृक्ष को खैंचनेपर सबका आकर्षण कभी नहीं होता है और देहका यदि एकभाग खैंचाजायतो सब देह खिंचआता है. और यह शरीर पञ्चमहाभूतों का विकार अथवा

धातो विकारोऽपि न पृथङ् नान्वितो मृषा ॥ ५९ ॥ धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना ॥ न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽन्ततः ॥ ६० ॥ यत्सा-दृश्यभ्रमस्तावद्विकल्पे सति वस्तुनः ॥ जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनि-षेधता॥६१॥भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथात्मनः॥वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्ना-

पञ्चमहाभूतों का रूपान्त है ऐसा भी कहना नहीं बनसक्ता, क्योंकि–ऐसा होने में तो देह आदि सावयव पदार्थ, अपने अवयवों से अथवा रूपान्तर को प्राप्तहुए अवयवों से भिन्न होना चाहियें या उन से युक्त ही होना चाहियें. इस अवयवी को अवयवों से अत्यन्त भिन्न मानो तो ऐसा अनुभव में नहीं आता, और उन से युक्त है ऐसा कहो तो प्रत्येक अवयव से वह पूर्णरूप करके युक्त होना चाहिये किंवा अंश से तो युक्त होना चाहिये परन्तु इन दोनों में से एकप्रकार भी होना सम्भव नहींहै, क्योंकि–प्रत्येक अवयव से सम्पूर्णरूपसेयुक्त है ऐसा कहो तो केवल अंगुलि में ही देहबुद्धि होगी; और अंशसे युक्त है ऐसाकहो तो उसका और अवयवी मानकर उसका भी और कोई अवयवी है ऐसा मानना पड़ेगा तथा इस क्रम के एकवार प्रारम्भ होनेपर कभी समाप्ति ही नहीं होगी अर्थात् अनवस्था दोष आवेगा, इस कारण यह देह आदि सब मिथ्याहीहै॥५९॥ इसप्रकार देह आदि का मिथ्यापन कहकर अब उन के हेतुभूत पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतों का भी मिथ्यापन कहते हैं कि–हेराजन्! देह आदि को धारण करनेवाले पञ्चमहाभूत, सावयव होने के कारण अपने सूक्ष्म अवय-वोंके विना कभी भी नहीं रहसक्ते, यदि कहो कि–उन के अवयव सत्य हैं तो पूर्वोक्तरीति से अवयवी पदार्थ के असत्य ठहरनेपर उसका अवयवभी अन्त में असत्यही ठहरेगा ॥ ॥ ६० ॥ अब देह आदि अवयवी पदार्थ ही यदि मिथ्या है तो उत्पत्ति और नाश से युक्त बालक आदि अवस्थाओं में 'वही यह देवदत्त है जिसे दशवर्ष पहिले देखाथा, इत्यादि पहिचान नहीं रहैगी, ऐसा कहो तो हेराजन्! परमात्मा में अज्ञान से भेद भाव कल्पित होने से पहिली पहिली अवस्था में के आरोप की अगली अगली अवस्थाओं में सदृशता होने के कारण 'वही यह देवदत्त है,ऐसी प्रतीति भी केवल भ्रांति ही है और वह भी अज्ञान दूर होने के समयपर्यन्त ही रहती है, अब यदि सबही मिथ्या है तो अमुक वार्त्ता करे और अमुक न करे इसप्रकार शास्त्रका विधिनिषेध करना कैसे बनता है ऐसा यदि कहो तो हेराजन्! स्वप्न अवस्था में जाग्रत् और सुषुप्ति इन दोनों अवस्थाओं का अनुभव जैसे मिथ्या होता है तैसे ही विधिनिषेध की व्यवस्था है ॥ ६१ ॥ अब इस प्रतिपादन करेहुए अद्वैत को ही तीन भावनाओं का उपदेश करके दृढ़ करते हैं– हे राजन्! भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत को देखनेवाला मुनि, इस देह आदि में रहकर ही आत्मतत्त्व के अनुभव से अपनी जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं को दूर

न्धुनुते मुनिः ॥६२॥ कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत् ॥ अवस्तुत्वाद्विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥६३॥ यद्ब्रह्मणि परे साक्षात्सर्वकर्मसमर्पणम् ॥ मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६४ ॥ आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् ॥ यत्स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥ ६५ ॥ यद्यस्य वाऽनिषिद्धं स्याद्येन यत्र यतो नृप ॥ स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥ ६६ ॥ एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः ॥ गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद्राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः ॥ ६७ ॥ यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजादापद्गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः ॥ यत्पादपंकेरुहसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥ ६८ ॥ अहं पुराऽभवं कश्चिद्गन्धर्व उपबर्हणः ॥ नाम्नाऽतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसंमतः ॥ ६९ ॥ रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शनः ॥ स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं

करता है ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! वस्त्र और तन्तु (डोरा) इन दोनों में जैसे तन्तु ही वस्त्र है तैसे ही सर्वत्र कार्य कारणरूप वस्तु एक ही है ऐसा जानने का नाम भावाद्वैत कहते है क्योंकि--भेद वास्तव में सत्य नहीं है ॥ ६३ ॥ तैसे ही हे कुन्तीपुत्र धर्म-राज ! शरीर, वाणी और मन से करेहुए सकल कर्मों का जो परब्रह्म के विषैं फल की इच्छा छोड़कर अर्पण करना तिस को क्रियाद्वैत कहते हैं ॥ ६४ ॥ और तैसे ही स्वयं अपने स्त्री पुत्र आदि की तथा अन्य प्राणियों के धन आदि की एवं भोगों की जो एकता मानना अर्थात् सब के देह पञ्चभूतमय हैं और सबका भोक्ता परमात्मा है इसप्रकार अभेद दृष्टि से अर्थ और काम इन दोनों में जो एकता की दृष्टि करना उस को द्रव्याद्वैत कहते हैं ॥ ६५ ॥ अब कहेहुए आश्रम धर्मों को संक्षेप से कहते हैं कि--हे राजन् ! जिस देशकालमें जिस उपाय के द्वारा जिससे जो द्रव्य जिस पुरुष को विहित होय उस ही द्रव्यसे वही पुरुष उन विहित कर्मोंको करे,आपत्तिकाल के न होतेहुए अन्य द्रव्यों से न करे ॥६६॥हेराजन्! इन पहिले कहेहुए तथा अन्य भी वेद में कहेहुए अपने कर्मों के द्वारा इन श्रीकृष्णजीकी भक्ति करनेवाला पुरुष,घरमें रहता हुआ ही इनके स्वरूपको प्राप्त होता है ॥६७॥हे राजाधिराज! जिसको हटाना कठिन है ऐसे विपत्तियोंके समूह को,परमात्मा श्री-कृष्णजीके द्वारा ही जैसे तुम तरगये हो और उनके ही चरणकमल की सेवासे दिग्गजों पर्यन्त सबको जीतकर जैसे तुमने राजसूय आदि यज्ञ करे हैं तैसे ही उन श्रीकृष्णजी के ही आश्रय से तुम संसार के भी पार होजाओ ॥ ६८ ॥ अब महात्माओं का अपमान करने से श्री-कृष्णजी की सेवा नष्ट होती है और उन की कृपा से ही फिर प्राप्त होती है यह दिखा-ने के अभिप्राय से नारदजी अपना पहिला वृत्तान्त कहते हैं कि - हे राजन् ! पहिले बीते-हुए महाकल्प में मैं गन्धर्वों में श्रेष्ठ उपबर्हण नामवाला एक गन्धर्व था ॥ ६९ ॥ सुन्दरता, सुकुमारता, वाणी की मधुरता और सुगन्धि के कारण मेरा दर्शन सब को प्रिय था इस

मत्तस्तु पुरुलंपटः ॥ ७० ॥ एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ॥ ७१ ॥ अहं च गायंस्तद्विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतो गतः ॥ ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ॥ याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥ ७२ ॥ तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् ॥ शुश्रूषयाऽनुषंगेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥ ७३ ॥ धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः ॥ गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामियात् ॥ ७४ ॥ यूयं नृलोके वत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद्गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम् ॥ ७५ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्मार्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥ ७६ ॥ न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्-

कारण स्त्रियों को भी मैं अत्यन्त प्रिय था इससे उन में अत्यन्त लम्पट होकर मैं सर्वदा मत्त रहता था ॥ ७० ॥ एकदिन देवताओं के सत्र में दक्ष आदि प्रजापतियों ने श्रीहरि का यश गाने के निमित्त सब गन्धर्वों को और अप्सराओं को बुलाया था ॥ ७१ ॥ यह जानकर स्त्रियों से घिराहुआ मैं गान करता२ ही तहाँ गया, तब उस मेरी करीहुई अवज्ञा को जानकर प्रजापतियों ने क्रोध के वेग से 'तूने जो हमारी अवज्ञा करी है इस से तू निस्तेज होकर शीघ्र ही शूद्रयोनि में जा' ऐसा मुझे शाप दिया ॥ ७२ ॥ वह शाप होते ही मैंने एक दासी के उदर में जाकर जन्मलिया परन्तु उस शूद्र जन्म में भी मुझे ब्रह्मज्ञानियों का समागम और उन की सेवा करने का अवसर मिला इसकारण मैं आगे को ब्रह्माजी का पुत्र हुआ ॥ ७३ ॥ हे धर्मराज ! जिस से गृहस्थी पुरुष भी अनायास में संन्यासियों की गति को पाता है वह गृहस्थियों का, पाप को दूर करनेवाला धर्म मैंने तुम से कहा है ॥ ७४ ॥ अब नारदजी मन में धर्मराजकी कृतार्थता की ओर ध्यान देकर पहिले, दशवें अध्याय में कहेहुए ही श्लोक कहते हैं—हे धर्मराज ! इस मनुष्यलोक में तुम निःसन्देह भाग्यशाली हो, क्योंकि—तुम्हारे घर में मनुष्यरूप धारण करके गुप्तहुए साक्षात् श्रीकृष्णनामक परब्रह्म वास कररहे हैं इसकारण तुम्हारे घर, दर्शनमात्र से ही सबलोकों को पवित्र करनेवाले मुनि सब दिशाओं से आते हैं ॥ ७५ ॥ यदि कहो कि—यह श्रीकृष्ण हमारे मामा के पुत्र हैं इन को तुम परब्रह्म कैसे कहते हो तो हे राजन् ! परमविवेकी पुरुषोंके इच्छा करनेयोग्य जो उपाधि रहित परमानन्द उसका अनुभवरूप ब्रह्म,सो ही यह निःसन्देह तुम्हारे प्रिय,सुहृद्,मामाके पुत्र,आत्मा,आज्ञाकारी,गुरु और पूजनीय श्रीकृष्णहैं।७६।यह यदि परब्रह्महैं तो सोलहसहस्र स्त्रियोंमें रमणकरना और धर्म आदि का आचरण करना यह इनको कैसे योग्य होसक्ताहै?यदि ऐसा कहो तो हेराजन्!मुनी—शिव

र्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेप स सात्वतां पतिः ॥ ॥ ७७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः ॥ पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥ ७८ ॥ कृष्णपार्थावुपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः ॥ श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥ ७९ ॥ इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ॥ देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥ ८० ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ७ ॥ ७ ॥ ७ ॥

ब्रह्मादिकों ने भी अपनी बुद्धिके द्वारा जिन का साक्षात् वास्तविक यथार्थ तत्त्व वर्णन नहीं करा ऐसे यह भक्तपालक भगवान्, मौन, भक्ति और इन्द्रियों को वश में करके हमारे पूजन करेहुए हैं सो हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ७७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् परीक्षित् ! इसप्रकार देवर्षि नारदजी के कहेहुए धर्म के रहस्य को, भरतकुल श्रेष्ठ धर्मराज सुनकर प्रेमसे अत्यन्त विह्वल हुए और अति प्रसन्न होकर उन्होंने नारदजी का और श्रीकृष्णजी का पूजन करा ॥ ७८ ॥ इसप्रकार पूजन करेहुए वह नारदमुनि, श्री कृष्णजी और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर तहां से चलेगये, इधर-यह श्रीकृष्ण जी साक्षात् परब्रह्महैं ऐसा सुनकर धर्मराज अतिविस्मयमेंहुए ।७९। हेराजन् परीक्षित् ! इस प्रकारजिनमेंदेवता,असुर और मनुष्य आदि चराचरप्राणी उत्पन्नहुएहैं ऐसा यह दक्ष कन्याओंकावंशमैंनेतुमसेभिन्न२करके वर्णनकराहै८०इति सप्तमस्कन्धमें पञ्चदशअध्यायसमाप्त ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि-मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र-गौड़वंश्य-श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थराजकीयप्रधान-विद्यालये प्रधानाध्यापक-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-महामहोपाध्याय-सत्सम्प्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोपनामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेनान्वयेन भाषानुवादेन च सहितः सप्तमस्कन्धःसमाप्तः ॥

समाप्तोऽयं सप्तमः स्कन्धः

पता-शिवलाल गणेशीलाल
"लक्ष्मीनारायण" छापाखाना
मुरादाबाद.